श्रीव्यासमहर्षिप्रोक्तं

लिङ्ग महापुराणम्

परिचय, विषय-सूची, संस्कृत मूल, हिन्दी अनुवाद, कुछ विशेष शब्दों के अर्थ और टिप्पणियाँ, श्लोकानुक्रमणी एवं विषयानुक्रमणिका सहित

अनुवादक एवं सम्पादक

पुरस्कृत लेखक

पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र शास्त्री

चौखम्बा संस्कृत सीरीज

१२९

****

श्रीव्यासमहर्षिप्रोक्तं

लिङ्ग महापुराणम्

परिचय, विषय-सूची, संस्कृत मूल, हिन्दी अनुवाद, कुछ विशेष शब्दों के अर्थ और टिप्पणियाँ, श्लोकानुक्रमणी एवं विषयानुक्रमणिका सहित

अनुवादक एवं सम्पादक

पुरस्कृत लेखक

पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र शास्त्री

पूर्व संग्रहाध्यक्ष

हिन्दी संग्रहालय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

पूर्व अनुवादक

पुराण विभाग

मानद पुस्तकालय अधिकारी

अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् पुस्तकालय, लखनऊ

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

लिङ्गमहापुराण का परिचय

हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य में पुराणों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जनता श्रद्धापूर्वक पुराणों को सुनती है। महापुराणों की संख्या १८ है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. ब्रह्ममहापुराण, २. पद्ममहापुराण, ३. विष्णुमहापुराण, ४. शिवमहापुराण, ५. भागवतमहापुराण, ६. नारदीयमहापुराण, ७. मारकण्डेयमहापुराण, ८. अग्निमहापुराण, ९. भविष्यमहापुराण, १०. ब्रह्मवैवर्त्तमहापुराण, ११. लिङ्गमहापुराण, १२. वराहमहापुराण, १३. स्कन्दमहापुराण, १४. वामनमहापुराण, १५. कूर्ममहापुराण, १६. मस्त्यमहापुराण, १७. गरुड़महापुराण, १८. ब्रह्माण्ड महापुराण।

लिङ्गमहापुराण

उक्त १८ महापुराणों में लिङ्गमहापुराण ग्यारहवाँ महापुराण है। इसमें दो भाग हैं पूर्व भाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग में १०८ अध्याय हैं और उत्तर भाग में ५५ अध्याय हैं। इस प्रकार दोनों भागों में १६३ अध्याय हैं तथा ग्यारह हजार श्लोक हैं।

रचयिता

इसी महापुराण के उत्तर भाग में लिखा गया है कि इस पुराण की रचना स्वयं ब्रह्मा जी ने की थी। उन्होंने कहा था कि इस पुराण को जो व्यक्ति आदि से अन्त तक पढ़े या सुने या ब्राह्मणों को सुनावे, उसको तप, यज्ञ, दान आदि से जो फल मिलता है उसके बराबर फल प्राप्त होता है और अन्त में उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसके वंश में कोई मूर्ख और प्रमादी नहीं होता है।

ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मा द्वारा रचित यह महापुराण पहले बहुत बड़ा था। बाद में कृष्णद्वैपायन व्यास (महर्षि व्यास) जी ने इसका नये सिरे से संपादन किया। वर्तमान रूप में जो लिंगमहापुराण उपलब्ध है इसका स्थायी रूप चौथी शताब्दी ईस्वी में हुआ ऐसा विद्वान लोग मानते हैं और महर्षि व्यास को ही इसका रचयिता भी मानते हैं। प्रकाशित सभी संस्कारणों में कृष्णद्वैपायन व्यास या महर्षि व्यास प्रणीतम् या प्रोक्तम् छपा हुआ मिलता है। अतः इस महापुराण के रचयिता महर्षि व्यास जी ही मान्य हैं।

नामकरण

इस महापुराण का नाम लिंगमहापुराण है। यह नामकरण क्यों किया गया इसका कारण यह है कि मुख्य रूप से इसमें लिंग के विषय में वर्णन किया गया है। यह महापुराण शैव पुराण है। शैव सम्प्रदाय में लिंग की पूजार्चना और उपासना की जाती है। शिव के भक्त को शैव कहते हैं। उनके सम्प्रदाय को शैव सम्प्रदाय कहा जाता है। इस पुराण में लिंग की उत्पत्ति कैसे हुई, उसका परिचय उसके दार्शनिक सिद्धान्त, लिंग के स्थूल और सूक्ष्म रूप, उसके पूजन की धार्मिक विधियों और उसके फल का वर्णन मुख्य है। अतः इस पुराण को लिंग महापुराण नाम दिया गया है।

कथा का प्रारम्भ

नैमिष नामक तीर्थ में ऋषि लोग तपस्या करते हुये वहाँ निवास करते थे। वे शिव भक्त थे। एक बार नारद मुनि शैव तीर्थों का दर्शन करके वहाँ आये। संयोगवश महर्षि व्यास के शिष्य लोमहर्षण सूत जी भी वहाँ पधारे। सामान्य शिष्टाचार के पश्चात् नैमिषवासी ऋषियों ने नारद जी की उपस्थिति में पुराणों के विशेषज्ञ सूत जी से लिंग की उत्पत्ति और उसकी उपासना विधि आदि के सम्बन्ध में प्रश्न किया। सूत जी ने उसका उत्तर दिया। इस प्रकार ऋषियों द्वारा पूछे गये प्रश्नों और सूत जी द्वारा दिये गये उन प्रश्नों के उत्तरों से लिंगमहापुराण का यह रूप हो गया। चूँकि प्रसंगवश ऋषियों द्वारा विविध विषयक प्रश्न किये गये। अतः इस महापुराण में विविध विषयों का वर्णन हुआ। फलतः यह महापुराण ज्ञान का महाभण्डार बन गया।

वर्ण्य विषय

इस महापुराण में सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय और पुनः सृष्टि, कल्प, मनु, मन्वन्तर, चतुर्युग, राजवंशों (सूर्यवंश, चन्द्रवंश, यदुवंश आदि) का वर्णन है। पृथ्वी पर स्थित सातों द्वीपों, प्रमुख पर्वतों, सागरों, नदियों, निवासियों का वर्णन है। आकाश में स्थित नक्षत्रों, ग्रहों उनकी स्थिति और गतियों का वर्णन है।

शिव महेश्वर हैं वे साकार और निराकार दो रूपों में हैं। ब्रह्मा और विष्णु उनके अंग से उत्पन्न हैं। शिव के आदेश से ब्रह्मा जगत् की सृष्टि करते हैं। विष्णु उसका पालन करते हैं और शिव स्वयं सृष्टि का संहार करते हैं। शिव की शक्ति अपरंपार है। उनके निर्देश से ही सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदि अपने-अपने कार्य के लगे हैं। उनकी कृपा पर ही समस्त ब्रह्माण्ड निर्भर है। वे काल के भी काल महाकाल हैं। वे पृथ्वी पर अवतार लेते हैं। अपने भक्तों का दुःख दूर करते हैं। पार्वती द्वारा घोर तपस्या करने पर वे उनसे विवाह करते हैं। गणेश और स्कन्द उनके पुत्र हैं। वे कैलासवासी हैं। वे महान् तेजस्वी हैं। वे चिताभस्मधारी और श्मशान प्रिय हैं। उनका रौद्र रूप और अनुग्रह रूप दोनों हैं। रौद्र रूप में उन्होंने तारक, अन्धक, बेणु, जलन्धर आदि दैत्यों का वध किया। अनुग्रह रूप में उन्होंने श्वेत मुनि की रक्षा की और मृत यम को भी जीवन दान दिया। इस प्रकार अनेक कथानक इस पुराण में आये हैं।

निराकार रूप में शिव ब्रह्माण्ड के कर्त्ता, भर्ता और हर्त्ता महेश्वर हैं। वे अद्वैत हैं। लिंग की प्रतिमा (मूर्त्ति) में शिव सदा विद्यमान रहते हैं। अतः लिंग मूर्त्ति की पूजा स्वतन्त्र रूप में लिंग बनाकर अथवा शिवालय में स्थापित लिंग की पूजा विधि-विधान से श्रद्धापूर्वक करनी चाहिये। इसीलिये इस पुराण में शिवालय के निर्माण का महत्त्व भी बताया गया है। शिव क्षेत्र में प्राण त्यागने पर मुक्ति का भी उल्लेख किया गया है। इस पुराण का मुख्य उद्देश्य शैव वेदान्त के शिवाद्वैत मत की पृष्ठ भूमि को विशेष रूप में लिंग उपसंप्रदाय के प्रसंग में विस्तारपूर्वक बताना है।

लिंग का स्थूल और सूक्ष्म दो रूपों में वर्णन किया गया है। स्थूल लिंग मृत्तिका, पत्थर, धातु और स्फटिक आदि से बना कर उसकी पूजा करने का उद्देश्य सामान्य जन के मन में शिव की पूजा करने के प्रति श्रद्धा भाव उत्पन्न करने के लिए है। उसके बाद भक्त ज्ञान की प्राप्ति करके पाशुपत योग के माध्यम से माया के जाल से मुक्त हो जाता है।

भक्त अपने को इस ग्रन्थ में बताये गये तन्त्र और मन्त्रों द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष आदि को वश में करके जितेन्द्रिय हो। पाशुपात योग का साधक बने और मोक्ष को प्राप्त करे अर्थात् शिव का सायुज्य

प्राप्त करे। मानव जन्म-मरण के बन्धन से सदा के लिये युक्त हो जाय। यही बोध कराना इस महापुराण का लक्ष्य है।

वाराणसी की चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस संस्था संस्कृत के क्षेत्र में प्रशंसनीय सेवा अपने उत्कृष्ट प्रकाशनों द्वारा सन् १८९२ से करती आ रही है। इस महापुराण का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध न होने की कमी का अनुभव इस संस्था के वर्तमान स्वामी सेठ ब्रजमोहन दास जी ने किया। उन्होंने संस्कृत में मेरी लिखित कई पुस्तकों को प्रकाशित किया है। अपने एक साहित्यिक सलाहकार के संकेत पर उनहोंने मुझको इस महापुराण के हिन्दी अनुवाद करने को कहा। इस समयसाध्य और श्रमसाध्य कार्य को करने के लिये मैंने स्वीकार कर लिया। उन्होंने इस पुराण की मुद्रित एक मूल प्रति और एक संस्कृत हिन्दी कोश देकर अनुवाद कार्य का शुभारम्भ करने की सुविधा दी। मैंने अपनी अति वृद्धावस्था को देखते हुये कार्य को सुविधापूर्वक शीघ्र पूरा करने के उद्देश्य से भागीदारी के लिये अपने कई विद्वान मित्रों से कहा किन्तु मेरा प्रयास विफल रहा। अन्त में मैं अकेले इस कार्य में जुट गया। मेरे मित्र ज्योर्विद् पं. रामलखन त्रिपाठी ने इस पुण्य कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए एक शुभमुहूर्त बताया। मैंने हिन्दी में बोलकर अनुवाद को लिखवाया। इसमें प्रयागस्थ सौदामिनी संस्कृत महाविद्यालय के सहायक अध्यापक पं. इन्द्र कुमार मिश्र साहित्याचार्य, पं. श्रीधर पाण्डेय सेवानिवृत्त संस्कृत अध्यापक इलाहाबाद इण्टर कालेज, प्रयाग और श्रीमती सुमन मिश्र बी.ए. ने एवं पं. आनन्द मालवीय एवं रमेश कुमार जी ने भी इस कार्य में मुझको सहयोग प्रदान किया। इस महापुराण की प्रूफ रीडिंग पं. इन्द्र कुमार मिश्र जी ने की। अन्तिम प्रूफ को मैंने भी देखा। अतः इन सब के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

अन्त में एक वर्ष तक अथक प्रयास से यह कार्य पूरा हुआ। इस पुराण का अनुवाद और सम्पादन मैंने भक्ति और श्रद्धापूर्वक किया है। यदि इसमें कहीं कोई कमी अनजाने में रह गयी हो तो मुझे विश्वास है कि आशुतोष शिव जी क्षमा करेंगे।

आशा है इस अनुवाद से हिन्दी पढ़े-लिखे श्रद्धालु पाठकों को इस लिंगमहापुराण को समझने में सहायता मिलेगी। इससे अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में इस अनुवाद को करने से मुझको भी प्रसन्नता होगी।

८५६/१२६४
मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

द्वारकाप्रसाद मिश्र शास्त्री
अनुवादक एवं सम्पादक

विषय सूची

श्रीलिङ्गमहापुराणम्

पूर्वभागः

श्री गणेशाय नमः। ॐ नमः शिवाय।

—❀—

प्रथमोऽध्यायः

लिङ्गोद्भवप्रतिज्ञावर्णनम्

नमो रुद्राय हरये ब्रह्मणे परमात्मने। प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यंतकारिणे॥१॥
नारदोऽभ्यर्च्य शैलेशे शंकरं संगमेश्वरे। हिरण्यगर्भे स्वर्लीने ह्यविमुक्ते महालये॥२॥
रौद्रे गोप्रेक्षके चैव श्रेष्ठे पाशुपते तथा। विघ्नेश्वरे च केदारे तथा गोमायुकेश्वरे॥३॥
हिरण्यगर्भे चंद्रेशे ईशान्ये च त्रिविष्टे। शुक्रेश्वरे यथान्यायं नैमिषं प्रययौ मुनिः॥४॥
नैमिषेयास्तदा दृष्ट्वा नारदं हृष्टमानसः। समभ्यर्च्यासनं तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन्॥५॥
सोपि हृष्टो मुनिवरैर्दत्तं भेजे तदासनम्। संपूज्यमानो मुनिभिः सुखासीनो वरासने॥६॥
चक्रे कथां विचित्रार्थां लिंगमाहात्म्यमाश्रिताम्। एतस्मिन्नेव काले तु सूतः पौराणिकः स्वयम्॥७॥

श्री गणेश जी को नमस्कार। ॐ शिवजी को नमस्कार

पहला अध्याय

लिङ्गोद्भव-प्रतिज्ञा का वर्णन

सृजन, पालन और संहार के कारणभूत, प्रधान और पुरुष के स्वामी, रुद्र, विष्णु एवं ब्रह्मा, परमात्मा को प्रणाम।।१।। शैलेश, संगमेश्वर, हिरण्यगर्भ, स्वर्लीन, अविमुक्त, महालय, रौद्र, गोप्रेक्षक, पाशुपत, विघ्नेश्वर, केदार, गोमायुकेश्वर, हिरण्यगर्भ, चन्द्रेश, ईशान्य, त्रिविष्टप और शुक्रेश्वर आदि तीर्थों में शिव की पूजा करके नारद मुनि नैमिष गये।।२-४।। नैमिष के निवासी नारद मुनि को देखकर बहुत आनन्दित हुए। उनका समुचित सम्मान करने के उपरान्त उन्हें उपयुक्त आसन दिया।।५।। वे भी उनके द्वारा दिये गये आसन पर प्रसन्नतापूर्वक बैठ गये। मुनियों के द्वारा समुचित रूप से पूजित नारद ने उनसे अद्भुत कथाओं से युक्त लिङ्गों के माहात्म्य से सम्बन्धित चर्चा की। उसी समय पुराणों में निष्णात मनीषी सूत जी मुनियों की पूजा करने के लिए स्वयं

जगाम नैमिषं धीमान् प्रणामार्थं तपस्विनाम्। तस्मै साम पूजां च यथावच्चक्रिरे तदा॥८॥
नैमिषेयास्तु शिष्याय कृष्णद्वैपायनस्य तु। अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत॥९॥
दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं रोमहर्षणम्। अपृच्छंश्च ततः सूतमृषिं सर्वे तपोधनाः॥१०॥

नैमिषेया ऊचुः।

पुराणसंहितां पुण्यां लिंगमाहात्म्यसंयुताम्। त्वया सूत महाबुद्धे कृष्णद्वैपायनो मुनिः॥११॥
उपासितः पुराणार्थे लब्धा तस्माच्च संहिता। तस्माद्भवंतं पृच्छामः सूत पौराणिकोत्तम॥१२॥
पुराणसंहितां दिव्यां लिंगमाहात्म्यसंयुताम्। नारदोप्यस्य देवस्य रुद्रस्य परमात्मनः॥१३॥
क्षेत्राण्यासाद्य चाभ्यर्च्य लिंगानि मुनिपुंगवः। इह सन्निहितः श्रीमान् नारदो ब्रह्मणः सुतः॥१४॥
भवभक्तो भवांश्चैव वयं वै नारदस्तथा। अस्याग्रतो मुनेः पुण्यं पुराणं वक्तुमर्हसि॥१५॥
सफलं साधितं सर्वं भवता विदितं भवेत्। एवमुक्तः स हृष्टात्मा सूतः पौराणिकोत्तमः॥१६॥
अभिवाद्याग्रतो धीमान्नारदं ब्रह्मणः सुतम्। नैमिषेयांश्च पुण्यात्मा पुराणं व्याजहार सः॥१७॥

सूत उवाच

नमस्कृत्य महादेवं ब्रह्माणं च जनार्दनम्। मुनीश्वरं तथा व्यासं वक्तुं लिंगं स्मराम्यहम्॥१८॥
शब्दब्रह्मतनुं साक्षाच्छब्दब्रह्मप्रकाशकम्। वर्णावयमव्यक्तलक्षणं बहुधा स्थितम्॥१९॥

नैमिष आये। नैमिष के निवासियों ने गीतों और स्तुतियों से उनका स्वागत किया क्योंकि परम विद्वान सूत (रोमहर्षण) कृष्णद्वैपायन के शिष्य थे, अतः उनके (मुनियों के) मन में पुराणों को सुनने की इच्छा हुई। तदनन्तर उन्होंने उनसे (सूत मुनि से) लिङ्गों की महत्ता और उनके माहात्म्य से युक्त पुराणों के बारे में पूछा।।६-८।।

नैमिषवासियों ने कहा

हे महान मनीषी सूत जी! आपने पुराणों के ज्ञान के लिए कृष्ण द्वैपायन की स्तुति करके उनसे पुराण की कथाओं का ज्ञान प्राप्त किया है। हे श्रेष्ठ पौराणिक! हम आपसे लिङ्गों के गौरव से युक्त पुराण की कथाएँ सुनना चाहते हैं। ब्रह्मा के महान् पुत्र नारद भगवान रुद्र के समस्त तीर्थों की यात्रा करके और वहाँ स्थित लिङ्गों की पूजा करके यहाँ पहुँचे हैं। आप भगवान रुद्र के उपासक हैं। हम लोग और नारद जी वही (रुद्र के उपासक) हैं। आपके लिए उचित है कि आप मुनि की उपस्थिति में लिङ्गों के माहात्म्य और महत्ता से युक्त उत्तम पुराण सुनायें क्योंकि (धर्म से सम्बन्धित) सभी वस्तु आप प्राप्त कर चुके हैं। अतः आपको इसका अच्छा ज्ञान होगा।।९-१५।। इस प्रकार कहे जाने पर पौराणिकों में सर्वाधिक प्रतिभावान् सूत जी मन में बहुत हर्षित हुए। गुणी सूत जी ने सर्वप्रथम ब्रह्मा जी के पुत्र नारद जी को प्रणाम किया। तदन्तर वहाँ उपस्थित तपस्वियों को प्रणाम करके पुराण सुनाना प्रारम्भ किया।।१६-१७।।

सूत जी बोले

लिङ्ग पुराण सुनाने के लिए मैं शिव, ब्रह्मा और विष्णु का वन्दन करके मुनि श्रेष्ठ व्यास जी का स्मरण करता हूँ।।१८।। मैं उस परमेश्वर की वन्दना करता हूँ जिसका शरीर शब्द ब्रह्म है जो शब्द ब्रह्म को प्रकट करने

अकारोकारमकारं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्। ओंकाररूपमृग्वक्त्रं सामजिह्वासमन्वितम्॥२०॥
यजुर्वेदमहाग्रीवमथर्वहृदयं विभुम्। प्रधानपुरुषातीतं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्॥२१॥
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकांडजम्। सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम्॥२२॥
प्रधानावयवं व्याप्य सप्तधाधिष्ठितं क्रमात्। पुनः षोडशधा चैव षड्विंशकमजोद्भवम्॥२३॥
सर्गप्रतिष्ठासंहारलीलार्थं लिंगरूपिणम्। प्रणम्य च यथान्यायं वक्ष्ये लिंगोद्भवं शुभम्॥२४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे लिङ्गोद्भवप्रतिज्ञावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

वाला है, जिसके अंग अक्षर हैं, जिनके गुण अप्रकट हैं, किन्तु जो अपने को विविध तरह से प्रकट करता है, जो ओउम् अक्षरों से बनता है, जो स्थूल भी है और सूक्ष्म भी है। जो महत्तम और महत्तर है, जिसका आकार ॐ है, जिसका मुख ऋग्वेद है, जिह्वा सामवेद है, कण्ठ यजुर्वेद और हृदय अथर्ववेद है। जो कि प्रधान और पुरुष से परे ईश्वर है, जो जन्म और मृत्यु से रहित है और जो तमोगुण धारण करने पर कालरुद्र, रजोगुण धारण करने पर ब्रह्मा और सत्त्वगुण धारण करने पर सर्वव्यापी विष्णु कहा जाता है। जो तीनों गुणों से रहित होने पर महेश्वर, जो प्रधान के आकार में व्याप्त पहले अपने को सात प्रकार तत्पश्चात् सोलह और अन्त में छब्बीस रूपों में व्यक्त करता है। जो ब्रह्मा के मूल का स्रोत है और जो सृष्टि के सृजन, पालन और संहार मात्र की लीला के लिए लिङ्ग का आकार धारण करता है। उस परमेश्वर की श्रद्धापूर्वक वन्दना करने के बाद मैं शुभ लिङ्गपुराण की कथा कहता हूँ।।१९-२४।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में लिंगोद्भव प्रतिज्ञा का वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

अनुक्रमणिकाकथनम्

सूत उवाच

ईशानकल्पवृत्तांतमधिकृत्य महात्मना। ब्रह्मणा कल्पितं पूर्वं पुराणं लैंगमुत्तमम्॥१॥
ग्रंथकोटिप्रमाणं तु शतकोटिप्रविस्तरे। चतुर्लक्षेण संक्षिप्ते व्यासैः सर्वांतरेषु वै॥२॥
व्यस्तेष्टादशधा चैव ब्रह्मादौ द्वापरादिषु। लिंगमेकादशं प्रोक्तं मया व्यासाच्छ्रुतं च तत्॥३॥
अस्यैकादशसाहस्रे ग्रंथमानमिह द्विजाः। तस्मात्संक्षेपतो वक्ष्ये न श्रुतं विस्तरेण यत्॥४॥
चतुर्लक्षेण संक्षिप्ते कृष्णद्वैपायनेन तु। अस्यैकादशसाहस्रैः कथितो लिंगसंभवः॥५॥
सर्गः प्राधानिकः पश्चात् प्राकृतो वैकृतानि च। अंडस्यास्य च संभूतिरंडस्यावरणाष्टकम्॥६॥
अंडोद्भवत्वं शर्वस्य रजोगुणसमाश्रयात्। विष्णुत्वं कालरुद्रत्वं शयनं चाप्सु तस्य च॥७॥
प्रजापतीनां सर्गश्च पृथिव्युद्धरणं तथा। ब्रह्मणश्च दिवारात्रमायुषो गणनं पुनः॥८॥
सवनं ब्रह्मणश्चैव युगकल्पश्च तस्य तु। दिव्यं च मानुषं वर्षमार्षं वै ध्रौव्यमेव च॥९॥
पित्र्यं पितॄणां संभूतिधर्मश्चश्रमिणां तथा।
अवृद्धिर्जगतो भूयो देव्याः शक्त्युद्भवस्तथा॥१०॥

दूसरा अध्याय

अनुक्रमणिका का कथन

सूत बोले

पूर्व में उत्कृष्ट लिङ्गपुराण ब्रह्मा जी द्वारा रचा गया था। यह ईशान कल्प में घटित घटनाओं पर आधारित था। मूल रूप से इसमें एक करोड़ छन्द थे और सारे पुराणाों में सौ करोड़ छन्द थे। विभिन्न मन्वन्तरा में व्यास जी ने इन्हें चार-सौ सहस्त्र छन्दों में संक्षिप्त किया। बाद में द्वापर के प्रारम्भ में इन्हें अट्ठारह भागों में वर्गीकृत किया गया जिसके प्रारम्भ में ब्रह्माण्ड पुराण है और यह लिङ्गपुराण उसमें ग्यारहवाँ है। ऐसा मैंने व्यास जी से सुना है।।१-३।। हे ब्रह्मवादियों! इस पुराण में छन्दों की संख्या ग्यारह सहस्त्र (हजार) है। मैं इनका संक्षेप में बखान करूँगा क्योंकि मैंने इन्हें विस्तार से नहीं सुना है।।४।। जब पुराण कृष्ण द्वैपायन द्वारा चार-सौ सहस्त्र छन्दों में संक्षिप्त किये गये तो लिङ्गपुराण ग्यारह सहस्त्र छन्दों में संक्षिप्त किया गया।।५।। प्राथमिक और द्वितीयक सृष्टि तदनन्तर आठ पर्तों में लिपटे ब्रह्माण्ड का उल्लेख है।।६।। तत्पश्चात् ब्रह्माण्ड से ब्रह्मा का विकास, रजोगुण के बल से विष्णु और रुद्र, और विष्णु का जल में शयन का उल्लेख है।।७।। प्रजापतियों का सृजन, पृथ्वी का उत्थान, ब्रह्मा के दिन और रात्रि की अवधि, उनके सम्पूर्ण जीवन युग का वर्णन।।८।। ब्रह्मा की सृष्टि, उनके युग और कल्प, दिव्य और मानवीय वर्ष, मुनियों के वर्ष, ध्रुव और पितृ, पितरों की उत्पत्ति, जीवन की क्रमिक

स्त्रीपुंभावो विरिंचस्य सर्गो मिथुनसंभवः। आख्याष्टकं हि रुद्रस्य कथितं रोदनांतरे॥११॥
ब्रह्मविष्णुविवादश्च पुनर्लिंगस्य संभवः। शिलादस्य तपश्चैवें वृत्रारेर्दर्शनं तथा॥१२॥
प्रार्थनायोनिजस्याथ दुर्लभत्वं सुतस्य तु। शिलादशक्रसंवादः पद्मयोनित्वमेव च॥१३॥
भवस्य दर्शनं चैव तिष्येष्वाचार्यशिष्ययोः। व्यासावताराश्चैव तथा कल्पमन्वंतराणि च॥१४॥
कल्पत्वं चैवकल्पानामाख्याभेदेष्वनुक्रमात्। कल्पेषु कल्पे वाराहे वाराहत्वं हरेस्तथा॥१५॥
मेघवाहनकल्पस्य वृत्तांतं रुद्रगौरवम्। पुनर्लिंगोद्भवश्चैव ऋषिमध्ये पिनाकिनः॥१६॥
लिंगस्याराधनं स्नानविधानं शौचलक्षणम्। वाराणस्याश्च माहात्म्यं क्षेत्रमाहात्म्यवर्णनम्॥१७॥
भुवि रुद्रालयानां तु संख्या विष्णोर्गृहस्य च। अंतरिक्षे तथांडेऽस्मिन् देवायतनवर्णनम्॥१८॥
दक्षस्य पतनं भूमौ पुनः स्वारोचिषेऽन्तरे। दक्षशापश्च दक्षस्य शापमोक्षस्तथैव च॥१९॥
कैलासवर्णनं चैव योगः पाशुपतस्तथा। चतुर्युगप्रमाणं च युगधर्मः सुविस्तरः॥२०॥
संध्यांशकप्रमाणं च संध्यावृत्तं भवस्य च। श्मशाननिलयश्चैव चंद्ररेखासमुद्भवः॥२१॥
उद्वाहः शंकरस्याथ पुत्रोत्पादनमेव च। मैथुनातिप्रसंगेन विनाशो जगतां भयम्॥२२॥
शापः सत्या कृतो देवान्पुरा विष्णुं च पालितम्। शुक्रोत्सर्गस्तु रुद्रस्य गांगेयोद्भव एव च॥२३॥
ग्रहणादिषु कालेषु स्नाप्य लिंगं फलं तथा। क्षुब्दधीचविवादश्च दधीचोपेंद्रयोस्तथा॥२४॥
उत्पत्तिर्नंदिनाम्ना तु देवदेवस्य शूलिनः। पतिव्रतायाश्चाख्यानं पशुपाशविचारणा॥२५॥

अवस्थाओं में लोगों के कर्त्तव्य, ब्रह्माण्ड में जनसंख्या की कमी, सृजनात्मक ऊर्जा का प्रकटीकरण।।९-१०।। ऊर्जा की नर और मादा प्रकृति, ब्रह्मा की सृष्टि, जुड़वा का जन्म, रुदन के दौरान रुद्र के आठ नाम।।११।। ब्रह्मा और विष्णु का विवाद, लिङ्ग का एक बार पुनः प्रकटीकरण, शिलाद की तपस्या, वृत्र के हन्ता इन्द्र का दर्शन।।१२।। अयोनिज पुत्र की प्रार्थना, ऐसे पुत्र की प्राप्ति की असम्भाव्यता, शिलाद और इन्द्र का संवाद, कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति, कलियुग में भव का प्रकटीकरण, उपदेष्टा और शिष्य, व्यास का अवतार, कल्प और मन्वन्तर।।१३-१४।। कल्पों की प्रकृति और उनके विभिन्न नाम; मेघवाहन कल्प, वराह कल्प में वराह के रूप में विष्णु; रुद्र की भव्यता और शान; मुनियों के मध्य लिङ्ग का पुनः प्रकटीकरण, लिङ्ग की प्रतिष्ठा; शुद्धता की प्रकृति; स्नान से सम्बन्धित निर्देश; वाराणसी और पवित्र स्थानों का माहात्म्य; पृथ्वी और आकाश में रुद्र और विष्णु के आवास।।१५-१८।। स्वारोचिष मन्वन्तर में दक्ष का पृथ्वी की ओर पतन, दक्ष का श्राप और उससे मुक्ति।।१९।। कैलाश का वर्णन, पशुपति (शिव) से सम्बन्धित योग; चार युगों का विस्तार, प्रत्येक युग को सौंपे गये कर्त्तव्यों का विवरण।।२०।। युगों के बीच अन्तराल का महत्त्व; इन अन्तरालों के दौरान रुद्र के क्रिया-कलाप; श्मशान स्थल पर उनका निवास; उनके मस्तक पर चन्द्र की कला का उद्भव; उनका विवाह; उनके पुत्रों का जन्म; यौन समागम में अतिशय लिप्ति के कारण लोगों के विनाश का भय।।२१-२२।। देवों को सती का शाप और विष्णु को भी जो कि बाद में रुद्र के द्वारा कम किया गया। रुद्र द्वारा वीर्य त्याग; कार्तिकेय का जन्म; ग्रहण के समय लिङ्ग को स्नान कराने का महत्त्व और फल क्षुप और दधीच एवं दधीच और विष्णु के मध्य

प्रवृत्तिलक्षणं ज्ञानं निवृत्त्यधिकृता तथा। वसिष्ठतनयोत्पत्तिर्वासिष्ठानां महात्मनाम्॥२६॥
मुनीनां वंशविस्तारो राज्ञां शक्तेर्विनाशनम्। दौरात्म्यं कौशिकस्याथ सुरभेर्बंधनं तथा॥२७॥
सुतशोको वसिष्ठस्य अरुंधत्याः प्रलापनम्। स्नुषायाः प्रेषणं चैव गर्भस्थस्य वचस्तथा॥२८॥
पराशरस्यावतारो व्यासस्य च शुकस्य च। विनाशो राक्षसानां च कृतो वै शक्तिसूनुना॥२९॥
देवतापरमार्थं तु विज्ञानं च प्रसादतः। पुराणकरणं चैव पुलस्त्यस्याज्ञया गुरोः॥३०॥
भुवनानां प्रमाणं च ग्रहाणां ज्योतिषां गतिः।
जीवच्छ्राद्धविधानं च श्राद्धार्हाः श्राद्धमेव च॥३१॥
नांदीश्राद्धविधानं च तथाध्ययनलक्षणम्। पंचयज्ञप्रभावश्च पंचयज्ञविधिस्तथा॥३२॥
रजस्वलानां वृत्तिश्च वृत्त्या पुत्रविशिष्टता। मैथुनस्य विधिश्चैव प्रतिवर्णमनुक्रमात्॥३३॥
भोज्याभोज्यविधानं च सर्वेषामेववर्णिनाम्। प्रायश्चित्तमशेषस्य प्रत्येकं चैव विस्तरात्॥३४॥
नरकाणां स्वरूपं च दंडः कर्मानुरूपतः। स्वर्गिनारकिणां पुंसां चिह्नं जन्मांतरेषु च॥३५॥
नानाविधानि दानानि प्रेतराजपुरं तथा। कल्पं पंचाक्षरस्याथ रुद्रमाहात्म्यमेव च॥३६॥
वृत्रेंद्रयोर्महायुद्धं विश्वरूपविमर्दनम्। श्वेतस्य मृत्योः संवादः श्वेतार्थे कालनाशनम्॥३७॥
देवदारुवने शंभोः प्रवेशः शंकरस्य तु। सुदर्शनस्य चाख्यानं क्रमसंन्यासलक्षणम्॥३८॥

विवाद।।२३-२४।। त्रिशूलधारी भगवान का नन्दी नाम से अवतरण; पतिव्रता की कथा; पशु और पाश का विचार; आत्मा और अविद्या या अज्ञान की चर्चा; सांसारिक क्रियाओं और पूर्ण ज्ञान की प्रकृति; मोक्ष के योग्य लोगों के लक्षण; वसिष्ठ के पुत्रों का जन्म; वसिष्ठ के आध्यात्मिक वंश में महान् मुनियों के परिवारों का वर्णन; वशिष्ठ के पुत्रों की उत्पत्ति; मुनियों के वंश का विस्तार, विश्वामित्र की कुटिलता के कारण दिव्य गाय सुरभि का बलात् अपहरण। असुर राजाओं की शक्ति का विनाश।।२५-२७।। दिव्य पुत्र हानि पर वसिष्ठ का शोक; अरुन्धती का विलाप; उनकी पुत्रवधू का कार्य; गर्भस्थ शिशु के शब्द; पराशर व्यास और शुक का जन्म; शक्ति के पुत्र पराशर द्वारा राक्षसों का संहार।।२८-२९।। देवों के बारे में सत्य; ईश्वर की कृपा के रूप में पूर्ण ज्ञान; पुलस्त्य के आदेश पर पुराणों की रचना; लोकों का विस्तार, ग्रहों और नक्षत्रों की गतियाँ; जीवित व्यक्तियों के श्राद्ध की विधि; श्राद्ध के पात्र; श्राद्ध का वर्णन।।३०-३१।। नान्दी श्राद्ध की विधि; वेदों के अध्ययन की विधि, पंच यज्ञों का माहात्म्य और उनको करने की विधियाँ।।३२।। मासिक के दौरान स्त्रियों के आचरण और व्यवहार; इन आचरणों से उत्तम पुत्रों की प्राप्ति; विभिन्न जातियों के लोगों के लिए यौन समागम के नियम।।३३।। सभी जातियों के लिए भक्ष्य (खाद्य) और अभक्ष्य (अखाद्य) के सम्बन्ध में नियम; सामान्य और विशेष पापों के सम्बन्ध में कई बार और विस्तार से अनुष्ठान।।३४।। नरकों के रूप और लक्षण; बाद के जन्मों में स्वर्ग और नरक की प्राप्ति के अधिकारी व्यक्तियों के लक्षण।।३५।। दान के प्रकार; मृतकों के राजा का नगर; पंचाक्षर मन्त्र का अनुष्ठानिक विवरण; रुद्र का माहात्म्य।।३६।। इन्द्र और वृत्र का द्वन्द्व, वृत्र का उसके सर्वव्यापी रूप में दमन; श्वेत और मृत्यु का संवाद; श्वेत की ओर से काल का संहार।।३७।। देवदारु वृक्षों के वन में शिव का

श्रद्धासाद्ध्योथ रुद्रस्तु कथितं ब्रह्मणा तदा। मधुना कैटभेनैव पुरा हृतगतेर्विभोः॥३९॥
ब्रह्मणः परमं ज्ञानमादातुं मीनता हरेः। सर्वावस्थासु विष्णोश्च जननं लीलयैव तु॥४०॥
रुद्रप्रसादाद्विष्णोश्च जिष्णोश्चैव तु संभवः। मंथानधारणार्थाय हरेः कूर्मत्वमेव च॥४१॥
संकर्षणस्य चोत्पत्तिः कौशिक्याश्च पुनर्भवः। यदूनां चैव संभूतिर्यादवत्वं हरेः स्वयम्॥४२॥
भोजराजस्य दौरात्म्यं मातुलस्य हरेर्विभोः। बालभावे हरेः क्रीडा पुत्रार्थं शंकरार्चनम्॥४३॥
नारस्य च तथोत्पत्तिः कपाले वैष्णवाद्धरात्। भूभारनिग्रहार्थे तु रुद्रस्याराधनं हरेः॥४४॥
वैन्येन पृथुना भूमेः पुरा दोहप्रवर्तनम्। देवासुरे पुरा लब्धो भृगुशापश्च विष्णुना॥४५॥
कृष्णात्वे द्वारकायां तु निलयो माधवस्य तु। लब्धो हिताय शापस्तु दुर्वासस्याननाद्धरेः॥४६॥
वृष्ण्यंधकविनाशाय शापः पिंडारवासिनाम्। एरकस्य तथोत्पत्तिस्तोमरस्योद्भवस्तथा॥४७॥
एरकालाभतोऽन्योन्यं विवादे वृष्णिविग्रहः। लीलया चैव कृष्णेन स्वकुलस्य च संहृतिः॥४८॥
एरकास्त्रबलेनैव गमनं स्वेच्छयैव तु। ब्रह्मणश्चैव मोक्षस्य विज्ञानं तु सुविस्तरम्॥४९॥
पुरांधकाग्निदक्षाणां शक्रेभमृगरूपिणाम्। मदनस्यादिदेवस्य ब्रह्मणश्चामरारिणाम्॥५०॥
हलाहलस्य दैत्यस्य कृतावज्ञा पिनाकिना। जालंधरवधश्चैव सुदर्शनसमुद्भवः॥५१॥
विष्णोर्वरायुधावाप्तिस्तथा रुद्रस्य चेष्टितम्। तथान्यानि च रुद्रस्य चरितानि सहस्त्रशः॥५२॥
हरेः पितामहस्याथ शक्रस्य च महात्मनः। प्रभावानुभवश्चैव शिवलोकस्य वर्णनम्॥५३॥

आगमन; सुदर्शन का आख्यान; कर्म संन्यास के लक्षण; ब्रह्मा द्वारा रुद्र को समर्पण और विश्वास से संतुष्टि का कथन, मधु और कैटभ के द्वारा ब्रह्मा के अपहरण की घटना; तत्पश्चात् ब्रह्मा को उच्चतम पूर्ण ज्ञान देने के लिये विष्णु का मत्स्य (मछली) रूप धारण करना; विष्णु के सारे अवतार मात्र लीला; रुद्र के आशीर्वाद से श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का जन्म; (समुद्र मंथन के समय) मथानी को थामने के लिये कच्छप रूप में विष्णु।।३८-४१।। संकर्षण का जन्म; कौशिकी (चण्डिका) का पुनर्जन्म; यदुओं में स्वयं कृष्ण क़ा जन्म।।४२।। कृष्ण के मामा कंस की दुष्टता; कृष्ण की बाल लीलाएँ, पुत्र प्राप्ति के लिये शिव की आराधना।।४३।। विष्णु के रूप में शिव के सिर से जल का उद्भव, धरती के भार को कम करने के लिये विष्णु के द्वारा शिव को संतुष्ट करना।।४४।। वेन के पुत्र पृथु द्वारा धरती का दोहन; देवासुर संग्राम के दौरान भृगु द्वारा विष्णु को श्राप।।४५।। कृष्णावतार में उनका (विष्णु का) कृष्ण के रूप में द्वारका में वास; दुर्वासा का श्राप जो कि वास्तव में उनके कल्याण के लिये लाभदायक; यादवों को उनके विनाश का श्राप; सरकण्डों और भालों की वृद्धि।।४६-४७।। आपसी कलह में यादवों का सरकण्डों का प्रयोग एवं विनाश। उन्हीं सरकण्डों से कृष्ण का अपनी जाति का लीलास्वरूप नाश।।४८।। कृष्ण का विश्व से स्वैच्छिक प्रस्थान; विस्तार से ब्रह्म और मोक्ष पूर्ण ज्ञान।।४९।। इन्द्र, हाथी और हिरण के रूप में अन्धक, अग्नि और दक्ष पर विजय; आदि ब्रह्म का वर्णन; शिव की काम और देवों के शत्रुओं विशेषकर हलाहल दैत्य पर विजय; जलन्धर का विनाश और सुदर्शन चक्र का उद्भव।।५०-५१।। विष्णु द्वारा उत्कृष्ट अस्त्रं का अधिग्रहण; रुद्र के क्रिया-कलाप; उनके सहस्त्रों असाधारण कार्य, विष्णु, ब्रह्मा और

भूमौ रुद्रस्य लोकं च पाताले हाटकेश्वरम्। तपसां लक्षणं चैव द्विजानां वैभवं तथा॥५४॥
आधिक्यं सर्वमूर्तीनां लिंगमूर्तेर्विशेषतः। लिंगेस्मिन्नानुपूर्व्येण विस्तरेणानुकीर्त्यते॥५५॥
एतज्ज्ञात्वा पुराणस्य संक्षेपं कीर्तयेत्तु यः। सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति॥५६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽनुक्रमणिकावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

इन्द्र की गतिविधियाँ और शक्तियाँ, शिवलोक का वर्णन।।५२-५३।। पृथ्वी पर रुद्र लोक; पाताल में हाटकेश्वर; तप की प्रकृति; ब्राह्मणों की शक्तियाँ; देवों की अन्य मूर्तियों से लिंग की श्रेष्ठता—यह सभी कुछ सुव्यवस्थित रूप से और विस्तार से इस पुराण में वर्णित हैं। जो व्यक्ति इस सारांश को जानकर इसका पारायण करता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और ब्रह्मलोक में जाता है।।५४-५६।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में अनुक्रमणिका का कथन नामक दूसरा अध्याय समाप्त॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

प्राकृतप्रारम्भिकसर्गकथनम्

सूत उवाच

अलिंगो लिंगमूलं तु अव्यक्तं लिंगमुच्यते। अलिंगः शिव इत्युक्तो लिंगं शैवमिति स्मृतम्॥१॥
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुर्लिंगमुत्तमम्। गंधवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शादिवर्जितम्॥२॥
अगुणं ध्रुवमक्षय्यमलिंगं शिवलक्षणम्। गंधवर्णरसैर्युक्तं शब्दस्पर्शादिलक्षणम्॥३॥
जगद्योनिं महाभूतं स्थूलं सूक्ष्मं द्विजोत्तमाः। विग्रहो जगतां लिंगमलिंगादभवत्स्वयम्॥४॥
सप्तधाचाष्टधा चैव तथैकादशधा पुनः। लिंगान्यलिंगस्य तथा मायया विततानि तु॥५॥
तेभ्यः प्रधानदेवानां त्रयमासीच्छिवात्म कम्। एकस्मात्त्रिष्वभूद्विश्वमेकेन परिरक्षितम्॥६॥
एकेनैव हृतं विश्वं व्याप्तं त्वेवं शिवेन तु। अलिंगं चैव लिंगं च लिंगालिंगानि मूर्तयः॥७॥
यथावत्कथिताश्चैव तस्माद्ब्रह्म स्वयं जगत्। अलिंगी भगवान् बीजी स एव परमेश्वरः॥८॥
बीजं योनिश्च निर्बीजं निर्बीजो बीजमुच्यते। बीजयोनिप्रधानानामात्माख्या वर्तते त्विह॥९॥
परमात्मा मुनिर्ब्रह्मा नित्यबुद्धस्वभावतः। विशुद्धोयं तथा रुद्रः पुराणे शिव उच्यते॥१०॥
शिवेन दृष्टा प्रकृतिः शैवी समभवद्विजाः। सर्गादौ सा गुणैर्युक्ता पुराव्यक्ता स्वभावतः॥११॥

तीसरा अध्याय

प्राकृतप्राथमिक सृष्टि का वर्णन

सूत बोले

निर्गुण सगुण का मूल है। प्रत्यक्ष प्रकृति सगुण है जबकि शिव निर्गुण हैं, किन्तु प्रकृति शिव से सम्बन्धित कही जाती है।।१।। सगुण को प्रधान या प्रकृति कहते हैं किन्तु गन्ध, रंग, स्वाद, ध्वनि, स्पर्श और अन्य गुणों से रहित निर्गुण शिव हैं जो स्थिर और शाश्वत हैं। (इसके विपरीत) प्रधान या प्रकृति गन्ध, रंग, स्वाद, ध्वनि और स्पर्श से युक्त है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! यह विश्व के उद्‌भव का स्रोत है। यह स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों में तत्त्वयुक्त है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! यह विश्व का भौतिक स्वरूप है। यह सहज रूप से निर्गुण से उद्‌भूत है।।२-४।। (पहले) यह सात और तत्पश्चात् आठ और ग्यारह भागों में विभक्त हुआ। इस प्रकार माया से निर्गुण सगुण हो जाता है।।५।। इन्हीं से तीन देवों का समूह पैदा हुआ। इन तीन में से एक से यह ब्रह्माण्ड पैदा हुआ। दूसरे के द्वारा इसकी रक्षा और तीसरे के द्वारा इसका संहार होता है। इस प्रकार यह ब्रह्माण्ड शिव में व्याप्त है। इस प्रकार त्रिमूर्ति लिङ्ग, अलिङ्ग और लिङ्गालिङ्ग में वर्गीकृत है। ब्रह्म स्वयं जगत है। निर्गुण ईश्वर बीज का स्रोत है। वह परमेश्वर बीज, गर्भ और अबीज है। बीज रहित होकर वह बीज अर्थात् ब्रह्माण्ड का कारण हो जाता है। आत्मा शब्द बीज योनि और अप्रकट तत्त्व (प्रधान) के लिये प्रयोग किया जाता है।।६-९।। जो रुद्र है, ब्रह्मा है और विष्णु है वह पुराणों में शिव कहा गया है और वह स्वतः नित्य, प्रकाशमान और शुद्ध प्रकृति का

अव्यक्तादिविशेषांतं विश्वं तस्याः समुच्छ्रितम्।
विश्वधात्री त्वजाख्या च शैवी सा प्रकृतिः स्मृता॥१२॥

तामजां लोहितां शुक्लां कृष्णामेकां बहुप्रजाम्। जनित्रीमनुशेते स्म जुषमाणः स्वरूपिणीम्॥१३॥
तामेवाजामजोऽन्यस्तु भुक्तभोगां जहाति च। अजा जनित्री जगतां साजेन समधिष्ठिता॥१४॥
प्रादुर्बभूव स महान् पुरुषाधिष्ठितस्य च। अजाज्ञया प्रधानस्य सर्गकाले गुणैस्त्रिभिः॥१५॥

सिसृक्षया चोद्यमानः प्रविश्याव्यक्तमव्ययम्।
व्यक्तसृष्टिं विकुरुते चात्मनाधिष्ठितो महान्॥१६॥

महतस्तु तथा वृत्तिः संकल्पाध्यवसायिका। महतस्त्रिगुणस्तस्मादहंकारो रजोधिकः॥१७॥
तेनैव चावृतः सम्यगहंकारस्तमोधिकः। महतो भूततन्मात्रं सर्गकृद्वै बभूव च॥१८॥
अहंकाराच्छब्दमात्रं तस्मादाकाशमव्ययम्। सशब्दमावृणोत्पश्चादाकाशं शब्दकारणम्॥१९॥
तन्मात्राद्भूतसर्गश्च द्विजास्त्वेवं प्रकीर्तितः। स्पर्शमात्रं तथाकाशात्तस्माद्वायुर्महान्मुने॥२०॥
तस्माच्च रूपमात्रं तु ततोग्निश्च रसस्ततः। रसादापः शुभास्ताभ्यो गंधमात्रं धरा ततः॥२१॥
आवृणोद्धि तथाकाशं स्पर्शमात्रं द्विजोत्तमाः। आवृणोद्रूपमात्रं तु वायुर्वाति क्रियात्मकः॥२२॥
आवृणोद्रसमात्रं वै देवः साक्षाद्विभावसुः। आवृण्वाना गंधमात्रमापः सर्वरसात्मिकाः॥२३॥

है।।१०।। शिव जब प्रकृति का अनुपालन करते हैं तो वह शैवी हो जाते हैं। हे ब्राह्मणों! पहले यह अप्रकट थी किन्तु सृष्टि के प्रारम्भ में गुणों से स्वतः युक्त होने पर यह प्रकट हो जाती है।।११।। पूरा ब्रह्माण्ड जो अप्रकट से प्रारम्भ होता है और स्थूल में समाप्त होता है इसी से उद्भूत होता है। वह शैवी प्रकृति ब्रह्माण्ड की स्रष्टा है और उसे अज कहते हैं।।१२।। प्रत्येक आत्मा उस लाल, श्वेत और श्याम रंग के अज से भक्तिपूर्वक सम्बद्ध रहता है। अज एक होते हुए भी अनेक की माता है। वह (आत्मा) उसके (अज के) प्रकट रूप का आश्रय लेकर उसका आनन्द लेकर असम्बद्ध होने पर छोड़ देता है। पुरुष से नियन्त्रित प्रकृति लोकों की स्रष्टा है।।१३-१४।। सृष्टि के प्रारम्भ में पुरुष की प्रार्थना पर प्रधान से तीन गुणों से युक्त महत् का विकास किया गया जो कि पुरुष द्वारा नियन्त्रित है।।१५।। सृजन की इच्छा से प्रेरित होकर पुरुष द्वारा नियन्त्रित महत् अपरिवर्तित अप्रकट प्रधान में प्रवेश करके सृजन करता है।।१६।। महत् से (१) धारणा और संकल्प से युक्त सत्त्व अहंकार (२) और तीनों गुणों से युक्त किन्तु मुख्य रूप से रज प्रधान, रज अहंकार और (३) तमो गुण प्रधान तमस् अहंकार विकसित हुए। महत् से सूक्ष्म तत्त्व विकसित हुए और सृष्टि के केन्द्र बने।।१७-१८।। अहंकार से सूक्ष्म आकाश तत्त्व शब्द विकसित हुआ और इससे अपरिवर्तित आकाश। तदनन्तर शब्द के कारणभूत ने आकाश को ढक लिया।।१९।। हे ब्राह्मणों! सूक्ष्म तत्त्वों से स्थूल तत्त्वों की सृष्टि इस प्रकार समझाई जा सकती है। हे महान् मुनियों! सूक्ष्म तत्त्व स्पर्श आकाश से विकसित हुआ और वायु उससे विकसित हुई।।२०।। वायु से सूक्ष्म तत्त्व रूप विकसित हुआ और उससे अग्नि, तब उससे सूक्ष्म तत्त्व रस विकसित हुआ, तत्पश्चात् रस से जल। जल से सूक्ष्म तत्त्व गन्ध, और उससे पृथ्वी विकसित हुई।।२१।। हे उत्कृष्ट ब्राह्मणों! आकाश ने सूक्ष्म तत्त्व स्पर्श

क्ष्मा सा पंचगुणा तस्मादेकोना रससंभवाः। त्रिगुणो भगवान्वह्निर्द्विगुणः स्पर्शसंभवः॥२४॥
अवकाशस्ततो देव एकमात्रस्तु निष्कलः। तन्मात्राद्भूतसर्गश्च विज्ञेयश्च परस्परम्॥२५॥
वैकारिकः सात्त्विको वै युगपत्संप्रवर्तते। सर्गस्तथाप्यहंकरादेवमत्र प्रकीर्तितः॥२६॥
पंच बुद्धींद्रियाण्यस्य पंच कर्मेंद्रियाणि तु। शब्दादीनामवात्यर्थं मनश्चैवोभयात्मकम्॥२७॥
महदादिविशेषांता ह्यंडमुत्पादयंति च। जलबुद्बुदवत्तस्मादवतीर्णः पितामहः॥२८॥
स एव भगवान् रुद्रो विष्णुर्विश्वगतः प्रभुः। तस्मिन्नंडे त्विमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत्॥२९॥
अंडं दशगुणेनैव वारिणा प्रावृतं बहिः। आपो दशगुणेनैव तद्बाह्ये तेजसा वृताः॥३०॥
तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुनावृतम्। वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः॥३१॥
आकाशेनावृतो वायुरहंकारेण शब्दजः। महता शब्दहेतुर्वै प्रधानेनावृतः स्वयम्॥३२॥
सप्तांडावरणान्याहुस्तस्यात्मा कमलासनः। कोटिकोटियुतान्यत्र चांडानि कथितानि तु॥३३॥

तत्रतत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवाः।
सृष्टाः प्रधानेन तदा लब्ध्वा शंभोस्तु संनिधिम्॥३४॥

लयश्चैव तथान्योन्यमांद्यतमिति कीर्तितम्। सर्गस्य प्रतिसर्गस्य स्थितेः कर्ता महेश्वरः॥३५॥
सर्गे च रजसा युक्तः सत्त्वस्थः प्रतिपालने। प्रतिसर्गे तमोद्रिक्तः स एव त्रिविधः क्रमात्॥३६॥

को ढक लिया। वायु ने बहने की क्रिया से सूक्ष्म तत्त्व रूप को ढक लिया। अग्नि ने सूक्ष्म तत्त्व रस को ढक लिया। जल ने रस की प्रकृति धारण करते हुए सूक्ष्म तत्त्व गंध को ढक लिया।।२२-२३।। इसलिए पृथ्वी में पाँच गुण हैं; जल में चार; अग्नि में तीन; वायु में दो और आकाश में एक गुण है। इस प्रकार तत्त्वों की सृष्टि सूक्ष्म तत्त्वों की परस्पर अन्तर्क्रिया से उद्भूत हुई।।२४-२५।। वैकारिक और सात्त्विक सृष्टि साथ-साथ हुई तथापि उनकी व्याख्या क्रमशः विकसित होते हुए की गयी है।।२६।। शब्द आदि को ग्रहण करने के लिये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। मन (जो स्वयं भी एक इन्द्रिय है) दोनो वर्गो में शामिल है। ये ग्यारह इन्द्रियाँ अहंकार से विकसित होती हैं।।२७।। महत् (बुद्धि) से विशेष (पृथ्वी) तक सृष्टि के घटक ब्रह्माण्ड को पैदा करते है जिससे ब्रह्मा जल के बुलबुले की तरह पैदा हुए।।२८।। मात्र वही संसार में व्याप्त रुद्र और विष्णु हैं। ये लोक इसी ब्रह्माण्ड में है और यह संसार भी इसी में है।।२९।। ब्रह्माण्ड बाहरी रूप से अपनी विशालता से दस गुने जल से ढका है। जल अपनी मात्रा से दस गुनी आग से ढकी है। आग अपनी मात्रा से दस गुनी वायु से बाहरी रूप से ढकी है। वायु बाहरी रूप से अपनी मात्रा से दस गुने आकाश से ढकी है। वायु शब्द के कारणभूत अहंकार से ढका है। अहंकार बुद्धि और बुद्धि प्रधान से ढकी है। कहते हैं इस ब्रह्माण्ड के सात आवरण हैं। इसी में कमल में बैठे ब्रह्मा हैं। ऐसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड अस्तित्व में हैं।।३०-३३।। इन सभी ब्रह्माण्डों में चार मुख वाले ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं। ये शिव के सम्पर्क में आने पर प्रधान द्वारा रचे जाते हैं।।३४।। (इनका) परस्पर विच्छेद भी होता है किन्तु यह अन्त से प्रारम्भ होकर प्रारम्भ में अन्त होता है। महान् ईश्वर ही सृजन, पालन और संहार का एक मात्र कारक है।।३५।। वह सृजन के समय रज से, पालन में सत्त्व से और संहार के समय तमस्

आदिकर्ता च भूतानां संहर्ता परिपालकः। तस्मान्महेश्वरो देवो ब्रह्मणोधिपतिः शिवः॥३७॥
सदाशिवो भवो विष्णुर्ब्रह्मा सर्वात्मको यतः। एतदंडे तथा लोका इमे कर्ता पितामहः॥३८॥
प्राकृतः कथितस्त्वेष पुरुषाधिष्ठितो मया। सर्गश्चाबुद्धिपूर्वस्तु द्विजाः प्राथमिकः शुभः॥३९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे प्राकृतप्राथमिकसर्गकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

से युक्त होता है। केवल उसी में यह सूक्ष्म प्रकृति पर्याप्त व्यवस्थित रूप में होती है।।३६।। वह सभी प्राणियों का स्रष्टा, रक्षक और संहारक है। वह महेश्वर ब्रह्मा का स्वामी है। वह शिव, सदाशिव, भव, विष्णु और ब्रह्मा के नाम से जाना जाता है क्योंकि वह सब कुछ है। ये सारे लोक इसी अण्ड में और स्रष्टा ब्रह्मा भी हैं। इस प्रकार प्रकृति की तात्त्विक सृष्टि मेरे द्वारा कही गयी। यह पुरुष द्वारा नियन्त्रित है। हे ब्राह्मणों! यह शुभ सृष्टि जिसमें बुद्धि (महत्) सर्वोच्च है, आदिम है।।३७-३९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में प्राकृत प्राथमिक सृष्टि का वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

सृष्टिप्रारम्भवर्णनम्

सूत उवाच

अथ प्राथमिकस्येह यः कालस्तदहः स्मृतम्। सर्गस्य तादृशी रात्रिः प्राकृतस्य समासतः॥१॥
दिवा सृष्टिं विकुरुते रजन्यां प्रलयं विभुः। औपचारिकमस्यैतदहोरात्रं न विद्यते॥२॥
दिवा विकृतयः सर्वे विकारा विश्वदेवताः। प्रजानां पतयः सर्वे तिष्ठंत्यन्ये महर्षयः॥३॥
रात्रौ सर्वे प्रलीयंते निशांते संभवंति च। अहस्तु तस्य वैकल्पो रात्रिस्तादृग्विधा स्मृता॥४॥
चतुर्युगसहस्रांते मनवस्तु चतुर्दश। चत्वारि तु सहस्राणि वत्सराणां कृतं द्विजाः॥५॥
तावच्छती च वै संध्या संध्यांशश्च कृतस्य तु। त्रिशती द्विशती संध्या तथा चैकशती क्रमात्॥६॥
अंशकः षट्शतं तस्मात्कृतसंध्यांशकं विना। त्रिद्व्येकसाहस्रमितौ विना संध्यांशके न तु॥७॥
त्रेताद्वापरतिष्याणां कृतस्य कथयामि वः। निमेषपंचदशका काष्ठा स्वस्थस्य सुव्रताः॥८॥
मर्त्यस्य चाक्ष्णोम्तस्याश्च ततस्त्रिंशतिका कला।
कलात्रिंशतिको विप्रा मुहूर्त इति कल्पितः॥९॥
मुहूर्तपंचदशिका रजनी तादृशं त्वहः। पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः॥१०॥

चौथा अध्याय

सृष्टि प्रारम्भ का वर्णन

सूत बोले

प्राकृत सृष्टि की समयावधि ब्रह्मा का एक दिन होता है। इतने समय की रात्रि होती है। वह ईश्वर दिन के समय सृष्टि का निर्माण दिन में करता है और प्रलय रात्रि में करता है। (जिस रूप में हम जानते हैं उस अर्थ में) उनके कोई दिन और रात नहीं होते। दिन और रात की समयावधि मात्र द्वितीयक अर्थ में प्रयोग किये जाते हैं।।१-२।। (इस तथाकथित) दिन के दौरान समस्त विकृतियाँ विश्वेदेवा, प्रजापतिगण और मुनि साथ होते हैं। रात्रि में उनका सब का प्रलय हो जाता है। रात्रि के अन्त में उनका पुनः निर्माण होता है। उसका एक दिन हमारे कल्प के बराबर होता है। उसी तरह रात भी एक कल्प की होती है। चारों युगों के एक सहस्र काल में चौदह मनु होते हैं। हे ब्राह्मणों! कृत युग चार सहस्र वर्षों का होता है। प्रत्येक युग की समाप्ति और प्रारम्भ में क्रमशः चार सौ, तीन सौ, दो सौ और एक सौ वर्षों का संक्रमण होता है।।३-६।। अतः अंशक प्रत्येक युग की अवधि का छठवाँ भाग होता है। त्रेता, द्वापर और कलि क्रमशः तीन, दो और एक सहस्र होते हैं। जिसमें अंशक की अवधि शामिल नहीं है। कृत का उल्लेख पहले किया गया। हे सुव्रतों! सामान्य दशा में एक स्वस्थ मनुष्य की पन्द्रह निमेषों (पलक झपकना) का एक काष्ठा होता है। ऐसे तीस काष्ठाओं का एक कला होती है और ऐसे तीस कलाओं का एक मुहूर्त्त होता है।।७-९।। ऐसे पन्द्रह मुहूर्तों से एक रात्रि और पन्द्रह मुहूर्तों से दिन बनते हैं।

कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी।
त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पित्र्यो मासस्तु स स्मृतः॥११॥
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै।
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते॥१२॥
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत्। पितॄणां त्रीणि वर्षाणि संख्यातानीह तानि व॥१३॥
दश वै द्व्यधिका मासाः पितृसंख्येह संस्मृता। लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः॥१४॥
एतद्दिव्यमहोरात्रमिति लैंगेऽत्र पठ्यते। दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः॥१५॥
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम्। एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्याते विशेषतः॥१६॥
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः। मानुषं तु शतं विप्रा दिव्यमासास्त्रयस्तु ते॥१७॥
दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः। त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु॥१८॥
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः। त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषाणि प्रमाणतः॥१९॥
त्रिंशदन्यानि वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः। नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु॥२०॥
अन्यानि नवतीश्चैव ध्रौवः संवत्सरस्तु सः। षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु॥२१॥
वर्षाणां तच्छतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः समृतः। त्रीण्येव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु॥२२॥
षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया। दिव्यं वर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः॥२३॥
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्याप्रकल्पनम्। पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते॥२४॥

मनुष्यों की गिनती में एक चान्द्रमास पितरों के दिन और रात के बराबर होते हैं। पुनः विभाजन पर अन्धेरा आधा भाग दिन होता है और उजाला आधा भाग रात्रि होती है जब वे सोते हैं। मनुष्य के तीस मास पितरों का एक मास होता है। मनुष्यों के तीन सौ साठ महीने पितरों का एक वर्ष होता है। मनुष्य की गणना के सौ वर्ष पितरों के तीन वर्ष होते हैं।।१०-१३।। मनुष्यों की गणना से बारह महीने का एक वर्ष होता है और पितरों (की अपनी गणना के अनुसार) १२ महीने का एक वर्ष होता है।।१४।। लिङ्गपुराण के अनुसार मनुष्यों का एक वर्ष (पितरों) का एक दिन और रात होता है। उनके दिन रात और अन्य भाग इस प्रकार होता है।।१५।। उत्तरायण (सूर्य की उत्तर की ओर संक्रमण) की अवधि उनका दिन और दक्षिणायन (सूर्य का दक्षिण की ओर संक्रमण) की अवधि उनकी रात होती है। ये दिन और रात देवों की गणना से गिने जाते हैं।।१६।। तीस मानव वर्ष से एक दिव्य मास बनता है। हे ब्राह्मणों! सौ मानव वर्ष तीन दिव्य मास और दस दिन होते हैं। तीन सौ साठ मानवं वर्षों का एक दिव्य वर्ष होता है। ३ सहस्र और तीस मानव वर्ष सप्तर्षियों का एक वर्ष होता है। मानव गणना में नौ सहस्र नब्बे वर्षों में ध्रुव का एक वर्ष होता है। छत्तीस सहस्र मानव वर्ष एक देव शताब्दी बनाते हैं। अंकगणित जानने वाले कहते हैं कि तीन सौ साठ सहस्र मानव वर्ष मिल कर एक सहस्र दिव्य वर्ष बनाते हैं।।१७-२३।। युग की अवधि की गणना दिव्य हिसाब से की जाती है। पहला युग कृत; तत्पश्चात् त्रेता आता है। उसके बाद द्वापर और कलि। हे पवित्र व्रत वाले मनुष्यों! ये चार युग होते हैं। अब तक युगों के वर्ष दिव्य गणना से बताये गये थे। वे अब

द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतानि सुव्रताः। अथ संवत्सरा दृष्टा मानुषेण प्रमाणतः॥२५॥
कृतस्याद्यस्य विप्रेंद्रा दिव्यमानेन कीर्तितम्। सहस्राणां शतान्यासंश्चतुर्दश च संख्यया॥२६॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि तथान्यानि कृतं युगम्। तथा दशसहस्राणां वर्षाणां शतसंख्यया॥२७॥
अशीतिश्च सहस्राणि कालस्त्रेतायुगस्य च। सप्तैव नियुतान्याहुर्वर्षाणां मानुषाणि तु॥२८॥
विंशतिश्च सहस्राणि कालस्तु द्वापरस्य च। तथा शतसहस्राणि वर्षाणां त्रीणि संख्यया॥२९॥
षष्ठिश्चैव सहस्राणि कालः कलियुगस्य तु। एवं चतुर्युगः काल ऋते संध्यांशकात्स्मृतः॥३०॥
नियुतान्येव षट्त्रिंशन्निरंशानि तु तानि वै। चत्वारिंशत्तथा त्रीणि नियुतानीह संख्यया॥३१॥
विंशतिश्च सहस्राणि संध्यांशश्च चतुर्युगः। एवं चतुर्युगाख्यानां साधिका ह्येकसप्ततिः॥३२॥
कृतत्रेतादियुक्तानां मनोरंतरमुच्यते। मन्वन्तरस्य संख्या च वर्षाग्रेण प्रकीर्तिता॥३३॥
त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण द्विजोत्तमाः। सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु॥३४॥
विंशतिश्च सहस्राणि कालोयमधिकं विना। मन्वंतरस्य संख्यैषा लैंगेस्मिन्कीर्तिता द्विजाः॥३५॥
चतुर्युगस्य च तथा वर्षसंख्याप्रकीर्तिता। चतुर्युगसहस्रं वै कल्पश्चैको द्विजोत्तमाः॥३६॥
निशांते सृजते लोकान् नश्यंते निशि जंतवः। तत्र वैमानिकानां तु अष्टाविंशतिकोटयः॥३७॥

मन्वंतरेषु वै संख्या सांतरेषु यथातथा।
त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्यो द्विनवतिस्तथा॥३८॥

कल्पेऽतीते तु वै विप्राः सहस्राणां तु सप्ततिः। पुनस्तथाष्टसाहस्रं सर्वत्रैव समासतः॥३९॥
कल्पावसानिकांस्त्यक्त्वा प्रलये समुपस्थिते। महर्लोकात् प्रयांत्येते जनलोकं जनास्ततः॥४०॥

मानव गणना के अनुसार बताये जा रहे हैं। कृत युग में चौदह लाख चालीस हजार मानव वर्ष होते हैं। त्रेता में दस लाख अस्सी हजार वर्ष, द्वापर में साठ लाख बीस हजार वर्ष और कलि में तीन लाख साठ हजार वर्ष होते हैं। इस प्रकार बिना सन्धि और संक्रमण के चारों युगों की अवधि छत्तीस लाख वर्ष होती है। यदि सन्ध्या समय को जोड़ा जाय तो चारों युगों का समूह तैतालिस लाख बीस हजार वर्ष होती है। चारों युगों कृत, त्रेता, द्वापर और कलि के सत्तर समूहों से कुछ अधिक का एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर में तीस करोड़ सरसठ लाख बीस हजार मानव वर्षों का होता है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! इस लिंगपुराण के अनुसार मन्वन्तर की अवधि इससे अधिक नहीं हो सकती।।२४-३५।। चारों युगों में वर्षों की संख्या का उल्लेख किया जा चुका है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! चारों युगों के ऐसे सहस्र समूहों से (ब्रह्मा का) एक कल्प बनता है। ब्रह्मा की रात्रि के समय प्राणी नष्ट हो जाते हैं। रात्रि के अन्त में उनका पुनः सृजन होता है। अट्ठाइस करोड़ देवता वायु के रथ पर गतिशील रहते हैं।।३६-३७।। मन्वन्तरों और उनके मध्यवर्ती समय में उनकी संख्या तीन सौ बानबे करोड़ हो जाती है।।३८।। हे ब्राह्मणों! अन्तिम कल्प में उनकी संख्या अठहत्तर हजार होती है। सभी कल्पों में संक्षेप में यही स्थिति रहती है। प्रलय निकट होता है तो लोग कल्प के अन्तिम दिन जीवित व्यक्तियों को छोड़कर महर्लोक से जनलोक में चले जाते हैं।।३९-४०।। देव गणना के अनुसार अर्ध कल्प में दो सहस्र आठ सौ बासठ करोड़ और सत्तर

कोटीनां द्वे सहस्त्रे तु अष्टौ कोटिशतानि तु।
द्विषष्टिश्च तथा कोट्यो नियुतानि च सप्ततिः॥४१॥
कल्पार्धसंख्या दिव्या वै कल्पमेवं तु कल्पयेत्।
कल्पानां वै सहस्त्रं तु वर्षमेकमजस्य तु॥४२।
वर्षाणामष्टसाहस्त्रं ब्राह्मं वै ब्रह्मणो युगम्। सवनं युगसाहस्त्रं सर्वदेवोद्भवस्य तु॥४३॥
सवनानां सहस्त्रं तु त्रिविधं त्रिगुणं तथा।
ब्रह्मणस्तु तथा प्रोक्तः कालः कालात्मनः प्रभोः॥४४॥
भवोद्भवस्तपश्चैव भव्यो रंभः क्रतुः पुनः। ऋतुर्वह्निर्हव्यवाहः सावित्रः शुद्ध एव च॥४५॥
उशिकः कुशिकश्चैव गांधारो मुनिसत्तमाः। ऋषभश्च तथा षड्जो मज्जालीयश्च मध्यमः॥४६॥
वैराजो वै निषादश्च मुख्यो वै मेघवाहनः। पंचमश्चित्रकश्चैव आकूतिर्ज्ञान एव च॥४७॥
मनः सुदर्शो बृंहश्च तथा वै श्वेतलोहितः। रक्तश्च पीतवासाश्च असितः सर्वरूपकः॥४८॥
एवं कल्पास्तु संख्याता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। कोटिकोटिसहस्त्राणि कल्पानां मुनिसत्तमाः॥४९॥
गतानि तावच्छेषाणि अहर्निश्यानि वै पुनः। परांते वै विकाराणि विकारं यांति विश्वतः॥५०॥
विकारस्य शिवस्याज्ञावशेनैव तु संहृतिः। संहृते तु विकारे च प्रधाने चात्मनि स्थिते॥५१॥
साधर्म्येणवतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ। गुणानां चैव वैषम्ये विप्राः सृष्टिरिति स्मृता॥५२॥
साम्ये लयो गुणानां तु तयोर्हेतुर्महेश्वरः। लीलया देवदेवेन वर्गास्त्वीदृग्विधाः कृताः॥५३॥
असंख्याताश्च संक्षेपात् प्रधानादन्वधिष्ठितात्।
असंख्याताश्च कल्पाख्या ह्यसंख्याताः पितामहाः॥५४॥

लाख वर्ष होते हैं। इसी के अनुसार कल्प की गणना की जायेगी। एक सहस्त्र कल्प से ब्रह्मा का एक वर्ष बनता है।।४१-४२।। ब्रह्मा के आठ सहस्त्र वर्षों से उनका एक युग बनता है। ब्रह्मा के सहस्त्र युगों से एक सवन बनता है।।४३।। ऐसे नौ सहस्त्र सवनों से रुद्र का एक दिन होता है।।४४।। हे महान् ऋषियों! ब्रह्मा के कुछ कल्पों के नाम इस प्रकार है—भवोद्भव, तप, भव्य, रम्भ, क्रतु, ऋतु, वह्नि, हव्यवाह, सावित्र, शुद्ध, उशिक, कुशिक गांधार, ऋषभ, षड्ज मज्जालीय, मध्यम, वैराज, निषाद, मुख्य, मेघवाहन, पंचम, चित्रक, आकूति, ज्ञान, मनस्, सुदर्श, बृंह, श्वेतलोहित, रक्त, पीतवासस्, असित और सर्वरूपक। हे श्रेष्ठ ऋषियों! ऐसे सहस्त्रों और करोड़ों कल्प बीत चुके हैं।।४५-४९।। कल्प की समाप्ति पर दिन और रात में सृजन के दौरान उत्पादित सभी वस्तुएँ नष्ट कर दी जाती हैं।।५०।। विनाश शिव के आदेश पर होता है। जब सृष्टि का विनाश होता है तो प्रधान अपने आप में सिमट जाता है। प्रधान और पुरुष दोनों स्थिर और निष्क्रिय हो जाते हैं। हे ब्राह्मणों! जब तीनों गुण सन्तुलन में नहीं रहते तभी सृष्टि का निर्माण होता है। जब वे सन्तुलन में होते है तो सृष्टि का क्षय हो जाता है। इस प्रकार वे लीला स्वरूप सृष्टि का निर्माण करते हैं।।५१-५३।। प्रधान के द्वारा रची गयी ऐसी असंख्य सृष्टियाँ हैं। अपने ब्रह्मा और विष्णु सहित कल्पों की संख्या भी असंख्य है, किन्तु भगवान शिव एक

हरयश्चाप्यसंख्यातास्त्वेक एव महेश्वरः। प्रधानादिप्रवृत्तानि लीलया प्राकृतानि तु॥५५॥
गुणात्मिका च तद्वृत्तिस्तस्य देवस्य वै त्रिधा।
अप्राकृतस्य तस्यादिर्मध्यांतं नास्ति चात्मनः॥५६॥
पितामहस्याथ परः परार्धद्वयसंमितः।
दिवा सृष्टं तु यत्सर्वं निशि नश्यति चास्य तत्॥५७॥
भूर्भुवःस्वर्महस्तत्र नश्यते चोर्ध्वतो न च। रात्रौ चैकार्णवे ब्रह्मा नष्टे स्थावरजंगमे॥५८॥
सुष्वापांभसि यस्तस्मान्नरायण इति स्मृतः। शर्वर्यंते प्रबुद्धो वै दृष्ट्वा शून्यं चराचरम्॥५९॥
स्त्रष्टुं तदा मतिं चक्रे ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः। उदकैराप्लुतां क्ष्मां तां समादाय सनातनः॥६०॥
पूर्ववत्स्थापयामास वाराहं रूपमास्थितः। नदीनदसमुद्रांश्च पूर्ववच्चाकरोत्प्रभुः॥६१॥
कृत्वा धरां प्रयत्नेन निम्नोन्नतिविवर्जिताम्।
धरायां सोचिनोत्सर्वान् गिरीन् दग्धान् पुराग्निना॥६२॥
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत्। स्त्रष्टुं च भगवांश्चक्रे तदा स्त्रष्टा पुनर्मतिम्॥६३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सृष्टिप्रारंभवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

ही हैं। प्रधान के माध्यम से प्रकृति की गतिविधियाँ उनकी लीला के कारण हैं। गुणों से युक्त गतिविधियाँ नाशवान हैं, किन्तु (असृजित) आत्मा का न प्रारम्भ है न मध्य और न अन्त।।५४-५६।। ब्रह्मा की जीवन अवधि दो भागों में बँटी होती है जो परार्द्ध कहलाते है। उनकी सृष्टि जो दिन में रची होती है उसका रात्रि में विनाश होता है।।५७।। भूः भुवः स्वः और महः लोकों का विनाश हो जाता है। केवल ऊर्ध्व लोक बचे रहते हैं। रात्रि में, जबकि सब चर और अचर का विनाश हो जाता है, तब जल फैलकर एक सागर बन जाता है। उस समय ब्रह्मा जल में शयन करने (सोने) के लिए चले जाते हैं। अतः वे नारायण नाम से जाने जाते हैं। रात के अन्त में जब वे जागते हैं तो चर और अचर को शून्य देख कर ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ ब्रह्मा सृष्टि का निर्माण करने का निश्चय करते हैं। वह एक वराह का रूप धारण करते हैं और जल में मग्न (डूबी हुई) पृथ्वी को उठाकर पूर्ववत् स्थापित करते हैं। नदी, नद और समुद्रों को पूर्ववत् कर देते हैं।।५८-६१।।

बहुत प्रयास करके ब्रह्मा पृथ्वी को समतल करते हैं। वे पृथ्वी पर अग्नि द्वारा जले हुए पर्वतों को एकत्र करते हैं। वे भूः आदि चारों लोकों को पूर्ववत् स्थापित करते हैं। तब सृष्टिकर्ता भगवान ब्रह्मा पुनः नयी ताजी सृष्टि करने का निश्चय करते हैं।।६२-६३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में सृष्टि प्रारम्भ का वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त॥४॥

पंचमोऽध्यायः

प्रजासृष्टिवर्णनम्

सूत उवाच

यदा स्त्रष्टुं मतिं चक्रे मोहश्चासीन्महात्मनः। द्विजाश्च बुद्धिपूर्वं तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥१॥
तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्राश्चांधसंज्ञितः। अविद्या पंचधा ह्येषा प्रादुर्भूता स्वयंभुवः॥२॥
अविद्यया मुनेर्ग्रस्तः सर्गो मुख्य इति स्मृतः। असाधक इति स्मृत्वा सर्गो मुख्यः प्रजापतिः॥३॥
अभ्यमन्यत सो ऽन्यं वै नगा मुख्योद्भवाः स्मृतः।
त्रिधा कंठो मुनेस्तस्य ध्यायतो वै ह्यवर्तत॥४॥
प्रथमं तस्य वै जज्ञे तिर्यक्स्त्रोतो महात्मनः। ऊर्ध्वस्त्रोतः परस्तस्य सात्विकः स इति स्मृतः॥५॥
अर्वाक्स्त्रोतोऽनुग्रहश्च तथा भूतादिकः पुनः। ब्रह्मणो महतस्त्वाद्यो द्वितीयो भौतिकस्तथा॥६॥
सर्गस्तृतीयश्चैंद्रियस्तुरीयो मुख्य उच्यते। तिर्यग्योन्यः पंचमस्तु षष्ठो दैविक उच्यते॥७॥
सप्तमो मानुषो विप्रा अष्टमोऽनुग्रहः स्मृतः। नवमश्चैव कौमारः प्राकृता वैकृतास्त्विमे॥८॥
पुरस्तादसृजद्देवः सनंदं सनकं तथा। सनातनं मुनिश्रेष्ठा नैष्कर्म्येण गताः परम्॥९॥
मरीचिभृग्वंगिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद्योगविद्यया॥१०॥

पाँचवाँ अध्याय

प्रजा सृष्टि का वर्णन

सूत बोले

हे ब्राह्मणों! जब अज्ञात उद्‌भव वाले (अज) ब्रह्मा सृजन के बारे में बुद्धिपूर्वक विचार कर रहे थे तो वे अन्धेरे में थे तो उनको मोह हुआ।।१।। स्वयंभू ब्रह्मा से अविद्या (अज्ञान) पाँच रूपों में पैदा हुआ—अन्ध, मोहान्ध, महामोह, तमिस्त्र और अन्ध तमिस्त्र।।२।। अज्ञान से ढकी ब्रह्मा की यह सृष्टि प्राथमिक है। इसी सृष्टि से स्थिर वस्तुएँ (वृक्ष, पर्वत आदि) पैदा हुईं। उन्हें लगा कि यह सृष्टि उत्पादन में अक्षम है। उन्होंने पुनः सृजन के लिये सोचा। वे इस बारे में ध्यानमग्न थे कि तभी उनकी गर्दन क्षैतिज रूप से घूमी।।३-४।। सर्वप्रथम उनसे क्षैतिज सृष्टि तिर्यक्स्त्रोतस् पैदा हुई। तत्पश्चात् ऊर्ध्वस्त्रोतस् जिसका मुख्य सात्विक लक्षण है, पैदा हुई। तदन्तर अर्वाक् स्त्रोतस्, तत्पश्चात् अनुग्रह और अन्त में भूतादि पैदा हुई। ब्रह्मा की पहली सृष्टि महत, दूसरी तन्मात्र युक्त भौतिक, तीसरी इन्द्रिय युक्त ऐन्द्रिक, चतुर्थ स्थिर युक्त मुख्य, पाँचवी पशुओं से युक्त तिर्यग्योनि, छठवीं दैविक, सातवीं मनुष्यता युक्त मानुष, आठवीं (भावना युक्त) अनुग्रह, और नवीं कुमारयुक्त कौमार्य। ये प्राकृत और वैकृत सृष्टियाँ हैं।।५-८।। हे ब्राह्मणों! पहले ब्रह्मा ने सनन्द, सनक और सनातन की सृष्टि की। सांसारिक गतिविधियों से विरत रहकर उन्होंने सर्वोच्च सत्ता प्राप्त की। अपने यौगिक विद्या से उन्होंने मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ की सृष्टि की। ये सभी पुत्र ब्रह्म के व्याख्याता और ब्रह्मा के समकक्ष

नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्रह्मज्ञा ब्राह्मणोत्तमाः। ब्रह्मवादिन एवैते ब्रह्मणः सदृशाः स्मृताः॥११॥
संकल्पश्चैव धर्मश्च ह्यधर्मो धर्मसंनिधिः। द्वादशैव प्रजास्त्वेता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥१२॥
ऋभुं सनत्कुमारं च ससर्जादौ सनातनः। तावूर्ध्वरेतसौ दिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्मवादिनौ॥१३॥
कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौ सर्वभाविनौ। वक्ष्ये भार्याकुलं तेषां मुनीनामग्रजन्मनाम्॥१४॥
समासतो मुनिश्रेष्ठाः प्रजासंभूतिमेव च। शतरूपां तु वै राज्ञीं विराजमसृजत्प्रभुः॥१५॥
स्वायंभुवात्तु वै राज्ञी शतरूपा त्वयोनिजा। लेभे पुत्रद्वयं पुण्या तथा कन्याद्वयं च सा॥१६॥

उत्तानपादो ह्यवरो धीमाञ्ज्येष्ठः प्रियंव्रतः।
ज्येष्ठा वरिष्ठा त्वाकूतिः प्रसूतिश्चानुजा स्मृता॥१७॥

उपयेमे तदाकूतिं रुचिर्नाम प्रजापतिः। प्रसूतिं भगवान्दक्षो लोकधात्रीं च योगिनीम्॥१८॥
दक्षिणासहितं यज्ञमाकूतिः सुषुवे तथा। दक्षिणा जनयामास दिव्या द्वादश पुत्रिकाः॥१९॥

प्रसूतिः सुषुवे दक्षाश्चतुर्विंशतिकन्यकाः।
श्रद्धां लक्ष्मीं धृतिं पुष्टिं तुष्टिं मेधां क्रियां तथा॥२०॥
बुद्धिं लज्जां वपुःशांति सिद्धिं कीर्तिं महातपाः।
ख्यातिं सतिं च संभूतिं स्मृतिं प्रीतिं क्षमां तथा॥२१॥

सन्नतिं चानसूयां च ऊर्जां स्वाहां सुरारणिम्। स्वधां चैव महाभागां प्रददौ च यथाक्रमम्॥२२॥
श्रद्धाद्याश्चैव कीर्त्यंतास्त्रयोदश सुदारिकाः। धर्मं प्रजापतिं जग्मुः पतिं परमदुर्लभाः॥२३॥
उपयेमे भृगुर्धीमान् ख्यातिं तां भार्गवारणिम्। संभूतिं च मरीचिस्तु स्मृतिं चैवांगिरा मुनिः॥२४॥

हुए।।९-११।। उनके तीन और पुत्र थे संकल्प, धर्म और अधर्म। अधर्म हर समय धर्म के निकट उपस्थित रहता है। इस प्रकार अज्ञात उद्‌भव वाले ब्रह्मा के बारह पुत्र थे।।१२।। उस नित्य सनातन ब्रह्मा ने प्रारम्भ में ऋभु और सनत्कुमार का सृजन किया। ये सबसे बड़े पुत्र ब्रह्म के दैवी व्याख्याता हुए। वे यौन इच्छा से मुक्त थे। ब्रह्मचारी और ब्रह्मज्ञानी रहे और बुद्धिमत्ता में ब्रह्मा के बराबर हुए। ये सर्वज्ञ और सर्वगुण सम्पन्न थे। हे श्रेष्ठ ऋषियों! अब मैं संक्षेप में ब्रह्मर्षियों की पत्नियों और सन्तानों के जन्म का उल्लेख करूँगा।।१३-१४।। ईश्वर ने विराज (मनु) और विराजिनी शतरूपा की सृष्टि की जो कि अयोनिज थीं। उसने मनु से दो पुत्रों एवं दो पुत्रियों को जन्म दिया। बड़े मनीषी प्रियव्रत और छोटे उत्तानपाद थे। बड़ी पुत्री आकूति और छोटी प्रसूति थी।।१५-१७।। प्रजापति ने आकूति (रुचि) से विवाह किया और दक्ष ने लोकों की माता और महान् योगिनी प्रसूति से विवाह किया। आकूति ने एक पुत्र यज्ञ और पुत्री दक्षिणा को जन्म दिया। दक्षिणा ने प्रसूति आदि दिव्य बारह पुत्रियों को जन्म दिया। महान् तपस्विनी प्रसूति ने दक्ष से चौबीस पुत्रियों—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तृष्टि, मेघा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, व शान्ति, सिद्धि, कीर्ति, ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा, अरणि और महाभाग स्वधा को क्रमश; जन्म दिया। श्रद्धा से कीर्ति तक पहली तेरह का विवाह धर्म से किया गया। भृगु ने ख्याति से; भार्गव (शुक्र) ने अरणि से, मरीचि ने सम्भूति से, अंगिरस ने स्मृति से विवाह किया।

प्रीतिं पुलस्त्यः पुण्यात्मा क्षमां तां पुलहो मुनिः। क्रतुश्च सन्नतिं धीमानत्रिस्तां चानसूयकाम्॥२५॥
ऊर्जां वसिष्ठो भगवान्वरिष्ठो वारिजेक्षणाम्। विभावसुस्तथा स्वाहां स्वधां वै पितरस्तथा॥२६॥
पुत्रीकृता सती या सा मानसी शिवसंभवा। दक्षेण जगतां धात्री रुद्रमेवास्थिता पतिम्॥२७॥
अर्धनारीश्वरं दृष्ट्वा सर्गादौ कनकांडजः। विभजस्वेति चाहादौ यदा जाता तदाभवत्॥२८॥
तस्याश्चैवांशजाः सर्वाः स्त्रियस्त्रिभुवने तथा। एकादशविधा रुद्रास्तस्य चांशोद्भवास्तथा॥२९॥
स्त्रीलिंगमखिलं सा वै पुल्लिंगं नीललोहितः। तं दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा दक्षमालोक्य सुव्रताम्॥३०॥
भजस्व धात्रीं जगतां ममापि च तवापि च। पुन्नाम्नो नरकात्त्राति इति पुत्रेत्विहोक्तितः॥३१॥

प्रशस्ता तव कांतेयं स्यात् पुत्री विश्वमातृका।
तस्मात् पुत्री सती नाम्ना तवैषा च भविष्यति॥३२॥
एवमुक्तस्तदा दक्षो नियोगाद्ब्रह्मणो मुनिः।
लब्ध्वा पुत्रीं ददौ साक्षात् सतीं रुद्राय सादरम्॥३३॥

धर्मस्य पत्न्यः श्रद्धाद्याः कीर्तिता वै त्रयोदश। तासु धर्मप्रजां वक्ष्ये यथाक्रममनुत्तमम्॥३४॥
कामो दर्पोऽथ नियमः संतोषो लोभ एव च। श्रुतस्तु दंडः समयो बोधश्चैव महाद्युतिः॥३५॥
अप्रमादश्च विनयो व्यवसायो द्विजोत्तमाः। क्षेमं सुखं यशश्चैव धर्मपुत्राश्च तासु वै॥३६॥
धर्मस्य वै क्रियायां तु दंडः समय एव च। अप्रमादस्तथा बोधो बुद्धेर्धर्मस्य तौ सुतौ॥३७॥

विभावसु ने स्वाहा से, पितर ने स्वधा से, पुलत्स्य ने प्रीति से और पुलह ने क्षमा से, क्रतु ने सन्नति से, अत्रि ने अनसूया से,वसिष्ठ ने कमल के समान नेत्रों वाली ऊर्जा से, स्वाहा ने विभावसु से और स्वधा ने पितृ से विवाह किया।।१८-२६।। ईश्वर की मानसिक सृष्टि सती को दक्ष ने पुत्री के रूप में अपनाया। लोकों की माता उसने रुद्र को पति रूप में प्राप्त किया। सृष्टि के प्रारम्भ में आधे स्त्री और आधे पुरुष के शरीर वाले रुद्र का सृजन किया और तत्पश्चात् विधाता ने कहा, "अपने को विभाजित करो।"। ऐसे कहे जाने पर उसने अपने को दो भागों में बाँट लिया। तभी वह (सती) पैदा हुईं।।२७-२८।। स्त्री भाग से तीनों लोकों की सभी स्त्रियाँ पैदा हुईं। इसी प्रकार ग्यारहों रुद्र पुरुष भाग से पैदा हुए।।२९।। प्रत्येक स्त्री पदार्थ में स्वयं वह (सती) है और प्रत्येक पुरुष पदार्थ में स्वयं रुद्र है। रुद्र को ध्यान में रखकर ब्रह्मा ने दक्ष की ओर देखकर कहा, "उसकी आराधना करो। वह शुभ अनुष्ठानों वाली है तीनों लोकों की माता है। जैसे वह मेरी है वैसे ही तुम्हारी भी। पुत्र शब्द की व्याख्या है वह जो नरक से मुक्त करे वह पुत्र है। तुम्हारी पुत्री रुद्र की उत्कृष्ट पत्नी और सारे ब्रह्माण्ड की माता होगी। यह तुम्हारी पुत्री होगी और सती के रूप में जानी जायेगी।" ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार निर्देश किये जाने पर दक्ष ने उसे पुत्री के रूप में प्राप्त किया और विवाह में रुद्र को दिया।।।३०-३३।। श्रद्धा आदि धर्म की पत्नियों का मैंने पहले ही उल्लेख किया है। अब मैं उन पत्नियों से धर्म की सन्ततियों का क्रमशः उल्लेख करूँगा।।३४।। वे हैं काम, दर्प, नियम, सन्तोष, लोभ, श्रुत, दण्ड, समय, बोध, अप्रमाद, विनय, व्यवसाय, क्षेम, सुख और यश। ये धर्म की सन्ततियाँ हैं।।३५-३६।। क्रिया और बुद्धि से धर्म को दो पुत्र दण्ड और समय तथा बाद वाली से अप्रमाद और बोध प्राप्त हुए। धर्म और अधर्म के कुल पन्द्रह पुत्र हैं। भृगु और ख्याति ने पुत्री श्री (विष्णु की

तस्मात्पंचदशैवैते तासु धर्मात्मजास्त्विह।
भृगुपत्नी च सुघुवे ख्यातिर्विष्णोः प्रियां श्रियम्॥३८॥

धातारं च विधातारं मेरोर्जामातरौ सुतौ। प्रभूतिर्नाम या पत्नी मरीचेः सुषुवे सुतौ॥३९॥
पूर्णमासं तु मारीचं ततः कन्याचतुष्टयम्। तुष्टिर्ज्येष्ठा च वै दृष्टिः कृषिश्चापचितिस्तथा॥४०॥
क्षमा च सुषुवे पुत्रान् पुत्रीं च पुलहाच्छुभाम्। कर्दमं च वरीयांसं सहिष्णुं मुनिसत्तमाः॥४१॥
तथा कनकपीतां स पीवरीं पृथिवीसमाम्। प्रीत्यां पुलस्त्यश्चतथा जनयामास वै सुतान्॥४२॥
दत्तोर्णं वेदबाहुं च पुत्रीं चान्यां दृषद्वतीम्। पुत्राणां षष्टिसाहस्रं सन्नतिः सुषुवे शुभा॥४३॥
क्रतोस्तु भार्या सर्वे ते वालखिल्या इति श्रुताः। सिनीवालीं कुहूं चैव राकां चानुमतिं तथा॥४४॥
स्मृतिश्च सुषुवे पत्नी मुनेश्चांगिरसस्तथा। लब्धानुभावमग्निं च कीर्तिमंतं च सुव्रता॥४५॥
अत्रेर्भार्यानसूया वै सुषुवे षट्प्रजास्तु याः। तास्वेका कन्यका नाम्ना श्रुतिः सा सूनुपंचकम्॥४६॥
सत्यनेत्रो मुनिर्भव्यो मूर्तिरापः शनैश्चरः। सोमश्च वै श्रुतिः षष्ठी पंचात्रेयास्तु सूनवः॥४७॥
ऊर्जा वसिष्ठाद्वै लेभे सुतांश्च सुतवत्सला। ज्यायसी पुंडरीकाक्षान्वासिष्ठान्वरलोचना॥४८॥
रजः सुहोत्रो बाहुश्च सवनश्चानघस्तथा। सुतपाः शुक्र इत्येते मुनेर्वै सप्त सूनवः॥४९॥

यश्चाभिमानी भगवान् भवात्मा पैतामहो वह्निरसुः प्रजानाम्।
स्वाहा च तस्मात्सुषुवे सुतानां त्रयं त्रयाणां जगतां हिताय॥५०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे प्रजासृष्टिवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः॥५॥

पत्नी) और दो पुत्रों धातृ और विधातृ को पैदा किया जो कालान्तर में मेरु के दामाद हुए। मरीचि की पत्नी प्रभूति ने दो पुत्रों पूर्णमास और मरीच एवं चार पुत्रियों तुष्टि, दृष्टि, कृषि और अपचिति को जन्म दिया।।३७-४०।। हे महान ऋषियों! क्षमा ने पुलह से तीन पुत्रों कर्दम, वरीयान और सहिष्णु एवं सुनहरे रंग और पृथ्वी की तरह दृढ़ पीवरी नामक पुत्री को जन्म दिया। पुलस्त्य को प्रीति से दो पुत्र दत्तोर्ण और वेदबाहु और एक पुत्री दृषद्वती प्राप्त हुए। क्रतु की पत्नी सन्नति ने साठ हजार पुत्रों को जन्म दिया जो बालखिल्य कहलाये। अंगिरा, की पत्नी स्मृति ने शुभ अनुष्ठान वाले तीन पुत्रों अनुभाव, अग्नि और कीर्तिमान को प्राप्त करने के बाद चार पुत्रियों सिनीवाली, कुहू, राका और अनुभूति को जन्म दिया।।४१-४५।। अत्रि की पत्नी अनसूया ने छः सन्तानों एक पुत्री श्रुति और पाँच पुत्रों सत्यनेत्र, भव्यमूर्ति, आप, शनैश्चर और सोम को जन्म दिया। पुत्रों को प्यार करने वाली माता ऊर्जा ने वशिष्ठ से सात सुन्दर पुत्र रजस्, सुहोत्र, बाहु, सवन, अनघ, सुतपस् और शुक्र उत्पन्न किये। अग्नि के देवता को—जो कि स्वयं को रुद्र जैसा ही समझते हैं—जो ब्रह्मा के सबसे बड़े पुत्र हैं और जो लोगों का जीवन हैं—को स्वाहा ने तीन लोकों के कल्याण के लिये तीन पुत्र उत्पन्न हुए।।४६-५०।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में प्रजा सृष्टि का वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

शिवमाहात्म्यम्

सूत उवाच

पवमानः पावकश्च शुचिरग्निश्च ते स्मृताः। निर्मथ्यैः पवमानस्तु वैद्युतः पावकः स्मृतः॥१॥
शुचिः सौरस्तु विज्ञेयः स्वाहापुत्रास्त्रयस्तु ते। पुत्रैः पौत्रैस्त्विहैतेषां संख्या संक्षेपतः स्मृता॥२॥
विसृज्य सप्तकं चादौ चत्वरिंशन्नवैव च। इत्येते वह्नयः प्रोक्ताः प्रणीयंतेऽध्वरेषु च॥३॥
सर्वे तपस्विनस्त्वेते सर्वे व्रतभृतः स्मृताः। प्रजानां पतयः सर्वे सर्वे रुद्रात्मकाः स्मृताः॥४॥
अयज्वानश्च यज्वानः पितरः प्रीतिमानसाः। अग्निष्वात्ताश्च यज्वानः शेषा बर्हिषदः स्मृताः॥५॥
मेनां तु मानसीं तेषां जनयामास वै स्वधा। अग्निष्वात्तात्मजा मेना मानसी लोकविश्रुता॥६॥
असूत मेना मैनाकं क्रौंचं तस्यानुजामुमाम्। गंगां हैमवतीं जज्ञे भवांगाश्लेषपावनीम्॥७॥
धरणीं जनयामास मानसीं यज्ञयाजिनीम्। स्वधा सा मेरुराजस्य पत्नी पद्मसमानना॥८॥
पितरोऽमृतपाः प्रोक्तास्तेषां चैवेह विस्तरः। ऋषीणां च कुलं सर्वं श्रृणुध्वं तत्सुविस्तरम्॥९॥
वदामि पृथगध्यायसंस्थितं वस्तदूर्ध्वतः। दाक्षायणी सती याता पार्श्वं रुद्रस्य पार्वती॥१०॥
पश्चाद्दक्षं विनिंद्यैषा पतिं लेभे भवं तथा। तां ध्यात्वा व्यसृजद्रुद्रानेकान्नीललोहितः॥११॥

छठवाँ अध्याय

शिव माहात्म्य

सूत बोले

अग्नि के तीन पुत्र पवमान, पावक और शुचि हैं। घर्षण से उत्पन्न अग्नि पवमान कही जाती है। बिजली से उत्पन्न अग्नि पावक और सूर्य से उत्पन्न अग्नि शुचि कही जाती है। तीनों स्वाहा के पुत्र हैं। पुत्रों और पौत्रों सहित उनकी संख्या उनचास है। अग्नि यज्ञों में पैदा किये जाते हैं।।१-३।। ये सब तपस्वी हैं और शुभ अनुष्ठानों को करने वाले हैं। सभी प्रजापति हैं और रुद्र जैसे ही हैं।।४।। पितर दो प्रकार के होते है यज्वन् और अयज्वन। यज्वन् को अग्निष्वात्तस् और अयज्वान् को बर्हिषद भी कहते हैं।।५।। स्वधा ने मानस पुत्री मेना को जन्म दिया। यह मानस पुत्री सारे लोक में प्रसिद्ध है।।६।। मेना ने मैनाक क्रौंच और उसकी (मैनाक की छोटी बहनों) उमा और गंगा को जन्म दिया। गंगा शिव के तन से सम्पर्क के कारण पवित्रतम हुई। स्वधा ने मानस पुत्री धरणी (पृथ्वी) को जन्म दिया जो कि यज्ञों का भरणपोषण करती है और यज्ञों का आश्रय हुई। कमल के समान मुखवाली वह महिला पर्वतराज मेरु की पत्नी हुई।।७-८।। पितृगण अमृतवाणी (अमृत को आत्मसात् करने वाले) हैं, उनका वृत्तान्त मैं ऋषियों और उनके परिवारों सहित बाद में अलग अध्याय में कहूँगा। दक्ष की दत्तक पुत्री सती, भविष्य में हिमवत् की पुत्री ने रुद्र से विवाह किया।।९-१०।। कालान्तर में

आत्मनस्तु समान्सर्वान्सर्वलोकनमस्कृतान्। याचितो मुनिशार्दूला ब्रह्मणा प्रहसन् क्षणात्॥१२॥
तैस्तु संच्छादितं सर्वं चतुर्दशविधं जगत्। तान्दृष्ट्वा विविधान्रुद्रान्निर्मलान्नीललोहितान्॥१३॥
जरामरणनिर्मुक्तान् प्राह रुद्रान्पितामहः। नमोऽस्तु वो महादेवास्त्रिनेत्रा नीललोहिताः॥१४॥

सर्वज्ञाः सर्वगा दीर्घा ह्रस्वा वामनकाः शुभाः।
हिरण्यकेशा दृष्टिघ्ना नित्या बुद्धाश्च निर्मलाः॥१५॥
निर्द्वंद्वा वीतरागाश्च विश्वात्मानो भवात्मजाः।

एवं स्तुत्वा तदा रुद्रान्रुद्रं चाह भवं शिवम्। प्रदक्षिणीकृत्य तदा भगवान्कनकांडजः॥१६॥
नमोऽस्तु ते महादेव प्रजा नार्हसि शंकर। मृत्युहीना विभो स्रष्टुं मृत्युयुक्ताः सृज प्रभो॥१७॥

ततस्तमाह भगवान्न हि मे तादृशी स्थितिः।
स त्वं सृज यथाकामं मृत्युयुक्ताः प्रजाः प्रभो॥१८॥

लब्ध्वा ससर्ज सकलं शंकराच्चतुराननः। जरामरणसंयुक्तं जगदेतच्चराचरम्॥१९॥
शंकरोऽपि तदा रुद्रैर्निवृत्तात्मा ह्यधिष्ठितः। स्थाणुत्वं तस्य वै विप्राः शंकरस्य महात्मनः॥२०॥
निष्कलस्यात्मनः शंभोः स्वेच्छाधृतशरीरिणः। शं रुद्रः सर्वभूतानां करोति घृणया यतः॥२१॥
शंकरश्चाप्रयत्नेन तदात्मा योगविद्यया। वैराग्यस्थं विरक्तस्य विमुक्तिर्यच्छमुच्यते॥२२॥

उसने पिता को शाप दिया और आत्मदाह कर लिया। रुद्र ने उसके बारे में सोचते हुए अनेक रुद्रों का सृजन किया। उन्होंने उनका सृजन स्वयं अपने रूप में किया था। समस्त लोकों ने उनका सम्मान किया। ब्रह्मा के निवेदन पर प्रभु रुद्र ने उनका सृजन किया था। प्रभु हँसे और तुरन्त वे सब बन गये।।११-१२।। चौदहों लोक उनसे पूरी तरह से ढक गये। वे अलग तरह के थे, अशुद्धि से रहित अजर और अमर। ब्रह्मा ने उन्हें अपने समक्ष देखकर उनसे कहा—"हे रुद्रों! आपको प्रणाम है। हे तीन नेत्र वाले देवों! आप सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ एवं भव्य हैं। आपमें कुछ लम्बे कुछ नाटे और कुछ वामन हैं। आपके केश सुनहरे हैं। आप अपनी चमक से हमारी आँखें चुँधिया देते हैं। आप शाश्वत, बोधयुक्त, अशुद्धि और द्वन्द्व से रहित हैं। आप रुद्र के भावावेशरहित पुत्र हैं। आप सर्वव्यापी आत्मा हैं।" इस प्रकार रुद्रों की स्तुति करने के बाद ब्रह्मा ने उनकी परिक्रमा की और रुद्र से बोले।।१३-१६।। "हे प्रभो! आपका वन्दन हैं। हे महान् रुद्र! आपके लिये यह उचित नहीं है कि आप मृत्यु से रहित प्रजा की सृष्टि करें। हे प्रभु! आप को मरणशील प्रजा का सृजन करना चाहिये।"।।१७।। तब महान् भगवान रुद्र ने उत्तर दिया, "मेरी ऐसी प्रकृति नहीं है। हे ब्रह्मा! तुम्हें मरणयुक्त प्रजा का सृजन करना चाहिये"।।१८।। इस प्रकार रुद्र की इच्छा पर चतुर्मुख ब्रह्मा ने मरणशील, स्थिर और गतिशील ब्रह्माण्ड का निर्माण किया।।१९।। इस प्रकार मरणशील सृष्टि के सृजन से विरत रहने के कारण रुद्र ने स्थाणु उपाधि प्राप्त की। हे ब्राह्मणों! मात्र रुद्र ही इसके सक्षम हैं। वह सर्वोच्च और विषादरहित आत्मा हैं जो जब इच्छा हो भौतिक शरीर धारण कर सकते हैं। प्रभु सभी प्राणियों पर सुख की वर्षा करते हैं। अतः उन्हें शंकर कहते हैं। वह सर्वव्यापी आत्मा हैं और जो सांसारिक जीवन के भय से योग की शरण में आता है

अणोस्तु विषयत्यागः संसारभयतः क्रमात्। वैराग्याज्जायते पुंसो विरागो दर्शनांतरे॥२३॥
विमुख्यो विगुणत्यागो विज्ञानस्याविचारतः। तस्य चास्य च संधानं प्रसादात्परमेष्ठिनः॥२४॥
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं शंकरादिह। स एव शंकरः साक्षात्पिनाकी नीललोहितः॥२५॥
ये शंकराश्रिताः सर्वे मुच्यंते ते न संशयः। न गच्छंत्येव नरकं पापिष्ठा अपि दारुणम्॥२६॥
आश्रिताः शंकरं तस्मात्प्राप्नुवंति च शाश्वतम्।

ऋषय ऊचुः

मायान्ताश्चैव घोराद्या ह्यष्टाविंशतिरेव च॥२७॥
कोटयो नरकाणां तु पच्यंते तासु पापिनः। अनाश्रिताः शिवं रुद्रं शंकरं नीललोहितम्॥२८॥
आश्रयं सर्वभूतानामव्ययं जगतां पतिम्। पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्॥२९॥
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकांडजम्। सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वे महेश्वरम्॥३०॥
केन गच्छंति नरकं नराः केन महामते। कर्मणाकर्मणा वापि श्रोतुं कौतुहलं हि नः॥३१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

और सांसारिक गतिविधियों और सुखों को छोड़कर विरक्त हो जाता है उसे वरदान देते हैं। विरक्ति पूर्ण ज्ञान से भी प्राप्त होती है। ज्ञान का त्याग इस प्रयोजन के विपरीत कार्य करता है। उनकी कृपा से ही ज्ञान और विरक्ति का संगम होता है।।२०-२४।। धर्म, ज्ञान, विरक्ति और समृद्धि उनके वरदान का परिणाम है। मात्र उनकी शरण में व्यक्ति आसानी से मुक्त हो जाता है। यहाँ तक कि यदि वह पाप में लिप्त भी हो तो भी नरक में नहीं गिरता।।२५-२६।। अतः उनकी शरण लेकर ही लोग सांसारिक जीवन से शाश्वत मुक्ति पा जाते हैं।

ऋषिगण बोले

उनकी शरण में न जाकर घोर से माया तक अट्ठाइस करोड़ नरकों में गिरते हैं। जहाँ पापियों को कष्ट दिया जाता है। वह सभी प्राणियों के आधार हैं। वे अपरिवर्तनीय हैं। वे लोकों के स्वामी हैं। वह महान् आत्मा हैं। उनका प्रायः आवाहन किया जाता है और स्तुति की जाती है। वे जब तमोगुण धारण करते हैं तो काल रुद्र, जब रजोगुण धारण करते हैं तो ब्रह्मा और जब सत्त्वगुण धारण करते हैं तो विष्णु कहलाते हैं। इन गुणों से रहित वे महेश्वर कहलाते हैं। हे मनीषी! सूत जी अब बतायें कि क्या करने से और किस (कार्य) की उपेक्षा करने से मनुष्य नरक में जाते हैं? हम यह सुनने के लिये उत्सुक हैं।।२७-३१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में शिव माहात्म्य
नामक छठा अध्याय समाप्त॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

मनुव्यासयोगेश्वरतच्छिष्यकथनम्

सूत उवाच

रहस्यं वः प्रवक्ष्यामि भवस्यामिततेजसः। प्रभावं शंकरस्याद्यं संक्षेपात्सर्वदर्शितः॥१॥
योगिनः सर्वतत्त्वज्ञाः परं वैराग्यमास्थिताः। प्राणयामादिभिश्चाष्टसाधनैः सहचारिणः॥२॥
करुणादिगुणोपेताः कृत्वापि विविधानि ते। कर्माणि नरकं स्वर्गं गच्छंत्येव स्वकर्मणा॥३॥
प्रसादाज्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्तते। योगेन जायते मुक्तिः प्रसादादखिलं ततः॥४॥

ऋषय ऊचुः

प्रसादाद्यदि विज्ञानं स्वरूपं वक्तुमर्हसि। दिव्यं माहेश्वरं चैव योगं योगविदां वर॥५॥
कथं करोति भगवान् चिंतयारहितः शिवः। प्रसादं योगमार्गेण कस्मिन्काले नृणां विभुः॥६॥

रोमहर्षण उवाच

देवानां च ऋषीणां च पितॄणां सन्निधौ पुरा। शैलादिना तु कथितं शृण्वंतु ब्रह्मसूनवे॥७॥
व्यासावताराणि तथा द्वापरांते च सुव्रताः। योगाचार्यावताराणि तथा तिष्ये तु शूलिनः॥८॥

सॉतवॉं अध्याय

मनुव्यास योगेश्वर और उनके शिष्यों का कथन

सूत बोले

मैं प्रारम्भ में आप को संक्षेप में अनन्त तेज वाले शिव जी के ज्ञान सम्बन्धी रहस्य को बताऊँगा।।१।। सिद्धान्तों को जानने वाले जिन योगियों ने महान् विरक्ति अपनाई है, जो प्राणायाम जैसे योग के आठों अंगों से सम्बद्ध हैं और जो दया आदि गुणों से युक्त हैं, वे अपने कर्मों के अनुसार स्वर्ग या नरक में जाते हैं।।२-३।। उनकी कृपा से ज्ञान का उदय होता है और ज्ञान से ही योग कार्य करता है। योग से मोक्ष प्राप्त होता है और उनकी कृपा से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है।।४।।

ऋषिगण बोले

हे योगियों में श्रेष्ठ! यदि पूर्ण ज्ञान उनकी कृपा से आता है तो आप हमें भगवान शिव के दिव्य योग के रूप और लक्षण के बारे में बतायें।।५।। कैसे चिन्तारहित प्रभु योग पथ के द्वारा और किस समय मनुष्य पर कृपा करते हैं?।।६।।

रोमहर्षण (सूत) बोले

आप वह सब सुनें जो पहले ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार से नन्दी ने देवताओं, ऋषियों और पितृगण के समक्ष कहा था।।७।। हे सुव्रतो! (शुभ अनुष्ठानों को करने वाले ऋषियों!) पहले द्वापर के अन्त वाले व्यास के अवतारों

तत्रतत्र विभोः शिष्याश्चत्वारः शमभाजनाः। प्रशिष्या बहवस्तेषां प्रसीदत्येवमीश्वरः॥९॥
एवं क्रमागतं ज्ञानं मुखादेव नृणां विभोः। वैश्यांतं ब्रह्मणाद्यं हि घृणया चानुरूपतः॥१०॥

ऋषय ऊचुः

द्वापरेद्वापरे व्यासाः के वै कुत्रांतरेषु वै।
कल्पेषु कस्मिन्कल्पे नो वक्तुमर्हसि चात्र तान्॥११॥

सूत उवाच

शृण्वंतु कल्पे वाराहे द्विजा वैवस्वतांतरे। व्यासांश्च सांप्रतं रुद्रास्तथा सर्वांतरेषु वै॥१२॥
वेदानां च पुराणानां तथा ज्ञानप्रदर्शकान्। यथाक्रमं प्रवक्ष्यामि सर्वावर्तेषु साप्रतम्॥१३॥
क्रतुः सत्यो भार्गवश्च अंगिराः सविता द्विजाः। मृत्युः शतक्रतुर्धीमान् वसिष्ठो मुनिपुंगवः॥१४॥
सारस्वतस्त्रिधामा च त्रिवृतो मुनिपुंगवः। शततेजाः स्वयं धर्मो नारायण इति श्रुतः॥१५॥
तरक्षुश्चारुणिर्धीमांस्तथा देवः कृतंजयः। ऋतंजयो भरद्वाजो गौतमः कविसत्तमः॥१६॥

वाचःश्रवाः मुनिः साक्षात्तथा शुष्मायणिः शुचिः।
तृणबिंदुर्मुनी रुक्षः शक्तिः शाक्तेय उत्तरः॥१७॥
जातूकर्ण्यो हरिः साक्षात्कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
व्यासास्त्वेते च शृण्वंतु कलौ योगेश्वरान् क्रमात्॥१८॥

के बारे में सुनिये और कलियुग में योगाचार्य के रूप में शिव के अवतार के बारे में सुनिये।।८।। विभिन्न क्षेत्रों में मानसिक नियन्त्रण से युक्त प्रभु के चार शिष्यों ने शिव के सिद्धान्तों को फैलाया। उन शिष्यों के भी कई प्रशिष्य हो गये और इस पर प्रभु प्रसन्न हुए।।९।। प्रभु के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान परम्परागत तरीके से धीरे-धीरे प्रथम तीन वर्ण के लोगों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में फैलाया गया। ऐसा दया के कारण किया गया।।१०।।

ऋषिगण बोले

आपके लिये यह उचित होगा कि आप हमें बतायें वे व्यास कौन थे जिन्होंने प्रत्येक द्वापर युग में अवतार लिया और इसके अलावा किस मन्वन्तर और कल्प में अवतार लिया।।११।।

सूत बोले

हे ब्राह्मणों! आपकी प्रसन्नता के लिये मैं उचित रूप में वैवस्वत मन्वन्तर के वराह कल्प—जो कि अभी चल रहा है—के व्यास के बारे में बताऊँगा। मैं सभी मन्वन्तरों के रुद्रगण के बारे में बताऊँगा। वे युगों के सारे चक्रों में वेदों और पुराणों के पूर्ण ज्ञान के मार्गदर्शक और उपदेशकर्त्ता रहे हैं।।१२-१३।। हे ब्राह्मणों! ये व्यासगण हैं—(१) क्रतु (२) सत्य (३) भार्गव (४) अंगिरा (५) सविता (६) मृत्यु (७) शतक्रतु (८) धीमान वसिष्ठ (९) सारस्वत (१०) त्रिधामा (११) त्रिवृत (१२) शततेजा (१३) धर्म—जो नारायण के रूप में भी जाने जाते हैं (१४) तरक्षु (१५) आरुणि (१६) कृतञ्जय (१७) ऋतञ्जय (१८) भरद्वाज (१९) गौतम (२०) वाचश्रवा (२१) सुष्मायणि (२२) शुचि (२३) तृणबिन्दु (२४) रुक्ष (२५) शक्ति (२६) शक्तिपुत्र पराशर (२७) जातुकर्ण्य

असंख्याता हि कल्पेषु विभोः सर्वांतरेषु च। कलौ रुद्रावताराणां व्यासानां किल गौरवात्॥१९॥
वैवस्वतांतरे कल्पे वाराहे ये च तान् पुनः। अवतारान् प्रवक्ष्यामि तथा सर्वांतरेषु वै॥२०॥

ऋषय ऊचुः

मन्वंतराणि वाराहे वक्तुमर्हसि सांप्रतम्। तथैव चोर्ध्वकल्पेषु सिद्धान्वैवस्वतांतरे॥२१॥

रोमहर्षण उवाच

मनुः स्वायंभुवस्त्वाद्यस्ततः स्वारोचिषो द्विजाः। उत्तमस्तामसश्चैव रैवताश्चाक्षुषस्तथा॥२२॥
वैवस्वतश्च सावर्णिर्धर्मः सावर्णिकः पुनः। पिशंगश्चापिशंगाभः शबलो वर्णकस्तथा॥२३॥
औकारांता अकाराद्या मनवः परिकीर्तिताः।
श्वेतः पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रः पीतश्च कापिलः॥२४॥
कृष्णः श्यामस्तथा धूम्रः सुधूम्रश्च द्विजोत्तमाः। अपिशंगः पिशंगश्च त्रिवर्णः शबलस्तथा।२५॥
कालंधुरस्तु कथिता वर्णतो मनवः शुभाः। नामतो वर्णतश्चैव वर्णतः पुनरेव च॥२६॥
स्वरात्मानः समाख्याताश्चांतरेशाः समासतः। वैवस्वत ऋकारस्तु मनुः कृष्णः सुरेश्वरः॥२७॥
सप्तमस्तस्य वक्ष्यामि युगावर्तेषु योगिनः। समतीतेषु कल्पेषु तथा चानागतेषु वै॥२८॥

और कृष्णद्वैपायन जो स्वयं विष्णु थे। अब उचित क्रम में कलियुग में योगेश्वरगण के बारे में ध्यान से सुनें।।१४-१८।। विभिन्न कल्पों और मन्वन्तरों में उनकी संख्या असंख्य है। चूँकि कलियुग में रुद्रगण और व्यासगण के अवतार बहुत अधिक हैं, मैं केवल वराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर और उसके पश्चात् हुए मन्वन्तरों के अवतारों के बारे में बताऊँगा।।१९-२०।।

ऋषिगण बोले

हे सूत जी! आपके लिये उचित है कि वराह कल्प के मन्वन्तरों के बारे में बतायें तथा बाद के कल्पों और वैवस्वत मन्वन्तर के सिद्धों के बारे में भी बतायें।।२१।।

सूत बोले

प्रथम मनु, ब्रह्मा के पुत्र स्वम्भुव मनु थे। हे ब्राह्मणों! (१) तत्पश्चात् (२) स्वारोचिष मनु हुए। बाद के मनु थे (३) उत्तम (४) तामस (५) रैवत (६) चाक्षुष (७) वैवस्वत (८) सावर्णि (९) धर्म (१०) सावर्णिक (११) पिशंग (१२) अपिशंगाभ (१३) शबल और वर्णक। मनुगण का वर्गीकरण अ से औ तक स्वरों के आधार पर किया गया है। हे उत्तम ब्राह्मणों! उनका वर्गीकरण उनके रंगों के आधार पर भी किया गया है। जैसे—(१) श्वेत (२) पाण्डु (३) रक्त (४) ताम्र (५) पीत (६) कपिल (७) कृष्ण (८) श्याम (९) धूम्र (१०) सुधूम्र (११) अपिशंग (१२) पिशंग (१३) त्रिवर्णशबल और (१४) कालंघुर। इस प्रकार मनुगण का उल्लेख (१) नाम, (२) स्वरों और (३) रंगों के आधार पर किया गया है। स्वरों के समरूप वे मनु हैं जिनका संक्षेप में मन्वन्तरों के अग्रणी के रूप में उल्लेख किया गया है। इनमें सातवें वैवस्वत हैं जो कि 'ऋ' स्वर और काले रंग के रूप में बताये जाते हैं। सातवें मनु देवताओं में अग्रणी हैं। मैं कल्पों के युग-चक्रों में हुए योगियों का भी उल्लेख करूँगा और आगामी (योगियों) का भी उल्लेख करूँगा।।२२-२८।। वर्तमान कल्प सातवें मन्वन्तर में

वाराहः सांप्रतं ज्ञेयः सप्तमांतरतः क्रमात्। योगावतारांश्च विभोः शिष्याणां संततिस्तथा॥२९॥
संप्रेक्ष्य सर्वकालेषु तथावर्त्तेषु योगिनाम्। आद्ये श्वेतः कलौ रुद्रः सुतारो मदनस्तथा॥३०॥
सुहोत्रः कंकणश्चैव लोगाक्षिर्मुनिसत्तमाः। जैगीषव्यो महातेजा भगवान् दधिवाहनः॥३१॥
ऋषभश्च मुनिर्धीमानुग्रश्चात्रिः सुबालकः। गौतमश्चाथ भगवान् सर्वदेवनमस्कृतः॥३२॥
वेदशीर्षश्च गोकर्णो गुहावासी शिखंडभृत्। जटामाल्यट्टहासश्च दारुको लांगली तथा॥३३॥
महाकायमुनिः शूली दंडी मुंडीश्वरः स्वयम्। सहिष्णुः सोमशर्मा च नकुलीशो जगद्गुरुः॥३४॥
वैवस्वतेऽन्तरे सम्यक् प्रोक्ता हि परमात्मनः। योगाचार्यावतारा ये सर्वावर्तेषु सुव्रताः॥३५॥
व्यासाश्चैवं मुनिश्रेष्ठा द्वापरे द्वापरे त्विमे। योगेश्वराणां चत्वारः शिष्याः प्रत्येकमव्ययाः॥३६॥
श्वेतः श्वेतशिखंडी च श्वेताश्वः श्वेतलोहितः। दुंदुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा॥३७॥
विशोकश्च विकेशश्च विपाशः पापनाशनः। सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमी दुरतिक्रमः॥३८॥
सनकश्च सनंदश्च प्रभुर्यश्च सनातनः। ऋभुः सनत्कुमारश्च सुधामा विरजास्तथा॥३९॥
शंखपाद्वैरजश्चैव मेघः सारस्वतस्तथा। सुवाहनो मुनिश्रेष्ठो मेघवाहो महाद्युतिः॥४०॥
कपिलश्चासुरिश्चैव तथा पंचशिखो मुनिः। वाल्कलश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः॥४१॥
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चांगिरास्तथा। बलबंधुर्निरामित्रः केतुशृंगस्तपोधनः॥४२॥
लंबोदरश्च लंबश्च लंबाक्षो लंबकेशकः। सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सर्वस्तथैव च॥४३॥

वराह के नाम से जाना जाता है। अब सभी कल्पों और मन्वन्तरों में प्रभु के योगिक अवतारों एवं उनके शिष्यों के बारे में क्रमशः ध्यान से सुनें। स्वायंभुव मनु के पहले कलि में वे थे—(१) श्वेत (२) सुतार (३) मदन (४) सुहोत्र (५) कंकण (६) लोगाक्षि (७) जैगीषव्य (८) दधिवाहन (९) ऋषभ (१०) उग्र (११) अत्रि (१२) सुबालक (१३) गौतम (१४) वेदशीर्ष (१५) गोकर्ण (१६) गुहावासी (१७) शिखण्डभृत् (१८) जटामाली (१९) अट्टहास (२०) दारुक (२१) लांगली (२२) महाकाय (२३) शूली (२४) दण्डी (२५) मुण्डीश्वर (२६) सहिष्णु (२७) सोमशर्मा (२८) नकुलीश। हे सुव्रत! वैवस्वत मन्वन्तर के चार युग के सभी चक्रों में प्रभु के योगाचार्य अवितारों को अट्ठाइस बताया गया है।।२९-३५।। हे उत्तम ऋषियों! इसी तरह से हर द्वापर में व्यासगण हैं। प्रत्येक योगेश्वर के निम्नलिखित शिष्य हैं और उनमें से प्रत्येक के चार-चार शिष्य हैं।।३६।। ये हैं (१) श्वेत (२) श्वेत शिखण्डी (३) श्वेताश्व (४) श्वेतलोहित (५) दुन्दुभि (६) शतरूप (७) ऋचीक (८) केतुमान् (९) विशोक (१०) विकेश (११) विपाश (१२) पाशनाशन (१३) सुमुख (१४) दुर्भुख (१५) दुर्दम (१६) दुरतिक्रम (१७) सनक (१८) सनन्द (१९) सनातन (२०) ऋभु (२१) सनत्कुमार (२२) सुधामा (२३) विरजस् (२४) शंखपाद (२५) वैराजस् (२६) मेघ (२७) सारस्वत (२८) सुवाहन (२९) मेघवाह (३०) कपिल (३१) आसुरि (३२) पंचशिख (३३) वाल्कल (३४) पराशर (३५) गर्ग (३६) भार्गव (३७) अंगिरा (३८) बलबन्धु (३९) निरामित्र (४०) केतुशृंग (४१) लम्बोदर (४२) लम्ब (४३) लम्बाक्ष (४४) लम्बकेशक (४५) सर्वज्ञ (४६) समबुद्धि (४७) साध्य (४८) सर्व (४९) सुधामा (५०) काश्यप (५१) वासिष्ठ (५२) विरजस् (५३) अत्रि (५४) देवसद (५५) श्रवण (५६) शर्विष्ठक (५७) कुणि (५८) कुणिबाहु (५९) कुशरीर (६०) कुनेत्रक (६१) कश्यप (६२) उशना (६३) च्यवन (६४) बृहस्पति

सुधामा काश्यपश्चैव वासिष्ठो विरजास्तथा।
अत्रिर्देवसदश्चैव श्रवणोऽथ श्रविष्ठकः। कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः॥४४॥
कश्यपोप्युशना श्चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः। उतथ्यो वामदेवश्च महायोगो महाबलः॥४५॥
वाचःश्रवाः सुधीकश्च श्यावाश्वश्च यतीश्वरः।
हिरण्यनाभः कौशल्यो लोगाक्षिः कुथुमिस्तथा॥४६॥
सुमंतुर्बर्बरी विद्वान् कबंधः कशिकंधरः। प्लक्षो दाल्भ्यायणिश्चैव केतुमान् गोपनस्तथा॥४७॥
भल्लावी मधुपिंगश्च श्वेतकेतुस्तपोनिधिः। उशिको बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च॥४८॥
शालिहोत्रोऽग्निवेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः। छगलः कुंडकर्णश्च कुंभश्चैव प्रवाहकः॥४९॥
उलूको विद्युतश्चैव मंडूको ह्याश्वलायनः। अक्षपादः कुमारश्च उलूको वत्स एव च॥५०॥
कुशिकश्चैव गर्भश्च मित्रः कौरुष्य एव च। शिष्यास्त्वेते महात्मानः सर्वावर्तेषु योगिनाम्॥५१॥
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणाः। एते पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः॥५२॥
शिष्याः प्रशिष्याश्चैतेषां शतशोथ सहस्रशः। प्राप्य पाशुपतं योगं रुद्रलोकाय संस्थिताः॥५३॥
देवादयः पिशाचांताः पशवः परिकीर्तिताः। तेषां पतित्वात्सर्वेशो भवः पशुपति स्मृतः॥५४॥
तेन प्रणीतो रुद्रेण पशूनां पतिना द्विजाः। योगः पाशुपतो ज्ञेयः परावरविभूतये॥५५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे मनुव्यासयोगेश्वरतच्छिष्यकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

---

(६५) उतथ्य (६६) वामदेव (६७) महायोग (६८) महाबल (६९) वाचश्रवा (७०) सुधीक (७१) श्यावाश्व (७२) यतीश्वर (७३) हिरण्यनाभ (७४) कौशल्य (७५) लोगाक्षि (७६) कुथुमि (७७) सुमन्तु (७८) बर्बरी (७९) कबन्ध (८०) कशिकन्धर (८१) प्लक्ष (८२) दाल्भ्यायाणि (८३) केतुमान् (८४) गोपन (८५) भल्लावी (८६) मधुपिंग (८७) श्वेतकेतु (८८) तपोनिधि (८९) उशिक (९०) बृहदश्व (९१) देवल (९२) कवि (९३) शालिहोत्र (९४) अग्निवेश (९५) युवनाश्व (९६) शरदवसु (९७) छगल (९८) कुण्डकर्ण (९९) कुम्भ (१००) प्रवाहक (१०१) उलूक (१०२) विद्युत (१०३) मण्ड्रक (१०४) आश्वलायन (१०५) अक्षपाद (१०६) कुमार (१०७) उलूक (१०८) वत्स (१०९) कुशिक (११०) गर्भ (१११) मित्र (११२) कौरुष्य। ये सभी उच्चात्मा चार युगों के सभी चक्रों में योगियों के शिष्य थे।।३७-५०।। वे सभी अशुद्धियों से रहित लगभग ब्रह्म के समरूप और ज्ञान के मार्ग में रत होते हैं। वे पशुपति के पुजारी, महान् सिद्ध और अपने शरीर पर भस्म लपेटे रहते हैं। इन शिष्यों के सैकड़ों सहस्रों प्रशिष्य हैं। वे पाशुपत योग और रुद्र लोक को प्राप्त करते हैं। देव से लेकर पिशाच तक सभी प्राणी पशु हैं। चूँकि भगवान रुद्र सबके स्वामी हैं; अतः वे पशुपति कहलाते हैं। हे द्विजों! सभी पशुओं के स्वामी पशुपति रुद्र से विकसित हुए योग को पाशुपत योग के रूप में जाना जाता है जो कि सभी व्यक्तियों को आनन्दमयी समृद्धि देता है।।५१-५५।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में मनुव्यास योगेश्वर और उनके शिष्यों का कथन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

अष्टाङ्गयोगनिरूपणम्

सूत उवाच

संक्षेपतः प्रवक्ष्यामि योगस्थानानि सांप्रतम्। कल्पितानि शिवेनैव हिताय जगतां द्विजाः॥१॥
गलादधो वितस्त्या यन्नाभेरुपरि चोत्तमम्। योगस्थानमधो नाभेरावर्तं मध्यमं भ्रुवोः॥२॥
सर्वार्थज्ञाननिष्पत्तिरात्मनो योग उच्चते। एकाग्रता भवेच्चैव सर्वदा तत्प्रसादतः॥३॥
प्रसादस्य स्वरूपं यत्स्वसंवेद्यं द्विजोत्तमाः। वक्तुं न शक्यं ब्रह्माद्यैः क्रमशो जायते नृणाम्॥४॥
योगशब्देन निर्वाणं माहेशं पदमुच्यते। तस्य हेतुर्ऋषेर्ज्ञानं ज्ञानं तस्य प्रसादतः॥५॥
ज्ञानेन निर्दहेत्पापं निरुध्य विषयान् सदा। निरुद्धेंद्रियवृत्तेस्तु योगसिद्धिर्भविष्यति॥६॥
योगो निरोधो वृत्तेषु चित्तस्य द्विजसत्तमाः। साधनान्यष्टधा चास्य कथितानीह सिद्धये॥७॥
यमस्तु प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो नियमस्तथा। तृतीयमासनं प्रोक्तं प्राणायामस्ततः परम्॥८॥
प्रत्याहारः पंचमो वै धारणा च ततःपरा। ध्यानं सप्तममित्युक्तं समाधिस्त्वष्टमः स्मृतः॥९॥
तपस्युपरमश्चैव यम इत्यमिभधीयते। अहिंसा प्रथमो हेतुर्यमस्य यमिनां वराः॥१०॥
सत्यमस्तेयमपरं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ। नियमस्यापि वै मूलं यम एव न संशयः॥११॥

आठवाँ अध्याय

अष्टांगयोग का निरूपण

सूत बोले

अब मैं संक्षेप में योगिक मण्डलों के बारे में बताऊँगा। हे ब्राह्मणों! वे स्वयं भगवान शिव के द्वारा मनुष्यों के कल्याण के लिए बनाये गये हैं।।१।। गले से नीचे वितस्ति से ढका हुआ और नाभि के ऊपर योग का उत्तम स्थान है। नाभि के नीचे और भौहों के बीच भी योग का उत्तम स्थान है।।२।। आत्मा में उद्भूत सभी विषयों का ज्ञान ही योग है। केवल उनकी कृपा से ही मन की एकाग्रता सम्भव होती है।।३।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! उनकी कृपा व्यक्ति स्वयं प्राप्त करता है। यह ब्रह्मा आदि के द्वारा नहीं बताई जा सकती। व्यक्ति में यह धीरे-धीरे पैदा होती है।।४।। योगशब्द में साक्षात् प्रभु निवास करते हैं। ज्ञान से ही योग की प्राप्ति होती है और ज्ञान उनकी कृपा से ही मिलता है।।५।। ऐन्द्रिक गतिविधियों से विरत रहकर ज्ञान से पाप को जलाना चाहिये। इन्द्रिय निरोध से ही योग की प्राप्ति होती है।।६।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! योग मन की क्रियाओं का संयमन है। योग की प्राप्ति के आठ साधन बताये गये हैं।।७।। ये है—(१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान और (८) समाधि।।८-९।। तप से (विषयों का) त्याग ही यम है। अहिंसा यम का प्रथम लक्षण है। सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संचय न करना) अन्य हेतु हैं और नियमों के भी आधार

आत्मवत्सर्वभूतानां हितायैव प्रवर्तनम्।
अहिंसैषा समाख्याता या चात्मज्ञानसिद्धिदा॥१२॥

दृष्टं श्रुतं चानुभितं स्वानुभूतं यथार्थतः। कथनं सत्यमित्युक्तं परपीडाविवर्जितम्॥१३॥
नाश्लीलं कीर्तयेदेवं ब्राह्मणानामिति श्रुतिः। परदोषान् परिज्ञाय न वदेदिति चापरम्॥१४॥
अनादानं परस्वानामापद्यपि विचारतः। मनसा कर्मणा वाचा तदस्तेयं समासतः॥१५॥
मैथुनस्याप्रवृत्तिर्हि मनोवाक्कायकर्मणा। ब्रह्मचर्यमिति प्रोक्तं यतीनां ब्रह्मचारिणाम्॥१६॥
इह वैखानसानां च विदाराणां विशेषतः। सदाराणां गृहस्थानां तथैव च वदामि वः॥१७॥
स्वदारे विधिवत्कृत्वा निवृत्तिश्चान्यतः सदा। मनसा कर्मणा वाचा ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम्॥१८॥
मेध्या स्वनारा संभोगं कृत्वा स्नानं समाचरेत्। एवं गृहस्थो युक्तात्मा ब्रह्मचारी न संशयः॥१९॥

अहिंसाप्येवमेवैषा द्विजगुर्वग्निपूजने।
विधिना यादृशी हिंसा सात्वहिंसा इति स्मृता॥२०॥
स्त्रियः सदा परित्याज्याः संगं नैव च कारयेत्।
कुणपेषु यथा चित्त तथा कुर्याद्विचक्षणः॥२१॥

विण्मूत्रोत्सर्गकालेषु बहिर्भूमौ यथा मतिः। तथा कार्या रतौ चापि स्वदारे चान्यतः कुतः॥२२॥
अंगारसदृशी नारी घृतकुंभसमः पुमान्। तस्मान्नारीषु संसर्गं दूरतः परिवर्जयेत्॥२३॥

हैं।।१०-११।। सभी प्राणियों को अपनी ही तरह समझना और सभी प्राणियों के कल्याण में रत रहना अहिंसा है। यह आत्म-ज्ञान में सहायक है।।१२।। देखें, सुने, समझे गये और अनुभव किये गये को बिना किसी को पीड़ा पहुँचाए हुए कहना ही सत्य है।।१३।। वेदों के अनुसार ब्राह्मणों के समक्ष अश्लील न बोलना चाहिये। दूसरों का दोष जानकर भी दूसरों से नहीं कहना चाहिये यह भी श्रुति (वेदों का वचन) है।।१४।। दूसरों की वस्तु सोद्देश्य भी न चुराना, यहाँ तक कि मानसिक, भौतिक और वाचिक संकट में नहीं चुराना संक्षेप में अस्तेय है।।१५।। मानसिक, वाचिक और भौतिक रूप से मैथुन से विरत रहना ही ब्रह्मचारियों और तपस्वियों के सन्दर्भ में ब्रह्मचर्य है।।१६।। एकान्तवासियों वानप्रस्थियों और विधुरों के सम्बन्ध में भी यही उचित है। अब मैं गृहस्थों—जो कि अपनी पत्नियों के साथ रहते हैं—इनके ब्रह्मचर्य व्रत के बारे बताऊँगा।।१७।। उनके मामले में अपनी पत्नी के साथ मैथुन और अन्य स्त्रियों से मानसिक, शारीरिक और वाचिक रूप से विरत रहना ही ब्रह्मचर्य समझना चाहिये।।१८।। गृहस्थ को स्वपत्नी के साथ मैथुन करने के उपरान्त स्नान करना चाहिये। इस प्रकार का योगी गृहस्थ निश्चय ही ब्रह्मचारी है।।१९।। अहिंसा के सम्बन्ध में भी यही नियम लागू होता है। ब्राह्मण, गुरुओं और यज्ञों के सम्बन्ध में वेदों द्वारा विहित हिंसा भी अहिंसा के अन्तर्गत मानी जायेगी।।२०।। स्त्रियों से सदा दूर रहना चाहिये। उनका त्याग करना चाहिये। समझदार व्यक्ति उनको शव की भाँति समझता है।।२१।। अपनी पत्नी के साथ मैथुन करते समय वैसा ही व्यवहार रखना चाहिये जैसा भूमि पर मलमूत्र त्याग करते समय होता है। इसके अलावा कोई दूसरा व्यवहार नहीं होना चाहिये।।२२।। स्त्री जलता हुआ अंगारा है

भोगेन तृप्तिर्नैवास्ति विषयाणां विचारतः। तस्माद्विरागः कर्तव्यो मनसा कर्मणा गिरा॥२४॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥२५॥
तस्मात्त्यागः सदा कार्यस्त्वमृतत्वाय योगिना। अविरक्तो यतो मर्त्यो नानायोनिषु वर्तते॥२६॥
त्यागेनैवामृतत्वं हि श्रुतिस्मृतिविदां वराः। कर्मणा प्रजया नास्ति द्रव्येण द्विजसत्तमाः॥२७॥
तस्माद्विरागः कर्तव्यो मनोवाक्कायकर्मणा। ऋतौ ऋतौ निवृत्तिस्तु ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम्॥२८॥
यमाः संक्षेपतः प्रोक्ता नियमांश्च वदामि वः। शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः॥२९॥
व्रतोपवासमौनं च स्नानं च नियमा दश। नियमः स्यादनीहा च शौचं तुष्टिस्तपस्तथा॥३०॥
जपः शिवप्रणीधानं पद्मकाद्यं तथासनम्। बाह्यमाभ्यंतरं प्रोक्तं शौचमाभ्यंतरं वरम्॥३१॥
बाह्यशौचेन युक्तः संस्तथा चाभ्यंतरं चरेत्। आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं कर्तव्यं शिवपूजकैः॥३२॥
स्नानं विधानतः सम्यक् पश्चादाभ्यंतरं चरेत्। आदेहांतं मृदालिप्य तीर्थतोयेषु सर्वदा॥३३॥
अवगाह्यापि मलिनो ह्यंतश्शौचविवर्जितः।
शैवला झषका मत्स्याः सत्त्वा मत्स्योपजीविनः॥३४॥
सदावगाह्यः सलिले विशुद्धाः किं द्विजोत्तमाः। तस्मादाभ्यंतरं शौचं सदा कार्यं विधानतः॥३५॥

और पुरुष घी का घड़ा। इसलिये उसे सर्वदा नारी सम्पर्क से बचना चाहिये।।२३।। यदि हम विचार करें तो काम सुख में कोई संतुष्टि नहीं है। अतः मानसिक, शारीरिक और वाचिक रूप से विरक्त होकर व्यवहार करना चाहिये।।२४।। मैथुन से काम वासना शान्त नहीं होती। जैसे आग में घी डालने से आग बुझने के बजाय बढ़ जाती है।।२५।। अतः योगियों को अमृतत्व की प्राप्ति हेतु हमेशा त्याग करना चाहिये क्योंकि जो विरक्त नहीं है वह बारबार विभिन्न योनियों में जन्म लेता रहता है।।२६।। हे श्रुति स्मृति के श्रेष्ठ जानकारों! त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है न कि कर्मकाण्डों और पूजा सामग्री के दान देने से।।२७।। अतः मनुष्यों को मानसिक, वाचिक और भौतिक विरक्ति का अभ्यास करना चाहिये। समयानुसार निवृत्ति ही ब्रह्मचर्य है।।२८।। इस प्रकार संक्षेप में मैंने यमों (निषेध) के बारे में बताया। अब मैं नियमों (विधि) के बारे में बताऊँगा। ये संख्या में दस है—(१) शौच (स्वच्छता) (२) इज्या (बलि) (३) तप (४) दान (५) स्वाध्याय (६) प्रजनन अंगों का निग्रह (७) व्रत (८) उपवास (९) मौन (१०) स्नान। कुछ लोगों के अनुसार नियम है (१) अनीह अर्थात् लालच का न होना (२) शौच (३) संतोष (४) तप (५) शिव मन्त्र का जाप (६) शिव का ध्यान और (७) पद्मासन है। इनमें शौच दो प्रकार का होता है। बाह्य और आन्तरिक। इसमें आन्तरिक बाह्य से श्रेष्ठ होता है।।२९-३१।। बाह्य शुचिता वाले को आन्तरिक शुचिता का भी अभ्यास करना चाहिये। विधि के अनुसार पवित्र स्नान करना चाहिये। यह तीन प्रकार का होता है—(१) आग्नेय (२) वारुण और (३) ब्राह्म। बाह्य स्नान करने के उपरान्त आन्तरिक स्नान का अभ्यास करना चाहिये। आन्तरिक शुचिता से रहित व्यक्ति सारे शरीर पर मिट्टी का लेप करके तीर्थ के जलों से स्नान करके भी अपवित्र है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! सेवार, मतार, मछलियाँ और मछलियों पर आश्रित प्राणी हमेशा जल में रहते है किन्तु क्या वे पवित्र हैं? इसलिये विधि के अनुसार आन्तरिक

आत्मज्ञानांभसि स्नात्वा सकृदालिप्य भावतः। सुवैराग्यमृदा शुद्धः शौचमेवं प्रकीर्तितम्॥३६॥
शुद्धस्य सिद्धयो दृष्टा नैवाशुद्धस्य सिद्धयः। न्यायेनागतया वृत्त्या संतुष्टो यस्तु सुव्रतः॥३७॥
संतोषस्तस्य सततमतीतार्थस्य चास्मृतिः। चांद्रायणादिनिपुणस्तपांसि सुशुभानि च॥३८॥
स्वाध्यायस्तु जपः प्रोक्तः प्रणवस्य त्रिधा स्मृतः।
वाचिकश्चाधमो मुख्य उपांशुश्चोत्तमोत्तमः॥३९॥
मानसे विस्तरेणैव कल्पे पंचाक्षरे स्मृतः। तथा शिवप्रणीधानं मनोवाक्कायकर्मणा॥४०॥
शिवज्ञानं गुरोर्भक्तिरचला सुप्रतिष्ठिता। निग्रहो ह्यपहृत्याशु प्रसक्तानींद्रियाणि च॥४१॥
विषयेषु समासेन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः। चित्तस्य धारणा प्रोक्ता स्थानबंधः समासतः॥४२॥
तस्याः स्वास्थ्येन ध्यानं च समाधिश्च विचारतः। तत्रैकचित्तता ध्यानं प्रत्ययांतरवर्जितम्॥४३॥
चिद्भासमर्थमात्रस्य देहशून्यमिव स्थितम्। समाधिः सर्वहेतुश्च प्राणायाम इति स्मृतः॥४४॥
प्राणः स्वदेहजो वायुर्यमस्तस्य निरोधनम्। त्रिधा द्विजैर्यमः प्रोक्तो मंदो मध्योत्तमस्तथा॥४५॥
प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायामः प्रकीर्तितः। प्राणायामस्य मानं तु मात्राद्वादशकं स्मृतम्॥४६॥
नीचो द्वादशमात्रस्तु उद्घातो द्वादशः स्मृतः। मध्यमस्तु द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रकः॥४७॥
मुख्यस्तु यस्त्रिरुद्घातः षट्त्रिंशन्मात्र उच्यते। प्रस्वेदकंपनोत्थानजनकश्च यथाक्रमम्॥४८॥

शुचिता का अभ्यास करना चाहिये।।३२-३५।। आन्तरिक शुचिता इस प्रकार बताई गयी है। व्यक्ति को विरक्ति रूपी पवित्र राख श्रद्धा से लपेटनी चाहिये और आत्मज्ञानरूपी जल में स्नान करना चाहिये। इस प्रकार आन्तरिक शुचिता प्राप्त की जा सकती है।।३६।। सिद्धियों की प्राप्ति शुद्ध व्यक्ति को हो सकती है, अशुद्ध व्यक्ति को नहीं। उचित माध्यम से प्राप्त जीविका से सन्तुष्टि प्राप्त करने वाला व्रती सन्तोषी है। वह अपनी आवश्यकताओं से चिन्तित नहीं रहता। चान्द्रायण आदि व्रतों का विधि विधान से पालन ही तप है। स्वाध्याय ओंकार मंत्र का तीन तरह से पालन करना है—(१) वाचिक, अर्थात् मुख से जाप करना है। यह तीनों में निम्नतम कोटि का है। (२) उपांशु मन्द मन्द जाप। यह वाचिक से श्रेष्ठ है। (३) मानस जिसमें कण्ठ से ध्वनि नहीं निकलती और जो सर्वोत्तम है।।३७-३९।। मन में विस्तार से पंचाक्षर का स्मरण करना चाहिये। मानसिक शारीरिक और वाणी से शिव प्रणिधान, गुरु पर अटूट श्रद्धा, ज्ञानेन्द्रियों का सांसारिक सुख के विषयों से निवारण, संक्षेप में यही प्रत्याहार है। चित्त का उचित स्थान पर स्थिरीकरण धारणा है। धारणा का सामान्य हो जाना ही ध्यान है। यदि यह विचार के साथ किया जाये तो समाधि है। समाधि में चित्त और ध्यान का केन्द्रीकरण है। इसमें बाहरी वस्तु पर विचार वर्जित है।।४०-४३।। समाधि में मात्र उच्चतम चेतना रह जाती है मानो यह शरीर से रहित शून्य मात्र में हो। प्राणायाम ध्यान समाधि आदि का मूल है।।४४।। शरीर के अन्दर की वायु प्राण है। इसको रोकता (निरोध) यम है। ब्राह्मणों ने इसको तीन प्रकार का बताया है। मन्द, मध्य और उत्तम।।४५।। प्राण और अपान का निरोध प्राणायाम है। प्राणायाम का मान बारह मात्राओं का होता है।।४६।। मन्द बारह मात्राओं (क्षणों) का होता है जो एक उद्घात के बराबर होता है। मध्य दो उद्घातों और चौबीस मात्राओं का होता है। उत्तम तीन उद्घातों और

आनंदोद्भवयोगार्थं निद्राघूर्णिस्तथैव च। रोमांचध्वनिसंविद्धस्वांगमोटनकंपनम् ॥४९॥
भ्रमणं स्वेदजन्या सा संविन्मूर्च्छा भवेद्यदा। तदोत्तमोत्तमः प्रोक्तः प्राणायामः सुशोभनः॥५०॥
सगर्भोऽगर्भ इत्युक्तः सजपो विजपः क्रमात्। इभो वा शरभो वापि दुराधर्षोऽथ केसरी॥५१॥
गृहीतो दम्यमानस्तु यथास्वस्थस्तु जायते। तथा समीरणोऽस्वस्थो दुराधर्षश्च योगिनाम्॥५२॥
न्यायतः सेव्यमानस्तु स एवं स्वस्थतां व्रजेत्। यथैव मृगराड् नागः शरभो वापि दुर्मदः॥५३॥
कालांतरवशाद्योगाद्दम्यते परमादरात्। तथा परिचयात्स्वास्थ्यं समत्वं चाधिगच्छति॥५४॥
योगादभ्यसते यस्तु व्यसनं नैव जायते। एवमभ्यस्यमानस्तु मुनेः प्राणो विनिर्दहेत्॥५५॥
मनोवाक्कायजान् दोषान् कर्तुर्देहं च रक्षति। संयुक्तस्य तथा सम्यक्प्राणायामेन धीमतः॥५६॥

दोषात्तस्माच्च नश्यंति निश्वासस्तेन जीर्यते।
प्राणायामेन सिध्यंति दिव्याः शांत्यादयः क्रमात्॥५७॥

शांतिः प्रशांतिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च तथा क्रमात्। आदौ चतुष्टस्येह प्रोक्ता शांतिरिह द्विजाः॥५८॥
सहजागंतुकानां च पापानां शांतिरुच्यते। प्रशांतिः संयमः सम्यग्वचसामिति संस्मृता॥५९॥
प्रकाशो दीप्तिरित्युक्तः सर्वतः सर्वदा द्विजाः। सर्वेंद्रियप्रसादस्तु बुद्धेर्वै मरुतामपि॥६०॥
प्रसाद इति संप्रोक्तः स्वांते त्विह चतुष्टये। प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च॥६१॥
नागः कूर्मस्तु कृकलो देवदत्तो धनंजयः। एतेषां यः प्रसादस्तु मरुतामिति संस्मृतः॥६२॥

छत्तीस मात्राओं का होता है। तीनों तरह के प्राणायाम में क्रमशः पसीना आना, कम्पन और उत्थान होता है। जब प्राणायाम में निद्रा, चक्कर आना, तरह तरह की ध्वनि से रोमांच हो जाना शरीर के अंगों में दबाव और कम्पन आदि हो तो यह उत्तम लक्षण है क्योंकि यह आनन्द का प्रारम्भ है।।४७-५०।। प्राणायाम सगर्भ-अथवा अगर्भ दो तरह का होता है। जब जप के साथ किया जाये तो यह सगर्भ होता है और जब बिना जप के किया जाये तो अगर्भ होता है। यह हाथी की तरह या शरभ (आठ पैरो वाला पशु) की तरह या सिंह की तरह होता है। पकड़कर पालतू कर दिये जाने पर यह आज्ञाकारी हो जाता है उसी तरह वायु जो कि स्वभाव से अस्थिर और दुर्दम्य होता है योगियों के लिये सामान्य हो जाता है। जैसे हाथी शरभ और सिंह भयंकर होते हुए भी थोड़े समय में प्रशिक्षण से पालतू बन जाते हैं वैसे वायु भी निरन्तर अभ्यास से सामान्य और संतुलित हो जाता है।।५१-५४।। योगाभ्यास करने वाले पर कोई संकट नहीं रहता। समुचित अभ्यास से प्राण (वायु) मन, वाणी और शरीर के दोषों को दूर करके साधक के शरीर को सुरक्षित रखता है। इस प्रकार प्राणायाम के अभ्यास से दोषों का नाश होता है। अभ्यासी श्वास तक पर नियन्त्रण कर लेता है और दिव्य शान्ति आदि गुण प्राप्त होते हैं।।५५-५७।। प्राणायाम के शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद चार गुण होते हैं। हे ब्राह्मणों! इनको इस प्रकार समझा जा सकता है। शान्ति का अर्थ है पापों का दमन चाहे वे जन्मजात हों या प्राप्त किये हुऐ (आगन्तुक)। प्रशान्ति वाणी पर पूर्ण निरोध है। हे ब्राह्मणों! हर समय और सब तरफ की चमक दीप्ति कहलाती है और मन की स्पष्टता प्रसाद है। प्रसाद चार तरह का होता है। ये हैं ज्ञानेन्द्रियों, बुद्धि और मारुत के प्रसाद। मारुत, प्राण, अपान, समान,

प्रयाणं कुरुते तस्माद्वायुः प्राण इति स्मृतः। अपानयत्यपानस्तु आहारादीन् क्रमेण च॥६३॥
व्यानो व्यानामयत्यंगं व्याध्यादीनां प्रकोपकः। उद्वेजयति मर्माणि उदानोऽयं प्रकीर्तितः॥६४॥
समं नयति गात्राणि समानः पंच वायवः। उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने तु सः॥६५॥
कृकलः क्षुतकायैव देवदत्तो विजृंभणे। धनंजयो महाघोषः सर्वगः स मृतेऽपि हि॥६६॥
इति यो दशवायूनां प्राणायामेन सिध्यति। प्रसादोऽस्य तुरीया तु संज्ञा विप्राश्चतुष्टये॥६७॥
विस्वरस्तु महान् प्रज्ञा मनो ब्रह्माचितिः स्मृतिः। ख्यातिः संवित्ततः पश्चादीश्वरो मतिरेव व॥६८॥
बुद्धेरेताः द्विजाः संज्ञा महतः परिकीर्तिताः। अस्या बुद्धेः प्रसादस्तु प्राणायामेन सिद्ध्यति॥६९॥
विस्वरो विस्वरीभावो द्वंद्वानां मुनिसत्तमाः। अग्रजः सर्वतत्त्वानां महान्यः परिमाणतः॥७०॥
यत्प्रमाणगुहा प्रज्ञा मनस्तु मनुते यतः। बृहत्वाद्बृंहणत्वाच्च ब्रह्मा ब्रह्मविदांवराः॥७१॥
सर्वकर्माणि भोगार्थं यच्चिनोति चितिः स्मृता। स्मरते यत्स्मृतिः सर्वं संविद्वै विंदते यतः॥७२॥
ख्यायते यत्त्विति ख्यातिर्ज्ञानादिभिरनेकशः। सर्वतत्त्वाधिपः सर्वं विजानाति यदीश्वरः॥७३॥
मनुते मन्यते यस्मान्मतिर्मतिमतांवराः। अर्थं बोधयते यच्च बुद्ध्यते बुद्धिरुच्यते॥७४॥
अस्या बुद्धेः प्रसादस्तु प्राणायामेन सिद्ध्यति। दोषान्विनिर्दहेत्सर्वान् प्राणायामादसौ यमी॥७५॥

उदान और व्यान हैं। इन्हें क्रमशः नाग, कर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय भी कहते हैं। इन सबकी स्पष्टता ही प्रसाद हैं।।५८-६२।। जो शरीर से प्रयाण करती है वह वायु प्राण कही जाती है। जो आहार और पान आदि को नीचे लाती है वह अपान कही जाती है। जो (वायु) शरीर के झुकने के योग्य बनाती है वह व्यान होती है। यह रोगों को भी उत्तेजित करती है। शरीर के मर्म स्थानों को उत्तेजित और प्रभावित करने वाली वायु उदान है और सब अंगों को सामान्य करने वाली वायु समान है। नाग का कार्य उद्गार है और कर्म का उन्मीलन है। कृकल छींकने का कार्य करता है और देवदत्त जम्हाई का कार्य करता है जबकि धनञ्जय घोष (तीव्र ध्वनि) करता है। इन दसों वायुओं का नियन्त्रण ही प्रसाद है। हे ब्राह्मणों! चार गुणों में प्रसाद चौथा है।।६३-६७।। हे ब्राह्मणों! बुद्धि के ये पर्यायवाची है—विस्वर, महत्, प्रज्ञा, मानस, ब्रह्मा, चिति, स्मृति, ख्याति, संवित, ईश्वर और मति। प्राणायाम से बुद्धि का प्रसाद प्राप्त होता है।।६८-६९।। हे श्रेष्ठ मुनियों! यह (बुद्धि) दो विपरीत भावों को मिलाती है। अतः इसे विस्वर कहते हैं। यह सभी तत्त्वों में अग्रणी है। अतः महत् कही जाती है। यह प्रज्ञा कही जाती है क्योंकि यह ज्ञान का भण्डार है। यह सोचती है इसलिये मानस कही जाती है। यह बड़ी है और फैलती है इसलिये ब्रह्मा कही जाती है। हे श्रेष्ठ ब्रह्मविदों! यह आनन्द के लिये सभी गतिविधियों को एकत्र करती है, इसलिये इसे चिति कहते हें। यह वस्तुओं को स्मरण रखती है इसलिये इसे स्मृति कहते हैं। चूँकि इसे सब जगह ज्ञान के कारण जानी जाती है इसलिये इसे ख्याति कहते हैं। चूँकि यह सब कुछ प्राप्त करती है इसलिये इसे संवित कहते हैं। इसे ईश्वर कहते है क्योंकि यह सभी तत्त्वों की स्वामिनी है। हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ मुनियों! यह मति कही जाती है क्योंकि यह विषयगत और विषयीगत विचारों का उपकरण है। क्योंकि यह सभी वस्तुओं का बोध कराती है और स्वयं बोधवती है अतः यह बुद्धि कही जाती है।।७०-७४।। प्राणायाम से ही बुद्धि का

पातकं धारणाभिस्तु प्रत्याहारेण निर्दहेत्। विषयान्विषवद्ध्यात्वा ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥७६॥
समाधिना यतिश्रेष्ठाः प्रज्ञावृद्धिं विवर्धयेत्।
स्थानं लब्ध्वैव कुर्वीत योगाष्टांगानि वै क्रमात्॥७७॥
लब्ध्वासनानि विधिवद्योगविद्ध्यर्थमात्मवित्। आदेशकाले योगस्य दर्शनं हि न विद्यते॥७८॥
अग्न्यभ्यासे जले वापि शुष्कपर्णचये तथा। जंतुव्याप्तेश्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे॥७९॥
सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसंचये। अशुभे दुर्जनाक्रांते मशकादिसमन्विते॥८०॥
नाचरेद्देहबाधायां दौर्मनस्यादिसंभवे। सुगुप्ते तु शुभे रम्ये गुहायां पर्वतस्य तु॥८१॥
भवक्षेत्रे सुगुप्ते वा भवारामे वनेपि वा। गृहे तु सुशुभे देशे विजने जंतुवर्जिते॥८२॥
अत्यंतनिर्मले सम्यक् सुप्रलिप्ते विचित्रिते। दर्पणोदरसंकाशे कृष्णागरुसुधूपिते॥८३॥
नानापुष्पसमाकीर्णे वितानोपरि शोभिते। फलपल्लवमूलाढ्ये कुशपुष्पसमन्विते॥८४॥
समासनस्थो योगांगान्यभ्यसेद्धृषितः स्वयम्। प्रणिपत्य गुरुं पश्चाद्भवं देवीं विनायकम्॥८५॥
योगीश्वरान् सशिष्यांश्च योगं युंजीत योगवित्।
आसनं स्वस्तिकं बध्वा पद्ममार्धासनं तु वा॥८६॥
समजानुस्तथा धीमानेकजानुरथापि वा। समं दृढासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ॥८७॥

प्रसाद सिद्ध होता है। प्राणायाम से यमी सभी दोषों को जला देता है।।७५।। प्रत्याहार और धारणा से व्यक्ति सभी पापों को जला देता है। (सांसारिक) विषयों को विष के समान मानते हुए ध्यानी अनीश्वरी गुणों को जला देता है।।७६।। हे तपस्वियों! समाधि से बुद्धि की क्षमता बढ़ानी चाहिये। योग के आठों अंगों का अभ्यास (समुचित) स्थान की प्राप्ति के बाद ही क्रम से करना चाहिये।।७७।। आत्मा के जानने वाले को योगिक सिद्धियों के लिये आसनों को करना चाहिये। यदि समय और स्थान उचित न हो तो योग की झलक मात्र भी नहीं प्राप्त की जा सकती।।७८।। अग्नि के पास, जल में, सूखी पत्तियों के ढेर पर, प्राणियों से व्याप्त, श्मशान में, जर्जर, गोशाला में, चौराहे पर, कोलाहलयुक्त स्थान में, भय उत्पन्न करने वाली जगह में, मठ में, चींटी की बाँबी के पास, अशुभ स्थान पर, दुष्टों से आक्रान्त स्थान पर और मच्छरों से युक्त स्थानों पर योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। जब शरीर रोगग्रस्त हो या मन दुखी हो तो भी योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। साधक को प्रसन्न मन से योगांगों का अभ्यास करना चाहिये। स्थान सुरक्षित, शुभ सुखद होना चाहिये या पर्वत की गुफा या शिव का मन्दिर या सुरक्षित उद्यान या घर का ही कोई स्थान जो मनुष्यों और पशुओं से रहित हो। स्थान स्वच्छ, गोबर से लिपा हुआ और अच्छे ढंग से सजा हुआ और दर्पण की तरह साफ होना चाहिये। चारों तरफ पुष्प बिखरे होने चाहिये। वह स्थान नाना प्रकार के पुष्पों, पल्लवों, फलों, मूलों और कुश घास से बने हुए छत से ढका होना चाहिये। साधक को सन्तुलित आसन में बैठना चाहिये। साधक को गुरु, भगवान शिव, देवी और विनायक एवं योगी गुरुओं और उनके शिष्यों को प्रणाम करना चाहिये। उसे (साधक को) स्वस्तिक, पद्मासन या अर्धासन में बैठना चाहिये।।७९-८६।। उसे घुटनों को एक ही सीध में करके या एक घुटना टेक कर बैठना चाहिये। जिस मुद्रा में भी बैठें मुँह और आँखे बन्द रखनी चाहिये। सीना आगे की ओर निकला होना चाहिये। जननांग एड़ियों से ढका होना चाहिये। सिर थोड़ा उठा होना चाहिये और दंत पंक्तियाँ एक दूरे को स्पर्श नहीं करनी चाहिये। उसे

संवृतास्योपबद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रतः। पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः॥८८॥
किंचिदुन्नामितशिरा दंतैर्दंतान्न संस्पृशेत्। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥८९॥
तमः प्रच्छाद्य रजसा रजः सत्त्वेन छादयेत्।
ततः सत्त्वस्थितो भूत्वा शिवध्यान समभ्यसेत्॥९०॥
ॐकारवाच्यं परमं शुद्धं दीपशिखाकृतिम्। ध्यायेद्वै पुंडरीकस्य कर्णिकायां समाहितः॥९१॥
नाभेरधस्ताद्वा विद्वान् ध्यात्वा कमलमुत्तमम्। त्र्यंगुले चाष्टकोणं वा पंचकोणमथापि वा॥९२॥
त्रिकोणं च तथाग्नेयं सौम्यं सौरं स्वशक्तिभिः। सौरं सौम्यं तथाग्नेयमथवानुक्रमेण तु॥९३॥
आग्नेयं च ततः सौरं सौम्यमेवं विधानतः। अग्नेरधः प्रकल्प्यैवं धर्मादीनां चतुष्टयम्॥९४॥
गुणत्रयं क्रमेणैव मंडलोपरि भावयेत्। सत्त्वस्थं चिंतयेद्रुद्रं स्वशक्त्या परिमंडितम्॥९५॥
नाभौ वाथ गले वापिभ्रूमध्ये वा यथाविधि।
ललाटफलिकायां वा मूर्ध्नि ध्यानं समाचरेत्॥९६॥
द्विदले षोडशारे वा द्वादशारे क्रमेण तु। दशारे वा षडस्त्रे वा चतुरस्त्रे स्मरेच्छिवम्॥९७॥
कनकाभे तथांगारसन्निभे सुसितेऽपि वा। द्वादशादित्यसंकाशे चंद्रबिंबसमेऽपि वा॥९८॥
विद्युत्कोटिनिभे स्थाने चिंतयेत्परमेश्वरम्। अग्निवर्णेऽथ वा विद्युद्वलयाभे समाहितः॥९९॥
वज्रकोटिप्रभे स्थाने पद्मरागनिभेऽपि वा।
नीललोहितबिंबे वा योगी ध्यानं समभ्यसेत्॥१००॥

इधर-उधर नहीं देखना चाहिये। ध्यान नासिका के कोने पर केन्द्रित करना चाहिये। तम को रज से, रज को सत्त्व से टारकर सत्त्व में स्थित होकर शिव का ध्यान करना चाहिये।।८७-९०।। दीपशिखा की आकृति के समान परम पवित्र और कमल की पंखड़ियों में स्थित प्रभु का ध्यान करना चाहिये और ओंकार का जाप करना चाहिये।।९१।। साधक को नाभि के तीन अंगुल के नीचे उत्तम कमल का त्रिकोण में अष्टकोण में अथवा पंचकोण में ध्यान करना चाहिये। साधक को अग्नि, चन्द्र और सूर्य को एक साथ या क्रम से ध्यान करना चाहिये। क्रम कुछ भी हो सकता है। पहले सूर्य फिर चन्द्र और फिर अग्नि या पहले अग्नि तब सूर्य और तत्पश्चात् चन्द्र जैसा शास्त्रों में निर्दिष्ट हो। अग्नि के नीचे धर्मादि चारों पुरुषार्थों की कल्पना करते हुए मण्डल के ऊपर तीनों गुणों का ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् सत्त्व गुण में स्थित शक्ति से शोभित रुद्र का ध्यान करना चाहिये।।९२-९५।। उसे (साधक को) नाभि पर या कण्ठ में या दोनों भौहों के मध्य या माथे पर, सिर पर शास्त्रों के अनुसार ध्यान लगाना चाहिये।।९६।। उसे क्रमशः दो, सोलह, बारह, दस, छह या चार पंखुड़ियों वाले कमल पर बैठे शिव का ध्यान करना चाहिये।।९७।। उनका ध्यान सोने के समान और अंगारे के समान चमकदार स्थान में अथवा १२ सूर्यों के समान प्रकाशमान स्थान में अथवा चन्द्रमा के समान स्थान में करना चाहिये। परमेश्वर का ध्यान कोटि-कोटि विद्युत के समान अथवा आग के समान चमकदार अथवा विद्युतचक्र में समाहित स्थान के समान अथवा करोड़ों हीरों के समान अथवा पद्मराग मणि के समान चमकदार स्थान में स्थित

महेश्वरं हृदि ध्यायेन्नाभिपद्मे सदाशिवम्। चंद्रचूडं ललाटे तु भ्रूमध्ये शंकरं स्वयम्॥१०१॥
दिव्ये च शाश्वतस्थाने शिवध्यानं समभ्यसेत्। निर्मलं निष्कलं ब्रह्म सुशांतं ज्ञानरूपिणम्॥१०२॥
अलक्षणमनिर्देश्यमणोरल्पतरं शुभम्। निरालंबमतर्क्यं च विनाशोत्पत्तिवर्जितम्॥१०३॥
कैवल्यं चैव निर्वाणं निःश्रेयसमनूपमम्। अमृतं चाक्षरं ब्रह्म ह्यपुनर्भवमद्भुतम्॥१०४॥
महानंदं परानंदं योगानंदमनामयम्। हेयोपादेयरहितं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं शिवम्॥१०५॥
स्वयंवेद्यमवेद्यं तच्छिवं ज्ञानमयं परम्। अतींद्रियमनाभासं परं तत्त्वं परात्परम्॥१०६॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं ध्यानगम्यं विचारतः। अद्वयं तमसश्चैव परस्तात्संस्थितं परम्॥१०७॥
मनस्येवं महादेवं हृत्पद्मे वापि चिंतयेत्।
नाभौ सदाशिवं चापि सर्वदेवात्मकं विभुम्॥१०८॥
देहमध्ये शिवं देवं शुद्धज्ञानमयं विभुम्। कन्यसेनैव मार्गेण चोद्घातेनापि शंकरम्॥१०९॥
क्रमशः कन्यसेनैव मध्यमेनापि सुव्रतः। उत्तमेनापि वै विद्वान् कुंभकेन समभ्यसेत्॥११०॥
द्वात्रिंशद्रेचयेद्धीमान् हृदि नाभौ समाहितः।
रेचकं पूरकं त्यक्त्वा कुंभकं च द्विजोत्तमाः॥१११॥
साक्षात्समरसेनैव देहमध्ये स्मरेच्छिवम्। एकीभावं समेत्यैवं तत्र यद्रससंभवम्॥११२॥
आनंदं ब्रह्मणो विद्वान् साक्षात्समरसे स्थितः।
धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादश धारणम्॥११३॥

के रूप में करना चाहिये।।९८-१००।। हृदय में महेश्वर, कमलवत् नाभि में सदाशिव के रूप में, माथे पर चन्द्रचूड़ के रूप में तथा भौंहों के मध्य में स्वयं शंकर के रूप में (प्रभु का) ध्यान करना चाहिये।।१०१।। दिव्य और शाश्वत स्थान में शिव के ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। शिव का ध्यान इन रूपों में करना चाहिये—जो निर्मल, निष्कलंक, शान्त ब्रह्म और ज्ञानवान है। जो समस्त लक्षणों से रहित है जिसका कोई निर्देश नहीं किया जा सकता, जो अणु से भी छोटा है, जो शुभ है। जो निरालम्ब (बिना सहारे के) है और जो तर्क से परे है। जो उत्पत्ति और नाश से रहित है। जो साक्षात् कैवल्य (मोक्ष) जो निःश्रेयस है तथा अनुपम है और अविनाशी तथा अजन्मा है। जो अमृत है तथा अक्षर है (जिसका क्षरण नहीं होता)। जो महानन्द, परमानन्द एवं योगानन्द और रोगरहित है। जो गुण और दोष से रहित है। जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। जो स्वयं जानने योग्य है और जानने योग्य नहीं भी है। जो ज्ञानमय है। जो इन्द्रियों से परे है, अनाभासी है और परमतत्त्व है। जो किसी भी उपाधि से रहित है और जो केवल ध्यान से प्राप्त किया जा सकता है। जो अद्वैत है और तमस से परे है। ऐसे शिव का ध्यान साधक को नाभि में सदाशिव के समरूप करना चाहिये।।१०२-१०८।। साधक को शिव का ध्यान के मध्य में शुद्ध ज्ञान के रूप में सुषुम्ना नाड़ी से अथवा कुम्भक से करना चाहिये। तत्पश्चात् हृदय और नाभि में ध्यान केन्द्रित करते हुए बत्तीस रेचक करना चाहिये। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! तत्पश्चात् रेचक और पूरक को छोड़कर मात्र कुम्भक से शरीर के मध्य में शिव का ध्यान करना चाहिये।।१०९-१११।। देह के मध्य में उपयुक्त सन्तुलन की अवस्था में भगवान शिव से एकाकार होकर (साधक) ब्रह्म के आनन्द का अनुभव करेगा। बारह

ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते। अथवा ज्ञानिनां विप्राः संपर्कादेव जायते॥११४॥
प्रयत्नाद्वा तयोस्तुल्य चिराद्वा ह्यचिराद्विजाः। योगांतरायास्तस्याथ जायंते युंजतः पुनः॥११५॥
नश्यंत्यभ्यासतस्तेऽपि प्रणिधानेन वै गुरोः॥११६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽष्टांगयोगनिरूपणं नामाऽष्टमोध्यायः॥८॥

प्राणायाम एक धारणा के बराबर होता है। बारह धारणा एक ध्यान के बराबर होते हैं। हे ब्राह्मणों! ज्ञानी पुरुषों के सम्पर्क से अथवा स्वयं अभ्यास से धीरे-धीरे योगिक सिद्धि होती हैं। योग के मार्ग में बाधाएँ भी आती हैं किन्तु निरन्तर अभ्यास से और गुरु के मार्ग-दर्शन से बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं।।११२-११६।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में अष्टांगयोग का निरूपण नामक आठवाँ अध्याय समाप्त॥८॥

नवमोऽध्यायः

योगान्तरायकथनम्

सूत उवाच

आलस्यं प्रथमं पश्चाद्व्याधिपीडा प्रजायते। प्रमादः संशयस्थाने चित्तस्येहानवस्थितिः॥१॥
अश्रद्धादर्शनं भ्रांतिर्दुःखं च त्रिविधं ततः। दौर्मनस्यमयोग्येषु विषयेषु च योगता॥२॥
दशधाभिप्रजायंते मुनेर्योगांतरायकाः। आलस्यं चाप्रवृत्तिश्च गुरुत्वात्कायचित्तयोः॥३॥
व्याधयो धातुवैषम्यात् कर्मजा दोषजास्तथा। प्रमादस्तु समाधेस्तु साधनानामभावनम्॥४॥
इदं वेत्युभयस्पृक्तं विज्ञानं स्थानसंशयः। अनवस्थितचित्तत्वमप्रतिष्ठा हि योगिनः॥५॥
लब्धायामपि भूमौ च चित्तस्य भवबंधनात्। अश्रद्धाभावरहिता वृत्तिर्वै साधनेषु च॥६॥
साध्ये चित्तस्य हि गुरौ ज्ञानाचारशिवादिषु। विपर्ययज्ञानमिति भ्रांतिदर्शनमुच्यते॥७॥
अनात्मन्यात्मविज्ञानमज्ञानात्तस्य संनिधौ। दुःखमाध्यात्मिकं प्रोक्तं तथा चैवाधिभौतिकम्॥८॥
आधिदैविकमित्युक्तं त्रिविधं सहजं पुनः। इच्छाविघातात्संक्षोभश्चेतसस्तदुदाहृतम्॥९॥
दौर्मनस्यं निरोद्धव्यं वैराग्येण परेण तु। तमसा रजसा चैव संस्पृष्टं दुर्मनः स्मृतम्॥१०॥
तदा मनसि संजातं दौर्मनस्यमिति स्मृतम्। हठात्स्वीकरणं कृत्वा योग्यायोग्यविवेकतः॥११॥

नवाँ अध्याय

योग में विघ्न का कथन

सूत बोले

आलस्य, व्याधि (रोग), उपेक्षा, संशय, चित्त की चंचलता, अश्रद्धा, भ्रान्ति, दुःख, निराशा और सांसारिक विषयों में लिप्तता योगाभ्यास की ये दस बाधाएँ हैं। आलस्य शरीर और बुद्धि के भारी होने के कारण कार्य से दूर रहने की अवस्था है।।१-३।। शरीर को बनाने वाले तत्त्वों के असन्तुलन से व्याधि होती है। ये पूर्व के दोषों के कारण या कर्म से होती है। उपेक्षा योग के साधनों के अभाव से पैदा होती है।।४।। यह या वह इस तरह का द्वैत भाव ही संशय है। मन को स्थिर करने की अक्षमता ही चित्त की चंचलता है। (योग की) भूमि प्राप्त हो जाने पर भी सांसारिक विषयों में लिप्तता से मन अस्थिर बना रहता है। योगिक साधनों के प्रति भावना का अभाव ही अश्रद्धा है।।५-६।। अपने लक्ष्य, गुरु, ज्ञान, सदाचार, शिव आदि के बारे में विपरीत ज्ञान ही भ्रान्ति है। दुःख आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीन तरह का होता है। यह इच्छाओं के नाश के कारण मानसिक क्षोभ से भी होता है।।७-९।। जब मन तमस् या रजस् से प्रभावित होकर पीड़ित होता है जो उस अवस्था को निराशा कहते है। भौतिक वस्तुओं में कठोर विरक्ति से इससे छुटकारा मिल सकता है। जब व्यक्ति क्या करने योग्य है क्या नहीं है इसमें अन्तर करने की क्षमता होते हुए भी व्यक्ति से हठपूर्वक सांसारिक विषयों में चिपटा रहे तो उसका चित्त चंचल होता है। ये सब योगी की

विषयेषु विचित्रेषु जंतोर्विषयलोलता।
अंतराया इति ख्याता योगस्यैते हि योगिनाम्॥१२॥
अत्यंतोत्साहयुक्तस्य नश्यंति न च संशयः। प्रनष्टेष्वंतरायेषु द्विजाः पश्चाद्धि योगिनः॥१३॥
उपसर्गाः प्रवर्तंते सर्वे तेऽसिद्धिसूचकाः।
प्रतिभा प्रथमा सिद्धिर्द्वितीया श्रवणा स्मृता॥१४॥
वार्ता तृतीया विप्रेंद्रास्तुरीया चेह दर्शना।
आस्वादा पंचमी प्रोक्ता वेदना षष्ठिका स्मृता॥१५॥
स्वल्पषट्सिद्धिसंत्यागात्सिद्धिदाः सिद्धयो मुनेः।
प्रतिभा प्रतिभावृतिः प्रतिभाव इति स्थितिः॥१६॥
बुद्धिर्विवेचना वेद्यं बुद्धयते बुद्धिरुच्यते। सूक्ष्मे व्यवहितेतीते विप्रकृष्टे त्वनागते॥१७॥
सर्वत्र सर्वदा ज्ञानं प्रतिभानुक्रमेण तु। श्रवणात्सर्वशब्दानामप्रयत्नेन योगिनः॥१८॥
ह्रस्वदीर्घप्लुतादीनां गुह्यानां श्रवणादपि। स्पर्शस्याधिगमो यस्तु वेदना तूपपादिता॥१९॥
दर्शनाद्दिव्यरूपाणां दर्शनं चाप्रयत्नतः। संविद्दिव्यरसे तस्मिन्नास्वादो ह्यप्रयत्नतः॥२०॥
वार्ता च दिव्यगंधानां तन्मात्रा बुद्धिसंविदा। विन्दंते योगिनस्तस्मादाब्रह्मभुवनं द्विजाः॥२१॥
जगत्यस्मिन् हि देहस्थं चतुःषष्टिगुणं समम्। औपसर्गिकमेतेषु गुणेषु गुणितं द्विजाः॥२२॥
संत्याज्यं सर्वथा सर्वमौपसर्गिकमात्मनः। पैशाचे पार्थिवं चाप्यं राक्षसानां पुरे द्विजाः॥२३॥

योगिक साधना की बाधाएँ हैं।१०-१२।। अति उत्साही साधक के समक्ष ये बाधाएँ नाश हो जाती हैं इसमें सन्देह नहीं, किन्तु सिद्धि रूपी अन्य बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। सिद्धियाँ छह प्रकार की होती हैं—पहली प्रतिभा, दूसरी श्रवणा, तीसरी वार्ता, चौथी दर्शना, पाँचवी आस्वाद और छठवीं वेदना।।१३-१५।। सिद्धियों का जब असर कम हो तभी त्याग करने से अच्छा परिणाम होता है। प्रतिभा मस्तिष्क को समझने की क्षमता को कहते हैं।।१६।। बुद्धि (मस्तिष्क) की भेदात्मक क्षमता को कहते हैं। प्रत्येक समय और स्थान पर सूक्ष्म या छिपे हुए, पास और दूर भूत और भविष्य के ज्ञान को प्रतिभा कहते हैं। योगी की किसी अक्षर को चाहे ह्रस्व हो, दीर्घ हो या प्लुत हो, गुप्त हो या प्रकट मात्र सुनकर बिना प्रयास के समझने की क्षमता को श्रवणा कहते हैं। बिना वास्तविक सम्पर्क के स्पर्श का ज्ञान वेदना है। बिना किसी प्रयास के दिव्य रूप को देखने की क्षमता को दर्शना कहते हैं। बिना प्रयास के दिव्य रस को ग्रहण करने की शक्ति आस्वाद है।।१७-२०।। सूक्ष्म तत्त्वों और दिव्य गन्ध को ग्रहण करने की बुद्धि की शक्ति को वार्ता कहते हैं। हे ब्राह्मणों! योगी लोग ब्रह्मपर्यन्त सारे लोक के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।।२१।। इस विश्व में शरीर में ६४ गुणों का वास है। हे ब्राह्मणों! इनमें से औपसर्गिक गुणों का त्याग कर देना चाहिये। पैशाच क्षेत्र में पृथ्वी से सम्बन्धित गुणों को, राक्षसों के क्षेत्र में जल के, यक्षों के क्षेत्र में अग्नि के, गन्धर्वों के क्षेत्र में श्वास के, इन्द्र के क्षेत्र में व्योम के, सोम के

याक्षे तु तैजसं प्रोक्तं गांधर्वे श्वसनात्मकम्। ऐन्द्रे व्योमात्मकं सर्वं सौम्ये चैव तु मानसम्॥२४॥
प्राजापत्ये त्वहंकारं ब्राह्मे बोधमनुत्तमम्। आद्ये चाष्टौ द्वितीये च तथा षोडशरूपकम्॥२५॥
चतुर्विंशत्तृतीये तु द्वात्रिंशच्च चतुर्थके। चत्वारिंशत् पंचमे तु भूतमात्रात्मकं स्मृतम्॥२६॥
गंधो रसस्तथा रूपं शब्दः स्पर्शस्तथैव च। प्रत्येकमष्टधा सिद्धं पंचमेतच्छतक्रतोः॥२७॥
तथाष्टचत्वारिंशच्च षट्पंचाशत्तथैव च। चतुःषष्टिगुणं ब्राह्मं लभते द्विजसत्तमाः॥२८॥
औपसर्गिकमाब्रह्मभुवनेषु परित्यजेत्। लोकेष्वालोक्य योगेन योगवित्परमं सुखम्॥२९॥
स्थूलता ह्रस्वता बाल्यं वार्धक्यं यौवनंतथा। नानाजातिस्वरूपं च चतुर्भिर्देहधारणम्॥३०॥
पार्थिवांशं विना नित्यं सुरभिर्गंधसंयुतः। एतदष्टगुणं प्रोक्तमैश्वर्यं पार्थिवं महत्॥३१॥
जले निवसनं यद्वद्भूम्यामिव विनिर्गमः। इच्छेच्छक्तः स्वयं पातुं समुद्रमपि नातुरः॥३२॥
यत्रेच्छति जगत्यस्मिंस्तत्रास्य जलदर्शनम्। यद्यद्वस्तु समादाय भोक्तुमिच्छति कामतः॥३३॥
तत्तद्रसान्वितं तस्य त्रयाणां देहधारणम्। भांडं विनाथ हस्तेन जलपिंडस्य धारणम्॥३४॥
अव्रणत्वं शरीरस्य पार्थिवेन समन्वितम्। एतत् षोडशकं प्रोक्तमाप्यमैश्वर्यमुत्तमम्॥३५॥
देहादग्निविनिर्माणं तत्तापभयवर्जितम्। लोकं दग्धमपीहान्यददग्धं स्वविधानतः॥३६॥
जलमध्ये हुतवहं चाधाय परिरक्षणम्। अग्निनिग्रहणं हस्ते स्मृतिमात्रेण चागमः॥३७॥
भस्मीभूतविनिर्माणं यथापूर्वं सकामतः। द्वाभ्यां रूपविनिष्पत्तिर्विना तैस्त्रिभिरात्मनः॥३८॥

क्षेत्र में मन के, प्रजापति के क्षेत्र में अहंकार के और ब्रह्म के क्षेत्र में बुद्धि के गुणों का परित्याग कर देना चाहिये।।२२-२५।। पहले क्षेत्र (पृथ्वी) में आठ दूसरे अर्थात् जल के क्षेत्र में सोलह, तीसरे (अग्नि) में चौबीस, चौथे में ३२, पाँचवें में चालीस गुण होते हैं। पाँचों सूक्ष्म तत्त्वों जैसे—गन्ध, स्वाद, रंग, स्पर्श और ध्वनि का आठ प्रकार से विकास होता है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! चन्द्र के क्षेत्र में अड़तालीस और प्रजापति के छप्पन और ब्रह्मा के क्षेत्र में चौसठ गुण होते हैं। ब्रह्म पर्यन्त सभी क्षेत्रों में योगियों को इन बाधाओं को योग के माध्यम से जानकर उन्हें छोड़ देना चाहिये। तभी वह पर ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।।२६-२९।। पार्थिव योगिक सिद्धि के स्थूलता, ह्रस्वता (हल्कापन), बालपन, यौवन, बुढ़ापा, इच्छानुसार रूप धारण करना, बिना पृथ्वी तत्त्व के मात्र चार तत्त्वों से शरीर धारण करना और निरन्तर मीठी सुगन्ध धारण करना ये आठ रूप होते हैं।।३०-३१।। जब तक चाहे जल में वास करना, इच्छानुसार जल से बाहर आ जाना, बिना किसी भी व्याकुलता के समुद्र भी पी जाना, जिस वस्तु को खाना चाहे उसे स्वादिष्ट पदार्थ में बदल देना, मात्र तीन तत्त्वों से शरीर धारण करना, बिना किसी पात्र के हथेली में (बृहत्) जल राशि धारण करना, ये आठ और पार्थिव सिद्धि के आठ प्रकार मिलकर आत्म-सिद्धि के सोलह प्रकार होते हैं।।३२-३५।। शरीर से अग्नि उत्पन्न करने की क्षमता, अग्नि के ताप से भय की समाप्ति, पूरे विश्व के जल जाने के बाद भी किसी वस्तु को जलने से बचाने की सामर्थ्य, जल में अग्नि रखने की क्षमता, हथेली पर अग्नि धारण करने की क्षमता, स्मरण मात्र से अग्नि उत्पन्न करने की क्षमता, सब कुछ जल जाने के बाद भी राख में से पुनः वस्तु के

चतुर्विंशात्मकं ह्येतत्तैजसं मुनिपुंगवाः। मनोगतित्वं भूतानामंतर्निवसनं तथा॥३९॥
पर्वतादिमहाभारस्कंधेनोद्वहनं पुनः। लघुत्वं च गुरुत्वं च पाणिभ्यां वायुधारणम्॥४०॥
अंगुल्यग्रनिघातेन भूमेः सर्वत्र कंपनम्। एकेन देहनिष्पत्तिर्वातैश्वर्यं स्मृतं बुधैः॥४१॥
छायाविहीननिष्पत्तिरिंद्रियाणां च दर्शनम्। आकाशगमनं नित्यमिंद्रियार्थैः समन्वितम्॥४२॥
दूरे च शब्दग्रहणं सर्वशब्दावगाहनम्। तन्मात्रलिंगग्रहणं सर्वप्राणिनिदर्शनम्॥४३॥
ऐंद्रमैश्वर्यमित्युक्तमेतैरुक्तः पुरातनः। यथाकामोपलब्धिश्च यथाकामविनिर्गमः॥४४॥
सर्वत्राभिभवश्चैव सर्वगुह्यनिदर्शनम्। कामानुरूपनिर्माणं वशित्वं प्रियदर्शनम्॥४५॥
संसारदर्शनं चैव मानसं गुणलक्षणम्। छेदनं ताडनं बंधं संसारपरिवर्तनम्॥४६॥
सर्वभूतप्रसादश्च मृत्युकालजयस्तथा। प्राजापत्यमिदं प्रोक्तमहङ्कारिकमुत्तमम्॥४७॥
अकारणजगत्सृष्टिस्तथानुग्रह एव च। प्रलयश्चाधिकारश्च लोकवृत्तप्रवर्तनम्॥४८॥
असादृश्यमिदं व्यक्तं निर्माणं च पृथक्पृथक्। संसारस्य च कर्तृत्वं ब्रह्ममेतदनुत्तमम्॥४९॥
एतावत्त त्वमित्युक्तं प्राधान्यं वैष्णवं पदम्। ब्रह्मणा तद्गुणं शक्यं वेत्तुमन्यैर्न शक्यते॥५०॥

विद्यते तत्परं शैवं विष्णुना नावगम्यते।
असंख्येयगुणं शुद्धं को जानीयाच्छिवात्मकम्॥५१॥

पुनर्निर्माण की क्षमता और तीन तत्त्वों के बगैर मात्र दो तत्त्वों से शरीर धारण की क्षमता ये तैजस् सिद्धियाँ हैं।।३६-३८।। पवन की तरह तीव्र गति से चलने की सामर्थ्य, जीवित प्राणियों के शरीर में प्रवेश कर सकने की क्षमता, पर्वत जैसी भारी वस्तु को कन्धे पर उठा सकने की क्षमता, हल्कापन, भारीपन, हथेली पर वायु धारण कर सकने की क्षमता, अँगूठे के अग्र भाग से धरती को हिलाने की सामर्थ्य, ये सभी वात (वायु से सम्बन्धित) सिद्धियाँ हैं।।३९-४१।। अपनी छाया का भी त्याग कर सकने की क्षमता, सूक्ष्म तत्त्वों को देख सकने की क्षमता, इच्छा मात्र पर किसी वस्तु को प्राप्त करने की क्षमता, दूर की ध्वनि को भी सुनने की क्षमता, मात्र सूक्ष्म तत्त्वों से शरीर धारण करने की क्षमता और सभी जीवित प्राणियों को देखने की क्षमता आदि ऐन्द्र सिद्धियाँ हैं।।४२-४३।। इच्छानुसार कुछ भी प्राप्त करने की क्षमता, जहाँ चाहे भ्रमण करने का सामर्थ्य, सबको अभिभूत करने की क्षमता, गूढ़ वस्तुओं को भी प्राप्त कर लेने की क्षमता, इच्छानुसार वस्तुओं के सृजन की क्षमता, दूसरों को वश में कर लेने की क्षमता, इच्छानुसार वस्तुओं को देखने की क्षमता ये सभी चन्द्रमा के क्षेत्र में मन की शक्तियाँ हैं।।४४-४५।। काटने, तोड़ने, बाँधने, सृजन, संहार, वरदान देना, काल और मृत्यु को भी जीत लेना ये प्रजापति के क्षेत्र में अहंकार की शक्तियाँ हैं।।४६-४७।। विचार मात्र से विश्व का सृजन, पालन और संहार करना, सत्ता का प्रयोग, इच्छानुसार विश्व का संचालन, सबसे असादृश्य, प्रत्येक दृश्य वस्तुओं का पृथक् सृजन, सारे ब्रह्माण्ड का स्रष्टा होना ये सारी ब्रह्मा की शक्तियाँ हैं।।४८-४९।। इससे परे शक्तियाँ केवल विष्णु की हैं। यह ब्रह्मा की शक्तियों का स्रोत हैं। यह केवल ब्रह्मा जान सकते हैं अन्य नहीं।।५०।। इससे भी ऊपर एक शक्ति है जो शिव से सम्बन्धित है जिसको विष्णु भी नहीं जान

व्युत्थाने सिद्धयश्चैता ह्युपसर्गाश्च कीर्तिताः। निरोद्धव्याः प्रयत्नेन वैराग्येण परेण तु॥५२॥
नाशातिशयतां ज्ञात्वां विषयेषु भयेषु च। अश्रद्धया त्यजेत्सर्वं विरक्त इति कीर्तितः॥५३॥
वैतृष्ण्यं पुरुषे ख्यातं गुणवैतृष्ण्यमुच्यते। वैराग्येणैव संत्याज्याः सिद्धयश्चौपसर्गिकाः॥५४॥
औपसर्गिकमाब्रह्मभुवनेषु परित्यजेत्। निरुद्ध्यैव त्यजेत्सर्वं प्रसीदति महेश्वरः॥५५॥
प्रसन्ने विमला मुक्तिर्वैराग्येण परेण वै। अथवानुग्रहार्थं च लीलार्थं वा तदा मुनिः॥५६॥
अनिरुद्ध्य विचेष्टेद्यः सोप्येवं हि सुखी भवेत्। क्वचिद्भूमिं परित्यज्य ह्याकाशे क्रीडते श्रिया॥५७॥
उद्गिरेच्च क्वचिद्वेदान् सूक्ष्मानर्थान् समासतः। क्वचिच्छ्रुते तदर्थेन श्लोकबंधं करोति सः॥५८॥
क्वचिद्दंडकबंधं तु कुर्याद्बंधं सहस्त्रशः। मृगपक्षिसमूहस्य रुतज्ञानं च विंदति॥५९॥
ब्रह्माद्यं स्थावरान्तं च हस्तामलकवद्भवेत्। बहुनात्र किमुक्तेन विज्ञानानि सहस्त्रशः॥६०॥
उत्पद्यंते मुनिश्रेष्ठा मुनेस्तस्य महात्मनः। अभ्यासेनैव विज्ञानं विशुद्धं च स्थिरं भवेत्॥६१॥
तेजोरूपाणि सर्वाणि सर्वं पश्यति योगवित्। देवबिंबान्यनेकानि विमानानि सहस्त्रशः॥६२॥
पश्यति ब्रह्मविष्ण्वींद्रयमाग्निवरुणादि कान्। ग्रहनक्षत्रताराश्च भुवनानि सहस्त्रशः॥६३॥
पातालतलसंस्थाश्च समाधिस्थः स पश्यति। आत्मविद्याप्रदीपेन स्वस्थेनाचलनेन तु॥६४॥

सकते। और कौन उस असंख्य गुण से युक्त शुद्ध शिव को जान सकता है।।५१।। यौगिक अभ्यास के दौरान प्रायः इस तरह की बाधाएँ सिद्धियों के रूप में आती रहती है। इन्हें यत्नपूर्वक पूर्ण वैराग्य से दूर करना चाहिये।।५२।। यह जानकर कि सांसारिक सुख नाश का मार्ग हैं, विरक्त को साधन द्वारा बिना भय के उनका परित्याग कर देना चाहिये।।५३।। इच्छाओं का अभाव और शक्ति के प्रति तृष्णा का अभाव वस्तुतः प्रशंसनीय है। पूर्ण वैराग्य से इनका त्याग करना चाहिये।।५४।। ब्रह्म लोक पर्यन्त सभी लोकों में बाधाओं को दूर करना चाहिये। इनको क्रमशः रोकते हुए इनका त्याग करने पर महेश्वर (शिव) प्रसन्न होते हैं।।५५।। प्रभु के प्रसन्न होने पर वैराग्य के माध्यम से मोक्ष पाना आसान हो जाता है। उनकी कृपा से कभी-कभी मुनि बिना सिद्धियों का त्याग किये हुए लोगों को वरदान देने या लीला मात्र के लिये भ्रमण कर सकता है। कहीं-कहीं वह पृथ्वी छोड़कर वैभव के साथ आकाश में लीला कर सकता है। कभी वह वेदों का, उनके सूक्ष्म अर्थों का संक्षेप में उच्चारण कर सकता है; वह वेदों के अर्थों से सम्बन्धित दण्डक था अन्य छन्दों की रचना कर सकता है। कहीं वह पशु-पक्षियों की भाषा का ज्ञान पा सकता है। ब्रह्मा से लेकर स्थावर प्राणियों तक प्रत्येक वस्तु उसे हथेली पर स्थित आँवले की भाँति स्पष्ट हो जाती है। हे मुनियों! अधिक कहने से क्या लाभ? उस महात्मा मुनि की आत्मा में कई तरह से ज्ञान का उदय होता है। अभ्यास से यह पूर्ण ज्ञान शुद्ध और स्थिर होता है।।५६-६१।। योग का जानने वाला सहस्त्रों देवताओं को उनके वैभवपूर्ण विमानों सहित देख सकता है। प्रत्येक वस्तु उसके ज्ञान के क्षेत्र में आ जाती है।।६२।। वह ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण और अन्य देवों को देख सकता है। वह सहस्त्रों ग्रहों नक्षत्रों को उनके क्षेत्रों सहित देख सकता है।।६३।। परम आनन्द की अवस्था में वह पाताल लोक के निवासियों को देख सकता है। अपने ज्ञान के माध्यम से तम का उच्छेद कर सकता है।

प्रसादामृतपूर्णेन सत्त्वपात्रस्थितेन तु। तमो निहत्य पुरुषः पश्यति ह्यात्मनीश्वरम्॥६५॥
तस्य प्रसादाद्धर्मश्च ऐश्वर्यं ज्ञानमेव च। वैराग्यमपवर्गश्च नात्र कार्या विचारणा॥६६॥
न शक्यो विस्तरो वक्तुं वर्षाणमयुतैरपि। योगे पाशुपते निष्ठा स्थातव्यं च मुनीश्वराः॥६७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे योगांतरायकथनं
नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

अपने सत्त्वयुक्त ज्ञान की चमक अपने अन्दर देख सकता है।।६४-६५।। निस्सन्देह यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उनकी कृपा से व्यक्ति धर्म, ऐश्वर्य, ज्ञान, विरक्ति, और मोक्ष प्राप्त कर सकता है। उनकी कृपा का बखान सहस्रों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है। हे श्रेष्ठ मुनियों! शिव से सम्बन्धित योग का निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिये।।६६-६७।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में योग में विघ्न का कथन
नामक नवाँ अध्याय समाप्त॥९॥

दशमोऽध्यायः

भक्तिभावकथनम्

सूत उवाच

सतां जितात्मनां साक्षाद्द्विजातीनां द्विजोत्तमाः। धर्मज्ञानां च साधूनामाचार्याणां शिवात्मनाम्॥१॥
दयावतां द्विजश्रेष्ठास्तथा चैव तपस्विनाम्। संन्यासिनां विरक्तानां ज्ञानिनां वशगात्मनाम्॥२॥
दानिनां चैव दान्तानां त्रयाणां सत्यवादिनाम्। अलुब्धानां सयोगानां श्रुतिस्मृतिविदां द्विजाः॥३॥
श्रौतस्मार्ताविरुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः। सदिति ब्रह्मणः शब्दस्तदंते ये लभंत्युत॥४॥
सायुज्यं ब्रह्मणो यांति तेन संतः प्रचक्षते। दशात्मके ये विषये साधने चाष्टलक्षणे॥५॥
न क्रुध्यंति न हृष्यंति जितात्मानस्तु ते स्मृताः। सामान्येषु च द्रव्येषु तथा वैशेषिकेषु च॥६॥
ब्रह्मक्षत्रविशे यस्माद्युक्तास्तस्माद्द्विजातयः। वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गादिसुखकारिणः॥७॥
श्रौतस्मार्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्म उच्यते। विद्यायाः साधनात्साधुब्रह्मचारी गुरोर्हितः॥८॥
क्रियाणां साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते। साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः॥९॥
यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात्। एवमाश्रमधर्माणां साधनात्साधवः स्मृताः॥१०॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थो यतिस्तथा। धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ॥११॥

दसवाँ अध्याय

भक्तिभाव का कथन

सूत बोले

मोक्षकामियों, अपने को जीतने वालों, उत्तम द्विजों, धर्मज्ञानियों, साधुओं, आचार्यों, दयालुओं, सन्यासियों, वैरागियों, ज्ञानियों, आत्म नियन्त्रण वाले व्यक्तियों, तीन तरह के दानियों, सत्यवादियों, निर्लोभियों, योगियों, वेदों और स्मृतियों को जाननें वालों और शास्त्रों का विरोध न करने वालों से महेश्वर (शिव) प्रसन्न रहते हैं। सत् शब्द का तात्पर्य ब्रह्म से है। जो उसे प्राप्त कर लेते हैं वे ब्रह्म को प्राप्त करके मुक्त हो जाते हैं। जो दसों इन्द्रियों के विषयों और आठ साधनों के सम्बन्ध में न क्रुद्ध होते हैं न हर्षित होते हैं वे आत्मजयी कहे जाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज कहे जाते हैं क्योंकि उनका पवित्र संस्कार (यज्ञोपवीत) होता है। वेदों और स्मृतियों में बताये गये विभिन्न वर्गों और जीवन की विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित ज्ञान—जो कि धरती और स्वर्ग में सुख का संचार करता है—को जानने वाला धर्म-ज्ञानी कहलाता है। गुरु की सेवा करके ज्ञान प्राप्त करने वाला साधु कहलाता है। अपने लिये निर्दिष्ट पक्षों को करने वाला गृहस्थ भी साधु कहा जाता है। तपस्या करने वाला वानप्रस्थी भी साधु कहा जाता है।।१-९।। योग की साधना करने वाला सन्यासी भी यौगिक शक्तियों को प्राप्त कर लेने पर साधु कहा जाता है। इस प्रकार विभिन्न आश्रमों से सम्बन्धित धर्म को प्राप्त करने वाला साधु कहा जाता है।।१०।।

कुशलाकुशलं कर्म धर्माधर्माविति स्मृतौ। धारणार्थे महान् ह्येष धर्मशब्दः प्रकीर्तितः॥१२॥
अधारणे महत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते। अत्रेष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते॥१३॥
अधर्मश्चानिष्टफलो ह्याचार्यैरुपदिश्यते। वृद्धाश्चालोलुपाश्चैव आत्मवंतो ह्यदांभिकाः॥१४॥
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान्प्रचक्षते। स्वयमाचरते यस्मादाचारे स्थापयत्यपि॥१५॥
आचिनोति च शास्त्रार्थानाचार्यस्तेन चोच्यते। विज्ञेयं श्रवणाच्छ्रौतं स्मरणात्स्मार्तमुच्यते॥१६॥
इज्या वेदात्मकं श्रौतं स्मार्तं वर्णाश्रमात्मकम्। दृष्ट्वानुरूपमर्थं यः पृष्टो नैवापि गूहति॥१७॥
यथादृष्टप्रवादस्तु सत्यं लैङ्गेऽत्र पठ्यते। ब्रह्मचर्यं तथा मौनं निराहारत्वमेव च॥१८॥
अहिंसा सर्वतः शान्तिस्तप इत्यभिधीयते। आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हितायाहिताय च॥१९॥
वर्तते त्वसकृद्वृत्तिः कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता। यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनैवागतं क्रमात्॥२०॥
तत्तद्गुणवते देयं दातुस्तद्दानलक्षणम्। दानं त्रिविधमित्येतत्कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम्॥२१॥
कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः संविभागस्तु मध्यमः। श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः॥२२॥
शिष्टाचाराविरुद्धश्च स धर्मः साधुरुच्यते। मायाकर्मफलत्यागी शिवात्मा परिकीर्तितः॥२३॥
निवृत्तः सर्वसंगेभ्यो युक्तो योगी प्रकीर्तितः। असक्तो भयतो यस्तु विषयेषु विचार्य च॥२४॥

व्यक्ति ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और सन्यासी क्रियात्मक धर्म के कारण होता है। धर्म और अधर्म दो शब्द शुभ और अशुभ कर्मों के कारण हैं। धारण करने के अर्थ में धर्म शब्द का प्रयोग किया जाता है और इसके विपरीत अधर्म है। गुरु के द्वारा बताया गया इष्ट को प्राप्त करने वाला मार्ग धर्म है।।११-१३।। गुरुओं के अनुसार अधर्म वह है जो अनिष्ट की ओर ले जाता है। आचार्य उन्हें कहते हैं जो वृद्ध हों, निर्लोभी हों, आत्मवान हों, घमण्ड से रहित हों, स्वयं से अनुशासित हों तथा सरल हों। जो स्वयं धर्म का आचरण करता हो तथा दूसरों को धर्म में प्रेरित करे तथा जो शास्त्रों के अर्थों को चयन करे। जो सुनकर जानने योग्य है वह श्रौत है और जो स्मरण से जाना जाये वह स्मार्त है।।१४-१६।। वेदों से सम्बन्धित यज्ञ श्रौत कहा जाता है और विभिन्न वर्णों और आश्रमों से सम्बन्धित यज्ञ स्मार्त कहा जाता है। जिसने सत्य को पा लिया है और पूछे जाने पर छिपाता नहीं है वह आचार्य कहा जाता है। इस पुराण के अनुसार देखे गये तथ्य का ज्यों-का-त्यों बखान ही सत्य है। ब्रह्मचर्य मौन, उपवास और सब तरह की अहिंसा ये तप हैं। जब व्यक्ति दूसरों से वैसा ही व्यवहार करता है जैसा अपने प्रति (चाहता है) चाहे कल्याण के लिये हो या अन्य बातों के लिये तो यह व्यवहार दया कही जाती है। व्यक्ति जो कुछ भी न्यायोचित तरीके से अर्जित करता है और जिस (वस्तु) को सबसे अधिक चाहता हो उसे उपयुक्त गुणी व्यक्ति को देना ही दान कहा जाता है। दान कनिष्ठ श्रेष्ठ और मध्यम तीन प्रकार का होता है।।१७-२१।। करुणा के कारण सभी प्राणियों को देना मध्यम दान है। श्रुति और स्मृतियों के द्वारा निर्धारित अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार आचरण करना धर्म है। जो अन्य व्यक्तियों के अनुशासित जीवन से टकराव नहीं पैदा करता वही धर्म उत्तम है। माया के कर्म फल का त्याग करने वाला शिवात्मा कहा जाता है। जो सभी तरह के राग का त्याग करे उसे योगी कहते हैं। जो हर समय इन्द्रिय सुखों के खतरों के बारे में सोचता रहता है और विषयों का

अलुब्धः संयमी प्रोक्तः प्रार्थितोपि समंततः। आत्मार्थं वा परार्थं वा इंद्रियाणीह यस्य वै॥२५॥
न मिथ्या संप्रवर्तंते शमस्यैव तु लक्षणम्। अनुद्विग्नो ह्यनिष्टेषु तथेष्टान्नाभिनंदति॥२६॥
प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता। संन्यासः कर्मणां न्यासः कृतानामकृतैः सह॥२७॥
कुशलाकुशलानां तु प्रहाणं न्यास उच्यते। अव्यक्ताद्यविशेषांते विकारेऽस्मिन्नचेतने॥२८॥
चेतनाचेतनान्यत्वविज्ञानं ज्ञानमुच्यते। एवं तु ज्ञानयुक्तस्य श्रद्धायुक्तस्य शंकरः॥२९॥
प्रसीदति न संदेहो धर्मश्चायं द्विजोत्तमाः। किं तु गुह्यतमं वक्ष्ये सर्वत्र परमेश्वरे॥३०॥
भवे भक्तिर्न संदेहस्तया युक्तो विमुच्यते। अयोग्यस्यापि भगवान् भक्तस्य परमेश्वरः॥३१॥
प्रसीदति न संदेहो निगृह्य विविधं तमः। ज्ञानमध्यापनं होमो ध्यानं यज्ञस्तपः श्रुतम्॥३२॥
दानमध्ययनं सर्वं भवभक्त्यै न संशयः। चांद्रायणसहस्त्रैश्च प्राजापत्यशतैस्तथा॥३३॥
मासोपवासैश्चान्यैर्वा भक्तिर्मुनिवरोत्तमाः। अभक्ता भगवत्यस्मिँल्लोके गिरिगुहाशये॥३४॥
पतंति चात्मभोगार्थं भक्तो भावेन मुच्यते। भक्तानां दर्शनादेव नृणां स्वर्गादयो द्विजाः॥३५॥
न दुर्लभा न सन्देहो भक्तानां किं पुनस्तथा। ब्रह्मविष्णुसुरेंद्राणां तथान्येषामपि स्थितिः॥३६॥
भक्त्या एव मुनीनां च बलसौभाग्यमेव च। भवेन च तथा प्रोक्तं संप्रेक्ष्योमां पिनाकिना॥३७॥
देव्यै देवेन मधुरं वाराणस्यां पुरा द्विजाः। अविमुक्ते समासीना रुद्रेण परमात्मना॥३८॥
रुद्राणी रुद्रमाहेदं लब्ध्वा वाराणसीं पुरीम्।

अत्यधिक दबाव होने के बाद भी उनसे विरक्त रहता है उसे आत्मनियन्त्रित कहते हैं। पूर्ण नियन्त्रण का लक्षण इन्द्रियाँ सक्रिय होते हुए भी संयम रहता है। विरक्त व्यक्ति कभी अनिष्ट होने पर व्याकुल नहीं होता और न ही इष्ट होने पर आनन्दित होता है। किये गये या न किये गये कर्मों के फलों का त्याग ही संन्यास कहा जाता है।।२२-२७।। सुख और दुःख दोनों का परित्याग न्यास कहा जाता है। सभी निर्मित वस्तुएँ चाहे व्यक्त हों या अव्यक्त अचेतन हैं। चेतन और अचेतन का भेद ही पूर्ण ज्ञान है। भगवान शिव निसन्देह उन लोगों पर कृपा करते हैं जो पूर्णज्ञानी होते हैं। धर्म भी ऐसा ही करते हैं, किन्तु मैं आपको एक रहस्य की बात बताता हूँ। जो प्रभु शिव के प्रति भक्ति रखता है वह निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं। प्रभु शिव सभी तरह के कष्टों का निवारण करते हैं और उस पर भी प्रसन्न होते हैं जो पूरी तरह से कुशल योगी नहीं है।।२८-३१।। पूर्णज्ञान, वेदों का अध्यापन, देवों को आहुतियाँ, ध्यान, यज्ञ, तप, दान और वेदों का अध्ययन ये सभी प्रभु शिव की भक्ति में योगदान करते हैं। हे श्रेष्ठ मुनियों! भक्ति का फल सहस्त्रों चान्द्रायणों, सैकड़ों प्राजापत्यों, महीनों के उपवासों और शुभ अनुष्ठानों के बराबर होता है। जिनमें प्रभु के प्रति भक्ति में कमी होती है वे पर्वतों की गुफाओं में गिरते हैं और कर्मों का फल भोगते हैं। भक्त अपने भक्तिभाव से मुक्त हो जाता है। हे ब्राह्मणों! इसमें सन्देह नहीं कि भक्त के दर्शन मात्र से साधारण मनुष्य भी स्वर्गिक सुखों का अधिकारी हो जाता है, तो भक्त का तो कहना ही क्या। भक्ति के द्वारा ही ब्रह्मा, विष्णु सहित सभी देवतागण और मुनिगण अपनी स्थिति को सुदृढ़ रखते हुए शक्ति और सौभाग्य प्राप्त करते रहते हैं।।३२-३७।। हे ब्राह्मणों! ये शब्द प्रभु ने अविमुक्तक क्षेत्र में वाराणसी में कहे थे, जब वे देवी उमा के साथ बैठे थे।

श्रीदेव्युवाच

केन वश्यो महादेव पूज्यो दृश्यस्त्वमीश्वरः॥३९॥
तपसा विद्यया वापि योगेनेह वद प्रभो।

सूत उवाच

निशम्य वचनं तस्यास्तथा ह्यालोक्य पार्वतीम्॥४०॥
आह बालेंदुतिलकः पूर्णेन्दुवदनां हसन्। स्मृत्वाथ मेनया पत्न्या गिरेर्गां कथितां पुरा॥४१॥
चिरकालस्थितिं प्रेक्ष्य गिरौ देव्या महात्मनः। देवि लब्धा पुरी रम्या त्वया यत्प्रष्टुमर्हसि॥४२॥
स्थानार्थं कथितं मात्रा विस्मृतेहविलासिनि। पुरा पितामहेनापि पृष्टः प्रश्नवतां वरे॥४३॥
यथा त्वयाद्य वै पृष्टो द्रष्टुं ब्रह्मात्मकं त्वहम्। श्वेते श्वेतेन वर्णेन दृष्ट्वा कल्पे तु मां शुभे॥४४॥
सद्योजातं तथा रक्ते रक्तं वामं पितामहः। पीते तत्पुरुषं पीतमघोरे कृष्णमीश्वरम्॥४५॥
ईशानं विश्वरूपाख्यो विश्वरूपं तदाह माम्॥४६॥

पितामह उवाच

वाम तत्पुरुषाघोर सद्योजात महेश्वर।
दृष्टो मया त्वं गायत्र्या देवदेव महेश्वर। केन वश्यो महादेव ध्येयः कुत्र घृणानिधे॥४७॥

देवी ने पूछा

हे प्रभु आपको कैसे प्राप्त किया जा सकता है या आपकी कैसे आराधना की जा सकती है—तप से, ज्ञान से या योग से?

सूत बोले

उनके शब्दों को सुनकर उनके पूर्णचन्द्र की तरह के मुख की ओर देखते हुए अर्धचन्द्र को आभूषण की तरह धारण करने वाले प्रभु अट्टहास करके हँसे और उसे याद किया जो कि हिमालय की पत्नी मेना ने कहा था जब उनकी पुत्री वहाँ आवश्यकता से अधिक देर तक रुकी थीं।।३८-४१।।

प्रभु बोले, "हे भद्रे! हे लीलावती! अब जबकि तुम्हें निवास के लिये एक सुन्दर नगर मिल गया है तो क्या तुम भूल गयी हो कि निवास के सम्बन्ध में तुम्हारी माँ ने तुम्हें क्या आदेश दिये थे। ऐ जिज्ञासुओं! इसके पहले ब्रह्मा ने भी मुझसे इसी प्रकार प्रश्न किये थे। ऐ श्वेतवर्णे! श्वेत कल्प में ब्रह्मा ने मुझे भी सद्योजात के रूप में देखा। रक्त कल्प में मुझे वामदेव के रूप में लाल रंग में देखा। पीत कल्प में मुझे पीले रंग में तत्पुरुष के रूप में देखा। अघोर कल्प में काले रंग में ईश्वर के रूप में देखा। विश्वरूप कल्प में बहुरंगी ईशान के रूप में देखा। तब इसके बाद उन्होंने मुझसे कहा।

पितामह उवाच

'हे वाम, ऐ तत्पुरुष, ऐ अघोर, ऐ सद्योजात, ऐ महेश्वर, ऐ देवाधिदेव आपको मैंने गायत्री के साथ देखा है। ऐ महाप्रभु! आपको कौन और किस प्रकार वश में कर सकता है। ऐ करुणापुंज! आपका ध्यान कहाँ पर किया जा सकता है। आपके लिये यह सर्वथा उचित होगा कि आप इसका विवरण दें।।४२-४७।।

दृश्यः पूज्यस्तथा देव्या वक्तुमर्हसि शंकर।

श्रीभगवानुवाच

अवोचं श्रद्धयैवेति वश्यो वारिजसंभव॥४८॥

ध्येयो लिंगे त्वया दृष्टे विष्णुनां पयसां निधौ। पूज्यः पंचास्यरूपेण पवित्रैः पञ्चभि र्द्विजैः॥४९॥
भवभक्त्याद्य दृष्टोहं त्वयांडज जगद्गुरो। सोपि मामाह भावार्थं दत्तं तस्मै मया पुरा॥५०॥
भावं भावेन देवेशि दृष्टवान्मां हृदीश्वरम्। तस्मात्तु श्रद्धया वश्यो दृश्यः श्रेष्ठगिरेः सुते॥५१॥
पूज्यो लिंगे न संदेहः सर्वदा श्रद्धया द्विजैः। श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा ज्ञानं हुतं तपः॥५२॥
श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च दृश्योहं श्रद्धया सदा॥५३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भक्तिभावकथनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

श्रीभगवान बोले

तब मैंने ब्रह्मा से कहा, ऐ कमल से उत्पन्न! मुझे श्रद्धा के द्वारा ही वशीभूत किया जा सकता है। मेरा ध्यान लिङ्ग पर ही किया जा सकता है। जिसे तुमने और विष्णु ने सागर में देखा है। मेरी पूजा द्विजों के द्वारा ही की जा सकती है और पंचमुखी के रूप में और पंचाक्षर मंत्र के द्वारा की जा सकती है। हे अण्डोत्पन्न! तुम अब तक अपनी भक्ति के द्वारा ही मुझे देखते रहे हो। उन्होंने मुझसे अपने अन्दर और भक्ति भावना भरने की प्रार्थना की जो मैंने खुशी से मान ली। हे देवी! उस बढ़ी हुई भक्ति से उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने हृदय में देखा। मैं घोषित करता हूँ केवल श्रद्धा से मुझे वश में किया जा सकता है। हे हिमालय की पुत्री! मुझे वास्तव में उसी रूप में देखा जा सकता है और मेरी आराधना लिङ्ग रूप में श्रद्धावान द्विजों द्वारा ही की जा सकती है। श्रद्धा परम सूक्ष्म धर्म है। श्रद्धा ही ज्ञान और तप है। श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है और श्रद्धा से ही मुझे देखा जा सकता है।।४८-५३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में भक्तिभाव का कथन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

सद्योजातमाहात्म्यम्

ऋषयः ऊचुः

कथं वै दृष्टवान्ब्रह्मा सद्योजातं महेश्वरम्। वामदेवं महात्मानं पुराणपुरुषोत्तमम्॥१॥
अघोरं च तथेशानं यथावद्वक्तुमर्हसि।

सूत उवाच

एकोनत्रिंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः॥२॥
तस्मिंस्तत्परमं ध्यानं ध्यायतो ब्रह्मणस्तदा। उत्पन्नस्तु शिखायुक्तः कुमारः श्वेतलोहितः॥३॥
तं दृष्ट्वा पुरुषं श्रीमान्ब्रह्मा वै विश्वतोमुखः। हृदि कृत्वा महात्मानं ब्रह्मरूपिणमीश्वरम्॥४॥
सद्योजातं ततो ब्रह्मा ध्यानयोगपरोऽभवत्। ध्यानयोगात्परं ज्ञात्वा ववंदे देवमीश्वरम्॥५॥
सद्योजातं ततो ब्रह्मा ब्रह्म वै समचिंतयत्। ततोस्य पार्श्वतः श्वेताः प्रादुर्भूता महायशाः॥६॥
सुनंदो नंदनश्चैव विश्वनंदोपनंदनौ। शिष्यास्ते वै महात्मानो यैस्तद्ब्रह्म सदावृतम्॥७॥
तस्याग्रे श्वेतवर्णाभः श्वेतो नाम महामुनिः। विजज्ञेऽथ महातेजास्तस्माज्जज्ञे हरस्त्वसौ॥८॥
तत्र ते मुनयः सर्वे सद्योजातं महेश्वरम्। प्रपन्नाः परया भक्त्या गृणंतो ब्रह्म शाश्वतम्॥९॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सद्योजात का माहात्म्य

ऋषिगण बोले

ब्रह्मा ने महेश्वर को सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष अघोर और ईशान को देखा। इसको आप हम लोगों को यथावत् बतायें।।१-२।।

सूत बोले

उन्नीसवाँ कल्प श्वेतलोहित नाम से ज्ञात है। इस कल्प से परम ध्यान को ध्यान करते हुये ब्रह्मा के शिखा (चुटिया) धारी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम श्वेतलोहित रखा गया।।३।। उस पुरुष को देखकर ध्यान में तत्पर चतुर्मुख श्रीमान् ब्रह्मा ने अपने हृदय में महान् आत्मा ईश्वर को ध्यान किया। तब उन्होंने उस बालक को इष्ट मानकर उसको प्रणाम किया।।४-५।। ब्रह्मा ने सद्योजात को फिर गौर से देखा। उसके बाद सद्योजात के बगलों से श्वेत (सफेद) चार पुत्र उत्पन्न हुये। उनके नाम सुनंद, नंदन, विश्वनंद और उपनंदन हुये। वे चारों महान् आत्मा थे। ब्रह्मा उनसे चारों ओर घिरे रहते थे।।६-७।। उसके आगे श्वेत वर्ण (रंग) वाले श्वेत नाम के महामुनि उत्पन्न हुये। तब उसके महातेजस्वी हर उत्पन्न हुए।।८।। वहाँ वे सब मुनि महेश्वर सद्योजात की परमभक्ति से सेवा करने लगे। वे अन्तर्ब्रह्म की प्रशंसा, स्तुति करने लगे। अतः हे ब्राह्मणों! जो विश्वेश्वर देव

तस्माद्विश्वेश्वरं देवं ये प्रपद्यंति वै द्विजाः। प्राणायामपरा भूत्वा ब्रह्मतत्परमानसाः॥१०॥
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चसः। विष्णुलोकमतिक्रम्य रुद्रलोकं व्रजंति ते॥११॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सद्योजातमाहात्म्यं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

विष्णु को प्राणायामपरायण और मन से ब्रह्म में भक्ति में तत्पर होते हैं वे सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। वे ब्रह्म तेज को प्राप्त कर विष्णु लोक को डाँक कर उसके ऊपर स्थित रुद्र लोक को जाते हैं।।९-११।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में सद्योजात का माहात्म्य नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

वामदेवमाहात्म्यम्

सूत उवाच

ततस्त्रिंशत्तमः कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तितः। ब्रह्मा यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत्॥१॥
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। प्रादुर्भूतो महातेजः कुमारो रक्तभूषणः॥२॥
रक्तमाल्यांबरधरो रक्तनेत्रः प्रतापवान्। स तं दृष्ट्वा महात्मानं कुमारं रक्तवाससम्॥३॥
परं ध्यानं समाश्रित्य बुबुधे देवमीश्वरम्। स तं प्रणम्य भगवान् ब्रह्मा परमयंत्रितः॥४॥
वामदेवं ततो ब्रह्मा ब्रह्म वै समचिंतयत्। तथा स्तुतो महादेवो ब्रह्मणा परमेश्वरः॥५॥
प्रतीतहृदयः सर्व इदमाह पितामहम्। ध्यायता पुत्रकामेन यस्मात्तेहं पितामह॥६॥
दृष्टः परमया भक्त्या स्तुतश्च बह्मपूर्वकम्। तस्माद्ध्यानबलं प्राप्य कल्पेकल्पे प्रयत्नतः॥७॥
वेत्स्यसे मां प्रसंख्यातं लोकधातारमीश्वरम्। ततस्तस्य महात्मानश्चत्वारस्ते कुमारकाः॥८॥
संबभूवुर्महात्मानो विशुद्धा ब्रह्मवर्चसः। विरजाश्च विबाहुश्च विशोको विश्वभावनः॥९॥
ब्रह्मण्याब्रह्मणस्तुल्या वीरा अध्यवसायिनः। रक्तांबरधराः सर्वे रक्तमाल्यानुलेपनाः॥१०॥
रक्तकुंकुमलिप्तांगा रक्तभस्मानुलेपनाः। ततो वर्षसहस्रांते ब्रह्मत्वेध्यवसायिनः॥११॥

बारहवाँ अध्याय

वामदेव माहात्म्य

सूत बोले

उसके बाद तेरहवाँ कल्प रक्त नामक हुआ। इस काल में महातेजश्वी ब्रह्मा ने रक्त वर्ण (लाल रंग) धारण किया।।१।। परमेष्ठी ब्रह्मा द्वारा पुत्र की कामना से ध्यान करते हुए एक महातेजस्वी लाल आभूषणों से भूषित एक बालक उत्पन्न हुआ। वह लाल मालाएँ और लाल वस्त्र पहने था। उसके नेत्र लाल थे। वह प्रतापी था। उस लाल वस्त्रधारी महात्मा कुमार को देखकर ब्रह्मा ने परम ध्यान लगाया।।२-५।। उस बालक को ईश्वर समझा और स्वयं ब्रह्मा ने उसको प्रणाम करके उसकी स्तुति की। ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर परमेश्वर महादेव हृदय से प्रसन्न हो गये और पितामह ब्रह्मा से यह कहा।।६-७।। हे ब्रह्मा! पुत्र की कामना से मुझपर परम भक्तिपूर्वक ध्यान लगाये और 'नमो ब्रह्मणे वामदेवाय' मंत्र द्वारा मेरी स्तुति की। तुम ध्यान की शक्ति प्राप्त करोगे और मुझको ईश्वर का अनुभव करोगे। अतः तुम प्रत्येक कल्प में लोगों के प्रयत्नपूर्वक स्रष्टा (सिरजनहार) होगे। इसके बाद उनके चार पुत्र हुए। वे विशुद्ध, महात्मा और ब्रह्मतेज से युक्त थे। उनके नाम विरज, बिबाहु, विशोक और विश्वभावन थे। वे ब्रह्मपथी, ब्रह्मा के तुल्य, वीर और साहसी थे।।८-१०।। वे सब लाल वस्त्रधारी थे। भौंह में लाल चन्दन चुपड़े थे और अपने शरीर पर लाल भस्म लगाये थे। लाल कुंकुम देह में लगाये थे। एक हजार वर्ष बाद वे फिर ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए। धर्म का उपदेश

गृणंतश्च महात्मानो ब्रह्म तद्वामदैविकम्। अनुग्रहार्थं लोकानां शिष्याणां हितकाम्यया॥१२॥
धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा ते ब्रह्मणः प्रियाः। पुनरेव महादेवं प्रविष्टा रुद्रमव्ययम्॥१३॥
येपि चान्ये द्विजश्रेष्ठा युंजाना वाममीश्वरम्। प्रपश्यन्ति महादेवं तद्भक्तास्तत्परायणाः॥१४॥
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मचारिणः। रुद्रलोकं गमिष्यंति पुनावृत्तिदुर्लभम्॥१५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वामदेवमाहात्म्यं
नाम द्वादशोध्यायः॥१२॥

देकर लोकों को आशीर्वाद देते और अपने शिष्यों के कल्याण की इच्छा के साथ वे ब्रह्मा को प्रिय हो गये। वे फिर महादेव, अव्यय, रुद्र में प्रविष्ट हो गये।।११-१३।। और भी अन्य ब्राह्मण जो योगाभ्यास करते हैं और पवित्र मन्त्र 'नमो ब्रह्मणे वामदेवाय' का जप करते हैं और जो उनके भक्त हैं, उनमें रत हैं, वे सब पापों से मुक्त, शुद्ध, ब्रह्मचारी लोग रुद्र लोक को जाते हैं जहाँ से फिर लौटना दुर्लभ है।।१४-१५।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में वामदेव माहात्म्य
नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त॥१२॥

—※※※—

त्रयोदशोऽध्यायः

तत्पुरुषमाहात्म्यम्

सूत उवाच

एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः। ब्रह्मा यत्र महाभागः पीतवासा बभूव ह॥१॥
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रधृक्॥२॥
पीतगंधानुलिप्तांगः पीतमाल्यांबरो युवा। हेमयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुजः॥३॥
तं दृष्ट्वां ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मा लोकमहेश्वरम्। मनसा लोकधातारं प्रपेदे शरणं विभुम्॥४॥
ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरीं वराम्। गां विश्वरूपां ददृशे महेश्वरमुखाच्च्युताम्॥५॥
चतुष्पदां चतुर्वक्त्रां चतुर्हस्तां चतुःस्तनीम्। चतुर्नेत्रां चतुःशृंगीं चतुर्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम्॥६॥
द्वात्रिंशद्गुणसंयुक्तामीश्वरीं सर्वतोमुखाम्। स तां दृष्ट्वा महातेजा महादेवीं महेश्वरीम्॥७॥
पुनराह महादेवः सर्वदेवनमस्कृतः। मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनःपुनः॥८॥
एह्येहीति महादेवि सातिष्ठत्प्रांजलिर्विभुम्। विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशीकुरु॥९॥
अथ तामाह देवेशो रुद्राणी त्वं भविष्यसि। ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्था भविष्यसि॥१०॥
तथैनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः। प्रददौ देवदेवेशः चतुष्पादां जगद्गुरुः॥११॥

तेरहवाँ अध्याय

तत्पुरुष माहात्म्य

सूत बोले

तेरहवाँ कल्प पीतकल्प नाम से ज्ञात है। उस कल्प में महाभाग ब्रह्मा पीतवासा (पीत वस्त्रधारी) हुए।।१।। परमेष्ठी ब्रह्मा द्वारा पुत्र की कामना से ध्यान करते हुए पीत वस्त्रधारी कल्प उत्पन्न हुआ।।२।। वह पीले गंध को अपने शरीर में लपेटे हुए, पीली मालाओं और पीली पोशाक पहने, सोने का बना पीला यज्ञोपवीत, पीली पगड़ी धारण किये, बड़ी भुजाओं वाला था।।३।। उसको देखकर ब्रह्मा ध्यान में मग्न लोकों के ईश्वर, लोकों की रचना करने वाले विष्णु भगवान की शरण में मन से प्राप्त हुए।।४।। तब ब्रह्मा ध्यानमग्न हो गये। उन्होंने भगवान शिव की गौ को देखा जो उनके मुख से निकली विश्वरूप में थी। चार हाथ, उसके चार पैर, चार चेहरे, चार स्तन, चार नेत्र, चार सींग, चार दाँत और चार मुख थे।।५-६।। वह स्वयं देवी थी। उस महादेवी को गाय के रूप में देखकर सब देवों से पूजित महादेव ने फिर कहा, 'हे महादेवी! मति, बुद्धि और स्मृति की प्रतीक आओ-आओ।' ऐसा कहने पर वह हाथ जोड़कर शिव के सामने खड़ी हो गई।।७-८।। तब देवेश शंकर ने उससे कहा, 'अपनी योग-शक्ति से जगत् को अपने नियन्त्रण में (वश में) करो। तुम ब्राह्मणों के हित के लिए और उनकी मुक्ति के लिए उमा होओगी'।।९-१०।। देवेश, जगद्गुरु शिव ने पुत्र की कामना से ध्यान करते हुये ब्रह्मा को उस

ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम्। ब्रह्मा लोकगुरोः सोथ प्रतिपेदे महेश्वरीम्॥१२॥
गायत्रीं तु ततो रौद्रीं ध्यात्वा ब्रह्मानुयंत्रितः। इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीं गायत्रिमीरिताम्॥१३॥
जपित्वा तु महादेवीं ब्रह्मा लोकनमस्कृताम्। प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा॥१४॥
ततस्तस्य महादेवो दिव्ययोगं बहुश्रुतम्। ऐश्वर्यं ज्ञानसंपत्तिं वैराग्यं च ददौ प्रभुः॥१५॥
ततोस्य पार्श्वतो दिव्याः प्रादुर्भूताः कुमारकाः। पीतमाल्यांबरधराः पीतस्त्रगनुलेपनाः॥१६॥
पीताभोष्णीषशिरसः पीतास्याःपीतमूर्धजाः। ततो वर्षसहस्त्रांत उषित्वा विमलौजसः॥१७॥
योगात्मानस्तपोह्लादाः ब्राह्मणानां हितैषिणः। धर्मयोगबलोपेता मुनीनां दीर्घसत्रिणाम्॥१८॥
उपदिश्य महायोगं प्रविष्टास्ते महेश्वरम्। एवमेतेन विधिना ये प्रपन्ना महेश्वरम्॥१९॥
अन्येपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेंद्रियाः। ते सर्वे पापमुत्सृज्य विमला ब्रह्मवर्चसः॥२०॥
प्रविशन्ति महादेवं रुद्रं ते त्वपुनर्भवाः॥२१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे तत्पुरुषमाहात्म्यं
नाम त्रयोदशोध्यायः॥१३॥

गाय को दे दिया।।११।। उसके बाद ब्रह्मा ने उसको ध्यान योग से परमेश्वर जानकर लोकगुरु शिव से उसको ले लिया (स्वीकार कर लिया)।।१२।। ब्रह्मा रुद्र गायत्री पर ध्यान करते हुये अपने में नियन्त्रित हुये। महादेव द्वारा बताई गई विधि से रुद्र गायत्री का जप करते हुये और यह अनुभव करते हुये कि यह वैदिक ज्ञान है, सब लोकों द्वारा नमस्कृत ब्रह्मा ध्यान युक्त मन से शिव को प्राप्त हुये।।१३-१४।। तब शिव ने उनको बहुत ज्ञान से पूर्ण दिव्य योग, ऐश्वर्य, ज्ञान की सम्पत्ति और वैराग्य को दिया।।१५।। उसके बाद उनके पार्श्व (बगल) से दिव्य पुत्र उत्पन्न हुये। वे पीली मालायें, पीली पोशाक, पीले कंठहार पहने थे। वे अपने सिर पर पीली पगड़ी धारण किये हुये थे। उनके चेहरे और सिर के बाल पीले थे। विमल तेज वाले, द्योतात्मा और तप से प्रसन्न रहने वाले ब्राह्मणों के हितैषी, महान् कल्पों में रत मुनियों को महायोग की शिक्षा देने वाले वे लोग एक हजार वर्ष तक उपदेश देकर महेश्वर के शरीर में प्रविष्ट (शिव में लीन) हो गये। इस प्रकार अन्य व्यक्ति भी जो इस विधि से महेश्वर की शरण में प्राप्त होते हैं—जो कि नियतात्मा, ध्यान से युक्त और जितेन्द्रिय, विमल और ब्रह्म तेज से युक्त हैं—वे भी पापों से मुक्त होकर महेश्वर रुद्र में प्रवेश करते हैं और पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं।।१६-२१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में तत्पुरुष माहात्म्य
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

अघोरोत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

ततस्तस्मिन्गते कल्पे पीतवर्णे स्वयंभुवः। पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु कल्पो नाम्नाऽसितस्तु सः॥१॥
एकार्णवे तदा वृत्ते द्विव्ये वर्षसहस्रके। स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिंतयामास दुःखितः॥२॥
तस्य चिंतयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभोः। कृष्णः समभवद्वर्णो ध्यायतः परमेष्ठिनः॥३॥
अथापश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम्। कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा॥४॥
कृष्णांबरधरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम्। कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्त्रगनुलेपनम्॥५॥
स तं दृष्ट्वा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम्। ववंदे देवदेवेशमद्भुतं कृष्णपिंगलम्॥६॥
प्राणायामपरः श्रीमान् हृदि कृत्वा महेश्वरम्। मनसा ध्यानयुक्तेन प्रपन्नस्तुतमीश्वरम्॥७॥
अघोरं तु ततो बह्मा ब्रह्मरूपं व्यचिंतयत्। तथा वै ध्यायमानस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥८॥
प्रददौ दर्शनं देवो ह्यघोरो घोरविक्रमः। अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्त्रगनुलेपनाः॥९॥
चत्वारस्तु महात्मानः संबभूवुः कुमारकाः।
कृष्णः कृष्णशिखश्चैव कृष्णास्यः कृष्णवस्त्रधृक्॥१०॥
ततो वर्षसहस्त्रं तु योगतः परमेश्वरम्। उपासित्वा महायोगं शिष्येभ्यः प्रददुः पुनः॥११॥

चौदहवाँ अध्याय

अघोर की उत्पत्ति

सूत बोले

जब पीतकल्प बीत गया तब असित (कृष्ण) नामक कल्प प्रारम्भ हुआ। उस कल्प में स्वयं, ब्रह्मा कृष्ण वर्ण हो गये। जब विश्व एक विस्तृत जल का सागर हो गया और दिव्य एक हजार वर्ष बीत गया। ब्रह्मा की इच्छा सृष्टि की रचना करने की हुई। वे दुःखित होकर चिन्ता करने लगे।।१-२।। पुत्र की कामना से चिन्ता करते हुये परमेष्ठी भगवान ब्रह्मा कृष्ण वर्ण (काले रंग) के हो गये।।३।। तब महातपस्वी ब्रह्मा ने अपने सामने उत्पन्न एक बालक को देखा। उसका रंग काला था किन्तु वह महा पराक्रमी और अपने तेज से दीप्यमान था। वह काली पोशाक पहने, शिर पर काली पगड़ी, गले में काली माला डाले था। वह अपने शरीर पर काला वस्त्र धारण किये कृष्ण पिंगल रंग का था। घोर पराक्रमी किन्तु भयानक महात्मा अघोर को देखकर ब्रह्मा ने उसको प्रणाम किया।।४-६।। तब श्रीमान् ब्रह्मा प्राणायाम करने में लग गये। उन्होंने अपने हृदय में मन से महेश्वर शिव का ध्यान किया। तब ब्रह्मा ने अघोर को ब्रह्म के रूप में जाना। तब ध्यान करते हुए ब्रह्मा को घोर पराक्रमी अघोर ने दर्शन दिया। उसके बाद उसके पार्श्व (बगल) से चार पुत्र उत्पन्न हुए। वे काले रंग के, काली माला पहने और काली शिखा वाले, काले चेहरे वाले और काले वस्त्रधारी थे।।७-१०।। उन्होंने योग से एक हजार वर्ष तक

योगेन योगसंपन्नाः प्रविश्य मनसा शिवम्। अमलं निर्गुणं स्थानं प्रविष्टा विश्वमीश्वरम्॥१२॥
एवमेतेन योगेन येऽपि चान्ये मनीषिणः। चिंतयंति महादेवं गंतारो रुद्रमव्ययम्॥१३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे अघोरोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

परमेश्वर शिव की उपासना करके फिर शिष्यों को महायोग का प्रशिक्षण दिया। योग से योगसम्पन्न होकर मन से शिव का चिन्तन किया। वे शिव के निर्मल और निर्गुण क्षेत्र को प्राप्त हुए। जो अन्य विद्वान लोग भी इस योग के द्वारा महादेव, अव्यय, रुद्र का चिन्तन करते हैं। वे भी रुद्र को प्राप्त होते हैं।।११-१३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में अघोरोत्पत्ति वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

अघोरेशमाहात्म्यम्

सूत उवाच

ततस्तस्मिन् गते कल्पे कृष्णवर्णे भयानके। तुष्टाव देवदेवेशं ब्रह्मा तं ब्रह्मरूपिणम्॥१॥
अनुगृह्य ततस्तुष्टो ब्रह्माणमवदद्धरः। अनेनैव तु रूपेण संहरामि न संशयः॥२॥
ब्रह्महत्यादिकान् घोरोस्तथान्यानपि पातकान्। हीनांश्चैव महाभाग तथैव विविधान्यपि॥३॥
उपपातकमप्येवं तथा पापानि सुव्रत। मानसानि सुतीक्ष्णानि वाचिकानि पितामह॥४॥
कायिकानि सुमिश्राणि तथा प्रासंगिकानि च। बुद्धिपूर्वं कृतान्येव सहजागंतुकानि च॥५॥
मातृदेहोत्थितान्येवं पितृदेहे च पातकम्। संहरामि न संदेहः सर्वं पातकजं विभो॥६॥
लक्षं जप्त्वा ह्यघोरेभ्यो ब्रह्महा मुच्यते प्रभो। तदर्धं वाचिके वत्स तदर्धं मानसे पुनः॥७॥
चतुर्गुणं बुद्धिपूर्वे क्रोधादष्टगुणं स्मृतम्। वीरहा लक्षमात्रेण भ्रूणहा कोटिमभ्यसेत्॥८॥
मातृहा नियुतं जप्त्वा शुद्ध्यते नात्र संशयः। गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च स्त्रीघ्नः पापयुतो नरः॥९॥
अयुताघोरमभ्यस्य मुच्यते नात्र संशयः। सुरापो लक्षमात्रेण बुद्ध्याबुद्ध्यापि वै प्रभो॥१०॥
मुच्यते नात्र संदेहस्तदर्धेन च वारुणीम्। अस्नाताशी सहस्रेण अजपी च तथा द्विजः॥११॥

पंद्रहवाँ अध्याय

अघोरेश माहात्म्य

सूत बोले

भयानक उस कृष्ण वर्ण कल्प के समाप्त होने पर ब्रह्मा ने ब्रह्मरूपी देव देवेश अघोर की स्तुति की। तब अनुग्रह करके अघोर रूपी शिव प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्रह्मा को आंशीर्वाद दिया।।१।। अघोर ने कहा इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मैं इसी रूप से ब्रह्म हत्या सहित सब प्रकार के पापों का नाश करता हूँ। हे सुव्रत! हे महाभाग! मैं छोटे और बड़े सभी पापों तथा उसी प्रकार के विविध पापों, मिश्रित मानसिक पापों, वाचिक पापों और कायिक सुतीक्ष्ण पापों, प्रासंगिक पापों, जान-बूझकर किये गये पापों, और अज्ञान वश किये गये पापों को मातृ और पिता के देहों से किये गये पापों का नाश करता हूँ।।२-६।। हे विभो! अघोर मन्त्र का एक लाख बार जप करने से मनुष्य ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्त हो जाता है। हे वत्स! उसकी आधी संख्या में जप करने से वाचिक और उसका भी आधा जप करने से मानसिक पाप नष्ट हो जाता है। जान-बूझकर किया पाप उसका चौगुना जप करने से और क्रोधवश किये गये पाप उसके आठ गुनी संख्या में जप करने से नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा हत्या का पाप एक करोड़ बार जप से शुद्ध होता है। माता की हत्या करने वाला सौ हजार बार अघोर मन्त्र जपने, गो हत्या का, कृतघ्न और स्त्री का हत्यारा दस हजार बार जपने से पाप मुक्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है। इच्छा से जानकर या अनजाने शराब पीने वाला एक लाख जप करने से, तथा वारुणी पीने वाला आधा लाख जप करने से पाप से

अहुताशी सहस्त्रेण अदाता च विशुद्ध्यति। ब्राह्मणस्वापहर्ता च स्वर्णस्तेयी नराधमः॥१२॥
नियुतं मानसं जप्त्वा मुच्यते नात्र संशयः। गुरुतल्परतो वापि मातृघ्नो वा नराधमः॥१३॥
ब्रह्मघ्नश्च जपेदेवं मानसं वै पितामह। संपर्कात्पापिनां पापं तत्समं परिभाषितम्॥१४॥
तथाप्ययुतमात्रेण पातकाद्वै प्रमुच्यते। संसर्गात्पातकी लक्षं जपेद्वै मानसं धिया॥१५॥
उपांशु यच्चतुर्धा वै वाचिकं चाष्टधा जपेत्। पातकादर्धमेव स्यादुपपातकिनां स्मृतम्॥१६॥
तदर्धं केवले पापे नात्र कार्या विचारणा। ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयमेव च॥१७॥
कृत्वा च गुरुतल्पं च पापकृद् ब्राह्मणो यदि। रुद्रगायत्रिया ग्राह्यं गोमूत्रं कापिलं द्विजाः॥१८॥
गंधद्वारेति तस्या वै गोमयं स्वस्थमाहरेत्। तेजोसि शुक्रमित्याज्यं कापिलं संहरेद्बुधः॥१९॥
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णोति चाहरेत्। गव्यं दधि नवं साक्षात्कापिलं वै पितामह॥२०॥
देवस्य त्वेतिमंत्रेण संग्रहेद्वै कुशोदकम्। एकस्थं हेमपात्रे वा कृत्वाघोरेण राजते॥२१॥
ताम्रे वा पद्मपत्रे वा पालाशे वा दले शुभे। सकूर्चं सर्वरत्नाढ्यं क्षिप्त्वा तत्रैद कांचनम्॥२२॥
जपेल्लक्षमघोराख्यं हुत्वा चैव घृतादिभिः। घृतेन चरुणा चैव समिद्भिश्च तिलैस्तथा॥२३॥

मुक्त होता है इसमें सन्देह नहीं। बिना स्नान किये भोजन करने वाला एक हजार तथा बिना हवन किये, तथा दूसरे को बिना दिये, भोजन करने वाला एक हजार बार जप करने से शुद्ध होता है। वह नीच व्यक्ति जो ब्राह्मण का धन अपहरण करता है या स्वर्ण चुराता है, सौ हजार बार मानसिक जप करने से पाप मुक्त होता है। इसमें संशय नहीं है। इसी प्रकार गुरु की शैय्या पर लेटने वाला, माता की हत्या करने वाला या ब्राह्मण का बध करने वाला उतनी ही बार मानसिक जाप करे।।७-१३।। अन्य पापियों के सम्पर्क करने से जो पाप होता है यह भी मूल पापी के बराबर होता है। फिर भी दस हजार बार अघोर मन्त्र के जपने से वह शुद्ध होता है। पापी के सम्पर्क से मन से किये हुये पाप से मुक्ति एक लाख बार जप करने से होती है। यदि धीमे बोलकर पाप करे तो उस मन्त्र की संख्या का चार गुना और जोर से बोल कर पाप कर्म करे तो इस संख्या का आठ गुना जप करना चाहिए। मुख्य पापी के साथ उपपातकियों (पापी के साथ मिलकर पाप करने वालों) को उस संख्या का आधा ही जप करना चाहिए। यदि अनजाने में पाप किया हो तो उस पापी को उस संख्या का आधा ही जप करना चाहिए। हे ब्राह्मणों! यदि कोई पापी ब्राह्मण किसी ब्राह्मण की हत्या करे, शराब पिये, सुवर्ण चुराये और गुरु की शय्या पर लेटे तो वह आगे कही गई विधि से प्रायश्चित करे।।१४-१७।। वह कपिला गाय का मूत्र रुद्र गायत्री जपते हुए ग्रहण करे। 'गंध द्वारा' मन्त्र पढ़कर कपिला या वैसी ही दूसरी गाय का ताजा गोबर ले ले। 'तेजोऽसि शुक्रम्' इस मन्त्र से कपिला या वैसी ही गाय का घी ले ले। 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से कपिला या वैसी ही गाय के दूध ले ले। 'दधिक्राव्णो' इस मन्त्र से कपिला या वैसी गाय के दूध का ताजा दही ले ले। इन सब को कुश के जल से 'देवस्य त्वां' इस मन्त्र से सब को एक में मिलाकर सोने, चाँदी, ताँबा में से बने किसी पात्र में या कमल या पलाश के बड़े दोने में अघोर मन्त्र पढ़कर रख ले। उस पर कई प्रकार के रत्न और सोने के टुकड़े एक कुश सहित डाल दे।।१८-२२।। तब वह अघोर मन्त्र को सौ हजार बार जपे और घी, चरु, समिधा, तिल, यव और चावल से अलग-अलग एक-एक चीज से सात बार हवन करे। यदि ये सामग्री उपलब्ध न हो तो घी से हवन करे।

यवैश्च व्रीहिभिश्चैच जुहुयाद्वै पृथक्पृथक्। प्रत्येकं सप्तवारं तु द्रव्यालाभे घृतेन तु॥२४॥
हुत्वाधोरेण देवेशं स्नात्वाऽघोरेण वै द्विजाः। अष्टद्रोणघृतेनैव स्नाप्य पश्चाद्विशोध्य च॥२५॥
अहोरात्रोषितः स्नातः पिबेत्कूर्चं शिवाग्रतः। ब्राह्मं ब्रह्मजपं कुर्यादाचम्य च यथाविधि॥२६॥
एवं कृत्वा कृतघ्नोऽपि ब्रह्महा भ्रूणहा तथा। वीरहा गुरुघाती च मित्रविश्वासघातकः॥२७॥
स्तेयी सुवर्णस्तेयी च गुरुतल्परतः सदा। मद्यपो वृषलीसक्तः परदारविधर्षकः॥२८॥
ब्रह्मस्वहा तथा गोघ्नो मातृहा पितृहा तथा। देवप्रच्यावकश्चैव लिंगप्रध्वंसकस्तथा॥२९॥

तथान्यानि च पापानि मानसानि द्विजो यदि।
वाचिकानि तथान्यानि कायिकानि सहस्रशः॥३०॥

कृत्वा विमुच्यते सद्यो जन्मांतरशतैरपि। एतद्रहस्यं कथितमघोरेशप्रसंगतः॥३१॥

तस्माज्जपेद्विजो नित्यं सर्वपापविशुद्धये॥३२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽघोरेशमाहात्म्यं
नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

हे ब्राह्मणों! अघोर मन्त्र पढ़ते हुए वह अघोर शिव को घी से स्नान करावे और होम करे। वह आठ द्रोण[1] घी से स्नान कराके मूर्ति को वस्त्र से साफ करके पोंछ दे। तब वह दिन-रात उपवास करे। पवित्र स्नान करे और शिव की प्रतिमा के सामने कूर्च[2] को पिये। ये सब धार्मिक क्रियाओं को करके आचमन करे और गायत्री मन्त्र का जप करे।।२३-२६।। इसके करने से आगे लिखे सब पापियों को पापों से मुक्ति मिल जाती है। कृतघ्न व्यक्ति, ब्राह्मण हत्या करने वाला, भ्रूण हत्या करने वाला, वीर की हत्या करने वाला, गुरु की हत्या करने वाला, मित्र घाती, विश्वासधाती, चोर, स्वर्ण चोर, गुरु शय्यागामी, शराबी (नसेड़ी), शूद्रा स्त्री से संभोगी, पराई स्त्री से संभोगी, ब्राह्मण की धन-सम्पत्ति अपहरण कर्त्ता, गो हत्या कर्त्ता, माता और पिता की हत्या कर्त्ता, मूर्तिभंजक, शिव लिङ्ग भंजक (तोड़ने वाला) तथा अन्य प्रकार के मानसिक वाचिक और कायिक पाप चाहे वे पाप हजार बार किये गये हों, उन सब पापों से मुक्ति मिल जाती है। यहाँ तक कि हजारों जन्मों के पूर्व कृत पापों से भी छुटकारा मिल जाता है। अघोर शिव ने स्वयं प्रसंगवश यह मुझसे कहा था। इसलिए सब पापों से मुक्ति के लिए इस क्रिया और जप को करना चाहिए।।२७-३२।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में अघोरेश माहात्म्य
नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥१५॥

---

१. चार आढक या १०२४ मूंठी तौल में।
२. कुशों का गुच्छा।

षोडशोऽध्यायः

ईशानमाहात्म्यम्

सूत उवाच

अथान्यो ब्रह्मणः कल्पो वर्तते मुनिपुंगवाः। विश्वरूप इति ख्यातो नामतः परमाद्भुतः॥१॥
विनिवृत्ते तु संहारे पुनः सृष्टे चराचरे। ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः॥२॥
प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती। विश्वमाल्यांबरधरा विश्वयज्ञोपवीतिनी॥३॥
विश्वोष्णीषा विश्वगंधा विश्वमाता महोष्ठिका। तथाविधं स भगवानीशानं परमेश्वरम्॥४॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं सर्वाभरणभूषितम्। अथ तं मनसा ध्यात्वा युक्तात्मा वै पितामहः॥५॥
ववंदे देवमीशानं सर्वेशं सर्वगं प्रभुम्। ओमीशान नमस्तेऽस्तु महादेव नमोस्तु ते॥६॥
नमोस्तु सर्वविद्यानामीशान परमेश्वर। नमोस्तु सर्वभूतानामीशान वृषवाहन॥७॥
ब्रह्मणोधिपते तुभ्यं ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे। नमो ब्रह्माधिपतये शिवं मेऽस्तु सदाशिव॥८॥
ओंकारमूर्ते देवेश सद्योजात नमोनमः। प्रपद्ये त्वां प्रपन्नोऽस्मि सद्योजाताय वै नमः॥९॥
अभवे च भवे तुभ्यं तथा नातिभवे नमः। भवोद्भव भवेशान मां भजस्व महाद्युते॥१०॥
वामदेव नमस्तुभ्यं ज्येष्ठाय वरदाय च। नमो रुद्राय कालाय कलनाय नमो नमः॥११॥

सोलहवाँ अध्याय

ईशान माहात्म्य

सूत बोले

हे मुनीश्वरों! इसके बाद ब्रह्मा का परम प्रसिद्ध विश्वरूप नामक कल्प का प्रारम्भ हुआ।।१।। जब प्रलय काल समाप्त हुआ और चर और अचर सब की सृष्टि हुई तब परमेष्ठी ब्रह्मा ने पुत्रों की कामना से ध्यान करते हुए उनके सामने विश्वरूप में महानाद (ध्वनि) करने वाली सरस्वती स्वयं प्रकट हुईं। वे विश्व मालाएँ और वस्त्र धारण किये हुये, पवित्र यज्ञोपवीत और पगड़ी पहने थीं। विश्व की माता, सब विश्व गंधों से युक्त, लम्बे ओष्ठ वाली थीं। युक्तात्मा ब्रह्मा ने अपने ध्यान योग के द्वारा भगवान ईशान का ध्यान किया जो शुद्ध स्फटिक के समान और सब आभूषणों से विभूषित थे। उन्होंने सर्वेश, सर्वव्यापी प्रभु ईशान की वन्दना की। हे ॐ! हे ईशान! हे महादेव! आप को नमस्कार! हे सब विद्याओं के ज्ञाता आपको नमस्कार। हे सब प्राणियों के स्वामी! हे वृषवाहन! आप को नमस्कार।।२-७।। हे ब्रह्मा के अधिपति! आप को नमस्कार। ब्रह्म के रूप में ब्रह्म आप को नमस्कार। ब्रह्म के अधिपति को नमस्कार। हे सदाशिव! मेरा कल्याण हो।।८।। हे ओंकार के प्रतिनिधि! आप को नमस्कार। हे देवेश! हे सद्योजात! आप को नमस्कार। मैं आप को प्राप्त हूँ। मैं सद्योजात को प्राप्त हूँ (उनकी शरण में हूँ)।।९।। अभव, भव और अतिभव जन्म के स्रोत और सांसारिक अस्तित्व से बाहर आप को नमस्कार।।१०।। हे वामदेव! आप को नमस्कार। ज्येष्ठ और वरदायक आप को नमस्कार। रुद्र को, काल को और काल का कलन

नमो विकरणायैव कालवर्णाय वर्णिने। बलाय बलिनां नित्यं सदा विकरणाय ते॥१२॥
बलप्रमथनायैव बलिने ब्रह्मरूपिणे। सर्वभूतेश्वराय भूतानां दमनाय च॥१३॥
मनोन्मनाय देवाय नमस्तुभ्यं महाद्युते। वामदेवाय वामाय नमस्तुभ्यं महात्मने॥१४॥
ज्येष्ठाय चैव श्रेष्ठाय रुद्राय वरदाय च। कालहंत्रे नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं महात्मने॥१५॥
इति स्तवेन देवेशं ननाम वृषभध्वजम्। यः पठेत् सकृदेवेह ब्रह्मलोकंगमिष्यति॥१६॥
श्रावयेद्वा द्विजान् श्राद्धे स याति परमां गतिम्। एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमंतं पितामहम्॥१७॥
उवाच भगवानीशः प्रीतोहं ते किमिच्छसि। ततस्तु प्रणतो भूत्वा वाग्विशुद्धं महेश्वरम्॥१८॥
उवाच भगवान् रुद्रं प्रीतं प्रीतेन चेतसा। यदिदं विश्वरूपं ते विश्वगौः श्रेयसीश्वरी॥१९॥
एतद्वेदितुमिच्छामि यथेयं परमेश्वर। कैषा भगवती देवी चतुष्पादा चतुर्मुखी॥२०॥
चतुःश्रृंगी चतुर्वक्त्रा चतुर्दंष्ट्रा चतुःस्तनी। चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथं स्मृता॥२१॥
किंनामगोत्रा कस्येयं किंवीर्या चापि कर्मतः। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो वृषध्वजः॥२२॥
प्राह देववृषं ब्रह्मा ब्रह्माणं चात्मसंभवम्। रहस्यं सर्वमंत्राणां पावनं पुष्टिवर्धनम्॥२३॥
श्रृणुष्वैतत्परं गुह्यमादिसर्गे यथा तथा। एवं यो वर्तते कल्पो विश्वरूपस्त्वसौ मतः॥२४॥
ब्रह्मस्थानमिदं चापि यत्र प्राप्तं त्वया प्रभो। त्वत्तः परतरं देव विष्णुना तत्पदं शुभम्॥२५॥

करने वाले आप को नमस्कार।।११।। मन के स्वामी, काले वर्ण वाले, ब्रह्मचारियों के प्रभु, बलवानों के बल को, और इन्द्रियों और उनके क्रियाओं से रहित को नमस्कार।।१२।। बल के नाशकर्त्ता को, बल को, ब्रह्मरूप को नमस्कार। सब प्राणियों के स्वामी को, प्राणियों के दमनकर्त्ता को नमस्कार।।१३।। मन के उत्पन्न कर्त्ता को नमस्कार, महाद्युति कान्ति को नमस्कार, शरणदायक वामदेव को नमस्कार और महान् आत्मा को नमस्कार।।१४।। ज्येष्ठ और श्रेष्ठ, वरदायक, रुद्र को नमस्कार। काल के हंता को नमस्कार, महान् आत्मा आप को नमस्कार।।१५।। इस स्तुति से ब्रह्मा ने देवेश का स्तवन करके उनको प्रणाम किया। वह व्यक्ति जो कि यहाँ इसको एक बार भी पढ़ता है, वह ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है (जाने का अधिकारी होता है)।।१६।। जो श्राद्ध के समय में इस स्तुति को ब्राह्मणों को सुनाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है। जब ब्रह्मा को इस प्रकार स्तुति करने के बाद प्रणाम करते हुए देखा तो भगवान ईशान ने कहा, 'मैं तुम से प्रसन्न हूँ। क्या चाहते हो?' तब ब्रह्मा ने प्रसन्न रुद्र को प्रणाम किया और प्रसन्न मन से स्पष्ट शब्दों में कहा—'हे प्रभो! मैं आप के इस विश्व रूप को देखना चाहता हूँ। यहाँ यह विश्वरूप गौ है। यह कल्याण करने वाली देवी है जिसके चार पैर, चार चेहरे, चार सींग, चार मुख, चार टेढ़े दाँत, चार स्तन, चार हाथ, और चार नेत्र हैं। इसका नाम और गोत्र क्या है? यह किसकी है? यह विश्वरूपा नाम से क्यों जानी जाती है? इसकी कर्म से क्या शक्ति है?' ब्रह्मा की इन बातों को सुनकर देवेश वृषध्वज ईशान ने स्वयंभू और देवों में श्रेष्ठ ब्रह्मा से कहा। 'सब मन्त्रों का रहस्य, पवित्र और ऐश्वर्यदायक यह परम रहस्य (गुह्य) ध्यानपूर्वक सुनो।।१७-२३।। प्रथम सृष्टि में अब जो चालू विश्वरूप कल्प है, हे ब्रह्मा! मेरे वाम अंग से उत्पन्न विष्णु द्वारा अधिष्ठित एक शुभ स्थान (पद) है जो तुमने प्राप्त किया है, उस ब्रह्मस्थान से

वैकुंठेन विशुद्धेन मम वामांगजेन वै। तदाप्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंशत्तमो ह्ययम्॥२६॥
शतं शतसहस्राणामतीता ये स्वयंभुवः। पुरस्तात्तव देवेश तच्छृणुष्व महामते॥२७॥
आनंदस्तु स विज्ञेय आनंदत्वे व्यवस्थितः। मांडव्यगोत्रस्तपसा मम पुत्रत्वमागतः॥२८॥
त्वयि योगं च सांख्यं च तपोविद्याविधिक्रियाः। ऋतं सत्यं दया ब्रह्म अहिंसा सन्मतिः क्षमा॥२९॥

ध्यानं ध्येयं दमः शांतिर्विद्याऽविद्या मतिर्धृतिः।
कांतिर्नीतिः प्रथा मेधा लज्जा दृष्टिः सरस्वती॥३०॥

तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव प्रसादश्च प्रतिष्ठिताः। द्वात्रिंशत्सुगुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसंज्ञया॥३१॥
प्रकृतिर्विहिता ब्रह्मंस्त्वत्प्रसूतिर्महेश्वरी। विष्णोर्भगवतश्चापि तथान्येषामपि प्रभो॥३२॥
सैषा भगवती देवी मत्प्रसूतिः प्रतिष्ठिता। चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रतिष्ठिता॥३३॥
गौरी माया च विद्या च कृष्णा हैमवतीति च। प्रधानं प्रकृतिश्चैव यामाहुस्तत्त्वचिंतकाः॥३४॥

अजामेकां लोहितां शुक्लकृष्णां विश्वप्रजां सृजमानां सरूपाम्।
अजोहं मां विद्धि तां विश्वरूपं गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्ध्या॥३५॥

एवमुक्त्वा महादेवः ससर्ज परमेश्वरः। ततश्च पार्श्वगा देव्याः सर्वरूपकुमारकाः॥३६॥

परतर अर्थात् बाहर है। तब, उस समय यह बत्तीसवाँ कल्प प्रारम्भ हुआ।।२४-२६।। हे महा बुद्धिमान्! हे देवेश! तुम्हारे सामने सैकड़ों और सैकड़ों हजारों ब्रह्मा बीत गये (गुजर गये)।।२७।। अब सुनो। तुम जो मांडव्य गोत्र के एक भक्त हो, तपस्या से मेरे पुत्रत्व को प्राप्त हुए हो। आनन्द में स्थित होकर तुम परमेश्वर को प्राप्त करोगे।।२८।। तुम निम्नलिखित गुणों से युक्त हो—(१) योग (२) सांख्य (३) तप (४) विद्या (५) विधि (शास्त्रीय विधान) (६) क्रिया (धार्मिक कृत्य) (७) ऋत (८) सत्य (९) दया (१०) ब्रह्म (वैदिक ज्ञान) (११) अहिंसा (१२) अव्यभिचारिणी बुद्धि (१३) क्षमा (१४) ध्यान (१५) ध्येय (ईश्वर का सानिध्य) (१६) दम (इन्द्रिय निग्रह) (१७) शान्ति (१८) विद्या (ज्ञान) (१९) अविद्या (माया) (२०) मति (बुद्धि) (२१) धृति (धैर्य) (२२) कान्ति (द्युति) (२३) नीति (न्यायपूर्ण व्यवहार) (२४) प्रथा (ख्याति) (२५) मेधा (धारणा वाली बुद्धि) (२६) लज्जा (२७) दृष्टि (दिव्य ज्ञान) (२८) सरस्वती (मधुरवाणी) (२९) तुष्टि (संतोष) (३०) पुष्टि (इन्द्रियपाटव) (३१) क्रिया (वेदविहित कर्म) (३२) प्रसाद (प्रसन्नता) जबकि देवी बत्तीस गुणों से बत्तीस अक्षर संज्ञा से अपने परिचय योग्य हैं।।२९-३१।। हे ब्रह्मा! देवी प्रकृति, तुम्हारे उत्पत्ति का स्रोत, मेरे द्वारा रची गई है। वह भगवान विष्णु से तथा अन्य देवों से भी बड़ी है। यह मेरी प्रसूति (सन्तान) है। यह चार मुखों वाली, जगत् को उत्पन्न करने वाली, प्रकृति, गौ, गौरी, माया, विद्या, कृष्णा, हैमवती, प्रकृति या प्रधान इन अनेक नामों से इस देवी को पुकारते हैं।।३२-३४।। यह केवल अजा (अजन्मा) है। यह रंग में लाल, श्वेत और काली है। यह जगत् में प्रजाओं की सृष्टि करती है जो कि स्वयं उसके रूप हैं। मैं अज हूँ। मैं सर्व व्यापक हूँ और इस देवी को अपने बुद्धि से विश्वरूप में गायत्री जानो।' ऐसा कहकर महादेव परमेश्वर ईशान ने देवी के पार्श्व से सर्वरूप चार पुत्रों को उत्पन्न किया। वे जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुंड नाम से प्रसिद्ध हुए।

जटी मुंडी शिखंडी च अर्धमुंडश्च जज्ञिरे। ततस्तेन यथोक्तेन योगेन सुमहौजसः॥३७॥
दिव्यवर्षसहस्रांते उपासित्वा महेश्वरम्। धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा योगमयं दृढम्॥३८॥
शिष्टाश्च नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम्॥३९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ईशानमाहात्म्यकथनं
नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

महातेजस्वी उन चारों ने योगाभ्यास में दक्ष होकर हजार दिव्य वर्ष महेश्वर की सेवा करके सम्पूर्ण धर्मोपदेश किया। उन्होंने योगाभ्यास के मार्ग का अनुसरण किया। वे सदाचरण का पालन कर्त्ता और आत्मा को अपने वश में करने वाले चारों पुत्र अन्त में भगवान रुद्र में प्रविष्ट हुए।।३५-३९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में ईशान माहात्म्य
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥१६॥

—❋❋❋—

सप्तदशोऽध्यायः

लिङ्गोद्भवः

सूत उवाच

एवं संक्षेपतः प्रोक्तः सद्यादीनां समुद्भवः। यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्॥१॥
स याति ब्रह्मसायुज्यं प्रसादात्परमेष्ठिनः।

ऋषय ऊचुः

कथं लिंगमभूल्लिंगे समभ्यर्च्यः स शंकरः॥२॥
किं लिंगं कस्तथा लिंगी सूत वक्तुमिहार्हसि।

रोमहर्षण उवाच

एवं देवाश्च ऋषयः प्रणिपत्य पितामहम्॥३॥
अपृच्छन् भगवाँल्लिगं कथमासीदिति स्वयम्। लिंगे महेश्वरो रुद्रः समभ्यर्च्यः कथं त्विति॥४॥
किं लिंगं कस्तथा लिंगी सोप्याह च पितामहः।

पितामह उवाच

प्रधानं लिंगमाख्यातं लिंगी च परमेश्वरः॥५॥
रक्षार्थमंबुधौ मह्यं विष्णोस्त्वासीत्सुरोत्तमाः। वैमानिके गते सर्गे जनलोकं सहर्षिभिः॥६॥

सत्तरहवाँ अध्याय

लिंग की उत्पत्ति

सूत बोले

इस प्रकार संक्षेप में मैंने सद्य आदि की उत्पत्ति को बताया। जो इनको पढ़े, सुने या उत्तम ब्राह्मणों को सुनावे वह ब्रह्मा की कृपा से ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त होगा।।१।।

ऋषिगण बोले

लिङ्ग का उद्भव कैसे हुआ? लिङ्ग में अभ्यर्च्य (पूज्य) शंकर जी कैसे हुए? यह लिङ्ग क्या है? लिङ्गी कौन है? हे सूत! यह आप हम लोगों को बतायें।।२।।

रोमहर्षण बोले

देवताओं और ऋषियों ने ब्रह्मा को प्रणाम करके उनसे पूछा, हे भगवान! लिङ्ग त्वयं कैसे उद्भव (उत्पन्न) हुआ? लिङ्ग में भगवान रुद्र की पूजा कैसी की जानी चाहिये? लिङ्ग क्या है? लिङ्गी कौन है?

ब्रह्मा बोले

प्रधान लिङ्ग है और भगवान दूसरे लिङ्गी हैं।।३-५।। हे उत्तम देवताओं! हम दोनों अर्थात् मुझ ब्रह्मा और विष्णु की रक्षा के लिए समुद्र में लिङ्ग स्वयं प्रकट हुआ। यह तब हुआ जब कि वैमानिक रथ महर्षियों के साथ

स्थितिकाले तदा पूर्णे ततः प्रत्याहृते तथा। चतुर्युगसहस्त्रांते सत्यलोकं गते सुराः॥७॥
विनाधिपत्यं समतां गतेऽन्ते ब्रह्मणो मम। शुष्के च स्थावरे सर्वे त्वनावृष्ट्या च सर्वशः॥८॥
पशवो मानुषा वृक्षाः पिशाचाः पिशिताशनाः। गंधर्वाद्याः क्रमेणैव निर्दग्धा भानुभानुभिः॥९॥
एकार्णवे महाघोरे तमोभूते समंततः। सुष्वापांभसि योगात्मा निर्मलो निरुपप्लवः॥१०॥
सहस्त्रशीर्षा विश्वात्मा सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्। सहस्त्रबाहुः सर्वज्ञः सर्वदेवभवोद्भवः॥११॥
हिरण्यगर्भो रजसा तमसा शंकरः स्वयम्। सत्त्वेन सर्वगो विष्णुः सर्वात्मत्वे महेश्वरः॥१२॥
कालात्मा कालनाभस्तु शुक्लः कृष्णस्तु निर्गुणः।
नारायणो महाबाहुः सर्वात्मा सदसन्मयः॥१३॥
तथाभूतमहं दृष्ट्वा शयानं पंकजेक्षणम्। मायया मोहितस्तस्य तमवोचममर्षितः॥१४॥
कस्त्वं वदेति हस्तेन समुत्थाप्य सनातनम्। तदा हस्तप्रहारेण तीव्रेण स दृढेन तु॥१५॥
प्रबुद्धोहीयशयनात्समासीनः क्षणं वशी। ददर्श निद्राविक्लिन्ननीरजामललोचनः॥१६॥
मामग्रे संस्थितं भासाध्यासितो भगवान् हरिः। आह चोत्थाय भगवान् हसन्मां मधुरं सकृत्॥१७॥
स्वागतंस्वागतं वत्स पितामह महाद्युते। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्मितपूर्वं सुरर्षभाः॥१८॥
रजसा बद्धवैरश्च तमवोचं जनार्दनम्। भाषसे वत्सवत्सेति सर्गसंहारकारणम्॥१९॥

जनलोक को चले गये और तब स्थिति काल पूर्ण होने पर तथा सृष्टि बदलने पर एवं हजारों चतुर्युग के अन्त होने पर, वे सत्यलोक को चले गये, और अन्त में उनके अधिपतियों के बिना, मुझ ब्रह्मा के अस्त होने पर, तब सब चर और अचर अकाल के कारण सूख गये। इसके अतिरिक्त मनुष्य, पशु, वृक्ष, पिशाच, राक्षस और गन्धर्व गण सूर्य की किरणों से जलकर भस्म हो गये। सब जगत् जल कर एक सागर बन गया। चारों ओर घोर अचानक अंधकार छा गया। सब विपत्तियों से मुक्त, पवित्र, योगात्मा भगवान विष्णु इस जल के सागर में सो गये। उनके हजार शिर थे। हजार नेत्र, हजार पैर और भुजायें थीं। वह विश्वात्मा, सर्वव्यापक, सब की उत्पत्ति के स्रोत, रजोगुण से युक्त, तमोगुण और सतोगुण युक्त ब्रह्मा के रूप में रुद्र और विष्णु के रूप में थे। वह सर्व व्यापक, सर्वात्मा होने के कारण महेश्वर थे। वह काल नाम के साथ काल के रूप में थे। वह श्वेत, कृष्ण और शुद्ध और महाबाहु, सर्वात्मा और सत् और असत् मय थे।।६-१३।। इस प्रकार कमलनयन देव को सोते हुए देखकर उनकी माया से मोहित होकर मैंने क्रोध में भर कर उनसे पूछा।।१४।। तुम कौन हो? मुझको बताओ। मैंने हाथ से सनातन को उठाया। मेरे हाथ के तीव्र और दृढ़ प्रहार से वह नींद से जाग गये और अपनी शेषनाग की शय्या पर बैठ गये। एक क्षण में वे स्वयं अपने वश में आ गये। उन्होंने अपने लाल-लाल कमल के समान नेत्रों से देखा।।१५-१६।। तेज से परिपूर्ण उन्होंने सामने खड़े हुए मुझसे हँसते हुए कहा।।१७।। हे महा तेजस्वी ब्रह्मा! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। हे पुत्र! हे देवों के अग्रणी! जब मैंने उनके वचन को सुना तो मैंने रजो गुण से उत्तेजित बैर भावना से बद्ध होकर उनसे कहा, "तुम मुझको 'वत्स-वत्स' कहते हो? मैं संसार का सृष्टिकर्त्ता और संहारकर्त्ता हूँ। तुम मुस्कराकर 'वत्स' कहकर मुझको शिष्य और अपने को गुरु मानते हो। लेकिन मैं विश्व का

मामिहांतःस्थितं कृत्वा गुरुः शिष्यमिवानघ। कर्तारं जगतां साक्षात्प्रकृतेश्च प्रवर्तकम्॥२०॥
सनातनमजं विष्णुं विरिंचिं विश्वसंभवम्। विश्वात्मनं विधातारं धातारं पंकजेक्षणम्॥२१॥
किमर्थं भाषसे मोहाद्वक्तुमर्हसि सत्वरम्। सोपि मामाह जगतां कर्ताहमिति लोकय॥२२॥
भर्ता हर्ता भवानंगादवतीर्णो ममाव्ययात्। विस्मृतोऽसि जगन्नाथं नारायणमनामयम्॥२३॥
पुरुषं परमात्मानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। विष्णुमच्युतमीशानं विश्वस्य प्रभवोद्भवम्॥२४॥
तवापराधो नास्त्यत्र मम मायाकृतं त्विदम्। श्रृणु सत्यं चतुर्वक्त्र सर्वदेवेश्वरो ह्ययम्॥२५॥
कर्ता नेता च हर्ता च न मयास्ति समो विभुः। अहमेव परं ब्रह्म परं तत्त्वं पितामह॥२६॥
अहमेव परं ज्येतिः परमात्मा त्वहं विभुः। यद्यदृष्टं श्रुतं सर्वं जगत्यस्मिंश्चराचरम्॥२७॥
तत्तद्विद्धि चतुर्वक्त्र सर्वं मन्मयमित्यथ। मया सृष्टं पुराव्यक्तं चतुर्विंशतिकं स्वयम्॥२८॥
नित्यांता ह्यणवो बद्धाः सृष्टाः क्रोधोद्भवादयः। प्रसादाद्धि भवानंडान्यनेकानीह लीलया॥२९॥
सृष्टा बुद्धिर्मया तस्यामहंकारस्त्रिधा ततः। तन्मात्रापंचकं तस्मान्मनः षष्ठेन्द्रियाणि च॥३०॥
आकाशादीति भूतानि भौतिकानि च लीलया। इत्युक्तवति तस्मिंश्च मयि चापि वचस्तथा॥३१॥
आवयोश्चभावाद्युद्धं सुधोरं रोमहर्षणम्। प्रलयार्णवमध्ये तु रजसा बद्धवैरयोः॥३२॥
एतस्मिन्नन्तरे लिंगमभवच्चावयोः पुरः। विवादशमनार्थं हि प्रबोधार्थं च भास्वरम्॥३३॥
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम्। क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यांतवर्जितम्॥३४॥

स्रष्टा और प्रकृति उन्नायक हूँ। मैं सनातन अज, विश्वात्मा ब्रह्मा हूँ। मैं कमलनयन धाता और विधाता हूँ। मुझको तुरन्त बताओ कि मोह (अज्ञान) वश तुम मुझको 'वत्स' 'पुत्र' क्यों कहते हो?'' उन्होंने मुझको उत्तर दिया। ''देखो, तुम अपने को जगत् का कर्त्ता, भर्त्ता और संहर्त्ता कहते हो किन्तु तुम मेरे शरीर से उत्पन्न हुए हो। तुम भूल गये हो कि मैं विश्व का स्वामी, मैं नारायण, पुरुष, परमात्मा, पुरुहूत, पुरुष्टुत, विष्णु, अच्युत, ईशान और विश्व का उद्भव (मूल स्रोत) हूँ। यह तुम्हारी भूल नहीं है जो तुम मुझको भूल गये हो। यह मेरी माया का प्रभाव है। मुझसे सत्य (असलियत) सुनो। हे ब्रह्मा! मैं ही परम् ब्रह्म हूँ। मैं परम तत्त्व हूँ। मैं परम ज्योति हूँ। मैं परमात्मा और विभु हूँ। हे ब्रह्मा! जो कुछ इस विश्व में देखा और सुना गया है, वह सब चर और अचर वह सब मन्मय (मुझ में लीन) है। और मेरे द्वारा रचे गये हैं। पहले व्यक्त प्रधान चौबीस तत्वों के नित्य अणु मेरे द्वारा रचे गये हैं। क्रोध से चार रुद्र और अन्यों को बनाया। तुम भी मेरी कृपा और लीला से अण्ड से उत्पन्न हुए। बुद्धि तीन प्रकार के अहंकार, दृढ़ पाँच तन्मात्राएँ, मन सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियों को और आकाश आदि भूतों को भी मैंने बनाया।'' ऐसा उनके कहने पर रजो गुण से बँधे हुए हम दोनों के बीच उस प्रलय सागर में रोंगटे खड़ा कर देने वाला घोर भयानक युद्ध हुआ।।१८-३२।। उसी बीच में हम दोनों के विवाद को शान्त करने के लिए तथा प्रबोध (ज्ञान) करने के लिए एक भास्वर (देदीप्यमान) लिङ्ग दिखाई दिया।।३३।। यह हजारों ज्वाला की आभा के समान था। वह सैकड़ों प्रलय काल की अग्नि के समान था। वह दृढ़ था। वह क्षय और वृद्धि से रहित था।

अनौपम्यमनिर्देश्यमव्यक्तं विश्वसंभवम्। तस्य जवालासहस्त्रेण मोहितो भगवान् हरिः॥३५॥
मोहितं प्राह मामत्र परीक्षावोऽग्निसंभवम्। अधोगमिष्याम्यनलस्तंभस्यानुपमस्य च॥३६॥
भवानूर्ध्वं प्रयत्नेन गंतुमर्हसि सत्वरम्। एवं व्याहृत्व विश्वात्मा स्वरूपमकरोत्तदा॥३७॥
वाराहमहमप्याशु हंसत्वं प्राप्तवान्सुराः। तदाप्रभृति मामहुर्हंसं हंसो विराडिति॥३८॥
हंसहंसेति यो ब्रूयान्मां हंसः स भविष्यति। सुश्वेतो ह्यनलाक्षश्च विश्वतः पक्षसंयुतः॥३९॥
मनोनिलजवो भूत्वा गतोहं चोर्ध्वतः सुराः। नारायणोपि विश्वात्मा नीलांजनचयोपमम्॥४०॥
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्। मेरुपर्वतवर्ष्माणं गौरतीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम्॥४१॥
कालादित्यसमाभासं दीर्घघोणं महास्वनम्। ह्रस्वपादं विचित्रांगं जैत्रं दृढमनौपमम्॥४२॥
वाराहमसितं रूपमासथाय गतवानधः। एवं वर्षसहस्त्रं तु त्वरन्विष्णुरधोगतः॥४३॥
नापश्यदल्पमप्यस्य मूलं लिंगस्य सूकरः। तावत्कालं गतोह्यूर्ध्वमहमप्यरिसूदनः॥४४॥
सत्वरं सर्वयत्नेन तस्यान्तं ज्ञातुमिच्छया। श्रांतो ह्यदृष्ट्वा तस्यांतमहङ्कारादधो गतः॥४५॥
तथैव भगवान् विष्णुः श्रांतःसंत्रस्तलोचनः। सर्वदेवभवस्तूर्णमुत्थितः स महावपुः॥४६॥
समागतो मया सार्धं प्रणिपत्य महामनाः। मायया मोहितः शंभोस्तस्थौ संविग्नमानसः॥४७॥

उसका न आदि था न अन्त था।।३४।। वह अनुपमेय था और विशिष्ट था। वह अव्यक्त और विश्व की उत्पत्ति का स्रोत था। उसकी हजारों ज्वाला से भयवान विष्णु मोहित हो गये।।३५।। मैं भी मोहित हो गया। तब विष्णु ने मुझसे कहा। "इस अग्नि से उत्पन्न वस्तु का आओ हम दोनों परीक्षा करें कि यह क्या है? इस अनुपम अग्नि के स्तम्भ की खोज में मैं नीचे पाताल लोक को जाऊँगा।।३६।। आप भी तुरन्त प्रयत्नपूर्वक ऊपर की ओर जाओ।" ऐसा कहकर विश्वात्मा विष्णु ने वराह का रूप धारण कर लिया। हे देवताओं! मैंने हंस या विराट् हंस का रूप धारण किया।।३७-३८।। तभी से मुझको जो हंस, हंस, विराट् कहकर पुकारते हैं। वे स्वयं हंस हो जायँगे। श्वेत वर्ण और चमकीला रंग, अग्नि के समान नेत्र, और पंखों सहित वायु और मन के वेग के समान गति से मैं ऊपर की ओर उड़ा। ऊपर उससे भी गया। विश्वात्मा नारायण भी कृष्ण रंग के वराह (शूकर) का अवतार धारण करके नीचे और उससे भी नीचे गये। वह नीले स्फटिक के ढेर के समान दिखाई देते थे। वह सौ योजन लम्बे और दश योजन विस्तीर्ण थे। उनका विशाल शरीर मेरु पर्वत के समान था। उनके सफेद तेज और टेढ़े दाँत थे। वह प्रलय काल के सूर्य के समान दीप्यमान बड़ी नाक, भयंकर घोर आवाज (ध्वनि) वाले थे। उनके पैर छोटे और शरीर के अंग विचित्र रंगों में थे। वह विजय की मुद्रा में दृढ़ और अनुपमेय थे। वह ऐसे काले वराह का रूप धारण करके नीचे और उनसे नीचे एक हजार वर्ष तक तेजी से जाते रहे।।३९-४३।। फिर भी वे लिङ्ग की जड़ तक नहीं पहुँच सके। हे शत्रुओं के नाशक! उस पूरे काल (समय) तक मैं भी ऊपर और उससे भी ऊपर तेजी से सब प्रयत्नों के साथ लिङ्ग के आदि को जानने की इच्छा से गया किन्तु उसका अन्त न पाकर थककर नीचे चला आया।।४४-४५।। उसी प्रकार भगवान विष्णु भी थक गये। उनके नेत्रों से भय प्रकट हो रहा था। उसी समय तत्काल तुरन्त देवों के देव वहाँ आ गये (प्रकट हो गये)।।४६।। हम दोनों ने शिव को प्रणाम किया। विष्णु, शिव की आभा से मोहित हो गये और वे मानसिक विषाद से युक्त थे।।४७।। विष्णु

पृष्ठतः पार्श्वतश्चैव चाग्रतः परमेश्वरम्। प्रणिपत्य मया सार्धं सस्मार किमिदं त्विति॥४८॥
तदा समभवत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः। ओमोमिति सुरश्रेष्ठाः सुव्यक्तः प्लुतलक्षणः॥४९॥
किमिदं त्विति संचित्य मया तिष्ठन्महास्वनम्। लिंगस्य दक्षिणे भागे तदापश्यत्सनातनम्॥५०॥
आद्यवर्णमकारं तु उकारं चोत्तरे ततः। मकारं मध्यतश्चैव नादांतं तस्य चोमिति॥५१॥
सूर्यमंडलवद्दृष्ट्वा वर्णमाद्यं तु दक्षिणे। उत्तरे पावकप्रख्यमुकारं पुरुषर्षभः॥५२॥
शीतांशुमंडलप्रख्यं मकारं मध्यमं तथा। तस्योपरि तदापश्यच्छुद्धस्फटिकवत् प्रभुम्॥५३॥
तुरीयातीतममृतं निष्कलं निरुपप्लवम्। निर्द्वंद्वं केवलं शून्यं बाह्याभ्यंतरवर्जितम्॥५४॥
सबाह्याभ्यंतरं चैव सबाह्याभ्यंतरस्थितम्। आदिमध्यांतरहितमानंदस्यापि कारणम्॥५५॥
मात्रास्तिस्रस्त्वर्धमात्रं नादाख्यंब्रह्मसंज्ञितम्। ऋग्यजुःसामवेदा वै मात्रारूपेण माधवः॥५६॥
वेदशब्देभ्य एवेशं विश्वात्मानमचिंतयत्। तदाभवदृषिर्वेद ऋषेः सारतमं शुभम्॥५७॥
तेनैव ऋषिणा विष्णुर्ज्ञातवान्परमेश्वरम्।

देव उवाच

चिंतया रहितो रुद्रो वाचो यन्मनसा सह॥५८॥
अप्राप्य तं निवर्तंते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः। एकाक्षरेण तद्वाच्यमृतं परमकारणम्॥५९॥

के साथ हमने शिव को सब ओर (बगल, सामने और पीछे) से भगवान शिव को प्रणाम किया। हम आश्चर्य में पड़ गये कि यह क्या है? हे श्रेष्ठ देवताओं! वह ऊँची आवाज (प्लुत ध्वनि) से व्यक्त ॐ शब्द का नाद हुआ।।४८।। यह सोचते हुए कि यह महान् नाद क्या है? मैं और विष्णु दोनों खड़े हो गये। तब लिङ्ग की दाहिनी ओर 'अ' और उत्तर की ओर बायीं ओर 'उ' अक्षर, तब मध्य भाग में 'म' और नाद के अन्त में 'ओम्' शब्द था।।४९-५१।। विष्णु ने प्रथम अक्षर 'अ' दक्षिण में देखा। वह सूर्य मण्डल के समान था। दूसरा अक्षर 'उ' उत्तर में अग्नि के समान था। तृतीय अक्षर 'म' मध्य में चन्द्र मण्डल के समान था। उसके ऊपर शुद्ध स्फटिक के समान प्रभु (शिव) को देखा। यह चौथी ईकाई थी। वह गुणों से रहित, अमृतमय, निष्कल और उपद्रव रहित (शान्त) थी। वह द्वन्दों से रहित, केवल शून्य और बाह्य और अभ्यन्तर रहित, लेकिन बाह्य और अभ्यन्तर सहित जैसे कि वह भीतर और बाहर दोनों के मध्य में स्थित थी। यह आदि, मध्य और अन्त से हीन थी। यह आनन्द का भी कारण थी।।५२-५५।। तीन मात्रा और आधी मात्रा का नाम नाद है। ये एकत्र मिलाकर 'ब्रह्म' है। ऋक्, यजु, और साम ये तीनों वेद तीन मात्राओं के रूप में हैं। विष्णु ने वेदों के शब्दों के माध्यम से विश्वात्मा शिव को सोचा। तब वेद ऋषि हो गये। विष्णु ने वेदों के शुभ सार (निचोड़ तत्त्व) को समझा। उसी ऋषि से विष्णु ने परमेश्वर (शिव) को जाना।

ब्रह्मा बोले

रुद्र चिन्ता से रहित हैं। मन के साथ वाणी उनको प्राप्त करने में असमर्थ है। वह केवल एकाक्षर 'ओम्' से वाच्य (कहे जाने के योग्य) हैं जो कि सत्य, आनन्द, अमृत, परम ब्रह्म और परात्पर (महत्तम से भी महत्तर)

सत्यमानंदममृतं परं ब्रह्म परात्मनम्। एकाक्षरादकाराख्यो भगवान्कनकांडजः॥६०॥
एकाक्षरादुकाराख्यो हरिः परमकारणम्। एकाक्षरान्मकाराख्यो भगवान्नीललोहितः॥६१॥
सर्गकर्ता त्वकाराख्यो ह्युकाराख्यस्तु मोहकः। मकाराख्यस्तयोर्नित्यमनुग्रहकरोऽभवत्॥६२॥
मकाराख्यो विभुर्बीजी ह्यकारो बीजमुच्यते। उकाराख्यो हरिर्योनिः प्रधानपुरुषेश्वरः॥६३॥
बीजी च बीजं तद्योनिर्नादाख्यश्च महेश्वरः।
बीजी विभज्य चात्मानं स्वेच्छया तु व्यवस्थितः॥६४॥
अस्य लिंगादभूद्बीजमकारो बीजिनः प्रभोः। उकारयोनौ निक्षिप्तमवर्धत समंततः॥६५॥
सौवर्णमभवच्चांडमावेष्ट्याद्यं तदक्षरम्। अनेकाब्दं तथा चाप्सु दिव्यमंडं व्यवस्थितम्॥६६॥
ततो वर्षसहस्त्रांते द्विधा कृतमजोद्भवम्। अंडमप्सु स्थितं साक्षादाद्याख्येनेश्वरेण तु॥६७॥
तस्यांडस्य शुभं हैमं कपालं चोर्द्धसंस्थितम्। जज्ञे यद्द्यौस्तदपरं पृथिवी पंचलक्षणा॥६८॥
तस्मादंडोद्भवो जज्ञे त्वकाराख्यश्चतुर्मुखः। स स्त्रष्टा सर्वलोकानां स एव त्रिविधः प्रभुः॥६९॥
एवमोमोमिति प्रोक्तमित्याहुर्यजुषां वराः। यजुषां वचनं श्रुत्वा ऋचः सामानि सादरम्॥७०॥
एवमेव हरे ब्रह्मन्नित्यहः श्रुतयस्तदा। ततो विज्ञाय देवेशं यथावच्छ्रुतिसंभवैः॥७१॥
मंत्रैर्महेश्वरं देवं तुष्टाव सुमहोदयम्। आवयोः स्तुतिसंतुष्टो लिंगे तस्मिन्निरंजनः॥७२॥
दिव्यं शब्दमयं रूपमास्थाय प्रहसन् स्थितः। अकारस्तस्य मूर्द्धा तु ललाटं दीर्घमुच्यते॥७३॥

है। उस एकाक्षर 'ओम्' से बाहर 'अ' ब्रह्म है। 'उ' 'विष्णु' है और 'म' रुद्र है। 'अ' सृष्टि का कारण है। 'उ' 'उ' मात्रा है। 'म' आनन्द (आशीर्वाद) है।।५६-६२।। 'म' अक्षर बीजी (बोने वाला) है। 'अ' बीज है। 'उ' योनि है। तीनों का एक रूप प्रधान परमेश्वर है। इस प्रकार बीजी, बीज, और योनि, नाद के सहित का एक रूप महेश्वर (शिव है)। बीजी अपनी स्वतन्त्र इच्छा से अपने को विभाजित करके स्थित है। उस लिङ्ग से उत्पन्न बीज 'अ' को बीजी प्रभु शिव 'उ' योनि में डालते हैं जहाँ वह चारों ओर बढ़ता है।।६३-६५।। यह एक सुवर्ण का वह दिव्य अण्ड प्रथम अक्षर 'अ' से ढका हुआ (लिपटा हुआ) रूप में परिवर्तित हो जाता है (बदल जाता है)।।६६।। तब वह अंड हजार वर्ष बाद—जो कि जल में स्थित अज से उत्पन्न उस अण्ड को—परमेश्वर शिव ने स्वयं को दो भागों में कर दिया। उस सुवर्ण अण्ड का कपाल (सिरा) भाग स्वर्ग हो गया और दूसरे भाग से पंच लक्षणा पृथ्वी हो गई।।६७-६८।। उस अण्ड से अकार नामक चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुये। वह विश्व के स्त्रष्टा (रचने वाले) हैं। वह त्रिविध प्रभु हैं।।६९।। यजुर्वेद के ज्ञाता हैं। 'ओम्' ब्रह्मा हैं। ऋक् और साम उसी प्रकार श्रुति घोषित किये गये। हे देवेश! पहिले मैंने वेद मन्त्रों से उनकी स्तुति की और ध्यान किया। हमारी प्रार्थना स्तुति से प्रसन्न होकर निरंजन भगवान शिव उस लिङ्ग से प्रसन्नतापूर्वक नाद का रूप धारण करके स्थित हो गये।।७०-७२।। 'अ' अक्षर उनका सिर था। 'आ' ललाट 'इ' दाहिना नेत्र, 'ई' बायाँ नेत्र, 'उ' दाहिना कान, 'ऊ' बायाँ कान, ऋकार दाहिना गाल, ॠकार बायाँ गाल, ऌॡ दोनों नाक के पुट, एकार ऊपर का ओठ, ऐकार नीचे का ओठ 'ओ' और 'औ' ये दोनों दाँतों की पंक्तियाँ, 'अं'

इकारो दक्षिणं नेत्रमीकारो वामलोचनम्। उकारो दक्षिणं श्रोत्रमूकारो वाममुच्यते॥७४॥
ऋकारो दक्षिणं तस्य कपोलं परमेष्ठिनः। वामं कपोलमकारो ऌॡ नासापुटे उभे॥७५॥
एकारमोष्ठमूर्द्धश्च ऐकारस्त्वधरो विभोः। ओकारश्च तथौकारो दंतपंक्तिद्वयं क्रमात्॥७६॥
अमस्तु तालुनी तस्य देवदेवस्य धीमतः। कादिपंचाक्षराण्यस्य पंच हस्तानि दक्षिणे॥७७॥
चादिपंचाक्षराण्येवं पंच हस्तानि वामतः। टादिपंचाक्षरं पादस्तादिपंचाक्षरं तथा॥७८॥
पकारमुदरं तस्य फकारः पार्श्वमुच्यते। बकारो वामपार्श्वं वै भकारं स्कंधमस्य तत्॥७९॥
मकारं हृदयं शंभोर्महादेवस्य योगिनः। यकारादिसकारांता विभोर्वै सप्त धातवः॥८०॥
हकार आत्मरूपं वै क्षकारः क्रोध उच्यते। तं दृष्ट्वा उमया सार्द्धं भगवंतं महेश्वरम्॥८१॥
प्रणम्य भगवान् विष्णुः पुनश्चपश्यदूर्द्धतः। ॐकारप्रभवं मंत्रं कलापंचकसंयुतम्॥८२॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम्। मेधाकरमभूद्भूयः सर्वधर्मार्थसाधकम्॥८३॥
गायत्रीप्रभवं मंत्रं हरितं वश्यकारकम्। चतुर्विंशतिवर्णाढ्यं चतुष्कलमनुत्तमम्॥८४॥
अथर्वमसितं मंत्रं कलाष्टकसमायुतम्। अभिचारिकमत्यर्थं त्रयस्त्रिंशच्छुभक्षरम्॥८५॥
यजुर्वेदसमायुक्तं पंचत्रिंशच्छुभाक्षरम्। कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शांतिकं तथा॥८६॥
त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैः सहलोहितम्। सामोद्भवं जगत्याद्यं वृद्धिसंहारकारणम्॥८७॥
वर्णाः षडधिकाः षष्टिरस्य मंत्रवरस्य तु।
पंच मंत्रांस्तथा लब्ध्वा जजाप भगवान् हरिः॥८८॥
अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुः सामरूपिणम्। ईशानमीशमुकुटं पुरुषास्यं पुरातनम्॥८९॥

और 'अः' तालु, 'क' आदि पाँच अक्षर दाहिनी बगल के हाथ और 'च' आदि पाँच अक्षर बाईं बगल के पाँच हाथ, 'ट' से प्रारम्भ पाँच अक्षर उनके दाहिने पैर, 'त' से प्रारम्भ होने वाले पाँच अक्षर उनके बायें पैर, 'प' उनका पेट, 'फ' उनका दाहिना पार्श्व (बगल), 'ब' उनका बायाँ पार्श्व, 'भ' उनका कंधा, 'म' उनका हृदय, 'य से स' उनके सात धातुएँ, 'ह' उनकी आत्मा, 'क्ष' उनका क्रोध। उमा के साथ महेश्वर को देखने पर विष्णु ने प्रणाम किया और उनकी ओर देखा। उन्होंने एक मन्त्र को देखा। 'ओम्' में उद्भूत पाँच कलाओं (इकाइयों) को युक्त देखा। शुद्ध स्फटिक के समान, शुद्ध अड़तीस अक्षरों से बना था। यह ज्ञान का वर्द्धक था। यह सब धर्म और अर्थ का साधक था। उन्होंने पूरे रंग में अपने को वश में करने के कारक चौबीस अक्षरों के गायत्री छन्द को देखा और उन्होंने तैंतीस अक्षरों के साम मन्त्र को देखा जो आठ कलाओं से युक्त, कृष्ण वर्ण, काले अभिचारिक में दक्ष था। उन्होंने श्वेत रंग में शान्ति करने वाले आठ कलाओं से युक्त पैंतीस अक्षर वाले यजुः मन्त्र को देखा। उन्होंने तेरह कलाओं से युक्त, लाल रंग में, जगती छन्द में विश्व की सृष्टि और प्रलय में समर्थ (दक्ष) साम मन्त्र को देखा।।७३-८२।। इन पाँच मन्त्रों को पाकर भगवान विष्णु ने जप किया। उसके बाद उन्होंने भगवान शिव को, सब कलाओं में सब अक्षरों में अंगों सहित, ऋग्, यजु और साम से निर्मित देह मुकुट धारण किये ईशान को देखा। तत्पुरुष को उनके चेहरे के लिए, अघोर को उनके हृदय के लिए,

अघोरहृदयं हृद्यं वामगुह्यं सदाशिवम्। सद्यः पादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम्॥९०॥
विश्वतः पादवदनं विश्वतोक्षिकरं शिवम्। ब्रह्मणोधिपतिं सर्गस्थितिसंहारकारणम्॥९१॥
तुष्टाव पुनरिष्टाभिर्वाग्भिर्वरदमीश्वरम्॥९२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे लिङ्गोद्भवो नाम सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

वामदेव को उनके गुह्य (गुप्त अङ्गों) के लिए, सद्योजात को उनके चरण के लिए, सर्पों को उनके आभूषण के लिए, चारों ओर पैर और मुख के साथ देखा। उपर्युक्त विवरण के अनुसार महादेव ब्रह्मा के भी अधिपति, सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण और वरदायक शिव को विष्णु ने प्रसन्न करने वाले शब्दों से युक्त वाणी से स्तुति की।।८३-९२।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में लिंग की उत्पत्ति
नामक सत्तरहवाँ अध्याय समाप्त॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

विष्णुस्तवः

विष्णुरुवाच

एकाक्षराय रुद्राय अकारायात्मरूपिणे। उकारायादिदेवाय विद्यादेहाय वै नमः॥१॥
तृतीयाय मकाराय शिवाय परमात्मने। सूर्याग्निसोमवर्णाय यजमानाय वै नमः॥२॥
अग्नये रुद्ररूपाय रुद्राणां पतये नमः। शिवाय शिवमंत्राय सद्योजाताय वेधसे॥३॥
वामाय वामदेवाय वरदायामृताय ते। अघोरायातिघोराय सद्योजाताय रंहसे॥४॥
ईशानाय श्मशानाय अतिवेगाय वेगिने। नमोस्तु श्रुतिपादाय ऊर्ध्वलिंगाय लिंगिने॥५॥
हेमलिंगाय हेमाय वारिलिंगाय चांभसे। शिवाय शिवलिंगाय व्यापिने व्योमव्यापिने॥६॥
वायवे वायुवेगाय नमस्ते वायुव्यापिने। तेजसे तेजसां भर्त्रे नमस्तेजोधिव्यापिने॥७॥
जलाय जलभूताय नमस्ते जलव्यापिने। पृथिव्यै चांतरिक्षाय पृथिवीव्यापिने नमः॥८॥
शब्दस्पर्शस्वरूपाय रसगंधाय गंधिने। गणाधिपतये तुभ्यं गुह्याद्गुह्यतमाय ते॥९॥
अनंताय विरूपाय अनंतानामयाय च। शाश्वताय वरिष्ठाय वारिगर्भाय योगिने॥१०॥

अठारहवाँ अध्याय

विष्णु-स्तव

विष्णु बोले

एकाक्षर रुद्र को नमस्कार, आत्मा स्वरूप अकार को नमस्कार, जिसकी देह विद्या है ऐसे उकार आदि देव को नमस्कार।।१।। तृतीय अक्षर 'म' के रूप में परमात्मा शिव को नमस्कार, सूर्य, अग्नि सोम रूप को नमस्कार।।२।। रुद्र रूप अग्नि को नमस्कार, रुद्र को नमस्कार, शिव मन्त्र के शिव को नमस्कार, सद्योजात को नमस्कार, वेदों को नमस्कार, स्रष्टा को नमस्कार, वाम, वामदेव को नमस्कार, वरदायक अमर को नमस्कार, अघोर को, अतिघोर को, सद्योजात को, ईशान को, श्मशान को नमस्कार, जिसका लिङ्ग ऊपर की ओर है और जो स्वयं लिङ्ग है उसको नमस्कार।।३-५।। स्वर्ण लिङ्ग वाले को, स्वयं स्वामी रूप को नमस्कार, वारि (जल) के लिङ्ग वाले और स्वयं जल स्वरूप को नमस्कार, शिव के लिङ्ग को नमस्कार, सर्वत्र व्यापी को और आकाश व्यापी को नमस्कार।।६।। वायु को और वायु के समान वेग वाले को नमस्कार, वायु में व्याप्त वाले को नमस्कार, अग्नि को, अग्नि के स्वामी को, अग्नि में व्याप्त को नमस्कार।।७।। जल को, जलमय को, जल में व्याप्त को नमस्कार, पृथ्वी को, अन्तरिक्ष को और पृथ्वी में व्याप्त को नमस्कार।।८।। शब्द, स्पर्श, रस और गंध के रूप को नमस्कार, गणों के अधिपति को और सब से अधिक गुप्त (गुह्य) को नमस्कार।।९।। अनन्त को नमस्कार, रूप रहित, अनन्त नाम वाले को नमस्कार, शाश्वत (स्थायी), वरिष्ठ, जल की योनि को

संस्थितायाम्भसां मध्ये आवयोर्मध्यवर्चसे। गोप्त्रे हर्त्रे सदा कर्त्रे निधनायेश्वराय च॥११॥
अचेतनाय चिंत्याय चेतनायासहारिणे। अरूपाय सुरूपाय अनंगायाङ्गहारिणे॥१२॥
भस्मदिग्धशरीराय भानुसोमाग्निहेतवे। श्वेताय श्वेतवर्णाय तुहिनाद्रिचराय च॥१३॥
सुश्वेताय सुवक्त्राय नमः श्वेतशिखाय च। श्वेतास्याय महास्याय नमस्ते श्वेतलोहित॥१४॥
सुताराय विशिष्टाय नमो दुंदुभिने हर। शतरूपविरूपाय नमः केतुमते सदा॥१५॥
ऋद्धिशोकविशोकाय पिनाकाय कपर्दिने। विपाशाय सुपाशाय नमस्ते पाशनाशिने॥१६॥
सुहोत्राय हविष्याय सुब्रह्मण्याय सूरिणे। सुमुखाय सुवक्त्राय दुर्दमाय दमाय च॥१७॥
कंकाय कंकरूपाय कंकणीकृतपन्नग। सनकाय नमस्तुभ्यं सनातन सनंदन॥१८॥
सनत्कुमार सारंगमारणाय महात्मने। लोकाक्षिणे त्रिधामाय नमो विरजसे सदा॥१९॥
शंखपालाय शंखाय रजसे तमसे नमः। सारस्वताय मेघाय मेघवाहन ते नमः॥२०॥
सुवाहाय विवाहाय विवादवरदाय च। नमः शिवाय रुद्राय प्रधानाय नमोनमः॥२१॥
त्रिगुणाय नमस्तुभ्यं चतुर्व्यूहात्मने नमः। संसाराय नमस्तुभ्यं नमः संसारहेतवे॥२२॥
मोक्षाय मोक्षरूपाय मोक्षकर्त्रे नमोनमः। आत्मने ऋषये तुभ्यं स्वामिने विष्णवे नमः॥२३॥

नमस्कार, योगी को नमस्कार।।१०।। जल के बीच मुझ ब्रह्मा को, हम और विष्णु के मध्य स्थित को नमस्कार। वर्चस्व वाले, रक्षक, विनाशक और कर्त्ता को नमस्कार, मृत्यु को तथा शिव को नमस्कार।।११।। अचेत को, चिन्त्य को, चेतन को, श्रम को, निवारक को नमस्कार, अरूप को या सुरूप को, अंगहीन को, आकर्षक अंग वाले को नमस्कार।।१२।। शरीर पर भस्म चुपड़े वाले को, सूर्य, चन्द्र और अग्नि के कारण को नमस्कार। श्वेत को, श्वेत वर्ण को, हिमालय गिरि पर भ्रमण करने वाले को नमस्कार।।१३।। अति श्वेत वर्ण वाले श्वेत मुख, श्वेत पगड़ी और श्वेत रक्त वाले को नमस्कार।।१४।। सरलता से पार करने वाले को नमस्कार, विशिष्ट को नमस्कार, दो रूप वाले को, शत रूप वाले को, रूप रहित को और पताका धारी को नमस्कार।।१५।। समृद्धि वाले को, शोक और शोक रहित को नमस्कार, पिनाकधारी, जटाधारी को नमस्कार, पाश रहित को, पाशधारी को, पाश के नाश करने वाले को नमस्कार।।१६।। सुन्दर यज्ञ को, यज्ञ की हविष्य (भेंट) को, ब्राह्मणों को, सुन्दर विधि से विदा करने वाले को, कवि को नमस्कार। सुमुख को, सुन्दर चेहरे वाले को, कठिनता से दबाने योग्य (दुर्दम) को, और मानसिक नियंत्रण वाले को नमस्कार।।१७।। ब्राह्मण रूपधारी को, यम रूप को, सर्पों को अपने हाथ का कंगन बनाने वाले को नमस्कार, जो सनक, सनातन, सनन्दन और सनत हैं, उसको नमस्कार।।१८।। मृग के शिकारी को, महान आत्मा को, विश्व के नेत्र वाले को नमस्कार, तीन धाम (निवास) वाले को, और रजोगुण रहित वाले शिव को नमस्कार।।१९।। संकल्पित को, शंख को, रज और तम को नमस्कार, सारस्वत को, मेघ को, बिना वाहन वाले को, भक्त को वरदान देने वाले को नमस्कार, शिव, रुद्र और प्रधान को नमस्कार।।२०-२१।। त्रिगुण वाले को, युगों की आत्मा को, जगत् के अस्तित्व और विनाश के कारण (हेतु) को नमस्कार।।२२।। मोक्ष को नमस्कार, मोक्ष स्वरूप को, मोक्ष दाता को नमस्कार, सर्वोच्च

नमो भगवते तुभ्यं नागानां पतये नमः। ओंकाराय नमस्तुभ्यं सर्वज्ञाय नमो नमः॥२४॥
सर्वाय च नमस्तुभ्यं नमो नारायणाय च। नमो हिरण्यगर्भाय आदिदेवाय ते नमः॥२५॥
नमोस्त्वजाय पतये प्रजानां व्यूहहेतवे। महादेवाय देवानामीश्वराय नमो नमः॥२६॥
शर्वाय च नमस्तुभ्यं सत्याय शमनाय च। ब्रह्मणे चैव भूतानां सर्वज्ञाय नमो नमः॥२७॥
महात्मने नमस्तुभ्यं प्रज्ञारूपाय वै नमः। चितये चितिरूपाय स्मृतिरूपाय वै नमः॥२८॥
ज्ञानाय ज्ञानगम्याय नमस्ते संविदे सदा। शिखराय नमस्तुभ्यं नीलकंठाय वै नमः॥२९॥
अर्धनारीशरीराय अव्यक्ताय नमोनमः। एकादशविभेदाय स्थाणवे ते नमः सदा॥३०॥
नमः सोमाय सूर्याय भवाय भवहारिणे। यशस्कराय देवाय शंकरायेश्वराय च॥३१॥
नमोंबिकाधिपतये उमायाः पतये नमः। हिरण्यबाहवे तुभ्यं नमस्ते हेमरेतसे॥३२॥
नीलकेशाय वित्ताय शितिकंठाय वै नमः। कपर्दिने नमस्तुभ्यं नागांगाभरणाय च॥३३॥
वृषारूढाय सर्वस्य हर्त्रे कर्त्रे नमोनमः। वीररामातिरामाय रामनाथाय ते विभो॥३४॥
नमो राजाधिराजाय राज्ञामधिगताय ते। नमः पालाधिपतये पालाशाकृंतते नमः॥३५॥
नमः केयूरभूषाय गोपते ते नमोनमः। नमः श्रीकंठनाथाय नमो लिकुचपाणये॥३६॥
भुवनेशाय देवाय वेदशास्त्र नमोस्तु ते। सारंगाय नमस्तुभ्यं राजहंसाय ते नमः॥३७॥

आत्मा, ऋषि और सब के भरण-पोषण करने वाले को नमस्कार।।२३।। पवित्र स्वामी तुमको नमस्कार, सर्पों के पति को, ओंकार को और सर्वज्ञ तुम्हें नमस्कार।।२४।। सर्वमय को, नारायण को, हिरण्यगर्भ को, आदि देव को नमस्कार।।२५।। अज को, प्रजाओं को, पति को, व्यूह के कारण को, महादेव को, देवताओं के अधिपति को नमस्कार।।२६।। शर्व को, सत्य को, शमन और ब्रह्मा को नमस्कार। प्राणियों में सर्वव्यापी तुमको नमस्कार।।२७।। उच्चतम आत्मा को नमस्कार, बुद्धिरूप तुमको नमस्कार, चेतना को, स्मृति को और ज्ञान को नमस्कार, ज्ञान रूपी को, ज्ञान द्वारा गम्य को, संविद को, शिखर को और नीले कंठ वाले को नमस्कार।।२८-२९।। अर्धनारीश्वर को, अव्यक्त किन्तु बारह रूप वाले को नमस्कार। स्थाणु (अटल) को नमस्कार।।३०।। सूर्य को, चन्द्र को, संसार को स्थापित करने और विलय करने वाले को नमस्कार, यश के कारण को, शान्ति को और सर्वेश्वर को नमस्कार।।३१।। अंबिका के पति को, उमा के पति को नमस्कार, सोने की हिरण्यबाहु वाले को, हिरण्य (स्वर्ण) वीर्य वाले तुमको नमस्कार। नीले कंठ वाले को, नीले केश वाले, समृद्धि वाले, काले कंठ वाले, जटाधारी को, सर्पों के आभूषण वाले को नमस्कार।।३२-३४।। वृष के वाहन वाले को नमस्कार, सब के स्रष्टा और नाशकर्त्ता को नमस्कार शक्ति में वीर राम से बढ़कर विक्रम को, राम के नाम को नमस्कार, राजाओं के सम्राट् को, राजाओं द्वारा प्राप्त को नमस्कार, रक्षक के अधिपति को, दैत्यों के संहारकर्त्ता को नमस्कार।।३५।। केशर के आभूषणधारी को, गायों के पति तुम को नमस्कार, बड़हर को हाथ में लिए श्री कंठ को नमस्कार।।३६।। भुवनेश को नमस्कार, वेदशास्त्र को नमस्कार, सारंग को नमस्कार, राजहंस को नमस्कार।।३७।। स्वर्ण के हार धारण करने वाले को, सर्प को जनेऊ कुण्डल और माला धारण करने वाले को

कनकांगदहाराय नमः सर्पोपवीतिने। सर्पकुंडलमालाय कटिसूत्रीकृताहिने॥३८॥
वेदगर्भाय गर्भाय विश्वगर्भाय ते शिव।

ब्रह्मोवाच

विररामेति संस्तुत्वा ब्रह्मणा सहितो हरिः॥३९॥
एतत्स्तोत्रवरं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्। यः पठेच्छ्रावयेद्वापि ब्राह्मणान् वेदपारगान्॥४०॥
स याति ब्रह्मणो लोके पापकर्मरतोपि वै।
तस्माज्जपेत्पठेन्नित्यं श्रावयेद्ब्राह्मणाञ्छुभान्॥४१॥
सर्वपापविशुद्ध्यर्थं विष्णुना परिभाषितम्॥४२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विष्णुस्तवो नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

नमस्कार, सर्प को कमर में करधनी की तरह लपेटने वाले को नमस्कार।।३७।। हे शिव! तुमको नमस्कार, वेद को अपने मुख में रखने वाले, सम्पूर्ण विश्व को अपने भीतर धारण करने वाले, तुमको नमस्कार।।३८।।

ब्रह्मा बोले

ब्रह्मा विष्णु के साथ इस प्रकार स्तुति कर के रुक गये। यह स्तोत्र परम पवित्र है और सब पापों का नाश करने वाला है। जो पढ़े और वेदों में पारंगत ब्राह्मणों को सुनावे, वह पाप कर्म में रत होने पर भी ब्रह्मलोक को जाता है। इस लिए भगवान विष्णु द्वारा रचित इस स्तोत्र को जपे, पढ़े और शुभ ब्राह्मणों को सुनावे।।३९-४२।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में विष्णु-स्तव नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

विष्णुप्रबोधः

सूत उवाच

अथोवाच महादेवः प्रीतोहं सुरसत्तमौ। पश्यतां मां महादेवं भयं सर्वं विमुच्यताम्॥१॥
युवां प्रसूतौ गात्राभ्यां मम पूर्वं महाबलौ। अयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामहः॥२॥
वामे पार्श्वे च मे विष्णुर्विश्वात्माहृदयोद्भवः।प्रीतोहं युवयोः सम्यग्वरं दद्मि यथेप्सितम्॥३॥
एवमुक्त्वा तु तं विष्णुं कराभ्यां परमेश्वरः। पस्पर्श सुभगाभ्यां तु कृपया तु कृपानिधिः॥४॥
ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य महेश्वरम्। प्राह नारायणो नाथं लिंगस्थं लिंगवर्जितम्॥५॥
यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ। भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि चाव्यभिचारिणी॥६॥
देवः प्रदत्तवान् देवाः स्वात्मन्यव्यभिचारिणीम्। ब्रह्मणे विष्णवे चैव श्रद्धां शीतांशुभूषणः॥७॥
जानुभ्यामवनीं गत्वा पुनर्नारायणः स्वयम्। प्रणिपत्य च विश्वेशं प्राह मंदतरं वशी॥८॥
आवयोर्देवदेवेश विवादमतिशोभनम्। इहागतो भवान् यस्माद्विवादशमनाय नौ॥९॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह हरो हरिम्। प्रणिपत्य स्थितं मूर्ध्ना कृतांजलिपुटं स्मयन्॥१०॥

उन्नीसवाँ अध्याय

विष्णु को प्रबोध

सूत बोले

महादेव जी ने कहा! 'हे सुरों में उत्तम! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। मुझ महादेव को देखो। सब भय छोड़ दो।।१।। तुम दोनों शक्तिशाली पहिले मुझसे उत्पन्न हुए थे। विश्व के पितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने भाग से उत्पन्न हुए थे। विश्व की आत्मा विष्णु मेरे बायें भाग (पार्श्व) से उत्पन्न हुये थे। तुम दोनों से मैं प्रसन्न हूँ। मैं तुम दोनों को अभीष्ट वर दूँगा'।।२-३।। ऐसा कहकर कृपानिधि परमेश्वर ने अपने कोमल हाथों से ब्रह्मा को स्पर्श किया (छुआ)।।४।। तब प्रसन्न मन, विष्णु ने महादेव जी को प्रणाम करके लिङ्ग में स्थित किन्तु लिङ्ग रहित महेश्वर से कहा।।५।। 'यदि आप के हृदय में हम दोनों के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ है और हमको वर देना है तो आप में हमारी भक्ति स्थायी और एकनिष्ठ हो'।।६।। हे देवताओं! तब भगवान चन्द्रभूषण महादेव ने ब्रह्मा और विष्णु को अपने में अविचल और एकनिष्ठ भक्ति और श्रद्धा का वर दिया।।७-८।। तब विष्णु घुटनों को भूमि पर टेककर वशी विष्णु जी ने महादेव जी को प्रणाम करके नम्र वाणी में फिर कहा।।९।। यह सुनकर भगवान शिव मुस्कुराते हुए भगवान ब्रह्मा और विष्णु से कहा जो शिर झुकाये और हाथ जोड़े उनके सामने खड़े थे।।१०।।

श्रीमहादेव उवाच

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्ता त्वं धरणीपते। वत्सवत्स हरे विष्णो पालयैतच्चराचरम्॥११॥
त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुभवाख्यया। सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः॥१२॥
संमोहं त्यज भो विष्णो पालयैनं पितामहम्। पाद्मे भविष्यति सुतः कल्पे तव पितामहः॥१३॥
तदा द्रक्ष्यसि मां चैवं सोपि द्रक्ष्यति पद्मजः। एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवांतरधीयत॥१४॥
तदाप्रभृति लोकेषु लिंगाच्चर्चा सुप्रतिष्ठिता। लिंगवेदी महादेवी लिंगं साक्षान्महेश्वरः॥१५॥
लयनाल्लिंगमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः। यस्तु लैंगं पठेन्नित्यमाख्यानं लिंगसन्निधौ॥१६॥
स याति शिवतां विप्रो नात्र कार्या विचारणा॥१७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विष्णुप्रबोधो नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

भगवान शिव बोले

'हे पृथ्वी के स्वामी! तुम सृष्टि के पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता हो। हे वत्स! विष्णु तुम इस चर और अचर जगत् का पालन करो।।११।। मैं निष्कल शिव हूँ। मैंने अपने को ब्रह्मा, विष्णु और शिव नाम से तीन रूपों में विभाजित किया है। इनके कार्य सृष्टि की रचना, उसका पालन और लय करना है।।१२।। हे विष्णु! अपना मोह छोड़ो। इस ब्रह्मा की रक्षा करो जो कि पद्म कल्प में तुम्हारा पुत्र होगा।।१३।। तब तुम मुझको इस प्रकार देखोगे। यह पद्मयोनि (कमल से उत्पन्न) भी मुझको देखेगा।' ऐसा कहकर भगवान शिव वहीं अन्तर्धान हो गये।।१४।। तब से जगत् में लिङ्ग की पूजा सुप्रतिष्ठित हुई। लिङ्ग स्वयं महेश्वर है। महादेवी लिङ्ग की वेदी (जलहरी) हैं।।१५।। हे देवताओं! लिङ्ग इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें सबका लय होता है। ब्राह्मण जो कि लिङ्ग की इस कथा को लिङ्ग की मूर्ति के पास (सामने) पढ़ता है वह शिवत्व को प्राप्त करता है। इसमें सन्देह करने की गुंजाइश नहीं है।।१६-१७।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में विष्णु को प्रबोध नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त॥१९॥

विंशोऽध्यायः

ब्रह्मप्रबोधनम्

ऋषय ऊचुः

कथं पाद्मे पुरा कल्पे ब्रह्मा पद्मोद्भवोऽभवत्। भवं च दृष्टवांस्तेन ब्रह्मणा पुरुषोत्तमः॥१॥
एतत्सर्वं विशेषेण सांप्रतं वक्तुमर्हसि।

सूत उवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्॥२॥
मध्ये चैकार्णवे तस्मिन् शंखचक्रगदाधरः। जीमूतांभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः॥३॥
नारायणमुखोद्गीर्णसर्वात्मा पुरुषोत्तमः। अष्टबाहुर्महावक्षा लोकानां योनिरुच्यते॥४॥
किमप्यचिंत्यं योगात्मा योगमास्थाय योगवित्। फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम्॥५॥
महाभोगपतेर्भोगं साध्वास्तीर्य महोच्छ्रयम्। तस्मिन्महति पर्यंके शेते चैकार्णवे प्रभुः॥६॥
एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना। आत्मारामेण क्रीडार्थं लीलयाक्लिष्टकर्मणा॥७॥
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम्। वज्रदंडं महोत्सेधं नाभ्यां सृष्टं तु पुष्करम्॥८॥
तस्यैवं क्रीडमानस्य समीपं देवमीढुषः। हेमगर्भांडजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतींद्रियः॥९॥

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा को प्रबोधन

ऋषिगण बोले

पद्म कल्प में ब्रह्मा कैसे कमल से उत्पन्न हुये? बह्मा और विष्णु ने भगवान शिव को कैसे देखा? अब आप विशेष रूप से कहिए।।१।।

सूत बोले

यह जगत घोर अन्धकारमय बिना बँटा हुआ (अविभक्त) एक समुद्र के रूप में था। उस फैले हुये समुद्र में, शंख, चक्र और गदा को धारण किये, मेघ की आभा वाले, कमल के समान नेत्र, मुकुटधारी, हरि के नाम से प्रसिद्ध, लक्ष्मी के पति, नारायण, पुरुषोत्तम, भगवान विष्णु सोये हुये थे। जिनके मुख से सब जगत उत्पन्न हुआ था, उनकी आठ भुजायें थी। विशाल वक्ष (छाती), विश्व के उद्भव के स्रोत, योगात्मा, योग के ज्ञाता, योग में स्थित होकर हजार फनों वाले शेषनाग की बड़ी शय्या पर अपनी विशाल शरीर को फैलाये सुखपूर्वक (आराम से) सोये हुये थे।।२-६।। इस प्रकार वहाँ सोये हुये पूर्ण शक्तिमान, अपने में मग्न, विष्णु ने क्रीडावश अपनी लीला से सौ योजन विस्तार वाले, दोपहर के सूर्य के समान आभा वाले, अपनी नाभि से एक लम्बे और ऊँचे वज्र की दंड (नाल) वाले कमल को उत्पन्न किया।।७-८।। जबकि सुन्दर विष्णु भगवान उस कमल से खेल रहे

चतुर्वक्त्रो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया। श्रिया युक्तेन दिव्येन सुशुभेन सुगंधिना॥१०॥
क्रीडमानं च पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा शुभेक्षणम्। सविस्मयमथागम्य सौम्यसंपन्नया गिरा॥११॥
प्रोवाच को भवाञ्छेते ह्याश्रितो मध्यमंभसाम्। अथ तस्याच्युतः श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभं वचः॥१२॥
उदतिष्ठत पर्यंकाद्विस्मयोत्फुल्ललोचनः। प्रत्युवाचोत्तरं चैव कल्पेकल्पे प्रतिश्रयः॥१३॥
कर्त्तव्यं च कृतं चैव क्रियते यच्च किंचन। द्यौरंतरिक्षं भूश्चैव परं पदमहं भुवः॥१४॥
तमेवमुक्त्वा भगवान् विष्णुः पुनरथाब्रवीत्। कस्त्वं खलु समायातः समीपं भगवान्कुतः॥१५॥
क्व वा भूयश्च गंतव्यं कश्च वा ते प्रतिश्रयः। को भवान् विश्वमूर्तिर्वै कर्त्तव्यं किं च ते मया॥१६॥
एवं ब्रुवंतं वैकुंठं प्रत्युवाच पितामहः। मायया मोहितः शंभोरविज्ञाय जनार्दनम्॥१७॥
मायया मोहितं देवमविज्ञातं महात्मनः। यथा भवांस्तथैवाहमादिकर्ता प्रजापतिः॥१८॥
सविस्मयं वचः श्रुत्वा ब्रह्मणो लोकतंत्रिणः। अनुज्ञातश्च ते नाथ वैकुंठो विश्वसंभवः॥१९॥
कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम्। इमानष्टदश द्वीपान्ससमुद्रान् सपर्वतान्॥२०॥
प्रविश्य सुमहातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान्। ब्रह्मणस्तंबपर्यंतं सप्तलोकान् सनातनान्॥२१॥
ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान्विष्णुर्महाभुजः। अहोस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा च पुनःपुनः॥२२॥
अटित्वा विविधाँल्लोकान् विष्णुर्नानाविधाश्रयान्।
ततो वर्षसहस्त्रांते नांतं हि ददृशे यदा॥२३॥

थे, हिरण्य अण्ड में उत्पन्न, सुवर्ण के समान रंग वाले, अतीन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा अगम्य), चतुर्मुख, विशाल नेत्र वाले ब्रह्मा जी, स्वेच्छा से वहाँ पहुँचकर श्री से युक्त, सुन्दर नेत्र वाले विष्णु को दिव्य, सुगन्धित कमल से खेलते हुये देखकर विस्मय से उनके समीप जाकर सौम्य वाणी (मधुर वचन) से पूछा। "इस जल सागर के मध्य लेटे हुये आप कौन हैं?"॥९-११॥ ब्रह्मा के मृदु वचन को सुनकर विष्णु जी अपनी शय्या पर उठकर बैठ गये। विस्मय से भरे नेत्रों से उन्होंने उत्तर दिया। 'प्रत्येक कल्प में जल के मध्य में मेरा शरण और निवास है। जो करने के योग्य है, जो किया गया है और जो कुछ करना होगा, वह सब यहीं से अपने आप होता है। स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी सब मेरे अधीन हैं। मैं सब का परम पद हूँ॥१२-१६॥ ऐसा कहकर भगवान विष्णु ने उनसे फिर कहा। 'तुम कौन हो? कहाँ से तुम मेरे पास आये हो? तुमको फिर कहाँ जाना है? तुम्हारा निवास कहाँ है? विश्वमूर्ति आप कौन हैं? मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?' ऐसा पूछने वाले विष्णु को ब्रह्मा जी शिव की माया से मोहित होकर अज्ञेय विष्णु को नहीं जान सके। ब्रह्मा ने कहा, "जैसे आप उसी प्रकार मैं भी सृष्टि का आदिकर्त्ता हूँ।" सृष्टि के कर्त्ता ब्रह्मा के विस्मयपूर्ण वचन को सुनकर और उनसे अनुमति प्राप्त करके विश्व की उत्पत्ति के स्रोत, महान योगी, विष्णु कौतूहलवश ब्रह्मा जी के मुख में घुस गये। उन्होंने ब्रह्मा के उदर (पेट) में समुद्रों और पर्वतों सहित अठारह द्वीपों को देखा। महातेजस्वी, महान् भुजावाले विष्णु ने ब्रह्मा के पेट में प्रवेश करके सात लोकों को देखा जिनमें चारों वर्णों के लोग स्थित थे। तब उन्होंने बार-बार कहा, "इनकी तपस्या कितनी शक्तिमती है?" उन्होंने ब्रह्मा के पेट में स्थित नाना प्रकार की सृष्टि के विविध लोकों को देखा।

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेंद्रनिकेतनः। नारायणो जगद्धाता पितामहमथाब्रवीत्॥२४॥
भगवानादिरंतश्च मध्यं कालो दिशो नभः। नाहमंतं प्रपश्यामि उदरस्य तवानघ॥२५॥
एवमुक्त्वाब्रवीद्भूयः पितामहमिदं हरिः। भगवानेवमेवाहं शाश्वतं हि ममोदरम् ॥२६॥
प्रविश्य लोकान् पश्यैताननौपम्यान्सुरोत्तम। ततः प्राह्लादिनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनंद्य च॥२७॥
श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश पितामहः। तानेव लोकान् गर्भस्थानपश्यत्सत्यविक्रमः॥२८॥
पर्यटित्वा तु देवस्य ददृशेऽन्तं न वै हरेः।
ज्ञात्वा गतिं तस्य पितामहस्य द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णुः।
विभुर्मनः कर्तुमियेष चाशु सुखं प्रसुप्तोहमिति प्रचिंत्य॥२९॥
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि समीक्ष्य वै। सूक्ष्मं कृत्वात्मनो रूपं नाभ्यां द्वारमविंदत॥३०॥
पद्मसूत्रानुसारेण चान्वपश्यत्पितामहः। उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः॥३१॥
विरराजारविंदस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः। ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवाञ्जगद्योनिः पितामहः॥३२॥
एतस्मिन्नंतरे ताभ्यामेकैकस्य तु कृत्स्नशः। वर्तमाने तु संघर्षे मध्ये तस्यार्णवस्य तु॥३३॥
कुतोप्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वरः। शूलपणिर्महादेवो हेमवीरांबरच्छदः॥३४॥
अगच्छद्यत्र सोनंतो नागभोगपतिर्हरिः। शीघ्रं विक्रमतस्तस्य पद्भ्यामाक्रांतपीडिताः॥३५॥
उद्भूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयबिंदवः। अत्युष्णश्चातिशीतश्च वायुस्तत्र ववौ पुनः॥३६॥

उसके बाद हजार वर्षों तक घूमने पर भी उनको अन्त नहीं मिल सका। तब शेषनाग की शय्याशायी, सब लोकों के आश्रय विष्णु जी उनके मुख से निकलकर ब्रह्माजी से बोले।।१७-२५।। हे निष्पाप! आप विश्व के आदि, मध्य और अन्त हैं। आप के पेट का अन्त मैं नहीं पा सका हूँ। आप काल, दिशायें और आकाश हैं। इस प्रकार कहकर विष्णु ने ब्रह्मा जी से कहा, "उसी प्रकार मैं भी प्रभु हूँ। हे सुरोत्तम! आप भी मेरे उदर में प्रवेश करके उसके भीतर आश्चर्य से भरे हुये लोकों को देखो।' उनकी उत्साहवर्द्धक और प्रसन्न करने वाली वाणी को सुनकर और उनका अभिनन्दन करके सत्यवादी ब्रह्मा जी ने भी भगवान विष्णु के उदर में प्रवेश किया। तब उन्होंने भी उनके गर्भ में स्थित उन्हीं लोकों को देखा।।२६-२८।। वे उसके भीतर घूमते रहे किन्तु अन्त नहीं पा सके। तब ब्रह्मा जी की गतिविधि को जानकर निकलने के सब मार्गों को बन्द करके विष्णु पूर्ण निद्रा में सो गये। निकलने के सभी मार्गों को बन्द देखकर ब्रह्मा ने अपना रूप सूक्ष्म करके निकलने का एक मार्ग (द्वार) नाभि में पाया।।२९-३०।। तब चतुर्भुज ब्रह्मा कमल की नाल (दंडी) से बाहर आये और तब अपना असली रूप धारण किया। स्वयंभू, विश्व की उत्पत्ति के स्रोत, कमल के समान आभा वाले ब्रह्मा कमल में बैठ गये।।३१।। इसी बीच वे दोनों का उस महासागर में आपस में संघर्ष होता रहा। अनन्त आत्मा, भूतों के स्वामी, हाथ में त्रिशूल लिए, शुद्ध सुवर्ण की पोशाक पहने शिव जी कहीं से आ गये। जहाँ सर्पों के स्वामी, शेषनाग की शय्या पर विष्णु जी लेटे थे। उनके जल्दी-जल्दी जल में चलने से उस जल के हिलने से उनके पैरों की ठोकर से आकाश में जल की बड़ी बूँदें उठीं। फिर गर्म और ठण्डी हवाएँ चलीं (बहीं)। उस महान् आश्चर्य को देखकर ब्रह्मा ने विष्णु

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं ब्रह्मा विष्णुमभाषत। अब्बिंदवश्च शीतोष्णाः कंपयंत्यंबुजं भृशम्॥३७॥
एतन्मे संशयं ब्रूहि किं वा त्वन्यच्चिकीर्षसि। एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्गतम्॥३८॥
श्रुत्वाप्रतिमकर्मा हि भगवानसुरांतकृत्। किं नु खल्वत्र मे नाभ्यां भूतमन्यत्कृतालयम्॥३९॥
वदति प्रियमत्यर्थं मन्युश्चास्य मयाकृतः। इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम्॥४०॥
किमत्र भगवानद्य पुष्करे जातसंभ्रमः। किं मया च कृतं देव यन्मां प्रियमनुत्तमम्॥४१॥
भाषसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः। एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रानुगं ततः॥४२॥
प्रत्युवाचाम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः। योऽसौ तवोदरं पूर्वं प्रविष्टोऽहं त्वदिच्छया॥४३॥
यथा ममोदरे लोकाः सर्वे दृष्टास्त्वया प्रभो। तथैव दृष्टाः कार्त्स्न्येन मया लोकास्तवोदरे॥४४॥
ततो वर्षसहस्रात्तु उपावृत्तस्य मेऽनघ। त्वया मत्सरभावेन मां वशीकर्तुमिच्छता॥४५॥
आशु द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि समंततः। ततो मया महाभाग संचित्य स्वेन तेजसा॥४६॥
लब्धो नाभिप्रदेशेन पद्मसूत्राद्विनिर्गमः। माभूत्ते मनसोऽल्पोपि व्याघातोऽयं कथंचन॥४७॥
इत्येषानुगतिर्विष्णो कार्याणामौपसर्पिणी। यन्मयानंतरं कार्यं ब्रूहि किं करवाण्यहम्॥४८॥
ततःपरममेयात्मा हिरण्यकशिपो रिपुः। अनवद्यां प्रियामिष्टां शिवां वाणीं पितामहात्॥४९॥
श्रुत्वा विगतमात्सर्यं वाक्यमस्मै ददौ हरिः। न ह्येवमीदृशं कार्यं मयाध्यवसितं तव॥५०॥
त्वां बोधयितुकामेन क्रीडापूर्वं यदृच्छया। आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मयात्मनः॥५१॥

से कहा, "जल की गरम और ठण्डी बूँदें कमल को बहुत हिला रही हैं।।३२-३७।। मेरे इस सन्देह को दूर करो और बताओ कि अब आप और क्या करना चाहते हो?' इन शब्दों को सुनकर अनुपम कर्म करने वाले, असुरों के संहार कर्त्ता भगवान विष्णु ने ध्यान दिया और कहा कि "मेरी नाभि में यह कौन अधिकार जमाये हुए है। वह मृदु वचन बोल रहा है किन्तु मैं उससे क्रुद्ध हूँ।" ऐसा सोचते हुए विष्णु ने उत्तर दिया।।३८-४०।। "हे भगवन्! आप कमल के भीतर विभ्रम की दशा में हैं। हे देव! मैंने वहाँ क्या किया है? हे मनुष्यों में श्रेष्ठ! जो इस तरह कहते हो। तुम्हारे हृदय में क्या है? मुझको सच-सच बताओ।" वेदों के ज्ञान के भण्डार ब्रह्मा ने लोक के व्यवहार के अनुसार बोलने वाले देवेश, कमल नयन, विष्णु को उत्तर दिया, "यह मैं ब्रह्मा था जो कि आप के इच्छा के अनुसार आप के उदर में प्रवेश किया। जैसे आप ने मेरे उदर में लोकों को देखा था, ठीक वैसे ही मैंने भी आप के उदर में सब लोकों को देखा। हे निष्पाप! मैं हजार वर्षों के बाद वापस लौटा। तुमने ईर्ष्या के भाव से या मुझको वश में करने की इच्छा से चारों ओर से सब द्वारों को बन्द कर दिया। हे महाभाग! तब मैं अपने तेज से नाभि के प्रदेश से कमल की नाल से निकलकर बाहर आया। आप के मन में किसी प्रकार विषाद न हो। हे विष्णु! कार्यों की अपनी प्रगति में घटनाओं का यह अनुक्रम है। इसके बाद मुझको क्या करना चाहिए? यह आप मुझको कृपया कहिये।"।।४१-४८।। इस प्रिय, प्रसन्नताकारक, शुद्ध वाणी को ब्रह्मा से सुनकर हिरण्यकशिपु के नाशक, विष्णु ने ईर्ष्या रहित निश्छल शब्दों में उनसे कहा, "हे ब्रह्मा! मैंने ऐसा कोई विपरीत कार्य दुर्भावना वश नहीं किया है। मैं सब बाहर निकलने वाले द्वारों को अपनी इच्छा से खेल 'क्रीड़ा' के लिए

न तेऽन्यथावगंतव्यं मान्यः पूज्यश्च मे भवान्। सर्वं मषर्य कल्याण यन्मयापकृतं तव॥५२॥
अस्मान् मयोह्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो। नाहं भवंतं शक्नोमि सोढुं तेजोमयं गुरुम्॥५३॥
सहोवाच वरं ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो। पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं प्राप्स्यसि शोभनाम्॥५४॥
सद्भाववचनं ब्रूहि पद्मादवतर प्रभो। स त्वं च नो महायोगी त्वमीड्यः प्रणवात्मकः॥५५॥
अद्यप्रभृति सर्वेशः श्वेतोष्णीषविभूषितः। पद्मयोनिरिति ह्येवं ख्यातो नाम्ना भविष्यसि॥५६॥
पुत्रो मे त्वं भव ब्रह्मन् सप्तलोकाधिपः प्रभो। ततः स भगवान्देवो वरं दत्वा किरीटिने॥५७॥
एवं भवतु चेत्युक्त्वा प्रीतात्मा गतमत्सरः। प्रत्यासन्नमथायांतं बालार्काभं महाननम्॥५८॥
भवमत्यद्भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत्। अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री ध्वस्तशिरोरुहः॥५९॥
दशबाहुस्त्रिशूलांको नयनैर्विश्वतः स्थितः। लोकप्रभुः स्वयं साक्षाद्विकृतो मुंजमेखली॥६०॥
मेंढ्रेणोर्ध्वेन महता नर्दमानोतिभैरवम्।
कः खल्वेष पुमान् विष्णो तेजोराशिर्महाद्युतिः॥६१॥
व्याप्य सर्वा दिशो द्यां च इत एवाभिवर्तते। तेनैवमुक्तो भगवान् विष्णुर्ब्रह्माणमब्रवीत्॥६२॥
पद्भ्यां तलनिपातेन यस्य विक्रमतोर्णवे। वेगेन महताकाशेप्युत्थिताश्च जलाशयाः॥६३॥

तथा आप को बोध कराने के लिए किया था।।४९-५१।। इसको आप अन्यथा न लें। आप मेरे मान्य और पूज्य हैं। जो मैंने आप का अपकार किया है वह सब क्षमा करें।।५२।। तुम मुझसे उत्पन्न हुये हो। हे प्रभो! कमल से नीचे उतरो। मैं तुम्हारे भार को नहीं सह सकता हूँ। तुम तेजमय और भारी हो।'' तब ब्रह्मा ने फिर कहा, ''बताओ क्या वर तुम चाहते हो?'' तब विष्णु जी ने कहा, ''हे शत्रुओं के नाशक! तुम मेरे पुत्र होओ। तुम बहुत प्रसन्नता को प्राप्त करोगे। स्वीकार करने योग्य बात को कहो। हे प्रभो! कमल से उतरो, तुम महान् योगी हो। तुम मेरे पूज्य हो। तुम स्वयं प्रणव हो। आज से तुम सब के स्वामी होगे। सफेद पगड़ी बाँधे तुम पद्मयोनि नाम से जाने जाओगे। जिसका अर्थ है कि, जिसकी उत्पत्ति का स्रोत कमल हो। हे ब्रह्मा! हे प्रभो!! तुम मेरे पुत्र होगे।'' तुम सातों लोकों के स्वामी होगे। इस प्रकार विष्णु ने ब्रह्मा जी को वर दिया। ब्रह्मा ने उस वर को प्रसन्नतापूर्वक और ईर्ष्या रहित स्वीकार किया और कहा, 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)। ठीक उसी समय बाल सूर्य के समान आभायुक्त, महान् मुख, अद्भुत शिव जी को आते हुए देख ब्रह्मा जी ने विष्णु जी से कहा।।५३-५८।। हे विष्णु! यह अतुलनीय, महान मुख, टेढ़े दाँत, नंगे सिर वाला व्यक्ति कौन है? दस भुजाओं वाला, त्रिशूलधारी, चारों ओर नेत्रों से देखने वाला यह विश्व का स्वामी लगता है। इसका शरीर विकृत है और मूँज की मेखला को कमर में बाँधे है। लिङ्ग ऊपर की ओर उठा हुआ है। यह जोर से घोर और भयानक गरज रहा है। यह तेज का पुंज बहुत देदीप्यमान सब दिशाओं और आकाश में व्याप्त होकर इधर ही आ रहा है।'' ब्रह्मा के इस प्रकार पूछने पर विष्णु ने निम्नलिखित रूप में उत्तर दिया।।५९-६२।।

''हे ब्रह्मा! वह अपनी महान गति (चाल) से समुद्र के जल को हिला रहा है। जब उसके पैर समुद्र के तल को अपनी तेज चाल से दबाव डालते हैं तब समुद्र हिलता है। उससे समुद्र का जल आकाश तक उछलता है।

स्थूलाद्धिर्विश्वतोत्यर्थं सिच्यसे पद्मसंभव। घ्राणजेन च वातेन कंप्यमानं त्वया सह॥६४॥
दोधूयते महापद्मं स्वच्छंदं मम नाभिजम्। समागतो भवानीशो ह्यनादिश्चांतकृत्प्रभुः॥६५॥
भवानहं च स्तोत्रेण उपतिष्ठाव गोध्वजम्।
ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम्॥६६॥
भवान्न नूनमात्मानं वेत्ति लोकप्रभुं विभुम्। ब्रह्माणं लोककर्तारं मां न वेत्सि सनातनम्॥६७॥
को ह्यसौ शंकरो नाम आवयोर्व्यतिरिच्यते। तस्य तत्क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा हरिरभाषत॥६८॥
मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः। महायोगेंधनो धर्मो दुराधर्षो वरप्रदः॥६९॥
हेतुरस्याथ जगतः पुराणपुरुषोऽव्ययः। बीजी खल्वेष बीजानां ज्योतिरेकः प्रकाशते॥७०॥
बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शंकरः स्वयम्। प्रधानमव्ययो योनिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः॥७१॥
मम चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्मिणः।
यः कः स इति दुःखार्तैर्दृश्यते यतिभिः शिवः॥७२॥
एष बीजी भवान्बीजमहं योनिः सनातनः। स एवमुक्तो विश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुमपृच्छत॥७३॥
भवान् योनिरहं बीजं कथं बीजी महेश्वरः। एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं संशयं छेत्तुमर्हसि॥७४॥
ज्ञात्वा च विविधोत्पत्तिं ब्रह्मणो लोकतंत्रिणः। इमं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरिः॥७५॥
अस्मान्महत्तरं भूतं गुह्यमन्यन्न विद्यते। महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिनां पदम्॥७६॥

हे ब्रह्मा! उस उठे हुए जल के ढेर से तुम्हारा सारा शरीर सींच उठता है। उस आने वाले व्यक्ति के नथुनों से निकली वायु (साँसों) से तुम्हारे साथ (मेरी नाभि से उत्पन्न) यह महान् कमल भी अति अधिक काँपता है। यह भगवान शिव हैं जो आ रहे हैं। वे अनादि हैं। उनकी उत्पत्ति का कोई स्रोत नहीं है। वह विश्व के संहारकर्त्ता हैं। आओ हम दोनों इस वृषभध्वज शिव जी को स्तोत्र से स्तुति करें।।६३-६६।।" तब उनकी बात को सुनकर क्रुद्ध होकर ब्रह्मा जी ने कहा, "आप अपने को लोकों का स्वामी और व्यापक नहीं जानते हैं और न तो लोकों के सृष्टिकर्त्ता, सनातन मुझ ब्रह्मा को जानते हो। हम दोनों से अलग यह तीसरा शंकर कौन है?।।६७-६८।।" ब्रह्मा की क्रोध युक्त बातों को सुनकर विष्णु ने कहा, "हे कल्याण करने वाले! महान् आत्मा शंकर के विषय में ऐसी अप्रिय बात मत कहो। वे महायोगी हैं, वे धर्म हैं, दुर्धर्ष हैं। वे बीजों के बीजी हैं, वे स्वयं प्रकाश हैं। वे देव शंकर स्वयं खिलौने से स्वयं बालक की तरह इस सृष्टि से खेलते हैं। प्रधान, अव्यय, योनि, अव्यक्त, प्रकृति, तम ये मेरे नाम हैं। मैं नित्य सृष्टि को जन्म देता हूँ। तुम्हारे प्रश्न का व्यक्ति शिव हैं। वे यतियों के लक्ष्य हैं। (परम पद हैं) वे बीजी हैं। आप बीज हैं और मैं योनि हूँ।" विष्णु द्वारा इस प्रकार कहने पर विश्वात्मा ब्रह्मा ने विष्णु से पूछा।।६९-७३।। "यह कैसे हैं कि आप योनि हैं। मैं बीज हूँ और वे बीजी हैं? यह एक पहेली है जिसको आप ही हल कर सकते हैं।।७४।।" विविध सृष्टि के विषय में विचार करते हुए विष्णु ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के विशिष्ट प्रश्न के उत्तर में कहा, "उनसे बढ़कर कोई महत्तर नहीं है। वे महान् गुह्य (रहस्य) हैं। वे अध्यात्मवादियों के परम धाम निवास हैं। उन्होंने अपने को दो भागों में बाँटा। उनमें से एक भाग निष्कल व्यक्त

द्विविधं चैवमात्मानं प्रविभज्य व्यवस्थितः। निष्कलस्तत्र योव्यक्तः सकलश्च महेश्वरः॥७७॥
यस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च। पुरा लिंगोद्भवं बीजं प्रथमं त्वादिसर्गिकम्॥७८॥
मम योनौ समायुक्तं तद्बीजं कालपर्ययात्। हिरण्मयमकूपारे योन्यामंडमजायत॥७९॥
शतानि दशवर्षाणामंडमप्सु प्रतिष्ठितम्। अंते वर्षसहस्त्रस्य वायुना तद्द्विधा कृतम्॥८०॥
कपालमेकं द्यौर्जज्ञे कपालमपरं क्षितिः। उल्बं तस्य महोत्सेधो योसौ कनकपर्वतः॥८१॥
ततश्च प्रतिसंध्यात्मा देवदेवो वरः प्रभुः। हिरण्यगर्भो भगवांस्त्वभिजज्ञे चतुर्मुखः॥८२॥
आतारार्केंदुनक्षत्रं शून्यं लोकमवेक्ष्य च। कोहमित्यपि च ध्याते कुमारास्तेऽभवंस्तदा॥८३॥
प्रियदर्शनास्तु यतयो यतीनां पूर्वजास्तव। भूयो वर्षसहस्त्रांते तत एवात्मजास्तव॥८४॥
भुवनानलसंकाशाः पद्मपत्रायतेक्षणाः। श्रीमान्सनत्कुमारश्च ऋभुश्चैवोर्ध्वरेतसौ॥८५॥
सनकः सनातनश्चैव तथैव च सनंदनः। उत्पन्नाः समकालं ते बुद्ध्यातींद्रियदर्शनाः॥८६॥
उत्पन्नाः प्रतिभात्मानो जगतां स्थितिहेतवः। नारप्स्यंते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिताः॥८७॥
अल्पसौख्यं बहुक्लेशं जराशोकसमन्वितम्। जीवनं मरणं चैव संभवश्च पुनः पुनः॥८८॥
अल्पभूतं सुखं स्वर्गे दुःखानि नरके तथा। विदित्वा चागमं सर्वमवश्यं भवितव्यताम्॥८९॥
ऋभुं सनत्कुमारं च दृष्ट्वा तव वशे स्थितौ।
त्रयस्तु त्रीन् गुणान् हित्वा चात्मजाः सनकादयाः॥९०॥

रूप महेश्वर है। दूसरा भाग जो है वह दृश्य रूप में आया। उनका जो कि प्रकृति के क्रिया-कलाप से परिचित थे और जो कि अगम्य और माया विधि के ज्ञाता थे, पहिले, प्रथम सृष्टि में, बीज उत्पन्न हुआ था। वह बीज मेरी योनि में डाला गया (बोया गया)। कुछ काल के बाद समुद्र में हिरण्यमय अण्ड (सोने के अण्डे) उगा (बड़ा हुआ)।।७५-७९।। वह अण्ड जलों में हजार वर्षों तक पड़ा रहा। उसके बाद वायु के आघात से फटकर दो भागों में बँट गया।।८०।। उसका ऊपरी भाग स्वर्ग हो गया। निचला भाग पृथ्वी हो गया। उसका उल्ब (आवरण) ऊँचा, सोने का पर्वत, मेरु बन गया।।८१।। तब योनि में आत्मा के प्रवेश से, तुम, भगवान हिरण्यगर्भ, देवेश, चतुर्मुख उत्पन्न हुए।।८२।। विश्व को, तारागण, सूर्य और चन्द्रमा से शून्य देखकर 'मैं कौन हूँ' ऐसा ध्यान करने पर आप के पुत्र उत्पन्न हुए।।८३।। वे देखने में प्रिय थे। वे यति हो गये। वे यतियों के पूर्वज (पुरखे) हुए। तब एक हजार वर्ष के बाद वे तुम्हारे पुत्र हुए।।८४।। वे चमक में पार्थिव अग्नि के समान और कमल के दल (पत्ता) के समान नेत्र वाले थे। उनमें से सनत्कुमार और ऋभु आजन्म ब्रह्मचारी रहे। सनक, सनन्दन और सनातन जो कि एक ही समय उत्पन्न हुए थे, वे ज्ञानेन्द्रियों की पकड़ से बाहर की वस्तुओं को भी देख सकते थे। वे महान् बुद्धिमान थे। वे लोकों की स्थिति के कारण थे। वे तीनों प्रकार के ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक) से रहित थे। वे सांसारिक क्रिया-कलापों से दूर थे।।८५-८७।। जगत् में जन्म और मृत्यु को और अल्प सुख तथा बहुत दुःख देखकर जो कि बहुत क्लेश से युक्त, जन्म और मृत्यु बार-बार होने से, स्वर्ग में अल्प सुख और नरक में दुःखों को समझकर, भविष्य की सब बातों को शास्त्रों की विधि से जानकर ऋभु और

वैवर्तेन तु ज्ञानेन प्रवृत्तास्ते महौजसः। ततस्तेषु प्रवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु॥९१॥
भविष्यसि विमूढस्त्वं मायया शंकरस्य तु। एवं कल्पे तु वै वृत्ते संज्ञा नश्यति तेऽनघ॥९२॥
कल्पे शेषाणि भूतानि सूक्ष्माणि पार्थिवानि च। सर्वेषां ह्यैश्वरी माया जागृतिः समुदाहृता॥९३॥
यथैष पर्वतो मेरुर्देवलोको ह्युदाहृतः। तस्य चेदं हि माहात्म्यं विद्धि देववरस्य ह॥९४॥
ज्ञात्वा चेश्वरसद्भावं ज्ञात्वा मामंबुजेक्षणम्। महादेवं महाभूतं भूतानां वरदं प्रभुम्॥९५॥
प्रणवेनाथ साम्ना तु नमस्कृत्य जगद्गुरुम्।
त्वां च मां चैव संक्रुद्धो निःश्वासान्निर्दहेदयम्॥९६॥
एवं ज्ञात्वा महायोगमभ्युत्तिष्ठन्महाबलम्। अहं त्वामग्रतः कृत्वा स्तोष्याम्यनलसप्रभम्॥९७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ब्रह्मप्रबोधनं
नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

सनत्कुमार को इनके वश में देखकर, वे तीनों सनक, सनन्दन और सनातन तीनों गुणों को छोड़कर महा तेजस्वी उन तीनों ने आध्यात्मिक जीवन स्वीकार किया।।८८-९०।। इस प्रकार कल्प के कार्य करते समय में, जब कि तीनों सनक, सनातन और सनन्दन के वैरागी हो जाने पर, भगवान शंकर की माया से विमूढ़ (भ्रमित) हो जाओगे। हे अनघ (निष्पाप)! तब तुम्हारी संज्ञा (चेतना) नष्ट हो जायगी। वर्तमान कल्प में उनकी माया से स्थूल और सूक्ष्म सब प्राणी प्रभावित हो जायँगे। जैसे कि देवलोक मेरुपति प्रसिद्ध हैं वैसा ही देवों में वरिष्ठ शिव जी का माहात्म्य प्रसिद्ध है।।९१-९४।। उनको महेश्वर जान कर और मुझको कमलनयन विष्णु जान कर और यह जान कर कि भगवान शिव सब प्राणियों में सर्वोच्च और प्राणिमात्र के वरदाता हैं और विश्व के गुरु हैं, तुमको चाहिये कि तुम उनको प्रणाम करो और प्रणव तथा सामवेद के प्रार्थना मन्त्रों से उनकी स्तुति करो। यदि क्रुद्ध होंगे तो वे अपने निःश्वास से तुमको और मुझको भस्म कर देंगे। भगवान शिव के योग और महान् शक्ति का अनुभव करते हुए मैं तुमको सामने रखकर उनकी स्तुति करूँगा जो कि क्रुद्ध हैं।।९५-९७।।"

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में ब्रह्मा को प्रबोधन
नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

ब्रह्मविष्णुस्तुतिः

सूत उवाच

ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततः स गरुडध्वजः। अतीतैश्च भविष्यैश्च वर्तमानैस्तथैव च॥१॥
नामभिश्छांदसैश्चैव इदं स्तोत्रमुदीरयत्।

विष्णुरुवाच

नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतानंततेजसे॥२॥
नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः। सुमेंढ्रायार्च्यमेंढ्राय दंडिने रूक्षरेतसे॥३॥
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय पूर्वाय प्रथमाय च। नमो मान्याय पूज्याय सद्योजाताय वै नमः॥४॥
गह्वराय घटेशाय व्योमचीरांबराय च। नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवे नमः॥५॥
वेदानां प्रभवे चैव स्मृतीनां प्रभवे नमः। प्रभवे कर्मदानानां द्रव्याणां प्रभवे नमः॥६॥
नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः। नमो ध्रुवनिबद्धानामृषीणां प्रभवे नमः॥७॥
ऋक्षाणां प्रभवे तुभ्यं ग्रहाणां प्रभवे नमः। वैद्युताशनिमेघानां गर्जितप्रभवे नमः॥८॥
महोदधीनां प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः। अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां प्रभवे नमः॥९॥

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा और विष्णु द्वारा स्तुति

सूत बोले

उसके बाद ब्रह्मा को सामने रखकर गरुणध्वज विष्णु ने वेदों में कथित शिव की भूत, भविष्य और वर्तमान नामों से उनकी स्तुति की।

विष्णु बोले

हे सुव्रत! अनन्त तेज वाले तुमको नमस्कार, हे क्षेत्र के अधिपति, बीजी, त्रिशूलधारी को नमस्कार, सुन्दर लिङ्ग को, पूज्य लिङ्ग को नमस्कार, दण्डधारी को, और सूखे और रूक्ष वीर्य वाले को नमस्कार।।१-३।। ज्येष्ठ को, श्रेष्ठ को, सर्व प्रथम को और प्रथम को नमस्कार। मान्य को, पूज्य को और सद्योजात को नमस्कार।।४।। गम्भीर को, जीव को नमस्कार। नग्न को, हम जैसे प्राणियों की उत्पत्ति के स्रोत को नमस्कार।।५।। वेदों के स्वामी को, स्मृति को और क्रिया-कलापों के स्वामी, दान और द्रव्यों (पदार्थों) के स्वामी को नमस्कार।।६।। योग और सांख्य के स्वामी को नमस्कार, ध्रुव नक्षत्र से बँधे ऋषियों के स्वामी को नमस्कार।।७।। तारागणों और ग्रहों के स्वामी को नमस्कार, विद्युत के घोर नाद (ध्वनि) को नमस्कार, वज्र और मेघों के स्वामी को नमस्कार।।८।। महासागरों और उनके द्वीपों के स्वामी को नमस्कार। पर्वतों और उनके महाद्वीपों के स्वामी

नमो नदीनां प्रभवे नदानां प्रभवे नमः। महौषधीनां प्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः॥१०॥
धर्मवृक्षाय धर्माय स्थितीनां प्रभवे नमः। प्रभवे च परार्धस्य परस्य प्रभवे नमः॥११॥
नमो रसानां प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः। क्षणानां प्रभवे चैव लवानां प्रभवे नमः॥१२॥
अहोरात्रार्धमासानां मासानां प्रभवे नमः। ऋतुनां प्रभवे तुभ्यं संख्यायाः प्रभवे नमः॥१३॥
प्र[illegible]त्रे चापरार्धस्य परार्धप्रभवे नमः। नमः पुराणप्रभवे सर्गाणां प्रभवे नमः॥१४॥
मन्वंतराणां प्रभवे योगस्य प्रभवे नमः। चतुर्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनंतचक्षुषे॥१५॥
कल्पोदयनिबंधानां वातानां प्रभवे नमः। नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्माधिपतये नमः॥१६॥
विद्यानां प्रभवे चैव विद्याधिपतये नमः। नमो व्रताधिपतये व्रतानां प्रभवे नमः॥१७॥
मंत्राणां प्रभवे तुभ्यं मंत्राधिपतये नमः। पितॄणां पतये चैव पशूनां पतये नमः॥१८॥
वाग्वृषाय नमस्तुभ्यं पुराणवृषभाय च। नमः पशूनां पतये गोवृषेन्द्रध्वजाय च॥१९॥
प्रजापतीनां पतये सिद्धीनां पतये नमः। दैत्यदानवसंघानां रक्षसां पतये नमः॥२०॥
गंधर्वाणां च पतये यक्षाणां पतये नमः। गरुडोरगसर्पाणां पक्षिणां पतये नमः॥२१॥
सर्वगुह्यपिशाचानां गुह्याधिपतये नमः। गोकर्णाय च गोप्त्रे च शंकुकर्णाय वै नमः॥२२॥
वराहायाप्रमेयाय ऋक्षाय विरजाय च। नमो सुराणां पतये गणानां पतये नमः॥२३॥
अंभसां पतये चैव ओजसां पतये नमः। नमोस्तु लक्ष्मीपतये श्रीपाय क्षितिपाय च॥२४॥

को नमस्कार।।९।। नदियों और नदों के स्वामी को नमस्कार। महान औषधियों और वृक्षों के स्वामी को नमस्कार।।१०।। धर्म के कारण को नमस्कार, धर्म (सत्यता) को, सृष्टि की स्थिति के स्वामी को, पार्वती और उनके सहयोगी के पति को नमस्कार।।११। रसों, रत्नों और काल की इकाइयों को नमस्कार।।१२।। दिन, रात्रि, पक्षों और मासों के स्वामी को नमस्कार, ऋतुओं और संख्या के स्वामी को नमस्कार।।१३।। अपरार्द्ध (ब्रह्मा के आधे दिन) के स्वामी को नमस्कार, परार्द्ध (ब्रह्मा के युग के अन्य आधे दिन) को नमस्कार, पुराणों और सृष्टि के स्वामी को नमस्कार।।१४।। मन्वन्तर के स्वामी को नमस्कार, योग को और मन्वन्तरों और चौपर्त (चतुर्विध सृष्टि) के स्वामी को नमस्कार। अनन्त चक्षु को नमस्कार, कल्प के आदि (प्रारम्भ) से उत्पन्न सब वस्तुओं के स्वामी को नमस्कार। विश्व के स्वामी तथा ब्रह्मा के अधिपति को नमस्कार। विद्याओं के स्वामी और पवित्र धार्मिक कृत्यों के स्वामी को नमस्कार।।१५-१७।। मन्त्रों की उत्पत्ति के स्रोत और मन्त्रों के स्वामी पितृ को नमस्कार और व्यक्तिगत आत्माओं के पति को नमस्कार। आत्मवाणी के स्वामी और प्राचीन वृषभ के स्वामी और आत्माओं के स्वामी को नमस्कार। नन्दी वाले मूर्ति को, गौ और वृषभों के स्वामी को और उनके ध्वज वाले को नमस्कार।।१८-१९।। प्रजापतियों के स्वामी को, सिद्धों के स्वामी को, दैत्यों, दानवों और राक्षसों के स्वामी को नमस्कार।।२०।। गन्धर्वों, यक्षों, गरुड़, सर्पों और पक्षियों के स्वामी को नमस्कार।।२१।। गुह्यों और पिशाचों के, गोकर्ण के, राक्षसों के और शंकुकर्ण के अधिपति को नमस्कार।।२२।। अप्रमेय वराह को, ताराधारी को, रजोगुण रहित को, देवताओं, असुरों और गणों के स्वामी को नमस्कार।।२३।। जलों के स्वामी, ओजों

बलाबलसमूहाय अक्षोभ्यक्षोभणाय च। दीप्तश्रृंगैकश्रृंगाय वृषभाय ककुद्मिने॥२५॥
नमः स्थैर्याय वपुषे तेजसानुव्रताय च। अतीताय भविष्याय वर्तमानाय वै नमः॥२६॥
सुवर्चसे व वीर्याय शूराय ह्यजिताय च। वरदाय वरेण्याय पुरुषाय महात्मने॥२७॥
नमो भूताय भव्याय महते प्रभवाय च। जनाय च नमस्तुभ्यं तपसे वरदाय च॥२८॥
अणवे महते चैव नमः सर्वगताय च। नमो बंधाय मोक्षाय स्वर्गाय नरकाय च॥२९॥
नमो भवाय देवाय इज्याय याजकाय च। प्रत्युदीर्णाय दीप्ताय तत्त्वायातिगुणाय च॥३०॥
नमः पाशाय शस्त्राय नमस्त्वाभरणाय च। हुताय उपहूताय प्रहुतप्राशिताय च॥३१॥
नमोस्त्विष्टाय पूर्ताय अग्निष्टोमद्विजाय च। सदस्याय नमश्चैव दक्षिणावभृथाय च॥३२॥
अहिंसायाप्रलोभाय पशुमंत्रौषधाय च। नमः पुष्टिप्रदानाय सुशीलाय सुशीलिने॥३३॥
अतीताय भविष्याय वर्तमानाय ते नमः। सुवर्चसे च वीर्याय शूराय ह्यजिताय च॥३४॥
वरदाय वरेण्याय पुरुषाय महात्मने। नमो भूताय भव्याय महते चाभयाय च॥३५॥
जरासिद्ध नमस्तुभ्यमयसे वरदाय च। अधरे महते चैव नमः सस्तुपताय च॥३६॥
नमोश्चेंद्रियपत्राणां लेलिहानाय स्त्रग्विणे। विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतः शिरसे नमः॥३७॥

(तेजों) के स्वामी, लक्ष्मी (माहात्म्य और भव्यता) के स्वामी तथा पृथ्वी के स्वामी को नमस्कार।।२४।। परिपुष्ट और कमजोर समूह को, क्षोभ कर्त्ता को, अक्षोभ को, दीप्त सींग, एक सींग वाले और ऊँचे कूबड़ (ककुद) वाले को नमस्कार।।२५।। पुष्ट शरीर वाले, तेज से पूर्ण को, भूत, वर्त्तमान और भविष्य के प्रतिनिधित्व करने वाले को नमस्कार।।२६।। ओजस्वी और वीर्यवान को, वीर और अज्ञेय को, वरदायक को, महान आत्माओं में वरिष्ठ व्यक्ति को नमस्कार।।२७।। महत् (प्रकृति के एक तत्त्व) को उनकी तीनों दशाओं भूत, वर्त्तमान और भविष्य को नमस्कार, जनों के प्रतिनिधि को, तप को, वरद को नमस्कार।।२८।। आयु और महत् को, सब में विद्यमान स्वामी को नमस्कार। बँधन और मोक्ष और स्वर्ग और नरक को नमस्कार।।२९।। पूज्य शिव को नमस्कार, यज्ञ और याजक को नमस्कार, भवदेव को और सब गुणों से बाहर अतिगुण (गुणातीत) तत्त्व को नमस्कार।।३०।। पाश को, अस्त्र को, शास्त्रों को आभूषण के रूप में धारण करने वाले को, यज्ञ की सामग्री के रूप वाले को, आह्वान को, यज्ञ में भेंट की गई सामग्री के भक्षक को, अभीष्ट कार्य के कर्त्ता को, दानदाता को, पूर्त कूपादि खननकर्त्ता को, अग्नि को, अग्निष्टोमकर्त्ता ब्राह्मण को, सभा के सदस्य को, यज्ञ करने वालों को, दक्षिणा देकर याज्ञिक स्नान करने वाले को नमस्कार।।३१-३२।। अहिंसक को, लोभ रहित को, जीवों के सुधार कर्त्ता को, पुष्टि के प्रदाता (बर्द्धक) को, सदाचारी को और सदाचार के प्रतिनिधि को नमस्कार।।३३।। भूत, भविष्य और वर्त्तमान के प्रतिनिधित्व करने वाले को, वर्चस्वी को, वीर्यवान को, वीर को, अज्ञेय को, वरदाता को, वरिष्ठ को, महान आत्माओं में उत्तम व्यक्ति को नमस्कार, भूत, वर्तमान और भविष्य इन सब तीनों अवस्थाओं में प्रकृति के प्रथम तत्त्व महत् को नमस्कार।।३४-३५।। सदा युवा रहने वाले, स्वर्ण स्वरूप वाले, वरदाता, अधर (लोअर), महत्, और निद्रितों के स्वामी को नमस्कार।।३६।। मालाधारी को, ज्ञानेन्द्रियों द्वारा

सर्वतः पाणिपादाय रुद्रायाप्रतिमाय च। नमो हव्याय कव्याय हव्यवाहाय वै नमः॥३८॥
नमः सिद्धाय मेध्याय इष्टायेज्यापराय च। सुवीराय सुघोराय अक्षोभ्यक्षोभणाय च॥३९॥
सुप्रजाय सुमेधाय दीप्ताय भास्कराय च। नमो बुद्धाय शुद्धाय विस्तृताय मताय च॥४०॥
नमः स्थूलाय सूक्ष्माय दृश्यादृश्याय सर्वशः। वर्षते ज्वलते चैव वायवे शिशिराय च॥४१॥
नमस्ते वक्रकेशाय ऊरुवक्षःशिखाय च। नमो नमः सुवर्णाय तपनीयनिभाय च॥४२॥
विरूपाक्षाय लिंगाय पिंगलाय महौजसे। वृष्टिघ्नाय नमश्चैव नमः सौम्येक्षणाय च॥४३॥
नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च। पिशिताय पिशंगाय पीताय च निषंगिणे॥४४॥
नमस्ते सविशेषाय निर्विशेषाय वै नमः। नम ईज्याय पूज्याय उपजीव्याय वै नमः॥४५॥
नमः क्षेम्याय वृद्धाय वत्सलाय नमोनमः। नमो भूताय सत्याय सत्यासत्याय वै नमः॥४६॥
नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे। नमो गौराय श्यामाय कद्रवे लोहिताय च॥४७॥
महासंध्याभ्रवर्णाय चारुदीप्ताय दीक्षिणे। नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय कपर्दिने॥४८॥
अप्रमाणाय सर्वाय अव्ययायामराय च। नमो रूपाय गंधाय शाश्वतायाक्षताय च॥४९॥

पदार्थों के उपभोक्ता को नमस्कार। विश्व के प्रतिनिधि कर्त्ता को, विश्व के रूप को और विश्व से ऊपर वाले को, चारों ओर शिर और पैर वाले को नमस्कार। अप्रतिम रुद्र को, नमस्कार। हव्य (अग्नि में डाली गई भेंट) कव्य (पितरों को भेंट की गई) अग्नि का प्रतिनिधित्व करने वाले को जो कि देवताओं को आहुति ले जाता है, को नमस्कार।।३७-३८।। सब प्रकार से प्राप्त सिद्ध को, यज्ञ को और यज्ञ के भक्त को, वीर योद्धा को, भयानक को, क्षोभ-उत्पादक को और सरलतापूर्वक क्षुब्ध न होने वाले को नमस्कार।।३९।। सुभुजा वाले को, सुबुद्धि वाले को, दीप्त सूर्य रूप को नमस्कार। बुद्ध को, शुद्ध को, विस्तृत को और सब के द्वारा मान्य को नमस्कार।।४०।। स्थूल को और सूक्ष्म दोनों रूप वाले को, दृश्य और अदृश्य दोनों रूप वाले को नमस्कार, बरसने वाले और जलने वाले को और वायु और शीत (शिशिर) दोनों रूप वाले को नमस्कार।।४१।। टेढ़े केश वाले को, महान वक्ष वाले को, महान शिखा वाले को, सुनहरे रंग वाले को, सुवर्ण के समान प्रभा वाले को नमस्कार।।४२।। विरूप नेत्र वाले को, लिङ्ग के रूप वाले को, पिंगल वर्ण वाले को और महान ओज वाले को नमस्कार। वृष्टि के नाशक को और सुन्दर नेत्र वाले को नमस्कार।।४३।। भूरे, श्वेत, कृष्ण, लाल, पिशंग और पीले रंग धारी को, निषंगधारी को नमस्कार।।४४।। विशिष्ट रूप और सामान्य रूप वाले को नमस्कार। पूज्य को, ईज्य को और अनुकूल (उपयुक्त) जीव्य को नमस्कार।।४५।। कल्याण के लिये उपयुक्त को नमस्कार। वृद्ध को, वत्सल (प्यार करने वाले) को, भूतकाल के प्रतिनिधित्व कर्त्ता को, सत्य रूप वाले को नमस्कार। सत्य और असत्य दोनों स्वरूप वाले को नमस्कार।।४६।। कमल के समान रंग वाले को, मृत्यु के नाशकर्त्ता को, मृत्यु के स्वामी का, श्वेत, कृष्ण, पिशंग, लाल रंग वाले को, संध्या कालीन मेघ के समान कृष्ण, मनोहर वाणी वाले, दीक्षित को, सुन्दर चमक वाले को नमस्कार। कमल के समान हाथ वाले, नग्न रूप वाले को, उलझे केश वाले को नमस्कार।।४७-४८।। ज्ञात और अज्ञात शरीर वाले को नमस्कार, अप्रमाण को,

पुरस्ताद्बृंहते चैव विभ्रांताय कृताय च। दुर्गमाय महेशाय क्रोधाय कपिलाय च॥५०॥
तर्क्यातर्क्यशरीराय बलिने रंहसाय च। सिकत्याय प्रवाह्याय स्थिताय प्रसृताय च॥५१॥
सुमेधसे कुलालाय नमस्तेशशिखंडिने। चित्राय चित्रवेषाय चित्रवर्णाय मेधसे॥५२॥
चेकितानाय तुष्टाय नमस्ते निहिताय च। नमः क्षांताय दांताय वज्रसंहननाय च॥५३॥
रक्षोघ्नाय विषघ्नाय शितिकंठोर्ध्वमन्यवे। लेलिहाय कृतांताय तिग्मायुधधराय च॥५४॥
प्रमोदाय संमोदाय यतिवेद्याय ते नमः। अनामयाय सर्वाय महाकालाय वै नमः॥५५॥
प्रणवप्रणवेशाय भगनेत्रांतकाय च। मृगव्याधाय दक्षाय दक्षयज्ञांतकाय च॥५६॥
सर्वभूतात्मभूताय सर्वेशातिशयाय च। पुरघ्नाय सुशस्त्राय धन्विनेऽथ परश्वधे॥५७॥
पूषदंतविनाशाय भगनेत्रांतकाय च। कामदाय वरिष्ठाय कामांगदहनाय च॥५८॥
रंगे करालवक्त्राय नागेंद्रवदनाय च। दैत्यानामंतकेशाय दैत्याक्रंदकराय च॥५९॥
हिमघ्नाय च तीक्ष्णाय आर्द्रचर्मधराय च। श्मशानरतिनित्याय नमोस्तूल्मुकधारिणे॥६०॥
नमस्ते प्राणपालाय मुंडमालाधराय च। प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय च॥६१॥

सर्वमय को, अव्यय और अमर को नमस्कार। गंध और रंग के प्रतिनिधि को, शाश्वत और अक्षत को नमस्कार। सामने देखने में विशाल, माया रहित, अपने में पूर्ण और संतुष्ट, दुर्गम (पहुँच से कठिन) क्रोध के प्रतिनिधि रूप और कपिल वर्ण वाले को नमस्कार।।४९-५०।। जिसका शरीर तर्क्य (ज्ञेय) और उसी समय अतर्क्य अज्ञेय है, उसको नमस्कार। शक्तिशाली को, वीर और वेगवान को नमस्कार। बालूमय भूमि को, पृष्ठ देव को और जल की धारा के प्रवाह से बाहर वाले को, स्थित को और विस्तृत (फैले हुवे) को नमस्कार।।५१।। बुद्धिमान कुम्हार तुमको नमस्कार। ललाट पर चन्द्रमा को धारण किये तुमको नमस्कार। विविध रंगों वाले चित्र और विचित्र वेश वाले तुमको नमस्कार और वर्णित बुद्धि रूप वाले तुमको नमस्कार।।५२।। महान चेतनता और जागरूकता वाले को नमस्कार। परम संतुष्ट को, और सर्वाधिक पक्षधर को नमस्कार। सहनशील को, स्ववशी को, वज्र देह वाले को नमस्कार।।५३।। राक्षसों के विनाशक को, विषविनाशक को, आभामय कण्ठ वाले को और क्रोध रहित को नमस्कार। यम के विनाश कर्त्ता को, तीक्ष्ण अस्त्रधारी को, महान आनन्दमय को, महान् स्वस्थ शरीर वाले को, सर्वमय को और महाकाल (मृत्यु के महान देवता) को नमस्कार।।५४-५५।। प्रणव को, प्रणव के स्वामी को, भग के नेत्र के विनाशक को, मृग के शिकारी को, दक्ष (निपुण) को, दक्ष के यज्ञ के ध्वंसकर्त्ता को नमस्कार।।५६।। सब प्राणियों की आत्मा को, सब स्वामियों से बढ़कर स्थिति वाले को, पुर के विनाशक को, सुष्ठु अस्त्रधारी को, धनुर्धारी और कुठारधारी को नमस्कार।। पूष के दंत के और भगनेत्र के विनाशक को, कामना की पूर्ति करने वाले को, वरिष्ठ को, काम के शरीर को भस्म करने वाले को नमस्कार।।५७-५८।। युद्ध क्षेत्र में भयानक रूपधारी को नमस्कार, दैत्यों के संहारकर्त्ता को और दैत्यों पर विपत्ति के कारण वाले को नमस्कार।।५९।। हिम के नाशक को, तीक्ष्ण रूप वाले को, गीले व्याघ्र चर्म को धारण करने वाले को, श्मशान भूमि से नित्य प्रेम करने वाले को और मशालधारी को नमस्कार।।६०।। प्राणों के पालन कर्त्ता को, मुण्ड माला

नरनारीशरीराय देव्याः प्रियकराय च। जटिने मुंडिने चैव व्यालयज्ञोपवीतिने॥६२॥
नमोऽस्तु नृत्यशीलाय उपनृत्यप्रियाय च। मन्यवे गीतशीलाय मुनिभिर्गायते नमः॥६३॥
कटंकटाय तिग्माय अप्रियाय प्रियाय च। विभीषणाय भीष्माय भगप्रमथनाय च॥६४॥
सिद्धसंघानुगीताय महाभागाय वै नमः। नमो मुक्ताट्टहासाय क्ष्वेडितास्फोटिताय च॥६५॥
नर्दते कूर्दते चैव नमः प्रमुदितात्मने। नमो मृडाय श्वसते धावतेऽधिष्ठिते नमः॥६६॥
ध्यायते जृंभते चैव रुदते द्रवते नमः। वल्गते क्रीडते चैव लंबोदरशरीरिणे॥६७॥
नमोऽकृत्याय कृत्याय मुंडाय कीकटाय च। नम उन्मत्तदेहाय किंकिणीकाय वै नमः॥६८॥
नमो विकृतवेषाय क्रूरायामर्षणाय च। अप्रमेयाय गोप्त्रे च दीप्तायानिर्गुणाय च॥६९॥
वामप्रियाय वामाय चूडामणिधराय च। नमस्तोकाय तनवे गुणैरप्रमिताय च॥७०॥
नमो गुण्याय गुह्याय अगम्यगमनाय च। लोकधात्री त्वियं भूमिः पादौ सज्जनसेवितौ॥७१॥
सर्वेषां सिद्धियोगानामधिष्ठानं तवोदरम्। मध्येऽन्तरिक्षं विस्तीर्णं तारागणविभूषितम्॥७२॥
स्वातेः पथ इवाभाति श्रीमान् हारस्तवोरसि। दिशो दशभुजास्तुभ्यं केयूरांगदभूषिताः॥७३॥
विस्तीर्णपरिणाहश्च नीलांजनचयोपमः। कंठस्ते शोभते श्रीमान् हेमसूत्रविभूषितः॥७४॥

धारण करने वाले को, विभिन्न वर्गों के निश्चित भूतों से घिरे रहने वाले को नमस्कार।।६१।। अर्धनारीश्वर को, देवी को प्रसन्न करने वाले को, जटाधारी को, मुण्डित सिर वाले को और सर्प को जनेऊ की तरह पहनने वाले को नमस्कार। नर्तक को, नृत्य और संगीत के प्रेमी को, क्रोध के स्वामी को, संगीत के अभ्यास करने वाले को और मुनियों द्वारा गाये जाने वाले को नमस्कार।।६२-६३।। सिंह रूपधारी को, तीक्ष्ण प्रकृति वाले को, अप्रिय और प्रिय, दोनों के करने वाले को, भयंकर को और भय उत्पन्न करने वाले को और भग नामक दैत्य के विनाशक को नमस्कार।।६४।। सिद्ध संघों द्वारा प्रशंसा किये जाने वाले और गाये जाने वाले को नमस्कार, महाभाग वाले, अट्टहास करने वाले को, सिंह के समान गर्जने वाले को, दुरूह को नमस्कार।।६५।। दहाड़ने वाले और कूदने वाले को नमस्कार, प्रसन्न आत्मा को नमस्कार, मृड को नमस्कार, साँस लेने वाले, दौड़ने वाले और सब को अपने वश में करने वाले को नमस्कार।।६६।। ध्यान करने वाले को, जम्हाई करने वाले, रोने वाले को, तेजी से दौड़ने वाले को और खेल खेलने वाले को और लम्बे उदर वाले को नमस्कार।।६७।। कार्य करने वाले को और न करने वाले को, हजार सिर वाले को, दीन या दुःखी रूप वाले को, उन्मत्त देह वाले को, छोटी करधनी धारण करने वाले को नमस्कार।।६८।। विकृत वेष वाले को, क्रूर और असहनशील स्वभाव वाले को, अप्रमेय को, रक्षक को, दीप्त रूप वाले को, निर्गुण व्यक्तित्व वाले को नमस्कार।।६९।। वाम भाग में स्थित गौरी प्रिय को, वाम को, चूड़ामणि को धारण करने वाले को, सूक्ष्म शरीर वाले को, गुणों द्वारा न जानने के योग्य या न नापने के योग्य व्यक्तित्व वाले को नमस्कार।।७०।। अच्छे गुणों को धारण करने वाले को, रहस्यमय को, असम्भव स्थानों को जाने वालों को नमस्कार। यह भूमि तीनों लोकों की माता है। आप के चरण सज्जनों द्वारा सेवित हैं। आप का उदर सब सिद्धियों का आश्रय है। उसके मध्य में विस्तृत अन्तरिक्ष तारागणों से विभूषित है, आप के गले में हार तारागणों के मार्ग की तरह चमकता है। दसों दिशाएँ आपकी दस भुजाएँ हैं जो कि केयूरों

दंष्ट्रा करालं दुर्धर्षमनौपम्यं मुखं तथा।
पद्ममालाकृतोष्णीषं शिरो द्यौः शोभतेऽधिकम्॥७५॥
दीप्तिः सूर्ये वपुश्चंद्रे स्थैर्यं शैलेऽनिले बलम्।
औष्ण्यमग्नौ तथा शैत्यमप्सु शब्दोऽम्बरे तथा॥७६॥

अक्षरांतरनिष्पंदाद्गुणानेतान्विदुर्बुधाः । जपो जप्यो महादेवो महायोगो महेश्वरः॥७७॥
पुरेशयो गुहावासी खेचरो रजनीचरः। तपोनिधिर्गुहगुरुर्नंदनो नंदवर्धनः॥७८॥
हयशीर्षा पयोधाता विधाता भूतभावनः। बोद्धव्यो बोधिता नेता दुर्धर्षो दुष्प्रकंपनः॥७९॥
बृहद्रथो भीमकर्मा बृहत्कीर्तिर्धनंजयः। घंटाप्रियो ध्वजी छत्री पिनाकी ध्वजिनीपतिः॥८०॥
कवची पट्टिशी खड्गी धनुर्हस्तः परमश्वधी। अघस्मरोऽनघः शूरो देवराजोऽरिमर्दनः॥८१॥
त्वां प्रसाद्य पुरास्माभिर्द्विषंतो निहता युधि। अग्निः सदार्णवांभस्त्वं पिबन्नपि न तृप्यसे॥८२॥
क्रोधाकारः प्रसन्नात्मा कामदः कामगः प्रियः। ब्रह्मचारी चागाधश्च ब्रह्मण्यः शिष्टपूजितः॥८३॥

देवानामक्षयः कोशस्त्वया यज्ञः प्रकल्पितः।

हव्यं तवेदं वहति वेदोक्तं हव्यवाहनः। प्रीते त्वयि महादेव वयं प्रीता भवामहे॥८४॥

भवानीशोऽनादिमांस्त्वं च सर्वलोकानां त्वं ब्रह्मकर्तादिसर्गः।
सांख्याः प्रकृतेः परमं त्वां विदित्वा क्षीणध्यानास्त्वाममृत्युं विशंति॥८५॥

(कंगनों) और बाजुओं से भूषित हैं। आप का कण्ठ लम्बा और चौड़ा है और नीले स्फटिक के समान है। यह सोने के जनेऊ से शोभा युक्त है।।७१-७४।। आप का मुख अनुपम है। टेढ़े दाँतों के कारण यह भयानक भी है। कमल की मालाओं की पगड़ी से आप का सिर जो स्वर्ग के तुल्य है और अधिक चमकता है।।७५।। सूर्य में उष्णता, जल में ठण्डक, आकाश में शब्द, पर्वतों में दृढ़ता, वायु में शक्ति, अग्नि में उष्मा (ताप), जलों में शीत, आकाश में शब्द, बुद्धिमान लोग जानते हैं कि ये गुण आपके अनश्वर भीतरी निस्पन्द के कारण हैं। जप के लिए शिवजी के निम्नलिखित नामों का उपयोग करना चाहिए। महादेव, महायोग, महेश्वर, पुरेशय (मन के पुर में लेटे हुए), गुहावासिन, (गुफा निवासी) खेचर (आकाशचारी), रजनीचर (रात में चलने वाला), तपोनिधि, गुहगुरु, नन्दन, नन्दवर्द्धन, हयशीर्ष, पयोधाता, विधाता, भूतभावन, बोद्धव्य, बोधित, नेता, दुर्धर्ष, दुष्कम्पन, बृहद्रथ, भीमकर्मा, बृहत्कीर्ति, धनंजय, घंटाप्रिय, ध्वजी, छत्री, पिनाकी, ध्वजिनीपति, कवची, पट्टिशी, खड्गी (तलवारधारी), धनुर्हस्त, परमश्वधी, अघस्मर, अनघ, शूर, देवराज, अरिमर्दन।।७६-८१।। पहिले लोगों ने आप की स्तुति करके रणक्षेत्र में राक्षसों (शत्रुओं) का संहार किया था। तुम समुद्र में स्थित बडवानल हो जो समुद्र के सब जलों को पीते हुये भी तृप्त नहीं होते हो। तुम क्रोध के रूप हो। प्रसन्नात्मा हो। कामना को पूरा करने वाले हो। तुम जहाँ चाहो वहाँ जा सकते हो। तुम हम लोगों के प्रिय हो। तुम ब्रह्मचारी हो। तुम अथाह हो। तुम ब्राह्मणों के प्रिय कर्त्ता हो। तुम शिष्टजनों द्वारा पूजित हो।।८२-८३।। तुमने देवताओं के अक्षय कोष यज्ञ को बनाया है। अग्नि देवता तुम्हारे लिये वेदोक्त हव्य को वहन करते हैं। हे महादेव! तुम्हारे प्रसन्न होने पर हम भी प्रसन्न होंगे।।८४।।

योगाश्च त्वां ध्यायिनो नित्यसिद्धं ज्ञात्वां योगान् संत्यजन्ते पुनस्तान्।
ये चाप्यन्ये त्वां प्रसन्ना विशुद्धाः स्वकर्मभिस्ते दिव्यभोगा भवंति॥८६॥
अप्रसंख्येयतत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः। कीर्तितं तव माहात्म्यमपारस्य महात्मनः॥८७॥
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते।

सूत उवाच

य इदं कीर्तयेद्भक्त्या ब्रह्मनारायणस्तवम्॥८८॥
श्रावयेद्वा द्विजान् विद्वान् शृणुयाद्वा समाहितः। अश्वमेधायुतं कृत्वा यत्फलं तदवाप्नुयात्॥८९॥
पापाचारोऽपि यो मर्त्यः शृणुयाच्छिवसन्निधौ। जपेद्वापि विनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं स गच्छति॥९०॥
श्राद्धे वा दैविके कार्ये यज्ञे वावभृथांतिके। कीर्तयेद्वा सतां मध्ये स याति ब्रह्मणोंतिकम्॥९१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ब्रह्मविष्णुस्तुतिर्नामैक-विंशोऽध्यायः॥२१॥

तुम पार्वती के पति हो। तुम अनादि हो। प्रथम सृष्टि के समय में तुम ब्रह्मा हो। सब लोकों के निर्माता हो। सांख्य दर्शन के अनुयायी तुमको प्रकृति से परे जानकर, ध्यान की समाप्ति के बाद वे मृत्युरहित होकर तुम्हीं में प्रवेश करते हैं।।८५।। वे जो तुम्हारा ध्यान करते हैं, तुमको योग के द्वारा नित्य सिद्ध जानकर उन योगों को त्याग देते हैं। वे और अन्य ज्ञानी प्रसन्नात्मा अपने कर्मों के द्वारा दिव्य भोग (आशीर्वाद) को प्राप्त करते हैं।।८६।। हम अपनी शक्ति (सामर्थ्य) के अनुसार जो कुछ आप की महानता को जितना जानते हैं तुम्हारी सत्यता (वास्तविकता) और गुण असंख्य (संख्यातीत) हैं। तुम महान आत्मा हो। तुम्हारा माहात्म्य अपार है। हम लोगों का सर्वत्र शुभ (कल्याण) हो। जैसे तुम हो वैसे हो। तुमको नमस्कार।।८७।।

सूत बोले

ब्रह्मा और विष्णु द्वारा की गई इस स्तुति को जो कोई पढ़े या विद्वान ब्राह्मणों को सुनावे या एकाग्रचित्त होकर सुने उसको दस हजार अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलेगा (प्राप्त होगा)। यहाँ तक कि पापपूर्ण कार्य करने वाला व्यक्ति भी यदि शिवालय में शिव के समक्ष इसको सुने या जप करे तो वह पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में निवास करेगा। जो व्यक्ति इस स्तुति को श्राद्ध के समय, या दिव्य धार्मिक अनुष्ठान में, या यज्ञ में, पवित्र स्नान (अभिषेक) के समय या सत्पुरुषों के बीच पढ़ेगा, वह ब्रह्मा के सायुज्य को प्राप्त करेगा (ब्रह्ममय हो जायेगा)।।८८-९१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में ब्रह्मा और विष्णु द्वारा स्तुति नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

रुद्रोत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

अत्यंतावनतौ दृष्ट्वा मधुपिंगायतेक्षणः। प्रहृष्टवदनोऽत्यर्थमभवत्सत्यकीर्तनात्॥१॥
उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशनः। पिनाकी खंडपरशुः सुप्रीतस्तु त्रिलोचनः॥२॥
ततः स भगवान्देवः श्रुत्वा वागमृतं तयोः। जानन्नपि महादेवः क्रीडापूर्वमथाब्रवीत्॥३॥
कौ भवंतौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ। समेतावंबुजाभाक्षावस्मिन्घोरे महाप्लवे॥४॥
तावूचतुर्महात्मानौ सन्निरीक्ष्य परस्परम्। भगवन् किं तु यत्तेऽद्य न विज्ञातं त्वया विभो॥५॥
विभो रुद्र महामाय इच्छया वां कृतौ त्वया। तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा अभिनंद्याभिमान्य च॥६॥
उवाच भगवान्देवो मधुरं श्लक्ष्णाया गिरा।
भो भो हिरण्यगर्भ त्वां त्वां च कृष्ण ब्रवीम्यहम्॥७॥
प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया। भवंतौ हृदयस्यास्य मम हृद्यतरावुभौ॥८॥
युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमीप्सितम्। अथोवाच महाभागो विष्णुर्भवमिदं वचः॥९॥
सर्वं मम कृतं देव परितुष्टोऽसि मे यदि। त्वयि मे सुप्रतिष्ठा तु भक्तिर्भवतु शंकर॥१०॥
एवमुक्तस्तु विज्ञाय संभावयत केशवम्। प्रददौ च महादेवो भक्तिं निजपदांबुजे॥११॥

बाईसवाँ अध्याय

रुद्र की उत्पत्ति का वर्णन

सूत बोले

उन दोनों को अत्यन्त नम्र देखकर मधु के समान पिंगल नेत्र वाले शिव उनकी सत्य प्रशंसा को सुनकर प्रसन्न हुए। उपापति त्रिलोचन, पिनाकी और त्रिशूली, दक्ष के विनाशक शिव प्रसन्न हुए।।१-२।। उनके अमृत समान वचन को सुनकर जानते हुए भी महादेव जी ने उनसे पूछा।।३।। 'परस्पर एक दूसरे का हित चाहने वाले तुम दोनों महात्मा कौन हो? इस भयानक महा बाढ़ में कमल के समान नेत्र वाले किस प्रकार मिले हो।' एक दूसरे को देखते हुए उन महान आत्माओं ने कहा, "आप से कोई बात छिपी नहीं है, हे महामाया वाले प्रभो रुद्र! तुमने ही हम दोनों को उत्पन्न किया है। अपनी इच्छा से उनकी बातों को सुनकर उनको सम्मानित करके अभिनन्दन करके उनसे मधुर शब्दों में कहा।।४-७।। "मैं नित्य तुम्हारे शाश्वत मूल्य वाले भक्तिपूर्ण वचनों से प्रसन्न हूँ। तुम दोनों मुझको हृदय से बढ़कर प्रिय हो।।८।। मैं अब तुम दोनों को क्या दूँ। वरों में जो अभीष्ट वर हो उसको माँगो।" तब महा भाग्यवान विष्णु ने शिव से कहा।।९।। "हे प्रभु! आप के द्वारा सब कुछ दे दिया गया। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो हे शंकर! आप में मेरी दृढ़ भक्ति रहे। यह वरदान दीजिए"।।१०।।

भवान्सर्वस्य लोकस्य कर्ता त्वमधिदैवतम्। तदेवं स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यंबुजेक्षण॥१२॥
एवमुक्त्वा तु भगवान् ब्रह्माणं चापिशंकरः। अनुगृह्याऽस्पृशद्देवो ब्रह्माणं परमेश्वरः॥१३॥
कराभ्यां सुशुभाभ्यां च प्राह हृष्टतरः स्वयम्। मत्समस्त्वं न संदेहो वत्स भक्तश्च मे भवान्॥१४॥
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि संज्ञा भवतु सुव्रत। एवमुक्त्वा तु भगवांस्ततोन्तर्धानमीश्वरः॥१५॥
गतवान् गणपो देवः सर्वदेवनमस्कृतः। अवाप्य संज्ञां गोविंदात् पद्मयोनिः पितामहः॥१६॥
प्रजाः स्रष्टुमनाश्चक्रे तप उग्रं पितामहः। तस्यैवं तप्यमानस्य न किंचित्समवर्तत॥१७॥
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो ह्यजायत। क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिंदवः॥१८॥
ततस्तेभ्योऽश्रुबिंदुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः। महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरप्यलंकृताः॥१९॥
प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः। सर्पांस्तानग्रजान्दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिंदयत्॥२०॥
अहो धिक् तपसो मह्यं फलमीदृशकं यदि। लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम॥२१॥
तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा। मूर्च्छाभिपरितापेन जहौ प्राणान्प्रजापतिः॥२२॥
तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात्कारुण्यपूर्वकम्। अथैकादश ते रुद्रा रुदंतोऽभ्यक्रमंस्तथा॥२३।
रोदनात्खलु रुद्रत्वं तेषु वै समजायत। ये रुद्रास्ते खलु प्राणा ये प्राणस्ते तदात्मकाः॥२४॥
प्राणाः प्राणवतां ज्ञेयाः सर्वभूतेष्ववस्थिताः। अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुराचरितस्य च॥२५॥

इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर शिव ने इसको अनुभव किया। उन्होंने विष्णु का आदर करके अपने चरण कमल में उनको अचल भक्ति प्रदान की।।११।। "तुम इस संसार के स्रष्टा हो। तुम इसके पालनहार देवता हो। हे वत्स! तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं जाता हूँ"।।१२।। ऐसा कहने के बाद भगवान शंकर ने ब्रह्मा को भी वरदान दिया। बहुत प्रसन्न हो उन्होंने ब्रह्मा को अपने पवित्र हाथों से थपथपाया और कहा, "निश्चय ही तुम मेरे समान हो। तुम मेरे भक्त भी हो। तुम्हारा कल्याण हो। मैं अब चलूँगा। हे सुव्रत! तुम्हारे भीतर सदा जागरूकता रहे"।।१३-१५।। ऐसा कहकर गणों के स्वामी, सब देवों से नमस्कृत भगवान अन्तर्धान हो गये। विष्णु से पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की इच्छा से भयानक तप करना प्रारम्भ किया। उनकी इस तपस्या का कोई फल नहीं निकला।।१६-१७।। बहुत समय के बाद उनका दुःख क्रोध में बदल गया। क्रोध से विह्वल उनके नेत्रों से आँसुओं की बूँदें गिर पड़ीं।।१८।। उन आँसू की बूँदों से वात, पित्त और कफमय बहुत जहरीले साँप पैदा हुए। वे महाभाग्यशाली थे। उन पर स्वस्तिक का चिह्न बना था। उनके बाल फैले हुए और तितर-वितर थे। उन सर्पों की उत्पत्ति देखकर ब्रह्मा ने अपने आप की निन्दा की।।१९-२०।। मेरी तपस्या का यह फल निकला। मुझको धिक्कार है। प्रारम्भ में ही मेरी प्रजा (सन्तान) लोक की विनाश करने वाली पैदा हुई।।२१।। क्रोध और दुःख से उत्पन्न ब्रह्मा को तीव्र मूर्छा हो गई। वे मूर्छित हो गये। मूर्छा से ब्रह्मा ने प्राण त्याग दिया। (मर गये)।।२२।। उन अतुल तेजस्वी ब्रह्मा से करुणापूर्वक रोते हुए ग्यारह रुद्र पैदा हुए।।२३।। रोने के कारण ही उनका नाम रुद्र हुआ। जो रुद्र थे वे ब्रह्मा के प्राण थे। रुद्र और प्राण एक दूसरे के तदात्मक (एक रूप) हैं।।२४।। सब प्राणियों में प्राण स्थित रहता है। अत्यन्त उग्र तपस्या करने वाले, महान् साधु चरित्र वाले

प्राणांस्तस्य ददौ भूयस्त्रिशूली नीललोहितः। लब्ध्वासून् भगवान्ब्रह्मा देवदेवमुमापतिम्॥२६॥
प्रणम्य संस्थितोऽपश्यद्गायत्र्या विश्वमीश्वरम्। सर्वलोकमयं देवं दृष्ट्वा स्तुत्वा पितामहः॥२७॥
ततो विस्मयमापन्नः प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः। उवाच वचनं शर्वं सद्यादित्वं कथंविभो॥२८॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे रुद्रोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥२२॥

ब्रह्मा को शिव ने प्राण दान दिया। उनको जीवित कर दिया। प्राण पाकर भगवान ब्रह्मा देवों के देव उमापति को प्रणाम करके गायत्री मन्त्र द्वारा विश्वात्मा ईश्वर को देखा। इस प्रकार देखकर और स्तुति करके विस्मय में पड़े ब्रह्मा ने शिव को बार-बार प्रणाम करके कहा, "हे विभो! सद्योजात आदि का रूप आप ने कैसे धारण किया।"॥२५-२८॥

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में रुद्र की उत्पत्ति का वर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

विविधकल्पवर्णनम्

सूत उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणो भगवान् भवः। ब्रह्मरूपी प्रबोधार्थं ब्रह्माणं प्राह सस्मितम्॥१॥
श्वेतकल्पो यदा ह्यासीदहमेव तदाभवम्। श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेतांबरधरः सितः॥२॥
श्वेतास्थिः श्वेतरोमा च श्वेतासृक् श्वेतलोहितः।
तेन नाम्ना च विख्यातः श्वेतकल्पस्तदा ह्यसौ॥३॥
मत्प्रसूता च देवेशी श्वेतांगा श्वेतलोहिता। श्वेतवर्णा तदा ह्यासीद्गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता॥४॥
तस्मादहं च देवेश त्वया गुह्येन वै पुनः। विज्ञातः स्वेन तपसा सद्योजातत्वमागतः॥५॥
सद्योजातेति ब्रह्मैतद्गुह्यं चैतत्प्रकीर्तितम्। तस्माद्गुह्यत्वमापन्नं ये वेत्स्यंति द्विजातयः॥६॥
मत्समीपं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। यदा चैव पुनस्त्वासील्लोहितो नाम नामतः॥७॥
मत्कृतेन च वर्णेन कल्पो वै लोहितः स्मृतः। तदा लोहितमांसास्थिलोहितक्षीरसंभवा॥८॥
लोहिताक्षी स्तनवती गायत्री गौः प्रकीर्तिता। ततोऽस्या लोहितत्वेन वर्णस्य च विपर्ययात्॥९॥
वामत्वाच्चैव देवस्य वामदेवत्वमागतः। तत्रापि च महासत्त्व त्वयाहं नियतात्मना॥१०॥

तेइसवाँ अध्याय

विविध कल्पों का वर्णन

सूत बोले

ब्रह्मा के वचन को सुनकर ब्रह्मरूपधारी शिव ने ब्रह्मा के प्रबोधन के लिए मुस्कुराते हुए कहा।।१।। "जब श्वेत कल्प चालू था, तभी मैं हुआ। (अस्तित्व में आया)। मेरी सफेद पगड़ी थी, सफेद माला थी, सफेद वस्त्र धारण किये हुये, सफेद हड्डियाँ, सफेद बाल में मैं स्वयं सफेद रंग में था। मेरा रक्त सफेद और शरीर का रंग सफेद था। इसीलिए कल्प उसी नाम से श्वेत कल्प प्रसिद्ध हुआ।।२-३।। देवों की देवी गायत्री मुझसे उत्पन्न हुई। उसका सफेद अंग, सफेद रक्त था। वह ब्रह्मशक्ति नाम से जानी गई। (प्रसिद्ध हुई)।।४।। इसीलिए हे देवेश! तुमने मुझको गुप्त (गुह्य) देवता समझा। मैंने अपने तपोबल से सद्योजात का रूप धारण किया।।५।। सद्योजात यह नाम गुह्य ब्रह्म का है। द्विजाति लोग जो मेरी गुह्य प्रकृति को जानते हैं वे मेरे समीप मुझको प्राप्त करेंगे, जहाँ से फिर इस संसार में आना दुर्लभ होगा।।६।। जब अगला कल्प लोहित नामक आया। वह नाम मेरे लोहित रंग के कारण पड़ा। तब गायत्री गौ (गाय) के रूप में प्रसिद्ध हुईं। उसके माँस, हड्डी आदि सब लोहित रंग के थे। लोहित अर्थात् लाल रंग का रक्त, दूध, लाल नेत्र, लाल स्तन थे। वह ब्रह्माणी नाम से प्रसिद्ध हुई। उसके रंग में परिवर्तन होने के कारण देव का रंग लाल होने से यम हुए। तब मैं वामदेव नाम से प्रसिद्ध हुआ।

विज्ञातः स्वेन योगेन तस्मिन्वर्णान्तरे स्थितः। ततश्च वामदेवेति ख्यातिं यातोऽस्मि भूतले॥११॥
ये चापि वामदेव त्वां ज्ञास्यंतीह द्विजातयः। रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥१२॥
यदाहं पुनरेवेह पीतवर्णो युगक्रमात्। मत्कृतेन नाम्ना वै पीतकल्पोऽभवत्तदा॥१३॥
यत्प्रसूता च देवेशी पीतांगी पीतलोहिता। पीतवर्णा तदा ह्यायसीद्गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता॥१४॥
तत्रापि च महासत्त्व योगयुक्तेन चेतसा। यस्मादहं तैर्विज्ञातो योगतत्परमानसैः॥१५॥
तत्र तत्पुरुषत्वेन विज्ञातोऽहं त्वया पुनः। तस्मात्तत्पुरुषत्वं वै ममैतत्कनकांडज॥१६॥
ये मां रुद्रं च रुद्राणीं गायत्रीं वेदमातरम्। वेत्स्यंति तपसा युक्ता विमला ब्रह्मसंगताः॥१७॥
रुद्रलोकं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। यदाहं पुनरेवासं कृष्णवर्णो भयानकः॥१८॥
मत्कृतेन च वर्णेन संकल्पः कृष्ण उच्यते। तत्राहं कालसंकाशः कालो लोकप्रकाशकः॥१९॥
विज्ञातोऽहं त्वया ब्रह्मन्घोरो घोरपराक्रमः। मत्प्रसूता च गायत्री कृष्णांगी कृष्णलोहिता॥२०॥
कृष्णरूपा च देवेश तदासीद्ब्रह्मसंज्ञिता। तस्माद्घोरत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यंति भूतले॥२१॥
तेषामघोरः शांतश्च भविष्याम्यहमव्ययः। पुनश्च विश्वरूपत्वं यदा ब्रह्मन्ममाभवत्॥२२॥
तदाप्यहं त्वया ज्ञातः परमेण समाधिना। विश्वरूपा च संवृत्ता गायत्री लोकधारिणी॥२३॥
तस्मिन्विश्वत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यंति भूतले। तेषां शिवश्च सौम्यश्च भविष्यामि सदैव हि॥२४॥
यस्माच्च विश्वरूपो वै कल्पोऽयं समुदाहृतः। विश्वरूपा तथा चेयं सावित्री समुदाहृता॥२५॥

हे महासत्त्व! तब उस समय में भी मैं जो भिन्न रंग में था, तुमने अपने योग बल से दूसरे रंग में स्थित होते हुए भी मुझको पहिचान लिया। तब पृथ्वी पर मैं वामदेव नाम से प्रसिद्ध हुआ। जो द्विजाति लोग मेरे वामदेव रूप को जानेंगे वे रुद्र लोक को जायँगे। जहाँ से फिर वापस आना दुर्लभ है।।७-१२।। जब युग बदलने के क्रम में मैं पीले रंग का हो गया तो उस युग का पीतयुग हो गया। मेरे द्वारा रखे गये नाम से वह पीत कल्प कहलाया।।१३।। मुंझसे उत्पन्न देवी गायत्री का नाम ब्रह्माणी था। उसका शरीर पीला, रक्त पीला और रंग पीला था।।१४।। हे महासत्त्व! उस समय में भी योग में तत्पर मन वालों द्वारा योगयुक्त चित्त से मुझको पहिचान लिया था। वहाँ फिर तुमने मुझको तत्पुरुष रूप में जान लिया। इस लिए हे सुवर्ण अण्ड से उत्पन्न ब्रह्मा! जो आस्था से युक्त, विमल मन और ब्रह्म से सम्पर्क रखते हैं, वे मुझको रुद्र और वेद माता रुद्राणी को गायत्री के रूप में जानते हैं। वे रुद्र लोक को जायेंगे जहाँ से फिर लौटना दुर्लभ है।।१५-१७।। जब मैं भयानक और काले रंग में हो गया तो मेरे द्वारा धारण किये गये रंग के कारण इस कल्प का नाम कृष्ण हो गया। तब मैं काल (मृत्यु देवता) के समान हो गया। मैं काल हूँ। मैं लोकों का प्रकाशक हूँ। हे ब्रह्मा! तब तुमने घोर पराक्रमी मुझको घोर नाम से जाना। हे देवेश! मुझसे उत्पन्न गायत्री काले शरीर वाली, काले रंग की रक्त वाली गायत्री का ब्रह्माणी नाम था। अतः जो लोग मुझको जानते हैं कि मैंने घोर रूप धारण किया था, मैं उनके लिए, अघोर (अभयानक) और शान्त हूँगा।।१८-२१।। हे ब्रह्मा! फिर जब मैंने विश्व रूप धारण किया, तो अपने योग बल से (समाधि) तब लोकों को धारण करने वाली गायत्री ने भी विश्व रूप धारण किया। जो लोग जानते हैं कि मैंने विश्व रूप धारण किया है, इनके लिए मैं शिव और सौम्य होऊँगा। यह कल्प विश्वरूप नाम से प्रसिद्ध हुआ और यह

सर्वरूपा तथा चेमे संवृत्ता मम पुत्रकाः।
चत्वारस्ते मया ख्याताः पुत्रा वै लोकसंमताः॥२६॥

यस्माच्च सर्ववर्णत्वं प्रजानां च भविष्यति। सर्वभक्षा च मेध्या च वर्णतश्च भविष्यति॥२७॥
मोक्षो धर्मस्तथार्थश्च कामश्चेति चतुष्टयम्। यस्माद्वेदाश्च वेद्यं च चतुर्धा वै भविष्यति॥२८॥
भूतग्रामाश्च चत्वार आश्रमाश्च तथैवच। धर्मस्य पादाश्चत्वारश्चत्वारो मम पुत्रकाः॥२९॥
तस्माच्चतुर्युगावस्थं जगद्वै सचराचरम्। चतुर्धावस्थितश्चैव चतुष्पादो भविष्यति॥३०॥
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकश्चमहस्तथा। जनस्तपश्च सत्यं च विष्णुलोकस्ततः परम्॥३१॥
अष्टाक्षरस्थितो लोकः स्थानेस्थाने तदक्षरम्। भूर्भुवः स्वर्महश्चैव पादाश्चत्वार एव च॥३२॥
भूर्लोकः प्रथमः पादो भुवर्लोकस्ततः परम्। स्वर्लोको वै तृतीयश्च चतुर्थस्तु महस्तथा॥३३॥
पंचमस्तु जनस्तत्र षष्ठश्च तप उच्यते। सत्यं तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्भवगामिनाम्॥३४॥
विष्णुलोकः स्मृतं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम्। स्कांदभौमं तथा स्थानं सर्वसिद्धिसमन्वितम्॥३५॥
रुद्रलोकः स्मृतस्तस्मात्पदं तद्योगिनां शुभम्। निर्ममा निरहंकाराः कामक्रोधविवर्जिताः॥३६॥
द्रक्ष्यंति तद्विजा युक्ता ध्यानतत्परमानसाः। यस्माच्चतुष्पदा ह्येषा त्वया दृष्टा सरस्वती॥३७॥
पादांतं विष्णुलोकं वै कौमारं शांतमुत्तमम्। औमं माहेश्वरं चैव तस्मादृष्टा चतुष्पदा॥३८॥
तस्मात्तु पशवः सर्वे भविष्यन्ति चतुष्पदाः। ततश्चैषां भविष्यंति चत्वारस्ते पयोधराः॥३९॥
सोमश्च मंत्रसंयुक्तो यस्मान्मम मुखाच्चयुतः। जीवः प्राणभृतां ब्रह्मन्पुनः पीतस्तनाः स्मृताः॥४०॥

गायत्री विश्वरूपा नाम से ख्यात हुई।।२२-२५।। यह चार जो सब रूप में हैं मेरे पुत्र के नाम से लोक में प्रसिद्ध होंगे क्योंकि ये अनेक रंग के हैं, अतः इनकी सन्तान भी अनेक रंग या जाति की होगी। सब गायत्री का प्रयोग करने के अधिकृत होंगे। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य चार प्रकार का है—धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष। सब प्राणी चार वर्ग में आवेंगे। जीवन में चार आश्रम होंगे। धर्म के चार चरण होंगे, क्योंकि मेरे चार पुत्र हैं।।२६-२९।। अतः चर और अचर सारा जगत चार युगों में स्थित है। चार युगों में स्थित होने के कारण चार पाद (चरण) होंगे।।३०।। आठ लोक हैं भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य और विष्णु लोक। ये अष्टाक्षर में स्थित हैं। उनमें से प्रत्येक लोक अक्षर (अनश्वर) है। भूः, भुवः, स्वः और महः ये चार पाद हैं।।३१-३२।। पहिला भूः है, दूसरा भुवः, तीसरा स्वः और चौथा महः है।।३३।। उससे पाँचवा जनः, छठवाँ तपः, सातवाँ सत्य जहाँ से लोग इस जगत् में वापस नहीं आते हैं। विष्णु आठवाँ लोक हैं। यह भी वह लोक है जहाँ से इस जगत में लौटना कठिन है। उसकें बाद स्कन्द और उमा का लोक है जो सब सिद्धियों से युक्त है।।३४-३५।। उसके बाद योगियों का शुभ रुद्र लोक है। वे द्विज जो अहंकार रहित हैं, काम क्रोध को जीते हैं और ध्यान योग में तत्पर हैं, वे ही इस रुद्र लोक में प्रवेश कर सकते हैं। गायत्री को तुमने चार पैर वाली देखा है तो लोक भी चार हैं। उमा, कुमार, शिव और विष्णु के लोक। फिर गायत्री चार पैरों वाली है तो सब पशु चार पैर वाले होंगे। उनके स्तन भी चार होंगे।।३६-३९।। प्राणियों का जीवन सोमरस वेद मन्त्र से युक्त है। वह मेरे मुख से गिरा है जिसको

तस्मात्सोममयं चैव अमृतं जीवसंज्ञितम्। चतुष्पादा भविष्यंति श्वेतत्वं चास्य तेन तत्॥४१॥
यस्माश्चैव क्रिया भूत्वा द्विपदा च महेश्वरी। दृष्टा पुनस्तथैवैषा सावित्री लोकभाविनी॥४२॥
तस्माच्च द्विपदाः सर्वे द्विस्तनाश्च नराः शुभाः। तस्माच्चेयमजा भूत्वा सर्ववर्णा महेश्वरी॥४३॥
या वै दृष्टा महासत्त्वा सर्वभूतधरा त्वया। तस्माच्च विश्वरूपत्वं प्रजानां वै भविष्यति॥४४॥
अजश्चैव महातेजा विश्वरूपो भविष्यति। अमोघरेताः सर्वत्र मुखे चास्य हुताशनः॥४५॥
तस्मात्सर्वगतो मेध्यः पशुरूपी हुताशनः। तपसा भावितात्मानो ये मां द्रक्ष्यंति वै द्विजाः॥४६॥
ईशित्वे च वशित्वे च सर्वगं सर्वतः स्थितम्।
रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्त्यक्त्वा मानुष्यकं वपुः॥४७॥
मत्समीपमुपेष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। इत्येवमुक्तो भगवान्ब्रह्मा रुद्रेण वै द्विजाः॥४८॥
प्रणम्य प्रयतो भूत्वा पुनराह पितामहः। य एवं भगवान् विद्वान् गायत्र्या वै महेश्वरम्॥४९॥
विश्वात्मानं हि सर्वं त्वां गायत्र्यास्तव चेश्वर। तस्य देहि परं स्थानं तथास्त्विति च सोब्रवीत्॥५०॥
तस्माद्विद्वान् हि विश्वत्वमस्याश्चास्य महात्मनः। स याति ब्रह्मसायुज्यं वचनाद्ब्रह्मणः प्रभोः॥५१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विविधकल्पवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

गाय के स्तनों ने पिया है, अतः वह सोमरस के नाम से प्रसिद्ध है जो प्राणियों का जीवन है। इस कारण से भी पशु चार पैरों वाले होते हैं और उनका दूध भी सफेद होता है। चूँकि महेश्वरी धार्मिक क्रिया में द्विपद (दो पैरो वाली) देखी गई। अतः लोकों की सृष्टि करने वाली गायत्री भी इसी स्वभाव की हो गई। अर्थात् द्विपदा हो गई। उसी से सब मनुष्य भी द्विपद और दो स्तन वाले हुये। चूँकि अजा महेश्वरी सब रंगों वाली हुई, महाशक्तिशाली सब प्राणियों का अष्टम रूप तुमने देखा; अतः सन्तानें भी अनेक प्रकार के रूपों में होंगी।।४०-४४।। अज देव महातेजस्वी और विश्वरूप होंगे। उनके मुख में अमोघ शक्ति अग्नि देवता होंगे। इससे वह शुद्ध और सर्वगत अग्निदेव प्राणिवान शरीर धारण करेंगे। अपनी तपस्या से शुद्ध-शुद्ध मन वाले जो मुझको सबके स्वामित्व, जितेन्द्रिय और सर्वव्यापक रूप में देखेंगे वे तमो गुण और रजो गुण से युक्त होकर मनुष्य की देह का त्याग करने (मरने) के बाद मेरे पास आवेंगे। मुझको प्राप्त करेंगे। जहाँ से फिर पृथ्वी पर लौटना दुर्लभ होगा।।४५-४८।। हे ब्राह्मणों! रुद्र के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर ब्रह्मा ने रुद्र को प्रणाम किया और शुद्ध होकर कहा, "हे प्रभो! तुम गायत्री की महत्ता और सर्वेश्वर (महेश्वर) की विद्वता से सुसज्जित हो। हे शिव! आप कृपया मुझको गायत्री और स्वयं अपने लोक में निवास दीजिये।" तब भगवान ने उनको वर दिया। ऐसा ही हो। जैसा कि रुद्र ने ब्रह्मा से कहा तद्नुसार वह जो कि विद्वान रुद्र को और गायत्री को विश्व में अष्टम कला को जानेगा वह ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त करेगा।।४९-५१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में विविध कल्पों का वर्णन नामक तेइसवाँ अध्याय समाप्त॥२३॥

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

शिवस्यअवताराः

सूत उवाच

श्रुत्वैवमखिलं ब्रह्मा रुद्रेण परिभाषितम्। पुनः प्रणम्य देवेशं रुद्रमाह प्रजापतिः॥१॥
भगवन्देवदेवेश विश्वरूपं महेश्वर। उमाधव महादेव नमो लोकाभिवंदित॥२॥
विश्वरूप महाभाग कस्मिन्काले महेश्वर। या इमास्ते महादेव तनवो लोकवंदिताः॥३॥
कस्यां वा युगसंभूत्यां द्रक्ष्यतीह द्विजातयः। केन वा तपसा देव ध्यानयोगेन केन वा॥४॥
नमस्ते वै महादेव शक्यो द्रष्टुं द्विजातिभिः। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शर्वः संप्रेक्ष्य तं पुरः॥५॥
स्मयन्प्राह महादेवो ऋग्यजुःसामसंभवः।

श्रीभगवानुवाच

तपसा नैव वृत्तेन दानधर्मफलेन च॥६॥
न तीर्थफलयोगेन क्रतुभिर्वाप्तदक्षिणैः। न वेदाध्ययनैर्वापि न वित्तेन न वेदनैः॥७॥
न शक्यं मानवैर्द्रष्टुमृते ध्यानादहं त्विह। सप्तमे चैव वाराहे ततस्तस्मिन्पितामह॥८॥
कल्पेश्वरोऽथ भगवान् सर्वलोकप्रकाशनः। मनुर्वैवस्वतश्चैव तव पौत्रो भविष्यति॥९॥
तदा चतुर्युगावस्थे तस्मिन्कल्पे युगांतिके। अनुग्रहार्थं लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च॥१०॥

चौबीसवाँ अध्याय

शिव के अवतार

सूत बोले

रुद्र द्वारा इस प्रकार कहने पर प्रजापति ब्रह्मा ने देवेश रुद्र को प्रणाम करके उनसे कहा।।१।। "हे भगवन्! देवदेवेश! हे विश्वरूप! हे महेश्वर! हे उमापति! हे सब के द्वारा अभिवंदित! तुमको नमस्कार।।२।। हे विश्वरूप! हे महाभाग! हे महेश्वर! कब और किस युग में सब लोगों द्वारा वंदित तुम्हारे इन शरीरों को द्विजाति लोग किस तपस्या या ध्यान योग से देखेंगे?"।।३-४।। उनके वचन सुनकर और उनको सामने देखकर ऋग्, यजुः और साम से उद्घाटित रुद्र ने मुस्कुराते हुये उनसे कहा।।५।। "ध्यान को छोड़कर, न तपस्या द्वारा, न आचरण द्वारा और न तो दान से, न तो धार्मिक कृत्यों से, न तीर्थों के दर्शन करने से, दक्षिणा सहित यज्ञों के करने से, न वेदों के अध्ययन से, न धन और न अनेक प्रकार के ज्ञान से मनुष्य द्वारा मुझको देखना (मेरा दर्शन करना) सम्भव नहीं है। हे ब्रह्मा! सातवें कल्प में वराह उस कल्प का प्रकाशक होगा और तुम्हारा पौत्र वैवस्वत मनु होगा।।६-९।। चतुर्युग के दौरान कलि के अन्त में लोकों पर अनुग्रह और ब्राह्मणों के हित के लिए मैं जन्म लूँगा। हे ब्रह्मा! जब युग आगे बढ़ेगा तो उस युग के अन्त में जब प्रभु स्वयं व्यास हो जाते हैं, द्वापर युग के

उत्पत्स्यामि तदा ब्रह्मन्पुनरस्मिन्युगांतिके। युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिंश्च प्रथमे युगे॥११॥
द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन्यदा व्यासः स्वयं प्रभुः। तदाहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन् युगांतिके॥१२॥
भविष्यामि शिखायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः। हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे॥१३॥
तत्र शिष्याः शिखायुक्ता भविष्यंति तदा मम। श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः॥१४॥
चत्वारस्तु महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः। ततस्ते ब्रह्मभूयिष्ठा दृष्ट्वा ब्रह्मगतिं पराम्॥१५॥
मत्समीपं गमिष्यंति ध्यानयोगपरायणाः। ततः पुनर्यदा ब्रह्मन् द्वितीये द्वापरे प्रभुः॥१६॥
प्रजापतिर्यदा व्यासः सद्यो नाम भविष्यति। तदा लोकहितार्थाय सुतारो नाम नामतः॥१७॥
भविष्यामि कलौ तस्मिन् शिष्यानुग्रहकाम्यया। तत्रापि मम ते शिष्या नामतः परिकीर्तिताः॥१८॥
दुंदुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तदा। प्राप्य योगं तथा ध्यानं स्थाप्य ब्रह्म च भूतले॥१९॥
रुद्रलोकं गमिष्यंति सहचारित्वमेव च। तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः॥२०॥
तदाप्यहं भविष्यामि दमनस्तु युगांतिके। तत्रापि च भविष्यंति चत्वरो मम पुत्रकाः॥२१॥
विकोशश्च विकेशश्च विपाशः शापनाशनः। तेपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन महौजसः॥२२॥
रुद्रलोकं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽङ्गिराः स्मृतः॥२३॥
तदाप्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नामतः। तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारोपि तपोधनाः॥२४॥
द्विजश्रेष्ठा भविष्यंति योगात्मानो दृढव्रताः। सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दरो दुरतिक्रमः॥२५॥
प्राप्य योगगतिं सूक्ष्मां विमला दग्धकिल्बिषाः। तेपि तेनैव मार्गेण योगयुक्ता महौजसः॥२६॥

दौरान प्रथम मैं द्वापर के अन्त में श्वेत मुनि के रूप में जन्म लूँगा। हिमालय के रम्य शिखर छागल पर्वत पर वास करूँगा। शिखा धारण करूँगा।।१०-१३।। तब मेरे शिखा युक्त चार भद्र ब्राह्मण मेरे शिष्य होंगे। श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतमुख और श्वेतलोहित होंगे। वे चारों ब्राह्मण महात्मा और वेदों के पारंगत विद्वान होंगे। उसके बाद ब्रह्म गति को देखकर ध्यान और योग मार्ग में परायण वे मेरे समीप आवेंगे। हे ब्रह्मा! द्वितीय द्वापर युग में भगवान प्रजापति व्यास होंगे। तब उनका नाम सद्य होगा। उसके बाद कलियुग में मैं सुतार नाम से शिष्यों पर कृपा करने की इच्छा से तथा लोक कल्याण के लिए जन्म लूँगा।।१४-१८।। वहाँ भी दुंदुभि, शतरूप, ऋचीक और केतुमान नामक मेरे चार शिष्य योग और ध्यान को प्राप्त करके और पृथ्वी पर ब्रह्म को स्थापित करके रुद्र के अनुचर पद को प्राप्त करके रुद्र लोक में जायेंगे। तृतीय द्वापर में भार्गव व्यास होंगे। तब द्वापर के अन्त में मैं दमन के रूप में जन्म लूँगा। वहाँ भी मुझसे चार पुत्र पैदा होंगे। उनके नाम विकोश, विकेश, विपाश और शापनाशन होंगे। वे चारों महाशक्तिशाली पुत्र उसी योगिक मार्ग द्वारा रुद्र लोक को जायेंगे। वहाँ से फिर इस भूतल पर लौटना दुर्लभ होगा। चतुर्थ द्वापर युग में अंगिरा व्यास होंगे। मैं तब सुहोत्र नाम से जन्म लूँगा। वहाँ भी मेरे चार तपस्वी पुत्र पैदा होंगे।।१९-२४।। वे उत्तम ब्राह्मण, योगिक आत्मा से सम्पन्न और दृढ़व्रती होंगे। उनके नाम सुमुख, दुर्मुख, दुर्दर और दुरतिक्रम होंगे।।२५।। दृढ़ यौगिक अभ्यास करके शुद्ध होकर अपने पापों को जलाकर वे महातेजस्वी पुत्र भी योग से युक्त हो वे उसी मार्ग से रुद्र लोक को जायँगे जहाँ से फिर लौटना

रुद्रलोकं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा॥२७॥
तदा चापि भविष्यामि कंको नाम महातपाः। अनुग्रहार्थं लोकानां योगात्मैककलागतिः॥२८॥
चत्वारस्तु महाभागा विमलाः शुद्धयोनयः। शिष्या मम भविष्यंति योगात्मानो दृढव्रताः॥२९॥
सनकः सनंदनश्चैव प्रभुर्यश्च सनातनः। विभुः सनत्कुमारश्च निर्ममा निरहंकृताः॥३०॥
मत्समीपमुपेष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा विभुः॥३१॥
तदाप्यहं भविष्यामि लोगाक्षिर्नाम नामतः। तत्रापि मम ते शिष्या योगात्मानो दृढव्रताः॥३२॥
भविष्यंति महाभागाश्चत्वारो लोकसंमताः। सुधामा विरजाश्चैव शंखपाद्रज एव च॥३३॥
योगात्मानो महात्मानः सर्वे वै दग्धकिल्बिषाः। तेपि तेनैव मार्गेण ध्यानयोगसमन्विताः॥३४॥
मत्समीपं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। सप्तमे परिवर्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः॥३५॥
विभुनामा महातेजाः प्रथितः पूर्वजन्मनि। तदाप्यहं भविष्यामि कलौ तस्मिन् युगांतिके॥३६॥
जैगीषव्यो विभुः ख्यातः सर्वेषां योगिनां वरः। तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति युगे तथा॥३७॥
सारस्वतश्च मेघश्च मेघवाहः सुवाहनः। तेपि तेनैव मार्गेण ध्यानयोगपरायणाः॥३८॥
गमिष्यंति महात्मानो रुद्रलोकं निरामयम्। वसिष्ठश्चाष्टमे व्यासः परिवर्ते भविष्यति॥३९॥
यदा तदा भविष्यामि नाम्नाहं दधिवाहनः। तत्रापि मम ते पुत्रा योगात्मानो दृढव्रताः॥४०॥
भविष्यंति महायोगा येषां नास्ति समो भुवि। कपिलश्चासुरिश्चैव तथा पंचशिखो मुनिः॥४१॥
बाष्कलश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः। प्राप्य माहेश्वरं योगं ज्ञानिनो दग्धकिल्बिषाः॥४२॥

दुर्लभ है। पाँचवें द्वापर युग में सविता व्यास होंगे। तब लोगों को आशीर्वाद देने और लोगों को योग का प्रचार करने के लिये कंक नाम का महा तपस्वी हूँगा।।२६-२८।। चार महाभाग, शुद्ध योनि से उत्पन्न मेरे चार शिष्य होंगे। वे योगिक आत्मा वाले दृढ़व्रती होंगे। वे सनक, सनन्दन, सनातन और सनक नाम से प्रसिद्ध होंगे। वे अहंकार रहित होंगे।।२९-३०।। अन्त में वे मेरे समीप आवेंगे जहाँ से लौटना दुर्लभ होगा। छठवें युग में मृत्यु, व्यास होंगे और मैं तब लोगाक्षि नाम से पैदा हूँगा। वहाँ भी योगिक आत्मा वाले, दृढ़व्रती, महाभाग और प्रसिद्ध सुधामा, विरजा, शंखपाद और रजस् नामक चार शिष्य होंगे। वे सब योगिक आत्मा वाले, महान आस्था, शुद्ध और पाप रहित होंगे। वे भी योगाभ्यासी ध्यान योग से युक्त होंगे। वे उसी मार्ग से मेरे समीप आवेंगे जहाँ से वापस लौटना दुर्लभ होगा।।३१-३४।। युग के सातवें चक्र में जब शतक्रतु व्यास होंगे जो कि पूर्व जन्म में महा तेजस्वी विभु नाम से प्रसिद्ध थे। तब द्वापर के अन्त और कलियुग में सब योगियों में श्रेष्ठ जैगीषव्य विभु नाम से जन्म लूँगा। वहाँ भी मेरे चार पुत्र सारस्वत, मेघ, मेघवाह और सुवाहन नामक होंगे। वे भी महान् आत्मा और ध्यान योग में परायण स्वरूप से रुद्र लोक को जायँगे।।३५-३८।। आठवें चक्र में जब वशिष्ठ व्यास होंगे मैं दधिवाहन नाम से जन्म लूँगा। वहाँ भी मेरे पुत्र योग आत्मा वाले और दृढ़व्रती और महान योगाभ्यासी होंगे। वे कपिल, आसुरि, पंचशिख और वाष्कल नाम से प्रसिद्ध होंगे। वे धर्मात्मा, महातेजस्वी, महायोगी और माहेश्वर योग को प्राप्त करके ज्ञान से निष्पाप होकर मेरे पास आवेंगे जहाँ से पुनः वापस होना दुर्लभ है।।३९-४२।।

मत्समीपं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। परिवर्ते तु नवमे व्यासः सारस्वतो यदा॥४३॥
तदाप्यहं भविष्यामि ऋषभो नाम नामतः। तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति महौजसः॥४४॥
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवांगिरसौ तदा। भविष्यंति महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः॥४५॥
ध्यानमार्गं समासाद्य गमिष्यंति तथैव ते। सर्वे तपोबलोत्कृष्टाः शापानुग्रहकोविदाः॥४६॥
तेपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन तपस्विनः। रुद्रलोकं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥४७॥
दशमे द्वापरे व्यासः त्रिपाद्वै नाम नामतः। यदा भविष्यते विप्रस्तदाहं भविता मुनिः॥४८॥
हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुङ्गे नगोत्तमे। नाम्ना भृगोस्तु शिखरं प्रथितं देवपूजितम्॥४९॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति दृढव्रताः। बलबंधुर्निरामित्रः केतुश्रृंगस्तपोधनः॥५०॥
योगात्मानो महात्मानस्तपोयोगसमन्विताः। रुद्रलोकं गमिष्यंति तपसा दग्धकिल्बिषाः॥५१॥
एकादशे द्वापरे तु व्यासस्तु त्रिव्रतो यदा। तदाप्यहं भविष्यामि गंगाद्वारे कलौ तथा॥५२॥
उग्रो नाम महातेजाः सर्वलोकेषु विश्रुतः। तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति महौजसः॥५३॥
लंबोदरश्च लंबाक्षो लंबकेशः प्रलंबकः। प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते॥५४॥
द्वादशे परिवर्ते तु शततेजा यदा मुनिः। भविष्यति महातेजा व्यासस्तु कविसत्तमः॥५५॥
तदाप्यहं भविष्यामि कलाविह युगांतिके। हैतुकं वनमासाद्य अत्रिर्नाम्ना परिश्रुतः॥५६॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भस्मस्नानानुलेपनाः। भविष्यंति महायोगा रुद्रलोकपरायणाः॥५७॥
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सर्वस्तथैव च। प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते॥५८॥
त्रयोदशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु। धर्मो नारायणो नाम व्यासस्तु भविता यदा॥५९॥

नवें चक्र में जब सारस्वत व्यास होंगे, मैं ऋषभ नाम से जन्म लूँगा। वहाँ भी मेरे पुत्र महा पराक्रमी होंगे। तब पराशर, गर्ग, भार्गव और अंगरिस् मेरे पुत्र होंगे। वे ब्राह्मण, महात्मा और वेदों के पारंगत विद्वान होंगे। वे ध्यान मार्ग को प्राप्त करके उसी प्रकार तपोबल से उत्कृष्ट और शाप और आशीर्वाद देने में सक्षम, वे तपस्वी भी योग से युक्त उसी मार्ग से रुद्र लोक को जायँगे जहाँ से फिर वापस आना दुर्लभ है।।४३-४७।। दसवें द्वापर युग में त्रिपाद नामक मुनि व्यास होंगे। तब मैं ब्राह्मण रूप में पर्वतों में उत्तम हिमालय के ऊँचे देव पूजित शिखर भृगुतुंग पर जन्म लूँगा। वह शिखर भृगु के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ भी मेरे पुत्र दृढ़व्रती होंगे। उनके नाम बलबंधु, निरामित्र, केतुश्रृंग और तपोधन होंगे। वे योगात्मा, महान् आत्मा और तप एवं योग से युक्त होंगे। वे तपस्या से अपने पापों को जलाकर रुद्र लोक को जायेंगे।।४८-५१।। ग्यारहवें द्वापर में जब त्रिव्रत व्यास होंगे तब भी मैं कलियुग में गंगाद्वार में लोकों में प्रसिद्ध महा तेजस्वी उग्र नाम से जन्म लूँगा। वहाँ भी मेरे महा तेजस्वी चार पुत्र लंबोदर, लंबाक्ष, लंबकेश और प्रलम्बक नामक होंगे। वे माहेश्वर योग को प्राप्त करके रुद्र लोक को जायेंगे।।५२-५४।। बारहवें चक्र में जब अमित तेजस्वी और बुद्धिमान शततेजा मुनि व्यास होंगे तब मैं द्वापर के अन्त में और कलियुग के प्रारम्भ में हैतुक वन में अत्रि नाम से जन्म लूँगा। वहाँ भी भस्म स्नान करने वाले, महायोगी और रुद्र लोक के भक्त सर्वज्ञ, समबुद्धि साध्य और सर्व ये चार पुत्र होंगे। वे माहेश्वर योग को प्राप्त कर रुद्र लोक को जायेंगे।।५५-५८।। जब तेरहवाँ चक्र क्रम से आयेगा और जब धर्म नारायण नामक व्यास

तदाप्यहं भविष्यामि वालिर्नाम महामुनिः। वालखिल्याश्रमे पुण्ये पर्वते गंधमादने॥६०॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति तपोधनाः। सुधामा काश्यपश्चैव वासिष्ठो विरजास्तथा॥६१॥
महायोगबलोपेता विमला ऊर्ध्वरेतसः। प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते॥६२॥
यदा व्यासस्तरक्षुस्तु पर्याये तु चतुर्दशे। तत्रापि पुनरेवाहं भविष्यामि युगांतिके॥६३॥
वंशे त्वंगिरसां श्रेष्ठे गौतमो नाम नामतः। भविष्यति महापुण्यं गौतमं नाम तद्वनम्॥६४॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति कलौ तदा। अत्रिर्देवसदश्चैव श्रवणोऽथ श्रविष्ठकः॥६५॥
योगात्मानो महात्मानः सर्वे योगसमन्विताः। प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः॥६६॥
ततः पंचदशे प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते। त्रैय्यारुणिर्यदा व्यासो द्वापरे समपद्यत॥६७॥
तदाप्यहं भविष्यामि नाम्ना वेदशिरा द्विजः। तत्र वेदशिरो नाम अस्त्रं तत्पारमेश्वरम्॥६८॥
भविष्यति महावीर्यं वेदशीर्षश्च पर्वतः। हिमवत्पृष्ठमासाद्य सरस्वत्यां नगोत्तमे॥६९॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति तपोधनाः। कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः॥७०॥
योगात्मानो महात्मानः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः। प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः॥७१॥
व्यासो युगे षोडशे तु यदा देवो भविष्यति। तत्र योगप्रदानाय भक्तानां च यतात्मनाम्॥७२॥
तदाप्यहं भविष्यामि गोकर्णो नाम नामतः। भविष्यति सुपुण्यं च गोकर्णं नाम तद्वनम्॥७३॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति च योगिनः। काश्यपो ह्युशनाश्चैव च्यवनोथ बृहस्पतिः॥७४॥
तेपि तेनैव मार्गेण ध्यानयोगसमन्विताः। प्राप्य माहेश्वरं योगं गंतारो रुद्रमेव हि॥७५॥

होंगे तब मैं वालि नामक मुनि के नाम से गंधमादन पुण्य पर्वत पर बालखिन्य आश्रम में जन्म लूँगा। वहाँ भी मेरे सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ और विरज नामक चार पुत्र होंगे। वे महायोग बल से युक्त, शुद्ध, ब्रह्मचारी होंगे। वे माहेश्वर योग को प्राप्त करके रुद्र लोक को जायेंगे।।५९-६२।। चौदहवें चक्र में जब तरक्षु व्यास होंगे तब भी मैं युग के अन्त में अंगिरा के परिवार में गौतम नाम से जन्म लूँगा। उस पवित्र बन का नाम भी गौतम बन होगा। वहाँ भी कलियुग में मेरे चार पुत्र अत्रि, देवसद, श्रवण और श्रविष्ठक नाम से होंगे। वे योगात्मा अमित तेजस्वी सब योग से युक्त होंगे। माहेश्वर योग को प्राप्त कर वे सब रुद्र लोक को जायेंगे।।६३-६६।। उसके बाद पन्द्रहवें चक्र में क्रम से आने पर जब त्रैय्यारुणि व्यास होंगे तब मैं वेदशिरा नामक ब्राह्मण के नाम से जन्म लूँगा। जब मेरे पास वेदशिर नामक एक शक्तिशाली अस्त्र होगा। हिमालय के ढाल (ढलान) के पीछे सरस्वती नदी के तट पर एक पर्वत वेदशीर्ष होगा। वहाँ भी मेरे तपस्वी चार पुत्र होंगे। उनके नाम कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्रक होंगे। वे सभी योगात्मा, महात्मा और ब्रह्मचारी होंगे। माहेश्वर योग प्राप्त करके वे रुद्र लोक को जायँगे।।६७-७१।। चार युगों के सोलहवें चक्र में जब देव व्यास होंगे तब मैं गोकर्ण नाम से अस्त्रों और आत्मा को वश करने वालों को योग प्रदान करने के लिए जन्म लूँगा। तब वह गोकर्ण नामक बन पवित्र होगा। वहाँ भी मेरे काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति चार योगी पुत्र होंगे। वे भी ध्यान और योग से युक्त उसी मार्ग से माहेश्वर योग प्राप्त करके वे स्वयं रुद्र को प्राप्त होंगे।।७२-७४।। उसके बाद क्रम से प्राप्त सत्रहवें चक्र

ततः सप्तदशे चैव परिवर्ते क्रमागते। यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना देवकृतंजयः॥७६॥
तदाप्यहं भविष्यामि गुहावासीति नामतः। हिमवच्छिखरे रम्ये महोत्तुंगे महालये॥७७॥
सिद्धक्षेत्रं महापुण्यं भविष्यति महालयम्। तत्रापि मम ते पुत्रा योगज्ञा ब्रह्मवादिनः॥७८॥
भविष्यंति महात्मानो निर्ममा निरहंकृताः। उतथ्यो वामदेवश्च महायोगो महाबलः॥७९॥
तेषां शतसहस्रं तु शिष्याणां ध्यानयोगिनाम्। भविष्यन्ति तदा काले सर्वे ते ध्यानयुंजकाः॥८०॥
योगाभ्यासरताश्चैव हृदि कृत्वा महेश्वरम्। महालये पदं न्यसतं दृष्ट्वा यांति शिवं पदम्॥८१॥
ये चान्येपि महात्मानः कलौ तस्मिन् युगांतिके। ध्याने मनः समाधाय विमलाः शुद्धबुद्धयः॥८२॥
मम प्रसादाद्यास्यंति रुद्रलोकं गतज्वराः। गत्वा महालयं पुण्यं दृष्ट्वा माहेश्वरं पदम्॥८३॥
तीर्णस्तारयते जंतुर्दश पूर्वान्दशोत्तरान्। आत्मानमेकविंशं तु तारयित्वा महालये॥८४॥
मम प्रसादाद्यास्यंति रुद्रलोकं गतज्वराः। ततोष्टादशमे चैव परिवर्ते यदा विभो॥८५॥
तदा ऋतंजयो नाम व्यासस्तु भविता मुनिः। तदाप्यहं भविष्यामि शिखंडी नाम नामतः॥८६॥
सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये देवदानवपूजिते। हिमवच्छिखरे रम्ये शिखंडी नाम पर्वतः॥८७॥
शिखंडिनो वनं चापि यत्र सिद्धनिषेवितम्। तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति तपोधनाः॥८८॥
वाचश्रवा ऋचीकश्च श्यावाश्वश्च यतीश्वरः। योगात्मानो महात्मानः सर्वे ते वेदपारगाः॥८९॥
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय संवृताः। अथ एकोनविंशे तु परिवर्त्ते क्रमागते॥९०॥
व्यासस्तु भविता नाम्ना भरद्वाजो महामुनिः। तदाप्यहं भविष्यामि जटामाली च नामतः॥९१॥
हिमवच्छिखरे रम्ये जटायुर्यत्र पर्वतः। तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति महौजसः॥९२॥

में कृतंत्रय देव व्यास होंगे। जब मैं गुहावासी नाम से हिमालय के ऊँचे और सुन्दर शिखर महालय में जन्म लूँगा। तब महालय बहुत पवित्र सिद्ध क्षेत्र होगा। वहाँ भी उतथ्य, वामदेव, महायोग और महाबल ये मेरे चार पुत्र योग के ज्ञाता, ब्रह्मवादी, महात्मा, निर्मम और अहंकार रहित होंगे। उनके ध्यान योगी सैकड़ों हजारों शिष्य होंगे। योगाभ्यास से रत और हृदय में माहेश्वर का ध्यान करते हुये, महेश्वर के चरणों से दत्तचित्त वे रुद्र लोक को प्राप्त करेंगे।।७५-८१।। अन्य महात्मा भी जो उस द्वापर युग के अन्त में और कलियुग के आरम्भ में विभव और शुद्ध बुद्धिवाले हैं, ध्यान में मन लगाकर रुद्र को स्मरण करते हैं वे विपत्ति से रहित हो कर मेरी कृपा से रुद्र लोक जाते हैं।।८२-८४।। हे ब्रह्मा! अठारहवें चक्र में ऋतंजय नाम के व्यास होंगे। तब मैं हिमवान के रम्य शिखर शिखण्डी नाम पर्वत पर देवदानवों से पूजित महापवित्र सिद्ध क्षेत्र शिखण्डी नामक वन में शिखण्डी नाम से जन्म लूँगा। वहाँ पर भी तपस्वी चार पुत्र वाचश्रवा, ऋतीक, श्यावाश्व और यतीश्वर नामक चार पुत्र होंगे। वे योगात्मा और वेदों के पारंगत विद्वान होंगे। वे माहेश्वर योग प्राप्त महान आत्मा रुद्र को प्राप्त होंगे।।८५-८९।। जब क्रम के अनुसार उन्नीसवाँ चक्र होगा तब भरद्वाज मुनि व्यास होंगे। तब मैं हिमालय के सुन्दर शिखर पर जहाँ जटायु पर्वत है, वहाँ मैं जटामाली नाम से जन्म लूँगा। वहाँ पर भी मेरे अमित तेजस्वी हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोकाक्षी औरं कुथुभि नामक चार पुत्र होंगे। वे सब योग धर्म से युक्त और ब्रह्मचारी होंगे। माहेश्वर योग

हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षी कुथुमिस्तथा। ईश्वरा योगधर्माणः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः॥९३॥
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय संस्थिताः। ततो विंशतिमश्चैव परिवर्तो यदा तदा॥९४॥
गौतमस्तु तदा व्यासो भविष्यति महामुनिः। तदाप्यहं भविष्यामि अट्टहासस्तु नामतः॥९५॥
अट्टहासप्रियाश्चैव भविष्यंति तदा नराः। तत्रैव हिमवत्पृष्ठे अट्टहासो महागिरिः॥९६॥
देवदानवयक्षेन्द्रसिद्धचारणसेवितः । तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति महौजसः॥९७॥
योगात्मानो महात्मानो ध्यायिनो नियतव्रताः। सुमंतुर्बर्बरी विद्वान् कबंधः कुशिकंधरः॥९८॥
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः। एकविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥९९॥
वाचश्रवाः स्मृतो व्यासो यदा स ऋषिसत्तमः। तदाप्यहं भविष्यामि दारुको नाम नामतः॥१००॥
तस्माद्भविष्यते पुण्यं देवदारुवनं शुभम्। तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति महौजसः॥१०१॥
प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा। योगात्मानो महात्मानो नियता ऊर्ध्वरेतसः॥१०२॥
नैष्ठिकं व्रतमास्थाय रूद्रलोकाय ते गताः। द्वाविंशे परिवर्ते तु व्यासः शुष्मायणो यदा॥१०३॥

तदाप्यहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः।
नाम्ना वै लांगली भीमो यत्र देवाः सवासवाः॥१०४॥

द्रक्ष्यंति मां कलौ तस्मिन् भवं चैव हलायुधम्। तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति सुधार्मिकाः॥१०५॥
भल्लवी मधुपिंगश्चश्वेतकेतुः कुशस्तथा। प्राप्य माहेश्वरं योगं तेपि ध्यानपरायणाः॥१०६॥
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा रुद्रलोकाय संस्थिताः। परिवर्ते त्रयोविंशे तृणबिंदुर्यदा मुनिः॥१०७॥

को प्राप्त करके रुद्र लोक को प्राप्त होंगे।।९०-९३।। जब बीसवें चक्र में महामुनि गौतम व्यास होंगे तब मैं अट्टहास नाम से जन्म लूँगा, तब मनुष्य अट्टहास प्रिय होंगे। वहीं हिमालय पर्वत पर देव, दानव, यक्षेन्द्र, सिद्ध और चारणों से सेवित अट्टहास नामक महान् पर्वत है। वहाँ भी मेरे चार अमित तेजस्वी पुत्र सुमंतु, बर्बरी, विद्वान कबंध और कुशिकंधर नाम से होंगे। वे सब योगात्मा, महात्मा, ध्यानी और धार्मिक कृत्यों को नियमित करने वाले होंगे। वे माहेश्वर योग को प्राप्त करके रुद्र लोक को जायँगे।।९४-९९।। क्रम से इक्कीसवाँ चक्र आने पर तब श्रेष्ठ ऋषि वाचश्रवा व्यास होंगे। तब मैं हिमालय पर्वत पर दारुक नाम से जन्म लूँगा। उसी से उन वन का नाम दारुक होगा। वह अति पुण्य और भव्यवान होगा। वहाँ भी मेरे पुत्र बहुत पराक्रमी होंगे। उनके नाम प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान और गौतम होंगे। वे सब योगात्मा, महात्मा, नियमित रूप से ध्यान में रहने वाले और ब्रह्मचारी होंगे। नैष्ठिक व्रत (नित्य धार्मिक कृत्य) करके वे रुद्र लोक को जायँगे।।१००-१०२।। क्रम से बाईसवाँ चक्र आने पर उसमें जब शुष्मायण व्यास होंगे तो मैं वाराणसी में महामुनि लांगली भीम नाम से जन्म लूँगा। जहाँ इन्द्र सहित सब देवता कलियुग में मुझको भव और हलायुध रूप में देखेंगे। वहाँ भी मेरे चार धार्मिक पुत्र होंगे। भल्लवी, मधुपिंग, श्वेतकेतु और कुश उनके नाम होंगे। माहेश्वर योग को प्राप्त करके वे भी ध्यान में लीन शुद्ध और ब्रह्ममय होकर रुद्र लोक को जायेंगे।।१०३-१०६।। तेईसवें चक्र में जब मुनि तृणबिन्दु व्यास होंगे तब मैं हे ब्रह्मा! श्वेत नामक नाम से महाकाय वाला एक धार्मिक मुनि का पुत्र होकर जन्म लूँगा। तब मैं

व्यासो हि भविता ब्रह्मंस्तदाहं भविता पुनः। श्वेतो नाम महाकायो मुनिपुत्रस्तु धार्मिकः॥१०८॥
तत्र कालं जरिष्यामि तदा गिरिवरोत्तमे। तेन कालंजरो नाम भविष्यति स पर्वतः॥१०९॥
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यंति तपस्विनः। उशिको बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च॥११०॥
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः। परिवर्ते चतुर्विंशे व्यासो ऋक्षो यदा विभो॥१११॥
तदाप्यहं भविष्यामि कलौ तस्मिन् युगांतिके। शूली नाम महायोगी नैमिषे देववंदिते॥११२॥
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यंति तपोधनाः। शालिहोत्रोग्निवेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः॥११३॥
तेऽपि तेनैव मार्गेण रुद्रलोकाय संस्थिताः। पंचविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥११४॥
वासिष्ठस्तु यदा व्यासः शक्तिर्नाम्ना भविष्यति। तदाप्यहं भविष्यामि दंडी मुंडीश्वरः प्रभुः॥११५॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति तपोधनाः। छगलः कुंडकर्णश्च कुभांडश्च प्रवाहकः॥११६॥
प्राप्य माहेश्वरं योगममृतत्वाय ते गताः। षड्विंशे परिवर्ते तु यदा व्यासः पराशरः॥११७॥
तदाप्यहं भविष्यामि सहिष्णुर्नाम नामतः। पुरं भद्रवटं प्राप्य कलौ तस्मिन् युगांतिके॥११८॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति सुधार्मिकाः। उलूको विद्युतश्चैव शंबूको ह्याश्वलायनः॥११९॥
प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः। सप्तविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥१२०॥
जातूकर्ण्यो यदा व्यासो भविष्यति तपोधनः। तदाप्यहं भविष्यामि सोमशर्मा द्विजोत्तमः॥१२१॥
प्रभासतीर्थमासाद्य योगात्मा योगविश्रुतः। तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यंति तपोधनाः॥१२२॥

अक्षपादः कुमारश्च उलूको वत्स एव च।
योगात्मानो महात्मानो विमलाः शुद्धबुद्धयः॥१२३॥

उत्तम पर्वत पर तपस्या में अपना काल व्यतीत करूँगा। इससे पर्वत का नाम कालंजर होगा। वहाँ भी मेरे चार तपस्वी उशिक, वृहदश्व, देवल और कवि नामक चार शिष्य होंगे। वे माहेश्वर योग को प्राप्त करके रुद्र लोक को जायेंगे।।१०७-१११।। चौबीसवें चक्र में जब ऋक्ष नाम के व्यास होंगे तब मैं युग के अन्त में कलियुग में नेमिष बन में देवों द्वारा नमस्कृत शूली नाम से एक योगी के रूप में जन्म लूँगा। वहाँ भी तपस्वी चार शिष्य होंगे। वे शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व और शरद्वसु नाम से होंगे। वे तपस्वी योग को प्राप्त करके उसी मार्ग से रुद्र लोक को जायेंगे।।११२-११३।। ज़ब चतुर्युग में पच्चीसवाँ चक्र आयेगा तो उसमें वशिष्ठ के पुत्र शक्ति व्यास होंगे। उस समय में मैं हाथ में दण्ड लिये हुए मुण्डी मुण्डीश्वर नाम से जन्म लूँगा। वहाँ भी मेरे तपस्वी चार पुत्र छगल, कुण्डकर्ण, कुभांड और प्रवाहक नाम के होंगे। वे माहेश्वर योग को प्राप्त करके अमरत्व प्राप्त करेंगे।।११४-११६।। छब्बीसवें चक्र में जब पाराशर व्यास होंगे तब मैं द्वापर में और कलियुग के प्रारम्भ में सहिष्णु नाम से जन्म लूँगा। मैं भद्रवट पुर (नगर) में जाऊँगा। वहाँ भी मेरे धार्मिक चार पुत्र उलूक, विद्युत, शंबूक और आश्वलायन नाम के होंगे। वे माहेश्वर योग प्राप्त करके रुद्र लोक को जायेंगे।।११७-११९।। फिर क्रम से आये सत्ताईसवें चक्र में तपस्वी जातूकर्ण्य जब व्यास होंगे तब मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण सोम शर्मा नाम से जन्म लूँगा। मैं प्रभास तीर्थ में जाऊँगा। वहाँ पर योग में प्रसिद्ध योगात्मा के रूप को जाना जाऊँगा। तपस्वी चार शिष्य अक्षपाद, कुमार, उलूक और वत्स नाम के होंगे। वे योगात्मा, महात्मा, विमल और शुद्ध बुद्धि वाले होंगे।

प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं ततो गताः। अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते॥१२४॥
पराशरसुतः श्रीमान् विष्णुर्लोकपितामहः।
यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः॥१२५॥
तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः। वसुदेवाद्यदुश्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति॥१२६॥
तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया। लोकविस्मयनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः॥१२७॥
श्मशाने मृतमुत्सृष्टं दृष्ट्वा कायमनाथकम्। ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया॥१२८॥
दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्धं च विष्णुना। भविष्यामि तदा ब्रह्मँल्लकुली नाम नामतः॥१२९॥
कायावतार इत्येवं सिद्धक्षेत्रं च वै तदा। भविष्यति सुविख्यातं यावद्भूमिर्धरिष्यति॥१३०॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यंति तपस्विनः। कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रः कौरुष्य एव च॥१३१॥
योगात्मानो महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्राप्य माहेश्वरं योगं विमला ह्यूर्ध्वरेतसः॥१३२॥
रुद्रलोकं गमिष्यंति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
एते पाशुपताः सिद्धा भस्मोद्धूलितविग्रहाः॥१३३॥
लिंगार्चनरता नित्यं बाह्याभ्यंतरतः स्थिताः।
भक्त्या मयि च योगेन ध्याननिष्ठा जितेंद्रियाः॥१३४॥
संसारबंधच्छेदार्थं ज्ञानमार्गप्रकाशकम्। स्वरूपज्ञानसिद्ध्यर्थं योगं पाशुपतं महत्॥१३५॥
योगमार्गा अनेकाश्च ज्ञानमार्गास्त्वनेकशः। न निवृत्तिमुपायांति विना पंचाक्षरीं क्वचित्॥१३६॥

वे माहेश्वर योग को प्राप्त करके रुद्र लोक को जायेंगे।।१२०-१२४।। क्रम से आगे अट्ठाइसवें चक्र में पराशर के श्रीमान् पुत्र द्वैपायन व्यास होंगे। तब मैं वहाँ त्रिलोक पिता स्वयं विष्णु हूँगा। तब मैं अपने छठे अंश से पुरुषों में उत्तम, कृष्ण वर्ण वाले, यदुवंशियों में श्रेष्ठ वसुदेव के पुत्र के रूप में श्री कृष्ण विष्णु के अवतार होंगे। अपनी योगमाया से मैं योगात्मा (योगी) और लोगों को विस्मय में डालने के लिए ब्रह्मचारी के रूप में जन्म लूँगा। श्मशान में मृत पुत्र को देखने पर ब्राह्मणों के हित के लिए अपनी योगमाया से तुम्हारे और विष्णु के साथ मेरु की दिव्य और पवित्र गुफा में प्रवेश करूँगा। हे ब्रह्मा! तब मैं लकुली नाम से प्रसिद्ध हूँगा। वह पवित्र स्थल जहाँ मैं मृत शरीर से प्रवेश करके गया था, कायावतार नाम से जाना जायेगा। जब तक यह पृथ्वी कायम रहेगी। वहाँ भी मेरे चार तपस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे। वे कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य नाम के होंगे। वे योगात्मा, महात्मा, वेदों के पारंगत विद्वान ब्राह्मण शुद्ध और ब्रह्मचारी होंगे। वे रुद्र लोक को जायेंगे जहाँ से पुनः लौटना दुर्लभ होगा।।१२५-१३३।। ये सब प्रबुद्ध आत्माएँ शिव के भक्त होंगे और शरीरों पर भस्म चुपड़े होंगे। वे नियमित रूप से लिंग की पूजा में रत होंगे। वे अपने शरीर और मन से शुद्ध होंगे। मेरे प्रति भक्ति और योग के द्वारा वे ध्यान में निष्ठ और जितेन्द्रिय होंगे। महान् पाशुपत योग सांसारिक बन्धन काट देगा और ज्ञान मार्ग को प्रकाशित करेगा। यह वास्तविक ज्ञान की सिद्धि के लिए भी है। योग के और ज्ञान के अनेक मार्ग हैं किन्तु पंचाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) के बिना कोई निवृत्ति नहीं प्राप्त कर सकता है। जब कोई द्वन्दों (सुख-दुःखादि) से मुक्त होने के

यदाचरेत्तपश्चायं सर्वद्वंद्वविवर्जितम्।
तदा स मुक्तो मंतव्यः पक्वं फलमिव स्थितः॥१३७॥

एकाहं यः पुमान्सम्यक् चरेत्पाशुपतव्रतम्। न सांख्ये पंचरात्रे वा न प्राप्नोति गतिं कदा॥१३८॥
इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम्। मन्वादिकृष्णपर्यंतमष्टाविंशद्युगक्रमात्॥१३९॥
तत्र श्रुतिसमूहानां विभागो धर्मलक्षणः। भविष्यति तदा कल्पे कृष्णद्वैपायनो यदा॥१४०॥

सूत उवाच

निशम्यैवं महातेजा महादेवेन कीर्तितम्। रुद्रावतारं भगवान् प्रणिपत्य महेश्वरम्॥१४१॥
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः पुनः प्राह च शंकरम्।

पितामह उवाच

सर्वे विष्णुमया देवाः सर्वे विष्णुमया गणाः॥१४२॥

न हि विष्णुसमा काचिद्गतिरन्या विधीयते। इत्येवं सततं वेदा गायंति नात्र संशयः॥१४३॥
स देवदेवो भगवांस्तव लिंगार्चने रतः। तव प्रणामपरमः कथं देवो ह्यभूत्प्रभुः॥१४४॥

सूत उवाच

निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। प्रपिबन्निव चक्षुर्भ्यां प्रीतस्तत्प्रश्नगौरवात्॥१४५॥
पूजाप्रकरणं तस्मै तमालोक्याह शंकरः। भवान्नारायणश्चैव शक्रः साक्षात्सुरोत्तमः॥१४६॥

लिए तपस्या करता है तो उसको मुक्त मानना चाहिये। (वह मुक्तात्मा हो जायेगा) जैसे कि कोई पका हुआ फल पा जाय। यदि कोई एक दिन भी पाशुपत व्रत कर ले तो वह उस फल को प्राप्त कर लेगा जो कि वह पंचरात्र (पंत्रात्र संहिता) और न तो सांख्य शास्त्र के द्वारा प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार मैंने क्रम से चारों युगों के अट्ठाईस अवतारों मनु से लेकर कृष्ण तक के लक्षण संक्षेप में वर्णन किया। धर्म के मर्म को खोलने वाले वेदों का वर्गीकरण उस कल्प में होगा जिसमें कृष्ण द्वैपायन व्यास होंगे।।१३४-१४०।।

सूत बोले

महादेव द्वारा कहे गये रुद्र के अट्ठाईस अवतारों को सुनकर महा तेजस्वी ब्रह्मा ने शिव को प्रणाम करके उनकी प्रिय वचनों से स्तुति की। उसके बाद उन्होंने शिव जी से कहा।।१४१।।

ब्रह्मा बोले

"सब देवता और सब गण विष्णुमय हैं। विष्णु के समान और कोई दूसरी गति नहीं है। ऐसा वेद भी नित्य यही गाते हैं तो यह कैसे हुआ कि देवों के देव विष्णु तुम्हारी लिंग की पूजा में रत हुये और तुम्हारे भक्त हुये"।।१४२-१४४।।

सूत बोले

परमेश्वर ब्रह्मा की बात सुनकर उनके गौरवपूर्ण (गम्भीर) प्रश्न से प्रसन्न हो कर अपने नेत्रों द्वारा उनको पीते हुये से उनकी ओर देखकर तब उन्होंने लिंग की पूजा के प्रकरण (विधि) को कहा। लिंग की सदा विधिपूर्वक

मुनयश्च सदा लिंगं संपूज्य विधिपूर्वकम्।
स्वंस्वं पदं विभो प्राप्तास्तस्मात्संपूजयंति ते॥१४७॥

लिंगार्चनं विना निष्ठा नास्ति तस्माज्जनार्दनः। आत्मनो यजते नित्यं श्रद्धया भगवान्प्रभुः॥१४८॥

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमनुगृह्य महेश्वरः। पुनः संप्रेक्ष्य देवेशं तत्रैवांतरधीयत॥१४९॥

तमुद्दिश्य तदा ब्रह्मा नमस्कृत्य कृतांजलिः। स्रष्टुं त्वशेषं भगवाँल्लब्धसंज्ञस्तु शंकरात्॥१५०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥२४॥

पूजा करके आप (ब्रह्मा) विष्णु, साक्षात् सुरेश्वर इन्द्र और मुनिगण अपने पद को प्राप्त किये हैं। इसलिए वे सब लिंग की पूजा करते हैं। लिंग की पूजा के बिना निष्ठा नहीं है। इसलिए विष्णु श्रद्धापूर्वक नित्य लिंग की पूजा करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा से कहकर; उनपर अनुग्रह करके उनकी ओर एक बार देखकर वे स्वयं वहीं अन्तर्धान हो गये। शिव से नई सृष्टि की रचना करने की प्रेरणा पाकर ब्रह्मा ने हाथ जोड़कर उस दिशा की ओर प्रणाम किया जिधर वे अन्तर्धान हुये थे॥१४५-१५०॥

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में शिव के अवतार
नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

स्नानविधिः

ऋषयः ऊचुः

कथं पूज्यो महादेवो लिंगमूर्तिर्महेश्वरः। वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण सांप्रतम्॥१॥

सूत उवाच

देव्या पृष्टो महादेवः कैलासे तां नगात्मजाम्। अंकस्थामाह देवेशो लिंगार्चनविधिं क्रमात्॥२॥

तदा पार्श्वे स्थितो नंदी शालंकायनकात्मजः। श्रुत्वाखिलं पुरा प्राह ब्रह्मपुत्राय सुव्रताः॥३॥

सनत्कुमाराय शुभं लिंगार्चनविधिं परम्। तस्माद्व्यासो महातेजाः श्रुतवाञ्छ्रुतिसंमितम्॥४॥

स्नानयोगोपचारं च यथा शैलादिनोमुखात्। श्रुतवान् तत्प्रवक्ष्यामि स्नानाद्यं चार्चनाविधिम्॥५॥

शैलादिरुवाच

अथ स्नानविधिं वक्ष्ये ब्राह्मणानां हिताय च। सर्वपापहरं साक्षाच्छिवेन कथितं पुरा॥६॥

अनेन विधिना स्नात्वा सकृत्पूज्य च शंकरम्। ब्रह्मकूर्चं च पीत्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥७॥

त्रिविधं स्नानमाख्यातं देवदेवेन शंभुना। हिताय ब्राह्मणाद्यानां चतुर्मुखसुतोत्तम॥८॥

पच्चीसवाँ अध्याय

स्नान विधि

ऋषिगण बोले

हे रोमहर्षण! लिंग की मूर्ति में (लिंग रूप में) महेश्वर की पूजा कैसे की जाय? कृपया यह आप हमको अब बताइये।।१।।

सूत बोले

यही प्रश्न कैलाश पर्वत पर शिव की गोद में बैठी हिमवान की पुत्री पार्वती ने महेश्वर शिव से पूछा था। तब उन्होंने उसको लिंग की पूजा की विधि बताया था।।२।। उस समय शालंकायन के पुत्र नन्दी बगल में खड़े थे। हे सुव्रतो! उसने सब कुछ सुना और उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र सनत् से कहा। उनसे महा तेजस्वी व्यास ने वेदों से सम्मत लिंग की अनेक विधि को सुना। मैंने नन्दी के मुख से स्नान आदि अर्चन विधि को जैसा सुना वैसा आप सबको बताता हूँ।।३-५।।

नन्दी बोले

इसके बाद मैं ब्राह्मणों के हित के लिए सब पापों का नाशक, शिव द्वारा पूर्व कथित, पवित्र स्नान आदि अर्चन विधि को कहता हूँ।।६।। इस विधि के अनुसार पवित्र स्नान करके शंकर की एक बार पूजा करके और पंचगव्य पीकर व्यक्ति सब पापों से मुक्त हो जाता है।।७।। हे ब्रह्मा के सर्वश्रेष्ठ पुत्र! देवों के देव शिव के द्वारा

वारुणं पुरतः कृत्वा ततश्चाग्नेयमुत्तमम्। मंत्रस्नानं ततः कृत्वा पूजयेत्परमेश्वरम्।।९।।
भावदुष्टोऽम्भसि स्नात्वा भस्मना च न शुद्धयति। भावशुद्धश्चरेच्छौचमन्यथा न समाचरेत्।।१०।।
सरित्सरस्तडागेषु सर्वेष्वाप्रलयं नरः। स्नात्वापि भावदुष्टश्चेन्न शुद्धयति न संशयः।।११।।
नृणां हि चित्तकमलं प्रबुद्धमभवद्यदा। प्रसुप्तं तमसा ज्ञानभानोर्भासा तदा शुचिः।।१२।।
मृच्छकृत्तिलपुष्पं च स्नानार्थं भसितं तथा। आदाय तीरे निःक्षिप्य स्नानतीर्थे कुशानि च।।१३।।
प्रक्षाल्याचम्य पादौ च मलं देहाद्विशोध्य च। द्रव्यैस्तु तीरदेशस्थैस्ततः स्नानं समाचरेत्।।१४।।
उद्धृतासीतिमंत्रेण पुनर्देहं विशोधयेत्। मृदादाय ततश्चान्यद्वस्त्रं स्नात्वा ह्यनुल्बणम्।।१५।।
गंधद्वारां दुराधर्षामिति मंत्रेण मंत्रवित्। कपिलागोमयेनैव स्वस्थेनैव तु लेपयेत्।।१६।।
पुनः स्नात्वा परित्यज्य तद्वस्त्रं मलिनं ततः। शुक्लवस्त्रपरीधानो भूत्वा स्नानं समाचरेत्।।१७।।
सर्वपापविशुद्ध्यर्थमावाह्य वरुणं तथा। संपूज्य मनसा देवं ध्यानयज्ञेन वै भवम्।।१८।।
आचम्य त्रिस्तदा तीर्थे ह्यवगाह्य भवं स्मरन्। पुनराचम्य विधिवदभिमन्त्र्य महाजलम्।।१९।।
अवगाह्य पुनस्तस्मिन् जपेद्वै चाघमर्षणम्। तत्तोये भानुसोमाग्निमंडलं च स्मरेद्वशी।।२०।।
आचम्य च पुनस्तस्माज्जलादुत्तीर्यमंत्रवित्। प्रविश्य तीर्थमध्ये तु पुनः पुण्यविवृद्धये।।२१।।
शृंगेण पर्णपुटकैः पालाशैः क्षालितैस्तथा। सकुशेन सपुष्पेण जलेनैवाभिषेचयेत्।।२२।।

तीन प्रकार के स्नान ब्राह्मणों तथा अन्य के कल्याण के लिए कहे गये हैं।।८।। पहले जल से स्नान करके उसके बाद पवित्र भस्म से स्नान करे। उसके बाद मन्त्र स्नान करके तब परमेश्वर की पूजा करनी चाहिए। जो व्यक्ति भाव (विचार) से शुद्ध नहीं है वह स्नान और भस्म स्नान से शुद्ध नहीं होता है। जो व्यक्ति भाव शुद्ध (पवित्र विचार से युक्त) है वही शिव का ध्यानाकर्षण करने का अधिकारी है अन्य व्यक्ति कदापि नहीं।।९-१०।। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो व्यक्ति भावशुद्ध नहीं है वह यहाँ तक कि नदियों, सरोवरों, तालाबों में स्नान करके प्रलय के अन्त तक शुद्ध नहीं होता है।।११।। मनुष्य का चित्त रूपी कमल जब विकसित होता है, जगता है तब ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश से उसका तमस् (अन्धकार) दूर हो जाता है। तब वह शुद्ध हो जाता है।।१२।। भक्त को चाहिए कि वह मिट्टी, गाय का गोबर, तिल, फूल और भस्म स्नान के लिए लेकर उन सब को किनारे पर रखे। तब वह स्नान के लिए कुशों को जल में बिखेर दे। अपने पैरों को धोकर आचमन करके और किनारे रखी सामग्री से शरीर की धूलि दूर करके तब स्नान करना चहिए।।१३-१४।। 'उद्धृतासि' मन्त्र का उच्चारण करते हुए वह शरीर को फिर से स्वच्छ करे। थोड़ी-सी पीली मिट्टी और दूसरा वस्त्र पहनकर स्नान करे। 'गंधद्वारां दुराधर्षां' मन्त्र को स्वयं पढ़ते हुये कपिला गाय के ताजे गोबर से लेप करे।।१५-१६।। उसके बाद मलिन वस्त्र को त्यागकर शुक्ल वस्त्र धारण करे। पुनः स्नान करे। सब पापों से शुद्धि के लिए वरुण देवता का आह्वान करके तब ध्यान द्वारा भगवान शिव का स्मरण कर तीन बार आचमन करके पवित्र जल में डुबकी लगाते हुये शिव का स्मरण करते हुये अधमर्षण मन्त्र को जपे। अपनी इन्द्रियों को वश में करके भक्त जल के घेरे में सूर्य चन्द्र और अग्नि का स्मरण करे।।१७-२०।। मन्त्र का ज्ञाता भक्त पुनः आचमन करे। पवित्र जल के मध्य में खड़ा होकर

रुद्रेण पवमानेन त्वरिताख्येन मंत्रवित्। तरत्समंदीवर्गाद्यैस्तथा शांतिद्वयेन च॥२३॥
शांतिधर्मेण चैकेन पंचब्रह्मपवित्रकैः। तत्तन्मंत्राधिदेवानां स्वरूपं च ऋषीन् स्मरन्॥२४॥
एवं हि चाभिषिच्याथ स्वमूर्ध्नि पयसा द्विजाः। ध्यायेच्च त्र्यंबकं देवं हृदि पंचास्यमीश्वरम्॥२५॥
आचम्याचमनं कुर्यात्स्वसूत्रोक्तं समीक्ष्य च। पवित्रहस्तः स्वासीनः शुचौ देशे यथाविधि॥२६॥
अभ्युक्ष्य सकुशं चापि दक्षिणेन करेण तु। पिबेत्प्रक्षिप्य त्रिस्तोयं चक्री भूत्वा ह्यतंद्रितः॥२७॥
प्रदक्षिणं ततः कुर्याद्धिंसापापप्रशांतये। एवं संक्षेपतः प्रोक्तं स्नानाचमनमुत्तमम्॥२८॥
सर्वेषां ब्रह्मणानां तु हितार्थे द्विजसत्तमाः॥२९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे स्नानविधिर्नाम
पंचविंशोध्यायः॥२५॥

गाय की सींग से अपने सिर के ऊपर पानी उड़ेले या पलाश के अच्छे बने दोने से जल डाले। कुश और फूल से जल छिड़के।।२१-२२।। हे ब्राह्मणों! अपने शिर पर पानी डालते समय भक्त अपनी पवित्रता के लिए तत्सम्बन्धी देवताओं और मुनियों के रूपों का स्मरण करते हुये—जो उन मन्त्रों में हैं—ध्यान करे। मन्त्रों में रुद्र, पवमान, (त्वरित) दो शान्ति मन्त्र और शन्नो देवी और पाँच पवित्र मन्त्र सद्योजात के हैं। भक्त अपने हृदय में पंचमुखी त्र्यंबक देव का ध्यान करे।।२३-२५।। आचमन करके अपने सूक्त में कहे गये मन्त्र से हाथ में पवित्री धारण करके दाहिने हाथ में कुश लेकर स्वच्छ स्थान पर बैठे। अपने दाहिने हाथ में कुश लेकर अपने शरीर पर जल छिड़के और फिर आचमन करे। अपने पापों और हिंसा की शान्ति के लिए तब वह अपने चारों ओर जल घेरे (प्रदक्षिणा करे)। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! सब ब्राह्मणों के कल्याण के लिए संक्षेप में मैंने उत्तम स्नान और आचमन विधि को आप लोगों से कहा।।२६-२९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में स्नान विधि नामक
पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

पञ्चयज्ञविधानम्

नंद्युवाच

आवाहयेत्ततो देवीं गायत्रीं वेदमातरम्। आयातु वरदा देवीत्यनेनैव महेश्वरीम्॥१॥
पाद्यमाचमनीयं च तस्याश्चार्घ्यं प्रदापयेत्। प्राणायामत्रयं कृत्वा समासीनः स्थितोपि वा॥२॥
सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा। गायत्रीं प्रणवेनैव त्रिविधेष्वेकमाचरेत्॥३॥
अर्घ्यं दत्वा समभ्यर्च्य प्रणम्य शिरसा स्वयम्। उत्तमे शिखरे देवीत्युक्त्वोद्वास्य च मातरम्॥४॥
प्राच्यालोक्याभिवंद्येशां गायत्रीं वेदमातरम्। कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेद्भास्करं तथा॥५॥
उदुत्यं च तथा चित्रं जातवेदसमेव च। अभिवंद्य पुनः सूर्यं ब्रह्माणं च विधानतः॥६॥
तथा सौराणि सूक्तानि ऋग्यजुःसामजानि च। जप्त्वा प्रदक्षिणं पश्चात्त्रिः कृत्वा च विभावसोः॥७॥
आत्मानं चांतरात्मानं परमात्मानमेव च। अभिवंद्य पुनः सूर्यं ब्रह्माणं च विभावसुम्॥८॥
मुनीन्पितॄन् अथान्यायं स्वनाम्नावाहयेत्ततः। सर्वानावाहयामीति देवानाबाह्य सर्वतः॥९॥
तर्पयेद्विधिना पश्चात्प्राङ्मुखो वा ह्युदङ्मुखः। ध्यात्वा स्वरूपं तत्तत्त्वमभिवंद्य यथाक्रमम्॥१०॥
देवानां पुष्पतोयेन ऋषीणां तु कुशांभसा। पितॄणां तिलतोयेन गंधयुक्तेन सर्वतः॥११॥

छब्बीसवाँ अध्याय

पंचयज्ञ विधान

नंदी बोले

इसके बाद भक्त को चाहिये कि वह 'आयातु वरदा देवी' इस मन्त्र से वेदों की माता, महान देवी गायत्री का आह्वान करे।।१।। वह पाद्य, आचमनीय और अर्घ्य भेंट करे। तब वह तीन प्राणायाम करे। उसके बाद वह खड़े हो कर या बैठकर प्रणव (ॐ) सहित गायत्री मन्त्र का जप करे। यह जप एक हजार, या पाँच सौ या एक सौ आठ इन तीनों में से किसी एक संख्या में करे।।२-३।। वह फिर अर्घ्य दे और गायत्री देवी की पूजा करके, शिर से प्रणाम करके, 'उत्तमे शिखरे देवी' इत्यादि मन्त्र को पढ़कर विसर्जन करे। पूर्व की ओर देखकर वेद माता गायत्री देवी को प्रणाम करके फिर अँजलि बाँध कर भगवान सूर्य की 'आदित्यस् जातवेदसम्', 'चित्रम्' तथा अन्य मन्त्रों को जपते हुये प्रार्थना करे। उसके बाद फिर सूर्य और ब्रह्मा को विधान के अनुसार प्रणाम करे।।४-६।। वह ऋक्, यजु और साम वेदों से सूर्य के प्रार्थना मन्त्रों का जप करे। उसके बाद सूर्य, ब्रह्मा और अग्नि की तीन बार प्रदक्षिणा करे। तब वह आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा सूर्य, ब्रह्मा और अग्नि को प्रणाम करे। उसके बाद वह 'सर्वान् आवाहयामि' ऐसा कहकर वह मुनियों, पितरों और देवों को उनके नाम लेकर आवाहन करे। उसके बाद वह पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके उन मुनियों, पितरों और देवों के वास्तविक स्वरूपों का ध्यान करते हुये, उनको प्रणाम करके विधान के अनुसार तर्पण करे।।७-१०।। देवों का तर्पण फूल मिले हुये जल से,

यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणम्। प्राचीनावीती विप्रेंद्र पितॄणां तर्पयेत् क्रमात्॥१२॥
अंगुल्यग्रेण वै धीमांस्तर्पयेद्देवतर्पणम्। ऋषीन् कनिष्ठांगुलिना श्रोत्रियः सर्वसिद्धये॥१३॥
पितॄंस्तु तर्पयेद्विद्वान्दक्षिणांगुष्ठकेन तु। तथैवं मुनिशार्दूल ब्रह्मयज्ञं यजेद्द्विजः॥१४॥
देवयज्ञं च मानुष्यं भूतयज्ञं तथैव च। पितृयज्ञं च पूतात्मा यज्ञकर्मपरायणः॥१५॥
स्वशाखाध्ययनं विप्र ब्रह्मयज्ञ इति स्मृतः। अग्नौ जुहोति यच्चान्नं देवयज्ञ इति स्मृतः॥१६॥
सर्वेषामेव भूतानां बलिदानं विधानतः। भूतयज्ञ इति प्रोक्तो भूतिदः सर्वदेहिनाम्॥१७॥
सदारान्सर्वतत्त्वज्ञान्ब्राह्मणान्वेदपारगान् । प्रणम्य तेभ्यो यद्दत्तमन्नं मानुष उच्यते॥१८॥
पितॄनुद्दिश्य यद्दत्तं पितृयज्ञः स उच्यते। एवं पंच महायज्ञान्कुर्यात् सर्वार्थसिद्धये॥१९॥
सर्वेषां शृणु यज्ञानां ब्रह्मयज्ञः परः स्मृतः। ब्रह्मयज्ञरतो मर्त्यो ब्रह्मलोके महीयते॥२०॥
ब्रह्मयज्ञेन तुष्यंति सर्वे देवाः सवासवाः। ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः शंकरो नीललोहितः॥२१॥
वेदाश्च पितरः सर्वे नात्र कार्या विचारणा। ग्रामाद्बहिर्गतो भूत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मयज्ञवित्॥२२॥

यावत्त्वदृष्टमभवदुटजानां छदं नरः।
प्राच्यामुदीच्यां च तथा प्रागुदीच्यामथापि वा॥२३॥
पुण्यमाचमनं कुर्याद्ब्रह्मयज्ञार्थमेव तत्।
प्रीत्यर्थं च ऋचां विप्राः त्रिः पीत्वा प्लाव्य प्लाव्य च॥२४॥

मुनियों का तर्पण कुश सहित जल से और पितरों का तर्पण तिल मिले जल से करना चाहिये। गंध को सब प्रकार के तर्पण में डालना चाहिये।।११।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! देवताओं के तर्पण में बायें कंधे पर जनेऊ पहने रहे अर्थात् सव्य रहे। ऋषि तर्पण में जनेऊ गले में माला की तरह ले। पितृतर्पण में जनेऊ दाहिने कंधे पर कर ले अर्थात् अपसव्य हो जाय।।१२।। बुद्धिमान भक्त—जो वेदार्थ का ज्ञाता है—सब सिद्धि के लिए उसको चाहिए कि देव तर्पण अंगुलियों के अग्रभागों (सिरों) से करें। ऋषि तर्पण कनगुरी (छोटी उंगली) से जल गिराते हुये करे और पितृ तर्पण दाहिने हाथ के अँगूठे से जल गिराते हुये करे। उसी प्रकार, हे श्रेष्ठ मुनियों! वह ब्रह्म, देव, मनुष्य, भूत और पितृ ये पाँच यज्ञ करे। वह पवित्र आत्मा और यज्ञ-कर्म में रत हो।।१३-१४।। हे ब्राह्मणों! अपने वेद की शाखा का अध्ययन करना ब्रह्म यज्ञ है। पवित्र अग्नि में पकाई खीर का हवन देव यज्ञ है। सब प्राणियों को विधिपूर्वक बलि भेंट करना भूत यज्ञ है। यह सब प्राणियों का ऐश्वर्यदायक है। सब तत्त्वों के ज्ञाता वेदों के पारंगत विद्वानों को प्रणाम करके दिये गये अन्न को मानुष यज्ञ कहते हैं। जो पितरों के इष्ट से दिया जाय उसको पितृ यज्ञ कहते हैं। इस प्रकार सिद्धि प्राप्त करने के लिए इन पाँच यज्ञों को करना चाहिये।।१५-१९।। हे ब्राह्मणों! सुनो, इन यज्ञों में ब्रह्म यज्ञ उत्तम है। ब्रह्म यज्ञ करने वाले की ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठा होती है।।२०।। ब्रह्म यज्ञ द्वारा भगवान ब्रह्मा, इन्द्र सहित सब देवता, विष्णु, नीललोहित शंकर, सब वेद और पितृ गण प्रसन्न होते हैं। इसमें सन्देह करने की कोई बात नहीं है। ब्रह्म यज्ञ का ज्ञाता ब्राह्मण यदि अपने गाँव के बाहर सैकड़ों झोपड़ियों

यजुषां परिमृज्यैवं द्विः प्रक्षाल्य च वारिणा। प्रीत्यर्थं सामवेदानामुपस्पृश्य च मूर्धनि॥२५॥
स्पृशेदथर्ववेदानां नेत्रे चांगिरसां तथा।
नासिके ब्राह्मणोऽङ्गानां क्षाल्यक्षाल्य च वारिणा॥२६॥
अष्टादशपुराणानां ब्रह्माद्यानां तथैव च। तथा चोपपुराणानां सौरादीनां यथाक्रमम्॥२७॥
पुण्यानामितिहासानां शैवादीनां तथैव च। श्रोत्रे स्पृशेद्धि तुष्ट्यर्थं हृद्देश्यं तु ततः स्पृशेत्॥२८॥
कल्पादीनां तु सर्वेषां कल्पवित्कल्पवित्तमाः। एवमाचम्य चास्तीर्य दर्भपिंजूलमात्मनः॥२९॥
कृत्वा पाणितले धीमानात्मनो दक्षिणोत्तरम्। हेमांगुलीयसंयुक्तो ब्रह्मबंधयुतोपि वा॥३०॥
विधिवद्ब्रह्मयज्ञं च कुर्यात्सूत्री समाहितः। अकृत्वा च मुनिः पंच महायज्ञान्द्विजोत्तमः॥३१॥
भुक्त्वा च सूकराणां तु योनौ वै जायते नरः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्याः शुभमिच्छता॥३२॥
ब्रह्मयज्ञादथ स्नानं कृत्वादौ सर्वथात्मनः। तीर्थं संगृह्य विधिवत्प्रविशेच्छिबिरं वशी॥३३॥
बहिरेव गृहात्पादौ हस्तौ प्रक्षाल्य वारिणा। भस्मस्नानं ततः कुर्याद्विधिवद्देहशुद्धये॥३४॥
शोध्य भस्म यथान्यायं प्रणवेनाग्निहोत्रजम्। ज्योतिः सूर्य इति प्रातर्जुहुयादुदिते यतः॥३५॥
ज्योतिरग्नि स्तथा सायं सम्यक् चानुदिते मृषा। तस्मादुदितहोमस्थं भसितं पावनं शुभम्॥३६॥

के बाद अदृश्य हो, पूर्व तथा पश्चिम या पूर्व-उत्तर (ईशान कोण) की ओर घूमे, लौटे और तब ब्रह्म यज्ञ के लिए तीन बार पवित्र आचमन करे। ऋचाओं की प्रसन्नता के लिए अपनी अंजलि में भर-भर तीन बार जल पिये।।२१-२४।। यजुर्वेद की प्रीति के लिए वह अपने हाथों को जल से धोवें और चेहरे को जल से साफ करें। सामवेद की प्रसन्नता के लिए वह अपर शिर को छुवे।।२५।। ब्राह्मण अपने नेत्रों को अथर्ववेद और अंगरिस की प्रसन्नता के लिए धोवे।।२६।। ब्राह्मण ब्रह्मपुराण से लेकर अठारह पुराणों की प्रीति के लिए और सौर आदि अठारह उपपुराणों की प्रीति के लिए और शैव आदि पवित्र इतिहास की प्रीति के लिए वह अपने कानों और हृदय स्थान को छुवे। सब कल्पों के ज्ञाताओं में श्रेष्ठतम हे मुनियों! वह तब आचमन करे। कुशों को फैलाकर या कुशासन पर भक्त बैठे और बाँए हाथ के तल पर दाहिने हाथ का ऊपरी भाग रखे। उसकी उँगली में सोने की या कुश की अँगूठी हो। बहुत एकाग्र चित्त होकर भक्त अपने सूत्र का अनुसरण करके ब्रह्म यज्ञ विधिवत करे। हे द्विजोत्तम! ब्रह्म यज्ञ न करके भोजन करने वाला ब्राह्मण सुअरों की योनि में जन्म लेता है। इसलिए अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को प्रयत्न करके ब्रह्म यज्ञ करना चाहिये।।२७-३२।। ब्रह्म यज्ञ करने के बाद भक्त को स्वयं अपने लिए स्नान करना चाहिये। अपनी इन्द्रियों को वश में करने वाला व्यक्ति पवित्र जल का संग्रह करके उस शिविर में स्नान के लिए प्रवेश करे।।३३।। घर के बाहर वह अपने हाथों और पैरों को जल से धोवे। उसके बाद देह की शुद्धि के लिए भस्म स्नान करे।।३४।। भस्म प्रणव के द्वारा शुद्ध की हुई होनी चाहिये। यह अग्नि होम करने के बाद की बची हुई होनी चाहिये। जब सूर्य पूर्व में उदय हो तब अग्निहोत्र 'ज्योतिः सूर्यः' इस मन्त्र से करना चाहिये। सायंकाल 'ज्योतिरग्निः' इस मंत्र से अग्निहोत्र करना चाहिये। अगर सूर्य पूर्ण रूप से नहीं उदय होता है तो अग्निहोत्र करना व्यर्थ होता है। इसलिए उदित और चमकते सूर्य के समय प्रातःकाल अग्निहोत्र करना पवित्र

नास्ति सत्यसमं यस्मादसत्यं पातकं च यत्। ईशानेन शिरोदेशं मुखं तत्पुरुषेण च॥३७॥
उरोदेशमघोरेण गुह्यं वामेन सुव्रताः। सद्येन पादौ सर्वांगं प्रणवेनाभिषेचयेत्॥३८॥
ततः प्रक्षालयेत्पादं हस्तं ब्रह्मविदां वरः। व्यपोह्य भस्म चादाय देवदेवमनुस्मरन्॥३९॥
मंत्रस्नानं ततः कुर्यादापोहिष्ठादिभिः क्रमात्। पुण्यैश्चैव तथा मंत्रैर्ऋग्यजुः सामसंभवैः॥४०॥
द्विजानां तु हितायैवं कथितं स्नानमद्य ते। संक्षिप्य यः सकृत्कुर्यात् स याति परमं पदम्॥४१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पञ्चयज्ञविधानं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

और शुभ है।।३५-३६।। सत्य के समान कोई पुण्य नहीं है। असत्य के समान कोई पाप नहीं है। ईशान मन्त्र का जप करते हुये वह अपने सिर पर भस्म चुपड़े। तत्पुरुष मन्त्र का जप करते हुये अपने चेहरे पर भस्म लगावे। अघोर मन्त्र जपते हुये वह अपने उर (हृदय) छाती पर भस्म लगावे। हे सुव्रतो! वामदेव का मन्त्र जपते हुये वह अपने गुप्त अंगों (गुह्य) पर भस्म लगावे। इसी प्रकार सद्योजात का मन्त्र पढ़ते हुये अपने पैरों पर भस्म लगावे। प्रणव मन्त्र जपते हुये वह अपने सारे शरीर पर भस्म लगावे। उसके बाद वह हाथ पैर धो डाले। उसके बाद भस्मों को पोंछकर देवों के देव शिव का स्मरण करते हुये 'आपोहिष्ठादि' मन्त्र को तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद से लिए गये अन्य मन्त्रों को जपते हुये स्नान करे। इस प्रकार, हे ब्राह्मणों! तुम लोगों के कल्याण के लिए पवित्र स्नान की प्रक्रिया की विधि को संक्षेप में वर्णन किया है। वह जो कि एक बार भी यह करता है वह परम पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है।।३७-४१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में पंचयज्ञ विधान नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

लिङ्गार्चनविधिः

शैलादिरुवाच

वक्ष्यामि शृणु संक्षेपाल्लिंगार्चनविधिक्रमम्। वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरेण यत्॥१॥
एवं स्नात्वा यथान्यायं पूजास्थानं प्रविश्य च। प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेद्देवं त्रियंबकम्॥२॥
पंचवक्त्रं दशभुजं शुद्धस्फटिकसन्निभम्। सर्वाभरणसंयुक्तं चित्रांबरविभूषितम्॥३॥
तस्य रूपं समाश्रित्य दाहनप्लावनादिभिः। शैवीं तनुं समास्थाय पूजयेत्परमेश्वरम्॥४॥
देहशुद्धिं च कृत्वैव मूलमंत्रं न्यसेत्क्रमात्। सर्वत्र प्रणवेनैव ब्रह्माणि च यथाक्रमम्॥५॥
सूत्रे नमः शिवायेति छंदांसि परमे शुभे। मंत्राणि सूक्ष्मरूपेण संस्थितानि यतस्ततः॥६॥
न्यग्रोधबीजे न्यग्रोधस्तथा सूत्रे तु शोभने। महत्यपि महद्ब्रह्म संस्थितं सूक्ष्मवत्स्वयम्॥७॥
सेचयेदर्चनस्थानं गंधचंदनवारिणा। द्रव्याणि शोधयेत्पश्चात्क्षालनप्रोक्षणादिभिः॥८॥
क्षालनं प्रोक्षणं चैव प्रणवेन विधीयते। प्रोक्षणी चार्घ्यपात्रं च पाद्यपात्रमनुक्रमात्॥९॥
तथा ह्याचमनीयार्थं कल्पितं पात्रमेव च। स्थापयेद्विधिना धीमानवगुंठ्य यथाविधि॥१०॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

लिंग की पूजा विधि

नन्दी बोले

सुनो! मैं लिंग के पूजन की प्रक्रिया की विधि को संक्षेप में कहूँगा। उनको विस्तार में कहना सौ वर्ष में भी सम्भव नहीं है।।१।। इस प्रकार स्नान करके उचित विधि से भक्त पूजा के स्थान में प्रवेश करके तीन प्राणायाम करके त्रियंबक भगवान का ध्यान करे।।२।। वह उनके पाँच मुखवाले, दस भुजा वाले, सब आभूषणों को धारण किये हुये, शुद्ध स्फटिक के समान देखने में भव्य, विविध रंगों के वस्त्रों को पहिने हुये, उनके रूप का ध्यान करे। दाहन, प्लावन आदि तान्त्रिक विधियों (अभ्यास) से भक्त स्वयं अपने को उस रूप में परिवर्तित (बदल) कर उनकी पूजा प्रारम्भ करे।।३-४।। अपने देह की शुद्धि कर के मूल मन्त्रों द्वारा न्यास करे। सर्वत्र प्रणव द्वारा पंच ब्रह्मों (सद्योजात आदि) को क्रमशः स्थापित करे।।५।। परम शुभ 'नमः शिवाय' वेद अपने सूक्ष्म रूप में उपस्थित है। जैसे न्यग्रोध (बरगद) के बीज में पवित्र न्यग्रोध अपने सूक्ष्म रूप में उपस्थित रहता है। उसी प्रकार महान् ब्रह्म 'नमः शिवाय' महान् होते हुये भी बीज रूप इस मन्त्र में सूक्ष्म रूप में विद्यमान है।।६-७।। भक्त पूजा के स्थान को सुगंधित चन्दन के जल से सींचें (जल से छिड़के) और पूजा की सामग्री को एकत्र करके, उसको धोकर या जल छिड़क कर शुद्ध कर ले।।८।। प्रणव के द्वारा धोने और छिड़कने का कार्य क्रम से किया जाय। बुद्धिमान् भक्त पात्रों (बर्तनों) को कपड़ों से ढक दे। ये पवित्र जल से भरे पात्र क्रमशः प्रोक्षणी पात्र, अर्घ्यपात्र और

दर्भैराच्छादयेच्चैव प्रोक्षयेच्छुद्धवारिणा। तेषु तेष्वथ सर्वेषु क्षिपेत्तोयं सुशीतलम् ॥११॥
प्रणवेन क्षिपेत्तेषु द्रव्याण्यालोक्य बुद्धिमान्। उशीरं चंदनं चैव पाद्ये तु परिकल्पयेत्॥१२॥
जातिकंकोलकर्पूरबहुमूलतमालकम् । चूर्णयित्वा यथान्यायं क्षिपेदाचमनीयके॥१३॥
एवं सर्वेषु पात्रेषु दापयेच्चंदनं तथा। कर्पूरं च यथान्यायं पुष्पाणि विविधानि च॥१४॥
कुशाग्रमक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानि च। आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितं चार्घ्यपात्रके॥१५॥
कुशपुष्पयवव्रीहिबहुमूलतमालकम् । दापयेत्प्रोक्षणीपात्रे भसितं प्रणवेन च॥१६॥
न्यसेत्पंचाक्षरं चैव गायत्रीं रुद्रदेवताम्। केवलं प्रणवं वापि वेदसारमनुत्तमम्॥१७॥
अथ संप्रोक्षयेत्पश्चाद्द्रव्याणि प्रणवेन तु। प्रोक्षणीपात्रसंस्थेन ईशानाद्यैश्च पंचभिः॥१८॥
पार्श्वतो देवदेवस्य नंदिनं मां समर्चयेत्। दीप्तानलायुतप्रख्यं त्रिनेत्रं त्रिदशेश्वरम्॥१९॥
बालेंदुमुकुटं चैव हरिवक्त्रं चतुर्भुजम्। पुष्पमालाधरं सौम्यं सर्वाभरणभूषितम्॥२०॥
उत्तरे चात्मनः पुण्यां भार्यां च मरुतां शुभाम्। सुयशां सुव्रतां चांबापादमंडनतत्पराम्॥२१॥
एवं पूज्य प्रविश्यांतर्भवनं परमेष्ठिनः। दत्त्वा पुष्पांजलिं भक्त्या पंचमूर्धसु पंचभिः॥२२॥
गंधपुष्पैस्तथा धूपैर्विविधैः पूज्य शंकरम्। स्कंदं विनायकं देवीं लिंगशुद्धिं च कारयेत्॥२३॥
जप्त्वा सर्वाणि मंत्राणि प्रणवादिनमोंतकम्। कल्पयेदासनं पश्चात्पद्माख्यं प्रणवेन तत्॥२४॥

आचमनीय पात्र है।।९-१०।। इनको कुशों से ढक दें और उन पर शुद्ध जल छिड़क दे।।११।। बुद्धिमान भक्त प्रणव के द्वारा इनमें जल भर दे। पूजा की सामग्री को देखकर तब जल भरे। पात्र में खस और चन्दन डाल दे।।१२।। वह चमेली, अशोक का बीज, कपूर, बहुमूल, तमाल बीज को चूर्ण करके आचमनीय पात्र में डाल दे।।१३।। उसी प्रकार वह सभी पात्रों में कपूर, चन्दन और विविध प्रकार के फूल भी डाल दे।।१४।। वह कुश के शिरभाग को, अक्षत, धान, तिल, घी, सफेद सरसों, फूल और भस्म को अर्घ्य पात्र में डाल दे।।१५।। प्रणव का जप करते हुये वह कुश, पुष्प, जव, धान, बहुमूल, तमाल बीज और भस्म प्रोक्षणी पात्र में डाल दे।।१६।। वह पंचाक्षर मन्त्र से न्यास करे और रुद्र गायत्री या केवल प्रणव से जो कि वेदों का सार तत्त्व है।।१७।। तब वह प्रोक्षणी पात्र से जल लेकर पूजा की सामग्री पर छिड़के। यह कार्य प्रणव का जप करते हुये तथा ईशान आदि पाँच मन्त्रों से करे।।१८।। देवताओं के देवता की दाहिनी बगल, नन्दी की (स्वयं मेरी) पूजा करे। इस प्रकार दीप्तमान अग्नि के समान प्रभा वाले, तीन नेत्रधारी, देवों के स्वामी, बाल चन्द्र को मुकुट में धारण किये हुये, बन्दर के समान मुख, चार भुजाधारी, फूलों की माला पहने हुये, सौम्य (भद्र), सब आभूषणों से भूषित मेरा रूप है। मेरे उत्तर मेरी प्रिय भार्या मरुतों की पुत्री सुयशा की पूजा करे जो कि माता पार्वती के चरणों को मण्डन करने में तत्पर हैं।।१९-२१।। इस प्रकार पूजा करके भक्त भगवान शिव के अन्तर्मन में प्रवेश करे। तब वह हाथों में मुट्ठी भर फूल लेकर शिव के पाँचों शिरों पर पाँचों मन्त्रों को जप करते हुये पुष्पांजलि भेंट करे। फूलों को चढ़ावे। विविध प्रकार के गंध, सुगन्धित फूलों से वह शिव, स्कन्द, गणेश और देवी पार्वती की पूजा करके तब लिंग में मन को एकाग्र करे।।२२-२३।। प्रणव से प्रारम्भ और नमः से अन्त होने वाले मन्त्रों को जपते हुये वह प्रणव

तस्य पूर्वदलं साक्षादणिमामयमक्षरम्। लघिमा दक्षिणं चैव महिमा पश्चिमं तथा॥२५॥
प्राप्तिस्तथोत्तरं पत्रं प्राकाम्यं पावकस्य तु। ईशित्वं नैर्ऋतं पत्रं वशित्वं वायुगोचरे॥२६॥
सर्वज्ञत्वं तथैशान्यं कर्णिका सोम उच्यते।
सोमस्याधस्तथा सूर्यस्तस्याधः पावकः स्वयम्॥२७॥
धर्मादयो विदिक्ष्वेते त्वनंतं कल्पयेत्क्रमात्। अव्यक्तादिचतुर्दिक्षु सोमस्यांते गुणत्रयम्॥२८॥
आत्मत्रयं ततश्चोर्ध्वं तस्यांते शिवपीठिका। सद्योजातं प्रपद्यामीत्यावाह्य परमेश्वरम्॥२९॥
वामदेवेन मंत्रेण स्थापयेदासनोपरि। सान्निध्यं रुद्रगायत्र्या अघोरेण निरुद्ध्य च॥३०॥
ईशानः सर्वविद्यानामिति मंत्रेण पूजयेत्। पाद्यमाचमनीयं च विभोश्चार्घ्यं प्रदापयेत्॥३१॥
स्नापयेद्विधिना रुद्रं गंधचंदनवारिणा। पंचगव्यविधानेन गृह्य पात्रेभिमंत्र्य च॥३२॥
प्रणवेनैव गव्यैस्तु स्नापयेच्च यथाविधि। आज्येन मधुना चैव तथा चेक्षुरसेन च॥३३॥
पुण्यैर्द्रव्यैर्महादेवं प्रणवेनाभिषेचयेत्। जलभांडैः पवित्रैस्तु मंत्रैस्तोयं क्षिपेत्ततः॥३४॥
शुद्धिं कृत्वा यथान्यायं सितवस्त्रेण साधकः। कुशापामार्गकर्पूरजातिपुष्पकचंपकैः॥३५॥
करवीरैः सितैश्चैव मल्लिकाकमलोत्पलैः। आपूर्य पुष्पैः सुशुभैः चंदनाद्यैश्च तज्जलम्॥३६॥
न्यसेन्मंत्राणि तत्तोये सद्योजातादिकानि तु। सुवर्णकलशेनाथ तथा वै राजतेन वा॥३७॥

को जपते हुये मूर्त्ति के लिए एक कमल के आसन की धारणा करे (कल्पना करे)।।२४।। इसके अनश्वर पूर्वदल के पूर्व में अणिमा, दक्षिण में लघिमा, पश्चिम के पद्य दल में महिमा, उत्तर के पत्र (दल) में प्राप्ति, दक्षिण-पूर्व में प्राकाम्य, दक्षिण-पश्चिम में ईशित्व, उत्तर-पश्चिम (वायव्य कोण) के पत्र में वशित्व, ईशान कोण में सर्वज्ञत्व और कर्णिका में सोम को तथा उसके नीचे सूर्य उसके नीचे अग्नि, धर्म तथा अन्य को विदिशाओं (कोणों) में स्थापित करे। तब वह अनन्त को स्थापित करे। उसके बाद अव्यक्त आदि को चारों दिशाओं में स्थापित करे और कोणों के अन्त में तीनों गुणों को स्थापित करे।।२५-२८।। इस पर वह तीन आत्मा को स्थापित करे और अन्त में शिव की पीठिका को स्थापित करे। 'सद्योजातं प्रपद्यामि' इस मन्त्र को जपते हुये वह परमेश्वर का आवाहन करे। वामदेव के मन्त्र द्वारा वह उनके आसन के ऊपर स्थापित करे। रुद्र गायत्री मन्त्र द्वारा वह उसकी उपस्थिति कराये और अघोर मन्त्र द्वारा वह देवमूर्ति की उपस्थिति की पुष्टि करे। 'ईशानः सर्व विद्यानाम्' इस मन्त्र द्वारा इस मन्त्र से तब वह पूजा करे। तब वह प्रभु को पाद्य, आचमनीय और अर्घ्य भेंट करे। वह विधान के अनुसार सुगंधित घिसे हुये चन्दन के जल से रुद्र को स्नान करावे। पंचगव्य को एक पात्र में एकत्र करके और उसको प्रणव से अभिमन्त्रित करके, उस पंचगव्य से मूर्ति को स्नान कराये। प्रणव को जपते हुये वह घी, शहद, गन्ने के रस और अन्य पवित्र पुण्य (पवित्र) सामग्री से महादेव का अभिषेक करे। उसके बाद शुद्ध जल से भरे कलशों से मूर्ति पर जल उड़ेल दे।।२९-३४।। उसके बाद साधक भक्त सफेद वस्त्र से मूर्ति को पोंछकर शुद्ध करे। वह कुश, अपामार्ग, कपूर, जाति-पुष्प, चंपा, कनइल, मल्लिका, कमल, उत्पल, उत्तम पुष्पों को घिसे चन्दन के साथ जल में डाले। उस जल को सद्योजात मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करे। जल का पात्र सोने, चाँदी, ताँबे, कमल

ताम्रेण पद्मपत्रेण पालाशेन दलेन वा। शंखेन मृन्मयेनाथ शोधितेन शुभेन वा॥३८॥
सकूर्चेन सपुष्पेण स्नापयेन्मंत्रपूर्वकम्। मंत्राणि ते प्रवक्ष्यामि श‍ृणु सर्वार्थसिद्धये॥३९॥
यैर्लिंगं सकृदप्येवं स्नाप्य मुच्येत मानवः। पवमानेन मंत्रज्ञाः तथा वामीयकेन च॥४०॥
रुद्रेण नीलरुद्रेण श्रीसूक्तेन शुभेन च। रजनीसूक्तकेनैव चमकेन शुभेन च॥४१॥
होतारेणाथ शिरसा अथर्वेण शुभेन च। शांत्या चाथ पुनः शान्त्या भारुंडेनारुणेन च॥४२॥
वारुणेन च ज्येष्ठेन तथा वेदव्रतेनच। तथांतरेण पुण्येन सूक्तेन पुरुषेण च॥४३॥
त्वरितेनैव रुद्रेण कपिना च कपर्दिना। आवोसजेति साम्ना तु बृहच्चंद्रेण विष्णुना॥४४॥
विरूपाक्षेण स्कंदेन शतऋग्भिः शिवैस्तथा। पंच ब्रह्मैश्च सूत्रेण केवलप्रणवेन च॥४५॥
स्नापयेद्देवदेवेशं सर्वपापप्रशांतये। वस्त्रं शिवोपवीतं च तथा ह्याचमनीयकम्॥४६॥
गंधं पुष्पं तथा धूपं दीपमन्नं क्रमेण तु। तोयं सुगंधितं चैव पुनराचमनीयकम्॥४७॥
मुकुटं च शुभं छत्रं तथा वै भूषणानि च। दापयेत्प्रणवेनैव मुखवासादिकानि च॥४८॥
ततः स्फटिकसंकाशं देवं निष्कलमक्षरम्। कारणं सर्वदेवानां सर्वलोकमयं परम्॥४९॥
ब्रह्मेंद्रविष्णुरुद्राद्यैर्ऋषिदेवैरगोचरम्। वेदविद्भिर्हि वेदान्तैस्त्वगोचरमिति श्रुतिः॥५०॥

आदिमध्यांतरहितं भेषजं भवरोगिणाम्।
शिवतत्त्वमिति ख्यातं शिवलिंगे व्यवस्थितम्॥५१॥

प्रणवेनैव मंत्रेण पूजयेल्लिंगमूर्धनि। स्तोत्रं जपेच्च विधिना नमस्कारं प्रदक्षिणम्॥५२॥

के पत्तों, पलाश (छिउल) के पत्तों, शंख या मिट्टी से बना हुआ हो। यह अच्छी तरह धोया हुआ और शुद्ध हो। कुश और पुष्पों से युक्त जल भरे पात्र में मन्त्र पढ़कर मूर्ति को उसमें स्नान कराये। सब अर्थों की सिद्धि के लिए मैं उन मन्त्रों को कहूँगा। उनको कृपया सुनो।।३५-३९।। मनुष्य जो एक बार भी लिंग की पूजा अधोलिखित मन्त्रों से स्नान कराके करता है वह मुक्त हो जाता है। मन्त्रों के ज्ञाता लोग स्नान के लिए पवमान, वाम, रुद्र, नीलरुद्र, श्रीसूक्त, रात्रि सूक्त, चमक, होतृ (होतार) अथर्वशीर्ष, शान्ति, भारुण्ड, अरुण, वारुण, ज्येष्ठ, वेदव्रत, रथन्तर, पुरुष, त्वष्टि, रुद्र, कपि, कपर्दि, आवोसज, सामन, वृहच्चन्द्र, विष्णु, विरूपाक्ष, स्कन्द, शतऋक् (सौ ऋचाओं का प्रार्थना मन्त्र) पंच ब्रह्म, पंचाक्षर मन्त्र या केवल प्रणव।।४०-४५।। भक्त देव देवों के स्वामी भगवान शंकर को सब पापों की शान्ति के लिए स्नान करावे। उसके बाद वह मूर्ति को, वस्त्र, पवित्र जनेऊ, आचमनीय, गंध और पुष्प, धूप, दीप, अन्न (भोजन), सुगंधित जल भेंट करे और फिर आचमन कराये। उसके बाद एक मुकुट, एक छत्र (छाता) और आभूषण भेंट करे। भक्त केवल प्रणव का जप करते हुये सुगंधित ताम्बूल भी दे।।४६-४८।। भक्त लिंग के शिर पर स्फटिक के समान वर्ण वाले सब देवों के कारण, लोक, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि मुनियों, आदि देवों द्वारा, अगोचर, श्रुति द्वारा वेदों के ज्ञाताओं को भी, वेदान्त के माध्यम से अगोचर कहे जाने वाले, आदि मध्य और अन्त से रहित, सांसारिक रोगों से ग्रस्त रोगियों के लिए औषधि रूप, शिव तत्त्व के रूप में प्रसिद्ध और शिव लिंग में स्थित शिव की प्रणव मन्त्र से पूजा करे। वह विधिपूर्वक प्रार्थना करे।

अर्घ्यं दत्त्वाथ पुष्पाणि पादयोस्तु विकीर्य च। प्रणिपत्य च देवेशमात्मन्यारोपयेच्छिवम्॥५३॥
एवं संक्षिप्य कथितं लिङ्गार्चनमनुत्तमम्। आभ्यंतरं प्रवक्ष्यामि लिङ्गार्चनामिहाद्य ते॥५४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पर्वभागे लिङ्गार्चनविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

स्तोत्र पाठ करे और नमस्कार करे। वह प्रदक्षिणा करे। अर्घ्य दे और चरणों पर पुष्प अर्पित करे। उसके बाद भक्त प्रणाम करके अपनी आत्मा में देवेश शंकर को आरोपित करे। इस प्रकार लिंग के अर्चन की विधि को संक्षेप में मैंने कहा। अब मैं तुम सब को आभ्यन्तर लिंगार्चन विधि (लिंग की अभ्यन्तर अर्चन विधि) को बताऊँगा।।४९-५४।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में लिंग की पूजा विधि नामक सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

शिवार्चनतत्त्वसंख्यादिवर्णनम्

शैलादिरुवाच

आग्नेयं सौरममृतं बिंबं भाव्यं ततोपरि। गुणत्रयं च हृदये तथा चात्मत्रयं क्रमात्॥१॥
तस्योपरि महादेवं निष्कलं सकलाकृतिम्। कांतार्धारूढदेहं च पूजयेद्ध्यानविद्यया॥२॥
ततो बहुविधं प्रोक्तं चिंत्यं तत्रास्ति चेद्यतः। चिंतकस्य ततश्चिंता अन्यथा नोपपद्यते॥३॥
तस्माद्ध्येयं तथा ध्यानं यजमानः प्रयोजनम्। स्मरेत्तन्नान्यथा जातु बुद्ध्यते पुरुषस्य ह॥४॥
पुरे शेते पुरं देहं तस्मात्पुरुष उच्यते। याज्यं यज्ञेन यजते यजमानस्तु स स्मृतः॥५॥
ध्येयो महेश्वरो ध्यानं चिंतनं निर्वृतिः फलम्। प्रधानपुरुषेशानं यथातथ्यं प्रपद्यते॥६॥
इह षड्विंशको ध्येयो ध्याता वै पंचविंशकः। चतुर्विंशकमव्यक्तं महदाद्यास्तु सप्त च॥७॥
महांस्तथा त्वहंकारं तन्मात्रं पंचकं पुनः। कर्मेंद्रियाणि पञ्चैव तथा बुद्धींद्रियाणि च॥८॥
मनश्च पंच भूतानि शिवः षड्विंशकस्ततः। स एव भर्ता कर्ता च विधेरपि महेश्वरः॥९॥
हिरण्यगर्भं रुद्रोसौ जनयामास शंकरः।
विश्वाधिकश्च विश्वात्मा विश्वरूप इति स्मृतः॥१०॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

शिवार्चन तत्त्व संख्यादि वर्णन

शैलादि बोले

अग्नि मण्डल, सौर मण्डल और चंद्र मण्डल को अपने हृदय-कमल में स्थित करके उसके ऊपर तीनों गुणों और आत्मा को धारण करे। उसके ऊपर शुद्ध, पूर्णशरीर का आधा भाग काल से आरूढ़; शिव को भक्त शिव के गुण सहित और गुण रहित दोनों रूपों का ध्यान करे।।१-२।। चूँकि चिन्तन करने के लिए अनेक विषय हैं फिर भी अन्य किसी का चिन्तन (ध्यान) न करे। चिन्तक प्रयोजन और ध्यान के साधनों के मध्य अन्तर को न सोचे। यह उसका ध्येय है। अगर वह कोई अन्य चीज सोचता है तो उसके अन्दर ज्ञान नहीं उठेगा।।३-४।। पुर अर्थात् शरीर में जो शेते (सोता है) वह पुरुष है। वह यजमान है जो ध्यान के द्वारा मूर्ति की पूजा करता है। ध्येय स्वयं भगवान शिव हैं। ध्यान चिन्तन है। निवृत्ति (आशीर्वाद) ध्यान का फल है। जो इसके विषय में जानता है वह प्रधान और पुरुष की वास्तविक सत्यता को सही रूप में जानता है।।५-६।। यहाँ पर परमेश्वर ध्यान के प्रयोजन (लक्षण), छब्बीस ध्येय हैं। ध्यान (जीव) पच्चीस है। अव्यक्त या प्रधान चौबीस है। महत् आदि सात है। महत् अहंकार और पाँच तन्मात्रायें, कर्मेन्द्रियाँ पाँच हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच है। बुद्धि, मन और पंचभूत हैं। अतः शिव छब्बीस हैं। वह ही कर्त्ता और भर्त्ता है। वह ब्रह्मा से भी महत्तर है। वह ब्रह्मा के भी कर्त्ता (स्रष्टा) है। यह

विना यथा हि पितरं मातरं तनयास्त्विह। न जायंते तथा सोमं विना नास्ति जगत्त्रयम्॥११॥

सनत्कुमार उवाच

कर्ता यदि महादेवः परमात्मा महेश्वरः। तथा कारयिता चैव कुर्वतोल्पात्मनस्तथा॥१२॥
नित्यो विशुद्धो बुद्धश्च निष्कलः परमेश्वरः।
त्वयोक्तो मुक्तिदः किं वा निष्कलश्चेत्करोति किम्॥१३॥

शैलादिरुवाच

कालः करोति सकलं कालं कलयतेसदा। निष्कलं च मनः सर्वं मन्यते सोपि निष्कलः॥१४॥
कर्मणा तस्य चैवेह जगत्सर्वं प्रतिष्ठितम्। किमत्र देवदेवस्य मूर्त्यष्टकमिदं जगत्॥१५॥
विनाकाशं जगन्नैव विनाक्ष्मां वायुना विना। तेजसा वारिणा चैव यजमानं तथा विना॥१६॥
भानुना शशिना लोकस्तस्यैतास्तनवः प्रभोः। विचारतस्तु रुद्रस्य स्थूलमेतच्चराचरम्॥१७॥
सूक्ष्मं वदंति ऋषयो यन्न वाच्यं द्विजोत्तमाः। यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह॥१८॥
आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन। न भेतव्यं तथा तस्माज्ज्ञात्वानंदं पिनाकिनः॥१९॥
विभूतयश्च रुद्रस्य मत्वा सर्वत्र भावतः। सर्वं रुद्र इति प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥२०॥

वह हैं जो विश्व से अधिक हैं और उस से भी महत्तर हैं और स्वयं विश्व हैं।।७-१०।। जैसे सन्तान अपने माता-पिता के बिना नहीं पैदा होते उसी प्रकार शिव और उमा के बिना तीनों लोक नहीं उत्पन्न होते हैं। काल (समय) प्रत्येक वस्तु को विकसित करता है। भगवान इसको शिव सदा काल को विकसित करते हैं।।११।।

सनत्कुमार बोले

यदि महादेव परमात्मा महेश्वर स्वयं कर्त्ता हैं तो प्रत्येक आत्मा के क्रिया-कलाप को वह तुम्हारे द्वारा कराने वाला (कारयिता) कैसे हो सकता है? लेकिन परमेश्वर नित्य, शुद्ध, विशुद्ध, निष्कल कहा गया है तो वह मुक्ति दाता कैसे हो सकता है? यदि वह निर्गुण है तो वह कैसे कार्य करता है?।।१२-१३।।

नन्दी बोले

काल (समय) प्रत्येक वस्तु को विकसित करता है। भगवान शिव सदा काल का कलन करते हैं। जब मन शिव में निष्कल होता है तो भगवान शिवजी अपना सत्य निर्गुण प्रकृति प्रकट (उद्घाटित) कर देते हैं।।१४।। उनके कर्म से ही यह सारा जगत् प्रतिष्ठित है अर्थात् अस्तित्व में है। देवों के देव शिव की अष्टमूर्ति का ही यह जगत् प्रतिनिधि रूप है। बिना पाँच तत्त्वों आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के बिना, यजमान के, सूर्य और चन्द्रमा के बिना जगत् का कोई अस्तित्व नहीं है। विचार करने पर ऐसा स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण चर और अचर भगवान रुद्र का शरीर है।।१५-१७।। हे द्विजोत्तमों! ऋषि लोग जिसको सूक्ष्म कहते हैं, वेद घोषित करते हैं कि उस तक मन के साथ वाणी न पाकर (न पहुँचकर) वापस लौट आती है। अर्थात् मन और वाणी आदि की पहुँच से वह भगवान परे हैं। ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त करने वाला ब्राह्मण कहीं भी किसी से भी नहीं डरता है। अतः पिनाकधारी शिव के आनन्द को जानकर फिर किसी से भय नहीं रहता है।।१८-१९।। तत्त्वदर्शी मुनि लोग

नमस्कारेण सततं गौरवात्परमेष्ठिनः। सर्वं तु खल्विदं ब्रह्म सर्वो वै रुद्र ईश्वरः॥२१॥
पुरुषो वै महादेवो महेशानः परः शिवः। एवं विभुर्विनिर्दिष्टो ध्यानं तत्रैव चिंतनम्॥२२॥
चतुर्व्यूहेण मार्गेण विचार्यालोक्य सुव्रत। संसारहेतुः संसारो मोक्षहेतुश्च निर्वृतिः॥२३॥
चतुर्व्यूहः समाख्यातश्चिन्तकस्येह योगिनः। चिंता बहुविधा ख्याता सैकत्र परमेष्ठिना॥२४॥
सुनिष्ठेत्यत्र कथिता रुद्रं रौद्री न संशयः। ऐन्द्री चैन्द्रे तथा सौम्या सोमे नारायणे तथा॥२५॥
सूर्ये वह्नौ च सर्वेषां सर्वत्रैवं विचारतः। सैवाहं सोहमित्येवं द्विधा संस्थाप्य भावतः॥२६॥
भक्तोसौ नास्ति यस्तस्माच्चिंतता ब्राह्मी न संशयः।
एवं ब्रह्ममयं ध्यायेत्पूर्वे विप्र चराचरम्॥२७॥
चराचरविभागं च त्यजेदभिमतं स्मरन्। त्याज्यं ग्राह्यमलभ्यं च कृत्यं चाकृत्यमेव च॥२८॥
यस्य नास्ति सुतृप्तस्य तस्य ब्राह्मी न चान्यथा। आभ्यंतरं समाख्यातमेवमभ्यर्चनं क्रमात्॥२९॥
आभ्यंतरार्चकाः पूज्या नमस्कारादिभिस्तथा। विरूपा विकृताश्चापि न निंद्या ब्रह्मवादिनः॥३०॥
आभ्यंतरार्चकाः सर्वे न परीक्ष्या विजानता। निंदका एव दुःखार्ता भविष्यंत्यल्पचेतसः॥३१॥

अपने अनुभव करने के बाद कहते हैं कि सब जगह (सर्वत्र) शिव की विभूतियाँ हैं। अतः वे कहते हैं कि, ''सब रुद्र हैं (प्रत्येक वस्तु रुद्र है)।।२०।।'' परमेष्ठी (ब्रह्मा) के नमस्कार करने के बाद व्यक्ति का गौरव बढ़ जाता है। 'यह सब ब्रह्म है' प्रत्येक वस्तु 'रुद्र है' पुरुष महादेव हैं। शिव उच्चतम देव हैं। इस प्रकार शिव को विशिष्ट कहा गया है। उनके विषय में (उन पर) ध्यान लगाना पूर्ण चिन्तन है।।२१-२२।। हे सुव्रत! उनका चिन्तन चार व्यूह प्राण, मानस, विज्ञान और आनन्द तथा अन्नमय कोश सहित मार्ग या विधि से करना चाहिये। वह संसार के अस्तित्व के कारण हैं। स्वयं विश्व हैं। वह मोक्ष के कारण (हेतु) हैं।।२३।। योगी चिन्तक के लिए चार व्यूहों वाला मार्ग निर्धारित किया गया है। चिन्तन अनेक प्रकार का कहा गया है। यदि यह एक स्थान पर केन्द्रित हो तो उसको 'सुनिष्ठ' कहते हैं। अगर वह रुद्र में केन्द्रित हो तो उसको रौद्री कहते हैं। यदि इन्द्र में केन्द्रित हो तो ऐन्द्री, यदि सोम में केन्द्रित हो तो सौम्या, यदि नारायण में या सूर्य में या अग्नि में केन्द्रित हो तो उनके नामों से कहा जाता है। यदि भक्त अपने मन को द्विधा अर्थात् दो प्रकार से 'वह मैं हूँ' और 'मैं वह हूँ' ऐसा चिन्तन करता है तो यह विचार ब्राह्मी चिन्तन कहा जाता है। हे ब्राह्मणों! इस प्रकार भक्त को इस चराचर जगत को ब्रह्ममय रूप में ध्यान करना चाहिये।।२४-२७।। अपने अभिमत लक्ष्य को मन में रखते हुये (स्मरण करते हुये) भक्त चर और अचर के विभाग को छोड़ दे। क्या छोड़ने के योग्य है? क्या ग्रहण करने योग्य है? क्या प्राप्त करने योग्य है और क्या प्राप्त करने योग्य नहीं है? क्या करने योग्य है और क्या करने योग्य नहीं है? ऐसे सुतृप्त भक्त (साधक या योगी) का ब्रह्म के विषय में वास्तविक (सत्य) ज्ञान है अन्यथा नहीं। इस प्रकार क्रम के अनुसार भगवान शिव की आभ्यन्तर पूजा को मैंने बताया।।२८-२९।। वे जो कि मानसिक पूजा की इस विधि को अपना कर शिव की पूजा करते हैं वे उन आभ्यन्तर पूजकों को भी नमस्कार आदि का प्रयोग करना चाहिये। यहाँ तक कि ब्रह्मवादी यदि विरूप और विकृत भी हो तो भी उनकी भी निन्दा नहीं की जानी चाहिये। आभ्यन्तर अर्चक

यथा दारुवने रुद्रं विनिंद्य मुनयः पुरा।
तस्मात्सेव्या नमस्कार्याः सदा ब्रह्मविदस्तथा॥३२॥
वर्णाश्रमविनिर्मुक्ता वर्णाश्रमपरायणैः॥३३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवार्चनतत्त्वसंख्यादिवर्णनं नामाऽष्टाविंशोध्यायः॥२८॥

की ज्ञानी व्यक्ति द्वारा परीक्षा नहीं लेनी चाहिये और न उनकी निन्दा ही की जानी चाहिये। जो उनकी निन्दा करते हैं वे संकीर्ण विचार के हैं, अल्पज्ञ हैं। ऐसे निन्दक दुःखी होंगे। जैसे कि दारुक वन में रुद्र की निन्दा करके पहले मुनि लोग दुःखी हुये थे। वर्ण आश्रम के धर्मों के पालन करने वाले व्यक्तियों द्वारा वर्ण और आश्रम के कठोर अनुशासन से मुक्त ब्रह्मविद, ब्रह्मज्ञानी सदा सेवा के योग्य और नमस्कार के योग्य है।।३०-३३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में शिवार्चन तत्त्व संख्यादि वर्णन नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त॥२८॥

—***—

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

मृत्योरुपरिविजयः

सनत्कुमार उवाच

इदानीं श्रोतुमिच्छामि पुरा दारुवने विभो। प्रवृतं तद्वनस्थानं तपसा भावितात्मनाम्॥१॥
कथं दारुवनं प्राप्तो भगवान्नीललोहितः। विकृतं रूपमास्थाय चोर्ध्वरेता दिगंबरः॥२॥
किं प्रवृत्तं वने तस्मिन् रुद्रस्य परमात्मनः। वक्तुमर्हसि तत्त्वेन देवदेवस्य चेष्टितम्॥३॥

सूत उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा श्रुतिसारविदां वरः। शिलादसूनुर्भगवान्प्राह किंचिद्भवं हसन्॥४॥

शैलादिरुवाच

मुनयो दारुगहने तपस्तेपुः सुदारुणम्। तुष्ट्यर्थं देवदेवस्य सदारतनयाग्नयः॥५॥
तुष्टो रुद्रो जगन्नाथश्चेकितानो वृषध्वजः। धूर्जटिः परमेशानो भगवान्नीललोहितः॥६॥
प्रवृत्तिलक्षणं ज्ञानं ज्ञातुं दारुवनौकसाम्। परीक्षार्थं जगन्नाथः श्रद्धया क्रीडया च सः॥७॥
निवृत्तिलक्षणज्ञानप्रतिष्ठार्थं च शंकरः। देवदारुवनस्थानां प्रवृत्तिज्ञानचेतसाम्॥८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

मृत्यु पर विजय

सनत्कुमार बोले

हे विभो! तपस्या से अपनी आत्मा को पवित्र करने वाले दारु बन के निवासियों द्वारा क्या किया गया था? कैसे नग्न ब्रह्मचारी रुद्र विकृत रूप धारण करके दारु बन पहुँचे? परमात्मा रुद्र ने वहाँ क्या किया? कृपया उन देवों के देव के क्रिया-कलाप को जस-के-तस रूप में वर्णन कीजिये।।१-३।।

सूत बोले

वेदों के सार के ज्ञाताओं के श्रेष्ठ, नन्दी ने उनके प्रश्न को सुनकर शिव का स्मरण करते हुये कुछ हँसते हुए कहा।।४।।

शैलादि बोले

अपनी स्त्रियों, पुत्रों और यज्ञ की अग्नि को साथ लेकर भगवान रुद्र को प्रसन्न करने के लिए दारु बन में मुनियों ने भयंकर तपस्या की।।५।। रुद्र, जगन्नाथ, वृषध्वज, नीललोहित शिव, परमेश्वर प्रसन्न हुये।।६।। जगत के स्वामी रुद्र ने दारु बन के निवासियों की उनके याज्ञिक कर्म की प्रवृत्ति को जानने के लिए परीक्षा लेना चाहा। उन्होंने मुनियों के मन को यज्ञ कृत्य की ओर निवृत्ति अर्थात् त्याग की ओर बदलने का विचार किया। इस प्रकार उनकी श्रद्धा की परीक्षा लेने के सिलसिले में और क्रीड़ा से भी, शिव ने विकृत रूप किन्तु देखने में

विकृतं रूपमास्थाय दिग्वासा विषमेक्षणः। मुग्धो द्विहस्तः कृष्णांगो दिव्यं दारुवनं ययौ॥९॥
मंदस्मितं च भगवान् स्त्रीणां मनसिजोद्भवम्। भ्रूविलासं च गानं च चकारातीव सुंदरः॥१०॥
संप्रेक्ष्य नारीवृंदं वै मुहुर्मुहुरनंगहा। अनंगवृद्धिमकरोदतीव मधुराकृतिः॥११॥
वने ते पुरुषं दृष्ट्वा विकृतं नीललोहितम्। स्त्रियः पतिव्रताश्चापि तमेवान्वयुरादरात्॥१२॥

वनोटजद्वारगताश्च नार्यो विस्त्रस्तवस्त्राभरणा विचेष्टाः।
लब्ध्वा स्मितं तस्य मुखारविंदादद्रुमालयस्थास्तमथान्वयुस्ताः॥१३॥

दृष्ट्वा काश्चिद्द्रवं नार्यो मदघूर्णितलोचनाः। विलासबाह्यास्ताश्चापि भ्रूविलासं प्रचक्रिरे॥१४॥
अथ दृष्ट्वापरा नार्यः किंचित्प्रहसिताननाः। किंचिद्विस्त्रस्तवसनाः स्त्रस्तकांचीगुणा जगुः॥१५॥

काश्चित्तदा तं विपिने तु दृष्ट्वा विप्रांगनाः स्त्रस्तनवांशुकं वा।
स्वान्स्वान्विचित्रान् वलयान्प्रविध्य मदान्विता बंधुजनांश्च जग्मुः॥१६॥
काचित्तदा तं न विवेद दृष्ट्वा विवासना स्त्रस्तमहांशुका च।
शाखाविचित्रान् विटपान्प्रसिद्धान्मदान्विता बंधुजनांस्तथान्याः॥१७॥

काश्चिज्जगुस्तं ननृतुर्निपेतुश्च धरातले। निषेदुर्गजवच्चान्या प्रोवाच द्विजपुंगवाः॥१८॥

आकर्षक रूप धारण किया। उनके तीन नेत्र, दो भुजाएँ थीं। वे नंगे थे और काले रंग के थे।।७-९।। यहाँ तक कि इस रूप में भी वे सुन्दर लग रहे थे। वे मुस्कुरा रहे थे। स्त्रियों में काम वासना जगाने वाले गाने गा रहे थे और आँखों से इशारे भी कर रहे थे। ऐसा करते हुये वे दिव्य दारु बन में पहुँचे।।१०।। अनंग के हन्ता, अति सुन्दर रुद्र ने स्त्रियों के समूह को देखकर उनके मन में काम वासना को उभाड़ा।।११।। बन में एक विकृत रूप में काले रंग के सुन्दर उस पुरुष को देखकर यहाँ तक कि पतिव्रता स्त्रियाँ भी बड़े आदर और उत्साह के साथ उनके पीछे लग गईं।।१२।। उनके मुख कमल की मुस्कराहट के साथ संकेतों (इशारों) से स्त्रियाँ जो बन में थीं वे द्वार पर इकट्ठी हो गईं थीं, या जो वृक्षों पर स्थित कुटियों पर (खड़ी थीं) अन्य काम-काज छोड़कर, अपने वस्त्रों और आभूषणों की परवाह न करते हुये उनके पीछे चल पड़ीं।।१३।। उनमें से कुछ स्त्रियों की आँखें रुद्र को देखकर नशे से चूर हो गईं। यहाँ तक कि बूढ़ी स्त्रियाँ जो हाव-भाव विलास की उम्र पार कर चुकी थीं वे भी भौंहों से इशारे करने लगीं।।१४।। उनको देखकर कुछ स्त्रियों के चेहरे हँसी व मुस्कुराहट से भर गये। कुछ स्त्रियों के वस्त्र अपनी जगह से खिसक गये। उनकी करधनियाँ ढीली हो गईं। वे भी गाने लगीं।।१५।। कुछ ब्राह्मण स्त्रियों ने अनुभव किया कि उनके नये पहिने वस्त्र भी ढीले हो गये। उन्होंने विभिन्न रंगों के कंगनों (वलयों) को उतार दिया और मदमाती होकर अपने बन्धुजनों के पास चली गईं।।१६।। उनमें से एक, उनको देखकर यह नहीं जान पायी कि उसके ऊपरी भाग के और निचले भाग के वस्त्र कहाँ गये। वे बे-वस्त्र हो गईं। कुछ स्त्रियाँ तो अपने बन्धुओं और बहुशाखाओं वाले वृक्षों में अलगाव (अन्तर) नहीं कर सकीं यद्यपि वे सुपरिचित थे।।१७।। कुछ गाईं, कुछ नाचीं, कुछ भूमि पर गिर पड़ीं। अन्य स्त्रियाँ भूमि पर हाथी की तरह बैठ गईं और जोर से बोलने लगीं। एक-दूसरे को मुस्कुराते हुये चारों ओर से भेंटने-चिपटने लगीं। रुद्र को अपने मार्ग

अयोन्यं सस्मितं प्रेक्ष्य चालिलिंगुः समंततः। निरुध्य मार्गं रुद्रस्य नैपुणानि प्रचक्रिरे॥१९॥
को भवानिति चाहुस्तं आस्यतामिति चापराः। कुत्रेत्यथ प्रसीदेति जजल्पुः प्रीतमानसाः॥२०॥
विपरीता निपेतुर्वै विस्रस्तांशुकमूर्धजाः। पतिव्रताः पतीनां तु सन्निधौ भवमायया॥२१।
दृष्ट्वा श्रुत्वा भवस्तासां चेष्टावाक्यानि चाव्ययः। शुभं वाप्यशुभं वापि नोक्तवान्परमेश्वरः॥२२॥
दृष्ट्वा नारीकुलं विप्रास्तथाभूतं च शंकरम्। अतीव परुषं वाक्यं जजल्पुस्ते मुनीश्वराः॥२३॥
तपांसि तेषां सर्वेषां प्रत्याहन्यंत शंकरे। यथादित्यप्रकाशेन तारका नभसि स्थिताः॥२४॥
श्रूयते ऋषिशापेन ब्रह्मणस्तु महात्मनः। समृद्धश्रेयसां योनिर्यज्ञो वै नाशमाप्तवान्॥२५॥
भृगोरपि च शापेन विष्णुः परमवीर्यवान्। प्रादुर्भावान्दश प्राप्तो दुःखितश्च सदा कृतः॥२६॥
इंद्रस्यापि च धर्मज्ञ छिन्नं सवृषणं पुरा। ऋषिणा गौतमेनोर्व्यां क्रुद्धेन विनिपातितम्॥२७॥
गर्भवासो वसूनां च शापेन विहितस्तथा। ऋषीणां चैव शापेन नहुषः सर्पतां गतः॥२८॥
क्षीरोदश्च समुद्रोसौ निवासः सर्वदा हरेः। द्वितीयश्चमृताधारो ह्यपेयो ब्राह्मणैः कृतः॥२९॥
अविमुक्तेश्वरं प्राप्य वाराणस्यां जनार्दनः। क्षीरेण चाभिषिच्येशं देवदेवं त्रियंबकम्॥३०॥
श्रद्धया परया युक्तो देहाश्लेषामृतेन वै। निषिक्तेन स्वयं देवः क्षीरेण मधुसूदनः॥३१॥
सेचयित्वाथ भगवान्ब्रह्मणा मुनिभिः समम्। क्षीरोदं पूर्ववच्चक्रे निवासं चात्मनः प्रभुः॥३२॥
धर्मश्चैव तथा शप्तो मांडव्येन महात्मना। वृष्णयश्चैव कृष्णेन दुर्वासाद्यैर्महात्मभिः॥३३॥

में वे उनको निपुण इशारों को दिखाने लगीं। कुछ ने अपने मन में प्रसन्न होकर कहा, "आप कहाँ जा रहे हैं? आप कौन हैं? रुकिये! आप मुझ पर कृपा कीजिये। मुझ पर प्रसन्न होइये"।।१८-२०।। रुद्र की माया के कारण यहाँ तक कि पतिव्रता स्त्रियाँ भी अपने खिसके हुये वस्त्रों और सिर के बालों के साथ उल्टी होकर भद्दे ढंग से अपने पतियों के सामने ही गिर पड़ीं।।२१।। यहाँ तक कि उनके वचनों को सुनकर और उनकी विपरीत चेष्टाओं को देखकर अव्यय, भगवान रुद्र कुछ नहीं बोले। न अच्छा, न बुरा। शुभ या अशुभ।।२२।। स्त्रियों की भीड़ और रुद्र को इस दशा में देखकर, ब्राह्मणों और मुनियों ने बहुत कटु वचन कहना प्रारम्भ किया।।२३।। रुद्र के ऊपर उनकी तपस्या की शक्ति का प्रभाव ऐसे ही हुआ जैसे सूर्य के उदय होने पर तारागणों का प्रभाव होता है।।२४।। ऐसा सुना जाता है कि महान् आत्मा ब्रह्मा के यज्ञ को एक ऋषि के शाप ने नष्ट कर दिया था यद्यपि वह यज्ञ सामान्य जन कल्याण के लिए किया गया था।।२५।। भृगु के शापवश परम पराक्रमी विष्णु दश अवतार लेने को बाध्य हुये और प्रत्येक अवतार में दुःख भोग लिया।।२६।। हे धर्मज्ञ! इन्द्र का गुप्तांग भी गौतम ऋषि के शाप से कट करके भूमि पर गिरा दिया गया था।।२७।। एक ब्राह्मण के शाप से वसुओं को भी गर्भ में वास करना पड़ा था। मुनियों के शाप से नहुष सर्प की योनि को प्राप्त हुये थे।।२८।। ब्राह्मणों के शाप से क्षीरसागर भी सूख गया था यद्यपि वह विष्णु का स्थायी निवास था। ब्राह्मणों ने द्वितीय अमृत सागर को अपेय कर दिया था।।२९।। विष्णु अविमुक्तेश्वर को जाकर उन्होंने देवेश शिव को दूध से स्नान कराया। परम श्रद्धा से, उन्होंने ब्रह्मा और मुनियों सहित दूध से शिव का अभिषेक किया जो कि शिव के शरीर के सम्पर्क से अमृतमय हो गया। जिस क्षीरसागर को विष्णु ने अपना निवास बनाया।।३०-३२।। माण्डव्य नामक महात्मा द्वारा धर्म को

राघवः सानुजश्चापि दुर्वासेन महात्मना। श्रीवत्सश्च मुनेः पादपतनात्तस्य धीमतः॥३४॥
एते चान्ये च बहवो विप्राणां वशमागताः। वर्जयित्वा विरूपाक्षं देवदेवमुमापतिम्॥३५॥
एवं हि मोहितास्तेन नावबुध्यंत शंकरम्। अत्युग्रवचनं प्रोचुश्चोग्रोप्यंतरधीयत॥३६॥
तेपि दारुवनात्तस्मात्प्रातः संविग्नमानसाः। पितामहं महात्मानमासीनं परमासने॥३७॥
गत्वा विज्ञापयामासुः प्रवृत्तमखिलं विभोः। शुभे दारुवने तस्मिन् मुनयः क्षीणचेतसः॥३८॥
सोपि संचिंत्य मनसा क्षणादेव पितामहः। तेषां प्रवृत्तमखिलं पुण्ये दारुवने पुरा॥३९॥
उत्थाय प्रांजलिर्भूत्वा प्रणिपत्य भवाय च। उवाच सत्वरं ब्रह्मा मुनीन्दारुवनालयान्॥४०॥
धिग्युष्मान्प्राप्तनिधनान्महानिधिमनुत्तमम् । वृथाकृतं यतो विप्रा युष्माभिर्भाग्यवर्जितैः॥४१॥
यस्तु दारुवने तस्मिल्लिंगी दृष्टोप्यलिंगिभिः। युष्माभिर्विकृताकारः स एव परमेश्वरः॥४२॥
गृहस्थैश्च न निंद्यास्तु सदा ह्यतिथयो द्विजाः। विरूपाश्च सुरूपाश्च मलिनाश्चप्यपंडिताः॥४३॥
सुदर्शनेन मुनिना कालमृत्युरपि स्वयम्। पुरा भूमौ द्विजाग्र्येण जितो ह्यतिथिपूजया॥४४॥

अन्यथा नास्ति संतर्तुं गृहस्थैश्च द्विजोत्तमैः।
त्यक्त्वा चातिथिपूजां तामात्मनो भुवि शोधनम्॥४५॥

गृहस्थोपि पूरा जेतुं सुदर्शन इति श्रुतः। प्रतिज्ञामकरोज्जायां भार्यामाह पतिव्रताम्॥४६॥
सुव्रते सुभ्रु सुभगे शृणु सर्वं प्रयत्नतः। त्वया वै नावमंतव्या गृहे ह्यतिथयः सदा॥४७॥

शाप दिया गया। दुर्वासा तथा अन्य ऋषियों द्वारा कृष्ण सहित वृष्णि वंश को शाप दिया गया था।।३३।। महात्मा दुर्वासा ने राम और उनके अनुज लक्ष्मण को शाप दिया था। भृगु ने विष्णु भगवान को पैर से ठोकर मारा था।।३४।। ये और अन्य भी देवों के देव विरूपाक्ष उमापति को छोड़कर ब्राह्मणों के वश में आये।।३५।। इस प्रकार दारु बन में मोहित मुनियों ने रुद्र को शंकर ही नहीं समझा। उन्होंने अति कटु वचन कहा और वहाँ से गायब (अदृश्य) हो गये।।३६।। प्रातःकाल दुःखी मन वाले वे सब मुनि दारु बन में परमासन पर विराजमान महान् आत्मा ब्रह्मा के पास गये। उन्होंने दारु बन में जो कुछ घटित हुआ उसकी सूचना ब्रह्मा को दी।।३७-३८।। अपने मन में सब बातों पर विचार करते हुये ब्रह्मा ने पवित्र दारु बन में जो कुछ हुआ उसको समझा। वे उठे और हाथ जोड़कर रुद्र को प्रणाम किया। उसके बाद उन्होंने दारु बन में निवास करने वाले मुनियों से जल्दी में कहा।।३९-४०।। "ज्ञान की उत्तम निधि को प्राप्त करने वाले तुम सबको धिक्कार है। हे ब्राह्मणों! अभागे तुम लोगों ने अपने प्राप्त ज्ञान को व्यर्थ कर दिया।।४१।। तुम सबों ने जिस पुरुष को लिङ्गी (लिङ्ग सहित) देखा वह विकृत वेषधारी स्वयं ही परमेश्वर हैं।।४२।। हे ब्राह्मणों! गृहस्थों द्वारा अतिथि की कभी निन्दा (अनादर) नहीं की जानी चाहिये। चाहे वह कुरूप हो सुरूप हो, मलिन हो या मूर्ख हो।।४३।। पहले इसी पृथ्वी पर मृत्यु के देवता काल को एक उत्तम ब्राह्मण मुनि सुदर्शन ने अतिथि रूप में पूजा करके जीत लिया था।।४४।। इस संसार में अतिथि की पूजा को छोड़कर गृहस्थों को भवसागर से पार करने का अन्य मार्ग नहीं है।।४५।। पहले सुदर्शन नाम का एक गृहस्थ था। उसने मृत्यु को जीतने की प्रतिज्ञा की। उसने अपनी पतिव्रता पत्नी से

सर्व एव स्वयं साक्षादतिथिर्यत्पिनाकधृक्। तस्मादतिथये दत्त्वा आत्मानमपि पूजय॥४८॥
एवमुक्त्वाथ संतप्ता विवशा सा पतिव्रता। पतिमाह रुदंती च किमुक्तं भवता प्रभो॥४९॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पुनः प्राह सुदर्शनः। देयं सर्वं शिवायार्ये शिव एवातिथिः स्वयम्॥५०॥
तस्मात्सर्वे पूजनीयाः सर्वेप्यतिथयः सदा। एवमुक्ता तदा भर्त्रा भार्या तस्य पतिव्रता॥५१॥
शेषामिवाज्ञामादायमूर्ध्ना सा प्राचरत्तदा। परीक्षितुं तथा श्रद्धां तयोः साक्षाद्विजोत्तमाः॥५२॥
धर्मो द्विजोत्तमो भूत्वा जगामाथ मुनेर्गृहम्। तं दृष्ट्वाचार्चयामास सार्घाद्यैरनघा द्विजम्॥५३॥
संपूजितस्तया तां तु प्राह धर्मो द्विजः स्वयम्। भद्रे कुतः पतिर्धीमांस्तव भर्ता सुदर्शनः॥५४॥
अन्नाद्यैरलमद्यार्ये स्वं दातुमिह चार्हसि। सा च लज्जावृता नारी स्मरंती कथितं पुरा॥५५॥
भर्त्रा न्यमीलयन्नेत्रे चचाल च पतिव्रता। किंचैत्याह पुनस्तं वै धर्मे चक्रे च सा मतिम्॥५६॥
निवेदितुं किलात्मानं तस्मै पत्युरिहाज्ञया। एतस्मिन्नन्तरे भर्ता तस्या नार्याः सुदर्शनः॥५७॥
गृहद्वारं गतो धीमांस्तामुवाच महामुनिः। एह्येति क्व गता भद्रे तमुवाचातिथिः स्वयम्॥५८॥
भार्यया त्वनया सार्धं मैथुनस्थोऽहमद्य वै। सुदर्शन महाभाग किं कर्तव्यमिहोच्यताम्॥५९॥
सुरतांतस्तु विप्रेंद्र संतुष्टोहं द्विजोत्तम। सुदर्शनस्ततः प्राह सुप्रहृष्टो द्विजोत्तमः॥६०॥

कहा।।४६।। 'हे सुव्रते! सुन्दर भौंहों वाली और सौभाग्यशाली! गौर से सुनो जो मैं कहता हूँ! तुमको कभी भी अतिथियों का अपमान नहीं करना चाहिये।।४७।। चूँकि प्रत्येक अतिथि स्वयं पिनाकधारी साक्षात शिव हैं तो तुम स्वयं अपने को देकर उसकी पूजा करो'।।४८।। दुःखी और विवश रोती हुई उस पतिव्रता पत्नी ने अपने पति से पूछा। 'स्वामी आप ने क्या कहा?'।।४९।। उसकी उस बात को सुनकर सुदर्शन ने फिर कहा, ''हे आर्ये! (भद्र महिला) सब वस्तु शिव है और अतिथि स्वयं शिव हैं। अतः अतिथि सदा पूज्य हैं। इसलिए सब अतिथि लोग सदा पूजनीय हैं।'' ऐसी अपने पति की बात सुनकर उस पतिव्रता पत्नी ने हृदय से इसको स्वीकार कर लिया। उसने अपने सिर पर उसकी आज्ञा को धारण कर लिया और उसके बाद वह अपने काम पर चली गई। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! उन दोनों की श्रद्धा की परीक्षा लेने के लिए स्वयं धर्म एक ब्राह्मण का रूप धारण करके मुनि सुदर्शन के घर पधारे। उस पवित्र स्त्री ने पूजा की सामग्री से अतिथि की पूजा की।।५०-५३।। इस प्रकार उसके द्वारा पूजा किये जाने के बाद स्वयं द्विज वेषधारी धर्म ने कहा। ''तुम्हारे बुद्धिमान पति सुदर्शन कहाँ हैं?।।५४।। हे भद्रे! यह भोजन आदि मेरे लिए पर्याप्त है। मैं कहता हूँ कि तुम स्वयं अपने को मुझको समर्पित कर दो।'' उसके इस तरह कहने पर पतिव्रता वह स्त्री अपने पति द्वारा पहिले कही गई बात का स्मरण करते हुये लज्जा से आँखों को मूँदकर वहाँ से उसकी ओर चलने लगी। क्या-क्या कहती हुई किन्तु तब उसने अपने को धर्मद्विज को समर्पित करने का मन बना लिया। वह पति की आज्ञा से अपने को उस ब्राह्मण को समर्पित करने आगे बढ़ी। इसी समय उसका पति बुद्धिमान सुदर्शन वहाँ आ गया। घर के द्वार पर से उसने अपनी स्त्री को पुकारा। 'हे भद्रे! कहाँ गई हो? यहाँ आओ, आओ।' यह सुन उससे अतिथि ने स्वयं कहा।।५५-५८।। हे सुदर्शन! महाभाग! 'मैं तुम्हारी स्त्री के साथ मैथुन (सम्भोग) कर रहा हूँ। यहाँ अब क्या करना चाहिये। यह आप कृपया बताइये।

भुंक्ष्व चैना यथाकामं गमिष्येहं द्विजोत्तम। हृष्टोथ दर्शयामास स्वात्मानं धर्मराट् स्वयम्॥६१॥
प्रददौ चेप्सितं सर्वं तमाह च महाद्युतिः। एषा न भुक्ता विप्रेंद्र मनसापि सुशोभना॥६२॥
मया चैषा न संदेहः श्रद्धां ज्ञातुमिहागतः। जितो वै यस्त्वया मृत्युर्धर्मेणैकेन सुव्रत॥६३॥
अहोस्य तपसो वीर्यमित्युक्त्वा प्रययौ च सः। तस्मात्तथा पूजनीयाः सर्वे ह्यतिथयः सदा॥६४॥
बहुनात्र किमुक्तेन भाग्यहीना द्विजोत्तमाः। तमेव शरणं तूर्णं गंतुमर्हथ शंकरम्॥६५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणो ब्राह्मणर्षभाः। ब्रह्माणमभिवंद्यार्ताः प्रोचुराकुलितेक्षणाः॥६६॥

ब्राह्मणा ऊचुः

नापेक्षितं महाभाग जीवितं विकृताः स्त्रियः। दृष्टोस्माभिर्महादेवो निंदितो यस्त्वनिंदितः॥६७॥
शप्तश्च सर्वगः शूली पिनाकी नीललोहितः।
अज्ञानाच्छापजा शक्तिः कुंठितास्य निरीक्षणात्॥६८॥
वक्तुमर्हसि देवेश संन्यासं वै क्रमेण तु। द्रष्टुं वै देवदेवेशमुग्रं भीमं कपर्दिनम्॥६९॥

पितामह उवाच

आदौ वेदानधीत्यैव श्रद्धया च गुरोः सदा। विचार्यार्थं मुनेर्धर्मान् प्रतिज्ञाय द्विजोत्तमाः॥७०॥
ग्रहणान्तं हि वा विद्वानथ द्वादश वार्षिकम्। स्नात्वाहृत्य च दारान्वै पुत्रानुत्पाद्य सुव्रतान्॥७१॥

मैथुन क्रिया पूरी हो गई। हे द्विजोत्तम! मैं संतुष्ट हो गया हूँ।' ब्राह्मण सुदर्शन ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "हे द्विजोत्तम! अपनी इच्छानुसार उसके साथ मौज करो (आनन्द करो) भोग करो। मैं अब जाऊँगा।" उसके बाद धर्म—जो इस घटना से प्रसन्न थे—उन्होंने अपना रूप स्वयं प्रकट कर दिया। महान् तेजस्वी धर्म सुदर्शन को अभीष्ट सब कुछ वर दिया और फिर कहा। 'हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! मैंने इस सुशोभन स्त्री का मन से भी उपभोग नहीं किया है। इसमें सन्देह नहीं है। मैं यहाँ इसकी श्रद्धा की परीक्षा लेने आया था। हे सुव्रत! तुमने अकेले इस धर्म से मृत्यु को जीत लिया। यह तुम्हारी तपस्या का प्रभाव है।' ऐसा कहकर धर्म वहाँ से चले गये। इसलिए सब अतिथि सदा पूजनीय हैं।।५९-६४।। 'हे अभागे ब्राह्मणों! बहुत कहने से क्या लाभ? तुम लोग तुरन्त रुद्र शंकर की शरण में जाओ'।।६५।। ब्रह्मा की बात सुनकर वे लोग व्याकुल हो गये। उन्होंने ब्रह्मा को प्रणाम करके कहा।।६६।।

ब्राह्मण बोले

'हे महाभाग! हम लोग अपने जीवन की तनिक भी परवाह नहीं करते या अपने नारियों की जो विकृत हो गई हैं, लेकिन हमारी अज्ञानतावश हम लोगों द्वारा सर्वव्यापी, त्रिशूलधारी और पिनाकधारी अनिन्द्य शिव की निन्दा की गई और उनको शाप दिया गया। यद्यपि हमारी शाप की शक्ति उनके द्वारा हमारी ओर केवल देखने से अप्रभावी (कुंठित) हो गई थी। हे देवेश! अब आप हमको संन्यास की वह प्रक्रिया बताइये जिससे भयानक, उग्र, जटाधारी, महादेव को देख सकें'।।६७-६९।।

पितामह बोले

हे द्विजोत्तमों! भक्त पहिले अपने गुरु से बड़ी श्रद्धापूर्वक वेदों को पढ़कर उसके अर्थ को विचार करके और धर्म को समझे। वह जब तक अध्ययन पूरा न हो या बारह वर्ष तक अनुशासन में रहे। तब वह छात्र जीवन की

वृत्तिभिश्चानुरूपाभिस्तान्विभज्य सुतान्मुनिः। अग्निष्टोमादिभिश्चेष्ट्वा यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विभुम्॥७२॥
पूजयेत्परमात्मानं प्राप्यारण्यं विभावसौ। मुनिर्द्वादशवर्षं वा वर्षमात्रमथापि वा॥७३॥
पक्षद्वादशकं वापि दिनद्वादशकं तु वा। क्षीरभुक् संयुतः शांतः सर्वान् संपूजयेत्सुरान्॥७४॥
इष्ट्वैवं जुहुयादग्नौ यज्ञपात्राणि मंत्रतः। अप्सु वै पार्थिवं न्यस्य गुरवे तैजसानि तु॥७५॥
स्वधनं सकलं चैव ब्राह्मणेभ्यो विशंकया। प्रणिपत्य गुरुं भूमौ विरक्तः संन्यसेद्यतिः॥७६॥
निकृत्य केशान्सशिखानुपवीतं विसृज्य च। पंचभिर्जुहुयादप्सु भूः स्वाहेति विचक्षणः॥७७॥
ततश्चोर्ध्वं चरेदेवं यतिः शिवविमुक्तये। व्रतेनानशनेनापि तोयवृत्त्यापि वा पुनः॥७८॥
पर्णवृत्त्या पयोवृत्त्या फलवृत्त्यापि वा यतिः। एवं जीवन्मृतो नो चेत् षण्मासाद्वत्सरात्तु वा॥७९॥
प्रस्थानादिकमायासं स्वदेहस्य चरेद्यतिः। शिवसायुज्यमाप्नोति कर्मणाप्येवमाचरन्॥८०॥

सद्योपि लभते मुक्तिं भक्तियुक्तो दृढव्रताः॥८१॥
त्यागेन वा किं विधिनाप्यनेन भक्तस्य रुद्रस्य शुभैर्व्रतैश्च।
यज्ञैश्च दानैर्विविधैश्च होमैर्लब्धैश्च शास्त्रैर्विविधैश्च वेदैः॥८२॥

श्वेतेनैवं जितो मृत्युर्भवभक्त्या महात्मना। वोस्तु भक्तिर्महादेवे शंकरे परमात्मनि॥८३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे एकोनत्रिंशोध्यायः॥२९॥

समाप्ति पर स्नान करे। वह विवाह करके रुचि से सुव्रत पुत्रों को उत्पन्न करके उनका संस्कार करे। अपने पुत्रों को उपयुक्त जीविका के साधन (वृत्ति) में लगावे। तब वह अग्नि आदि अन्य यज्ञों को करे। उसके बाद वन में जाकर परम आत्मा की अग्नि में पूजा करे। दुग्धाहारी होकर अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण करे। मुनि सुदर्शन की तरह बारह वर्ष अथवा एक वर्ष या एक मास या बारह दिन शान्त, दुग्धाहारी हो कर सब देवताओं की पूजा करे।।७०-७४।। तब वह उसी अग्नि में यज्ञ में उपयोगी पात्रों से मन्त्रों द्वारा हवन करे। पात्रों को गुरु को दे दे। तब वह अपनी सब धन सम्पत्ति बेहिचक हो ब्राह्मणों को दे दे। वह गुरु को साष्टांग प्रणाम करे। वह इस प्रकार विरक्त होकर यति (सन्यासी) हो जाय।।७५-७६।। वह अपनी शिखा सहित सिर, दाढ़ी, मूँछ मुड़वाकर यज्ञोपवीत को त्याग दे। उसके बाद में 'भूः स्वाहा' मन्त्र से पाँच आहुति दे।।७७।। उसके बाद वह पूर्ण मुक्ति के लिए पर्यटन करे (घूमे)। सूक्ष्म आहार व्रत से, अनशन से, जल से, पत्ते से, दूध से या फल खा कर अपना निर्वाह करे। इस प्रकार जीवन्मृत रहते हुये यदि वह छः मास या एक साल में मरता नहीं है तो यति प्रस्थानादि यात्रा द्वारा अपने शरीर को त्याग दे। इस प्रकार करने वह शिव का सायुज्य प्राप्त करता है।।७८-८०।। हे व्रतों में दृढ़ रहने वालों! भक्ति से युक्त ऐसा व्यक्ति तुरन्त ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। न तो धार्मिक कृत्यों से, न तो त्याग से, विधि से, विधि विधान से, न यज्ञों से, न दान दक्षिणा से, न तो विविध प्रकार के होम से, न तो सब प्रकार के शास्त्रों और वेदों के ज्ञान से, व्यक्ति को कुछ प्राप्त नहीं होता। रुद्र की भक्ति द्वारा श्वेत ने मृत्यु को जीत लिया। तुम लोगों को परमात्मा, शंकर, महादेव में भक्ति हो''।।८१-८३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में मृत्यु पर विजय नामक
उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

श्वेतमुनेः कथा

शैलादिरुवाच

एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्राह्मणर्षभाः। श्वेतस्य च कथां पुण्यामपृच्छन्परमर्षयः॥१॥

पितामह उवाच

श्वेतो नाम मुनिः श्रीमान् गतायुर्गिरिगह्वरे। सक्तो ह्यभ्यर्च्य यद्भक्त्या तुष्टाव च महेश्वरम्॥२॥

रुद्राध्यायेन पुण्येन नमस्तेत्यादिना द्विजाः। ततः कालो महातेजाः कालप्राप्तं द्विजोत्तमम्॥३॥

नेतुं संचित्य विप्रेंद्रास्सान्निध्यमकरोन्मुनेः। श्वतोपि दृष्ट्वा तं कालं कालप्राप्तोपि शंकरम्॥४॥

पूजयामास पुण्यात्मा त्रियंबकमनुस्मरन्। त्रियंबकं यजेदेवं सुगंधिं पुष्टिवर्धनम्॥५॥

किं करिष्यति मे मृत्युर्मृत्योर्मृत्युरहं यतः। तं दृष्ट्वा सस्मितं प्राह श्वेतं लोकभयंकरः॥६॥

एह्येहि श्वेत चानेन विधिना किं फलं तव। रुद्रो वा भगवान् विष्णुर्ब्रह्मा वा जगदीश्वरः॥७॥

कः समर्थः परित्रातुं मया ग्रस्तं द्विजोत्तम। अनेन मम किं विप्र रौद्रेण विधिना प्रभोः॥८॥

नेतुं यस्योत्थितश्चाहं यमलोकं क्षणेन वै। यस्माद्गतायुस्त्वं तस्मान्मुने नेतुमिहोद्यतः॥९॥

तीसवाँ अध्याय

श्वेत मुनि की कथा

नन्दी बोले

ब्रह्मा के ऐसा कहने पर ब्राह्मण ऋषियों ने ब्रह्मा से श्वेत ऋषि की कथा को पूछा।।१।।

पितामह बोले

हे ब्राह्मणों! एक पर्वत की गुफा में श्रीमान श्वेत नाम एक मुनि रहते थे। उनका जीवन समाप्तप्राय था। अतः उसने भक्तिपूर्वक शिव की पूजा और स्तुति की। उसने रुद्राध्याय के मन्त्र 'नमस्ते' से प्रारम्भ होने वाले मन्त्र का जप किया। तब मृत्यु के देवता, महातेजस्वी यम ने सोचा कि उत्तम ब्राह्मण श्वेत की मृत्यु का समय आ गया है। उसको लेने के लिए वे उसके पास पहुँचे। हे द्विजोत्तमों! श्वेत ने काल को देखा और सोचा कि मृत्यु की घड़ी आ गई है। अतः उसने भगवान त्रियंबक (त्रिलोचन) का स्मरण करते हुये उनकी पूजा की। 'मैं त्रियंबक सुगंधि की पूजा करता हूँ जो पुष्टि समृद्धि को बढ़ाते हैं। मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं तो मृत्यु की भी मृत्यु हूँ।।२-६।। श्वेत को देखकर तीनों लोकों को डराने वाले, मृत्यु के देवता ने मुस्कुराकर उससे कहा। "आओ, आओ इससे तुम क्या फल पाये थे? मेरी पकड़ में आने पर रुद्र, भगवान विष्णु अथवा जगदीश्वर ब्रह्मा कौन छुड़ाने में समर्थ है। हे ब्राह्मण! इस विधि (प्रक्रिया) से रुद्र मुझको कैसे प्रभावित कर सकते हैं? मैं तुमको अपने लोक के लिए ले जाने पर तुला हूँ। हे मुनि! क्योंकि तुम्हारे जीवन के दिन पूरे हो चुके हैं।" इन

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भैरवं धर्ममिश्रितम्। हा रुद्र रुद्ररुद्रेति ललाप मुनिपुंगवः॥१०॥
तं प्राह च महादेवं कालं संप्रेक्ष्य वै दृशा। नेत्रेण बाष्पमिश्रेण संभ्रांतेन समाकुलः॥११॥

श्वेत उवाच

त्वया किं काल नो नाथश्चास्ति चेद्धि वृषध्वजः। लिंगेऽस्मिन् शंकरो रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः॥१२॥
अतीव भवभक्तानां मद्विधानां महात्मनाम्।
विधिना किं महाबाहो गच्छ गच्छ यथागतम्॥१३॥
ततो निशम्य कुपितस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयंकरः। श्रुत्वा श्वेतस्य तद्वाक्यं पाशहस्तो भयावहः॥१४॥
सिंहानादं महत्कृत्वा चास्फाट्य च मुहुर्मुहुः। बबंध च मुनिं कालः कालप्राप्तं तमाह च॥१५॥
मया बद्धोसि विप्रर्षे श्वेतं नेतुं यमालयम्। अद्य वै देवदेवेन तव रुद्रेण किं कृतम्॥१६॥
क्व शर्वस्तव भक्तिश्च क्व पूजा पूजया फलम्।
क्व चाहं क्व च मे भीतिः श्वेत बद्धोसि वै मया॥१७॥
लिंगेस्मिन् संस्थितः श्वेत तव रुद्रो महेश्वरः। निश्चेष्टोसौ महादेवः कथं पूज्यो महेश्वरः॥१८॥
ततः सदाशिवः स्वयं द्विजं निहन्तुमागतम्। निहन्तुमंतकं स्मयन् स्मरारियज्ञहा हरः॥१९॥
त्वरन् विनिर्गतः परः शिवः स्वयं त्रिलोचनः। त्रियंबकोऽम्बया समं सनंदिना गणेश्वरैः॥२०॥
ससर्ज जीवितं क्षणाद्भवं निरीक्ष्य वै भयात्। पपात चाशु वै बली मुनेस्तु सन्निधौ द्विजाः॥२१॥
ननाद चोर्ध्वमुच्चधीर्निरीक्ष्य चांतकांतकम्। निरीक्षणेन वै मृतं भवस्य विप्रपुंगवाः॥२२॥

भयंकर धर्म से मिश्रित शब्दों को सुनकर महामुनि चिल्लाया, "हा रुद्र हा रुद्र! रुद्र रुद्र।" काल को देखकर आँसू से भरे नेत्रों से एवं व्याकुल श्वेत ने महादेव काल से कहा।।७-११।।

श्वेत बोले

"हे काल! तुम क्या कर सकते हो यदि हमारा वृषभध्वज, सब देवों को उत्पत्ति का स्रोत, भव, मेरा नाथ इस लिङ्ग में उपस्थित है।।१२।। हे महान् भुजा वाले काल! मेरे समान शिव भक्तों के साथ इस विधि से तुम्हारा क्या लाभ होगा! जैसे आये हो वैसे ही वापस जाओ"।।१३।। श्वेत की बातों को सुनकर तेज दंष्ट्रा वाले हाथ में पाश लिए भयंकर काल देवता कुपित हो गये। हाथ में पाश लिए भयंकर काल देवता सिंह की तरह दहाड़े। फिर अपने हाथों से बार-बार ताली बजायी। उन्होंने मृत्यु का समय प्राप्त हुये मुनि को बाँध लिया और उससे कहा।।१४-१५।। "हे ब्राह्मण मुनि! हे श्वेत! मैंने तुमको अपने लोक में ले जाने के लिए तुमको बाँध लिया है। देवेश रुद्र ने क्या किया?।।१६।। तुम्हारा रुद्र कहाँ है? तुम्हारी भक्ति कहाँ हैं? तुम्हारी पूजा कहाँ है? तुम्हारी पूजा का फल कहाँ है? मैं कहाँ हूँ? मेरा डर कहाँ है? हे श्वेत! मैंने तुमको बाँध लिया है। हे श्वेत! क्या रुद्र इस तुम्हारे लिङ्ग में स्थित हैं? यदि ऐसा है तो वह निष्क्रिय है। वह कैसे पूजा के योग्य हैं?"।।१७-१८।। तब कामारि, यज्ञविध्वंसक, त्रिलोचन, भगवान सदाशिव ब्राह्मण श्वेत को मारने आये हुये काल को मारने को मुस्कुराते हुये उमा, नन्दी और गणेश्वरों के साथ प्रकट हो गये। वहाँ आ गये।।१९-२०।। हे ब्राह्मणों! रुद्र को देखकर शक्तिशली यम ने डर के मारे उसको छोड़ दिया और मुनि के पास गिर पड़े।।२१।। भगवान रुद्र को देखकर

विनेदुरुच्चमीश्वराः सुरेश्वरा महेश्वरम्। प्रणेमुरंबिकामुमां मुनीश्वरास्तु हर्षिताः॥२३॥
ससर्जुरस्य मूर्ध्नि वै मुनेर्भवस्य खेचराः। सुशोभनं सुशीतलं सुपुष्पवर्षमंबरात्॥२४॥
अहो निरीक्ष्य चांतकं मृतं तदा सुविस्मितः। शिलाशनात्मजोऽव्ययं शिवं प्रणम्य शंकरम्॥२५॥
उवाच बालधीर्मृतः प्रसीद चेति वै मुनेः। महेश्वरं महेश्वरस्य चानुगो गणेश्वरः॥२६॥
ततो विवेश भगवाननुगृह्य द्विजोत्तमम्। क्षणदूढशरीरं हि ध्वस्त दृष्ट्वांतकं क्षणात्॥२७॥
तस्मान्मृत्युंजयं चैव भक्त्या संपूजये द्विजाः। मुक्तिदं भुक्तिदं चैव सर्वेषामपि शंकरम्॥२८॥

बहुना किं प्रलापेन संन्यस्याभ्यर्च्य वै भवम्।
भक्त्या चापरया तस्मिन् विशोका वै भविष्यथ॥२९॥

शैलादिरुवाच

एवमुक्तास्तदा तेन ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनः। प्रसीद भक्तिर्देवेशे भवेद्रुद्रे पिनाकिनि॥३०॥
केन वा तपसा देव यज्ञेनाप्यथ केन वा। व्रतैर्वा भगवद्भक्ता भविष्यंति द्विजातयः॥३१॥

पितामह उवाच

न दानेन मुनिश्रेष्ठास्तपसा च न विद्यया। यज्ञैर्होमैर्व्रतैर्वेदैर्योगशास्त्रैर्निरोधनैः॥३२॥
प्रसादे नैव सा भक्तिः शिवे परमकारणे। अथ तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते परमर्षयः॥३३॥

श्वेत मुनि वहीं जोर से दहाड़े। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! देवतागण भी ऊँची आवाज से चिल्लाये और रुद्र और उमा को हर्षित होकर प्रणाम किया। मुनीश्वर गण अधिक प्रसन्न थे।।२२-२३।। आकाशचारी देवताओं ने मुनियों और रुद्र के ऊपर शीतल सुगंधित पुष्पों की वर्षा की।।२४।। यम को मृत देख नन्दी ने भगवान अव्यय शिव शंकर को प्रणाम किया। गणेश्वर और रुद्र के अनुचरों ने बड़े विस्मयपूर्वक कहा, 'यह बाल बुद्धिमान (मूढ़) मर गया है। इस पर प्रसन्न हों। कृपा करें'।।२५-२६।। सुदृढ़ शरीर वाले यम को शिव मृत देखकर उस पर और श्वेत मुनि पर अनुग्रहं करके अन्तर्ध्यान हो गये।।२७।। इसलिए मृत्यु के देवता यम के विजेता भगवान शिव, मृत्युंजय की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। वे भुक्तिदाता ऐश्वर्यदाता और सबके हितैषी हैं।।२८।। अधिक कहने से क्या काम? महान् भक्तिपूर्वक सब छोड़कर रुद्र की पूजा करके तुम सब शोक रहित हो जाओगे।।२९।।

नन्दी बोले

ब्रह्मा द्वारा मुनियों को इस प्रकार कहने के बाद एक बार फिर कहा, "हे भगवान! प्रसन्न हो। किस तपस्या, किस यज्ञ या पवित्र धार्मिक कृत्य, और व्रत से द्विजाति लोग भगवान रुद्र के भक्त हो सकेंगे?।।३०-३१।।

पितामह बोले

न तो दान से, और न तो तप से, न तो विद्या से, यज्ञों, होमों, व्रतों, वेदों और योगशास्त्रों और न तो निरोधनों (चित्त वृत्ति को रोकने) से रुद्र की भक्ति (पूजा) होती है। यह केवल उनकी परमात्मा शिव में भक्ति से ही प्राप्त होती है। इन वचनों को सुनकर वे सब परम ऋषियों ने अपने स्त्री पुत्रों सहित ब्रह्मा को प्रणाम किया। अतः रुद्र की भक्ति धर्म, अर्थ और काम को देने वाली है। यह मुनियों को विजय देती है। यह मृत्यु पर विजय

सदारतनयाः श्रांताः प्रणेमुश्च पितामहम्। तस्मात्पाशुपती भक्तिर्धर्मकामार्थसिद्धिदा॥३४॥
मुनेर्विजयदा चैव सर्वमृत्युजयप्रदा। दधीचस्तु पुरा भक्त्या हरिं जित्वामरैर्विभुम्॥३५॥
क्षुपं जघान पादेन वज्रास्थित्वं च लब्धवान्। मयापि निर्जितो मृत्युर्महादेवस्य कीर्तनात्॥३६॥
श्वेतेनापि गतेनास्यं मृत्योर्मुनिवरेण तु। महादेवप्रसादेन जितो मृत्युर्यथा मया॥३७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे त्रिंशोध्यायः॥३०॥

कराती है।।३२-३४।। पहिले भक्ति के द्वारा दधीच ने भगवान विष्णु और देवताओं को जीतकर क्षुप को पैर से मार डाला और वज्र-अस्थि प्राप्त की। रुद्र की भक्ति से मृत्यु को जीता। मृत्यु के मुख में गये श्वेत मुनि ने भी रुद्र की कृपा से मृत्यु पर विजय प्राप्त की। जैसे मैंने महादेव की कृपा से मृत्यु को जीत लिया था।।३५-३७।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में श्वेतमुनि की कथा
नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

शिवस्तुतिः

सनत्कुमार उवाच

कथं भवप्रसादेन देवदारुवनौकसः। प्रपन्नाः शरणं देवं वक्तुमर्हसि मे प्रभो॥१॥

शैलादिरुवाच

तानुवाच महाभागान्भगवानात्मभूः स्वयम्। देवदारुवनस्थांस्तु तपसा पावकप्रभान्॥२॥

पितामह उवाच

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः। न तस्मात्परमं किंचित्पदं समधिगम्यते॥३॥
देवानां च ऋषीणां च पितॄणां चैव स प्रभुः। सहस्त्रयुगपर्यंते प्रलये सर्वदेहिनः॥४॥
संहरत्येष भगवान् कालो भूत्वा महेश्वरः। एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा॥५॥
एष चक्री च वज्री च श्रीवत्सकृतलक्षणः। योगी कृतयुगे चैव त्रेतायां क्रतुरुच्यते॥६॥
द्वापरे चैव कालाग्निर्धर्मकेतुः कलौ स्मृतः। रुद्रस्य मूर्तयस्त्वेता येऽभिध्यायंति पंडिताः॥७॥
चतुरस्त्रं बहिश्चांतरष्टास्त्रं पिंडिकाश्रये। वृत्तं सुदर्शनं योग्यमेवं लिङ्गं प्रपूजयेत्॥८॥

इकतीसवाँ अध्याय

शिव की स्तुति

सनत्कुमार बोले

हे प्रभो! अब आप हम लोगों को बतायें कि दारु वन के निवासी कैसे शिव की प्रसन्नता से (कृपा से) उनकी शरण को प्राप्त हुये।।१।।

नन्दी बोले

स्वयं ब्रह्मा ने अपनी तपस्या से अग्नि के समान प्रभा वाले दारु वन के सौभाग्यशाली निवासियों से कहा।।२।।

पितामह बोले

यह जो महेश्वर नाम से जानने के योग्य हैं, वे मुझसे बड़े हैं। उनसे बढ़कर और कोई सुरक्षा की खोज की आवश्यकता नहीं है।।३।। वह देवताओं के, ऋषियों के और पितरों के प्रभु (स्वामी) हैं। सहस्त्र युग पर्यन्त प्रलयकाल में वे काल बनकर सब प्राणियों का संहार करते हैं। वे अकेले ही अपने तेज से सब प्रजाओं की सृष्टि करते हैं।।४-५।। वे वज्रधारी इन्द्र हैं। श्रीवत्स चिह्न से युक्त चक्रधारी विष्णु हैं। कृत युग में वे योगी कहलाते हैं। त्रेता युग में क्रतु, द्वापर में कालाग्नि, कलियुग में धर्मकेतु नाम से जाने जाते हैं। ये चार रुद्र के रूप (मूर्तियाँ) हैं जिनका पण्डित लोग ध्यान करते हैं।।६-७।। लिंग अन्तः और बहिः (बाहर) चतस्त्र होना चाहिये। पिंडिका के आश्रय का स्थान अष्टास्त्र (आठ पहलू) होना चाहिये। अन्य स्थानों में यह वृत्ताकार और आकर्षक होना

तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुः प्रकाशकम्। मूर्तिरिका स्थिता चास्य मूर्तयः परिकीर्तिताः॥९॥
यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम्। तस्माद्धि देवदेवेशमीशानं प्रभुमव्ययम्॥१०॥
आराधयंति विप्रेंद्रा जितक्रोधा जितेंद्रियाः। लिंगं कृत्वा यथान्यायं सर्वलक्षणसंयुतम्॥११॥
अंगुष्ठमात्रं सुशुभं सुवृत्तं सर्वसंमतम्। समनाभं तथाष्टास्त्रं षोडशास्त्रमथापि वा॥१२॥
सुवृत्तं मंडलं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम्। वेदिका द्विगुणा तस्य समा वा सर्वसंमता॥१३॥
गोमुखी च त्रिभागैका वेद्या लक्षणसंयुता। पट्टिका च समंताद्वै यवमात्रा द्विजोत्तमाः॥१४॥
सौवर्णं राजतं शैलं कृत्वा ताम्रमयं तथा। वेदिकायाश्च विस्तारं त्रिगुणं वै समन्ततः॥१५॥
वर्तुलं चतुरस्त्रं वा षडस्त्रं वा त्रिरस्त्रकम्। समंतान्निर्व्रणं शुभ्रं लक्षणैस्तत्सुलक्षितम्॥१६॥
प्रतिष्ठाप्य यथान्यायं पूजालक्षणसंयुतम्। कलशं स्थापयेत्तस्य वेदिमध्ये तथा द्विजाः॥१७॥
सहिरण्यं सबीजं च ब्रह्मभिश्चाभिमंत्रितम्। सेचयेच्च ततो लिंगं पवित्रैः पञ्चभिः शुभैः॥१८॥
पूजयेच्च यथालाभं ततः सिद्धिमवाप्स्यथ। समाहिताः पूजयध्वं सपुत्राः सह बंधुभिः॥१९॥
सर्वे प्रांजलयो भूत्वा शूलपाणिं प्रपद्यत। ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मभिः॥२०॥
यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति। ततः प्रदक्षिणं कृत्वा ब्रह्माणममितौजसम्॥२१॥

चाहिये। व्यक्ति को ऐसे ही उत्तम सुन्दर लिंग का पूजन करना चाहिये।।८।। तमस् अग्नि देवता हैं। राजस् ब्रह्मा हैं। सत्त्व विष्णु हैं। मूल रूप में ये तीन एक मूर्ति हैं। ये इस एक मूर्ति में विविध रूप हैं।।९।। क्रोध को जीतने वाले और अपने ज्ञानेन्द्रियों को वश में करने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग सब लक्षणों से युक्त ऐसे लिंग को बनाकर उसकी पूजा करते हैं। ब्रह्मा अपनी यौगिक शक्ति के साथ वहाँ ठहरते हैं। अतः वे लिंग में देवों के देवों के ईश्वर, अव्यय भगवान ईशान की पूजा करते हैं।।१०-११। लिंग सुवृत सुशुभ और आकार में आठ अंगुल, सब को अच्छा लगने वाला और समनाभ हो। यह आठ या सोलह बराबर ऐंगिल का हो। इसका मण्डल सुवृत्त हो। अच्छा बना हो जो सब इच्छाओं (कार्यों) को पूरा कर सके। वेदिका इसके आकार की दुगुनी या बराबर हो और सर्वसम्मत हो। गोमुखी वेदी के सब लक्षणों से युक्त और आकार में तिहाई हो। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! पट्टिका (किनारा) वेदी के चारों ओर एक यव मात्र चौड़ी हो। लिंग सोने-चाँदी या ताँबे का बना हो। वेदी का विस्तार चारों ओर तिगुना हो। वेदी आकार में वर्तुलाकार (गोल) त्रिकोण, चार कोण वाली या छः कोण वाली हो। इसमें कहीं दरार न हो (कहीं पर टूटी न हो) और सब लक्षणों से पूर्ण हो। पूजा के लक्षणों, नियमों से युक्त ऐसी वेदी के बीच में कलश को स्थापित करे।।१२-१७।। सोने के टुकड़े और पंचाक्षर मन्त्र सहित उस कलश में रखने चाहिये। इसके बाद सद्योजात पवित्र मन्त्रों से लिंग को अभिमन्त्रित करे। तब भक्त को पवित्र पंचाक्षर मन्त्र को जपते हुये लिंग को जल से सींचना चाहिये।।१८।। यदि तुम ऐसी उपलब्ध सामग्री से लिंग की पूजा करो तो तुमको सिद्धि प्राप्त होगी। तुम सब को अपने पुत्रों और बांधवों सहित एकाग्र चित्त और मानसिक शुद्धता से पूजा करनी चाहिये।।१९।। तुम सब अंजलि बाँधकर त्रिशूलधारी शिव को नमन करो। तुम सब अपने को वश में कर सकने वाले लोगों द्वारा दर्शनीय देवेश शिव को देखोगे।।२०।। उसको देखकर तुम्हारे अज्ञान और अधर्म (पाप) का

संप्रस्थिता वनौकास्ते देवदारुवनं ततः। आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितं यथा॥२२॥
स्थंडिलेषु विचित्रेषु पर्वतानां गुहासु च। नदीनां च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च॥२३॥
शैवालशोभनाः केचित्केचिदंतर्जलेशयाः। केचिद्दर्भावकाशास्तु पादांगुष्ठाग्रधिष्ठिताः॥२४॥
दंतोलूखलिनस्त्वन्ये अश्मकुट्टास्तथा परे। स्थानवीरासनास्त्वन्ये मृगचर्यारताः परे॥२५॥
कालं नयंति तपसा च पूजया च महाधियः। एवं संवत्सरे पूर्णे वसंते समुपस्थिते॥२६॥
ततस्तेषां प्रसादार्थं भक्तानामनुकंपया। देवः कृतयुगे तस्मिन्गिरौ हिमवतः शुभे॥२७॥
देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः। भस्मपांसूपदिग्धांगो नग्नो विकृतलक्षणः॥२८॥
उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिंगललोचनः। क्वचिच्च हसते रौद्रं कचिद्गायति विस्मितः॥२९॥

क्वचिन्नृत्यति शृंगारं क्वचिद्रौति मुहुर्मुहुः।
आश्रमे ह्यटते भैक्ष्यं याचते च पुनःपुनः॥३०॥

मायां कृत्वा तथारूपां देवस्तद्वनमागतः। ततस्ते मुनयः सर्वे तुष्टुवुश्च समाहिताः॥३१॥
अद्भिर्विविधमाल्यैश्च धूपैर्गन्धैस्तथैव च। सपत्नीका महाभागाः सपुत्राः सपरिच्छदाः॥३२॥
मुनयस्ते तथा वाग्भिरीश्वरं चेदमब्रुवन्। अज्ञानाद्देवदेवेश यदस्माभिरनुष्ठितम्॥३३॥
कर्मणा मनसा वाचा तत्सर्वं क्षंतुमर्हसि। चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च॥३४॥

नाश होगा।" उसके बाद दारु बन के निवासी लोग अमित तेजस्वी ब्रह्मा की प्रदक्षिणा करके अपने निवास दारुबन को चले गये। उन्होंने ब्रह्मा द्वारा बताई गई विधि से शिव की आराधना करना प्रारम्भ किया।।२१-२२।। देश के सूखे हुये ऊँचे चबूतरों पर, पर्वतों की गुफाओं में, या नदियों के एकान्त तटों पर, उन्होंने तपस्या की। कुछ जलाशयों में खड़े हुये जो शैवाल (काई) से शोभित थे। कुछ तपस्या काल में वर्षा में, कुछ अपने पैरों से अँगूठों के बल खड़े होकर, कुछ दातों से निचोड़े अन्नों पर जीवित, कुछ पत्थर से कुचले अन्नों पर, कुछ वीरासन अपनाये और मृग के समान आचार में लग्न थे। इस प्रकार उन बुद्धिमान भक्तों ने तपस्या और पूजा में अपना समय बिताया। जब एक वर्ष पूरा हुआ और वसन्त आया, उस कृत युग में तब भगवान उन भक्तों को अपनी कृपा से आशीर्वाद देने के लिये उस पवित्र हिमवत पर्वत पर स्थित दारुबन में प्रसन्न होकर पधारे।।२३-२७।। वह गँवारू वेश में थे। वे नंगे थे। वे अपने अंगों पर भस्म चुपड़े थे। उनके हाथों में उल्मुक (मसालें) थीं। जिनको वे घुमा रहे थे। उनके नेत्र लाल और पीले थे। कभी वे भयानक हँसी हँसते थे। कभी विस्मित होकर गाते थे। कभी वे शृंगारी भाव में नाचते थे तो कभी बार-बार रोते थे। वे आश्रमों में घूमते थे और भिक्षा माँगते थे। वे अपनी इच्छानुसार अनेक रूप धारण करते थे। जब वे उस बन में आये तो सब मुनियों ने भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। अपनी पत्नियों और पुत्रों और अनुचरों सहित महाभाग्यशाली मुनियों ने रुद्र भगवान का जल, विविध रंगों की मालाओं, धूपों और गंधों से स्वागत किया। उन्होंने भगवान से इस प्रकार कहा।।२८-३२।। "हे देव देवेश! अज्ञानता वश हम लोगों से मन से कर्म और वाणी से जो भूल (त्रुटि) हुई हो उसको आप क्षमा करें। हे रुद्र! आप के चरित्र विचित्र, गुप्त और गम्भीर हैं। आप की लीला ब्रह्मा तथा देवों द्वारा भी दुर्विज्ञेय (कठिनाई से जानते

ब्रह्मादीनां च देवानां दुर्विज्ञेयानि ते हर। अगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च॥३५॥
विश्वेश्वर महादेव योसि सोसि नमोस्तु ते। स्तुवंति त्वां महात्मानो देवदेवं महेश्वरम्॥३६॥
नमो भवाय भव्याय भावनायोद्भवाय च। अनंतबलवीर्याय भूतानां पतये नमः॥३७॥
संहर्त्रे च पिशंगाय अव्ययाय व्ययाय च। गंगासलिलधाराय आधाराय गुणात्मने॥३८॥
त्र्यंबकाय त्रिनेत्राय त्रिशूलवरधारिणे। कंदर्पाय हुताशाय नमोस्तु परमात्मने॥३९॥
शंकराय वृषांकाय गणानां पतये नमः। दंडहस्ताय कालाय पाशहस्ताय वै नमः॥४०॥
वेदमंत्रप्रधानाय शतजिह्वाय वै नमः। भूतं भव्यं भविष्यं च स्थावरं जंगमं च यत्॥४१॥
तव देहात्समुत्पन्नं देव सर्वमिदं जगत्। पासि हंसि च भद्रं ते प्रसीद भगवंस्ततः॥४२॥
अज्ञानाद्यदि विज्ञानाद्यत्किंचित्कुरुते नरः। तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया॥४३॥
एवं स्तुत्वा तु मुनयः प्रहृष्टैरंतरात्मभिः। याचन्त तपसा युक्तः पश्यामस्त्वां यथा पुरा॥४४॥
ततो देवः प्रसन्नात्मा स्वमेवास्थाय शंकरः। रूपं त्र्यक्षं च संद्रष्टुं दिव्यं चक्षुरदात्प्रभुः॥४५॥
लब्धदृष्ट्या तया दृष्ट्वा देवदेवं त्रियंबकम्। पुनस्तुष्टुवुरीशानं देवदारुवनौकसः॥४६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे एकत्रिंशोध्यायः॥३१॥

योग्य) है। हम लोग आप की गति (उन्नति) और अगति को नहीं जान सकते हैं।।३३-३५।। हे विश्वेश्वर! हे महादेव आप जैसे हैं वैसे हैं। हमारा आप को नमस्कार। महात्मा लोग तुम्हारी देवों के देव महान् ईश्वर के रूप में स्तुति करते हैं।।३६।। भव को नमस्कार, भव्य को नमस्कार, भावन के लिये नमस्कार, उद्भव (उत्पत्ति के स्रोत) के लिये नमस्कार, अनन्त बलवीर्य वाले तुम्हें नमस्कार, प्राणियों के स्वामी के लिए नमस्कार।।३७।। संहर्ता के लिए नमस्कार, पिगल रंग वाले के लिए नमस्कार, अव्यय के लिए नमस्कार, व्यय के लिए नमस्कार, गंगा जलधारी के लिए नमस्कार और सब के आश्रय के लिए नमस्कार, तीनों गुणों के आत्मारूप के लिए नमस्कार।।३८-३९।। शंकर के लिए, वृषध्वज के लिए और गणों के ईश्वर (पति) के लिए नमस्कार। हाथ में दण्डधारी, काल और हाथ में पाशधारी के लिये नमस्कार।।४०।। वैदिक मन्त्रों के प्रधान देव को नमस्कार, सौ जीभ वाले को नमस्कार। हे देव! यह सम्पूर्ण जगत आप के शरीर से उत्पन्न हुआ है चाहे वह भूत हो, वर्तमान हो या भविष्य हो। चाहे वह चर हो या अचर हो। हे स्वामी! आप का कल्याण हो। तुम सब की रक्षा और विनाश करते हो। तुम प्रसन्न हो जाओ।।४१-४२।। जो कुछ मनुष्य अज्ञान वश करता है या जान-बूझकर (ज्ञानवश) करता है यह स्वयं आप की योगिक माया है।।४३।।" प्रसन्न आत्मा से मुनियों द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर उन्होंने पहिले की तरह तेज से युक्त रूप में देखने की शिव से प्रार्थना की। तब प्रसन्न भगवान रुद्र ने अपने असली त्रिनेत्र रूप को धारण किया। इस रूप को देखने के लिए भगवान रुद्र ने उन सब को दिव्य नेत्र दिया। दिव्य दृष्टि पा कर मुनियों ने रुद्र के असली रूप का दर्शन करके उनकी पुनः स्तुति की।।४४-४६।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में शिव की स्तुति नामक
इक्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३१॥

—✻✻✻—

द्वात्रिंशोऽध्यायः

शिवस्तुतिः

ऋषयः ऊचुः

नमो दिग्वाससे नित्ये कृतांताय त्रिशूलिने। विकटाय करालाय करालवदनाय च॥१॥
अरूपाय सुरूपाय विश्वरूपाय ते नमः। कटंकटाय रुद्राय स्वाहाकाराय वै नमः॥२॥
सर्वप्रणतदेहाय स्वयं च प्रणतात्मने। नित्यं नीलशिखंडाय श्रीकंठाय नमोनमः॥३॥
नीलकंठाय देवाय चिताभस्मांगधारिणे। त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः॥४॥
आत्मा च सर्वभूतानां सांख्यैः पुरुष उच्यते। पर्वतानां महामेरुर्नक्षत्राणां च चंद्रमाः॥५॥
ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं देवानां वासव स्तथा। ओङ्कारः सर्ववेदानां श्रेष्ठं साम च सामसु॥६॥
आरण्यानां पशूनां च सिंहस्त्वं परमेश्वरः। ग्राम्याणामृषभश्चासि भगवाँल्लोकपूजितः॥७॥
सर्वथा वर्तमानोपि योयो भावो भविष्यति। त्वामेव तत्र पश्यामो ब्रह्मणा कथितं तथा॥८॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च विषादो मद एव च। एतदिच्छामहे बोद्धुं प्रसीद परमेश्वर॥९॥
महासंहरणे प्राप्ते त्वया देव कृतात्मना। करं ललाटे संविध्य वह्निरुत्पादितस्त्वया॥१०॥

बत्तीसवाँ अध्याय

शिव की स्तुति

ऋषिगण बोले

नग्न को नमस्कार, त्रिशूलधारी को नमस्कार, विश्व के विनाशक को नमस्कार, सुन्दर को नमस्कार, विश्व रूप वृक्ष के कुठार को नमस्कार, कराल वदन को नमस्कार।।१।। अरूप को नमस्कार, सुरूप को नमस्कार, विश्वरूप को नमस्कार, रुद्र को नमस्कार, सब के द्वारा नमन के योग्य को नमस्कार, यजमान रूप वाले को नमस्कार।।२।। अपने आत्मा को प्रणाम करने वाले को नमस्कार, नील शिव को नमस्कार, श्री कंण्ठ को, गले में विषधारण करने वाले को नमस्कार।।३।। नीलकण्ठ देव को नमस्कार, चिता की भस्मधारी को नमस्कार, सब देवताओं में तुम ब्रह्मा हो। तुम सब रुद्रों में नीलकण्ठ हो।।४।। तुम सब प्राणियों की आत्मा हो। सांख्य दर्शन के विद्वानों द्वारा तुम पुरुष कहे जाते हो, तुम पर्वतों में महा मेरु और नक्षत्रों में चन्द्रमा हो।।५।। ऋषियों में तुम वसिष्ठ हो। देवताओं में तुम रुद्र हो, सब वेदों में तुम ओंकार हो और सामों में श्रेष्ठ साम हो। तुम जंगली पशुओं में सिंह हो, ग्राम्य पशुओं में साँड़ हो और सब के स्वामी (परमेश्वर) हो।।६-७।। इस प्रकार से वर्तमान में रहते हुये तुम किसी भी रूप में रहो, ब्रह्मा द्वारा कही गई विधि से हम तुमको देख सकें।।८।। काम, क्रोध, लोभ, विषाद और अहं (अहंकार) ये सब हम जानना चाहते हैं। परमेश्वर प्रसन्न होओ।।९।। प्रलय काल आने पर स्वयंकृत आत्मा तुमने हाथ से मस्तक को फोड़

तेनाग्निना तदा लोका अर्चिर्भिः सर्वतो वृताः। तस्मादग्निसमा ह्येते बहवो विकृताग्नयः॥११॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च मोहो दंभ उपद्रवः।
यानि चान्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च॥१२॥
दह्यंते प्राणिनस्ते तु त्वत्समुत्थेन वह्निना। अस्माकं दह्यमानानां त्राता भव सुरेश्वर॥१३॥
त्वं च लोकहितार्थाय भूतानि परिषिंचसि। महेश्वर महाभाग प्रभो शुभनिरीक्षक॥१४॥
आज्ञापय वयं नाथ कर्तारो वचनं तव। भूतकोटिसहस्त्रेषु रूपकोटिशतेषु च॥१५॥
अन्तं गंतुं न शक्ताः स्म देवदेव नमोऽस्तु ते॥१६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

कर अग्नि उत्पन्न किया।।१०।। तब उस अग्नि ने सब संसार को लपेट लिया। उसी प्रकार रुद्र ये काम, क्रोध आदि विकृत (विकार) अग्नि हैं जो कि प्रलयकाल की अग्नि के समान हैं।।११।।

हे महेश्वर! हे महाभाग! हे शुभ देखने वाले प्रभो! काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ और उपद्रव और सब चर और अचर प्राणी तुम्हारे द्वारा प्रकट की गई अग्नि से जल रहे हैं। हे देवेश! हम जलने वाले लोगों के तुम रक्षक बनो। तुम लोक के हित के लिए प्राणियों को सींचते हो। हमको आज्ञा दो। हे नाथ! हम तुम्हारी आज्ञा का पालन करने वाले हैं। हजारों और करोड़ों प्राणियों में, हजारों और करोड़ों रूपों में हम लोग तुम्हारे अन्त को पहुँचने में असमर्थ हैं।।१२-१६।।''

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में शिव की स्तुति नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ऋषिवाक्यम्

नंद्युवाच

ततस्तुतोष भगवाननुगृह्य महेश्वरः। स्तुतिं श्रुत्वा स्तुतस्तेषामिदं वचनमब्रवीत्॥१॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि युष्माभिः कीर्तितं स्तवम्। श्रावयेद्वा द्विजान्विप्रो गाणपत्यमवाप्नुयात्॥२॥
वक्ष्यामि वो हितं पुण्यं भक्तानां मुनिपुंगवाः। स्त्रीलिंगमखिलं देवी प्रकृतिर्मम देहजा॥३॥
पुँल्लिंगं पुरुषो विप्रा मम देहसमुद्भवः। उभाभ्यामेव वै सृष्टिर्मम विप्रा न संशयः॥४॥
न निंदेद्यतिनं तस्माद्दिग्वाससमनुत्तमम्। बालोन्मत्तविचेष्टं तु मत्परं ब्रह्मवादिनम्॥५॥
ये हि मां भस्मनिरता भस्मना दग्धकिल्बिषाः। यथोक्तकारिणो दांता विप्रा ध्यानपरायणाः॥६॥
महादेवपरा नित्यं चरंतो ह्यूर्ध्वरेतसः। अर्चयंति महादेवं वाङ्मनःकायसंयताः॥७॥
रुद्रलोकमनुप्राप्य न निवर्तंति ते पुनः। तस्मादेतद्व्रतं दिव्यमव्यक्तं व्यक्तलिंगिनः॥८॥
भस्मव्रताश्च मुंडाश्च व्रतिनो विश्वरूपिणः। न तान्परिवदेद्विद्वान्न चैतान्नाभिलंघयेत्॥९॥

तैंतीसवाँ अध्याय

ऋषि वाक्य

नन्दी बोले

उसके बाद भगवान महेश्वर प्रसन्न हुए और उनको आशीर्वाद दिया। उनकी स्तुति सुनकर उन्होंने इस प्रकार कहा।।१।।" तुम लोगों द्वारा की गई स्तुति को जो ब्राह्मण पढ़े, ब्राह्मणों को सुनाये, वह मेरे गणों का नेता पद (गाणपत्य) प्राप्त करेगा।।२।। हे श्रेष्ठ मुनियों! मैं जो तुम्हारे हित (कल्याण) के लिए और भक्तों के लिए जो पुण्य होगा उसको मैं कहता हूँ। प्रत्येक वस्तु जो स्त्रीलिंग है वह मेरे देह से उत्पन्न प्रकृति है। हे ब्राह्मणों! प्रत्येक वस्तु जो पुल्लिग है वह मेरी देह से उत्पन्न हुआ पुरुष है। हे ब्राह्मणों! यह मेरी सृष्टि इन्हीं दोनों अर्थात् प्रकृति और पुरुष से हुई है। इसमें सन्देह नहीं है।।३-४।। अतः जो मेरा भक्त है उसको नग्नस्वरूप मुझमें तत्पर ब्रह्मवादी यती की निन्दा नहीं करना चाहिए। उनकी चेष्टा चाहे बालक या पागल के समान ही हो।।५।। वे महादेव के भक्त भस्म को लगाने में रुचि रखते हैं। जो अपने पापों को भस्म द्वारा जला देते हैं। जो ध्यान में लगे हुए रहते हैं और शास्त्रों में कहे हुए नियमों का पालन करते हैं जो कि ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखते हैं, जो कि वाणी, मन और शरीर को पूर्णरूप से नियन्त्रण में रखकर महादेव की पूजा करते हैं वे रुद्र लोक को प्राप्त करके फिर वहाँ से नहीं लौटते हैं। इसलिए यह गुप्त, पवित्र और दिव्य संस्कार अव्यक्त लिंग के देवता का है।।६-८।। ऊपर कहे हुए पवित्र संस्कार के पारखी कई प्रकार के होते हैं। वे सिर मुड़ाये (मुण्डी), भस्म लगाये और व्रती होते हैं। इन पर व्यंग न करे और न उन पर

न हसेन्नाप्रियं ब्रूयादमुत्रेह हितार्थवान्। यस्तान्निंदति मूढात्मा महादेवं स निंदति॥१०॥
यस्त्वेतान्पूजयेन्नित्यं स पूजयति शंकरम्। एवमेष महादेवो लोकानां हितकाम्यया॥११॥
युगेयुगे महायोगी क्रीडते भस्मगुण्ठितः। एवं चरत भद्रं वस्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ॥१२॥

अतुलमिह महाभयप्रणाशहेतुं शिवकथितं परमं पदं विदित्वा।
व्यपगतभवलोभमोहचित्ताः प्रणिपतिताः सहसा शिरोभिरुग्रम्॥१३॥

ततः प्रमुदिता विप्राः श्रुत्वेवं कथितंतदा। गंधोदकैः सुशुद्धैश्च कुशपुष्पविमिश्रितैः॥१४॥
स्नापयंति महाकुंभैरद्भिरेव महेश्वरम्। गायंति विविधैर्गुह्यैर्हुंकारैश्चापि सुस्वरैः॥१५॥
नमो देवाधिदेवाय महादेवाय वै नमः। अर्धनारीशरीराय सांख्ययोगप्रवर्तिने॥१६॥
मेघवाहनकृष्णाय गजचर्मनिवासिने। कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने॥१७॥

सुरचितसुविचित्रकुंडलाय सुरचितमाल्यविभूषणाय तुभ्यम्।
मृगपतिवरचर्मवाससे च प्रथितयशसे नमोऽस्तुशंकराय॥१८॥

ततस्तान्स मुनीन्प्रीतः प्रत्युवाच महेश्वरः। प्रीतोस्मि तपसा युष्मान्वरं वृणुत सुव्रताः॥१९॥
ततस्ते मुनयः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम्। भृग्वंगिरा वसिष्ठश्च विश्वामित्रस्तथैव च॥२०॥

आक्षेप करे। कोई व्यक्ति ऐसे लोगों की न हँसी उड़ाये न कटु वाक्य कहे। इस लोक में और परलोक में अपनी भलाई चाहने वाला जो व्यक्ति ऐसे लोगों की निन्दा करता है वह महादेव की ही निन्दा करता है।।९-१०।। जो ऐसे लोगों की पूजा करता है वह शंकर की ही पूजा करता है। इस प्रकार लोकों के कल्याण की कामना से महादेव प्रत्येक युग में भस्म लपेटे हुए महायोगी की तरह क्रीड़ा करते (खेलते) हैं। तुम लोग भी इसी प्रकार आचरण करो। तब तुमको कल्याण प्राप्त होगा और उसके बाद सिद्धि प्राप्त करोगे''।।११-१२।। शिव द्वारा अतुल महाभय का नाश करने वाले महान ज्ञान को जानकर और ग्रहण करके वे अपने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर भय, लोभ और मोह से निश्चिंत हो, शिव जी के समक्ष नतमस्तक हुए।।१३।। उस समय शिव द्वारा कथित इस प्रकार की बातों को सुनकर प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मण लोग शुद्ध सुगन्धित कुश और फूल से परिपूर्ण जल से शिव का अभिषेक करने लगे। वे महाकुम्भों (बड़े कलशों) के जल से स्नान कराते हैं। वे अनेक प्रकार के गूढ़ार्थ गीतों को गाते हैं और मधुर स्वर में हुँकार करते हैं।।१४-१५।। देवताओं के अधिदेव को नमस्कार। महादेव को नमस्कार। अर्धनारीश्वर को नमस्कार। अर्धनारीश्वर शरीर वाले को नमस्कार। सांख्य और योग के प्रवर्तक शिव को नमस्कार।।१६।। मेघों के वाहन के समान काले रंग वाले शिव को नमस्कार। गज चर्म को पहिनने वाले शिव को नमस्कार। मृग चर्म को चादर की तरह लपेटे हुए शिव को नमस्कार। सर्प को जनेऊ की तरह धारण किये हुए शिव को नमस्कार।।१७।। सुन्दर बने हुए विचित्र कुण्डल पहने हुए शिव को नमस्कार। अच्छी तरह गुँथी हुई मालाओं और आभूषणों को धारण किये हुए शिव को नमस्कार। सिंह के सुन्दर चर्म को वस्त्र की तरह धारण किये हुए विस्तृत यश वाले शिव को नमस्कार। तब प्रसन्न शिव ने उन मुनियों से कहा। ''हे सुव्रतो! तुम्हारी तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ। तुम लोग वर माँगो''।।१८-१९।। उन सब

गौतमोऽत्रिः सुकेशश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। मरीचिः कश्यपः कण्वः संवर्तश्च महातपाः॥२१॥
ते प्रणम्य महादेवमिदं वचनमब्रुवन्। भस्मस्नानं च नग्नत्वं वामत्वं प्रतिलोमता॥२२॥
सेव्यासेव्यत्वमेवं च ह्येतदिच्छाम वेदितुम्। ततस्तेषां वचः श्रुत्वा भगवान्परमेश्वरः॥२३॥
सस्मितं प्राह संप्रेक्ष्य सर्वान्मुनिवरांस्तदा॥२४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ऋषिवाक्यं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

ऋषियों ने महेश्वर को प्रणाम किया। तब, भृगु अंगिरा, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, सुकेश, पुलस्त्व, पुलहा, क्रतु, मरीचि, कश्यप, कण्व और महातपस्वी संवर्त ने महादेव को प्रणाम करके कहा, "भस्म चुपड़ने, नग्नता, पूजा में वामता और प्रतिलोमता (परस्पर विरोध) के पीछे जो गुप्त तत्त्व (सेव्य और असेव्य रूप में) है, हम लोग यह जानना चाहते हैं। उनकी बातों को सुनकर मुस्कराहट के साथ उन सब मुनियों को देखकर उन्होंने कहा।।२०-२४।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में ऋषि वाक्य नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

योगिप्रशंसा

श्रीभगवानुवाच

एतद्वः संप्रवक्ष्यामि कथा सर्वस्वमद्य वै। अग्निर्ह्यहं सोमकर्ता सोमश्चाग्निमुपाश्रितः॥१॥
कृतमेतद्वहत्यग्निर्भूयो लोकसमाश्रयात्। असकृत्त्वाग्निना दग्धं जगत् स्थावरजंगमम्॥२॥
भस्मसाद्विहितं सर्वं पवित्रमिदमुत्तमम्। भस्मना वीर्यमास्थाय भूतानि परिषिंचति॥३॥
अग्निकार्यं च यः कृत्वा करिष्यति त्रियायुषम्। भस्मना मम वीर्येण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥४॥
भासतेत्येव यद्भस्म शुभं भावयते च यत्। भक्षणात् सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्तितम्॥५॥
ऊष्मपाः पितरो ज्ञेया देवा वै सोमसंभवाः। अग्नीसोमात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्॥६॥
अहमग्निर्महातेजाः सोमश्चैषा महांबिका। अहमग्निश्च सोमश्च प्रकृत्या पुरुषः स्वयम्॥७॥
तस्माद्भस्म महाभागा मद्वीर्यमिति चोच्यते। स्ववीर्यं वपुषा चैव धारयामीति वै स्थितिः॥८॥
तदाप्रभृति लोकेषु रक्षार्थमशुभेषु च। भस्मना क्रियते रक्षा सूतिकानां गृहेषु च॥९॥
भस्मस्नानविशुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः। मत्समीपं समागम्य न भूयो विनिवर्तते॥१०॥

चौंतीसवाँ अध्याय

योगी की प्रशंसा

भगवान बोले

आज मैं तुम लोगों से सब कथा कहूँगा। मैं अग्नि (अग्नि देवता) हूँ। मैं सोम का कर्त्ता (रचयिता) हूँ। मैं सोम हूँ जो अग्नि का आश्रय है।।१।। अग्नि होम के द्वारा जो कुछ प्राप्त करके वह ले जाती है। इनसे वह लोक (विश्व) में है। अग्नि बार-बार सब चर और अचर सब जगत् को जलाती है।।२।। प्रत्येक वस्तु जलकर भस्म हो जाती है। जब वह उत्तम पवित्र भस्म हो जाती है तो भस्म से सोम को ऊर्जा मिलती है और उससे वह प्राणियों को ऊर्जावान बनाती है।।३।। वह जो कि अग्नि में कार्य (यज्ञ कृत्य) करके आहुति करेगा वह सब पापों से मुक्त होगा क्योंकि भस्म की ऊर्जा मेरी ही ऊर्जा है।।४।। 'भस्मन्' शब्द 'भास' से बना है जिसका अर्थ है 'भासना' (चमकना) या 'भू' धातु से पहुँचवाला 'भावयते' या भक्ष' खाना, भक्षति। सब पापों का भक्षण करने से इसको 'भस्म' कहा जाता है। पितृगण ऊष्मा आदि पीते हैं। देवगण सोम पीते हैं। यह स्थावर और जंगम सब जगत् अग्नि और सोम की प्रकृति है। अग्नि सोमात्मक है।।५-६।। मैं महातेजस्वी अग्नि हूँ। यह महान उमा सोम है। मैं अग्नि और सोम एक साथ हूँ। मैं पुरुष भी हूँ और प्रकृति भी हूँ।।७।। हे महाभाग! अतः भस्म मेरा वीर्य कहा जाता है। मैं अपने शरीर से अपना वीर्य धारण करता हूँ। तब से लोगों की अशुभ अवसरों में और सूतिका गृहों में भस्म रक्षा करती है।।८।। जिसका शरीर भस्म स्नान से पवित्र है, जिसने क्रोध को जीत लिया और इन्द्रियजित है, वह मेरे समीप आकर फिर कभी वापस नहीं

व्रतं पाशुपतं योगं कापिलं चैव निर्मितम्। पूर्वं पाशुपतं ह्येतन्निर्मितं तदनुत्तमम्॥११॥
शेषाश्चाश्रमिणः सर्वे पश्चात्सृष्टाः स्यंभुवा। सृष्टिरेषा मया सृष्टा लज्जामोहभयात्मिका॥१२॥
नग्ना एव हि जायंते देवता मुनयस्तथा। ये चान्ये मानवा लोके सर्वे जायंत्यवाससः॥१३॥
इंद्रियैरजितैर्नग्नो दुकूलेनापि संवृतः। तैरेव संवृतैर्गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्॥१४॥
क्षमा धृतिरहिंसा च वैराग्यं चैव सर्वशः। तुल्यौ मानावमानौ च तदावरणमुत्तमम्॥१५॥
भस्मस्नानेन दिग्धांगो ध्यायते मनसा भवम्। यद्यकार्यसहस्त्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना॥१६॥
तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम्। तस्माद्यत्नपरो भूत्वा त्रिकालमपि यः सदा॥१७॥
भस्मना कुरुते स्नानं गाणपत्यं स गच्छति। समाहृत्य क्रतून् सर्वान्गृहीत्वा व्रतमुत्तमम्॥१८॥
ध्यायंति ये महादेवं लीलासद्भावभाविताः। उत्तरेणार्यपंथानं तेऽमृतत्वमवाप्नुयुः॥१९॥
दक्षिणेन च पंथानं ये श्मशानानि भेजिरे। अणिमा गरिमा चैव लघिमा प्राप्तिरेव च॥२०॥
इच्छा कामावसायित्वं तथा प्राकाम्यमेव च। ईशित्वं च वशित्वं च अमरत्वं च ते गताः॥२१॥
इंद्रादयस्तथा देवाः कामिकव्रतमास्थिताः। ऐश्वर्यं परमं प्राप्य सर्वे प्रथिततेजसः॥२२॥

व्यपगतमदमोहमुक्तरागस्तमरजदोषविवर्जितस्वभावः।
परिभवमिदमुत्तमं विदित्वा पशुपतियोगपरो भवेत्सदैव॥२३॥

लौटता है। मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेता है।।९-१०।। पाशुपत योग और कपिल का सांख्य योग मेरे द्वारा विकसित हुआ है। यह पाशुपत संस्कार पहले पूर्ण रूप से मेरे द्वारा बनाया गया।।११।। बाद में जीवन के चारों आश्रम ब्रह्मा ने बनाये। लज्जा, मोह और भय से युक्त यह सृष्टि मेरे द्वारा बनायी गयी। देवता और मुनि तथा अन्य मानव शरीरधारी सभी नंगे पैदा हुए हैं।।१२।। दुकूल (सिल्केन) पोशाक पहने हुए यदि इन्द्रियों से अजित है तो वह नग्न ही है। लेकिन अगर उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ उनके नियन्त्रण में हैं तो वे नंगा होते हुए भी अच्छी तरह ढके हुए हैं। इस तरह के मामले में वस्त्र कोई खास कारण नहीं समझा जाता।।१३-१४।। क्षमा, धैर्य, अहिंसा और वैराग्य, मान और अपमान दोनों में समान भाव रखना, ये सब शरीर के उत्तम आवरण (कवर) हैं।।१५।। भस्म स्नान से जिसका शरीर पवित्र है, जो मन से शिव का ध्यान करता है, वह यदि हजारों गलतियाँ करके जो भस्म स्नान कर लेता है अर्थात् पूरे शरीर में लगा लेता है, तो भस्म से उसके सब पाप उसी प्रकार भस्म हो जाते हैं जैसे अग्नि से वन भस्म हो जाता है। इसलिए एक दिन में तीन बार स्नान करने वाला गणपति की हैसियत प्राप्त करता है।।१६-१७।। जो यज्ञ करके, पवित्र धर्म व्रतों को रखकर और महादेव को उनकी सुदृढ़ लीला के सद्भाव से भावित होकर, महादेव का ध्यान करते हैं वे उत्तर मार्ग से होकर अमरता को प्राप्त करते हैं। जो दक्षिण मार्ग से श्मशान को प्राप्त होते हैं, वे आठ सिद्धियाँ अणिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, कामावासयिता, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व और अन्त में अमरत्व को प्राप्त करते हैं।।१८-२१।। इन्द्र तथा अन्य देवता जो कामिक (सब इच्छाओं की आत्मानुभूति) व्रत में स्थित हैं, वे सब परम ऐश्वर्य को प्राप्त करके सुविख्यात हुए हैं।।२२।। जो मद, मोह रहित राग, तामस् और राजस् दोष

इमं पाशुपतं ध्यायन् सर्वपापप्रणाशनम्। यः पठेच्च शुचिर्भूत्वा श्रद्दधानो जितेन्द्रियः॥२४॥
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति। ते सर्वे मुनयः श्रुत्वा वसिष्ठाद्या द्विजोत्तमाः॥२५॥
भस्मपांडुरदिग्धांगा बभूवुर्विगतस्पृहाः। रुद्रलोकाय कल्पान्ते संस्थिताः शिवतेजसा॥२६॥
तस्मान्न निंद्याः पूज्याश्च विकृता मलिना अपि। रूपान्विताश्च विप्रेन्द्राः सदा योगींद्रशंकया॥२७॥
बहुना किं प्रलापेन भवभक्ता द्विजोत्तमाः। संपूज्याः सर्वयत्नेन शिववन्नात्र संशयः॥२८॥
मलिनाश्चैव विप्रेंद्रा भवभक्ता दृढव्रताः। दधीचस्तु यथा देवदेवं जित्वा व्यवस्थितः॥२९॥
नारायणं तथा लोके रुद्रभक्त्या न संशयः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भस्मदिग्धतनूरुहाः॥३०॥
जटिनो मुंडिनश्चैव नग्ना नानाप्रकारिणः। संपूज्याः शिववन्नित्यं मनसा कर्मणा गिरा॥३१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे योगिप्रशंसानाम
चतुस्त्रिंशोध्यायः॥३४॥

से रहित स्वभाव वाला है वह पशुपत योग का सदैव भक्त होता है।।२३।। उसे सब पापों को नाश करने वाले इस पाशुपत व्रत का ध्यान करना चाहिए। जो पवित्र होकर जितेन्द्रिय होकर श्रद्धा रखते हुए इसको पढ़ता है, वह सब पापों से मुक्त एवं विशुद्धत्मा होकर रुद्र लोक को जाता है। उन सब मुनियों ने वसिष्ठ और अन्य तथा अन्य उत्तम ब्राह्मणों ने अपने-अपने शरीरों पर भस्म लगाकर शुद्ध अंग वाले और सब इच्छाओं से रहित वीतराग हो गये। वे सब कल्प के अन्त में शिव के तेज से रुद्र लोक को चले गये।।२४-२६।। इसलिए मलिन (गन्दे) लोग भी पूज्य हैं। वे निन्दा के योग्य नहीं हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग चाहे रूपवान या मलिन हो वे भी पूज्य हैं वे भी योगीन्द्र हो सकते हैं।।२७।। अधिक बकवास से क्या लाभ? श्रेष्ठ ब्राह्मण शिव के भक्तों की स्वयं शिव के समान सब प्रकार से सेवा करनी चाहिए।।२८।। यहाँ तक कि उत्तम ब्राह्मण मलिन होते हुए भी शिव का भक्त हो सकता है और पाशुपत व्रत में दृढ़तापूर्वक स्थिर रह सकता है। शिव की भक्ति से संसार में सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। जैसा की दधीच देवताओं के देवता विष्णु को जीतकर विजयी हुए। इसलिए सब प्रकार के उन शिव भक्तों की जो जटाधारी या मुण्डित सिर वाले हैं या नग्न हैं या अपने शरीर पर भस्म लपेटे हुए हैं वे सब शिव के समान मन, कर्म और वाणी से सदा पूज्य हैं।।२९-३१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में योगी की प्रशंसा नामक
चौतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३४॥

—※※※—

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

क्षुपाभिधनृपपराभववर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

कथं जघान राजानं क्षुपं पादेन सुव्रत! दधीचः समरे जित्वा देवदेवं जनार्दनम्॥१॥
वज्रास्थित्वं कथं लेभे महादेवान्महातपः। वक्तुमर्हसि शैलादे जितो मृत्युस्त्वया यथा॥२॥

शैलादिरुवाच

ब्रह्मपुत्रो महातेजा राजा क्षुप इति स्मृतः। अभून्मित्रो दधीचस्य मुनींद्रस्य जनेश्वरः॥३॥
चिरात्तयोः प्रसंगाद्वै वादः क्षुपदधीचयोः। अभवत् क्षत्रियश्रेष्ठो विप्र एवेति विश्रुतः॥४॥
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः। तस्मादिन्द्रो ह्ययं वह्निर्यमश्च निर्ऋतिस्तथा॥५॥
वरुणश्चैव वायुश्च सोमो धनद एव च। ईश्वरोहं न संदेहो नावमंतव्य एव च॥६॥
महती देवता या सा महतश्चापि सुव्रत। तस्मात्त्वया महाभाग च्यावनेय सदा ह्यहम्॥७॥
नावमन्तव्य एवेह पूजनीयश्च सर्वथा। श्रुत्वा तथा मतं तस्य क्षुपस्य मुनिसत्तमः॥८॥
दधीचश्च्यावनिश्चोग्रो गौरवादात्मनो द्विजः।
अताडयत्क्षुपं मूर्ध्नि दधीचो वाममुष्टिना। चिच्छेद वज्रेण च तं दधीचं बलवान् क्षुपः॥९॥

पैतीसवाँ अध्याय

क्षुप राजा की पराजय का वर्णन

सनत्कुमार बोले

हे सुव्रत! दधीच ने युद्ध में भगवान विष्णु को जीतकर राजा क्षुप को जीतकर अपने पैर से कैसे मार डाला, महा तपस्वी उस मुनि ने शिव से वज्र अस्थि (हड्डी) का वरदान कैसे प्राप्त किया? हे नन्दी! ये भी बताइए कि मृत्यु पर आपने कैसे विजय प्राप्त की?।।१-२।।

नन्दी बोले

महा तेजस्वी क्षुप नाम का एक राजा था। वह राजा मुनीन्द्र दधीच का मित्र था। प्रसंग वश क्षुप और दधीच में इस बात पर विवाद हो गया कि ब्राह्मण और क्षत्रिय में कौन श्रेष्ठतर होता है।।३।। क्षुप ने कहा "राजा आठ लोकपालों अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और धनद (कुबेर) का शरीर धारण करता है इसलिए वह इन्द्र है। मैं ईश्वर हूँ। मैं अनादरणीय नहीं हूँ।।४-६।। हे सुव्रत! वह मूर्ति अर्थात् राजा बड़ा देवता है। वह नर रूप में भी महत्तम से भी महान है। इसलिए हे व्यवन के पुत्र महाभाग! तुमसे मैं सदा पूज्य हूँ। तुम्हारे द्वारा कभी भी मेरा अपमान नहीं किया जाना चाहिए। मैं सब प्रकार से पूजनीय हूँ।" क्षुप का यह मत सुनकर मुनिश्रेष्ठ दधीच ब्राह्मण के रूप में अपनी उच्चता पर आत्म विश्वास करते हुए उग्र हो गये। उन्होंने राजा क्षुप के सिर पर अपने बाएँ हाथ की मुट्ठी से प्रहार किया किन्तु बलवान राजा क्षुप ने अपने वज्र से दधीच को मार दिया।।७-९।।

ब्रह्मलोके पुरासौ हि ब्रह्मणः क्षुतसंभवः। लब्धं वज्रं च कार्यार्थं वज्रिणा चोदितः प्रभुः॥१०॥
स्वेच्छयैव नरो भूत्वा नरपालो बभूव सः। तस्माद्राजा स विप्रेन्द्रमजयद्वै महाबलः॥११॥
यथा वज्रधरः श्रीमान्बलवांस्तमसान्वितः। पपात भूमौ निहतो वज्रेण द्विजपुंगवः॥१२॥
सस्मार च तदा तत्र दुःखाद्वै भार्गवं मुनिम्। शुक्रोपि संधयामास ताडितं कुलिशेन तम्॥१३॥
योगादेत्य दधीचस्य देहं देहभृतांवरः। संधाय पूर्ववद्देहं दधीचस्याह भार्गवः॥१४॥
भो दधीच महाभाग देवदेवमुमापतिम्। संपूज्य पूज्यं ब्रह्माद्यैर्देवदेवं निरंजनम्॥१५॥
अवध्यो भव विप्रर्षे प्रसादात्र्यम्बकस्य तु। मृतसंजीवनं तस्माल्लब्धमेतन्मया द्विज॥१६॥
नास्ति मृत्युभयं शंभोर्भक्तानामिह सर्वतः। मृतसंजीवनं चापि शैवमद्य वदामि ते॥१७॥
त्रियंबकं यजामहे त्रैलोक्यपितरं प्रभुम्। त्रिमंडलस्य पितरं त्रिगुणस्य महेश्वरम्॥१८॥
त्रितत्त्वस्य त्रिवह्नेश्च त्रिधाभूतस्य सर्वतः। त्रिवेदस्य महादेवं सुगंधिं पुष्टिवर्धनम्॥१९॥
सर्वभूतेषु सर्वत्र त्रिगुणे प्रकृतौ तथा। इंद्रियेषु तथाऽन्येषु देवेषु च गणेषु च॥२०॥
पुष्पेषु गंधवत्सूक्ष्मः सुगंधिः परमेश्वरः। पुष्टिश्च प्रकृतिर्यस्मात्पुरुषस्य द्विजोत्तम॥२१॥
महदादिविशेषांतविकल्पस्यापि सुव्रत। विष्णोः पितामहस्यापि मुनीनां च महामुने॥२२॥
इन्द्रस्यापि च देवानां तस्माद्वै पुष्टिवर्धनः। तं देवममृतं रुद्रं कर्मणा तपसा तथा॥२३॥
स्वाध्यायेन च योगेन ध्यानेन च यजामहे। सत्येनानेन मुक्षीयान्मृत्युपाशाद्भवः स्वयम्॥२४॥

पहले वह ब्रह्म लोक में पैदा हुए थे। जब ब्रह्मा वज्रधारी इन्द्र ने राजा क्षुप को किसी कार्य के लिए कहा था। तब वह इन्द्र से उस कार्य के बदले में पुरस्कार स्वरूप वज्र प्राप्त कर लिया था। राजा क्षुप अपनी इच्छा से मनुष्य होकर फिर राजा हो गये। महा बलवान राजा ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को जीत लिया। जैसे कि वज्रधारी बलवान इन्द्र स्वयं तामसी गुणों से परिपूर्ण हो। क्षुप द्वारा वज्र के प्रहार से ब्राह्मणों में श्रेष्ठ दधीच पृथ्वी पर गिर पड़े।।१०-१२।। उन्होंने दुःखी होकर भार्गव मुनि का स्मरण किया। शरीरधारियों में श्रेष्ठ, भार्गव (शुक्र) ने वज्र प्रहार से घायल दधीच के शरीर को अपनी योग शक्ति से सिलकर टाँके लगाकर उनके देह को पहले की तरह बना दिया। तब उन्होंने दधीच से कहा।।१३-१४।। "हे महाभाग दधीच! ब्रह्मा आदि से पूजित देवताओं के देवता शिव की पूजा करके उनकी कृपा से अवध्य (अमर) हो जाओ। हे ब्राह्मण! मैंने शिव से यह संजीवनी प्राप्त की थी।।१५-१६।। शिव के भक्त के लिए कहीं भी मृत्यु से भय नहीं रहता। शिव के उस मन्त्र को जो मृत्यु संजीवन (मरे को जिन्दा करने वाला) मन्त्र है, मैं तुमसे कहता हूँ।।१७।।" हम तीनों लोकों के पिता, तीन मूर्तियों (देवों) के स्वामी, तीन गुणों, तीन तत्त्वों, तीन पवित्र अग्नि, तीन वेद, तीन से समाहित सब कुछ, शिव की पूजा करते हैं। वह सुगन्धित हैं, पुष्टिवर्धन हैं। त्रिगुणात्मक प्रकृति के सब प्राणियों के देवों में और गुणों में स्थित है। वह परमेश्वर फूलों में सूक्ष्म सुगंधि के समान व्याप्त हैं।।१८।। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! हे सुव्रत! क्योंकि पुरुष का नाम पुष्टि (पोषण) है। इसलिए वह महत् से आदि और विशेष से अन्त वाले सम्पूर्ण दिव्य सृष्टि विष्णु, ब्रह्मा, मुनियों, इन्द्र और देवों का पुष्टिवर्धन है। इसलिए हम लोगों को अपने कर्म से, तपस्या से, स्वाध्याय से, योग

बंधमोक्षकरो यस्मादुर्वारुकमिव प्रभुः। मृतसंजीवनो मंत्रो मया लब्धस्तु शंकरात्॥२५॥
ज़प्त्वा हुत्वाभिमंत्र्यैवं जलं पीत्वा दिवानिशम्।
लिंगस्य सन्निधौ ध्यात्वा नास्ति मृत्युभयं द्विज॥२६॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तपसाराध्य शंकरम्। वज्रास्थित्वमवध्यत्वमदीनत्वं च लब्धवान्॥२७॥
एवमाराध्य देवेशं दधीचो मुनिसत्तमः। प्राप्यावध्यत्वमन्यैश्च वज्रास्थित्वं प्रयत्नतः॥२८॥
अताडयच्च राजेंद्रं पादमूलेन मूर्धनि। क्षुपो दधीचं वज्रेण जघानोरसि च प्रभुः॥२९॥
नाभून्नाशाय तद्वज्रं दधीचस्य महात्मनः। प्रभावात्परमेशस्य वज्रबद्धशरीरिणः॥३०॥
दृष्ट्वाप्यवध्यत्वमदीनतां च क्षुपा दधीचस्य तदा प्रभावम्।
आराधयामास हरिं मुकुंदमिन्द्रानुजं प्रेक्ष्य तदांबुजाक्षम्॥३१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे क्षुपाभिधनृपपराभववर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

से और ध्यान से उस अमर अमृतरूप रुद्र देव की अवश्य पूजा करनी चाहिये। इस सत्य से, शिव स्वयं हमको मृत्यु के बन्धन से मुक्त कर देगें। शिव के इस मृत्युंजय मन्त्र को जप कर, इस मन्त्र से होम करके, इससे अभिमन्त्रित जल को पीकर, इस मन्त्र से लिंग के सम्मुख ध्यान करके, किसी व्यक्ति को मृत्यु का भय नहीं रहता है"।।१९-२६।। उनके इस वचन को सुनकर मुनियों में श्रेष्ठ दधीच ने तपस्या द्वारा शंकर की आराधना करके अन्यों द्वारा अवध्यत्व और वज्रास्थित्व को प्राप्त किया। अर्थात् उनके शरीर की हड्डियों वज्र हो गईं और किसी के प्रहार से वे मर न सकेंगे।।२७।। अवध्यत्व और वज्रास्थित्व को प्राप्त करके दधीच ने राजा क्षुप के सिर पर पैर की एड़ी से कस कर मारा। क्षुप ने भी दधीच की छाती पर वज्र से प्रहार किया। उस वज्र से वज्र शरीरधारी महात्मा दधीच का शिव की कृपा से कुछ भी नहीं हुआ।।२८-३०।। राजा क्षुप ने अपने वज्र के प्रहार से दधीच को सही सलामत और स्वस्थ देखकर इन्द्र के अनुज कमलनयन भगवान विष्णु की आराधना की।।३१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में क्षुप राजा की पराजय का वर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३५॥

षड्त्रिंशोऽध्यायः

क्षुपदधीचसंवादः

नंद्युवाच

पूजया तस्य संतुष्टो भगवान्पुरुषोत्तमः। श्रीभूमिसहितः श्रीमाञ्शंखचक्रगदाधरः॥१॥
किरीटी पद्महस्तश्च सर्वाभरणभूषितः। पीतांबरश्च भगवान्देवैर्दैत्यैश्च संवृतः॥२॥
प्रददौ दर्शनं तस्मै दिव्यं वैगरुडध्वजः। दिव्येन दर्शनेनैव दृष्ट्वा देवं जनार्दनम्॥३॥
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः प्रणम्य गरुडध्वजम्। त्वमादिस्त्वमनादिश्च प्रकृतिस्त्वं जनार्दनः॥४॥
पुरुषस्त्वं जगन्नाथो विष्णुर्विश्वेश्वरोभवान्। योयं ब्रह्मासि पुरुषो विश्वमूर्तिः पितामहः॥५॥
तत्त्वमाद्यं भवानेव परं ज्योतिर्जनार्दन। परमात्मा परंधाम श्रीपते भूपते प्रभो॥६॥
त्वत्क्रोधसंभवो रुद्रस्तमसा च समावृतः। त्वत्प्रसादाज्जगद्धाता रजसा च पितामहः॥७।
त्वत्प्रसादात्स्वयं विष्णुः सत्त्वेन पुरुषोत्तमः। कालमूर्ते हरे विष्णो नारायण जगन्मय॥८॥
महांस्तथा च भूतादिस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च। त्वयैवाधिष्ठितान्येव विश्वमूर्ते महेश्वर॥९॥
महादेव जगन्नाथ पितामह जगद्गुरो। प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर॥१०॥
प्रसीद त्वं जगन्नाथ शरण्यं शरणं गतः। वैकुंठ शौरे सर्वज्ञ वासुदेव महाभुज॥११॥

छत्तीसवाँ अध्याय

क्षुप दधीच विवाद

नन्दी बोले

भगवान विष्णु क्षुप की पूजा से प्रसन्न हुए। श्री और भूमि (अपनी अर्धांगिनी) के साथ, शंख, चक्र, गदा, धारण किये और हाथ में कमल लिये हुये, मुकुट पहने, सब आभूषणों से विभूषित, पीताम्बर पहिने, देवताओं और असुरों से घिरे हुये, गरुणध्वज भगवान विष्णु ने दधीच को दिव्य दर्शन दिया। उनके दिव्य दर्शन को पा कर राजा क्षुप गरुणध्वज भगवान विष्णु को प्रणाम करके प्रसन्न करने वाले मधुर शब्दों द्वारा उनकी स्तुति की।।१-३।। "तुम आदि हो। तुम अनादि हो। तुम ब्रह्मा हो। तुम पुरुष हो। तुम विश्वमूर्ति हो। पितामह हो। आप ही आदि तत्त्व हो। आप अकेले परम ज्योति हो। तुम परम आत्मा हो। हे श्रीपति! तुम महत्तम निष्काम हो। हे भूपति! रुद्र तुम्हारे क्रोध से उत्पन्न हुये हैं। तमस् से आवृत हैं। विश्व के स्रष्टा राजस् से आवृत ब्रह्मा आप की कृपा से उत्पन्न हुए हैं। सत्त्व से आवृत विष्णु स्वयं आप की कृपा से उत्पन्न हुए हैं। हे विष्णु! हे रुद्र! हे कालमूर्ति! हे जगन्मय हरि!।।४-८।। हे विश्वमूर्ति! हे महेश्वर! आप महान पंचभूत तत्त्वों, बुद्धि अहंकार आदि तन्मात्राओं, इन्द्रियों में अधिष्ठित हो।।९।। हे विश्व के स्वामी! आप प्रसन्न हों। हे महादेव! हे जगन्नाथ! हे पितामह! हे जगदगुरु! हे देव देवेश! हे परमेश्वर! आप प्रसन्न हों।।१०।। हे सर्वज्ञ! आप शरण देने योग्य हैं। मैं आप के शरणागत हूँ।

संकर्षण महाभाग प्रद्युम्न पुरुषोत्तम। अनिरुद्ध महाविष्णो सदा विष्णो नमोस्तु ते॥१२॥
विष्णो तवासनं दिव्यमव्यक्तं मध्यतो विभुः। सहस्त्रफणसंयुक्तस्तमोमूर्तिर्धराधरः॥१३॥
अधश्च धर्मो देवेश ज्ञानं वैराग्यमेव च। ऐश्वर्यमासनस्यास्य पादरूपेण सुव्रत॥१४॥
सप्तपातालपादस्त्वं धराजघनमेव च। वासांसि सागराः सप्त दिशश्चैव महाभुजाः॥१५॥
द्यौर्मूर्धा ते विभो नाभिः खं वायुर्नासिकां गतः। नेत्रे सोमश्च सूर्यश्च केशा वै पुष्करादयः॥१६॥
नक्षत्रतारका द्यौश्च ग्रैवेयकविभूषणम्। कथं स्तोष्यामि देवेशं पूज्यश्च पुरुषोत्तमः॥१७॥
श्रद्धया च कृतं दिव्यं यच्छ्रुतं यच्च कीर्तितम्। यदिष्टं तत्क्षमस्वेश नारायण नमोस्तु ते॥१८॥

शैलादिरुवाच

इदं तु वैष्णवं स्तोत्रं सर्वपापप्रणाशनम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि क्षुपेण परिकीर्तितम्॥१९॥
श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति॥२०॥
सम्पूज्य चैवं त्रिदशेश्वराद्यैः स्तुत्वा स्तुतं देवमजेयमीशम्।
विज्ञापयामास निरीक्ष्य भक्त्या जनार्दनाय प्रणिपत्य मूर्ध्ना॥२१॥

राजोवाच

भगवन्ब्राह्मणः कश्चिद्दधीच इति विश्रुतः। धर्मवेत्ता विनीतात्मा सखा मम पुराभवत्॥२२॥

हे महाभुजाओं वाले!।।११।। हे मानवों के मोक्षदाता! हे महाभाग! हे अनिरुद्ध! हे महान विष्णु आप को सतत् प्रणाम।।१२।। हे विष्णु! आप का दिव्य अदृश्य आसन क्षीरसागर के मध्य तमस् से आवृत सहस्त्र फणधारी शेष के फण हैं। हे सुव्रत! इस आसन के नीचे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य ये चार पैर (पावे) हैं।।१३-१४।। सात पाताल आपके पाद हैं। पृथ्वी आपकी जाँघ है। सातों सागर आपके वस्त्र हैं और दिशाएँ आपकी महाभुजाएँ हैं। स्वर्ग आपका सिर है। आकाश आपकी नाभि है। वायु आपकी नाक है। सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। पुष्कर आदि आपके केश हैं। नक्षत्र, तारागण और द्यौ आपके कंठाभरण (गले का हार) हैं। हे देवेश! आप पुरुषोत्तम हैं। आप पूज्य हैं। मैं कैसे आपकी स्तुति करूँ? श्रद्धा से जो किया गया, सुना गया, जो कुछ प्रशंसात्मक रूप में कहा गया वह दिव्य-सा है। जो कुछ इष्ट है, हे स्वामी! वह आप क्षमा करें। आपको प्रणाम।।१५-१८।।

नन्दी बोले

यह विष्णु की स्तुति (वैष्णव स्तोत्र) सब पापों का नाश करने वाला है। क्षुप द्वारा की गयी स्तुति को जो पढ़ता है या सुनता है या ब्राह्मणों को सुनाता है, वह विष्णु लोक को जाता है। इस प्रकार क्षुप ने विश्वेश्वर आदि देवताओं द्वारा पूजित अज भगवान विष्णु की स्तुति की। भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करके राजा क्षुप ने निवेदन किया।।१९-२१।।

राजा बोले

"हे भगवन्! बहुत पहले दधीच नामक एक प्रसिद्ध धार्मिक और विनीत ब्राह्मण मेरा मित्र था। वह सदा शिव की पूजा में रत रहता था। वह किसी के द्वारा मारा नहीं जा सकता था। उसने भरी सभा में अपमानपूर्वक अपने

अवध्यः सर्वदा सर्वैः शंकरार्चनतत्परः। सावज्ञं वामपादेन स मां मूर्ध्नि सदस्यथ॥२३॥
ताडयामास देवेश विष्णो विश्वजगत्पते। उवाच च मदाविष्टो न बिभेमीति सर्वतः॥२४॥
जेतुमिच्छामि तं विप्रं दधीचं जगदीश्वर। यथा हितं तथा कर्तुं त्वमर्हसि जनार्दन॥२५॥

शैलादिरुवाच

ज्ञात्वा सोपि दधीचस्य ह्यवध्यत्वं महात्मनः। सस्मार च महेशस्य प्रभावमतुलं हरिः॥२६॥
एवं स्मृत्वा हरिः प्राह ब्रह्मणः क्षुतसंभवम्। विप्राणां नास्ति राजेंद्र भयमेत्य महेश्वरम्॥२७॥
विशेषाद्रुद्रभक्तानामभयं सर्वदा नृप। नीचानामपि सर्वत्र दधीचस्यास्य किं पुनः॥२८॥
तस्मात्तव महाभाग विजयो नास्ति भूपते। दुःखं करोमि विप्रस्य शापार्थं ससुरस्य मे॥२९॥
भविता तस्य शापेन दक्षयज्ञे सुरैः समम्। विनाशो मम राजेंद्र पुनरुत्थानमेव च॥३०॥
तस्मात्समेत्य विप्रेंद्रं सर्वयत्नेन भूपते। करोमि यत्नं राजेंद्र दधीचविजयाय ते॥३१॥

शैलादिरुवाच

श्रुत्वा वाक्यं क्षुपः प्राह तथास्त्विवति जनार्दनम्। भगवानपि विप्रस्य दधीचस्याश्रमं ययौ॥३२॥
आस्थाय रूपं विप्रस्य भगवान् भक्तवत्सलः। दधीचमाह ब्रह्मर्षिमभिवंद्य जगद्गुरुः॥३३॥

पैर से मेरे शरीर पर प्रहार किया। हे विष्णु! हे जगतपति! उसने गर्वपूर्वक कहा कि मैं कहीं भी किसी से नहीं डरता हूँ। हे जगदीश्वर! मैं उस ब्राह्मण दधीच को पराजित करना चाहता हूँ। हे विष्णु! मेरे कल्याण के लिए कृपया मेरी सहायता करें"।।२२-२५।।

विष्णु ने समझ लिया कि दधीच महात्मा अवध्य हैं। उन्होंने शिव के अतुल प्रभाव का स्मरण किया।।२६।। इस तरह स्मरण करते हुए विष्णु ने ब्रह्मा की छींक से उत्पन्न क्षुप से कहा। "हे राजेन्द्र! शिव भक्त ब्राह्मणों को किसी से कुछ भय नहीं रहता।।।२७।। विशेष करके शिव भक्त सर्वदा अभय रहते हैं।।२८।। निम्न व्यक्तियों के सम्बन्ध भी यह सत्य है। फिर दधीच जैसे ऋषि के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है। इसलिए हे राजा! तुम्हारे विजय की कोई आशा नहीं है फिर भी देवताओं सहित ब्राह्मण दधीच को अपने पर श्राप के लिए कुछ दुःख करता हूँ।।२९।। हे राजेन्द्र! दक्ष के यज्ञ में दधीच के श्राप से मैं और अन्य देवता गण नष्ट हो जायेंगे और फिर से जीवित होंगे।।३०।। अतः हे राजा! उस अग्रणी ब्राह्मण से सम्पर्क करके दधीच के ऊपर तुम्हारी विजय के लिए यत्न करता हूँ।।३१।।"

नन्दी बोले

इन शब्दों को सुनकर राजा क्षुप ने विष्णु से कहा। ऐसा ही हो। विष्णु देव भी ब्राह्मण दधीच के आश्रम को गये और कहा।।३२।। भक्त वत्सल भगवान ब्राह्मण का रूप धारण करके ब्रह्मर्षि दधीच को प्रणाम करके उनसे कहा।।३३।।

श्रीभगवानुवाच

भो भो दधीच ब्रह्मर्षे भवार्चनरताव्यय। वरमेकं वृणे त्वत्तस्तं भवान्दातुमर्हति॥३४॥
याचितो देवदेवेन दधीचः प्राह विष्णुना। ज्ञातं तवेप्सितं सर्वं न बिभेमि तवाप्यहम्॥३५॥
भवान् विप्रस्य रूपेण आगतोसि जनार्दन। भूतं भविष्यं देवेश वर्तमानं जनार्दन॥३६॥
ज्ञातं प्रसादाद्रुद्रस्य द्विजत्वं त्यज सुव्रत। आराधितोसि देवेश क्षुपेण मधुसूदन॥३७॥
जाने तवैनां भगवन्भक्तवत्सलतां हरे। स्थाने तवैषा भगवन्भक्तवात्सल्यता हरे॥३८॥
अस्ति चेद्भगवन् भीतिर्भवार्चनरतस्य मे। वक्तुमर्हसि यत्नेन वरदांबुजलोचन॥३९॥
वदामि न मृषा तस्मान्न बिभेमि जनार्दन। न बिभेमि जगत्यस्मिन् देवदैत्यद्विजादपि॥४०॥

नंद्युवाच

श्रुत्वा वाक्यं दधीचस्य तदास्थाय जनार्दनः। स्वरूपं सस्मितं प्राह संत्यज्य द्विजतां क्षणात्॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

भयं दधीच सर्वत्र नास्त्येव तव सुव्रत। भवार्चनरतो यस्माद्भवान् सर्वज्ञ एव च॥४२॥
बिभेमीति सकृद्वक्तुं त्वमर्हसि नमस्तव। नियोगान्मम विप्रेंद्र क्षुपं प्रति सदस्यथ॥४३॥
एवं श्रुत्वापि तद्वाक्यं सांत्वं विष्णोर्महामुनिः। न बिभेमीति तं प्राह दधीचो देवसत्तमम्॥४४॥

भगवान बोले

"हे ब्रह्मर्षि दधीच! शिव की पूजा में लीन भक्त मैं तुमसे एक वरदान माँगता हूँ। आप उसको देने के लिए योग्य हैं"।।३४।। देवेश भगवान विष्णु द्वारा इस प्रकार याचना करने पर दधीच ने विष्णु से कहा। "जो कुछ तुम चाहते हो वह मैंने जान लिया। मैं तुमसे भयभीत नहीं हूँ।।३५।। हे विष्णु! आप ब्राह्मण के वेष में मेरे पास आये हैं। रुद्र की कृपा से मैं भूत, भविष्य और वर्तमान की प्रत्येक वस्तु को जान लेता हूँ। हे विष्णु! हे देवताओं के स्वामी! हे सुव्रत! यह ब्राह्मण का रूप त्याग दो। हे मधुसूदन! हे देवेश! तुम राजा क्षुप के द्वारा आराधित हो।।३६-३७।। हे भगवान विष्णु! मैं तुम्हारी इस भक्त वत्सलता को जानता हूँ। हे विष्णु! अपने भक्त के प्रति आपका यह वात्सल्य भाव उचित ही है।।३८।। हे स्वामी! हे कमलनयन! हे वरदाता! शिव की पूजा में तत्पर मुझसे आपको भय है। यह आप स्पष्ट रूप से कहिए।।३९।। हे विष्णु! मैं झूठ नहीं कहता हूँ। मैं डरता नहीं हूँ। मैं इस संसार में देवता, दैत्य और ब्राह्मण से भी भयभीत नहीं हूँ"।।४०।।

नन्दी बोले

दधीच के वाक्य को सुनकर विष्णु ने एक क्षण में ही अपने ब्राह्मण के वेष को त्याग कर मुस्कराते हुए कहा।।४१।।

भगवान बोले

"हे सुव्रत दधीच! तुम्हें कहीं पर किसी से भय नहीं है क्योंकि तुम शिव की पूजा में लीन हो। अतः आप सर्वज्ञ भी हैं।।४२।। तुम एक बार कह दो कि मैं भयभीत हूँ। तुमको मेरा नमस्कार। मेरे कहने से सभा में आप क्षुप से कह दें कि "मैं भयभीत हूँ"।।४३।। विष्णु के इस प्रशंसापूर्ण वाक्य को सुनकर भी दधीच ने देवताओं

प्रभावाद्देवदेवस्य शंभोः साक्षात्पिनाकिनः। शर्वस्य शंकरस्यास्य सर्वज्ञस्य महामुनिः॥४५॥
ततस्तस्य मुनेः श्रुत्वा वचनं कुपितो हरिः। चक्रमुद्यम्य भगवान्दिधक्षुर्मुनिसत्तमम्॥४६॥
अभवत्कुंठिताग्रं हि विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम्। प्रभावाद्धि दधीचस्य क्षुपस्यैव हि सन्निधौ॥४७॥
दृष्ट्वा तत्कुंठिताग्रं हि चक्रं चक्रिणमाह सः। दधीचः सस्मितं साक्षात्सदसद्व्यक्तिकारणम्॥४८॥
भगवन् भवता लब्धं पुरातीव सुदारुणम्। सुदर्शनमिति ख्यातं चक्रं विष्णो प्रयत्नतः॥४९॥
भवस्यैतच्छुभं चक्र न जिघांसति मामिह। ब्रह्मास्त्राद्यैस्तथान्यैर्हि प्रयत्नं कर्तुमर्हसि॥५०॥

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दृष्ट्वा निर्वीर्यमायुधम्। ससर्ज च पुनस्तस्मै सर्वास्त्राणि समंततः॥५१॥
चक्रुर्देवास्ततस्तस्य विष्णोः साहाय्यमव्ययाः। द्विजेनैकेन योद्धुं हि प्रवृत्तस्य महाबलाः॥५२॥
कुशमुष्टिं तदादाय दधीचः संस्मरन्भवम्। ससर्ज सर्वदेवेभ्यो वज्रास्थिः सर्वतो वशी॥५३॥
दिव्यं त्रिशूलमभवत्कालाग्निसदृशप्रभम्। दग्धुं देवान्मतिं चक्रे युगांताग्निरिवापरः॥५४॥
इंद्रनारायणाद्यैश्च देवैस्त्यक्तानि यानि तु। आयुधानि समस्तानि प्रणेमुस्त्रिशिखं मुने॥५५॥
देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे ध्वस्तवीर्या द्विजोत्तम। ससर्ज भगवान् विष्णुः स्वदेहात्पुरुषोत्तमः॥५६॥
आत्मनः सदृशान्दिव्यांल्लक्षलक्षायुतान् गणान्। तानि सर्वाणि सहसा ददाह मुनिसत्तमः॥५७॥
ततो विस्मयनार्थाय विश्वमूर्तिरभूद्धरिः। तस्य देहे हरेः साक्षादपश्यद्विजसत्तमः॥५८॥

में श्रेष्ठ विष्णु से कहा। "मैं भयभीत नहीं हूँ"।।४४।। देवताओं के देवता पिनाकधारी सर्वज्ञ शिव के प्रभाव से महामुनि दधीच ने यह नहीं कहा कि मैं भयभीत हूँ।।४५।। मुनि की इस बात को सुनकर भगवान विष्णु कुपित हो गये। उन्होंने मुनियों में श्रेष्ठ दधीच को जलाने की इच्छा से चक्र को उठाया।।४६।। क्षुप के सामने ही दधीच की शक्ति से सुदर्शन चक्र का अग्रभाग कुण्ठित (गोंठ) हो गया।।४७।। चक्र के अग्रभाग को कुण्ठित देखकर व्यक्त और अव्यक्त के बीच में परम कारण चक्रधारी विष्णु से मुस्कुराते हुए दधीच ने कहा।।४८।। "हे भगवान विष्णु! पहले यह भयानक सुदर्शन चक्र आपने शिव से प्रयत्न करके प्राप्त किया था।।४९।। यह सुदर्शन चक्र मुझको कभी मार न सकेगा। आप मुझको मारने के लिये ब्रह्मास्त्र आदि अन्य अस्त्रों से प्रयत्न कर सकते हैं"।।५०।। उनकी बात को सुनकर और अपने अस्त्र (चक्र) को शक्तिहीन देखकर विष्णु ने चारों ओर सब अस्त्रों को दधीच पर छोड़ा (चलाया)।।५१।। महाबली देवताओं ने विष्णु की सहायता की जो कि अकेले ब्राह्मण के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे।।५२।। वज्र अस्थि वाले, जितेन्द्रिय दधीच ने एक मुट्ठी कुश लेकर शिव का स्मरण करते हुए सब देवताओं पर छोड़ दिया।।५३।। उसने कालाग्नि के समान प्रभा वाला दिव्य त्रिशूल बन कर देवताओं को जलाने का विचार किया।।५४।। हे मुनि! इन्द्र और अन्य देवताओं द्वारा छोड़े गये सब अस्त्रों ने त्रिशूल को प्रणाम किया। वे सब त्रिशूल के आगे झुक गये।।५५।। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! देवता लोग शक्तिहीन होकर भाग खड़े हुए। तब पुरुषोत्तम भगवान विष्णु ने अपने देह से अपने समान दिव्य लाखों गणों को उत्पन्न किया। वे सब अकस्मात् मुनि दधीच को एकाएक जलाने लगे।।५६-५७।। उसके बाद विष्णु मुनि को विस्मय

दधीचो भगवान्विप्रः देवतानां गणान् पृथक्। रुद्राणां कोटयश्चैव गणानां कोटयस्तदा॥५९॥
अंडानां कोटयश्चैव विश्वमूर्तेस्तनौ तदा। दृष्ट्वैतदखिलं तत्र च्यावनिर्विस्मितं तदा॥६०॥
विष्णुमाह जगन्नाथं जगन्मयमजं विभुम्। अंभसाभ्युक्ष्य तं विष्णुं विश्वरूपं महामुनिः॥६१॥
मायां त्यज महाबाहो प्रतिभासा विचारतः। विज्ञानानां सहस्राणि दुर्विज्ञेयानि माधव॥६२॥
मयि पश्य जगत्सर्वं त्वया सार्धमनिन्दित। ब्रह्माणं च तथा रुद्रं दिव्यां दृष्टिं ददामि ते॥६३॥
इत्युक्त्वा दर्शयामास स्वतनौ निखिलं मुनिः। तं प्राह च हरिं देवं सर्वदेवभवोद्भवम्॥६४॥
मायया ह्यनया किं वा मंत्रशक्त्याथ वा प्रभो।
वस्तुशक्त्याथ वा विष्णो ध्यानशक्त्याथ वा पुनः॥६५॥
त्यक्त्वा मायामिमां तस्माद्योद्धुमर्हसि यत्नतः। एवं तस्य वचः श्रुत्वा.दृष्ट्वा माहात्म्यमद्भुतम्॥६६॥
देवाश्च दुद्रुवुर्भूयो देवं नारायणं च तम्। वारयामास निश्चेष्टं पद्मयोनिर्जगद्गुरुः॥६७॥
निशम्य वचनं तस्य ब्रह्मणस्तेन निर्जितः। जगाम भगवान् विष्णुः प्रणिपत्य महामुनिम्॥६८॥
क्षुपो दुःखातुरो भूत्वा संपूज्य च मुनीश्वरम्। दधीचमभिवंद्याशु प्रार्थयामास विक्लवः॥६९॥
दधीच क्षम्यतां देव मयाऽज्ञानात्कृतं सखे। विष्णुना हि सुरैर्वापि रुद्रभक्तस्य किं तव॥७०॥
प्रसीद परमेशाने दुर्लभा दुर्जनैर्द्विज। भक्तिर्भक्तिमतां श्रेष्ठ मद्विधैः क्षत्रियाधमैः॥७१॥

में डालने के लिए विश्वमूर्ति हो गये। तब मुनि दधीच ने विष्णु के शरीर में साक्षात् स्पष्ट रूप से देवताओं के अनेक गणों को और रुद्रों के करोड़ों गणों के करोड़ों और करोड़ों अण्डों को विश्वमूर्ति (विष्णु के शरीर) में देखा। यह सब देखकर दधीच मुनि उस समय विस्मय में पड़ गये।।५८-६०।। महामुनि दधीच ने विश्वमूर्ति विष्णु के ऊपर जल छिड़का और उनसे कहा। "हे अज! विश्व के स्वामी! आप विश्व रूप हैं।।६१।। हे महाबाहु! इस माया को छोड़ो। हे विष्णु! मुझमें भी हजारों कठिनता से जानने के योग्य युक्तियाँ हैं जो कि विचार करने मात्र से प्रत्यक्ष प्रकट हो सकती हैं।।६२।। हे निंदा के अयोग्य भगवन्! आप मेरे भीतर भी अपने साथ सम्पूर्ण विश्व को, ब्रह्मा और रुद्र को देख सकते हैं। मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूँ"।।६३।। इस प्रकार कहकर मुनि ने अपने शरीर में सब कुछ दिखलाया। सब देवताओं के उद्भव स्थान के स्रोत विष्णु भगवान से दधीच ने फिर कहा।।६४।। "इस माया से इस मन्त्रशक्ति से इस वस्तुशक्ति या ध्यानशक्ति से क्या प्राप्त हो सकेगा (क्या मिलेगा)?।।६५।। इसलिए इस माया को छोड़कर यत्नपूर्वक मेरे साथ युद्ध करो।" उनके इन शब्दों को सुनकर उनके अद्भुत माहात्म्य को देखकर देवता लोग पुनः एक बार भाग खड़े हुए। जगत गुरु कमल से उत्पन्न भगवान विष्णु ने देवताओं को रोका।।६६-६७।। ब्रह्मा की बातों को सुनकर पराजित भगवान विष्णु महामुनि को प्रणाम करके वहाँ से चले गये।।६८।। राजा क्षुप ने दुःखी और विकल होकर मुनि दधीच को अभिवादन और पूजन करके प्रार्थना की।।६९।। "हे स्वामी! हे मित्र दधीच! मैंने यह सब अज्ञानवश किया है। आप क्षमा करें। आप रुद्र भक्त हैं। इसलिए विष्णु से या देवताओं से आप का कुछ बिगड़ नहीं सकता है।।७०।। हे परम स्वामी! आप प्रसन्न हो जायँ। हे ब्राह्मण! आप भक्तों में श्रेष्ठ हैं। आपकी शिव में दुर्लभ भक्ति है। हमारे समान

श्रुत्वानुगृह्य तं विप्रो दधीचस्तपतां वरः। राजानं मुनिशार्दूलः शशाप च सुरोत्तमान्॥७२॥
रुद्रकोपाग्निना देवाः सदेवेन्द्रा मुनीश्वरैः। ध्वस्ता भवंतु देवेन विष्णुना च समन्विताः॥७३॥
प्रजापतेर्मखे पुण्ये दक्षस्य सुमहात्मनः। एवं शप्त्वा क्षुपं प्रेक्ष्य पुनराह द्विजोत्तमः॥७४॥
देवैश्च पूज्या राजेंद्र नृपैश्च विविधैर्गणैः। ब्राह्मणा एव राजेंद्र बलिनः प्रभविष्णवः॥७५॥
इत्युक्त्वा स्वोटजं विप्रः प्रविवेश महाद्युतिः। दधीचमभिवंद्यैव जगाम स्वं नृपः क्षयम्॥७६॥
तदेव तीर्थमभवत्स्थानेश्वरमिति स्मृतम्। स्थानेश्वरमनुप्राप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥७७॥
कथितस्तव संक्षेपाद्विवादः क्षुब्दधीचयोः। प्रभावश्च दधीचस्य भवस्य च महामुने॥७८॥
य इदं कीर्तयेद्दिव्यं विवादं क्षुब्दधीचयोः। जित्वापमृत्युं देहांते ब्रह्मलोकं प्रयाति सः॥७९॥
य इदं कीर्त्य संग्रामं प्रविशेत्तस्य सर्वदा। नास्ति मृत्युभयं चैव विजयी च भविष्यति॥८०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे क्षुपदधीचिसंवादो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

अधम क्षत्रियों और दुष्टों से ऐसी भक्ति दुर्लभ है''।।७१।। तपस्वियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण दधीच मुनि ने उनकी इन बातों को सुनकर उन पर अनुग्रह करके देवताओं को श्राप दिया।।७२।। ''इन्द्र सहित तुम देवगण और भगवान विष्णु तथा सब मुनीश्वर भगवान रुद्र के क्रोध की अग्नि से महात्मा दक्ष के यज्ञ में भस्म हो जायँ।'' ऐसा श्राप देकर ब्राह्मणों में श्रेष्ठ दधीच ने क्षुप को देखकर फिर कहा।।७३-७४।। ''हे राजेन्द्र! ब्राह्मण ही देवताओं और लोगों के विभिन्न समूहों द्वारा पूज्य हैं। वे ब्राह्मण ही बलवान और शक्तिवान हैं''।।७५।। इतना कहकर के महान तेजस्वी ब्राह्मण दधीच अपने कुटी में चले गये। दधीच को प्रणाम कर राजा क्षुप भी अपने महल को चले गये।।७६।। वह स्थान जहाँ यह घटना हुई थी स्थानेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। स्थानेश्वर को पहुँचकर व्यक्ति शिव का सायुज्य प्राप्त करता है।।७७।। इस प्रकार मैंने क्षुप और दधीच के विवाद को दधीच और शिव के प्रभाव को आपको बताया।।७८।। जो व्यक्ति क्षुप और दधीच के दिव्य विवाद को पढ़ता है वह अकाल मृत्यु को जीतकर मरने के बाद ब्रह्म लोक को जाता है।।७९।। जो भी युद्ध क्षेत्र में इस विजय को पढ़कर प्रवेश करता है, उसको मृत्यु का भय नहीं होता और वह सदा विजयी होगा।।८०।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में क्षुप दधीच विवाद नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मणोवरप्रदानम्

सनत्कुमार उवाच

भवान्कथमनुप्राप्तो महादेवमुमापतिम्। श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं वक्तुमर्हसि मे प्रभो॥१॥

शैलादिरुवाच

प्रजाकामः शिलादोभूत्पिता मम महामुने। सोप्यंधः सुचिरं कालं तपस्तेपे सुदुश्चरम्॥२॥

तपतस्तस्य तपसा संतुष्टो वज्रधृक् प्रभुः। शिलादमाह तुष्टोस्मि वरयस्व वरानिति॥३॥

ततः प्रणम्य देवेशं सहस्राक्षं सहामरैः। प्रोवाच मुनिशार्दूल कृतांजलिपुटो हरिम्॥४॥

शिलाद उवाच

भगवन्देवतारिघ्न सहस्राक्ष वरप्रद। अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सुव्रत॥५॥

शक्र उवाच

पुत्रं दास्यामि विप्रर्षे योनिजं मृत्युसंयुतम्। अन्यथा ते न दास्यामि मृत्युहीना न संति वै॥६॥

न दास्यति सुतं तेऽत्र मृत्युहीनमयोनिजम्। पितामहोपि भगवान्किमुतान्ये महामुने॥७॥

सैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा को वरदान

सनत्कुमार बोले

उमा के पति महादेव को आपने कैसे प्राप्त किया है? हे प्रभु! इस सम्बन्ध में आप बताएँ। मैं सुनना चाहता हूँ।।१।।

शैलादि बोले

हे महामुनि! मेरे पिता शिलाद अन्धे थे। उन्होंने पुत्र की कामना से चिरकाल तक कठिन तपस्या की।।२।। उनकी तपस्या से वज्रधारी इन्द्रदेव प्रसन्न हो गये। उन्होंने शिलाद से कहा, "मैं प्रसन्न हूँ वर माँगो"।।३।। हे मुनि श्रेष्ठ! उन्होंने देवताओं के साथ देवेश सहस्राक्ष (हजार नेत्र वाले) इन्द्र को प्रणाम करके उनसे नम्रतापूर्वक कहा।।४।।

शिलाद बोले

'हे सुव्रत! हे देवताओं के शत्रु-नाशक, हे वरदायक! मैं अयोनि से उत्पन्न (स्वयंभू) मृत्यु रहित (अमर) पुत्र चाहता हूँ'।।५।।

इन्द्र बोले

'हे ब्रह्मर्षि! मैं तुम्हें योनि से उत्पन्न और मृत्यु से युक्त पुत्र को दूँगा अन्यथा नहीं।।६।। इस संसार में मृत्यु रहित व्यक्ति नहीं होते हैं। हे महामुनि! ब्रह्मा भी तुमको मृत्युहीन पुत्र अजोनिज पुत्र नहीं दे सकते। दूसरों की क्या

सोपि देवः स्वयं ब्रह्मा मृत्युहीनो न चेश्वरः। योनिजश्च महातेजाश्चाण्डजः पद्मसंभवः॥८॥
महेश्वरांगजश्चैव भवान्यास्तनयः प्रभुः। तस्याप्यायुः समाख्यातं परार्धद्वयसंमितम्॥९॥
कोटिकोटिसहस्राणि अहर्भूतानि यानि वै। समतीतानि कल्पानां तावच्छेषा परत्र ये॥१०॥
तस्मादयोनिजे पुत्रे मृत्युहीने प्रयत्नतः। परित्यजाशां विप्रेंद्र गृहाणात्मसमं सुतम्॥११॥

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा पिता मे लोकविश्रुतः। शिलाद इति पुण्यात्मा पुनः प्राह शचीपतिम्॥१२॥

शिलाद उवाच

भगवन्नंडयोनित्वं पद्मयोनित्वमेव च। महेश्वरांगयोनित्वं श्रुतं वै ब्रह्मणो मया॥१३॥
पुरा महेंद्रदायादाद्वदतश्चास्य पूर्वजात्। नारदाद्वै महाबाहो कथमत्राशु नो वद॥१४॥
दाक्षायणी सा दक्षोपि देवः पद्मोद्भवात्मजः। पौत्री कनकगर्भस्य कथं तस्याःसुतो विभुः॥१५॥

शक्र उवाच

स्थाने संशयितुं विप्र तव वक्ष्यामि कारणम्। कल्पे तत्पुरुषे वृत्तं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥१६॥
ससर्ज सकलं ध्यात्वा ब्रह्माणं परमेश्वरः। जनार्दनो जगन्नाथः कल्पे वै मेघवाहने॥१७॥
दिव्यं वर्षसहस्त्रं तु मेघो भूत्वावहद्धरम्। नारायणो महादेवं बहुमानेन सादरम्॥१८॥
दृष्ट्वा भावं महादेवो हरेः स्वात्मनि शंकरः। प्रददौ तस्य सकलं स्त्रष्टुं वै ब्रह्मणा सह॥१९॥

बात है।।७।। वे स्वयं (ब्रह्मा भी) मृत्यु हीन नहीं हैं वह एक अण्ड से पैदा हुए।।८।। महेश्वर से उत्पन्न वे उमा के पुत्र हैं। उनकी भी आयु सीमा दो परार्ध सीमित है।।९।। कल्प में हजारों और करोड़ों से उनका (ब्रह्मा) का दिन होता है। जो अभी तक शेष है।।१०।। इसलिए हे विप्रेन्द्र! अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र की कामना छोड़ दो। अपने समान एक पुत्र को स्वीकार करो'।।११।।

शैलादि बोले

उनकी उस बात को सुनकर संसार में प्रसिद्ध शिलादि ने इन्द्र से फिर कहा।।१२।।

शिलाद बोले

हे भगवन्! यह मैंने पहले ही सुना है कि ब्रह्मा एक अण्ड से पैदा हुए थे। वह कमल से और महेश्वर से उत्पन्न हुए थे।।१३।। हे इन्द्र! पहले नारद मेरे बड़े भाई, ऐसा कहते थे और मैंने उनसे यह सुना है लेकिन बतलाइए यह कैसे हुआ, दाक्षायिणी ब्रह्मा की पौत्री थी। इसलिए कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के दक्ष पुत्र थे। तब ब्रह्मा उनके पुत्र कैसे हुए?।।१४-१५।।

इन्द्र बोले

हे विप्र! तुम्हारा सन्देह अपने स्थान पर ठीक है। उसका कारण मैं तुमसे बताऊँगा जो कि तत्पुरुष कल्प में ब्रह्मा के साथ हुआ। सब चीजों पर विचार करते हुए परमेश्वर ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया। मेघवाहन कल्प में विष्णु जगत के स्वामी दिव्य हजारों वर्ष तक एक मेघ हो गये।।१६-१८।। महादेव ने अपनी ओर भगवान विष्णु का

तदा तं कल्पमाहुर्वै मेघवाहनसंज्ञया। हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा तस्य देहोद्भवस्तदा॥२०॥
जनार्दनसुतः प्राह तपसा प्राप्य शंकरम्। तव वामांगजो विष्णुर्दक्षिणांगभवो ह्यहम्॥२१॥
मया सह जगत्सर्वं तथाप्यसृजदच्युतः। जगन्मयोवहद्यस्मान्मेघो भूत्वा दिवानिशम्॥२२॥
भवंतमवहद्विष्णुर्देवदेवं जगद्गुरुम्। नारायणादपि विभो भक्तोहं तव शंकर॥२३॥
प्रसीद देहि मे सर्वं सर्वात्मत्वं तव प्रभो। तदाथलब्ध्वा भगवान् भवात्सर्वात्मतां क्षणात्॥२४॥
त्वरमाणोथ संगम्य ददर्श पुरुषोत्तमम्। एकार्णवालये शुभ्रे त्वन्धकारे सुदारुणे॥२५॥
हेमरत्नचिते दिव्ये मनसा च विनिर्मिते। दुष्प्राप्ये दुर्जनैः पुण्यैः सनकाद्यैरगोचरे॥२६॥
जगदावासहृदयं ददर्श पुरुषं त्वजः। अनंत भोगशय्यायां शायिनं पंकजेक्षणम्॥२७॥
शंखचक्रगदापद्मं धारयन्तं चतुर्भुजम्। सर्वाभरणसंयुक्तं शशिमंडलसन्निभम्॥२८॥
श्रीवत्सलक्षणं देवं प्रसन्नास्यं जनार्दनम्। रमामृदुकरांभोजस्पर्शरक्तपदांबुजम्॥२९॥
परमात्मानमीशानं तमसा कालरूपिणम्। रजसा सर्वलोकानां सर्गलीलाप्रवर्तकम्॥३०॥
सत्त्वेन सर्वभूतानां स्थापकं परमेश्वरम्। सर्वात्मानं महात्मानं परमात्मानमीश्वरम्॥३१॥
क्षीरार्णवेऽमृतमये शायिनं योगनिद्रया। तं दृष्ट्वा प्राह वै ब्रह्मा भगवन्तं जनार्दनम्॥३२॥
ग्रसामि त्वां प्रसादेन यथापूर्वं भवानहम्। स्मयमानस्तु भगवान् प्रतिबुध्य पितामहम्॥३३॥

भक्ति भाव देखकर ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्मा के आगे सृष्टि की उत्पत्ति का दायित्व सौंप दिया।।१९।। तब उस कल्प का नाम मेघवाहन हो गया। उन महेश्वर के शरीर से अपनी देह की उत्पत्ति देखकर वे शिव के पास पहुँचें और उनसे कहा, "हे स्वामी! आपके बाएँ अंग से विष्णु और दाहिने अंग से मैं उत्पन्न हुआ हूँ।।२०-२१।। फिर भी विष्णु ने मेरे साथ सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न किया। एक मेघ का रूप धारण करते हुए संसार के साथ देवताओं के स्वामी तुमको (इन्द्र) को दिन और रात उत्पन्न किया। हे स्वामी! मैं उनकी अपेक्षा आपका (शंकर का) अधिक भक्त हूँ। हे प्रभु! मुझ पर प्रसन्न होकर आप मुझको सर्वात्मत्व प्रदान कीजिये। तब ब्रह्मा ने शंकर जी से सर्वात्मकत्व पाकर जल्दी से जाकर अन्धकार से घिरे विस्तृत सागर में विष्णु द्वारा अपने मन से निर्मित था दिव्य स्वर्ण और रत्नों से युक्त भगवान विष्णु को देखा, जो दुर्जनों से दुष्प्राप्य और सनक आदि द्वारा अगोचर था।।२२-२६।। ब्रह्मा ने अपने हृदय में सम्पूर्ण जगत को आवास किये हुए, अनन्त शेषनाग के शरीर रूपी शय्या पर लेटे हुए, कमल के समान नेत्र, चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म पकड़े हुए, सब आभूषणों से भूषित, चन्द्रमण्डल के समान दीप्यमान, अपने वक्ष पर श्रीवत्स को धारण किये हुए, प्रसन्न मुख, लक्ष्मी के कर कमल के स्पर्श से लाल चरण वाले विष्णु को देखा। वह विष्णु ईशान और महान आत्मा थे। तमस् से वह काल रूप थे। रजस् से वह जगत की सृष्टि के प्रवर्तक थे। सत्त्व से वह सब प्राणियों के स्थापक थे। वह परमेश्वर थे। सबकी आत्मा थे। महान् आत्मा परमात्मा। योगनिद्रा से अमृतमय क्षीर सागर में लेटे हुए उनको ब्रह्मा ने देखकर उनसे कहा।।२७-३२।। "जैसे आप ने पहिले मुझको ग्रस (निगल) लिया था, शिव की कृपा से मैं भी अभी आप को ग्रस लूँगा। मुस्कुराते हुये विष्णु भगवान जाग कर आश्चर्य से ब्रह्मा को देखा और थोड़ा

उदैक्षत महाबाहुः स्मितमीषच्चकार सः। विवेश चांडजं तं तु ग्रस्तस्तेन महात्मना॥३४॥
ततस्तं चासृजद्ब्रह्मा भ्रुवोर्मध्येन चाच्युतम्। सृष्टस्तेन हरिः प्रेक्ष्य स्थितस्तस्याथ सन्निधौ॥३५॥
एतस्मिन्नंतरे रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः। विकृतं रूपमास्थाय पुरा दत्तवरस्तयोः॥३६॥
आगच्छद्यत्र वै विष्णुर्विश्वात्मा परमेश्वरः। प्रसादमतुलं कर्तुं ब्रह्मणश्च हरेः प्रभुः॥३७॥
ततः समेत्य तौ देवौ सर्वदेवभवोद्भवम्। अपश्यतां भवं देवं कालाग्निसदृशं प्रभुम्॥३८॥
तौ तं तुष्टुवतुश्चैव शर्वमुग्रं कपर्दिनम्। प्रणेमतुश्च वरदं बहुमानेन दूरतः॥३९॥
भवोपि भगवान् देवमनुगृह्य पितामहम्। जनार्दनं जगन्नाथस्तत्रैवांतरधीयत॥४०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ब्रह्मणो वरप्रदानं
नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

मुस्कुराये। ब्रह्मा द्वारा ग्रस लिये जाने पर विष्णु उन अण्डज ब्रह्मा के शरीर में प्रवेश कर (घुस) गये। तब ब्रह्मा ने भौहों के बीच में विष्णु को उत्पन्न किया। उनके द्वारा उत्पन्न होने पर विष्णु के समीप खड़े हो गये।।३३-३५।। इसी बीच सब देवों के जनक रुद्र जिन्होंने दोनों को वरदान दिया था विकृत रूप में (नग्न रूप में) वहाँ आ गये जहाँ वे दोनों (ब्रह्मा और विष्णु) थे। भगवान परमेश्वर विश्वात्मा ने उन दोनों को बहुत कृपा के साथ आशीर्वाद देना चाहा। तब दोनों ने भगवान शिव को कालाग्नि के समान (मृत्यु की अग्नि के समान) देखा। उलझे हुए बाल वाले (कपर्दी) की स्तुति किया और दूर से ही वरदानी उग्र रूपधारी शिव को प्रणाम किया। भगवान शिव विश्व के रक्षक ने ब्रह्मा और विष्णु को आशीर्वाद दिया और स्वयं वहीं पर अर्न्तधान हो गये।।३६-४०।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में ब्रह्मा को वर प्रदान
नामक सैतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

वैष्णवकथनम्

शैलादिरुवाच

गते महेश्वरे देवे तमुद्दिश्य जनार्दनः। प्रणम्य भगवान्प्राह पद्मयोनिमजोद्भवः॥१॥

श्रीविष्णुरुवाच

परमेशो जगन्नाथः शंकरस्त्वेष सर्वगः। आवयोरखिलस्येशः शरणं च महेश्वरः॥२॥
अहं वामांगजो ब्रह्मन् शंकरस्य महात्मनः। भवान् भवस्य देवस्य दक्षिणांगभवः स्वयम्॥३॥
मामाहुर्ऋषयः प्रेक्ष्य प्रधानं प्रकृतिं तथा। अव्यक्तमजमित्येवं भवंतं पुरुषस्त्विति॥४॥
एवमाहुर्महादेवमावयोरपि कारणम्। ईशं सर्वस्य जगतः प्रभुमव्ययमीश्वरम्॥५॥
सोपि तस्यामरेशस्य वचनाद्वारिजोद्भवः। वरेण्यं वरदं रुद्रमस्तुवत्प्रणनाम च॥६॥
अथाम्भसा प्लुतां भूमिं समाधाय जनार्दनः। पूर्ववत्स्थापयामास वाराहं रूपमास्थितः॥७॥
नदीनदसमुद्रांश्च पूर्ववच्चाकरोत्प्रभुः। कृत्वा चोर्वीं प्रयत्नेन निम्नोन्नतविवर्जिताम्॥८॥
धरायां सोचिनोत्सर्वान् भूधरान् भूधराकृतिः। भूराद्यांश्चतुरो लोकान् कल्पयामास पूर्ववत्॥९॥
स्रष्टुं च भगवाँश्चके मतिं मतिमतां वरः। मुख्यं च तैर्यग्योन्यं चं दैविकं मानुषं तथा॥१०॥

अड़तीसवाँ अध्याय

वैष्णव कथन

शैलादि बोले

जब शिव जी चले गये, तब ब्रह्मा के जनक भगवान विष्णु ने उस दिशा की ओर प्रणाम करके पद्मयोनि ब्रह्मा से कहा।।१।।

श्री विष्णु बोले

'भगवान शिव जगत के स्वामी हैं। वह सर्वव्यापी हैं। वह हम दोनों को और संसार को शरण देने वाले हैं।।२।। हे ब्रह्मा! मैं शिव के बाएँ अङ्ग से उत्पन्न हुआ हूँ। तुम उनके दाहिने अंग से उत्पन्न हुए हो।।३।। ऋषि लोग मुझको देखते हैं और कहते हैं कि मैं प्रधान हूँ, प्रकृति, अव्यक्त, और अज हूँ। वे तुमको पुरुष कहते हैं।।४।। वे महादेव को हम दोनों का शरण कहते हैं और सम्पूर्ण जगत के स्वामी कहते हैं। वह महादेव अव्यय हैं'।।५।। तब कमलयोनि ब्रह्मा ने भी विष्णु के ऐसा कहने के बाद श्रेष्ठ और वरदायक रुद्र की स्तुति की और प्रणाम किया।।६।। उसके बाद विष्णु ने वराह का रूप धारण किया और जल में डूबी हुई पूरी पृथ्वी को उठाकर पूर्ववत स्थापित कर दिया।।७।। उन्होंने बहुत प्रयत्न से पृथ्वी को समतल किया और नदी, नद और समुद्रों को पूर्ववत स्थिति में कर दिया।।८।। वराह रूप धारण करके भूमि को उठाने वाले भगवान विष्णु ने सब पर्वतों को

विभुश्चानुग्रहं तत्र कौमारकमदीनधीः। पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा॥११॥
सनातनं सतां श्रेष्ठं नैष्कर्म्येण गताः परम्। मरीचिभृग्वंगिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्॥१२॥
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोसृजद्योगविद्यया। संकल्पं चैव धर्मं च ह्यधर्मं भगवान्प्रभुः॥१३॥
द्वादशैव प्रजास्त्वेता ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। ऋभुं सनत्कुमारं च ससर्जादौ सनातनः॥१४॥
तौ चोर्ध्वरेतसौ दिव्यौ चाग्रजौ ब्रह्मवादिनौ। कुमारौ ब्रह्मणस्तुल्यौ सर्वज्ञौ सर्वभाविनौ॥१५॥
एवं मुख्यादिकान् सृष्ट्वा पद्मयोनिः शिलाशन। युगधर्मानशेषांश्च कल्पयामास विश्वसृक्॥१६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वैष्णवकथनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३८॥

एकत्र कर दिया। पहले की तरह भूः आदि चारों लोकों का निर्माण किया।।९।। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ भगवान ने मुख्य सृष्टि के निर्माण की इच्छा की। पशु जगत और उसके बाद दैविक और मानुष जगत की रचना करने का विचार किया। अपने समृद्ध बुद्धि से उन्होंने सज्जनों में श्रेष्ठ सनंद, सनक और सनातन कुमार की सृष्टि की। ये सब उन्होंने निष्काम भाव से अपनी योग विद्या से वशिष्ठ, मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, संकल्प, धर्म और अधर्म को उत्पन्न किया। इस प्रकार अव्यक्त ब्रह्मा ने से ये बारह पुत्र पैदा हुए। ब्रह्मा ने पहले ऋभु और सनत् कुमार को उत्पन्न किया जो दोनों ज्येष्ठ ब्रह्मवादी, ब्रह्मचारी और ब्रह्मा के समान हुए। इन सब मुख्यों को उत्पन्न करने के बाद हे शिलाशन! विश्व के स्रष्टा पद्मयोनि ब्रह्मा ने सम्पूर्ण युग धर्मों को बनाया।।१०-१६।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में वैष्णव कथन नामक
अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३८॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्युगानाम्विशिष्टधर्मः

शैलादिरुवाच

श्रुत्वा शक्रेण कथितं पिता मम महामुनिः। पुनः पप्रच्छ देवेशं प्रणम्य रचितांजलिः॥१॥

शिलाद उवाच

भगवन् शक्र सर्वज्ञ देवदेवनमस्कृत। शचीपते जगन्नाथ सहस्राक्ष महेश्वरः॥२॥
युगधर्मान्कथं चक्रे भगवान्पद्मसंभवः। वक्तुमर्हसि मे सर्वं सांप्रतं प्रणताय मे॥३॥

शैलादिरुवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिलादस्य महात्मनः। व्याजहार यथादृष्टं युगधर्मं सुविस्तरम्॥४॥

शक्र उवाच

आद्यं कृतयुगं विद्धि ततस्त्रेतायुगं मुने। द्वापरं तिष्यमित्येते चत्वारस्तु समासतः॥५॥
सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरं च रजस्तमः। कलिस्तमश्च विज्ञेयं युगवृत्तिर्युगेषु च॥६॥

उनतालीसवाँ अध्याय

चार युगों का विशिष्ट धर्म

शैलादि बोले

इन्द्र के कथन को सुनकर मेरे पिता महामुनि ने देवताओं के स्वामी को प्रणाम करके हाथ जोड़कर के उनसे फिर पूछा।।१।।

शिलाद बोले

हे इन्द्र! हे सर्वज्ञ! देवताओं के प्रमुखों द्वारा नमस्कृत! हे शचीपति! हे विश्व के स्वामी! हे हजारों नेत्र वाले! हे महेश्वर! कमलयोनि ब्रह्मा ने चारों युगों के विशिष्ट धर्मों को कैसे विकसित किया। इस समय आप के सामने नतमस्तक हम लोगों को यह सब बताइए।।२-३।।

शैलादि बोले

शैलादि की बात को सुनकर महानात्मा इन्द्र ने जैसा उन्होंने देखा था वैसा ही विस्तार रूप में युगों के धर्मों का वर्णन किया।।४।।

इन्द्र बोले

हे मुनि! यह जानो कि पहले कृत युग आता है। उसके बाद त्रेता आता है। उसके बाद द्वापर तब तृष्य (कलियुग) आता है। संक्षेप में ये चार युग हैं।।५।। कृत युग सत्त्व गुण प्रधान होता है, त्रेता राजस् गुण प्रधान होता है। द्वापर राजस् और तामस् मिश्रित होता है। कलि तामस् प्रधान होता है। अलग-अलग युगों के प्रत्येक

ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां यज्ञ उच्यते। भजनं द्वापरे शुद्धं दानमेव कलौ युगे॥७॥
चत्वारि च सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्। तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥८॥
चत्वारि च सहस्राणि मानुषाणि शिलाशन। आयुः कृतयुगे विद्धि प्रजानामिह सुव्रत॥९॥
ततः कृतयुगे तस्मिन् संध्यांशे च गते तु वै। पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सर्वतः॥१०॥
चतुर्भागैकहीनं तु त्रेतायुगमनुत्तमम्। कृतार्धं द्वापरं विद्धि तदर्धं तिष्यमुच्यते॥११॥
त्रिशती द्विशती संध्या तथा चैकशती मुने। संध्यांशकं तथाप्येवं कल्पेष्वेवं युगेयुगे॥१२॥
आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः सनातनः। त्रेता युगे त्रिपादस्तु द्विपादो द्वापरे स्थितः॥१३॥
त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेण धिष्ठितः। कृते तु मिथुनोत्पत्तिर्वृत्तिः साक्षाद्रसोल्लसा॥१४॥
प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सर्वानंदाश्चभोगिनः। अधमोत्तमता तासां न विशेषाः प्रजाः शुभाः॥१५॥
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन्कृते युगे। तासां प्रीतिर्न च द्वंद्वं न द्वेषो नास्ति च क्लमः॥१६॥
पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेताश्च यास्तु ताः। विशोकाः सत्त्वबहुला एकांतबहुलास्तथा॥१७॥
ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः। अप्रवत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः॥१८॥

युग में ये विशेष वृत्ति (गुणधर्म) जानना चाहिए।।६।। कृत युग में ध्यान सबसे बड़ा क्रिया-कलाप होता है। त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजा मुख्य क्रिया-कलाप और कलियुग में शुद्ध दान मुख्य क्रिया-कलाप होता है।।७।। कृत युग चार हजार दिव्य वर्षों का होता है। उतने ही चार हजार संध्या युग अर्थात त्रेता का सन्ध्यांश अर्थात द्वापर भी उतने ही वर्षों की अवधि का होता है।।८।। हे शिलाशन! हे सुव्रत! कृत युग में प्रजाओं की आयु चार हजार मानव वंशों की होती है।।९।। तब कृत युग अपने संध्याँश के साथ बीतने पर युग धर्म एक चौथाई घट जाता है।।१०।। उत्तम त्रेता युग कृत युग से एक चौथाई भाग बढ़ जाता है। द्वापर युग की अवधि कृत युग की आधी होती है। उसका आधा कलयुग कहलाता है।।११।। हे मुनि! सन्ध्या काल क्रमशः तीन हजार, दो हजार और एक हजार वर्षों के होते हैं। सन्ध्यांश काल भी वैसे होते हैं। इसी प्रकार सब कल्पों और युगों में होता है।।१२।। कृत युग में धर्म के चार पाद (पैर) त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलयुग तीनों पदों से हीन केवल सत्ता मात्र से खड़ा होता है। कृत में उत्पत्ति दो से (मिथुन) होती है और उनकी वृत्ति रस (स्वाद) और प्रसन्नता युक्त होती है।।१३-१४।। वे सब सदा सन्तुष्ट रहते हैं। वे सब आनन्द का उपभोग करते हैं। उनमें उत्तमता और अधमता नहीं होती है। प्रजाओं में विशेष विशिष्ट गुणधर्म नहीं होते हैं। वे सब शुभ होते हैं।।१५।। आयु, सुख और रूप कृत युग में सब लोगों में समान होते हैं। उनमें विशेष चाह नहीं होती। आपस में स्त्री पुरुषों में द्वन्द, द्वेष और क्लेश नहीं होता है।।१६।। उनके रहने के घर नहीं होते। वे पहाड़ों पर समुद्रों के द्वीपों में रहते हैं। फिर भी वे शोक रहित होते हैं। वे अधिकाँश सत्त्वगुणों से युक्त होते हैं और एकान्त प्रिय होते हैं। वे बिना किसी खास इच्छाओं के इधर-उधर घूमते रहते हैं। वे अपने मन से प्रसन्न रहते हैं। उनकी अशुभ और पाप कर्मों में वृत्ति नहीं होती है। उस समय जातियों और आश्रमों की व्यवस्था नहीं थी अर्थात् समाज में जाति-पाँति और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि का विभाजन नहीं हुआ था। हे ब्राह्मण! त्रेता युग में उनका रस और उल्लास (आनन्द और प्रसन्नता) समय

वर्णाश्रमव्यवस्था च तदासीन्न च संकरः। रसोल्लासः कालयोगात्त्रेताख्ये नश्यते द्विज॥१९॥
तस्यां सिद्धौ प्रनष्टायामन्या सिद्धिः प्रजायते। अपां सौक्ष्म्ये प्रतिगते तदा मेघात्मना तु वै॥२०॥
मेघेभ्यस्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम्। सकृदेव तथा वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले॥२१॥
प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः। सर्ववृत्त्युपभोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते॥२२॥
वर्तयंति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः। ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात्॥२३॥
रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत्। विपर्ययेण तासां तु तेन तत्कालभाविना॥२४॥
प्रणश्यंति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः। ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रांता मैथुनोद्भवाः॥२५॥
अपि ध्यायंति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा। प्रादुर्बभूवुस्तासां तु वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः॥२६॥
वस्त्राणि ते प्रसूयंते फलान्याभरणानि च। तेष्वेव जायते तासां गंधवर्णरसान्वितम्॥२७॥
अमाक्षिकं महावीर्यं पुटकेपुटके मधु। तेन ता वर्तयंति स्म सुखमायुः सदैव हि॥२८॥
हृष्टपुष्टास्तया सिद्ध्या प्रजा वै विगतज्वराः। ततः कालांतरेणैव पुनर्लोभावृतास्तु ताः॥२९॥
वृक्षांस्तान्पर्यगृह्णंति मधु वा माक्षिकं बलात्। तासां तेनोपचारेण पुनर्लोभकृतेन वै॥३०॥
प्रनष्टा मधुना सार्धं कल्पवृक्षाः क्वचित्क्वचित्।
तस्यामेवाल्पशिष्टायां सिद्ध्यां कालवशात्तदा॥३१॥
आवर्त्तनात्तु त्रेतायां द्वंद्वान्यभ्युत्थितानि वै। शीतवर्षातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिता भृशम्॥३२॥
द्वंद्वैः संपीड्यमानाश्च चक्रुरावरणानि तु। कृतद्वंद्वप्रतीघाताः केतनानि गिरौ ततः॥३३॥

के साथ समाप्त हो गया।।१७-१९।। जब सिद्धि समाप्त होती है तो दूसरी सिद्धि उत्पन्न होती है। जब जल सूक्ष्म हो जाता है तो मेघों के रूप में बदल जाता है। घड़घड़ाते बादलों से वर्षा होने लगती है। पृथ्वी के एक बार वृष्टि से तर हो जाने पर वृक्ष दिखायी पड़ते हैं। वे ही वृक्ष उनके घर (आवास) बन जाते हैं। लोग उन्हीं के नीचे रहकर सब वृत्तियों का उपभोग करते हैं।।२०-२२।। त्रेता के प्रारम्भ में लोग उन सुविधाओं से वंचित हो गये। लम्बे समय के बाद जब परिवर्तन हुआ, तो आपस में राग और लोभ भाव एकाएक पैदा हुआ। वृक्ष जो उनके निवास स्थान या घर थे उनका नाश होना प्रारम्भ हुआ। जब वे नष्ट हुए तो स्त्री और पुरुषों के संयोग से उत्पन्न वे लोग विभ्रांत हो गये। उसके बाद वे लोग पदार्थ की ओर झुके क्योंकि वे लोग अपने विचार में सत्यवादी थे, अतः वृक्ष फिर उत्पन्न हुए।।२३-२६।। वे वृक्ष वस्त्र, फल और आभूषण उत्पन्न करने लगे। उन्हीं वृक्षों के प्रत्येक परत से वर्ण, गंध और रस से युक्त, बिना मधुमक्खी के शक्तियुक्त मधु उत्पन्न होने लगा और लोगों को मिलने लगा। उससे वे लोग अपना जीवन सदा सुखपूर्वक बिताने लगे।।२७-२८।। वे लोग हृष्ट-पुष्ट थे। उस सिद्धि (प्राप्ति) से वे निश्चिन्त थे। कालान्तर (कुछ काल के बाद) में वे लोभी हो गये।।२९।। उन्होंने वृक्षों को काटकर बलपूर्वक (जबरर्दस्ती) मधु लेना प्रारम्भ किया। उनके दुर्व्यवहार से उनके लोभ से कुछ स्थानों में मधु के साथ कल्पवृक्ष नष्ट हो गये। उस समय काल के वश से कुछ बची हुई सिद्धियाँ जीवित रहीं अर्थात् कुछ वृक्षों से मधु प्राप्त होते रहे। त्रेता के आवर्तन होने पर पति पत्नी में द्वन्द, राग, द्वेष परस्पर विवाद उठ खड़ा हुआ। तब घनघोर वर्षा और तेज धूप से लोग अधिक दुःखी होने लगे।।३०-३२।। जब वे लोग द्वन्दों से पीड़ित (परेशान) हुए

पूर्वं निकामचारास्ता ह्यनिकेता अथावसन्। यथायोगं यथाप्रीति निकेतेष्ववसन्पुनः॥३४॥
कृत्वा द्वंद्वोपघातांस्तान्वृत्त्युपायमचिंतयन्। नष्टेषु मधुना सार्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा॥३५॥
विवादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः। ततः प्रादुर्बुभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः॥३६॥
वार्तायाः साधिकाप्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः।
तासां वृष्ट्युदकादीनि ह्यभवन्निम्नगानि तु॥३७॥
अभवन्वृष्टिसंतत्या स्त्रोतस्थानानि निम्नगाः। एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्जने॥३८॥
ये पुनस्तदपां स्तोकाः पतिताः पृथिवीतले। अपां भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन्॥३९॥
अथाल्पकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश। ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे॥४०॥
प्रादुर्भूतानि चैतानि वृक्षजात्यौषधानि च। तेनौषधेन वर्तंते प्रजास्त्रेता युगे तदा॥४१॥
ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः। अवश्यं भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन च॥४२॥
ततस्ताः पर्यगृह्णंत नदीक्षेत्राणि पर्वतान्। वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम्॥४३॥
विपर्ययेण चौषध्यः प्रनष्टास्ताश्चतुर्दश। मत्वा धरां प्रविष्टास्ता इत्यौषध्यः पितामहः॥४४॥
दुदोह गां प्रयत्नेन सर्वभूतहिताय वै। तदाप्रभृति चौषध्यः फालकृष्टास्त्वितस्ततः॥४५॥
वार्ता कृषिं समायाता वर्तुकामाः प्रयत्नतः। वाता वृत्तिः समाख्याता कृषिकामप्रयत्नतः॥४६॥

तो अपने शरीरों को ढकने के लिए वस्त्रों को बनाया। तब उन्होंने पहाड़ों पर द्वन्दों से बचने के लिए निवास बनाया।।३३।। पहले वे इच्छानुसार बेघर होकर इधर-उधर घूमते थे। उनके निश्चित घर नहीं थे। अब वे अपनी सुविधा और प्रसन्नता के अनुसार घरों में रहने लगे।।३४।। द्वन्दों के विरोध में सुरक्षात्मक उपाय करने के बाद वे अपनी जीविका के साधन के विषय में सोचने लगे। जब कल्प वृक्ष मधु के साथ नष्ट हो गये तब भूख प्यास से दुःखित वे परस्पर विवाद के कारण व्याकुल हो गये। त्रेता युग में फिर नयी सिद्धियाँ दृष्टि में आयीं।।३५-३६।। उनके उत्पादन के लिए जितना वर्षा वे चाहते थे या आवश्यकता थी उससे अधिक वर्षा होने लगी। भारी वर्षा के कारण जल द्वारा ढाल तक भर गये।।३७।। लगातार वर्षा के कारण जल के स्त्रोत स्थानों में जल ऊपर भर गया। उसके बाद की दूसरी वृष्टि होने पर नदियाँ और झरने उफनने लगे।।३८।। पृथ्वी पर जो पानी संग्रह के छोटे बड़े गड्ढे थे उनका जल भी भूमि पर फैल गया। पृथ्वी और जल के इस प्रकार संयोग से पौधे और झाड़ियाँ भी सराबोर हो गयीं।।३९।। तब वृक्ष और औषधियाँ उत्पन्न हुईं। उनमें से कुछ पर ही खेती हुई (जोताई हुई)। बहुत कम भूमि बोयी गई। ग्रामीण और वन क्षेत्रों में वृक्षों और घासों के चौदह प्रकार पैदा हुए। ऋतु के अनुसार फूल और फल उन वृक्षों और लताओं में पैदा हुए। अनेक प्रकार के वृक्ष और औषधियों के पौधे भी उत्पन्न हुए। त्रेता युग के उस काल में लोग खुद उन्हीं से निर्वाह करते रहे।।४०-४१।। त्रेता युग के वश से और अवश्यम्भावी अर्थ से लोग फिर रोगी, द्वेषी और लोभी हो गये।।४२।। तब लोगों ने पहाड़ पर और नदियों के किनारे मैदानों पर जबरदस्ती कब्जा करना प्रारम्भ किया।।४३।। वे चौदह औषधियाँ इस उलट फेर में (आपाधापी में) नष्ट हो गयीं। यह सोचकर की वे औषधियाँ पृथ्वी पर प्रवेश कर गयीं ब्रह्मा ने सब जीवों के कल्याण के लिए पृथ्वी को दुहा। तब से इधर-उधर औषधियाँ हल के फाल से जोती जाने लगी।।४४-४५।। तब जो

अन्यथा जीवितं तासां नास्ति त्रेतायुगात्यये। हस्तोद्भवा ह्यपश्चैव भवंति बहुशस्तदा॥४७॥
तत्रापि जगृहुः सर्वे चान्योन्यं क्रोधमूर्च्छिताः। सुतदारधनाद्यांस्तु बलाद्युगबलेन तु॥४८॥
मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वा तदखिलं विभुः। ससर्ज क्षत्रियांस्त्रातुं क्षतात्कमलसंभवः॥४९॥
वर्णाश्रमप्रतिष्ठां च चकार स्वेन तेजसा। वृत्तेन वृत्तिना वृत्तं विश्वात्मा निर्ममे स्वयम्॥५०॥
यज्ञप्रवर्तनं चैव त्रेतायामभवत्क्रमात्। पशुयज्ञं न सेवंते केचित्तत्रापि सुव्रताः॥५१॥
बलाद्विष्णुस्तदा यज्ञमकरोत्सर्वदृक् क्रमात्। द्विजास्तदा प्रशंसंति ततस्त्वाहिंसकं मुने॥५२॥
द्वापरेष्वपि वर्तंते मतिभेदास्तदा नृणाम्। मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिध्यति॥५३॥
तदा तु सर्वभूतानां कायक्लेशवशात्क्रमात्। लोभो भृतिर्वणिग्युद्धं तत्वानामविनिश्चयः॥५४॥
वेदशाखाप्रणयनं धर्माणां संकरस्तथा। वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च॥५५॥
द्वापरे तु प्रवर्तंते रागो लोभो मदस्तथा। वेदो व्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु॥५६॥
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते। संक्षयादायुषश्चैव व्यस्येते द्वापरेषु सः॥५७॥
ऋषिपुत्रैः पुनर्भेदा भिद्यंते दृष्टिविभ्रमैः। मंत्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः॥५८॥
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यंते मनीषिभिः। सामान्या वैकृताश्चैव द्रष्टृभिस्तैः पृथक्पृथक्॥५९॥

अपने आप कृषि कार्य के इच्छुक थे उन्होंने खेती को अपना लिया। वार्ता शब्द का अर्थ वृत्ति है। इस प्रसंग में खेती के लिए इच्छा और प्रयत्न है।।४६।। नहीं तो, त्रेता के अन्त में, लोगों के पास जीविका का कोई साधन नहीं था। तब सामान्य रूप में जल हाथ से ही ऊपर उठाया जाय (उलचा जाय)।।४७।। उस त्रेता युग में क्रोध से मूर्छित लोग एक दूसरे को पकड़ते थे। यहाँ तक कि उनके पुत्रों, स्त्रियों, धन आदि को जबरजस्ती छीनते थे। उस युग का यह धर्म (लक्षण) हो गया।।४८।। यह सब जानकर भगवान ब्रह्मा ने मर्यादा की रक्षा के लिए और हर प्रकार के छल से बचाने के लिए क्षत्रियों को पैदा किया और आचरण के नियमों को स्थापित किया।।४९।। अपने तेज से ब्रह्मा ने वर्ण और आश्रम को स्थापित किया अर्थात् जातियाँ बनायी और चार आश्रम निर्धारित किये। विश्व के आत्मा ब्रह्मा ने तब लोगों के प्रत्येक जाति के लिए वृत्ति और जीवन के आचरण को बनाया।।५०।। त्रेता युग में यज्ञों की वृत्ति का धीरे-धीरे विकास हुआ। हे सुव्रत! फिर भी पशु यज्ञ नहीं होते थे।।५१।। विष्णु तब जबरजस्ती यज्ञ करते थे। हे मुनि! इसलिए ब्राह्मण लोग अहिंसक यज्ञ की प्रशंसा करते थे।।५२।। द्वापर में भी लोग मन, कर्म और वाणी से मतभेद रखते थे। उस युग में बड़ी कठिनाई से कृषि कार्य होता रहा।।५३।। तब सब प्राणियों का शरीर के क्लेश के कारण अपने शरीर पर जोर पड़ा। लाभ मजदूरी के आधार पर सेवा, व्यापार युद्ध और तत्त्वों के विषय में अनिश्चय वेदों का विभाजन और धर्मों का शंकर वर्णाश्रम व्यवस्था का पतन (नाश) काम और द्वेष-उस युग के विशेष रूप से थे।।५४-५५।। द्वापर युग में राग, लोभ और मद व्याप्त था तथा व्यास द्वारा चार प्रकार से वेद का वर्गीकरण हुआ।।५६।। वेद त्रेता में एक था। उसको चार अनुभागों में किया गया। तब से द्वापर आदि में आयु कम और उससे कम हुई। द्वापर में वेदों का वर्गीकरण हुआ।।५७।। ऋषि पुत्रों के दृष्टि के विभ्रम से वे फिर अलग किये गये। जब मन्त्र और ब्राह्मण के विन्यासों, वर्ण विपर्यय के क्रम से अलगाव हुआ। ऋग्, यजुः, साम वेद की संहिताएँ मनीषियों द्वारा सम्पादित की गयीं।

ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मंत्रप्रवचनानि च।
अन्ये तु प्रस्थितास्तान्वै केचित्तान्प्रत्यवस्थिताः॥६०॥
इतिहासपुराणानि भिद्यंते कालगौरवात्। ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा॥६१॥
भविष्यं नारदीयं च मार्कंडेयमतः परम्। आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गं वाराहमेव च॥६२॥
वामनाख्यं ततः कूर्मं मात्स्यं गारुडमेव च। स्कांदं तथा च ब्रह्माण्डं तेषां भेदः प्रकथ्यते॥६३॥
लैङ्गमेकादशविधं प्रभिन्नं द्वापरे शुभम्। मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः॥६४॥
यमापस्तंबसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती। पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ॥६५॥
शातातपो वसिष्ठश्च एवमाद्यैः सहस्त्रशः। अवृष्टिर्मरणं चैव तथा व्याध्याद्युपद्रवाः॥६६॥
वाङ्मनःकर्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते ततः। निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा॥६७॥
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम्। दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसंभवः॥६८॥
एषा रजस्तमोयुक्ता वृत्तिर्वै द्वापरे स्मृता। आद्ये कृते तु धर्मोस्ति स त्रेतायां प्रवर्तते॥६९॥
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे॥७०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

यद्यपि मूल पाठ सामान्य है, फिर भी अलग-अलग दृष्टिकोणों के कारण उनमें अलगाव किया गया।।५८-५९।। वेदों के अलग-अलग अनुभाग विकसित हुए, जैसे—ब्राह्मण, कल्पसूत्र, और मन्त्र प्रवचन। कुछ उनसे अलग किये गये और कुछ उसी में रखे गये।।६०।। इतिहास और पुराण काल के गौरव से (समयानुसार) रखे गये। वे परस्पर भिन्न हैं। ब्राह्म पाद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, ब्रह्मवैवर्त्त, लिंग, वराह, वामन, कूर्म, मात्स्य, गारुड, स्कान्द और ब्रह्माण्ड ये अठारह पुराण हैं।।६१-६३।। ग्यारहवाँ लिंगपुराण द्वापर में वर्गीकृत किया गया।। मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति, पाराशर (व्यास), शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, वसिष्ठ, आदि हजारों मुनियों ने स्मृतियों को लिखा।।६४-६५।। अवृष्टि, मृत्यु और रोग आदि उपद्रन्दों, वाणी, मन और कर्म से उत्पन्न दुःखों से निर्वेद पैदा होता है। इससे उनके मन में दुःख से मुक्ति पाने का विचार पैदा हुआ। विचार से वैराग्य और वैराग्य से जगत में दोष देखना और दोष देखने से द्वापर में ज्ञान सम्भव होता है। यह रज और तमस् गुणों के मिश्रण की वृत्ति (व्यवहार) है। कृतयुग में धर्म रहता है। वह त्रेता में यह कार्य करता है। द्वापर में धीरे-धीरे व्याकुल होकर कलियुग में नष्ट हो जाता है।।६६-७०।।

श्रीलिंगमहापुराण के प्रथम भाग में चार युगों का विशिष्ट धर्म
नामक उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्युगपरिमाणम्

शक्र उवाच

तिष्ये मायामसूयां च वधं चैव तपस्विनाम्। साधयंति नरास्तत्र तमसा व्याकुलेन्द्रियाः॥१॥
कलौ प्रमादको रोगः सततं क्षुद्भयानि च। अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः॥२॥
न प्रामाण्यं श्रुतेरस्ति नृणां चाधर्मसेवनम्। अधार्मिकास्त्वनाचारा महाकोपाल्पचेतसः॥३॥
अनृतं ब्रुवते लुब्धास्तिष्ये जाताश्च दुष्प्रजाः। दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः॥४॥
विप्राणां कर्म दोषेण प्रजानां जायते भयम्। नाधीयन्ते तदा वेदान्न यजंति द्विजातयः॥५॥
उत्सीदंति नराश्चैव क्षत्रियाश्च विशः क्रमात्। शूद्राणां मंत्रयोगेन संबंधो ब्रह्मणैः सह॥६॥
भवतीह कलौ तस्मिञ्शयनासनभोजनैः। राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान् बाधयंति ते॥७॥
भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायंते प्रजासु वै। शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः॥८॥
राजवृत्तिस्थिताश्चौराश्चौराचाराश्च पार्थिवाः। एकपत्न्यो न शिष्यंति वर्धिष्यंत्यभिसारिकाः॥९॥
वर्णाश्रमप्रतिष्ठानो जायते नृषु सर्वतः। तदा स्वल्पफला भूमिः क्वचिच्चापि महाफला॥१०॥

चालीसवाँ अध्याय

चतुर्युग का परिमाण

इन्द्र बोले

कलियुग में लोग तमोगुण से व्याकुल होकर माया, द्वेष, ईर्ष्या से व्याकुल होते हैं। वे तपस्वियों की हत्या करने में भी आगा-पीछा नहीं सोचते। वे हमेशा ईर्ष्या से भरे रहते हैं।।१।। कलियुग में आलस्य, रोग, भूख और भय तथा वर्षा न होने (अकाल) का भय होता है। देश के अलग-अलग भागों में विद्रोह और उलटफेर होता है।।२।। वेदों को प्रमाण नहीं माना जाता है। लोग, पाप-पुण्य क्रिया-कलाप में लगे रहते हैं। अधर्म का सेवन करते हैं। लोग, पापी, आचारहीन और संकीर्ण विचार वाले तथा महाक्रोधी होते हैं।।३-४।। ब्राह्मणों के दोषपूर्ण क्रिया-कलापों से प्रजाओं में भय उत्पन्न होता है। ब्राह्मण वेदों की पढ़ने की उपेक्षा करते हैं और निर्धारित यज्ञ भी नहीं करते।।५।। लोग विनाश को प्राप्त होते हैं। क्रम से क्षत्रिय और ब्राह्मण भी पतित होने लगते हैं। कलियुग में शूद्र लोग शयन, आसन और भोजन से ब्राह्मणों में अपने शिक्षा के द्वारा सम्बन्ध जोड़ने का दावा करते हैं। राजा लोग अधिकतर शूद्र होते हैं वे मिलकर ब्राह्मणों को तंग करते हैं (बाधा) पहुचाते हैं।।६-७।। प्रजा में भ्रूण हत्या और वीरों की हत्या होने लगती है। ब्राह्मणों के लिए निर्धारित आचार को शूद्र अपनाते हैं और ब्राह्मण शूद्रों के आचार को अपनाते हैं।।८।। चोर लोग राजाओं की तरह काम करते हैं और राजा लोग चोरों की तरह वृत्ति ग्रहण करते हैं। एक पत्नी व्रत रुक जाता है अर्थात् स्त्रियाँ पतिव्रता कम होती हैं और अभिसारिकाएँ संख्या में बढ़ जाती हैं।।९।। सब स्थानों से वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था गायब हो जाती है। इस समय भूमि कहीं पर

अरक्षितारो हर्तारः पार्थिवाश्च शिलाशन। शूद्रा वै ज्ञानिनः सर्वे ब्राह्मणैरभिवंदिताः॥११॥
अक्षत्रियाश्च राजानो विप्राः शूद्रोपजीविनः। आसनस्था द्विजान्दृष्ट्वा न चलंत्यल्पबुद्धयः॥१२॥
ताडयंति द्विजेन्द्रांश्च शूद्रा वै स्वल्पबुद्धयः। आस्ये निधाय वै हस्तं कर्णं शूद्रस्य वै द्विजाः॥१३॥
नीचस्येव तदा वाक्यं वदंति विनयेन तम्। उच्चासनस्थान् शूद्रांश्च द्विजमध्ये द्विजर्षभ॥१४॥
ज्ञात्वा न हिंसते राजा कलौ कालवशेन तु। पुष्पैश्च वासितैश्चैव तथान्यैर्मंगलैः शुभैः॥१५॥
शूद्रानभ्यर्चयंत्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः। न प्रेक्षंते गर्विताश्च शूद्रा द्विजवरान् द्विज॥१६॥
सेवावसरमालोक्य द्वारे तिष्ठंति वै द्विजाः। वाहनस्थान् समावृत्य शूद्राञ्शूद्रोपजीविनः॥१७॥
सेवंते ब्राह्मणास्तत्र स्तुवंति स्तुतिभिः कलौ। तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः॥१८॥
यतयश्च भविष्यंति बहवोस्मिन्कलौ युगे। पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं युगांते समुपस्थिते॥१९॥
निन्दन्ति वेदविद्यां च द्विजाः कर्माणि वै कलौ। कलौ देवो महादेवः शंकरो नीललोहितः॥२०॥
प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः। ये तं विप्रा निषेवंते येन केनापि शंकरम्॥२१॥
कलिदोषान् विनिर्जित्य प्रयांति परमं पदम्। श्वापदप्रबलत्वं च गवां चैव परिक्षयः॥२२॥
साधूनां विनिवृत्तिश्च वेद्या तस्मिन्युगक्षये। तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुर्लभो दानमूलवान्॥२३॥

बहुत कम और कहीं पर बहुत फल देती है।।१०।। हे शिलाशन! राजा लोग प्रजा के रक्षक नहीं बल्कि उनकी सम्पत्ति और प्राण के हरण करने वाले होते हैं। शूद्र लोग ज्ञानी होते हैं। वे ब्राह्मणों द्वारा सम्मानित होते हैं।।११।। अक्षत्रिय लोग राजा होते हैं। ब्राह्मण शूद्रों पर निर्भर (आश्रित) होते हैं। अपने आसन पर बैठे हुए मूर्ख शूद्र लोग ब्राह्मणों को देखकर नहीं उठते हैं।।१२।। अल्प बुद्धि वाले शूद्र श्रेष्ठ ब्राह्मणों को मारते (ताड़ना देते) हैं। ब्राह्मण लोग अपने हाथ को अपने मुँह पर रखकर नीच शूद्रों के कानों में फुसफुसाते हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! ब्राह्मणों के बीच में ऊँचे स्थान (सीट) पर बैठे हुए शूद्रों को जानकर भी राजा कलियुग में कालवश उनको दण्ड नहीं देते हैं। कम पढ़े-लिखे, भाग्य और बल से युक्त पुष्प, गंध तथा शुभ वस्तुओं से शूद्रों की पूजा करते हैं। हे द्विज! अभिमानी शूद्र श्रेष्ठ ब्राह्मणों की ओर ताकते भी नहीं। ब्राह्मण लोग सेवा का अवसर देखकर शूद्रों के द्वार पर खड़े रहते हैं। कलियुग में शूद्रों के सहारे जीने वाले ब्राह्मण, वाहनों पर चढ़े हुए शूद्रों को जब वे अपने वाहनों पर सवार होकर लौट रहे हों, तो स्तुतियों से उनकी स्तुति करते हैं। कलियुग में ब्राह्मण लोग अपनी तपस्या और यज्ञ के फल को बेचने वाले होते हैं।।१३-१८।। कलियुग में सन्यासी बहुत होंगे। कलियुग के अन्त होने के समय पुरुषों की संख्या कम और अनुपात में स्त्रियों की संख्या अधिक होगी। कलियुग में यहाँ तक कि ब्राह्मण लोग वेद विद्या और यज्ञ आदि कर्मों की निंदा करेंगे। कलि में महादेव, शंकर, नीललोहित अपने को प्रतिष्ठा पाने के लिए विकृत रूप में प्रदर्शित करेंगे। जो ब्राह्मण जिस किसी भी विधि से ऐसे शंकर की सेवा करते हैं वे कलियुग के दोषों को जीतकर उच्च पद को प्राप्त करते हैं। शिकारी जंगली जानवर हिंसक होंगे और गायों की संख्या घटेगी। कलियुग समाप्ति की ओर बढ़ने पर साधु लोग उत्तम वातावरण से दूर होंगे, ऐसा जानना चाहिए। उनका धर्म जो दृढ़ है उत्तम परिणाम जिसकी जड़ दान में है, चारों आश्रमों की शिथिलता होने के कारण धर्म

चातुराश्रमशैथिल्ये धर्मः प्रतिचलिष्यति। अरक्षितारो हर्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः॥२४॥
युगान्तेषु भविष्यंति स्वरक्षणपरायणाः। अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः॥२५॥
प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यंति कलौ युगे। चित्रवर्षी तदा देवो यदा प्राहुर्युगक्षयम्॥२६॥
सर्वे वणिग्जनाश्चापि भविष्यंत्यधमे युगे। कुशीलचर्याः पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृताः॥२७॥
बहुयाजनको लोको भविष्यति परस्परम्। नाव्याहृतक्रूरवाक्यो नार्जवी नानसूयकः॥२८॥
न कृते प्रतिकर्ता च युगक्षीणे भविष्यति। निंदकाश्चैव पतिता युगांतस्य च लक्षणम्॥२९॥
नृपशून्या वसुमती न च धान्यधनावृता। मंडलानि भविष्यंति देशेषु नगरेषु च॥३०॥
अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुंधरा। गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः संभविष्यंत्यशासनाः॥३१॥
हर्तारः परवित्तानां परदारप्रधर्षकाः। कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधमाः साहसप्रियाः॥३२॥
प्रनष्टचेष्टनाः पुंसो मुक्तकेशाश्च शुलिनः। जनाः षोडशवर्षाश्च प्रजायंते युगक्षये॥३३॥
शुक्लदंताजिनाक्षाश्च मुंडाः काषायवाससः। शूद्रा धर्मं चरिष्यंति युगांते समुपस्थिते॥३४॥
सस्यचौरा भविष्यंति दृढचैलाभिलाषिणः। चौराश्चोरस्वहर्तारो हर्तुर्हर्ता तथापरः॥३५॥
योग्यकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते। कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यंति मानवान्॥३६॥

चलायमान (डॉवाडोल) होगा। राजा लोग देवताओं को भेंट किये गये पदार्थों आदि के रक्षक न होंगे बल्कि उनका हरण करेंगे। कलियुग की समाप्ति के समय वे लोग स्वयं अपनी रक्षा में अपेक्षाकृत अधिक रुचि लेंगे। कलि में बना बनाया भोजन बिक्री के लिए बाजार में रखा जायेगा। चौराहों पर वेदों और अन्य पवित्र साहित्य बेचे जायेंगे। कलियुग में युवतियाँ यहाँ तक कि शुल्क लेकर अपनी इज्जत को भी बेचेंगी।।१९-२५।। कलियुग की समाप्ति पर वर्षा के देवता केवल बूँदा-बाँदी करेंगे। सब वैश्य लोग भी व्यापार में घालमेल करेंगे। वे व्यर्थ में आडम्बरों से घिरे हुए होंगे। जनता में बहुत भिखारी और याचक होंगे जो आपस में एक-दूसरे के निंदक होंगे। युग के अन्त में कोई व्यक्ति किये गये उपकार का बदला देने के लिए तैयार नहीं होगा। क्रूर वाक्यों को न बोलने वाले और निंदा न करने वाले सीधे-सादे व्यक्ति नहीं होंगे। पतित और निंदक लोग कलियुग के इस काल की अन्तिम आलोचना करेंगे। पृथ्वी राजाओं से शून्य होगी और धन-धान्य से भी शून्य होगी। देशों और नगरों में षड़यन्त्रकारियों का दल बन जायेगा। पृथ्वी पर जल की कमी होगी और फलों में भी कमी होगी। जिन पर रक्षा का भार है वे रक्षक अरक्षक हो जायेंगे। वे अनुशासन में नहीं रहेंगे।।२६-३१।। लोग दूसरे की धन सम्पत्ति को लूटेगें और दूसरों की स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट करेंगे। वे कामी होंगे। दुष्टात्मा होंगे। अधम होंगे और दुःसाहसी होंगे। पुरुष नष्टचेतना वाले होंगे। वे चीजों का सही मूल्याँकन नहीं करेंगे। उनके केश खुले हुए होंगे। कलियुग के क्षय काल में ऐसे लोग पैदा होंगे जिनकी आयु केवल सोलह वर्ष होगी।।३२-३३।। कलियुग के अन्त समय में शूद्र लोग धर्म का आचरण करेंगे। वे श्वेत दाँत, मृग चर्म, रुद्राक्षधारी, मुण्डित सिर एवं गेरुवा वस्त्र धारण करेंगे।।३४।। पुरुष पौधों और अन्न की चोरी करेंगे। वे जो वस्त्र देखेंगे उनको लेने की इच्छा करेंगे। चोर लोग दूसरे चोरों की सम्पत्ति भी लूटेंगे। एक लूटेरा दूसरे लूटेरे को लूटेगा।।३५।। जबकि अच्छे और योग्य कर्म समाप्त हो जायेंगे, जबकि सब लोग निष्क्रिय होंगे तब कीड़े, चूहे और साँप लोगों को पीड़ा पहुँचायेंगे।।३६।।

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं तदा। कौशिकीं प्रतिपत्स्यंते देशान्क्षुद्भयपीडिताः॥३७॥
दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं तदा। दृश्यंते न च दृश्यंते वेदाः कलियुगेऽखिलाः॥३८॥
उत्सीदंति तदा यज्ञा केवलाधर्मपीडिताः।
काषायिणोप्यनिर्ग्रन्थाः कापालीबहुलास्त्विह॥३९॥
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे। वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिनः॥४०॥
उत्पद्यंते तदा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे। अधीयंते तदा वेदाञ्शूद्रा धर्मार्थकोविदाः॥४१॥
यजंते चाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः। स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्॥४२॥
उपद्रवांस्तथान्योन्यं साधयन्ति तदा प्रजाः। दुःखप्रभूतमल्पायुर्देहोत्सादः सरोगता॥४३॥
अधर्माभिनिवेशित्वात्तमोवृत्तं कलौ स्मृतम्। प्रजासु ब्रह्महत्यादि तदा वै संप्रवर्तते॥४४॥
तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते। तदा त्वल्पेन कालेन सिद्धिं गच्छंति मानवाः॥४५॥
धन्या धर्मं चरिष्यंति युगांते द्विजसत्तमाः। श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं ये चरन्त्यनसूयकाः॥४६॥
त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः। यथाक्लेशं चरन्प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुते कलौ॥४७॥
एषा कलियुगावस्था संध्यांशं तु निबोध मे। युगेयुगे च हीयंते त्रींस्त्रीन्पादांस्तु सिद्धयः॥४८॥
युगस्वभावाः संध्यास्तु तिष्ठन्तीह तु पादशः।
संध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादशस्ते प्रतिष्ठिताः॥४९॥

समृद्धि कल्याण, स्वास्थ्य और सामर्थ्य सब प्राप्त करना कठिन हो जायेगा। भूख और डर से पीड़ित लोग कौशिकी (कोसी) नदी के पास भूमि पर पहुँच जायेंगे।।३७।। दुःख से पीड़ित लोग जीवन के सौ वर्ष वाली आयु को नहीं देखेंगे। कलयुग में सब वेद भी नहीं दिखायी देंगे। लोगों में धर्म भावना न होने से यज्ञ कार्य नष्ट होंगे। गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी और कापालिक लोगों की बहुतायत हो जायेगी।।३८-३९।। कुछ लोग वेदों को बेचेंगे। तीर्थों (पवित्र जलों) को बेचेंगे अर्थात् इनसे अवैध लाभ उठायेंगे। जब कलयुग प्रारम्भ होता है तब पाखण्डी लोग पैदा होते हैं और वे वर्ण और आश्रम की परम्परा का विरोध करते हैं। शूद्र लोग धर्म के अर्थ बताने के विशेषज्ञ होंगे।।४०-४१।। शूद्र योनि से उत्पन्न राजा लोग अश्वमेघ यज्ञ को करेंगे। लोग स्त्रियों, वस्त्रों, गायों और एक दूसरे की हत्या के द्वारा लोगों को परेशान करेंगे। चूँकि लोग बुरे कर्म की ओर झुके हुए होंगे, अतः उनका व्यवहार तमोगुण पूर्ण होगा। ऐसे समय ब्रह्म हत्या जैसे अपराध दिखायी देना प्रारम्भ होगा।।४२-४४।। इसलिए कलिकाल में आयु, बल और रूप लगातार क्षीण हो जायेगा। लोग थोड़े काल में सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् सन्तुष्ट हो जाते हैं।।४५।। श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग फिर भी श्रुति और स्मृति में प्रतिपादित धर्म का निष्कपट भाव से कलियुग के अन्त में भी पालन करेंगे। त्रेता युग में एक वर्ष में धर्म के पालन से जो फल प्राप्त होता है। वह द्वापर में एक मास में पालन करने से ही प्राप्त होता है, कलियुग में एक दिन के धर्म पालन से बुद्धिमान भक्त को वह फल प्राप्त होता है।।४६-४७।। कलियुग में यह अवस्था है। संध्यांश काल की स्थिति को मुझसे सुनो। प्रत्येक युग के प्रारम्भ में जो सिद्धियाँ थी वे प्रत्येक युग में तीन चौथाई घटती जाती हैं।।४८।।

एवं सन्ध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगांतिके। तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भूतानां निधनोत्थितः॥५०॥
गोत्रेऽस्मिन्वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमितिरुच्यते। मानवस्य तु सोंशेन पूर्वं स्वायंभुवेन्तरे॥५१॥
समाः स विंशतिः पूर्णा पर्यटन्वै वसुंधराम्। अनुकर्षन् स वै सेनां सवाजिरथकुंजराम्॥५२॥
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोथ सहस्रशः। स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान् हंति सहस्रशः॥५३॥
स हत्वा सर्वशश्चैव राज्ञस्ताञ्शूद्रयोनिजान्। पाखंडांस्तु ततः सर्वान्निःशेषं कृतवान् प्रभुः॥५४॥
नात्यर्थं धार्मिका ये च तान् सर्वान् हन्ति सर्वतः।
वर्णव्यत्यासजाताश्च ये चताननुजीविनः॥५५॥
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामंतकृत्स तु। अधृष्यः सर्वभूतानां चचाराथ वसुंधराम्॥५६॥
मानवस्य तु सोंशेन देवस्येह विजज्ञिवान्। पूर्वजन्मनि विष्णोस्तु प्रमितिर्नाम वीर्यवान्॥५७॥
गोत्रतो वै चन्द्रमसः पूर्णे कलियुगे प्रभुः। द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रांतो विंशतिः समाः॥५८।
विनिघ्नन्सर्वभूतानि शतशोथ सहस्रशः। कृत्वा बीजावशेषां तु पृथिवीं क्रूरकर्मणः॥५९॥
परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु।
स साधयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान्॥६०॥
गंगायमुनयोर्मध्ये स्थितिं प्राप्तः सहानुगः। ततो व्यतीते काले तु सामात्यः सहसैनिकः॥६१॥

युगों के रूपों का केवल एक चौथाई अपने संध्यांशों में रह जाता है। उसी प्रकार संध्याशों के रूप का एक चौथाई संध्यांशों में रहता है। संध्यांश कलियुग के भाग धर्म रह जाता है।।४९।। इस प्रकार जब युग समाप्त होने को आता है और संधिकाल भी पहुँचता है तो दुष्ट लोगों का शासन करने वाला सब दुष्टों का बध करने के लिए खड़ा होगा। वह चन्द्रवंश में जन्म लेगा। वह प्रमिति नाम से पुकारा जायेगा। स्वयंभू मनवन्तर में, वह मनु के वंश में पैदा हुआ था। वह बीस वर्ष तक पृथ्वी पर इधर-उधर घूमता रहेगा। घोड़े, रथ और हाथियों सहित एक बड़ी सेना को वह लिए रहेगा। वह सैकड़ों, हजारों अस्त्रधारी ब्राह्मणों से घिरा रहेगा। वह हजारों की संख्या में म्लेक्षों का वध करेगा।।५०-५३।। शूद्र योनि से उत्पन्न राजाओं की हत्या करने के बाद वह पूर्ण रूप से प्रभु (हीरो) हो जायेगा। वह जो धार्मिक नहीं है उनको जान से मार देगा। वह जो विभिन्न जातियों में वर्ण शंकर रूप में पैदा हुए हों और उनके अनुजीवी (उन पर निर्भर) होंगे।।५४-५५।। एक क्षत्रिय सेना से अपने को शक्तिशाली बनाकर और अपने नियन्त्रण में रखकर, वह म्लेक्षों का नाशक, सब प्राणियों से अपराजित, पृथ्वी पर इधर-उधर घूमेगा।।५६।। पूर्व जन्म में वह मनु के वंश में पैदा हुआ था जो कि स्वयं विष्णु के अवतार का एक भाग था। जब कलियुग पूरा होने के लगभग आयेगा, वह चन्द्रमा के वंश में एक शक्तिशाली प्रमिति पैदा होगा। वह अपना आन्दोलन बत्तीस वर्षों में चलायेगा और बीस वर्षों तक जारी रखेगा।।५७-५८।। वह सैकड़ों और हजारों प्राणियों की हत्या करेगा। इस क्रूर कर्म से पृथ्वी को बीज से रहित कर देगा।।५९।। आपस में ही आकस्मिक क्रोध से भड़क कर प्रमिति उन सब जाति से बहिष्कृत वंशों और अधार्मिक लोगों को हरायेगा और गंगा और यमुना के बीच भूभाग में अपने मन्त्रियों और अनुयायियों के साथ सब राजाओं और जाति से बहिष्कृत हजारों की

उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः। तत्र संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगांतिके॥६२॥

स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित्।
अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोभाविष्टास्तु कृत्स्नशः॥६३॥

उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रणिपत्य परस्परम्। अराजके युगवशात्संशये समुपस्थिते॥६४॥

प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः।
व्याकुलाश्च परिभ्रांतास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च॥६५॥
स्वान्प्राणाननपेक्षन्तो निष्कारुण्याः सुदुःखिताः।
नष्टे श्रौते स्मार्तधर्मे परस्परहतास्तदा॥६६॥

निर्मर्यादा निराक्रांता निःस्नेहा निरपत्रपाः। नष्टे धर्मे प्रतिहताः ह्रस्वकाः पंचविंशकाः॥६७॥
हित्वा पुत्रांश्च दारांश्च विवादव्याकुलेन्द्रियाः। अनावृष्टिहताश्चैव वार्तामुत्सृज्य दूरतः॥६८॥
प्रत्यंतानुपसेवंते हित्वा जनपदान् स्वकान्। सरित्सागरकूपांस्ते सेवंते पर्वतांस्तथा॥६९॥
मधुमांसैर्मूलफलैर्वर्तयंति सुदुःखिताः। चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः॥७०॥
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकटं घोरमास्थिताः। एवं कष्टमनुप्राप्ता अल्पशेषाः प्रजास्तदा॥७१॥
जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमानसाः। विचारणा तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणा॥७२॥

संख्या में बध करने के बाद अपना शासन स्थापित करेगा। तब युग के अन्त में संध्यांश काल में थोड़े से बचे-खुचे लोगों का एक समूह होगा। वे सब घोर लोभी होकर आपस में एक-दूसरे पर प्रहार करेंगे। युग धर्म के क्रम में जब अराजकता फैलेगी, तब लोग एक-दूसरे पर सन्देह करेंगे, वे सब लोग भय से पीड़ित होंगे। वे व्याकुल होकर अपनी स्त्रियों, घरों को छोड़कर भागेंगे। वे अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करेंगे। यद्यपि वे स्वयं दीन-हीन होंगे फिर भी वे बहुत दुःखी होंगे। जब श्रुति और स्मृति में प्रतिपादित पवित्र धार्मिक कृत्य नष्ट हो जायेंगे तो ये लोग एक-दूसरे पर आक्रमण करेंगे और उनकी हत्या करेंगे। जब धर्म नष्ट हो जायेगा तो ये लोग मर्यादाहीन, असीम, क्रूर, निर्लज्ज और निष्ठुर हो जायेंगे। धर्म के नष्ट होने पर वे छोटे आयु के और कम लम्बे (बौने या ठिगने) और पच्चीस वर्ष की आयु के होंगे। वे परस्पर विवाद से व्याकुल हो अपने स्त्रियों और पुत्रों को छोड़ देंगे। वर्षा की कमी के कारण वे खेती भी छोड़ देंगे। अपने निजी जनपदों को छोड़ देंगे। वे नदी, समुद्र, पर्वत और कुएँ आदि के पास रहने लगेंगे।।६०-६९।। दुःखित वे लोग शराब, माँस, कन्द-मूल और फल पर जीवित रहेंगे। वे पेड़ों के छाल पहनेंगे, पेड़ों के पत्ते, मृगचर्म लपेटे हुए वे धार्मिक कृत्य नहीं करेंगे और न तो दान ही ग्रहण करेंगे।।७०।। वे लोग वर्ण और आश्रम धर्म के कठोर अनुशासन से गिर जायेंगे अर्थात् वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करेंगे। वे लोग भयंकर विपत्ति में फँस जायेंगे। इस प्रकार कलियुग के अन्त में थोड़े से बचे हुए लोग अत्यन्त कष्ट को झेलेंगे।।७१।। वृद्धावस्था, बीमारी और भूख प्यास से वे ग्रस्त होंगे। दुःखों के कारण उनका मन निष्क्रिय हो जायेगा। दुःखों से दुःखी होने के कारण वे विचार शून्य होंगे। उनकी विचार शक्ति नष्ट हो जायेगी। यह रुख उनको साम्यावस्था (ज्ञान) की ओर ले जायेगा। ज्ञान से आत्मबोध होता है उससे धर्मशीलता

साम्यावस्थात्मको बोधः संबोधाद्धर्मशीलता। अरूपशमयुक्तास्तु कलिशिष्टा हि वै स्वयम्॥७३॥
अहोरात्रात्तदा तासां युगं तु परिवर्तते। चित्तसंमोहनं कृत्वा तासां वै सुप्तमत्तवत्॥७४॥
भाविनोर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत। प्रवृते तु ततस्तस्मिन्पुनः कृतयुगे तु वै॥७५॥
उत्पन्नाः कलिशिष्टास्तु प्रजाः कार्तयुगास्तदा। तिष्ठंति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विचरंति च॥७६॥
सप्त सप्तर्षिभिश्चैव तत्र ते तु व्यवस्थिताः। ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह॥७७॥
कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाऽभवन्। तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयंतीतरेपि च॥७८॥
वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतं स्मार्तं द्विधा तु यम्। ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्धन्ते वै प्रजाः कृते॥७९॥
श्रौतस्मार्तकृतानां च धर्मे सप्तर्षिदर्शिते। केचिद्धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह युगक्षये॥८०॥
मन्वंतराधिकारेषु तिष्ठंति मुनयस्तु वै। यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह ततः क्षितौ॥८१॥
वनानां प्रथमं वृष्ट्या तेषां मूलेषु संभवः। तथा कार्तयुगानां तु कलिजेष्विह संभवः॥८२॥
एवं युगाद्युगस्येह संतानं तु परस्परम्। वर्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वंतरक्षयः॥८३॥
सुखमायुर्बलं रूपं धर्मोऽर्थः काम एव च। युगेष्वेतानि हीयंते त्रींस्त्रीन्पादान्क्रमेण तु॥८४॥
ससंध्यांशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः। इत्येषा प्रतिसिद्धिर्वै कीर्तितैषा क्रमेणु तु॥८५॥
चतुर्युगानां सर्वेषामनेनैव तु साधनम्। एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्राद्गुणीकृता॥८६॥
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्चैतावती स्मृता। अनार्जवं जडीभावो भूतानामायुगक्षयात्॥८७॥

आती है। कलियुग के शेष दिनों में बचे हुए लोग अपने शारीरिक आकार और मानसिक शान्ति से रहित हो जायेंगे।।७२-७३।। उस समय उनके लिए दिन रात युग परिवर्तन होगा। उनके चित्त में सम्मोहन करके युग उनको सुप्त और मत्त-सा बना देगा अर्थात् वे माया जाल में उलझ कर पागल से दिखेंगे। भावी वश तब कृतयुग प्रारम्भ होगा। उसके बीत जाने पर कलियुग से बचे हुए लोग कृतयुग में आयेंगे। वे सिद्ध (शुद्धात्मा) लोग इधर-उधर अदृष्ट रूप में घूमते रहेंगे। वे सात सप्तर्षियों के साथ होंगे। उनमें से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भावी पीढ़ी के बीज के लिए होंगे। कलियुग से बचे हुए लोगों के साथ वे घुल-मिल जायेंगे। सात सप्तर्षि और अन्य लोग इन लोगों को उनका धर्म सिखाएँगे।।७४-७८।। वे लोग उनको वर्ण और आश्रम से युक्त श्रौत और स्मार्त से युक्त दो प्रकार के धर्म सिखाएँगे। उसके बाद जब वे लोग धार्मिक कृत्य यज्ञ आदि करने लगेंगे तो कृत युग में प्रजा बढ़ेगी।।७९।। जबकि सप्तऋषियों द्वारा दिखाए गये धर्म बढ़ने लगेगा तो लोगों के बीच में अन्य ऋषि लोग भी धर्म की व्यवस्था में लगेंगे। उनमें से कुछ ऋषि धर्म की स्थापना के उद्देश्य से उस समय भी पृथ्वी पर रहेंगे। पूरे मन्वन्तरों तक वे ऋषि रहेंगे जैसे कि घासों के आग से जल जाने पर जंगल में वृक्ष खड़े रह जाते हैं। लेकिन जब वर्षा होती है तो यह घास फिर उगती है। उसी ढंग से कलि के लोगों के मरने के बाद कृत युग के लोग आयेंगे। बिना किसी विच्छेद के एक युग के जाने के बाद दूसरा युग आता है। यह क्रम तब तक चलता है जब तक मन्वन्तर समाप्त नहीं होता।।८०-८३।। सुख, आयु, बल, रूप (सुन्दरता), धर्म, अर्थ और काम ये तीन चौथाई धीरे-धीरे एक युग से दूसरे युग तक घटते जाते हैं।।८४।। धर्मों की सिद्धियाँ अनुपात में युगों के भागों में घटती हैं। यह क्रम से होता है, ऐसा प्रसिद्ध है।।८५।। इसी क्रम में सब चारों युग समझे जाने चाहिए। चार युगों का एक हजार ऐसा चक्र ब्रह्मा की एक दिन होता है। उतने ही युगों की रात भी कही गयी

एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम्। ऐषां चतुर्युगाणां च गुणिता ह्येकसप्ततिः॥८८॥
क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते। चतुर्युगे यथैकस्मिन्भवतीह यदा तु यत्॥८९॥
तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम्। सर्गेसर्गे यथा भेदा उत्पद्यंते तथैव तु॥९०॥
पंचविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा। तथा कल्पा युगैः सार्धं भवंति सह लक्षणैः॥९१॥
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम्॥९२॥
यथा युगानां परिवर्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात्।
तथा तु संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः॥९३॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः। अतीतानागतानां हि सर्वमन्वन्तरेषु वै॥९४॥
मन्वंतरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि च।
व्याख्यातानि न संदेहः कल्पः कल्पेन चैव हि॥९५॥
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता। मन्वंतरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह॥९६॥
तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवंत्युत। देवा ह्यष्टविधा ये च ये च मन्वंतरेश्वराः॥९७॥
ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्यप्रयोजनाः। एवं वर्णाश्रमाणां तु प्रविभागो युगेयुगे॥९८॥
युगस्वभावश्च तथा विधत्ते वै तदा प्रभुः। वर्णाश्रमविभागाश्च युगानि युगसिद्धयः॥९९॥
युगानां परिमाणं ते कथितं हि प्रसङ्गतः। वदामि देविपुत्रत्वं पद्मयोनेः समासतः॥१००॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे चतुर्युगपरिमाणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

है। समय के द्वारा जब युग समाप्त होने को होता है तब प्राणियों में कठोरता और जड़ भाव आता है। यही सब युगों का लक्षण है। चारों युगों के एकहत्तर चक्रों से एक मन्वन्तर बनता है। प्रथम चार युगों के चक्र में जैसा घटित होता है वैसा ही आगे के चतुर्युगों में होता है। पच्चीस (वर्षों) से न कम न अधिक एक सृष्टि से दूसरी सृष्टि में अन्तर होता है। जैसे युगों के साथ वैसे ही कल्पों के साथ भी वही क्रम होता है। वही लक्षण सब मन्वन्तरों में होता है।।८६-९२।। जैसे युगों में युग के प्रभाव से परिवर्तन होता है वह परिवर्तन आज से लम्बे काल जारी रहता है, उसी प्रकार प्राणि जगत में भी जन्म और मृत्यु के बीच में भी परिवर्तन होता है।।९३।। संक्षेप में सब मन्वन्तरों में भूत और भविष्य के युगों का यही लक्षण कहा गया है।।९४।। एक मन्वन्तर के व्याख्या से सब मन्वन्तर की व्याख्या तत्समान समझ लेनी चाहिए। उसी प्रकार एक कल्प से दूसरे कल्प की व्याख्या समझनी चाहिए।।९५।। भविष्य के कल्पों के लिये यही तर्क जारी रहना चाहिये। भूत और भविष्य सभी मन्वन्तरों में देवताओं के आठ वर्ग, मन्वन्तरों के स्वामी, ऋषियों और मनुओं के नाम और रूप होंगे। वे सब अपने-अपने पद के अभिमानी होंगे। उनका प्रयोजन समान होगा। सब युगों में वर्ण और आश्रम व्यवस्था भी रहेगी। उनका विभाग रहेगा। इस प्रकार युगों का परिमाण मैंने कहा। अब मैं तुमको यह बताऊँगा कि पद्मयोनि ब्रह्मा, देवी के पुत्र कैसे हुए।।९६-१००।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में चतुर्युग का परिमाण नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रवाक्यम्

इन्द्र उवाच

पुनः ससर्ज भगवान्प्रभ्रष्टाः पूर्ववत्प्रजाः। सहस्त्रयुगपर्यंते प्रभाते तु पितामहः॥१॥
एवं परार्धे विप्रेंद्र द्विगुणे तु तथा गते। तदा धराम्भसि व्याप्ता ह्यापो वह्नौ समीरणे॥२॥
वह्निः समीरणश्चैव व्योम्नि तन्मात्रसंयुतः। इंद्रियाणि दशैकं च तन्मात्राणि द्विजोत्तम॥३॥
अहंकारमनुप्राप्य प्रलीनास्तत्क्षणादहो। अभिमानस्तदा तत्र महान्तं व्याप्य वै क्षणात्॥४॥
महानपि तथा व्यक्तं प्राप्य लीनोभवद्द्विज। अव्यक्तं स्वगुणैः सार्धं प्रलीनमभवद्भवे॥५॥
ततः सृष्टिरभूत्तस्मात्पूर्ववत्पुरुषाच्छिवात्। अथ सृष्टास्तदा तस्य मनसा तेन मानसाः॥६॥
न व्यवर्धंत लोकेऽस्मिन्प्रजाः कमलयोनिना। वृद्ध्यर्थं भगवान्ब्रह्मा पुत्रैर्वै मानसैः सह॥७॥
दुश्चरं विचचारेशं समुद्दिश्य तपः स्वयम्। तुष्टस्तु तपसा तस्य भवो ज्ञात्वा स वाञ्छितम्॥८॥
ललाटमध्यं निर्भिद्य ब्रह्मणः पुरुषस्य तु। पुत्रस्नेहमिति प्रोच्य स्त्रीपुंरूपोभवत्तदा॥९॥
तस्य पुत्रो महादेवो ह्यर्धनारीश्वरोभवत्। ददाह भगवान्सर्वं ब्रह्माणं च जगद्गुरुम्॥१०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

इन्द्र वाक्य

इन्द्र बोले

हजार युगों के बीत जाने पर जब कि उनके लिए प्रभात हुआ तो नष्ट हुई प्रजा को पहले की तरह भगवान ब्रह्मा ने उत्पन्न किया।।१।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! जब द्विगुण परार्ध बीत गया तो पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में तन्मात्रा सहित विलीन हो गये। हे ब्राह्मणों! ग्यारह ज्ञानेन्द्रियाँ और तन्मात्राएँ अहंकार उसी क्षण महत्तम में विलीन हो गये। महान महत् भी व्यक्त को प्राप्त करके विलीन हो गया। महत् अव्यक्त को प्राप्त करके अपने गुणों के साथ भव में प्रलीन हो गया। उसके बाद पुरुष शिव से पहले की तरह सृष्टि उत्पन्न हुई। तब केवल उनके द्वारा मन से विचार मात्र से मानस पुत्रों की सृष्टि हुई।।२-६।। कमलयोनि ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न सृष्टि जगत में वृद्धि को नहीं प्राप्त हुई। तब प्रजाओं की वृद्धि के लिए भगवान ब्रह्मा ने अपने मानसिक पुत्रों के साथ स्वयं शिव को ध्यान में रख कर कठिन तपस्या की। महान आत्मा शिव उनकी तपस्या से प्रसन्न हुए। उनकी अभीष्ट इच्छा को जानकर ब्रह्मा के ललाट के मध्य भाग को भेद (छेद) दिया। ''यह कहते हुए कि मैं तुम्हारा पुत्र हूँ'' तब वह स्त्री और पुरुष का अपना संयुक्त रूप बना लिया।।७-९।। अर्धनारीश्वर महादेव उनके पुत्र हो गये। तब भगवान शिव ने जगतगुरु ब्रह्मा को जला दिया। उसके बाद तीनों लोकों की वृद्धि के उद्देश्य से शिव ने योगिक मार्ग अपना लिया और अपनी अर्ध मात्रा परमेश्वरी का उपभोग किया। इस प्रकार

अथार्धमात्रां कल्याणीमात्मनः परमेश्वरीम्। बुभुजे योगमार्गेण वृद्ध्यर्थं जगतां शिवः॥११॥
तस्यां हरिं च ब्रह्माणं ससर्ज परमेश्वरः। विश्वेश्वरस्तु विश्वात्मा चास्त्रं पाशुपतं तथा॥१२॥
तस्माद्ब्रह्मा महादेव्याश्चांशजश्च हरिस्तथा। अंडजः पद्मजश्चैव भवांगभव एव च॥१३॥
एतत्ते कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम्। परार्धं ब्रह्मणो यावत्तावद्भूतिः समासतः॥१४॥
वैराग्यं ब्रह्मणो वक्ष्ये तमोद्भूतं समासतः। नारायणोपि भगवान्द्विधा कृत्वात्मनस्तनुम॥१५॥
ससर्ज सकलं तस्मात्स्वांगादेव चराचरम्। ततो ब्रह्माणमसृजद्ब्रह्मा रुद्रं पितामहः॥१६॥
मुने कल्पांतरे रुद्रो हरिं ब्रह्माणमीश्वरम्। ततो ब्रह्माणमसृजन्मुने कल्पांतरे हरिः॥१७॥
नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणं च पुनर्भवः। तदा विचार्य वै ब्रह्मा दुःखं संसार इत्यजः॥१८॥
सर्गं विसृज्य चात्मानमात्मन्येव नियोज्य च। संहृत्य प्राणसञ्चारं पाषाण इव निश्चलः॥१९॥
दशवर्षसहस्राणि समाधिस्थोऽभवत्प्रभुः। अधोमुखं तु यत्पद्मं हृदि संस्थं सुशोभनम्॥२०॥
पूरितं पूरकेणैव प्रबुद्धं चाभवत्तदा। तदूर्ध्ववक्त्रमभवत्कुंभकेन निरोधितम्॥२१॥
तत्पद्मकर्णिकामध्ये स्थापयामास चेश्वरम्। तदोमिति शिवं देवमर्धमात्रापरं परम्॥२२॥
मृणालतन्तुभागैकशतभागे व्यवस्थितम्। यमी यमविशुद्धात्मा नियम्यैवं हृदीश्वरम्॥२३॥
यमपुष्पादिभिः पूज्यं याज्यो ह्ययजदव्ययम्।
तस्य हृत्कमलस्थस्य नियोगाच्चांशजो विभुः॥२४॥

उन्होंने उसके साथ संयोग करके ब्रह्मा और विष्णु को उत्पन्न किया। विश्वात्मा विश्वेश्वर ने पाशुपत अस्त्र भी बनाया। इस प्रकार महादेवी के अंश से ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न हुए। इस प्रकार ब्रह्मा अण्डज और पद्मज थे, वे भगवान शिव के शरीर से भी उत्पन्न हुए। इस प्रकार संक्षेप में प्राचीन सब इतिहास को मैंने कह दिया और यह भी बता दिया कि ब्रह्मा के प्रथम परार्ध के बीच क्या हुआ।।१०-१४।। अब मैं संक्षेप में तमोगुण से उत्पन्न ब्रह्मा के वैराग्य को संक्षेप में कहूँगा। भगवान विष्णु ने भी अपने शरीर को दो भागों में कर दिया और उससे चर और अचर दोनों से मिले जुले जगत को उत्पन्न किया। तब उन्होंने ब्रह्मा को उत्पन्न किया। ब्रह्मा ने रुद्र को उत्पन्न किया। हे मुनि! दूसरे कल्प में विष्णु ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया। तब ब्रह्मा ने विष्णु को उत्पन्न किया और तब शिव ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया। तब ब्रह्मा ने सोचा कि जगत दुःख से भरा हुआ है और उन्होंने सृष्टि के क्रिया-कलाप को छोड़कर अपने आत्मा को उच्चतर आत्मा में लगाया। तब वे प्राण संचार (श्वास-निश्वास) को रोककर पत्थर की तरह अचल हो गये। वह दस हजार वर्ष समाधिस्थ हो गये। वह सुन्दर कमल, जो नीचे की ओर मुख किये था और हृदय में स्थित था, तब वह पूरक प्राणायाम के द्वारा भर गया और तब वह फूल गया। वह कुंभक प्राणायाम से ऊपर की ओर मुख के साथ उठ गया। अर्थात ऊर्ध्व वक्त्र हो गया।।१५-२१।। उस कमल की कर्णिका के बीच में ब्रह्मा ने भगवान शिव को स्थापित किया। तब ब्रह्मा अपने को वश में किये हुए नियमों से अपने आत्मा को शुद्ध करने वाले शिव को अपने हृदय में प्रतिस्थापित किया। वह स्थान इतना छोटा था, जैसे कमल के मृणाल दण्ड के धागे के सौवाँ भाग के समान था। उन्होंने पूज्य ओम् शिव को यम पुष्पों आदि के

ललाटमस्य निर्भिद्य प्रादुरासीत्पितामहात्। लोहितोऽभूत्स्वयं नीलः शिवस्य हृदयोद्भवः॥२५॥
वह्नेश्चैव तु संयोगात्प्रकृत्या पुरुषः प्रभुः। नीलश्च लोहितश्चैव यतः कालाकृतिः पुमान्॥२६॥
नीललोहित इत्युक्तस्तेन देवेन वै प्रभुः। ब्रह्मणा भगवान्कालः प्रीतात्मा चाभवद्विभुः॥२७॥
सुप्रीतमनसं देवं तुष्टाव च पितामहः। नामाष्टकेन विश्वात्मा विश्वात्मानं महामुने॥२८॥

पितामह उवाच

नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे। नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयाय ते॥२९।
शर्वाय क्षितिरूपाय सदा सुरभिणे नमः। ईशाय वायवे तुभ्यं संस्पर्शाय नमो नमः॥३०॥
पशूनां पतये चैव पावकायातितेजसे। भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः॥३१॥
महादेवाय सोमाय अमृताय नमोस्तु ते। उग्राय यजमानाय नमस्ते कर्मयोगिने॥३२॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि पैतामहमिमं स्तवम्। रुद्राय कथितं विप्राञ्श्रावयेद्वा समाहितः॥३३॥
अष्टमूर्तेस्तु सायुज्यं वर्षादेकादवाप्नुयात्। एवं स्तुत्वा महादेवमवैक्षत पितामहः॥३४॥
तदाष्टधा महादेवः समातिष्ठत्समंततः। तदा प्रकाशते भानुः कृष्णवर्त्मा निशाकरः॥३५॥
क्षितिर्वायुः पुमानंभः सुषिरं सर्वगं तथा। तदाप्रभृति तं प्राहुरष्टमूर्तिरितीश्वरम्॥३६॥
अष्टमूर्तेः प्रसादेनविरंचिश्चासृजत्पुनः। सृष्ट्वैतदखिलं ब्रह्मा पुनः कल्पांतरे प्रभुः॥३७॥

द्वारा पूजा की तब ब्रह्मा के हृदय में स्थित पितामह के ललाट को भेदकर भव (शिव) उत्पन्न हुए। शिव के हृदय से उत्पन्न प्रभु जो मूल रूप में नीले रंग के थे अग्नि के संयोग से लोहित (लाल) हो गये। पुरुष नील और लोहित दोनों रंग में थे जिससे कि काल का आकार पुरुष हो। देवताओं द्वारा वे नील लोहित कहे गये और ब्रह्मा ने उनको भगवान काल कहा। इससे प्रभु प्रसन्न हो गये।।२२-२७।। हे महामुनि! विश्वात्मा ब्रह्मा ने प्रसन्न मन से भगवान शिव की स्तुति की, जो कि अपने मन में प्रसन्न थे और जो कि आठ नाम के द्वारा विश्व को धारण किये हुए थे।।२८।।

ब्रह्मा बोले

हे भगवन! सूर्य के समान अमित तेजस्वी रुद्र आपको नमस्कार। हे जल और रसमय भव को नमस्कार। भूमि और गंध स्वरूप रवि के लिए नमस्कार। वायु और स्पर्श स्वरूप ईश के लिए नमस्कार। प्रत्येक आत्मा के स्वामी अमित तेज वाले पावक (अग्नि) और पशुपति के लिए नमस्कार। आकाश रूप और सर्वमात्रा वाले भीम के लिए नमस्कार। सोम और अमृत के निवास महादेव के लिए नमस्कार। उग्र के लिए नमस्कार। कर्मयोगी यजमान रूप उग्र के लिए नमस्कार।।२९-३२।। पितामह ब्रह्मा द्वारा की गई इस स्तुति को जो पढ़े या जो कोई सुने या इसको ब्राह्मणों को एकाग्रचित होकर सुनावे, वह एक वर्ष में अष्टमूर्ति शिव का सायुज्य प्राप्त करेगा। इस प्रकार ब्रह्मा ने महादेव शिव की स्तुति करके शिव को देखा।।३३-३४।। तब महादेव अष्टमूर्ति में खड़े हो गये। चारों ओर फैल गये। सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, पृथ्वी, वायु, जल, आकाश, और यज्ञकर्त्ता (यजमान) प्रकाशित हुए। इसी समय से भगवान ईश्वर को अष्टमूर्ति कहा जाने लगा।।३५-३६।। अष्टमूर्ति की कृपा से

सहस्त्रयुगपर्यंतं संसुप्ते च चराचरे। प्रजाः स्त्रष्टुमनास्तेपे तत उग्रं तपो महत्॥३८॥
तस्यैवं तप्यमानस्य न किंचित्समवर्तत। ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधो व्यजायत॥३९॥
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रु बिन्दवः। ततस्तेभ्योश्रुबिंदुभ्यो भूताः प्रेतास्तदाभवन्॥४०॥
सर्वांस्तानग्रजान्दृष्ट्वा भूतप्रेतनिशाचरान्। अनिंदत तदा देवो ब्रह्मात्मानमजो विभुः॥४१॥
जहौ प्राणांश्च भगवान् क्रोधाविष्टः प्रजापतिः। ततः प्राणमयो रुद्रः प्रादुरासीत्प्रभोर्मुखात्॥४२॥
अर्धनारीश्वरो भूत्वा बालार्कसदृशद्युतिः। तदैकादशधात्मानं प्रविभज्य व्यवस्थितः॥४३॥
अर्धेनांशेन सर्वात्मा ससर्जासौ शिवामुमाम्।
सा चासृजत्तदा लक्ष्मीं दुर्गां श्रेष्ठां सरस्वतीम्॥४४॥
वामां रौद्रीं महामायां वैष्णवीं वारिजेक्षणाम्। कलां विकरिणीं चैव कालीं कमलवासिनीम्॥४५॥
बलविकरिणीं देवीं बलप्रमथिनीं तथा। सर्वभूतस्य दमनीं ससृजे च मनोन्मनीम्॥४६॥
तथान्या बहवः सृष्टास्तया नार्यः सहस्त्रशः। रुद्रैश्चैव महादेवस्ताभिस्त्रिभुवनेश्वरः॥४७॥
सर्वात्मनश्च तस्याग्रे ह्यतिष्ठत्परमेश्वरः। मृतस्य तस्य देवस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥४८॥
घृणी ददौ पुनः प्राणान्ब्रह्मपुत्रो महेश्वरः। ब्रह्मणः प्रददौ प्राणानात्मस्थांस्तु तदा प्रभुः॥४९॥
प्रहृष्टोभूत्ततो रुद्रः किंचित्प्रत्यागतासवम्। अभ्यभाषत देवेशो ब्रह्माणं परमं वचः॥५०।
मा भैर्देव महाभाग विरिंच जगतां गुरो। मयेह स्थापिताः प्राणास्तस्मादुत्तिष्ठ वै प्रभो॥५१॥

ब्रह्मा ने पुनः सृष्टि की रचना की। चर और अचरमय जगत की रचना करने के बाद हजार युगों के काल तक के लिए ब्रह्मा कल्पान्तर में गये। अगले कल्प में जब वह जागे तो फिर प्रजा की सृष्टि करने को इच्छुक हुये। तब फिर उन्होंने उग्र और महान तपस्या की। उनकी उस तपस्या से जब कुछ नहीं हुआ जो दीर्घकाल के बाद वे दुःखी हुये और उनका दुःख क्रोध में बदल गया।।३७-३९।। क्रोध से भर जाने पर उनकी आँखों से आँसू की बूँदें गिर पड़ीं। तब उन आँसू की बूँदों से भूत और प्रेत उत्पन्न हुये।।४०।। भूत-प्रेत और दानवों की उस प्रथम सृष्टि को देखकर ब्रह्मा ने स्वयं अपनी निन्दा की। (अपने को कोसा)।।४१।। क्रोध से भरे ब्रह्मा ने अपने प्राणों को त्याग दिया। तब प्रभु ब्रह्मा के मुख से रुद्र प्राण के रूप में उत्पन्न हुये (दिखाई दिये)।।४२।। बाल सूर्य की प्रभा वाले, रुद्र अर्धनारीश्वर होकर अपने को ग्यारह भागों में बाँटकर वहाँ व्यवस्थित हो गये (ठहर गये)।। सर्वात्मा अर्धनारीश्वर ने स्वयं अपने आधे भाग से उमा को उत्पन्न किया। उमा ने लक्ष्मी, दुर्गा और सरस्वती की सृष्टि की। (उत्पन्न किया)।।४३-४४।। उसके आगे उन्होंने वामा, रौद्री, महामाया, कमलनयनी वैष्णवी देवी, कलाविकरिणी, कमलवासिनी काली, बलविकरिणी देवी, बलप्रमथिनी सर्वभूतदमनी और मनोन्मनी को उत्पन्न किया। उसी प्रकार उमा ने हजारों अन्य स्त्रियों को उत्पन्न किया। उन स्त्रियों और रुद्र के साथ तीनों लोकों के स्वामी, परमेश्वर महादेव ब्रह्मा के सामने खड़े हो गये। उन्होंने ब्रह्मा के मृत देह में प्राण का संचार करके उनको जीवित कर दिया।।४५-४८।। ब्रह्मा के पुत्र भगवान महेश्वर ने ब्रह्मा को प्राण दिया।।४९।। देवों के स्वामी रुद्र प्रसन्न हुये। उन्होंने पुनर्जीवित ब्रह्मा से इस प्रकार कहा।।५०।। 'हे महाभाग! ब्रह्माण्ड जगत के प्रभु! मत रो,

श्रुत्वा वचस्ततस्तस्य स्वप्नभूतं मनोगतम्। पितामहः प्रसन्नात्मा नेत्रैः फुल्लांबुजप्रभैः॥५२॥
ततः प्रत्यागतप्राणः समुदैक्षन्महेश्वरम्। स उद्वीक्ष्य चिरं कालं स्निग्धगंभीरया गिरा॥५३॥
उवाच भगवान् ब्रह्मा समुत्थाय कृतांजलिः। भो भो वद महाभाग आनंदयसि मे मनः॥५४॥
को भवानष्टमूर्तिर्वै स्थित एकादशात्मकः।

इंद्र उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा व्याजहार महेश्वरः॥५५॥
स्पृशन्कराभ्यां ब्रह्माणं सुखाभ्यां स सुरारिहा।

श्रीशंकर उवाच

मां विद्धि परमात्मानमेनां मायामजामिति॥५६॥
एते वै संस्थिता रुद्रस्त्वां रक्षितुमिहागताः। ततः प्रणम्य तं ब्रह्मा देवदेवमुवाच ह॥५७॥
कृतांजलिपुटो भूत्वा हर्षगद्गदया गिरा। भगवन्देवदेवेश दुःखैराकुलितो ह्यहम्॥५८॥
संसारान्मोक्तुमीशान मामिहार्हसि शंकर। ततः प्रहस्य भगवान्पितामहमुमापतिः॥५९॥
तदा रुद्रैर्जगन्नाथस्तया चान्तर्दधे विभुः।

इन्द्र उवाच

तस्माच्छिलाद लोकेषु दुर्लभो वै त्वयोनिजः॥६०॥

तुम्हारे हृदय में प्राणों को मैंने स्थापित कर दिया है। इसलिए हे प्रभो! उठो'।।५१।। उनकी बातों को सुनकर जैसे स्वप्न में ब्रह्मा अपने हृदय में प्रसन्न हो गये। अपने में प्राणों का संचार वापस होने पर ब्रह्मा ने पूर्ण कमल के समान फूले नेत्रों से शिव की ओर देखा। बड़ी देर तक उनकी ओर देखने के बाद उनके सम्मान में हाथ जोड़कर उनको प्रेमभरी मृदु वाणी में कहा। 'हे महाभाग! तुम मेरे मन को प्रसन्न कर रहे हो। बोलो। अष्ट मूर्तियों और ग्यारह रूपों में मेरे सम्मुख खड़े तुम कौन हो?'।।५२-५४।।

इन्द्र बोले

इन वचनों को सुनकर देवताओं के शत्रुओं के नाशक भगवान शंकर ने अपने सुखदायक हाथों से ब्रह्मा को स्पर्श करते हुए उनसे कहा।

शंकर बोले

'मुझको परमात्मा जानो और इनको अजन्मा माया जानो। मेरे बगल में खड़े रुद्र हैं जो तुम्हारी रक्षा के लिए आये हैं।' उसके बाद ब्रह्मा ने हाथ जोड़कर देवेश शंकर को प्रणाम किया और हर्ष से गद्‌गद वाणी से कहा। हे भगवन! देवों के देवेश! मैं दुःख से आकुल हूँ।।५५-५८।। हे ईशान! हे शंकर! मुझको सांसारिक बन्धनों से मुक्त कर दो'।।५९-६०।। उसके बाद ब्रह्मा के इस निवेदन पर उमापति शंकर हँसने लगे। तब वे उमा और रुद्र के साथ अन्तर्धान हो गये।

मृत्युहीनः पुमान्विद्धि समृत्युः पद्मजोपि सः। किंतु देवेश्वरो रुद्रः प्रसीदति यदीश्वरः॥६१॥
न दुर्लभो मृत्युहीनस्तव पुत्रो ह्ययोनिज। मया च विष्णुना चैव ब्रह्मणा च महात्मना॥६२॥
अयोनिजं मृत्युहीनमसमर्थं निवेदितुम्।

शैलादिरुवाच

एवं व्याहृत्य विप्रेंद्रमनुगृह्य च तं घृणी॥६३॥
देवैर्वृतो ययौ देवः सितेनेभेन वै प्रभुः॥६४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे इन्द्रवाक्यं नामकैचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

इन्द्र बोले

अतः हे शिलाद! यह समझो कि इन सब लोकों में ऐसा व्यक्ति का मिलना कठिन है जो कि गर्भ से पैदा न हुआ हो और मृत्यु रहित (अमर) हो। यहाँ तक कि ब्रह्मा की भी मृत्यु होती है। लेकिन यदि रुद्र प्रसन्न हो जायँ तो गर्भ के बिना जन्म और मृत्यु रहित पुत्र प्राप्त करना तुम्हारे लिये कठिन नहीं है।।६१-६२।।

शैलादि बोले

इस प्रकार प्रबुद्ध ब्राह्मणों से कहकर देवों के साथ दयालु प्रभु इन्द्र अपने सफेद हाथी पर सवार हो कर चले गये।।६३-६४।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में इन्द्रवाक्य नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरोत्पत्तिः

सूत उवाच

गते पुण्ये च वरदे सहस्राक्षे शिलाशनः। आराधयन्महादेवं तपसाऽतोषयद्भवम्॥१॥
अथ तस्यैवमनिशं तत्परस्य द्विजस्य तु। दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं क्षणमिवाद्धुतम्॥२॥
वल्मीकेनावृतांगश्च लक्ष्यः कीटगणैर्मुनिः। वज्रसूचीमुखैश्चान्यै रक्तकीटैश्च सर्वतः॥३॥
निर्मांसरुधिरत्वग्वै निर्लेपः कुड्यवत्स्थितः। अस्थिशेषोऽभवत्पश्चात्तममन्यत शंकरः॥४॥
यदा स्पृष्टो मुनिस्तेन करेण च स्मरारिणा। तदैव मुनिशार्दूलश्चोत्ससर्ज क्लमं द्विजः॥५॥
तपतस्तस्य तपसा प्रभुस्तुष्टोथ शंकरः। तुष्टस्तवेत्यथोवाच सगणश्चोमया सह॥६॥
तपसानेन किं कार्यं भवतस्ते महामते। ददामि पुत्रं सर्वज्ञं सर्वशास्त्रार्थपारगम्॥७॥
ततः प्रणम्य देवेशं स्तुत्वोवाच शिलाशनः। हर्षगद्गदया वाचा सोमं सोमविभूषणम्॥८॥

शिलाद उवाच

भगवन्देवदेवेश त्रिपुरर्दन शंकर। अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सत्तम॥९॥

बयालीसवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वर की उत्पत्ति

सूत बोले

जब हजार नेत्रों वाले योग्य वरदाता चले गये, शिलाद ने अपनी तपस्या से, आराधना से, महादेव को प्रसन्न किया।।१।। यहाँ तक कि तत्पर ब्राह्मण जैसे निरन्तर पूजा करते हुए उसी प्रकार एक हजार दिव्य वर्ष चमत्कारिक ढंग से क्षण के समान बीत गया।।२।। वह मुनि के पूर्ण रूप से वल्मीक (बॉबी) से उसके सब अंग ढक गये। वह कीड़े-मकोड़ों और सुई के समान मुख खून चूसने वाले कीड़ों का शिकार हो गया।।३।। शरीर पर केवल चमड़ी रह गयी। माँस और खून से रहित बिना रेत के दीवार की तरह शरीर हो गया। तब शरीर हड्डियों का ढाँचा मात्र बच गया तब शंकर जी ने उसके विषय में सोचा।।४।। जब मुनि को कामदेव के शत्रु शिव ने हाथ से छुआ तो मुनि श्रेष्ठ ब्राह्मण की सब थकावट दूर हो गयी।।५।। उसकी तपस्या से भगवान शंकर प्रसन्न हो गये। उनके पास अपने गणों और उमा के साथ पहुँच कर उन्होंने उससे कहा, "मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ।।६।। हे महामति! यह तपस्या क्यों की? मैं तुमको एक सर्वज्ञ और शास्त्रों के अर्थों में पारंगत पुत्र दूँगा"।।७।। उसके बाद शिलाद ने देवेश शिव को प्रणाम करके और स्तुति करके चन्द्रशेखर, उमा के साथ विराजमान शिव जी से कहा।।८।।

सूत उवाच

पूर्वमाराधितः प्राह तपसा परमेश्वरः। शिलादं ब्रह्मणा रुद्रः प्रीत्या परमया पुनः॥१०॥

श्रीदेवदेव उवाच

पूर्वमाराधितो विप्र ब्रह्मणाहं तपोधन। तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च सुरोत्तमैः॥११॥
तव पुत्रो भविष्यामि नंदिनाम्ना त्वयोनिजः। पिता भविष्यसि मम पितुर्वै जगतां मुने॥१२॥
एवमुक्त्वा मुनिं प्रेक्ष्य प्रणिपत्य स्थितं घृणी। सोमः सोमोपमः प्रीतस्तत्रैवांतरधीयत॥१३॥
लब्धपुत्रः पिता रुद्रात्प्रीतो मम महामुने। यज्ञाङ्गणं महत्प्राप्य यज्ञार्थं यज्ञवित्तमः॥१४॥
तदंगणादहं शंभोस्तनुजस्तस्य चाज्ञया। संजातः पूर्वमेवाहं युगांताग्निसमप्रभः॥१५॥

ववर्षुस्तदा पुष्करावर्तकाद्या जगुः खेचराः किन्नराः सिद्धसाध्याः।
शिलादात्मजत्वं गते मय्युपेन्द्रः ससर्जाथ वृष्टिं सुपुष्पौघमिश्राम्॥१६॥

मां दृष्ट्वा कालसूर्याभं जटामुकुटधारिणम्। त्र्यक्षं चतुर्भुजं बालं शूलटंकगदाधरम्॥१७॥
वज्रिणं वज्रदंष्ट्रं च वज्रिणाराधितं शिशुम्। वज्रकुंडलिनं घोरं नीरदोपमनिःस्वनम्॥१८॥

शिलाद बोले

"हे भगवन्! हे सब से उत्तम देवप्रमुखों के देवता! हे त्रिपुरारी! मैं ऐसा पुत्र चाहता हूँ जो योनि से उत्पन्न न हुआ हो और मृत्यु से हीन हो अर्थात् जिसकी मृत्यु न हो"।।९।।

सूत बोले

रुद्र परमेश्वर जो कि ब्रह्मा द्वारा अपनी तपस्या से आराधना किये गये थे। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक शिलाद सें कहा।।१०।।

शिव बोले

"हे ब्राह्मण! हे तपोधन! पहले ब्रह्मा द्वारा आराधित मुनियों और देवताओं की तपस्या से अवतार के लिए, मैं योनि रहित (योनि से न उत्पन्न होकर) मैं नन्दी के नाम से तुम्हारा पुत्र हूँगा। हे मुनि! मैं तीन लोक का पिता हूँ और तुम मेरे पिता होगे'।।११-१२।। ऐसा कहकर और मुनि को प्रणाम करके खड़े देखकर प्रसन्न दयालु सोम (चन्द्रमा) से तुलना करने योग्य भगवान शिव उमा सहित वहाँ से अर्न्तधान हो गये।।१३।। हे महामुनि! रुद्र से पुत्र की प्राप्ति का आश्वासन पाकर मेरे पिता प्रसन्न हो गये। वह यज्ञ के जानने वालों में सर्वोत्तम थे। वह यज्ञ करने के लिए यज्ञ के एक बड़े यज्ञ मण्डप में गये। उस यज्ञ मण्डप में मैं सब की आज्ञा से उनके पुत्र के रूप में पैदा हुआ था। युग के अन्त में उठती हुई, जलती हुई अग्नि के प्रभा के समान मैं था।।१४-१५।। जब मैं शिलाद के पुत्र के रूप में पैदा हुआ तो पुष्कर, आवर्तक और अन्य मेघों ने वर्षा की। आकाश में चारी किन्नर-साध्य और सिद्धों ने गीत गाये। विष्णु ने सुगन्धित फूलों की वर्षा की।।१६।। काल सूर्य की आभा वाले, जटाधारी, त्रिनेत्र और चार भुजा वाले त्रिपुरारी, त्रिशूल, कुल्हाड़ी और वज्रधारी वज्र के समान दाँत वाले, वज्रधारी इन्द्र द्वारा शिशु रूप में आराधना किये जाने वाले, हीरे का कुण्डल पहने हुए भयानक मेघ के समान ध्वनि से

ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुः सर्वे सुरेन्द्रश्च मुनीश्वराः। नेदुः समंततः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥१९॥
ऋषयो मुनिशार्दूल ऋग्यजुः सामसंभवैः। मंत्रैर्माहेश्वरैः स्तुत्वा संप्रणेमुर्मुदान्विताः॥२०॥
ब्रह्मा हरिश्च रुद्रश्च शक्रः साक्षाच्छिवांबिका। जीवश्चेन्दुर्महातेजा भास्करः पवनोनलः॥२१॥
ईशानो निर्ऋतिर्यक्षो यमो वरुण एव च। विश्वेदेवास्तथा रुद्रा वसवश्च महाबलाः॥२२॥
लक्ष्मीः साक्षाच्छची ज्येष्ठा देवी चैव सरस्वती। अदितिश्च दितिश्चैव श्रद्धा लज्जा धृतिस्तथा॥२३॥
नंदा भद्रा च सुरभी सुशीला सुमनास्तथा। वृषेन्द्रश्च महातेजा धर्मो धर्मात्मजस्तथा॥२४॥
आवृत्य मां तथालिंग्य तुष्टुवुर्मुनिसत्तम। शिलादोपि मुनिर्दृष्ट्वा पिता मे दादृशं तदा॥२५॥
प्रीत्या प्रणम्य पुण्यात्मा तुष्टावेष्टप्रदं सुतम्।

शिलाद उवाच

भगवन्देवदेवेश त्रियंबक ममाव्यय॥२६॥
पुत्रोसि जगतां यस्मात्राता दुःखाद्धि किं पुनः। रक्षको जगतां यस्मात्पिता मे पुत्र सर्वग॥२७॥
अयोनिज नमस्तुभ्यं जगद्योने पितामह। पिता पुत्र महेशान जगतां च जगद्गुरो॥२८॥
वत्सवत्स महाभाग पाहि मां परमेश्वर। त्वयाऽहं नंदितो यस्मान्नंदी नाम्ना सुरेश्वर॥२९॥
तस्मान्नंदय मां नंदिन्नमामि जगदीश्वरम्। प्रसीद पितरौ मेद्य रुद्रलोकं गतौ विभो॥३०॥
पितामहाश्च भो नंदिन्नवतीर्णे महेश्वरे। ममैव सफलं लोके जन्म वै जगतां प्रभो॥३१॥

गरजने वाले मुझको देखकर ब्रह्मा, इन्द्र और अन्य देवतागण और मुनिश्वरों ने मेरी स्तुति की। अप्सराओं ने चारों ओर नारा लगाया और नृत्य किया। हे मुनीश्वर! ऋक्, यजुः, साम से उत्पन्न, महेश्वर मन्त्रों द्वारा अति प्रसन्न मुनियों ने मेरी स्तुति की प्रणाम किया।।१७-१९।। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, शिव, अम्बिका स्वयं, बृहस्पति, चन्द्रमा, महा तेजस्वी सूर्य, वायु देवता, ईशान, निर्ऋति, यक्ष, यम, वरुण, विश्वेदेवा, रुद्रगण, महाबलवान वसुगण, स्वयं लक्ष्मी, शची, ज्येष्ठा देवी, सरस्वती, देवी, अदिति, दिति, श्रद्धा, लज्जा, धृति, नन्दा, भद्रा, सुरभि, सुशीला, सुमना, शिव, महा तेजस्वी धर्म और धर्म पुत्र इन सब ने मेरे चारों ओर घेर कर और आलिङ्गन करके मेरी स्तुति किया। हे मुनिश्रेष्ठ! यहाँ तक मेरे पिता शिलाद मुनि ने मुझको उस प्रकार देखकर प्रेमपूर्वक मुझको प्रणाम किया। उस पुण्यात्मा ने प्रेमपूर्वक अपने पुत्र की स्तुति की जो कि अभीष्ट प्रदान करने वाला था।।२०-२३।।

शिलाद बोले

हे भगवन् देवों के देवेश! हे त्रिनेत्रधारी! हे अव्यय! तुम मेरे पुत्र हो। चूँकि तुम मेरे रक्षक और तीन लोक के दुःखों से रक्षा करने वाले मेरे रक्षक हो। हे पुत्र! मेरे पिता हो। तुम सर्वव्यापी हो, हे पुत्र! तुम अयोनिज (योनि से उत्पन्न नहीं) हो। तुमको नमस्कार। हे विश्व के उत्पत्ति के स्रोत! हे पितामह! हे पिता! हे पुत्र! हे महेशान! हे विश्व के रक्षक! हे जगत के गुरु! हे वत्स! हे परमेश्वर! हे महाभाग! मेरी रक्षा करो। हे सुरेश्वर! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम नन्दी के नाम से प्रसन्न हो। हे नंदी! मुझे प्रसन्न करो। मैं जगदीश्वर को नमस्कार करता हूँ। हे जगत

अवतीर्णे सुते नंदिन् रक्षार्थं मह्यमीश्वर। तुभ्यं नमः सुरेशान नंदीश्वर नमोस्तु ते॥३२॥
पुत्र पाहि महाबाहो देवदेव जगद्गुरो। पुत्रत्वमेव नंदीश मत्वा यत्कीर्तितं मया॥३३॥
त्वया तत्क्षम्यतां वत्स स्तवस्तव्य सुरासुरैः। यः पठेच्छृणुयाद्वापि मम पुत्र प्रभाषितम्॥३४॥
श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या मया सार्धं स मोदते। एवं स्तुत्वा सुतं बालं प्रणम्य बहुमानतः॥३५॥
मुनीश्वरांश्च संप्रेक्ष्य शिलादोवाच सुव्रतः। पश्यध्वं मुनयः सर्वे महाभाग्यं ममाव्ययः॥३६॥
नन्दी यज्ञाङ्गणे देवश्चावतीर्णो यतः प्रभुः। मत्समः कः पुमाँल्लोके देवो वा दानवोपि॥३७॥
एष नंदी यतो जातो यज्ञभूमौ हिताय मे॥३८॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नंदिकेश्वरोत्पत्तिर्नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥

पिता! हे प्रभु मेरे! हे नंदीश्वर! रुद्र के रूप को गये मेरे माता-पिता प्रसन्न हों। हे प्रभु! मेरे पितामह भी रुद्र रूप हो गये। हे नन्दी! जब महेश्वर ने मेरा जन्म लिया तो यह मेरा जन्म संसार में सफल रहा।।२४-३१।। हे ईश्वर जब तुम मेरी रक्षा के लिए मेरे पुत्र के रूप में अवतार लिए हो। हे ईश्वर! हे नन्दी! हे देवताओं के स्वामी तुमको नमस्कार। हे नन्दीश्वर! तुमको नमस्कार।।३२।। हे शक्तिशाली! भुजा वाले मेरे पुत्र मेरी रक्षा करो। हे देवताओं के स्वामी! हे तीनों लोकों के रक्षक! हे प्रिय! मैंने पुत्र के रूप में तुमको माँगते हुए जो कुछ कहा कृपया मुझको क्षमा करो। तुम देवताओं और असुरों के द्वारा प्रार्थनाओं से स्तुति किये जाने के योग्य हो। जो कोई मेरे पुत्र को सम्बोधित किये गये इस भाषण को पढ़ता है या सुनता है, जो कोई भक्तिपूर्वक इसको ब्राह्मणों को सुनाता है। वह मेरे साथ आनन्द करता है। अपने पुत्र बालक की स्तुति करने के बाद सम्मानपूर्वक उसको प्रणाम करके मुनिश्वरों को देखकर सुव्रत शिलाद ने कहा, "हे मुनियों मेरे सौभाग्य को देखा। यज्ञमण्डप में अव्यय भगवान ने नन्दी के रूप में अवतार लिया है। विश्व में मेरे समान कौन होगा? न तो देवता न राक्षसगण मेरे समान हैं, क्योंकि मेरे कल्याण के लिए यज्ञमण्डप में इस नन्दी ने जन्म लिया है"।।३३-३८।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में नन्दिकेश्वर उत्पत्ति नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४२॥

—**—

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

नंदिकेश्वरप्रादुर्भावनंदिकेश्वराभिषेकमन्त्रः

नंदिकेश्वर उवाच

मया सह पिता हृष्टः प्रणम्य च महेश्वरम्। उटजं स्वं जगामाशु निधिं लब्ध्वेव निर्धनः॥१॥
यदागतोहमुटजं शिलादस्य महामुने। तदा वै दैविकं रूपं त्यक्त्वा मानुष्यमास्थितः॥२॥
नष्टा चैव स्मृतिर्दिव्या येन केनापि कारणात्। मानुष्यमास्थितं दृष्ट्वा पिता मे लोकपूजितः॥३॥
विललापाति दुःखार्तः स्वजनैश्च समावृतः। जातकर्मादिकाश्चैव चकार मम सर्ववित्॥४॥
शालंकायनपुत्रो वै शिलादः पुत्रवत्सलः। उपदिष्टा हि तेनैव ऋक्शाखा यजुषस्तथा॥५॥
सामशाखासहस्त्रं च साङ्गोपाङ्गं महामुने। आयुर्वेदं धनुर्वेदं गांधर्वं चाश्वलक्षणम्॥६॥
हस्तिनां चरितं चैव नराणां चैव लक्षणम्। संपूर्णे सप्तमे वर्षे ततोथ मुनिसत्तमौ॥७॥
मित्रावरुणनामानौ तपोयोगबलान्वितौ। तस्याश्रमं गतौ दिव्यौ दृष्टुं मां चाज्ञया विभोः॥८॥
ऊचतुश्च महात्मानौ मां निरीक्ष्य मुहुर्मुहुः। तात नंद्ययमल्पायुः सर्वशास्त्रार्थपारगः॥९॥
न दृष्टमेवमाश्चर्यमायुर्वर्षादतः परम्। इत्युक्तवति विप्रेन्द्रः शिलादः पुत्रवत्सलः॥१०॥
समालिंग्य च दुःखार्तो रुरोदातीव विस्वरम्। हा पुत्र पुत्र पुत्रेति पपात च समंततः॥११॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वर अभिषेक विचार

नन्दिकेश्वर बोले

महेश्वर को प्रणाम करने के बाद मेरे प्रसन्न पिता मुझको साथ लेकर अपनी कुटी में लौट गये जैसे कोई निर्धन व्यक्ति निधि (खजाना) पाने पर।।१।। हे महामुनि! जब मैं शिलाद की कुटी में गया। मैंने अपना दिव्य रूप छोड़ मनुष्य रूप धारण कर लिया।।२।। कुछ अज्ञात कारणवश मेरी दिव्य स्मृति नष्ट हो गई। लोक में पूजित मेरे पिता, अपने कुटुम्बी जनों से घिरे हुए, बेहद दुःखी होकर विलाप करने लगे। सर्वज्ञ मेरे पिता ने मेरा जातकर्म आदि धार्मिक संस्कार किया।।३-४।। शालंकायन के पुत्र शिलाद अपने पुत्र को बहुत प्यार करते थे। उन्होंने मुझको ऋग्वेद की शाखाएँ, यजुर्वेद और हजारों शाखाओं एवं अंगों तथा उपांगों सहित सामवेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद (संगीतशास्त्र) अश्वलक्षण (घोड़ों के गुण दोष) हाथी के लक्षण तथा मनुष्यों के लक्षण आदि की शिक्षा दी (पढ़ाया)। जब मैं सात वर्ष का हुआ तब यौगिक शक्ति से सम्पन्न दो मुनि मुझको देखने के लिये मेरे पिता के आश्रम में पधारे।।५-८।। मुझको देखकर उन महात्माओं ने बारम्बार कहा! 'हे तात! यह नन्दी सब शास्त्रों के अर्थ का ज्ञाता है किन्तु यह अल्पायु है। ऐसा आश्चर्य कभी कहीं नहीं देखा गया है। इसकी आयु एक वर्ष से अधिक शेष नहीं है, जब उन लोगों ने शिलाद से ऐसा कहा तो पुत्र वत्सल शिलाद मेरा

अहो बलं दैवविधेर्विधातुश्चेति दुःखितः। तस्य चार्तस्वरं श्रुत्वा तदाश्रमनिवासिनः॥१२॥
निपेतुर्विह्वलात्यर्थं रक्षाश्चक्रुश्च मंगलम्। तुष्टुवुश्च महादेवं त्रियंबकमुमापतिम्॥१३॥
हुत्वा त्रियंबकेनैव मधुनैव च संप्लुताम्। दूर्वामयुतसंख्यातां सर्व द्रव्यसमन्विताम्॥१४॥
पिता विगतसंज्ञश्च तथा चैव पितामहः। विचेष्टश्च ललापासौ मृतवन्निपपात च॥१५॥
मृत्योर्भीतोहमचिराच्छिरसा चाभिवंद्य तम्। मृतवत्पतितं साक्षात्पितरं च पितामहम्॥१६॥
प्रदक्षिणीकृत्य च तं रुद्रजाप्यरतोऽभवम्। हृत्पुंडरीके सुषिरे ध्यात्वा देवं त्रियंबकम्॥१७॥
त्र्यक्षं दशभुजं शान्तं पंचवक्त्रं सदाशिवम्। सरितश्चांतरे पुण्ये स्थितं मां परमेश्वरः॥१८॥
तुष्टोब्रवीन्महादेवः सोमः सोमार्धभूषणः। वत्स नंदिन्महाबाहो मृत्योर्भीतिः कुतस्तव॥१९॥
मयैव प्रेषितौ विप्रौ मत्समस्त्वं न संशयः। वत्सैनत्तव देहं च लौकिकं परमार्थतः॥२०॥
नास्त्येव दैविकं दृष्टं शिलादेन पुरा तव। देवैश्च मुनिभिः सिद्धैर्गंधर्वैर्दानवोत्तमैः॥२१॥
पूजितं यत्पुरा वत्स दैविकं नंदिकेश्वर। संसारस्य स्वभावोयं सुखं दुःखं पुनः पुनः॥२२॥
नृणां योनिपरित्यागः सर्वथैव विवेकिनः। एवमुक्त्वा तु मां साक्षत्सर्वदेवमहेश्वरः॥२३॥
कराभ्यां सुशुभाभ्यां च उभाभ्यां परमेश्वरः। पस्पर्श भगवान् रुद्रः परमार्तिहरो हरः॥२४॥
उवाच च महादेवस्तुष्टात्मा वृषभध्वजः। निरीक्ष्य गणपांश्चैव देवीं हिमवतः सुताम्॥२५॥

आलिंगन करके दुःखी हो बहुत विह्वल होकर बहुत रोये। 'हे मेरे आत्मा! हे मेरे पुत्र! हे मेरे पुत्र!! वह पृथ्वी पर उतान होकर गिर पड़े।।९-११।। दुःखित होकर देव और विधाता का बल आश्चर्यमय है? उनकी दीन और आर्तवाणी को सुनकर आश्रमवासी लोग विह्वल हो वहाँ इकट्ठा हो गये। उस अशुभ के लिये मंगल धार्मिक कृत्य करने लगे। उन्होंने तीन नेत्रधारी उमापति महादेव की स्तुति की।।१२-१३।। त्रियम्बक मन्त्र का जप करते हुए उन लोगों ने मधु से लिप्त दूब और पूजा की अन्य सामग्री सहित एक हजार बार होम किया।।१४।। अचेत पिता और पितामह को मृतवत् (मरा हुआ सा) देखकर मैं भयभीत हो गया।।१५।। पिता और पितामह को मृतक की तरह भूमि पर पड़े देखकर मैंने उनकी प्रदक्षिणा की और रुद्रजाप करने में लीन हो गया। मैंने अपने हृदय के कमल में विराजमान त्रिलोचन भगवान शिव का ध्यान किया जो दशभुजा धारण किये हुए और पंचमुखी थे। मैंने देखा कि मैं नदी के किनारे खड़ा हूँ और उमा के साथ प्रसन्न भगवान शिव चन्द्रभूषण मेरे सामने प्रकट हुए और कहा, ''हे महाबाहु, प्रिय नन्दी 'तुमको कहाँ से मृत्यु का भय?''।।१६-१९।। वे दोनों ब्राह्मण मेरे द्वारा भेजे गये थे। तुम मेरे समान हो। इसमें सन्देह नहीं है। वास्तव में यह तुम्हारा देह लौकिक है। यह दिव्य नहीं है। जिस शरीर का दर्शन और पूजा शैलाद, देवों, मुनियों, सिद्धों, चारणों, दानवों और मुनियों ने किया था, वह शरीर दिव्य था। हे नन्दीश्वर! संसार का यह स्वभाव है कि दुःख और सुख बार-बार आते हैं? एक के बाद एक आते हैं। विवेकी लोगों का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे योनि का परित्याग करें। अर्थात् यह उपाय न करें कि योनि से जन्म न हो। ऐसा कहकर तब देव महेश्वर, परम विपत्तियों को हरनेवाले हर वृषध्वज ने प्रसन्न हो कर अपने शुभ हाथों से मुझे छुआ और गणेश्वरों और पार्वती देवी को देखकर कहा।।२०-२४।। 'तुम अपने मित्रों और अपने

समालोक्य च तुष्टात्मा महादेवः सुरेश्वरः। अजरो जरया त्यक्तो नित्यं दुःखविवर्जितः॥२६॥
अक्षयश्चव्ययश्चैव सपिता ससुहृज्जनः। ममेष्टो गणपश्चैव मद्वीर्यो मत्पराक्रमः॥२७॥
इष्टो मम सदा चैव मम पार्श्वगतः सदा। मद्बलश्चैव भविता महायोगबलान्वितः॥२८॥
एवमुक्त्वा च मां देवो भगवान् सगणस्तदा। कुशेशयमयीं मालां समुन्मुच्यात्मनस्तदा॥२९॥
आबबंध महातेजा मम देवो वृषध्वजः। तयाहं मालया जातः शुभया कण्ठसक्तया॥३०॥
त्र्यक्षो दशभुजश्चैव द्वितीय इव शंकरः। तत एव समादाय हस्तेन परमेश्वरः॥३१॥
उवाच ब्रूहि किं तेद्य ददामि वरमुत्तमम्। ततो जटाश्रितं वारि गृहीत्वा चातिनिर्मलम्॥३२॥
उक्ता नदी भवस्वेति उत्ससर्ज वृषध्वजः। ततः सा दिव्यतोया च पूर्णासितजला शुभा॥३३॥
पद्मोत्पलवनोपेता प्रावर्तत महानदी॥ तामाह च महादेवो नदीं परम शोभनाम्॥३४॥
यस्माज्जटोकादेव प्रवृत्ता त्वं महानदी। तस्माज्जटोदका पुण्या भविष्यसि सरिद्वरा॥३५॥
त्वयि स्नात्वा नरः कश्चित्सर्वपापैः प्रमुच्यते। ततो देव्या महादेवः शिलादतनयं प्रभुः॥३६॥
पुत्रस्तेऽयमिति प्रोच्य पादयोः संन्यपातयत्। सा मामाघ्राय शिरसि पाणिभ्यां परिमार्जती॥३७॥
पुत्रप्रेम्णाभ्याषिञ्चच्च स्त्रोतोभिस्तनयैस्त्रिभिः। पयसा शंखगौरेण देवदेवं निरीक्ष्य सा॥३८॥

तानि स्त्रोतांसित्रीण्यस्याः स्त्रोतस्विन्योभवंस्तदा।
नदीं त्रिस्त्रोतसं देवो भगवानवदद्भवः॥३९॥
त्रिस्त्रोतसं नदीं दृष्ट्वा वृषः परमहर्षितः।
ननाद नादात्तस्माच्च सरिदन्या ततोऽभवत्॥४०॥

वृषध्वनिरिति ख्याता देवदेवेन सा नदी। जांबूनदमयं चित्रं सर्वरत्नमयं शुभम्॥४१॥

पिता सहित अजर-अमर रहोगे। तुम सबको बुढ़ापा, दुःख और मृत्यु का भय नहीं है। तुम अनश्वर और अव्यय रहोगे। तुम मेरे बल और पराक्रम को प्राप्त होगे। तुम मेरे इष्ट गणेश्वर होगे। तुम सदा मेरे प्रिय और मेरे समीप (बगलगीर) रहोगे। तुमको मेरा बल प्राप्त होगा और महा योग बल प्राप्त होगा''।।२५-२८।। ऐसा कहकर अपने गणों सहित भगवान शिव अपने गले की माला को उतार कर प्रसन्न हो महातेजस्वी वृषभध्वज ने मेरे गले में बाँध दिया। इस शुभ शानदार माला को पहिने मैं दूसरा दस भुजाधारी वृषभध्वज शंकर-सा हो गया।।२९-३१।। उसके बाद अपनी जटा से जल लेकर मुझ पर डालकर भगवान शंकर ने कहा, ''बोलो तुमको क्या वर दूँ?'' एक नदी बनो जो दिव्य जल से भरी हो, कमलों और उत्पलों से युक्त हो। चूँकि तुम मेरी जटा के जल से उत्पन्न हुई हो अतः तुम्हारा नाम जटोदका नदी होगा।।३२-३५।। तुम में स्नान करने से कोई भी व्यक्ति सब पापों से मुक्त हो जायगा। भगवान महेश्वर ने उमा से कहा, ''यह तुम्हारा पुत्र है'' और फिर भगवान शंकर ने शैलाद के चरणों में मुझको गिराकर कहा कि, ''यह तुम्हारा पुत्र है।'' माता उमा ने मेरा सिर सूंघकर मुझको चूमा और थपथपाया। अपने पुत्रप्रेम में शंख के समान सफेद आँसू की तीन बूँदों को ढरकाकर और तीन पुत्रों की मातारूप हो, शिव की ओर देखा। इन तीन गिरी हुई आँसुओं की बूदों से तीन जलधाराएँ (तीन नदियाँ) बन गईं। इसीलिए भगवान शिव ने उसको त्रिस्त्रोतस् कहा है।।३६-३९।। त्रिस्त्रोतस् (तीन शाखाओं वाली) नदी को देखकर शिव जी प्रसन्न हो गये। इस नदी से नाद (घोष) हुआ। उससे एक दूसरी नदी उत्पन्न हुई। इस नदी का नाम देवों के

स्वं देवश्चाद्भुतं दिव्यं निर्मितं विश्वकर्मणा। मुकुटं चाबबंधेशो मम मूर्ध्नि वृषध्वजः॥४२॥
कुंडले च शुभे दिव्ये वज्रवैडूर्यभूषिते। आबबंध महादेवः स्वयमेव महेश्वरः॥४३॥
मां तथाभ्यर्चितं व्योम्नि दृष्ट्वा मेघैः प्रभाकरः। मेघांभसा चाभ्यषिंचच्छिलादनमथो मुने॥४४॥
तस्याभिषिक्तस्य तदा प्रवृत्ता स्रोतसा भृशम्। यस्मात्सुवर्णान्निःसृत्य नद्येषा संप्रवर्तते॥४५॥
स्वर्णोदिकेति तामाह देवदेवस्त्रियंबकः। जाम्बूनदमयाद्यस्माद्द्वितीया मुकुटाच्छुभा॥४६॥
प्रावर्तत नदी पुण्या ऊचुर्जांबूनदीति ताम्। एतत्पंचनदं नाम जप्येश्वरसमीपगम्॥४७॥
यः पंचनदमासाद्य स्नात्वा जप्येश्वरेश्वरम्। पूजयेच्छिवसायुज्यं प्रयात्येव न संशयः॥४८॥
अथ देवो महादेवः सर्वभूतपतिर्भवः। देवीमुवाच शर्वाणीमुमां गिरिसुतामजाम्॥४९॥

देवि नंदीश्वरं देवमभिषिंचामि भूतपम्।
गणेन्द्रं व्याहरिष्यामि किं वा त्वं मन्यसेऽव्यये॥५०॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भवानी हर्षितानना। स्मयंती वरदं प्राह भवं भूतपतिं पतिम्॥५१॥
सर्वलोकाधिपत्यं च गणेशत्वं तथैव च। दातुमर्हसि देवेश शैलादिस्तनयो मम॥५२॥
ततः स भगवाञ्शर्वः सर्वलोकेश्वरेश्वरः। सस्मार गणपान् दिव्यान्देवदेवो वृषध्वजः॥५३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नंदिकेश्वरप्रादुर्भावनंदिकेश्वराभिषेकमंत्रो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

देव शंकर ने 'वृषध्वनि' रखा। भगवान वृषभध्वज ने विश्वकर्मा द्वारा बनाया हुआ, सब रत्नों से जड़ित, सोने का अद्भुत और दिव्य मुकुट अपने सिर से उतारकर मेरे सिर पर बाँध दिया। महेश्वर महादेव ने स्वयं अपने शानदार दिव्य कुण्डलों को मेरे कान में पहना दिया जो हीरे और रत्न से भूषित थे।।४०-४३।। हे मुनि! मुझको इस प्रकार सम्मानित देखकर सूर्य ने आकाश में मेघों के जल से शिलादन का अभिषिंचन किया। जब सूर्य ने इस जल को मेरे ऊपर डाला तो उस अभिषिक्त सोने के जल की एक नदी बन गई। भगवान त्रिलोचन ने उस नदी का नाम स्वर्णोदका रखा। चूँकि सोने के बने मुकुट से शुभ दूसरी नदी उत्पन्न हुई, अतः इसको जांबू नदी कहते है। इस तरह भगवान जप्येश्वर के समीप जाने वाली पाँच नदियाँ हैं।।४४-४७।। जो पंचनद का दर्शन करता है, उसमें पवित्र डुबकी लगाता है (स्नान करता है) और भगवान जप्येश्वर की पूजा करता है, वह निःसन्देह शिव का सायुज्य प्राप्त करता है।।४८।। हे देवी! मैं नन्दीश्वर को भूतों के स्वामी पर यह अभिसिंचन करता हूँ। मैं उसको गजेन्द्र (गणाधिप) कहूँगा। हे शर्वाणी अव्यये पार्वती! तुम क्या सोचती हो?।।४९-५०।। उनकी इस बात को सुनकर प्रसन्न हृदय वाली पार्वती ने अपने वरदायक पति शिव से कहा, हे प्रभु! शैलादि मेरा अपना पुत्र है। आप अब लोकों के स्वामी और गणेन्द्र होने का वर देने के योग्य हैं। इसके बाद वृषभध्वज ने दिव्य गणों के प्रमुखों का स्मरण किया।।५१-५३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में नन्दीश्वर अभिषेक विचार नामक तैतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

नन्दिकेश्वराभिषेकः

शैलादिरुवाच

स्मरणादेव रुद्रस्य संप्राप्ताश्च गणेश्वराः। सर्वे सहस्रहस्ताश्च सहस्रायुधपाणयः॥१॥
त्रिनेत्राश्च महात्मानस्त्रिदशैरपि वंदिताः। कोटिकालाग्निसंकाशा जटामुकुटधारिणः॥२॥
दंष्ट्राकरालवदना नित्या बुद्धाश्च निर्मलाः॥
कोटिकोटिगणैस्तुल्यैरात्मना च गणेश्वराः। असंख्याता महात्मानस्तत्राजग्मुर्मुदा युताः॥३॥
गायंतश्च द्रवंतश्च नृत्यंतश्च महाबलाः। मुखाडंबरवाद्यानि वादयंतस्तथैव च॥४॥
रथैर्नागैर्हयैश्चैव सिंहमर्कटवाहनाः। विमानेषु तथारूढा हेमचित्रेषु वै गणाः॥५॥
भेरीमृदंगकाद्यैश्च पणवानकगोमुखैः। वादित्रैर्विविधैश्चान्यैः पटहैरेकपुष्करैः॥६॥
भेरीमुरजसंनादैराडंबरकडिंडिमैः। मर्दलैर्वेणुवीणाभिर्विविधैस्तालनिःस्वनैः॥७॥
दर्दुरैस्तलघातैश्च कच्छपैः पणवैरपि। वाद्यमानैर्महायोगा आजग्मुर्देवसंसदम्॥८॥
ते गणेशा महासत्त्वाः सर्वदेवेश्वरेश्वराः। प्रणम्य देवं देवीं च इदं वचनमब्रुवन्॥९॥
भगवन्देवदेवेश त्रियंबक वृषध्वज। किमर्थं च स्मृता देव आज्ञापय महाद्युते॥१०॥

चौवालिसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर का अभिषेक

शिलादि बोले

रुद्र के स्मरण करने पर गणेश्वर लोग वहाँ उपस्थित हो गये। उन सब के एक-एक हजार भुजाएँ थी। उन हजारों हाथों में अस्त्र थे।।१।। उनके तीन नेत्र थे। वे महान गण देवताओं द्वारा नमस्कृत थे। वे करोड़ों प्रलयकारी अग्नि के समान थे। वे सब जटा और मुकुटधारी थे।।२।। महान आत्मा वाले गणों के असंख्य स्वामी प्रसन्न मुद्रा में वहाँ पर आये। वे करोड़ों-करोड़ों अनुचरों के साथ थे जो गणेश्वरों के समान शक्तिशाली थे। वे शुद्ध थे और प्रबुद्ध थे। उनके दृढ़ दाँतों के कारण उनके मुख विकराल थे।।३।। वे महाबली गण गाते, दौड़ते, नाचते, अनेक बाजों को मुँह से बजाते और आँखों से इशारे करते हुए आये।।४।। वे गण लोग रथ, हाथी, घोड़ों, सिंहों और बन्दरों पर सवार थे। कुछ गण स्वर्ण से चित्रित विमान में भी सवार थे।।५।। महान योगिक शक्ति से सम्पन्न गणेश्वर ढोल, भेरी, मृदंग, पणव, आनक, गोमुख, पटह, एकपुष्कर, मुरज, डिण्डिम, मरदल, वेणु (वंशी) तथा अन्य विविध प्रकार के प्रतीक दर्दुर, ताल घात, कच्छप और पणव आदि वाद्य यन्त्रों को बजाते हुए भगवान शिव की सभा में आये।।६-८।। उन गणेश्वरों ने शक्तिशाली और देवताओं के प्रमुखों के देवेश शिव और पार्वती को प्रणाम करके इस प्रकार कहा।।९।। "भगवन् देव देवेश! त्रिअंबक! वृषभध्वज? हे देव! हम लोगों

किं सागराञ्शोषयामो यमं वा सह किंकरैः। हन्मो मृत्युसुतां मृत्युं पशुवद्धन्म पद्मजम्॥११॥
बध्वेन्द्रं सह देवैश्च सह विष्णुं च वायुना। आनयामः सुसंक्रुद्धा दैत्यान्वा सह दानवैः॥१२॥
कस्याद्य व्यसनं घोरं करिष्यामस्तवाज्ञया। कस्य वाद्योत्सवो देव सर्वकामसमृद्धये॥१३॥
तांस्तथावादिनः सर्वान् गणेशान् सर्वसंमतान्। उवाच देवः संपूज्य कोटिकोटिशतान्प्रभुः॥१४॥
शृणुध्वं यत्कृते यूयमिहाहूता जगद्धिताः। श्रुत्वा च प्रयतात्मानः कुरुध्वं तदशंकिताः॥१५॥
नंदीश्वरोऽयं पुत्रो नः सर्वेषामीश्वरेश्वरः। विप्रोयं नायकश्चैव सेनानीर्वः समृद्धिमान्॥१६॥
तमिमं मम संदेशाद्यूयं सर्वेपि संमताः। सेनान्यमभिषिंचवध्वं महायोगपतिं पतिम्॥१७॥
एवमुक्ता भगवता गणपाः सर्व एव ते। एवमस्त्विति संमंत्र्य संभारानाहरंस्ततः॥१८॥
तस्य सर्वाश्रयं दिव्यं जांबूनदमयं शुभम्। आसनं मेरुसंकाशं मनोहरमुपाहरन्॥१९॥
नैकस्तंभमयं चापि चामीकरवरप्रभम्। मुक्तादामावलंबं च मणिरत्नावभासितम्॥२०॥
स्तंभैश्च वैडूर्यमयैः किंकिणीजालसंवृतम्। चारुरत्नकसंयुक्तं मंडपं विश्वतोमुखम्॥२१॥
कृत्वा विन्यस्य तन्यध्ये तदासनवरं शुभम्। तस्याग्रतः पादपीठं नीलवज्रावभासितम्॥२२॥
चक्रुः पादप्रतिष्ठार्थं कलशौ चास्य पार्श्वगौ।
संपूर्णौ परमाम्भोभिररविंदावृताननौ॥२३॥
कलशानां सहस्त्रं तु सौवर्णं राजतं तथा। ताम्रजं मृन्मयं चैव सर्वतीर्थांबुपूरितम्॥२४॥

का स्मरण क्यों किया! आज्ञा दीजिये।।१०।। क्या हम लोग समुद्र को सोख लें? क्या हम लोग यम को नौकरों सहित अन्य को मार डालें? या हम लोग मृत्य के देवता की बेटी मृत्यु को मार डालें? या पद्मज ब्रह्मा की पशु की तरह हत्या कर दें।।११।। क्रुद्ध हम लोग देवताओं सहित इन्द्र को या वायु सहित विष्णु को या दैत्यों साहित दानवों को बाँधकर यहाँ ले आवें?।।१२।। तुम्हारी आज्ञा से आज किसका घोर अनर्थ, विपत्ति और विनाश कर दें? किसकी कामना की पूर्ति और समृद्धि के लिए आज उत्सव है?''।।१३।। भगवान शिव ने वैसा कहने वाले उन करोड़ों और सैकड़ों करोड़ों गणेश्वरों का सम्मान करके उनसे कहा।।१४।। ''सुनो! विश्व के कल्याण के लिए जिस काम के लिए तुम लोगों को बुलाया गया है। हे शुद्ध आत्मा वालों! तुम सुनकर तदनुसार बिना किसी शंका के करो।।१५।। यह नन्दीश्वर मेरा पुत्र है। यह सब प्रमुखों का स्वामी है। यह ब्राह्मण है, नायक है, तुम्हारा नेता और सेनानी है, और समृद्धवान है।।१६।। इसलिये मेरी आज्ञा से तुम सब अपना स्वामी और सेनानी स्वीकार करके महायोगपति इसका अभिषेक करो''।।१७।। भगवान शिव द्वारा इस प्रकार आज्ञा पाकर सब गण लोग आपस में परामर्श करके वैसा करना स्वीकार किया। 'एवमस्तु' ऐसा ही हो। यह कहकर आवश्यक सामग्री को जुटाने में लग गये।।१८।। वे दिव्य स्वर्ग से बना हुआ सिंहासन ले आये जो मेरु के समान मनोहर था। उन्होंने सोने की प्रभा से युक्त कई खम्भों का मण्डप बनाया। मोतियों की माला की झालरें जिसमें मणि और रत्न जड़ित थे लाये। उस मण्डप के मध्य में एक आसन रखा। उसके सामने नील पत्थर पादपीठ रखा। उसके पास उन्होंने दो जल कलश पादपीठ के अगल-बगल रखा। वे सुगन्धित जल से भरे थे और कमल के फूलों से

वासोयुगं तथा दिव्यं गंधं दिव्यं तथैव च। केयूरे कुंडले चैव मुकुटं हारमेव च॥२५॥
छत्रं शतशलाकं च वालव्यजनमेव च। दत्तं महात्मना तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥२६॥
शंखहारांगगौरेण पृष्ठेनापि विराजितम्। व्यजनं चंद्रशुभ्रं च हेमदंडं सुचामरम्॥२७॥
ऐरावतः सुप्रतीको गजावेतौ सुपूजितौ। मुकुटं कांचनं चैव निर्मितं विश्वकर्मणा॥२८॥
कुंडले चामले दिव्ये वज्रं चैव वरायुधम्। जांबूनदमयं सूत्रं केयूरद्वयमेव च॥२९॥
संभाराणि तथान्यानि विविधानि बहून्यपि। समंतान्निन्युरव्यग्रा गणपा देवसंमताः॥३०॥
ततो देवाश्च सेंद्राश्च नारायणमुखास्तथा। मुनयो भगवान्ब्रह्मा नवब्रह्माण एव च॥३१॥
देवैश्च लोकाः सर्वे ते ततो जग्मुर्मुदा युताः। तेष्वागतेषु सर्वेषु भगवान्परमेश्वरः॥३२॥
सर्वकार्यविधिं कर्तुमादिदेश पितामहम्। पितामहोपि भगवान् नियोगादेव तस्य तु॥३३॥
चकार सर्वं भगवानभिषेकं समाहितः। अर्चयित्वा ततो ब्रह्मा स्वयमेवाभ्यषेचयत्॥३४॥
ततो विष्णुस्ततः शक्रो लोकपालास्तथैव च। अभ्यषिंचंत विधिवद्गणेन्द्रं शिवशासनात्॥३५॥
ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव पितामहपुरोगमाः। स्तुतवत्सु ततस्तेषु विष्णुः सर्वजगत्पतिः॥३६॥
शिरस्यंजलिमादाय तुष्टाव च समाहितः। प्रांजलिः प्रणतो भूत्वा जयशब्दं चकार च॥३७॥
ततो गणाधिपाः सर्वे ततो देवास्ततोऽसुराः। एवं स्तुतश्चाभिषिक्तो देवैः सब्रह्मकैस्तदा॥३८॥
उद्वाहश्च कृतस्तत्र नियोगात्परमेष्ठिनः। मरुतां च सुता देवी सुयशाख्या बभूव या॥३९॥
लब्धं शशिप्रभं छत्रं तया तत्र विभूषितम्। चामरे चामरासक्तहस्ताग्रैः स्त्रीगणैर्युता॥४०॥

ढके थे।।१९-२३।। वहाँ पर सोने, चाँदी, ताँबे और मिट्टी के हजारों कलश तीर्थों के जल से भरे हुए रखे थे।।२४।। परमेष्ठी ब्रह्मा महान आत्मा ने एक जोड़ा वस्त्र, दिव्य गंध, केयूर, कुण्डल, मुकुट, हार, सौ तीलियों वाला छाता और छोटा पंखा दिया।।२५-२६।। एक सुन्दर सोने की मूठ (दण्डी) लगा हुआ चामर, जो चन्द्रमा के समान सफेद और उसका दण्ड शंख या मोतियों की माला के समान चमकदार था।।२७।। दिव्य हाथी ऐरावत और सुप्रतीक अच्छी तरह पूजित थे। विश्वकर्मा ने एक सोने का मुकुट बनाया।।२८।। सुन्दर दो कुण्डल और दिव्य वज्र अस्त्र वहाँ रखा गया था। "सोने का सूत्र और दो केयूर रखे गये। देवताओं द्वारा पूजित शिव के गणों ने चारों ओर सब आवश्यक शक्ति अग्नियों को लाकर वहाँ एकत्र किया"।।२९-३०।।

वहाँ पर देवताओं सहित इन्द्र, विष्णु तथा अन्य, ब्रह्मा और सब मुनि संस्कार को कराने के लिए उपस्थित थे। शिव के निर्देश के अनुसार बहुत ध्यानपूर्वक ब्रह्मा ने अभिषेक कराया। तब ब्रह्मा ने पूजा करके स्वयं अभिषेक किया।।३१-३४।। शिव की आज्ञा से विष्णु, इन्द्र और अन्य लोकपालों ने गणेन्द्र का अभिषेक किया।।३५।। मुनियों ने अपने के साथ वालों के सहित ब्रह्मा ने उनकी स्तुति की। विष्णु, विश्व के पालनकर्ता ने सिर पर अंजलि बाँधकर दत्तचित्त होकर स्तुति की और जय-जयकार किया।।३६-३७।। तब एक बार एक क्रम से गणों के अधिपों, देवों और असुरों ने स्तुति की और अभिषेचन किया। उसके बाद परमेष्ठी की आज्ञा से मरुतों की पुत्री सुयशा के साथ विवाह भी सम्पन्न हुआ।।३८-३९।। चन्द्रमा की प्रभा के समान, खूब सजावट से युक्त एक

सिंहासनं च परमं तया चाधिष्ठितां मया। अलंकृता महालक्ष्म्या मुकुटाद्यैः सुभूषणैः॥४१॥
लब्धो हारश्च परमो देव्याः कंठगतस्तथा। वृषेन्द्रश्च सितो नागः सिंहः सिंहध्वजस्तथा॥४२॥
रथश्च हेमच्छत्रं च चंद्रबिंबसमप्रभम्।
अद्यापि सदृशः कश्चिन्मया नास्ति विभुः क्वचित्॥४३॥
सान्वयं च गृहीत्वेशस्तथा संबंधिबांधवैः। आरुह्य वृषमीशानो मया देव्या गतः शिवः॥४४॥
तदा देवीं भवं दृष्ट्वा मया च प्रार्थयन् गणैः। मुनिदेवर्षयः सिद्धा आज्ञां पाशुपतीं द्विजाः॥४५॥
अथाज्ञां प्रददौ तेषामर्हाणामाज्ञया विभोः। नंदिको नगजाभर्तुस्तेषां पाशुपतीं शुभाम्॥४६॥
तस्माद्धि मुनयो लब्ध्वा तदाज्ञां मुनिपुंगवात्। भवभक्तास्तदा चासंस्तस्मादेवं समर्चयेत्॥४७॥
नमस्कारविहीनस्तु नाम उद्गिरयेद्भवे। ब्रह्मघ्नदशसंतुल्यं तस्य पापं गरीयसम्॥४८॥
तस्मात्सर्वप्रकारेण नमस्कारादिमुच्चरेत्। आदौ कुर्यान्नमस्कारं तदंते शिवतां व्रजेत्॥४९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नंदिकेश्वराभिषेको नाम चतुश्चत्वारिंशोध्यायः॥४४॥

छत्र सुयशा को भेंट किया गया। अपने हाथों में चामर लिये महिलाओं से युक्त सुयशा को एक चामर भी दिया गया। मेरे साथ उसने भी एक सुन्दर सिंहासन ग्रहण किया। मुकुट आदि से भूषित करके उसको 'महालक्ष्मी' पद से सम्मानित किया गया।।४०-४१।। देवी के गले का सुन्दर हार भी उसको भेंट किया गया। वृषेन्द्र, श्वेत हाथी, सिंह, सिंहध्वज, रथ, चन्द्र बिम्ब के समान प्रभा वाला सोने का छत्र भी दिया गया। अब मेरे समान कोई प्रभु नहीं है।।४२-४३।। महान देव महादेव ने बैल पर सवार हो, मुझको और मेरे परिवार को रिश्तेदारों और कुटुम्बियों को साथ लेकर देवी के साथ प्रस्थान किया। वहाँ से चले गये। मुझे शिव और पार्वती देवी के साथ देखकर ऋषियों, देवों, सिद्धों और ब्राह्मणों ने शिव के आदेश से प्रार्थना की।।४४-४५।। हिमवान की पुत्री के पति शिव की आज्ञा से नन्दी ने योग्य प्रार्थना को स्वीकार किये जाने की आज्ञा दी। श्रेष्ठ ऋषियों से आज्ञा पाकर वे सब शिव के भक्त हो गये। अतः प्रत्येक व्यक्ति को शिव की पूजा करना चाहिये।।४६-४७।।

अगर कोई बिना मन्त्र के शिव का नाम का उच्चारण करता है तो उसको दस ब्राह्मणों की हत्या का पाप लगता है। अतः सब प्रकार के नाम में नमः लगाकर शिव का नाम जपना चाहिये। नमः शिवाय।।४८-४९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में नन्दिकेश्वर का अभिषेक नामक चौंवालिसवाँ अध्याय समाप्त॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पाताल वर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सूत सुव्यक्तमखिलं कथितं शंकरस्य तु। सर्वात्मभावं रुद्रस्य स्वरूपं वक्तुमर्हसि॥१॥

सूत उवाच

भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनः साक्षात्तपस्तथा। सत्यलोकश्च पातालं नरकार्णवकोटयः॥२॥
तारकाग्रहसोमार्का ध्रुवः सप्तर्षयस्तथा। वैमानिकास्तथान्ये च तिष्ठंत्यस्य प्रसादतः॥३॥
अनेन निर्मितास्त्वेवं तदात्मानो द्विजर्षभाः। समष्टिरूपः सर्वात्मा संस्थितः सर्वदा शिवः॥४॥
सर्वात्मानं महात्मानं महादेवं महेश्वरम्। न विजानंति संमूढा मायया तस्य मोहिताः॥५॥
तस्य देवस्य रुद्रस्य शरीरं वै जगत्त्रयम्। तस्मात्प्रणम्य तं वक्ष्ये जगतां निर्णयं शुभम्॥६॥
पुरा वः कथितं सर्वं मयाण्डस्य यथा कृतिः। भुवनानां स्वरूपं च ब्रह्माण्डे कथयाम्यहम्॥७॥
पृथिवीचांतरिक्षं च स्वर्महर्जन एव च। तपः सत्यं न सप्तैते लोकास्त्वंडोद्भवाः शुभाः॥८॥
अधस्तादत्र चैतेषां द्विजाः सप्त तलानि तु। महातलादयस्तेषां अधस्तान्नरकाः क्रमात्॥९॥
महातलं हेमतलं सर्वरत्नोपशोभितम्। प्रासादैश्च विचित्रैश्च भवस्यायतनैस्तथा॥१०॥
अनंतेन च संयुक्तं मुचुकुंदेन धीमता। नृपेण बलिना चैव पातालस्वर्गवासिना॥११॥

पैंतालिसवाँ अध्याय

पाताल वर्णन

ऋषिगण बोले

आपने शिव से सम्बन्धित प्रत्येक बात को स्पष्ट रूप से बताया। शिव स्वरूप को अब हम लोगों को बताइए।।१।।

सूत बोले

हे भूः, भुवः, स्वः, महः, तपः, जनः, पाताल, नरक के करोड़ों समुद्र, तारागण, ग्रहगण, सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, सप्तर्षि और वैमानिक जो देखे जा रहे हैं, ये सब उनकी कृपा से है।।२-३।। ये सब उनके द्वारा बनाये गये हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! वे उनकी इच्छा से हैं। शिव सब में समष्टि रूप से विद्यमान है। सर्वदा वह सब की आत्मा हैं।।४।। वास्तव में तीनों लोक उनके शरीर से बने हुये हैं। उनकी माया से मोहित होकर मूढ़ लोग सब की आत्मा, महान आत्मा, महादेव, महेश्वर को नहीं जानते हैं।।५।। अतः मैं उनको प्रणाम करके तीनों लोकों के शुभ विस्तार को संक्षेप में कहूँगा।।६।। इससे पहले मैंने तुम लोगों को अण्ड के आकार, आकृति और ब्रह्माण्ड में भुवनों के स्वरूप को कहता हूँ।।७।। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य सात शुभ लोक ये सात अण्ड से उद्भूत (उत्पन्न) हुए हैं।।८।। हे ब्राह्मणों! इनके नीचे सात लोक महातल से प्रारम्भ करके सात लोक हैं। उनके नीचे एक-एक करके नरक हैं।।९।। महातल का तल सोने का बना हुआ है और सब रत्नों

शैलं रसातलं विप्राः शार्करं हितलातलम्। पीतं सुतलमित्युक्तं वितलं विद्रुमप्रभम्॥१२॥
सितं हि अतलं तच्च तलं यच्च सितेतरम्।
क्ष्मायास्तु यावद्विस्तारो ह्यधस्तेषां च सुव्रताः॥१३॥
तलानां चैव सर्वेषां तावत्संख्या समाहिता। सहस्त्रयोजनं व्योम दशसाहस्त्रमेव च॥१४॥
लक्षं सप्तसहस्त्रं हि तलानां सघनस्य तु। व्योम्नः प्रमाणं मूलं तु त्रिंशत्साहस्त्रकेण तु॥१५॥
सुवर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभम्। रसातलमिति ख्यातं तथान्यैश्च निषेवितम्॥१६॥
विरोचनहिरण्याक्षनरकाद्यैश्च सेवितम्। तलातलमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम्॥१७॥
वैनावकादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः। पूर्वदेवैः समाकीर्णं सुतलं च तथापरैः॥१८॥
वितलं दानवाद्यैश्च तारकाग्निमुखैस्तथा। महांतकाद्यैर्नागैश्च प्रह्लादेनासुरेण च॥१९॥
वितलं चात्र विख्यातं कंबलाश्वनिषेवितम्। महाकुंभेन वीरेण हयग्रीवेण धीमता॥२०॥
शंकुकर्णेन संभिन्नं तथा नमुचिपूर्वकैः। तथान्यैर्विविधैर्वीरैस्तलं चैव सुशोभितम्॥२१॥
तलेषु तेषु सर्वेषु चांबया परमेश्वरः। स्कन्देन नंदिना सार्धं गणपैः सर्वतो वृतः॥२२॥
तलानां चैव सर्वेषामूर्ध्वतः सप्तसप्तमाः। क्ष्मातलानि धरा चापि सप्तधा कथयामि वः॥२३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पातालवर्णनं नाम
पंचचत्वारिंशोऽध्यायः॥४५॥

से शोभित है। विचित्र प्रासादों (महलों) से युक्त हैं। ये सब भगवान शिव को समर्पित हैं।।१०।। यह अनन्त के कब्जे में है। मुचकुन्द और राजा बलि जो कि पाताल और स्वर्ग के निवासी हैं।।११।। हे ब्राह्मणों! रसातल शैल (चट्टान) है। तलातल शर्करा से भरा हुआ है। सुतल पीला कहा गया है। वितल मूँगे की प्रभा से युक्त है। अतल सफेद है। तल काला है। हे सुव्रतो! सब तलों का यह विस्तार पृथ्वी के समान है अर्थात् प्रत्येक तल एक हजार योजन का है। प्रत्येक तल के ऊपर आकाश दस हजार योजन तक फैला है। इन सात तलों का सघन विस्तार मेघों सहित सात हजार लाख योजन है। अन्तिम पाताल लोक का मूल तीस हजार योजन है।।१२-१६।। हे श्रेष्ठ मुनियों! शुभ रसातल वासुकि तथा अन्य भी स्वर्ण से हैं। तलातल नाम से प्रसिद्ध लोक सब शोभा से पूर्ण है और विरोचन हिरण्याक्ष, नरक और अन्यों द्वारा सेवित है।।१७।। सुतल वैनावक कालिनेमि सहित पूर्व देवों और आदि के कब्जे में है। (दानवों, राक्षसों और अन्य द्वारा कब्जे में है)।।१८।। वितल दानवों तथा अन्य के अधिकार में है। तारकाग्नि, महातक आदि नामों और असुर प्रह्लाद के अधिकार में हैं।।१९।। अतल कंबलाश्व के अधिकार में है तथा वीर महाकुम्भ और बुद्धिमान हयग्रीव के अधिकार में है।।२०।। तल (महातल) शंकुकर्ण तथा अन्य वीरों नमुचि आदि के अधिकार में है।।२१।। इन सब पाताल लोकों से महादेव, उमा, स्कन्द, नंदी और अन्य गणाधिपों के साथ विद्यमान हैं। हे भद्र मुनियों! इन सातों तलों के ऊपर पृथ्वी तल अलग लोक है। पृथ्वी भी सात खण्डों में विभक्त है जिसके विषय में अब आप को बताऊँगा।।२२-२३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में पाताल वर्णन नामक
पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

भुवनकोशे द्वीपद्वीपेश्वरकथनम्

सूत उवाच

सप्तद्वीपा तथा पृथ्वी नदीपर्वतसंकुला। समुद्रैः सप्तभिश्चैव सर्वतः समलंकृता॥१॥
जंबूः प्लक्षः शाल्मलिश्च कुशः क्रौञ्चस्तथैव च।
शाकः पुष्करनामा च द्वीपास्त्वभ्यन्तरे क्रमात्॥२॥
सप्तद्वीपेषु सर्वेषु सांबः सर्वगणैर्वृतः। नानावेषधरो भूत्वा सान्निध्यं कुरुते हरः॥३॥
क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदधिः। दध्यर्णवश्च क्षीरोदः स्वादूदश्चाप्यनुक्रमात्॥४॥
समुद्रेष्विह सर्वेषु सर्वदा सगणः शिवः। जलरूपी भवः श्रीमान् क्रीडते चोर्मिबाहुभिः॥५॥
क्षीरार्णवामृतमिव सदा क्षीरार्णवे हरिः। शेते शिवज्ञानधिया साक्षाद्वै योगनिद्रया॥६॥
यदा प्रबुद्धो भगवान्प्रबुद्धमखिलं जगत्। यदा सुप्तस्तदा सुप्तं तन्मयं च चराचरम्॥७॥
तेनैव सृष्टमखिलं धृतं रक्षितमेव च। संहृतं देवदेवस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः॥८॥
सुषेणा इति विख्याता यजंते पुरुषर्षभम्। अनिरुद्धं मुनिश्रेष्ठाः शंखचक्रगदाधरम्॥९॥

छियालिसवाँ अध्याय

द्वीप और द्वीपेश्वर वर्णन

सूत बोले

पृथ्वी सात द्वीपों से बनी हुई है। यह नदियों और पहाड़ों से भरी हुई है। यह सात समुद्रों (महासागरों) से घिरी हुई और अलंकृत है।।१।। क्रम से इसके भीतर सात द्वीप हैं। उनके नाम हैं—जंबू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर।।२।। इन सातों द्वीपों में भगवान शिव सब गणों से घिरे उमा देवी के साथ विराजमान हैं। नाना वेष धारण करके शिव यहाँ रहते हैं।।३।। सात महासागरों के नाम हैं—(१) क्षार सागर, (२) गन्ने के रस का सागर, (३) सुरा सागर, (४) घृत सागर, (५) दधि सागर, (६) दुग्ध सागर और (७) नदी के जल का सागर। इन सातों सागरों में श्रीमान भगवान शिव जल का रूप करके गणों के साथ लहरों से क्रीड़ा करते हैं, खेलते हैं।।४-५।। विष्णु भगवान अमृतमय क्षीर सागर में योग निद्रा के समान शिव के ज्ञानबुद्धि से सदा सोते हैं।।६।। जब भगवान जागते हैं तो पूरा संसार जागता है। जब वह सोते हैं चर और अचरमय सब जगत सोता है।।७।। उन्होंने ही सबको पैदा किया है, धारण किया है और उनके द्वारा रक्षित हैं। देवेश परमेष्ठी की कृपा से सब हैं।।८।। हे श्रेष्ठ मुनियों! सुषेणा नाम से प्रसिद्ध की जो लोग जानते हैं वे शंख, चक्र और गदाधारी

ये चानिरुद्धं पुरुषं ध्यायंत्यात्मविदां वराः। नारायणसमाः सर्वे सर्वसंपत्समन्विताः॥१०॥
सनंदनश्च भगवान् सनकश्च सनातनः। वालखिल्याश्च सिद्धाश्च मित्रावरुणकौ तथा॥११॥
यजंति सततं तत्र विश्वस्य प्रभवं हरिम्। सप्तद्वीपेषु तिष्ठंति नानाशृंगा महोदयाः॥१२॥
आसमुद्रायताः केचिद्गिरयो गह्वरैस्तथा। धरायाः पतयश्चासन् बहवः कालगौरवात्॥१३॥
सामर्थ्यात्परमेशानाः क्रौञ्चारेर्जनकात्प्रभोः। मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह॥१४॥
प्रवक्ष्यामि धरेशान् वो वक्ष्ये स्वायंभुवेन्तरे। मन्वंतरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु च॥१५॥

तुल्याभिमानिनश्चैव सर्वे तुल्यप्रयोजनाः।
स्वायंभुवस्य च मनोः पौत्रास्त्वासन्महाबलाः॥१६॥

प्रियव्रतात्मजा वीरास्ते दशेह प्रकीर्तिताः। आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः॥१७॥

ज्योतिष्मान्द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च।
प्रियव्रतोऽभ्यषिंचत्तान् सप्त सप्तसु पार्थिवान्॥१८॥

जंबूद्वीपेश्वरं चक्रे आग्नीध्रं सुमहाबलम्। प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः॥१९॥
शाल्मलेश्च वपुष्मंतं राजानमभिषिक्तवान्। ज्योतिष्मंतं कुशद्वीपे राजानं कृतवान्नृपः॥२०॥
द्युतिमंतं च राजानं क्रौंचद्वीपे समादिशत्। शाकद्वीपेश्वरं चापि हव्यं चक्रे प्रियव्रतः॥२१॥
पुष्कराधिपतिं चक्रे सवनं चापि सुव्रताः। पुष्करे सवनस्यापि महावीतः सुतोऽभवत्॥२२॥
धातकी चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतांवरौ। महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः॥२३॥
नाम्ना तु धातकेश्चैव धातकीखंडमुच्यते। हव्योप्यजनयत्पुत्राञ्छाकद्वीपेश्वरः प्रभुः॥२४॥
जलदं च कुमारं च सुकुमारं मणीचकम्। कुसुमोत्तरमोदाकी सप्तमस्तु महाद्रुमः॥२५॥

अनिरुद्ध की पूजा करते हैं।।९।। हे मुनियों! आत्मा को जानने वालों में श्रेष्ठ! जो अनिरुद्ध के रूप का ध्यान करते हैं जो विष्णु के समान हैं, वे सब सम्पत्ति से युक्त हो जाते हैं। विश्व की उत्पत्ति स्थान भगवान की सनन्दन, सनक, सनातन, वालखिल्य, सिद्ध और मित्रावरुण सदा उनकी पूजा करते हैं। सातों द्वीपों में ऊँचे पर्वत हैं। कुछ बहुत ऊँचाई तक ऊपर उठे हुये हैं, कुछ सागर तक फैले हुए हैं। पर्वतों की नाना प्रकार के शृंग (चोटियाँ) और गुफाएँ हैं। पृथ्वी के स्वामी अनेक राजा हुए हैं जिन्होंने समय की माँग के अनुसार शासन किया। वे शक्तिशाली थे। उन पर कार्तिकेय के पिता भगवान शिव की कृपा थी।।१०-१४।। मैं स्वयंभुव मन्वन्तर से प्रारम्भ करके भूत और भविष्य काल के सब मन्वन्तरों के राजाओं की चर्चा करूँगा। स्वयंम्भुव मनु के पौत्र सब बहुत बलवान थे। वैसी ही हैसियत, प्रतिष्ठा और सम्मान उद्देश्य और प्रयोजन वाले थे। वे प्रियव्रत के वीर पुत्र थे। उनमें से दस विख्यात हैं—आग्नीध, अग्निबाहु, मेधा, मेघातिथि, वसु, ज्योतिष्मान, द्युतिमान, हव्य और सवन पुत्र। उनमें से सात को सात द्वीपों का राजा बना दिया।।१५-१८।। उन्होंने यह बलवान आग्नीध को जम्बू द्वीप का राजा बनाया। उसने मेधातिथि को प्लक्षद्वीप का स्वामी बनाया। शाल्मलि द्वीप का राजा वपुष्मान को बनाया।।१९-२४।। ज्योतिष्मान को कुश द्वीप का, द्युतिमान को क्रौंच द्वीप का, हव्य को शाक द्वीप का सवन को पुष्कर द्वीप

अलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते। कुमारस्य तु कौमारं द्वितीयं परिकीर्तितम्॥२६॥
सुकुमारं तृतीयं तु सुकुमारस्य कीर्त्यते। मणीचकं चतुर्थं तु माणीचकमिहोच्यते॥२७॥
कुसुमोत्तरस्य वै वर्षं पंचमं कुसुमोत्तरम्। मोदकं चापि मोदाकेर्वर्षं षष्ठं प्रकीर्तितम्॥२८॥
महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमं तन्महाद्रुमम्। तेषां तु नामभिस्तानि सप्त वर्षाणि तत्र वै॥२९॥
क्रौंचद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै। कुशलो मनुगश्चोष्णः पीवरश्चांधकारकः॥३०॥
मुनिश्च दुंदुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै। तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौंचद्वीपाश्रयाः शुभाः॥३१॥
कुशलदेशः कुशलो मनुगस्य मनोनुगः। उष्णस्योष्णः स्मृतो देशः पीवरः पीवरस्य च॥३२॥
अंधकारस्य कथितो देशो नाम्नांधकारकः। मुनेर्देशो मुनिः प्रोक्तो दुंदुभेर्दुंदुभिः स्मृतः॥३३॥
एते जनपदाः सप्त क्रौंचद्वीपेषु भास्वराः। ज्योतिष्मंतः कुशद्वीपे सप्त चासन्महौजसः॥३४॥
उद्भिदो वेणुमांश्चैव द्वैरथो लवणो धृतिः। षष्ठः प्रभाकरश्चापि सप्तमः कपिलः स्मृतः॥३५॥
उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमंडलम्। तृतीयं द्वैरथं चैव चतुर्थं लवणं स्मृतम्॥३६॥
पंचमं धृतिमत्षष्ठं प्रभाकरमनुत्तमम्। सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्तितम्॥३७॥
शाल्मलस्येश्वराः सप्त सुतास्ते वै वपुष्मतः। श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा॥३८॥
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभः सप्तमस्तथा। श्वेतस्य देशः श्वेतस्तु हरितस्य च हारितः॥३९॥
जीमूतस्य च जीमूतो रोहितस्य च रोहितः। वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानसस्य च मानसः॥४०॥
सुप्रभः सुप्रभस्यापि सप्त वै देशलांछकाः। प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामि जंबूद्वीपादनंतरम्॥४१॥
सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा नृपाः। ज्येष्ठः शांतभयस्तेषां सप्तवर्षाणि तानि वै॥४२॥

का राजा बनाया। सवन के दो पुत्र थे—महावीत और धातकी। महावीत को स्मृत वर्ष और धातकी को धातकी खंड दिया। शाकद्वीप के राजा हव्य के भी पुत्र हुये। उनके नाम जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक, कुसुमोत्तर, मोदाकी और महाद्रुम हैं।।२५।। अलद प्रथम वर्ष जलद को और कुमार को कौमार द्वितीय वर्ष, सुकुमार का सुकुमार तृतीय वर्ष, मणीचक का माणीचक चतुर्थ वर्ष कुसुमोत्तर का कुसुमोत्तर पंचम वर्ष, मोदक का मोदाक षष्ठ वर्ष, महाद्रुम को एक महाद्रुम सप्तम वर्ष कहा जाता है। इस प्रकार उनके नामों से सात वर्ष हैं।।२६-२९।। क्रौंच द्वीपेश्वर द्युतिमान के भी पुत्र कुशल, मनुग, उष्ण, पीवर, अंधकार, मुनि और दुंदुभि पुत्र हुए। उनके नामों से शुभ कौंचद्वीप में स्थान प्रसिद्ध हुये।।३०-३४।। ज्योतिषमान के कुश द्वीप में सात पराक्रमी पुत्र हुए। उनके नाम उद्भिद, वेणुमान, द्वैरथ, लवण, धृति, प्रभाकर और कपिल।।३५।। उद्भिद को प्रथम वर्ष, वेणुमान को द्वितीय, द्वैरथ को तृतीय वर्ष, लवण को चतुर्थ, धृति को पंचम वर्ष, प्रभाकर को षष्ठ वर्ष और कपिल को उत्तम सप्तम वर्ष कहे गये हैं।।३६-३७।। शाल्मल के राजा वपुष्मान को भी सात पुत्र हुये, जो उस वर्ष के अलग-अलग राजा हुये। श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस, सुप्रभ हैं। श्वेत को श्वेत देश, हरित को हरित देश, जीमूत को जीमूत देश, रोहित को रोहित देश, वैद्युत को वैद्युत देश, मानस को मानस देश, सुप्रभ को सुप्रभ। इस प्रकार राजाओं के नाम से सात देश दिये गये। अब मैं जम्बू द्वीप के बाहर (परे) स्थित प्लक्षद्वीप का वर्णन करूँगा। मेघातिथि प्लक्षद्वीप के राजा थे। उनके सात पुत्र हुये। वे प्लक्ष देश के राजा हुये जिस द्वीप में सात देश

तस्माच्छांतभयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः। आनंदश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवस्तथा॥४३॥
तानि तेषां तु नामानि सप्तवर्षाणि भागशः। निवेशितानि तैस्तानि पूर्वं स्वायंभुवेन्तरे॥४४॥
मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः प्लक्षद्वीपनिवासिभिः। वर्णाश्रमाचारयुताः प्रजास्तत्र निवेशिताः॥४५॥
प्लक्षद्वीपादिवर्षेषु शाकद्वीपांतिकेषु वै। ज्ञेयः पंचसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः॥४६॥
सुखमायुः स्वरूपं च बलं धर्मो द्विजोत्तमाः। पंचस्वेतेषु द्वीपेषु सर्वसाधारणं स्मृतम्॥४७॥
रुद्रार्चनरता नित्यं महेश्वरपरायणाः। अन्ये च पुष्करद्वीपे प्रजाताश्च प्रजेश्वराः॥४८॥
प्रजापतेश्च रुद्रस्य भावामृतसुखोत्कटाः॥४९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशे द्वीपद्वीपेश्वरकथनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४६॥

हैं। इन सातों में शांतभय ज्येष्ठ था। उसके बाद शिशिर, सुखोदय, आनन्द शिव क्षेमक और ध्रुव उनके सात नामों से द्वीप के सात भाग हुए। उनको राजा ने नियमानुसार नियुक्त किया।।४२-४५।। प्लक्षद्वीप और शंकद्वीप के मध्य में चारों वर्ण और आश्रम धर्म का पालन होता था। हे ब्राह्मणों! इन पाँचों द्वीपों में सुख, आयु, स्वरूप और बल एवं धर्त्य सर्वसाधारण था। वहाँ के निवासी रुद्र की पूजा में रत रहते थे तथा महेश्वर के भक्त थे। पुष्कर द्वीप में जो राजा हैं वे प्रजापति और रुद्र के भावरूपी अमृत के पीने के सुख के लिए लालायित हैं।।४६-४९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में भुवनकोश में द्वीप द्वीपेश्वर वर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४६॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

भरतवर्षकथनम्

सूत उवाच

आग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं काम्यपुत्रं महाबलम्। प्रियव्रतोऽभ्यषिंचद्वै जंबूद्वीपेश्वरं नृपः॥१॥
सोतीव भवभक्तश्च तपस्वी तरुणः सदा। भवार्चनरतः श्रीमान्गोमान्धीमान्द्विजर्षभः॥२॥
तस्य पुत्रा बभूवुस्ते प्रजापतिसमा नव। सर्वे माहेश्वराश्चैव महादेवपरायणाः॥३॥
ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किंपुरुषोऽनुजः। हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थो वै त्विलावृतः॥४॥
रम्यस्तु पंचमस्तत्र हिरण्मान् षष्ठ उच्यते। कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वस्त्वष्टमः स्मृतः॥५॥
नवमः केतुमालस्तु तेषां देशान्निबोधत। नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हेमाख्यं तु पिता ददौ॥६॥
हेमकूटं तु यद्वर्षं ददौ किंपुरुषाय सः। नैषधं यत्स्मृतं वर्षं हरये तत्पिता ददौ॥७॥
इलावृताय प्रददौ मेरुर्यत्र तु मध्यमः। नीलाचलाश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता॥८॥
श्वेतं यदुत्तरं तस्मात्पित्रा दत्तं हिरण्मते। यदुत्तरं श्रृंगवर्षं पिता तत्कुरवे ददौ॥९॥
वर्षं माल्यवतं चापि भद्राश्वस्य न्यवेदयत्। गंधमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान्॥१०॥
इत्येतानि महान्तीह नव वर्षाणि भागशः। आग्नीध्रस्तेषु वर्षेषु पुत्रांस्तानभिषिच्य वै॥११॥
यथाक्रमं स धर्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः। तपसा भावितश्चैव स्वाध्यायनिरतस्त्वभूत्॥१२॥
स्वाध्यायनिरतः पश्चाच्छिवध्यानरतस्त्वभूत्। यानि किंपुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि च॥१३॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

भरतवर्ष वर्णन

सूत बोले

राजा प्रियव्रत ने अपने ज्येष्ठ उत्तराधिकारी महा बलवान प्रिय पुत्र आग्नीध्र को जंबू द्वीप का राजा बनाया।।१।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! वह शिव का महान भक्त था। तपस्वी और युवा था। वह बुद्धिमान गोमान (बहुत-सी गायों का स्वामी) था।।२।। उसके प्रजापति के समान नौ पुत्र हुए। वे सब शिव के अनुयायी और शिवभक्त थे।।३।। उसका ज्येष्ठ पुत्र नाभि नाम से प्रसिद्ध था। उसके छोटे भाई का नाम किंपुरुष था। तृतीय पुत्र हरिवर्ष और चौथा इलावृत था।।४।। पाँचवें पुत्र का नाम रम्य था और छठां हिरण्मान था। सातवाँ पुत्र कुरु और आठवाँ भद्राश्व था।।५।। नौवाँ केतुमाल था। उनके देशों को सुनिए। पिता ने नाभि को दक्षिण में स्थित हेम वर्ष को दिया।।६।। उसने किंपुरुष को हेमकूट नामक वर्ष को दिया और हरि को नैषध वर्ष को दिया।।७।। मेरु पर्वत से घिरा हुआ मध्य देश को इलावृत को दिया। रम्य को नीलांचल वर्ष दे दिया।।८।। हिरण्मान को पिता ने उत्तर में स्थित श्वेत वर्ष दिया। उत्तर में जो श्रृंग वर्ष है पिता ने उसको कुरु को दिया।।९।। राजा ने भद्राश्व को माल्यवान वर्ष दिया और केतुमाल को गंधमादन वर्ष दिया।।१०।। यह नौ महान वर्ष हैं। उन वर्षों में अपने पुत्रों को राजा रूप में सिंहासन पर बैठाकर धर्मात्मा राजा आग्नीध तपस्या में रत हो गया। तपस्या द्वारा अपने को शुद्ध करने के बाद वह वेदों के अध्ययन में लग गया।।११-१२।। वेदों का अध्ययन करने के बाद वह शिव के ध्यान में लीन हो गया।

तेषां स्वभावतः सिद्धः सुखप्राया ह्ययत्नतः। विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च॥१४॥
धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः। न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टसु सर्वतः॥१५॥
रुद्रक्षेत्रे मृताश्चैव जंगमाः स्थावरास्तथा। भक्ताः प्रासंगिकाश्चापि तेषु क्षेत्रेषु यांति ते॥१६॥
तेषां हिताय रुद्रेण चाष्टक्षेत्रं विनिर्मितम्। तत्र तेषां महादेवः सान्निध्यं कुरुते सदा॥१७॥
दृष्ट्वा हृदि महादेवमष्टक्षेत्रनिवासिनः। सुखिनः सर्वदा तेषां स एवेह परा गतिः॥१८॥
नाभेर्निसर्गं वक्ष्यामि हिमांकेऽस्मिन्निबोधत। नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मेरुदेव्यां महामतिः॥१९॥
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूजितम्। ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः॥२०॥
सोभिषिच्याथ ऋषभो भरतं पुत्रवत्सलः। ज्ञानवैराग्यमाश्रित्य जित्वेन्द्रियमहोरगान्॥२१॥
सर्वात्मनात्मनि स्थाप्य परमात्मात्मानमीश्वरम्। नग्नो जटी निराहारो चीरी ध्वांतगतो हि सः॥२२॥
निराशस्त्यक्तसंदेहः शैवमाप परं पदम्। हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्॥२३॥
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः। भरतस्यात्मजो विद्वान्सुमतिर्नाम धार्मिकः॥२४॥
बभूब तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः संन्यवेशयत्। पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः॥२५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भरतवर्षकथनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥४७॥

किंपुरुष से लेकर आठों वर्षों में स्वाभाविक सिद्धि रही। बिना किसी जोर दबाव के प्रजा सदा प्रसन्न थी। प्रजा में दुःख का नाम नहीं था। उनमें मृत्यु और वृद्धावस्था का भय नहीं था। उनमें न धर्म था न अधर्म। उनमें उत्तम, अधम और मध्यम का भेद भाव नहीं था। उन आठों क्षेत्रों में युगों की कोई अवस्था नहीं थी।।१३-१५।। जो पवित्र युद्ध क्षेत्र में मरते थे वे चाहे चर हों या अचर भक्त हों या अस्थायी आगन्तुक हों वहाँ पुनर्जन्म लेते थे।।१६।। रुद्र ने उनके हित के लिए आठ क्षेत्रों को बनाया। उनमें शिव सदा विद्यमान रहते हैं।।१७।। अपने हृदयों में महादेव को देखकर उन आठों पवित्र क्षेत्रों के निवासी सदा प्रसन्न थे। वही उनकी परम गति थे।।१८।। हिम से (बर्फ) चिह्नित नाभि के देश का अब मैं वर्णन करता हूँ। महा बुद्धिमान नाभि ने मेरु देवी अपनी रानी से एक पुत्र पैदा किया। उसका नाम ऋषभ था। वह सब राजाओं से पूजित और राजाओं में श्रेष्ठ था। ऋषभ से एक वीर पुत्र भरत उत्पन्न हुआ। वह सौ राजा के सौ पुत्रों में ज्येष्ठ था।।१९-२०।। अपने पुत्र के प्रेमी ऋषभ ने भरत को राजा के रूप में अभिषेक करके स्वयं अपने ज्ञानेन्द्रिय रूप सर्पों को वश में करके ज्ञान और वैराग्य का आश्रय लेकर आत्मा में सर्वात्मना को परमात्मा ईश्वर को स्थापित करके उसने व्रतों को किया। वल्कल वस्त्र पहना। वह जटाधारी और नग्न अवस्था में एकान्त में रहने लगा। सब इच्छाओं से परे, सब प्रकार के सन्देहों से दूर वह शिव के परम पद को प्राप्त हुआ। उसने हिमवान पर्वत के दक्षिण में स्थित वर्ष को भरत को दे दिया। इसलिए विद्वान लोग उसको भारत वर्ष के नाम से पुकारते हैं। भरत का पुत्र सुमति नामक था। भरत ने राज्य का भार उसको सौंप दिया। राज्य को अपने पुत्र को संक्रमित करके राजा भरत ने तपस्या के लिए वन में प्रवेश किया।।२१-२५।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में भरतवर्ष वर्णन नामक सैतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४७॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

मेरुपर्वतः

सूत उवाच

अस्य द्वीपस्य मध्ये तु मेरुर्नाम महागिरिः। नानारत्नमयैः शृंगैः स्थितः स्थितिमतां वरः॥१॥
चतुराशीतिसाहस्रमुत्सेधेन प्रकीर्तितः। प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतः षोडशैव तु॥२॥
शराववत्संस्थितत्वाद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः। विस्तारत्त्रिगुणश्चास्य परिणाहोनुमंडलः॥३॥
हैमीकृतो महेशस्य शुभांगस्पर्शनेन च। धत्तूरपुष्पसंकाशः सर्वदेवनिकेतनः॥४॥
क्रीडाभूमिश्च देवानामनेकाश्चर्यसंयुतः। लक्षयोजन आयामस्तस्यैवं तु महागिरेः॥५॥
ततः षोडशसाहस्त्रं योजनानि क्षितेरधः। शेषं चोपरि विप्रेन्द्रा धरायास्तस्य शृंगिणः॥६॥
मूलायामप्रमाणं तु विस्तारान्मूलतो गिरेः। ऊचुर्विस्तारमस्यैव द्विगुणं मूलतो गिरेः॥७॥
पूर्वतः पद्मरागाभो दक्षिणे हेमसन्निभः। पश्चिमे नीलसंकाश उत्तरे विद्रुमप्रभः॥८॥
अमरावती पूर्वभागे नानाप्रासादसंकुला। नानादेवगणैः कीर्णा मणिजालसमावृता॥९॥
गोपुरैर्विविधाकारैर्हेमरत्नविभूषितैः। तोरणैर्हेमचित्रैस्तु मणिक्लृप्तैः पथि स्थितैः॥१०॥

अड़तालिसवाँ अध्याय

मेरु पर्वत

सूत बोले

जम्बू दीप के मध्य में महान पर्वत मेरु नामक स्थित है। यह पर्वतों में श्रेष्ठ है। यह नाना रत्नों से पूर्ण चोटियों वाला है।।१।। यह चौरासी हजार योजन ऊँचाई में है ऐसा प्रसिद्ध है। यह सोलह हजार योजन पृथ्वी के नीचे प्रविष्ट है और यह सोलह हजार योजन फैला हुआ है।।२।। चूँकि यह एक चौड़े प्लेट के समान स्थित है, यह बत्तीस हजार योजन चोटियों पर है। इसके विस्तार से तीन गुना इसका घेरा है।।३।। यह शिव के शरीर के स्पर्श से सोने का हो गया है। यह धतूरे के फूल के समान है। यह सब देवों का निवास-स्थान है।।४।। यह देवताओं की क्रीड़ा भूमि (खेल का मैदान) है। यह अनेक आश्चर्यों से भरा हुआ है। इस पर्वत की चौड़ाई और विस्तार सौ हजार योजन है।।५।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! पृथ्वी के नीचे इसका विस्तार सोलह हजार योजन है। इस पहाड़ का शेष भाग पृथ्वी के ऊपर है। मूल से इसका विस्तार सोलह हजार योजन है। इसके मूल के आयाम को दुगुना कहा गया है।।६-७।। पूर्व में यह पद्मराग की आभा के समान है और उत्तर में यह सोने के समान है। पश्चिम में यह नील पत्थर के समान और उत्तर में विद्रुम (मूँगा) की प्रभा के समान है।।८।। इस पर्वत के पूर्व भाग में इन्द्र की नगरी अमरावती है जो नाना प्रकार के महलों से युक्त है। राज मार्ग पर युक्त वार्तालाप में कुशल, सब आभरणों से भूषित स्तनभार से झुकी हुई, नशे के कारण इधर-उधर घूमती हुई नेत्रों से, नाना प्रकार

सँल्लापालापकुशलैः सर्वाभरणभूषितैः। स्तनभारविनम्रैश्च मदघूर्णिततलोचनैः॥११॥
स्त्रीसहस्त्रैः समाकीर्णा चाप्सरोभिः समंततः। दीर्धिकाभिर्विचित्राभिः फुल्लांभोरुहसंकुलैः॥१२॥
हेमसोपानसंयुक्तैर्हेमसैकतराशिभिः । नीलोत्पलैश्चोत्पलैश्च हैमैश्चापि सुगंधिभिः॥१३॥
एवंविधैस्त्तटाकैश्च नदीभिश्च नदैर्युता। विराजते पुरी शुभ्रा तयासौ पर्वतः शुभः॥१४॥
तेजस्विनी नामपुरी आग्नेय्यां पावकस्य तु। अमरावतीसमा दिव्या सर्वभोगसमन्विता॥१५॥
वैवस्वती दक्षिणे तु यमस्य यमिनां वराः। भवनैरावृता दिव्यैर्जांबूनदमयैः शुभैः॥१६॥
नैर्ऋते कृष्णवर्णा च तथा शुद्धवतीशुभा। तादृशी गंधवंती च वायव्यां दिशि शोभना॥१७॥
महोदया चोत्तरे च ऐशान्यां तु यशोवती। पर्वतस्य दिगंतेषु शोभते दिवि सर्वदा॥१८॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां तथान्येषां निकेतनम्। सर्वभोगयुतं पुण्यं दीर्घिकाभिर्नगोत्तमम्॥१९॥
सिद्धैर्यक्षैस्तु संपूर्ण गंधर्वैर्मुनिपुंगवैः। तथान्यैर्विविधाकारैर्भूतसंघैश्चतुर्विधैः॥२०॥
गिरेरुपरि विप्रेन्द्राः शुद्धस्फटिकसन्निभम्। सहस्त्रभौमं विस्तीर्णं विमानं वामतः स्थितम्॥२१॥
तस्मिन्महाभुजः शर्वः सोमसूर्याग्निलोचनः। सिंहासने मणिमये देव्यास्ते षण्मुखेन च॥२२॥
हरेस्तदर्धं विस्तीर्णं विमानं तत्र सोपिच। पद्मरागमयं दिव्यं पद्मजस्य च दक्षिणे॥२३॥
तस्मिन् शक्रस्य विपुलं पुरं रम्यं यमस्य च। सोमस्य वरुणस्याथ निर्ऋतेः पावकस्य च॥२४॥

के देवगणों से भरी हुई और मणियों के जालों से युक्त हैं।।९।। इसमें विभिन्न आकार के विभूषित अनेक फाटक हैं। सोने और रत्नों के तोरण हैं। इसके फाटक के तोरण (महराब द्वार) सोने से आश्चर्यपूर्ण बने हुए हैं। उसमें रत्न जड़े हुए हैं। हजारों स्त्रियों से राजमार्ग भरा हुआ है और चारों ओर अप्सराओं से घिरा हुआ है। विचित्र फूले हुए फूलों से भरी बावलियाँ हैं। सोने की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं और सुनहरी बालू, नील कमल, उत्पल सुनहरे सुगन्धियों से युक्त, इस प्रकार के तालाबों नदियों और नदों से युक्त सुन्दर पुरी शोभित है। उस शहर के साथ पवित्र यह पर्वत सुन्दर लगता है।।१०-१४।। पर्वत के दक्षिण-पूर्वी भाग में अग्नि देवता की नगरी तेजस्विनी है। यह दिव्य है और अमरावती के समान है। यह सब सुख के साधनों से युक्त है।।१५।। दक्षिण-पश्चिम में भव्य काले रंग की पुरी वैवस्वती है। यह यम की नगरी है। उत्तम मार्गों से युक्त और जंबूनदमय दिव्य सोने से बने हुए महलों से युक्त है।।१६।। दक्षिण-पश्चिम में शानदार काले रंग की पुरी शुभावती है। उसी प्रकार उत्तर-पश्चिम में सुन्दर पुरी गन्धवती है। उत्तर में महोदया पुरी है और उत्तर-पूर्व में यशोवती पुरी है। इस तरह सब दिशाओं में पुरियाँ हैं जो सदा चमकती रहती हैं।।१७-१८।। इस पर्वत पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा अन्य देवताओं के निवास स्थान हैं। इस प्रकार यह पर्वत सब सुख-सुविधाओं से सम्पन्न है। पहाड़ों में उत्तम इस पर्वत में बहुत सी झीलें हैं।।१९-२०।। यह सिद्धों, यक्षों, गन्धर्वों और श्रेष्ठ मुनियों चार प्रकार के भूत संघों से भरा हुआ है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! पर्वतों के ऊपर शुद्ध स्फटिक सात मंजिले भवन हैं। उनमें लम्बी भुजा वाले चन्द्र, सूर्य और अग्नि नेत्र वाले भगवान शिव निवास करते हैं। वहाँ मणिमय सिंहासन पर पार्वती देवी और षण्मुख के साथ विराजमान हैं।।२१-२२।। वहाँ विष्णु का भी महल 'विमान' है। यह शिव के निवास का आधा लम्बा है और वहाँ विष्णु जी रहते हैं। दक्षिण में पदम्योनि ब्रह्मा का दिव्य महल है जो पद्मरागमय है। वहाँ इन्द्र का

वायोश्चैव तु रुद्रस्य शर्वालयसमन्ततः। तेषां तेषां विमानेषु दिव्येषु विविधेषु च॥२५॥
ईशान्यमीश्वरक्षेत्रे नित्यार्चा च व्यवस्थिता। सिद्धेश्वरैश्च भगवांच्छैलादिः शिष्यसंमतः॥२६॥
सनत्कुमारः सिद्धैस्तु सुखासीनः सुरेश्वरः। सनकश्च सनंदश्च सदृशाश्च सहस्त्रशः॥२७॥
योगभूमिः क्वचित्तस्मिन् भोगभूमिः क्वचित्क्वचित्। बालसूर्यप्रतीकाशं विमानं तत्र शोभनम्॥२८॥
शैलादिनः शुभं चास्ति तस्मिन्नास्ते गणेश्वरः। षण्मुखस्य गणेशस्य गणानां तु सहस्त्रशः॥२९॥
सुयशायाः सुनेत्रायाः मातृणां मदनस्य च। तस्य जंबूनदी नाम मूलमावेष्ट्य संस्थिता॥३०॥
तस्य दक्षिणपार्श्वे तु जंबूवृक्षः सुशोभनः। अत्युच्छ्रितः सुविस्तीर्णः सर्वकालफलप्रदः॥३१॥
मेरोः समंताद्विस्तीर्णं शुभं वर्षमिलावृतम्। तत्र जंबूफलाहाराः केचिच्चामृतभोजनाः॥३२॥
जांबूनदसमप्रख्या नानावर्णाश्च भोगिनः। मेरुपादाश्रितो विप्रा द्वीपोयं मध्यमः शुभः॥३३॥
नववर्षान्वितश्चैव नदीनदगिरीश्वरैः। नववर्षं तु वक्ष्यामि जंबूद्वीपं यथातथम्॥३४॥
विस्तारान्मंडलाश्चैव योजनैश्च निबोधत॥३५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे मेरुपर्वतः नाम
अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥४८॥

विशाल नगर है। वहाँ यम का भी सुन्दर नगर है। वहाँ चन्द्रमा, वरुण, निर्ऋति, पावक, वायु और रुद्र का निवास स्थान है। उन विविध दिव्य महलों के चारों ओर अन्य सब लोगों के निवास हैं। ईशान के पवित्र केन्द्र में उत्तर-पूर्व में नित्य पूजा और अर्चना नियमित रूप से होती रहती है। पवित्र नन्दी अपने शिष्यों और प्रमुख सिद्धों के साथ वहाँ रहते हैं। सनत्कुमार सिद्धों के साथ सुखपूर्वक वहाँ वास करते हैं। सुरेश्वर सनक, सनंद और अन्य हजारों के साथ वहाँ विराजमान हैं।।२३-२७।। वहाँ पर कुछ भाग योग के अभ्यास के लिए मैदान के रूप में है और कहीं वहाँ पर आनन्द मनाने के लिए कुछ भोग भूमि भी है। वहाँ पर शानदार उगते सूर्य के समान एक सात मंजिला महल है।।२८।। यह नन्दी का निवास है। उसमें षण्मुख, गणेश, हजारों गणों, सुन्दर नेत्र वाले सुयशा माताएँ और मदन के बीच में बैठे हैं। इस पर्वत के नीचे चारों ओर जंबू नदी बहती है। इसके दक्षिण की ओर जम्बू (जामुन) का वृक्ष है। यह बहुत ऊँचा है और चारों ओर विस्तृत है और सब समय में फल देने वाला है। मेरु के चारों ओर इलावृत नामक विस्तृत वर्ष है। वहाँ पर जंबू के फल और अमृत का आहार करने वाले हैं। कुछ सोने के समान और अनेक वर्णों के (रंगों के) हैं। वे सब प्रकार के भोग को भोगते हैं। हे ब्राह्मणों! मेरु के मूल में चारों ओर फैला हुआ यह मध्यम द्वीप है। इसमें नव वर्ष हैं। मैं उन सबों का वर्णन उनमें विद्यमान नदियों, नदों और पर्वतों के साथ वर्णन करूँगा। योजनों में उनका विस्तार है, ऐसा समझो।।२९-३५।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में मेरु पर्वत नामक
अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४८॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इलावर्तः

सूत उवाच

शतमेकं सहस्राणां योजनानां स तु स्मृतः। अनुद्वीपं सहस्राणां द्विगुणं द्विगुणोत्तरम्॥१॥
पंचाशत्कोटिविस्तीर्णा ससमुद्रा धरा स्मृता। द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता लोकालोकावृता शुभा॥२॥
नीलस्तथोत्तरे मेरोः श्वेतस्तस्योत्तरे पुनः। शृंगी तस्योत्तरे विप्रास्त्रयस्ते वर्षपर्वताः॥३॥
जठरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ॥
निषधो दक्षिणे मेरोस्तस्य दक्षिणतो गिरिः। हेमकूट इति ख्यातो हिमवांस्तस्य दक्षिणे॥४॥
मेरोः पश्चिमतश्चैव पर्वतौ द्वौ धराधरौ। माल्यवान्गंधमादश्च द्वावेतावुदगायतौ॥५॥
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः। तेषामंतरविष्कंभो नवसाहस्रमेकशः॥६॥
इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम्। हेमकूटं परं तस्मान्नाम्ना किंपुरुषं स्मृतम्॥७॥
नैषधं हेमकूटात्तु हरिवर्षं तदुच्यते। हरिवर्षात्परं चैव मेरोः शुभमिलावृतम्॥८॥
इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम्। रम्यात्परतरं श्वेतं विख्यातं तद्धिरणमयम्॥९॥
हिरणमयात्परं चापि शृंगी चैव कुरुः स्मृतः। धनुःसंस्थे तु विज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे॥१०॥
दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यतस्तदिलावृतम्। मेरोः पश्चिमपूर्वेण द्वे तु दीर्घे तरे स्मृते॥११॥

उनचासवाँ अध्याय

इलावर्त

सूत बोले

यह पहला द्वीप, मैंने कहा, जो एक हजार योजन फैला हुआ है। दूसरे द्वीप उससे दूने क्रमशः फैले हुए हैं।।१।। पृथ्वी सब समुद्रों के साथ पचास करोड़ योजन विस्तीर्ण है। इसमें सात द्वीप हैं। ये सुन्दर हैं। और लोकालोक पर्वत के द्वारा घिरी हुई है। मेरु के उत्तर में नील पर्वत इसके उत्तर श्वेत है। श्वेत के दूर उत्तर शृंगी है। हे ब्राह्मणों! ये तीनों पर्वत उस वर्ष के हैं जो कि उत्तर में हैं।।२-३।। जठर और देवकूट नामक दोनों पर्वत पूर्व दिशा में हैं। निषध मेरु के उत्तर में है। इसके दक्षिण में हेमकूट नामक पर्वत है। हिमवत इसके दक्षिण में है।।४।। मेरु के पश्चिम में दो पर्वत हैं माल्यवान और गन्धमादन। ये दोनों उत्तर की ओर फैले हुए हैं।।५।। ये पर्वतों के राजा, सिद्धों और चारणों से सेवित हैं। उन दोनों के बीच में नौ हजार योजन अन्तर है।।६।। हिमवत के दक्षिण का वर्ष भरत के नाम से प्रसिद्ध है। उसके बाहर हेमकूट है। उससे परे किंपुरुष कहलाता है। हरिवर्ष और मेरु से परे शुभ इलावृत है। इलावृत से परे नील है और रम्यक है। रम्यक के परे श्वेत है और हिरण्यमय नाम से प्रसिद्ध है। हिरण्यमय से परे शृंगी पर्वत है। और इसके परे कुरु वर्ष है। दोनों वर्ष हिरण्यमय और रम्यक क्रमशः एक दक्षिण में और एक उत्तर में स्थित है। यह धनुष के आकार के हैं।।७-१०।। अन्य चार बड़े हैं।

अर्वाक्तु निषधस्याथ वेद्यर्धं चोत्तरं स्मृतम्। वेद्यर्धं दक्षिणे त्रीणि वर्षाणि त्रीणि चोत्तरे॥१२॥
तयोर्मध्ये च विज्ञेयं मेरुमध्यमिलावृतम्। दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु॥१३॥
उदगायतो महाशैलो माल्यवान्नाम पर्वतः। योजनानां सहस्रे द्वे उपरिष्टात्तु विस्तृतः॥१४॥
आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रकीर्तितः। तस्य प्रतीच्यां विज्ञेयः पर्वतो गंधमादनः॥१५॥
आयामतः स विज्ञेयो माल्यवानिव विस्तृतः। जंबूद्वीपस्य विस्तारात्समेन तु समंततः॥१६॥
प्रागायताः सुपर्वाणः षडेते वर्षपर्वताः। अवगाढाश्चोभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ॥१७॥
हिमप्रायस्तु हिमवान् हेमकूटस्तु हेमवान्। तरुणादित्यसंकाशो हैरण्यो निषधः स्मृतः॥१८॥
चतुर्वर्णः ससौवर्णो मेरुश्चोर्ध्वायतः स्मृतः। वृत्ताकृतिपरीणाहश्चतुरस्रः समुत्थितः॥१९॥
नीलश्च वैडूर्यमयः श्वेतः शुक्लो हिरण्मयः। मयूरबर्हवर्णस्तु शातकुंभस्त्रिशृंगवान्॥२०॥
एवं संक्षेपतः प्रोक्ताः पुनः शृणु गिरीश्वरान्। मंदरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ॥२१॥
कैलासो गंधमादश्च हेमवांश्चैव पर्वतौ। पूर्वतश्चायतावेतावर्णवांतर्व्यवस्थितौ॥२२॥
निषधः पारियात्रश्च द्वावेतौ वरपर्वतौ। यथा पूर्वौ तथा याम्यावेतौ पश्चिमतः श्रितौ॥२३॥
त्रिशृंगो जारुचिश्चैव उत्तरौ वरपर्वतौ। पूर्वतश्चायतावेतावर्णवांतर्व्यवस्थितौ॥२४॥
मर्यादापर्वतानेतानष्टावाहुर्मनीषिणः । योसौ मेरुर्द्विजश्रेष्ठाः प्रांशुः कनकपर्वतः॥२५॥
तस्य पादास्तु चत्वारश्चतुर्दिक्षु नगोत्तमाः। यैर्विष्टब्धा न चलति सप्तद्वीपवती मही॥२६॥

इलावृत मध्य में है। मेरु के उत्तर और पूर्व वे दो वर्ष हैं जो कि ऊपर कहे गये चारों से छोटे हैं।।११।। निषध का क्षेत्र उत्तर वेद्यर्ध (पूरे दीप का आधा जो पवित्र वेदी के रूप में है) वेद्यर्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार वहाँ पर दक्षिण के आधे भाग में तीन वर्ष और उत्तर के आधे भाग में तीन वर्ष हैं।।१२।। मेरु के साथ मध्य में इलावृत दोनों के मध्य में नील के दक्षिण और निषध के उत्तर है।।१३।। महा पर्वत माल्यवान उत्तर की ओर फैला है। यह दो हजार योजन से ऊपर फैला है। इसकी चौड़ाई चौंतीस हजार योजन बतायी गयी है। इसके पश्चिम में गंधमादन बताया गया है।।१४।। इसकी लम्बाई और चौड़ाई माल्यवान के समान है। अच्छे पद वाले ये छः वर्ष पर्वत पूर्व की ओर फैले हैं और पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों द्वारा दोनों बगल से बँधे हैं।।१५-१७।। हिमवत बर्फ से भरा हुआ है, हेमकूट स्वर्ण से युक्त है। निषध भी सोने का है जो प्रातःकाल के सूर्य के समान है।।१८।। सोने का मेरु जो कि ऊपर की ओर फैला है। उसके चार रंग हैं। परिधि में यह वृत्त वृत्ताकार है। और यह ऊँचा उठा हुआ है।।१९।। नील पर्वत वैडूर्यमय है। श्वेत सफेद रंग का है और सोने से पूर्ण (हिरण्यमय) है। तीन चोटियों वाला पर्वत शृंगी मोर के पंखों के रंग का है।।२०।। इस प्रकार पर्वतों को संक्षेप में मैंने बताया। अब फिर बड़े पर्वतों और चोटियों का वर्णन सुनो। पूर्व दिशा में मंदर और देवकूट पर्वत हैं। कैलाश और सोने का गंधमादन पूर्व से दक्षिण को फैले हुए हैं और उनका अन्त समुद्र के भीतर होता है। निषध और पारिजात ये श्रेष्ठ पर्वत हैं। ये पश्चिम से पूर्व और दक्षिण में स्थित हैं। तीन चोटियों वाला त्रिशृंग और जारुचि उत्तर में अच्छे पर्वत हैं। वे पूरब की ओर फैले हैं और समुद्र के भीतर पसरे हुए हैं। बुद्धिमान विद्वान लोग इसको मर्यादा पर्वत कहते हैं।।२१-२५।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! मेरु नामक जो कनक पर्वत है उसके चार पैर हैं जो चारों दिशाओं में

दशयोजनसाहस्त्रमायामस्तेषु पठ्यते। पूर्वे तु मंदरो नाम दक्षिणे गंधमादनः॥२७॥
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः। महावृक्षाः समुत्पन्नाश्चत्वारो द्वीपकेतवः॥२८॥
मंदरस्य गिरेः शृंगे महावृक्षः सकेतुराट्। प्रलंबशाखाशिखरः कदंबश्चैत्यपादपः॥२९॥
दक्षिणस्यापि शैलस्य शिखरे देवसेविता।
जंबूः सदा पुण्यफला सदा माल्योपशोभिता॥३०॥
सकेतुर्दक्षिणे द्वीपे जंबूर्लोकेषु विश्रुता। विपुलस्यापि शैलस्य पश्चिमे च महात्मनः॥३१॥
संजातः शिखरेऽश्वत्थः स महान् चैत्यपादपः। सुपार्श्वस्योत्तरस्यापि शृंगे जातो महाद्रुमः॥३२॥
न्यग्रोधे विपुलस्कंधोऽनेकयोजनमंडलः। तेषां चतुर्णां वक्ष्यामि शैलेन्द्राणां यथाक्रमम्॥३३॥
अमानुष्याणि रम्याणि सर्वकालर्तुकानि च। मनोहराणि चत्वारि देवक्रीडनकानि च॥३४॥
वनानि वै चतुर्दिक्षु नामतस्तु निबोधत। पूर्वे चैत्ररथं नाम दक्षिणे गंधमादनम्॥३५॥
वैभ्राजं पश्चिमे विद्यादुत्तरे सवितुर्वनम्। मित्रेश्वरं तु पूर्वे तु षष्ठेश्वरमतः परम्॥३६॥
वर्येश्वरं पश्चिमे तु उत्तरे चाम्रकेश्वरम्। महासरांसि च तथा चत्वारि मुनिपुंगवाः॥३७॥
यत्र क्रीडंति मुनयः पर्वतेषु वनेषु च। अरुणोदं सरः पूर्वं दक्षिणं मानसं स्मृतम्॥३८॥
सितोदं पश्चिमसरो महाभद्रं तथोत्तरम्। शाखस्य दक्षिणे क्षेत्रं विशाखस्य च पश्चिमे॥३९॥
उत्तरे नैगमेयस्य कुमारस्य च पूर्वतः। अरुणोदस्य पूर्वेण शैलेंद्रा नामतः स्मृताः॥४०॥

फैले हैं। इनसे सहारा पाई हुई सप्तद्वीप वाली पृथ्वी नहीं हिलती है। उनकी लम्बाई दस हजार योजन कही गयी है। पश्चिम मंदर पर्वत और दक्षिण में गन्धमादन पश्चिम में विपुल और उत्तर में सुपार्श्व है।।२६-२७।। इन पर चार महावृक्ष उगे हुए हैं। जैसे कि ये द्वीप की पताकाएँ हों। मंदर पर्वत की चोटी पर महान वृक्ष कदम्ब है। वह केतुओं के राजा के समान हैं। इसकी लम्बी लटकती शाखाएँ हैं। इस प्रकार यह कदम्ब का वृक्ष चैत्य पादप (पवित्र मन्दिर में पवित्र महान वृक्ष) का काम करता है। दक्षिण गंधमादन पर्वत की चोटी पर एक जंबू वृक्ष है जिसमें फल और फूल मालाओं के रूप में लटकते हुए हैं। यह जंबू वृक्ष तीनों लोकों में दक्षिण द्वीप में केतु रूप में प्रसिद्ध है। उच्च पर्वत विपुल की चोटी पर, पश्चिम में एक पीपल का का पेड़ लगा है जो चैत्र पादप के समान है। उत्तर में सुपार्श्व पर्वत की चोटी पर उत्तर में एक बड़ा न्यग्रोध (बरगद) है। जिसके विशाल स्कन्ध अनेक योजन तक घेरे हुए है। अब मैं देवताओं के चार खेल के मैदानों का वर्णन करूँगा जो कि महान पर्वतों पर है। ये मनुष्यों से रहित है और यहाँ ऐसे वृक्ष और पौधे हैं जो सब ऋतुओं में फलते फूलते हैं।।२८-३४।। यहाँ चारों दिशाओं में वन है। उनके नामों से उनको समझो। पूर्व में चैत्यरथ नामक वन है और दक्षिण में गंधमादन पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में सूर्य का बाग है। पूर्व में मित्रेश्वर उसके बाद दक्षिण में षष्ठेश्वर है। पश्चिम वर्येश्वर, उत्तर में, आम्रकेश्वर पवित्र शिखर है। हे श्रेष्ठ मुनियों! वहाँ चार बड़ी झीलें हैं।।३५-३७।। मुनि लोग उन पर्वतों और वनों में क्रीड़ा करते हैं। पूर्व में अरुणोद सर है और दक्षिण में मानस सर है। पश्चिम में सितोद सर है और इसके उत्तर में महाभद्र सर है। दक्षिण में शाख का पवित्र केन्द्र है। पश्चिम में विशाख का पवित्र क्षेत्र

तांस्तु संक्षेपतो वक्ष्ये न शक्यं विस्तरेण तु। सितांतश्च कुरंडश्च कुररश्चाचलोत्तमः॥४१॥
विकरो मणिशैलश्च वृक्षवांश्चाचलोत्तमः। महानीलोथ रुचकः सबिन्दुर्दर्दुरस्तथा॥४२॥
वेणुमांश्च समेघश्च निषधो देवपर्वतः। इत्येते पर्वतवरा ह्यन्ये च गिरयस्तथा॥४३॥
पूर्वेण मंदरस्यैते सिद्धावासा उदाहृताः। तेषु तेषु गिरींद्रेषु गुहासु च वनेषु च॥४४।
रुद्रक्षेत्राणि दिव्यानि विष्णोर्नारायणस्य च। सरसो मानसस्येह दक्षिणेन महाचलाः॥४५॥
ये कीर्त्यमानास्तान्सर्वान् संक्षिप्य प्रवदाम्यहम्। शैलश्च विशिराश्चैव शिखरश्चाचलोत्तमः॥४६॥
एकशृंगो महाशूलो गजशैलः पिशाचकः। पंचशैलोथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः॥४७॥
इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः। तेषु तेषु च सर्वेषु पर्वतेषु वनेषु च॥४८॥

रुद्र क्षेत्राणि दिव्यानि स्थापितानि सुरोत्तमैः।
दिग्भागे दक्षिणे प्रोक्ताः पश्चिमे च वदामि वः॥४९॥

अपरेण सितोदश्च सुरपश्च महाबलः। कुमुदो मधुमांश्चैव ह्यंजनो मुकुटस्तथा॥५०॥
कृष्णश्च पांडुरश्चैव सहस्त्रशिखरश्च यः। पारिजातश्च शैलेंद्रः श्रीशृंगश्चाचलोत्तमः॥५१॥
इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः। सर्वे पश्चिमदिग्भागे रुद्रक्षेत्रसमन्विताः॥५२॥

महाभद्रस्य सरसश्चोत्तरे च महाबलाः।
ये स्थिताः कीर्त्यमानांस्तान्संक्षिप्येह निबोधत॥५३॥

शंखकूटो महाशैलो वृषभो हंसपर्वतः। नागश्च कपिलश्चैव इंद्रशैलश्च सानुमान्॥५४॥
नीलः कंटकशृंगश्च शतशृंगश्च पर्वतः। पुष्पकोशः प्रशैलश्च विरजश्चाचलोत्तमः॥५५॥
वराहपर्वतश्चैव मयूरश्चाचलोत्तमः। जारुधिश्चैव शैलेंद्र एत उत्तरसंस्थिताः॥५६॥

है। उत्तर नैगमेय का और पूर्व में कुमार का पवित्र केन्द्र है। मैं अब अनुरोद झील से प्रारम्भ करते हुए बड़ी चोटियों का संक्षेप में केवल उनके नामों से वर्णन करूँगा। विस्तार में वर्णन करना सम्भव नहीं है।।३८-४०।। वे जो बड़े पहाड़ हैं उनके नाम सितांत, कुरंड, कुरर, विकर, मणिशैल, वृक्षवान, महानील, रुचक सबिन्दु, दर्दुर, वेणुमान, समेघ, निषध, देवपर्वत मंदर के दक्षिण में ये और अन्य पर्वत सिद्धों के निवास स्थान हैं। उन पर्वतों, गुफाओं और वनों में रुद्र, विष्णु और नारायण के दिव्य क्षेत्र हैं।।४१-४५।। अब मैं मानस झील के दक्षिण में बड़े अचल जो प्रसिद्ध है उनको संक्षेप में कहता हूँ। शैल, विशिर, शिखर, एकशृंग, महाशूल, गजशैल, पिशाचक, पंचशैल, कैलास और हिमवत ये सब देवताओं द्वारा चरित उत्कट और उत्तम पर्वत हैं। इस प्रकार दक्षिण दिशा के पर्वतों का वर्णन मैंने किया। अब मैं पश्चिम स्थित पर्वतों के विषय में बताऊँगा।।४६-४९।। शितोद झील से पश्चिम सुरप, महाबल, कुमुद, मधुमान, अंजन, मुकुट, कृष्ण, पांडुर, सहस्त्रशिखर और ऊँचा पहाड़ पारिजात और श्रीशृंग है। ये प्रमुख पर्वत हैं जो देवताओं द्वारा सेवित पश्चिम भाग में है और ये रुद्र के क्षेत्र हैं।।५०-५२।। महाभद्र झील के उत्तर बेहद शक्तिशाली पर्वतों को संक्षेप में कहता हूँ।।५३।। शंखकूट, महाशैल, वृषभ, हंसपर्वत, नाग, कपिल, इन्द्रशैल, सानुमान, नील, कंटकशृंग। शतशृंग, पुष्पकोश, प्रशैल, विरज, वराह पर्वत, मयूर, और जारुचि ये उत्तर में स्थित हैं।।५४-५६।। इन दिव्य पर्वतों पर त्रिशूलधारी शिव

तेषु शैलेषु दिव्येषु देवदेवस्य शूलिनः। असंख्यातानि दिव्यानि विमानानि सहस्रशः॥५७॥
एतेषां शैलमुख्यानामंतरेषु यथाक्रमम्। संति चैवांतरद्रोण्यः सरांस्युपवनानि च॥५८॥
वसंति देवा मुनयः सिद्धाश्चैव शिवभाविताः। कृतवासाः सपत्नीकाः प्रसादात्परमेष्ठिनः॥५९॥
लक्ष्म्याद्यानां बिल्ववने ककुभे कश्यपादयः। तथा तालवने प्रोक्तमिंद्रोपेन्द्रोरगात्मनाम्॥६०॥
उदुंबरे कर्दमस्य तथान्येषां महात्मनाम्। विद्याधराणां सिद्धानां पुण्ये त्वाम्रवने शुभे॥६१॥
नागानां सिद्धसंघानां तथा निंबवने स्थितिः। सूर्यस्य किंशुकवने तथा रुद्रगणस्य च॥६२॥
बीजपूरवने पुण्ये देवाचार्यो व्यवस्थितः। कौमुदे तु वने विष्णुप्रमुखानां महात्मनाम्॥६३॥
स्थलपद्मवनांतस्थन्यग्रोधेऽशेषभोगिनः । शेषस्त्वशेषजगतां पतिरास्तेऽतिगर्वितः॥६४॥
स एव जगतां कालः पाताले च व्यवस्थितः। विष्णोर्विश्वगुरोर्मूर्तिर्दिव्यः साक्षाद्धलायुधः॥६५॥
शयनं देवदेवस्य स हरेः कंकणं विभोः। वने पनसवृक्षाणां सशुक्रा दानवादयः॥६६॥
किन्नरैरुरगाश्चैव विशाखकवने स्थिताः। मनोहरवने वृक्षाः सर्वकोटिसमन्विताः॥६७॥
नंदीश्वरो गणवरैः स्तूयमानो व्यवस्थितः।
संतानकस्थलीमध्ये साक्षाद्देवी सरस्वती॥६८॥
एवं संक्षेपतः प्रोक्ता वनेषु वनवासिनः। असंख्याता मयाप्यत्र वक्तुं नो विस्तरेण तु॥६९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे इलावर्त नाम
एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः॥४९॥

के हजारों दिव्य महल हैं।।५७।। इन महान पर्वतों के भीतर झरने, तालाब और उपवन हैं।।५८।। परमेश्वर की कृपा से देवता, मुनि, शिव के विचारों से सिक्त शुद्ध सिद्ध गण अपने-अपने निवास में सपरिवार निवास करते हैं।।५९।। अलग-अलग देवता विभिन्न वनों में रहते हैं। लक्ष्मी आदि विल्ववन में, कश्यप तथा अन्य ककुभवन में, इन्द्र, उपेन्द्र और शेष ताल वन में, कर्दम तथा अन्य महात्मा उदुंबर वन में, विद्याधर और सिद्ध आम्रवन में, नाग और सिद्ध निंब वन में, सूर्य और रुद्रगण किंशुक वन में, देवगुरु बीजपूर वन में, विष्णु प्रमुख महात्मा कौमुद वन में, सर्पगण पद्म वन के भीतर स्थित न्यग्रोध वन में, शेषनाग पाताल में रहते हैं। वे सबके लिए मृत्यु के देवता हैं। हलायुध रूप में वे स्वयं विष्णु हैं, विश्व के रक्षक विष्णु की शय्या हैं और शिव के कर के कंगन रूप हैं। दानवगण अपने गुरु शुक्राचार्य के साथ कटहल के वृक्षों के वन में, अपने परिवार और उरग सहित किन्नर विशाख वन में, असंख्य और विविध प्रकार के वृक्ष उस सुन्दर वन में हैं। नन्दीशवर भी गणाधिपों द्वारा स्तुति किये जाते हुए वहाँ स्थित हैं। संतानक वृक्षों से भरे हुए, क्षेत्र के मध्य में सरस्वती देवी रहती हैं। इस प्रकार इन वनों के निवासियों का संक्षेप में वर्णन किया। इनका विस्तार में वर्णन करना सम्भव नहीं है।।६०-६९।।

श्रीलिंगमहापुराण के प्रथम भाग में इलावर्त नामक
उन्चासवाँ अध्याय समाप्त॥४९॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनविन्यासोद्देशस्थानवर्णनम्

सूत उवाच

शितांतशिखरे शक्रः पारिजातवने शुभे। तस्य प्राच्यां कुमुदाद्रिकूटोसौ बहुविस्तरः॥१॥
अष्टौ पुराण्युदीर्णानि दानवानां द्विजोत्तमाः। सुवर्णकोटरे पुण्ये राक्षसानां महात्मनाम्॥२॥
नीलकानां पुराण्याहुरष्टषष्टिर्द्विजोत्तमाः। महानीलेपि शेलेन्द्रे पुराणि दश पंच च॥३॥
हयाननानां मुख्यानां किन्नराणां च सुव्रताः। वेणुसौधे महाशैले विद्याधरपुरत्रयम्॥४॥
वैकुंठे गरुडः श्रीमान् करंजे नीललोहितः। वसुधारे वसूनां तु निवासः परिकीर्तितः॥५॥
रत्नधारे गिरिवरे सप्तर्षीणां महात्मनाम्। सप्तस्थानानि पुण्यानि सिद्धावासयुतानि च॥६॥
महत्प्रजापतेः स्थानमेकशृंगे नगोत्तमे। गजशैले तु दुर्गाद्याः सुमेधे वसवस्तथा॥७॥
आदित्याश्च तथा रुद्राःकृतावासास्तथाश्विनौ। अशीतिर्देवपुर्यस्तु हेमकक्षे नगोत्तमे॥८॥
सुनीले रक्षसां वासाः पंचकोटिशतानि च। पंचकूटे पुराण्यासन्पंचकोटिप्रमाणतः॥९॥
शतशृंगे पुरशतं यक्षाणाममितौजसाम्। ताम्राभे काद्रवेयाणां विशाखे तु गुहस्य वै॥१०॥
श्वेतोदरे मुनिश्रेष्ठाः सुपर्णस्य महात्मनः। पिशाचके कुबेरस्य हरिकूटे हरेर्गृहम्॥११॥

पचासवाँ अध्याय

देवों के निवास

सूत बोले

इन्द्र शितांत के शिखर पर स्थित शुभ पारिजात वन (कल्पवृक्ष) में निवास कहते हैं।।१।। इसके पूर्व में बहुत विस्तृत कुमुद पर्वत की चोटी बहुत विस्तृत है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! इस पर दानवों के आठ पुर (नगर) हैं। ऐसा कहा गया है।।२।। पवित्र सुवर्ण कोटर पर महात्मा राक्षसों के अड़सठ पुर हैं। उनको नीलक कहते हैं। महानील नामक शैलेन्द्र पर घोड़ों के समान मुख वाले किन्नरों का निवास स्थान है।।३।। हे सुव्रतो! वेणु सौध महान पर्वत पर विद्याधरों के तीन पुर हैं।।४।। श्रीमान गरुण बैकुण्ठ में रहते हैं। नीललोहित करंज में निवास करते हैं। वसु गण वसुधार में रहते हैं।।५।। रत्नधार में महान पवित्र पर्वत पर सात पवित्र स्थान है। वे सात श्रेष्ठ महर्षियों के निवास हैं। वे सिद्धों के स्थानों से युक्त हैं। वहाँ सिद्ध गण रहते हैं।।६।। उत्तम एक शृंग पर्वत पर प्रजापति का महान आवास है। गज शैल पर दुर्गा तथा अन्य के निवास हैं और वसु गण सुमेध में रहते हैं।।७।। आदित्य गण, रुद्रगण और अश्विन बन्धु हेम कक्ष नामक उत्तम पर्वत पर अस्सी देवपुरियों में निवास करते हैं।।८।। सुनील पर्वत पर राक्षसों के पाँच हजार करोड़ निवास हैं। उस पर्वत के पाँच कूट जिसमें से प्रत्येक में पाँच करोड़ पुर हैं।।९।। अमित तेजस्वी यक्षों के शत शृंग पर एक सौ पुर हैं। ताम्राभ पर्वत पर काद्रवेयों के पुर हैं। विशाख हिल पर गुह का निवास है।।१०।। हे श्रेष्ठ मुनियों! श्वेतोदर पर सुपर्ण का निवास है। पिशाचक

कुमुदे किंनरावासस्त्वंजने चारणालयः। कृष्णो गंधर्वनिलयः पांडुरे पुरसप्तकम्॥१२॥
विद्याधराणां विप्रेन्द्रा विश्वभोगसमन्वितम्। सहस्त्रशिखरे शैले दैत्यानामुग्रकर्मणाम्॥१३॥
पुराणां तु सहस्त्राणि सप्त शक्रारिणां द्विजाः। मुकुटे पन्नगावासः पुष्पकेतौ मुनीश्वराः॥१४॥
वैवस्वतस्य सोमस्य वायोर्नागाधिपस्य च। तक्षके चैव शैलेन्द्रे चत्वार्यायतनानि च॥१५॥
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राणां गुहस्य च महात्मनः। कुबेरस्य च सोमस्य तथान्येषां महात्मनाम्॥१६॥
संत्यायतनमुख्यानि मर्यादापर्वतेष्वपि। श्रीकंठाद्रिगुहावासी सर्वावासः सहोमया॥१७॥
श्रीकंठस्याधिपत्यं वै सर्वदेवेश्वरस्य च। अंडस्यास्य प्रवृत्तिस्तु श्रीकंठेन न संशयः॥१८॥
अनंतेशादयस्त्वेवं प्रत्येकं चाण्डपालकाः। चक्रवर्तिन इत्युक्तास्ततो विद्येश्वरास्त्विह॥१९॥
श्रीकंठाधिष्ठितान्यत्र स्थानानि च समासतः। मर्यादापर्वतेष्वद्य शृण्वंतु प्रवदाम्यहम्॥२०॥
श्रीकंठाधिष्टितं विश्वं चराचरमिदं जगत्। कालाग्निशिवपर्यंतं कथं वक्ष्ये सविस्तरम्॥२१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भुवनविन्यासोद्देशस्थानवर्णनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥

पर कुबेर का निवास है। विष्णु का आवास हरिकूट में है।।११।। कुमुद पर किन्नरों का निवास है। अंजन पर चारणगण रहते हैं। कृष्ण पर गन्धर्वों के महल हैं। पांडुर में सात पुर हैं। वहाँ विद्याधर रहते हैं। उन सभी प्रकार की सुख सुविधायें मिली हुई हैं। हे ब्राह्मणों! भयानक क्रिया-कलापों वाले इन्द्र के शत्रुओं के सहस्त्र शिखर पर सात हजार पुर हैं।।१२-१३।। पन्नगों (सर्पों) का निवास मुकुट पर्वत पर है जो फूलों से भरा है। वैवस्वतों का, सोम का, वायु और नागों के स्वामियों का निवास तक्षक गिरि पर चार पुर हैं। ब्रह्मा, इन्द्र विष्णु, रुद्र, गुह, कुबेर, सोम और अन्य महात्माओं के मर्यादा पर्वतों (सीमापर्वतों) पर मुख्य निवास हैं।।१४-१६।। श्रीकंठ की गुफा में भगवान शिव और देवी उमा का निवास है। सब देवताओं के अधीश्वरों का निवास भी श्रीकंठ है। निःसन्देह शिव की कृपा से अंड की प्रवृत्ति हुई है। अनन्त, ईश और अन्य में से प्रत्येक उस अंड के पालक (रक्षक) हैं। उनको चक्रवर्ती और विद्येश्वर कहा गया है।।१७-१९।। अब मैं सीमावर्ती पर्वतों पर श्रीकंठ पर बसे हुये देवताओं के स्थलों का वर्णन करूँगा। विश्व के चर-अचर में श्रीकंठ अधिष्ठित (व्याप्त) हैं। मैं कालग्नि शिव को विस्तार में कैसे वर्णन कर सकता हूँ।।२०-२१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में देवों के निवास नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त॥५०॥

एक पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शिवस्यावासाः

सूत उवाच

देवकूटे गिरौ मध्ये महाकूटे सुशोभने। हेमवैडूर्यमाणिक्यनीलगोमेदकांतिभिः॥१॥
तथान्यैर्मणिमुख्यैश्च निर्मिते निर्मले शुभे। शाखाशतसहस्राढ्ये सर्वद्रुमविभूषिते॥२॥
चंपकाशोकपुंनागवकुलासनमंडिते । पारिजातकसंपूर्णे नानापक्षिगणान्विते॥३॥
नैकधातुशतैश्चित्रे विचित्रकुसुमाकुले। नितंबपुष्पसालंबे नैकसत्त्वगणान्विते॥४॥
विमलस्वादुपानीये नैकप्रस्रवणैर्युते। निर्झरैः कुसुमाकीर्णैरनेकैश्च विभूषिते॥५॥
पुष्पोडुपवहाभिश्च स्रवंतीभिरलंकृते। स्निग्धवर्णं महामूलमनेकस्कंधपादम्॥६॥
रम्यं ह्यविरलच्छायं दशयोजनमंडलम्। तत्र भूतवनं नाम नानाभूतगणालयम्॥७॥
महादेवस्य देवस्य शंकरस्य महात्मनः। दीप्तमायतनं तत्र महामणिविभूषितम्॥८॥
हेमप्राकारसंयुक्तं मणितोरणमंडितम्। स्फाटिकैश्च विचित्रैश्च गोपुरैश्च समन्वितम्॥९॥
सिंहासनैर्मणिमयैः शुभास्तरणसंयुतैः।
क्षितावितस्ततः सम्यक् शर्वेणाधिष्ठितैः शुभैः॥१०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

शिव के आवास

सूत बोले

सुन्दर वन, भूत वन, भूतों के अलग-अलग समूहों के भूतों का निवास स्थान है। उच्च भव्य देवकूट पर्वत है। इस पर्वत के बड़े श्रृंग (चोटियाँ) हैं। यह शानदार है और यहाँ गन्दगी नहीं है। यह सोने, वैडूर्य मणि, गोभेद, तथा अन्य बहुमूल्य मणियों से बना हुआ है। यह चारों ओर सौ हजार शाखाओं से समृद्ध है और सब प्रकार के वृक्षों से भूषित है। यह चम्पक, अशोक, पुंनाग, बकुल, असन और पारिजात आदि सब प्रकार के वृक्षों से मंडित है। यहाँ सब प्रकार के पक्षियों के समूह तथा हाथियों के झुंड रहते हैं। यह सैकड़ों धातुओं से विविध रंगों में चित्रित है। विचित्र और विविध फूलों से भरा हुआ है। इसके नितम्ब नीचे की लटकती फूलों की शाखाओं से मनोहर हैं। इस वन में अनेक प्रकार के पशु रहते हैं। इस वन में शुद्ध और सुस्वादु जल के अनेक धारायें और झरने हैं। यहाँ बहुत से जलप्रपात हैं जो फूलों से विभूषित हैं। यह बन बहती हुई धाराओं और उनमें तैरते हुये फूलों के गुच्छों से सुन्दर है। भूत बन का रंग स्निग्ध (मनमोहक) है। इस बन में बड़ी गहरी जड़ों और स्कन्धों वाले महान वृक्ष हैं। इन वृक्षों की सघन छाया चारों ओर दस योजन फैली हुई है। यहाँ पर नाना भूतगणों के निवास स्थान हैं।।१-७।। महान आत्मा शंकर महादेव भव का महामणियों से विभूषित दीप्त निवास है जो अलग-अलग रूप और आकार में है।।८।। स्फटिक का बना हुआ गोपुर (फाटक) है। सोने की बनी हुई चहारदिवारी है।

अम्लानमालानिचितैर्नानावर्णैर्गृहोत्तमैः । मंडपैः सुविचित्रैस्तु स्फाटिकस्तंभसंयुतैः॥११॥
संयुतं सर्वभूतेन्द्रैर्ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रपूजितैः। वराहगजसिंहर्क्षशार्दूलकरभाननैः ॥१२॥
गृध्रोलूकमुखैश्चान्यैर्मृगोष्ट्राजमुखैरपि । प्रमथैर्विविधैः स्थूलैर्गिरिकूटोपमैः शुभैः॥१३॥
करालैर्हरिकेशैश्च रोमशैश्च महाभुजैः। नानावर्णकृतिधरैर्नानासंस्थानसंस्थितैः॥१४॥
दीप्तास्यैर्दीप्तचरितैर्नन्दीश्वरमुखैः शुभैः। ब्रह्मेन्द्रविष्णुसंकाशैरणिमादिगुणान्वितैः॥१५॥
अशून्यममरैर्नित्यं महापरिषदैस्तथा। तत्र भूतपतेर्देवाः पूजां नित्यं प्रयुंजते॥१६॥
झर्झरैः शंखपटहैर्भेरीडिंडिम गोमुखैः। ललितावसितोद्गीतैर्वृत्तवल्गितगर्जितैः॥१७॥
पूजितो वै महादेवः प्रमथैः प्रमथेश्वरः। सिद्धर्षिदेवगंधर्वैर्ब्रह्मणा च महात्मना॥१८॥
उपेन्द्रप्रमुखैश्चान्यैः पूजितस्तत्र शंकरः। विभक्तचारुशिखरं यत्र तच्छंखवर्चसम्॥१९॥

कैलासो यक्षराजस्य कुबेरस्य महात्मनः।
निवासः कोटियक्षाणां तथान्येषां महात्मनाम्॥२०॥

तत्रापि देवदेवस्य भवस्यायतनं महत्। तस्मिन्नायतने सोमः सदास्ते सगणो हरः॥२१॥
यत्र मंदाकिनी नाम नलिनी विपुलोदका। सुवर्णमणिसोपाना कुबेरशिखरे शुभे॥२२॥

मणियों से जड़ित तोरण लगे हुये हैं। वहाँ मणिमय भव्य सिंहासन हैं। वे भूमि पर इधर-उधर शुभ वस्त्रों से ढके हुये है। उन पर शिव जी जब तब बैठते हैं।।९-१०।। शिव के महल में बहुत से कमरे हैं जो कभी न मुर्झाने वाले अनेक प्रकार के रंगों के फूलों से सजे हुये हैं। वहाँ कुछ उठे हुये मंडप हैं जो विभिन्न रूप और आकार में हैं। उनके स्तम्भ (खम्भे) स्फटिक से बने हुये हैं। ब्रह्मा, इंद्र और उपेन्द्र द्वारा पूजित प्रमुख भूतगणों से वह स्थान संयुक्त है। वहाँ बहुत से प्रमथगण हैं जिनके चेहरे वराह, गज, सिंह, ऋक्ष, शार्दूल और करभ (ऊँट) गीध, उलूक, मृग, कूबड़ उठे बैल और बकरों के समान हैं। वे महान पर्वत के कूटों (चोटियों) के समान दृढ़ और विशाल हैं। बड़ी भुजाओं वाले वे भयानक हैं। कुछ के सिर पर हरे बाल हैं, वे विभिन्न रूप और आकार में है। वे अनेक सब संभव आसन में (बैठने के रूप में) बैठे हुये हैं। वे दीप्त मुख और दीप्त चरित वाले नन्दीश्वर प्रमुख गण लोग हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र के समान अणिमा आदि सिद्धि से युक्त हैं। अमरों (देवों) की भीड़ से वह स्थान कभी खाली नहीं रहता। जो सदा वहाँ आकर भगवान भूतपति शिव की पूजा करते हैं।।११-१६।। शंकर, महादेव, प्रमथों के देव की पूजा सिद्ध, गन्धर्व, देवगण, ब्रह्मा तथा अन्य (जैसे उपेन्द्र, आदि) करते हैं। वे पूजा के समय- झर्झर, शंख, पटह, भेरी, डिंडिम और गोमुख वाद्य यन्त्रों का उपयोग करते हैं। पूजा के समय वे निम्न, मध्य और उच्च स्वर में गाते हैं। वे पूजा के समय नाचते-कूदते और चिल्लाते भी हैं। (जय का नारा लगाते हैं)। जब शंकर की पूजा की जाती है तो वहाँ ऐसा लगता है जैसे कैलास शंख के दो शोभायमान भागों में बँट गया हो।।१७-१९।। कैलास यक्षों के राजा कुबेर का निवास तथा अन्य महान आत्माओं का निवास भी है।।२०।। वहाँ भी देवेश का महल (आवास) है। वह वहाँ उमा और गणाधिपों के साथ ठहरते हैं।।२१।। वहाँ कुबेर के शिखर पर बहुत जलों से भरी, कमलों के पुष्पों से युक्त मंदाकिनी नदी बहती है। उसकी सीढ़ियाँ सोने

जांबूनदमयैः पद्मैर्गंधस्पर्शगुणान्वितैः। नीलवैडूर्यपत्रैश्च गंधोपेतैर्महोत्पलैः॥२३॥
तथा कुमुदषण्डैश्च महापद्मैरलंकृता। यक्षगंधर्वनारीभिरप्सरोभिश्च सेविता॥२४॥
देवदानवगंधर्वैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः। उपस्पृष्टजला पुण्या नदी मंदाकिनी शुभा॥२५॥
तस्याश्चोत्तरपार्श्वे तु भवस्यायतनं शुभम्। वैडूर्यमणिसंपन्नं तत्रास्ते शंकरोऽव्ययः॥२६॥
द्विजाः कनकनंदायास्तीरे वै प्राचिदक्षिणे। वनं द्विजसहस्राढ्यं मृगपक्षिसमाकुलम्॥२७॥
तत्रापि सगणः सांबः क्रीडतेद्रिसमे गृहे। नंदायाः पश्चिमे तीरे किंचिद्वै दक्षिणाश्रिते॥२८॥
पुरं रुद्रपुरी नाम नानाप्रासादसंकुलम्। तत्रापि शतधा कृत्वा ह्यात्मानं चांबया सह॥२९॥
क्रीडते सगणः सांबस्तच्छिवालयमुच्यते। एवं शतसहस्राणि सर्वस्यायतनानि तु॥३०॥
प्रतिद्वीपे मुनिश्रेष्ठाः पर्वतेषु वनेषु च। नदीनदतटाकानां तीरेष्वर्णवसंधिषु॥३१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवस्यावासाः नाम
एकपञ्चशत्तमोऽध्यायः॥५१॥

और मणियों से बनी हुई हैं। वहाँ सोने के कमल सुगंधित हैं और छूने में मुलायम हैं। वे नील वैदूर्य मणि के समान बड़े पत्तों वाले हैं। महापद्म और कुमुद (बड़े कमल और लिली) की सुन्दरता से नदी विभूषित है। यक्षों और गंधर्वों की नारियों और अप्सराओं से सेवित हैं। मंदाकिनी नदी का जल देवों, दानवों, गंधर्वों, यक्षों, राक्षसों और किन्नरों द्वारा स्नान करने और पीने के काम में लिया जाता है।।२२-२५।। हे ब्राह्मणों! इस नदी के उत्तर में भगवान शिव का भव्य निवास है जो वैदूर्य मणि तथा अन्य मणियों से बना है। अव्यय भगवान शिव वहाँ वास करते हैं।।२६।। हे ब्राह्मणों! मन्दाकिनी नदी के पूर्वी और दक्षिणी ओर कनकनन्दा के किनारे पर वन है जिसमें हजारों ब्राह्मण, पशु और पक्षी रहते हैं।।२७।। वहाँ भी शिव उमा और अपने गणों के साथ कैलास के महल के समान महल में क्रीड़ा करते हैं। नन्दा के पश्चिमी तट पर थोड़ी दूर दक्षिण में रुद्र पुरी नाम का नगर है। वहाँ बहुत से रूप धारण करके उमा और गणों के साथ क्रीड़ा करते हैं। इसको शिवालय कहा जाता है। इस प्रकार प्रत्येक द्वीप में शिव के सैकड़ों और हजारों आयतन (निवास) हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! पर्वतों पर, वनों में, नदियों के तटों पर, जल के संगमों पर, और सरोवरों के पास भी निवास हैं।।२८-३१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में शिव के आवास नामक
इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त॥५१॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनकोशास्वभाववर्णनम्

सूत उवाच

नद्यश्च बहवः प्रोक्ताः सदा बहुजलाः शुभाः। सरोवरेभ्यः संभूतास्त्वसंख्याता द्विजोत्तमाः॥१॥
प्राङ्मुखा दक्षिणास्यास्तु चोत्तरप्रभवाः शुभाः। पश्चिमाग्राः पवित्राश्च प्रतिवर्षं प्रकीर्तिताः॥२॥
आकाशांभोनिधिर्योसौ सोम इत्यभिधीयते। आधारः सर्वभूतानां देवानाममृताकरः॥३॥
अस्मात्प्रवृत्ता पुण्योदा नदी त्वाकाशगामिनी। सप्तमेनानिलपथा प्रवृत्ता चामृतोदका॥४॥
सा ज्योतींष्यनुवर्तन्ती ज्योतिर्गणनिषेविता। ताराकोटिसहस्राणां नभसश्च समायुता॥५॥
परिवर्तत्यहरहो यथा सोमस्तथैव सा। चत्वार्यशीतिश्च तथा सहस्राणां समुच्छ्रितः॥६॥
योजनानां महामेरुः श्रीकंठाक्रीडकोमलः। तत्रासीनो यतः शर्वः सांबः सह गणेश्वरैः॥७॥
क्रीडते सुचिरं कालं तस्मात्पुण्यजला शिवा। गिरिं मेरुं नदी पुण्या सा प्रयाति प्रदक्षिणम्॥८॥
विभज्यमानसलिला सा जवेनानिलेन च। मेरोरंतरकूटेषु निपपात चतुर्ष्वपि॥९॥
समंतात्समतिक्रम्य सर्वाद्रीन्प्रविभागशः। नियोगाद्देवदेवस्य प्रविष्टा सा महार्णवम्॥१०॥
अस्या विनिर्गता नद्यः शतशोथ सहस्रशः। सर्वद्वीपाद्रिवर्षेषु बहवः परिकीर्तिताः॥११॥

बावनवाँ अध्याय

भुवनकोश स्वभाव वर्णन

सूत बोले

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! प्रत्येक उपद्वीप में सदा बहुत जलों से भरी हुई शुभ असंख्य नदियाँ है। वे महान सरोवर से निकली हुई हैं। वे सब दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण) में बहती हैं।।१-२।। आकाश में जो जल सागर है जिसको सोम (चन्द्र) कहते हैं। वह प्राणियों का आधार है और सब देवताओं के लिये अमृत का भंडार है।।३।। वह इससे निकली हुई शुभ जलों की नदी आकाशगामिनी है अर्थात् आकाश में बहती है। यह अमृतमय जलवाली ज्योति रूप गणों के बीच में बहती है और यह आकाश के हजारों और करोड़ों तारागणों से समावृत है। यह चन्द्रमा के समान प्रतिदिन चारों ओर जाती है (बदलती है)। महादेव श्रीकंठ की क्रीड़ा का कोमल मैदान चार हजार योजन ऊँचा है। भगवान शिव इन पर उमा और अपने गणों के साथ बैठते हैं और लम्बे समय तक क्रीड़ा करते हैं। पवित्र जल की यह नदी मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा कहती है।।४-८।। वायु वेग के विभक्त होने पर यह मेरु के अन्तर्गत कूटों और उसकी भी पूरी चोटियों में भी बहती है।।९।। सब पर्वतों के बाहर जाती हुई आंशिक रूप में यह देवेश शिव के आदेश से महासागर में प्रवेश करती है।।१०।। इस नदी से सैकड़ों हजारों नदियाँ इसकी शाखाओं के रूप में निकल कर अनेक द्वीपों, देशों और पहाड़ों के भीतर

क्षुद्रनद्यस्त्वसंख्याता गंगा यद्गां गताम्बरात्। केतुमाले नराः कालाः सर्वे पनसभोजनाः॥१२॥
स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभा जीवितं चायुतं स्मृतम्। भद्राश्वे शुक्लवर्णाश्च स्त्रियश्चन्द्रांशुसन्निभाः॥१३॥
कालाम्रभोजनाः सर्वे निरातंका रतिप्रियाः। दशवर्षसहस्राणि जीवंति शिवभाविताः॥१४॥
हिरणमया इवात्यर्थमीश्वरार्पितचेतसः। तथा रमणके जीवा न्यग्रोधफलभोजनाः॥१५॥
दशवर्षसहस्राणि शतानि दशपंच च। जीवंति शुक्लास्ते सर्वे शिवध्यानपरायणाः॥१६॥
हैरणमया महाभागा हिरणमयव्वनाश्रयाः। एकादश सहस्राणि शतानि दशपंच च॥१७॥
वर्षाणां तत्र जीवंति अश्वत्थाशनजीवनाः। हिरणमया इवात्यर्थमीश्वरार्पितमानसाः॥१८॥
कुरुवर्षे तु कुरवः स्वर्गलोकात्परिच्युताः। सर्वे मैथुनजाताश्च क्षीरिणः क्षीरभोजनाः॥१९॥
अन्योन्यमनुरक्ताश्च चक्रवाकसधर्मिणः। अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं सुखनिषेविणः॥२०॥
त्रयोदश सहस्राणि शतानि दशपंच च। जीवंति ते महावीर्या न चान्यस्त्रीनिषेविणः॥२१॥
सहैव मरणं तेषां कुरूणां स्वर्गवासिनाम्। हृष्टानां सुप्रवृद्धानां सर्वान्नामृतभोजिनाम्॥२२॥
सदा तु चंद्रकान्तानां सदा यौवनशालिनाम्। श्यामांगानां सदा सर्वभूषणास्पददेहिनाम्॥२३॥

जंबूद्वीपे तु तत्रापि कुरुवर्षं सुशोभनम्।
तत्र चन्द्रप्रभं शम्भोर्विमानं चंद्रमौलिनः॥२४॥

बहती हैं।।११।। गंगा-आकाश से पृथ्वी पर जाने के कारण असंख्य क्षुद्र नदियाँ वहाँ हैं। केतुमाल द्वीप में मनुष्य काले रंग के हैं। वे कटहल खाते हैं। उनकी स्त्रियाँ उत्पल (लिली) के रंग की हैं। उनकी आयु दस हजार वर्ष की होती है। भद्राश्व उपद्वीप में स्त्रियाँ शुक्ल वर्ष की हैं। वे चन्द्रमा की किरणों के समान है। काले रंग के आम उनका भोजन है। वे आतंक से रहित हैं और संभोग करने की प्रिय होती हैं। शिव की ध्यान धारणा करने वाली वे दस हजार वर्ष जीती हैं। हिरण्मय वर्ष के समान वे शिव के ध्यान में तल्लीन रहती हैं।।१२-१४।। रमणक उपद्वीप में लोग न्यग्रोध (बरगद) के फल खाते हैं। वही उनका भोजन है। वे ग्यारह हजार पाँच सौ वर्ष जीते हैं। वे सब शुक्ल रंग की होते हैं और शिव के ध्यान में अपने मन को अर्पित किये रहते हैं। हिरण्मय के वन में हिरण्मय लोगों का निवास है। पीपल के फलों को खाने वाले वे बारह हजार पाँच सौ वर्ष जीते हैं। वे भी अपने मन को हिरण्मय निवासियों के समान शिव में लगाये रहते हैं।।१५-१८।। कुरुवर्ष में कुरु लोग स्वर्गलोक से गिरकर यहाँ बसे हुये हैं। वे सब मैथुन क्रिया से उत्पन्न हुये हैं। वे लोग दूध पीने के शौकीन हैं और दुग्धाहारी हैं।।१९।। वे सब एक-दूसरे को प्यार करते हैं और उनके गुण चक्रवाक (चकवा) पक्षी के समान हैं। वे लोग रोग और शोक से रहित हैं और नित्य सुखभोग करते हैं।।२०।। वे चौदह हजार पाँच सौ वर्ष जीते हैं। वे महान वीर्यवान हैं किन्तु पराई स्त्री से संभोग नहीं करते हैं।।२१।। कुरु वर्ष के सब निवासी स्वर्गवासियों के समान मरते हैं। वे लोग हृष्ट-पुष्ट, प्रबुद्ध हैं और भात और अमृत उनका आहार है।।२२।। वे सदा चन्द्रमा के समान चमकते हैं और सदा जवान रहते हैं। उनके शरीर का रंग श्याम है। वे सदा आभूषण पहनते हैं।।२३।। जम्बू द्वीप में सब उपद्वीपों में कुरु वर्ष सब से अधिक शानदार (भव्य)

वर्षे तु भारते मर्त्याः पुण्याः कर्मवशायुषः। शतायुषः समाख्याता नानावर्णाल्पदेहिनः॥२५॥
नानादेवार्चने युक्ता नानाकर्मफलाशिनः। नानाज्ञानार्थसंपन्ना दुर्बलाश्चाल्पभोगिनः॥२६॥
इंद्रद्वीपे तथा केचित्तथैव च कसेरुके। ताम्रद्वीपं गताः केचित्केचिद्देशं गभस्तिमत्॥२७॥
नागद्वीपं तथा सौम्यं गांधर्वं वारुणं गताः।
केचिन्म्लेच्छाः पुलिंदाश्च नानाजातिसमुद्भवाः॥२८॥
पूर्वे किरातास्तस्यांते पश्चिमे यवनाः स्मृताः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शुद्राश्च सर्वशः॥२९॥
इज्यायुद्धवाणिज्याभिर्वर्तयंतो व्यवस्थिताः। तेषां संव्यवहारोऽयं वर्ततेऽत्र परस्परम्॥३०॥
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु। संकल्पश्चाभिमानश्च आश्रमाणां यथाविधि॥३१॥
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्यत्र मानुषी। तेषां च युगकर्माणि नान्यत्र मुनिपुंगवाः॥३२॥
दशवर्षसहस्राणि स्थितिः किंपुरुषे नृणाम्। सुवर्णवर्णाश्च नरास्त्रियश्चाप्सरसोपमाः॥३३॥
अनामया ह्यशोकाश्च सर्वे ते शिवभाविताः।
शुद्धसत्त्वाश्च हेमाभाः सदाराः प्लक्षभोजनाः॥३४॥
महारजतसंकाशा हरिवर्षेपि मानवाः। देवलोकाच्च्युताः सर्वे देवाकाराश्च सर्वशः॥३५॥

है। वहाँ पर चन्द्रमौलि भगवान शंकर का एक चन्द्रमा की प्रभा के समान विमान (महल) है।।२४।। भारतवर्ष उपद्वीप में मनुष्य पवित्र हैं और उनकी आयु कर्म पर निर्भर है। उनकी आयु सौ वर्ष कही गई है। वे अनेक रंग के हैं और उनके शरीर छोटे होते हैं।।२५।। वे अनेक देवों की पूजा में रत हैं। वे नाना प्रकार के कर्मों का फल भोगते हैं। वे नाना प्रकार के ज्ञान के अर्थों के ज्ञाता हैं। वे दुर्बल हैं और अल्प आनन्द और सुख को भोगते हैं।।२६।। उनमें से कुछ इन्द्र द्वीप को चले गये हैं और कुछ कसेरुक, कुछ ताम्रद्वीप और गभस्तिमत देश को चले गये हैं। कुछ नाग द्वीप और सौम्य द्वीप और अन्य गन्धर्व द्वीप और वरुण द्वीप को चले गये। कुछ नाना जातियों से उत्पन्न म्लेच्छ और पुलिंद हैं।।२७-२८।। द्वीप के पूर्वी भाग में किरात लोग हैं। पश्चिम में यवन लोग हैं। मध्यभाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं। शूद्र सब जगह हैं।।२९।। वे अपने-अपने कर्म के आधार पर जीविका चलाते हैं। जैसे ब्राह्मण पूजा से, क्षत्रिय युद्ध से तथा वैश्य व्यवसाय वृत्ति से। उन वर्णों का आपस में व्यवहार केवल धर्म, अर्थ और काम (प्रेम) से सम्बन्धित है। उन वर्णों में संकल्प और अभिमान, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि आश्रमों में उचित रूप में विद्यमान है। वे अपने कर्तव्य के पालन में अभिरुचि रखते हैं।।३०-३१।। यहां पर स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करने की लोगों में प्रवृत्ति है। हे श्रेष्ठ मुनियों! वे प्रत्येक युग के लिए निर्धारित विशिष्ट कर्मों का अनुसरण करते हैं, अन्यत्र नहीं।।३२।। किंपुरुष उपद्वीप में लोग दस हजार वर्ष तक जीते हैं। वहाँ के मनुष्य सुवर्ण के रंग के होते हैं। स्त्रियाँ अप्सरा-सी होती हैं। वे सब शिव भक्ति से भावित होते हैं। वे नीरोग और शोक रहित सदा प्रसन्न रहते हैं। वे सत्त्व गुण से युक्त होते हैं एवं स्वर्ण के समान आभा वाले होते हैं। वे अपनी स्त्रियों के साथ प्लक्ष (गूलर) फल को खाते हैं। उनका वही

हरं यजंति सर्वेशं पिबंतीक्षुरसं शुभम्। न जरा बाधते तेन न च जीर्यंति ते नराः॥३६॥
दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवंति मानवाः। मध्यमं यन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम्॥३७॥
न तत्र सूर्यस्तपति न ते जीर्यंति मानवाः। चंद्रसूर्यौ न नक्षत्रं न प्रकाशमिलावृते॥३८॥
पद्मप्रभाः पद्ममुखाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः। पद्मपत्रसुगंधाश्च जायंते भवभाविताः॥३९॥
जंबूफलरसाहारा अनिष्यन्दाः सुगंधिनः। देवलोकागतास्तत्र जायंते ह्यजरामराः॥४०॥
त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः। आयुःप्रमाणं जीवंति वर्षे दिव्ये त्विलावृते॥४१॥
जंबूफलरसं पीत्वा न जरा बाधते त्विमान्। न क्षुधा न क्लमश्चापि न जनो मृत्युमांस्तथा॥४२॥
तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम्। इंद्रगोपप्रतीकाशं जायते भास्वरं तु तत्॥४३॥
एवं मया समाख्याता नववर्षानुवर्तिनः। वर्णायुर्भोजनाद्यानि संक्षिप्य न तु विस्तरात्॥४४॥
हेमकूटे तु गंधर्वा विज्ञेयाश्चाप्सरोगणाः। सर्वे नागाश्च निषधे शेषवासुकितक्षकाः॥४५॥
महाबलास्त्रयस्त्रिंशद्रमंते याज्ञिकाः सुराः। नीले तु वैडूर्यमये सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽमलाः॥४६॥
दैत्यानां दानवानां च श्वेतः पर्वतउच्यते। शृंगवान् पर्वतश्चैव पितृणां निलयः सदा॥४७॥
हिमवान् यक्षमुख्यानां भूतानामीश्वरस्य च। सर्वाद्रिषु महादेवो हरिणा ब्रह्मणांबया॥४८॥

आहार है।।३३-३४।। हरिवर्ष उपद्वीप में लोग सोने के रंग के होते हैं। वे लोग स्वर्ग से च्युत होकर (गिरकर) आये हैं। वे प्रत्येक अर्थ में देवताओं के आकार के दिव्यरूप में हैं। वे पवित्र गन्ने का रस पीते हैं। अतः उन पर बुढ़ापा का असर नहीं पड़ता है और वे बूढ़े नहीं होते हैं। वहाँ मनुष्य दस हजार वर्ष जीवित रहते हैं।।३५-३६।। इलावृत वर्ष जिसका वर्णन मैंने पहले किया है कि वह द्वीप के मध्य में स्थित है। वहाँ सूर्य नहीं तपता है और लोग बूढ़े नहीं होते हैं। इलावृत में न प्रकाश है और न तो सूर्य, चन्द्रमा तारागण ही हैं।।३७-३८।। वहाँ के लोग कमल के समान प्रभा वाले होते हैं। उनके चेहरे भी कमलवत होते हैं। उनके नेत्र कमल-पत्र के समान होते हैं। वे कमल के पत्तों की सुगन्धियुक्त होते हैं। वे शिव को ध्यान करने से सदा शुद्ध रहते हैं।।३९।। उनका आहार जामुन के फल का रस है। वे सुगन्धी होते हैं। उनके पास कोई काम नहीं होता है (धर्मादि से शून्य होते हैं)।।४०।। इलावृत दिव्य उपद्वीप में वे उत्तम लोग तेरह हजार वर्ष जीवित रहते हैं।।४१।। जामुन के फलों के रस पीने से उन पर बुढ़ापा का असर नहीं पड़ता। उनको न भूख लगती है और न थकावट। उनकी अकाल मृत्यु भी नहीं होती है।।४२।। वहाँ जाम्बुनद कहा जाने वाला कनक भी है। यह दिव्य धातु है। यह जुगुनू के समान चमकता है।।४३।। इस प्रकार मैंने सब द्वीपों के निवासियों के विषय में बताया। उनके वर्ण, आयु और भोजन आदि के विषय में संक्षेप में बताया, विस्तार में नहीं।।४४।। यह ज्ञातव्य है कि हेमकूट में गन्धर्वों और अप्सराओं का निवास है। शंख, वासुकि, तक्षक और अन्य निषध में रहते हैं। महा बलवान ब्राह्मण जो याज्ञिक कहे जाते हैं। वे यज्ञों को कराके अपना जीवन-यापन करते हैं, वे तैंतीस हजार हैं। वे वैदूर्य मणि वाले नील पर्वत पर रहते हैं। शुद्ध ऋषि और सिद्ध लोग भी वहीं रहते हैं।।४५-४६।। दैत्यों और दानवों की जन्मभूमि श्वेत पर्वत है। शृंगवान (शृंग) पर्वत पितरों का निवास स्थान

नंदिना च गणैश्चैव वर्षेषु च वनेषु च। नीलश्वेतत्रिश्रृंगे च भगवान्नीललोहितः॥४९॥
सिद्धैर्देवैश्च पितृभिर्दृष्टो नित्यं विशेषतः। नीलश्च वैडूर्यमयः श्वेतः शुक्लो हिरण्मयः॥५०॥
मयूरबर्हवर्णस्तु शातकुंभस्त्रिश्रृंगवान्। एते पर्वतराजानो जंबूद्वीपे व्यवस्थिताः॥५१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशस्वभाववर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

है। हिमवत, यक्षों, भूतों और भगवान शिव का निवास स्थान है। शिव सभी पर्वतों और वनों में दिखाई देते हैं। वह उमा, ब्रह्मा, विष्णु, नन्दी और गणों के साथ विशेष रूप से वर्षों और पर्वतों पर दिखाई देते हैं। वे नील, श्वेत और त्रिश्रृंग पर्वत पर सिद्धों, देवों और पितरों के साथ नित्य दिखाई देते हैं। नील पर्वत का रंग वैदूर्यमय है। श्वेत पर्वत का रंग शुक्ल है। हिरण्यमय पर्वत मोर के पंखे के रंग का है। त्रिश्रृंग का रंग सुनहरा है। ये सब उच्च पर्वत जम्बूद्वीप में हैं।।४७-५१।।

श्रीलिंगमहापुराण के प्रथम भाग में भुवनकोशस्वभाव वर्णन (विश्व भूगोल) नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त॥५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनकोशविन्यासनिर्णयम्

सूत उवाच

प्लक्षद्वीपादिद्वीपेषु सप्त सप्तसु पर्वताः। ऋज्वायताः प्रतिदिशं निविष्टा वर्षपर्वताः॥१॥
प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्त दिव्यान् महाचलान्। गोमेदकोत्र प्रथमो द्वितीयश्चांद्र उच्यते॥२॥
तृतीयो नारदो नाम चतुर्थो दुंदुभिः स्मृतः। पंचमः सोमको नाम सुमनाः षष्ठ उच्यते॥३॥
स एव वैभवः प्रोक्तो वैभ्राजः सप्तमः स्मृतः। सप्तैते गिरयः प्रोक्ताः प्लक्षद्वीपे विशेषतः॥४॥
सप्त वै शाल्मलिद्वीपे तांस्तु वक्ष्याम्यनुक्रमात्। कुमुदश्चोत्तमश्चैव पर्वतश्च बलाहकः॥५॥
द्रोणः कंकश्च महिषः ककुद्मान् सप्तमः स्मृतः। कुशद्वीपे तु सप्तैव द्वीपाश्च कुलपर्वताः॥६॥
तांस्तु संक्षेपतो वक्ष्ये नाममात्रेण वै क्रमात्। विद्रुमः प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो हेमपर्वतः॥७॥
तृतीयो द्युतिमान्नाम चतुर्थः पुष्पितः स्मृतः। कुशेशयः पंचमस्तु षष्ठो हरिगिरिः स्मृतः॥८॥
सप्तमो मंदरः श्रीमान्महादेवनिकेतनम्। मंदा इति ह्यपां नाम मंदरो धारणादपाम्॥९॥
तत्र साक्षाद्वृषांकस्तु विश्वेशो विमलः शिवः। सोमः सनंदी भगवानास्ते हेमगृहोत्तमे॥१०॥
तपसा तोषितः पूर्वं मंदरेण महेश्वरः। अविमुक्ते महाक्षेत्रे लेभे स परमं वरम्॥११॥
प्रार्थितश्च महादेवो निवासार्थं सहांबया। अविमुक्तादुपागम्य चक्रे वासं स मंदरे॥१२॥

तिरपनवाँ अध्याय

भुवनकोशविन्यास का निर्णय

सूत बोले

प्लक्ष आदि सात द्वीपों में से प्रत्येक द्वीप में सात बड़े पर्वत हैं। वे सीधे सब दिशाओं में फैले हुये हैं और महाद्वीपों की शोभाओं को सीमा का रूप देते हैं।।१।। मैं प्लक्ष द्वीप के सात पर्वतों का वर्णन करूँगा। पहिला पर्वत गोमेदक है, दूसरा चान्द्र है, तीसरा नारद है, चौथा दुंदुभि है, पाँचवाँ सोमक है, छठवाँ सुमनह है उसको वैभव भी कहते हैं, सातवाँ वैभ्राज है। ये सात विशेष पर्वत प्लक्ष द्वीप में हैं।।२-४।। शाल्मलि द्वीप में केवल सात विशेष पर्वत हैं। उनको मैं क्रम से बताऊँगा। वे कुमद, उत्तम, बलाहक, द्रोण, कंक, महिष, और ककुद्मान नामक सात पर्वत हैं। कुश द्वीप में सात उपद्वीप हैं और कुलपर्वत हैं। उनको मैं उनके नाम से संक्षेप में कहूँगा। पहिला पर्वत विद्रुम है, दूसरा हेमपर्वत है, तीसरा द्युतिमान, चौथा पुष्पित, पाँचवाँ कुशेशय, छठवाँ हरिगिरि और सातवाँ श्रीमान मंदर पर्वत है। यहाँ महादेव का निवास है। मंदर जलों का नाम है। अतः मंदर में जल है। इसीलिये इसको मंदर कहते हैं।।५-९।। वृषध्वज विश्व के स्वामी विमल शिव स्वयं वहाँ एक सोने के एक उत्तम महल में उमा और नंदी के साथ रहते हैं।।१०।। पहिले महान पवित्र केन्द्र अविमुक्त में मन्दर द्वारा तपस्या से महेश्वर शिव संतुष्ट हुये। तब उसने परम वर प्राप्त किया। मन्दर ने उमा सहित वहाँ वास करने की प्रार्थना शिव से की।

सनंदी सगणः सोमस्तेनासौ तन्न मुंचति। क्रौञ्चद्वीपे तु सप्तेह क्रौंचाद्याः कुलपर्वताः॥१३॥
क्रौंचो वामनकः पश्चात्तृतीयाश्चांधकारकः। अंधकारात्परश्चापि दिवावृन्नाम पर्वतः॥१४॥
दिवावृतः परश्चापि विविंदो गिरिरुच्यते। विविंदात्परतश्चापि पुंडरीको महागिरिः॥१५॥
पुंडरीकात्परश्चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः। एते रत्नमयाः सप्त क्रौञ्चद्वीपस्य पर्वताः॥१६॥
शाकद्वीपे च गिरयः सप्त तांस्तुनिबोधत। उदयो रैवतश्चापि श्तामको मुनिसत्तमाः॥१७॥
राजतश्च गिरिः श्रीमानांबिकेयः शुशोभनः। आंबिकेयात्परो रम्यः सर्वौषधिसमन्वितः॥१८॥
तथैव केसरीत्युक्तो यतो वायुः प्रजायते। पुष्करे पर्वतः श्रीमानेक एव महाशिलः॥१९॥
चित्रैर्मणिमयैः कूटैः शिलाजालैः समुच्छ्रितैः। द्वीपस्य तस्य पूर्वार्धे चित्रसानुस्थितो महान्॥२०॥
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पंचाशदुच्छ्रितः। अधश्चैव चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि महाचलः॥२१॥
द्वीपस्यार्धे परिक्षिप्तः पर्वतो मानसोत्तरः। स्थितो वेलासमीपे तु नवचंद्र इवोदितः॥२२॥
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पंचाशदुच्छ्रितः। तावदेव तु विस्तीर्णः पार्श्वतः परिमंडलः॥२३॥
स एव द्वीपपश्चार्धे मानसः पृथिवीधरः। एक एव महासानुः सन्निवेशाद्द्विधा कृतः॥२४॥
तस्मिन्द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ। राजतौ मानसस्याथ पर्वतस्यानुमंडलौ॥२५॥
महावीतं तु यद्वर्षं बाह्यतो मानसस्य तु। तस्यैवाभ्यंतरो यस्तु धातकीखण्ड उच्यते॥२६॥
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः। पुष्करद्वीपविस्तारविस्तीर्णोसौ समंततः॥२७॥
विस्तारान्मंडलाच्चैव पुष्करस्य समेन तु। एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः॥२८॥

भगवान शिव ने अविमुक्त छोड़ दिया। वे गणों, नन्दी और उमा के साथ मन्दर पर रहने लगे। इसीलिये वे इस पर्वत को नहीं छोड़ते हैं।।११-१३।। क्रौंचद्वीप में क्रौंच आदि सात कुल पर्वत हैं। उनके नाम क्रौंच, वामनक, अंधकारक, दिवावृत, विविंद, पुण्डरीक, और दुंदुभिस्वन है। ये कौंचद्वीप में स्थित सातों पर्वत रत्नमय हैं। रत्नों से भरे हैं।।१४-१६।। शक द्वीप में सात पर्वत है। उनके नाम उदय, रैवत, श्तामक, राजत, आंबिकेय और रम्य हैं। ये सब औषधियों (जड़ी बूटियों के पौधों से) और केसरी से युक्त हैं। जिस केसरी से वायु उत्पन्न होती है।।१७-१९।। पुष्कर द्वीप में केवल एक श्रीमान पर्वत है। उसका नाम महाशैल है। इसकी आश्चर्य से भरी चोटियाँ मणियों से भरी हैं। ऊँचे शिलाजालों से युक्त हैं। यह इस द्वीप के पूर्वी आधे भाग में विविध रंगों के किनारों के साथ बहुत ऊँचा उठा हुआ है। भूतल से यह पचास हजार योजन ऊँचा हैं। यह महान पर्वत भूतल से चौंतीस हजार योजन नीचे गहराई तक गया है। यह पर्वत द्वीप के आधे भाग में उत्तर की ओर मानस श्रृंखला के ऊपर फैला है। समुद्र तट पर सिमटा यह नवोदित (नये उदय हुये) चन्द्रमा-सा दिखाई देता है। भूतल से यह पचास हजार योजन ऊपर ऊँचा उठा हुआ है। इसकी कुल चौड़ाई और चारों ओर का घेरा (मंडल) भी उतना ही विस्तीर्ण है। द्वीप के पश्चिमी भाग में इसी पर्वत को 'मानस' कहते हैं। यह एक ही महा सानु फटकर दो भागों में हो गया है।।२०-२४।। मानस पर्वत के दोनों पुण्य और शुभ नामक दो जनपद चाँदी के समान चमकदार हैं। मानस के बाहर महावीत उपद्वीप है। उसके भीतरी भाग में धातकी खंड नामक जनपद है।।२५-२६।। पुष्कर द्वीप स्वादु जल के सागर से घिरा हुआ है। इस द्वीप के चारों ओर उतना क्षेत्र है जितना पुष्कर का है। इस प्रकार सब सातों द्वीप सात समुद्रों

द्वीपस्यानंतरो यस्तु समुदः सप्तमस्तु वै। एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धिर्ज्ञेया परस्परम्॥२९॥
परेण पुष्करस्याथ अनुवृत्य स्थितो महान्। स्वदूदकसमुद्रस्तु समंतात्परिवेष्ट्य च॥३०॥
परेण तस्य महती दृश्यते लोकसंस्थितिः। कांचनी द्विगुणा भूमिः सर्वा चैकशिलोपमा॥३१॥
तस्याः परेण शैलस्तु मर्यादापारमंडलः। प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते॥३२॥
दृश्यादृश्यगिरिर्यावत्तावदेषा धरा द्विजाः। योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृतः॥३३॥
तावांश्च विस्तरस्तस्य लोकालोकमहागिरेः। अर्वाचीने तु तस्यार्धे चरंति रविरश्मयः॥३४॥
परार्धे तु तमो नित्यं लोकालोकस्ततः स्मृतः। एवं संक्षेपतः प्रोक्तो भूर्लोकस्य च विस्तरः॥३५॥
आभानोर्वै भुवः स्वस्तु आध्रुवान्मुनिसत्तमाः। आवाहाद्या निविष्टास्तु वायोर्वै सप्त नेमयः॥३६॥
आवहः प्रवहश्चैव ततश्चानुवहस्तथा। संवहो विवहश्चाथ ततश्चोर्ध्वं परावहः॥३७॥
द्विजाः परिवहश्चेति वायोर्वै सप्त नेमयः। बलाहकास्तथा भानुश्चंद्रो नक्षत्रराशयः॥३८॥
ग्रहाणि ऋषयः सप्त ध्रुवो विप्राः क्रमादिह। योजनानां महीपृष्ठादूर्ध्वं पंचदशाध्रुवात्॥३९॥
नियुतान्येकनियुतं भूपृष्ठाद्भानुमंडलम्। रथः षोडशसाहस्रो भास्करस्य तथोपरि॥४०॥
चतुराशीतिसाहस्रो मेरुश्चोपरि भूतलात्। कोटियोजनमाक्रम्य महर्लोको ध्रुवाद्ध्रुवः॥४१॥
जनलोको महर्लोकात्तथा कोटिद्वयं द्विजाः। जनलोकात्तपोलोकश्चतस्रः कोटयो मतः॥४२॥

प्राजापत्याद्ब्रह्मलोकः कोटिषट्कं विसृज्य तु।
पुण्यलोकास्तु सप्तैते ह्यंडेस्मिन्कथिता द्विजाः॥४३॥

से घिरे हुये हैं। इस प्रकार कुल सात समुद्र हैं।।२७-२८।। सब द्वीपों के बाहर सात समुद्र हैं। इस प्रकार द्वीपों और समुद्रों के तुलनात्मक आकारों का वर्णन किया गया।।२९।। स्वादु जलों का समुद्र पुष्कर को चारों ओर से घेरकर स्थित है।।३०।। उसके बाहर विश्व की स्थिति है। भूमि सोने की है और विस्तार में दुगुनी है। सब एक शैल से उपमा योग्य है।।३१।। इसके परे मर्यादाकार मंडल है। इसका कुछ भाग अंधेरा और कुछ भाग प्रकाश वाला है। इसको 'लोकालोक' कहते हैं।।३२।। हे ब्राह्मणों! यह भूमि उतनी ही है जितना यह दृश्य और अदृश्य पर्वत है। इसकी ऊँचाई दस हजार योजन है।।३३।। महान लोकालोक पर्वत का विस्तार भी उतना ही है। सूर्य की किरणें आधे भीतरी और आधे के ऊपर से गुजरी हैं।।३४।। इसके दूसरे भाग में सदा अंधेरा रहता है। इसीलिए यह लोकालोक कहलाता है। इस प्रकार भूलोक का वर्णन संक्षेप में किया।।३५।। भुवः लोक सूर्य तक है। हे श्रेष्ठ मुनियों! स्वः लोक ध्रुव तक है। वायु की सात नेमि (पहिये) हैं। उनके नाम आवाह, प्रवह, अनुवह, संवह, विवह, परावह और परिवह है। हे ब्राह्मणों! ये सात वायु के पहिये हैं। मेघ, सूर्य, चन्द्र, तारागण, राशियाँ, ग्रह, ध्रुव, सप्तर्षि एक दूसरे के ऊपर हैं। पृथ्वी के तल से ध्रुव नक्षत्र तक की दूरी पाँच सौ हजार योजन है।।३६-३९।। पृथ्वीतल से सूर्य मंडल की दूरी एक सौ हजार योजन है। इसके ऊपर सूर्य का रथ सोलह हजार योजन है। मेरु पृथ्वी तल से चौरासी हजार योजन है। यह लोक ध्रुव से एक करोड़ योजन ऊपर है। हे ब्राह्मणों! जन लोक महःलोक से दो करोड़ योजन ऊपर है। तपो लोक जन लोक से चार करोड़ योजन ऊपर है। उसके ऊपर छः करोड़ योजन पर ब्रह्म लोक है। हे ब्राह्मणों! इस प्रकार अण्ड में ये सात पुण्य लोक हैं।।४०-४३।। सात

अधः सप्ततलानां तु नरकाणां हि कोटयः। मायान्ताश्चैव घोराद्या अष्टाविंशतिरेव तु॥४४॥
पापिनस्तेषु पच्यंते स्वस्वकर्मानुरूपतः। अवीच्यंतानि सर्वाणि रौरवाद्यानि तेषु च॥४५॥
प्रत्येकं पंचकान्याहुर्नरकाणि विशेषतः। अंडमादौ मया प्रोक्तमंडस्यावरणानि च॥४६॥
हिरण्यगर्भसर्गश्च प्रसंगाद्बहुविस्तरात्। अंडानामीदृशानां तु कोट्यो ज्ञेयाः सहस्रशः॥४७॥
सर्वगत्वात्प्रधानस्य तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा। अंडेष्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्दश॥४८॥
प्रत्यंडं द्विजशार्दूलास्तेषां हेतुर्महेश्वरः। अंडेषु चांडबाह्येषु तथांडावरणेषु च॥४९॥
तमोऽन्ते च तमःपारे चाष्टमूर्तिर्व्यवस्थितः। अस्यात्मनो महेशस्य महादेवस्य धीमतः॥५०॥
अदेहिनस्त्वहो देहमखिलं परमात्मनः। अस्याष्टमूर्तेः शर्वस्य शिवस्य गृहमेधिनः॥५१॥
गृहिणी प्रकृतिर्दिव्या प्रजाश्च महदादयः। पशवः किंकरास्तस्य सर्वे देहाभिमानिनः॥५२॥

आद्यंतहीनो भगवाननंतः पुमान्प्रधानप्रमुखाश्च सप्त।
प्रधानमूर्तिस्त्वथ षोडशांगो महेश्वरश्चाष्टतनुः स एव॥५३॥
आज्ञाबलात्तस्य धरा स्थितेह धराधरा वारिधराः समुद्राः।
ज्योतिर्गणः शक्रमुखाः सुराश्च वैमानिकाः स्थावरजंगमाश्च॥५४॥
दृष्ट्वा यक्षं लक्षणैर्हीनमीशं दृष्ट्वा सेन्द्रास्ते किमेतत्त्विहेति।
यक्षं गत्वा निश्चयात्पावकाद्याः शक्तिक्षीणश्चाभवन्यत्ततोपि॥५५॥

पाताल लोकों के नीचे घोर से प्रारंभ होकर माया के अन्त तक अट्ठाइस करोड़ नरक हैं।।४४।। उनमें पापी लोग अपने भूतकाल के कर्मों के अनुसार दुःख भोगते हैं। उनमें रौरव से लेकर अवीचि तक पाँच नरक हैं।।४५।। इस प्रकार मैंने अंड का पूरा वर्णन किया और अंड के आवरण का भी वर्णन किया। प्रसंगवश ब्रह्मा की सृष्टि का भी विस्तार से वर्णन किया गया। यह भी जानने योग्य है कि अंडों में इसी प्रकार के हजारों और करोड़ों अंड हैं।।४६-४७।। चूंकि प्रत्येक अंड में सर्वत्र प्रधान विद्यमान हैं। अतः अंडों के चारों ओर तथा ऊपर नीचे चौदह लोक हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! उनकी सृष्टि के हेतु (कारण) स्वयं शिव हैं। अष्टमूर्ति शिव सब अंडों में विद्यमान हैं। अंडों के बाहर, अंडों के आवरण में, तम (अंधकार) में और अंधकार के परे भी वह उपस्थित हैं। आश्चर्य यह है कि विश्व के अष्टमूर्ति गृहस्थ सब देहधारी उस अदेहधारी भगवान धीमान महेश्वर की देह हैं। शिव की दिव्य प्रकृति पत्नी महत् आदि उसकी सन्तान हैं और देह के अभिमानी पशु (अलग आत्मा) उसके दास अर्थात् नौकर हैं।।४८-५२।। भगवान शिव अनन्त हैं। वे आदि और अन्त से रहित हैं। वह पुरुष हैं। प्रधान से प्रारंभ होने वाले सात तत्त्व (वृद्धि, अहंकार और पाँच महत् आदि) से वे युक्त हैं। उनका शरीर स्वयं प्रधान है। उस शरीर के सोलह अंग हैं। वह स्वयं महेश्वर और अष्टमूर्ति हैं।।५३।। उनकी आज्ञा के बल से पृथ्वी स्थिर है। मेघ, पर्वत, समुद्र, तारा आदि, इन्द्र आदि सब देवता, वैमानिक, तथा स्थावर और जंगम सब मर्यादा में स्थित है।।५४।। इन्द्र सहित देवताओं ने अपने विशेष गुणों (लक्षणों) को त्यागकर यक्ष रूपधारी शिव को देखा। उन्होंने चकित होकर पूछा, 'यह क्या है?'। वे यक्ष के पास गये। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने में असमर्थ अग्नि तथा अन्य

दग्धुं तृणं वापि समक्षमस्य यक्षस्य वह्निर्न शशाक विप्राः।
वार्युस्तृणं चालयितुं तथान्ये स्वान्स्वान्प्रभावान् सकलामरेन्द्राः॥५६॥
तदा स्वयं वृत्ररिपुः सुरेन्द्रैः सुरेश्वरः सर्वसमृद्धिहेतुः।
सुरेश्वरं यक्षमुवाच को वा भवानितीत्थं स कुतूहलात्मा॥५७॥
तदा ह्यदृश्यं गत एव यक्षस्तदांबिका हैमवती शुभास्या।
उमा शुभैराभरणैरनेकैः सुशोभमाना त्वनु चाविरासीत्॥५८॥
तां शक्रमुख्या बहुशोभमानामुमामजां हैमवतीमपृच्छन्।
किमेतदीशे बहुशोभमाने को वांबिके यक्षवपुश्चकास्ति॥५९॥
निशम्य तद्यक्षमुमाम्बिकाह त्वगोचरश्चेति सुराः सशक्राः।
प्रणेमुरेनां मृगराजगामिनीमुमामजां लोहितशुक्लकृष्णाम्॥६०॥
संभाविता सा सकलामरेन्द्रैः सर्वप्रवृत्तिस्तु सुरासुराणाम्।
अहं पुरासं प्रकृतिश्च पुंसो यक्षस्य चाज्ञावशगेत्यथाह॥६१॥
तस्माद्विजाः सर्वमजस्य तस्य नियोगतश्चांडमभूदजाद्वै।
अजश्च अंडादखिलं च तस्माज्ज्योतिर्गणैर्लोकमजात्मकं तत्॥६२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशविन्यासनिर्णयो नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥

ने प्रयास किया किन्तु उनकी शक्ति क्षीण हो गई।।५५।। हे ब्राह्मणों! उस यक्ष के सामने अग्नि एक तिनका (तृण) भी नहीं जला सकी। वायु उस तृण को उड़ा न सका। सब देवता अपने-अपने प्रयास से हीन हो गये।।५६।। उस समय देवेश इन्द्र ने सब देवताओं के साथ सब समृद्धि के हेतु (कारण) से बहुत उत्सुकता से पूछा, 'आप कौन हैं?'।।५७।। उसी समय यक्ष अन्तर्धान (अदृश्य) हो गये। तब हिमवत की कन्या पार्वती अनेक आभूषणों के पहिने मध्य रूप में इन्द्र के सामने दिखाई दीं।।५८।। इन्द्र और अन्य ने बहुत सुन्दर लगने वाली उमा से पूछा। हे देवि! हे अति सुन्दर देवि! 'यह क्या है?' यह यक्ष के रूप में सुन्दर शरीरधारी कौन है?'।।५९।। यह सुनकर उमा ने कहा। 'यक्ष अगोचर हैं।' तब इन्द्र सहित सब देवताओं ने उसको प्रणाम किया और लाल, सफेद और काले रंग वाली अजा देवी उमा को भी प्रणाम किया।।६०।। इस प्रकार देवताओं द्वारा सम्मानित होने पर सुरों और असुरों के क्रिया-कलापों की कारण (प्रवृत्ति) पार्वती ने कहा। 'पहिले मैं इस पुरुष यक्ष की आज्ञा से इसके अधीन प्रकृति थी।।६१।। अतः हे ब्राह्मणों! सम्पूर्ण अंड उस अज की आज्ञा से उत्पन्न (उद्भूत) है और अंड से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि सहित सम्पूर्ण विश्व उनसे उत्पन्न हुआ। इस तरह यह सम्पूर्ण विश्व उस अज से उत्पन्न और तन्मय है।।६२।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में भुवनकोश विन्यास का निर्णय (विश्व का भूगोल) नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त॥५३॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ज्योतिश्चक्रे सूर्यगत्यादिकथनम्

सूत उवाच

ज्योतिर्गणप्रचारं वै संक्षिप्यांडे ब्रवीम्यहम्। देवक्षेत्राणि चालोक्य ग्रहचारप्रसिद्धये॥१॥
मानसोपरि माहेन्द्री प्राच्यां मेरोः पुरी स्थिता। दक्षिणे भानुपुत्रस्य वरुणस्य च वारुणी॥२॥
सौम्ये सोमस्य विपुला तासु दिग्देवताः स्थिताः। अमरावती संयमनी सुखा चैव विभा क्रमात्॥३॥
लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने। काष्ठांगतस्य सूर्यस्य गतिर्या तां निबोधत॥४॥
दक्षिणप्रक्रमे भानुः क्षिप्तेषुरिव धावति। ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति॥५॥
पुरांतगो यदा भानुः शक्रस्य भवतिप्रभुः। सर्वैः सायमनैः सौरो ह्युदयो दृश्यते द्विजाः॥६॥
स एव सुखवत्यां तु निशांतस्थः प्रदृश्यते। अस्तमेति पुनः सूर्यो विभायां विश्वदृग्विभुः॥७॥
मया प्रोक्तोमरावत्यां यथासौ वारितस्करः। तथा संयमनीं प्राप्य सुखां चैव विभां खगः॥८॥
यदापराह्णस्त्वाग्नेय्यां पूर्वाह्णो नैर्ऋते द्विजाः। तदा त्वपररात्रश्च वायुभागे सुदारुणः॥९॥
ईशान्यां पूर्वरात्रस्तु गतिरेषा च सर्वतः। एवं पुष्करमध्ये तु यदा सर्पति वारिपः॥१०॥
त्रिंशांशकं तु मेदिन्यां मुहूर्तेनैव गच्छति। योजनानां मुहूर्तस्य इमां संख्यां निबोधत॥११॥

चौवनवाँ अध्याय

ज्योतिश्चक्र में सूर्य की गति आदि का वर्णन

सूत बोले

देव के क्षेत्रों को देखकर ज्योतिर्गण (ग्रह नक्षत्र) के क्रम में ग्रहों की गति का संक्षेप में वर्णन करता हूँ।।१।। मेरु के पूर्व मानस पर्वत पर महेन्द्र की पुरी स्थित है। दक्षिण में यम की नगरी है। पश्चिम में वरुण की नगरी है और उत्तर में सोम की नगरी है। इन सब दिशाओं में दिग्पाल लोग रहते हैं। उन पुरियों के नाम क्रम से अमरावती, संयमिनी, सुखा और विभा ये पुरियाँ हैं।।२-३।। इन दिग्पालों की पुरियों के ऊपर सूर्य भ्रमण करते हैं।।४।। दक्षिणायन में सूर्य बाण की तरह तेजी से भ्रमण करते हैं। वे अपने साथ ग्रह नक्षत्रों को लेकर सदा भ्रमण करते हैं।।५।। हे ब्राह्मणों! जब सूर्य देवता इन्द्र की नगरी अमरावती में आते हैं। तब संयमिनी पुरी में सूर्योदय सब लोगों द्वारा दिखायी देता है।।६।। उसी समय पर सूर्य सुखावती में रात्रि के समाप्ति पर दिखायी देता हैं। किन्तु विभा में विश्व नेत्र भगवान सूर्य का अस्त होता है।।७।। यह मैंने बताया है कि अमरावती में जल दूषित होता है। उसी प्रकार संयमिनी सुखा और विभा में जल दूषित हो जाता है।।८।। जब आग्नेय (दक्षिण पूर्व) कोण में दोपहर होता है। हे ब्राह्मणों! तब नैऋत्य (दक्षिण पश्चिम) कोण में सूर्योदय होता है। जब उत्तर-पश्चिम कोण में भयानक रात्रि का उत्तरार्ध होता है। तब उत्तर पूर्व में रात्रि का प्रथम भाग होता है। उसी प्रकार जब सूर्य पुष्कर आकाश के मध्य में चलता है। मानस के ऊपर तब वह एक मुहूर्त (अड़तालीस मिनट) में पृथ्वी के तीसवें भाग पर चलता

पूर्णा शतसहस्त्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मृता। पंचाशच्च तथान्यानि सहस्त्राण्यधिकानि तु॥१२॥
मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा भास्करस्य महात्मनः। एतेन गतियोगेन यदा काष्ठां तु दक्षिणाम्॥१३॥
पर्यपृच्छेत् पतंगोपि सौम्याशां चोत्तरेऽहनि। मध्ये तु पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने॥१४॥
मानसोत्तरशैले तु महातेजा विभावसुः। मंडलानां शतं पूर्णं तदशीत्यधिकं विभुः॥१५॥
बाह्यं चाभ्यंतरं प्रोक्तमुत्तरायणदक्षिणे। प्रत्यहं चरते तानि सूर्यो वै मंडलानि तु॥१६॥
कुलालचक्रपर्यंतो यथा शीघ्रं प्रवर्तते। दक्षिणप्रक्रमे देवस्तथा शीघ्रं प्रवर्तते॥१७॥
तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति। सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्तैर्दक्षिणायने॥१८॥
त्रयोदशार्धमृक्षाणमह्ना तु चरते रविः। मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन्॥१९॥
कुलालचक्रमध्यं तु यथा मंदं प्रसर्पति। तथोदगयने सूर्यः सर्पते मंदविक्रमः॥२०॥
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पां तुगच्छति। स रथो धिष्ठितो भानोरादित्यैर्मुनिभिस्तथा॥२१॥
गंधर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीः सर्पराक्षसैः। प्रदीपयन् सहस्त्रांशुरग्रतः पृष्ठतोप्यधः॥२२॥
ऊर्ध्वतश्च करं त्यक्त्वा सभां ब्राह्मीमनुत्तमाम्।
अंभोभिर्मुनिभिस्त्यक्तैः संध्यायां तु निशाचरान्॥२३॥
हत्वा हत्वा तु संप्राप्तान्ब्राह्मणैश्चरते रविः। अष्टादश मुहूर्तं तु उत्तरायणपश्चिमम्॥२४॥
अहर्भवति तच्चापि चरते मंदविक्रमः॥
त्रयोदशार्धमृक्षाणि नक्तं द्वादशभी रविः। मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि दिवाष्टादशभिश्चरन्॥२५॥

है। इस संख्या को एक मुहूर्त में उतने योजन चला हुआ समझो।।९-११।। महान् आत्मा सूर्य की गति प्रति मुहूर्त तीस लाख एक सौ और पचास हजार योजन है। जब इस गति से सूर्य दक्षिण दिशा की ओर उत्तर से पुष्कर के मध्य उत्तरायण काल में और जब वह उत्तर दिशा में दक्षिण से मानस पर्वत के बीच से दक्षिणायन को एक सौ आठ मण्डल (आकाश की डिग्री) से गुजरता है। उत्तरायण और दक्षिणायन को अभ्यंतर और बाह्य कहा जाता है। इनसे होकर सूर्य प्रतिदिन एक सौ अस्सी मण्डल की गति से चलता है। वह कुम्हार के चाक की तरह इसके मध्य भाग से भी अधिक तेजी से दक्षिणायन में चलता है।।१२-१७।। इसलिए वो अल्पकाल अपेक्षाकृत अधिक भूमि को जाता है। दक्षिाणयन में सूर्य देव केवल बारह मुहूर्त में दिन के समय साढ़े तेरह नक्षत्र (तारा गति) चलता है। जब कि रात्रि काल में अन्त भाग की अपेक्षा अठारह मुहूर्तों में उतने ही नक्षत्र स्टार स्पेसों को कवर कर लेता है।।१८-१९।। कुम्हार के चाक के मध्य भाग की तरह जैसे वह मन्द गति से चलता है उसी तरह उत्तरायण में सूर्य भी मन्द गति से चलता है।।२०।। चूँकि वह अधिक काल में थोड़ी भूमि क्षेत्र को जाता है। सूर्य का वह रथ जिसमें आदित्यगण, मुनिगण, गन्धर्व अप्सराएँ, ग्रामणी, सर्प और राक्षसगण सवार रहते हैं। हजार किरणों वाला सूर्य आगे-पीछे, नीचे-ऊपर प्रकाश डालता है। उसके द्वारा वह ब्रह्मा की उत्तम सभा को प्रकाशित करता है। सन्धि बेला (तड़के और गोधूल बेला में) ब्राह्मण और मुनिगण सूर्य को अर्घ्य देते हैं। उन जलों से, सूर्य देव राक्षसों को मारते हैं जब वे उनके सपीप आते हैं और तब वे आगे बढ़ते हैं। उत्तरायण के पश्चिम भाग में दिन अट्ठारह मुहूर्त का होता है। उस बीच सूर्य मन्द गति से चलता है। वह साढ़े तेरह स्टार स्पेस को रात में बारह मुहूर्त में कवर करता है और दिन में चलते हुए वह अट्ठारह मुहूर्तों द्वारा उतने ही स्टार स्पेस को कवर करता है।।२१-२५।।

ततो मंदतरं नाभ्यां चक्रं भ्रमति वै यथा। मृत्पिंड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै तथा॥२६॥
त्रिंशन्मुहूर्तैरेवाहुरहोरात्रं पुराविदः। उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मंडलानि तु॥२७॥
कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्तते। औत्तानपादो भ्रमति ग्रहैः सार्धं ग्रहाग्रणीः॥२८॥
गणो मुनिज्योतिषां तु मनसा तस्य सर्पति। अधिष्ठितः पुनस्तेन भानुस्त्वादाय तिष्ठति॥२९॥
किरणैः सर्वतस्तोयं देवो वै ससमीरणः। औत्तानपादस्य सदा ध्रुवत्वं वै प्रसादतः॥३०॥
विष्णोरौत्तानपादेन चाप्तं तातस्य हेतुना। आपः पीतास्तु सूर्येण क्रमंते शशिनः क्रमात्॥३१॥
निशाकरान्निस्त्रवंते जीमूतान्प्रत्यपः क्रमात्। वृन्दं जलमुचां चैव श्वनेनाभिताडितम्॥३२॥
क्ष्मायां सृष्टिं विसृजतेऽभासयत्तेन भास्करः। तोयस्य नास्ति वै नाशः तदेव परिवर्तते॥३३॥
हिताय सर्वजंतूनां गतिः शर्वेण निर्मिता। भूर्भुवः स्वस्तथा ह्यापो ह्यन्नं चामृतमेव च॥३४॥
प्राणा वै जगतामापो भूतानि भुवनानि च। बहुनात्र किमुक्तेन चराचरमिदं जगत्॥३५॥
अपां शिवस्य भगवानाधिपत्ये व्यवस्थितः। अपां त्वधिपतिर्देवो भव इत्येव कीर्तितः॥३६॥
भवात्मकं जगत्सर्वमिति किं चेह चाद्‌भुतम्॥
नारायणत्वं देवस्य हरेश्चाद्भिः कृतं विभोः। जगतामालयो विष्णुस्त्वापस्तस्यालयानि तु॥३७॥
दन्दह्यमानेषु चराचरेषु गोधूमभूतास्त्वथ निष्क्रमंति।
या या ऊर्ध्वं मारुतेनेरिता वै तास्तास्त्वभ्राण्याग्निना वायुना च॥३८॥

जैसे कि नाभि में चक्र अधिक मन्द गति से घूमता है। अधिक मन्द गति से मिट्टी का पिण्ड घूमता है उसी तरह मध्य में स्थित ध्रुव भी घूमता है।।२६।। वे जो लोग पुरानी विद्या को जानते हैं, वे कहते हैं कि रात और दिन दोनों तीस मुहूर्त के होते हैं। उन दोनों दिशाओं के बीच में मण्डलों को सूर्य घूमता है। जैसे कुम्हार के चक्र की नाभि वैसे ही वह भी वहाँ अकेले (बिना घूमे) रहता है। ग्रहों में अग्रणी ध्रुव ग्रहों के साथ उसी तरह घूमता है।।२७-२८।। मुनिगण और नक्षत्र गण अपने मन के अनुसार चलते हैं। उनमें ऊपर अधिष्ठित सूर्य, वायु के साथ सब स्थानों से अपनी किरणों से जल को ग्रहण करता है।। उत्तानपाद के पुत्र ने विष्णु की कृपा से ध्रुव पद को प्राप्त किया था। यह पद (ध्रुव पद) उसने अपने पिता के कारण प्राप्त किया था। सूर्य के द्वारा दिया हुआ जल धीरे-धीरे चन्द्रमा में जाता है और चन्द्रमा से वह सब जल मेघों को प्राप्त होता है। वायु द्वारा आघात करने से मेघ पृथ्वी पर जल बरसाते हैं। सूर्य को भास्कर इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह सबको भासित करता है। जल का कभी नाश नहीं होता है। वही नष्ट हुआ जल फिर लौट आता है।।२९-३३।। सब प्राणियों के कल्याण के लिए भगवान शिव ने जल को बनाया है। यह जल भी उनकी अन्तिम गति है। जल से ही भूः, भुवः, स्वः, अन्न और अमृत बनता है। जल सम्पूर्ण जगत का, प्राणियों का और स्वयं भुवनों का प्राण है। अधिक कहने से क्या लाभ? यह चर और अचर युक्त जगत जल से ही बना हुआ है। भगवान शिव जलों के अधिपति हैं। ऐसा कहा गया है। यह सारा जगत शिवमय है। इसमें क्या आश्चर्य है? विष्णु भगवान को नारायण पद जल की कृपा से ही मिला है। विष्णु में जगत का निवास है और जल उनका निवास है अर्थात् वे जल में ही रहते हैं। जब कि समस्त

अतो धूमाग्निवातानां संयोगस्त्वभ्रमुच्यते। वारीणि वर्षतीत्यभ्रमभ्रस्येशः सहस्रदृक्॥३९॥
यज्ञधूमोद्भवं चापि द्विजानां हितकृत्सदा। दावाग्निधूमसंभूतमभ्रं वनहितं स्मृतम्॥४०॥
मृतधूमोद्भवं त्वभ्रमशुभाय भविष्यति। अभिचाराग्निधूमोत्थं भूतनाशाय वै द्विजाः॥४१॥
एवं धूमविशेषेण जगतां वै हिताहितम्। तस्मादाच्छादयेद्धूममभिचारकृतं नरः॥४२॥
अनाच्छाद्य द्विजः कुर्याद्धूमं यश्चाभिचारिकम्। एवमुद्दिश्य लोकस्य क्षयकृच्च भविष्यति॥४३॥
अपां निधानं जीमूताः षण्मासानिह सुव्रताः। वर्षयंत्येव जगतां हिताय पवनाज्ञया॥४४॥
स्तनितं चेह वायव्यं वैद्युतं पावकोद्भवम्। त्रिधा तेषामिहोत्पत्तिरभ्राणां मुनिपुंगवाः॥४५॥

न भ्रश्यंति यतोभ्राणि मेहनान्मेघ उच्यते।
काष्ठा वाह्लाश्च वैरिंच्याः पक्षाश्चैव पृथग्विधाः॥४६॥
आज्यानां काष्ठसंयोगादग्नेर्धूमः प्रवर्तितः।
द्वितीयानां च संभूतिर्विरिंचोच्छ्वासवायुना॥४७॥
भूभृतां त्वथ पक्षैस्तु मघवच्छेदितैस्ततः।
वाह्लेयास्त्वथ जीमूतास्त्वावहस्थानगाः शुभाः॥४८॥

विरिंचोच्छ्वासजाः सर्वे प्रवहस्कंधजास्ततः। पक्षजाः पुष्कराद्याश्च वर्षन्ति च यदा जलम्॥४९॥

चर और अचर प्राणी वायु द्वारा उत्तेजित अग्नि से जल जाते हैं।।३४-३८।। इसलिए धुँआ, अग्नि और वायु के मिले जुले रूप को अभ्र मेघ कहा जाता है। अभ्र शब्द का अर्थ है, "जो जल की वर्षा करता है" मेघों के स्वामी हजार नेत्रधारी इन्द्र हैं। यज्ञ के धुँओं से उत्पन्न मेघ सदा द्विजों का हित करते हैं। बन की आग से उत्पन्न धुँए के बादल अपनी वर्षा से बन का हित करते हैं।।३९-४०।। हे ब्राह्मणों! मृतकों के शरीरों से उठे हुए धुँओं से उत्पन्न बादल अशुभ करते हैं। अभिचार की अग्नि से उठे धुँओं से बने मेघ प्राणियों का नाश करते हैं।।४१।। इस प्रकार भिन्न-भिन्न धुँओं से उत्पन मेघ संसार का हित और अहित दोनों करते हैं। इसलिए मनुष्य को अभिचार से उठे हुए धुँए को ढक देना चाहिये।।४२।। अगर कोई द्विज अभिचार से उठे हुए धुँए को ढकता नहीं है तो वह जगत के विनाश का कारण हो जाता है।।४३।। हे सुव्रतो! जल में भण्डार को लिए हुए मेघ वायु की आज्ञा से लोकों के कल्याण के लिए छः महीना वर्षा करते हैं।।४४।। वायु के आघात से मेघ में बिजली पैदा होती है। वह बिजली अग्नि से उत्पन्न होती है। हे मुनीश्वरों! मेघों की उत्पत्ति तीन प्रकार से होती है।।४५।। 'अभ्र' शब्द का अर्थ है 'जो नष्ट नहीं होता है'। 'मेघ' शब्द की उत्पत्ति 'मेहन' शब्द से हुई है। इसलिए 'मेघ' शब्द का अर्थ है 'जो जल बरसाता है'। मेघ विभिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे—काष्ठा, वाह्ला, वैरिंच्य और पुष्कर। जब काष्ठों (यज्ञ की समिधाओं) से जो घी में सनी रहती है उनको अग्नि में पड़ने से उत्पन्न धुँए से जो मेघ (बादल) बनते हैं यह प्रथम प्रकार के मेघ हैं। दूसरे प्रकार के मेघ वे हैं जो ब्रह्मा की साँस से उत्पन्न हैं। तीसरे प्रकार के मेघ इन्द्र द्वारा काटे गये पर्वतों के पक्षों से उत्पन्न होते हैं। अग्नि से उठे हुए धुँओं से बने मेघ शुभ होते हैं और उनका स्थान आवह नामक वायु के क्षेत्र में होता है।।४६-४८।। ब्रह्मा के साँस से उठे हुए सब मेघ प्रवह नामक वायु के स्कंध (पर्त) में रहते हैं। पक्षों (पंखों) से उत्पन्न पुष्कर और अन्य मेघ जल की वर्षा करते हैं। ये प्रायः

मूकाः सशब्ददुष्टाशास्त्वेतैः कृत्यं यथाक्रमम्। क्षामवृष्टिप्रदा दीर्घकालं शीतसमीरिणः॥५०॥
जीवकाश्च तथा क्षीणा विद्युद्ध्वनिविवर्जिताः। तिष्ठंत्याक्रोशमात्रे तु धरापृष्ठादितस्ततः॥५१॥
अर्धक्रोशे तु सर्वे वै जीमूता गिरिवासिनः। मेघा योजनमात्रं तु साध्यत्वाद्बहुतोयदाः॥५२॥
धरापृष्ठाद्द्विजाः क्ष्मायां विद्युद्गुणसमन्विताः। तेषा तेषां वृष्टिसर्गं त्रेधा कथितमत्र तु॥५३॥
पक्षजाः कल्पजाः सर्वे पर्वतानां महत्तमाः। कल्पान्ते ते च वर्षन्ति रात्रौ नाशाय शारदाः॥५४॥
पक्षजाः पुष्कराद्याश्च वर्षंति च यदाजलम्। तदार्णवमभूत्सर्वं तत्र शेते निशीश्वरः॥५५॥
आग्नेयानां श्वासजानां पक्षजानां द्विजर्षभाः। जलदानां सदा धूमो ह्याप्यायन इति स्मृतः॥५६॥
पौण्ड्रास्तु वृष्टयः सर्वा वैद्युताः शीतसस्यदाः। पुंड्रदेशेषु पतिता नागानां शीकरा हिमाः॥५७॥
गाङ्गा गङ्गाम्बुसंभूता पर्जन्येन परावहैः। नगानां च नदीनां च दिग्गजानां समाकुलम्॥५८॥
मेघानां च पृथग्भूतं जलं प्रायादगादगम्। परावहो यः श्वसनश्चानयत्यम्बिकागुरुम्॥५९॥
मेनापतिमतिक्रम्य वृष्टिशेषं द्विजाः परम्। अभ्येति भारते वर्षे त्वपरान्तविवृद्धये॥६०॥
वृष्टयः कथिता ह्यद्य द्विधा वस्तुविवद्धये। सस्यद्वयस्य संक्षेपात्प्रब्रवीमि यथामति॥६१॥
स्रष्टा भानुर्महातेजा वृष्टीनां विश्वदृग्विभुः। सोपि साक्षाद्द्विजश्रेष्ठाश्चेशानः परमः शिवः॥६२॥

जब बरसते हैं तो वे क्रम के अनुसार शान्त, शब्द करने और विनाशकारी होते हैं। विभिन्न प्रकार के मेघ अलग-अलग वर्षा करते हैं। कोई मेघ बूँदा-बाँदी करते हैं। कुछ मेघ दीर्घकाल तक शीतल वायु वाले होते हैं। कुछ जीवक होते हैं। कुछ क्षीण होते हैं जिनमें न बिजली होती है और न प्रकाश। कुछ मेघ एक कोस के भीतर आकाश में इधर-उधर एक कोस पृथ्वी के धरातल से ऊपर ठहरते हैं। वे पृथ्वी पर अधिक जल बरसाते हैं क्योंकि उनके लिए वैसा करना सम्भव है। वे प्रकाश से युक्त होते हैं।।४९-५३।। मैंने तुम लोगों से मेघों की वर्षा का तीन प्रकार का वर्णन किया। पर्वतों के कटे हुए पक्षों से उत्पन्न पक्षज मेघ होते हैं। वे कल्पज कहलाते हैं। ये मेघ कल्प के अन्त में विनाश करने के लिए केवल रात्रि में वर्षा करते हैं। पक्षज और पुष्कर आदि जब जल वृष्टि करते हैं तब पूरी पृथ्वी जल का सागर बन जाती है। उसमें भगवान रात में सोते हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! अग्नि से उठे हुए धुएँ से बने मेघ, स्वाँस से उत्पन्न मेघ और पक्षज मेघ से उठा हुआ धुँआ आप्पायन (वृद्धिकर) होता है।।५४-५६।। पौण्ड्रा (पौण्ड्रा के देश में गिरने वाले मेघ) मेघ बिजली के साथ बरसते और शीत होते हैं। अतः वे खेती के लिए लाभदायक होते हैं। वे बर्फ की तरह ठण्डे होते हैं। वे पुंड्र देशों में हाथी के सूँड़ से गिरते जल के छिड़काव के समान दिखायी देते हैं।।५७।। गांग नामक मेघ गंगा के जल से उत्पन्न होते हैं। परावह क्षेत्र में वायु द्वारा ये पर्वतों नदियों और दिग्गजों को व्याकुल करते हैं।।५८।। मेघों से अलग हुआ जल एक पर्वत से दूसरे पर्वत को जाता है। परावह वायु मेघों को हिमवत पर्वत की ओर ले जाती है।।५९।। हे ब्राह्मणों! हिमालय से आगे बढ़कर के भारतवर्ष में बरसता है। जिससे वहाँ खेती आदि को लाभ होता है।।६०।। अब वृष्टि के विषय में बताऊँगा तो यह वर्षा दो प्रकार की होती है। इनको मैं अपने ज्ञान के अनुसार संक्षेप में कहता हूँ।।६१।। महा तेजस्वी संसार का नेत्र सूर्य वर्षा का सृजनहार है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! वह सूर्य भी हर, ईशान और शिव है।।६२।। वह

स एव तेजस्त्वोजस्तु बलं विप्रा यशः स्वयम्। चक्षुः श्रोत्रं मनो मृत्युरात्मा मन्युर्विदिग्दिशः॥६३॥
सत्यं ऋतं वायुरंबरं खचरश्च सः। लोकपालो हरिर्ब्रह्मा रुद्रः साक्षान्महेश्वरः॥६४॥
सहस्त्रकिरणः श्रीमानष्टहस्तः सुमंगलः। अर्धनारीवपुः साक्षात्रिनेत्रस्त्रिदशाधिपः॥६५॥
अस्यैवेह प्रसादात्तु वृष्टिर्नानाभवद्द्विजाः। सहस्त्रगुणमुत्स्त्रष्टुमादत्ते किरणैर्जलम्॥६६॥
जलस्य नाशो वृद्धिर्वा नास्त्येवास्य विचारतः। ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः॥६७॥
ग्रहान्निस्सृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमंडले। चारस्यान्ते विशत्यर्के ध्रुवेण समधिष्ठिता॥६७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ज्योतिश्चक्रे सूर्यगत्यादिकथनं नाम चतुः पंचाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥

अकेले तेज, ओज, बल, यश, नेत्र, श्रोत्र, मन, मृत्यु, आत्मा, मन्यु, दिशाएँ और विदिशाएँ, सत्य, ऋत, वायु, आकाश, ग्रह, लोकपाल, हरि, ब्रह्मा, रुद्र और साक्षात स्वयं महेश्वर है।।६३-६४।। श्रीमान हजार किरणों वाले भगवान शिव बहुत शुभ हैं। उनके आठ हाथ हैं। उनका शरीर आधा स्त्री का है और उनके तीन नेत्र हैं। वे देवताओं के स्वामी हैं। हे ब्राह्मणों! उन्हीं की कृपा से अनेक प्रकार की वृष्टि होती है। सूर्य अपनी किरणों से जल ग्रहण करता है और उसका हजार गुना जल वापस देता है। जल का नाश या वृद्धि नहीं होती है ऐसा हम सोचते हैं। धुव्र से अधिष्ठित वायु वर्षा को रोकती है। यह सूर्य पर गिरती है और सूर्य ग्रह से निकलकर वहाँ से नक्षत्रों के मण्डल में फैलती है। उसके अन्त में वह फिर धुव्र से अधिष्ठित सूर्य में प्रवेश करती है।।६५-६८।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में ज्योतिश्चक्र में सूर्यादिग्रहगति आदि वर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त॥५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यरथनिर्णयः

सूत उवाच

सौरं संक्षेपतो वक्ष्ये रथं शशिन एवच। ग्रहाणामितरेषां च यथा गच्छति चांबुपः॥१॥
सौरस्तु ब्रह्मणा सृष्टो रथस्तवर्थवशेन सः। संवत्सरस्यावयवैः कल्पितश्च द्विजर्षभाः॥२॥
त्रिणाभिना तु चक्रेण पंचारेण समन्वितः। सौवर्णः सर्वदेवानामावासो भास्करस्य तु॥३॥
नवयोजनसाहस्त्रो विस्तारायामतः स्मृतः। द्विगुणोपि रथोपस्थादीषादण्डः प्रमाणतः॥४॥
असंगैस्तु हयैर्युक्तो यतश्चक्रं ततः स्थितैः। वाजिनस्तस्य वै सप्त छन्दोभिर्निर्मितास्तु ते॥५॥
चक्रपक्षे निबद्धास्तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः। सहाश्वचक्रो भ्रमते सहाक्षो भ्रमते ध्रुवः॥६॥
अक्षः सहैकचक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः। प्रेरको ज्योतिषां धीमान् ध्रुवो वै वातरश्मिभिः॥७॥
युगाक्षकोटिसंबद्धौ द्वौ रश्मी स्यन्दनस्य तु। ध्रुवेण भ्रमते रश्मि निबद्धः स युगाक्षयोः॥८॥
भ्रमतो मंडलानि स्युः खेचरस्य रथस्य तु। युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यंदनस्य हि॥९॥
ध्रुवेण प्रगृहीते वै विचक्राश्वे च रज्जुभिः। भ्रमंतमनुगच्छंति ध्रुवं रश्मी च तावुभौ॥१०॥

पचपनवाँ अध्याय

सूर्य के रथ का निर्णय

सूत बोले

मैं सूर्य, चन्द्रमा और अन्य ग्रहों के विषय में तथा सूर्य के रथ का वर्णन संक्षेप में करूँगा। साथ ही यह भी बताऊँगा कि जल को पीने वाला सूर्य कैसे चलता है। ब्रह्मा ने सूर्य के रथ को विशेष प्रयोजन के लिए बनाया है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! यह संवत्सर (वर्ष) के अवयव (अंगों) से बनाया गया है।।१-२।। सूर्य का सोने का रथ सब देवों का आवास है। इसमें एक ही पहिया है तथा इसमें तीन नाभि और पाँच अर (तीलियाँ) हैं।।३।। इसकी लम्बाई और चौड़ाई नौ हजार योजन है। उसकी दुगनी लम्बाई ड्राइवर के बक्स और स्तम्भ के डंडे के बीच है।।४।। जहाँ रथ का पहिया है उसके बगल घोड़ों का स्थान है। वे घोड़े उससे जुड़े नहीं हैं लेकिन जुड़े हुए दिखायी देते हैं। रथ में सात घोड़े हैं। वे वेद के छन्दों से बनाए गये हैं।।५।। घोड़े पहिये के बगल बँधे हुए हैं और ध्रुव में अक्ष फिट किया हुआ है। रथ पहिये और घोड़ों के साथ घूमता है और ध्रुव अक्ष के साथ घूमता है।।६।। एक चक्र (पहिया) के साथ अक्ष घूमता है। वह ध्रुव से प्रेरित होता है। यह बुद्धिमान ध्रुव (पोलतारा) वायु किरणों के द्वारा ग्रहों को प्रेरित करता है।।७।। रथ में दो रश्मियाँ हैं। वे जुए और ध्रुव की कोटियों से बनी हुई हैं। रश्मियों द्वारा बँधा हुआ रथ ध्रुव की कृपा से घूमता है।।८।। जब कि रथ आकाश में चलते हुए रथ का प्रकाशमान मंडल होता है। वे रथ की जुए और अक्ष की दोनों कोटियाँ रथ की दाहिनी ओर होते हैं।।९।। जबकि किरणों के द्वारा पहिये के बाहर घोड़े खींचे जाते हैं तो जुए और ध्रुव दोनों घूमते हुए ध्रुव के पीछे का

युगाक्षकोटिस्त्वेतस्य वातोर्मिस्यन्दनस्य तु। कीले सक्ता यथा रज्जुर्भ्रमते सर्वतोदिशम्॥११॥
भ्राम्यतस्तस्य रश्मी तु मंडलेषूत्तरायणे। वर्धेते दक्षिणे चैव भ्रमता मंडलानि तु॥१२॥
आकृष्येते यदा ते वै ध्रुवेणाधिष्ठितेतदा। आभ्यंतरस्थः सूर्योथ भ्रमते मंडलानि तु॥१३॥
अशीतिमंडलशतं काष्ठयोरंतरं द्वयोः। ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु॥१४॥
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मंडलानि तु। उद्वेष्टयन् स वेगेन मंडलानि तु गच्छति॥१५॥
देवाश्चैव तथा नित्यं मुनयश्च दिवानिशम्। यजंति सततं देवं भास्करं भवमीश्वरम्॥१६॥
स रथोधिष्ठितो देवैरादित्यैर्मुनिभिस्तथा। गंधर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः॥१७॥

एते वसंति वै सूर्ये द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु।
आप्याययंति चादित्यं तेजोभिर्भास्करं शिवम्॥१८॥

ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवंति मुनयोर विम्। गंधर्वाप्सरसश्चैव नृत्यगेयैरुपासते॥१९॥
ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेऽभीषुसंग्रहम्। सर्पा वहंति वै सूर्यं यातुधानानुयांति च॥२०॥
वालखिल्या नयंत्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम्। इत्येते वै वसंतीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥२१॥
मधुश्च माधवश्चैव शुक्रश्च शुचिरेव च। नभोनभस्यौ विप्रेन्द्रा इषश्चोर्जस्तथैव च॥२२॥
सहःसहस्यौ च तथा तपस्यश्च तपः पुनः। एते द्वादश मासास्तु वर्षं वै मानुषं द्विजाः॥२३॥
वासंतिकस्तथा ग्रैष्मः शुभो वै वार्षिकस्तथा। शारदश्च हिमश्चैव शैशिरो ऋतवः स्मृताः॥२४॥

अनुसरण करते हैं।।१०।। इस रथ के जुए और अक्ष के कोटि चारों दिशाओं में उसी तरह वायु की लहर से घूमती हैं जैसे कील से बँधी हुई रस्सी घूमती है। उत्तरायण में मंडलों में घूमते हुए सूर्य की किरणें आकार में ढीली हो जाती हैं। दक्षिणायन में जब मंडल में सूर्य घूमता है तो किरणें भीतर की ओर खिंच जाती हैं। दोनों मामलों में ध्रुव द्वारा किरणें प्रेरित होती हैं तब भीतर बैठा सूर्य मंडलों में चारों ओर घूमता है।।११-१३।। दोनों अयनों में एक हजार आठ सौ, एक हजार अस्सी डिग्री का अंतर होता है। जब ध्रुव द्वारा किरणें छोड़ी जाती हैं तो सूर्य मंडलों में तेजी से घूमता है। तब वह मंडलों को घेरते हुए वेग से चलता है।।१४-१५।। देवता और मुनि गण निरंतर भगवान भास्कर की पूजा करते हैं जो कि स्वयं भव और ईश्वर दिन और रात हैं।।१६।। वह रथ देवों, आदित्यों, मुनियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, ग्रामणियों, सर्पों और राक्षसों से अधिष्ठित है। ये सब सूर्य में क्रम से दो-दो महीने वास करते हैं और उसको विकसित और पुष्ट करते हैं, वह सूर्य जो अपने तेज से स्वयं शुभ और दिव्य है।।१७-१८।। मुनि गण सूर्य की प्रार्थना मंत्रों से स्तुति करते हैं, गन्धर्व और अप्सराएँ सूर्य की संगीत और नृत्य द्वारा पूजा करते हैं।।१९।। ग्रामणियाँ, यक्ष गण और भूतगण किरणों का संग्रह करते है। सर्प गण सूर्य को वहन करते हैं और यातुधान तथा राक्षस गण सूर्य के पीछे चलते हैं।।२०।। सूर्य के उदय अस्त होने पर उसको चारों ओर घेर कर वालखिल्य ले जाते हैं। इस विधि से वे सूर्य में दो-दो महीने क्रम से रहते हैं।।२१।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! मानव वर्ष में बारह महीने होते हैं। मधु (चैत्र), माधव (बैशाख), शुक्र (ज्येष्ठ), शुचि (आषाढ़), नभ (सावन), नभस्य (भादों) इष (आश्विन), ओज (कार्तिक), सह (मार्गशीर्ष), सहस्य (पौष), तपस्य (माघ), तप (फाल्गुन)।।२२-२३।। छः ऋतुएं वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हिम और शिशिर होती

धाताऽर्यमाऽथ मित्रश्च वरुणश्चेन्द्र एव च। विवस्वांश्चैव पूषा च पर्जन्योंशुर्भगस्तथा॥२५॥
त्वष्टा विष्णुः पुलस्त्यश्च पुलहश्चात्रिरेव च। वसिष्ठश्चाङ्गिराश्चैव भृगुर्बुद्धिमतां वरः॥२६॥
भारद्वाजो गौतमश्च कश्यपश्च क्रतुस्तथा। जमदग्निः कौशिकश्च वासुकिः कंकणीकरः॥२७॥
तक्षकश्च तथा नाग एलापत्रस्तथा द्विजाः। शंखपालस्तथा चान्यस्त्वैरावत इति स्मृतः॥२८॥
धनंजयो महापद्मस्तथा कर्कोटकः स्मृतः। कंबलोऽश्वतरश्चैव तुंबुरुर्नारदस्तथा॥२९॥
हाहा हूहूर्मुनिश्रेष्ठा विश्वावसुरनुत्तमः। उग्रसेनोऽथ सुरुचिरन्यश्चैव परावसुः॥३०॥
चित्रसेनो महातेजाश्चोर्णायुश्चैव सुव्रताः। धृतराष्ट्रः सूर्यवर्चा देवी साक्षात्कृतस्थला॥३१॥
शुभानना शुभश्रोणिर्दिव्या वै पुंजिकस्थला।
मेनका सहजन्या च प्रमलोचाऽथ शुचिस्मिता॥३२॥
अनुम्लोचा घृताची व विश्वाची चोर्वशी तथा। पूर्वचित्तिरिति ख्याता देवी साक्षात्तिलोत्तमा॥३३॥
रंभा चांभोजवदना रथकृद्ग्रामणीः शुभः। रथौजा रथचित्रश्च सुबाहुर्वै रथस्वनः॥३४॥
वरुणश्च तथैवान्यः सुषेणः सेनजिच्छुभः। तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च क्षतजित्सत्यजित्तथा॥३५॥
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो बुधस्तथा। सर्पो व्याघ्रः पुनश्चापो वातो विद्युद्दिवाकरः॥३६॥
ब्रह्मोपेतश्च रक्षेन्द्रो यज्ञोपेतस्तथैव च। एते देवादयः सर्वे वसंत्यर्के क्रमेण तु॥३७॥
स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः। धात्रादिविष्णुपर्यंता देवा द्वादश कीर्तिताः॥३८॥
आदित्यं परमं भानुं भाभिराप्याययंति ते। पुलस्त्याद्याः कौशिकांता मुनयो मुनिसत्तमाः॥३९॥
द्वादशैव स्तवैर्भानुं स्तुवन्ति च यथाक्रमम्। नागाश्चाश्वतरान्तास्तु वासुकिप्रमुखाः शुभाः॥४०॥
द्वादशैव महादेवं वहंत्येवं यथाक्रमम्। क्रमेण सूर्यवर्चान्तास्तुंबुरु प्रमुखांबुपम्॥४१॥

हैं।।२४।। निम्नलिखित समूह सूर्य में साथ रहते और निवास करते हैं—(१) बारह देवता गण वे अपने तेज से सूर्य का पोषण करते हैं। उनके नाम हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान, पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा और विष्णु। (२) बारह मुनि गण हैं जो कि प्रार्थना मंत्रों से सूर्य की स्तुति करते हैं उनके नाम हैं—पुलस्त्य, पुलह, अत्रि, वसिष्ठ, अंगिरा, भृगु, भरद्वाज, गौतम, कश्यप, क्रतु, जमदग्नि, कौशिक या विश्वामित्र। (३) सर्पगण गणना में बारह है। वे सूर्य को धारण करते हैं। उनके नाम हैं—वासुकि, कंकणीकर, तक्षक, नाग, एलापत्र, शंखपाल, ऐरावत, धनंजय, महापद्म, कर्कोटक, कम्बल और अश्वतर। (४) बारह उत्तम गन्धर्व जो अपने संगीतों द्वारा जल में ले जाते हैं। वे सूर्य की पूजा करते हैं। उनके नाम तुंबुरु, नारद, हाहा, हूहू, विश्वावसु, उग्रसेन, सुरुचि, परावसु, चित्रसेन, ऊर्णायु, धृतराष्ट्र और सूर्यवर्चा। बारह अप्सराएँ हैं जो अपने मनमोहक तांडव नृत्य से सूर्य की पूजा करती हैं। उनके नाम हैं—कृतस्थला, शुभ मुख वाली दिव्य महिला पुंजिकस्थला, सुन्दर ओठों वाली मेनका, सहजन्या, मधुर, मुस्काने वाली प्रमलोचा, अनुम्लोचा, धृताची, विश्वाची, उर्वशी, जो पूर्वचित्ति नाम से भी प्रसिद्ध है, भद्र महिला तिलोत्तमा और कमलमुखी रम्भा। (६) बारह ग्रामणी किरणों को धारण करती हैं। (बीच में पकड़ती हैं) रथकृत, रथौजा, रथचित्र, सुबाहु, रथस्वन, वरुण, सुषेण, सेनजित, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, क्षतजित, सत्यजित। (७) सात यातुधान हैं जो अपने अस्त्र लेकर सूर्य के साथ चलते हैं।

गीतैरेनमुपासंते गंधर्वा द्वादशोत्तमाः।
कृतस्थलाद्या रंभांता दिव्याश्चाप्सरसो रविम्।।४२।।
तांडवैः सरसैः सर्वाश्चोपासंते यथाक्रमम्।
दिव्या सत्यजिदन्ताश्च ग्रामण्यो रथकृन्मुखाः।।४३।।

द्वादशास्य क्रमेणैव कुर्वतेभीषुसंग्रहम्। प्रयांति यज्ञोपेतांता रक्षोहेतिमुखाः सह।।४४।।
सायुधा द्वादशैवैते राक्षसाश्च यथाक्रमम्। धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः।।४५।।
उरगो वासुकिश्चैव कंकणीकश्च तावुभौ। तुंबुरुर्नारदश्चैव गंधर्वौ गायतां वरौ।।४६।।
कृतस्थलाऽप्सराश्चैव तथा वै पुंजिकस्थला। ग्रामणी रथकृच्चैव रथोजाश्चैव तावुभौ।।४७।।
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ। मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे।।४८।।
वसंति ग्रीष्मकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह। ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च तक्षको नाग एव च।।४९।।
मेनका सहजन्या च गंधर्वौ च हहाहुहूः। सुबाहुनामा ग्रामण्यौ रथचित्रश्च तावुभौ।।५०।।
पौरुषेयो बुधश्चैव यातुधानावुदाहृतौ। एते वंसति वै सूर्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः।।५१।।
ततः सूर्ये पुनश्चान्या निवसंतीह देवताः। इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अंगिरा भृगुरेव च।।५२।।
एलापत्रस्तथा सर्पः शंखपालश्च तावुभौ। विश्वावसूग्रसेनौ च वरुणश्च रथस्वनः।।५३।।

उनके नाम हैं—रक्षोहेति, प्रहेति, पौरुषेय, बुध, सर्प, व्याघ्र, आप, वात, विद्युत, दिवाकर, ब्रह्मोपेत और यज्ञोपेत। बारह संख्या के ये सात दलों में प्रत्येक अपने पद का अभिमान करते हैं। इन सातों समूहों में से प्रत्येक के दो रूप दो महीने सूर्य पर बसते हैं। उनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित है।।२५-४४।।

चैत्र और बैशाख महीने में

१.	बारह देवता	धाता और अर्यंमा	२.	बारह ऋषि	पुलस्त्य और पुलह
३.	बारह सर्प	वासुकि और कंकणीकर	४.	बारह गन्धर्व	तुम्बुरु और नारद
५.	बारह अप्सराएँ	कृतस्थला और पुंजिकस्थला	६.	बारह ग्रामणियाँ	रथकृत और रथौजा
७.	बारह क्षातुधान	रक्षोहेति और प्रहेति।।४५-४८।।			

ज्येष्ठ और आषाढ़ महीनों में

१.	देवता	मित्र और वरुण	२.	ऋषि	अत्रि और वसिष्ठ
३.	सर्प	तक्षक और नाग	४.	गन्धर्व	हाहा और हूहू
५.	अप्सरायें	मेनका और सहजन्या	६.	ग्रामणियाँ	सुबाहु और रथचित्र
७.	यातुधान	पौरुषेय और बुध।।४९-५१।।			

श्रावण और भाद्रपद महीने में

१.	देवता	इन्द्र और विवस्वान	२.	ऋषि	अंगिरा और भृगु
३.	गन्धर्व	इलापत्र और शंखपाल	४.	गन्धर्व	विश्वावसु और उग्रसेन

प्रम्लोचा चैव विख्याता अनुम्लोचा च ते उभे। यातुधानास्तथा सर्पो व्याघ्रश्चैव तु तावुभौ॥५४॥
नभोनभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे। पर्जन्यश्चैव पूषा च भरद्वाजोऽथ गौतमः॥५५॥
धनंजय इरावांश्च सुरुचिः स परावसुः।
घृताची चाप्सरः श्रेष्ठा विश्वाची चातिशोभना॥५६॥
सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणिश्च तौ। आपो वातश्च तावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ॥५७॥
वसंत्येते तु वै सूर्ये मास ऊर्जे इषे च ह। हैमांतिकौ तु द्वौ मासौ वसंति च दिवाकरे॥५८॥
अंशुर्भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुः सह। भुजंगश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा॥५९॥
चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ। उर्वशी पूर्वचित्तिश्च तथैवाप्सरसावुभे॥६०॥
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणिश्च तौ। विद्युद्दिवाकरश्चोभौ यातुधानावुदाहृतौ॥६१॥
सहे चैव सहस्ये च वसंत्येते दिवाकरे। ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसंति वै॥६२॥
त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च। काद्रवैयौ तथा नागौ कंबलाश्वतरावुभौ॥६३॥
धृतराष्ट्रः सगंधर्वः सूर्यवर्चास्तथैव च। तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रंभा मनोहरा॥६४॥
रथजित्सत्यजिच्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ। ब्रह्मोपेतस्तथा रक्षो यज्ञोपेतश्च यः स्मृतः॥६५॥

---

५. अप्सराएँ	प्रमलोचा और अनुम्लोचा	६. ग्रामणियाँ	रथस्वन और वरुण
७. धातुधान	सर्प और व्याघ्र।।५२-५४।।		

आश्विन और कार्तिक महीने में

१. देवता	पूषा और पर्जन्य	२. ऋषि	भरद्वाज और गौतम
३. सर्प	इरावान और धनंजय	४. गन्धर्व	सुरुचि और परावसु
५. अपसराऐं	धृताची और विश्वाची	६. ग्रामणियों	सुषेण और सेनजित
७. यातुधान	आप और वात।।५५-५७।।		

मार्गशीष और पौष महीने में

१. देवता	अंशु और भग	२. ऋषि	कश्यप और क्रतु
३. सर्प	महापद्म और करकोटक	४. गन्धर्व	चित्रसेन और ऊर्णायु
५. अप्सरायें	उर्वशी और पूर्वचित्ति	६. ग्रामणियाँ	तार्क्ष्य और अरिष्टनेमि
७. यातुधान	विद्युत और दिवाकर।।५८-६१।।		

माघ और फाल्गुन महीने में

१. देवता	त्वष्टि और विष्णु	२. ऋषि	जमदग्नि और विश्वामित्र
३. सर्प	कंबल और अश्वतर	४. गन्धर्व	धृतराष्ट्र और सूर्यवर्चस्व
५. अप्सराएँ	तिलोत्तमा और रम्भा	६. ग्रामणियाँ	रथचित और सत्यचित
७. यातुधान	ब्रह्मोपेत और यज्ञोपेत।।६२-६५।।		

एते देवा वसंत्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु। स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः।।६६।।
सूर्यमाप्याययंत्येते तेजसा तेज उत्तमम्। ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवंति मुनयो रविम्।।६७।।
गंधर्वाप्सरसश्चैव नृत्यगेयैरुपासते। ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेभीषुसंग्रहम्।।६८।।
सर्पा वहंति वै सूर्यं यातुधानानुयांति वै। वालखिल्या नयंत्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम्।।६९।।
एतेषामेव देवानां यथा तेजो यथा तपः। यथा योगं यथा मन्त्रं यथा धर्मं यथा बलम्।।७०।।
तथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषामिद्धस्तु तेजसा। इत्येते वै वसंतीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे।।७१।।
ऋषयो देवगंधर्वपन्नगाप्सरसां गणाः। ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च मुख्यतः।।७२।।
एते तपन्ति वर्षंति भांति वांति सृजंतिच। भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः।।७३।।
मानवानां शुभं ह्येते हरंति च दुरात्मनाम्। दुरितं सुप्रचाराणां व्यपोहंति क्वचित् क्वचित्।।७४।।
विमाने च स्थिता दिव्ये कामगे वातरंहसि। एते सहैव सूर्येण भ्रमंति दिवसानुगाः।।७५।।
वर्षन्तश्च तपंतश्च ह्लादयंतश्च वै द्विजाः। गोपायंतीह भूतानि सर्वाणि ह्यामनुक्षयात्।।७६।।
स्थानाभिमानिनामेतत्स्थानं मन्वन्तरेषु वै। अतीतानागतानां वै वर्तंते सांप्रतं च ये।।७७।।
एते वसंति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दश। चतुर्दशसु सर्वेषु गणा मन्वंतरेष्विह।।७८।।
संक्षेपाद्विस्तराच्चैव यथावृत्तं यथाश्रुतम्। कथितं मुनिशार्दूला देवदेवस्य धीमतः।।७९।।

ये देव गण सूर्य में क्रम से दो-दो महीने बसते हैं। ये सात सात के गण में है और अपने-अपने स्थान पर स्थित होने का अभिमान भी करते हैं।।६६।। ये सब अपने अपने तेज से सूर्य के तेज को बढ़ाते हैं। मुनि गण अपनी रची हुई स्तुतियों से सूर्य देव की स्तुति करते हैं। गन्धर्व और अप्सराएँ अपने नृत्य और गीत से सूर्य की उपासना करते हैं। ग्रामणियाँ यक्ष और भूत गण सूर्य के रथ के घोड़ों की लगाम को पकड़ते हैं। सर्प गण सूर्य को वहन करते हैं। यातुधान उनके रथ के पीछे चलते हैं। वालखिल्य गण सूर्य को घेर कर उदय से अस्त तक उदयाचल से अस्ताचल तक ले जाते हैं।।६७-६९।। इन देवताओं के जैसा तेज, जैसा तप, जैसा योग, जैसा मंत्र और जैसा बल है, उनसे समृद्ध होकर सूर्य चमकता है। ये सब प्रत्येक दो-दो मास के लिए अपने समूहों (गणों) में सूर्य में स्थित रहते हैं।।७०-७१।। ऋषि गण, देवता गण, गन्धर्व, सर्प, अप्सराओं का गण, ग्रामणी, यक्ष और यातुधान मुख्य रूप से—ये तपते हैं, जल की वर्षा करते हैं, चमकते हैं, बहते हैं, सृजन करते हैं और प्रणियों के अशुभ कर्म को दूर करते हैं। ये इस रूप में कहे गये हैं।।७२-७३।। वे दुष्टों के शुभ को नष्ट करते हैं और कहीं-कहीं सज्जनों के अशुभ को भी दूर करते हैं।।७४।। वे दित्य विमान में बैठे रहते हैं जो विमान वायु वेग से चलता है। यह इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ जा सकता है। ये पूरे दिन सूर्य के साथ घूमते हैं।।७५।। वे बरसते हैं, वे चमकते हैं, वे प्रसन्न करते हैं! हे ऋषियों! वे सब प्राणियों और आकाश को विनाश से रक्षा करते हैं।।७६।। मन्वन्तरों में स्वयं अपने पदों के स्थान का अभिमान करते हैं।।७७।। ये सातों समूह चौदह के समूह में सभी चौदह मन्वन्तरों में सूर्य में निवास करते हैं।।७८।। हे मुनीश्वरों! बुद्धिमान देवताओं के देवता के क्रिया-कलापों का वर्णन कुछ का संक्षेप में कुछ का विस्तार में किया जैसा कि मैंने सुना था और जैसे वह घटित हुआ

एते देवा वसंत्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेणतु। स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः॥८०॥
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं रथेन तु। हरितैरक्षरैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिवाकरः॥८१॥
अहोरात्रं रथेनासावेकचक्रेण तु भ्रमन्। सप्तद्वीपसमुद्रां गां सप्तभिः सर्पते दिवि॥८२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सूर्यरथनिर्णयो नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५५॥

था।।७९।। बारह देवताओं के ये सात समूह में से प्रत्येक में वे है जो अपने पदों का अभिमान करते हैं और अपने को उसी रूप में परिचय देते हैं। वे सब ऊपर कहे हुए क्रम के अनुसार दो-दो महीने सूर्य में रहते हैं।।८०।। इस प्रकार दिन को प्रकाशित करने वाला सूर्य अपने एक पहिये वाले में सात अमर अश्वों द्वारा खींचे जाते हुए रथ में बैठ कर तेजी के साथ चलता है।।८१।। वह दिन और रात अपने एक पहिये वाले रथ पर बैठकर सात द्वीपों और सागरों के ऊपर आकाश में सातों समूहों की सहायता से घूमता है।।८२।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में सूर्य के रथ का निर्णय नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त॥५५॥

षड्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सोमवर्णनम्

सूत उवाच

वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि निशाकरः। त्रिचक्रोभयतोश्वश्च विज्ञेयस्तस्य वै रथः॥१॥
शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः। दशभिस्त्वकृशैर्दिव्यैरसंगैस्तैर्मनोजवैः॥२॥
रथेनानेन देवैश्च पितृभिश्चैव गच्छति।
सोमो ह्यम्बुमयैर्गोभिः शुक्लैः शुक्लगभस्तिमान्॥३॥
क्रमते शुक्लपक्षादौ भास्करात्परमास्थितः। आपूर्यते परस्यांतः सततं दिवसक्रमात्॥४॥
देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यशः। पीतं पञ्चदशाहं तु रश्मिनैकेन भास्करः॥५॥
आपूरयन् सुषुम्नेन भागंभागमनुक्रमात्। इत्येषा सूर्यवीर्येण चंद्रस्याप्यायिता तनुः॥६॥
स पौर्णमास्यां दृश्येत शुक्लः संपूर्णमंडलः। एवमाप्यायितं सोमं शुक्लपक्षे दिनक्रमात्॥७॥
ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशीम्। पिबंत्यम्बुमयं देवा मधु सौम्यं सुधामृतम्॥८॥
संभृतं त्वर्धमासेन ह्यमृतं सूर्यतेजसा। पानार्थममृतं सोमं पौर्णमास्यामुपासते॥९॥
एकरात्रिं सुराः सर्वे पितृभिस्त्वृषिभिः सह। सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च॥१०॥

छप्पनवाँ अध्याय

सोम का वर्णन

सूत बोले

चन्द्रमा वीथि में स्थित नक्षत्रों में चलता है। उसका रथ तीन पहियों वाला है और उसके दोनों ओर घोड़े हैं।।१।। रथ तीन पहियों पर फिट किया गया है। प्रत्येक पहिये में सौ तीलियाँ हैं। रथ में सफेद रंग के दस घोड़े है। वे दिव्य और परिपुष्ट हैं। वे जुए से नधे नहीं हैं और उनका वेग (गति) मन के समान है। चन्द्रमा देवताओं और पितरों के साथ इस रथ में बैठकर चलता है। इसकी किरणें सफेद होती हैं और जल के फुहारे के रूप में होती हैं।।२-३।। यह शुक्लपक्ष आदि से क्रमशः बढ़ता है और यह सूर्य के मार्ग में स्थित है। यह शुक्ल पक्ष के अन्त तक प्रतिदिन बढ़ता है। सूर्य इस चन्द्रमा को विकसित और पुष्ट करता है। कृष्ण पक्ष के बीच देवतागण इसको पीते हैं। देवताओं द्वारा यह निरन्तर पन्द्रह दिन तक पिया जाता है। सूर्य अपने सुषुम्ना नामक अकेली किरण के द्वारा इसके भाग को क्रम से पूरा करता है। इस प्रकार चन्द्रमा का शरीर सूर्य के तेज से विकसित और पुष्ट होता है।।४-६।। पूर्णिमा की तिथि को शुक्लपक्ष में चन्द्रमा अपने पूर्ण श्वेत मंडल में दिखायी देता है। द्वितीया से प्रारम्भ करके चतुर्दशी तिथि तक कृष्णपक्ष में देवता लोग चन्द्रमा का जलमय मधु और अमृत का पान करते हैं जो कुछ आधे महीने में सूर्य के तेज से चन्द्रमा में अमृत भरा रहता है। पूर्णिमा की पूरी रात में देवता गण अमृत

प्रक्षीयंते परस्यांतः पीयमानाः कलाः क्रमात्। त्रयस्त्रिंशच्छताश्चैव त्रयस्त्रिंशत्तथैव च॥११॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि देवाः सोमं पिबंति वै। एवं दिनक्रमात्पीते विबुधैस्तु निशाकरे॥१२॥
पीत्वार्धमासं गच्छन्ति अमावास्यां सुरोत्तमाः। पितरश्चोपतिष्ठंति अमावस्यां निशाकरम्॥१३॥
ततः पंचदशे भागे किंचिच्छिष्टे कलात्मके। अपराह्णे पितृगणा जघन्यं पर्युपासते॥१४॥

पिबंति द्विकलं कालं शिष्टा तस्य कला तु या।
निस्सृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम्॥१५॥

मासतृप्तिमवाप्याग्र्यां पीत्वा गच्छंति तेऽमृतम्। पितृभिः पीयमानस्य पंचदश्यां कला तु या॥१६॥
यावत्तु क्षीयते तस्य भागः पंचदशस्तु सः। अमावास्यां ततस्तस्या अंतरा पूर्यते पुनः॥१७॥
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ। एवं सूर्यनिमित्तैषा पक्षवृद्धिर्निशाकरे॥१८॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सोमवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

पीने के लिए चन्द्रमा के पास बैठते हैं। देवताओं के साथ मुनिगण और पितृगण भी रहते हैं।।७-१०।। चन्द्रमा की कलाएँ सूर्य के सम्मुख कृष्णपक्ष के आदि से क्रम से प्रतीक्षा करती हैं। छत्तीस हजार तीन सौ तैतीस देवता चन्द्रमा का पान करते हैं। जब कृष्णपक्ष में प्रतिदिन वे देवता पीकर अमावस्या को चले जाते है। फिर चन्द्रमा के पास अमावस्या में बचे खुचे अमृत को पितृगण आकर शुक्लपदा की प्रतिपदा तक अमृतपान करते हैं।।११-१३।। जब अन्तिम कला के रूप में चौदहवाँ भाग शेष रहता है तो दोपहर बाद अपराह्न में पितृगण चन्द्रमा के पास आ जाते हैं। वें उसके बचे हुए अमृत का दो कला तक पान करते हैं और अमावस्या की तिथि को किरणों से निकले हुए स्वधा के अमृत को पीते हैं। उस अमृतपान करने के बाद वे पूरे महीने के लिए पूर्ण सन्तुष्ट हो जाते हैं और वहाँ से चले जाते हैं। पितृगणों द्वारा पी गयी चन्द्रमा की बची हुई कला घुल जाती है। चन्द्रमा की क्षय और वृद्धि प्रत्येक पक्ष के आरम्भ में सोलहवें दिन होती है। इस प्रकार चन्द्रमा में वृद्धि सूर्य के कारण होती है।।१४-१८।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में सोम का वर्णन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त॥५६॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ज्योतिश्चक्रे ग्रहसंचारकथनम्

सूत उवाच

अष्टभिश्च हयैर्युक्तः सोमपुत्रस्य वै रथः। वारितेजोमयश्चाथ पिशङ्गैश्चैव शोभनैः॥१॥
दशभिश्चाकृशैरश्वैर्नानावर्णै रथः स्मृतः। शुक्रस्य क्ष्मामयैर्युक्तो दैत्याचार्यस्य धीमतः॥२॥
अष्टाश्वश्चाथ भौमस्य रथे हैमः सुशोभनः। जीवस्य हैमश्चाष्टाश्वो मंदस्यायसनिर्मितः॥३॥
रथ आपोमयैरश्वैर्दशभिस्तु सितेतरैः। स्वर्भानोर्भास्करारेश्च तथा चाष्टहयः स्मृतः॥४॥
सर्वे ध्रुवनिबद्धा वै ग्रहास्ते वातरश्मिभिः। एतेन भ्राम्यमाणाश्च यथायोगं व्रजन्ति वै॥५॥
यावंत्यश्चैव ताराश्च तावन्तश्चैव रश्मयः। सर्वे ध्रुवनिबद्धाश्च भ्रमन्तो भ्रामयन्ति तम्॥६॥
अलातचक्रवद्यांति वातचक्रेरितानि तु। यस्माद्वहति ज्योतींषि प्रवहस्तेन स स्मृतः॥७॥
नक्षत्रसूर्याश्च तथा ग्रहतारागणैः सह। उन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रभूताः श्रिता दिवि॥८॥
ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेव प्रदक्षिणम्। प्रयांति चेश्वरं द्रष्टुं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि॥९॥
नवयोजनसाहस्रो विष्कंभः सवितुः स्मृतः। त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मंडलस्य प्रमाणतः॥१०॥
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः। तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात्प्रसर्पति॥११॥
उद्धृत्य पृथिवीछायां निर्मितां मंडलाकृतिम्। स्वर्भानोस्तु बृहत्स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम्॥१२॥

सत्तावनवाँ अध्याय

ज्योतिश्चक्र में ग्रह गति का वर्णन

सूत बोले

चन्द्रमा के पुत्र बुध के रथ में आठ घोड़े लगे हुए है। वे पिशंग वर्ण के हैं और बहुत अच्छे हैं। यह रथ जल और अग्नि के तेज से युक्त है। दैत्यों के गुरु शुक्र के रथ में दस मजबूत घोड़े विभिन्न रंग के लगे हैं। यह रथ प्रकृति में पृथ्वीमय है। मंगल का रथ सोने का बना हुआ है। वह सुन्दर है और उसमें आठ घोड़े लगे हैं। बृहस्पति का रथ भी सोने का बना हुआ है और उसमें आठ घोड़े लगे हुए हैं। शनिश्चर का रथ लोहे का बना हुआ है। इसमें काले रंग के आठ घोड़े हैं। सूर्य के शत्रु राहु केतु के रथ में प्रत्येक में आठ घोड़े लगे हैं। ये सब ग्रह ध्रुव से किरणों द्वारा बंधे हैं, जो कि वायु के रूप में है। ध्रुव से बँधे हुए ये सब घूमते हुए यथायोग चलते हैं। जितने तारागण हैं उतने ही बात रश्मियाँ हैं। वे सब ध्रुव से बँधी हुई हैं। वे घूमते हुए ध्रुव को भी घुमाते हैं॥१-६॥ वात चक्र से प्रेरित तारागण और ग्रह गण अंगार के चक्र के समान घूमते हैं। चूंकि इन सबको वायु वहन करता है इसलिए उसको प्रवह कहते हैं॥७॥ ग्रहों और तारागणों के साथ नक्षत्र और सूर्य ये सब आकाश में चक्र रूप में ऊपर की ओर और बगलों (पार्श्व) में दिखाई देते हैं॥८॥ ध्रुव के द्वारा नियंत्रित वे ध्रुव की प्रदक्षिणा करते हैं। वे आकाश में ध्रुव देवता को देखने को चलते हैं जो कि धुरी के समान काम करते हैं॥९॥ सूर्य का व्यास नौ हजार योजन है। उसका तीन गुना उसके मंडल का विस्तार है॥१०॥ चन्द्रमा का विस्तार सूर्य के विस्तार से दुगुना है। दोनों के बराबर होकर राहु नीचे से गमन करता है॥११॥ राहु के ऊपर पूरा अंधकार है। राहु का

चंद्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते। विष्कंभान्मंडलाच्चैव योजनाच्च प्रमाणतः॥१३॥
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः। पादहीनौ वक्रसौरी तथाऽऽयामप्रमाणतः॥१४॥
विस्तारान्मंडलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः। तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मंतीह यानि वै॥१५॥
बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मंडलादपि। प्रायशश्चंद्रयोगीनि विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित्॥१६॥
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्। शतानि पंच चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने॥१७॥
सर्वोपरि निकृष्टानि तारकामंडलानि तु। योजनाद्व्यमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते॥१८॥
उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः। सौराङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मंदाविचारिणः॥१९॥
तेभ्योधस्तात्तु चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः। सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः॥२०॥
तावंत्यस्तारकाः कोट्यो यावंत्यृक्षाणिसर्वशः। ध्रुवात्तु नियमाच्चैषामृक्षमार्गे व्यवस्थितिः॥२१॥
सप्ताश्वस्यैव सूर्यस्य नीचोच्चत्वमनुक्रमात्। उत्तरायणमार्गस्थो यदा पर्वसु चंद्रमाः॥२२॥
उच्चत्वाद्दृश्यते शीघ्रं नातिव्यक्तैर्गभस्तिभिः। तदा दक्षिणमार्गस्थो नीचां वीथिमुपाश्रितः॥२३॥
भूमिरेखावृतः सूर्यः पौर्णिमावास्ययोस्तदा। ददृशे च यथाकालं शीघ्रमस्तमुपैति च॥२४॥
तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावस्यां निशाकरः। ददृशे दक्षिणे मार्गे नियमाद्दृश्यते न च॥२५॥
ज्योतिषां गतियोगेन सूर्यस्य तमसा वृतः। समानकालास्तमयौ विषुवत्सु समोदयौ॥२६॥
उत्तरासु च वीथीषु व्यंतरास्तमनोदयौ। पौर्णिमावास्ययोर्ज्ञेयौ ज्योतिश्चक्रानुवर्तिनौ॥२७॥

तीसरा बड़ा स्थान है क्योंकि यह पृथ्वी के छायामंडल को लेकर है।।१२।। चन्द्रमा के सोलहवें भाग में शुक्र का विस्तार, मंडल और दूरी योजन में है।।१३।। वृहस्पति शुक्र के आकार का तीन-चौथाई है। वृहस्पति का तीन चौथाई मंगल और शनि विस्तार से है। मंडल और आयाम में बुध उनका तीन चौथाई है। विस्तार में और मंडल में भी तत्त्व के जानने वालों को यह जानना चाहिए कि तारागण जो कि चन्द्रमा से युक्त हैं वे ऋक्ष नाम से जाने जाते हैं। छोटे-छोटे तारों का मंडल अन्य तारागण की तुलना में पाँच चार, तीन या दो योजन है। इन सबके ऊपर छोटे तारे हैं जिनका विस्तार केवल दो सौ योजन है। उनसे छोटे तारे कोई नहीं हैं।।१४-१८।। उनके ऊपर भी तीन ग्रह, शनि, बृहस्पति और मंगल हैं जो कि उनसे अधिक दूरी की यात्रा करते हैं। वे मंद गतिचारी कहे जाते हैं। उनके नीचे चार और बड़े ग्रह हैं। सूर्य, चन्द्रमा, बुध और शुक्र हैं। वे तेजी से चलते हैं।।१९-२०।। वहाँ पर तारागण उतने करोड़ हैं जितने की कक्ष हैं। उनकी भी स्थिति नक्षत्र मार्ग में ध्रुव के नियंत्रण के कारण है।।२१।। जिसके रथ में सात घोड़े हैं वह सूर्य बारी-बारी से उच्च और नीच (अपर और लोअर) पद को बदलते हैं। जब सूर्य उत्तरायण में होता है और चन्द्रमा पूर्ण मंडल में होता है तो जल्दी दिखायी देता है। उच्च पद होने से जल्दी दिखायी देता है क्योंकि उसका स्थान ऊपर है लेकिन किरणें स्पष्ट नहीं होती हैं। जब सूर्य दक्षिणायन में होता है तो निचली वीथि में स्थित होता है। पृथ्वी की रेखा द्वारा ढका हुआ सूर्य उससे नीचे होता है। पूर्ण चन्द्रमा और नये चन्द्रमा के दिनों में सामान्य समय में दिखायी देता है क्योंकि यह जल्दी अस्त हो जाता है। अतः नये चन्द्रमा की तिथि पर उत्तरायण में होता है। यह दक्षिण मार्ग में नहीं दिखायी देता है क्योंकि संचार होता रहता है और क्योंकि यह सूर्य की छाया से ढका हुआ होता है। सूर्य और चन्द्रमा समान काल में उदय और अस्त होते हैं।।२२-२६।। उत्तरायण में अमावस्या और पूर्णिमा तिथियों पर वे दोनों बिना किसी अंतर के उदय

दक्षिणायनमार्गस्थौ यदा चरति रश्मिवान्। ग्रहाणां चैव सर्वेषां सूर्योधस्तात्प्रसर्पति॥२८॥
विस्तीर्णं मंडले कृत्वा तस्योर्ध्वं चरतेशशी। नक्षत्रमंडलं कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति॥२९॥
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं तु भार्गवः। वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः॥३०॥
तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमंडलम्।
ऋषीणां चैव सप्तानां ध्रुवस्योर्ध्वं व्यवस्थितिः॥३१॥
तं विष्णुलोकं परमं ज्ञात्वा मुच्येत किल्बिषात्। द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च॥३२॥
ग्रहनक्षत्रतारासु उपरिष्टाद्यथाक्रमम्। ग्रहाश्च चंद्रसूर्यौ च युतौ दिव्येन तेजसा॥३३॥
नित्यमृक्षेषु युज्यंते गच्छंतोहर्निशं क्रमात्। ग्रहनक्षत्रसूर्यास्ते नीचोच्चऋजुसंस्थिताः॥३४॥
समागमे च भेदे च पश्यंतियुगपत्प्रजाः। ऋतवः षट् स्मृताः सर्वे समागच्छंति पंचधा॥३५॥
परस्परास्थिता ह्येते युज्यंते च परस्परम्। असंकरेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः॥३६॥
एवं संक्षिप्य कथितं ग्रहाणां गमनं द्विजाः। भास्करप्रमुखानां च यथादृष्टं यथाश्रुतम्॥३७॥
ग्रहाधिपत्ये भगवान् ब्रह्मणा पद्मयोनिना। अभिषिक्तः सहस्रांशू रुद्रेण तु यथा गुहः॥३८॥
तस्माद्ग्रहार्चना कार्या अग्नौ चोद्यं यथाविधि। आदित्यग्रहपीडायां सद्भिः कार्याऽर्थसिद्धये॥३९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ज्योतिश्चक्रे ग्रहसंचारकथनं नाम सप्तपंचाशत्तामोऽध्यायः॥५७॥

और अस्त होते हैं। जब ये ज्योतिश्चक्र का अनुसरण करते हैं। जब दक्षिणायन में होते हैं तो यह अन्य ग्रहों के नीचे चलते हैं।।२७-२८।। अपने मंडल को अधिक विस्तीर्ण करके चन्द्रमा सूर्य के ऊपर चलता है। सम्पूर्ण नक्षत्र मंडल चन्द्रमा से ऊपर भ्रमण करता है।।२९।। नक्षत्रों से ऊपर बुध और बुध से ऊपर शुक्र, शुक्र के ऊपर मंगल और मंगल से ऊपर बृहस्पति भ्रमण करते हैं।।३०।। बृहस्पति के ऊपर शनि और शनि के ऊपर सप्तर्षि (सात ऋषि) और उनके ऊपर ध्रुव स्थित हैं।।३१।। इन सब के ऊपर विष्णु का लोक है। उस विष्णु लोक को जानकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। दो सौ हजार योजन नक्षत्रगण, तारागण और ग्रह गण से ऊपर सूर्य और चन्द्रमा जो दिव्य तेज से युक्त हैं क्रम के अनुसार दिन और रात ऊपर भ्रमण करते हैं। वे नक्षत्र गणों के संपर्क में प्रतिदिन आते हैं। इसलिए वे कभी नीचे स्थित रहते हैं, कभी ऊपर और कभी सीधी लाइन में स्थित रहते हैं। समागम और भेद दोनों स्थिति में वे एक साथ प्रजा को देखते हैं। छः ऋतुएँ होती हैं किन्तु विशेष पाँच प्रकार की आती हैं। ये आपस में एक-दूसरे से जुड़ती हैं किन्तु इनका यह योग बिना एक-दूसरे को ढके हुए होता है। ऐसा विद्वानों द्वारा कहा गया है। हे ब्राह्मणों! इस प्रकार मैने सूर्य प्रमुख ग्रहों की गति का वर्णन संक्षेप में किया जैसा कि देखा और सुना था। सहस्त्र किरणों वाले सूर्य ग्रहों के स्वामी हैं। उनको पद्मयोनि ब्रह्मा ने इस पद पर स्थापित किया है। गुह के समान जिसका अभिषेक रुद्र ने किया। इसलिए सज्जनों द्वारा सूर्य आदि ग्रहों के पीड़ा में शास्त्र में कहे गये विधान के अनुसार अग्नि में उन ग्रहों की पूजा करनी चाहिए।।३२-३९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में ज्योतिश्चक्र में ग्रह गति वर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त॥५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्याद्यभिषेक कथनम्

ऋषय ऊचुः

अभ्यषिंचत्कथं ब्रह्मा चाधिपत्ये प्रजापतिः। देवदैत्यमुखान् सर्वान् सर्वात्मा वद सांप्रतम्॥१॥

सूत उवाच

ग्रहाधिपत्ये भगवानभ्यषिंचद्दिवाकरम्। ऋक्षाणामोषधीनां च सोमं ब्रह्मा प्रजापतिः॥२॥
अपां च वरुणं देवं धनानां यक्षपुंगवम्। आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनां पावकं तथा॥३॥
प्रजापतीनां दक्षं च मरुतां शक्रमेव च। दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादं दैत्यपुंगवम्॥४॥
धर्मं पितृणामधिपं निर्ऋतिं पिशिताशिनाम्। रुद्रं पशूनां भूतानां नंदिनां गणनायकम्॥५॥
वीराणां वीरभद्रं च पिशाचानां भयंकरम्। मातृणां चैव चामुण्डां सर्वदेवनमस्कृताम्॥६॥
रुद्राणां देवदेवेशं नीललोहितमीश्वरम्। विघ्नानां व्योमजं देवं गजास्यं तु विनायकम्॥७॥
स्त्रीणां देवीमुमादेवीं वचसां च सरस्वतीम्। विष्णुं मायाविनां चैव स्वात्मानं जगतां तथा॥८॥
हिमवंतं गिरीणां तु नदीनां चैव जाह्नवीम्। समुद्राणां च सर्वेषामधिपं पयसां निधिम्॥९॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

सूर्य आदि का अभिषेक कथन

ऋषिगण बोले

प्रजापति ब्रह्मा ने जो कि सर्वात्मा हैं और देवताओं, दैत्यों और अन्य के अधिपति हैं, हमको बताइये, उन ब्रह्मा जी ने किस प्रकार देवताओं का अभिषेक किया और कैसे किसको स्वामी बनाया।।१।।

सूत बोले

भगवान ब्रह्मा ने सूर्य का अभिषेक करके उनको ग्रहों का स्वामी बनाया और प्रजापति ब्रह्मा ने चन्द्रमा को नक्षत्रों और औषधियों का स्वामी बनाया।।२।। वरुण को जलों का स्वामी और यक्षों में श्रेष्ठ कुबेर को धन का स्वामी, विष्णु को आदित्यों का स्वामी और अग्नि को वसुओं का स्वामी बनाया।।३।। उन्होंने दक्ष को प्रजापतियों का, इन्द्र को मरुतों का, दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लाद को दैत्यों और दानवों का स्वामी बनाया।।४।। उन्होंने धर्म को पितृगणों का स्वामी, निऋति को राक्षसों का स्वामी और रुद्र को पशुओं (प्रत्येक आत्मा) का और गणों के नायक नंदी को भूतों का स्वामी बनाया।।५।। उन्होंने वीरभद्र को वीरों का स्वामी बनाया। भयंकर को पिशाचों का, और सब देवताओं द्वारा नमस्कृत चामुंडा को मातृगणों का स्वामी बनाया।।६।। उन्होंने देवताओं के अधिपति नीललोहित को रुद्रों का स्वामी बनाया। हाथी के समान मुख वाले व्योम से उत्पन्न विनायक को विघ्नों का स्वामी बनाया।।७।। उमा देवी को स्त्रियों का और सरस्वती देवी को वाणी का स्वामी बनाया। विष्णु को मायावियों का और स्वयं को लोकों का स्वामी बनाया।।८।। उन्होंने हिमवत को पर्वतों का स्वामी, जह्नु मुनि से उत्पन्न गंगा

वृक्षाणां चैव चाश्वत्थं प्लक्षं च प्रपितामहः॥१०॥
गंधर्वविद्याधरकिन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथं चकार।
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमुग्रवीर्यम्॥११॥
दिग्वारणानामधिपं चकार गजेन्द्रमैरावतमुग्रवीर्यम्।
सुपर्णमीशं पततामथाश्वराजानमुच्चैः श्रवसं चकार॥१२॥
सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च मृगाधिपानां शरभं चकार।
सेनाधिपानां गुहमप्रमेयं श्रुतिस्मृतीनां लकुलीशमीशम्॥१३॥
अभ्यषिंचत्सुधर्माणं तथा शंखपदं दिशाम्। केतुमंतं क्रमेणैव हेमरोमाणमेव च॥१४॥
पृथिव्यां पृथुमीशानं सर्वेषां तु महेश्वरम्।
चतुर्मूर्तिषु सर्वज्ञं शंकरं वृषभध्वजम्॥१५॥
प्रसादाद्भगवाञ्छम्भोश्चाभ्यषिंचद्यथाक्रमम् । पुराभिषिच्य पुण्यात्मा रराज भुवनेश्वरः॥१६॥
एतद्वो विस्तरैणैव कथितं मुनिपुंगवाः। अभिषिक्तास्ततस्त्वेते विशिष्टा विश्वयोनिना॥१७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे सूर्याद्यभिषेककथनं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५८॥

जी को नदियों का स्वामी और महासागर को सब समुद्रों का स्वामी बनाया।।९।। ब्रह्मा ने प्लक्ष और अश्वत्थ को वृक्षों का स्वामी, चित्ररथ को गन्धर्वों, विधाधरों और किन्नरों का स्वामी और भयानक विषधारी वासुकी को सर्पो का स्वामी और भयानक विषधारी तक्षक को सर्पो (कोबराओं) का स्वामी बनाया और महातेजस्वी गजेन्द्र ऐरावत को हाथियों का स्वामी बनाया। उन्होंने गरुड़ को पक्षियों का स्वामी बनाया। उन्होंने इन्द्र के घोड़े उच्चैःश्रवा को घोड़ों का राजा बनाया।।१०-१२।। उन्होंने सिंह को पशुओं का स्वामी और बैल (साँड़) को गायों और आठ पैर वाले शरभ को मृगों का स्वामी बनाया। उन्होंने अतुलनीय गुह को सेनापतियों का स्वामी तथा लकुलीश को श्रुतियों और स्मृतियों का स्वामी बनाया।।१३।। उन्होंने सुधर्मा, शंखपाल, केतुमान और हेमरोम को क्रमशः सब दिशाओं का स्वामी बनाया।।१४।। उन्होंने विष्णु को पृथ्वी का स्वामी और महेश्वर को सब का स्वामी बनाया और वृषभध्वज सर्व शंकर को चार मूर्तियों का स्वामी बनाया।।१५।। शिव को कृपा से इन सब को क्रम से स्वामी (अधिपति) के रूप में अभिषिक्त किया। उन सबको अभिषिक्त करने के बाद पूर्णआत्मा और लोकों के स्वामी ने अपने को पूर्ण रूप से संतुष्ट अनुभव किया।।१६।। हे श्रेष्ठ मुनियों! यह सब मैंने विस्तार में तुम सब को बताया। विशेष गुणों से युक्त ये सब विश्व के उत्पन्न करने वाले भगवान ब्रह्मा द्वारा अभिषिक्त किये गये।।१७।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में सूर्य आदि का अभिषेक कथन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त॥५८॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

सूर्यरश्मिस्वरूपकथनम्

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पुनस्तं संशयान्विताः। पप्रच्छुरुत्तरं भूयस्तदा ते रोमहर्षणम्।।१।।

ऋषय ऊचुः

यदेतदुक्तं भवता सुतेह वदतां वर। एतद्विस्तरतो ब्रूहि ज्योतिषां च विनिर्णयम्।।२।।
श्रुत्वा तु वचनं तेषां तदा सूतः समाहितः। उवाच परमं वाक्यं तेषां संशयनिर्णये।।३।।
अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं शांतबुद्धिभिः। एतद्वोहं प्रवक्ष्यामि सूर्यचन्द्रमसोर्गतिम्।।४।।
यथा देवगृहाणीह सूर्यचंद्रादयो ग्रहाः। अतः परं तु त्रिविधमग्नेर्वक्ष्ये समुद्भवम्।।५।।
दिव्यस्य भौतिकस्याग्नेरथोग्नेः पार्थिवस्य च। व्युष्टायां तु रजन्यां च ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।।६।।
अव्याकृतमिदं त्वासीन्नैशेन तमसा वृतम्। चतुर्भागावशिष्टेऽस्मिन् लोके नष्टे विशेषतः।।७।।
स्वयंभूर्भगवांस्तत्र लोकसर्वार्थसाधकः। खद्योतवत्स व्यचरदाविर्भावचिकीर्षया।।८।।
सोग्निं सृष्ट्वाथ लोकादौ पृथिवीजलसंश्रितः। संहृत्य तत्प्रकाशार्थे त्रिधा व्यभजदीश्वरः।।९।।
पवनो यस्तु लोकेस्मिन्पार्थिवो वह्निरुच्यते। यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्तु स स्मृतः।।१०।।

उनसठवाँ अध्याय

सूर्य रश्मि का स्वरूप कथन

सूत बोले

यह सुनकर मुनि लोग संशय से ग्रस्त हो गये और फिर रोमहर्षण से पूछा।।१।।

ऋषि गण बोले

हे सूत! वक्ताओं में श्रेष्ठ! कृपया संक्षेप में ज्योतिषों के सही प्रकृति को विस्तार में कहिये।।२।। उनकी बातों को सुनकर एकाग्र चित्त होकर उन मुनियों के संदेह को दूर करने के लिए सूत ने बोधक शब्दों में कहा।।३।। इस विषय में मैं तुम लोगों को वह कहूँगा जो कि पहले महा बुद्धिमान और शान्ति बुद्धि वालों ने कहा था। मैं सूर्य और चन्द्रमा की गति के विषय में बताऊँगा।।४।। मैं तुम लोगों से बताऊँगा कि सूर्य चन्द्रमा और अन्य ग्रह कैसे देवताओं के निवास हैं। उसके बाद मैं तीन प्रकार की अग्निओं और उनकी उत्पत्ति के विषय में बताऊँगा।।५।। तीन प्रकार की अग्नि होती हैं—दिव्य अग्नि, भौतिक अग्नि और पार्थिव अग्नि।

अव्यक्त से उत्पन्न ब्रह्मा की रात्रि बीत गयी और सवेरा होने को हुआ तब यह दृश्य जगत एक था। यह तब भी घोर अन्धकार से ढका हुआ था। जब सब लोक विनाश की दशा में थे, जब चौथाई काल अभी बाकी था, अज जो लोकों का सब कार्य भार सँभालते हैं वे एक जुगनू की तरह अपने को व्यक्त करने की इच्छा से घूमते थे। जगत के आदि में उन्होंने अग्नि को पृथ्वी और जल के साथ मिश्रित रूप में उत्पन्न किया। ब्रह्मा ने इनको प्रकाश के लिये एकत्र किया। तब उनको तीन भागों में विभक्त किया।।६-९।। इस संसार में मनुष्यों द्वारा उपयोग

वैद्युतोब्जस्तु विज्ञेयस्तेषां वक्ष्ये तु लक्षणम्। वैद्युतो जाठरः सौरो वारिगर्भास्त्रयोऽग्नयः॥११॥
तस्मादपः पिबन्सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ विभुः।
जले चाब्जः समाविष्टो नाद्भिरग्निः प्रशाम्यति॥१२॥
मानवानां च कुक्षिस्थो नाग्निः शाम्यति पावकः।
अर्चिष्मान्पवनः सोग्निर्निष्प्रभो जाठरः स्मृतः॥१३॥
यश्चायं मंडली शुक्ली निरूष्मा संप्रजायते। प्रभा सौरी तु पादेन ह्यस्तं याते दिवाकरे॥१४॥
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात्प्रकाशते। उद्यंतं च पुनः सूर्यमौष्ण्यमग्नेः समाविशेत्॥१५॥
पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ। प्रकाशोष्णस्वरूपे च सौराग्नेये तु तेजसी॥१६॥
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते परस्परम्। उत्तरे चैव भूम्यर्धे तथा ह्यग्निश्च दक्षिणे॥१७॥
उत्तिष्ठति पुनः सूर्यः पुनर्वै प्रविशत्यपः। तस्मात्ताम्रा भवंत्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात्॥१८॥
अस्तं याति पुनः सूर्यो अहर्वै प्रविशत्यपः।
तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला आपो दृश्यंति भास्वराः॥१९॥
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्धे दक्षिणोत्तरे। उदयास्तमने नित्यमहोरात्रं विशत्यपः॥२०॥
यश्चासौ तपते सूर्यः पिबन्नंभो गभस्तिभिः।
पार्थिवाग्निविमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः॥२१॥

में लाई जाने वाली अग्नि को पार्थिव अग्नि कहते हैं। सूर्य में जो अग्नि चमकती है उसको शुचि अग्नि कहते हैं। बिजली से उत्पन्न अग्नि को अब्ज (जल के भाप से उत्पन्न) अग्नि कहते हैं। अब उनके लक्षण कहता हूँ। जल के गर्भ से अग्नि तीन प्रकार की होती है। वैद्युत, जाठर और सौर।।१०-११।। इसलिए सूर्य जल को अपने किरणों से पीते हुए आगे चमकता है। जल (अब्ज) से उत्पन्न अग्नि, जल से बुझाने पर भी नहीं बुझती। मनुष्यों के कुक्षि (पेट) में रहने वाली अग्नि जल से शान्त नहीं होती। उस अग्नि में लपट (गर्मी) तो होती है लेकिन वह निष्प्रभ होती है। यही जाठर अग्नि है।।१२-१३।। जब कि सूर्य उगता रहता है तो उसकी प्रभा एक मंडल के रूप में गोलाकार होती है उसमें ऊष्मा (गर्मी) नहीं होती है और रात में उसकी प्रभा किरणों द्वारा अग्नि में प्रवेश करती है। इसलिए अग्नि का प्रकाश रात्रि में भी दूर से दिखायी देता है। अग्नि से ऊष्मा सूर्य के उदय होने पर प्रवेश कर जाती है। पार्थिव अग्नि का केवल आंशिक भाग सूर्य में प्रवेश करता है। अतः अग्नि का चमकना जारी रहता है। इस प्रकार पार्थिव और सौर दोनों प्रकार की अग्नि में ऊष्मा परस्पर प्रवेश करते हैं और आपस में एक-दूसरे को विकसित करते हैं। पृथ्वी के उत्तरायण में अग्नि और सूर्य एक-दूसरे को विकसित करते हैं। सूर्य जलों से उठता है और फिर जल में पुनः प्रवेश करने और बाहर आने से प्रतिदिन और प्रतिरात जल ताँबे के रंग का हो जाता है। फिर जब सूर्य डूबता है तो दिन अर्थात् दिन का प्रकाश जलों में प्रवेश करता है। अतः रात में जल फिर सफेद रंग में चमकते हुए दिखायी देते हैं।।१४-१९।। इस क्रम योग से अर्थात् क्रिया-कलाप से सूर्य के उदय और अस्त दोनों में दिन और रात के बीच उत्तरायण और दक्षिणायन में वह जल में प्रवेश करता है। सूर्य अपनी किरणों से जल को पीते हुए तपता है। उसमें पृथ्वी और अग्नि दोनों का मिश्रण रहता है। इसको दिव्य

सहस्त्रपादसौ वह्निर्वृत्तकुंभनिभः स्मृतः। आदत्ते स तु नाडीनां सहस्त्रेण समंततः॥२२॥
नादेयी श्चैव सामुद्रीः कूपाश्चैव तथा घनाः। स्थावरा जंगमाश्चैव वापीकुल्यादिका अपः॥२३॥
तस्य रश्मिसहस्त्रं तच्छीतवर्षोष्णनिस्स्त्रवम्। तासां चतुः शता नाड्यो वर्षंते चित्रमूर्तयः॥२४॥
भजनाश्चैव माल्याश्च केतनाः पतनास्तथा। अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः॥२५॥
हिमोद्वहाश्च ता नाड्यो रश्मयस्त्रिशताः पुनः। रेशा मेघाश्च वात्स्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः॥२६॥
चंद्रभा नामतः सर्वा पीताभाश्च गभस्तयः। शुक्लाश्च ककुभाश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा॥२७॥
शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशतीर्धर्मसर्जनाः। सोमो बिभर्ति ताभिस्तु मनुष्यपितृदेवताः॥२८॥
मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितॄनपि। अमृतेन सुरान्सर्वांस्त्रिसृभिस्तर्पयत्यसौ॥२९॥
वसंते चैव ग्रीष्मे च शतैः स तपते त्रिभिः। वर्षास्वथो शरदि च चतुर्भिः संप्रवर्षति॥३०॥
हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजते त्रिभिः। इंद्रो धाता भगः पूषा मित्रोथ वरुणोर्यमा॥३१॥
अंशुर्विवस्वांस्त्वष्टा च पर्जन्यो विष्णुरेव च। वरुणो माघमासे तु सूर्य एव तु फाल्गुने॥३२॥
चैत्रे मासि भवेदंशुर्धाता वैशाखतापनः। ज्येष्ठे मासि भवेदिन्द्र आषाढे चार्यमा रविः॥३३॥
विवस्वान् श्रावणे मासि प्रोष्ठपादे भगः स्मृतः। पर्जन्याश्वयुजे मासि त्वष्टा वै कार्तिके रविः॥३४॥

अग्नि या शुचि कहते हैं।२०-२१।। इस शुचि अग्नि के हजार पाद या किरणें होती हैं। यह वृत्त कुम्भ (सरकुलर पात्र) की तरह होता है। यह अपनी सहस्त्र किरणों से चारों ओर से जल को ग्रहण करता है। यह नदियों, सागरों, कुओं आदि से जल को ग्रहण करता है। यह चर और अचर जलों (जैसे नालों और तालाबों) से जलों को लेता है।।२२-२३।। उसकी हजारों किरणें हैं जो शीत, वर्षा और गर्मी से युक्त हैं। उनमें से सौ टेबुलर हिम, वर्षा और ऊष्मा को छोड़ती (निस्स्त्रव करती हैं। चार सौ टेबुलर किरणें (नाड़ियाँ) विभिन्न रंगों के रूप में हैं। वे बरसती हैं। उनका सामूहिक नाम अमृत है और अनेक व्यक्तिगत नाम भी हैं। जैसे भजन, माल्य, केतन तथा पतन।।२४-२५।। टेबुलर किरणें (नाड़ियाँ) हिमवाहिनी हैं। वे संख्या में तीन सौ हैं। उन किरणों के अनेक नाम हैं जैसे रेशा, मेघ, वात्स्या और ह्लादिनी। उनका सामूहिक नाम चन्द्रमा है। वे सब किरणें पीले आभा की हैं।।२६-२७।। शुक्ला ककुभा और विश्वभूत उन किरणों के व्यक्तिगत नाम हैं। ये ऊष्मा करती हैं। उनका सामूहिक नाम भी शुक्ला है।।२७-२८।। चन्द्रमा उन ऊपर कही गयी किरणों के द्वारा मनुष्यों, पितरों और देवताओं, का भरण करता है। वह औषधि से मनुष्यों को, स्वधा से पितरों को और अमृत से देवों को तृप्त करता है।।२८-२९।। वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में सूर्य तीन सौ किरणों से तपता है। वह वर्षा ऋतु और शरद ऋतु में चार सौ टेबुलर किरणों से वर्षा करता है। हेमन्त और शिशिर में सूर्य तीन सौ किरणों से हिम को छोड़ता है अर्थात् हिम पैदा करता है।।३०-३१।। बारह सूर्य होते हैं। उनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, पूषा, मित्र, वरुण, अर्यमा, अंशु, विवस्वान, त्वष्टा, पर्जन्य और विष्णु। वरुण माघ मास में सूर्य है। फाल्गुन मास में पूषा सूर्य है। चैत्र में अंशु और बैशाख में धाता सूर्य होता है। ज्येष्ठ मास में इन्द्र और आषाढ़ में अर्यमा सूर्य होता है। श्रावण मास में विवस्वान और भाद्रपद मास में भग सूर्य होता है। आश्विन में पर्जन्य और कार्तिक में त्वष्टा सूर्य होता है।

मार्गशीर्षे भवेन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः। पंचरश्मिसहस्राणि वरुणस्यार्ककर्मणि॥३५॥
षड्भिः सहस्रैः पूषा तु देवोंशुः सप्तभिस्तथा। धाताष्टभिः सहस्रैस्तु नवभिस्तु शतक्रतुः॥३६॥
विवस्वान् दशभिर्याति यात्येकादशभिर्भगः। सप्तभिस्तपते मित्रस्त्वष्टा चैवाष्टभिः स्मृतः॥३७॥
अर्यमा दशभिर्याति पर्जन्यो नवभिस्तथा। षड्भी रश्मिसहस्रैस्तु विष्णुस्तपति मेदिनीम्॥३८॥
वसंते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे कांचनसप्रभः। श्वेतो वर्षासु वर्णेन पांडुः शरदि भास्करः॥३९॥
हेमंते ताम्रवर्णस्तु शिशिरे लोहितो रविः। इति वर्षाः समाख्याता मया सूर्यसमुद्भवाः॥४०॥
ओषधीषु बलं धत्ते स्वधया च पितृष्वपि। सूर्योऽमरेष्वप्यमृतं त्रयं त्रिषु नियच्छति॥४१॥
एवं रश्मिसहस्त्रं तत्सौरं लोकार्थसाधकम्। भिद्यते लोकमासाद्य जलशीतोष्णनिस्त्रवम्॥४२॥
इत्येतन्मंडलं शुक्लं भास्वरं सूर्यसंज्ञितम्। नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च॥४३॥
चंद्रऋक्षग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसंभवाः। नक्षत्राधिपतिः सोमो नयनं वाममीशितुः॥४४॥
नयनं चैवमीशस्य दक्षिणं भास्करः स्वयम्। तेषां जनानां लोकेस्मिन्नयनं नयते यतः॥४५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सूर्यरश्मिस्वरूपकथनं नामैकोनषष्टितमोध्याय॥५९॥

मार्गशीर्ष में मित्र और पौष में विष्णु सूर्य होता है।।३२-३५।। सूर्य के कर्त्तव्य को पूरा करते हुए वरुण पाँच हजार किरणों, पूषा छः हजार किरणों, अंशु सात हजार किरणों, धाता आठ हजार किरणों, इन्द्र नौ हजार किरणों, विवस्वान दस हजार किरणों, भग ग्यारह हजार किरणों, मित्र सात हजार किरणों, त्वष्टा आठ हजार किरणों अर्यमा दस हजार किरणों, पर्जन्य नौ हजार किरणों और विष्णु छः हजार किरणों से पृथ्वी पर तपता है।।३६-३८।। वसन्त में सूर्य कपिल वर्ण का होता है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य का रंग सफेद होता है। शरद ऋतु में सूर्य भूरे रंग का होता है। हेमन्त ऋतु में सूर्य ताँबे के रंग होता है और शिशिर ऋतु में लाल रंग का होता है। इस प्रकार मैंने सूर्य के रंगों का वर्णन किया।।३९-४०।। सूर्य औषधियों को बल देता है। वह किरणों के द्वारा स्वधा से पितरों को तृप्त करता है। वह देवताओं को अमृत प्रदान करता है। इस प्रकार वह अपनी किरणों से तीनों लोकों का साधक है। हिम वर्षा और ताप को देने से पृथ्वी पर पहुँचकर सूर्य की वे किरणें विभिन्न रूप धारण करती हैं। इस प्रकार सूर्य का मंडल शुक्ल वर्ण का है। इसलिए उसका नाम भास्वर (शुक्ल) कहा जाता है। सूर्य तारागणों, ग्रहों और चन्द्रमा के उद्‌भव का स्रोत और आश्रय है। यह भी ज्ञातव्य है कि चन्द्रमा, तारागण और ग्रहगण ये सब सूर्य से उत्पन्न हुए हैं। चन्द्रमा नक्षत्रों का स्वामी है और शिव जी का बायाँ नेत्र है। भास्कर अर्थात् सूर्य स्वयं शिव जी का दक्षिण नेत्र है। नय शब्द का अर्थ है लोगों को इस लोक में नयन अर्थात् पहुँचाना। इस लोक में लोगों को जो ले आता है, वह नयन है। 'नि' धातु से नयन शब्द बना है।।४१-४५।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में सूर्य रश्मि का स्वरूप कथन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त॥५९॥

षष्टितमोऽध्यायः

सूर्यमंडलम्

सूत उवाच

शेषाः पंच ग्रहा ज्ञेया ईश्वराः कामचारिणः। पठ्यते चाग्निरादित्य उदकं चन्द्रमाः स्मृतः॥१॥
शेषाणां प्रकृतिं सम्यग्वक्ष्यमाणां निबोधत। सुरसेनापतिः स्कंदः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः॥२॥
नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो जनाः। सर्वलोकप्रभुः साक्षाद्यमो लोकप्रभुः स्वयम्॥३॥
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठा मंदगामी शनैश्चरः। देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमंतौ महाग्रहौ॥४॥
प्रजापतिसुतावुक्तौ ततः शुक्रबृहस्पती। आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः॥५॥
भवत्यस्माज्जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम्। रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्राग्निदिवौकसाम्॥६॥
द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्नं यत्तेजः सार्वलौकिकम्। सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः॥७॥
सूर्य एव त्रिलोकेशो मूलं परमदैवतम्। ततः संजायते सर्वं तत्रैव प्रविलीयते॥८॥
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निस्सृतो पुरा। अविज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान्सुप्रभो रविः॥९॥
अत्र गच्छंति निधनं जायंते च पुनः पुनः।
क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशाः पक्षाश्च कृत्स्नशः॥१०॥

साठवाँ अध्याय

सूर्य मंडल

सूत बोले

सूर्य अग्नि है और चन्द्रमा जल। अन्य पाँच ग्रह ईश्वर हैं जो कि अपनी इच्छानुसार भ्रमण करते हैं। शेष ग्रहों की उत्पत्ति के स्रोत को समझो जो मैं स्पष्ट रूप से वर्णन करता हूँ।।१।। यह कहा गया है कि मंगल ग्रह देवताओं की सेना का सेनापति स्कन्द है।।२।। पूर्ण ज्ञानी लोग कहते हैं कि चन्द्रमा नारायण देवता है। हे उत्तम ब्राह्मणों! महान ग्रह शनिश्चर मंद गति से चलने वाला यम है। यह लोकों का स्वामी है। देवताओं और दैत्यों के गुरु महान ग्रह शुक्र और बृहस्पति जो कि महान किरणों वाले हैं, वे दोनों भृगु और अंगिरा के पुत्र हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सम्पूर्ण तीन लोकों का स्रोत सूर्य है।।३-५।। सम्पूर्ण विश्व देवताओं, असुरों और मनुष्यों सहित सूर्य से उत्पन्न होता है। वह सूर्य रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र, चन्द्रमा, उत्तम ब्राह्मणों, अग्नि और स्वर्गवासियों का शरण है। वह सब प्रकाशदाताओं का प्रकाश है और उसका तेज सब लोकों में फैला हुआ है। वह सूर्य सबकी आत्मा है। सब लोकों का स्वामी है। वह महादेव है, प्रजापति है। सूर्य ही तीनों लोकों का स्वामी है। वह मूल महान देवता है। उसी से सब उत्पन्न होता है और उसी में सब विलीन होता है।।६-८।। संसार भाव और अभाव अर्थात् अस्तित्व और अनस्तित्व पहले ही से सूर्य से निकला हुआ है। हे ब्राह्मणों! यह सुन्दर प्रभावाला दीप्तमान ग्रह सूर्य प्रभायुक्त ग्रह है।।९।। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतुएँ और युग (काल) की ये

मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽथ युगानि च। तदादित्यादृते ह्येषा कालसंख्या न विद्यते॥११॥
कालदृते न नियमो न दीक्षा नाह्निकक्रमः। ऋतूनां च विभागश्च पुष्पं मूलं फलं कुतः॥१२॥
कुतः सस्यविनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणोपि च। अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च॥१३॥
जगत्प्रतापनमृते भास्करं रुद्ररूपिणम्। स एष कालश्चग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः॥१४॥
तपत्येष द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं सचराचरम्। स एष तेजसां राशिः समस्तः सार्वलौकिकः॥१५॥
उत्तमं मार्गमास्थाय रात्र्यहोभिरिदं जगत्। पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः॥१६॥
यथा प्रभाकरो दीपो गृहमध्येऽवलंबितः। पार्श्वतोर्ध्वमधश्चैव तमो नाशयते समम्॥१७॥
तद्वत्सहस्रकिरणो ग्रहराजो जगत्प्रभुः। सूर्यो गोभिर्जगत्सर्वमादीपयति सर्वतः॥१८॥
रवे रश्मिसहस्रं यत्प्राङ्मया समुदाहृतम्। तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः॥१९॥
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च। विश्वव्यचाः पुनश्चाद्यः सन्नद्धश्च ततः परः॥२०॥
सर्वादसुः पुनश्चान्यः स्वराडन्यः प्रकीर्तितः। सुषुम्नः सूर्य रश्मिस्तु दक्षिणां राशिमैधयत्॥२१॥
न्यगूर्ध्वाधः प्रचारोऽस्य सुषुम्नः परिकीर्तितः। हरिकेशः पुरस्ताद्यो ऋक्षयोनिः प्रकीर्त्यते॥२२॥
दक्षिणे विश्वकर्मा च रश्मिर्वर्धयते बुधम्।
विश्वव्यचास्तु यः पश्चाच्छुक्रयोनिः स्मृतो बुधैः॥२३॥

सब इकाइयाँ सूर्य से प्रारंभ होती हैं और उसी में समाप्त होती हैं। इसलिए सूर्य के बिना काल संख्या अर्थात् काल की गणना नहीं होती है।।१०-११।। काल के बिना न तो क्रम, न दीक्षा, न तो दैनिक धार्मिक कृत्य हो सकता है। ऋतुओं का विभाजन फिर कैसे हो? और तब फूलों, जड़ों और फलों की प्राप्ति कहाँ से हो। पौधों की उत्पत्ति कहाँ से हो? विविध प्रकार की घास और औषधियों के पौधे कैसे पैदा होंगे। तो स्वर्ग में और इस लोक में भी परस्पर व्यवहार सूर्य के अस्तित्व के बिना कैसे होगा। जो सूर्य रुद्र का रूप है और विश्व का प्रकाश देने वाला है, वह सूर्य ही अकेले काल, अग्नि, द्वादश आत्मा (बारह रूपों में) और प्रजापति है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! वह सूर्य चर और अचर प्राणियों सहित तीनों लोकों को प्रकाश देता है। वह तेजों का भंडार है। वह सर्वेसर्वा है। वह सार्वलौकिक है।।१२-१५।। उत्तम मार्ग को अपनाकर, वह सम्पूर्ण जगत् को चारों ओर से, ऊपर से और नीचे से दिन और रात तपता है।।१६।। अगर घर के बीच में दीपक रख दिया जाय तो वह घर के भीतर के चारों ओर के अंधेरों को चारों ओर अगल-बगल ऊपर-नीच के भाग में स्थित अँधेरे को उसी समय दूर कर देता है।।१७।। ठीक उसी प्रकार हजार किरणों वाला सूर्य, ग्रहों का राजा, विश्व का स्वामी अपने किरणों द्वारा सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित कर देता है।।१८।। ग्रहों की उत्पत्ति के स्रोत सूर्य की सात किरणें—जिनकी चर्चा मैंने पहले की है—वे सूर्य की हजार किरणों में से सबसे श्रेष्ठ हैं।।१९।। उनके नाम सुषुम्ना, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वव्यचा, सन्नद्ध, सर्वावसु और स्वराट् हैं। सूर्य की किरण सुषुम्ना दक्षिणी क्षेत्र को प्रकाशित करती हैं। उसका प्रकाश ऊपर नीचे और चारों ओर फैलता है।।२०-२१।। हरिकेश जो कि पूर्व में है वह नक्षत्रों के उत्पत्ति का स्रोत है। विश्वकर्मा की किरणें दक्षिण में बुध को विकसित करती हैं। विश्वव्यचा जो कि पश्चिम

सन्नद्धश्च तु यो रश्मिः स योनि र्लोहितस्य तु। षष्ठः सर्वावसू रश्मिः स योनिस्तु बृहस्पतेः॥२४॥
शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्वराट्। एवं सूर्यप्रभावेन नक्षत्रग्रहतारकाः॥२५॥
दृश्यंते दिवि ताः सर्वाः विश्वं चेदं पुनर्जगत्। न क्षीयंते यतस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता॥२६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सूर्यमंडल
नाम षष्टितमोऽध्याय॥६०॥

(पीछे) है वह शुक्र की उत्पत्ति का स्रोत है। सन्नध मंगल की उत्पत्ति का स्रोत है। सर्वावसु किरण वृहस्पति की उत्पत्ति का स्रोत है। स्वराट् किरण शनिश्चर को पोषण करती है। इस प्रकार सूर्य की शक्ति के कारण ऋक्ष गण, ग्रह गण और तारागण आकाश में दिखायी देते हैं।। यह सारा जगत सूर्य द्वारा स्थित है। ऋक्षों को नक्षत्र कहते है। ऋक्ष शब्द क्षीधातु से न लगाकर बना है। न क्षीयते जो कि नष्ट नहीं होता है उसको नक्षत्र कहते है।।२२-२६।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में सूर्य मंडल नामक
साठवाँ अध्याय समाप्त॥६०॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

ग्रहसंख्यावर्णनम्

सूत उवाच

क्षेत्राण्येतानि सर्वाणि आतपंति गभस्तिभिः। तेषा क्षेत्राण्यथादत्ते सूर्यो नक्षत्रतारकाः॥१॥
चीर्णेन सुकृतेनेह सुकृतांते ग्रहाश्रयाः। तारणात्तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः॥२॥
दिव्यानां पार्थिवानां च नैशानां चैव सर्वशः। आदानान्नित्यमादित्यस्तेजसां तमसामपि॥३॥
सवने स्यंदनेऽर्थे च धातुरेष विभाष्यते। सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता मतः॥४॥
बहुलश्चंद्र इत्येष ह्लादने धातुरुच्यते। शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते॥५॥
सूर्याचंद्रमसोर्दिव्ये मंडले भास्वरे खगे। जलतेजोमये शुक्ले वृत्तकुंभनिभे शुभे॥६॥
घनतोयात्मकं तत्र मंडलं शशिनः स्मृतम्। घनतेजोमयं शुक्लं मंडलं भास्करस्य तु॥७॥
वसंति सर्वदेवाश्च स्थानान्येतानि सर्वशः। मन्वंतरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः॥८॥
तेन ग्रहागृहाण्येव तदाख्यास्ते भवंति च। सौरं सूर्योऽविशत्स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च॥९॥

इकसठवाँ अध्याय

ग्रह संख्या वर्णन

सूत बोले

ये सब क्षेत्र (निवास) हैं जो कि सूर्य की किरणों द्वारा तपते हैं (चमकते) हैं। सूर्य, नक्षत्र और तारागण क्षेत्रों (आवासों) को योग्यता से प्राप्त होते हैं। इस लोक में सुकृत करने से सुकृत के अन्त में उनको ग्रहों में आश्रय अर्थात् निवास मिलता है। उनको 'तारक' कहा जाता है क्योंकि वे सांसारिक अस्तित्व रूपी सागर से योग्य लोगों को पार करने में समर्थ हैं और क्योंकि वे शुक्ल वर्ण के हैं।।१-२।। सूर्य को आदित्य कहते हैं क्योंकि सूर्य दिव्य पार्थिव और रात्रि के अन्धकारों को ग्रहण और सर्वत्र अपना प्रकाश फैलाता है।।३।। "सु" धातु का प्रयोग दो अर्थों में होता है। रस को खींचना या बहना चूँकि सूर्य जल को ग्रहण करता है और जल को बहाता है। इसलिए उसको तेज को फैलाने और जल को बहाने से सूर्य को सविता कहा जाता है। अर्थात् तेज के उत्पन्न करने से और जल के बरसने से सूर्य को सविता कहते हैं। चदि धातु आह्लाद करने के अर्थ में है। जगत को आह्लाद करने के कारण चन्द्रमा का नाम बहुल भी है।।४।। शुक्लता, शीत और अमृतत्व देना चन्द्रमा की प्रकृति है और वही वह देता है।।५।। सूर्य और चन्द्रमा का मण्डल दिव्य है। चन्द्रमा जलमय है और सूर्य तेजमय है। वे आकाश में भ्रमण करते हैं। वे दोनों घड़े के समान गोलाकार हैं।।६।। चन्द्रमा मण्डल घन जल और प्रकृति सूर्य का मण्डल तेजोमय और शुल्कवर्ण का है।।७।। सब देवता इन ग्रह नक्षत्र रूप स्थानों में निवास करते हैं। सब मन्वन्तरों में इन निवास स्थानों में रहते हैं।।८।। ये ग्रह क्या हैं, एक तरह से निवास स्थान हैं और उसी नाम

शौक्रं शुक्रोऽविशत्स्थानं षोडशार्चिः प्रतापवान्। बृहद्वृहस्पतिश्चैव लोहितश्चैव लोहितम्॥१०॥
शनैश्चरं तथा स्थानं देवश्चापि शनैश्चरः। बौधं बुधस्तु स्वर्भानुः स्वर्भानुस्थानमाश्रितः॥११॥
नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशंति च। गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम्॥१२॥
कल्पादौ संप्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयंभुवा।
स्थानान्येतानि तिष्ठंति यावदाभूतासंप्लवम्॥१३॥
मन्वंतरेषु सर्वेषु देवस्थानानि तानि वै। अभिमानिनोऽवतिष्ठंते देवाः स्थानं पुनः पुनः॥१४॥
अतीतैस्तु सहैतानि भाव्याभाव्यैः सुरैः सह। वर्तंते वर्तमानैश्च स्थानिभिस्तैः सुरैः सह॥१५॥
अस्मिन्मन्वंतरे चैव ग्रहा वैमानिकाः स्मृताः। विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वैवस्वतेंतरे॥१६॥
द्युतिमानृषिपुत्रस्तु सोमो देवो वसुः स्मृतः। शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरयाजकः॥१७॥
बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्योङ्गिरासुतः। बुधो मनोहरश्चैव ऋषिपुत्रस्तु स स्मृतः॥१८॥
शनैश्चरो विरूपस्तु संज्ञापुत्रो विवस्वतः।
अग्निर्विकेश्यां जज्ञे तु युवाऽसौ लोहितार्चिषः॥१९॥
नक्षत्रऋक्षनामिन्यो दाक्षायण्यस्तु ताः स्मृताः। स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसंतापनोऽसुरः॥२०॥
सोमर्क्षग्रहसूर्येषु कीर्तितास्त्वभिमानिनः। स्थानान्येतान्यथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः॥२१॥
सौरमग्निमयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः। हिमांशोस्तु स्मृतं स्थानमम्मयं शुक्लमेव च॥२२॥

से वे स्थान कहलाते हैं। सूर्य सौर में निवास करता (रहता) है। चन्द्रमा सौम्य निवास में प्रविष्ट है।।९।। शुक्र शौक्र में सोलह किरणों वाला प्रतापी, बृहस्पति वृहत निवास में स्थित है, शनैश्चर शनैश्चर स्थान में, बुध बौध में, राहु स्वर्भानु स्थान में निवास में रहते हैं। सब नक्षत्र के देवता भी अपने नक्षत्रों के निवास में रहते हैं। ये सब सुकृत करने वाले आत्माओं के निवास स्थान हैं।।१०-१२।। स्वयंभू ब्रह्मा द्वारा ये निवास बनाये गये हैं। उन्होंने कल्प के प्रारम्भ में कार्य करना प्रारम्भ किया और प्रलय तक बने रहेंगे।।१३।। सब मन्वन्तरों में ये केवल देवताओं के निवास हैं। इन स्थानों अर्थात् निवासों में पुनः-पुनः वे निवास करते रहेंगे।।१४।। वे इन निवासों पर देवताओं के साथ भूत, वर्तमान और भविष्य में भी काबिज रहेंगे। इस चालू मन्वन्तर में ग्रह गण विमान में बैठकर घूमते हैं। वैवस्वत मन्वन्तर में अदिति का पुत्र विवस्वान भृगु का पुत्र सूर्य है। अत्रि ऋषि का पुत्र द्युतिमान चन्द्रमा है। शुक्र राक्षसों के गुरु हैं। महान तेजस्वी देवताओं के गुरु बृहस्पति अंगिरा के पुत्र हैं। मनोहर बुध जो कि एक ऋषि के पुत्र हैं।।१५-१८।। देखने में भोंड़े (विरूप) शनिश्चर विवस्वान के पुत्र हैं जो उनकी पत्नी संज्ञा से उत्पन्न हुए हैं। युवा लोहितार्चिष ने केकशी पत्नी से अग्नि को उत्पन्न किया।।।१९।। नक्षत्र और ऋक्ष नाम वाले सब दक्ष की पुत्रियों से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए वे दाक्षायण कहलाते हैं। राहु सिंहिका का पुत्र है जो कि प्राणियों के लिए महान कष्टकारी राक्षस है।।२०।। इस प्रकार सूर्य को और चन्द्र में स्थित ऋक्षों और ग्रहों में उनके निवास हैं। इन अपने-अपने स्थान का अभिमान करने वाले देवताओं और उनके निवास स्थानों का वर्णन मैंने किया।।२१।। सहस्त्र किरणों वाले सूर्य का अग्निमय सौर स्थान (निवास) है। चन्द्रमा का स्थान

आप्यं श्यामं मनोज्ञं च बुधरश्मिगृहंस्मृतम्। शुक्लस्याप्यम्मयं शुक्लं पदं षोडशरश्मिवत्॥२३॥
नवरश्मि तु भौमस्य लोहितं स्थानमुत्तमम्। हरिद्राभं बृहच्चापि षोडशार्चिर्बृहस्पतेः॥२४॥
अष्टरश्मिगृहं चापि प्रोक्तं कृष्णं शनैश्चरे। स्वर्भानोस्तामसं स्थानं भूतसंतापनालयम्॥२५॥

विज्ञेयास्तारकाः सर्वास्त्वृषयस्त्वेकरश्मयः।
आश्रयाः पुण्यकीर्तीनां शुक्लाश्चापि स्ववर्णतः॥२६॥
घनतोयात्मिका ज्ञेयाः कल्पादावेव निर्मिताः।
आदित्यरश्मिसंयोगात्संप्रकाशात्मिकाः स्मृता॥२७॥

नवयोजनसाहस्रो विष्कंभः सवितुः स्मृतः। त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मंडलस्य प्रमाणतः॥२८॥
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः। तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात्प्रसर्पति॥२९॥
उद्धृत्य पृथिवीछायां निर्मितां मंडलाकृतिम्। स्वर्भानोस्तु बृहत्स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम्॥३०॥
आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य समं गच्छति पर्वसु। आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु॥३१॥
स्वर्भानुं नुदते यस्मात्तस्मात्स्वर्भानुरुच्यते। चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते॥३२॥
विष्कंभान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रात्प्रमाणतः। भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः॥३३॥
बृहस्पतेः पादहीनौ वक्रसौरी उभौ स्मृतौ। विष्कंभान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः॥३४॥
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मंतीह यानि वै। बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलाच्च वै॥३५॥
प्रायशश्चन्द्रयोगीनि विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित्। तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्॥३६॥

जलमय और शुक्ल (सफेद) है।।२२।। बुध का निवास जलयुक्त, कृष्णवर्ण और मनोहर है। सोलह किरणों वाले शुक्र का भी निवास जलमय और शुक्ल है।।२३।। नव किरणों वाले मंगल का निवास लाल रंग का और उत्तम है।।२४।। शनैश्चर का निवास कृष्ण रंग का और आठ किरणों वाला है। राहु का निवास अंधकारमय है और प्राणियों के लिए कष्टकारी है।।२५।। ऋषियों के निवास स्थान सब तारागण एक किरण वाले हैं, ऐसा जानना चाहिए। वे शुक्ल वर्ण के हैं और उत्तम कर्म करने वाले लोगों के निवास हैं।।२६।। घने जल (हिम) प्रकृति के हैं। वे कल्प के प्रारम्भ में बनाये गये थे। सूर्य की किरणों के संयोग से चमकते हुए दिखाई देते हैं।।२७।। सूर्य मण्डल का घेरा नौ हजार योजन है। उस मण्डल का विस्तार उसके विस्तार से तिगुना है।।२८।। चन्द्रमा का विस्तार सूर्य के विस्तार से दोगुना है। राहु दोनों के विस्तार के बराबर है और उनके नीचे भ्रमण करता है।।२९।। राहु का शिल्पीय बड़ा निवास है जो अन्धकारमय है। यह पृथ्वी की छाया को लेकर मण्डलाकार बना हुआ है।।३०।। सूर्य से निकलकर पर्व के दिनों में यह चन्द्रमा की ओर जाता है। उसके बाद सौर पर्वों को वह चन्द्रमा से निकलकर सूर्य में प्राप्त होता है।।३१।। चूँकि राहु सूर्य को प्रेरित करता है इसलिए राहु को स्वर्भानु कहते हैं।।३२।। चन्द्रमा के सोलहवें भाग शुक्र का योजनों में विस्तार और मण्डल है और शुक्र के आकार का तीन चौथाई दूरी बृहस्पति की है।।३३।। मंगल और शनिश्चर बृहस्पति से एक चौथाई हैं। इन दोनों से चौथाई कम बुध का विस्तार और चौड़ाई है।।३४।। तारों और नक्षत्रों के रूप जितना है वह विस्तार और मण्डल में बुध के बराबर है।।३५।। चन्द्रमा के योग में नक्षत्रगण सामान्य रूप में ऋक्ष कहलाते हैं। छोटे

शतानि पंच चत्वारि त्रीणि द्वे चैवयोजने। सर्वोपरि निकृष्टानि तारकामंडलानि तु॥३७॥
योजनान्यर्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते। उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहास्ते दूरसर्पिणः॥३८॥
सौरोङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मंदविचारिणः। पूर्वमेव समाख्याता गतिस्तेषां यथाक्रमम्॥३९॥
एतेष्वेव ग्रहाः सर्वे नक्षत्रेषु समुत्थिताः। विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै मुनिसत्तमाः॥४०॥
विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो ग्रहः। त्विषिमान् धर्मपुत्रस्तु सोमो देवो वसुस्तु सः॥४१॥
शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासु निशाकरः। षोडशार्चिर्भृगोः पुत्रः शुक्रः सूर्यादनंतरम्॥४२॥
ताराग्रहाणां प्रवरस्तिष्ये क्षेत्रे समुत्थितः। ग्रहश्चांगिरसः पुत्रो द्वादशार्चिर्बृहस्पतिः॥४३॥
फाल्गुनीषु समुत्पन्नः पूर्वाख्यासु जगद्गुरुः। नवार्चिर्लोहितांगश्च प्रजापतिसुतो ग्रहः॥४४॥
आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इति स्मृतः।
रेवतीष्वेव सप्तार्चिः स्थाने सौरिः शनैश्चरः॥४५॥
सौम्यो बुधो घनिष्ठासु पञ्चार्चिरुदितो ग्रहः। तमोमयो मृत्युसुतः प्रजाक्षयकरः शिखी॥४६॥
आश्लेषासु समुत्पन्नः सर्वहारी महाग्रहः। तथा स्वनामधेयेषु दाक्षयण्यः समुत्थिताः॥४७॥
तमोवीर्यमयो राहुः प्रकृत्या कृष्णमंडलः। भरणीषु समुत्पन्नो ग्रहश्चन्द्रार्कमर्दनः॥४८॥
एते तारा ग्रहाश्चापि बोद्धव्या भार्गवादयः। जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतां यतः॥४९॥
मुच्यते तेन दोषेण ततस्तद्ग्रहभक्तितः। सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते॥५०॥
ताराग्रहाणां शुक्रस्तु केतूनां चापिधूमवान्। ध्रुवः किल ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम्॥५१॥

तारागणों और नक्षत्रों के रूप में आपस में तुलनात्मक दृष्टि से बड़ों से कम है। वे छोटे तारे पाँच, चार, तीन, दो योजनों के हैं। इन सबके ऊपर उनसे भी छोटे तारे हैं जिनका मण्डल केवल आधा योजन है। इससे छोटा कोई तारा नहीं है। उनसे ऊपर तीन ग्रह हैं जो उनसे अधिक दूरी पर भ्रमण करते हैं। ये तीन ग्रह मन्द गति से चलते हैं। ये सौर अंगिरा और वक्र हैं। उनकी गति को क्रम के अनुसार पहिले ही वर्णन कर दिया है।।३६-३९।। वे सब ग्रह नक्षत्रों से उत्पन्न हुए हैं। हे श्रेष्ठ मुनियों! सूर्य अदिति का पुत्र है। ग्रहों में मुख्य यह प्रथम ग्रह विशाखा नक्षत्र से उत्पन्न हुआ है। धर्म का पुत्र ओजस्वी भगवान वसु सोम हैं। शीत किरणों वाला रात्रि का स्वामी चन्द्रमा कृतिका नक्षत्र से उत्पन्न हुआ है। सूर्य के बाद ग्रहों और नक्षत्रों में सर्वोत्तम शुक्र तिष्य नक्षत्र से उत्पन्न हुआ है। बारह किरणों वाला ग्रह जो जगत गुरु है, वह पूर्वा फाल्गुनी से उत्पन्न हुआ है। प्रजापति का पुत्र मंगल नौ किरणों वाला पूर्वाषाढ़ से उत्पन्न हुआ है। सात किरणों वाला सूर्य का पुत्र शनैश्चर रेवती नक्षत्र से उत्पन्न हुआ है।।४०-४५।। पाँच किरणों वाला बुध चन्द्रमा का पुत्र है। वह धनिष्ठा से उत्पन्न हुआ है। सबका विनाशक महान ग्रह केतु जो कि स्वभाव में तमोमय है यह अश्लेषा से उत्पन्न हुआ है। दक्ष की कन्याओं से उत्पन्न नक्षत्रों के अपने-अपने नाम हैं।।४६-४७।। काले मण्डल वाला राहु जो तमोमय है, वह सूर्य और चन्द्रमा दोनों को दबाने वाला यह ग्रह भरणी से उत्पन्न हुआ है।।४८।। वे शुक्र आदि ग्रह ताराग्रह के नाम से जाने जाते हैं जो अपने जन्म नक्षत्रों को पीड़ा से प्रभावित करते हैं। वे अपनी-अपनी पूजा करने से पीड़ामुक्त कर देते हैं। इन सब ग्रहों में आदित्य आदि ग्रह कहा गया है।।४९-५०।। सब तारा ग्रहों में शुक्र प्रथम है और केतुओं में धूमवान

नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम्। वर्षाणां चैव पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः॥५२॥
ऋतूनां शिशिरश्चापि मासानां माघ उच्यते। पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तथा॥५३॥
अहोरात्रविभागानामहश्चादिः प्रकीर्तितः। मुहूर्तानां तथैवादिर्मुहूर्तो रुद्रदैवतः॥५४॥
क्षणश्चापि निमेषादिः कालः कालविदांवराः। श्रवणांतं घनिष्ठादि युगं स्यात्पंचवार्षिकम्॥५५॥
भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत्परिवर्तते। दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्कालकृद्विभुरीश्वरः॥५६।
चतर्विधानां भूतानां प्रवर्तकनिवर्तकः। तस्यापि भगवान् रुद्रः साक्षाद्देवः प्रवर्तकः॥५७॥
इत्येष ज्योतिषामेवं सन्निवेशोर्थनिश्चयः। लोकसंव्यवहारार्थं महादेवेन निर्मितः॥५८॥
बुद्धिपूर्वं भगवता कल्पादौ संप्रवर्तितः।
स आश्रयोभिमानी च सर्वस्य ज्योतिरात्मकः॥५९॥
एकरूपप्रधानस्य परिणामोयमद्भुतः। नैष शक्यः प्रसंख्यातुं याथातथ्येन केनचित्॥६०॥
गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मांसचक्षुषा। आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः॥६१॥
परीक्ष्य निपुणं बुद्ध्या श्रद्धातव्यं विपश्चिता। चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं मुनिसत्तमाः॥६२॥
पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्योतिर्मानविनिर्णये॥६३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ग्रहसंख्यावर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥

प्रथम है। चारों दिशाओं में फैले हुए ग्रहों में ध्रुव प्रथम है। नक्षत्रों में धनिष्ठा प्रथम है। अयनों में उत्तरायण प्रथम है। पाँच वर्षों में संवत्सर प्रथम है। ऋतुओं में शिशिर श्रेष्ठ है। मासों में माघ श्रेष्ठ है। पक्षों में शुक्ल पक्ष श्रेष्ठ है और तिथियों में प्रतिप्रदा प्रथम है। रात्रि और दिन के विभाग में दिन प्रथम है। मुहूर्तों में आदि मुहूर्त रुद्र देवता हैं।।५१-५४।। काल (समय) की आदि इकाई क्षण (निमेष) है। हे काल के जानने वालों में श्रेष्ठ! घनिष्ठा से श्रवण नक्षत्र तक पाँच वर्षों का युग होता है। सूर्य की गति से जगत एक चक्र (पहिये) के समान घूमता है। भगवान सूर्य ही काल के बनाने वाले हैं। चार प्रकार के प्राणियों के प्रवर्तक और विवर्तक सूर्य हैं। रुद्र सूर्य के भी साक्षात् प्रवर्तक हैं। इस प्रकार लोक व्यवहार के लिये श्री महादेव जी ने ज्योतिर्गण अर्थात् ग्रह नक्षत्र आदि स्थापित किया है।।५५-५८।। शिव जी स्वयं इन ज्योतिर्गणों (ग्रह नक्षत्रों) के आश्रय और अभिमानी हैं और उनसे स्वयं ज्योतिर्मय हैं। यह एक अद्भुत परिणाम एक रूप प्रधान का है। किसी के द्वारा इसका यथार्थ वर्णन करना सम्भव नहीं है। भौतिक दृष्टि रखने वाला कोई भी व्यक्ति इन ज्योतिर्गणों का प्रमाण और गति का वर्णन नहीं कर सकता। विद्वान केवल आगम (वेद, शास्त्र आदि) से, अनुमान से, प्रत्यक्ष और उपपत्ति द्वारा अपने मन में सावधानी से बुद्धि से विश्लेषण करके समझ सकते हैं। हे श्रेष्ठ मुनियों! ज्योतिमान (ब्रह्मनक्षत्रों) के ठोस ज्ञान का निर्णय चक्षुःशास्त्र, जल, लेख्य, लिखित दस्तावेज (अभिलेख) और गणित (संगणन) इन पाँच साधनों द्वारा हो सकता है।।५९-६३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में ग्रह संख्या का वर्णन नामक इकसठवाँ अध्याय समाप्त॥६१॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

भुवनकोशे ध्रुवसंस्थानवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कथं विष्णोः प्रसादाद्वै ध्रुवो बुद्धिमतां वरः। मेढीभूतो ग्रहाणां वै वक्तुमर्हसि सांप्रतम्॥१॥

सूत उवाच

एतमर्थं मया पृष्टो नानाशास्त्रविशारदः। मार्कण्डेयः पुरा प्राह मह्यं शुश्रूषवे द्विजाः॥२॥

मार्कंडेय उवाच

सार्वभौमो महातेजाः सर्वशस्त्रभृतां वरः। उत्तानपादो राजा वै पालयामास मेदिनीम्॥३॥
तस्य भार्याद्वयमभूत्सुनीतिः सुरुचिस्तथा। अग्रजायामभूत्पुत्रः सुनीत्यां तु महायशाः॥४॥
ध्रुवो नाम महाप्राज्ञः कुलदीपो महामतिः। कदाचित्सप्तवर्षोऽपि पितुरङ्कमुपाविशत्॥५॥
सुरुचिस्तं विनिर्धूय स्वपुत्रं प्रीतिमानसा। न्यवेशयत्तं विप्रेन्द्रा ह्यङ्कं रूपेण मानिता॥६॥
अलब्ध्वा व पितुर्धीमानङ्कं दुःखितमानसः। मातुः समीपमागम्य रुरोद स पुनः पुनः॥७॥

बासठवाँ अध्याय

ध्रुव का संस्थान वर्णन

ऋषिगण बोले

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! विष्णु की कृपा से ध्रुव ग्रहों के मध्य में कैसे स्थान पाये हैं यह अब हम लोगों से कहिए।।१।।

सूत बोले

हे ब्राह्मणों! पहले यह प्रश्न मुझसे पूछा गया था। अनेक शास्त्रों के विशेषज्ञ मार्कण्डेय से मैंने पूछा था। मैं इसको सुनने के लिए इच्छुक था। तो उन्होंने मुझसे जैसे बताया था, उन्हीं के शब्दों में वह इस प्रकार है।।२।।

मार्कण्डेय बोले

सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, महा तेजस्वी, चक्रवर्ती सम्राट उत्तानपाद ने पृथ्वी पर शासन किया।।३।। उनके दो रानियाँ थीं। सुनीति और सुरुचि। एक महा तेजस्वी और महा बुद्धिमान ध्रुव नामक पुत्र बड़ी रानी सुनीति के उत्पन्न हुआ। वह बहुत बुद्धिमान और अपने कुल का दीपक था। वह जब सात वर्ष का बालक था, एक बार अपने पिता की गोद में बैठ गया।।४-५।। हे ब्राह्मणों! अपनी सुन्दरता से अपने को बहुत मानने वाली अभिमानिनी सुरुचि ने ध्रुव को राजा की गोद से उतार दिया और अपने मन में प्रसन्न होकर उसने अपने पुत्र को राजा की गोद में बैठा दिया।।६।। बुद्धिमान बालक ध्रुव अपने पिता की गोद न पाकर वह बहुत दुःखी हुआ। वह अपनी माता के समीप जाकर बार-बार रोने लगा।।७।।

रुदन्तं पुत्रमाहेदं माता शोकपरिप्लुता। सुरुचिर्दयिता भर्तुस्तस्याः पुत्रोपि तादृशः॥८॥
मम त्वं मंदभाग्याया जातः पुत्रोप्यभाग्यवान्। किं शोचसि किमर्थं त्वं रोदमानः पुनः पुनः॥९॥
सन्तप्तहृदयो भूत्वा मम शोकं करिष्यसि।
स्वस्थस्थानं ध्रुवं पुत्र स्वशक्त्या त्वं समाप्नुयाः॥१०॥
इत्युक्तः स तु मात्रा वै निर्जगाम तदा वनम्। विश्वामित्रं ततो दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि॥११॥
उवाच प्रांजलिर्भूत्वा भगवन् वक्तुमर्हसि। सर्वेषामुपरिस्थानं केन प्राप्स्यामि सत्तम॥१२॥
पितुरङ्के समासीनं माता मां सुरुचि र्मुने। व्यधूनयत्स तां राजा पिता नोवाच किंचन॥१३॥
एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मंस्त्रस्तोहं मातरं गतः। सुनीतिराह मे माता माकृथाः शोकमुत्तमम्॥१४॥
स्वकर्मणा परं स्थानं प्राप्तुमर्हसि पुत्रक। तस्या हि वचनं श्रुत्वा स्थानं तव महामुने॥१५॥
प्राप्तो वनमिदं ब्रह्मन्नद्य त्वां दृष्टवान्प्रभो। तव प्रसादात्प्राप्स्येहं स्थानमद्भुतमुत्तमम्॥१६॥
इत्युक्तः स मुनिः श्रीमान्प्रहसन्निदमब्रवीत्। राजपुत्र शृणुष्वेदं स्थानमुत्तममाप्स्यसि॥१७॥
आराध्य जगतामीशं केशवं क्लेशनाशनम्। दक्षिणांगभवं शंभोर्महादेवस्य धीमतः॥१८॥
जप नित्यं महाप्राज्ञ सर्वपापविनाशनम्। इष्टदं परमं शुद्धं पवित्रममलं परम्॥१९॥
ब्रूहि मंत्रमिमं दिव्यं प्रणवेन समन्वितम्। नमोस्तु वासुदेवाय इत्येवं नियतेन्द्रियः॥२०॥
ध्यायन्सनातनं विष्णुं जपहोमपरायणः। इत्युक्तः प्रणिपत्यैनं विश्वामित्रं महायशाः॥२१॥

शोक से भरी हुई माता ने रोते हुए पुत्र से कहा, "सुरुचि अपने पति की बहुत प्यारी है। उसका पुत्र भी उसी तरह है।।८।। तुम मुझ अभागी स्त्री के अभागे पुत्र पैदा हुए हो। तुम क्या सोचते हो। तुम क्यों बार-बार रोते हों।।९।। तुम दुःखी होकर मेरे शोक को बढ़ाओगे। हे मेरे पुत्र! तुम अपनी शक्ति से इससे अधिक सुखदायक और सुदृढ़ स्थान को प्राप्त करो।।१०।।" माता द्वारा ऐसे कहे जाने पर उस समय वह बन को चला गया। वहाँ विश्वामित्र को देखकर विधिपूर्वक हाथ जोड़कर उनको प्रणाम करके उसने कहा, "हे भगवन्! हे श्रेष्ठ मुनि! सबसे ऊपर स्थान मैं कैसे प्राप्त करूँगा; कृपया यह मुझको बतायें।।११-१२।। हे मुनि! मैं पिता की गोद में बैठा था। मेरी सौतेली माँ सुरुचि ने मुंझको उतारकर एक ओर कर दिया। मेरे पिता राजा ने भी कुछ नहीं कहा।।१३।। हे ब्राह्मण! इसी कारण से डरा हुआ मैं माता के पास गया। मेरी माता ने मुझसे कहा, "हे पुत्र दुःख मत करो। तुम अपने कर्म से राजा की गोद से अच्छा ऊँचा स्थान प्राप्त करने के योग्य हो।" हे महामुनि! माता की इस बात को सुनकर मैं इस बन में आया हूँ। हे ब्राह्मण! हे प्रभु! मैंने आपको यहाँ देखा। आपकी कृपा से मैं अद्भुत और उत्तम स्थान प्राप्त करूँगां"।।१४-१६।। इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर महामुनि ने हँसते हुए कहा, "हे राजकुमार! यह सुनो। तुम तीनों लोकों के स्वामी, दुःखों के विनाश करने वाले, शिव के दक्षिण अंग से उत्पन्न भगवान विष्णु की आराधना करके उस स्थान को प्राप्त कर सकोगे। हे महा बुद्धिमान! तुम निरन्तर विष्णु के मन्त्र को जपो। यह महान् शुद्ध और पवित्र है। यह सब पापों को नष्ट करता है और सब कामनाओं को पूरा करता है।।१७-१९।। अपनी इन्द्रियों को वश में करके इस दिव्य मन्त्र को जपो। प्रणव के साथ "नमोस्तु वासुदेवाय" (वासुदेव को नमस्कार) सनातन विष्णु का ध्यान करो। जप और होम में रुचि लो।।२०।।" इस

प्राङ्मुखो नियतो भूत्वा जजाप प्रीतमानसः। शाकमूलफलाहारः संवत्सरमतंद्रितः॥२२॥
जजाप मंत्रमनिशमजस्त्रं स पुनः पुनः। वेताला राक्षसा घोराः सिंहाद्याश्च महामृगाः॥२३॥
तमभ्ययुर्महात्मानं बुद्धिमोहाय भीषणाः। जपन् स वासुदेवेति न किंचित्प्रत्यपद्यत॥२४॥
सुनीतिरस्य या माता तस्या रूपेण संवृता। पिशाची समनुप्राप्ता रुरोद भृशदुःखिता॥२५॥
मम त्वमेकः पुत्रोसि किमर्थं क्लिश्यतेभवान्। मामनाथामपहाय तप आस्थितवानसि॥२६॥
एवमादीनि वाक्यानि भाषमाणां महातपाः। अनिरीक्ष्यैव हृष्टात्मा हरेर्नाम जजाप सः॥२७॥
ततः प्रशेमुः सर्वत्र विघ्नरूपाणि तत्र वै। ततो गरुडमारुह्य कालमेघसमद्युतिः॥२८॥
सर्वदेवैः परिवृतः स्तूयमानो महर्षिभिः। आययौ भगवान्विष्णुः ध्रुवान्तिकमरातिहा॥२९॥
समागतं विलोक्याथ कोसावित्येव चिंतयन्। पिबन्निव हृषीकेशं नयनाभ्यां जगत्पतिम्॥३०॥
जपन् स वासुदेवेति ध्रुवस्तस्थौ महाद्युतिः। शंखप्रांतेन गोविंदः पस्पर्शास्यं हि तस्य वै॥३१॥
ततः स परमं ज्ञानमवाप्य पुरुषोत्तमम्। तुष्टाव प्रांजलिर्भूत्वा सर्वलोकेश्वरं हरिम्॥३२॥

प्रसीद देवदेवेश शंखचक्रगदाधर।
लोकात्मन् वेदगुह्यात्मन् त्वां प्रपन्नोस्मि केशव॥३३॥

न विदुस्त्वां महात्मानं सनकाद्या महर्षयः। तत्कथं त्वामहं विद्यां नमस्ते भुवनेश्वर॥३४॥

प्रकार कहने पर महा यशस्वी बालक ध्रुव ने विश्वामित्र को प्रणाम करके पूर्व की ओर मुँह करके जप प्रारम्भ किया। मन में बहुत प्रसन्न था। उसने निरन्तर रात-दिन एक वर्ष तक मन्त्र का जाप किया। शाक, कंदमूल और फल का आहार करते हुए उसके पास बेताल, राक्षस और भयंकर सिंह आदि बड़े पशु तथा बड़े भयानक जानवर उस महात्मा की बुद्धि को मोहित करने के लिए आये किन्तु वासुदेव का नाम जपते हुए उसने किसी चीज़ पर ध्यान नहीं दिया।।२१-२४।। उसकी माता सुनीति का रूप धारण करके एक पिशाची उसके पास आयी और बहुत दुःखी होकर बुरी तरह रोने लगी।।२५।। "तुम मेरे एक मात्र पुत्र हो! तुम अपने को क्यों यातना दे रहे हो? मुझको अनाथ छोड़कर तपस्या में लग गये हो।" बालक ने अपनी तपस्या को जारी रखा और वैसा कहने वाली उस स्त्री की ओर देखे बिना प्रसन्न हृदय से भगवान विष्णु का नाम लेता रहा।।२६-२७।। उसके बाद सब प्रकार के विघ्न और बाधाएँ वहाँ शान्त हो गयीं। गरुड़ पर सवार होकर कालमेघ की प्रभा वाले सब देवताओं से घिरे और महर्षियों द्वारा स्तुति किये जाते हुए शत्रुहंता भगवान विष्णु ध्रुव के पास आये।।२८-२९।। उनको आए हुए देखकर यह कौन है? ऐसा विचार करते हुए अपने नेत्रों से जगतपति विष्णु को पीते हुए से महा प्रभा वाले ध्रुव शंख के अग्रभाग पर 'नमो वासुदेवाय' जप करते हुए उसके मुख को भगवान विष्णु ने छू लिया।।३०-३१।। उसके बाद उसने सर्वोच्च ज्ञान को प्राप्त किया। उसने विष्णु के सम्मान में सब लोकों के स्वामी विष्णु की स्तुति की।।३२।। "हे देवताओं के प्रमुखों के स्वामी! हे शंख, चक्र, गदा धारण करने वाले! हे त्रिलोक के आत्मा! हे सर्वात्मा! हे वेदों के रहस्यों के आत्मा! हे केशव! मैं तुम्हारी शरण में प्राप्त हूँ।।३३।। सनक आदि महर्षि आपके महान आत्मा को नहीं जान पाये। तब मैं आपको कैसे जान सकता हूँ? हे भुवनेश्वर आप को

तमाह प्रहसन्विष्णुरेहि वत्स ध्रुवो भवान्। स्थानं ध्रुवं समासाद्य ज्योतिषामग्रभुग्भव॥३५॥
मात्रा त्वं सहितस्तत्र ज्योतिषां स्थानमाप्नुहि। मत्स्थानमेतत्परमं ध्रुवं नित्यं सुशोभनम्॥३६॥
तपसाराध्य देवेशं पुरा लब्धं हिशंकरात्। वासुदेवेति यो नित्यं प्रणवेन समन्वितम्॥३७॥
नमस्कारसमायुक्तं भगवच्छब्दसंयुतम्। जपेदेवं हि यो विद्वान्ध्रुवं स्थानं प्रपद्यते॥३८॥
ततो देवाः सगधर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः। मात्रा सह ध्रुवं सर्वे तस्मिन् स्थाने न्यवेशयन्॥३९॥
विष्णोराज्ञां पुरस्कृत्य ज्योतिषां स्थानमाप्तवान्॥
एवं ध्रुवो महातेजा द्वादशाक्षरविद्यया॥४०॥
अवाप महतीं सिद्धिमेतत्ते कथितं मया॥४१॥

सूत उवाच

तस्माद्यो वासुदेवाय प्रणामं कुरुते नरः। स याति ध्रुवसालोक्यं ध्रुवत्वं तस्य तत्तथा॥४२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भुवनकोशे ध्रुवसंस्थानवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

नमस्कार।।३४।।" तब विष्णु ने हँसते हुए ध्रुव से कहा, "हे प्रिय पुत्र! आओ! तुम ध्रुव हो, तुम ध्रुव और दृढ़ निवास ग्रहों के बीच में प्राप्त करो।।३५।। तुम अपनी माता के सहित ग्रहों में अपना स्थान प्राप्त करो। यह स्थान मेरा है। उच्चतम और ध्रुव तथा शोमन स्थान है। मैंने पहले तपस्या द्वारा शंकर की पूजा करके इस स्थान को उनसे प्राप्त किया था।।३६।। वह भक्त जो कि नित्य वासुदेव का नाम प्रणव के साथ भगवत और नमः शब्द जोड़कर जपता है अर्थात् ॐ नमो भगवते वासुदेवाय यह मन्त्र जपता है। वह ध्रुव स्थान को प्राप्त करता है।"।।३७-३८।। तब सब देवता, सिद्ध, मुनि और गन्धर्व लोगों ने उसकी माँ के साथ ध्रुव को उस स्थान पर स्थापित किया। इस प्रकार विष्णु की आज्ञा से ग्रहों के मध्य में उसने अपना निवास प्राप्त किया। द्वादश अक्षर मन्त्र के द्वारा महातेजस्वी ध्रुव ने सबसे बड़ी सिद्धि प्राप्त की।।३९-४१।।

सूत बोले

वह व्यक्ति जो वासुदेव को नमस्कार करता है वह ध्रुव लोक को प्राप्त करके ध्रुव की तरह ध्रुवत्व को प्राप्त करता है।।४२।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में ध्रुव का संस्थान वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त॥६२॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

देवादिसृष्टिकथनम्

ऋषय ऊचुः

देवानां दानवानां च गंधर्वोरगरक्षसाम्। उत्पत्तिं ब्रूहि सूताद्य यथाक्रममनुत्तमम्॥१॥

सूत उवाच

संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते। दक्षात्प्राचेतासादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसंभवा॥२॥
यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगणपन्नगान्। न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः॥३॥
दक्षः पुत्रसहस्राणि पंच सूत्यामजीजनत्। तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः॥४॥
नारदः प्राह हर्यश्वान्दक्षपुत्रान्समागतान्। भुवः प्रमाणं सर्वं तु ज्ञात्वोर्ध्वमध एव च॥५॥
ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुध्वं मुनिसत्तमाः। ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम्॥६॥
अद्यापि न निवर्तंते समुद्रादिव सिंधवः। हर्यश्वेषु च नष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः॥७॥
सूत्यामेव च पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः। शबला नाम ते विप्राः समेताः सृष्टिहेतवः॥८॥
नारदोनुगतान्प्राह पुनस्तान्सूर्यवर्चसः। भुवः प्रमाणं सर्वं तु ज्ञात्वा भ्रातृन् पुनः पुनः॥९॥
आगत्य वाथ सृष्टिं वै करिष्यथ विशेषतः। तेपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातृगतिं तथा॥१०॥

तिरसठवाँ अध्याय

देवादि की सृष्टि का कथन

ऋषिगण बोले

हे सूत जी! देवों, दानवों, गन्धर्वों और राक्षसों की उत्पत्ति आप क्रम से उत्तम विधि से वर्णन करें।।१।।

सूत बोले

प्राचीन जनों की सृष्टि (उत्पत्ति) मन के संकल्प से, प्रत्यक्ष दर्शन और स्पर्श से होती थी। प्रचेतस के पुत्र दक्ष के बाद मैथुन (स्त्री और पुरुष के सम्भोग) से सृष्टि होना प्रारम्भ हुआ।।२।। जब देवों, ऋषियों और सर्पों के गणों (समूहों) की सृष्टि करते हुए जगत की वृद्धि नहीं हुई तो दक्ष ने अपनी सूति से पाँच हजार पुत्रों को पैदा किया। उन महाभाग्य वालों को सृष्टि की रचना में इच्छुक देखकर हर्यश्व आदि आये हुये दक्ष के पुत्रों से नारद ने कहा कि पृथ्वी के ऊपर नीचे का प्रमाण जानकर तब सृष्टि करो। उनकी बातों को सुनकर वे चारों दिशाओं की ओर गये।।३-६।। यहाँ तक कि वे आजतक भी नहीं लौटे। जैसे कि समुद्र में गिर कर नदियाँ नहीं लौटतीं। तब हर्यश्वर के नष्ट (गायब) हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने सूति में ही दूसरे एक हजार पुत्रों को उत्पन्न किया। हे ब्राह्मणों! उनके नाम शबल थे। वे भी अपनी विशिष्ट सृष्टि करने की ओर बढ़े। सूर्य के समान तेजस्वी उन सब को एकत्र देखकर नारद जी ने उनसे कहा, ''पृथ्वी के पूरे प्रमाण (विस्तार) हेतु और अपने भाइयों का पता

ततस्तेष्वपि नष्टेषु षष्टिकन्याः प्रजापतिः। वैरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तदा॥११॥
प्रादात्स दशकं धर्मे कश्यपाय त्रयोदश। विंशत्सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये॥१२॥
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते। द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासां नामानि विस्तरात्॥१३॥
शृणुध्वं देवमातॄणां प्रजाविस्तारमादितः। मरुत्वती वसूर्यामिर्लंवा भानुररुंधती॥१४॥

संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी।
धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान्वदामि वः॥१५॥
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत्।
मरुत्वत्यां मरुत्वंतो वसोस्तु वसवस्तथा॥१६॥

भानोस्तु भानवः प्रोक्ता मुहूर्ताया मुहूर्तकाः। लंबाया घोषनामानो नागवीथिस्तु यामिजः॥१७॥
संकल्पायास्तु संकल्पो वसुसर्गं वदामि वः। ज्योतिष्मंतस्तु ये देवा व्यापकाः सर्वतोदिशम्॥१८॥
वसवस्ते समाख्याताः सर्वभूतहितैषिणः। आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोनलः॥१९॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोष्टौ प्रकीर्तिताः। अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षः सभैरवः॥२०॥
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यंबकश्च सुरेश्वरः। सावित्रश्च जयंतश्च पिनाकी चापराजितः॥२१॥
एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः। कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकम्॥२२॥
अदितिश्च दितिश्चैव अरिष्टा सुरसा मुनिः। सुरभिर्विनता ताम्रा तद्वत् क्रोधवशा इला॥२३॥
कद्रूस्त्विषा दनुस्तद्वत्तासां पुत्रान्वदामि वः। तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यांतरे मनोः॥२४॥

लगाकर तब आकर विशेष सृष्टि करो।'' वे भी उसी मार्ग से भाइयों की गति को प्राप्त हुये।।७-१०।। जब वे भी नष्ट हो गये तो प्रचेतस के पुत्र दक्ष प्रजापति ने वैरिणी में साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं।।११।। उनमें दस कन्याओं का विवाह धर्म से कर दिया। ग्यारह का कश्यप से, सत्ताईस का चन्द्रमा (सोम) से, चार का अरिष्टनेमि से, दो भृगु के पुत्र को, दो का बुद्धिमान कृशाश्व को, दो अंगिरस को विवाह कर के दे दिया। अब देवताओं की माताओं के नाम और उनकी सन्तानों के विवरण आदि से सुनो। धर्म की दस पत्नियाँ—मरुत्वती, वसु, यामि, लवा, भानु, अरुन्धती, संकल्पा, मुहूर्त्ता, साध्या और विश्वा भामिनी थीं। इनके पुत्रों को बताता हूँ।।१२-१५।। विश्वा के विश्वेदेवा उत्पन्न हुये। साध्या के साध्य उत्पन्न हुये। मरुत्वती से मरुत्वान, वसु से वसुगण, भानु से भानव, मुहूर्त्ता से मुहूर्त्तक, लंबा से घोष, यमी से नागवीथि और संकल्प से संकल्प उत्पन्न हुये। मैं वसुओं के सन्तानों को बताऊँगा। वे देवता जो ज्योतिगण और दिशाओं से सम्बद्ध हैं, उनको वसु कहते हैं। वे सब प्राणियों के शुभचिन्तक शुभेच्छु हैं। वे प्रसिद्ध हैं आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। ये आठ वसु कहे गये हैं।।१६-२०।। अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, भैरव, हर, बहुरूप, त्र्यंबक (सुरेश्वर), सावित्र, जयन्त, पिनाकी, अपराजित ये ग्यारह गणेश्वर, रुद्र कहलाते हैं।।२१।। कश्यप की तेरह पत्नियों से उत्पन्न उनके पुत्रों और पौत्रों को बताऊँगा। उनकी पत्नियाँ हैं—अदिति, दिति, अरिष्टा, सुरसा, मुनि, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इला, कद्रू, त्विषा और दनु। इनके पुत्रों के नाम बताता हूँ—देवगण जो तुषित नाम

वैवस्वतांतरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः। इंद्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोथ वरुणोर्यमा॥२५॥
विवस्वान्सविता पूषा अंशुमान् विष्णुरेव च। एते सहस्त्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः॥२६॥
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम्। हिरण्यकशिपुं चैव हिरण्याक्षं तथैव च॥२७॥
दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद्बलदर्पितम्। विप्रचित्तिः प्रधानोभूत्तेषां मध्ये द्विजोत्तमाः॥२८॥

ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुंगवाः।
शुकीं श्येनीं च भासीं च सुग्रीवीं गृध्रिकां शुचिम्॥२९॥
शुकी शुकालूकांश्च जनयामास धर्मतः।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी कुरंगांश्च व्यजीजनत्॥३०॥

गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहंगमान्। हंससारसकारंडप्लवाञ्छुचिरजीजनत्॥३१॥
अजाश्वमेषोष्ट्रखरान् सुग्रीवी चाप्यजीजनत्। विनता जनयामास गरुडं चारुणं शुभा॥३२॥
सौदामिनीं तथा कन्यां सर्वलोकभयंकरीम्। सुरसायाः सहस्त्रं तु सर्पाणामभवत्पुरा॥३३॥
कद्रूः सहस्त्रशिरसां सहस्त्रं प्राप सुव्रता। प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिरनुत्तमाः॥३४॥
शेषवासुकिकर्कोटशंखैरावतकंबलाः । धनंजयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः ॥३५॥
एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः । शंखपालमहाशंखपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः॥३६॥
शंखलोमा च नहुषो वामनः फणितस्तथा। कपिलो दुर्मुखश्चापि पतंजलिरिति स्मृतः॥३७॥
रक्षोगणं क्रोधवशा महामायं व्यजीजनत्। रुद्राणां च गणं तद्वद्गोमहिष्यौ वरांगना॥३८॥
सुरभिर्जनयामास कश्यपादिति नः श्रुतम्। मुनिर्मुनीनां च गुणं गणमप्सरसां तथा॥३९॥

से चाक्षुष मन्वन्तर में थे। वे बारह आदित्य हैं। वैवस्वत मन्वन्तर में हैं। वे बारह आदित्यों के नाम हैं—इन्द्र, धातृ, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान, सविता, पूषा, अंशुमान, विष्णु ये हजार किरणों वाले आदित्य हैं। ये अदिति के पुत्र हैं।।२२-२६।। कश्यप से दिति के दो पुत्र हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष।।२७।। दनु ने कश्यप से सुन्दर एक-सौ पुत्रों को जन्म दिया। वे बड़े शक्तिशाली और वीर थे। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! उनमें से विप्रचित्ति सब से प्रधान हुआ।।२८।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! ताम्रा ने छः कन्याओं को जन्म दिया। शुकी श्येनी, भासी, सुग्रीवा, गृध्निका और शुचि। धर्म से शुकी ने शुकों और उलूकों को जन्म दिया। श्येनी ने श्येनों को और भासी ने कुरंगों को जन्म दिया। गृध्री ने गिद्धों को, कपोतों और पारावतों को जन्म दिया। शुचि ने हंसों, सारसों करोड़ों और प्राणियों तथा अन्य पक्षिओं को जन्म दिया।।२९-३१।। सुग्रीवी ने अजों, अश्वों, मेषों, ऊँटों और गदहों को जन्म दिया। विनता ने गरुण और अरुण को जन्म दिया तथा सब लोकों को भय पहुँचाने वाली सोदामिनी कन्या को जन्म दिया। सुरसा ने हजार सर्पों को जन्म दिया। कद्रू ने हजारों सर वाले सर्पों को जन्म दिया। उनमें से छत्तीस बहुत प्रसिद्ध हुए।।३२-३४।। उनके नाम हैं शेष, वासुकि, कर्कोट, शंख, ऐरावत, कंबल, धनंजय, महानील, पद्म, अश्वतर और तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल, महाशंख, पुष्पदंष्ट्र शुभानन, शंखलोमा,नहुष, वामन, फणित, कपिल, दुर्मुख और पतंजलि।।३५-३७।। क्रोधवशा ने महामायावी राक्षसों को और रुद्रों और गणों को जन्म दिया। श्रेष्ठ महिला सुरभि ने गायों और भैंसों

तथा किंनरगंधर्वानरिष्टाजनयद्बहून्। तृणवृक्षलतागुल्ममिला सर्वमजीजनत्॥४०॥
त्विषा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः। एते तु काश्यपेयाश्च संक्षेपात्परिकीर्तिताः॥४१॥
एतेषां पुत्रपौत्रादिवंशाश्च बहवः स्मृताः। एवं प्रजासु सृष्टासु कश्यपेन महात्मना॥४२॥
प्रतिष्ठितासु सर्वासु चरासु स्थावरासु च। अभिषिच्याधिपत्येषु तेषां मुख्यान्प्रजापतिः॥४३॥
ततो मनुष्याधिपतिं चक्रे वैवस्वतं मनुम्। स्वायंभुवेन्तरे पूर्वे ब्रह्मणा येऽभिषेचिताः॥४४॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता। यथापदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते॥४५॥
स्वायंभुवेन्तरे पूर्वे ब्रह्मणा येऽभिषोचिताः। ते ह्येते चाभिषिच्यंते मनवश्च भवन्ति ते॥४६॥
मन्वंतरेष्वतीतेषु गता ह्येतेषु पार्थिवाः। एवमन्येभिषिच्यन्ते प्राप्ते मन्वन्तरे ततः॥४७॥
अतीतानागताः सर्वे नृपा मन्चन्तरे स्मृताः। एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासंतानकारणात्॥४८॥
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार स पुनस्तपः। पुत्रो गोत्रकरो मह्यं भवतादिति चिंतयन्॥४९॥
तस्यैवं ध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः। ब्रह्मयोगात्सुतौ पश्चात्प्रादुर्भूतौ महौजसौ॥५०॥
वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ। वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च सुमहायशाः॥५१॥
रैभ्यस्य रैभ्या विज्ञेया नैध्रुवस्य वदामि वः। च्यवनस्य तु कन्यायां सुमेधाः समपद्यत॥५२॥
नैध्रुवस्य तु सा पत्नी माता वै कुंडपायिनाम्। आसितस्यैकपर्णाया ब्रह्मिष्ठः समपद्यत॥५३॥

शांडिल्यानां वरः श्रीमान्देवलः सुमहातपाः।
शांडिल्या नैध्रुवा रैभ्यास्त्रयः पक्षास्तु काश्यपाः॥५४॥

को कश्यप से जन्म दिया। ऐसा हमने सुना है। मुनि ने गणों और अप्सराओं को जन्म दिया है। अरिष्टा ने किन्नरों और गन्धर्वों को जन्म दिया। इला ने घासों, वृक्षों, लताओं और गुल्मों को जन्म दिया। त्वषा ने करोड़ों यक्षों और राक्षसों को जन्म दिया। कश्यप की इन संतानों को मैंने संक्षेप में बताया।।३८-४१।। इनके वंश में बहुत से पुत्र पौत्र उत्पन्न हुये। उनके बहुत से वंश हैं। सम्पूर्ण चर और अचर को कश्यप मुनि ने स्थापित किया। प्रजापति ने उनमें से प्रत्येक समूह में अधिपतियों को अभिषेक करके प्रमुख बनाया। उसके बाद उन्होंने वैवस्वत मनु को मनुष्यों का अधिपति बनाया। स्वयंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मा द्वारा पहिले अभिषिप्त किये गये। वे अब भी सात द्वीपों और पर्वतों सहित पृथ्वी पर शासन करते हैं और उनकी रक्षा करते हैं। वे आदेश के अनुसार धर्म से पालन करते हैं।।४२-४५।। केवल वे जिनका अभिषेक पहिले स्वयंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मा द्वारा किया गया था, वे मनु हो गये।।४६।। बीते हुए मन्वन्तरों में वे लोग राजा हुये। इसी प्रकार आगे नये मन्वन्तर आने पर अन्यों का अभिषेक किया जायेगा। भूत काल और भविष्य काल के सब मन्वन्तरों को सब राजाओं को सृष्टि विस्तार के लिए कश्यप ने पैदा करके उन्होंने एक ऐसे पुत्र की कामना से पुनः तपस्या करना प्रारम्भ किया जो कि आध्यात्मिक जीवन जी सके।।४७-४९।। महात्मा कश्यप के इस प्रकार ध्यान करने पर ब्रह्म योग से दो महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम वत्सर और असित थे। वे ब्रह्मवादी थे। वत्सर से नैधुव्र और रैभ्य नामक दो महा यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुये।।५०-५१।। रैभ्य के पुत्र भी ध्रुव कहलाये। अब नैधुव्र के विषय में मैं तुम लोगों को बताऊँगा। व्यवन के

नव प्रकृतयो देवाः पुलस्त्यस्य वदामि वः। चतुर्युगे ह्यतिक्रांते मनोरेकादशे प्रभोः॥५५॥
अर्धावशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे संप्रवर्तिते। मानवस्य नरिष्यन्तः पुत्र आसीद्दमः किल॥५६॥
दमस्य तस्य दायादस्तृणबिंदुरिति स्मृतः। त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह॥५७॥
तस्य कन्या त्विलविला रूपेणाप्रतिमाभवत्। पुलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत्॥५८॥
ऋषिरैरविलो यस्यां विश्रवाः समपद्यत। तस्य पत्न्यश्चतस्त्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्धनाः॥५९॥
बृहस्पतेः शुभा कन्या नाम्ना वै देववर्णिनी। पुष्पोत्कटा बलाका च सुते माल्यवतः स्मृते॥६०॥
कैकसी मालिनः कन्या तासां वै शृणुत प्रजाः। ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्मात्सुषुवे देववर्णिनी॥६१॥
कैकसी चाप्यजनयद्रावणं राक्षसाधिपम्। कुंभकर्णं शूर्पनखां धीमन्तं च विभीषणम्॥६२॥
पुष्पोत्कटा ह्यजनयत्पुत्रांस्तस्माद्द्विजोत्तमाः। महोदरं प्रहस्तं च महापार्श्वं खरं तथा॥६३॥
कुभीनसीं तथा कन्यां बलायाः शृणुत प्रजाः। त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वश्च राक्षसः॥६४॥
कन्या वै मालिका चापि बलायाः प्रसवः स्मृतः। इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा नव॥६५॥

विभीषणोतिशुद्धात्मा धर्मज्ञः परिकीर्तितः।
पुलस्त्यस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्याघ्राश्च दंष्ट्रिणः॥६६॥

भूताः पिशाचाः सर्पाश्च सूकरा हस्तिनस्तथा। वानरा किंनराश्चैव ये च किंपुरुषास्तथा॥६७॥
अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेन्तरे। अत्रेः पत्न्यो दशैवासन् सुंदर्यश्च पतिव्रताः॥६८॥

एक कन्या सुमेधा उत्पन्न हुई। वह नैध्रुव की पत्नी और कुण्डपायियों की माता हुई।।५२-५४।। देवताओं की उत्पत्ति के नौ स्रोत हैं। मैं पुलस्य के वंश का वर्णन करूँगा। चारों युगों के बीतने पर मनु के ग्यारहवें चक्र में आंशिक रूप में बीत जाने पर द्वापर काल का आधा बीतने पर जब मनु स्वामी थे, नरिष्यन्त के एक पुत्र दम मनु की पीढ़ी में उत्पन्न हुआ। त्रेता युग के तीन चौथाई भाग में तृणबिन्दु नामक राजा हुआ जो कि दम का उत्तराधिकारी था। उसकी कन्या इलविला अप्रतिम सुन्दरी थी। राजा ने उसका विवाह पुलस्त्य मुनि से कर दिया।।५५-५८।। इलविला के विश्रवा उत्पन्न हुये जो महर्षि थे। उनकी चार पत्नियाँ पुलस्ति मुनि के परिवार की वृद्धि करने में सहायक हुई।।५९।। बृहस्पति की शुभ कन्या देववर्णिनी पुलस्त्य की पहिली पत्नी थी। माल्यवान को दो पुत्रियों पुष्पोत्कटा और बलाका और माल्यवान की पुत्री कैकसी, पुलस्त्य की अन्य तीन पत्नियाँ थीं। अब इन महिलाओं के संतानों के विषय में सुनो। देववर्णिनी ने ज्येष्ठ पुत्र वैश्रवण को जन्म दिया। कैकसी ने राक्षसों के राजा रावण को कुंभकर्ण, शूर्पणखा और बुद्धिमान विभीषण को जन्म दिया। हे द्विजोत्तमों! पुष्पोत्कटा ने महोदर, प्रहस्त, महापार्श्व, खर पुत्रों और कुंभीनसी नाम की कन्या को जन्म दिया। अब बला की सन्तानों को सुनो। त्रिशिरा, विद्युतजिह्व और दूषण नामक तीन पुत्रों को तथा मालिका नामक कन्या को बला (बलाका) ने जन्म दिया। पुलस्त्य से उत्पन्न बला के ये पुत्र बहुत क्रूर कर्म करने वाले थे। इस प्रकार पुलस्त्य की नौ सन्तानें थी। इनमें से विभीषण शुद्धात्मा और धर्मज्ञ था।।६०-६५।। मृग, टेढ़े दाँत वाले पशु, बाघ, भूत, पिशाच, सर्प, सुअर, हाथी, बानर, किन्नर, यक्ष ये सब पुलस्त्य के पुत्र हैं।। वैनस्वत मन्वन्तर में क्रतु निःसन्तान थे। अत्रि के दस सुन्दर पतिव्रता

भद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः। भद्राभद्रा च जलदा मंदा नंदा तथैव च॥६९॥
बलाबला च विप्रेन्द्रा या च गोपाबला स्मृता। तथा तामरसा चैव वरक्रीडा च वै दश॥७०॥
आत्रेयवंशप्रभवास्तासां भर्ता प्रभाकरः। स्वर्भानुपिहिते सूर्ये पतितेस्मिन्दिवो महीम्॥७१॥
तमोऽभिभूते लोकेस्मिन्प्रभा येन प्रवर्तिता। स्वस्त्यस्तु हि तवेत्युक्ते पतन्निह दिवाकरः॥७२॥
ब्रह्मर्षेर्वचनात्तस्य पपात न विभुर्दिवः। ततः प्रभाकरेत्युक्तः प्रभुरत्रिर्महर्षिभिः॥७३॥
भद्रायां जनयामास सोमं पुत्रं यशस्विनम्। स तासु जनयामास पुनः पुत्रांस्तपोधनः॥७४॥
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः। तेषां द्वौ ख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ च महौजसौ॥७५॥
दत्तो ह्यत्रिवरो ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्य चानुजः। यवीयसी स्वसा तेषाममला ब्रह्मवादिनी॥७६॥
तस्य गोत्रद्वये जाताश्चत्वारः प्रथिता भुवि। श्यावश्च प्रत्वसश्चैव ववल्गुश्चाथ गह्वरः॥७७॥
आत्रेयाणां च चत्वारः स्मृताः पक्षा महात्मनाम्। काश्यपो नारदश्चैव पर्वतोनुद्धतस्तथा॥७८॥
जज्ञिरे मानसा ह्येते अरुंधत्या निबोधत। नारदस्तु वसिष्ठायारुन्धतीं प्रत्यपादयत्॥७९॥
ऊर्ध्वरेता महातेजा दक्षशापात्तु नारदः। पुरा देवासुरे युद्धे घोरे वै तारकामये॥८०॥
अनावृष्ट्या हते लोके ह्युग्रे लोकेश्वरैः सह। वसिष्ठस्तपसा धीमान्धारयामास वै प्रजाः॥८१॥
अन्नोदकं मूलफलमोषधीश्च प्रवर्तयन्। तानेताञ्जीवयामास कारुण्यादौषधेन च॥८२॥
अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु सुतानुत्पादयच्छतम्। ज्यायसोजनयच्छक्तेरदृश्यंती पराशरम्॥८३॥

स्त्रियाँ थीं।।६६-६८।। भद्राश्व से धृताची ने सुन्दर पुत्रियों को जन्म दिया। भद्रा, अभद्रा, जलदा, मंदा, नन्दा, बला, अबला, गोपाबला, तामरसा और वरक्रीड़ा।।६९-७०।। आत्रेय के कुटुम्ब में उत्पन्न इन सब के पति प्रभाकर थे। जब कि राहु ने सूर्य को निगल लिया और वह स्वर्ग से भूमि पर गिर पड़े तो विश्व में अन्धकार व्याप्त हो गया। तब अत्रि ने सर्वत्र प्रभा (प्रकाश) फैलाया। 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर महर्षि पुलस्त्य ऋषि के वचन से सूर्य का नीचे गिरना रुक गया। तब महर्षियों ने पुलस्त्य जी को 'प्रभाकर' कहा।।७१-७३।। पुलस्त्य जी ने भद्रा से सोम नामक यशस्वी पुत्र को उत्पन्न किया। महर्षि ने उन पत्नियों से और भी पुत्र पैदा किये।।७४।। वे स्वस्त्यात्रेय कहलाये। वे वेदों के पारंगत विद्वान ऋषि हुये। उनमें से दो अत्यधिक विख्यात हुये। वे ब्रह्मनिष्ठ और महातेजस्वी हुये।।७५।। दक्ष अत्रि के ज्येष्ठ पुत्र थे। दुर्वासा उनके छोटे भाई थे। उनकी सब से छोटी बहिन अमला थी। वह ब्रह्मवादिनी थी।।७६।। दो गोत्रों में उत्पन्न उनमें से चार जगत में अधिक प्रसिद्ध हुये। वे थे श्याव, प्रत्वस, ववल्गु और गह्वर।।७७।। महान आत्मा आत्रेयों के परिवार के चार पक्ष हैं। काश्यप, नारद, पर्वत और अनुद्धत।।७८।। वे मानस पुत्र थे। अब अरुन्धती के सन्तानों के विषय में सुनो। वसिष्ठ से अरुन्धती ने नारद नामक पुत्र को जन्म दिया। वे महातेजस्वी थे।।७९।। दक्ष के शाप से नारद जी बाध्य होकर ब्रह्मचारी हुये। पहिले जब तारक राक्षस के कारण देवताओं और राक्षसों में भयानक युद्ध हुआ, अकाल के कारण जगत दुःखी हुआ, तब बुद्धिमान वसिष्ठ जी ने अपने तपोबल से लोकेश्वरों (दिग्पालों) के साथ प्राणियों की रक्षा की। उन्होंने करुणावश अन्न, जल, कंदमूल, फल और औषधि उत्पन्न करके उनके द्वारा जन समुदाय (प्राणि मात्र) की रक्षा की।।८०-८२।। अरुन्धती से वसिष्ठ ने सौ पुत्रों को उत्पन्न किया। अरुन्धती ने शक्ति नामक पुत्र को

रक्षसा भक्षिते शक्तौ रुधिरेण तु वै तदा। काली पराशराज्जज्ञे कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्॥८४॥
द्वैपायनो ह्यरण्यां वै शुकमुत्पादयत्सुतम्। उपमन्युं च पीवर्यां विद्धीमे शुकसूनवः॥८५॥
भूरिश्रवाः प्रभुः शंभुः कृष्णो गौरस्तु पंचमः। कन्या कीर्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता॥८६॥
जननी ब्रह्मदत्तस्य पत्नी सा त्वनुहस्य च। श्वेतः कृष्णश्च गौरश्च श्यामो धूम्रस्तथारुणः॥८७॥
नीलो बादरिकश्चैव सर्वे चैते पराशराः। पराशराणामष्टौ ते पक्षाः प्रोक्ता महात्मनाम्॥८८॥
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वमिंद्रप्रमिति संभवम्। वसिष्ठस्य कपिंजल्यो घृताच्यामुदपद्यत॥८९॥
त्रिमूर्तिर्यः समाख्यात इंद्रप्रमितिरुच्यते। पृथोः सुतायां संभूतो भद्रस्तस्याभवद्वसुः॥९०॥
उपमन्युः सुतस्तस्य बहवो ह्यौपमन्यवः। मित्रावरुणयोश्चैव कौण्डिन्या ये परिश्रुताः॥९१॥
एकार्षेयास्तथा चान्ये वासिष्ठा नाम विश्रुताः। एते पक्षा वसिष्ठानां स्मृता दश महात्मनाम्॥९२॥
इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसा विश्रुता भुवि। भर्तारश्च महाभागा एषां वंशाः प्रकीर्तिताः॥९३॥
त्रिलोकधारणे शक्ता देवर्षिकुलसंभवाः। तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोथ सहस्त्रशः॥९४॥
यैस्तु व्याप्तस्त्रयो लोकाः सूर्यस्येव गभस्तिभिः॥९५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे देवादिसृष्टिकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥६३॥

जन्म दिया जो सौ पुत्रों में ज्येष्ठ था। वह पराशर का पिता था।।८३।। रुधिर नामक राक्षस ने शक्ति को निगल (भक्ष) लिया। पराशर से काली ने कृष्णद्वैपायन को उत्पन्न किया। कृष्णद्वैपायन ने अरणी से शुक्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया और पीवरी से उपमन्यु नामक पुत्र को उत्पन्न किया। शुक्र ने पाँच पुत्र उत्पन्न हुये। भूरिश्रवा, प्रभु, शंभु, कृष्ण और पाँचवा गौर, कीर्तिमती नाम की एक पुत्री थी। वह योगिक माता और व्रत के पालन करने में दृढ़ थी। वह अनुह की पत्नी और ब्रह्म दत्त की माता थी। पराशर के श्वेत, कृष्ण, गौर, स्याम, धूम्र, अरुण, नील और वादरिक ये सब पराशर की पीढ़ी के थे। इस प्रकार ये महात्मा पराशर के पक्ष के थे।।८४-८८।। इसके आगे इन्द्र के संतानों को समझो। वसिष्ठ ने धृताची से कपिंजल पुत्र को पैदा किया। जिसको त्रिमूर्ति भी कहते हैं। वह इन्द्रप्रमिति नाम का था। पृथु की पुत्री से भद्र पैदा हुये जिसके पुत्र बसु हुये। उसके पुत्र उपमन्यु हुये। उपमन्यु के बहुत उत्तराधिकारी हुये—मित्र और वरुण। कौडिन्य नाम से प्रसिद्ध लोग मित्र और वरुण के उत्तराधिकारी हैं।।८९-९१।। एकार्षय शीर्षक के अन्य भी है जो वासिष्ठ नाम से जाने जाते हैं। वसिष्ठ के दस उत्तम पुत्र है। इस प्रकार ये ब्रह्मा के दस मानस पुत्र पृथ्वी पर विख्यात हैं। इनके महाभाग्यवाले, भर्त्ताओं के वंशों को मैंने बताया। ये देवर्षि कुल में उत्पन्न हैं और तीनों लोकों का भ्रमण करने में समर्थ हैं। उनके पुत्र और संख्या में सैकड़ों और हजारों हैं जिनसे सूर्य की किरणों के समान तीनों लोक व्याप्त हैं।।९२-९५।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में देवादि की सृष्टि का कथन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त॥६३॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

वासिष्ठकथनम्

ऋषय ऊचुः

कथं हि रक्षसा शक्तिर्भक्षितः सोनुजैः सह। वासिष्ठो वदतां श्रेष्ठ सूत वक्तुमिहार्हसि॥१॥

सूत उवाच

राक्षसो रुधिरो नाम वसिष्ठस्य सुतं पुरा। शक्तिं स भक्षयामास शक्तेः शापात्सहानुजैः॥२॥
वसिष्ठयाज्यं विप्रेन्द्रास्तदा दिश्यैव भूपतिम्। कल्माषपादं रुधिरो विश्वामित्रेण चोदितः॥३॥
भक्षितः स इति श्रुत्वा वसिष्ठस्तेन रक्षसा। शक्तिः शक्तिमतां श्रेष्ठो भ्रातृभिः सह धर्मवित्॥४॥
हा पुत्र पुत्र पुत्रेति क्रंदमानो मुहुर्मुहुः। अरुंधत्या सह मुनिः पपात भुवि दुःखितः॥५॥
नष्टं कुलमिति श्रुत्वा मर्तुं चक्रे मतिं तदा। स्मरन्पुत्रशतं चैव शक्तिज्येष्ठं च शक्तिमान्॥६॥
न तं विनाहं जीविष्ये इति निश्चित्य दुःखितः॥७॥
आरुह्य मूर्धानमजात्मजोसौ तयात्मवान् सर्वविदात्मविच्च।
धराधरस्यैव तदा धरायां पपात पत्न्या सह साश्रुदृष्टिः॥८॥
धराधरात्तं पतितं धरा तदा दधार तत्रापि विचित्रकण्ठी।
करांबुजाभ्यां करिखेलगामिनी रुदन्तमादाय रुरोद सा च॥९॥

चौसठवाँ अध्याय

वासिष्ठकथन

ऋषि गण बोले

रुधिर नामक राक्षक ने कैसे वसिष्ठ के पुत्र शक्ति सहित अनुजों को खा लिया (लील लिया)। हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! सूत जी! यह हम लोगों को बताओ।।१।।

सूत बोले

रुधिर नामक राक्षस ने वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को छोटे भाइयों के साथ वसिष्ठ के यजमान राजा कल्माषपाद के शरीर में विश्वामित्र की प्रेरणा से प्रवेश करके एक शाप के कारण शक्ति को खा लिया (लील लिया)।।२-३।। शक्तिमानों में श्रेष्ठ शक्ति को राक्षसों द्वारा खा लिये जाने का समाचार सुनकर वसिष्ठ जी अरुन्धती के साथ 'हा पुत्र हा पुत्र' कहकर विलाप करने लगे और पृथ्वी पर गिर पड़े।।४-५।। अपने सौ पुत्रों का स्मरण करते हुये जिनमें शक्ति ज्येष्ठ था। अपने कुल का क्षय जान कर ऐसा सोचकर ज्ञानी वसिष्ठ ने मरने का निश्चय किया। उसके बिना मैं न जीऊँगा। ब्रह्मा के पुत्र सर्वज्ञ, आत्मज्ञानी वसिष्ठ जी अरुन्धती को साथ लेकर पहाड़ की चोटी पर चढ़ गये। आँखों में आँसू भरे हुये वे सहसा पहाड़ की पृथ्वी पर गिर पड़े। ज्यों ही वह भूमि पर गिरे पृथ्वी ने शरीर धारण करके गले में विचित्र हार पहने और हाथों के खिलौने जैसी कली अपने दोनों कर कमलों से रोते

तदा तस्य स्नुषा प्राह पत्नी शक्तेर्महामुनिम्। वसिष्ठं वदतां श्रेष्ठं रुदंती भयविह्वला॥१०॥
भगन्ब्राह्मणश्रेष्ठ तव देहमिदं शुभम्। पालयस्व विभो द्रष्टुं तव पौत्रं ममात्मजम्॥११॥
न त्याज्यं तव विप्रेन्द्र देहमेतत्सुशोभनम्। गर्भस्थो मम सर्वार्थसाधकः शक्तिजो यतः॥१२॥
एवमुक्त्वाथ धर्मजा कराभ्यां कमलेक्षणा। उत्थाप्य श्वशुरं नत्वा नेत्रे संमृज्य वारिणा॥१३॥
दुःखितापि परित्रातुं श्वशुरं दुःखितं तदा।
अरुन्धतीं च कल्याणीं प्रार्थयामास दुःखिताम्॥१४॥
स्नुषावाक्यं ततः श्रुत्वा वसिष्ठोत्थाय भूतलात्। संज्ञामवाप्य चालिंग्य सा पपात सुदुःखिता॥१५॥
अरुंधती कराभ्यां तां संस्पृश्यास्त्रकुलेक्षणाम्। रुरोद मुनिशार्दूलो भार्यया सुतवत्सलः॥१६॥
अथ नाभ्यंबुजे विष्णोर्यथा तस्याश्चतुर्मुखः। आसीनो गर्भशय्यायां कुमार ऋचमाह सः॥१७॥
ततो निशम्य भगवान्वसिष्ठ ऋचमादरात्। केनोक्तमिति संचित्य तदातिष्ठत्समाहितः॥१८॥
व्योमांगणस्थोथ हरिः पुंडरीकनिभेक्षणः। वसिष्ठमाह विश्वात्मा घृणया स घृणानिधिः॥१९॥
भो वत्स वत्स विप्रेन्द्र वसिष्ठ सुतवत्सल। तव पौत्रमुखांभोजादृगेषाद्य विनिःसृता॥२०॥
मत्समस्तव पौत्रोसौ शक्तिजः शक्तिमान्मुने। तस्मादुत्तिष्ठ संत्यस्य शोकं ब्रह्मसुतोत्तम॥२१॥
रुद्रभक्तश्च गर्भस्थो रुद्रपूजापरायणः। रुद्रदेवप्रभावेण कुलं ते संतरिष्यति॥२२॥
एवमुक्त्वा घृणी विप्रं भगवान् पुरुषोत्तमः। वसिष्ठं मुनिशार्दूलं तत्रैवान्तरधीयत॥२३॥

हुये वसिष्ठ को पकड़कर वह भी रोने लगी। उसी समय वसिष्ठ क़ी पुत्रवधू शक्ति की पत्नी ने भय से विह्वल होकर रोती हुई ज्ञानी रोते हुये वसिष्ठ जी से कहा"।।६-१०।। हे भगवन्! हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! हे शक्तिमान ऋषि! अपने पौत्र (पोते) को देखने के लिए अपने इस पवित्र देह की रक्षा करो। इसको बचाओ।।११।। हे विप्रेन्द्र! क्यों कि मेरे शरीर के गर्भ में शक्ति का शिशु पुत्र है जो कि सब अर्थों का साधक है। आप अपने इस भव्य शरीर का त्याग न करें"।।१२।। ऐसा कहते हुये धर्म की जानने वाली और कमल के समान नेत्र वाली उस महिला ने अपने श्वसुर को उठा कर और जल से नेत्रों को धोकर, यद्यपि वह स्वयं दुःखित थीं, उसने अरुन्धती से अपने पति को बचाने की प्रार्थना की।।१३-१४।। उसके श्वसुर वसिष्ठ उसकी बातों को सुन कर चैतन्य होकर भूमि से उठ बैठे। अरुन्धती दुःखी बसिष्ठ का आलिंगन करके स्वयं पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसकी आखें आँसुओं से भर गईं और उसके साथ पुण्य प्राणी वसिष्ठ भी रोने लगे।।१५-१६।। इसके बाद विष्णु की नाभि से उत्पन्न ब्रह्मा की भाँति गर्भ में स्थित शिशु ने एक ऋचा को पड़ा। तब वसिष्ठ ने उस ऋचा को आदरपूर्वक सुनकर किसने इस ऋचा को पढ़ा। ऐसा विचार कर एकाग्रचित्त हो कर बैठ गये।।१७-१८।। उसके बाद कमल के समान नेत्र वाले आकाश में स्थित विश्वात्मा कृपानिधि भगवान विष्णु ने कृपापूर्वक व्रशिष्ठ से कहा।।१९।। "हे वत्स! हे वत्स! हे वसिष्ठ! हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! यह पवित्र पद्य अर्थात् ऋचा तुम्हारे कमल के समान मुख वाले, पौत्र के मुख से निकली है।।२०।। हे ऋषि! यह तुम्हारा पौत्र, शक्तिमान शक्ति का पुत्र मुझसे भी बढ़कर है। अतः बह्मा के पुत्रों में उत्तम! शोक को त्याग उठो।।२१।। यह गर्भ में स्थित कुमार रुद्र का भक्त और रुद्र की सेवा में तत्पर होगा। यह रुद्र देव की कृपा से तुम्हारे कुल को तार देगा"।।२२।। इस प्रकार कृपालु भगवान विष्णु

ततः प्रणम्य शिरसा वसिष्ठो वारिजेक्षणम्। अदृश्यंत्या महातेजाः पस्पर्शोदरमादरात्॥२४॥
हा पुत्र पुत्र पुत्रेति पपात च सुदुःखितः। ललापारुंधतीं प्रेक्ष्य तदासौ रुदतीं द्विजाः॥२५॥
स्वपुत्रं च स्मरन् दुःखात्पुनरेह्येहि पुत्रक। तव पुत्रमिमं दृष्ट्वा भो शक्ते कुलधारणम्॥२६॥
तवांतिकं गमिष्यामि तव मात्रा न संशयः॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा रुदन्विप्र आलिंग्यारुंधतीं तदा॥२७॥
पपात ताडयंतीव स्वस्य कुक्षी करेण वै। अदृश्यंती जघानाथ शक्तिजस्यालयं शुभा॥२८॥
स्वोदरं दुःखिता भूमौ ललाप च पपात च। अरुंधती तदा भीता वसिष्ठश्च महामतिः॥२९॥
समुत्थाप्य स्नुषां बालामूचतुर्भयविह्वलौ॥३०॥
विचारमुग्धे तव गर्भमंडलं करांबुजाभ्यां विनिहत्य दुर्लभम्।
कुलं वसिष्ठस्य समस्तमप्यहो निहंतुमार्ये कथमुद्यता वद॥३१॥
तवात्मजं शक्तिसुतं च दृष्ट्वा चास्वाद्य वक्रामृतमार्यसूनोः।
त्रातुं यतो देहमिमं मुनींद्रः सुनिश्चितः पाहि ततः शरीरम्॥३२॥

सूत उवाच

एवं स्नुषामुपालभ्य मुनिं चारुंधती स्थिता। अरुंधती वसिष्ठस्य प्राह चार्तेतिविह्वला॥३३॥
त्वय्येव जीवितं चास्य मुनेर्यत्सुव्रते मम। जीवितं रक्ष देहस्य धात्री च कुरु यद्धितम्॥३४॥

मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठ से कहकर वहीं अन्तर्धाम हो गये।।२३।। महातेजस्वी वसिष्ठ ने कमल के समान नेत्र वाले विष्णु को सादर प्रणाम करके तब उसके उदर को आदरपूर्वक छुआ।।२४।। हे ब्राह्मणों! वह चिल्ला उठे। हे मेरे पुत्र! और अधिक दुःखी होकर भूमि पर गिर पड़े। अरुन्धती की ओर देखकर, जो स्वयं रो रही थी—अपने पुत्र को स्मरण करते हुए दुःख से कहा "हे पुत्र! फिर आओ। फिर हे शक्ति! तुम्हारे पुत्र के जन्म के बाद इस परिवार को कौन सँभालेगा। निसन्देह मैं तुम्हारी माता के साथ तुम्हारे पास आऊँगा।"

सूत बोले

ऐसा कहने के बाद रोते हुए वसिष्ठ ने अरुन्धती को आलिंगन किया। अपने पेट को पीटती हुई वह लगभग गिरने ही वाली थी।२५-२७।। शुभ अदृश्यन्ती देवी ने गर्भ में स्थित शिशु के निवास स्थल अपने उदर को वह पीटती थी और दुःखित होकर रोती चिल्लाती भूमि पर गिर पड़ी। अरुन्धती और वसिष्ठ दोनों अति अधिक डर गये। उन दोनों ने भय से विह्वल होकर कहा। "हे मूर्खे! अपनी योनि गर्भ स्थल को पीटने से वशिष्ठ के परिवार को नष्ट करने की कोशिश क्यों कर रही हो? यह मुझको बताओ। शक्ति से उत्पन्न पुत्र के बालमुख के अमृत का पान करने के लिए मैने अपने शरीर को बचाचे रखने का निश्चय किया है। इसलिए तुम अपने शरीर की रक्षा करो"।।२८-३२।।

सूत बोले

अपनी पुत्र वधू और ऋषि वसिष्ठ को खींचते हुए वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती—यद्यपि बहुत दुःखी और विह्वल थी—उसने कहा, "हे सुव्रते! इस ऋषि का जीवन और मेरा भी जीवन तुम्हारे ऊपर निर्भर है। तुम अपने जीवन की रक्षा करो। जो हम लोगों के लिए हितकर हो एक नर्स (दाई) की तरह अपने शरीर की रक्षा करो।।३३-३४।।

अदृश्यंती उवाच

मया यदि मुनिश्रेष्ठो त्रातुं वै निश्चितं स्वकम्। ममाशुभं शुभं देहं कथंचित्पालयाम्यहम्॥३५॥
प्रियदुःखमहं प्राप्ता ह्यसती नात्र संशयः। मुने दुःखादहं दग्धा यतः पुत्री मुने तव॥३६॥
अहोद्भुतं मया दृष्टं दुःखपात्री ह्यहं विभो। दुःखत्राता भव ब्रह्मन्ब्रह्मसूनो जगद्गुरो॥३७॥
तथापि भर्तृरहिता दीना नारी भवेदिह। पाहि मां तत आर्येन्द्र परिभूता भविष्यति॥३८॥
पिता माता च पुत्राश्च पौत्रा श्वशुर एव च। एते न बांधवाः स्त्रीणां भर्ता बंधुः परा गतिः॥३९॥
आत्मनो यद्धि कथितमप्यर्धमिति पंडितैः। तदप्यत्र मृषा ह्यासीद्गतः शक्तिरहं स्थिता॥४०॥
अहो ममात्र काठिन्यं मनसो मुनिपुंगव। पतिं प्राणसमं त्यक्त्वा स्थिता यत्र क्षणं यतः॥४१॥
वसिष्ठाश्वत्थमाश्रित्य ह्यमृता तु यथा लता।
निर्मूलाप्यमृता भर्त्रात्यक्ता दीना स्थिताप्यहम्॥४२॥
स्नुषा वाक्यं निशम्यैव वसिष्ठो भार्यया सह। तदा चक्रे मतिं धीमान् यातुं स्वाश्रममाश्रमी॥४३॥
कृच्छ्रात्सभार्यो भगवान्वसिष्ठः स्वाश्रमं क्षणात्।
अदृश्यंत्या च पुण्यात्मा संविवेश स चिंतयन्॥४४॥
सा गर्भं पालयामास कथंचिन्मुनिपुंगवाः। कुलसंधारणार्थाय शक्तिपत्नी पतिव्रता॥४५॥

अदृश्यन्ती बोली

"यदि महर्षि ने अपने जीवन की रक्षा करने का निश्चय किया है मैं भी अपने शरीर की रक्षा शुभ या अशुभ (शुद्ध या अशुद्ध) किसी रूप में करूँगी"।।३५।। यह मेरा पाप है जो मै अपने पति के वियोग का दुःख सहन कर रही हूँ। हे मुनि! मैं दुःख से जली हुई हूँ यद्यपि मैं आपकी पुत्रवधू हूँ। मैं दुःख का पात्र हूँ किन्तु मैंने एक आश्चर्य अद्भुत बात को देखा है। हे ब्रह्मा के पुत्र! जगत के गुरु, आप मेरे दुःख के रक्षक बनें।३६-३७।। पति के बिना स्त्री दीन दुःखी रहती है। हे ऋषि! उस स्थिति से मेरी रक्षा करो।।३८।। पिता, माता, पुत्र, पौत्र और यहाँ तक की ससुर भी ऐसी विधवा के लिए असहाय होते हैं। इनमें से कोई भी उसका सच्चा बन्धु नहीं हो सकता है। केवल पति ही ऐसा है जो कि उसका सच्चा बन्धु है और वही उसकी परमगति है।।३९।। पण्डितों ने जो कहा है कि पत्नी पति का आधा अंग होती है, मेरे मामले में यह सत्य नहीं है। मेरे पति शक्ति तो चले गये लेकिन मैं अब भी जीवित हूँ।।४०।। हे श्रेष्ठमुनि! मेरे मन की यह कठिनाई है कि प्राण के समान प्रिय पति को छोड़कर, जो कि मेरा प्राणाधार है—मैं क्षण भर के लिए भी यहाँ जी सकी हूँ।।४१।। हे वशिष्ठ! जैसे एक लता अश्वत्थ वृक्ष के ऊपर चढ़ी हुई, इसकी जड़ों को काट देने पर भी जीवित रहती है, मैं भी अपने पति की मृत्यु के बाद भी दुःखी होकर दीन स्थिति में जीवित हूँ"।।४२।। अपनी पुत्रवधू के इन वाक्यों को सुनकर बुद्धिमान वशिष्ठ मुनि ने अपनी पत्नी के साथ अपने आश्रम को जाने का मन बनाया।।४३।। बड़ी कठिनाई से अपनी पत्नी के साथ पुण्यात्मा भगवान वसिष्ठ ने अदृश्यन्ती को लेकर अपने आश्रम में प्रवेश किया और चिन्तन करना प्रारम्भ किया।।४४।। हे श्रेष्ठ मुनियों! उस शक्ति की पतिव्रता पत्नी ने अपने परिवार और वंश की परम्परा को आगे

ततः सासूत तनयं दशमे मासि सुप्रभम्। शक्तिपत्नी यथा शक्तिं शक्तिमंतमरुंधती॥४६॥
असूत सा दितिर्विष्णुं यथा स्वाहा गुहं सुतम्।
अग्निं यथाराणिः पत्नी शक्तेः साक्षात्पराशरम्॥४७॥
यदा तदा शक्तिसूनुरवतीर्णो महीतले। शक्तिस्त्यक्ता तदा दुःखं पितृणां समतां ययौ॥४८॥
भ्रातृभिः सह पुण्यात्मा आदित्यैरिव भास्करः। रराज पितृलोकस्थो वासिष्ठो मुनिपुंगवाः॥४९॥
जगुस्तदा च पितरो ननृतुश्च पितामहाः। प्रपितामहाश्च विप्रेन्द्रा ह्यवतीर्णे पराशरे॥५०॥
ये ब्रह्मवादिनो भूमौ ननृतुर्दिवि देवताः। पुष्कराद्याश्च ससृजुः पुष्पवर्षं च खेचराः॥५१॥
पुरेषु राक्षसानां च प्रणादं विषमं द्विजाः। आश्रमस्थाश्च मुनयः समूहुर्हर्षसंततिम्॥५२॥
अवतीर्णो यथा ह्यंडाद्भानुः सोपि पराशरः। अदृश्यंत्याश्चतुर्वक्त्रो मेघजालाद्दिवाकरः॥५३॥
सुखं च दुःखमभवददृश्यंत्यास्तथा द्विजाः। दृष्ट्वा पुत्रं पतिं अरुंधत्या मुनेस्तथा॥५४॥
दृष्ट्वा च तनयं बाला पराशरमतिद्युतिम्। ललाप विह्वला बाला सन्नकंठी पपात च॥५५॥
सा पराशरमहो महामतिं देवदानवगणैश्च पूजितम्।
जातमात्रमनघं शुचिस्मिता बुध्य साश्रुनयना ललाप च॥५६॥
हा वसिष्ठसुत कुत्रचिद्गतः पश्य पुत्रमनघं तवात्मजम्।
त्यज्य दीनवदनां वनान्तरे पुत्रदर्शनपरामिमां प्रभो॥५७॥

चलाने के लिए बड़ी कठिनाई से गर्भ में स्थित शिशु की रक्षा कीं। दसवें महीने में शक्ति की पत्नी ने एक शिशु को जन्म दिया। ठीक उसी प्रकार जैसे कि पहले अरुन्धती ने शक्तिमान शक्ति को जन्म दिया था।।४५-४६।। शक्ति की पत्नी ने पराशर को उसी तरह जन्म दिया जैसे अदिति ने विष्णु को, स्वाहा ने गुह को और अरणि ने अग्नि को जन्म दिया था।।४७।। जब पृथ्वी पर शक्ति के पुत्र का अवतार हुआ, शक्ति, ने अपना दुःख त्यागकर पितरों की समता को प्राप्त किया।।४८।। हे श्रेष्ठ मुनियों! जब पराशर ने जन्म लिया, पिता ने गीत गाये। पितामह और प्रपितामह नाचे।।४९।। हे श्रेष्ठ मुनियों! पुण्यात्मा वसिष्ठ आदित्यों के साथ भास्कर की तरह अपने पितरों के साथ पितृ लोक स्थित अपने भाइयों के साथ शोभित हो गये।।५०।। पितृगण जो पृथ्वी पर पहिले ब्रह्मवादी थे और देवता लोगों ने स्वर्ग में नृत्य किया। पुष्कर और अन्य गगनचारियों ने आकाश से फूलों की वर्षा की।।५१।। हे ब्राह्मणों! राक्षसों की नगरियों में अजीब और कष्टकारी शोरगुल हुआ। ऋषियों ने अपने आश्रमों में निरन्तर हर्ष मनाया।।५२।। जैसे कि अण्ड से चतुरानन ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे और बादलों के जाल से सूर्य उत्पन्न होता है, उसी प्रकार पराशर भी अदृश्यन्ती से उत्पन्न हुए।।५३।। अपने पुत्र को देखते हुए और पति का स्मरण करते हुए हे ब्राह्मणों! अदृश्यन्ती ने हर्ष और दुःख दोनों का अनुभव किया। वही दशा वसिष्ठ मुनि और अरुन्धती की भी हुई।।५४।। महान द्युति वाले अपने पुत्र पराशर को देखकर अदृश्यन्ती विह्वल हो गयी। उसका गला भर आया और भूमि पर गिर पड़ी।।५५।। देवताओं और राक्षसों के समूह द्वारा पूजित निष्पाप उत्पन्न पुत्र को देखकर माता ने अनुभव किया कि वह बहुत बुद्धिमान है। आँखों में आँसू भरे हुए वह विह्वल हो गयी।।५६।। "हे वसिष्ठ के पुत्र तुम मुझको छोड़कर कहाँ चले गये हो। अपने पुत्र के निष्पाप मुख को देखो।

शक्ते स्वं च सुतं पश्य भ्रातृभिः सह षण्मुखम्। यथा महेश्वरोपश्यत्सगणो हृषितानन:।।५८।।
अथ तस्यास्तदालापं वसिष्ठो मुनिसत्तमः। श्रुत्वा स्नुषामुवाचेदं मारोदीरिति दुःखितः।।५९।।
आज्ञया तस्य सा शोकं वसिष्ठस्य कुलांगना। त्यक्त्वा ह्यपालयद्बालं बाला बालमृगेक्षणा।।६०।।

दृष्ट्वा तामबलां प्राह मङ्गलाभरणैर्विना।
आसीनामाकुलां साध्वीं बाष्पपर्याकुलेक्षणाम्।।६१।।

शाक्तेय उवाच

अंब मंगलविभूषणैर्विना देहयष्टिरनघे न शोभते।
वक्तुमर्हसि तवाद्य कारणं चंद्रबिंबरहितेव शर्वरी।।६२।।

मातर्मातः कथं त्यक्त्वा मंगलाभरणानि वै। आसीना भर्तृहीनेव वक्तुमर्हसि शोभने।।६३।।
अदृश्यंती तदा वाक्यं श्रुत्वा तस्य सुतस्य सा। न किंचिदब्रवीत्पुत्रं शुभं वा यदि वेतरत्।।६४।।
अदृश्यंतीं पुनः प्राह शाक्तेयो भगवान्मम। मातः कुत्र महातेजाः पिता वद वदेति ताम्।।६५।।
श्रुत्वा रुरोद सा वाक्यं पुत्रस्यातीव विह्वला। भक्षितो रक्षसा तातस्तवेति निपपात च।।६६।।

श्रुत्वा वसिष्ठोपि पपात भूमौ पौत्रस्य वाक्यं स रुदन्दयालुः।
अरुंधती चाश्रमवासिनस्तदा मुनेर्वसिष्ठस्य मुनीश्वराश्च।।६७।।

तुमने वन के बीच में अपने पुत्र को देखने की इच्छा वाली मुझको छोड़ दिया। तुम ही अपने भाइयों के साथ इस कली के समान उत्पन्न निष्पाप पुत्र को देखो।।५७।। हे शक्ति! जैसे कि महेश्वर ने अपने गणों के साथ अपने छः मुख वाले पुत्र के मुख से देखा था उसीप्रकार तुम भी अपने भाइयों के साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्र के मुख को देखो।।५८।। उसके उस प्रकार के दुःख भरे वचनों को सुनकर, मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ दुःखी हुए और अपनी पुत्रवधू से कहा, "मत रो"।।५९।। वसिष्ठ की आज्ञा से उस कुलीन महिला ने अपने शोक को छोड़कर बाल मृग के समान नेत्र वाली उस युवती ने बालक का पालन किया।।६०।। नेत्रों में आँसू भरे हुये, दीन, आभूषणों से रहित दुःखित बैठी हुई अपनी माता को देखकर पराशर ने उससे कहा।।६१।।

शक्ति के पुत्र ने कहा

"हे माता! हे निष्पाप! मंगल आभूषणों के बिना शरीर अच्छा नहीं लगता है। जैसे पूर्ण चन्द्रमा के बिना रात्रि अच्छी नहीं लगती है।।६२।। हे माता! हे माता! हे शोभने! विधवा के समान अपने मंगल सूचक आभूषणों को बिना पहिने तुम यहाँ क्यों बैठी हो? इसका कारण मुझको बताओ।।६३।।" अपने पुत्र की बातों को सुनकर उसकी माता ने उसको अच्छा या बुरा कुछ नहीं बताया।।६४।। पराशर ने अपनी माता से फिर पूछा। "मेरे महातेजस्वी पिता कहाँ हैं? यह तो बताओ। बताओ।।६५।।" पुत्र का प्रश्न सुनकर वह अति विह्वल हो गई और रोने लगी। उसने कहा कि "तुम्हारे पिता को राक्षस ने भक्ष लिया (निगल लिया)।" ऐसा कहकर बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ी।।६६।। दयालु वसिष्ठ भी पौत्र की बात को सुनकर विलाप करते हुये भूमि पर गिर पड़े।

भक्षितो रक्षसा मातुः पिता तव मुखादिति। श्रुत्वा पराशरो धीमान्प्राह चास्राविलेक्षणः॥६८॥

पराशर उवाच

अभ्यर्च्य देवदेवेशं त्रैलोक्यं सचराचरम्। क्षणेन मातः पितरं दर्शयामीति मे मतिः॥६९॥

सा निशम्य वचनं तदा शुभं सस्मिता तनयमाह विस्मिता।
तथ्यमेतदिति तं निरीक्ष्य सा पुत्रपुत्र भवमर्चयेति च॥७०॥

ज्ञात्वा शक्तिसुतस्यास्य संकल्पं मुनिपुंगवः। वसिष्ठो भगवान्प्राह पौत्रं धीमान् घृणानिधिः॥७१॥
स्थाने पौत्रं मुनिश्रेष्ठ संकल्पस्तव सुव्रत। तथापि शृणु लोकस्य क्षयं कर्तुं न चार्हसि॥७२॥
राक्षासानामभावाय कुरु सर्वेश्वरार्चनम्। त्रैलोक्यं शृणु शाक्तेय अपराध्यति किं तव॥७३॥
ततस्तस्य वसिष्ठस्य नियोगाच्छक्तिनंदनः। राक्षसानामभावाय मतिं चक्रे महामतिः॥७४॥
अदृश्यंतीं वसिष्ठं च प्रणम्यारुन्धतीं ततः। कृत्वैकलिंगं क्षणिकं पांसुना मुनिसन्निधौ॥७५॥
संपूज्य शिवसूक्तेन त्र्यंबकेन शुभेन च। जप्त्वा त्वरितरुद्रं च शिवसंकल्पमेव च॥७६॥
नीलरुद्रं च शाक्तेयस्तथा रुद्रं च शोभनम्। वामीयं पवमानं च पंचब्रह्म तथैव च॥७७॥
होतारं लिंगसूक्तं च अथर्वशिर एव च। अष्टांगमर्घ्यं रुद्राय दत्वाभ्यर्च्य यथाविधि॥७८॥

आश्रमवासी मुनिगण और अरुन्धती भी वैसे ही विलाप करने लगे।।६७।। अपनी माता से साक्षात् सीधे सुनकर तुम्हारे पिता को एक राक्षस ने निगल लिया। आँसुओं से पूर्ण नेत्र बुद्धिमान पराशर ने कहा।।६८।।

पराशर बोले

"हे माता! मैं सोचता हूँ कि चर और अचर सहित तीनों लोकों के स्वामी और देवताओं के देवों के भी स्वामी महेश्वर की पूजा के द्वारा एक क्षण में अपने पिता को दिखलाने में मैं समर्थ हो सकता हूँ।।६९।।" पराशर के वचन को सुनकर उनकी माँ विस्मित (आश्चर्य से चकित) हो गई। मुस्कुराते हुये उसने पुत्र की ओर देखा और कहा। "हे पुत्र! यह सत्य है। महेश्वर शिव की पूजा करो।।७०।।" शक्ति के पुत्र का यह प्रस्ताव और निर्णय सुनकर बुद्धिमान, मुनिश्रेष्ठ, कृपानिधि भगवान वसिष्ठ ने पौत्र से कहा।।७१।। "हे मेरे पौत्र! हे सुव्रत! तुम्हारा प्रस्ताव उचित और अनुकूल है। फिर भी सुनो। जगत का विनाश करना उचित नहीं है। तुम राक्षसों से अभय प्राप्ति के लिये शिवजी की पूजा आराधना करो। हे शक्ति पुत्र! तीनों लोकों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो उसके नाश करने को सोच रहे हो।" उसके बाद वसिष्ठ की आज्ञा से शक्ति के पुत्र महाबुद्धिमान पराशर ने अपने विचार को बदलकर राक्षसों से अभय प्राप्ति के लिये शिवार्चन करने का निश्चय किया है।।७२-७४।। पराशर ने अदृश्यन्ती को, वसिष्ठ को और अरुन्धती को प्रणाम किया। मुनि के सामने उसने मृतिका का एक क्षणिक लिंग बनाया। उसने वेदों से शिवसूक्त, त्र्यंबक सूक्त, त्वरितरुद्र, शिवसंकल्प, नीलरुद्र, शाक्तेय, रुद्र, वामीय, पवमान, पंचब्रह्म, होतृसूक्त, लिंग सूक्त और अथर्वशिरस् मन्त्रों द्वारा शिव के उस लिंग की पूजा की। यथाविधि पूजा करने के बाद उसने रुद्र को अष्टांग अर्घ्य दिया।।७५-७८।।

पराशर उवाच

भगवन्नक्षसा रुद्र भक्षितो रुधिरेण वै। पिता मम महातेजा भ्रातृभिः सह शंकर॥७९॥
द्रष्टुमिच्छामि भगवन् पितरं भ्रातृभिः सह। एवं विज्ञापयँल्लिङ्गं प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः॥८०॥
हा रुद्र रुद्ररुद्रेति रुरोद निपपात च। तं दृष्ट्वा भगवान् रुद्रो देवीमाह च शंकरः॥८१॥
पश्य बालं महाभागे बाष्पपर्याकुलेक्षणम्। ममानुस्मरणे युक्तं मदाराधनतत्परम्॥८२॥
सा च दृष्ट्वा महादेवी पराशरमनिन्दिता। दुःखात्संक्लिन्नसर्वाङ्गमस्त्राकुलविलोचनम्॥८३॥
लिंगार्चनविधौ सक्तं हर रुद्रेति वादिनम्। प्राह भर्तारमीशानं शंकरं जगतामुमा॥८४॥
ईप्सितं यच्छ सकलं प्रसीद परमेश्वर। निशम्य वचनं तस्याः शंकरः परमेश्वरः॥८५॥
भार्यामार्यामुमां प्राह ततो हालाहलाशनः। रक्षाम्येनं द्विजं बालं फुल्लेन्दीवरलोचनम्॥८६॥
ददामि दृष्टिं मद्रूपदर्शनक्षम एष वै। एवमुक्तवा गणैर्दिव्यैर्भगवान्नीललोहितः॥८७॥
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैः संवृतः परमेश्वरः। ददौ च दर्शनं तस्मै मुनिपुत्राय धीमते॥८८॥
सोपि दृष्ट्वा महादेवमानन्दास्त्राविलेक्षणः। निपपात च हृष्टात्मा पादयोस्तस्य सादरम्॥८९॥
पुनर्भवान्याः पादौ च नंदिनश्च महात्मनः। सफलं जीवितं मेद्य ब्रह्माद्यांस्तांस्तदाह सः॥९०॥
रक्षार्थमागतस्त्वद्य मम वालेन्दुभूषणः।
कोन्यः समो मया लोके देवो वा दानवोपि वा॥९१॥

पराशर बोले

"हे भगवान रुद्र! हे शंकर! महान तेजस्वी मेरे पिता को उनके भाइयों सहित रुधिर नामक राक्षस ने निगल लिया।।७९।। मैं अपने पिता को उनके भाइयों सहित देखना चाहता हूँ।" इस प्रकार अपनी इच्छा प्रकट करके वह लिंग को बारम्बार प्रणाम करके हा रुद्र! हा रुद्र! कहते हुये रोया और लिंग के आगे गिर पड़ा।। उसकी उस दशा को देख कर शिव ने देवी पार्वती से कहा।।८०-८१।। "हे महाभागे! अश्रुपूरित नेत्रों वाले मेरी आराधना में तत्पर मेरे स्मरण में तल्लीन इस बालक को देखो।।८२।।" पूर्ण शुद्ध महादेवी पार्वती ने दुःख से पूरा शरीर दुर्बल और अश्रु पूरित नेत्र केवल लिंग की पूजा करने के कार्य में तल्लीन रुद्र, रुद्र, उच्चारण करने वाले पराशर को देखा। तब महादेवी तीनों लोकों के स्वामी अपने पति रुद्र से बोलीं।।८३-८४।। "हे परमेश्वर! प्रसन्न हो। इसको मनचाहा अभीष्ट वर दो।" उनके वचन को सुनकर तब विषयापी भगवान शिव ने अपनी श्रीमती भार्या उमा से कहा। "मैं फूले हुये नीलकमल के समान नेत्र वाले इस ब्राह्मण बालक की रक्षा करूँगा।।८५-८६।। "मैं उसको दिव्य दृष्टि दूँगा और उससे यह मेरे किसी भी रूप को देखने में सक्षम हो सकेगा।" ऐसा कहने के बाद भगवान नीललोहित, परमेश्वर दिव्य गणों से घिरे हुए ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, रुद्र और अन्यों ने मुनि के उस बुद्धिमान पुत्र को दर्शन दिया।।८७-८८।। महादेव को देखकर उसकी आँखें प्रसन्नता के आँसू से भर गयीं। वह उनके चरणों पर सादर प्रसन्न होकर गिर पड़ा।।८९।। प्रसन्न आत्मा उसके बाद उसने उमा देवी के चरणों को पकड़ लिया और महात्मा नंदी के चरणों को पकड़ लिया। तब उसने ब्रह्मा और अन्यों से कहा, "मेरा जीवन आज सफल हो गया।।९०।। आज भालचन्द्रधारी महादेवजी मेरी रक्षा के लिए आये। जगत् में मेरी तुलना में

अथ तस्मिन्क्षणादेव ददर्श दिवि संस्थितम्। पितरं भ्रातृभिः सार्धं शाक्तेयस्तु पराशरः॥९२॥
सूर्यमंडलसंकाशे विमाने विश्वतो मुखे। भ्रातृभिः सहितं दृष्ट्वा ननाम च जहर्ष च॥९३॥
तदा वृषध्वजो देवः सभार्यः सगणेश्वरः। वसिष्ठपुत्रं प्राहेदं पुत्रदर्शनतत्परम्॥९४॥

श्रीदेव उवाच

शक्ते पश्य सुतं बालमानन्दास्राविलेक्षणम्। अदृश्यन्तीं च विप्रेन्द्र वसिष्ठं पितरं तव॥९५॥
अरुंधतीं महाभागां कल्याणीं देवतोपमाम्। मातरं पितरं चोभौ नमस्कुरु महामते॥९६॥
तदा हरं प्रणम्याशु देवदेवमुमां तथा। वसिष्ठं च तदा श्रेष्ठं शक्तिर्वै शंकराज्ञया॥९७॥
मातरं च महाभागां कल्याणीं पतिदेवताम्। अरुंधतीं जगन्नाथनियोगात्प्राह शक्तिमान्॥९८॥

वासिष्ठ उवाच

भो वत्सवत्स विप्रेन्द्र पराशर महाद्युते। रक्षितोहं त्वया तात गर्भस्थेन महात्मना॥९९॥
अणिमादिगुणैश्वर्यं मया वत्स पराशर। लब्धमद्याननं दृष्टं तव बाल ममाज्ञया॥१००॥
अदृश्यन्तीं महाभागां रक्ष वत्स महामते। अरुंधतीं च पितरं वसिष्ठं मम सर्वदा॥१०१॥
अन्वयः सकलो वत्स मम संतारितस्त्वया। पुत्रेण लोकाञ्जयतीत्युक्तं सद्भिः सदैव हि॥१०२॥

मेरा मुकाबला कौन कर सकता है। देवता या दानव?"।।९१।। उसके बाद एक क्षण में, शक्ति के पुत्र पराशर ने अपने भाइयों सहित अपने पिता शक्ति को स्वर्ग में खड़े देखा।।९२।। स्वर्ग में अपने भाइयों सहित उनको देखकर सूर्य मण्डल के समान चमचमाते चारों ओर खुले विमान में पिता को प्रणाम किया और प्रसन्न हो गया।।९३।। तब वृषभध्वज भगवान शिव-जो कि अपनी पत्नी उमा और गणेश्वरों के सहित विराजमान थे-उन्हींने शक्ति से कहा जो कि अपने पुत्र को देखने का इच्छुक था।।९४।।

श्री देव बोले

"हे शक्ति! प्रसन्नता के आँसुओं से भरे हुए नेत्र वाले अपने पुत्र को देखो। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! अपने पिता वसिष्ठ को, अपनी पत्नी अदृश्यन्ती को और महाभाग्यशाली कल्याणी देवी से उपमा देने योग्य अपनी माता को देखो। हे बुद्धिमान शक्ति! अपने माता और पिता दोनों को देखो और उनको नमस्कार करो"।।९५-९६।। शंकर जी की आज्ञा पाकर तब शक्ति ने तुरन्त देवों के देव शंकर को, उमा को तथा श्रेष्ठ मुनि वसिष्ठ को और महाभागा भाग्यशालिनी माता अरुन्धती को—जो अपने पति को देवता समान मानती हैं—उसको प्रणाम किया। शंकरजी की आज्ञा से शक्ति ने कहा।।९७-९८।।

वशिष्ठ के पुत्र शक्ति ने कहा

"हे प्रिय पुत्र! हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ महा तेजस्वी पराशर! जब मैं मृत्यु को प्राप्त हुआ तुम गर्भ में थे। तब तुमने मेरी रक्षा की। तुम महात्मा हो।।९९।। हे प्रिय पुत्र, पराशर अणिमा आदि गुणों से युक्त तुम मुझको प्राप्त हुए हो। तुम्हारे मुख को देखकर मैं प्रसन्न हूँ। हे प्रिय वत्स! महान बुद्धिमान मेरी आज्ञा से तुम महा भाग्यशालिनी अदृश्यन्ती और अरुन्धती और मेरे पिता वसिष्ठ की रक्षा करो।।१००-१०१।। हे प्रिय पुत्र! तुमने मेरे सम्पूर्ण

ईप्सितं वरयेशानं जगतां प्रभवं प्रभुम्। गमिष्याम्यभिवंद्येशं भ्रातृभिः सह शंकरम्॥१०३॥
एवं पुत्रमुपामंत्र्य प्रणम्य च महेश्वरम्। निरीक्ष्य भार्यां सदसि जगाम पितरं वशी॥१०४॥
गतं दृष्ट्वाथ पितरं तदाभ्यर्च्यैव शंकरम्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः शाक्तेयः शशिभूषणम्॥१०५॥
ततस्तुष्टो महादेवो मन्मथांधकमर्दनः। अनुगृह्याथ शाक्तेयं तत्रैवांतरधीयत॥१०६॥
गते महेश्वरे सांबे प्रणम्य च महेश्वरम्। ददाह राक्षसानां तु कुलं मंत्रेण मंत्रवित्॥१०७॥
तदाह पौत्रं धर्मज्ञो वसिष्ठो मुनिभिर्वृतः। अलमत्यंतकोपेन तात मन्युमिमं जहि॥१०८॥
राक्षसा नापराध्यन्ति पितुस्ते विहितं तथा। मूढानामेव भवति क्रोधो बुद्धिमतां न हि॥१०९॥
हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतभुक्पुमान्। संचितस्यातिमहता वत्स क्लेशेन मानवैः॥११०॥
यशस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः स्मृतः। अलं हि राक्षसैर्दग्धैर्दीनैरनपराधिभिः॥१११॥
सत्रं ते विरमत्वेतत्क्षमासारा हि साधवः। एवं वसिष्ठवाक्येन शाक्तेयो मुनिपुंगवः॥११२॥
उपसंहृतवान् सत्रं सद्यस्तद्वाक्यगौरवात्। ततः प्रीतश्च भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः॥११३॥
संप्राप्तश्च तदा सत्रं पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः। वसिष्ठेन तु दत्तार्घ्यः कृतासनपरिग्रहः॥११४॥
पराशरमुवाचेदं प्रणिपत्य स्थितं मुनिः। वैरे महति यद्वाक्याद्गुरोरद्याश्रिताक्षमा॥११५॥

वंश को तार दिया। सज्जनों ने सदा यही कहा है कि व्यक्ति अपने पुत्र के द्वारा तीनों लोकों को जीतता है।।१०२।। तीनों लोकों के उत्पत्ति स्रोत, सामने विराजमान शंकर जी से अभीष्ट वर चुनकर माँगो। मैं शंकर जी को प्रणाम करके अपने भाइयों सहित वापस जाता हूँ।।१०३।।" इस प्रकार पुत्र को सलाह देकर और महेश्वर को प्रणाम करके और सभा में अपनी पत्नी को देखकर अपनी इन्द्रियों को वश में करने वाला पितृ लोक को चला गया। अपने पिता को गया हुआ देखकर शंकर की पूजा करने के बाद प्रसन्न करने वाले शब्दों द्वारा पराशर ने उनकी स्तुति की। उसके बाद कामदेव और अंधक के नाशकर्ता महादेव प्रसन्न हो गये। उन्होंने पराशर को आशीर्वाद दिया और वहीं पर अर्न्तधान हो गये। तब मंत्र ज्ञाता पराशर ने मन्त्र से राक्षसों के कुल को जलाना प्रारम्भ किया।।१०४-१०७।। तब धर्मज्ञ वसिष्ठ ऋषियों से घिरे हुए अपने पौत्र से कहा, "हे प्रिय! यह अत्यन्त कोप बन्द करो। इस क्रोध को त्यागो"।।१०८।। राक्षस लोग अपराधी नहीं हैं। तुम्हारे पिता के विषय में ऐसा होना विहित था। बुद्धिमान लोगों में क्रोध नहीं होता है। मूर्ख लोग क्रोधी होती हैं।।१०९।। हे प्रिय पौत्र! कौन किसको मारता है? मनुष्य अपने किये हुए कर्म का फल भोगता है। हे प्रिय पौत्र! क्रोध यंश और तपस्या को नष्ट करता है। दीन और निर्दोष राक्षसों का नाश करना बन्द करो। मनुष्यों द्वारा बहुत क्लेश से और प्रयास से क्रोध को वश में किया जाता है।।११०-१११।। अपने यज्ञ को बन्द करो। सज्जन लोग सदा क्षमाशील होते हैं।" वसिष्ठ मुनि के वाक्यों को सुनकर मुनि श्रेष्ठ पराशर ने तुरन्त राक्षसों के नाशक यज्ञ को बन्द कर दिया। तब श्रेष्ठ मुनि वसिष्ठ जी प्रसन्न हो गये।।११२-११३।। ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य तब सत्र में आये। वसिष्ठ ने उनकी उचित विधि से पूजा की और अर्घ्य देकर आसन पर बैठाया। तब पुलस्त्य ने पराशर से कहा जो कि

त्वया तस्मात्समस्तानि भवाञ्छास्त्राणि वेत्स्यति।
संततेर्मम न च्छेदः क्रुद्धेनापि यतः कृतः॥११६॥
त्वया तस्मान्महाभाग ददाम्यन्यं महावरम्। पुराणसंहिताकर्ता भवान्वत्स भविष्यति॥११७॥
देवतापरमार्थं च यथावद्वेत्स्यते भवान्।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा कर्मणस्तेऽमला मतिः॥११८॥
मत्प्रसादादसंदिग्धा तव वत्स भविष्यति। ततश्च प्राह भगवान्वसिष्ठो वदतां वरः॥११९॥
पुलस्त्येन यदुक्तं ते सर्वमेतद्भविष्यति।
अथ तस्य पुलस्त्यस्य वसिष्ठस्य च धीमतः॥१२०॥
प्रसादाद्वैष्णवं चक्रे पुराणं वै पराशरः। षट्प्रकारं समस्तार्थसाधकं ज्ञानसंचयम्॥१२१॥
षट्साहस्त्रमितं सर्वं वेदार्थेन च संयुतम्। चतुर्थं हि पुराणानां संहितासु सुशोभनम्॥१२२॥
एष वः कथितः सर्वो वासिष्ठानां समासतः। प्रभवः शक्तिसूनोश्च प्रभावो मुनिपुंगवाः॥१२३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वासिष्ठकथनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥६४॥

प्रणाम करके मुनि के पास खड़े थे। ''तुमने बहुत बड़े बैर को गुरु की आज्ञा से क्षमा कर दिया। अतः तुम सब शास्त्रों को जानोगे। क्रोध करने पर भी तुमने मेरे वंश का विनाश करना बन्द कर दिया। अतः हे महाभाग्यवान! मैं तुमको महान् वर देता हूँ। हे पुत्र! तुम पुराण संहिता के संग्रहकर्त्ता होगे।।११४-११७।। तुम देवताओं के सत्य प्रकृति को वास्तविक रूप में समझोगे। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति से निर्मल रहेगी और सब प्रकार के संदेहों से रहित होगी''।।११८।। उसके बाद वक्ताओं में श्रेष्ठ भगवान वसिष्ठ जी ने कहा ''जो कुछ पुलस्त्य ने कहा है यह सब पूर्ण रूप से वैसा ही होगा''।।११९।। तब पुलस्त्य और बुद्धिमान वसिष्ठ की कृपा से पराशर ने वैष्णव पुराण की रचना की। यह छः भागों में है और सब प्रसंग (टापिक) इसमें हैं। यह पुराण ज्ञान का भण्डार है।।१२०-२२१।। इसमें छः हजार श्लोक हैं और यह वैदिक प्रसंगों से युक्त है। यह पुराणों की चौथी संहिता है और सुन्दर है। हे श्रेष्ठ मुनियों! इस प्रकार मैंने वसिष्ठ के वंशों की उत्पत्ति और उनके पुत्र शक्ति के पुत्र पराशर की शक्ति को संक्षेप में बताया।।१२२-१२३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में वाशिष्ठकथन नामक चौसठवाँ अध्याय समाप्त॥६४॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

रुद्रसहस्रनामकथनम्

ऋषय ऊचुः

आदित्यवंशं सोमस्य वंशं वंशविदां वर। वक्तुमर्हसि चास्माकं संक्षेपाद्रोमहर्षण!॥१॥

सूत उवाच

अदितिः सुषुवे पुत्रमादित्यं कश्यपाद्द्विजाः। तस्यादित्यस्य चैवासीद्भार्यात्रयमथापरम्॥२॥
संज्ञा राज्ञी प्रभा छाया पुत्रांस्तासां वदामि वः। संज्ञा त्वाष्ट्री च सुषुवे सूर्यान्मनुमनुत्तमम्॥३॥
यमं च यमुनां चैव राज्ञी रेवतमेव च। प्रभा प्रभातमादित्याच्छायां संज्ञाप्यकल्पयत्॥४॥
छाया च तस्मात्सुषुवे सावर्णिं भास्काराद्द्विजाः। ततः शनिं च तपतीं विष्टिं चैव यथाक्रमम्॥५॥
छाया स्वपुत्राभ्यधिकं स्नेहं चक्रे मनौ तदा। पूर्वोमनुर्न चक्षाम यमस्तु क्रोधमूर्च्छितः॥६॥
संताडयामास रूषा पादमुद्यम्य दक्षिणम्। यमेन ताडिता सा तु छाया वै दुःखिताभवत्॥७॥
छायाशापात्पदं चैकं यमस्य क्लिन्नमुत्तमम्। पूयशोणितसंपूर्णं कृमीणां निचयान्वितम्॥८॥
सोपि गोकर्णमाश्रित्य फलकेनानिलाशनः। आराधयन्महादेवं यावद्वर्षायुतायुतम्॥९॥
भवप्रसादादागत्य लोकपालत्वमुत्तमम्। पितॄणामाधिपत्यं तु शापमोक्षं तथैव च॥१०॥

पैसठवाँ अध्याय

रुद्र के सहस्र नाम

ऋषिगण बोले

हे लोमहर्षण! वंश के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ! हम लोगों को आप आदित्य वंश (सूर्य वंश) और सोमवंश (चन्द्रवंश) का वर्णन संक्षेप में सुनायें।।१।।

सूत बोले

हे ब्राह्मणों! कश्यप से अदिति ने आदित्य नामक पुत्र को उत्पन्न किया। आदित्य के एक मुख्य भार्या थी तथा तीन और पत्नियाँ थीं।।२।। संज्ञा, राज्ञी, प्रभा और छाया। उनके पुत्रों का वर्णन करता हूँ। त्वष्टि की पुत्री संज्ञा ने अदिति से मनु नामक उत्तम पुत्र को पैदा किया। राज्ञी ने यम, यमुना और रेवत को जन्म दिया। प्रभा ने आदित्य से प्रभात, संज्ञा ने छाया को जन्म दिया। छाया ने सावर्णि, शनि, तप्ति और विष्टि को जन्म दिया।।३-५।। छाया अपने पुत्रों से अधिक मनु को प्यार करती थी। यम इसको सहन नहीं करते थे। वह बहुत क्रोध से मूर्छित हो गये। उन्होंने क्रोध से दाहिने पैर से छाया को ठोकर मार दी। इससे छाया बहुत दुःखित हुई।।६-७।। छाया के श्राप से यम का एक स्वस्थ पैर खराब हो गया। वह दूषित रक्त और कीड़ों से ग्रस्त हो गया।।८।। वह गोकर्ण गये। वहाँ एक पटरे पर तैरते हुए केवल वायु भक्षण करते हुए दस हजार वर्ष तक महादेव की आराधना की।।९।। भव की कृपा से उन्होंने दक्षिण दिशा के लोकपाल, पितृ गणों के स्वामित्व और

लब्धवान्देवदेवस्य प्रभावाच्छूलपाणिनः। असहंती पुरा भानोस्तेजोमयमनिंदिता॥११॥
रूपं त्वाष्ट्री स्वदेहात्तु छायाख्यां सा त्वकल्पयत्।
वडवारूपमास्थाय तपस्तेपे तु सुव्रता॥१२॥
कालात्प्रयत्नतो ज्ञात्वा छायां छायापतिः प्रभुः। वडवामगमत्संज्ञामश्वरूपेण भास्करः॥१३॥
वडवा च तदा त्वाष्ट्री संज्ञा तस्माद्दिवाकरात्। सुषुवे चाश्विनौ देवौ देवानां तु भिषग्वरौ॥१४॥
लिखितो भास्करः पश्चात्संज्ञापित्रा महात्मना। विष्णोश्चक्रं तु यद्घोरं पंडलाद्भास्करस्य तु॥१५॥
निर्ममे भगवांस्त्वष्टा प्रधानं दिव्यमायुधम्। रुद्रप्रसादाच्च शुभं सुदर्शनमिति स्मृतम्॥१६॥
लब्धवान् भगवांश्चक्रं कृष्णः कालाग्निसन्निभम्।
मनोस्तु प्रथमस्यासन्नव पुत्रास्तु तत्समाः॥१७॥
इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्णुः शर्यातिरेव च। नरिष्यंतश्च वै धीमान् नाभागोरिष्ट एव च॥१८॥
करूषश्च पृषघ्नश्च नवैते मानवाः स्मृताः। इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च पुंस्त्वं प्राप च या पुरा॥१९॥
सुद्युम्न इति विख्याता पुंस्त्वं प्राप्ता त्विला पुरा। मित्रावरुणयोस्त्वत्र प्रसादान्मुनिपुंगवाः॥२०॥
पुनः शरवणं प्राप्य स्त्रीत्वं प्राप्तो भवाज्ञया। सुद्युम्नो मानवः श्रीमान् सोमवंशप्रवृद्धये॥२१॥
इक्ष्वाकोरश्वमेधेन इला किंपुरुषोऽभवत्। इला किंपुरुषत्वे च सुद्युम्न इति चोच्यते॥२२॥
मासमेकं पुमान्वीरः स्त्रीत्वं मासमभूत्पुनः। इला बुधस्य भवनं सोमपुत्रस्य चाश्रिता॥२३॥

श्राप से मुक्ति प्राप्त किया। देवताओं के देवता भगवान शिव के प्रभाव से यह सब उन्होंने प्राप्त किया।।१०-११।। पहले त्वष्टि की शुभ कन्या ने सूर्य के तेज को सहन करती हुई अपने शरीर को दूसरी स्त्री के रूप में बदल दिया। उस सुव्रता ने एक घोड़ी का रूप धारण किया और तपस्या की।।१२।। कुछ समय बीत जाने के बाद छाया के पति सूर्य ने बहुत प्रयत्न के बाद यह जानकर उस घोड़ी रूपधारिणी से उन्होंने अश्व रूप धारण करके रमण किया।।१३।। इस प्रकार त्वष्टि की कन्या संज्ञा—जो घोड़ी के रूप में थी—देवताओं के वैद्य जुड़वाँ पुत्र आश्वनि कुमार को पैदा किया।।१४।। उसके बाद संज्ञा के पिता ने सूर्य को लिखित दिया। यह सूर्य का चक्र था। वह विष्णु का भयानक गदा उनका दिव्य अस्त्र था जो कि त्वष्टि द्वारा विकसित किया गया था। भगवान कृष्ण ने उस सुदर्शन चक्र को प्राप्त किया जो कि कालाग्नि के समान चमक में था।।१५-१६।। प्रथम मनु अर्थात् संज्ञा से उत्पन्न पुत्र के उन्हीं के समान तेजस्वी नौ पुत्र पैदा हुए। उनके नाम इक्ष्वाकु, नभग, धृष्णु, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, करुष और पृषघ्न थे। वे मनु के पुत्र होने के कारण मानव कहलाये।।१७-१९।। पहले उनकी ज्येष्ठ और वरिष्ठ कन्या इला जो किंपुरुष हो गयी अर्थात् नारी से लिंग परिवर्तन हो गया। पुरुष होने पर वह सुद्युम्न नाम से प्रसिद्ध हुई। हे मुनियों में श्रेष्ठ लोगों! यह मित्र और वरुण की कृपा से हुआ। शिव की आज्ञा से वह फिर स्त्री हो गयी। उसका नाम मनु के प्रतापी पुत्र सुद्युम्न से सोम वंश का विस्तार हुआ।।२०-२१।। इक्ष्वाकु के अश्वमेघ के समय इला किंपुरुष हो गयी। किंपुरुष होने पर भी वह सुद्युम्न नाम से पुकारी जाती रही। वह बुद्धिमान था और सोमवंश का वर्द्धक था।।२२।। तब वह एक मास के बाद फिर पुरुष

बुधेनांतरमासाद्य मैथुनाय प्रवर्तिता। सोमपुत्राद्बुधाच्चापि ऐलो जज्ञे पुरूरवाः॥२४॥
सोमवंशाग्रजो धीमान्भवभक्तः प्रतापवान्। इक्ष्वाकोर्वंशविस्तारं पश्चाद्वक्ष्ये तपोधनाः॥२५॥
पुत्रत्रयमभूत्तस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः। उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वस्तथैव च॥२६॥
उत्कलस्योत्कलं राष्ट्रं विनताश्वस्य पश्चिमम्। गया गयस्य चाख्याता पुरी परमशोभना॥२७॥
सुराणां संस्थितिर्यस्यां पितॄणां च सदा स्थितिः। इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्॥२८॥
कन्याभावाच्च सुद्युम्नो नैव भागमवाप्तवान्। वसिष्ठवचनात्त्वासीत्प्रतिष्ठाने महाद्युतिः॥२९॥
प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य महात्मनः। तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः॥३०॥
मानवेयो महाभागः स्त्रीपुंसोर्लक्षणन्वितः। इक्ष्वाकोरभवद्वीरो विकुक्षिर्धर्मवित्तमः॥३१॥

ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्दश पंच च तत्सुताः।
अभूज्ज्येष्ठः ककुत्स्थश्च ककुत्स्थात्तु सुयोधनः॥३२॥

ततः पृथुर्मुनिश्रेष्ठा विश्वकः पार्थिवस्तथा। विश्वकस्यार्द्रको धीमान्युवनाश्वस्तु तत्सुतः॥३३॥
शाबस्तिश्च महातेजा वंशकस्तु ततोभवत्। निर्मिता येन शाबस्ती गौडदेशे द्विजोत्तमाः॥३४॥
वंशाश्च बृहदश्वोभूत्कुवलाश्वस्तु तत्सुतः। धुंधुमारत्वमापन्नो धुंधुं हत्वा महाबलम्॥३५॥
धुंधुमारस्य तनयास्त्रयस्त्रैलोक्यविश्रुताः। दृढाश्वश्चैव चंडाश्वः कपिलाश्वश्च ते स्मृताः॥३६॥
दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य वै सुतः। हर्यश्वस्य निकुंभस्तु संहताश्वस्तु तत्सुतः॥३७॥

हो गये। इला सोम के पुत्र बुध के घर में आश्रित हुई। अवसर पाकर उसने बुध के साथ सम्भोग किया और दोनों के पुरुरवा नामक पुत्र पैदा हुआ।।२३-२४।। वह सोम वंश में प्रथम प्रतापी और बुद्धिमान पुत्र था। हे ऋषियों! अब मैं इक्ष्वाकु वंश के विस्तार का वर्णन करूँगा।।२५।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! सुद्युम्न के तीन पुत्र हुए उत्कल, गय और विनताश्व।।२६।। उत्कल को उत्कल राष्ट्र प्राप्त हुआ। विनताश्व को पश्चिमी प्रदेश दिया गया। सुन्दर पुरी गया गय नामक पुत्र को प्राप्त हुई।।२७।। गया में देवता और पितृगण की स्थिति सदा रहती है। भाइयों में श्रेष्ठ इक्ष्वाकु ने मध्य देश को प्राप्त किया।।२८।। धर्मराज महात्मा यशस्वी सुद्युम्न स्त्री प्रकृति के होने से वह अपना भाग नहीं पा सके किन्तु वसिष्ठ के निर्देश पर वह प्रतिष्ठान में एक प्रतापी और धार्मिक राजा के रूप में स्थापित हुए। राज्य प्राप्त होने के बाद स्त्री और पुरुष दोनों के लक्षणों से युक्त मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के वीर ज्येष्ठ पुत्र धर्म के ज्ञाताओं के श्रेष्ठ विकुक्षि के सौ पुत्र हुए। उनके पचास पुत्र हुए उनमें सबसे बड़े (ज्येष्ठ) ककुत्स्थ थे। उनसे सुयोधन नामक पुत्र पैदा हुआ।।२९-३२।। हे श्रेष्ठ मुनियों! राजा पृथु के विश्वक और पार्थिव उत्पन्न हुए। विश्वक का पुत्र आर्द्रक था। युवनाश्व उनका पुत्र हुआ।।३३।। उसके बाद उसने गौड़ देश में श्रावस्ती नगरी को बनाया।।३४।। बृहदाश्व का पुत्र वंशक था। कुवलाश्व उसका पुत्र था। धुन्ध को मारकर उस महाबली ने धुन्धमार नाम प्राप्त हुआ।।३५।। तीनों लोकों में विख्यात तीन पुत्र धुन्धमार के हुए। उनके नाम दृढाश्व, चण्डाश्व, कपिलाश्व हुए।।३६।। दृडाश्व का पुत्र प्रमोद था। उसका पुत्र हर्यश्व था। हर्यश्व का पुत्र

कृशाश्वोथ रणाश्वश्च संहताश्वात्मजावुभौ। युवनाश्वो रणाश्वस्य मांधाता तस्य वै सुतः॥३८॥
मांधातुः पुरुकुत्सोभूदंबरीषश्च वीर्यवान्। मुचुकुंदश्च पुण्यात्मा त्रयस्त्रैलोक्यविश्रुताः॥३९॥
अंबरीषस्य दायादो युवानाश्वोपरः स्मृतः। हरितो युवनाश्वस्य हरितास्तु यतः स्मृताः॥४०॥
एते ह्यंगिरसः पक्षे क्षत्रोपेता द्विजातयः। पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसद्दस्युर्महायशाः॥४१॥
नर्मदायां समुत्पन्नः संभूतिस्तस्य चात्मजः।
विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य विष्णुवृद्धा यतः स्मृताः॥४२॥
एते ह्यंगिरसः पक्षे क्षत्रोपेताः समाश्रिताः। संभूतिरपरं पुत्रमनरण्यमजीजनत्॥४३॥
रावणेन हतो योऽसौ त्रैलोक्यविजये द्विजाः। बृहदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तस्य चात्मजः॥४४॥
हर्यश्वात्तु दृषद्वत्यां जज्ञे वसुमना नृपः। तस्य पुत्रोभवद्राजा त्रिधन्वा भवभावितः॥४५॥
प्रसादाद्ब्रह्मसूनोर्वै तंडिनः प्राप्य शिष्यताम्। अश्वमेधसहस्त्रस्य फलं प्राप्य तदाज्ञया॥४६॥
गणैश्वर्यमनुप्राप्तो भवभक्तः प्रतापवान्। कथं चैवाश्वमेधं वै करोमीति विचिंतयन्॥४७॥
धनहीनश्च धर्मात्मा दृष्टवान् ब्रह्मणः सुतम्। तंडिसंज्ञं द्विजं तस्माल्लब्धवान्द्विजसत्तमाः॥४८॥
नाम्नां सहस्त्रं रुद्रस्य ब्रह्मणा कथितं पुरा। तेन नाम्नां सहस्त्रेण स्तुत्वा तण्डिर्महेश्वरम्॥४९॥
लब्धवान्गाणपत्यं च ब्रह्मयोनिर्द्विजोत्तमः। ततस्तस्मान्नृपो लब्ध्वा तण्डिना कथितं पुरा॥५०॥

निकुम्भ था। उसका पुत्र सहताश्व था।।३७।। संहताश्व के कृशाश्व और रणाश्व नामक दो पुत्र हुए। रणाश्व का पुत्र युवनाश्व था और उसका पुत्र मान्धाता था।।३८।। मान्धाता के तीनों लोकों में प्रसिद्ध तीन पुत्र हुए। उनके नाम पुरुकुत्स, प्रतापी अंबरीष और पुण्यात्मा पुचकुंद हुए।।३९।। अंबरीष का उत्तराधिकारी युवनाश्व द्वितीय हुआ। युवनाश्व का पुत्र हरित हुआ। उसी से हरित वंश प्रारम्भ हुआ। ये सब अंगिरा के वंश के ब्राह्मण थे किन्तु अपने स्वभाव में वे क्षत्रिय थे। पुरुकुत्स का उत्तराधिकारी प्रसिद्ध त्रसद्दस्यु था। उससे नर्मदा में संभूति पुत्र हुआ। उसका पुत्र विष्णुवृद्ध हुआ। उसके बाद उसके वंशज विष्णुवृद्धा के नाम से प्रसिद्ध हुए।।४०।। ये सब भी अंगिरा के वंश में ब्राह्मण थे किन्तु वे व्यवहार रूप में क्षत्रिय गुण से युक्त थे। सम्भूति का दूसरा पुत्र अनरण्य था।।४१-४३।। हे ब्राह्मणों! तीनों लोकों की विजय में अनरण्य रावण द्वारा मारा गया। अनरण्य का पुत्र वृहदश्व हुआ।।४४।। और उसकी पत्नी दृषद्वती हर्यश्व और दृषद्वती से वसुमना नामक राजा उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र शिव का भक्त त्रिधन्वा नामक राजा हुआ।।४५।। वह ब्रह्मा के पुत्र तंडिन का शिष्य हो गया। उनकी आज्ञा से उसने हजार अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त किया। उनके आदेश से उस प्रतापी शिव के भक्त राजा ने गणों के स्वामी का पद प्राप्त किया।।४६।। अन्त में उसके पास धन नहीं था। उस धर्मात्मा ने इस पर विचार करना प्रारम्भ किया कि, "मैं अश्वमेघ यज्ञ कैसे करूँ" हे उत्तम ब्राह्मणों! तब उसने ब्रह्मा के पुत्र तंडिन से भेंट की और उनसे भगवान रुद्र के सहस्त्र नाम को प्राप्त किया। इन सहस्त्र नामों के द्वारा भगवान शिव की तंडिन ने प्रार्थना की। तब उस महान ब्राह्मण ब्रह्मा से पुत्र तंडिन ने गणाधिप पद प्राप्त किया। उसके बाद तंडिन द्वारा बताए गये सहस्त्र नाम के जप से राजा ने भी गणाधिपति का पद प्राप्त किया।।४७-५०।।

ऋषय ऊचुः

नाम्नां सहस्त्रं रुद्रस्य तंडिना ब्रह्मयोनिना॥५१॥

कथितं सर्ववेदार्थसंचयं सूत सुव्रत। नाम्नां सहस्त्रं विप्राणां वक्तुमर्हसि शोभनम्॥५२॥

सूत उवाच

सर्वभूतात्मभूतस्य हरस्यामिततेजसः। अष्टोत्तरसहस्त्रं तु नाम्नां शृणुत सुव्रताः॥५३॥

यज्जप्त्वा तु मुनिश्रेष्ठा गाणपत्यमवाप्तवान्।

ॐ स्थिरः स्थाणुः प्रभुर्भानुः प्रवरो वरदो वरः॥५४॥

सर्वात्मा सर्वविख्यातः सर्वः सर्वकरो भवः। जटी दंडी शिखंडी च सर्वगः सर्वभावनः॥५५॥

हरिश्च हरिणाक्षश्च सर्वभूतहरः स्मृतः। प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च शांतात्मा शाश्वतो ध्रुवः॥५६॥

श्मशानवासी भगवान्खचरो गोचरोर्दनः। अभिवाद्यो महाकर्मा तपस्वी भूतधारणः॥५७॥

उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नः सर्वलोकः प्रजापतिः। महारूपो महाकायः सर्वरूपो महायशाः॥५८॥

महात्मा सर्वभूतश्च विरूपो वामनो नरः।

लोकपालोऽन्तर्हितात्मा प्रसादोऽभयदो विभुः॥५९॥

पवित्रश्च महांश्चैव नियतो नियताश्रयः। स्वयंभूः सर्वकर्मा च आदिरादिकरो निधिः॥६०॥

सहस्त्राक्षो विशालाक्षः सोमो नक्षत्रसाधकः। चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्मतः॥६१॥

राजा राज्योदयः कर्ता मृगबाणर्पणो घनः। महातपा दीर्घतपा अदृश्यो धनसाधकः॥६२॥

संवत्सरः कृती मंत्रः प्राणायामः परंतपः। योगी योगो महाबीजो महारेता महाबलः॥६३॥

ऋषिगण बोले

हे सूत! हे सुव्रत! ब्रह्मा के पुत्र तंडिन द्वारा बताए गये भगवान रुद्र के सहस्त्रनाम सब वैदिक ग्रन्थों के अर्थों का उत्तम संग्रह है। आप हम लोगों को उन उत्तम सहस्त्रनामों को बताइए।।५१-५२।।

सूत बोले

हे सुव्रत! संब प्राणियों की आत्मा, अमित तेज रुद्र के एक हजार आठ नामों को सुनिये जिसको जपकर श्रेष्ठ गणों का स्वामित्व (गाणपत्य पद) प्राप्त कर लिया।।५३।।

रुके सहस्त्र नाम—स्थिर, स्थाणु, प्रभु, भानु, प्रवर, वरद, वर, सर्वात्मा, सर्व विख्यात, सर्व, सर्वकर, भव, जटी, दण्डी, शिखण्डी, सर्वग, सर्वभावन, हरि, हरिणाक्ष, सर्वभूतहर, स्मृत, प्रवृत्ति, निवृत्ति, शांतात्मा, शाश्वत, ध्रुव, श्मशानवासी, भगवान, खेचर, गोचर, अर्दन, अभिवाद्य, महाकर्मा, तपस्वी, भूतधारण, उन्मत्तवेश, प्रच्छन्न, सर्वलोक, प्रजापति, महारूप, महाकाय, सर्वरूप, महायश, महात्मा, सर्वभूत, विरूप, वामन, नर, लोकपाल, अन्तर्हितात्मा, प्रसाद, अभयद, विभु, पवित्र, महान, नियत, नियताश्रय, स्वयम्भू, सर्वकर्मा, आदि, आदिकर, निधि।।५४-६०।। सहस्त्राक्ष, विशालाक्ष, सोम, नक्षत्रसाधक, चन्द्र, सूर्य, शनि, केतु, ग्रह, ग्रहपति, मत, राजन, राज्योदय, कर्त्ता, मृगबाणार्पण, धन, महातपा, दीर्घतपा, अदृश्य, धनसाधक, संवत्सर, कृती, मन्त्र, प्राणायाम,

सुवर्णरेताः सर्वज्ञः सुबीजो वृषवाहनः। दशबाहुस्त्वनिमिषो नीलकंठ उमापतिः॥६४॥
विश्वरूपः स्वयंश्रेष्ठो बलवीरो बलाग्रणीः। गणकर्ता गणपतिर्दिग्वासाः काम्य एव च॥६५॥
मंत्रवित्परमो मंत्रः सर्वभावकरो हरः। कमंडलुधरो धन्वी बाणहस्तः कपालवान्॥६६॥
शरी शतघ्नी खड्गी च पट्टिशी चायुधी महान्। अजश्च मृगरूपश्च तेजस्तेजस्करो विधिः॥६७॥
उष्णीषी च सुवक्त्रश्च उदग्रोविनतस्तथा। दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्ण एव च॥६८॥
शृगालरूपः सर्वार्थो मुंडः सर्वशुभंकरः। सिंहशार्दूलरूपश्च गंधकारी कपर्द्यपि॥६९॥
ऊर्ध्वरेतोर्ध्वलिङ्गी च ऊर्ध्वशायी नभस्तलः। त्रिजटी चीरवासाश्च रुद्रः सेनापतिर्विभुः॥७०॥
अहोरात्रं च नक्तं च तिग्ममन्युः सुवर्चसः। गजहा दैत्यहा कालो लोकधाता गुणाकरः॥७१॥
सिंहशार्दूलरूपाणामार्द्रचर्मांबरंधरः। कालयोगी महानादः सर्वावासश्चतुष्पथः॥७२॥
निशाचरः प्रेतचारी सर्वदर्शी महेश्वरः। बहुभूतो बहुधनः सर्वसारोऽमृतेश्वरः॥७३॥
नृत्यप्रियो नित्यनृत्ये नर्तनः सर्वसाधकः। सकार्मुको महाबाहुर्महाघोरो महातपाः॥७४॥
महाशरो महापाशो नित्यो गिरिचरो यतः। सहस्रहस्तो विजयो व्यवसायो ह्यनिन्दितः॥७५॥
अमर्षणो मर्षणात्मा यज्ञहा कामनाशनः। दक्षहा परिचारी च प्रहसो मध्यमस्तथा॥७६॥
तेजोपहारी बलवान्विदितोऽभ्युदितो बहुः। गंभीरघोषो योगात्मा यज्ञहा कामनाऽशनः॥७७॥
गंभीररोषो गंभीरो गंभीरबलवाहनः। न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधो विश्वकर्मा च विश्वभुक्॥७८॥
तीक्ष्णोपायश्च हर्यश्वः सहायः कर्मकालवित्। विष्णुः प्रसादितो यज्ञः समुद्रो वडवामुखः॥७९॥
हुताशनसहायश्च प्रशांतात्मा हुताशनः। उग्रतेजा महातेजा जयो विजयकालवित्॥८०॥

परन्तप, योगी, योग, महाबीज, महारेता, महाबल, सुवर्णरेता, सर्वज्ञ, सुबीज, वृषवाहन, दशबाहु, अनिमिष, नीलकण्ठ, उमापति, विश्वरूप, स्वयंश्रेष्ठ, बलवीर, बलाग्रणी, गणकर्त्ता, गणपति, दिग्वास, काम्य, मन्त्रविद, परम, मन्त्र, सर्वभावकर, हर, कमण्डलुधर, धन्वी, बाणहस्त, कपालवान, शरी, शतघ्नी, खड्गी, पट्टिशी, आयुधी, महान, अज, मृगरूप, तेज, तेजस्कर, विधि, उष्णीषी, सुवक्त्र, उदग्र, विनत, दीर्घ, हरिकेश, सुतीर्थ, कृष्ण, शृंगालरूप, सर्वार्थ, मुण्ड, सर्वशुभंकर, सिंहशार्दूलरूप, गंधकारी, कपर्दी, ऊर्ध्वरेता, ऊर्ध्वलिंगी, ऊर्ध्वशायी, नमस्तल, त्रिजटी, चीरवास, रुद्र, सेनापति, विभु, अहोरात्र, नक्त, तिग्ममन्यु, सुवर्चस, गजहा, दैत्यहा, काल, लोकधाता, गुणाकर, सिंहशार्दूलरूपाणमार्द्रचर्माम्बरधर, कालयोगी, महानाद, सर्वावास, चतुष्पथ, निशाचर, प्रेतचारी, सर्वदर्शी, महेश्वर, बहुभूत, बहुधन, सर्वसार, अमृतेश्वर, नृत्यप्रिय, नित्यनृत्य, नर्तन, सर्वसाधक, सकार्मुक, महाबाहु, महाघोर, महातप, महाशर, महापाश, नित्य, गिरिचर, अयत, सहस्रहस्त, विजय, व्यवसाय, अनिन्दित, अमर्षण, मर्शणात्मा, यज्ञहा, कामनाशन, दक्षहा, परिचारी, प्रहस, मध्यम, तेजोपहारी, बलवान, विदित, अभ्युदित, बहु, गम्भीरघोष, योगात्मा, यक्षहा, कामना, अशन, गम्भीररोष, गम्भीर, गम्भीरबल वाहन, न्यग्रोधरूप, न्यग्रोध, विश्वकर्मा, विश्वभुक्, तीक्ष्णोपाय, हर्यश्व, सहाय, सर्वकालविद्, विष्णु, प्रसादित, यज्ञ, समुद्र, बड़वामुख, हुताशनसहाय, प्रशान्तात्मा, हुताशन, उग्रतेज, महातेज, जयविजयकालविद्।।६१-८०।।

ज्योतिषामयनं सिद्धिः संधिर्विग्रह एव च। खड्गी शंखी जटी ज्वाली खचरो द्युचरो बली॥८१॥
वैणवी पैणवी कालः कालकंठः कटंकटः। नक्षत्रविग्रहो भावो विभावः सर्वतोमुखः॥८२॥
विमोचनस्तु शरणो हिरण्यकवचोद्भवः। मेखलाकृतिरूपश्च जलाचारः स्तुतस्तथा॥८३॥
वीणी च पणवी ताली नाली कलिकटुस्तथा। सर्वतूर्यनिनादी च सर्वव्याप्यपरिग्रहः॥८४॥
व्यालरूपी बिलावासी गुहावासी तरंगवित्। वृक्षः श्रीमालकर्मा च सर्वबंधविमोचनः॥८५॥
बंधनस्तु सुरेन्द्रणां युधि शत्रुविनाशनः। सखा प्रवासो दुर्वापः सर्वसाधुनिषेवितः॥८६॥
प्रस्कंदोप्यविभावश्च तुल्यो यज्ञविभागवित्। सर्ववासः सर्वचारी दुर्वासा वासवो मतः॥८७॥
हैमो हेमकारो यज्ञः सर्वधारी धरोत्तमः। आकाशो निर्विरूपश्च विवासा उरगः खगः॥८८॥
भिक्षुश्च भिक्षुरूपी च रौद्ररूपः सुरूपवान्। वसुरेताः सुवर्चस्वी वसुवेगो महाबलः॥८९॥
मनोवेगो निशाचारः सर्वलोकशुभप्रदः। सर्वावासी त्रयीवासी उपदेशकरो धरः॥९०॥
मुनिरात्मा मुनिर्लोकः सभाग्यश्च सहस्त्रभुक्। पक्षी च पक्षरूपश्च अतिदीप्तो निशाकरः॥९१॥
समीरो दमनाकारो ह्यर्थो ह्यर्थकरो वशः। वासुदेवश्च देवश्च वामदेवश्च वामनः॥९२॥
सिद्धयोगापहारी च सिद्धः सर्वार्थसाधकः। अक्षुण्णः क्षुण्णरूपश्च वृषणो मृदुरव्ययः॥९३॥
महासेनो विशाखश्च षष्टिभागो गवांपतिः। चक्रहस्तस्तु विष्टंभी मूलस्तम्भन एव च॥९४॥
ऋतुर्ऋतुकरस्तालो मधुर्मधुकरो वरः। वानस्पत्यो वाजसनो नित्यमाश्रमपूजितः॥९५॥
ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वचारी सुचारवित्। ईशान ईश्वरः कालो निशाचारी ह्यनेकदृक्॥९६॥
निमित्तस्थो निमित्तं च नंदिर्नंदिकरो हरः। नन्दीश्वरः सुनंदी च नंदनो विषमर्दनः॥९७॥
भगहारी नियंता च कालो लोकपितामहः। चतुर्मुखो महालिंगश्चारुलिङ्गस्तथैव च॥९८॥

ज्योतिषामयंन, सिद्धि, सन्धि, विग्रह, खड्गी, शंखी, जटी, ज्वाली, खेचर, द्युचर, बली, वैणवी, पैणवी, काल, कालकण्ठ, कटंकट, नक्षत्रविग्रह, भाव, विभाव, सर्वतोमुख, विमोचन, शरण, हिरण्यकवचोद्भव, मेखलाकृतिरूप, जलाचार, स्तुत, वीणी, पणवी, ताली, नाली, कलिकटु, सर्वतूर्यनादी, सर्वव्याप्यपरिग्रह, व्यालरूपी, बिलावासी, गुहावासी, तरंगविद्, वृक्ष, श्रीमालकर्मा, सर्वबन्धविमोचन, बन्धन, सुरेन्द्राणां युधि शत्रुविनाशन्, सखा, प्रवास, दुर्वाप, सर्वसाधुनिषेवित, प्रस्कन्द, अविभाव, तुल्य, यज्ञविभागविद, सर्ववास, सर्वचारी, दुर्वासा, वासव, मत, हैम, हेमकार, यज्ञ, सर्वधारी, धरोत्तम, आकाश, निर्विरूप, विवास, उरग, खग, भिक्षु, भिक्षुरूपी, रौद्ररूप, सुरूपवान, वसुरेतस्, सुवर्चस्वी, वसुवेग, महाबल, मनोवेग, निशाचर, सर्वलोकशुभप्रद, सर्वावासी, त्रयीवासी, उपदेशकर, अधर, मुनि, आत्मा, मुनिलोक, सभाग्य, सहस्त्रभुक्, पक्षी, पक्षरूप, अतिदीप्त, निशाकर, समीर, दमनाकार, अर्थ, अर्थकर, अवश, वासुदेव, देव, वामदेव, वामन, सिद्धियोगापहारी, सिद्ध, सर्वार्थसाधक, अक्षुण्ण, क्षुण्णरूप, वृषण, मृदु, अव्यय, महासेन, विशाख, षष्टिभाग, गवांपति, चक्रहस्त, विष्टम्भी, मूलस्तभन, ऋतु, ऋतुकर, ताल, मधु, मधुकर, वर, वानस्पत्य, वाजसन, नित्य, आश्रमपूजित, ब्रह्मचारी, लोकचारी, सर्वचारी, सुचारविद्, ईशान, ईश्वर, काल, निशाचारी, अनेकदृक्, निमित्तस्थ, निमित्त, नन्दी, नन्दीकर, हर, नन्दीश्वर, सुनन्दी, नन्दन, विषमर्दन, भगहारी, नियन्ता, काल, लोकपितामह,

लिंगाध्यक्षः सुराध्यक्षः कालाध्यक्षो युगावहः। बीजाध्यक्षो बीजकर्ता अध्यात्मानुगतो बलः॥९९॥
इतिहासश्च कल्पश्च दमनो जगदीश्वरः। दंभो दंभकरो दाता वंशो वंशकरः कलिः॥१००॥
लोककर्ता पशुपतिर्महाकर्ता ह्यधोक्षजः। अक्षरं परमं ब्रह्म बलवाञ्छुक्र एव च॥१०१॥
नित्यो ह्यनीशः शुद्धात्मा शुद्धो मानो गतिर्हविः।
प्रासादस्तु बलो दर्पो दर्पणो हव्य इन्द्रजित्॥१०२॥
वेदकारः सूत्रकारो विद्वांश्च परमर्दनः। महामेघनिवासी च महाघोरो वशी करः॥१०३॥
अग्निज्वालो महाज्वालः परिधूम्रावृतो रविः। घिषणः शंकरो नित्यो वर्चस्वी धूम्रलोचनः॥१०४॥
नीलस्तथाङ्गलुप्तश्च शोभनो नरविग्रहः।
स्वस्ति स्वस्तिस्वभावश्च भोगी भोगकरो लघुः॥१०५॥
उत्संगश्च महांगंश्च महागर्भः प्रतापवान्। कृष्णवर्णः सुवर्णश्च इन्द्रियः सर्ववर्णिकः॥१०६॥
महापादो महाहस्तो महाकायो महायशाः। महामूर्धा महामात्रो महामित्रो नगालयः॥१०७॥
महास्कंधो महाकर्णो महोष्ठश्च महाहनुः।
महानासो महाकंठो महाग्रीवः श्मशानवान्॥१०८॥
महाबलो महातेजा ह्यंतरात्मा मृगालयः।
लंबितोष्ठश्च निष्ठश्च महामायः पयोनिधिः॥१०९॥
महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वो महामुखः। महानखो महारोमा महाकेशो महाजटः॥११०॥
असपत्नः ग्रसादश्च प्रत्ययो गीतसाधकः। प्रस्वेदनोऽस्वेदनश्च आदिकश्च महामुनिः॥१११॥
वृषको वृषकेतुश्च अनलो वायुवाहनः। मंडली मेरुवासश्च देववाहन एव च॥११२॥
अथर्वशीर्षः सामास्य ऋक्सहस्त्रोर्जितेक्षणः। यजुः पादभुजो गुह्यः प्रकाशौजास्तथैव च॥११३॥

चतुर्मुख, महालिंग, चारुलिंग, लिंगाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, कालाध्यक्ष, युगावह, बीजाध्यक्ष, बीजकर्त्ता, अध्यात्म, अनुगत, बल, इतिहास, कल्प, दमन, जगदीश्वर, दम्भ, दम्भकर, दाता, वंश, वंशकर, कलि।।८१-१००।। लोककर्त्ता, पशुपति, महाकर्त्ता, अधोक्षज, अक्षर, परम, ब्रह्म, बलवान, शुक्र, नित्य, अनीश, शुद्धात्मा, शुद्ध, मान, गति, हवि, प्रासाद, बल, दर्प, दर्पण, हव्य, इन्द्रजित, वेदकार, सूत्रकार, विद्वान, परमर्दन, महामेघनिवासी, महाघोर, वशी, कर, अग्निज्वाल, महाज्वाल, परिधूम्रावृत, रवि, धिषण, शंकर, अनित्य, वर्चस्वी, धूम्रलोचन, नील, अंगलुप्त, शोभन, नरविग्रह, स्वस्ति, स्वस्तिस्वभाव, भोगी, भोगकर, लघु, उत्संग, महांग, महागर्भ, प्रतापवान, कृष्णवर्ण, सुवर्ण, इन्द्रिय, सर्ववर्णिक, महापाद, महाहस्त, महाकाय, महायशस्वी, महामूर्ध, महामात्र, महामित्र, नगालय, महास्कन्ध, महाकर्ण, महोष्ठ, महाहनु, महानास, महाकण्ठ, महाग्रीव, स्मशानवान, महाबल, महातेज, अन्तरात्मा, मृगालय, लम्बितोष्ठ, निष्ठ, महामाय, पयोनिधि, महादन्त, महादंष्ट्र, महाजिह्व, महामुख, महानख, महारोमा, महाकेश, महाजट, असपत्न, प्रसाद, प्रत्यय, गीतसाधक, प्रस्वेदन, अस्वेदन, आदिक, महामुनि, वृषक, वृषकेतु, अनल, वायुवाहन, मण्डली, मेरुवास, देववाहन, अथर्वशीर्ष, सामास्य, ऋकसहस्रोर्जितेक्षण,

अमोघार्थप्रसादश्च अंतर्भाव्यः सुदर्शनः। उपहारः प्रियः सर्वः कनकः कांचनस्थितः॥११४॥

नाभिर्नन्दिकरो हर्म्यः पुष्करः स्थपतिः स्थितः।
सर्वशास्त्रो धनश्चाद्यो यज्ञो यज्वा समाहितः॥११५॥

नगो नीलः कविः कालो मकरः कालपूजितः। सगणो गणकारश्च भूतभावनसारथिः॥११६॥

भस्मशायी भस्मगोप्ता भस्मभूततनुर्गणः। आगमश्च विलोपश्च महात्मा सर्वपूजितः॥११७॥

शुक्लः स्त्रीरूपसंपन्नः शुचिर्भूतनिषेवितः।
आश्रमस्थः कपोतस्थो विश्वकर्मा पतिर्विराट्॥११८॥

विशालशाखस्ताम्रोष्ठो ह्यंबुजालः सुनिश्चितः।
कपिलः कलशः स्थूल आयुधैश्चैव रोमशः॥११९॥

गंधर्वो ह्यदितिस्ताक्ष्यो ह्यविज्ञेयः सुशारदः। परश्वायुधो देवो ह्यर्थकारी सुबांधवः॥१२०॥

तुंबवीणो महाकोप ऊर्ध्वरेता जलेशयः। उग्रो वंशकरो वंशो वंशवादी ह्यनिन्दितः॥१२१॥

सर्वांगरूपी मायावी सुहृदो ह्यनिलो बलः। बंधनो बंधकर्ता च सुबंधनविमोचनः॥१२२॥

राक्षसघ्नोऽथ कामारिर्महादंष्ट्रो महायुधः। लंबितो लंबितोष्ठच लंबहस्तो वरप्रदः॥१२३॥

बाहुस्त्वनिंदितः सर्वः शंकरोथाप्यकोपनः। अमरेशो महाघोरो विश्वदेवः सुरारिहा॥१२४॥

अहिर्बुध्न्यो निर्ऋतिश्च चेकितानो हली तथा।
अजैकपाच्च कापाली शं कुमारो महागिरिः॥१२५॥

धन्वंतरिर्धूमकेतुः सूर्यो वैश्रवणस्तथा।
धाता विष्णुश्च शक्रश्च मित्रस्त्वष्टा धरो ध्रुवः॥१२६॥

प्रभासः पर्वतो वायुरर्यमा सविता रविः। धृतिश्चैव विधाता च मांधाता भूतभावनः॥१२७॥

यजुः पादभुज, गुह्य, प्रकाशौजस, अमोघार्थप्रसाद, अन्तरर्भाव्य, सुदर्शन, उपहार, प्रिय, सर्व, कनक, काञ्चनस्थित, नाभि, नन्दिकर, हर्म्य, पुष्कर, स्थपति, स्थित, सर्वशास्त्र, सर्वधन, सर्वाद्य, सर्वयज्ञ, यज्वा, समाहित, नग, नील, कवि, काल, मकर, कालपूजित, सगण, गणकार, भूतभावनसारथि, भस्मशायी, भस्मगोप्ता, भस्मभूततनु, गण, आगम, विलोप, महात्मा, सर्वपूजित, शुक्ल, स्त्रीरूपसम्पन्न, शुचि, भूतानिषेवित, आश्रमस्थ, कपोतस्थ, विश्वकर्मा, पति, विराट, विशालशाख, ताम्रोष्ठ, अम्बुजाल, सुनिश्चित, कपिल, कलश, स्थूल, आयुध, रोमश, गन्धर्व, अदिति, ताक्ष्र्य, अविज्ञेय, सुशारद, परश्वायुध, देव, अर्थकरी, सुबान्धव।।१०१-१२०।। तुम्बवीण, महाकोप, उर्ध्वरेता, जलेशय, उग्र, वंशकर, वंश, वंशवादी, अनिन्दित, सर्वांगरूपी, मायावी, सुहृद, अनिल, बल, बन्धन, बन्धकर्त्ता, सुबन्धनविमोचन, राक्षसध्न, कामारि, महादन्ष्ट्र, महायुध, लम्बित, लम्बितोष्ठ, लम्बहस्त, वरप्रद, बाहु, अनिन्दित, सर्व, शंकर, अकोपन, अमरेश, महाघोर, विश्वदेव, सुरारिहा, अहिर्बुध्न्य, निर्ऋति, चेकितान, हली, अजैकपाद, कपाली, शं, कुमार, महागिरि, धन्वन्तरि, धूमकेतु, सूर्य, वैश्रवण, धाता,

नीरस्तीर्थश्च भीमश्च सर्वकर्मा गुणोद्वहः। पद्मगर्भो महागर्भश्चंद्रवक्त्रो नभोऽनघः॥१२८॥
बलवांश्चोपशांतश्च पुराणः पुण्यकृत्तमः। क्रूरकर्ता क्रूरवासी तनुरात्मा महौषधः॥१२९॥
सर्वाशयः सर्वचारी प्राणेशः प्राणिनां पतिः। देवदेवः सुखोत्सिक्तः सदसत्सर्वरत्नवित्॥१३०॥
कैलासस्थो गुहावासी हिमवद्गिरिसंश्रयः। कुलहारी कुलाकर्ता बहुवित्तो बहुप्रजः॥१३१॥
प्राणेशो बंधकी वृक्षो नकुलश्चाद्रिकस्तथा। ह्रस्वग्रीवो महाजानुरलोलश्च महौषधिः॥१३२॥
सिद्धांतकारी सिद्धार्थश्छंदो व्याकरणोद्भवः। सिंहनादः सिंहदंष्ट्रः सिंहास्यः सिंहवाहनः॥१३३॥
प्रभावात्मा जगत्कालः कालः कंपीतरुस्तनुः। सारंगो भूतचक्रांकः केतुमाली सुवेधकः॥१३४॥
भूतालयो भूतपतिरहोरात्रो मलोऽमलः। वसुभृत्सर्वभूतात्मा निश्चलः सुविदुर्बुधः॥१३५॥

असुहृत्सर्वभूतानां निश्चलश्चलविद्बुधः।
अमोघः संयमो हृष्टो भोजनः प्राणधारणः॥१३६॥

धृतिमान्मतिमांस्त्र्यक्षः सुकृतस्तु युधांयतिः। गोपालो गोपतिर्ग्रामो गोचर्मवसनो हरः॥१३७॥
हिरण्यबाहुश्च तथा गुहावासः प्रवेशनः। महामना महाकामो चित्तकामो जितेन्द्रियः॥१३८॥
गांधारश्च सुरापश्च तापकर्मरतो हितः। महाभूतो भूतवृतो ह्यप्सरोगणसेवितः॥१३९॥
महाकेतुर्धराधाता नैकतानरतः स्वरः। अवेदनीय आवेद्यः सर्वगश्च सुखावहः॥१४०॥

तारणश्चरणो धाता परिधा परिपूजितः।
संयोगी वर्धनो वृद्धो गणिकोऽथ गणाधिपः॥१४१॥

नित्यो धाता सहायश्च देवासुरपतिः पतिः। युक्तश्च युक्तबाहुश्च सुदेवोपि सुपर्वणः॥१४२॥

विष्णु, शक्र, मित्र, त्वष्टा, धर, ध्रुव, प्रभास, पर्वत, वायु, अर्यमान, सविता, रवि, धृति, विधाता, मान्धाता, भूतभावन, नीर, तीर्थ, भीम, सर्वकर्मा, गुणोद्वह, पद्मगर्म, महागर्भ, चन्द्रवक्त्र, नभ, अनघ, बलवान, उपशान्त, पुराण, पुण्यकृत, तमस, क्रूरकर्ता, क्रूरवासी, तनु, आत्मा, महौषध, सर्वाशय, सर्वचारी, प्राणेश, प्राणिनांपति, देवदेव, सुखोत्सिक्त, सत्असत्, सर्वरत्नविद्, कैलाशस्थ, गुहावासी, हिमवदगिरिसमाश्रय, कुलहारी, कुलाकर्त्ता, बहुवित्त, बहुप्रज, प्राणेश, बन्धकी, वृक्ष, नकुल, आद्रिक, ह्रस्वग्रीव, महासानु, अलोल, महौषधि, सिद्धान्तकारी, सिद्धार्थ, छन्दः, व्याकरणोद्भव, सिंहनाद, सिंहदंष्ट्र, सिंहास्य, सिंहवाहन, प्रभावात्मा, जगत्काल, काल, कम्पी, तरु, तनु, सारंग, भूताचक्रांक, केतुमाली, सुवेधक, भूतालय, भूतपति, अहोरात्र, मल, अमल, वसुभृत, सर्वभूतात्मा, निश्चल, सुविदु, बुध, सर्वभूतानामसुहृत, निश्चल, चलविद्, बुध, अमोघ, संयम, हृष्ट, भोजन, प्राणधारण, धृतिमान, मतिमान, त्र्यक्ष, सुकृत, युधांपति, गोपाल, गोपति, ग्राम, गोचर्मवसन, हर, हिरण्यबाहु, गुहावास, प्रवेशन, महामना, महाकाम, चित्तकाम, जितेन्द्रिय, गान्धार, सुराप, तापकर्मरत, हित, महाभूत, भूतावृत, अप्सरस्गणसेवित, महाकेतु, धराधाता, नैकतानरत, स्वर, अवेदनीय, आवेद्य, सर्वग, सुखावह।।१२१-१४०।। तारण, चरण, धाता, परिधा, परिपूजित, संयोगी, वर्धन, वृद्ध, गणिक, गणाधिप, नित्य, धाता, सहाय, देवासुरपति, पति, युक्त, युक्तबाहु, सुदेव, सुपर्वण, आषाढ, सुषाढ, स्कन्धद,

आषाढश्च सुषाढश्च स्कन्धदो हरितोहरः। वपुरावर्तमानोऽन्यो वपुःश्रेष्ठो महावपुः॥१४३॥
शिरो विमर्शनः सर्वलक्ष्यलक्षणभूषितः। अक्षयो रथगीतश्च सर्वभोगी महाबलः॥१४४॥
साम्नायोथ महाम्नायस्तीर्थदेवो महायशाः। निर्जीवो जीवनो मंत्रः सुभगो बहुकर्कशः॥१४५॥

रत्नभूतोऽथ रत्नाङ्गो महार्णवनिपातवित्।
मूलं विशालो ह्यमृतं व्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः॥१४६॥

आरोहणोधिरोहश्च शीलधारी महातपाः। महाकण्ठो महायोगी युगो युगकरो हरिः॥१४७॥

युगरूपो महारूपो वहनो गहनो नगः।
न्यायो निर्वापणोऽपादः पण्डितो ह्यचलोपमः॥१४८॥
बहुमालो महामालः शिपिविष्टः सुलोचनः।
विस्तारो लवणः कूपः कुसुमांगः फलोदयः॥१४९॥

ऋषभो वृषभो भंगो मणिबिंबजटाधरः। इंदुर्विसर्गः सुमुखः शूरः सर्वायुधः सहः॥१५०॥
निवेदनः सुधाजातः स्वर्गद्वारो महाधनुः। गिरावासो विसर्गश्च सर्वलक्षणलक्षवित्॥१५१॥
गन्धमाली च भगवाननन्तः सर्वलक्षणः। संतानो बहुलो बाहुः सकलः सर्वपावनः॥१५२॥
करस्थाली कपाली च ऊर्ध्वसंहननो युवा। यंत्रतंत्रसुविख्यातो लोकः सर्वाश्रयो मृदुः॥१५३॥

मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डी कुण्डी विकुर्वणः।
वार्यक्षः ककुभो वज्री दीप्ततेजाः सहस्रपात्॥१५४॥
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वदेवमयो गुरुः।
सहस्रबाहुः सर्वाङ्गः शरण्यः सर्वलोककृत्॥१५५॥

पवित्रं त्रिमधुर्मंत्रः कनिष्ठः कृष्णपिंगलः। ब्रह्मदंडविनिर्माता शतघ्नः शतपाशधृक्॥१५६॥

हरित, हर, वपुस्, आवर्तमान, अन्य, वपुश्रेष्ठ, महावपुः, शिर, विमर्शन, सर्वलक्ष्यलक्षणभूषित, अक्षय, रथगीत, सर्वभोगी, महाबल, साम्नाय, महाम्नाय, तीर्थदेव, महायशस्, निर्जीव, जीवन, मन्त्र, सुभग, बहुकर्कश, रत्नभूत, रत्नांग, महार्णवनिपातविद्, मूल, विशाल, अमृत, व्यक्ताव्यक्त, तपोनिधि, आरोहण, अधिरोह, शीलधारी, महातपा, महाकण्ठ, महायोगी, युग, युगकर, हरि, युगरूप, महारूप, वहन, गहन, नग, न्याय, निर्वापण, अपाद, पण्डित, अचलोपम, बहुमाल, महामाल, शिपिविष्ट, सुलोचन, विस्तार, लवण, कूप, कुसुमांग, फलोदय, ऋषभ, वृषभ, भंग, मणिबिम्बजटाधर, इन्दु, विसर्ग, सुमुख, शूर, सर्वायुध, सह।।१४१-१५०।। निवेदन, सुधाजात, स्वर्गद्वार, महाधनु, गिरावास, विसर्ग, सर्वलक्षणलक्षविद्, गन्धमाली, भगवान, अनन्त, सर्वलक्षण, सन्तान, बहुल, बाहु, सकल, सर्वपावन, करस्थाली, कपाली, उर्ध्वसंहनन, युवान, यन्त्र-तन्त्रसुविख्यात, लोक, सर्वाश्रय, मृदु, मुण्ड, विरूप, विकृत, दण्डी, कुण्डी, विकुर्वण, वार्यक्ष, ककुभ, वज्री, दीप्ततेजस, सहस्रपाद, सहस्रमूर्धा, देवेन्द्र, सर्वदेवमय, गुरु, सहस्रबाहु, सर्वांग, शरण्य, सर्वलोककृत, पवित्र, त्रिमधु, मन्त्र, कनिष्ठ, कृष्णपिंगल, ब्रह्माण्ड विनिर्माता, शतध्न, शतपाशधृक्, कला, काष्ठा, लव,

कला काष्ठा लवो मात्रा मुहूर्तोहः क्षपाक्षणः। विश्वक्षेत्रप्रदो बीजं लिंगमाद्यस्तु निर्मुखः॥१५७॥
सदसद्व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं मोक्षद्वारं प्रजाद्वारं त्रिविष्टपः॥१५८॥
निर्वाणं हृदयश्चैव ब्रह्मलोकः परा गतिः। देवासुरविनिर्माता देवासुरपरायणः॥१५९॥
देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः। देवासुरमहामात्रो देवासुरगणाश्रयः॥१६०॥
देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणीः। देवाधिदेवो देवर्षिदेवासुरवरप्रदः॥१६१॥
देवासुरेश्वरो विष्णुर्देवासुरमहेश्वरः। सर्वदेवमयोऽचिंत्यो देवतात्मा स्वयंभवः॥१६२॥
उद्गतस्त्रिक्रमो वैद्यो वरदोऽवरजोंबरः। इज्यो हस्ती तथा व्याघ्रो देवसिंहो महर्षभः॥१६३॥

विबुधाग्र्यः सुरः श्रेष्ठः स्वर्गदेवस्तथोत्तमः।
संयुक्तः शोभनो वक्ता आशानां प्रभवोव्ययः॥१६४॥

गुरुः कांतो निजः सर्गः पवित्रः सर्ववाहनः। शृंगी शृंगप्रियो बभ्रू राजराजो निरामयः॥१६५॥
अभिरामः सुशरणो निरामः सर्वसाधनः। ललाटाक्षो विश्वदेहो हरिणो ब्रह्मवर्चसः॥१६६॥

स्थावराणां पतिश्चैव नियतेन्द्रियवर्तनः।
सिद्धार्थः सर्वभूतार्थोऽचिंत्यः सत्यः शुचिव्रतः॥१६७॥
व्रताधिपः परं ब्रह्म मुक्तानां परमा गतिः।
विमुक्तो मुक्तकेशश्च श्रीमाञ्छ्रीवर्धनो जगत्॥१६८॥
यथाप्रधानं भगवानिति भक्तया स्तुतो मया।
भक्तिमेवं पुरुस्कृत्य मया यक्षपतिर्विभुः॥१६९॥
ततो ह्यनुज्ञां प्राप्यैवं स्तुतो भक्तिमतां गतिः।
तस्माल्लब्ध्वा स्तवं शंभोर्नृपस्त्रैलोक्यविश्रुतः॥१७०॥

मात्रा, मुहूर्त, अहः, क्षपा, क्षण, विश्वक्षेत्रप्रद, बीज, लिंग, आद्य, निर्मुख, सदसद्व्यक्त, अव्यक्त, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, मोक्षद्वार, प्रजाद्वार, त्रिविष्टप, निर्वाण, हृदय, ब्रह्मलोक, परागति, देवासुरविनिर्माता, देवासुरपरायण, देवासुरगुरु, देव, देवासुरनमस्कृत, देवासुरमहामात्र, देवासुरगणाश्रय, देवासुरगणाध्यक्ष, देवासुरगणाग्रणी, देवाधिदेव, देवर्षि, देवासुरवरप्रद, देवासुरेश्वर, विष्णु, देवासुरमहेश्वर, सर्वदेवमय, अचिन्त्य, देवतात्मा, स्वयंभव, उद्गत, त्रिक्रम, वैद्य, वरद, अवरज, अम्बर, इज्य, हस्ती, व्याघ्र, देवसिंह, महर्षभ, विबुधाग्रगण्य, सुर, श्रेष्ठ, स्वर्गदेव, उत्तम, संयुक्त, शोमन, वक्ता, आशाप्रभव, अव्यय, गुरु, कान्त, निज, सर्ग, पवित्र, सर्ववाहन, शृंगी, शृंगप्रिय, बभ्रु, राजराज, निरामय, अभिराम, सुशरण, निराम, सर्वसाधन, ललाटाक्ष, विश्वदेह, हरिण, ब्रह्मवर्चस, स्थवरपति, नियतेन्द्रियवर्तन, सिद्धार्थ, सर्वभूतार्थ, अचिन्त्य, सत्य, शुचिव्रत, व्रताधिप, परम ब्रह्म, मुक्तानांपरमागति, विमुक्त, मुक्तकेश, श्रीमान, श्रीवर्धन, जगत।।१५१-१६८।।

नामों के महत्त्व के अनुक्रम से मैंने भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त होकर भगवान शिव की स्तुति की। तब तीनों लोकों में प्रसिद्ध राजा ने तण्डिन से इस सहस्त्र स्तुति (प्रार्थना) को प्राप्त किया। उसके बाद भक्तों में श्रेष्ठ राजा

अश्वमेधसहस्त्रस्य फलं प्राप्य महायशाः।
गणाधिपत्यं संप्राप्तस्तंडिनस्तेजसा प्रभोः॥१७१॥
यः पठेच्छणुयाद्वापि श्रावयेद्ब्राह्मणानपि।
अश्वमेधसहस्त्रस्य फलं प्राप्नोति वै द्विजाः॥१७२॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः। शरणागतघाती च मित्रविश्वासघातकः॥१७३॥
मातृहा पितृहा चैव वीरहा भ्रूणहा तथा। संवत्सरं क्रमाज्जपत्वा त्रिसंध्यं शंकराश्रमे॥१७४॥
देवमिष्ट्वा त्रिसंध्यं च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१७५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे रुद्रसहस्त्रनामकथनं नाम पंचषष्टित्तमोऽध्यायः॥६५॥

त्रिधन्वा ने आज्ञा पाकर भगवान शिव की स्तुति की जो भक्तों की गति हैं। उसके फलस्वरूप प्रभु तण्डिन के तेज से महायशस्वी राजा ने हजार अश्वमेघ यज्ञ का फल और गाणपत्य पद को प्राप्त किया। जो कोई शिव के इन पवित्र नामों को पढ़ता है अथवा सुनता है। हे ब्राह्मणों! वह हजार अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त करता है। वह व्यक्ति ब्रह्महत्या किये हो मद्यपी हो, चोर हो, गुरु की शय्या पर लेटने का पाप किये हो, शरणागत की हत्या किये हो, मित्र के साथ विश्वासघात किये हो या माता-पिता, वीर और भ्रूण की हत्या किये हो तो भी शिवालय में एक वर्ष तक तीनों संध्या काल (प्रातः, दोपहर और शाम) में इन सहस्त्र नामों से शिव की स्तुति करता है तो वह उक्त सब पापों से मुक्त हो जाता है।।१६९-१७५।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में रुद्र के सहस्त्रनाम नामक पैसठवाँ अध्याय समाप्त॥६५॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

ययातिकथा

सूत उवाच

त्रिधन्वा देवदेवस्य प्रसादात्तंडिनस्तथा। अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य प्रयत्नतः॥१॥
गाणपत्यं दृढं प्राप्तः सर्वदेवनमस्कृतः। आसीत्त्रिधन्वनश्चापि विद्वांस्त्रय्यारुणो नृपः॥२॥
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः। तेन भार्या विदर्भस्य हृता हत्वामितौजसम्॥३॥
पाणिग्रहणमंत्रेषु निष्ठामप्रापितेष्विह। तेनाधर्मेण संयुक्तं राजा त्रय्यारुणोऽत्यजत्॥४॥
पितरं सोब्रवीत्त्यक्तः क्व गच्छामीति वै द्विजाः। पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय॥५॥
इत्युक्तः स विचक्राम नगराद्वचनात् पितुः। स तु सत्यव्रतो धीमाञ्छ्वपाकावसथान्तिके॥६॥
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पिता चास्य वनं ययौ। सर्वलोकेषु विख्यातस्त्रिशंकुरिति वीर्यवान्॥७॥
वसिष्ठकोपात्पुण्यात्मा राजा सत्यव्रतः पुरा। विश्वामित्रो महातेजा वरं दत्त्वा त्रिशंकवे॥८॥
राज्येऽभिषिच्य तं पित्र्ये याजयामास तं मुनिः। मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः॥९॥
सशरीरं तदा तं वै दिवमारोपयद्विभुः। तस्य सत्यव्रता नाम भार्या कैकयवंशजा॥१०॥
कुमारं जनयामास हरिश्चंद्रमकल्मषम्। हरिश्चंद्रस्य च सुतो रोहितो नाम वीर्यवान्॥११॥

छियासठवाँ अध्याय

ययाति की कथा

सूत बोले

देवताओं के देवता और तण्डिन की कृपा से त्रिधन्वा ने हजार अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करके उसके बाद शिव के गणाधिपति पद को प्राप्त किया। वह सब देवताओं द्वारा नमस्कृत हो गया। विद्वान राजा त्रय्यारुण आत्रिधन्वा का उत्तराधिकारी था।।१-२।। उसके महाबलवान पुत्र सत्यव्रत हुआ। उसने अमित तेजस्वी विदर्भ के राजा को मार कर उसकी पुत्री विवाह संस्कार के मन्त्रों से विवाह करके अपनी रानी बना लिया। इस अधर्म के कार्य से असन्तुष्ट होकर राजा त्रय्यारुण ने उसका त्याग कर दिया।।३-४।। त्याग देने पर उसने अपने पिता से कहा "मैं कहाँ जाऊँ"? पिता ने उसको उत्तर दिया। चंडालों के पास जाओ और उनके बीच में रहो।।५।। इस प्रकार आज्ञा पाने पर वह नगर से चला गया। विद्वान सत्यव्रत चंडालों के कालोनी में चला गया। वह वीर वहाँ पर रहने लगा और उसके पिता वन में चले गये। वह पराक्रमी योग्य राजा सत्यव्रत तीनों लोकों में त्रिशंकु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। एक बार वसिष्ठ ने उसको शाप दिया। उस पर महातेजस्वी विश्वामित्र ने फिर प्रसन्न होकर त्रिशंकु को वर देकर पिता के राज्य में उसको अभिषिक्त करके राजा बना दिया। मुनि ने उसकी ओर से एक यज्ञ किया। देवताओं और वसिष्ठ मुनि के देखते हुए विश्वामित्र ने त्रिशंकु को सशरीर ऊपर स्वर्ग को भेज दिया।

हरितो रोहितास्याथ धुंधुर्हारित उच्यते। विजयश्च सुतेजाश्च धुंधुपुत्रौ बभूवतुः॥१२॥
जेता क्षत्रस्य सर्वत्र विजयस्तेन स स्मृतः। रुचकस्तस्य तनयो राजा परमधार्मिकः॥१३॥
रुचकस्य वृकः पुत्रस्तस्माद्बाहुश्च जज्ञिवान्। सगरस्तस्य पुत्रोभूद्राजा परमधार्मिकः॥१४॥
द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा। ताभ्यामाराधितः पूर्वमौर्वोग्निः पुत्रकाम्यया॥१५॥
और्वस्तुष्टस्तयोः प्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम्। एका षष्टिसहस्त्राणि सुतमेकं परा तथा॥१६॥
अगृह्णाद्वंशकर्तारं प्रभागृह्णात्सुतान्बहून्। एकं भानुमतिः पुत्रमगृह्णदसमंजसम्॥१७॥
ततः षष्टिसहस्त्राणि सुषुवे सा तु वै प्रभा। खनंतः पृथिवीं दग्धा विष्णुहुंकारमार्गणैः॥१८॥
असमंजस्य तनयः सोंशुमान्नाम विश्रुतः। तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः॥१९॥
येन भागीरथी गंगा तपः कृत्वाऽवतारिता। भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बहूब वै॥२०॥
नाभा गस्तस्य दायादो भवभक्तः प्रतापवान्। अंबरीषः सुतस्तस्य सिंधुद्वीपस्ततोभवत्॥२१॥
नाभागेनांबरीषेण भुजाभ्यां परिपालिता। बभूव वसुधात्यर्थं तापत्रयविवर्जिता॥२२॥
अयुतायुः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान्। पुत्रोऽयुतायुषो धीमानृतुपर्णो महायशाः॥२३॥
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली। नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ॥२४॥
वीरसेनसुतश्चान्यो यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्भवः। ऋतुपर्णस्य पुत्रोभूत्सार्वभौमः प्रजेश्वरः॥२५॥

उसकी केकय वंश में जन्मी सत्यव्रता (नामक रानी ने) एक सुन्दर पुत्र हरिश्चन्द्र को जन्म दिया। उनका पुत्र रोहित बहुत पराक्रमी था।।६-११।। रोहित का पुत्र हरित था। धुंधु हरित का पुत्र था। धुंधु के दो पुत्र विजय और सुतेजा हुए।।१२।। उसने क्षत्रिय वर्ण के राजाओं को जीत लिया। इसलिए वह विजय नाम से पुकारा जाने लगा। उसका पुत्र रुचक धार्मिक राजा था।।१३।। रुचक का पुत्र वृक हुआ और उसका पुत्र बाहु। पैदा हुआ। बाहु का परम धार्मिक पुत्र सगर हुआ।।१४।। सगर की दो रानियाँ प्रभा और भानुमती थीं। उन दोनों ने पुत्र की कामना से और्वोग्नि की आराधना की।।१५।। और्व ने प्रसन्न होकर उन दोनों को उनकी इच्छानुसार उत्तम वर दिया। एक के साठ हजार पुत्र और दूसरे के एकलौता पुत्र हुआ जो कि वंश को आगे बढ़ाने वाला था। वह भानुमती का पुत्र था। प्रभा ने बहुत से पुत्रों के वरदान को चुना। मानुमती के इकलौते पुत्र का नाम असमंज था।।१६-१७।। उसके बाद प्रभा ने साठ हजार पुत्रों को जन्म दिया। वे सब पृथ्वी को खोदते हुए क्रुद्ध विष्णु के हुँकार से भस्म हो गये।।१८।। असमंज का पुत्र अंशुमान नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका पुत्र दिलीप हुआ। दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए। वे तपस्या करके गंगा को पृथ्वी पर लाये। इसलिए राजा भगीरथ को भागीरथी कहा जाता है। भगीरथ का पुत्र श्रुत हुआ।।१९-२०।। उनका उत्तराधिकारी नाभाग हुआ जो कि बहुत प्रतापी और शिव भक्त था। उसका पुत्र अंबरीष हुआ। उसके सिन्धुदीप नामक पुत्र पैदा हुआ।।२१।। नाभाग अंबरीष ने अपने बाहुबल से पृथ्वी का पालन किया। उसके शासन में पृथ्वी तीनों पापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) से रहित थी।।२२।। सिंधुदीप के अयुतायु नामक पराक्रमी पुत्र हुआ। उसके बुद्धिमान और महा यशस्वी अयुतायुष पुत्र हुआ।।२३।। वह बलवान राजा नल का मित्र था। राजा नल जुआ खेलने की विद्या में विशेषज्ञ था। पुराणों में दृढ़व्रत वाले दो नल प्रसिद्ध

सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसमोभवत्। सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः॥२६॥
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्च सः। वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके॥२७॥
अश्मकं जनयामास इक्ष्वाकुकुलवर्धनम्। अश्मकस्योत्तरायां तु मूलकस्तु सुतोभवत्॥२८॥
स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभिः परिवृतो वने। बिभर्ति त्राणमिच्छन्वै नारीकवचमुत्तमम्॥२९॥
मूलकस्यापि धर्मात्मा राजा शतरथः सुतः। तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा त्विलविलो बली॥३०॥
आसीत्त्वैलविलिः श्रीमान्वृद्धशर्मा प्रतापवान्। पुत्रो विश्वसहस्तस्य पितृकन्या व्यजीजनत्॥३१॥
दिलीपस्तस्य पुत्रोभूत्खट्वांग इतिविश्रुतः। येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम्॥३२॥
त्रयोऽग्नयस्त्रयो लोका बुद्ध्या सत्येन वै जिताः। दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत॥३३॥
अजः पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्जज्ञे च वीर्यवान्। राजा दशरथस्तस्माच्छ्रीमानिक्ष्वाकुवंशकृत्॥३४॥
रामो दशरथाद्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः। भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः॥३५॥
तेषां श्रेष्ठो महातेजा रामः परमवीर्यवान्। रावणं समरे हत्वा यज्ञैरिष्ट्वा च धर्मवित्॥३६॥
दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यं चकार सः। रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः॥३७॥

लवश्च सुमहाभागः सत्यवानभवत्सुधीः।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः॥३८॥

नलस्तु निषधाज्जातो नभस्तस्मादजायत। नभसः पुंडरीकाख्यः क्षेमधन्वा ततः स्मृतः॥३९॥

हैं। एक तो इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न वीरसेन का पुत्र था। दूसरा ऋतुपर्ण का पुत्र चक्रवर्ती राजा था।।२४-२५।। राजा सुदास उसका पुत्र था। वह इन्द्र के बराबर था। सुदास के पुत्र का नाम राजा सौदास था।।२६।। उसका असली नाम मित्रसह था किन्तु वह कल्माषपाद के नाम से अधिक प्रसिद्ध था। कल्माष की रानी से इक्ष्वाकु कुल को आगे बढ़ाने वाले अश्मक पुत्र महातेजस्वी वसिष्ठ के आशीर्वाद से पैदा हुआ। राजा अश्मक और उसकी रानी उत्तरा से मूलक नामक पुत्र हुआ।।२७-२८।। वह परशुराम के भय से सदा स्त्रियों से घिरा रहता था। रक्षा की इच्छा रखते हुए उत्तम नारी कवच (स्त्रियों के रूप कवच (ढाल)) को धारण किये मूलक के धर्मात्मा राजा सतरथ पुत्र हुआ। उसका बलवान पुत्र राजा इलबिल हुआ। उसके वृद्ध शर्मा नामक पुत्र हुआ। वीर वृद्धशर्मा का इलाबिल था। उसने पितृ की कन्या विश्वसह से पुत्र को पैदा किया।।२९-३१।। उसका पुत्र दिलीप था। वह खट्वाँटग के नाम से अधिक प्रसिद्ध था। उसने एक मुहूर्त का जीवन प्राप्त करके स्वर्ग से यहाँ आकर के अपनी बुद्धि और शक्ति से तीनों अग्नि और तीनों लोकों को जीत लिया। उसका पुत्र दीर्घबाहु हुआ और उसका पुत्र रघु उत्पन्न हुआ।।३२-३३।। रघु से प्रतापी पुत्र अज पैदा हुए। अज से इक्ष्वाकु वंश के कर्त्ता श्रीमान दशरथ हुए।।३४।। उनके पुत्रों में धर्मज्ञ और लोक में प्रसिद्ध वीर राम पैदा हुए। भरत, लक्ष्मण और शत्रुध्न भी उनके पुत्र थे।।३५।। राम उनमें सबसे श्रेष्ठ तेजस्वी, परम पराक्रमी थे। धर्म के ज्ञाता राम ने युद्ध में रावण को मारकर और यज्ञ करके दश हजार वर्ष तक राज्य किया। राम के पुत्र कुश नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके दूसरे पुत्र लव थे जो विद्वान, सत्यवान और महाभाग्यवान थे। कुश से अतिथि और अतिथि से निषध पुत्र पैदा हुआ।।३६-३८।। निषध से

तस्य पुत्रोभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान्। अहीनरः सुतस्तस्य सहस्राश्वस्ततः परः॥४०॥
शुभश्चंद्रावलोकश्च तारापीडस्ततोभवत्। तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुचन्द्रस्ततोभवत्॥४१॥
श्रुतायुरभवत्तस्माद्बृहद्बल इति स्मृतः। भारते यो महातेजाः सौभद्रेण निपातितः॥४२॥
एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः। वंशे प्रधाना एतस्मिन्प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥४३॥
सर्वे पाशुपते ज्ञानमधीत्य परमेश्वरम्। समभ्यर्च्य यथाज्ञानमिष्ट्वा यज्ञैर्यथाविधि॥४४॥
दिवं गता महात्मानः केचिन्मुक्तात्मयोगिनः। नृगो ब्राह्मणशापेन कृकलासत्वमागतः॥४५॥
धृष्टश्च धृष्टकेतुश्च यमबालश्च वीर्यवान्। रणधृष्टश्च ते पुत्रास्त्रयः परमधार्मिकः॥४६॥
आनर्तो नाम शर्यातेः सुकन्या नाम दारिका। आनर्तस्याभवत् पुत्रो रोचमानः प्रतापवान्॥४७॥
रोचमानस्य रेवोभूद्रेवाद्रैवत एव च। ककुद्मी चापरो ज्येष्ठपुत्रः पुत्रशतस्य तु॥४८॥
रेवती यस्य सा कन्या पत्नी रामस्य विश्रुता। नरिष्यन्तस्य पुत्रोभूज्जितात्मा तु महाबली॥४९॥
नाभागादंबरीषस्तु विष्णुभक्तः प्रतापवान्। ऋतस्तस्य सुतः श्रीमान्सर्वधर्मविदांवरः॥५०॥
कृतस्तस्य सुधर्माभूत्पृषितो नाम विश्रुतः। करूषस्य तु कारूषाः सर्वे प्रख्यातकीर्तयः॥५१॥
पृषितो हिंसयित्वा गां गुरोः प्रापसुकल्मषम्। शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्येति विश्रुतः॥५२॥
दिष्टपुत्रस्तु नाभागस्तस्मादपि भलंदनः। भलंदनस्य विक्रांतो राजासीदजवाहनः॥५३॥

नल और नल से नभ पैदा हुए। नभ से पुण्डरीक और उनसे क्षेमधन्वा नामक पुत्र हुआ।।३९।। उनका पुत्र प्रतापी और वीर देवानीक हुआ। उनका पुत्र अहीनर और उसका पुत्र सहस्राश्व हुआ। उससे चन्द्रावलोक और उससे तारापीठ पुत्र हुआ। उसका पुत्र चन्द्रगिरि हुआ।।४०-४१।। उसका पुत्र भानुचन्द्र हुआ। उसका श्रुतायु हुआ। वह वृहद्बल नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस शक्तिशाली राजा को सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु ने महाभारत के युद्ध में मार डाला था।।४२।। ये इक्ष्वाकु वंश के उत्तराधिकारी राजा हुए। इस वंश में प्रधान राजाओं के नामों का उल्लेख किया गया है।।४३।। इन सब ने शिव का ज्ञान प्राप्त किया। अपने ज्ञान के अनुसार इन्होंने शिव की पूजा करके विधिपूर्वक यज्ञों को किया। ये सब महात्मा स्वर्ग को प्राप्त हुए। उनमें से कुछ मुक्त आत्मा और योगी थे। एक ब्राह्मण के श्राप से राजा नृग गिरगिट की योनि को प्राप्त हुए।।४४-४५।। घृष्ट के तीन पुत्र हुए उनके नाम थे घृष्टकेतु प्रतापी यमबाल और रणधृष्ट हुए। ये परम धार्मिक थे।।४६।। शर्याति के एक पुत्र आनर्त और एक कन्या सुकन्या नाम की थी। आनर्त का पुत्र प्रतापी रोचमान हुआ।।४७।। रोचमान से रेव हुआ। उससे रैवत नामक पुत्र हुआ। रेव से रैवत और ककुद्मी जो रेवत के सौ पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र था। उसकी कन्या रेवती बलराम की पत्नी थी। नरिष्य का पुत्र जितात्मा था।।४८-४९।। नाभाग से प्रतापी विष्णु भक्त अंबरीष पैदा हुए। उसका पुत्र श्रीमान ऋत हुआ जो कि धर्म को जानने वालों में सबसे श्रेष्ठ था। ऋत का पुत्र सुधर्मा हुआ जो कि पृषित नाम से प्रसिद्ध हुआ। करुष के पुत्र कारूष के नाम से प्रसिद्ध हुए।।५०-५१।। पृषित ने अपने गुरु की गाय की हत्या करके महान पाप किया। यह प्रसिद्ध है कि वह अपने गुरु च्यवन के शाप से शूद्रत्व को प्राप्त हुआ।।५२।। दिष्ट का पुत्र नाभाग था। उसका पुत्र भलंदन हुआ। उसका पुत्र अजवाहन था जो कि बहुत वीर

एते समासतः प्रोक्ता मनुपुत्रा महाभुजाः। इक्ष्वाकोः पुत्रपौत्राद्या ऐलस्याथ वदामि वः॥५४॥

सूत उवाच

ऐलः पुरूरवा नाम रुद्रभक्तः प्रतापवान्। चक्रे त्वकण्टकं राज्यं देशे पुण्यतमे द्विजाः॥५५॥
उत्तरे यमुनातीरे प्रयागे मुनिसेविते। प्रतिष्ठानाधिपः श्रीमान्प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठितः॥५६॥
तस्य पुत्राः सप्त भवन्सर्वे विततते‌जसः। गंधर्वलोकविदिता भवभक्ता महाबलाः॥५७॥
आयुर्मायुरमायुश्च विश्वायुश्चैव वीर्यवान्। श्रुतायुश्च शतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुताः॥५८॥
आयुषस्तनया वीराः पंचैवासन्महौजसः। स्वर्भानुतनयायां ते प्रभायां जज्ञिरे नृपाः॥५९॥
नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः। नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः॥६०॥
उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः। यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पंचमोऽन्धकः॥६१॥
विजातिश्चेति षडिमे सर्वे प्रख्यातकीर्तयः। यतिर्ज्येष्ठश्च तेषां वै ययातिस्तु ततोऽवरः॥६२॥
ज्येष्ठस्तु यतिर्मोक्षार्थी ब्रह्मभूतोऽभवत्प्रभुः। तेषां ययातिःपंचानां महाबलपराक्रमः॥६३॥
देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः। शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः॥६४॥
यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत। तावुभौ शुभकर्माणौ स्तुतौ विद्याविशारदौ॥६५॥
द्रुह्यं चानुं च पुरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। ययातये रथं तस्मै ददौ शुक्रः प्रतापवान्॥६६॥
तोषितस्तेन विप्रेन्द्रः प्रीतः परमभास्वरम्। सुसंगं कांचनं दिव्यमक्षये च महेषुधी॥६७॥

था।।५३।। इस प्रकार मनु के उत्तराधिकारी शक्तिशाली पुत्रों का वर्णन और इक्ष्वाकु के वंश का कुछ विस्तार में वर्णन किया। अब मैं तुम लोगों को ऐल वंश का वर्णन करूँगा।।५४।।

सूत बोले

हे ब्राह्मणों! इला का पुत्र पुरूरवा प्रतापी और रुद्र का भक्त था। उसने सबसे पुण्यतम क्षेत्र, मुनियों से सेवित प्रयाग में यमुना के किनारे निष्कंटक राज्य किया जो स्थान यमुना के उत्तर किनारे था। वह प्रतिष्ठान का स्वामी था और वहाँ पर प्रतिष्ठित था।।५५-५६।। उसके छः शक्तिशाली वीर पुत्र थे। वे गन्धर्व लोक में प्रसिद्ध थे और शिव के भक्त थे। वे सब उर्वशी के दिव्य पुत्र थे। उनके नाम आयु, मायु, अमायु, विश्वायु, श्रुतायु और शतायु, थे।।५७-५८।। आयु के महा शक्तिशाली पाँच पुत्र थे। वे स्वर्भानु की पुत्री प्रभा से पैदा हुए थे।।५९।। उनमें से सबसे प्रसिद्ध नहुष प्रथम पुत्र था। वह सब लोकों में प्रसिद्ध और धर्मज्ञ था। नहुष के उत्तराधिकारी छः थे और वे सब इन्द्र के समान तेजस्वी थे।।६०।। वे महा शक्तिशाली राजा पितृ की कन्या विरिजा से पैदा हुए थे। उनके नाम थे—यति, ययाति, संयाति, आयाति, अन्धक, विजाति। ये सब बहुत प्रसिद्ध थे। यति उन सब में ज्येष्ठ था। ययाति उनसे छोटा था।।६१-६२।। ज्येष्ठ पुत्र यति मुक्ति का इच्छुक था। वह ब्रह्ममय हो गया। शेष पाँचों में ययाति सबसे छोटा किन्तु महाबली और पराक्रमी था।।६३।। उसने शुक्र की पुत्री देवयानी से विवाह किया। वह वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा आसुरी हो गयी।।६४।। देवयानी के दो पुत्र हुए। यदु और तुर्वसु हुए। वे दोनों शुभ कर्म करने वाले और विद्या में विशारद थे।।६५।। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने द्रुह्य, अनु और पुरु को जन्म दिया। प्रतापी शुक्र ने ययाति की प्रार्थना पर उनको एक रथ दे दिया जो कि सोने का बना हुआ था और बहुत

युक्तं मनोजवैरश्वैर्येन कन्यां समुद्वहन्। स तेन रथमुख्येन षण्मासेनाजयन्महीम्॥६८॥
ययातिर्युधि दुर्धर्षो देवदानवमानुषैः। भवभक्तस्तु पुण्यात्मा धर्मनिष्ठः समंजसः॥६९॥
यज्ञयाजी जितक्रोधः सर्वभूतानुकंपनः। कौरवाणां च सर्वेषां स भवद्रथ उत्तमः॥७०॥
यावन्नरेन्द्रप्रवरः कौरवो जनमेजयः। पूरोर्वंशस्य राज्ञस्तु राज्ञः पारीक्षितस्य तु॥७१॥
जगाम स रथो नाशं शापाद्गर्गस्य धीमतः। गर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः॥७२॥
अक्रूरं हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः। स लोहगंधी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः॥७३॥
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित्। ततः स दुःखसंतप्तो न लेभे संविदं क्वचित्॥७४॥
जगाम शौनकमृषिं शरण्यं व्यथितस्तदा। इन्द्रेतिर्नाम विख्यातो योऽसौ मुनिरुदारधीः॥७५॥
याजयामास चेंद्रेतिस्तं नृपं जनमेजयम्। अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमाः॥७६॥
स लोहगंधान्निर्मुक्त एनसा च महायशाः। यज्ञस्यावभृथे मध्ये यातो दिव्यो रथः शुभः॥७७॥
तस्माद्वंशात्परिभ्रष्टो वसोश्चेदिपतेः पुनः। दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः॥७८॥
ततो हत्वा जरासंधं भीमस्तं रथमुत्तमम्। प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनंदनः॥७९॥

सूत उवाच

अभ्यषिंचत्पुरुं पुत्रं ययातिर्नाहुषः प्रभुः। कृतोपकारस्तेनैव पुरुणा द्विजसत्तमाः॥८०॥

चमकीला था। और दो अक्षय महान धनुष दे दिया।।६६-६७।। उस रथ में घोड़े जुड़ते थे और रथ मन के समान वेग से दौड़ता था। उसी रथ से अपनी दुल्हन को वह अपने घर लाया था। उस रथ से उसने छः महीने के भीतर पृथ्वी को जीत लिया।।६८।। ययाति देवताओं, दानवों और मनुष्यों से युद्ध में दुधर्ष था। वह पुण्यात्मा शिव का भक्त और धर्मनिष्ठ था। उसने यज्ञों को किया। उसने क्रोध को जीता। वह सब प्राणियों के प्रति दयालु था। वह रथ सब कौरवों का उत्तम रथ था। पुरु वंश से उत्पन्न राजा परीक्षित के पुत्र से वह रथ नष्ट हो गया।।६९-७१।। राजा जनमेजय ने गर्ग के पुत्र अक्रूर को परेशान किया और उसको मार डाला। तब उनको ब्रह्महत्या का पाप लगा। वह लोहगंधी राजर्षि इधर-उधर भागने लगा। देश की जनता और नागरिकों द्वारा बहिष्कृत किये जाने पर वह प्रसन्नता नहीं प्राप्त कर सका। वह दुःख से दुःखी था और कहीं से ज्ञान नहीं प्राप्त कर सका। दुःखी होकर वह तब शरण देने के योग्य शौनक ऋषि की शरण में गया। वह उदार हृदय वाले मुनि इन्द्रेति नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने राजा जनमेजय की ओर से यज्ञ पूरा किया। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! राजा जनमेजय को पवित्र करने के लिए एक अश्वमेघ यज्ञ किया।।७२-७६।। महा यशस्वी राजा लोहगंध से और ब्रह्महत्या के पाप से छूट गया और यज्ञ के अवभृथ के बीच वह दिव्य और उत्तम रथ गायब हो गया। उस वंश से गायब वह रथ चेदि देश के राजा वसु को प्रसन्न इन्द्र द्वारा दे दिया गया। उससे वृहद्रथ ने उस रथ को प्राप्त किया। उसके बाद वृहद्रथ के उत्तराधिकारी जरासंध को मारकर कौरव वंश के वीर भीम ने उस रथ को प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण को दे दिया।।७७-७९।।

सूत बोले

नहुष के पुत्र राजा ययाति ने अपने पुत्र पुरु को राजा बनाया। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! उसी राजा पुरु ने उसी उपकार से अपने छोटे पुत्र पुरु को पहले उसने राजा बनाया। ब्राह्मण सहित सब वर्णों के लोगों ने राजा से कहा,

अभिषेक्तुकामं च नृपं पुरुं कनीयसम्। ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन्॥८१॥
कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्याः सुतं प्रभो।
ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति॥८२॥
एते संबोधयामस्त्वां धर्मं च अनुपालय॥८३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ययातिकथा नाम
षट्षष्टितमोऽध्यायः॥६६॥

"जो अपने सबसे छोटे पुत्र को राजा बनाना चाहता था।" "हे प्रभू! यदु के बड़े पुत्र के रहते हुए उसके अधिकार की उपेक्षा करके सबसे छोटा पुत्र कैसे राज्य का राजा होने के योग्य हो सकता है क्योंकि यदु देवयानी का पुत्र है और शुक्र का पौत्र है। हम लोग आपको सम्बोधित करते हैं कि आप धर्म का पालन करें"।।८०-८३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में ययाति की कथा
नामक छियासठवाँ अध्याय समाप्त॥६६॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

सोमवंशे ययातिचरितम्

ययातिरुवाच

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः। ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं न देयं मे कथंचन॥१॥
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः। प्रतिकूलमतिश्चैव न स पुत्रः सतां मतः॥२॥
मातापित्रोर्वचनकृत्सद्भिः पुत्रः प्रशस्यते। स पुत्रः पुत्रवद्यस्तु वर्तते मातृपितृषु॥३॥
यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि च। द्रुह्येन चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम्॥४॥
पुरुणा च कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः। कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम॥५॥
शुक्रेण मे समादिष्टा देवयान्याः कृते जरा। प्रार्थितेन पुनस्तेन जरा संचारिणी कृता॥६॥
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम्। पुत्रो यस्त्वानुवर्तेत स ते राज्यधरस्त्विति॥७॥
भवंतोऽप्यनुजानंतु पूरू राज्येऽभिषिच्यते।

प्रकृतय ऊचुः

यः पुत्रो गुणसंपन्नो मातापित्रोर्हितः सदा॥८॥

सरसठवाँ अध्याय

सोमवंश में ययाति चरित

ययाति बोले

ब्राह्मण सहित सब वर्णों के लोग मेरी बातों को सुनें कि मैंने ज्येष्ठ पुत्र यदु को राज्य न देने का निर्णय क्यों किया।।१।। मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदु ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया। पुत्र यदि अपनी बुद्धि से पिता की आज्ञा पालन के विरुद्ध हो तो वह बात सज्जन पुरुषों द्वारा मान्य नहीं है।।२।। जो पुत्र अपने माता-पिता के वचन को मानता है उसको सज्जन लोग सत्पुत्र कहकर उसकी प्रशंसा करते हैं। वह पुत्र जो अपने माता-पिता के प्रति पुत्रवत् व्यवहार करता है वही पुत्र है।।३।। यदु, तुर्वसु, द्रुह्य और अनु द्वारा मेरा बहुत अनादर किया गया है।।४।। पुरु ने मेरे निर्देश को विशेष रूप से माना और उसका पालन किया। मेरा सबसे छोटा पुत्र यदु ही है जिसने मेरी बुढ़ाई को पार लगाया।।५।। बुढ़ाई द्वारा आक्रमण किये जाने पर देवयानी के कारण शुक्र ने मुझे बुढ़ाई की ओर डाला। जब मैंने उससे प्रार्थना की तो उसने बुढ़ाई को फिर संचारिणी (चलने वाली) कर दिया।।६।। शुक्र ने स्वयं यह वर दिया "वह पुत्र जो तुम्हारे अनुकूल आचरण करता है वही तुम्हारे राज्य का उत्तराधिकारी होगा।" हे लोगों! आप लोग इसको मान्यता दें। पुरु का राज्य में राजा पद से अभिषेक हो और वह राजा बने।

प्रजागण बोले

जो पुत्र गुणों से युक्त हो और अपने माता-पिता के लिए सदा हितकारक हो और सब कल्याण के योग्य है, वह चाहे सबसे छोटा पुत्र क्यों न हो वही उत्तराधिकारी होता है। जो तुम्हारे वचन को पालन करने

सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः। अर्हः पूरुरिदं राज्यं यः सुतो वाक्यकृत्तव॥९॥
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं कर्तुमन्यथा।

सूत उवाच

एवं जानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा॥१०॥
अभिषिच्य ततो राज्ये पुरुं स सुतमात्मनः। दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं पुत्रमादिशत्॥११॥
दक्षिणायामथो राजा यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयेत्। प्रतीच्यामुत्तरस्यां तु द्रुह्यं चानुं च तावुभौ॥१२॥
सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम्। व्यभजच्च त्रिधा राज्यं पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा॥१३॥
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु हर्षनिर्भरमानसः। प्रीतिमानभवद्राजा भारमावेश्य बंधुषु॥१४॥
अत्र गाथा महाराज्ञा पुरा गीता ययातिना। याभिः प्रत्याहरेत्कामान्सर्वतोंगानि कूर्मवत्॥१५॥
ताभिरेव नरः श्रीमान्नान्यथा कर्मकोटिकृत्। न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति॥१६॥
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते। यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः॥१७॥
नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्। यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्॥१८॥
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा। यदा परान्न बिभेति परे चास्मान्न बिभ्यति॥१९॥
यदा न निन्देन्न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा। या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः॥२०॥

वाला पुरु है, वही राज्य का उत्तराधिकारी होने के योग्य है। शुक्र द्वारा दिये गये वर को अन्यथा नहीं किया जा सकता।।७-१०।।

सूत बोले

इस प्रकार नहुष के पुत्र के प्रति प्रसन्न देशवासियों के ऐसा कहने पर अपने पुत्र पुरु को अपने राज्य का राजा बनाकर अपने पुत्र तुर्वसु को दक्षिण-पूर्व सीमा का प्रधान बना दिया।।११।। उसी प्रकार राजा ने ज्येष्ठ पुत्र यदु को दक्षिण दिशा में लगा दिया। पश्चिम दिशा में द्रुह्य को और उत्तर दिशा में अनु को नियुक्त कर दिया।।१२।। सात द्वीपों और सागरों के सहित पृथ्वी को जीतकर राजा ने अपने पुत्रों में पूरे राज्य को तीन भागों में बाँट दिया।।१३।। पुत्रों में इस प्रकार राज्य की श्री को संक्रमित करके बन्धुओं पर अपना भार डालकर राजा प्रसन्न हो गये।।१४।। महाराज ययाति द्वारा पहले यह गाथा गायी गयी है। कछुआ द्वारा अपने सब अंगों को अपने भीतर समेट लेने की तरह जो व्यक्ति अपनी सब कामनाओं को अपने भीतर समेट लेता है वही मनुष्य श्रीमान होता है अन्यथा नहीं। चाहे वह करोड़ों शुभ कर्मों को करे। काम के उपयोग से (इच्छा) कभी शान्त नहीं होती है। जैसे कि अग्नि में घी डालने से वह और बढ़ जाती है। जो कुछ अन्न या जौ पृथ्वी धारंण करती है यह सब सोना, पशु और स्त्रियाँ एक व्यक्ति के असंख्य कामनाओं के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए मनुष्य को अपनी कामनाओं से मुक्त होना चाहिए। जब मनुष्य किसी प्राणी के प्रति पापपूर्ण भाव, मन, वाणी और शरीर से नहीं रखता है तब वह ब्रह्म को प्राप्त होता है। जब मनुष्य किसी से नहीं डरता है, जब व्यक्ति किसी की निन्दा नहीं करता है और किसी से द्वेष नहीं रखता है तब उसको ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जो दुष्टों द्वारा

योसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यंति जीर्यतः॥२१॥
चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका निरुपद्रवा। जीर्यंति देहिनः सर्वे स्वभावादेव नान्यथा॥२२॥
जीविताशा धनाशा च जीयतोपि न जीर्यते।
यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्॥२३॥
तृष्णाक्षयसुखस्यैतत्कलां नार्हति षोडशीम्। एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम्॥२४॥
भृगुतुंगे तपस्तेपे तत्रैव च महायशाः। साधयित्वा त्वनशनं सदारः स्वर्गमाप्तवान्॥२५॥
तस्य वंशास्तु पंचैते पुण्या देवर्षिसत्कृताः।
यैर्व्याप्ता पृथिवी कृत्स्ना सूर्यस्येव मरीचिभिः॥२६॥
धनी प्रजावानायुष्मान्कीर्तिमांश्च भवेन्नरः। ययातिचरितं पुण्यं पठञ्छृण्वंश्च बृद्धिमान्॥२७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥२८॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सोमवंशे ययातिचरितं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥६७॥

कठिनाई से भी नहीं छोड़ी जा सकती और जो बूढ़ा होने पर भी नहीं बूढ़ी होती है। वह तृष्णा प्राणों को हर लेने वाला रोग है। उसके छोड़ने से ही सुख मिलता है। बूढ़े होने से व्यक्ति के बल, दाँत, नेत्र और कान बूढ़े हो जाते हैं लेकिन तृष्णा बुढ़ाई में भी बची रहती है और जवान होती जाती है। मनुष्य की प्रत्येक वस्तु स्वभाव से ही बूढ़ी होती जाती है किन्तु बूढ़े होने पर भी जीवित रहने की आशा और धन की आशा बूढ़ी नहीं होती है। संसार में इच्छाओं की पूर्ति से प्राप्त प्रसन्नता और स्वर्ग की महान दिव्य प्रसन्नता, तृष्णा के नाश के सुख के सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं होती। ऐसा कहकर वह राजर्षि अपनी रानी के साथ वन में चला गया।।१५-२४।। उसने भृगुतुंग की चोटी पर तपस्या की। वहाँ उस महातेजस्वी राजा ने अनशन करके रानियों सहित स्वर्ग को प्राप्त किया। उसके उत्तराधिकारियों का वंश जिसमें पाँच पवित्र राजा हुए हैं वे दिव्य देवर्षियों द्वारा सम्मानित किये गये। जिन राजाओं द्वारा यह सम्पूर्ण पृथ्वी उसी तरह व्याप्त है जैसे सूर्य की किरणों द्वारा पृथ्वी व्याप्त है। जो बुद्धिमान पुरुष इस ययाति के पुण्यदायक चरित्र को पढ़ता है या सुनता है, वह आयुष्मान और कीर्तिमान होता है। वह सब पापों से मुक्त होकर शिवलोक में सम्मानित होता है।।२५-२८।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में सोमवंश में ययाति चरित नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त॥६७॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

वंशानुवर्णनम्

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः। संक्षेपेणानुपूर्व्याच्च गदतो मे निबोधत॥१॥
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः। सहस्रजित्सुतो ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोजको लघुः॥२॥
सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिवः। सुताः शतजितः ख्यातास्त्रयः परमकीर्तयः॥३॥
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः। हैहयस्य तु दायादो धर्म इत्यभिविश्रुतः॥४॥
तस्य पुत्रोभवद्विप्रा धर्मनेत्र इति श्रुतः। धर्मनेत्रस्य कीर्तिस्तु संजयस्तस्य चात्मजः॥५॥
सञ्जयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम धार्मिकः। आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान्॥६॥
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः। दुर्दमस्य सुतो धीमान्धनको नाम विश्रुतः॥७॥
धनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसंमताः। कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च॥८॥
कृतौजाश्च चतुर्थोभूत्कार्तवीर्यस्ततोर्जुनः। जज्ञे बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोत्तमः॥९॥
तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युर्नारायणात्मकः। तस्य पुत्रशतान्यासन्पंच तत्र महारथाः॥१०॥
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो मनस्विनः। शूरश्च सूरसेनश्च धृष्टः कृष्णस्तथैव च॥११॥

अड़सठवाँ अध्याय

वंशों का वर्णन

सूत बोले

ययाति के ज्येष्ठ पुत्र तेजस्वी यदुवंश का वर्णन संक्षेप में और क्रमशः करूँगा। उसको मुझसे सुनो और समझो।।१।। देवताओं के पुत्रों के समान पाँच पुत्र यदु के हुए। उनमें से सहस्त्रजित ज्येष्ठ था। अन्य चार के नाम क्रोष्टु, नील, अजक और लघु थे।।२।। सहस्त्रजित का पुत्र सतजित था। सतजित से प्रसिद्ध परम यशस्वी तीन पुत्र हुए।।३।। उनके नाम हैहय, हय और राजा वेणुहय। हैहय का उत्तराधिकारी प्रसिद्ध धर्म था।।४।। हे ब्राह्मणों! उसका पुत्र धर्मनेत्र था और धर्मनेत्र का पुत्र कीर्ति था और उसका पुत्र संजय था।।५।। संजय का उत्तराधिकारी धार्मिक महिष्मान था। महिष्मान का पुत्र प्रतापी भद्रश्रेण्य था।।६।। भद्रश्रेण्य का वैध उत्तराधिकारी दुर्दम राजा, उसके एक बुद्धिमान पुत्र था जो धनक नाम से प्रसिद्ध था।।७।। धनक के चार पुत्र हुए और वे बहुत लोकप्रिय हुए। उनके नाम कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा थे। कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन था। उसके हजार भुजाएँ थीं। वह सात द्वीपों का उत्तम स्वामी था।।८-९।। नारायण का भक्त राम उसके मृत्यु का कारण हुआ। उसके सौ पुत्र थे। उनमें से पाँच बड़े वीर थे। वे बलवान, वीर, धर्मात्मा, मनस्वी और विद्वान थे। वे सब प्रकार के अस्त्रों के संचालन में निपुण थे। शूर, शूरसेन, धृष्ट, कृष्ण और जयध्वज। जयध्वज अवन्ती का राजा था।

जयध्वजश्च राजासीदावन्तीनां विशां पतिः। जयध्वजस्य पुत्रोभूत्तालजंघो महाबलः॥१२॥
शतं पुत्रास्तु तस्येह तालजंघाः प्रकीर्तिताः। तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः॥१३॥
वृषप्रभृतयश्चान्ये तत्सुताः पुण्यकर्मणः। वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोभवन्मधुः॥१४॥
मधोः पुत्रशतं चासीद्वृष्णिस्तस्य तु वंशभाक्।
वृष्णेस्तु वृष्णयः सर्वे मधोर्वै माधवाः स्मृताः। यादवा यदुवंशेन निरुच्यन्ते तु हैहयाः॥१५॥
तेषां पञ्च गणा ह्येते हैहयानां महात्मनाम्॥१६॥
वीतिहोत्राश्च हर्याता भोजाश्चावन्तयस्तथा। शूरसेनास्तु विख्यातास्तालजंघास्तथैव च॥१७॥
शूरश्च शुरसेनश्च वृषः कृष्णास्तथैव च। जयध्वजः पंचमस्तु विख्याता हैहयोत्तमाः॥१८॥
शूरश्च शूरवीरश्च शूरसेनस्य चानघाः। शूरसेना इति ख्याता देशास्तेषां महात्मनाम्॥१९॥
वीतिहोत्रसुतश्चापि विश्रुतोऽनर्त इत्युत। दुर्जयः कृष्णपुत्रस्तु बभूवामित्रकर्शनः॥२०॥
क्रोष्टुश्च शृणु राजर्षे वंशमुत्तमपौरुषम्। यस्यान्वये तु संभूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः॥२१॥
क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः। तस्य पुत्रोभवत्स्वाती कुशंकुस्तत्सुतोभवत्॥२२॥
अथ प्रसूतिमिच्छन्वै कुशंकुः सुमहाबलः। महाक्रतुभिरीजेसौ विविधैराप्तदक्षिणैः॥२३॥
जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः। अथ चैत्ररथो वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः॥२४॥
शशबिंदुस्तु वै राजा अन्वयाद्व्रतमुत्तमम्। चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रजाः॥२५॥
शशबिंदोस्तु पुत्राणां सहस्राणामभूच्छतम्। शंसंति तस्य पुत्राणामनंतकमनुत्तमम्॥२६॥

जयध्वज का पुत्र महा बलवान तालजंघा था।।१०-१२।। उसके एक सौ पुत्र थे। वह तालजंघा नाम से प्रसिद्ध था। उनमें से ज़्येष्ठ महाप्रतापी वीतिहोत्र राजा हुआ।।१३।। वृष और अन्य भी उसके पुत्र थे जो पुण्यकर्म करने वाले थे। वृष्णि अपने वंश का स्थापक था। उसका पुत्र मधु था।।१४।। मधु के सौ पुत्र थे और वृष्णि ज्येष्ठ पुत्र था, वह अपने वंश का संस्थापक था। वृष्णि के वंशज भी वृष्णि कहलाते थे और मधु के वंशज माधव। चूँकि ये यदु के वंश से सम्बन्धित थे इसलिए वे भी यादव कहलाते थे। महान आत्माओं के पाँच कुटुम्ब थे वे वीति होत्र, हर्यात, भोज, अवंति तथा शूरसेन थे। शूरसेन तालजंघ नाम से भी प्रसिद्ध थे। हैहय वंश में सबसे अधिक प्रसिद्ध राजा पाँच हुए हैं। उनके नाम शूर, शूरसेन, वृष्ण, कृष्ण जयध्वज हैं।।१५-१८।। शूर और शूरसेन, शूरसेन वंश के प्रसिद्ध वंशज थे। उन महात्माओं का देश शूरसेन नाम से प्रसिद्ध है।।१९।। वीतिहोत्र का पुत्र अनर्त था। कृष्ण का पुत्र दुर्जय अपने शत्रुओं का नाशकर्त्ता था।।२०।। राजर्षि कोष्ट के वंश को सुनो इस वंश में उत्तम पुरुषार्थ वाले लोग थे। इस वंश में वृष्णि के कुल में विष्णु पैदा हुआ।।२१।। क्रोष्टु के एक पुत्र था जो बहुत प्रसिद्ध था, उसका नाम वृजिनीव था। उसका पुत्र स्वाती और उसका पुत्र कुशंकु हुआ।।२२।। महा बलवान कुशंकु ने सन्तान की इच्छा से विभिन्न प्रकार के यज्ञों को दक्षिणा द्रव्यों से किया।।२३।। उसका पुत्र चित्ररथ शुभ कर्मों से युक्त था। चित्ररथ का पुत्र शशबिन्दु था। उसने विपुल धन का दान करके यज्ञों को किया। उसने उत्तम पवित्र धार्मिक कृत्यों को किया। वह महाशक्तिशाली और बहुसंख्यक प्रजा का स्वामी चक्रवर्ती सम्राट हुआ।।२४-२५।। शशबिन्दु के हजार पुत्र थे। उनके पुत्रों में अनन्तक सबसे अच्छा था। जिसको लोग

अनंतकात्सुतो यज्ञो यज्ञस्य तनयो धृतिः। उशनास्तस्य तनयः संप्राप्य तु महीमिमाम्॥२७॥
आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिकः। स्मृतश्चोशनसः पुत्रः सितेषुर्नाम पार्थिवः॥२८॥
मरुतस्तस्य तनयो राजर्षिर्वंशवर्धनः। वीरः कंबलबर्हिस्तु मरुस्तस्यात्मजः स्मृतः॥२९॥
पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान्कंबलबर्हिषः। निहत्य रुक्मकवचो वीरान्कवचिनो रणे॥३०॥
धन्विनो निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम्।
अश्वमेधे तु धर्मात्मा ऋत्विग्भ्यः पृथिवीं ददौ॥३१॥
जज्ञे तु रुक्मकवचात्परावृत्परवीरहा। जज्ञिरे पंच पुत्रास्तु महासत्त्वाः परावृतः॥३२॥
रुक्मेषुः पृथुरुकमश्च ज्यामघः परिघं हरिः। परिघं च हरिं चैव विदेहेषु पिता न्यसत्॥३३॥
रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयात्। तैस्तु प्रव्राजितो राजा ज्यामघोऽवसदाश्रमे॥३४॥
प्रशांतः स वनस्थोपि ब्राह्मणैरेव बोधितः। जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी॥३५॥
नर्मदातीरमेकाकी केवलं भार्यया युतः। ऋक्षवंतं गिरिं गत्वा त्यक्तमन्यैरुवास सः॥३६॥
ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या शीलवती सती। सा चैव तपसोग्रेण शैब्या वै संप्रसूयत॥३७॥
सुतं विदर्भं सुभगा वयःपरिणता सती। राजपुत्रसुतायां तु विद्वांसौ क्रथकैशिकौ॥३८॥
पुत्रौ विदर्भराजस्य शूरौ रणविशारदौ। रोमपादस्तृतीयश्चः बभ्रुस्तस्यात्मजः स्मृतः॥३९॥
सुधृतिस्तनयस्तस्य विद्वान्परमधार्मिकः।
कौशिकस्तनयस्तस्मात्तस्माच्चैद्यान्वयः स्मृतः॥४०॥

विशेष रूप से उत्तम कहते थे।।२६।। अनन्तक का पुत्र यज्ञ हुआ। यज्ञ का पुत्र धृति हुआ। इसका पुत्र उशना था। उस महावीर राजा ने राज्य पाने के बाद सौ अश्वमेष यज्ञ किया। उशना का पुत्र शितेषु नाम का राजा हुआ।।२७-२८।। उसका पुत्र मरुत राजर्षि और अपने वंश को बढ़ाने वाला हुआ। मरुत का वीर पुत्र कंबलबर्हि हुआ।।२९।। कंबलबर्हि का पुत्र रुक्मकवच एक विद्वान राजा हुआ। उसने युद्ध में कवच और धनुर्धारी वीरों को पैने बाणों से वध करके उत्तम कीर्ति को प्राप्त किया। उस धर्मात्मा राजा ने अश्वमेघ यज्ञकर्ताओं को भूमि दान में दी।।३०-३१।। रुक्मकवच के परम वीरों को मारने वाला परावृत नामक पुत्र हुआ। उसके महाशक्तिशाली पाँच पुत्र पैदा हुये।।३२।। वे रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि। परिघ और हरि को पिता ने विदेह प्रदेश में बसा दिया।।३३।। रुक्मेषु राजा हुआ और पृथुरुक्म उसका आश्रित हुआ। राजा ज्यामघ उन लोगों द्वारा हटने को बाध्य हो सिंहासन का त्याग करके आश्रम में रहने लगा।।३४।। बन में स्थित होने पर भी वह शान्त था। वह ब्राह्मणों द्वारा ज्ञान प्राप्त करता था। उसके बाद उसने अपना धनुष लेकर ध्वज लगे हुए अपने रथ पर अन्य देश को चला गया। वह नर्मदा नदी के किनारे अपनी रानी के साथ गया। उसने ऋक्षवंत पर्वत पर जाकर सब को छोड़कर निवास किया और अपना दिन बिताया।।३५-३६।। ज्यामघ की पत्नी शैव्या सती और शीलवती थी। कठिन तपस्या के बाद उसने अपनी ढलती उम्र में विदर्भ नाम पुत्र को जन्म दिया। विदर्भ राजा के दो विद्वान पुत्र क्रथ और कैशिक उत्पन्न हुए। वे दोनों वीर और युद्ध करने में दक्ष थे। तीसरा पुत्र रोमपाद था। उसका पुत्र बभ्रु हुआ।।३७-३९।। उसका पुत्र सुभृति विद्वान और परम धार्मिक राजा था। उसका पुत्र कौशिक

क्रथो विदर्भस्य सुतः कुंतिस्तस्यात्मजोऽभवत्। कुंतेर्वृतस्ततो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्॥४१॥
रणधृष्टस्य च सुतो निधृतिः परवीरहा। दशार्हो नैधृतो नाम्ना महारिगणसूदनः॥४२॥
दशार्हस्य सुतो व्याप्तो जीमूत इति तत्सुतः। जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः सुतः॥४३॥
अथ भीमरथस्यासीत्पुत्रो नवरथः किल। दानधर्मरतो नित्यं सत्यशीलपरायणः॥४४॥
तस्य चासीदृढरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः। तस्मात्करंभः संभूतो देवरातोऽभवत्ततः॥४५॥
देवरातादभूद्राजा देवरातिर्महायशाः। देवगर्भोपमो जज्ञे यो देवक्षत्रनामकः॥४६॥
देवक्षत्रसुतः श्रीमान् मधुर्नाम महायशाः। मधूनां वंशकृद्राजा मधोस्तु कुरुवंशकः॥४७॥
कुरुवंशादनुस्तस्मात्पुरुत्वान्पुरुषोत्तमः। अंशुर्जज्ञे च वैदर्भ्यां भद्रवत्यां पुरुत्वतः॥४८॥
ऐक्ष्वाकीमवहच्चांशुः सत्त्वस्तस्मादजायत। सत्त्वात्सर्वगुणोपेतः सात्त्वतः कुलवर्धनः॥४९॥
ज्यामघस्य मया प्रोक्ता सृष्टिर्वै विस्तरेण वः। यः पठेच्छृणुयाद्वापि निसृष्टिं जयामघस्य तु॥५०॥
प्रजीवत्येति वै स्वर्गं राज्यं सौख्यं च विंदति॥५१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वंशानुवर्णनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

था जो चैद्य वंश का प्रवर्तक था।।४०।। विदर्भ का पुत्र क्रथ था। उसका पुत्र कुंति और कुंति का पुत्र वृत और उसका पुत्र प्रतापी रणधृष्ट हुआ। उसका पुत्र निधृति शत्रुओं का नाशक था। नैधृति का पुत्र दशार्ह था जो महान् शत्रुहन्ता था।।४१-४२।। दशार्ह का पुत्र व्याप्त था। उसका पुत्र जीगूत था। जीमूत का पुत्र विकृति और उसका पुत्र भीमरथ था।।४३।। भीमरथ का पुत्र नवरथ था जो कि सदा दान और धर्म में रत था। वह सत्य और सदाचार के प्रति समर्पित था।।४४।। उसका पुत्र दृढरथ था। उसका पुत्र शकुनि हुआ। उससे करम्भ पैदा हुआ। उसका पुत्र देवरात हुआ।।४५।। देवरात से देवराति नामक पुत्र हुआ जो महा यशस्वी राजा था। वह देवताओं के पुत्र के समान था। उसका पुत्र देवक्षत्र हुआ।।४६।। देवक्षत्र का पुत्र महा यशस्वी श्रीमान मधु हुआ। वह मधु वंश का संस्थापक था। मधु से कुरुवंशक पुत्र हुआ।।४७।। कुरुवंशक से अनु और उससे पुरुत्वान पुत्र हुआ। पुरुत्वान से विदर्भ की भद्रवती रानी से अंशु पैदा हुआ।।४८।। अंशु ने ऐक्ष्वाकी से विवाह किया। उससे सत्त्व नामक पुत्र पैदा हुआ। सत्त्व से सर्वगुण सम्पन्न कुलवर्धन सात्त्वत पुत्र पैदा हुआ। मैंने ज्यामघ के वंश का विस्तार विस्तृत रूप में बताया। जो कोई इसको पढ़े या सुने वह स्वर्ग, राज और सुख तथा लंबी आयु को प्राप्त करता है।।४९-५१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में वंशों का वर्णन नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त॥६८॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

सोमवंशानुकीर्तनम्

सूत उवाच

सात्त्वतः सत्यसंपन्नः प्रजज्ञे चतुरः सुतान्। भजनं भ्राजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम्॥१॥
अंधकं च महाभागं वृष्णिं च यदुनंदनम्। तेषां निसर्गांश्चतुरः शृणुध्वं विस्तरेण वै॥२॥
संजय्यां भजनाच्चैव भ्राजमानाद्विजज्ञिरे। अयुतायुः शतायुश्च बलवान् हर्षकृत्स्मृतः॥३॥
तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः। पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्मरन्॥४॥
तस्य बभ्रुरिति ख्यातः पुण्यश्लोको नृपोत्तमः। अनुवंशपुराणज्ञा गायंतीति परिश्रुतम्॥५॥
गुणान्देवावृधस्याथ कीर्तयंतो महात्मनः। यथैव शृणुमो दूरात् संपश्यामस्तथांतिकात्॥६॥
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः। पुरुषाः पंचषष्टिं तु षट् सहस्राणि चाष्ट च॥७॥
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि। यज्वा दानमतिर्वीरो ब्रह्मण्यस्तु दृढव्रतः॥८॥
कीर्तिमांश्च महातेजाः सात्त्वतानां महारथः। तस्यान्ववाये संभूता भोजा वै दैवतोपमाः॥९॥
गांधारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतुः। गांधारी जनयामास सुमित्रं मित्रनंदनम्॥१०॥
माद्री लेभे च तं पुत्रं ततः सा देवमीढुषम्। अनमित्रं शिनिं चैव तावुभौ पुरुषोत्तमौ॥११॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

सोमवंश का कीर्तन

सूत बोले

सात्त्वत सत्य से युक्त थे। उनके चार पुत्र हुये। तेजस्वी भजन, दिव्य राजा देवावृध, और महाभाग्यवान अन्धक और यदु में सब को प्रसन्न करने वाले वृष्णि इन चारों के वंश विस्तार को तुम लोग सुनो।।१-२।। शतायु, अयुतायु और शक्तिशाली हर्षकृत ये तीन पुत्र संजयी और तेजस्वी भजन से पैदा हुये।।३।। सात्त्वत के चार पुत्रों में राजा देवावृध ने परम तपस्या की और यह स्मरण करते हुए कहा कि, "मुझको सब गुणों से सम्पन्न पुत्र हो"।।४।। अनुवंश के पुराण को जानने वाले ऐसा गाते हैं कि उसका पुत्र बभ्रु हुआ। वह एक कीर्ति प्राप्त उत्तम राजा हुआ।।५।। देवावृध के गुणों को बखान, महान आत्मा वाले करते थे। जैसा हम लोग दूर से सुनते हैं वैसा हम नजदीक से भी उनको देखते हैं।।६।। बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ था और देवावृध देवताओं के समान था। बभ्रु और देवावृध से चौदह हजार पैंसठ व्यक्तियों ने अमृतत्व प्राप्त किया था। उसने यज्ञों को किया। दान देने में उसकी रुचि थी। वह वीर था और ब्राह्मणों के प्रति उदार था। वह धार्मिक कृत्यों में दृढ़ था। वह कीर्तिमान और महान तेजस्वी था। सात्वतों में वह महान वीर था। उसके वंश में देवताओं के समान भोज लोग उत्पन्न हुये।।७-९।। गांधारी और माद्री ये दो वृष्णि की पत्नियाँ थीं। गंधारी ने सुमित्र और मित्रनंदन नाम के दो पुत्रों को पैदा किया। माद्री ने देवमीढुष नामक पुत्र को पैदा किया। उसके बाद अनमित्र और शिनि नामक दो उत्तम

अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः। प्रसेनश्च महाभागः सत्राजिच्च सुतावुभौ॥१२॥
तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत्। स्यमंतको नाम मणिर्दत्तस्तस्मै विवस्वता॥१३॥
पृथिव्यां सर्वरत्नानामसौ राजाऽभवन्मणिः। कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनेन सहैव सः॥१४॥
वधं प्राप्तो सहायश्च सिंहादेव सुदारुणात्। अथ पुत्रः शिनेर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनंदनात्॥१५॥
सत्यवाक् सत्यसंपन्नः सत्यकस्तस्य चात्मजः। सात्यकिर्युयुधानस्तु शिनेर्नप्ता प्रतापवान्॥१६॥
असंगो युयुधानस्य कुणिस्तस्य सुतोऽभवत्। कुणेर्युगंधरः पुत्रः शैनेया इति कीर्तिताः॥१७॥
माद्याः सुतस्य संजज्ञे सुतो वार्ष्णिर्युधाजितः। श्वफल्क इति विख्यातस्त्रैलोक्यहितकारकः॥१८॥
श्वफल्कश्च महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्तते। नास्ति व्याधिभयं तत्र नावृष्टिभयमप्युत॥१९॥

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामवाप सः।
गांदिनीं नाम काश्यो हि ददौ तस्मै स्वकन्यकाम्॥२०॥

सा मातुरुदरस्था वै बहून्वर्षगणान्किल। वसंती न च संजज्ञे गर्भस्था तां पिताऽब्रवीत्॥२१॥
जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थं चाभितिष्ठसि। प्रोवाच चैनं गर्भस्था सा कन्या गांदिनी तदा॥२२॥
वर्षत्रयं प्रतिदिनं गामेकां ब्राह्मणाय तु। यदि दद्यास्ततः कुक्षेर्निर्गमिष्याम्यहं पितः॥२३॥
तथेत्युवाच तस्या वै पिता काममपूरयत्। दाता शूरश्च यज्वा च श्रुतवानतिथिप्रियः॥२४॥
तस्याः पुत्रः स्मृतोऽक्रूरः श्वफल्काद्भूरिदक्षिणः। रत्ना कन्या च शैवस्य ह्यक्रूरस्तामवाप्तवान्॥२५॥

वीर पुत्रों को पैदा किया। अनमित्र का पुत्र निघ्न हुआ। उसके महाभाग्यवान प्रसेन और सत्राजित पुत्र पैदा हुए।।१०-१२।। सत्राजित का घनिष्ठ मित्र सूर्य हुआ। उसने उसको स्यमंतक मणि दिया।।१३।। स्यमंतक मणि जगत के सब रत्नों में श्रेष्ठ था। एक बार वह प्रसेन के साथ शिकार खेलने के लिए गया। वहाँ एक भयंकर सिंह ने उसको मार डाला। उस समय वह असहाय था। वृष्णि के सबसे छोटे पुत्र शिनि से सत्यक का जन्म हुआ। वह सत्यवादी अपने वचन का पालनकर्त्ता शिनि का पौत्र वीर युयुधान था।।१४-१६।। युयुधान का पुत्र असंग और उसका पुत्र कुणि हुआ। कुणि का पुत्र युगंधर। इस प्रकार शिनि के वंश (शैनेय) का वर्णन किया गया।।१७।। वृष्णि और माद्री से एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम युधाजित था। वह श्वफल्क नाम से प्रसिद्ध था। वह तीनों लोकों का हितैषी था। महाराज धर्मात्मा श्वफल्क जहाँ रहते हैं वहाँ किसी प्रकार की व्याधि और अनावृष्टि का भय नहीं रहता था।।१८-१९।। श्वफल्क ने काशिराज की पुत्री गांदिनी नाम की कन्या से विवाह करके अपनी रानी बनाया।।२०।। वह अपनी माँ के पेट में बहुत वर्षों तक रही और पैदा नहीं हुई। पिता ने गर्भ में विद्यमान उससे कहा, "जल्दी पैदा हो। तुम्हारा कल्याण हो। तुम गर्भ में क्यों रुकी हुई हो" तब गर्भ में स्थित गांदिनी कन्या ने पिता से कहा, "हे पिता! आप प्रतिदिन एक ब्राह्मण को एक गाय दान दो। तब मैं इस गर्भ से बाहर आऊँगी।" ऐसा कहने पर उसके पिता ने उसकी इच्छा पूरी की। उसका पुत्र अक्रूर उत्पन्न हुआ। वह बहुत दानी, वीर, यज्ञ करने वाला, विद्वान और अतिथियों का प्रिय था। यज्ञों में उसने बहुत सा धन दान में दिया।।२१-२४।। अक्रूर ने राजा शैव की कन्या रत्ना से ब्याह किया। उससे उपमन्यु, मांगु, वृत, जनमेजय,

अस्यामुत्पादयामास तनयांस्तान्निबोधत। उपमन्युस्तथा मागुर्वृतस्तु जनमेजयः॥२६॥
गिरिरक्षस्तथोपेक्षः शत्रुघ्नो योरिमर्दनः। धर्मभृद्दृष्टधर्मा च गोधनोथ वरस्तथा॥२७॥
आवाहप्रतिवाहौ च सुधारा च वरांगना। अक्रूरस्योग्रसेन्यां तु पुत्रौ द्वौ कुलनंदनौ॥२८॥
देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंमतौ। सुमित्रस्य सुतो जज्ञे चित्रकश्च महायशाः॥२९॥
चित्रकस्याभवन्पुत्रा विपृथुः पृथुरेव च। अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुधासूकगवेक्षणौ॥३०॥
अरिष्टनेमिरश्वश्च धर्मो धर्मभृदेव च। सुभूमिर्बहुभूमिश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ॥३१॥
अंधकात्काश्यदुहिता लेभे च चतुरः सुतान्। कुकुरं भजमानं च शुचिं कंबलबर्हिषम्॥३२॥
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेः शूरस्ततोऽभवत्। कपोतरोमातिबलस्तस्य पुत्रो विलोमकः॥३३॥
तस्यासीत्तुंबुरुसखो विद्वान्पुत्रो नलः किल। ख्यायते स सुनाम्ना तु चंदनानकदुंदुभिः॥३४॥
तस्मादप्यजित्पुत्र उत्पन्नोस्य पुनर्वसुः। अश्वमेघं स पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः॥३५॥
तस्य मध्येतिरात्रस्य सदोमध्यात्समुत्थितः। ततस्तु विद्वान् सर्वज्ञो दाता यज्वा पुनर्वसुः॥३६॥
तस्यापि पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल। आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ कीर्तिमतां वरौ॥३७॥
आहुकात्काश्यदुहितुर्द्वौ पुत्रौ संबभूवतुः। देवकश्चोग्रेसनश्च देवगर्भसमावुभौ॥३८॥
देवकस्य सुता राज्ञो जज्ञिरे त्रिदशोपमाः। देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः॥३९॥
तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ। वृषदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता॥४०॥

गिरिरक्ष, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मभृत, दृष्टिधर्मा, गोधन, वर, आवाह और प्रतिवाह पुत्रों को पैदा किया। और उसके एक सुन्दरी कन्या भी थी जिसका नाम सुधारा था। उग्रसेनी (उग्रसेन की कन्या) और अक्रूर से अपने कुल को प्रसन्न करने वाले दो पुत्र पैदा हुए। उनके नाम देववान और उपदेव थे। वे दोनों देवताओं के समान थे। सुमित्र के चित्रक, नामक महा यशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ।।२५-२९।। चित्रक के विपृथु, पृथु, अश्वग्रीव, सुबाहु, सुधासूक, गवेक्षण, अरिष्टनेमि, अश्व, धर्म, धर्मभृत, सुभूमि, बहुभूमि नाम के पुत्र पैदा हुए। उसके दो पुत्रियाँ भी थी जिनके नाम श्रविष्ठा और श्रवणा थे।।३०-३१।। काशी के राजा की पुत्री ने अन्धक से चार पुत्र उत्पन्न किया। उनके नाम कुकुर, भजमान, शुचि और कंबलबर्हि थे।।३२।। कुकुर का पुत्र वृष्णि था। उसका पुत्र शूर नामक हुआ। उसका पुत्र अति शक्तिशाली कपोतरोमातिबल हुआ। उसका पुत्र विलोमक हुआ।।३३।। उसके एक विद्वान पुत्र नल हुआ। उसका मित्र तुंवरु था। वह चन्द्रनानकदुन्दुभि नाम से प्रसिद्ध हुआ।।३४।। उससे अजित नामक हुआ। उसका पुत्र पुनर्वसु हुआ। उस श्रेष्ठ राजा ने पुत्र प्राप्ति के लिए अश्वमेघ यज्ञ किया।।३५।। उस यज्ञ के दौरान जब अतिशय मंत्रों का उच्चारण (पाठ) हो रहा था पुजारियों की सभा के मध्य पुनर्वसु शिशु का जन्म हुआ। बाद में वह विद्वान, सर्वज्ञ, दानी और यज्ञकर्त्ता हुआ।।३६।। अभिजित के जुड़वा पुत्र उत्पन्न हुये। कीर्तिमान लोगों में श्रेष्ठ उन दोनों के नाम आहुक और आहुकी थे।।३७।। आहुक की दानी काशीराज की कन्या से दो पुंत्र देवक और उग्रसेन पैदा हुये। वे दोनों देवताओं के पुत्रों के समान थे।।३८।। देवक के देवता के समान चार पुत्र पैदा हुये। उनके नाम देववान, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित थे।।३९।। उनके सात बहनें थीं। राजा ने

श्रीदेवा शांतिदेवा च सहदेवा तथापरा। देवकी चापि तासां च वरिष्ठाऽभूत्सुमध्यमा॥४१॥
नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः। तेषां पुत्रश्च पौत्राश्च शतशोथ सहस्रशः॥४२॥
देवकस्य सुता पत्नी वसुदेवस्य धीमतः। बभूव वंद्या पूज्या च देवैरपि पतिव्रता॥४३॥
रोहिणी च महाभागा पत्नी चानकदुंदुभेः। पौरवी बाह्लिकसुता संपूज्यासीत्सुरैरपि॥४४॥
असूत रोहिणी रामं बलश्रेष्ठं हलायुधम्। आश्रितं कंसभीत्या च स्वात्मानं शांततेजसम्॥४५॥
जाते रामेऽथ निहते षड्गर्भे चातिदक्षिणे। वसुदेवो हरिं धीमान्देवक्यामुदपादयत्॥४६॥
स एव परमात्मासौ देवदेवो जनार्दनः। हलायुधश्च भगवाननंतो रजतप्रभः॥४७॥
भृगुशापच्छलेनैव मानयन्मानुषीं तनुम्। बभूव तस्यां देवक्यां वासुदेवो जनार्दनः॥४८॥
उमादेहसमुद्धता योगनिद्रा च कौशिकी। नियोगाद्देवदेवस्य यशोदातनया ह्यभूत्॥४९॥
सा चैव प्रकृतिः साक्षात्सर्वदेवनमस्कृता। पुरुषो भगवान्कृष्णो धर्ममोक्षफलप्रदः॥५०॥
तां कन्यां जगृहे रक्षन्कंसात्स्वस्यात्मजं तदा। चतुर्भुजं विशालाक्षं श्रीवत्सकृतलांछनम्॥५१॥
शंखचक्रगदापद्मं धारयंतं जनार्दनम्। यशोदायै प्रदत्त्वा तु वसुदेवश्च बुद्धिमान्॥५२॥
दत्त्वैनं नंदगोपस्य रक्षतामिति चाब्रवीत्। रक्षकं जगतां विष्णुं स्वेच्छया धृतविग्रहम्॥५३॥
प्रसादाच्चैव देवस्य शिवस्यामिततेजसः। रामेण सार्धं तं दत्त्वा वरदं परमेश्वरम्॥५४॥

इन सबों को वसुदेव को दे दिया। उनके नाम थे—वृषदेवा, उपदेवा, देवदक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी। देवकी उनमें सुमध्या (सुन्दर कमर वाली) और वरिष्ठ (सर्व श्रेष्ठ) थी।।४०-४१।। उग्रसेन के नव पुत्र थे। उनमें ज्येष्ठ पुत्र कंस था। उसके सैकड़ों और हजारों पुत्र और पौत्र थे।।४२।। बुद्धिमान वसुदेव की पत्नी देवकी थी। वह पतिव्रता थी और देवताओं से वंद्य और पूज्य थी।।४३।। आनन्द दुंदभि (वसुदेव) की पत्नी महाभागा रोहिणी और वाह्लिक की पुत्री पौरवी देवताओं द्वारा पूजनीय थी। रोहिणी ने बलवान हलायुध राम (बलराम) को पैदा किया। कंस के डर से उसने देवकी के गर्भ से निकाल अपने गर्भ से शान्त तेजस्वी बलराम को पैदा किया।।४४-४५।। छः निरपराध बच्चों की हत्या कर देने के बाद और बलराम के जन्म लेने के बाद बुद्धिमान वसुदेव और देवकी से कृष्ण उत्पन्न हुए।।४६।। वह ही परमात्मा, देवताओं के देवता और विष्णु हैं। बलराम चाँदी के समान चमक वाले भगवान अनंत (शेष के अवतार) हैं।।४७।। भृगु के शाप से विष्णु मानव शरीर धारण करने को स्वीकार करते हुए देवकी के गर्भ से वसुदेव के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुये।।४८।। उसी समय योगनिद्रा कौशिकी उमा की देह से उत्पन्न यशोदा की कन्या देवताओं के देवता के आदेश से हुई।।४९।। वह केवल सब देवताओं के द्वारा नमस्कृत प्रकृति है। धर्म और मोक्ष के फल को देने वाले भगवान कृष्ण पुरुष हैं।।५०।। कंस से अपने पुत्र को बचाने के लिए वसुदेव ने यशोदा की कन्या को ले लिया और उसके बदले अपने चतुर्भुज, विशाल नेत्र वाले, श्री वत्स लक्षणधारी, शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले कृष्ण को दे दिया।।५१-५२।। बुद्धिमान वसुदेव ने इस प्रकार अपने पुत्र को नंद (यशोदा के पति) तीनों लोक के रक्षक और अपनी इच्छा से मनुष्य शरीर धारण करने वाले भगवान कृष्ण को देकर "इसकी रक्षा करो" ऐसा कहा।।५३।। देवताओं के देव और अग्नि के समान तेजस्वी शिव की कृपा से अपनी इच्छा से

भूभारनिग्रहार्थं च ह्यवतीर्णं जगद्गुरुम्। अतो वै सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति॥५५॥
अयं स गर्भो देवक्या यो नः क्लेशयान्हरिष्यति। उग्रसेनात्मजायाथ कंसायानकदुंदुभिः॥५६॥
निवेदयामास तदा जातां कन्यां सुलक्षणाम्। अस्यास्तवाष्टमो गर्भो देवक्याः कंस सुव्रत॥५७॥
मृत्युरेव न संदेह इति वाणी पुरातनी। ततस्तां हंतुमारेभे कंसः सोल्लंघ्य चांबरम्॥५८॥
उवाचाष्टभुजा देवी मेघगंभीरया गिरा। रक्षस्व तत्स्वकं देहमायातो मृत्युरेव ते॥५९॥
रक्षमाणस्य देहस्य मायावी कंसरूपिणः। किं कृतं दुष्कृतं मूर्ख जातः खलु तवांतकृत्॥६०॥
देवक्याः स भयात्कंसे जघानैवाष्टमंत्विति। स्मरंति विहितो मृत्युर्देवक्यास्तनयोऽष्टमः॥६१॥
यस्तत्प्रतिकृतौ यत्नो भोजस्यासीद्वृथा हरेः। प्रभावान्मुनिशार्दूलास्तया चैव जडीकृतः॥६२॥
कंसोपि निहतस्तेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा। निहता बहवाश्चान्ये देवब्राह्मणघातिनः॥६३॥
तस्य कृष्णस्य तनयाः प्रद्युम्नप्रमुखस्तथा। बहवः परिसंख्याताः सर्वे युद्धविशारदाः॥६४॥
कृष्णपुत्राः समाख्याताः कृष्णेन सदृशाः सुताः। पुत्रेष्वेतेषु सर्वेषु चारुदेष्णादयो हरेः॥६५॥
विशिष्टा बलवंतश्च रौक्मिणेयारिसूदनाः। षोडशस्त्रीसहस्राणि शतमेकं तथाधिकम्॥६६॥
कृष्णस्य तासु सर्वासु प्रिया ज्येष्ठा च रुक्मिणी। तया द्वादशवर्षाणि कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥६७॥
उष्यता वायुभक्षेण पुत्रार्थं पूजितो हरः। चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेषो यशोधरः॥६८॥

शरीरधारी तीनों लोकों के रक्षक कृष्ण को राम के साथ देखकर कहा "पृथ्वी के भार को कम करने के लिए जगद्गुरु अवतार लिए हैं। इससे यादवों का कल्याण होगा। देवकी का यह पुत्र हमारी सब विपत्तियों को दूर कर देगा"।।५४-५५।। वसुदेव ने तब उग्रसेन के पुत्र कंस को सूचना दी कि "एक सुलक्षणा कन्या पैदा हुई है। यह देवकी का आठवाँ गर्भ है। हे कंस! सुव्रत! निसन्देह यह तुम्हारे मृत्यु का कारण होगा।" अतः कंस ने उस बच्ची को मारने का प्रयास किया। लेकिन नंद की वह अष्टभुजी कन्या उसके हाथ से छूट कर आकाश में चली गयी। उस देवी ने मेघ गर्जन के समान गंभीर वाणी से कहा, "अपनी देह की रक्षा करो। तुम्हारी मृत्यु आ गयी है"।।५६-५९।। हे मूर्ख कंस! तुमने अपने शरीर की रक्षा करते हुए बहुत पापों को किया है। वास्तव में तुम्हारा अन्त करने वाला पैदा हो गया है"।।६०।। ऐसा कहा गया है कि देवकी के भय से कंस ने आठवें शिशु को मार डाला लेकिन देवकी का आठवाँ पुत्र वास्तव में कंस के मृत्यु का कारण हुआ।।६१।। हे श्रेष्ठ मुनियों! भोज के बदला लेने के सब प्रयास कृष्ण के आगे व्यर्थ हो गये। कौशिकी की माया के प्रभाव से वह जड़ कर दिया गया।।६२।। अक्लष्ट कर्म करने वाले कृष्ण ने कंस को मार डाला। देवताओं के और ब्राह्मणों के हत्यारों को भी कृष्ण ने मार डाला।।६३।। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न आदि पहले ही गिनाए गये हैं। वे बहुत थे और सबके सब युद्ध में दक्ष थे।।६४।। कृष्ण के पुत्र कृष्ण के समान थे। उन सब पुत्रों में चारुदेष्ण और उसके भाई विशेष रूप से बलवान थे। वे रुक्मिणी के पुत्र थे। वे अपने शत्रुओं के नाशकर्त्ता थे। कृष्ण के सोलह हजार एक सौ पत्नियाँ थीं। उन सबों में सबसे प्रिय और ज्येष्ठ रुक्मिणी थी। उसने और कृष्ण ने बारह वर्ष तक भगवान शिव की पूजा की और पुत्र प्राप्ति के लिए उन्होंने केवल वायु का आहार करते हुए शिव की पूजा की। त्रिशूलधारी शिव की

चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः सांब एव च। एते लब्धास्तु कृष्णेन शूलपाणिप्रसादतः॥६९॥
तान् दृष्ट्वा तनयान्वीरान् रौक्मिणेयांश्च रुक्मिणीम्।
जांबवत्यब्रवीत्कृष्णं भार्या कृष्णस्य धीमतः॥७०॥
मम त्वं पुंडरीकाक्ष विशिष्टं गुणवत्तरम्। सुरेशसंमितं पुत्रं प्रसन्नो दातुमर्हसि॥७१॥
जांबवत्या वचः श्रुत्वा जगन्नाथस्ततो हरिः। तपस्तप्तुं समारेभे तपोनिधिरनिंदितः॥७२॥
सोऽथ नारायणः कृष्णः शंखचक्रगदाधरः। व्याघ्रपादस्य च मुनेर्गत्वा चैवाश्रमोत्तमम्॥७३॥
ऋषिं दृष्ट्वा त्वंगिरसं प्रणिपत्य जनार्दनः। दिव्यं पाशुपतं योगं लब्धवांस्तस्य चाज्ञया॥७४॥
प्रलुप्तश्मश्रुकेशश्च घृताक्तो मुंजमेखली। दीक्षितो भगवान्कृष्णस्तताप च परंतपः॥७५॥
ऊर्ध्वबाहुर्निरालंबः पादांगुष्ठाग्रधिष्ठितः। फलाम्ब्वनिलभोजी च ऋतुत्रयमधोक्षजः॥७६॥
तपसा तस्य संतुष्टो ददौ रुद्रो बहून् वरान्। सांबं जांबवतीपुत्रं कृष्णाय च महात्मने॥७७॥
तथा जांबवती चैव सांबं भार्या हरेः सुतम्। प्रहर्षमतुलं लेभे लब्ध्वादित्यं यथादितिः॥७८॥
बाणस्य च तदा तेन च्छेदितं मुनिपुंगवाः। भुजानां चैव साहस्रं शापाद्रुद्रस्य धीमतः॥७९॥
अथ दैत्यवधं चक्रे हलायुधसहायवान्। तथा दुष्टक्षितीशानां लीलयैव रणाजिरे॥८०॥
स हत्वा देवसंभूतं नरकं दैत्यपुंगवम्। ब्राह्मणस्योर्ध्वचक्रस्य वरदानान्महात्मनः॥८१॥
स्वोपभोग्यानि कन्यानां षोडशातुलविक्रमः। शताधिकानि जग्राह सहस्राणि महाबलः॥८२॥

कृपा से आठ पुत्र पैदा हुए। उनके नाम चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेष, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयश, प्रद्युम्न सांब।।६५-६९।। रुक्मिणी और रोहिणी के वीर पुत्रों को देखकर जांबवती ने एक बार इस प्रकार कहा।।७०।। 'हे कमलनयन! यदि तुम प्रसन्न हो तो देवताओं के समान एक पुत्र मुझे दो जो उच्च गुणों से युक्त हों'।।७१।। जांबवती के वचन को सुनकर भगवान तपोनिधि कृष्ण ने तपस्या करना प्रारम्भ किया।।७२।। कृष्ण नारायण शंख, चक्र, गदा, धारण करने वाले व्याघ्रपाद मुनि के उत्तम आश्रम में गये। मुनि को उन्होंने देखकर प्रणाम किया। उनकी आज्ञा से उन्होंने दिव्य पाशुपत योग को प्राप्त किया। अपने दाढ़ी और बालों को मुड़ाकर मूँज की मेखला धारण की। सारे शरीर पर घी लगाया। इस प्रकार शत्रुओं को तपाने वाले कृष्ण भगवान ने दीक्षा लेकर घोर तप किया।।७३-७५।। उन्होंने अनेक प्रकार से तपस्या पूरी की। अपने बाहुओं को ऊपर उठाये निराधार खड़े रहकर और अपने पैर के अगूँठों पर टिकाये रहकर तपस्या की। उन्होंने तीन ऋतुओं तक फलों, जल और वायु का आहार किया।।७६।। उनकी तपस्या से संतुष्ट होकर भगवान शिव ने बहुत वर दिये। महात्मा कृष्ण और जांबवती को सांब नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।।७७।। कृष्ण से सांब पुत्र को प्राप्त कर उनकी पत्नी जांबवती बहुत प्रसन्न हुई। जैसे कि अदिति आदित्य पुत्र को प्राप्त कर प्रसन्न हुई थी।।७८।। हे श्रेष्ठ मुनियों! शिव के शाप से बाण की हजार भुजाओं को कृष्ण ने काट दिया था।।७९।। बलराम को सहायक रूप में साथ लेकर उन्होंने दैत्यों का नाश किया। उन्होंने युद्धक्षेत्र में दुष्ट राजाओं को बिना किसी विशेष प्रयास के मार डाला।।८०।। उन्होंने देवताओं से उत्पन्न दैत्यों में श्रेष्ठ नरक नामक दैत्य को उर्ध्वचक्र नामक महात्मा ब्राह्मण के वरदान से मार डाला।।८१।। अतुल पराक्रमी और महाबली कृष्ण ने साठ हजार और एक सौ कन्याओं को अपने उपभोग के

शापव्याजेन विप्राणामुपसंहृतवान् कुलम्। संहृत्य तत्कुलं चैव प्रभासेऽतिष्ठदच्युतः॥८३॥
तदा तस्यैव तु गतं वर्षाणामधिकं शतम्। कृष्णस्य द्वारकायां वै जराक्लेशापहारिणः॥८४॥
विश्वामित्रस्य कण्वस्य नारदस्य च धीमतः। शापं पिंडारकेऽरक्षद्वचो दुर्वाससस्तदा॥८५॥
त्यक्त्वा च मानुषं रूपं जरकास्त्रच्छलेन तु। अनुगृह्य च कृष्णोपि लुब्धकं प्रययौ दिवम्॥८६॥
अष्टावक्रस्य शापेन भार्याः कृष्णस्य धीमतः। चौरेश्चापहृताः सर्वास्तस्य मायाबलेन च॥८७॥
बलभद्रोपि संत्यज्य नागो भूत्वा जगाम च।
महिष्यस्तस्य कृष्णस्य रुक्मिणीप्रमुखाः शुभाः॥८८॥
सहाग्निं विविशुः सर्वाः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा। रेवती च तथा देवी बलभद्रेण धीमता॥८९॥
प्रविष्टा पावकं विप्राः सा च भर्तृपथं गता। प्रेतकार्यं हरेः कृत्वा पार्थः परमवीर्यवान्॥९०॥
रामस्य च तथान्येषां वृष्णीनामपि सुव्रतः। कंदमूलफलैस्तस्य वह्निकार्यं चकार सः॥९१॥
द्रव्याभावात्स्वयं पार्थो भ्रातृभिश्च दिवंगतः। एवं संक्षेपतः प्रोक्तः कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः॥९२॥
प्रभावो विलयश्चैव स्वेच्छयैव महात्मनः। इत्येतत्सोमवंशानां नृपाणां चरितं द्विजाः॥९३॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि ब्राह्मणान् श्रावयेदपि। स याति वैष्णवं लोकं नात्र कार्या विचारणा॥९४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सोमवंशानुकीर्तनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥६९॥

लिए ग्रहण किया।।८२।। ब्राह्मणों के शाप से उन्होंने वृष्णि के कुल का नाश किया। उसके बाद अच्युत श्रीकृष्ण प्रभास क्षेत्र में रहे।।८३।। वृद्धावस्था के दुःख को हरण करने वाले श्रीकृष्ण ने द्वारका पर एक सौ वर्ष से अधिक शासन किया। विश्वामित्र, कर्ण और बुद्धिमान नारद के शाप को हटाया। दुर्वासा के वचन से पिण्डारक में ऐसा किया।।८४-८५।। जरक के अस्त्र के बहाने अपने मनुष्य रूप को छोड़कर उस शिकारी पर कृपा करके स्वर्ग को चले गये।।८६।। अष्टावक्र के शाप से और अपनी माया के कारण बुद्धिमान कृष्ण की पत्नियाँ चोरों द्वारा अपहरण कर ली गयीं।।८७।। बलराम ने अपने मानव शरीर को त्याग दिया और शेष का रूप धारण करके स्वर्गलोक को पधारे। कृष्ण की रुक्मिणी आदि प्रमुख रानियाँ सब अपने स्वामी के शरीर के साथ अग्नि में प्रवेश कर गयीं और भस्म हो गयीं।। हे ब्राह्मणों! भद्र महिला रेवती भी अपने पति बलराम के साथ चिता में जल गयी और पति के मार्ग पर चली गयी। परम पराक्रमी अर्जुन ने भगवान कृष्ण बलराम और अन्य वृष्णियों का प्रेत कार्य किया। उसने कंद, मूल और फल से बलि कार्य किया।।८८-९१।। तब अर्जुन भी अपने भाइयों के साथ स्वर्ग पधारे। इस प्रकार अतुल क्रिया-कलाप वाले श्री कृष्ण ने अपनी इच्छा से मानव शरीर धारण किया। उनके जन्म और अन्त तक का अतुलनीय क्रिया-कलापों को संक्षेप में मैंने तुम लोगों को सुनाया। हे ब्राह्मणों! जो सोम वंश के राजाओं के चरित्र को पढ़े या सुने या ब्राह्मणों को सुनाए वह विष्णु लोक को जाता है। निसन्देह इसमें कोई विचार करने की बात नहीं है।।९२-९४।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में सोमवंश के अनुकीर्तन (कृष्ण का जन्म और जीवन) नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥६९॥

सप्ततितमोऽध्यायः

सृष्टिविस्तारः

ऋषयः ऊचुः

आदिसर्गस्त्वया सूत सूचितो न प्रकाशितः। सांप्रतं विस्तरेणैव वक्तुमर्हसि सुव्रत॥१॥

सूत उवाच

महेश्वरो महादेवः प्रकृतेः पुरुषस्य च। परत्वे संस्थितो देवः परमात्मा मुनीश्वराः॥२॥

अव्यक्तं चेश्वरात्तस्मादभवत्कारणं परम्। प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिंतकाः॥३॥

गंधवर्णरसैहीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्। अजरं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम्॥४॥

जगद्योनिं महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम्। विग्रहः सर्वभूतानामीश्वराज्ञाप्रचोदितम्॥५॥

अनाद्यंतमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम्। अप्रकाशमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्तत॥६॥

अस्यात्मना सर्वमिदं व्याप्तं त्वासीच्छिवेच्छया।
गुणसाम्ये तदा तस्मिन्नविभागे तमोमये॥७॥

सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै। गुणभावाद्व्यज्यमानो महान्प्रादुर्बभूव ह॥८॥

सत्तरवाँ अध्याय

सृष्टि विस्तार

ऋषि गण बोले

सृष्टि का परिचय आप ने दिया किन्तु विस्तार को नहीं बताया। उसको स्पष्ट नहीं किया। हे सुव्रत! इसको आप विस्तार से बताइये।।१।।

सूत बोले

ऋषीश्वरों! महेश्वर महादेव प्रकृति और पुरुष से परे हैं। वह परमात्मा हैं।।२।। उसी महेश्वर से अव्यक्त उद्भूत हुआ जो कि महान कारण है। तत्त्व के चिन्तक विद्वान उसको प्रधान या प्रकृति कहते हैं।।३।। यह गंध, रंग और रस से रहित है। उसमें शब्द और स्पर्श भी नहीं है। यह अपरिवर्तनशील अव्यय, ध्रुव, अक्षय्य, अनश्वर और आत्मा में नित्य स्थित है।।४।। यह जगत की उत्पत्ति का स्रोत है। यह सनातन परम ब्रह्म है। यह महाभूत है। यह सब प्राणियों का भौतिक शरीर है। यह ईश्वर की आज्ञा से प्रेरित है।।५।। यह प्रधान ब्रह्म के रूप में अस्तित्व में आया। इसका न आदि है न अन्त। यह अज (अजन्मा) है और तीन गुणों से युक्त है। सूक्ष्म है। यह जगत की उत्पत्ति का स्रोत है और अव्यय है। न तो यह व्यक्त है और न यह अविज्ञेय है।।६।। जब गुण समभाव में थे, जब उसमें विभाग नहीं हुआ था, जब यह तमोमय था। तब यह दृश्य (प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला) जगत शिव की इच्छा से अस्तित्व में आया।।७।। सृष्टि के काल में प्रत्येक व्यक्तिगत आत्मा में अधिष्ठित

सूक्ष्मेण महता चाथ अव्यक्तेन समावृतम्। सत्त्वोद्रिक्तो महानग्रे सत्तामात्रप्रकाशकः॥९॥
मनो महांस्तु विज्ञेयमेकं तत्कारणं स्मृतम्। समुत्पन्नं लिंगमात्रं क्षेत्रज्ञाधिष्टितं हि तत्॥१०॥
धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः। महान् सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया॥११॥
मनो महान्मतिर्ब्रह्म पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः।
प्रज्ञा चितिः स्मृतिः संविद्विश्वेशश्चेति स स्मृतः॥१२॥
मनुते सर्वभूतानां यस्माच्चेष्टा फलं ततः। सौक्ष्म्यात्तेन विभक्तं तु येन तन्मन उच्यते॥१३॥
तत्त्वानामग्रजो यस्मान्महांश्च परिमाणतः। विशेषेभ्यो गुणेभ्योपि महानिति ततः स्मृतः॥१४॥
बिभर्ति मानं मनुते विभागं मन्यतेपि च। पुरुषो भोगसंबंधात्तेन चासौ मतिः स्मृतः॥१५॥
बृहत्त्वात्बृंहणत्वाच्च भावानां सकलाश्रयात्। यस्माद्धारयते भावान्ब्रह्म तेन निरुच्यते॥१६॥
यः पूरयति यस्माच्च कृत्स्नान्देवाननुग्रहैः। नयते तत्त्वभावं च तेन पूरिति चोच्यते॥१७॥
बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वान् भावान् हितं तथा। यस्माद्बोधयते चैव बुद्धिस्तेन निरुच्यते॥१८॥
ख्यातिः प्रत्युपभोगश्च यस्मात्संवर्तते ततः। भोगस्य ज्ञाननिष्ठत्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृतः॥१९॥
ख्यायते तद्गुणैर्वापि ज्ञानादिभिरनेकशः। तस्माच्च महतः संज्ञा ख्यातिरित्यभिधीयते॥२०॥

प्रभु, महत् तत्त्व, प्रकृति के सहायक रूप में अपने को प्रकट करते हुये व्यक्त हुआ।।८।। यह सूक्ष्म और महान् अव्यक्त से ढका हुआ था। जब कि महत्, सत्त्व से उद्रिक्त था। तब उसने केवल अस्तित्व को प्रकट (प्रकाशित) किया।।९।। महत् को मन के रूप में जानना चाहिये। यह सृष्टि का पूर्ण कारण कहा गया है। यह प्रत्येक व्यक्तिगत आत्मा के ऊपर अधिष्ठित होने के कारण प्रतीक मात्र था।।१०।। इसके रूप, धर्म आदि, जगत् के तत्त्व और अर्थ हैं। सृष्टि करने की इच्छा से प्रेरित होकर महत् सृष्टि के क्रिया-कलापों को आगे बढ़ाता है। महत्, मति (बुद्धि) नाम से कहा जाता हो।।११।। यह मन ब्रह्म, पुर (नगर), ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा (ज्ञान) चिति (चेतनता) स्मृति, संविद और विश्वेश नाम से कहा जाता है।।१२।। यह मन कहा जाता है क्योंकि यह सब प्राणियों के क्रिया-कलापों का फल है। सूक्ष्म से विभक्त होने से इसके क्रिया-कलाप अनेक रूप और परस्पर पृथक् दिखाई देते हैं।।१३।। यह महत् कहा जाता है क्योंकि यह तत्त्वों से परिमाप में बड़ा है। यह विश्वेश से और गुणों से महत्तर है।।१४।। यह मान को भरण करता है। यह विभागों को करता है। यह भोग से भी सम्बन्ध रखता है। अतः यह मति नाम से जाना जाता है।।१५।। यह ब्रह्मरूप से भी परिभाषित है। क्योंकि वृहत् होने से बृहणत्व होने से और भावों का पूरा आश्रय होने से और भावों को धारण करने से यह ब्रह्म है।।१६।। यह पूः कहलाता है क्योंकि यह देवों को अपने अनुग्रह से पूरता है (भरता है) और मनुष्यों के तत्त्वों को भावों की ओर ले जाता है। अतः यह पूः है। पूः शब्द पृ धातु से बनां है जिसका अर्थ है पूरा करना (भरना)।।१७।। चूँकि पुरुष इसके माध्यम से जाना जाता है और चूँकि यह सब भावों का बोध कराता है। इसलिये इसको बुद्धि कहते हैं।।१८।। चूँकि ज्ञान पर उपभोग निर्भर करता है और वह उपभोग ज्ञानविष्ठ है, अतः उसको ख्याति नाम से भी कहते हैं।।१९।। महत् ज्ञान आदि गुणों के द्वारा ख्याति को प्राप्त होता है। अतः महत् का नाम ख्याति भी है।।२०।।

साक्षात्सर्वं विजानाति महात्मा तेन चेश्वरः। यस्माज्ज्ञानानुगश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते॥२१॥
ज्ञानादीनि च रूपाणि बहुकर्मफलानि च। चिनोति यस्माद्भोगार्थं तेनासौ चितिरुच्यते॥२२॥
वर्तमानव्यतीतानि तथैवानागतान्यपि। स्मरते सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते॥२३॥
कृत्स्नं च विंदते ज्ञानं यस्मान्माहात्म्यमुत्तमम्। तस्माद्विंदेर्विदेश्चैव संविदित्यभिधीयते॥२४॥
विद्यतेपि च सर्वत्र तस्मिन्सर्वं च विंदति। तस्मात्संविदिति प्रोक्तो महद्भिर्मुनिसत्तमाः॥२५॥
जानातेर्ज्ञानमित्याहुर्भगवान् ज्ञानसंनिधिः। बंधनादिपरीभावादीश्वरः प्रोच्यते बुधैः॥२६॥
पर्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम्। व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैर्देवसद्भावचिंतकैः॥२७॥
महान्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया। संकल्पोध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम्॥२८॥
त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहंकारस्ततोऽभवत्। महता च वृतः सर्गो भूतादिर्बाह्यतस्तु सः॥२९॥
तस्मादेव तमोद्रिक्तादहंकारादजायत। भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु सः॥३०॥
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह। आकाशं सुषिरं तस्मादुत्पन्नं शब्दलक्षणम्॥३१॥
आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत्। वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह॥३२॥
ज्येतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते। स्पर्शमात्रस्तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत्॥३३॥

यह महान् आत्मा है और प्रत्येक वस्तु को जानता है। अतः इसको ईश्वर भी कहते हैं। यह ज्ञान का अनुगामी है; अतः इसको प्रज्ञा भी कहते हैं।।२१।। चूँकि यह ज्ञान आदि रूपों को एकत्र करता है और सब यज्ञादि कर्मों के फलों को भी एकत्र करता है, अतः इसको (चि धातु से बने पद) चिति भी कहते हैं।।२२।। चूँकि यह भूत, वर्तमान और भविष्य के सब कार्यों का स्मरण करता है, अतः इसको स्मृति कहते हैं।।२३।। इसको सर्वविद इसलिये कहते हैं क्योंकि यह सम्पूर्ण ज्ञान को जानता है और प्रत्येक वस्तु की महत्ता को जानता है, इसलिए (विद् धातु से बने विद् को जोड़कर) इसको सर्वविद् कहते हैं।।२४।। हे मुनीश्वरों! महान् व्यक्तियों द्वारा और कारण से भी इसको सर्वविद् कहा जाता है। यह सर्वत्र विद्यमान रहता है और उसमें सब-कुछ विद्यमान है। अतः उसको सर्वविद् कहते हैं।।२५।। ज्ञा धातु से ज्ञान शब्द बनता है। जिसका अर्थ है जानना। इसलिए उसको ज्ञान कहते हैं क्योंकि भगवान ज्ञान का स्रोत और भण्डार है। यह बन्धन से मुक्त करने में समर्थ है, अतः विद्वान लोग महत् को ईश्वर कहते हैं।।२६।। प्रथम उत्तम तत्त्व-महत् के अनेक यथार्थवादी नाम उस विद्वानों द्वारा बताये गये हैं जो कि तत्त्वों की प्रकृति के ज्ञाता और जो देव शिव के विषय में सदा चिन्तन करते हैं।।२७।। महत् सृष्टि के कार्य को आगे बढ़ाता है। जब सृष्टि की रचना करने की इच्छा से प्रेरित होता है। संकल्प और अध्यवसाय उसकी दो वृत्तियाँ हैं।।२८।। इस महत् में तीन गुण होते हैं किन्तु अहंकार जो गुण से उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार सारी सृष्टि महत् से आवृत्त है। यह भूतादि से बाहर है।।२९।। उसी तम से उत्पन्न अहंकार भूत और तन्मात्राओं (शब्द आदि) की उत्पत्ति हुई है। यह भूतादि कहलाता है और यह स्वभाव में तामस् है (तामसी प्रकृति का है)।।३०।। भूतादि से तन्मात्राएं उत्पन्न हुईं। उनसे आकाश उत्पन्न हुआ जिसको सुषिर भी कहते हैं। उससे शब्द उत्पन्न हुआ।।३१।। शब्द लक्षण आकाश से स्पर्श मात्र वायु, स्पर्श मात्र वायु से रूप मात्र ज्योति (अग्नि), रूप मात्र

ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह। संभवंति ततो ह्यापस्ता वै सर्वरसात्मिकाः॥३४॥
रसमात्रस्तु ता ह्यपो रूपमात्रोग्निरावृणोत्। आपश्चापि विकुर्वत्यो गंधमात्रं ससर्जिरे॥३५॥
संघातो जायते तस्मात्तस्य गंधो गुणो मतः। तस्मिंस्तस्मिंश्च तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता॥३६॥
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततस्तु ते। प्रशांतघोरमूढत्वादविशेषास्ततः पुनः॥३७॥

भूततन्मात्रसर्गोयं विज्ञेयस्तु परस्परम्।
वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकात्॥३८॥

वैकारिकः ससर्गस्तु युगपत्संप्रवर्तते। बुद्धींद्रियाणि पंचैव पंच कर्मेन्द्रियाणि च॥३९॥
साधकानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश। एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम्॥४०॥
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पंचमी। शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि तानि वै॥४१॥
पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाग्दशमी भवेत्। गतिर्विसर्गो ह्यानंदः शिल्पं वाक्यं च कर्म तत्॥४२॥

आकाशं शब्दमात्रं च स्पर्शमात्रं समाविशत्।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत्॥४३॥

रूपं तथैव विशतः शब्दस्पर्शगुणवुभौ। त्रिगुणस्तु ततस्त्वग्निः सशब्दस्पर्शरूपवान्॥४४॥

सशब्दस्पर्शरूपं च रसमात्रं समाविशत्।
तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः॥४५॥

अग्नि से रूपस रूप अग्नि, अग्नि से रस मात्र जल, रस रूप मात्र जल से गंध तन्मात्र पृथ्वी उत्पन्न हुई। गंध पृथ्वी का गुण है।।३२-३४।। अग्नि तत्त्व रूप तन्मात्रा के साथ रस तन्मात्राओं को आवृत किया। जल से गन्ध तन्मात्राओं को आवृत किया।।३५।। उससे ठोस (संघात) पृथ्वी उत्पन्न हुई। इसका खास गुण गंध है। प्रत्येक तत्त्व के अपने-अपने गुण हैं। जैसे आकाश का शब्द आदि। यह तन्मात्र कहलाता है और इसको प्रकृति को तन्मात्रता कहते हैं।।३६।। तन्मात्रों को अविशेष भी कहते हैं क्योंकि इस स्थिति में वे किसी विशेष को नहीं परिभाषित करते जो दूसरों से विशिष्ट हो। वे अन्य कारण से भी अविशेष हैं, क्योंकि वे प्रशान्त और घोर हैं, मूढ़ हैं।।३७।। यह सृष्टि भूतों की तन्मात्राओं से बनी हुई को परस्पर जानना चाहिये। अन्य सृष्टि वैकारिक हैं। उनमें मिश्रण हुआ है। अहंकार या सात्त्विक से जहाँ सात्विक नीचे गया है।।३८।। वैकारिक सृष्टि एक साथ (युगपत) कार्य करती है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। ये दसों इन्द्रियाँ प्राप्ति के साधन है।। ग्यारहवाँ मन है। वह मन अपने गुण से उभयात्मक है। उसमें ज्ञान और कर्म दोनों इन्द्रियों के गुण हैं।।३९-४०।। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं श्रोत्र (कान) त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नाक (नासिका)। वे अपने-अपने से सम्बन्धित गुणों को ग्रहण करने की शक्ति रखती हैं। जैसे कान सुनने की शक्ति, नेत्र देखने की शक्ति आदि।।४१।। पैर, गुदा, गुप्त अंग, हाथ और वाक् (बोलने की इन्द्रिय) ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। उनके कार्य क्रमशः गति (चलना), मल-मूत्र का त्याग, आनन्द, शिल्प, आर्ट्स और क्राफ्ट तथा वाक्य बोलना (स्पीच) है।।४२।। आकाश शब्द मात्रं स्पर्श मात्र में समाविष्ट हुआ। अतः वायु में दो गुण हैं, शब्द और स्पर्श।।४३।। उसी प्रकार शब्द और स्पर्श दोनों रंग में प्रविष्ट हुये। अतः अग्नि में तीन गुण हुये—शब्द, स्पर्श और रंग।।४४।। शब्द, स्पर्श और रंग रस में समाविष्ट

शब्दस्पर्शं च रूपं च रसो वैगंधमाविशत्। संगता गंधमात्रेण आविशंतो महीमिमाम्।।४६।।
तस्मात्पंचगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु शस्यते। शांता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः।।४७।।
परस्परानुप्रवेशाद्धारयंति परस्परम्। भूमेरन्तस्त्विदं सर्वं लोकालोकाचलावृतम्।।४८।।
विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः। गुणं पूर्वस्य सर्गस्य प्राप्नुवंत्युत्तरोत्तराः।।४९।।
तेषां यावच्च तद्यच्च यच्च तावद्गुणं स्मृतम्। उपलभ्याप्सु वै गंधं केचिद्ब्रूयुरपां गुणम्।।५०।।
पृथिव्यामेव तं विद्यादपां वायोश्च संश्रयात्। एते सप्त महात्मानो ह्यन्योन्यस्य समाश्रयात्।।५१।।
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च। महादयो विशेषांता ह्यण्डमुत्पादयंति ते।।५२।।
एककालसमुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत्। विशेषेभ्योण्डमभवन्महत्तदुदकेशयम्।।५३।।
अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोण्डं समावृतम्। आपो दशगुणेनैतास्तेजसा बाह्यतो वृताः।।५४।।
तेजो दशगुणेनैव वायुना बाह्यतो वृत्तम्। वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतः।।५५।।
आकाशेनावृतो वायुः खं तु भूतादिनावृतम्। भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेनावृतो महान्।।५६।।
शर्वश्चांडकपालस्थो भवश्चांभसि सुव्रताः। रुद्रोग्निमध्ये भगवानुग्रो वायौ पुनः स्मृतः।।५७।।
भीमश्चावनिमध्यस्थो ह्यहंकारे महेश्वरः। बुद्धौ च भगवानीशः सर्वतः परमेश्वरः।।५८।।

हुये। अतः जल में चार गुण हो गये—शब्द, स्पर्श, रंग और रस।।४५।। शब्द, स्पर्श, रंग और रस ये चारों गंध में प्रविष्ट हुये। अतः गंध के साथ हो जाने से पृथ्वी में पाँच गुण हो गये। शब्द, स्पर्श, रंग, रस और गंध।।४६।। अतः पृथ्वी में पाँचों गुणों के होने से वह पंच महाभूतों (जल, अग्नि, आकाश और वायु) इन सब से बड़ी (महत्तमा) हो गयी। यह स्थूल रूपा है। वे शान्त, घोर और मूढ़ हैं। अतः उनको अविशेष कहते हैं।।४७।। एक-दूसरे में प्रवेश करने के कारण वे एक-दूसरे को धारण करते हैं।।४८।। वे विशेष कहलाते हैं क्योंकि वे ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य हैं। बाद वाले पूर्व सृष्टि के सब गुण प्राप्त करते हैं।।४९।। इन सब गुणों में से प्रत्येक गुण तत्त्व का विशिष्ट लक्षण है। किसी तत्त्व में दूसरा प्रकार गुण पाये जाने पर वह उसके सम्पर्क से जाना जायेगा। जैसे जल में गंध का अनुभव होने पर कोई कहे कि यह जल का गुण है तो ऐसा नहीं है क्योंकि गंध तो पृथ्वी का गुण है। यह इसलिए है क्योंकि जल में गंध पृथ्वी के सम्पर्क से हुआ और वह वायु के द्वारा महसूस हुई। ये सात महत् से प्रारम्भ और विशेष पर समाप्त होने वाले तत्त्व अण्ड को पैदा करते हैं क्योंकि वे एक-दूसरे पर निर्भर हैं। उन पर पुरुष अधिष्ठित है और अव्यक्त अनुग्रह है।।५०-५२।। पानी में बुलबुले के समान बड़ा अंड विशेष से तुरन्त उत्पन्न हुआ। पूरा अंड जल में पड़ा रहा, लेटा रहा।।५३।। अंड दस गुना जल से विस्तार में घिरा था। वह जल दस गुना विस्तार में अग्नि से घिरा था।।५४।। अग्नि बाहर से वायु द्वारा दस गुना विस्तार में घिरी थी। वायु भी दस गुना विस्तार में आकाश से घिरा था।।५५।। आकाश भी अहंकार से मंडलीकृत घिरा था। अहंकार बुद्धि से और बुद्धि अव्यक्त से घिरा हुआ है।।५६।। अंड कवर के पर्त (ढक्कन) में स्थित हैं। हे सुव्रतो! भव जल में स्थित है। रुद्र अग्नि के मध्य में स्थित है। उग्र वायु में स्थित हैं। भीम पृथ्वी के मध्य में स्थित है। महेश्वर अहंकार में स्थित हैं। भगवान ईश बुद्धि में स्थित हैं। परमेश्वर सर्वत्र स्थित हैं।

एतैरावरणैरंडं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम्।
एता आवृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः॥५९॥
प्रसर्गकाले स्थित्वा तु ग्रसंत्येताः परस्परम्। एवं परस्परोत्पन्ना धारयंति परस्परम्॥६०॥
आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिषु। महेश्वरः परोव्यक्तादंडमव्यक्तसंभवम्॥६१॥
अंडाज्जज्ञे स एवेशः पुरुषोर्कसमप्रभः। तस्मिन्कार्यस्य करणं संसिद्धं स्वेच्छयैव तु॥६२॥
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते। तस्य वामाङ्गजो विष्णुः सर्वदेवनमस्कृतः॥६३॥
लक्ष्म्या देव्या ह्यभूद्देव इच्छया परमेष्ठिनः। दक्षिणांगभवो ब्रह्मा सरस्वत्या जगद्गुरुः॥६४॥
तस्मिन्नंडे इमे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत्। चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना॥६५॥
लोकालोकद्वयं किंचिदंडे ह्यस्मिन्समर्पितम्। यत्तु सृष्टौ प्रसंख्यातं मया कालान्तरं द्विजाः॥६६॥
एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम्। रात्रिश्चैतावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः॥६७॥
अहस्तस्य तु या सृष्टिः रात्रिश्च प्रलयः स्मृतः। नाहस्तु विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारयेत्॥६८॥
उपचारस्तु क्रियते लोकानां हितकाम्यया। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च॥६९॥
तस्मात्सर्वाणि भूतानि बुद्धिश्च सहदैवतैः। अहस्तिष्ठन्ति सर्वाणि परमेशस्य धीमतः॥७०॥
अहरंते प्रलीयंते रात्र्यंते विश्वसंभवः। स्वात्मन्यवस्थिते व्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते॥७१॥

अंड इस प्रकार प्राकृत सात आवरणों से आवृत है (ढका है)। इस प्रकार सातों आवरणों को प्रकृति ढके हुये है। इस तरह से एक-दूसरे को ढक कर स्थित है।।५७-५९।। इस प्रकार स्थित ये सब सृष्टि काल में एक-दूसरे को धारण करते हैं और प्रलय काल में एक-दूसरे को ग्रसते हैं।।६०।। विकार विकारियों (कारण) में रहते हैं। ये आधार और आधेय भाव से रहते हैं। महेश्वर अव्यक्त से बाहर हैं और अंड अव्यक्त से उत्पन्न हुआ है। वही ईश अंड से उत्पन्न हुआ है। वह पुरुष है जो सूर्य के समान प्रभावाला है। उसमें कार्य का कारण अपनी स्वतन्त्र इच्छा से प्राप्त है। वह प्रथम शरीरी (शरीरधारी) है। उसको पुरुष कहते हैं। विष्णु जो सब देवों से नमस्कृत हैं उस पुरुष के वाम अंग से उत्पन्न हुये हैं।।६१-६३।। परमेश्वर की इच्छा से उसके वाम अंग से विष्णु और लक्ष्मी उत्पन्न हुये और दक्षिण अंग से जगद् गुरु ब्रह्मा और सरस्वती उत्पन्न हुये।।६४।। उस अंग में ये लोक हैं यह जगत् उसमें है। उस अंड में चन्द्रमा और सूर्य तारागणों, ग्रहों, वायु और लोकालोक एवं पर्वत गण सहित स्थित हैं। हे ब्राह्मणों! सृष्टि के लिये जो अत्यावश्यक अन्तराल अपेक्षित है वह मैंने तुम सब को बताया। यह परमेश्वर का दिन का समय है। उतने ही काल की उनकी रात्रि भी होती है।।६५-६७।। उनके सृष्टि रचना का काल उनका दिन है और प्रलय का काल उनकी रात्रि है।।६८।। ऐसा मानना चाहिये कि न तो उनका दिन है और न रात्रि। (जैसा कि हमारी धारणा है) लोगों के हित की कामना से सुविधा के लिए ऐसा उपचार किया गया है। बुद्धिमान परमेश के दिन के समय सब पदार्थ ठहरते हैं (बने रहते हैं)। ज्ञानेन्द्रियाँ और उनके विषय (अर्थ) पाँच महाभूत, सब प्राणी, बुद्धि और सब देवता बने रहते हैं।।६९-७०।। दिन के अन्त में वे विलीन हो जाते हैं। रात्रि के अन्त में वे फिर उत्पन्न होते हैं। विश्व की उत्पत्ति होती है जब कि अव्यक्त अपनी आत्मा में स्थित

साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ। तमःसत्त्वरजोपेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ॥७२॥
अनुपृक्तावभूतांतावोतप्रोतौ परस्परम्। गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते॥७३॥
तिले यथा भवेत्तैलं घृतं पयसि वा स्थितम्। तथा तमसि सत्त्वे च रजस्यनुसृत जगत्॥७४॥
उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं तथा। अहर्मुखे प्रवृत्तश्च परः प्रकृतिसंभवः॥७५॥
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः। प्रधानं पुरुषं चैव प्रविश्य स महेश्वरः॥७६॥
महेश्वरात्त्रयो देवा जज्ञिरे जगदीश्वरात्। शाश्वताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः॥७७॥
एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणाः। एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयोग्नयः॥७८॥
परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रताः। परस्परेण वर्तंते धारयंति परस्परम्॥७९॥
अन्योन्यमिथुना ह्येते अन्योन्यमुपजीविनः। क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजंति परस्परम्॥८०॥
ईश्वरस्तु परो देवो विष्णुश्च महतः परः। ब्रह्मा च रजसा युक्तः सर्गादौ हि प्रवर्तते॥८१॥
परः स पुरुषो ज्ञेयः प्रकृतिः सा परा स्मृता॥८२॥
अधिष्ठिता सा हि महेश्वरेण प्रवर्तते चोद्यमने समंतात्।
अनुप्रवृत्तस्तु महांस्तदेनां चिरस्थिरत्वाद्विषयं श्रियः स्वयम्॥८३॥
प्रधानगुणवैषम्यात्सर्गकालः प्रवर्तते। ईश्वराधिष्ठितात्पूर्वं तस्मात्सदसदात्मकात्॥८४॥

होता है, जबकि विकार विलीन हो जाते हैं, प्रधान और प्रकृति दोनों शान्त हो जाते हैं। अपने सामान्य लक्षणों के साथ, तम, सत्त्व और रज के समत्व में स्थित होने पर वे एक-दूसरे से इस तरह जुड़े होते हैं जैसे ऊन के फंदे से एक-दूसरे धागे से फँसे या जुड़े होते हैं। यह जान लेना चाहिये कि गुणों की साम्य स्थिति में लय और विषम स्थिति में सृष्टि होती है।।७१-७३।। जैसे तिलों में तेल और दूध में घी स्थित रहता है उसी प्रकार तम, सत्त्व और रज गुणों में जगत् स्थित रहता है।।७४।। पूरी रात देवी माहेश्वरी के साथ मौज से बिताने के बाद दिन प्रारम्भ होने पर स्रष्टा सृष्टि की रचना का कार्य प्रारम्भ करता है। जब प्रकृति उनसे उद्भूत (उत्पन्न) होती है।।७५।। वह महेश्वर प्रधान को प्रवेश करके भेदता है और प्रकृति योग के द्वारा उसको क्षोभित करती है।।७६।। महेश्वर जगदीश्वर से तीन देवता उत्पन्न होते हैं। वे स्थायी, परम गुह्य और रक्षा के नितान्त योग्य, सर्वात्मा और शरीरधारी हैं।।७७।। ये ही तीन देव, तीनों गुण, तीनों लोक और तीनों अग्नि हैं।।७८।। वे परस्पर आश्रित हैं और श्रद्धापूर्वक परस्पर अनुसरण करते हैं।।७९।। वे आपस में एक साथ जुड़े हैं और आपस में एक-दूसरे को धारण करते हैं। उनमें एक क्षण का भी वियोग नहीं होता है।।८०।। शिव परम देव हैं। विष्णु बुद्धि से बाह्य या ऊपर हैं। ब्रह्मा रजो गुण से युक्त हैं। वह सृष्टि के प्रारम्भ का कार्य करते हैं।।८१।। वह पुरुष पर और प्रकृति परा नाम से जानने के योग्य है। महेश्वर से अधिष्ठित होकर चारों ओर प्रेरित होने पर वह कार्य करना प्रारम्भ करती है। बुद्धि का मूल तत्त्व इसका अनुमान करके कार्य करता है। इसलिए यह स्थायी और सूक्ष्म है। यह ज्ञान के विषय को स्वयं आश्रय देता है। जब प्रधान के गुणों में विषमता होती है तो उससे सृष्टि का काल प्रवर्तित होता है। वह ईश्वर से अधिष्ठित और अस्तित्व अनस्तित्व का रूप होता है अर्थात् सत् और असत् होता

संसिद्धः कार्यकरणे रुद्रश्चाग्रे ह्यवर्तत। तेजसाप्रतिमो धीमानव्यक्तः संप्रकाशकः॥८५॥
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते। ब्रह्मा च भगवांस्तस्माच्चतुर्वक्त्रः प्रजापतिः॥८६॥
संसिद्धः कार्यकरणे तथा वै समवर्तत। एक एव महादेवास्त्रिधैवं स व्यवस्थितः॥८७॥
अप्रतीपेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण समन्वितः। धर्मेण चाप्रतीपेन वैराग्येण च तेऽन्विताः॥८८॥
अव्यक्ताज्जायते तेषां मनसा यद्यदीहितम्। वशीकृतत्वात्त्रैगुण्यं सापेक्षत्वात्स्वभावतः॥८९॥
चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तिक स्मृतः। सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्त्रोऽवस्थाः स्वयंभुवः॥९०॥
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान्कालत्वे संक्षिपत्यपि। पुरुषत्वे ह्युदासीनस्तिस्त्रोवस्थाः प्रजापतेः॥९१॥
ब्रह्मा कमलगर्भाभो रुद्रः कालाग्निसन्निभः। पुरुषः पुंडरीकाक्षो रूपं तत्परमात्मनः॥९२॥
एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः। महेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च॥९३॥
नानाकृतिक्रियारूपनामवंति स्वलीलया। महेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च॥९४॥
त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्रिगुण उच्यते। चतुर्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः॥९५॥
यदाप्नोति यदादत्ते यच्चाति विषयानयम्। यच्चास्य सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते॥९६॥
ऋषिः सर्वगतत्वाच्च शरीरी सोस्य यत्प्रभुः। स्वामित्वमस्य यत्सर्वं विष्णुः सर्वप्रवेशनात्॥९७॥
भगवान् भगवद्भावान्निर्मलत्वाच्छिवः स्मृतः। परमः संप्रकृष्टत्वादवनादोमिति स्मृतः॥९८॥

है। रुद्र कार्य के करने में पूर्णरूप से तैयार हो गये वे अपने तेज से अनुपम थे। बुद्धिमान और प्रकाशक वह वास्तव में प्रथम शरीरधारी आत्मा और पुरुष कहे गये (कहलाये)। उनसे चतुरानन प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न हुये। इसलिये वे सृष्टि के कार्य को करने में पूर्ण समर्थ हुये। इस प्रकार एक ही महादेव तीन रूपों में स्थित हुये।।८२-८७।। वह सीधे ज्ञान और ऐश्वर्य से और अप्रतिम ज्ञान और वैराग्य से युक्त हैं।।८८।। भावना वशीकृत होने से, कर्म तीनों गुणों की प्रकृति पर निर्भर होने से, उनके मन में जो अभीष्ट हुआ वह अव्यक्त से उत्पन्न हुआ।।८९।। अज देवता प्रजापति ब्रह्मा की अवस्थायें हैं। वे चतुर्मुख ब्रह्मा के रूप हैं।। काल के रूप में वे सृष्टि के संहारक हैं। वे सहस्त्र शिरधारी पुरुष भी हैं।।९०।। ब्रह्मा के रूप में सृष्टि की रचना करते हैं। काल के रूप में वे उस सृष्टि का विनाश करते हैं। पुरुष के रूप में वे उदारशील रहते हैं। यह ब्रह्मा की तीन अवस्थाएँ हैं।।९१।। ब्रह्मा के भीतरी भाग आभा से युक्त हैं। रुद्र प्रलय काल की कालाग्नि के समान हैं। पुरुष कमल नयन हैं। वह महान् आत्मा का रूप हैं।।९२।। महेश्वर एक शरीर, दो शरीर, तीन शरीर और अनेक शरीर धारण करते हैं। वे इन शरीरों को बनाते हैं और नष्ट भी करते हैं। वे अपनी लीला से उनको विकृत भी करते हैं।।९३।। महेश्वर विभिन्न आकार के शरीरों को उत्पन्न करते हैं। उसके आकारों, कार्यों, रूपों और नामों को नष्ट करते हैं।।९४।। वह तीन रूपों को धारण करते हैं, अतः वे त्रिगुण कहलाते हैं। जब वह चर भाग में विभक्त होते हैं तब वे चतुर्व्यूह कहलाते हैं।।९५।। वह 'आत्मा' भी कहे जाते हैं क्योंकि वह ज्ञान से विषयों को प्राप्त करते हैं, ग्रहण करते हैं। तथा विषय को खाते हैं, (निगलते हैं) फिर भी उनका सतत् अस्तित्व है।।९६।। उनको ऋषि कहा जाता है क्योंकि वह सब जगह जाते हैं। वे शरीर हैं क्योंकि वह शरीरी के स्वामी हैं। वे विष्णु कहलाते हैं क्योंकि वह सर्वत्र प्रवेश करते हैं।।९७।। उनको भगवान भी कहा जाता है क्योंकि वे भग अर्थात् ऐश्वर्य प्रेम

सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वमयो यतः। त्रिधा विभज्य चात्मानां त्रैलोक्यं संप्रवर्तते॥९९॥

सृजते ग्रसते चैव रक्षते च त्रिभिः स्वयम्।
आदित्वादादिदेवोसावजातत्वादजः स्मृतः॥१००॥
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः।
देवेषु च महान्देवो महादेवस्ततः स्मृतः॥१०१॥
सर्वगत्वाच्च देवानामवश्यत्वाच्च ईश्वरः।
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते॥१०२॥
क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानादेकत्वात्केवलः स्मृतः।
यस्मात्पुर्यां स शेते च तस्मात्पुरुष उच्यते॥१०३॥
अनादित्वाच्च पूर्वत्वात्स्वयंभूरिति संस्मृतः।
याज्यत्वादुच्यते यज्ञः कविर्विक्रांतदर्शनात्॥१०४॥
क्रमणः क्रमणीयत्वात्पालकश्चापि पालनात्।
आदित्यसंज्ञः कपिलो ह्यग्रजोग्निरिति स्मृतः॥१०५॥

हिरण्यमस्य गर्भोभूद्धिरण्यस्यापि गर्भजः। तस्माद्धिरण्यगर्भत्वं पुराणेऽस्मिन्निरुच्यते॥१०६॥
स्वयंभुवोपि वृत्तस्य कालो विश्वात्मनस्तु यः। न शक्यः परिसंख्यातुमपि वर्षशतैरपि॥१०७॥

और यश से युक्त हैं। उनको शिव भी कहते हैं क्योंकि वे निर्मल हैं। उनको प्रमाण भी कहा जाता है क्योंकि वे प्रसिद्ध हैं। रक्षा करने के कारण उनको ओम् कहते हैं।।९८।। वह सर्वज्ञ कहलाते हैं क्योंकि वे सब कुछ भली भाँति जानते हैं। वह सर्व भी कहलाते हैं क्योंकि वे सर्वमय हैं। वे अपने को तीन भागों में बाँटकर तीनों लोकों में कार्य करते हैं।।९९।। तीन रूपों से स्वयं उत्पन्न करते हैं, ग्रसते हैं और रक्षा करते हैं। आदि में होने से वे आदि देव कहलाते हैं। वे अज कहलाते हैं क्योंकि उनका जन्म नहीं हुआ है।।१००।। वह प्रजा (लोगों) की रक्षा करते हैं। अतः उनको प्रजापति कहते हैं। देवों में सब से महान् होने से उनको महादेव कहा जाता है।।१०१।। देवताओं में सर्वत्र व्याप्त होने के कारण और सब को अपने वश में करने के कारण वह ईश्वर कहलाते हैं।।१०२।। बृहत् होने के कारण वह ब्रह्मा कहलाते हैं। अपने अस्तित्व के कारण वह भूत कहलाते हैं। वह पुरी में सोते हैं। अतः उनको पुरुष कहा जाता है। क्षेत्र के ज्ञान होने के कारण उनको क्षेत्रज्ञ और एक होने के कारण केवल कहा जाता है।।१०३।। अनादि होने और अपूर्व होने के कारण उनको अज कहते हैं। पूजा के योग्य होने से उनको यज्ञ और इन्द्रियों से न दिखाई देने वाली वस्तु को देखने के कारण उनको कवि कहा जाता है।।१०४।। उनको क्रमण कहते हैं क्योंकि वे सब की पहुँच में हैं। सब को पालन करने के कारण वे पालक हैं। कपिल वर्ण होने के कारण उनको आदित्य कहते हैं। अग्रज (प्रथम) उत्पन्न होने के कारण उनको अग्नि कहते हैं।।१०५।। सब हिरण्य अंडों के उत्पत्ति का स्रोत होने और हिरण्य के अंड से उत्पन्न होने के कारण उनको हिरण्यगर्भ कहते हैं।।१०६।। स्वयंभू विश्वात्मा का जो काल बीत गया और जो अस्तित्व में है

कालसंख्याविवृत्तस्य परार्धो ब्रह्मणः स्मृतः।
तावच्छेषोस्य कालोन्यस्तस्यांते प्रतिसृज्यते॥१०८॥
कोटिकोटिसहस्राणि अहर्भूतानि यानि वै।
समतीतानि कल्पानां तावच्छेषाः परे तु ये। यस्त्वयं वर्तते कल्पो वाराहस्तं निबोधत॥१०९॥
प्रथमः सांप्रतस्तेषां कल्पोयं वर्तते द्विजाः। यस्मिन्स्वायंभूवाद्यास्तु मनवस्ते चतुर्दश॥११०॥
अतीता वर्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुनः। तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता॥१११॥
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या महेश्वरैः। प्रजाभिस्तपसा चैव तेषां शृणुत विस्तरम्॥११२॥
मन्वंतरेण चैकेन सर्वाण्येवांतराणि च।
कथितानि भविष्यंति कल्पः कल्पेन चैव हि॥११३॥
अतीतानि च कल्पानि सोदर्काणि सहान्वयैः। अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता॥११४॥
आपो ह्यग्ने समभवन्नष्टे च पृथिवीतले। शांततारैकनीरेस्मिन्न प्राज्ञायत किंचन॥११५॥
एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे। तदा भवति वै ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्॥११६॥
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णस्त्वतींद्रियः।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा॥११७॥
सत्त्वोद्रकात्प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमुदैक्षत। इमं चोदाहरंत्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति॥११८॥

उसकी गणना सौ वर्षों में भी नहीं की जा सकती है।।१०७।। आधा परार्ध (परार्ध का पूर्व भाग) वर्तमान ब्रह्मा की आयु पहिले ही बीत चुकी है। उसके बराबर का दूसरा काल अर्थात् द्वितीय परार्ध अब भी शेष है। उसके अन्त में लोगों का विनाश अर्थात् प्रलय होगी।।१०८।। कल्प के ये दिन करोड़ों और हजारों करोड़ों बीत गये। अब उतने ही बाकी हैं। जो कल्प चालू है यह वाराह कल्प है।।१०९।। हे ब्राह्मणों! यह प्रथम कल्प (ब्रह्मा का दिन) है। उसके भीतर वाराह कल्प (युग) है। इसके भीतर चौदह मनु हैं। पहला मनु स्वयंभुव है। यह सात द्वीपों और पर्वतों से युक्त (बनी हुई) यह पृथ्वी उन महेश्वरों (मनुओं) द्वारा रक्षा की जाती है। यह रक्षा उनकी तपस्या और प्रजाओं के माध्यम से होती है। उनका विस्तृत विवरण सुनिये।।११०-११२।। एक मन्वन्तर के वर्णन से सब मन्वन्तरों का और एक कल्प के वर्णन से सब कल्पों का वर्णन उसी तरह समझना चाहिये।।११३।। बीते हुये कल्प अपने वंशों के राजाओं आदि के क्रम को भविष्य के कल्पों पर छोड़ जाते हैं। अर्थात् जैसा कार्य एक कल्प में रहता है वैसा ही दूसरे कल्पों में रहता है। इसमें वही सब क्रम होता है।।११४।। जब पृथ्वी तल नष्ट हो गया तब केवल जल शेष रह गया। उस शान्त और विस्तृत जल में कुछ भी नहीं मालूम पड़ता था। जब सागर के रूप में विस्तृत फैले हुये उस जल में समस्त स्थावर और जंगम नष्ट हो गये तब ब्रह्मा ने हजार नेत्रों और हजार पैरों वाले और हजार सिर वाले रूप को धारण किया। तब उनको नारायण कहा गया। वह सुनहरे रंग के पुरुष थे और अतीन्द्रिय थे। (ज्ञानेन्द्रियों से परे थे)। तब वह उस विस्तृत जल में सो गये।।११५-११७।। सत्त्व गुण के उद्रेक से जब वह जागे तो उन्होंने लोक को शून्य देखा। तब उन्होंने नारायण के प्रति यह श्लोक

आपो नाराश्च सूनव इत्यपां नाम शुश्रुमः। आपूर्य ताभिरयनं कृतवानात्मनो यतः॥११९॥
अप्सु शेते यतस्तस्मात्ततो नारायणः स्मृतः। चतुर्युगमहस्त्रस्य नैशं कालमुपास्यतः॥१२०॥

शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात्।
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्वायुर्भूत्वा समाचरत्॥१२१॥
निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्तु सः।
ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायांतर्गतां महीम्॥१२२॥

अनुमानादसंमूढो भूमेरुद्धरणं पुनः। अकरोत्स तनूमन्यां कल्पादिषु यथापुरा॥१२३॥
ततो महात्मा भगवान्दिव्यरूपमचिंतयत्। सलिलेनाप्लुतां भूमिं दृष्ट्वा स तु समंततः॥१२४॥
किंनु रूपमहं कृत्वा उद्धरेयं महीमिमाम्। जलक्रीडानुसदृशं वाराहं रूपमाविशत्॥१२५॥
अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम्। पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम्॥१२६॥
अद्भिः संछादितां भूमिं स तामाशु प्रजापतिः। उपगम्योज्जहारैनामापश्चापि समाविशत्॥१२७॥
सामुद्रा वै समुद्रेषु नादेयाश्च नदीषु च। रसातलतले मग्नां रसातलपुटे गताम्॥१२८॥
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्रयाभ्युज्जहार गाम्। ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः॥१२९॥
मुमोच पूर्ववदसौ धारयित्वा धराधरः। तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता॥१३०॥

तत्समा ह्युरुदेहत्वान्न मही याति संप्लवम्।
तत उत्क्षिप्य तां देवो जगतः स्थापनेच्छया॥१३१॥

पढ़ा।।११८।। हम लोग सुनते हैं कि नार का अर्थ जल या पुत्र होता है। उन्होंने जलों से भरकर अपना शरणस्थल बनाया। जलों में सोने (शयन करने) के कारण उनको नारायण कहा गया या नारायण कहलाये। जल में चारों युगों के एक हजार वर्ष जल में निवास करने के बाद रात्रि के अन्त में उन्होंने सृष्टि के प्रयोजन से ब्रह्मा का रूप धारण किया। ब्रह्मा वायु होकर उस जल में घूमने लगे, जैसे वर्षा ऋतु में रात में जुगुनू घूमते हैं। उसके बाद पृथ्वी तो पानी के भीतर चली गई। अनुमान से जानकर उन्होंने अन्य कल्पों की तरह जैसे दूसरा रूप धारण किया था वैसे ही अन्य रूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार करने का निश्चय किया। इस पृथ्वी को ऊपर लाने के लिये मैं कौन-सा रूप धारण करूँ? ऐसा उन्होंने सोचा। फिर उन्होंने जल में क्रीड़ा करने के अनुरूप वाराह रूप धारण किया। वह रूप सब प्राणियों के लिये अधृष्य था। यह स्वयं ब्रह्मा का कथन है। उन्होंने पृथ्वी को ऊपर उठाकर लाने के लिए वाराह रूप में पाताल में प्रवेश किया।।११९-१२६।। वाराह रूप में उन्होंने जल से घिरी हुई पृथ्वी के पास पहुँचकर उसको उठा लिया।।१२७।। जल लोगों के कल्याण के लिए तुरन्त समुद्रों और नदियों में भर गया। ब्रह्मा ने पृथ्वी को टेढ़े दाँतों पर उठाकर रख लिया जो कि पाताल लोक में जल में डूबी हुई थी। पृथ्वी को भगवान विष्णु अपने मूल स्थान पर लाये और जैसे वह पहले थी वैसे ही रखकर छोड़ दिया। वह पृथ्वी जल के समूह पर एक जहाज की तरह स्थित हो गई। अपने भारी शरीर के कारण वह जल में फिर डूब न सकी। उसके बाद कमलनयन ब्रह्मा ने जगत की स्थापना की इच्छा से पृथ्वी के विभाग की ओर अपना

पृथिव्याः प्रविभागाय मनश्चक्रेम्बुजेक्षणः।
पृथिवीं च समां कृत्वा पृथिव्यां सोचिनोद्गिरीन्॥१३२॥
प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्तकाग्निना।
तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भूरिविस्तराः॥१३३॥
शैत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुना तेन संहताः।
निषिक्ता यत्रयत्रासं स्तत्रतत्राचलाभवन्॥१३४॥
तदाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः।
गिरयो हि निगीर्णत्वाच्छयानत्वाच्छिलोच्चयाः॥१३५॥
ततस्तेषु विकीर्णेषु कोटिशो हि गिरिष्वथ।
विश्वकर्मा विभजते कल्पादिषु पुनःपुनः॥१३६॥
ससमुद्रामिमां पृथ्वीं सप्तद्वीपां सपर्वताम्।
भूराद्याश्चतुरो लोकान्पुनः सोथ व्यकल्पयत्॥१३७॥
लोकान्प्रकल्पायित्वाथ प्रजासर्गं ससर्ज ह।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः॥१३८॥
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां कल्पादिषु यथापुरा।
तस्याभिध्यायतः सर्गं तथा वै बुद्धिपूर्वकम्॥१३९॥
बुद्ध्याश्च समकाले वै प्रादुर्भूतस्तमोमयः।
तमोमोहो महामोहस्तामिस्त्रश्चांधसंज्ञितः॥१४०॥

ध्यान दिया। उन्होंने पृथ्वी को समतल किया और पर्वतों को संग्रहीत किया।।१२८-१३२।। जब कि पिछली सृष्टि प्रलय काल में अग्नि द्वारा जल गई थी। पर्वत भी विस्तृत क्षेत्र में विखर गये थे। जल के समुद्र के समान फैले हुये विस्तृत जल में शीत के कारण वायु के झोंकों से तितर-वितर हुये पर्वतों के टुकड़ों के ढेर लग गये थे। जहाँ कहीं भी वे जमा हुये, वे पर्वत हो गये।।१३३-१३४।। पर्वतों को अचल कहते हैं क्योंकि वे कभी चलते नहीं। वे पर्वत कहलाते हैं क्योंकि उनमें पर्व (गाँठें) होती हैं। वे निगीर्ण होने के कारण गिरि कहे जाते हैं। वे शिलोच्चय कहलाते हैं क्योंकि वे भूमि पर लेटे रहते हैं।।१३५।। उसके बाद जब करोड़ों पर्वत इधर-उधर बिखरे थे तो देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा ने इनका प्रत्येक कल्प में पुनः-पुनः वर्गीकरण किया।।१३६।। उन्होंने तब समुद्रों और पर्वतों सहित इस पृथ्वी को सात द्वीपों में विभाजित किया। उसके बाद भू आदि चार लोकों को बनाया।।१३७।। लोकों को बनाने के बाद, अज ब्रह्मा—जो कि विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि के लिये इच्छुक थे—तब सृष्टि की रचना प्रारम्भ किया।।१३८।। उन्होंने कल्प के प्रारम्भ में प्रत्येक वस्तु को उसी प्रकार बनाया जैसे कि वह पहिले कल्प में थी। जब उन्होंने बुद्धिपूर्वक सृष्टि की रचना के लिये ध्यान किया उसी समय

अविद्या पंचपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः।
पंचधावस्थितः सर्गो ध्यायतः सोभिमानिनः॥१४१॥
संवृतस्तमसा चैव बीजांकुरवदावृतः।
बहिरन्तश्चाप्रकाशस्तब्धो निःसंज्ञ एव च॥१४२॥
यस्मात्तेषां वृताबुद्धिर्दुःखानि करणानि च।
तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः॥१४३॥
मुख्यसर्गं तथाभूतं दृष्ट्वा ब्रह्मा ह्यसाधकम्।
अप्रसन्नमनाः सोथ ततोन्यं सो ह्यमन्यत्॥१४४॥
तस्याभिध्यायतश्चैव तिर्यक्स्त्रोता ह्यवर्तत।
तस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तः स तिर्यक्स्त्रोतास्ततः स्मृतः॥१४५॥
पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः।
तस्याभिध्यायतोन्यं वै सात्त्विकः समवर्तत॥१४६॥
ऊर्ध्वस्त्रोतास्तृतीयस्तु स वै चोर्ध्वं व्यवस्थितः।
यस्मात्प्रवर्तते चोर्ध्वमूर्ध्वस्त्रोतास्ततः स्मृतः॥१४७॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरंतश्च संवृताः।
प्रकाशाबहिरंतश्च ऊर्ध्वस्त्रोतोभवाः स्मृताः॥१४८॥
ते सत्त्वस्य च योगेन सृष्टाः सत्त्वोद्भवाः स्मृताः।
ऊर्ध्वस्त्रोतास्तृतीयो वै देवसर्गस्तु स स्मृतः॥१४९॥

महान् आत्मा ब्रह्मा से तम, मोह (माया), महामोह, तामिस्त्र और अंधतामिस्त्र ये पाँच अवस्थाओं में उत्पन्न हुये।।१३९-१४१।। स्वाभिमानी ब्रह्मा द्वारा ध्यान करने पर पाँच प्रकार की सृष्टि हुई। (१) तम से आवृत (२) आधी खुली और आधी ढकी (आवृत) बीज के अंकुर की तरह (३) जिनमें बाहर या भीतर प्रकाश नहीं था (४) जो स्तब्ध और (५) निः संज्ञ।।१४२।। बुद्धि, द्वारा, ढके होने से उनको संवृत अवस्था कही गई। वे अचल कोटि के हैं जैसे पर्वत आदि।।१४३।। इस दशा में प्रथम सृष्टि देखकर और कार्य के लिये बेकार (निरर्थक) समझकर ब्रह्मा मन में असंतुष्ट हुये और दूसरे के विषय में सोचा।।१४४।। इसके विषय में ध्यान करने पर तिर्यक् स्त्रोत सृष्टि उत्पन्न हुई। तिर्यक् स्त्रोत होने से वह तिर्यक् कही गई।।१४५।। हे ब्राह्मणों! पशु आदि (पक्षी, रेंगने वाले जीव आदि) वह प्रसिद्ध सृष्टि हुई। ये वे हैं जो गलत रास्ते पर चलते हैं। तब फिर ब्रह्मा ने ध्यान किया तो सात्विक सृष्टि विकसित हुई।।१४६।। यह तीसरी सृष्टि गन्धर्वों की थी जो ऊर्ध्व स्त्रोत थे। वे ऊपर की ओर कार्य करते थे। अतः गन्धर्व कहलाये। इस श्रेणी में आने वाले अधिकांश प्रसन्न और सुखी थे। वे बाहर और भीतर दोनों ओर से संवृत्त और प्रकाशित हैं।।१४७-१४८।। वे सत्त्व गुण के संयोग से उत्पन्न

प्रकाशाद्बहिरंतश्च ऊर्ध्वस्त्रोतोद्भवाः स्मृताः।
ते ऊर्ध्वस्त्रोतसो ज्ञेयास्तुष्टात्मानो बुधैः स्मृताः॥१५०॥
ऊर्ध्वस्त्रोतस्तु सृष्टेषु देवेषु वरदः प्रभुः।
प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोन्यं सोभ्यमन्यत॥१५१॥
ससर्ज सर्गमन्यं हि साधकं प्रभुरीश्वरः।
ततोभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा॥१५२॥
प्रादुरासीत्तदा व्यक्तादर्वाक्स्त्रोतास्तु साधकः।
यस्मादर्वाक् न्यवर्तंत ततोर्वाक्स्त्रोतसस्तु ते॥१५३॥
ते च प्रकाशबहुलास्तमःपृक्ता रजोधिकाः।
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः॥१५४॥
संवृता बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते।
लक्ष्णैस्तारकाद्यैस्ते ह्यष्टधा तु व्यवस्थिताः॥१५५॥
सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गंधर्वसहधर्मिणः।
इत्येष तैजसः सर्गो ह्यर्वाक्स्त्रोतः प्रकीर्तितः॥१५६॥
पंचमोनुग्रहः सर्गश्चतुर्धा तु व्यवस्थितः।
विपर्ययेण शक्त्या च सिद्ध्या तुष्ट्या तथैव च॥१५७॥

हुये। अतः वे सात्विक कहलाये। यह देव सृष्टि है।।१४९।। गन्धर्वों की श्रेणी में उत्पन्न सृष्टि बाहर और भीतर दोनों ओर से तेजोमय है। ऊर्ध्वस्त्रोता सृष्टि के लोग विद्वानों द्वारा संतुष्टात्मा कहे गये हैं।।१५०।। जब गन्धर्वों की श्रेणी में देवों की सृष्टि हो गई तो वरदाता ब्रह्मा मन से प्रसन्न हो गये। फिर भी उन्होंने दूसरी सृष्टि के विषय में ध्यान किया।।१५१।। उन्होंने ऐसी सृष्टि पर विचार किया जो कि साधक हो सके। कार्य के लिये उपयुक्त होगी। सत्यपूर्ण ध्यान करने वाले ब्रह्मा थे। उस समय अर्वाक् स्रोत साधक सृष्टि स्वयं अव्यक्त प्रकृति से उत्पन्न हुई। चूँकि यह अर्वाक् (नीचे की ओर) कार्य करती है। अतः यह अर्वाक् स्रोत कहलाई। उसको अर्वाक् स्रोत कहा गया।।१५२-१५३।। वे मानव हैं जो बाहर और भीतर प्रकाश बहुल हैं। वे तमो गुण से मिश्रित रजो गुण प्रधान हैं। इसलिए ये दुःख बहुल हैं और वे बारम्बार अपने कार्य करते हैं।।१५४।। वे मानव बाहर और भीतर से संवृत हैं। सक्रिय हैं। वे अपने-अपने लक्षणों के माध्यम से आठ श्रेणियों में विभाजित हैं।।१५५।। वे मनुष्य हैं जो गंधर्वों के सहधर्मी हैं। उन्होंने गन्धर्वों के समान गुणों के साथ आत्माओं की अनुभूति की है। इस प्रकार, अर्वाक् स्रोत सृष्टि को तैजस कहा जाता है। इस नाम से उसको पुकारते हैं।।१५६।। पाँचवी सृष्टि अनुग्रह है। यह विपर्यय, शक्ति, सिद्धि और तुष्टि भेद से चार प्रकार से व्यवस्थित है। स्थावरों में विपर्यय से, तिर्यक योनि (पशु) में शक्ति से, मनुष्यों में अपने आत्माओं के अनुभव से, देवों और ऋषियों में तुष्टि से विभाजित किये गये

स्थावरेषु विपर्यासः स्तिर्यग्योनिषु शक्तितः।
सिद्धात्मनो मनुष्यास्तु ऋषिदेवेषु कृत्स्नशः॥१५८॥
इत्येष प्राकृतः सर्गो वैकृतोऽनवमः स्मृतः।
भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते॥१५९॥
निवृत्तं वर्तमानं च तेषां जानन्ति वै पुनः।
भूतादिकानां भूतानां सप्तमः सर्ग एव च॥१६०॥
तेऽपरिग्राहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः।
स्वादनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते॥१६१॥
विपर्ययेण भूतादिरशक्त्या च व्यवस्थितः।
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणः स्मृतः॥१६२॥
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः।१६३॥
इत्येष प्रकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्वकः।
मुख्यसर्गश्चतुर्थश्च मुख्या वै स्थावराः स्मृताः॥१६४॥
ततोर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः॥१६५॥
पंचैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः। प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः॥१६६॥
अबुद्धिपूर्वकाः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः। बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते षट् पुनर्ब्रह्मणस्तु ते॥१६७॥

हैं।।१५७।। इस ऋषि के समूह को प्राकृत कहते हैं क्योंकि प्रकृति के आधार पर यह विभाजन है, यह प्रकृत सृष्टि है। यह सृष्टि उत्तम है। सिद्धों और ऋषियों की आदि की सृष्टि छठवीं है। सामान्य मनुष्यों, ऋषियों आदि से पृथक् है। भूतादिकों और भूतों की सृष्टि सातवीं सृष्टि है।।१५८-१५९।। छठवीं सृष्टि जिसमें ऋषिगण का प्रतिनिधित्व है, वे जानते हैं कि अतीत काल में क्या हुआ, वर्तमान में क्या हो रहा है और भविष्य में क्या होगा। यद्यपि वे अपने कर्मों के फल सुख-दुःख आनन्द आदि को भोगते हैं फिर भी वे अपरिग्रही (विरागी) हैं।।१६०-१६१।। यह सृष्टि विपर्यय और भूतादि की शक्ति से श्रेणीबद्ध है। प्रथम (१) ब्रह्मा को सृष्टि है। उसके आगे (२) तन्मात्रों की सृष्टि है जिसको भूतसर्ग कहते हैं। (३) वैकारिक या ऐन्द्रिक। ये तीन प्रकृत सर्ग बुद्धिपूर्वक हैं। अर्थात् बुद्धि से विकसित हुये हैं। चतुर्थ मुख्य सर्ग (सृष्टि) स्थावर मुख्य है।।१६२-१६४।। उसके बाद (५) तिर्यक् (६) ऊर्ध्व (७) अर्वाक्स्रोत (८) अनुग्रह, ये आठ क्रमशः हैं। ये सात्त्विक और तामस दोनों हैं।।१६५।। इस तरह पाँच वैकृत प्रकार और तीन प्राकृत प्रकार मिलकर कुल आठ प्रकार की सृष्टियाँ हैं। नवीं सृष्टि कौमार नाम की है।।१६६।। तीन प्राकृत सृष्टियाँ अबुद्धि सृष्टि के पूर्व की हैं। लेकिन अन्य क्रमांक ४

विस्तरानुग्रहः सर्गः कीर्त्यमानो निबोधत। चतुर्धावस्थितः सोथ सर्वभूतेषु कृत्स्नशः॥१६८॥
इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नवस्मृताः। परस्परानुरक्ताश्च कारणैश्च बुधैः स्मृताः॥१६९॥
अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान्। ऋभुः सनत्कुमारश्च द्वावेतावूर्ध्वरेतसौ॥१७०॥

पूर्वोत्पन्नौ पुरा तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजौ।
व्यतीते त्वष्टमे कल्पे पुराणौ लोकसाक्षिणौ॥१७१॥
तौ वाराहे तु भूर्लोके तेजः संक्षिप्य धिष्ठितौ।
तावुभौ मोक्षकर्माणावारोप्यात्मानमात्मनि॥१७२॥

प्रजां धर्मं च कामं च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितौ। यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमारः स इहोच्यते॥१७३॥
तस्मात्सनत्कुमारेति नामास्येह प्रकीर्तितम्। सनंदं सनकं चैव विद्वांसं च सनातनम्॥१७४॥
विज्ञानेन निवृत्तास्ते व्यवर्तंत महौजसः। संबुद्धाश्चैव नानात्वे अग्रवृत्ताश्च योगिनः॥१७५॥
असृष्ट्वैव प्रजासर्गं प्रतिसर्गं गताः पुनः। ततस्तेषु व्यतीतेषु ततोन्यान्साधकान्सुतान्॥१७६॥
मानसानसृजद् ब्रह्मा पुनः स्थानाभिमानिनः। आभूतसंप्लवावस्था यैरियं विधृता मही॥१७७॥
आपोग्निं पृथिवीं वायुमंतरिक्षं दिवं तथा। समुद्रांश्च नदीश्चैव तथा शैलवनस्पतीन्॥१७८॥

ओषधीनां तथात्मानो वल्लीनां वृक्षवीरुधाम्।
लताः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ताः संधिरात्र्यहान्॥१७९॥
अर्धमासांश्च मासांश्च अयनाब्दयुगानि च।
स्थानाभिमानिनः सर्वे स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः॥१८०॥

से ९ तक की सृष्टियाँ बुद्धिपूर्वक हैं।।१६७।। अब मैं अनुग्रह सृष्टि को विस्तार से बताऊँगा। उसको समझो। यह सम्पूर्ण प्राणियों में चार प्रकार से स्थित है।।१६८।। प्राकृत और वैकारिक सृष्टियाँ मिलकर नौ हैं। वे बुद्धिमान लोग कारणों के माध्यम से परस्पर सम्बद्ध हैं।।१६९।। आगे ब्रह्मा ने समान मानस पुत्रों को पैदा किया उनमें से ऋभु और सनत्कुमार ब्रह्मचारी रहे।।१७०।। वे पूर्व उत्पन्न थे। वे सब पुत्रों से बड़े थे। आठवाँ कल्प समाप्त होने के बाद वे लोक के साक्षी थे। पुराने (प्राचीन) दोनों पुत्र अपने तेज को संक्षित करके वाराह कल्प में भूलोक में बस गये (टिक गये)। वे दोनों मोक्ष की कामना से अपने में अपनी आत्मा को स्थित करके पूजा, धर्म और काम को छोड़कर वैरागी हो गये। सनत्कुमार जैसे उत्पन्न थे वैसे ही बालक के समान बने रहे। इसीलिये सनत् के साथ कुमार शब्द जोड़कर उनको सनतकुमार कहा गया।।१७१-१७३।। ब्रह्मा ने सनत्, सनक और विद्वान सनातन को उत्पन्न किया। अपने पूर्ण ज्ञान के द्वारा महान् शक्तिशाली वे ऋषि सांसारिक कार्यों से विरत रहे। वे योगी हुये। अतः सांसारिक क्रिया-कलापों में प्रवृत्त नहीं हुये। बिना सन्तान को पैदा किये ही वे प्रलय काल में मृत्यु को प्राप्त हुये। उनकी मृत्यु के बाद ब्रह्मा ने फिर मानस पुत्र उत्पन्न किये जो कार्यक्षम थे और अपने स्थान से अभिमानी थे। जिन्होंने प्रलय पर्यन्त इस पृथ्वी को धारण किया।।१७४-१७७।। ब्रह्मा ने जल, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, समुद्रों, नदियों, पर्वतों, वनस्पतियों, औषधियों, लताओं, वृक्षों और पर्वतों, लवों, दिशाओं, मूहूर्त्तों, संधि, रात और दिन, पक्षों, मासों, अयनों (उत्तरायण) दक्षिणायन, वर्षों और युगों को बनाया।

देवानृषींश्च महतो गदतस्तान्निबोधत। मरीचिभृग्वंगिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्॥१८१॥
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोसृजन्मानसान्नव। नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः॥१८२॥
तेषां ब्रह्मात्मकानां वै सर्वेषां ब्रह्मवादिनाम्। स्थानानि कल्पयामास पूर्ववत्पद्मसंभवः॥१८३॥
ततोसृजच्च संकल्पं धर्मं चैव सुखावहम्। सोसृजद्व्यवसायात्तु धर्मं देवो महेश्वरः॥८४॥
संकल्पं चैव संकल्पात्सर्वलोकपितामहः। मानसश्च रुचिर्नाम विजज्ञे ब्रह्मणः प्रभोः॥१८५॥

प्राणाद्ब्रह्मासृजद्दक्षं चक्षुर्भ्यां च मरीचिनम्।
भृगुस्तु हृदयाज्जज्ञे ऋषिः सलिलजन्मनः॥१८६॥
शिरसोङ्गिरसश्चैव श्रोत्रादत्रिं तथासृजत्।
पुलस्त्यं च तथोदानाव्द्यानाच्च पुलहं पुनः॥१८७॥
समानजो वसिष्ठश्च अपानान्निर्ममे क्रतुम्।
इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा दिव्या एकादश स्मृताः॥१८८॥
धर्मादयः प्रथमजाः सर्वे ते ब्रह्मणः सुताः।
भृग्वादयस्तु ते सृष्टा नवैते ब्रह्मवादिनः॥१८९॥
गृहमेधिनः पुराणास्ते धर्मस्तैः संप्रवर्तितः।
तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगुणान्विताः॥१९०॥

क्रियावंतः प्रजावंतो महर्षिभिरलंकृताः। ऋभुः सनत्कुमारश्च द्वावेतावूर्ध्वरेतसौ॥१९१॥

ये सब अपने स्थान (निवास) के अभिमानी और अपने निवासों के नामों से प्रसिद्ध हुये। ब्रह्मा ने देवताओं और ऋषियों को भी उत्पन्न किया। वे मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ नाम के थे। ब्रह्मा ने इन नौ मानस पुत्रों को उत्पन्न किया।।१७८-१८२।। कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने पूर्ववत् सब ब्रह्मज्ञानियों के लिये निवास निर्धारित किया जो कि स्वयं ब्रह्मा के समान थे।।१८३।। तब ब्रह्मा ने संकल्प और धर्म की सृष्टि की। धर्म को व्यवसाय से और संकल्प को संकल्प से उत्पन्न किया। तब प्रभु ब्रह्मा से रुचि नामक मानस पुत्र उत्पन्न हुआ।।१८४-१८५।। ब्रह्मा ने अपने प्राण से दक्ष को और अपने नेत्रों से मरीचि को उत्पन्न किया। भृगु ब्रह्मा के हृदय से उत्पन्न हुये।।१८६।। उन्होंने अंगिरा को अपने शिर से और अत्रि को अपने कानों से उत्पन्न किया। उन्होंने पुलस्त्य को उदान वायु से और पुलह को व्यान वायु से उत्पन्न किया।।१८७।। वसिष्ठ समान वायु से उत्पन्न हुये। ब्रह्मा ने क्रतु को अपान वायु से उत्पन्न किया। इस प्रकार ब्रह्मा से कुल मिलाकर ग्यारह दिव्य पुत्र हैं।।१८८।। धर्म आदि ब्रह्मा के प्रथम उत्पन्न पुत्र हैं। नव पुत्र भृगु तथा अन्य वे सब ब्रह्मा के पुत्र हैं और सब ब्रह्मवादी हैं। वे पुराने गृहस्थ हैं। उन्होंने ही धर्म का प्रचार किया। आगे बढ़ाया। उनमें से बारह देवों के स्वामी थे। उनके वंशज दिव्य और सात्विक गुणों से युक्त थे। वे क्रियावान, उत्तम संतान वाले और महर्षियों द्वारा सम्मानित थे।।१८९-१९०।। ऋभु और सनत्कुमार ये दोनों ब्रह्मचारी थे। वे अग्रज थे। अतः सबों से ज्येष्ठ थे।

पूर्वोत्पन्नौ परं तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजौ।
व्यतीते त्वष्टमे कल्पे पुराणौ लोकसाक्षिणौ॥१९२॥
विराजेतामुभौ लोके तेजः संक्षिप्य धिष्ठितौ। तावुभौ योगकर्माणावारोप्यात्मानमात्मनि॥१९३॥
प्रजां धर्मं च कामं च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितौ। यथोत्पन्नः स एवेह कुमारः स इहोच्यते॥१९४॥
तस्मात्सनत्कुमारेति नामास्येह प्रतिष्ठितम्।
ततोभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसाः प्रजाः॥१९५॥
तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः कारणैः सह। क्षेत्रज्ञाः समवर्तंत गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः॥१९६॥
ततो देवासुरपितॄन्मानुषांश्च चतुष्टयम्। सिसृक्षुरंभास्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत्॥१९७॥
ततस्तु युञ्जतस्तस्य तमोमात्रसमुद्भवम्। समभिध्यायतः सर्गं प्रयत्नेन प्रजापतेः॥१९८॥
ततोस्य जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः।
असुः प्राणः स्मृतो विप्रास्तज्जन्मानस्ततोसुराः॥१९९॥
यया सृष्टासुराः सर्वे तां तनुं स व्यपोहत। सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत॥२००॥
सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिर्नियामिका।
आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात्स्वपन्त्युत॥२०१॥
सृष्ट्वासुरांस्ततः सो वै तनुमन्यामगृह्णत।
अव्यक्तां सत्त्वबहुलां ततस्तां सोभ्यपूजयत्॥२०२॥
ततस्तां युंजतस्तस्य प्रियमासीत्प्रजापतेः। ततो मुखात्समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवताः॥२०३॥

आठवें कल्प के बीत जाने पर लोकों के साक्षी, प्राचीन ये दोनों ऋषि अपने तेज को संक्षिप्त करके लोक में दीप्यमान हुये। वे दोनों ने आत्मा में परमात्मा को आरोपित करके एवं योगिक अनुष्ठान करके प्रजा, धर्म और काम को छोड़कर संसार से वैराग्य ले लिया (विरक्त हो गये)। सनत् ने अपना बालकवत रूप धारण किये रखा। अतः उन्हें सनत्कुमार कहा गया।।१९१-१९४।। इसके बाद ब्रह्मा जी ने अपना ध्यान जारी रखा। उनके मानस पुत्र उत्पन्न हुये।।१९५।। बुद्धिमान ब्रह्मा के शरीर से कार्य और कारण प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्तिगत आत्मायें (क्षेत्रज्ञ) उत्पन्न हुईं।।१९६।। उसके बाद ब्रह्मा, देवों, असुरों, पितरों और मनुष्यों ये चार प्रकार के वर्गों की सृष्टि करने को इच्छुक हुये। तब उन्होंने अपने को जल में स्थित किया। जब उन्होंने ऐसा किया और सृष्टि पर ध्यान लगाया तब घोर तम (अन्धकार) उत्पन्न हुआ। तभी उनकी जाँघ से असुर पुत्र उत्पन्न हुये। हे ब्राह्मणों! 'असु' का अर्थ है प्राण। प्राण वायु से उत्पन्न होने के कारण वे असुर कहलाये।।१९७-१९९।। जिस शरीर से उन्होंने सब असुरों को उत्पन्न किया उस शरीर (तनु) को उन्होंने छोड़ दिया। उससे तुरन्त रात्रि हो गई।।२००।। रात्रि अन्धकारमय होती है। इससे चलना-फिरना रुक जाता है। अतः अन्धकार से ढके लोग रात्रि में सोते हैं।।२०१।। असुरों की सृष्टि करके फिर ब्रह्मा जी ने दूसरा शरीर धारण किया। यह शरीर अव्यक्त था और अधिकांश सत्त्वगुण बहुल था। अतः उन्होंने इस शरीर की पूजा की। अतः उन्होंने उस शरीर को यौगिक कार्यों में लगाया

यतोस्य दीव्यतो जातास्तेन देवाः प्रकीर्तिताः।
धातुर्दिविति यः प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते॥२०४॥
यस्मात्तस्य तु दीव्यंतो जज्ञिरे तेन देवताः। देवान्सृष्ट्वाथ देवेशस्तनुमन्यामपद्यत॥२०५॥
उत्सृष्टा सा तनुस्तेन सद्योहः समजायत। तस्मादहो धर्मयुक्तं देवताः समुपासते॥२०६॥
सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोन्यां सोभ्यमन्यत।
पितृवन्मन्यमानस्य पुत्रांस्तान्ध्यायतः प्रभोः॥२०७॥
पितरो ह्युपपक्षाभ्यां रात्र्यह्नोरंतरेभवन्। तस्मात्ते पितरो देवाः पितृत्वं तेन तेषु तत्॥२०८॥
यया सृष्टास्तु पितरस्तनुं तां स व्यपोहत।
सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः संध्या व्यजायत॥२०९॥
यस्मादहर्देवतानां रात्रिर्या सासुरी स्मृता। तयोर्मध्ये तु पैत्री या तनुः सा तु गरीयसी॥२१०॥
तस्माद्देवा सुराः सर्वे ऋषयो मानवास्तथा। उपासंते मुदायुक्ता रात्र्यह्नोर्मध्यमां तनुम्॥२११॥
ततो ह्यन्यां पुनर्ब्रह्मा तनुं वै समगृह्णत। रजोमात्रात्मिकायां तु मनसा सोसृजत्प्रभुः॥२१२॥
रजःप्रियांस्ततः सोथ मानसानसृजत्सुतान्। मनस्विनस्ततस्तस्य मानवा जज्ञिरे सुताः॥२१३॥
सृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चापि स्वां तनुं तामपोहत।
सापविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत॥२१४॥
यस्माद्भवंति संहृष्टा ज्योत्स्नाया उद्भवे प्रजाः। इत्येतास्तनवस्तेन ह्यपविद्धा महात्मना॥२१५॥

तो वे प्रसन्न थे। तब उनके दीप्त (चमकते हुये) मुख से देवता उत्पन्न हुये।।२०२-२०३।। ब्रह्मा जी के दीव्यमान मुख से उत्पन्न होने के कारण वे देवता कहलाये। दिव् धातु का अर्थ क्रीड़ा करना है। इसलिए देवता क्रीड़ा से उत्पन्न हुये। देवताओं को उत्पन्न करने के बाद ब्रह्मा जी ने दूसरा शरीर ग्रहण किया।।२०४-२०५।। जब उन्होंने पहिले वाले शरीर को छोड़ा त्यों ही तुरन्त दिन हो गया। इसलिए धर्म से युक्त दिन की देवता लोग उपासना करते हैं।।२०६।। तब उन्होंने जो नया शरीर धारण किया वह सात्त्वगुणमय था। प्रभु ब्रह्मा ने पुत्रों पर पिता के समान अपना ध्यान पुनः चालू किया। तब उनके दोनों अंगों (पक्षों) (दाहिने और बायें) से दिन और रात्रि के मध्य पितर लोग उत्पन्न हुये थे, अतः देवता पितृ हैं और उनकी हैसियत उसी कारण से पितृ की है। ब्रह्मा ने उस शरीर को भी त्याग दिया। तब तुरन्त दिन हो गया।।२०७-२०९।। देवताओं को दिन और असुरों को रात्रि प्रिय होती है। अब दोनों के मध्य में जो है वह वरिष्ठ काल पितरों का है। इसलिये देवतागण, ऋषिगण और मनुष्य लोग दिन और रात्रि के मध्य में स्थित शरीर की उपासना करते हैं।।२१०-२११।। तब ब्रह्मा जी ने रजोगुणमय शरीर को धारण किया। उन्होंने मन से रजः प्रिय मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। वे रजोगुण प्रिय मानस पुत्र मनुष्य उत्पन्न हुये।।२१२-२१३।। उनको उत्पन्न करने के बाद ब्रह्मा जी ने अपना शरीर त्याग दिया। उस शरीर को ब्रह्मा द्वारा छोड़ते ही तुरन्त ज्योत्स्ना (चन्द्रमा का प्रकाश) उजाली रात हो गई। इसीलिए चन्द्रमा का प्रकाश फैलते ही लोग प्रसन्न हो जाते हैं।।२१४।। इस प्रकार उस महान् आत्मा ब्रह्मा द्वारा शरीरों को त्यागने के बाद तुरन्त रात्रि, दिन,

सद्यो रात्र्यहनी चैव संध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे।
ज्योत्स्ना संध्या अहश्चैव सत्त्वमात्रात्मकं त्रयम्॥२१६॥
तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मान्निशात्मिका।
तस्माद्देवा दिवातन्वा तुष्ट्या सृष्टा मुखात्तु वै॥२१७॥
यस्मात्तेषां दिवा जन्म बलिनस्तेन वै दिवा। तन्वा ययासुरान् रात्रौ जघनादसृजत्प्रभुः॥२१८॥
प्राणेभ्यो निशिजन्मानो बलिनो निशि तेन ते। एतान्येव भविष्याणां देवानामसुरैः सह॥२१९॥
पितॄणां मानवानां च अतीतानागतेषु वै। मन्वंतरेषु सर्वेषु निमित्तानि भवंति हि॥२२०॥
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी संध्या तत्वार्यंभांसि तानि वै।
भांति यस्मात्ततोंभांसि शब्दोयं सुमनीषिभिः॥२२१॥
भातिर्दीप्तौ निगदितः पुनश्चाथ प्रजापतिः।
सोऽम्भांस्येतानि सृष्ट्वा तु देवमानुषदानवान्॥२२२॥
पितॄंश्चैवासृजत्तन्वा आत्मना विविधान्पुनः।
तामुत्सृज्य तनुं ज्योत्स्नां ततोन्यां प्राप्य स प्रभुः॥२२३॥
मूर्तिं तमोरजःप्रायां पुनरेवाभ्यपूजयत्। अंधकारे क्षुधाविष्टांस्ततोन्यान्सोसृजत्प्रभुः॥२२४॥
तेन सृष्टाः क्षुधात्मानो अंभांस्यादातुमुद्यताः। अभांस्येतानि रक्षाम उक्तवंतस्तु तेषु ये॥२२५॥
राक्षसा नाम ते यस्मात् क्षुधाविष्टा निशाचराः। येब्रुवन्यक्षमोम्भांसि तेषां हृष्टाः परस्परम्॥२२६॥

संध्या और ज्योत्स्ना हो गई। ज्योत्स्ना, सन्ध्या और दिन ये तीनों सत्त्वमात्रात्मक (अच्छाई के गुण) हैं।।२१५-२१६।। रात्रि तमोमात्रात्मक (अंधकार के गुण से युक्त) होती है। इसलिए उसको निशा कहते हैं। क्योंकि देवता दिन के द्वारा उत्पन्न किये हैं। इसलिये देवता दिन से तुष्टि से, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुये हैं। उनका जन्म दिन में हुआ। अतः वे दिन में बलवान होते हैं। ब्रह्मा ने अपनी जाघों से असुरों को रात में पैदा किया। अतः वे रात्रि में बलवान होते हैं।।२१७-२१८।। ये समय सब के लिए कारण होते हैं। अतीत, वर्तमान और भविष्य देवताओं, असुरों, पितरों और मनुष्यों के लिये सब मन्वन्तरों के भूत और भविष्य में निमित्त होते हैं।।२१९-२२०।। ब्रह्मा के चार शरीर ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और संध्या होते हैं। इनको 'आम्भसी' कहते हैं। 'भा' धातु का अर्थ चमकना है। विद्वानों ने 'आम्भसी' शब्द को इस धातु से बनाया है। इनकी रचना के बाद ब्रह्माजी ने अपने शरीर से देवों, मानवों, असुरों और पितरों को बनाया। उसके बाद उन्होंने उस शरीर को त्याग दिया तो उससे ज्योत्स्ना उत्पन्न हुई और दूसरा रूप तमो गुण (अन्धकार) और रजोगुण का ले लिया। रात्रि में ब्रह्मा ने प्राणियों को रचा जो कि क्षुधा (भूख) से पीड़ित थे।।२२१-२२४।। उन लोगों ने कहा कि ''हम लोग इन शरीरों की रक्षा करेंगे।'' ऐसा कहकर उन भूख से पीड़ित व्यक्तियों ने ब्रह्मा के शरीर को काटने की कोशिश की। वे लोग राक्षस कहलाये। वे रात्रि में चलने वाले (निशाचर) थे। वे भूख से पीड़ित थे। जिन्होंने कहा कि ''हम इन शरीरों को खायेंगे।'' वे अपने कर्म से और गुह्य (गुप्त) कर्म से यक्ष और गुह्यक कहलाये। 'रक्ष' धातु का अर्थ

तेन ते कर्मणा यक्षा गुह्यका गूढ़कर्मणा। रक्षेति पालने चापि धातुरेष विभाष्यते॥२२७॥
एवं च यक्षतिर्धातुर्भक्षणे स निरुच्यते।
तं दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्णास्तु धीमतः॥२२८॥
ते शीर्णाश्चोत्थिता ह्यूर्ध्वं ते चैवारुरुधुः प्रभुम्।
हीनास्तच्छिरसो बाला यस्माच्चैवावसर्पिणः॥२२९॥
व्यालात्मानः स्मृता बाला हीनत्वादहयः स्मृताः।
पतत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवावसर्पणात्॥२३०॥
तस्य क्रोधोद्भवो योसौ अग्निगर्भः सुदारुणः।
स तु सर्पान् सहोत्पन्नानाविवेश विषात्मकः॥२३१॥
सर्पान्सृष्ट्वा ततः क्रुद्धः क्रोधात्मानो विनिर्ममे।
वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः॥२३२॥
भूतत्वात्ते स्मृता भूताः पिशाचाः पिशिताशनात्।
प्रसन्नं गायतस्तस्य गंधर्वा जज्ञिरे यदा॥२३३॥
धयतीत्येष वै धातुः गानत्वे परिपठ्यते।
धयंतो जज्ञिरे वाचं गंधर्वास्तेन ते स्मृताः॥२३४॥
अष्टस्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः।
ततः स्वच्छंदतोन्यानि वयांसि वयसासृजत्॥२३५॥
स्वच्छंदतः स्वच्छंदांसि वयसा च वयांसि च।
पशून्सृष्ट्वा स देवेशोऽसृजत्पक्षिगणानपि॥२३६॥

रक्षा करना और 'यक्ष' का अर्थ खाना होता है। इस सृष्टि को देखकर बुद्धिमान ब्रह्मा के बाल शीर्ण हो गये।।२२५-२२८।। वे शीर्ण बाल जो कि ब्रह्मा के सिर से झड़कर नीचे गिर पड़े वे सर्प हो गये। चूँकि वे हीन थे, अतः उनको 'अहि' कहा गया। वे ब्रह्मा के सिर से गिरे, इस कारण उनको 'पन्नग' कहा गया। वे सर्प हैं क्योंकि वे रेंगते हैं। इनके भयंकर क्रोध से उत्पन्न अग्नि 'विष' बन गया। वह सर्पों में प्रवेश कर गया। इसीलिए वे विष के साथ पैदा होते हैं। सर्पों को उत्पन्न करने के बाद क्रुद्ध ब्रह्मा ने उग्र आत्माओं को जन्म दिया जो कपिश रंग के भयानक कच्चे मांस के भक्षक भूतगण थे। वे अस्तित्व में आये और वे भूत और पिशाच कहलाये क्योंकि वे कच्चा माँस खाने वाले थे।।२२९-२३३।। उसके बाद प्रसन्न गान करने वाले गन्धर्व उत्पन्न हुये। 'धै' धातु का अर्थ गाना है। वे वाक् गाते हुये उत्पन्न हुये। अतः वे गन्धर्व नाम से जाने गये।।२३४।। इन आठ विभागों की सृष्टि करने के बाद युवा ब्रह्मा ने अपनी स्वेच्छा से पक्षियों की सृष्टि की।।२३५।। चूँकि वे जहाँ चाहे अपने से घूम सकते हैं, अतः वयस् (पक्षी) नाम से जाने गये क्योंकि वे ब्रह्मा की वयस् (युवा अवस्था) में उत्पन्न किये गये थे। पशुओं की सृष्टि करने के बाद ब्रह्माजी ने पक्षधारी पशु के झुंड को उत्पन्न किया।।२३६।। उन्होंने

मुखतोजाः ससर्जाथ वक्षसश्च वयोसृजत्।
गाश्चैवाथोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्यां च विनिर्ममे॥२३७॥

पद्भ्यां चाश्वान् समातंगान् रसभानावयान्मृगान्। उष्ट्रानश्वतरांश्चैव तथान्याश्चैव जातयः॥२३८॥

ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे। एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वायूयुजत्सोध्वरे प्रभुः॥२३९॥

गौरजः पुरुषो मेषो ह्यश्वीश्वतरगर्दभौ। एतान्ग्राम्यान्पशुनाहुरारण्यान्वै निबोधत॥२४०॥

श्वापदो द्विखुरो हस्ती वानराः पक्षिपंचमाः।
आदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः॥२४१॥

महिषा गवयाक्षाश्च प्लवंगाः शरभा वृकाः।
सिंहस्तु सप्तमस्तेषामारण्याः पशवः स्मृताः॥२४२॥

गायत्रं च ऋचं चैव त्रिवृत्साम रथंतरम्।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्॥२४३॥

यजूंषि त्रैष्टुभं छंदस्तोमं पंचदशं तथा।
बृहत्साम तथोक्थ्यं च दक्षिणादसृजन्मुखात्॥२४४॥

सामानि जगतीच्छंदस्तोमं सप्तदशं तथा। वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात्॥२४५॥

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च। अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात्॥२४६॥

विद्युतोशनिमेघांश्च रोहितेंद्रधनूंषि च।
तेजांसि च ससर्जादौ कल्पस्य भगवान्प्रभुः॥२४७॥

अपने मुख से बकरियों की सृष्टि की। अपनी छाती से भेड़ों को, अपने उदर और पार्श्व से गायों और बैलों को उत्पन्न किया। उन्होंने अपने पैरों से घोड़ों, हाथियों, गधों, आवयों, मृगों, ऊँटों, खच्चरों और अन्य प्रकार के जंगली जानवरों की सृष्टि की। पौधे और फलदायक वृक्षों को अपने शरीर के बालों से उत्पन्न किया। पशुओं और पादपों की सृष्टि के बाद वह यज्ञ करने में लग गये।।२३७-२३९।। इनको ग्राम्यपशु कहते हैं। जैसे गाय, वैसे, घोड़े, गधे आदि। जंगली पशुओं को समझो।।२४०।। ये जंगली पशु कहलाते हैं जैसे शिकार के पशु शिकारी कुत्ते, दो खुरवाले हाथी, बानर, पक्षी पंचम, आदक, पशु षष्ठ, सरीसृप सात, भैंसें, गवय (बैल का एक प्रकार) भालू, बन्दर, शरभ (आठ पैरों का मृग) भेड़िया और सिंह जंगली पशु हैं।।२४१-२४२।। अपने प्रथम मुख से ब्रह्मा ने गायत्री, त्रिक् मंत्रों, त्विष्ट, साम, रथन्तर और अग्निष्टोम पद्य की सृष्टि की।।२४३।। अपने दक्षिण मुख से उन्होंने यजुः, त्रिष्टुभ छन्दः पंचदश स्तोम, बृहद साम, और उकथ्य पद्य को रचा।।२४४।। अपने पश्चिम मुख से उन्होंने साम, जगती छन्दः, सप्त दश स्तोम, वैरूप साम, और अतिरात्र पद्यों की रचना की।।२४५।। अपने उत्तर मुख से उन्होंने इक्कीस अथर्व प्रार्थना मंत्रों, आप्तोय, अर्यम, अनुष्टभ छन्द, और वैराज छन्दों की रचना की।।२४६।। कल्प के प्रारम्भ में प्रभु ब्रह्मा ने विद्युत, वज्र, मेघों, रोहित इन्द्रधनुषों और तेज (ज्योतिगण) की रचना की।।२४७।। ब्रह्मा के अंगों से उच्च और अवच (नीचे) के प्राणी उत्पन्न

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे। ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः॥२४८॥

सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरनरान्पितृन्।
ततोसृजत् स भूतानि स्थावराणि चराणि च॥२४९॥

यक्षान्पिशाचान् गंधर्वांस्त्वथैवाप्सरसां गणान्।
नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान्॥२५०॥

अव्ययं च व्ययं चापि यदिदं स्थाणुजंगमम्। तेषां वै यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे॥२५१॥
तान्येव प्रतिपद्यंते सृज्यमानाः पुनः पुनः। हिंस्राहिंसे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे नृतानृते॥२५२॥
तद्भाविताः प्रपद्यंते तस्मात्तस्य रोचते। महाभूतेषु सृष्टेषु इंद्रियार्थेषु मूर्तिषु॥२५३॥
विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधात्स्वयम्। केचित्पुरुषकारं तु प्राहुः कर्म सुमानवाः॥२५४॥
दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं भूतचिंतकाः। पौरुषं कर्म दैवं च फलवृत्तिस्वभावतः॥२५५॥
न चैकं न पृथग्भावमधिकं न ततो विदुः। एतदेवं च नैकं न नामभेदेन नाप्युभे॥२५६॥
कर्मस्था विषमं ब्रूयुः सत्त्वस्थाः समदर्शनाः। नाम रूपं च भूतानां कृतानां च प्रपंचनम्॥२५७॥
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः। ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु वृत्तयः॥२५८॥

शर्वर्यंते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः।
एवंविधाः सृष्टयस्तु ब्रह्मणोव्यक्तजन्मनः॥२५९॥

हुये।।२४८।। चार समूहों, देवों, असुरों, मानवों और पितरों की सृष्टि करने के बाद उन्होंने स्थावर और जंगम यक्षों, पिशाचों, गंधर्वों, अप्सराओं, नरों, किन्नरों, राक्षसों, पक्षियों, पशुओं, जंगली पशुओं और सर्पों की रचना की।।२४९-२५०।। अव्यय और व्यय, स्थावर और जंगम सृष्ट प्राणी हैं। पूर्व सृष्टि में उनके जो कर्म थे वे ही कर्म अगली सृष्टियों में करेंगे। वही स्वभाव हिंसा, अहिंसा, नम्रता, क्रूरता, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य अपने गुणों के कारण वे अपनाते और उनमें ही वे आनन्दित होते हैं। जब कि महाभूत इन्द्रियों के कार्यों, विषयों और उनके रूपों की सृष्टि की गई थी तो स्रष्टा ने स्वयं ज्ञानेन्द्रियों को उनके विषयों में नियोजित किया था। कुछ मनुष्य कहते हैं कि विविध कर्मों का कारण मनुष्यों का प्रयास है। अन्य लोग कहते हैं कि यह दैव (दिव्य भाग्य) है। भूतचिन्तक (पदार्थवादी) इसको कहते हैं कि यह स्वभाव है किन्तु वास्तव में पौरुष, कर्म, दैव और स्वभाव, फल या परिणाम के स्वभाव पर निर्भर होता है। वे जानते हैं कि इनमें से कोई स्वतः दूसरे से बड़ा नहीं है और न तो कोई एक-दूसरे से अलग किया जा सकता है। यह उनका स्वभाव है वे सब एक नहीं हो सकते और न तो इकट्ठे हो सकते हैं क्योंकि वे उनकी अलग-अलग इकाई है। कर्मस्थ लोग फल को विषय कहते हैं। सत्त्वस्थ अच्छाई के गुण पर निर्भर हैं। निष्पक्ष भाव (समभाव) रखते हैं। समदर्शी हैं। भूतों के नाम, रूप और कृतों (सृष्टों) का आगे का विकास, वेद के शब्दों से महेश्वर ने स्वयं आदि में ही बनाया था। अज वेदों के अनुसार प्रलय के अंतिम रात्रि के अन्त में उत्पन्न ऋषियों के नाम और कर्म उसी प्रकार रखे थे जैसे पूर्व में थे। अव्यक्त से उत्पन्न ब्रह्मा की सृष्टियाँ ऐसी ही हैं। ब्रह्मा ने स्थावर और चर प्राणियों की सृष्टि अपनी मानसिक

शर्वर्यंते प्रदृश्यंते सिद्धिमाश्रित्य मानसीम्।
एवंभूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च॥२६०॥

यदास्य ताः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धंत सत्तमाः। तमोमात्रावृतो ब्रह्मातदा शोकेन दुःखितः॥२६१॥
ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्। अथात्मनि समद्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम्॥२६२॥
रजः सत्त्वं परित्यज्य वर्तमानां स्वधर्मतः। ततः स तेन दुःखेन दुःखं चक्रे जगत्पतिः॥२६३॥
तमश्च व्यनुदत्पश्चाद्रजः सत्त्वं तमावृणोत्। तत्तमः प्रतिनुन्नं वै मिथुनं समजायत॥२६४॥
अधर्मस्तमसो जज्ञे हिंसा शोकादजायत। ततस्तस्मिन्समुद्भूते मिथुने दारुणात्मिके॥२६५॥

गतासुर्भगवानासीत्प्रीतिश्चैनमशिश्रियत् ।
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहत भास्वराम्॥२६६॥
द्विधा कृत्वा स्वकं देहमर्धेन पुरुषोभवत्।
अर्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत॥२६७॥
प्रकृतिं भूतधात्रीं तां कामाद्वै सृष्टवान्प्रभुः।
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्यधिष्ठिता॥२६८॥

ब्रह्मणः सा तनुः पूर्वा दिवमावृत्य तिष्ठति। या त्वर्धात्सृजतो नारी शतरूपा व्यजायत॥२६९॥
सा देवी नियुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्। भर्तारं दीप्तयशसं पुरुषं प्रत्यपद्यत॥२७०॥
स वै स्वायंभुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते। तस्यैव सप्ततियुगं मन्वंतरमिहोच्यते॥२७१॥
लेभे स पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम्। तया सार्धं स रमते तस्मात्सा रतिरुच्यते॥२७२॥

सिद्धि (पूर्णता) के माध्यम से की। जब कि ये अच्छी प्रजाओं की सृष्टि ब्रह्मा जी को उचित नहीं लगीं तब तमोमात्रा से आवृत्त वे शोक से दुःखी हुये।२५१-२६१।। तब उन्होंने अपनी बुद्धि को एक निश्चित निर्णय निकालने में लगाया। उन्होंने अपनी बुद्धि से विचार किया कि सत्त्व और रज को छोड़कर तमो मात्रा पूर्ण नियामक (नियन्त्रक) है।।२६२।। तब जगत्पति ब्रह्मा दुःख से दुःखी हुये। तब इन्होंने तम् और रज् को सत्त्व से ढक दिया। इस प्रकार तम मिथुन (युग्म) या एक जोड़ा हो गया।।२६३-२६४।। जब यह भयानक स्वभाव का जोड़ा (तम और रज्) उत्पन्न हुआ तब मृतप्राय ब्रह्मा को फिर प्रसन्नता हुई। तब ब्रह्मा ने अपनी भास्वर देह को दो भागों में बाँट दिया। आधे शरीर से वे मनुष्य और आधे शरीर से उन्होंने शतरूपा को उत्पन्न किया।।२६५-२६६।। ब्रह्मा जी ने प्रेमपूर्वक भूतों की माता प्रकृति को उत्पन्न किया। वह अपनी महानता से स्वयं और पृथ्वी से व्याप्त होकर स्थित हुई।।२६७-२६८।। ब्रह्माजी का आधा शरीर स्वर्ग को आवृत करके वहाँ स्थित है। आधे शरीर से उत्पन्न शतरूपा ने सैकड़ों हजारों वर्षों तक परम कठिन तपस्या की और फलस्वरूप एक यशस्वी विख्यात पुरुष को पति के रूप में प्राप्त किया।।२६९-२७०।। वह पुरुष स्वयंभुव मनु कहलाये। उनका चार युगों का सत्तर सेट मन्वन्तर है।।२७१।। उनकी पत्नी शतरूपा थीं जो योनि से नहीं उत्पन्न थीं। वे उनके साथ रमण करते

प्रथमः संप्रयोगात्मा कल्पादौ समपद्यत। विराजमसृजद् ब्रह्मा सोभवत्पुरुषो विराट्॥२७३॥
सम्राट् च शतरूपा वै वैराजः स मनुः स्मृतः। स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषो मनुः॥२७४॥
वैराजात्पुरुषाद्वीराच्छतरूपा व्यजायत। प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ द्वौ लोकसंमतौ॥२७५॥
कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जाता इमाः प्रजाः। देवी नाम तथाकूतिः प्रसूतिश्चैव ते उभे॥२७६॥
स्वायंभुवः प्रसूतिं तु दक्षाय प्रददौ प्रभुः। प्राणो दक्ष इति ज्ञेयः संकल्पो मनुरुच्यते॥२७७॥

रुचेः प्रजापतेः सोथ आकूतिं प्रत्यपादयत्।
आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम्॥२७८॥

यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमलौ संबभूवतुः। यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे॥२७९॥

यामा इति समाख्याता देवाः स्वायंभुवेंतरे।
एतस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामाश्च ते स्मृताः॥२८०॥
अजितश्चैव शुक्रश्च गणौ द्वौ ब्रह्मणा कृतौ।
यामाः पूर्वं प्रजाता ये तेऽभवंस्तु दिवौकसः॥२८१॥
स्वायंभुवसुतायां तु प्रसूत्यां लोकमातरः।
तस्यां कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत्प्रभुः॥२८२॥
सर्वास्ताश्च महाभागाः सर्वाः कमललोचनाः।
भोगवत्यश्च ताः सर्वाः सर्वास्ता योगमातरः॥२८३॥
सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वा विश्वस्य मातरः।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा॥२८४॥

थे। अतः उसका नाम रति भी हुआ।।२७२।। दो आत्माओं का परस्पर सम्पर्क कल्प के प्रारम्भ में हुआ जब कि ब्रह्मा जी ने विराट को उत्पन्न किया। वे विराट पुरुष हुये।।२७३।। शतरूपा प्रभावित थी। विराट का पुत्र स्वयंभुव मनु नाम से विख्यात हुआ। वैराज मनु ने प्रजाओं की सृष्टि की।।२७४।। वीर पुत्र विराट् (वैराज) से शतरूपा ने दो पुत्रों को जन्म दिया। प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक वे दोनों लोकों द्वारा सम्मानित हुये।।२७५।। शतरूपा ने दो पुत्रियों को भी जन्म दिया जिनसे ये प्रजा उत्पन्न हुई। उनके नाम आकूति और प्रसूति थे।।२७६।। स्वयंभुव मनु ने प्रसूति को दक्ष को दे दिया। दक्ष प्राण नाम से भी प्रसिद्ध हुये। उनको संकल्प मनु भी कहते हैं। उन्होंने आकूति को रुचि प्रजापति को दे दिया। ब्रह्मा के मानस पुत्र रुचि से आकूति के यज्ञ और दक्षिणा नामक जुड़वा संतानें उत्पन्न हुईं। यज्ञ ने दक्षिणा से बारह पुत्रों को प्राप्त किया। स्वयंभुव मन्वन्तर में उनके पुत्र देवयज्ञ उत्पन्न हुये। उनको यम भी कहते हैं। अतः वे याम भी कहलाते हैं।।२७७-२८०।। ब्रह्मा ने अजित और शुक्र नामक दो गणों को बनाया। याम लोग जो पहिले उत्पन्न हुये थे वे स्वर्ग में निवास करने लगे।।२८१।। स्वयंभुव की कंन्या प्रसूति के दक्ष के चौबीस कन्याएँ उत्पन्न हुईं जो लोकों की माताएँ हुईं।।२८२।। वे सब महाभाग्यशालिनी कमल के समान नेत्र वाली, भोगवती और योगिक माताएँ थीं।।२८३।। वे सब ब्रह्मवादिनी और विश्वमाताएँ थीं। दक्ष की तेरह कन्याओं को धर्म ने अपनी पत्नियाँ बनाया। उसके नाम श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि,

बुद्धिर्लज्जा वपुः शांतिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रीयोदश।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः॥२८५॥
दाराण्येतानि वै तस्य विहितानि स्वयंभुवा।
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः॥२८६॥
सती ख्यात्यथ संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा।
संनतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा॥२८७॥
तास्तथा प्रत्यपद्यंत पुनरन्ये महर्षयः।
रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अंगिराः पुलहः क्रतुः॥२८८॥
पुलस्त्योत्रिर्वसिष्ठश्च पितरोग्निस्तथैव च।
सतीं भवाय प्रायच्छत् ख्यातिं च भृगवे ततः॥२८९॥
मरीचये च संभूतिं स्मृतिमंगिरसे ददौ।
प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च॥२९०॥
क्रतवे संनतिं नाम अनसूयां तथात्रये।
ऊर्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहामप्यग्नये ददौ॥२९१॥
स्वधां चैव पितृभ्यस्तु तास्वपत्यानिबोधत।
एताः सर्वा महाभागाः प्रजास्वनुसृताः स्थिताः॥२९२॥
मन्वंतरेषु सर्वेषु यावदाभूतसंप्लवम्।
श्रद्धा कामं विजज्ञे वै दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः॥२९३॥
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः संतोष एव च।
पुष्ट्या लोभः सुतश्चापि मेधापुत्रः श्रुतस्तथा॥२९४॥

मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, और कीर्ति थे।।२८४-२८५।। दक्ष की इस कन्याओं को धर्म ने अपनी पत्नियाँ बनाया। उनकी छोटी कन्याएँ सुन्दर नेत्र वाली थीं। उनके नाम सती, ख्याति, संभूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, अनुसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा थे। अन्य महर्षियों ने उनको अपनी पत्नियाँ बनाया। वे महर्षि रुद्र, भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि और पितृ थे। उन्होंने सती को भव को, ख्याति भृगु को, संभूति मरीचि को, स्मृति अंगिरा को, प्रीति पुलस्त्य को, क्षमा पुलह को, संनति क्रतु को, अनुसूया अत्रि को, ऊर्जा वसिष्ठ को, स्वाहा अग्नि को, स्वधा पितरों को दिया। ये सब महाभाग्यशालिनी थीं। उन्होंने सब मन्वन्तरों में अपनी सन्तानें उत्पन्न कीं जब तक कि प्रलय नहीं हुई। अब उनकी सन्तानों के विषय में सुनिये।।२८६-२९२।। श्रद्धा ने कर्म को जन्म दिया। लक्ष्मी का पुत्र दर्प था। धृति का नियम, तुष्टि का संतोष, पुष्टि का लोभ, मेधा का श्रुत, क्रिया के दण्ड और समय दो पुत्र, बुद्धि के बोध और लज्जा के विनय,

क्रियायामभवत्पुत्रो दंडः समय एव च।
बुद्ध्यां बोधः सुतस्तद्वत्प्रमादोप्युपजायत॥२९५॥
लज्जायां विनयः पुत्रो व्यवसायो वसोः सुतः।
क्षेमः शांतिसुतश्चापि सुखं सिद्धेर्व्यजायत॥२९६॥
यशः कीर्तिसुतश्चापि इत्येते धर्मसूनवः।
कामस्य हर्षः पुत्रो वै देव्यां प्रीत्यां व्यजायत॥२९७॥
इत्येष वै सुतोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्तितः। जज्ञे हिंसा त्वधर्माद्वै निकृतिं चानृतं सुतम्॥२९८॥
निकृत्यां तु द्वयं जज्ञे भयं नरक एव च। माया च वेदना चापि मिथुनद्वयमेतयोः॥२९९॥
भूयो जज्ञेथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम्। वेदनायाः सुतश्चापि दुःखं जज्ञे च रौरवः॥३००॥
मृत्योर्व्याधिजराशोकक्रोधासूयाश्च जज्ञिरे।
दुःखोत्तराः सुता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः॥३०१॥
नैषां भार्यास्तु पुत्राश्च सर्वे ह्येते परिग्रहाः। इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः॥३०२॥
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः।
सोभिध्याय सतीं भार्यां निर्ममे ह्यात्मसंभवान्॥३०३॥
नाधिकान्न च हीनांस्तान्मानसानात्मनः समान्।
सहस्रं हि सहस्राणां सोसृजत्कृत्तिवाससः॥३०४॥
तुल्यानेवात्मनः सर्वान् रूपतेजोबलश्रुतैः।
पिंगलान्सनिषंगाश्च सकपर्दान्सलोहितान्॥३०५॥
विशिष्टान् हरिकेशांश्च दृष्टिघ्नांश्च कपालिनः।
महारूपान्विरूपांश्च विश्वरूपान्स्वरूपिणः॥३०६॥

वसु के व्ययसाय, शान्ति के क्षेम, सिद्धि के सुख, कीर्ति के यश उत्पन्न हुये। ये धर्म के पुत्र थे। हर्ष काम का पुत्र प्रीति से उत्पन्न हुआ। इस प्रकार धर्म की संतानों को बताया गया। हिंसा ने अधर्म से निकृति और अनृत को जन्म दिया।।२९३-२९८।। निकृति के भय और नरक पुत्र उत्पन्न हुये। माया और वेदना, निकृति के जुड़वा सन्तानें थी। माया ने प्राणियों के संहारकर्त्ता मृत्यु को जन्म दिया। वेदना का पुत्र दुःख रौरव से उत्पन्न हुआ। माया ने व्याधि, जरा, शोक, क्रोध और असूया उत्पन्न किया। दुःख से अन्त होने ऊपर के सब अधर्म लक्षण वाले पुत्र थे। इनकी पत्नियाँ और पुत्र नहीं थे। ये नित्य स्थायी रूप से ब्रह्मचारी थे। इस प्रकार तामसी सृष्टि अधर्म से विकसित हुई थी। अधर्म ही उनका नियंत्रण करने वाला (नियामक) था।।२९९-३०२।। ब्रह्मा ने नीललोहित (शिव) को प्रजाओं की सृष्टि का निर्देश दिया था। अपनी पत्नी सती का ध्यान करते हुये उन्होंने अपने समान, न कम न अधिक, हजार मानस पुत्रों को जन्म दिया।।३०३-३०४।। वे रूप, तेज, शक्ति और ज्ञान में उनके समान थे। वे पिंगल वर्ण के थे। वे निषंग सहित थे। उनके जटाजूट थे। वे कपालधारी थे। उनके आकार भी

रथिनश्चर्मिणश्चैव वर्मिणश्च वरूथिनः।
सहस्रशतबाहूंश्च दिव्यान्भौमांतरिक्षगान्॥३०७॥
स्थूलशीर्षानष्टदंष्ट्रान्द्विजिह्वांस्तांस्त्रिलोचनान् ।
अन्नादान्पिशिताशांश्च आज्यपान्सोमपानपि॥३०८॥
मीढुषोतिकपालांश्च शितिकंठोर्ध्वरेतसः। हव्यादाञ्छ्रुतधर्मांश्च धर्मिणो ह्यथबर्हिणः॥३०९॥
आसीनान्धावतश्चैव पंचभूतान्सहस्रशः। अध्यापिनोध्यायिनश्च जपतो युंजतस्तथा॥३१०॥
धूमवंतो ज्वलंतश्च नदीमंतोतिदीप्तिनः। वृद्धान्बुद्धिमतश्चैव ब्रह्मिष्ठाञ्शुभदर्शनान्॥३११॥
नीलग्रीवान्सहस्राक्षान्सर्वांश्चाथ क्षमाकरान्। अदृश्यान्सर्वभूतानां महायोगान्महौजसः॥३१२॥
भ्रमंतोभिद्रवंतश्च प्लवंतश्च सहस्रशः। अयातयामानसृजद्रुद्रानेतान् सुरोत्तमान्॥३१३॥
ब्रह्मा दृष्ट्वाब्रवीदेनं मास्राक्षीरीदृशीः प्रजाः।
स्रष्टव्या नात्मनस्तुल्याः प्रजा देव नमोस्तु ते॥३१४॥
अन्याः सृज त्वं भद्रं ते प्रजा वै मृत्युसंयुताः।
नारप्स्यंते हि कर्माणि प्रजा विगतमृत्यवः॥३१५॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनं नाहं मृत्युजरान्विताः।
प्रजाः स्रक्ष्यामि भद्रं ते स्थितोहं त्वं सृज प्रजाः॥३१६॥

विशिष्ट थे। उनके बाल हरे थे। वे अपने नेत्रों से हत्या कर सकते थे। वे महारूप (विशालकाय) और विरूप थे। वे विश्वरूप थे। उनके अपने रूप थे। उनके पास रथ, ढाल, कवच और वरूथ थे। उनके सैकड़ों और हजारों भुजाएँ थीं। वे स्वर्ग में, आकाश में जा सकते थे और पृथ्वी पर विचरण कर सकते थे। उनके सहस्र शिर थे। आठ टेढ़े दाँत, दो जीभ और तीन नेत्र थे। वे अन्न और कच्चा मांस खाने वाले थे। वे घी और सोम पीने वाले थे। कुछ सुन्दर थे। कुछ के बड़े खोपड़े थे। कुछ नीललोहित थे। वे ब्रह्मचारी थे। वे हव्य के खाने वाले थे। वे धर्म से सम्बद्ध थे। वे धार्मिक थे और मोर के पंखों को गदाओं में खोंसे हुये थे। कुछ बैठे थे। कुछ पाँच के समूहों को बनाकर दौड़ रहे थे। ऐसे हजारों समूह थे। कुछ अध्यापक थे। कुछ विद्यार्थी थे। अन्य जप कर रहे थे या योगाभ्यास कर रहे थे। कुछ धूमवान और दीप्तमान थे। कुछ नदियों पर निर्भर थे। कुछ बहुत तेजोमय थे। अन्य कुछ वृद्ध और बुद्धिमान थे। वे बृहद ध्यान में तल्लीन थे। वे शुभ दर्शन थे। वे नील गर्दन वाले थे। उनके हजारों नेत्र थे। वे करुणा की और क्षमा की खान थे। वे लोगों द्वारा अदृश्य थे। वे महायोगी और महातेजस्वी थे। उनमें से हजारों इधर-उधर घूमते थे। दौड़ते और इधर-उधर कूदते थे। शिव ने इन उत्तम देव रूप रूद्रों को एक याम (३ घण्टे) के भीतर उत्पन्न किया। ब्रह्माजी ने इनको देखकर कहा कि "ऐसी सृष्टि मत करो। हे देव! तुम को नमस्कार है। ऐसी सन्तानों की अपने समान सन्तानों (प्रजाओं) की सृष्टि न कीजिये। तुम्हारा कल्याण हो। हे महाराज! अपने तुल्य प्रजा की सृष्टि न करो। मृत्यु युक्त सृष्टि की रचना करो। मृत्यु रहित प्रजा धार्मिक पवित्र कृत्य नहीं करेंगी।" ब्रह्मा द्वारा ऐसा कहने पर महादेव जी ने कहा "मैं मृत्यु सहित प्रजा और वृद्धापन युक्त सृष्टि नहीं करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारे पास हूँ। तुम स्वयं की सृष्टि करो। यह जो मैंने

एते ये वै मया सृष्टा विरूपा नीललोहिताः।
सहस्त्राणां सहस्त्रं तु आत्मनो निस्सृताः प्रजाः॥३१७॥
एते देवा भविष्यंति रुद्रा नाम महाबलाः। पृथिव्यामंतरिक्षे च दिक्षु चैव परिश्रिताः॥३१८॥
शतरुद्राः समात्मानो भविष्यंतीतियाज्ञिकाः। यज्ञभाजो भविष्यंति सर्वदेवगणैः सह॥३१९॥
मन्वंतरेषु ये देवा भविष्यंतीह भेदतः।
सार्धं तैरीज्यमानास्ते स्थास्यंतीहायुगक्षयात्॥३२०॥
एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा महादेवेन धीमता। प्रत्युवाच नमस्कृत्य हृष्यमाणः प्रजापतिः॥३२१॥
एवं भवतु भद्रं ते यथा ते व्याहृतं विभो। ब्रह्मणा समनुज्ञाते तथा सर्वमभूत्किल॥३२२॥
ततःप्रभृति देवेशो न चासूयत वै प्रजाः।
ऊर्ध्वरेताः स्थितः स्थाणुर्यावदाभूतसंप्लवम्॥३२३॥
यस्मादुक्तः स्थितोस्मीति तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः।
एष देवो महादेवः पुरुषोर्कसमद्युतिः॥३२४॥
अर्धनारीनरवपुस्तेजसा ज्वलनोपमः।
स्वेच्छयासौ द्विधाभूतः पृथक् स्त्री पुरुषः पृथक्॥३२५॥
स एवैकादशार्धेन स्थितोसौ परमेश्वरः।
तत्र या सा महाभागा शंकरस्यार्धकायिनी॥३२६॥
प्रागुक्ता तु महादेवी स्त्री सैवेह सती ह्यभूत्। हिताय जगतां देवी दक्षेणाराधिता पुरा॥३२७॥
कार्यार्थं दक्षिणं तस्याः शुक्लं वामं तथासितम्। आत्मानं विभजस्वेति प्रोक्ता देवेन शंभुना॥३२८॥

विरूप नीललोहित हजारों हजार लोगों की सृष्टि की है ये महान् शक्ति सम्पन्न 'रुद्र गण' होंगे जो ये रुद्र नाम के महाबली देवता होंगे। ये पृथ्वी, आकाश और चारों दिशाओं में फैल जायँगे।।३०५-३१७।। एक हजार रुद्र यज्ञों के याज्ञिक होंगे। ये सब देवगणों के साथ यज्ञों में भेंट के भागीदार होंगे। वे एक युग के अन्त तक रहेंगे। वे विविध मन्वन्तरों में देवताओं के साथ पूजित होंगे"।।३१८-३२०।। बुद्धिमान महादेव द्वारा ऐसा कहे जाने पर ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उनको प्रणाम करके कहा।।३२१।। "हे प्रभो! जैसा आप ने कहा वैसा ही हो। आप का कल्याण हो।" ब्रह्मा के ऐसा कहने के बाद सब-कुछ उसी प्रकार से हुआ।।३२२।। उस दिन से देवताओं के स्वामी रुद्र ने प्रजाओं की सृष्टि नहीं की। वह स्थाणुवत् रहे और प्रलय होने तक ब्रह्मचारी बने रहे। महेश्वर, पुरुष, सूर्य के समान तेजवाले शिव ने चूँकि 'स्थितोऽस्मि' मैं खड़ा हूँ ऐसा कहा। इसलिये वे 'स्थाणु' कहलाये।।३२३-३२४।। उसका आधा शरीर नारी का है। तेज से वह अग्नि के समान है। उन्होंने स्वेच्छा से अपने शरीर को दो भागों में बाँटा। एक अलग नारी रूप और एक अलग पुरुष।।३२५।। वही परमेश्वर ग्यारह आधे भाग में स्थित हैं। शंकर की महाभाग्यशालिनी अर्धाङ्गिनी जो पहिले महादेवी कही गईं। वे लोकों के कल्याण के लिये सती हो गईं। वह देवी पहिले दक्ष द्वारा आराधित थीं।।३२६-३२७।। सृष्टि के कार्य के लिये दो भागों में विभाजित दाहिना आधा भाग श्वेत (सफेद) और बायाँ आधा भाग लोहित (काला) था। शिव ने पूछे

सा तथोक्त द्विधाभूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजाः।
तस्या नामानि वक्ष्यामि शृण्वंतु च समाहिताः॥३२९॥
स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सती दाक्षायणी विद्या इच्छाशक्तिः क्रियात्मिका॥३३०॥
अपर्णा चैकपर्णा च तथा चैवैकपाटला। उमा हैमवती चैव कल्याणी चैकमातृका॥३३१॥
ख्यातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता। गणांबिका महादेवी नंदिनी जातवेदसी॥३३२॥
एकरूपमथैतस्याः पृथग्देहविभावनात्। सावित्री वरदा पुण्या पावनी लोकविश्रुता॥३३३॥
आज्ञा आवेशनी कृष्णा तामसी सात्त्विकी शिवा।
प्रकृतिर्विकृता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी॥३३४॥
कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका। द्वापरांतविभागे च नामानीमानि सुव्रताः॥३३५॥
गौतमी कौशिकी चार्या चंडी कात्यायनी सती। कुमारी यादवी देवी वरदा कृष्णपिंगला॥३३६॥
बर्हिध्वजा शूलधरा परमा ब्रह्मचारिणी। महेंद्रोपेंद्रभगिनी दृष्द्वत्येकशूलधृक्॥३३७॥
अपराजिता बहुभुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी। शुंभादिदैत्यहंत्री च महामहिषमर्दिनी॥३३८॥
अमोघा विंध्यनिलया विक्रांता गणनायिका।
देव्या नामविकाराणि इत्येतानि यथाक्रमम्॥३३९॥
भद्रकाल्या मयोक्तानि सम्यक्फलप्रदानि च। ये पठंति नरास्तेषां विद्यते न च पातकम्॥३४०॥
अरण्ये पर्वते वापि पुरे वाप्यथवा गृहे। रक्षामेतां प्रयुंजीत जले वाथ स्थलेपि वा॥३४१॥

जाने पर कहा, हे ब्राह्मणों! उसने अपने को सफेद और काला दो भागों में विभक्त किया है। मैं उनके नाम बताता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनो।।३२८-३२९।। वे नाम हैं—स्वाहा, स्वधा, महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती, सती, दाक्षायणी, विद्या, इच्छा, शक्ति, क्रियात्मिका, अपर्णा, एकपर्णा, एकपाटला, उमा, हैमवती, कल्याणी, एकमातृका, ख्याति, प्रज्ञा, महाभागा, गौरी, गणाम्बिका, महादेवी, नन्दिनी, और जातवेदसी, ये कुछ नाम हैं जब वह एक थीं। अर्थात् दो भागों में विभक्त नहीं थीं। उसके बाद उन्होंने अपने को दो भागों में विभक्त किया। तब उनके नाम हुये—सावित्री, वरदा, पुण्या, पावनी, लोकविश्रुता, आज्ञा, आवेशनी, कृष्णा, तामसी, सात्विकी, शिवा, प्रकृति, विकृति, रौद्री, दुर्गा, भद्रा, प्रमाथिनी, कालरात्रि, महामाया, रेवती, भूतनाशिका। द्वापर युग के अन्त में हे सुव्रतो! उनके नाम ये हैं।।३३०-३३५।। गौतमी, कौशिकी, आर्या, चंडी, कात्यायनी, सती, कुमारी, यादवी देवी, वरदा, कृष्णपिंगला, बर्हिध्वजा, शूलधरा, परमा, ब्रह्मचारिणी, महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी, दृषद्वती, एकशूलधृक्, अपराजिता, बहुभुजा, प्रगल्भा, सिंहवाहिनी, शुंभादिदैत्यहंत्री, महामहिषमर्दिनी, अमोघा, विन्ध्यनिलया, विक्रान्ता, गणनायिका। देवी के ये नाम यथाक्रम से हैं।।३३६-३३९।। मेरे द्वारा कथित भद्रकाली नाम अच्छा फलदायक है। जो मनुष्य इन नामों को पढ़ते हैं उनके पाप दूर हो जाते हैं।।३४०।। वन में, पर्वत पर, पुर में, घर में, जल में या स्थल में इन नामों को पढ़ने से रक्षा होती है। बाघों, हाथियों, राजाओं, या चोरों से तथा सब

व्याघ्रकुंभीनचोरेभ्यो भयस्थाने विशेषतः।
आपत्स्वपि च सर्वासु देव्या नामानि कीर्तयेत्॥३४२॥
आर्यकग्रहभूतैश्च पूतनामातृभिस्तथा। अभ्यर्दितानां बालानां रक्षामेतां प्रयोजयेत्॥३४३॥
महादेवीकले द्वे तु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्तिते।
आभ्यां देवीसहस्राणि यैर्व्याप्तमखिलं जगत्॥३४४॥
अनया देवदेवोसौ सत्या रुद्रो महेश्वरः। आतिष्ठत्सर्वलोकानां हिताय परमेश्वरः॥३४५॥
रुद्रः पशुपतिश्चासीत्पुरा दग्धं पुरत्रयम्। देवाश्च पशवः सर्वे बभूवुस्तस्य तेजसा॥३४६॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि आदिसर्गक्रमं शुभम्।
स याति ब्रह्मणो लोकं श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्॥३४७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सृष्टिविस्तारो नाम सप्ततितमोध्यायः॥७०॥

भय के स्थान में, सब आपदा के समक्ष में देवी के नामों को पढ़ना चाहिये।।३४१-३४२।। बच्चों को जब बुरी नजर लगी हो, बुरे ग्रह से पीड़ित हो, भूत-प्रेत बाधा हो, पूतना और माताओं से पीड़ा हो तो रक्षा के लिये इन नामों को पढ़ना चाहिये।।३४३।। महादेवी के दो भाग (कलायें) हैं। प्रज्ञा और श्री। इन दोनों से हजारों देवियाँ उत्पन्न हुई हैं। उनसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।।३४४।। लोगों के कल्याण के लिये रुद्र, महेश्वर, देवेश शिव अपनी अर्धांगिनी सती के साथ स्वयं स्थित हैं। वे परमेश्वर, रुद्र और पशुपति हैं। उन्होंने पहिले त्रिपुर का दाह किया था। उनके तेज से देवगण पशु (व्यक्तिगत आत्मा) हुये। वह जो आदि सृष्टि के क्रम को पढ़ेगा या सुनेगा अथवा उत्तम ब्राह्मणों को सुनावेगा, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करेगा।।३४५-३४७।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में सृष्टि विस्तार नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७०॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

पुरदाहे नन्दिकेश्वरवाक्यम्

ऋषय ऊचुः

समासाद्विस्तराच्चैव सर्गः प्रोक्तस्त्वया शुभः। कथं पशुपतिश्चासीत्पुरं दग्धुं महेश्वरः॥१॥
कथं च पशवश्चासन्देवाः सब्रह्मकाः प्रभोः। मयस्य तपसा पूर्वं सुदुर्गं निर्मितं पुरम्॥२॥
हैमं च राजतं दिव्यमयस्मयमनुत्तमम्। सुदुर्गं देवदेवेन दग्धमित्येव नः श्रुतम्॥३॥
कथं ददाह भगवान् भगनेत्रनिपातनः। एकेनेषुनिपातेन दिव्येनापि तदा कथम्॥४॥
विष्णुनोत्पादितैर्भूतैर्न दग्धं तत्पुरत्रयम्। पुरस्य संभवः सर्वो वरलाभः पुरा श्रुतः॥५॥
इदानीं दहनं सर्वं वक्तुमर्हसि सुव्रत। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः॥६॥
यथा श्रुतं तथा प्राह व्यासाद्विश्वार्थसूचकात्।

सूत उवाच

त्रैलोक्यस्यास्य शापाद्धि मनोवाक्कायसंभवात्॥७॥
निहते तारके दैत्ये तारपुत्रे सबांधवे। स्कंदेन वा प्रयत्नेन तस्य पुत्रा महाबलाः॥८॥
विद्युन्माली तारकाक्षः कमलाक्षश्च वीर्यवान्। तपस्तेपुर्महात्मानो महाबलपराक्रमाः॥९॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

पुरदाह पर नंदीकेश्वर वाक्य

ऋषिगण बोले

आप ने हम लोगों को सृष्टि के विस्तार का क्रम संक्षेप में और विस्तार में बतलाया। पशुपति महेश्वर जी ने असुरों के त्रिपुरों को कैसे जलाया? यह आप बतायें।।१।। हे प्रभु! ब्रह्मा सहित देवता लोग पशु कैसे हो गये? मय ने तपस्या करके पहले पुरों को बनाया था। यह तीनों पुर उत्तम और दिव्य प्रकृति के थे जो सोने चाँदी और लोहे से बनाए गये थे। हम लोगों ने सुना है कि देवताओं के स्वामी शिव द्वारा मय के वे तीनों पुर जला दिये गये। भग के नेत्रों के विनाशक शिवजी ने कैसे एक बाण द्वारा उन तीनों पुरों को जला दिया था। यद्यपि वे भव्य पुर थे।।२-४।। विष्णु द्वारा पैदा किये हुए भूतों द्वारा वे तीनों पुर नहीं जलाये जा सके। हम लोगों ने उन तीनों पुरों की उत्पत्ति का सम्पूर्ण विवरण और वरदानों की प्राप्ति की बात पहले ही सुना था।।५।। हे सुव्रत! आप उन तीनों पुरों द्वारा दाह किये जाने की कथा को पूरी तरह से बताइए।।६।। उनकी बातों को सुनकर पुराणों के ज्ञाताओं में सर्वोत्तम सूत ने कहा कि जो कुछ मैंने जिस विधि से व्यास जी से सुना था, मैं इस विषय में वैसे ही तुम सब को बताऊँगा।।।७-९।।

तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः। तपसा कर्शयामासुर्देहान् स्वान्दानवोत्तमाः॥१०॥
तेषां पितामहः प्रीतो वरदः प्रददौ वरम्।

दैत्या ऊचुः

अवध्यत्वं च सर्वेषां सर्वभूतेषु सर्वदा॥११॥
सहिता वरयामासुः सर्वलोकपितामहम्। तानब्रवीत्तदा देवो लोकानां प्रभुरव्ययः॥१२॥
नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्तध्वमतोसुराः। अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशं संप्ररोचते॥१३॥
ततस्ते सहिता दैत्याः संप्रधार्य परस्परम्। ब्रह्माणमब्रुवन्दैत्याः प्रणिपत्य जगद्गुरुम्॥१४॥
वयं पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम्। विचरिष्याम लोकेश त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो॥१५॥
तथा वर्षसहस्त्रेषु समेष्यामः परस्परम्। एकीभावं गमिष्यंति पुराण्येतानि चानघ॥१६॥
समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा। एकेनैवेषुणा देवः स नो मृत्युर्भविष्यति॥१७॥
एवमस्त्विति तान्देवः प्रत्युक्त्वा प्राविशद्दिवम्। ततो मयः स्वतपसा चक्रे वीरः पुराण्यथ॥१८॥
कांचनं दिवि तत्रासीदंतरिक्षे च राजतम्। आयसं चाभवद्भूमौ पुरं तेषां महात्मनाम्॥१९॥
एकैकं योजनशतं विस्तारायामतः समम्। कांचनं तारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम्॥२०॥

सूत बोले

तार के पुत्र तारक असुर ने अपने शरीर, वाणी और बुद्धि से तीनों लोकों को सताया था। उनके साथ से वह स्कंन्द द्वारा अपने कुटुम्ब सहित मार डाला गया था। उसके पुत्र महाबली और पराक्रमी थे। इनके नाम विद्युन्माली, तारकाक्ष और कमलाक्ष थे। उन्होंने घोर तपस्या की।।१०।। वे दानव लोग जब भयानक तपस्या कर रहे थे तो अपने शरीरों को अत्यन्त दुर्बल बना दिया। उनकी तपस्या से ब्रह्मा जी प्रसन्न हुये। वरदाता ब्रह्मा ने उनको उनकी इच्छानुसार वर माँगने को कहा।

दैत्य बोले

हम लोग "किसी भी काल में किसी भी प्राणी द्वारा मारे न जा सकें। यह हम चाहते हैं।" अर्थात् अमर कीजिए। इस प्रकार उन्होंने तीनों लोकों के पितामह ब्रह्मा से सामूहिक रूप से प्रार्थना की। तब तीनों लोकों के आत्मा (विश्वात्मा) ब्रह्मा ने उनसे कहा।।११-१२।। "हे असुरों! विश्व में कोई अमर नहीं होता है। इस इच्छा को छोड़ो। कोई दूसरा वर माँगो जो तुम्हारे अनुकूल हो"।।१३।। तब तीनों दैत्यों ने आपस में सलाह करके विश्व के पालक ब्रह्मा से कहा।।१४।। "हे विश्व के स्वामी! हे विश्व के रक्षक! आपकी कृपा से हम लोग इस पृथ्वी पर स्वेच्छा से विचरण करें और तीनों पुरों में निवास करें।।१५।। हम लोग हजार वर्षों में एक बार आपस में मिलें। हे निष्पाप देव! तीनों पुर एक हो जायें।।१६।। जब कि ये तीनों पुर इकट्ठे हो जायें तो जो कोई इन तीनों पुरों को एक बाण से मार कर नष्ट कर दे तब हम लोगों की मृत्यु हो"।।१७।। "ऐसा ही होगा" ऐसा उत्तर देकर ब्रह्मा स्वर्ग लोक को चले गये। उसके बाद वीर मय दानव ने अपनी तपस्या के द्वारा तीनों पुरों को बनाया।।१८।। वे भले असुरों ने उन पुरों का तीन स्थानों में स्थापित किया। सोने से बने हुए एक पुर को स्वर्ग में, चाँदी से बने दूसरे पुर को आकाश में, लोहे से बने तीसरे पुर को पृथ्वी पर स्थापित किया।।१९।। असुरों

विद्युन्मालेश्चायसं वै त्रिविधं दुर्गमुत्तमम्। मयश्च बलवांस्तत्र दैत्यदानवपूजितः॥२१॥
हैरण्ये राजते चैव कृष्णायसमये तथा। आलयं चात्मनः कृत्वा तत्रास्ते बलवांस्तदा॥२२॥
एवं बभूवुर्दैत्यानामतिदुर्गाणि सुव्रताः। पुराणि त्रीणि विप्रेंद्रास्त्रैलोक्यमिव चापरम्॥२३॥
पुरत्रये तदा जाते सर्वे दैत्या जगत्त्रये। पुरत्रयं प्रविश्यैव बभूबुस्ते बलाधिकाः॥२४॥
कल्पद्रुमसमाकीर्णं गजवाजिसमाकुलम्। नानाप्रासादसंकीर्णं मणिजालैः समावृतम्॥२५॥
सूर्यमंडलसंकाशैविमानैर्विश्वतोमुखैः । पद्मरागमयैः शुभ्रैः शोभितं चंद्रसंन्निभैः॥२६॥
प्रासादैर्गोपुरैर्दिव्यैः कैलासशिखरोपमैः। शोभितं त्रिपुरं तेषां पृथक्पृथगनुत्तमैः॥२७॥
दिव्यस्त्रीभिः सुसंपूर्णं गंधर्वैः सिद्धचारणैः। रुद्रालयैः प्रतिगृहं साग्निहोत्रैर्द्विजोत्तमाः॥२८॥
वापीकूपतडागैश्च दीर्घिकाभिस्तु सर्वतः। मत्तमातंगयूथैश्च तुरंगैश्च सुशोभनैः॥२९॥
रथैश्च विविधाकारैर्विचित्रैर्विश्वेतोमुखैः।
सभा प्रपादिभिश्चैव क्रीडास्थानैः पृथक्पृथक्॥३०॥
वेदाध्ययनशालाभिर्विविधाभिः समंततः। अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्मयस्यैव च मायया॥३१॥
पतिव्रताभिः सर्वत्र सेवितं मुनिपुंगवाः। कृत्वापि सुमहत्पापमपापैः शंकरार्चनात्॥३२॥

के वे पुरों में से एक-एक सौ योजन लम्बाई और चौड़ाई में था। तारकाक्ष का पुर सोने का बना हुआ था। कमलाक्ष का पुर चाँदी का बना था और विद्युन्माली का पुर लोहे का बना था। उन पुरों को अपना निवास बनाकर वे बलवान दानव रहते थे। वे तीन प्रकार के अच्छे दुर्ग (किले) थे।।२०-२२।। हे सुव्रतो! इस प्रकार वे तीनों पुर दैत्यों के मजबूत किले के समान थे। हे ब्राह्मणों! वे तीनों पुर दूसरे तीनों लोक के समान थे। जब कि तीनों पुरों का विस्तार हुआ तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध वे सब दैत्य तीनों पुरों में प्रवेश करके और अधिक बलवान हो गये।।२३-२४।। वे तीनों पुर कल्प वृक्षों से भरे थे। उनमें घोड़े और हाथी बहुत बड़ी संख्या में थे। उनमें असंख्य महल थे जो मणियों के जाल से ढके हुये थे।।२५।। सूर्य मण्डल के समान विमान थे जिनमें चारों ओर खुले द्वार बने हुए थे। चन्द्रमा के समान उज्ज्वल पद्मराग जड़े हुए शानदार विशाल भवन थे। उनके सजे हुये फाटक दिव्य थे। वे कैलास के शिखर के समान थे। वे तीनों पुर अलग-अलग बने हुए थे जो उत्तम दानवों से सुशोभित थे।।२६-२७।। हे उत्तम ब्राह्मणों! वे पुर दिव्य सुन्दर स्त्रियों, गन्धर्वों, सिद्धों और चारणों से भरे हुए थे। प्रत्येक घर में शिवालय थे और प्रतिदिन अग्निहोत्र होता था।।२८।। वे पुर कुओं, तालाबों, वापियों और लम्बे झीलों से चारों ओर भरे हुए थे। मस्त हाथियों के झुंडों, उत्तम घोड़ों और विविध आकार के विचित्र चारों ओर खुले रथों से युक्त थे। वहाँ पौसलें आदि के शेड थे। खेलने के मैदान आदि थे। विविध प्रकार के बड़े-बड़े हाल थे और सभा भवन थे। वेदों के पढ़ने के लिए पूरे नगर में जगह-जगह शालाएँ बनी हुई थीं। वे तीनों पुर ऊँची चहार दीवारियों से घिरे हुए थे और मय की माया से दूसरे लोगों द्वारा मन से भी अलंघ्य थे। हे श्रेष्ठ मुनियों! वे पुर पतिव्रता स्त्रियों से परिपूर्ण थे। वहाँ बहुत से दैत्य थे। यद्यपि वे बड़े-बड़े पाप करते थे फिर भी शिव की पूजा करने से वे अपने पापों से मुक्त हो जाते थे। दैत्येश्वर बड़े भाग्यशाली थे। वे अपने स्त्रियों और

दैत्येश्वरैर्महाभागैः सदारैः ससुतैर्द्विजाः। श्रौतस्मार्तार्थधर्मज्ञैस्तद्धर्मनिरतैः सदा॥३३॥
महादेवेतरं त्यक्त्वा देवं तस्यार्चनं स्थितैः। व्यूढोरस्कैर्वृषस्कंधैः सर्वायुधधरैः सदा॥३४॥
सर्वदा क्षुधितैश्चैव दावाग्निसदृशेक्षणैः। प्रशांतैः कुपितैश्चैव कुब्जैर्वामनकैस्तथा॥३५॥
नीलोत्पलदलप्रख्यैर्नीलकुंचितमूर्धजैः ।
नीलाद्रिमेरुसंकाशैर्नीरदोपमनिःस्वनैः । मयेन रक्षितैः सर्वैः शिक्षितैर्युद्धलालसैः॥३६॥
अथ समररतैः सदा समंताच्छिवपदपूजनया सुलब्धवीर्यैः।
रविमरुदमरेंद्रसन्निकाशैः सुरमथनैः सुदृढैः सुसेवितं तत्॥३७॥
सेंद्रा देवा द्विजश्रेष्ठा द्रुमा दावाग्निना यथा। पुरत्रयाग्निना दग्धा ह्यभवन्दैत्यवैभवात्॥३८॥
अथैवं ते तदा दग्धा देवा देवेश्वरं हरिम्। अभिवंद्य तदा प्राहुस्तमप्रतिमवर्चसम्॥३९॥
सोपि नारायणः श्रीमान् चिंतयामास चेतसा। किं कार्यं देवकार्येषु भगवनिति स प्रभुः॥४०॥
तदा सस्मार वै यज्ञं यज्ञमूर्तिर्जनार्दनः। यज्वा यज्ञभुगीशानो यज्वनां फलदः प्रभुः॥४१॥
ततो यज्ञः स्मृतस्तेन देवकार्यार्थसिद्धये। देवं ते मुरुषं चैव प्रणेमुस्तुष्टुवुस्तदा॥४२॥
भगवानपि तं दृष्ट्वा यज्ञं प्राह सनातनम्।
सनातनस्तदा सेन्द्रान्देवा नालोक्य चाच्युतः॥४३॥

पुत्रों सहित वेदों और स्मृतियों में कथित धर्मों के ज्ञाता और सदा धर्म में रत रहते थे। वे महादेव को छोड़कर किसी अन्य देवता को नहीं मानते थे और केवल उन्हीं महादेव की पूजा करते थे। बैलों के समान उनकी छातियाँ और कंधे थे। वे सब प्रकार के हथियार धारण करने के अभ्यस्त थे। वे हमेशा भूखे से रहते थे। उनके नेत्र जंगल की आग के समान चमकते रहते थे। उनमें से कुछ शान्त, कुछ कुपित, कुछ कूबड़े और कुछ बौने थे। वे नीले कमल की आभा के समान थे। उनके बाल काले और घुँघराले थे। वे नीले पर्वत और मेरु के समान थे। उनकी आवाज मेघों की गड़गड़ाहट के समान थी। वे सब मय दानव द्वारा रक्षित थे। वे सब सुप्रशिक्षित और युद्ध के लिए सदा इच्छुक रहने वाले थे। शिव की पूजा से पराक्रम प्राप्त करने वाले, युद्ध में रत रहने वाले, सूर्य, वायु, इन्द्र के समान थे और देवताओं से सदा युद्ध करने के लिए कटिबद्ध रहते थे।।२९-३७।। इन्द्र सहित सब देवता दैत्यों के वैभव से उन तीनों पुरों की अग्नि से उसी प्रकार दग्ध थे जैसे कि जंगल की अग्नि से वृक्ष दग्ध होते हैं।।३८।। इस प्रकार दैत्यों के प्रताप से दग्ध देवता लोग अतुल तेजस्वी देवेश्वर विष्णु के पास जाकर उनको प्रणाम करके उनसे कहा।।३९।। श्रीमान नारायण ने भी अपने मन में सोचा कि देवताओं के कार्यों को कैसे किया जाना चाहिए। यज्ञ की मूर्ति जनार्दन (विष्णु) ने यज्ञ को स्मरण किया जो कि स्वयं यज्ञों के कर्त्ता और यज्ञों के फल को देने वाले हैं और यज्ञ के कर्त्ताओं को फल देते हैं।।४०-४१।। देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए स्मरण किया गया। यज्ञ स्वयं आकर विष्णु जी के सामने उपस्थित हुआ। उसने विष्णु भगवान को प्रणाम किया और उनकी स्तुति की।।४२।। भगवान ने भी उस सनातन यज्ञ को देखकर और इन्द्र सहित देवताओं की ओर लखकर कहा।।४३।।

श्रीविष्णुरुवाच

अनेनोपसदा देवा यजध्वं परमेश्वरम्। पुरत्रयविनाशाय जगत्त्रयविभूतये॥४४॥

सूत उवाच

अथ तस्य वचः श्रुत्वा देवदेवस्य धीमतः। सिंहनादं महत्कृत्वा यज्ञेशं तुष्टुवुः सुराः॥४५॥
ततः संचिंत्य भगवान् स्वयमेव जनार्दनः। पुनः प्राह स सर्वांस्तांस्त्रिदशांस्त्रिदशेश्वरः॥४६॥
हत्वा दग्ध्वा च भूतानि भुक्त्वाचान्यायतोऽपि वा।
यजेद्यदि महादेवमपापो नात्र संशयः॥४७॥
अपापा नैव हंतव्याः पापा एव न संशयः। हंतव्याः सर्वयत्नेन कथं वध्याः सुरोत्तमाः॥४८॥
असुरा दुर्मदाः पापा अपि देवैर्महाबलैः। तस्मान्न वध्या रुद्रस्य प्रभावात्परमेष्ठिनः॥४९॥
कोहं ब्रह्माथवा देवा दैत्या देवारिसूदनाः। मुनयश्च महात्मनः प्रसादेन विना प्रभोः॥५०॥
यः सप्तविंशको नित्यः परात्परतरः प्रभुः। विश्वामरेश्वरो वंद्यो विश्वाधारोमहेश्वरः॥५१॥
स एव सर्वदेवेशः सर्वेषामपि शंकरः। लीलया देवदैत्येंद्रविभागमकरोद्धरः॥५२॥
तस्यांशमेकं संपूज्य देवा देवत्वमागताः। ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो ह्यहं विष्णुत्वमेव च॥५३॥

विष्णु बोले

"तीनों पुरों के विनाश के लिए और तीनों लोकों की समृद्धि के लिए, हे देवताओं! उपसद यज्ञ शिव की प्रसन्नता के लिए करो"।।४४।।

सूत बोले

बुद्धिमान देवताओं के स्वामी विष्णु की बात सुनकर देवताओं ने सिंहनाद करके यज्ञ देवता की स्तुति की।।४५।। उसके बाद विष्णु भगवान ने फिर सोचा और देवताओं से फिर बोले।।४६।। सब प्राणियों की हत्या करने और जला देने और अन्याय से उपार्जित साधनों से भोग विलास करने के बाद भी यदि कोई महादेव की पूजा करता है तो वह पाप से मुक्त हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है।।४७।। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पाप न करने वाले व्यक्तियों और मित्रों की हत्या नहीं की जानी चाहिए। केवल पापी लोग ही हन्तव्य हैं। उत्तम देवताओं द्वारा दुष्ट असुरों की हत्या कैसे की जाय। यद्यपि वे पापी हैं और देवता लोग बहुत बली हैं फिर भी परमेष्ठी रुद्र की कृपा से वे दानव बध्य नहीं हैं।।४८-४९।। बिना शिव की कृपा मैं कौन हूँ? हे देवताओं! ब्रह्मा कौन हैं? दैत्य लोग कौन हैं? और देवताओं के शत्रुओं के विनाशक कौन हैं?।।५०।। और महात्मा मुनि लोग कौन हैं? वह शिव प्रभु हैं। वह महत्तम से भी महत्तर हैं। वह नित्य हैं। वह सत्ताइस तत्त्व हैं। वह वंद्य हैं। वह सब अमर प्राणियों के स्वामी हैं। वह महेश्वर हैं और विश्व के आधार हैं।।५१।। केवल वही सब देवताओं के स्वामी हैं। उन्होंने ही अपनी लीला से देवताओं और दैत्यों का विभाजन किया है।।५२।। उनके अंश की पूजा करके देवताओं ने अमरत्व को प्राप्त किया है। ब्रह्मा ने ब्रह्मत्व की हैसियत प्राप्त की है और मैंने विष्णु के रूप

तमपूज्य जगत्यस्मिन् कः पुमान् सिद्धिमिच्छति।
तस्मात्तेनैव हंतव्या लिंगार्चनविधेर्बलात्॥५४॥
धर्मनिष्ठाश्च ते सर्वे श्रौतस्मार्तविधौ स्थिताः।
तथापि यजमानेन रौद्रेणोपसदा प्रभुम्। रुद्रमिष्ट्वा यथान्यायं जेष्यामो दैत्यसत्तमान्॥५५॥
सतारकाक्षेण मयेन गुप्तं स्वस्थं च गुप्तं स्फटिकाभमेकम्।
को नाम हंतुं त्रिपुरं समर्थो मुक्त्वा त्रिनेत्रं भगवंतमेकम्॥५६॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा हरिश्चेष्ट्वा यज्ञेनोपसदा प्रभुम्। उपविष्टो ददर्शाथ भूतसंघान्सहस्रशः॥५७॥
शूलशक्तिगदाहस्तान् टंकोपलशिलायुधान्। नानाप्रहरणोपेतान्नानावेषधरांस्तदा॥५८॥
कालाग्निरुद्रसंकाशान् कालरुद्रोपमांस्तदा। प्राह देवो हरिः साक्षात्प्रणिपत्य स्थितान् प्रभुः॥५९॥

विष्णुरुवाच

दग्ध्वा भित्त्वा च भुक्त्वा च गत्वा दैत्यपुरत्रयम्।
पुनर्यथागतं वीरा गंतुमर्हथ भूतये॥६०॥
ततः प्रणम्य देवेशं भूतसंघाः पुरत्रयम्। प्रविश्य नष्टास्ते सर्वे शलभा इव पावकम्॥६१॥
ततस्तु नष्टास्ते सर्वे भूता देवेश्वराज्ञया। ननृतुर्मुमुदुश्चैव जगुर्दैत्याः सहस्रशः॥६२॥

में अपनी हैसियत प्राप्त की है।।५३।। उनकी पूजा किये बिना इस संसार में कौन व्यक्ति सिद्धि प्राप्त करता है। इसलिए लिंग की पूजा विधि से करने से शिव को प्रसन्न होने पर उन्हीं के द्वारा दैत्य लोग हन्तव्य हैं।।५४।। वे सब दानव अपने धर्म में निष्ठ हैं। वे श्रुति और स्मृति के विधान का पालन करते हैं। फिर भी उपसद नामक यज्ञ के द्वारा भगवान रुद्र की पूजा करके बलवान व्यक्तियों के समूह पर रुद्र की कृपा से हम उनको जीत सकेंगे। त्रिनेत्रधारी भगवान रुद्र को छोड़कर त्रिपुरों का विनाश करने में कौन समर्थ हो सकता है? वे तीनों पुर तारकाक्ष सहित मय के द्वारा पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं। वे त्रिपुर स्फटिक की आभा वाले हैं और वे अपने में पूर्ण रूप से स्थित हैं।।५५-५६।।

सूत बोले

इसके बाद ऐसा कहकर उपसद यज्ञ के द्वारा विष्णु ने रुद्र की पूजा की। उसके बाद वहीं बैठे हुए विष्णु ने हजारों भूतों को अपने सामने उपस्थित देखा।।५७।। वे अपने हाथों में शूल, शक्ति, गदा, टंक, उपल, शिलायुध आदि अनेक प्रहार करने वाले अस्त्रों को लिए, अनेक वेश धारण किये हुए कालाग्नि रुद्र के समान, काल रुद्र के सदृश उन भूतों ने भगवान विष्णु को प्रणाम किया और खड़े हो गये। तब भगवान विष्णु ने उनसे कहा।।५८-५९।।

विष्णु जी बोले

"हे वीरों! दैत्यों के त्रिपुरों को जाओ। उनको जलाओ। उनको तोड़ दो और उनको निगल जाओ। तब वे जैसे तुम गये थे, उसी तरह इस भूतल पर यहाँ वापस जाओ"।।६०।। उसके बाद भूतों के दलों ने विष्णु जी को प्रणाम किया और त्रिपुरों में घुस गये। वहाँ वे सब अग्नि में पतिंगों की तरह नष्ट हो गये।।६१।। दैत्येश्वर

तुष्टुवुर्देवदेवेशं परमात्मानमीश्वरम्। ततः पराजिता देवा ध्वस्तवीर्याः क्षणेन तु॥६३॥
सेन्द्राः संगम्य देवेशमुपेन्द्रं धिष्ठिता भयात्। तान्दृष्ट्वा चिंतयामास भगवान्पुरुषोत्तमः॥६४॥
किं कृत्यमिति संतप्तः संतप्तान्सेन्द्रकान् क्षणम्। कथं तु तेषां दैत्यानां बलं हत्वा प्रयत्नतः॥६५॥
देवकार्य्यं करिष्यामि प्रसादात्परमेष्ठिनः। पापं विचारतो नास्ति धर्मिष्ठानां न संशयः॥६६॥
तस्माद्दैत्या न वध्यास्ते भूतैश्चोपसदोद्भवैः। पापं नुदति धर्मेण धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥६७॥
धर्माद्दैश्वर्यमित्येषा श्रुतिरेषा सनातनी। दैत्याश्चैते हि धर्मिष्ठाः सर्वे त्रिपुरवासिनः॥६८॥
तस्मादवध्यतां प्राप्ता नान्यथा द्विजपुंगवाः। कृत्वापि सुमहत्पापं रुद्रमभ्यर्चयंति ये॥६९॥
मुच्यंते पातकैः सर्वैः पद्मपत्रमिवांभसा। पूजया भोगसंपत्तिरवश्यं जायते द्विजाः॥७०॥
तस्मात्ते भोगिनो दैत्या लिंगार्चनपरायणाः। तस्मात्कृत्वा धर्मविघ्नमहं देवाः स्वमायया॥७१॥
दैत्यानां देवकार्यार्थं जेष्येहं त्रिपुरं क्षणात्।

सूत उवाच

विचार्यैवं ततस्तेषां भगवान्पुरुषोत्तमः। कर्तुंव्यवसितश्चाभूद्धर्मविघ्नं सुरारिणाम्॥७२॥
असृजच्च महातेजाः पुरुषं चात्मसंभवम्। मायी मायामयं तेषां धर्मविघ्नार्थमच्युतः॥७३॥

की आज्ञा से सब भूतगण नष्ट हो गये थे। हजारों दैत्यों ने आनंद मनाया। नाचे और गाये। उन्होंने महात्मा देवों के स्वामी रुद्र की स्तुति की। इन्द्र सहित सब देवता पराजित और शक्ति से क्षीण क्षणभर में ही हो गये तो देवों के स्वामी विष्णु के पास आये और डर के मारे उनकी सहायता माँगी। उनको देखकर भगवान विष्णु ने इस प्रकार सोचा।।६२-६४।। "क्या किया जाना चाहिए?" ऐसा सोचने के बाद दुःखी इन्द्र सहित देवताओं को देखकर वे स्वयं दुःखी हुये। थोड़ी देर के बाद उन्होंने फिर सोचा। महादेव की कृपा के बिना मैं दैत्यों की सेना को प्रयत्न से मारकर देवताओं के कार्य को करूँगा। विचार करने पर यह मालूम होता है कि वे दैत्य लोग धर्मिष्ठ हैं। उनमें कोई पाप नहीं है।।६५-६६।। इसलिए उपसद यज्ञ से उत्पन्न उन भूतों द्वारा दैत्य लोग मारे नहीं जा सकें। वे धर्म के द्वारा पाप को नष्ट कर देते हैं। सब कुछ धर्म पर ही आधारित है। त्रिपुरों के निवासी ये सब दैत्य ही धार्मिक हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! इसलिए उन्होंने अमरत्व प्राप्त किया है अन्यथा नहीं। धर्म से ऐश्वर्य मिलता है। यह सनातनी प्रसिद्धि है। वे लोग रुद्र की पूजा करते हैं। इसलिए बड़े-बड़े पापों को करके भी शिव की कृपा से सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। उन पर पापों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जैसे जल में स्थित कमल के पत्ते पर जल का प्रभाव नहीं पड़ता है। हे ब्राह्मणों! शिव की पूजा द्वारा सांसारिक सुख भोग निश्चित रूप से प्राप्त होता है। अतः वे लोग जो लिंग की पूजा के भक्त हैं, सांसारिक सुख और आनंद प्राप्त किये हुये हैं। इसलिए हे देवताओं! मैं अपनी माया के द्वारा व्यक्तियों के धार्मिक कृत्य में बाधा उत्पन्न करूँगा। देवताओं के कार्य के लिए मैं क्षण भर में त्रिपुर को जीत लूँगा"।।६७-७१।।

सूत बोले

ऐसा सोचने के बाद विष्णु ने दैत्यों के धार्मिक कार्य में विघ्न उत्पन्न करने का निश्चय किया। महा तेजस्वी विष्णु जी ने अपनी माया से दैत्यों के धर्म में विघ्न उत्पन्न करने के लिए अपने शरीर से एक मायामय पुरुष को

शास्त्रं च शास्तासर्वेषामकरोत्कामरूपधृक्। सर्वसंमोहनं मायी दृष्टप्रत्ययसंयुतम्।।७४।।
एतत्स्वांगभवायैव पुरुषायोपदिश्य तु। मायी मायामयं शास्त्रं ग्रंथषोडशलक्षकम्।।७५।।
श्रौतस्मार्तविरुद्धं च वर्णाश्रमविवर्जितम्। इहैव स्वर्गनरकं प्रत्ययं नान्यथा पुनः।।७६।।
तच्छास्त्रमुपदिश्यैव पुरुषायाच्युतः स्वयम्। पुरत्रयविनाशाय प्राहैनं पुरुषं हरिः।।७७।।
गंतुमर्हसि नाशाय भो तूर्णं पुरवासिनाम्। धर्मास्तथा प्रणश्यंतु श्रौतस्मार्ता न संशयः।।७८।।
ततः प्रणम्य तं मायी मायाशास्त्रविशारदः। प्रविश्य तत्पुरं तूर्णं मुनिर्मायां तदाकरोत्।।७९।।

मायया तस्य ते दैत्याः पुरत्रयनिवासिनः।
श्रौतं स्मार्तं च संत्यज्य तस्य शिष्यास्तदाभवन्।।८०।।
तत्युजुश्च महादेवं शंकरं परमेश्वरम्।
नारदोपि तदा मायी नियोगान्मायिनः प्रभोः।।८१।।
प्रविश्य तत्पुरं तेन मायिना सह दीक्षितः।
मुनिः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च संवृतः सर्वतः स्वयम्।।८२।।
स्त्रीधर्मं चाकरोत्स्त्रीणां दुश्चारफलसिद्धिदम्।
चक्रुस्ताः सर्वदा लब्ध्वा सद्य एव फलं स्त्रियः।।८३।।

उत्पन्न किया।।७२-७३।। सबों के शास्ता (शासक) जो अपनी मन पसन्द कोई भी रूप धारण करने वाला माया को रचने वाला, सब को मोहित करने वाली और अपने देखे हुए में विश्वास करने वाले उस अपने अंग से उत्पन्न पुरुष को एक ग्रन्थ को इस मायामय को बना कर दिया।।७४।। पवित्र ग्रन्थ में सोलह लाख श्लोक थे। विष्णु भगवान ने अपने अंगों से उत्पन्न किये गये उस पुरुष को पढ़ाया।।७५।। यह शास्त्र वेदों और स्मृतियों के विरुद्ध और वर्ण और आश्रम व्यवस्था से रहित था। इसमें बताया गया था कि स्वर्ग और नरक यहीं पर है। दूसरी जगह नहीं है। ऐसा विश्वास करना चाहिए। विष्णु जी ने स्वयं इस शास्त्र को उस पुरुष को पढ़ाया। उन्होंने उससे कहा कि यह तीनों पुरों को नष्ट करने के लिए है।।७६-७७।। "तुम! त्रिपुरनिवासियों के नाश के लिए वहाँ तुरन्त जाओ और ऐसा प्रचार करो कि वेदों और स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म नष्ट हो जाय।।७८।। माया के निर्माता माया शास्त्र में विशेषज्ञ ने उनको प्रणाम किया। उन तीनों पुरों में प्रवेश करके उस मुनि ने तुरन्त अपनी माया को फैलाया।।७९।। उसकी माया के कारण त्रिपुर के निवासी उन दैत्यों ने अपने वैदिक और स्मार्त धार्मिक कृत्यों को छोड़कर उसके शिष्य बन गये।।८०।। माया के निर्माता प्रभु विष्णु के निर्देश से माया से दीक्षित होकर नारद ने भी उस पुर में सचेत हो अपने शिष्यों और प्रशिष्यों सहित चारों ओर से घिरे हुये प्रवेश किया।।८१।। स्त्रियों में दुराचार का प्रचार करने वाले स्त्रीधर्म का प्रचार किया। स्त्रियों को दुराचार का तुरन्त फल भी मिला। उन स्त्रियों ने उन नियमों का पालन किया और उनको उसका फल भी तुरन्त मिला। वे अपने पतिदेवताओं की अवहेलना (उपेक्षा) करके अन्य लोगों (प्रेमियों) में आसक्त हो गईं। यहाँ तक कि आज भी इस कलियुग में अधम स्त्रियाँ नारद के गौरव से अपने पतियों को त्याग कर अपने इच्छानुसार प्रेमी के साथ रमण करती हैं। यद्यपि स्त्रियों का

जनासक्ता बभूवुस्ता विनिंद्य पतिदेवताः।
अद्यापि गौरवात्तस्य नारदस्य कलौ मुनेः॥८४॥
नार्यश्चरंति संत्यज्य भर्तृन्स्वैरं वृथाधमाः।
स्त्रीणां माता पिता बंधुः सखा मित्रं च बांधवः॥८५॥
भर्ता एव न संदेहस्तथाप्यासहमायया। कृत्वापि सुमहत्पापं या भर्तुः प्रेमसंयुता॥८६॥
प्राप्नुयात्परमं स्वर्गं नरकं च विपर्ययात्। पुरैका मुनिशर्दूलाः सर्वधर्मान् सदा पतिम्॥८७॥
संत्यज्यापूजयन्साध्व्यो देवानन्याञ्जगद्गुरून्। ताः स्वर्गलोकमासाद्य मोदंते विगतज्वराः॥८८॥
नरकं च जगामान्या तस्माद्भर्ता परा गतिः।
तथापि भर्तृन्स्वांस्त्यक्त्वा बभूवुः स्वैरवृत्तयः॥८९॥
मायया देवदेवस्य विष्णोस्तस्याज्ञया प्रभोः। अलक्ष्मीश्च स्वयं तस्य नियोगात्त्रिपुरं गता॥९०॥
या लक्ष्मीस्तपसा तेषां लब्धा देवेश्वरादजात्। बहिर्गता परित्यज्य नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभोः॥९१॥
बुद्धिमोहं तथाभूतं विष्णुमायाविनिर्मितम्। तेषां दत्त्वा क्षणं देवस्तासां मायी च नारदः॥९२॥
सुखासीनौ ह्यसंभ्रांतौ धर्मविघ्नार्थमव्ययौ। एवं नष्टे तदा धर्मे श्रौतस्मार्ते सुशोभने॥९३॥
पाषंडे ख्यापिते तेन विष्णुना विश्वयोनिना। त्यक्ते महेश्वरे दैत्यैस्त्यक्ते लिंगार्चने तथा॥९४॥
स्त्रीधर्मे निखिले नष्टे दुराचारे व्यवस्थिते। कृतार्थ इव देवेशो देवैः सार्धमुमापतिम्॥९५॥
तपसा प्राप्य सर्वज्ञं तुष्टाव पुरुषोत्तमः।

माता-पिता, बन्धु, सखा, मित्र और बान्धव उसका पति ही है। उसमें सन्देह नहीं है। फिर भी उसने अपनी माया से वैसा कहा। वास्तव में अपने पति को प्यार करने वाली पतिव्रता पत्नी महत्पाण करके भी उच्चतम स्वर्ग को प्राप्त करती है। इससे उल्टा आचरण करने से वह नरक पाती है। हे मुनीश्वरों! पुराने समय में पतिव्रता स्त्री सब धर्मों का पालन करती थीं। वे अन्य देवताओं और जगद्गुरुओं को त्यागकर अपने पतियों की पूजा करती थीं। तब वे निश्चिन्त होकर स्वर्गलोक को प्राप्त करके आनन्द मनाती थीं। इसके विपरीत अन्य कुलटाएँ नरक भोगती थीं। उन स्त्रियों के लिये पति ही उसकी परम गति है।।८२-८८।। फिर देवों के देव की माया के कारण और भगवान विष्णु की आज्ञा से अपने पतियों को छोड़ दिया और अपने मन के अनुसार आचरण करने लगीं। विष्णु की आज्ञा से अलक्ष्मी (दुर्भाग्य) स्वयं वहाँ गयीं। देवेश्वर अज, बह्मा से दैत्यों ने तपस्या से लक्ष्मी प्राप्त किया था, उन्हीं ब्रह्मा के आदेश से वह लक्ष्मी त्रिपुर से बाहर चली गईं।।८९-९१।। विष्णु की माया द्वारा निर्मित जो बुद्धि मोह (मति विभ्रम) था उसको देवों और मायावी नारद ने उसका खूब प्रचार किया। पुरुषों ने दैत्यों को और मायावी नारद ने स्त्रियों को मोहित किया। धर्म में बाधा डालने के लिये ये दोनों सुखपूर्वक आराम से वहाँ बैठ गये। इस प्रकार (धर्म के विरुद्ध प्रचार से) वेदों और स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म के नष्ट हो जाने पर और विश्व के सृष्टिकर्त्ता विष्णु द्वारा वहाँ पाखण्ड स्थापित हो जाने पर दैत्यों द्वारा महेश्वर और लिंग की पूजा-अर्चना छोड़ दिये जाने पर और स्त्रियों का स्त्री धर्म नष्ट होने और दुराचार स्थापित हो जाने पर देवेश विष्णु जी परम सन्तुष्ट हुये। उन्होंने तपस्या करके देवताओं के साथ शिव के पास पहुँचकर सर्वज्ञ भगवान शिव की स्तुति की।।९२-९५।।

श्रीभगवानुवाच

महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने॥९६॥
नारायणाय शर्वाय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे। शाश्वताय ह्यनंताय अव्यक्ताय च ते नमः॥९७॥

सूत उवाच

एवं स्तुत्वा महादेवं दंडवत्प्रणिपत्य च। जजाप रुद्रं भगवान्कोटिवारं जले स्थितः॥९८॥
देवाश्च सर्वे ते देवं तुष्टुवुः परमेश्वरम्।
सेंद्राः ससाध्याः सयमाः सरुद्राः समरुद्गणाः॥९९॥

देवा ऊचुः

नमः सर्वात्मने तुभ्यं शंकरायार्तिहारिणे। रुद्राय नीलरुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे॥१००॥
गतिर्नः सर्वदास्माभिर्वंद्यो देवारिमर्दनः। त्वमादिस्त्वमनंतश्च अनंतश्चाक्षयः प्रभुः॥१०१॥
प्रकृतिः पुरुषः साक्षात्स्त्रष्टा हर्ता जगद्गुरो। त्राता नेता जगत्यस्मिन्द्विजानां द्विजवत्सल॥१०२॥
वरदो वाङ्मयो वाच्यो वाच्यवाचकवर्जितः। याज्यो मुक्त्यर्थमीशानो योगिभिर्योगविभ्रमैः॥१०३॥
हृत्पुंडरीकसुषिरे योगिनां संस्थितः सदा। वदंति सूरयः संतं परं ब्रह्मस्वरूपिणम्॥१०४॥
भवंतं तत्त्वमित्यार्यास्तेजोराशिं परात्परम्। परमात्मानमित्याहुरस्मिञ्जगति तद्विभो॥१०५॥
दृष्टं श्रुतं स्थितं सर्वं जायमानं जगद्गुरो। अणोरल्पतरं प्राहुर्महतोपि महत्तरम्॥१०६॥

विष्णु बोले

हे महेश्वर! परमात्मा तुमको नमस्कार, नारायण को, शर्व को, ब्रह्मा को, ब्रह्मरूप को नमस्कार, शाश्वत को नमस्कार, अनन्त और अव्यक्त को नमस्कार।।९६-९७।।

सूत बोले

इस प्रकार स्तुति करके दण्डवत प्रणाम करने के लिए जल में खड़े होकर रुद्र मन्त्र का एक करोड़ बार जप किया। इन्द्र सहित सब देवताओं, साध्यों, यम, रुद्र और रुद्रगणों ने स्तुति की।।९८-९९।।

देवता बोले

हे सर्वात्मा! तुमको नमस्कार। दुःखों के हर्त्ता शंकर तुमको नमस्कार। रुद्र, नीलकंठ, कद्रुद्र और प्रचेतस को नमस्कार।।१००।। आप हमारी परम गति हैं। देवों के शत्रुओं के विनाशकर्त्ता आप सदा हम लोगों के वन्द्य हैं। आप आदि, अनन्त, अक्षय और असीम हैं।।१०१।। हे जगत् के गुरु! आप स्वयं प्रकृति और पुरुष हैं। आप स्रष्टा, रक्षक और संहारकर्त्ता हैं। इस विश्व में द्विजों के नेता हैं। आप द्विजों को प्यार करने वाले हैं।।१०२।। आप वर दाता हैं। आप वाणी से परे हैं। आप व्यक्त करने के योग्य हैं। आप वाच्य और वाचक दोनों से वर्जित हैं। आप मुक्ति के लिये योगियों और योगाभ्यासियों द्वारा पूजित हैं। आप सदा योगियों के हृदय रूपी कमल के छिद्र में स्थित हैं। विद्वान लोग आपको सत् और ब्रह्म रूप में महत्तम (सब से महान्) कहते हैं।।१०३-१०४।। हे प्रभो! श्रेष्ठ ऋषिगण कहते हैं कि आप तत्त्व हैं, आप तेजो की राशि हैं। आप महत्तम से महत्तर हैं और जगत् में महान् आत्मा हैं।।१०५।। हे जगद्गुरु! आप दृष्ट, श्रुत, स्थित और उत्पन्न सब कुछ

सर्वतः पाणिपादं त्वां सर्वतोक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि॥१०७॥
महादेवमनिर्देश्यं सर्वज्ञं त्वामनामयम्। विश्वरूपं विरूपाक्षं सदाशिवमनामयम्॥१०८॥
कोटिभास्करसंकाशं कोटिशीतांशुसन्निभम्।
कोटिकालाग्निसंकाशं षड्विंशकमनीश्वरम्॥१०९॥
प्रवर्तकं जगत्यस्मिन्प्रकृतेः प्रपितामहम्। वदंति वरदं देवं सर्वावासं स्वयंभुवम्॥११०॥
श्रुतयः श्रुतिसारं त्वां श्रुतिसारविदो जनाः॥१११॥
अदृष्टमस्माभिरनेकमूर्ते विना कृतं यद्भवताथ लोके।
त्वमेव दैत्यान्सुरभूतसंघान्देवान्नरान्स्थावरजंगमांश्च॥११२॥
पाहि नान्या गतिः शंभो विनिहत्यासुरोत्तमान्। मायया मोहिताः सर्वे भवतः परमेश्वर॥११३॥
यथा तरंगा लहरीसमूहा युध्यंति चान्योन्यमपांनिधौ च।
जलाश्रयादेव जडीकृताश्च सुरासुरास्तद्वदजस्य सर्वम्॥११४॥

सूत उवाच

य इदं प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वा जपेन्नरः। श्रृणुयाद्वा स्तवं पुण्यं सर्वकाममवाप्नुयात्॥११५॥
स्तुतस्त्वेवं सुरैर्विष्णोर्जपेन च महेश्वरः। सोमः सोमामथालिंग्य नंदिदत्तकरः स्मयन्॥११६॥

हैं। विद्वान आप को अणु से छोटा और महत्तम से भी बड़ा कहते हैं।।१०६।। वे आपको सर्वत्र हाथ और पैर वाला कहते हैं। सर्वत्र नेत्र, शिर और मुख वाला कहते हैं। आप के कान सर्वत्र हैं। आप सारे जगत् को ढक कर खड़े हैं।।१०७।। वे आप को महादेव कहते हैं। आपको सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, अनिर्देश्य, विश्वरूप, विरुपाक्ष, सदाशिव, अनामय कहते हैं। आप करोड़ों सूर्य के समान तेजोमय हैं। प्रकाश देने में आप करोड़ों चन्द्रमा के समान हैं। आप प्रलय काल की करोड़ों कालाग्नि के सदृश हैं। आप छब्बीस तत्त्वों के स्वामी हैं। आप का कोई नियन्त्रक नहीं है। आप इस जगत् में प्रकृति के प्रवर्त्तक उससे काम कराने के प्रेरक हैं। आप प्रपितामह हैं। आप वर दाता हैं। आप स्वयंभू हैं। आप सब के आवास हैं।।१०८-११०।। वेद और वेदों के सार के ज्ञाता विद्वान् लोग आप को वेदों के सार का ज्ञाता कहते हैं। हे अनेक रूप वाले भगवन! इस जगत् में आप के बिना कुछ भी विकसित हुआ हो, ऐसा हम लोगों ने नहीं देखा है। आप ही अकेले दैत्यों, सुरों, भूतसंघों, देवों, मनुष्यों और समस्त स्थावरों और जंगमों की रक्षा करते हो। हे शम्भु! हम लोगों की और कोई गति नहीं है। असुरों को मारकर आप हम लोगों की रक्षा करें। (यही हमारी आप से प्रार्थना है)। हे परमेश्वर! आप की माया से सब मोहित हैं। जैसे कि लहरें और तरंगें समुद्र में परस्पर एक-दूसरे से टकराती हैं और टकराकर उसी समुद्र में विलीन हो जल हो जाती हैं। उसी प्रकार ब्रह्मा की सृष्टि के देवता और असुर आपस में जड़ीभूत हो कर टकराते (लड़ते) हैं और अन्त में आप में जड़ीभूत हो विलीन हो जाते हैं।।१११-११४।।

सूत बोले

व्यक्ति जो कि प्रातःकाल उठकर शुद्ध होकर इस पवित्र स्तुति को पढ़ता है या सुनता है। वह सब कामनाओं को प्राप्त करता है। उसके सब मनोरथ पूरे हो जाते हैं।।११५।। देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने और

प्राह गंभीरया वाचा देवानालोक्य शंकरः। ज्ञातं मयेदमधुना देवकार्यं सुरेश्वराः॥११७॥
विष्णोर्मायाबलं चैव नारदस्य च धीमतः। तेषामधर्मनिष्ठानां दैत्यानां देवसत्तमाः॥११८॥
पुरत्रयविनाशं च करिष्येहं सुरोत्तमाः।

सूत उवाच

अथ सब्रह्मका देवाः सेंद्रोपेंद्राः समागताः॥११९॥
श्रुत्वा प्रभोस्तदा वाक्यं प्रणेमुस्तुष्टुवुश्चते। अप्येतदंतरं देवी देवमालोक्य विस्मिता॥१२०॥
लीलांबुजेन चाहत्य कलमाह वृषध्वजम्।

देव्युवाच

क्रीडमानं विभो पश्य षण्मुखं रविसन्निभम्॥१२१॥
पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठं भूषितं भूषणैः शुभैः। मुकुटैः कटकैश्चैव कुंडलैर्वलयैः शुभैः॥१२२॥
नूपुरैश्छन्नवारैश्च तथा ह्युदरबन्धनैः। किंकिणीभिरनेकाभिर्हैमैरश्वत्थपत्रकैः॥१२३॥
कल्पकद्रुमजैः पुष्पैः शोभितैरलकैः शुभैः। हारैर्वारीजरागादिमणिचित्रैस्तथांगदैः॥१२४॥
मुक्ताफलमयैर्हारैः पूर्णचंद्रसमप्रभैः। तिलकैश्च महादेव पश्य पुत्रं सुशोभनम्॥१२५॥
अंकितं कुंकुमाद्यैश्च वृत्तं भसितनिर्मितम्। वक्त्रवृंदं च पश्येश वृंदं कामलकं यथा॥१२६॥
नेत्राणि च विभो पश्य शुभानि त्वं शुभानि च।
अंजनानि विचित्राणि मंगलार्थं च मातृभिः॥१२७॥

विष्णु के जप से महेश्वर शिव जी प्रसन्न हुये। उमा सहित उन्होंने उमा का आलिंगन करके नन्दी के ऊपर हाथ रखा और स्मरण करते हुये देवताओं की ओर देखकर गम्भीर वाणी में कहा "हे देवताओं! इस देव कार्य को मैंने जान लिया है। मैं विष्णु की माया की शक्ति को और नारद की बुद्धिमत्ता को जानता हूँ। हे उत्तम देवताओं! मैं उन दैत्यों की अधर्मनिष्ठा को और तीनों पुरों का नाश करूँगा"।।११६-११९।।

सूत बोले

उसके बाद इन्द्र, विष्णु और ब्रह्मा के सहित आये। उन्होंने प्रभु शिव की बात सुनकर उनको प्रणाम किया और स्तुति की। उसके बाद देवी शिव की ओर देखकर विस्मित हुईं। उन्होंने अपने लील कमल से शिव को मारकर कहा।।१२०-१२१।।

देवी बोलीं

सूर्य के समान तेजस्वी अपने पुत्र षडानन को खेलते हुये देखो। हे पुत्रवानों में श्रेष्ठ! वह अच्छे भूषणों से भूषित है। मुकुट, कटक, कुण्डल, कंगन, नुपुर, करधनी, छन्नवार, किंकिणीं, सोने के पीपल के पत्तों, कल्पद्रुम के फूलों से सजे अलकों से युक्त हैं। उसका गले का हार बहुमूल्य मणि आदि से जड़ित है। चन्द्रमा के समान उज्ज्वल मोतियों की माला पहने तिलक लगाये, अपने सुन्दर पुत्र को देखो।।१२२-१२५।। कुंकुम कस्तूरी आदि अंकित और भस्म से गोल टीका लगाये है। हे ईश! कमल के समहों के समान इसके मुखों के समूह को

गंगादिभिः कृत्तिकाद्यैः स्वाहया च विशेषतः।
इत्येवं लोकमातुश्च वाग्भिः संबोधितः शिवः॥१२८॥
न ययौ तृप्तिमीशानः पिबन्स्कंदाननामृतम्।
न सस्मार च तान्देवान्दैत्यशस्त्रनिपीडितान्॥१२९॥
स्कंदमालिंग्य चाघ्राय नृत्य पुत्रेत्युवाच ह।
सोपि लीलालसो बालो ननर्तार्तिहरः प्रभुः॥१३०॥
सहैव ननृतुश्चान्ये सह तेन गणेश्वराः। त्रैलोक्यमखिलं तत्र ननर्तेशाज्ञया क्षणम्॥१३१॥
नागाश्च ननृतुः सर्वे देवाः सेंद्रपुरोगमाः। तुष्टुवुर्गणपाः स्कंदं मुमोदांबा च मातरः॥१३२॥
ससृजुः पुष्पवर्षाणि जगुर्गंधर्वकिन्नराः।
नृत्यामृतं तदा पीत्वा पार्वतीपरमेश्वरौ। अवापतुस्तदा तृप्तिं नंदिना च गणेश्वराः॥१३३॥
ततः स नंदी सह षण्मुखेन तथा च सार्धं गिरिराजपुत्र्या।
विवेश दिव्यं भवनं भवोपि यथांबुदोऽन्यांबुदमंबुदाभः॥१३४॥
द्वारस्य पार्श्वे ते तस्थुर्देवा देवस्य धीमतः। तुष्टुवुश्चच महादेवं किञ्चिदुद्विग्नचेतसः॥१३५॥
किंतु किंत्विति चान्योन्यं प्रेक्ष्य चैतत्समाकुलाः। पापा वयमिति ह्यन्ये अभाग्याश्चेति चापरे॥१३६॥
भाग्यवंतश्च दैत्येंद्रा इति चान्ये सुरेश्वराः। पूजाफलमिमं तेषामित्यन्ये नेति चापरे॥१३७॥
एतस्मिन्नंतरे तेषां श्रुत्वा शब्दाननेकशः। कुंभोदरो महातेजा दंडेनाताडयत्सुरान्॥१३८॥

देखो। हे शिव! इसके भव्य नेत्रों को देखो। उसकी माता गंगा कृत्तिका और स्वाहा आदि माताओं द्वारा मंगल के लिये लगाये गये विचित्र अंजन (काजलों) को देखो। जगत् की माता उमा द्वारा ऐसा कहने पर शिव जी स्कन्द के मुख के अमृत को पीते हुये तृप्त नहीं हुये। उन्होंने दैत्यों के शस्त्रों से पीड़ित वहाँ एकत्र देवताओं का स्मरण नहीं किया। उन्होंने स्कन्द का आलिंगन करके और उसके शिर को सूँघकर उससे कहा "हे पुत्र! नाचो।" सबकी पीड़ा हरने वाला वह महान् बालक वहीं लीला से नाचने लगा।।१२६-१३०।। उसके साथ ही सब गणेश्वर भी नाचने लगे। उसके बाद क्षणभर में शिव की आज्ञा से सम्पूर्ण तीनों लोक नाचने लगा।।१३१।। नाग (सर्पगण) और इन्द्र समेत सब देवता भी नाचने लगे। गणेश्वरों ने स्कन्द की स्तुति की। उमा तथा अन्य माताएँ प्रसन्न हुईं।।१३२।। गन्धर्वों और किन्नरों ने फूलों की वर्षा की और गीत गाये। उत्तम नृत्य का अमृत पार्वती और परमेश्वर पीकर नन्दी और गणेश्वरों के साथ सन्तुष्ट (पूर्ण तृप्त) हुये।।१३३।। तब नन्दी, कार्तिकेय (स्कन्द) और पार्वती के साथ शिवजी ने अपने दिव्य निवास में प्रवेश किया जैसे कि मेघ अन्य मेघों में प्रवेश करता है। वह शिव भी मेघ की आभा के समान थे।।१३४।। देवता लोग शिव के उस निवास के द्वार पर खड़े रहे। अपने मन में कुछ बेचैन देवताओं ने शिव की स्तुति की।।१३५।। वे एक-दूसरे से कहने लगे यह क्या है? उन्होंने एक-दूसरे से व्याकुल और उदास होकर कहा, "हम लोग पापी हैं।" कुछ ने कहा "हम अभागे हैं"।।१३६।। अग्रणी देवताओं ने कहा "दैत्य लोग भाग्यशाली हैं।" कुछ ने कहा "यह उनकी तपस्या का फल है।" फिर भी कुछ ने कहा 'नहीं'।।१३७।। इसी बीच उनकी निराशा भरी अनेक बातों को सुनकर महातेजस्वी कुम्भोदर नामक

दुद्रुवुस्ते भयाविष्टा देवा हाहेतिवादिनः। अपतन्मुनयश्चान्ये देवाश्च धरणीतले॥१३९॥
अहो विधेर्बलं चेति मुनयः कश्यपादयः। दृष्ट्वापि देवदेवेशं देवानां चासुरद्विषाम्॥१४०॥
अभाग्यान्न समाप्तं तु कार्यमित्यपरे द्विजाः। प्रोचुर्नमः शिवायेति पूज्य चाल्पतरं हृदि॥१४१॥
ततः कपर्दी नंदीशो महादेवप्रियो मुनिः।
शूली माली तथा हाली कुंडली वलयी गदी॥१४२॥
वृषमारुह्य सुश्वेतं ययौ तस्याज्ञया तदा। ततो वै नंदिनं दृष्ट्वा गणः कुंभोदरोपि सः॥१४३॥
प्रणम्य नंदिनं मूर्ध्ना सह तेन त्वरन्ययौ। नंदी भाति महातेजा वृषपृष्ठे वृषध्वजः॥१४४॥
सगणो गणसेनानीर्मेघपृष्ठे यथा भवः। दशयोजनविस्तीर्णं मुक्ताजालैरलंकृतम्॥१४५॥
सितातपत्रं शैलादेराकाशमिव भाति तत्। तत्रांतर्बद्धमाला सा मुक्ताफलमयी शुभा॥१४६॥
गंगाकाशान्निपतिता भाति मूर्ध्निविभोर्यथा। अथ दृष्ट्वा गणाध्यक्षं देवदुंदुभयः शुभाः॥१४७॥
नियोगाद्वज्रिणः सर्वे विनेदुर्मुनिपुंगवाः। तुष्टुवुश्च गणेशानं वाग्भिरिष्टप्रदं शुभम्॥१४८॥
यथा देवा भवं दृष्ट्वा प्रीतिकंटकितत्वचः। नियोगाद्वज्रिणो मूर्ध्नि पुष्पवर्षं च खेचराः॥१४९॥
ववृषुश्च सुगंधाढ्यं नंदिनो गगनोदितम्।
वृष्ट्या तुष्टस्तदा रेजे तुष्ट्या पुष्ट्या यथार्थया॥१५०॥
नंदी भवश्चांद्रया तु स्नातया गंधवारिणा। पुष्पैर्नानाविधैस्तत्र भाति पृष्ठं वृषस्य तत्॥१५१॥

शिव के गण ने बाहर आकर देवताओं को अपने दण्डे से मारना प्रारम्भ किया।।१३८।। देवता लोग भयभीत हो गये। वे 'हा' 'हा' 'हा' कहकर चिल्लाने लगे और भागने लगे। कुछ ऋषि और देवता भूमि पर गिर पड़े।।१३९।। कश्यप तथा अन्य मुनियों ने कहा, "हमारा विपरीत भाग्य है।" अन्य द्विजों ने कहा, "असुरों के नाशकर्त्ता और देवताओं के रक्षक देवों के देव महादेव का दर्शन पाकर भी अभाग्य वश हमारा काम पूरा नहीं हुआ।" फिर भी कुछ ने कहा, "शिव जी को नमस्कार (ॐ नमः शिवाय)।" यह अपने हृदय में थोड़ा पूजा करके कहा।।१४०-१४१।। महेश्वर की आज्ञा से तब महादेव के परम प्रिय नन्दी सफेद बैल पर चढ़कर आये। जटाधारी, त्रिशूल और गदा हाथ में लिये हुये थे। वे मालाएँ, हार, कुंडल और कड़े पहिने हुये थे। तब कुम्भोदर भी नन्दी को देखकर उनको प्रणाम करके जल्दी से उनके साथ गया। महातेजस्वी, बैल पर सवार नन्दी जी वृषभध्वज धारण किये हुये थे। वे गणों के सेनापति थे और गणों के साथ थे। जैसे वह स्वयं महादेव हों। नन्दी का श्वेत छत्र दस योजन फैला हुआ था। वह मोतियों के माला से भीतर से बँधा था। उससे लटकती सफेद मोतियों की माला ऐसी लग रही थी जैसे वह शिव जी के शिर पर आकाश से गिरती गंगा हो।।१४२-१४६।। हे ऋषीश्वरों! ऐसे गणाध्यक्ष नन्दी जी को देखकर उनके स्वागत में इन्द्र की आज्ञा से सब ने दिव्य दुंदुभि बजाई। उन्होंने प्रिय वाक्यों से उनकी स्तुति की जैसे देवगण शिव को देखकर प्रसन्नता से रोमांचित हो गये हों। इन्द्र की आज्ञा से गगनचरियों ने नन्दी के शिर पर पुष्प वृष्टि की। (फूल बरसाये)। जैसे आकाश में तारागण बिखरे हैं

संकीर्णं तु दिवः पृष्ठं नक्षत्रैरिव सुव्रताः। कुसुमैः संवृतो नंदी वृषपृष्ठे रराज सः॥१५२॥
दिवः पृष्ठे यथा चंद्रो नक्षत्रैरिव सुव्रताः। तं दृष्ट्वा नंदिनं देवाः सेंद्रोपेंद्रास्तथाविधम्॥१५३॥
तुष्टुवुर्गणपेशानं देवदेवमिवामरम्।

देवा ऊचुः

नमस्ते रुद्रभक्ताय रुद्रजाप्यरताय च॥१५४॥
रुद्रभक्तार्तिनाशाय रौद्रकर्मरताय ते। कूष्मांडगणनाथाय योगिनां पतये नमः॥१५५॥
सर्वदाय शरण्याय सर्वज्ञायार्तिहारिणे। वेदानां पतये चैव वेदवेद्याय ते नमः॥१५६॥
वज्रिणे वज्रदंष्ट्राय वज्रिवज्रनिवारिणे। वज्रालंकृतदेहाय वज्रिणाराधिताय ते॥१५७॥
रक्ताय रक्तनेत्राय रक्तांबरधराय ते। रक्तानां भवपादब्जे रुद्रलोकप्रदायिने॥१५८॥
नमः सेनाधिपतये रुद्राणां पतये नमः। भूतानां भुवनेशानां पतये पापहारिणे॥१५९॥
रुद्राय रुद्रपतये रौद्रपापहराय ते।
नमः शिवाय सौम्याय रुद्रभक्ताय ते नमः॥१६०॥

सूत उवाच

ततः प्रीतो गणाध्यक्षः प्राह देवांश्छिलात्मजः।
रथं च सारथिं शंभोः कार्मुकं शरमुत्तमम्॥१६१॥

उसी प्रकार नन्दी के बैल की पीठ पर सुगंधित फूल बिखर गये। हे सुव्रतो! उस रूप में देखकर इन्द्र समेत देवताओं और विष्णु ने उनकी स्तुति की। जैसे नन्दी जी साक्षात दूसरे महादेव हों।।१४७-१५३।।

देवता बोले

हे रुद्र के भक्त आप को नमस्कार, रुद्र के मन्त्रों के जाप में लीन, रुद्र के भक्तों की पीड़ा को हरने वाले, रुद्र को प्रसन्न करने वाले, कर्म में रत आपको नमस्कार। कूष्माण्ड गणों के नाथ को नमस्कार। योगियों के स्वामी को नमस्कार। सब-कुछ देने वाले को नमस्कार। शरण देने वाले को, सर्वज्ञ को, पीड़ा हरने वाले को नमस्कार। वेदों के पति को, वेदों द्वारा वेद्य (जानने योग्य) आप को नमस्कार। वज्रधारी को नमस्कार, वज्र के दंष्ट्रा वाले को, इन्द्र के वज्र के निवारणकर्त्ता को नमस्कार। वज्र से अलंकृत देह वाले को नमस्कार, वज्री इन्द्र द्वारा पूजित को नमस्कार। रक्त वर्ण वाले को, रक्त नेत्र वाले को, रक्त वस्त्रधारी को नमस्कार। रुद्रलोक के दाता को, रुद्र के कमलवत् चरणों में रत को नमस्कार। सेनाधिपति को नमस्कार। रुद्रों के पति को नमस्कार! भूतों के पति और भुवनों के पति को नमस्कार, पापों के हरणकारी को नमस्कार। रुद्र को नमस्कार, रुद्रों के पति को नमस्कार। शिव को नमस्कार, सौम्य को नमस्कार,.रुद्र के भक्त को नमस्कार।।१५४-१६०।।

सूत बोले

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर शिलाद के पुत्र, गणेश्वर, नन्दी प्रसन्न हुये। तब उन्होंने देवताओं से कहा, "शंभु के लिये (रथ) सारथी, धनुष, उत्तम बाण को तैयार कराइये यह सोचकर कि त्रिपुर शीघ्र नष्ट हो जाय।"

कर्तुमर्हथ यत्नेन नष्टं मत्वा पुरत्रयम्।
अथ ते ब्रह्मणा सार्धं तथा वै विश्वकर्मणा॥१६२॥
रथं चक्रुः सुसंरब्धा देवदेवस्य धीमतः॥१६३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पुरदाहे नंदिकेश्वरवाक्यं नाम एकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥

इसके बाद देवताओं ने अपने शिल्पी विश्वकर्मा और ब्रह्मा की संयुक्तता से (ब्रह्मा के साथ) देवों के देव बुद्धिमान महादेव (शंभु) के लिये रथ बनवाया।।१६१-१६३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में पुरदाह पर नन्दिकेश्वर वाक्य नामक इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७१॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

त्रिपुरदाहे ब्रह्मस्तवः

सूत उवाच

अथ रुद्रस्य देवस्य निर्मितो विश्वकर्मणा। सर्वलोकमयो दिव्यो रथो यत्नेन सादरम्।।१।।
सर्वभूतमयश्चैव सर्वदेवनमस्कृतः। सर्वदेवमयश्चैव सौवर्णः सर्वसंमतः।।२।।
रथांगं दक्षिणं सूर्यो वामांगं सोम एव च। दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम्।।३।।
अरेषु तेषु विप्रेंद्राश्चादित्या द्वादशैव तु। शशिनः षोडशारेषु कला वामस्य सुव्रताः।।४।।
ऋक्षाणि च तदा तस्य वामस्यैव तु भूषणम्। नेम्यः षड्तवश्चैव तयोर्वै विप्रपुंगवाः।।५।।
पुष्करं चांतरिक्षं वै रथनीडश्च मंदरः। अस्ताद्रिरुदयाद्रिश्च उभौ तौ कूबरौ स्मृतौ।।६।।
अधिष्ठानं महामेरुराश्रयाः केसराचलाः। वेगः संवत्सरस्तस्य अयने चक्रसंगमौ।।७।।
मुहूर्ता बंधुरास्तस्य शम्याश्चैव कलाः स्मृताः। तस्य काष्ठाः स्मृता घोणा चाक्षदंडा क्षणाश्च वै।।८।।
निमेषाश्चानुकर्षाश्च ईषा चास्य लवाः स्मृताः। द्यौर्वरूथं रथस्यास्य स्वर्गमोक्षावुभौ ध्वजौ।।९।।
धर्मो विरागो दंडोस्य यज्ञा दंडाश्रयाः स्मृताः। दक्षिणाः संधयस्तस्य लोहाः पंचाशदग्नयः।।१०।।

बहत्तरवाँ अध्याय

त्रिपुर दाह पर ब्रह्मस्तव

सूत बोले

इसके बाद विश्वकर्मा ने आदरपूर्वक मन से रुद्र भगवान शंकर का सब लोकमय दिव्य रथ बनाया।।१।। यह सब लोकमय और सब देवताओं द्वारा नमस्कृत था। यह सब देवमय था। यह स्वर्ण का बना हुआ था। यह सब लोगों द्वारा सम्मानित था।।२।। इस रथ का दाहिना चक्र (पहिया) सूर्य और बायाँ चक्र चन्द्रमा थे। दाहिने पहिये में बारह और बाँये पहिये में सोलह तीलियाँ थीं।।३।। हे विद्वान ब्राह्मणों! रथ के दाहिने पहिये की तीलियों में बारहों सूर्य और बायें पहिये की तीलियों में चन्द्रमा की सोलह कलायें लगी थीं।।४।। बायें पहिये का भूषण नक्षत्रगण थे। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! छः ऋतुयें उस रथ की नेमियाँ (रिम) थीं।।५।। आकाश इस रथ की छत थी और मन्दर पर्वत इस रथ का नीड (भीतर भाग) था। अस्ताचल और उदयाचल इसके खम्भे थे। जिनसे जुआ बंधी थीं (लगी थी)।।६।। महा मेरु उस रथ का अधिष्ठान (सारथी के बैठने) की सीट बैठने के मुख्य स्थान हुये। केसर पर्वत उसके आश्रय (सहारा देने वाली सीट) हुये। संवत्सर (वर्ष) इस रथ का वेग हुआ। उत्तरायण और दक्षिणायन ये दोनों अयन उस रथ के पहियों के जोड़ (संगम) हुये।।७।। मुहूर्त्त, इसके खूँटी या पिन लगाने के छेद (सुराग) बने और कलायें उस रथ के जुये की पिन हुईं। दिशायें उस रथ की नाक और क्षण इसके अक्ष दण्ड हुये।।८।। निमेष इसके अनुकर्ष तल और लव इसके ईषा (हरिस) हुये। आकाश उस रथ की बरूथ (कवच) तथा स्वर्ग और मोक्ष इस रथ का ध्वज हुये।।९।। धर्म और विराग इस रथ के दण्डे हुये और यज्ञ उन दण्डों

युगांतकोटी तौ तस्य धर्मकामावुभौ स्मृतौ। ईषादंडस्तथाव्यक्तं बुद्धिस्तस्यैव नड्वलः॥११॥
कोणस्तथा ह्यहंकारो भूतानि च बलं स्मृतम्। इंद्रियाणि च तस्यैव भूषणानि समंततः॥१२॥
श्रद्धा च गतिरस्यैव वेदास्तस्य हयाः स्मृताः। पदानि भूषणान्येव षडंगा न्युपभूषणम्॥१३॥
पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि सुव्रताः। वालाश्रयाः पटाश्चैव सर्वलक्षणसंयुताः॥१४॥
मंत्रा घंटाः स्मृतास्तेषां वर्णाः पादास्तथाश्रमाः। अवच्छेदो ह्यनंतस्तु सहस्त्रफणभूषितः॥१५॥
दिशः पादा रथस्यास्य तथा चोपदिशश्च ह। पुष्कराद्याः पताकाश्च सौवर्णा रत्नभूषिताः॥१६॥
समुद्रास्तस्य चत्वारो रथकंबलिकाः स्मृताः। गंगाद्याः सरितः श्रेष्ठाः सर्वाभरणभूषिताः॥१७॥
चामरासक्तहस्ताग्राः सर्वाः स्त्रीरूपशोभिताः। तत्रतत्र कृतस्थानाः शोभयांचक्रिरे रथम्॥१८॥
आवहाद्यास्तथा सप्त सोपानं हैममुत्तमम्। सारथिर्भगवान्ब्रह्मा देवाभीषुधराः स्मृताः॥१९॥
प्रतोदो ब्रह्मणस्तस्य प्रणवो ब्रह्मदैवतम्। लोकालोकाचलस्तस्य ससोपानः समंततः॥२०॥
विषमश्च तदाबाह्यो मानसाद्रिः सुशोभनः। नासाः समंततस्तस्य सर्व एवाचलाः स्मृताः॥२१॥
तलाः कपोताः कापोताः सर्वे तलनिवासिनः। मेरुरेव महाछत्रं मंदरः पार्श्वडिंडिमः॥२२॥
शैलेंद्रः कार्मुकं चैव ज्या भुंजगाधिपः स्वयम्। कालरात्र्या तथैवेह तथेन्द्रधनुषा पुनः॥२३॥
घंटा सरस्वती देवी धनुषः श्रुतिरूपिणी। इषुर्विष्णुर्महातेजाः शल्यं सोमः शरस्य च॥२४॥

के आश्रय बने। दक्षिणायें उस रथ की संधियाँ (जोड़) बनें और पचास अग्नियाँ उस रथ के बोल्ट बनीं।।१०।। धर्म और काम ये दोनों जुओं के सिरे (टाप) बने। अव्यक्त तत्त्व ईष दण्ड और बुद्धि उसको जोड़ने वाला नटबोल्ट बना।।११।। अहंकार उसका कोण, भूत (पंच महाभूत) उसके बल हुये। इन्द्रियाँ इसके चारों ओर लगे आभूषण हुये। श्रद्धा उसकी गति हुई और चारों वेद उस रथ के घोड़े हुये। वेदों के पाद (शब्द) इसके भूषण और वेदों के छः अंग (व्याकरण आदि) उसके आभूषण हुये थे।।१२-१३।। हे सुव्रतो! पुराण न्याय, मीमांसा और धर्म शास्त्र ये सब उस रथ के, वस्त्रों से बने पर्दे बने और बाल के आश्रय हुये।।१४।। मन्त्र, पाद, वर्ण, और चारों आश्रम इस रथ के घण्टा बने। हजार फणों से युक्त अलंकृत शेष नाग इसके अवच्छेद बने।।१५।। दिशायें और उपदिशायें इस रथ के पाद (खम्भे) हुये। पुष्कर आदि मेघ इस रथ के रत्न जटित पताकायें हुये।।१६।। समुद्र इस रथ के तलभाग पर फैले हुये कम्बल हुये। गंगा आदि अन्य नदियाँ स्त्री के रूप में सब आभूषणों से भूषित होकर अपने-अपने हाथों में चमर लिये हुये यथास्थान उस रथ में विराजमान हुईं।।१७-१८।। आवह आदि सात वायु उस रथ की स्वर्ण की सात सीढ़िया बने। ब्रह्मा जी सारथी बने और उन्होंने लगाम को हाथ में थाम लिया।।१९।। ब्रह्मा के हाथ से प्रणव इस रथ के चाबुक (प्रतोद) हुये। लोकालोक पर्वत चारों ओर उतरने की सीढ़ियाँ बने। सुन्दर मानस पर्वत इसका उतरने का पायदान हुआ। अन्य पर्वत इस रथ के चारों ओर नासिका बने।।२०-२१।। तल और उसके निवासी इसके कबूतर और कबूतर खाने बनाये गये। मेरु पर्वत इस रथ का महा छत्र (बड़ा छाता) और मन्दर पर्वत बगल का ढोल बना।।२२।। पर्वतों का राजा हिमवान धनुष बना और सर्पों के स्वामी वासुकि स्वयं कालरात्रि और इन्द्रधनुष के साथ बाण बने।।२३।। वेद स्वरूपिणी सरस्वती देवी

कालाग्निस्तच्छरस्यैव साक्षात्तीक्ष्णः सुदारुणः। अनीकं विषसंभूतं वायवो वाजकाः स्मृताः॥२५॥
एवं कृत्वा रथं दिव्यं कार्मुकं च शरं तथा। सारथिं जगतां चैव ब्रह्माणं प्रभुमीश्वरम्॥२६॥
आरुरोह रथं दिव्यं रणमंडनधृग्भवः। सर्वदेवगणैर्युक्तं कंपयन्निव रोदसी॥२७॥
ऋषिभिः स्तूयमानश्च वंद्यमानश्च वंदिभिः। उपनृत्यश्चाप्सरसां गणैर्नृत्यविशारदैः॥२८॥
सुशोभमानो वरदः संप्रेक्ष्यैव च सारथिम्। तस्मिन्नारोहति रथं कल्पितं लोकसंभृतम्॥२९॥
शिरोभिः पतिता भूमिं तुरगा वेदसंभवाः। अथाधस्ताद्रथस्यास्य भगवान् धरणीधरः॥३०॥
वृषेन्द्ररूपी चोत्थाप्य स्थापयामास वै क्षणम्। क्षणांतरे वृषेंद्रोपि जानुभ्यामगमद्धराम्॥३१॥
अभीषुहस्तो भगवानुद्यम्य च हयान् विभुः। स्थापयामास देवस्य वचनाद्वै रथं शुभम्॥३२॥
ततोश्वांश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः। पुराण्युद्दिश्य खस्थानि दानवानां तरस्विनाम्॥३३॥
अथाह भगवान् रुद्रो देवानालोक्य शंकरः। पशूनामाधिपत्यं मे दत्तं हन्मि ततोऽसुरान्॥३४॥
पृथक्पशुत्वं देवानां तथान्येषां सुरोत्तमाः। कल्पयित्यैव वध्यास्ते नान्यथा नैव सत्तमाः॥३५॥
इति श्रुत्वा वचः सर्वं देवदेवस्य धीमतः। विषादमगमन् सर्वे पशुत्वं प्रति शंकिताः॥३६॥
तेषां भावं ततो ज्ञात्वा देवस्तानिदमब्रवीत्। मा वोस्तु पशुभावेस्मिन् भयं विबुधसत्तमाः॥३७॥

धनुष की घण्टी बनीं। महातेजस्वी विष्णु बाण बने और चन्द्रमा उस बाण के शल्य बने।।२४।। कल्प के अन्त की कालाग्नि उस बाण की तीक्ष्ण और भयानक विष से भरा हुआ अनीक (नोक) बनीं। वायु उस बाण के पंख बने।।२५।। इस प्रकार दिव्य रथ, धनुष और बाण तैयार किया गया। लोकों के स्वामी ब्रह्मा को सारथी बनाया गया। रण भूमि के साज-सामान धारण किये शिवजी सब देवगणों के साथ पृथ्वी और स्वर्ग को कँपाते हुये उस दिव्य रथ पर सवार हुये।।२६।। ऋषियों द्वारा स्तुति किये जाते और वंदीजनों द्वारा नमस्कृत नृत्य कला में विशारद अप्सराओं के समूहों ने उन शिव के सामने उनके सम्मान में नृत्य किया। जब शिव जी उस रथ पर बैठे तो जो रथ विविध सामग्री से सजा हुआ था तो उनके भार को न सह सकने के कारण चारों वेद बने चारों घोड़े सिर के बल धरती पर गिर पड़े। धरणीधर भगवान विष्णु ने बैल का रूप धारण करके उस रथ को नीचे से उठाया और उसको स्थापित करना चाहा। लेकिन अगले क्षण में घोड़े फिर घुटनों के बल भूमि पर गिर पड़े।।२७-३१।। तब शिव के आदेश से ब्रह्मा अपने हाथ में लगाम थामें थे। घोड़ों को उठाया और उस रथ को खड़ा किया।।।३२।। तब मन और वायु की गति से चलने वाले घोड़ों को आकाश में स्थित साहसी दानवों के त्रिपुर की ओर हाँका (चलाया)।।३३।। उसके बाद देवताओं को देखकर भगवान रुद्र ने कहा "मुझको पशुओं का आधिपत्य दो तब मैं असुरों का संहार करूँ।।३४।। हे उत्तम देवताओं! देवताओं तथा अन्य से पृथक् पशुओं की आत्माओं के देने के बाद ही वे दानव मारे जा सकेंगे अन्यथा नहीं"।।३५।। बुद्धिमान देवेश शिव की इस बात को सुनकर देवगण सन्देह में पड़ गये। वे इस परिवर्तन से बेचैन हो गये और विषाद को प्राप्त हुये।।३६।। उनकी मानसिक प्रतिक्रिया का अनुभव करने के बाद शिव उनसे बोले। "हे सुरोत्तमों! तुम्हारे मन में इस पशु होने में कोई भय न हो। पशुभाव का उद्धार सुनो और उसको करो। जो पाशुपत व्रत करेगा वह पशुत्व से मुक्त हो

श्रूयतां पशुभावस्य विमोक्षः क्रियतां च सः। यो वै पाशुपतं दिव्यं चरिष्यति स मोक्ष्यति॥३८॥
पशुत्वादिति सत्यं च प्रतिज्ञातं समाहिताः। ये चाप्यन्ये चरिष्यंति व्रतं पाशुपतं मम॥३९॥
मोक्ष्यंति ते न संदेहः पशुत्वात्सुरसत्तमाः। नैष्ठिकं द्वादशाब्दं वा तदर्धं वर्षकत्रयम्॥४०॥
शुश्रूषां कारयेद्यस्तु स पशुत्वाद्विमुच्यते। तस्मात्परमिदं दिव्यं चरिष्यथ सुरोत्तमाः॥४१॥
तथेति चाब्रुवन्देवाः शिवे लोकनमस्कृते। तस्माद्वै पशवः सर्वे देवासुरनराः प्रभोः॥४२॥
रुद्रः पशुपतिश्चैव पशुपाशविमोचकः। यः पशुस्तत्पशुत्वं च व्रतेनानेन संत्यजेत्॥४३॥
तत्कृत्वा न च पापीयानिति शास्त्रस्य निश्चयः। ततो विनायकः साक्षाद्बालोऽबालपराक्रमः॥४४॥
अपूजितस्तदा देवैः प्राह देवान्निवारयन्।

श्रीविनायक उवाच

मामपूज्य जगत्यस्मिन् भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः॥४५॥
कः पुमान्सिद्धिमाप्नोति देवो वा दानवोपि वा। ततस्तस्मिन् क्षणादेव देवकार्ये सुरेश्वराः॥४६॥
विघ्नं करिष्ये देवेश कथं कर्त्तुं समुद्यताः। ततः सेंद्राः सुराः सर्वे भीताः संपूज्य तं प्रभुम्॥४७॥
भक्ष्यभोज्यादिभिश्चैव उंडरैश्चैव मोदकैः। अब्रुवंस्ते गणेशानं निर्विघ्नं चास्तु नः सदा॥४८॥
भवोप्यनेकैः कुसुमैर्गणेशं भक्ष्यैश्च भोज्यैः सुरसैः सुगंधैः।
आलिंग्य चाघ्राय सुतं तदानीमपूजयत्सर्वसुरेन्द्रमुख्यः॥४९॥

जायेगा।।३७।। अब पशुता से मुक्ति पाने का उपाय (साधन) सुनो और उसको करने की चेष्टा करो। जो कोई भी मेरे दिव्य पाशुपत व्रत को करेगा वह पशुत्व दशा से मुक्त हो जायेगा। इसमें सन्देह नहीं। हे सुरेश्वर! मैं शान्तिपूर्वक तुम सब को वचन देता हूँ कि जो कोई बारह वर्ष या उसका आधा अथवा तीन वर्ष तक सेवा करे वह पशुत्व से मुक्त हो जायगा। अतः हे सुरेश्वरों तुम सब इस पाशुपत व्रत को करोगे''।।३८-४१।। देवताओं ने सब लोकों से नमस्कृत शिव से कहा ''ऐसा ही हो।'' इसीलिये देव, असुर और मनुष्य ये सब पशु कहलाते हैं। रुद्र पशुओं के स्वामी (पशुपति) हैं और पशु के पाश से मुक्त कराने वाले हैं। जो इस शरीर से पशु है वह इस व्रत के करने से पशुत्व से मुक्त हो जाता है। शास्त्र का यह निश्चय है कि पापों के करने पर भी वह पापी नहीं रह जाता है। पापी नहीं होता। तब देवताओं द्वारा पूजा न किये जाने पर बालक किन्तु युवक के समान अमित विकमी विनायक (गणेश) जी ने स्वयं देवताओं को रोकते हुये कहा।।४२-४४।।

विनायक बोले

''मनुष्य हो या देवता हो कोई भी इस संसार में उत्तम भक्ष्य और भोज्य पदार्थों द्वारा मेरी पूजा किये बिना अपने कार्य में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता है। तो हे सुरेश्वरों! मैं तुम्हारे कार्य में एक क्षण में विध्न करूँगा। मेरी पूजा किये बिना तुम लोग अपने कार्य करने को कैसे तैयार हो गये।'' उसके बाद इन्द्र सहित सब देवता भयभीत हो गये। डर गये। उन्होंने विविध भक्ष्य और भोज्य पदार्थों मूसकों और लड्डुओं आदि से उनकी पूजा करके गणेश जी से बोले अब हमारा कार्य निर्विध्न समाप्त होने दें।'' सब मुख्य देवताओं सहित शिव ने अपने पुत्र गणेश को आलिंगन करके उनके शिर को सूँघकर, सुगन्धित पुष्पों, रसों, भक्ष्य, भोज्य पदार्थों से उनकी पूजा

संपूज्य पूज्यं सह देवसंघैर्विनायकं नायकमीश्वराणाम्।
गणेश्वरैरेव नगेंद्रधन्वा पुरत्रयं दग्धुमसौ जगाम॥५०॥
तं देवदेवं सुरसिद्धसंघा महेश्वरं भूतगणाश्च सर्वे।
गणेश्वरा नंदिमुखास्तदानीं स्ववाहनैरन्वयुरीशमीशाः॥५१॥
अग्रे सुराणां च गणेश्वराणां तदाथ नंदी गिरिराजकल्पम्।
विमानमारुह्य पुरं प्रहर्तुं जगाम मृत्युं भगवानिवेशः॥५२॥
यान्तं तदानीं तु शिलादपुत्रमारुह्य नागेंद्रवृषाश्ववर्यान्।
देवास्तदानीं गणपाश्च सर्वे गणा ययुः स्वायुधचिह्नहस्ताः॥५३॥
खगेंद्रमारुह्य नगेंद्रकल्पं खगध्वजो वामत एव शंभोः।
जगाम तुर्णं जगतां हिताय पुरत्रयं दग्धुमलुप्तशक्तिः॥५४॥
तं सर्वदेवाः सुरलोकनाथं समंततश्चान्वयुरप्रमेयम्।
सुरासुरेशं शितशक्तिटंकगदात्रिशूलासिवरायुधैश्च॥५५॥
रराज मध्ये भगवान्सुराणां विवाहनो वारिजपत्रवर्णः।
यथा सुमेरोः शिखाराधिरूढः सहस्त्ररश्मिर्भगवान्सुतीक्ष्णः॥५६॥
सहस्त्रनेत्रः प्रथमः सुराणां गजेन्द्रमारुह्य च दक्षिणेऽस्य।
जगाम रुद्रस्य पुरं निहंतुं यथोरगांस्तत्र तु वैनतेयः॥५७॥
तं सिद्धगंधर्वसुरेंद्रवीराः सुरेंद्रवृंदाधिपमिंद्रमीशम्।
समंततस्तुष्टुवुरिष्टदं ते जयेति शक्रं वरपुष्पवृष्ट्या॥५८॥

की। गणों के स्वामी, विनायक की पूजा करके पूज्य शिव जी हिमवान की धनुष लिये हुये गणेश्वरों को संग में लेकर त्रिपुर को जलाने के लिये चले।।४५-५०।। नन्दी से प्रारम्भ करके देवों, सिद्धों, भूतों, गणों और उनके स्वामियों ने देवेश, महादेव शिव का पीछे अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर अनुगमन किया। उनके पीछे चले।।५१।। हिमालय के समान विशाल रथ पर चढ़कर भगवान नन्दी गणेश्वरों और देवों के आगे त्रिपुर पर प्रहार करने के लिये, मृत्यु पर प्रहार करने के लिये शिव जी के समान चले।।५२।। आगे जाते हुये नन्दी जी के पीछे शानदार हाथियों, बैलों, घोड़ों पर चढ़े सब देवता, गणेश्वर और गण लोग अपने-अपने अस्त्रों और चिह्नों को हाथ में लिये हुये चले।।५३।। महापराक्रमी, गरुड़ध्वज विष्णु जी गरुड़ पर चढ़कर तेजी से तीनों लोकों के कल्याण के लिये त्रिपुर दाह के निमित्त चले।।५४।। सब देवता भी विश्वेश, सब लोकों के स्वामी, सुरों और असुरों के ईश, अतुलनीय शिव के पीछे अपने-अपने उत्तम अस्त्रों जैसे तेज भाला, शक्ति, टंक, लोहे की गदा, त्रिशूल और तलवार आदि को लेकर चले।।५५।। गरुड़ वाहन, कमल के पत्र के समान रंग वाले भगवान विष्णु देवताओं के मध्य में उसी प्रकार दीप्यमान हुये जैसे सुमेरु गिरि के शिखर पर सहस्त्र किरणों वाले सूर्य भगवान हों।।५६।। अपने गजेन्द्र ऐरावत पर बैठकर देवताओं के प्रमुख सहस्त्र नेत्रधारी इन्द्र, शिवजी की दाहिनी ओर त्रिपुर पर प्रहार करने के लिये सर्पों पर प्रहार करने के लिए गरुड़ के समान चले।।५७।। सिद्धों,

तदा ह्यहल्योपपतिं सुरेशं जगतपतिं देवपतिं दिविष्ठाः।
प्रणेमुरालोक्य सहस्त्रनेत्रं सलीलमंबातनयं यथेंद्रम्॥५९॥
यमपावकवित्तेशा वायुर्निर्ऋतिरेव च। अपां पतिस्तथेशानो भवं चानुसमागताः॥६०॥
वीरभद्रो रणे भद्रो नैर्ऋत्यां वै रथस्य तु। वृषभेंद्रं समारुह्य रोमजैश्च समावृतः॥६१॥
सेवां चक्रे पुरं हंतुं देवदेवं त्रियंबकम्। महाकालो महातेजा महादेव इवापरः॥६२॥
वायव्यां सगणैः सार्धं सेवांचक्रे रथस्य तु॥६३॥
षण्मुखोपि सह सिद्धचारणैः सेनया च गिरिराजसन्निभः।
देवनाथगणवृंदसंवृतो वारणेन च तथाग्निसंभवः॥६४॥
विघ्नं गणेशोप्यसुरेश्वराणां कृत्वा सुराणां भगवानविघ्नम्।
विघ्नेश्वरो विघ्नगणैश्च सार्धं तं देशमीशानपदं जगाम॥६५॥
काली तदा कालनिशाप्रकाशं शूलं कपालाभरणा करेण।
प्रकंपयंती च तदा सुरेंद्रान्महासुरासृङ्मधुपानमत्ता॥६६॥
मत्तेभगामी मदलोलनेत्रा मत्तैः पिशाचैश्च गणैश्च मत्तैः।
मत्तेभचर्मांबरवेष्टितांगी ययौ पुरस्ताच्च गणेश्वरस्य॥६७॥
तां सिद्धगंधर्वपिशाचयक्षविद्याधराहींद्रसुरेन्द्रमुख्याः।
प्रणेमुरुच्चैरभितुष्टुवुश्च जयेति देवीं हिमशैलपुत्रीम्॥६८॥

वीरों, गन्धर्वों और सब देव प्रमुखों ने, देवगणों के स्वामी कामनाओं की पूर्ति करने वाले इन्द्र की चारों से स्तुति की और विजयी होओ। ऐसा नारा लगाया और उनके सम्मान में फूल बरसाये।।५८।। उस समय जो स्वर्ग में स्थित थे उन्होंने सहस्त्रनेत्र, अहल्या के उपपति, जगत्पति, देवपति, इन्द्र को क्रीड़ा करते हुये उमा के पुत्र कार्त्तिकेय के समान इन्द्र को प्रणाम किया।।५९।। यम, अग्नि, कुबेर, वायु, निर्ऋति, वरुण और ईशान शिव के पीछे-पीछे चले।।६०।। युद्ध के क्षेत्र में निपुण वीरभद्र दक्षिण-पश्चिम कोण (नैर्ऋत्य) की ओर शिवजी के रथ के पीछे चले जो एक विशालकाल बैल पर सवार थे और रोओं (बालों) से उत्पन्न गणों से घिरे थे। इस प्रकार उन्होंने त्रिपुर के विनाश में त्रिलोचन शिव की सेवा की। महातेजस्वी महाकाल जो दूसरे महादेव के समान दिखाई दे रहे थे, उन्होंने उत्तर-पश्चिम (वायव्य कोण) की ओर से शिव के रथ की सेवा की। अग्नि से उत्पन्न हिमवान के समान दृश्यमान, देव सेना से घिरे हुये पद्मासन कार्तिकेय ने सिद्धों, चारणों, योद्धाओं और हाथियों से शिव जी के रथ की सेवा की।।६१-६४।। असुरों में विघ्न करते हुए और देवों के विघ्नों को दूर करते हुए भगवान गणेश जी विघ्नेश्वर विघ्न गणों के साथ ईशान के शिविर में गये।।६५।। उस समय हाथ में कपाल को लिये हुऐ मदोन्मत्त पिशाचों और गणों के साथ मद से चंचल नेत्र वाली मस्त हाथी पर सवार मात्र हाथी के चर्म को अपने अंग में लपेटे हुए काल रात्रि के समान चमकते हुए त्रिशूल को अपने हाथ में धारण किये हुए असुरों के खून को मदिरा के समान पीने से असुरों को कँपाती हुई लाल-लाल नेत्रों वाली काली देवी गणेश जी के आगे-आगे चली।।६६-६७।। सिद्धों, गन्धर्वों, पिशाचों, विद्याधरों, सर्पों और प्रमुख देवों ने हिमवान की पुत्री पार्वती

मातरः सुरवरारिसूदनाः सादरं सुरगणैः सुपूजिताः।
मातरं ययुरथ स्ववाहनैः स्वैर्गणैर्ध्वजधरैः समंततः॥६९॥

दुर्गारूढमृगाधिपा दुरतिगा दोर्दंडवृंदैः शिवा बिभ्राणांकुशशूलपाशपरशुं चक्रासिशंखायुधम्।
प्रौढादित्यसहस्त्रवह्निसदृशैर्नेत्रैर्दहंती पथं बालाबलपराक्रमा भगवती दैत्यान्प्रहर्तुं ययौ॥७०॥

तं देवमीशं त्रिपुरं निहंतुं तदा तु देवेंद्ररविप्रकाशाः।
गजैर्हयैः सिंहवरैः रथैश्च वृषैर्ययुस्ते गणराजमुख्याः॥७१॥
हलैश्चफालैर्मुसलैर्भुशुंडैर्गिरींद्रकूटैर्गिरिसन्निभास्ते ।
ययुः पुरस्ताद्धि महेश्वरस्य सुरेश्वरा भूतगणेश्वराश्च॥७२॥
तथेंद्रपद्मोद्भवविष्णुमुख्याः सुरा गणेशाश्च गणेशमीशम्।
जयेति वाग्भिर्भगवंतमूचुः किरीटदत्तांजलयः समंतात्॥७३॥
ननृतुर्मुनयः सर्वे दंडहस्ता जटाधराः।
ववृषुः पुष्पवर्षाणि खेचराः सिद्धचारणाः।
पुरत्रयं च विप्रेंद्राः प्राणदत्सर्वतस्तथा॥७४॥
गणेश्वरैर्देवगणैश्च भृंगी समावृतः सर्वगणेंद्रवर्यः।
जगाम योगी त्रिपुरं निहंतु विमानमारुह्य यथा महेंद्रः॥७५॥

को प्रणाम किया और उच्च स्वर से उनकी स्तुति की तथा विजयी हो, जय हो, के नारे लगाये।।६८।। ब्राह्मी माहेश्वरी आदि माताएँ जो देवताओं के समूहों द्वारा पूजित और राक्षसों को विनाश करने वाली हैं। अपने-अपने गणों से चारों ओर घिरी अपने-अपने वाहनों पर सवार शिव जी के रथ के पीछे-पीछे चलीं।।६९।। एक सिंह पर सवार दुर्गा देवी दैत्यों पर प्रहार करने के लिए चलीं। वह त्रिपुर पर प्रहार करने के लिए चलीं। वह पवित्र देवी ऐसी थी जिनके आदेशों की अवहेलना नहीं की जा सकती थी। वे अपने हाथों में विविध प्रकार के अस्त्र जैसे अंकुश, शूल, पाश, चक्र, तलवार, और शंख को धारण किये हुए थीं। वे दोपहर के हजारों सूर्यों और अग्नियों के समान देदीप्यमान नेत्रों से मार्ग को जलाती हुई चलीं। यद्यपि वे एक स्त्री थीं फिर भी स्त्रियों के मध्य उनका तेज असाधारण था।।७०।। इन्द्र और सूर्य के समान प्रकाश वाले गणों के मुख्य स्वामी लोग भी हाथियों, घोड़ों, सिंहों, रथों पर सवार होकर त्रिपुर को नाश करने के लिए भगवान शिव के पीछे चले।।७१।। हलों, फालों, मूसलों, लोहे की गदाओं, भुसुंडों और ऊँचे पहाड़ों के कूटों को हाथ में लिए हुए पर्वताकार देवताओं और भूतों के प्रमुख लोग शिव के आगे चले।।७२।। देवतागण जिनमें इन्द्र, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा, विष्णु और गणेश्वर गणेश के चारों ओर घिरे हुए अपने मुकुटों को झुका कर गणेश जी को प्रणाम करते हुए। "जय हो, जय हो' ऐसे नारे लगाये।।७३।। जटाधारी, हाथ में दंडधारी सब मुनि लोगों ने नृत्य किया। आकाशचारी सिद्धों, चारणों और अन्य ने फूलों की वर्षा की। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! त्रिपुर चारों ओर से गूँज उठा।।७४।। योगी, भृंगी, सब गणेश्वरों में श्रेष्ठ देवगणों से घिरे हुए इन्द्र के समान विमान पर सवार होकर त्रिपुर पर प्रहार करने के लिए

केशो विगतवासाश्च महाकेशो महाज्वरः। सोमवल्ली सवर्णश्च सोमपः सेनकस्तथा॥७६॥
सोमधृक् सूर्यवाचश्च सूर्यपेषणकस्तथा। सूर्याक्षः सूरिनामा च सुरः सुंदर एव च॥७७॥
प्रकुदः ककुदंतश्च कंपनश्च प्रकंपनः। इंद्रश्चेंद्रजयश्चैव महाभीर्भीमकस्तथा॥७८॥
शताक्षश्चैव पंचाक्षः सहस्राक्षो महोदरः। यमजिह्वः शताश्वश्च कण्ठनः कंठपूजनः॥७९॥
द्विशिखस्त्रिशिखश्चैव तथा पंचशिखो द्विजाः। मुंडोर्धमुंडो दीर्घश्च पिशाचास्यः पिनाकधृक्॥८०॥
पिप्पलायतनश्चैव तथा ह्यंगारकाशनः।
शिथिलः शिथिलास्यश्च अक्षपादो ह्यजः कुजः॥८१॥
अजवक्त्रो हयवक्त्रो गजवक्त्रोर्ध्ववक्त्रकः। इत्याद्याः परिवार्येशं लक्ष्यलक्षणवर्जिताः॥८२॥
वृंदशस्तं समावृत्य जग्मुः सोमं गणैर्वृताः। सहस्राणां सहस्राणि रुद्राणामूर्ध्वरेतसाम्॥८३॥
समावृत्य महादेवं देवदेवं महेश्वरम्। दग्धुं पुरत्रयं जग्मुः कोटिकोटिगणैर्वृताः॥८४॥
त्रयस्त्रिंशत्सुराश्चैव त्रयश्च त्रिशतास्तथा। त्रयश्च त्रिसहस्राणि जग्मुर्देवाः समंततः॥८५॥
मातरः सर्वलोकानां गणानां चैव मातरः। भूतानां मातरश्चैव जग्मुर्देवस्य पृष्ठतः॥८६॥
भाति मध्ये गणानां च रथमध्ये गणेश्वरः। नभस्यमलनक्षत्रे तारामध्य इवोडुराट्॥८७॥
रराज देवी देवस्य गिरिजा पार्श्वसंस्थिता। तदा प्रभावतो गौरी भवस्येव जगन्मयी॥८८॥
शुभावती तदा देवी पार्श्वसंस्था विभाति सा। चामरासक्तहस्ताग्रा सा हेमांबुजवर्णिका॥८९॥
अथ विभाति विभोर्विशदं वपुर्भसितभासितमंबिकया तया।
सितमिवाभ्रमहो इह विद्युता नभसि देवपतेः परमेष्ठिनः॥९०॥

चले।।७५।। त्रिपुरों का विनाश करने के लिए आगे लिखे गये गणेश्वर भी शिव जी के पीछे चले। केश, विगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्ली, सवर्ण, सोमप, सेनक, सोमधृक, सूर्यवाच, सूर्यपेषणक, सूर्याक्ष, सूरिनाम, सुर, सुंदर प्रकुद, ककुदंत, कंपन, प्रकंपन, इन्द्र, इन्द्रजय, महाभीमक, शताक्ष, पंचाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर, यमजिह्व, शताक्ष, कण्ठन, कंठपूजन, द्विशिख, त्रिशिख, पंचशिख, मुण्ड, अर्धमुण्ड, दीर्घ, पिशाचास्य, पिनाकधृक, पिप्पलायतन, अंगारकाशन, शिथिल, शिथिलास्य, अक्षपाद, अज, कुज, अजव, क्षयवक्त्र, गजवक्त्र, उर्ध्ववक्त्र तथा अन्य। ये सब अपने गणों में सोम को घेरकर आगे चले। वहाँ हजारों के हजारों ब्रह्मचारी करोड़ों और करोड़ों गणों से घिरे हुये देवों के देव, महादेव शिव के चारों ओर युक्त हो त्रिपुर को दग्ध करने के लिये चले।।७६-८४।। तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस देवता चारों ओर से रथ के पीछे चले।।८५।। सब लोकों की माताएँ और गणों की माताएँ एवं भूतों की माताएँ शिव के पीछे-पीछे चलीं।।८६।। रथ के मध्य में बैठे हुये गणों के बीच विराजमान गणेश्वर उसी तरह लग रहे थे जैसे निर्मल आकाश के मध्य में तारागणों के मध्य चन्द्रमा।।८७।। जगत्माता हिमवान की पुत्री, देवी गौरी (उमा) शिव के बाईं ओर बैठी हुई थीं। वे शिव की प्रभा से शोभायमान हो रही थीं।।८८।। शिव के बायें भाग में, सब शुभ लक्षणों से युक्त, हाथ के अग्रभाग में चामर हाथ में लिये, सोने के कमल के समान प्रभा वाली शुभावती देवी विराजमान थीं।।८९।। देवों के देव महेश्वर

भातींद्रधनुषाकाशं मेरुणा च यथा जगत्। हिरण्यधनुषा सौम्यं वपुः शंभोः शशिद्युति॥९१॥
सितातपत्रं रत्नांशुमिश्रितं परमेष्ठिनः। यथोदये शशांकस्य भात्यखंडं हि मंडलम्॥९२॥
सदुकूला शिवे रक्ता लंबिता भाति मालिका। छत्रांता रत्नजाकाशात्पतंतीव सरिद्वरा॥९३॥

अथ महेंद्रविरिंचिविभावसुप्रभृतिभिर्नतपादसरोरुहः।
सह तदा च जगाम तयांबया सकललोकहिताय पुरत्रयम्॥९४॥
दग्धुं समर्थो मनसा क्षणेन चराचरं सर्वमिदं त्रिशूली।
किमत्र दग्धुं त्रिपुरं पिनाकी स्वयं गतश्चात्र गणैश्च सार्धम्॥९५॥
रथेन किं चेषुवरेण तस्य गणैश्च किं देवगणैश्च शंभोः।
पुरत्रयं दग्धुमलुप्तशक्तेः किमेतदित्याहुरजेंद्रमुख्याः॥९६॥
मन्वाम नूनं भगवान्पिनाकी लीलार्थमेतत्सकलं प्रवर्तुम्।
व्यवस्थितश्चेति तथान्यथा चेदाडंबरेणास्य फलं किमन्यत्॥९७॥
पुरत्रयस्यास्य समीपवर्ती सुरेश्वरैर्नन्दिमुखैश्च नंदी।
गणैर्गणेशस्तु रराज देव्या जगद्रथो मेरुरिवाष्टश्रृंगैः॥९८॥
अथ निरीक्ष्य सुरेश्वरमीश्वरं सगणमद्रिसुतासहितं तदा।
त्रिपुररंगतलोपरि संस्थितः सुरगणोनुजगाम स्वयं तथा॥९९॥

शिव का भस्म से पुता हुआ, शुद्ध श्वेत वर्ण का शरीर चमक रहा था। उमा के संग में भस्म से चमकता देवपति परमेष्ठी शिव का शरीर ऐसा चमक रहा था जैसे आकाश में विद्युत के साथ सफेद बादल हों।।९०।। सुनहरे इन्द्र धनुष से युक्त चन्द्रमा की द्युति (आभा) के समान शिव का भव्य शरीर इन्द्रधनुष से युक्त आकाश या मेरु से युक्त जगत् के समान लग रहा था।।९१।। शिव का श्वेत छत्र रत्नों की किरणों से युक्त उदयकाल के पूर्ण चन्द्रमा के मंडप के समान प्रकाशमान था।।९२।। शिव जी के रेशमी चादर सहित गले में लटकती रत्नों से युक्त मोतियों की माला उनके छत्र के पास आकाश से नीचे की ओर गिरती हुई गंगाजी के समान शोभायमान थीं।।९३।। उसके बाद जिसके कमल समान चरण इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि और अन्य द्वारा पूजित हैं, वे शिव अम्बा के साथ लोक कल्याण के लिये त्रिपुर को गये।।९४।। जो त्रिशूलधारी शिव इस चराचर जगत् को मन से क्षणभर में जलाने से समर्थ हैं तो वे स्वयं गणों के सहित त्रिपुर को जलाने के लिये क्यों गये।।९५।। देवों, ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र ने कहा। शिव को रथ से क्या? उत्तम बाण से उनको क्या? देवों के समूहों से उनको क्या करना है। सर्वशक्तिसम्पन्न शिव त्रिपुर दग्ध करने को समर्थ हैं। तो यह सब (ताम-झाम) क्यों है।।९६।। हम सोचते हैं कि यह सब करना पिनाकधारी शिव की लीला है। तीनों पुरों के समीपवर्ती, सुरेश्वरों, प्रमुख गणों के मध्य प्रसन्न, गणों के स्वामी, जगत् रथ, नन्दी जी उमा के साथ आठ चोटियों के सहित मेरु के समान शोभायमान थे।।९७-९८।। त्रिपुर के क्षेत्र में गणों और उमा सहित बैठे हुये देवेश शिव को देखकर देवों के समूह ने उनका अनुगमन

जगत्त्रयं सर्वमिवापरं तत् पुरत्रयं तत्र विभाति सम्यक्।
नरेश्वरैश्चैव गणैश्च देवैः सुरेतरैश्च त्रिविधैर्मुनीन्द्राः॥१००॥
अथ सज्यं धनुः कृत्वा शर्वः संधाय तं शरम्। युक्त्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिपुरं समचिंतयत्॥१०१॥
तस्मिंस्थिते महादेवे रुद्रे विततकार्मुके। पुराणि तेन कालेन जग्मुरेकत्वमाशु वै॥१०२॥
एकीभावं गते चैव त्रिपुरे समुपागते। बभूव तुमुलो हर्षो देवतानां महात्मनाम्॥१०३॥
ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः। जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवंतोष्टमूर्तिनम्॥१०४॥
अथाह भगवान्ब्रह्मा भगनेत्रनिपातनम्। पुष्ययोगेपि संप्राप्ते लीलावशमुमापतिम्॥१०५॥
स्थाने तव महादेव चेष्टेयं परमेश्वर। पूर्वदेवाश्च देवाश्च समास्तव यतः प्रभो॥१०६॥
तथापि देवा धर्मिष्ठाः पूर्वदेवाश्च पापिनः।
यतस्तस्माज्जगन्नाथ लीलां त्यक्तुमिहार्हसि॥१०७॥
किं रथेन ध्वजेनेश तव दग्धुं पुरत्रयम्। इषुणा भूतसंघैश्च विष्णुना च मया प्रभो॥१०८॥
पुष्ययोगे त्वनुप्राप्ते पुरं दग्धुमिहार्हसि। यावन्न यांति देवेश वियोगं तावदेव तु॥१०९॥
दग्धुमर्हसि शीघ्रं त्वं त्रीण्येतानि पुराणि वै। अथ देवो महादेवः सर्वज्ञस्तदवैक्षत॥११०॥
पुरत्रयं विरूपाक्षस्तत्क्षणाद्भस्म वै कृतम्।
सोमश्च भगवान्विष्णुः कालाग्निर्वायुरेव च॥१११॥
शरे व्यवस्थिताः सर्वे देवमूचुः प्रणम्य तम्। दग्धमप्यथ देवेश वीक्षणेन पुरत्रयम्॥११२॥

किया।।९९।। हे ऋषीश्वरों! तब तीनों पुर तीनों लोको के समान दिखाई दिया क्योंकि वह उत्तम मनुष्यों, गणों, देवों और तीन प्रकार के असुरों द्वारा अधिकृत थे। ये सब वहाँ विद्यमान थे।।१००।। तब शिवजी ने धनुष की डोरी को बाँधा। धनुष की डोरी पर बाण रखकर उसको तानकर पाशुपत अस्त्र से युक्त किया और उसको त्रिपुर की ओर करने को सोचा।।१०१।। जब अच्छी तरह खिंचे धनुष के साथ शिवजी खड़े हुये उसी समय तीनों पुर एक जुट हो गये। (आपस में जुड़ गये)।।१०२।। जब तीनों पुर परस्पर जुड़ गये (एकीभाव हो गये) तो महान् आत्मा देवताओं में दोनों ओर से महान् हर्ष हुआ।।१०३।। तब सब देवगणों, सिद्धों और महर्षियों ने 'विजय हो' ऐसा नारा लगाया और अष्टमूर्ति शिव की स्तुति की।।१०४।। इसके बाद शुभ पुष्य योग प्राप्त होने पर भगवान ब्रह्मा, भग के नेत्र को लीलावश विनाश करने वाले उमापति शिव से बोले।।१०५।। "हे परमेश्वर! महेश्वर! आप के सामने देव और असुर समान है।।१०६।। तथापि देवता लोग धर्मिष्ठ हैं और असुर लोग पापी हैं। अतः हे जगन्नाथ! आप अपनी लीला को त्याग करें।।१०७।। हे ईश! हे प्रभो! रथ, ध्वज और बाण से, ब्रह्मा से या मुझसे या भूतों से, त्रिपुर को जलाने में क्या प्रयोजन है? पुष्य योग प्राप्त है। आप जब तक कि तीनों पुर अलग-अलग न हो जायँ तभी तक तीनों को दग्ध कर सकेंगे" तब विरुपाक्ष सर्वज्ञ महादेवजी ने त्रिपुर को भस्म कर दिया। बाण में स्थित सोम, विष्णु, कालाग्नि और वायु इन सब देवताओं ने शिव जो प्रणाम करके कहा। हे देवेश! आप के देखने से ही त्रिपुर दग्ध हो गया। जल कर राख हो गया। फिर भी जगत् के हित के

अस्मद्धितार्थं देवेश शरं मोक्तुमिहार्हसि। अथ संमृज्य धनुषो ज्यां हसन् त्रिपुरार्दनः॥११३॥
मुमोच बाणं विप्रेंद्रा व्याकृष्याकर्णमीश्वरः। तत्क्षणात्त्रिपुरं दग्ध्वा त्रिपुरांतकरः शरः॥११४॥
देवदेवं समासाद्य नमस्कृत्वा व्यवस्थितः। रेजे पुरत्रयं दग्धं दैत्यकोटिशतैर्वृतम्॥११५॥
इषुणा तेन कल्पांते रुद्रेणेव जगत्त्रयम्। ये पूजयंति तत्रापि दैत्या रुद्रं सबांधवाः॥११६॥
गाणपत्यं तदा शंभोर्ययुः पूजाविधेर्बलात्। न किंचिदब्रुवन्देवाः सेंद्रोपेंद्रा गणेश्वराः॥११७॥
भयाद्देवं निरीक्ष्यैव देवीं हिमवतः सुताम्। दृष्ट्वा भीतं तदानीकं देवानां देवपुंगवः॥११८॥
किं चेत्याह तदा देवान्प्रणेमुस्तं समंततः॥११९॥
ववंदिरे नंदिनमिंदुभूषणं ववंदिरे पर्वतराजसंभवाम्।
ववंदिरे चाद्रिसुतासुतं प्रभुं ववंदिरे देवगणा महेश्वरम्॥१२०॥
तुष्टाव हृदये ब्रह्मा देवैः सह समाहितः। विष्णुना च भवं देवं त्रिपुरारातिमीश्वरम्॥१२१॥

श्रीपितामह उवाच

प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर। प्रसीद जगतां नाथ प्रसीदानंददाव्यय॥१२२॥
पंचास्य रुद्ररुद्राय पंचाशत्कोटिमूर्तये। आत्मत्रयोपविष्टाय विद्यातत्त्वाय ते नमः॥१२३॥
शिवाय शिवतत्त्वाय अघोराय नमोनमः। अघोराष्टतत्त्वाय द्वादशात्मस्वरूपिणे॥१२४॥

लिये आप को बाण मार देना (छोड़ देना) चाहिये। उसके बाद हे अग्रणी ब्राह्मणों! ईश्वर त्रिपुरारि शिव ने धनुष को तैयार करके उसकी डोर को कान तक खींचकर बाण को उस पर रखकर हँसते हुये बाण मार दिया।।१०८-११३।। एक क्षण में त्रिपुर को जला देने के बाद जिस बाण ने त्रिपुर को भस्म किया था वह वापस लौटकर आया। उसने शिव को प्रणाम किया और शिव के बगल में खड़ा हो गया। सैकड़ों करोड़ों मृत दैत्यों से पटा हुआ वह त्रिपुर कल्प के अन्त में रुद्र के बाण से भस्म तीनों लोकों के समान हो गया। वहाँ त्रिपुर में भी जो दैत्य शिव पूजा करते रहे उन्होंने अपने कुटुम्बों सहित शिव जी की पूजा के बल से शिव के गाणपत्य पद को प्राप्त किया। इन्द्र सहित सब देवता, विष्णु और गणेश्वरों ने शिव और हिमवान की पुत्री पार्वती की ओर देखा किन्तु भयवश कुछ नहीं बोले। देवों की सेना को भयभीत देखकर देवों में वरिष्ठ शिव ने पूछा। "अब आगे क्या करना है।" इस पर देवगण चारों ओर से केवल प्रणाम करते रहे। उन्होंने चन्द्रमा से भूषित नन्दी को प्रणाम किया। उन्होंने हिमालय की पुत्री पार्वती को प्रणाम किया। उन्होंने हिमवान की पुत्री के पुत्र गणेश जी को प्रणाम किया और महेश्वर शिव जी को प्रणाम किया। देवताओं और ब्रह्मा के साथ त्रिपुरारि शिव जी की स्तुति की।।११४-१२१।।

ब्रह्मा बोले

हे देवेश! प्रसन्न हो जायँ। हे परमेश्वर! प्रसन्न हों। हे विश्वेश! प्रसन्न हों, हे आनन्ददाता और अव्यय प्रसन्न हो जायँ।।१२२।। शिव को, शिव के तत्त्व को नमस्कार, अघोर को नमस्कार, करोड़ रूप (मूर्त्ति) वाले को नमस्कार। अष्टमूर्ति के तत्त्व को नमस्कार। पंचमुखी रुद्र को नमस्कार। पचास करोड़ भौतिक रूपधारी को नमस्कार। आत्मत्रय में स्थित को, विद्या के तत्त्व को नमस्कार।।१२३।। शिव को नमस्कार, शिव तत्त्व को नमस्कार। आत्मत्रय में स्थित को, विद्या के तत्त्व को नमस्कार।।१२३।।

विद्युत्कोटिप्रतीकाशमष्टकाशं सुशोभनम्।
रूपमास्थाय लोकेस्मिन् संस्थिताय शिवात्मने॥१२५॥
अग्निवर्णाय रौद्राय अंबिकार्धशरीरिणे। धवलश्यामरक्तानां मुक्तिदायामराय च॥१२६॥
ज्येष्ठाय रुद्ररूपाय सोमाय वरदाय च। त्रिलोकाय त्रिदेवाय वषट्काराय वै नमः॥१२७॥
मध्ये गगनरूपाय गगनस्थाय ते नमः। अष्टक्षेत्राष्टरूपाय अष्टतत्त्वाय ते नमः॥१२८॥
चतुर्धा च चतुर्धा च चतुर्धा संस्थिताय च। पंचधा पंचधा चैव पंचमंत्रशरीरिणे॥१२९॥
चतुःषष्टिप्रकाराय अकाराय नमोनमः। द्वात्रिंशत्तत्त्वरूपाय उकाराय नमोनमः॥१३०॥
षोडशात्मस्वरूपाय मकाराय नमोनमः। अष्टधात्मस्वरूपाय अर्धमात्रात्मने नमः॥१३१॥
ओंकाराय नमस्तुभ्यं चतुर्धा संस्थिताय च। गगनेशाय देवाय स्वर्गेशाय नमोनमः॥१३२॥
सप्तलोकाय पातालनरकेशाय वै नमः। अष्टक्षेत्राष्टरूपाय परात्परतराय च॥१३३॥
सहस्त्रशिरसे तुभ्यं सहस्त्राय च ते नमः। सहस्त्रपादयुक्ताय शर्वाय परमेष्ठिने॥१३४॥
नवात्मतत्त्वरूपाय नवाष्टात्मात्मशक्तये। पुनरष्टप्रकाशाय तथाष्टाष्टकमूर्तये॥१३५॥
चतुःषष्ट्यात्मतत्त्वाय पुनरष्टविधाय ते। गुणाष्टकवृतायैव गुणिने निर्गुणाय ते॥१३६॥
मूलस्थाय नमस्तुभ्यं शाश्वतस्थानवासिने। नाभिमंडलसंस्थाय हृदि निस्स्वनकारिणे॥१३७॥

नमस्कार, अघोर को नमस्कार, अष्टमूर्त्ति के तत्त्व अघोर को तथा अन्य को नमस्कार। बारह आत्माओं के रूप वाले को नमस्कार।।१२४।। इस लोक में करोड़ों विद्युत के प्रतीक के समान शोभन रूप धारण करके आठों दिशाओं के ऊपर संस्थित शिव की आत्मा को नमस्कार।।१२५।। अग्नि के वर्ण (रंग) के रूप में भयानक रुद्र को नमस्कार। अंबिका सहित अर्ध शरीर (अर्ध नारीश्वर) को नमस्कार, अपर को नमस्कार, श्वेत, कृष्ण और रक्त वर्ण वालों के मुक्ति दाता को नमस्कार।।१२६।। ज्येष्ठ को, रुद्र रूप को, सोम उमा सहित देव को, वरदायक को नमस्कार। तीनों लोकों के देव को, त्रिदेव को, वषट्कार को नमस्कार।।१२७।। मध्य में गगन (आकाश) रूप वाले को नमस्कार। आकाश में स्थित आपको नमस्कार। अष्टक्षेत्र, अष्टमूर्त को नमस्कार। आठ तत्त्व से युक्त तुमको नमस्कार।।१२८।। चार प्रकार के अलग-अलग तीन रूप में स्थित और पाँच के दो अलग-अलग सेट में स्थित को नमस्कार। पाँच मंत्रों के शरीरधारी को नमस्कार। चौसठ प्रकार के आकार "अ" को नमस्कार। बत्तीसं तत्त्व के रूप वाले उकार "उ" को नमस्कार। सात लोकों के रूप में विद्यमान "म" को नमस्कार। पाताल और नरक के स्वामी को नमस्कार। आठ रूपों वाले देव को नमस्कार। पर से परतर को नमस्कार।।१२९-१३३।। हजार सिर वाले को नमस्कार। हजारों रूपों में स्थित तुमको नमस्कार। हजार पैर वाले शर्व को नमस्कार, परमेष्ठी को नमस्कार।।१३४।। आत्मा के नौ तत्त्वों के रूप वाले को नमस्कार। आठ अलग-अलग रूपों में स्थित को नमस्कार। आठ गुणों द्वारा प्रकाशमान को नमस्कार। नौ गुणा आठ वाले (७२ रूप वाले) को नमस्कार। आठ बार आठ भौतिक शरीर वाले को नमस्कार।।१३५।। आत्मा के चौसठ तत्त्वों वाले को नमस्कार। एक होकर भी आठ में अलग-अलग रूप में स्थित वाले को नमस्कार। आठ गुणों से युक्त वाले को नमस्कार। सगुण और निर्गुण दोनों रूप में विद्यमान तुमको नमस्कार।।१३६।। मूल में स्थित तुमको

कंधरे च स्थितायैव तालुरंध्रस्थिताय च।
भ्रूमध्ये संस्थितायैव नादमध्ये स्थिताय च॥१३८॥
चंद्रबिंबस्थितायैव शिवाय शिवरूपिणे। वह्निसोमार्करूपाय षट्त्रिंशच्छक्तिरूपिणे॥१३९॥
त्रिधा संवृत्य लोकान्वै प्रसुप्तभुजगात्मने। त्रिप्रकारं स्थितायैव त्रेताग्निमयरूपिणे॥१४०॥
सदाशिवाय शांताय महेशाय पिनाकिने। सर्वज्ञाय शरण्याय सद्योजाताय वै नमः॥१४१॥
अघोराय नमस्तुभ्यं वामदेवाय ते नमः। तत्पुरुषाय नमोस्तु ईशानाय नमोनमः॥१४२॥
नमस्त्रिंशत्प्रकाशाय शांतातीताय वै नमः। अनंतेशाय सूक्ष्माय उत्तमाय नमोस्तु ते॥१४३॥
एकाक्षाय नमस्तुभ्यमेकरुद्राय ते नमः। नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं श्रीकंठाय शिखंडिने॥१४४॥
अनंतासनसंस्थाय अनंतायांतकारिणे। विमलाय विशालाय विमलांगाय ते नमः॥१४५॥
विमलासनसंस्थाय विमलार्थार्थरूपिणे। योगपीठांतरस्थाय योगिने योगदायिने॥१४६॥
योगिनां हृदि संस्थाय सदा नीवारशूकवत्। प्रत्याहाराय ते नित्यं प्रत्याहाररताय ते॥१४७॥
प्रत्याहाररतानां च प्रतिस्थानस्थिताय च। धारणायै नमस्तुभ्यं धारणाभिरताय ते॥१४८॥
धारणाभ्यासयुक्तानां पुरस्तात्संस्थिताय च।
ध्यानाय ध्यानरूपाय ध्यानगम्याय ते नमः॥१४९॥

नमस्कार। अन्तःकरण के निवासी को नमस्कार। नाभि मण्डल में स्थित को नमस्कार। हृदय में ध्वनि के कारण वाले को नमस्कार।।१३७।। गले में स्थित को नमस्कार। तालु के छिद्र में स्थित को नमस्कार। भौंहों के बीच में स्थित को नमस्कार। ध्वनियों के मध्य में स्थित को नमस्कार।।१३८।। चन्द्रमा के बिंब में स्थित वाले को नमस्कार। कल्याणकारी रूपों में स्थित को नमस्कार। अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य के रूपों और छत्तीस शक्तियों के रूप वाले को नमस्कार।।१३९।। लोकों को तीन बार से लपेटकर सोये सर्प की आत्मा वाले को नमस्कार। तीन अलग-अलग रूपों में स्थित को नमस्कार। तीन पर्त के रूपों में यज्ञ की अग्नियों वाले को नमस्कार।।१४०।। सदाशिव को नमस्कार। पिनाकधारी शान्त महेश को नमस्कार। सर्वज्ञ को, शरण देने के योग्य वाले को, सद्योजात को नमस्कार।।१४१।। अघोर को, वामदेव को और ईशान को नमस्कार।।१४२।। तीस प्रकार के प्रकाश को नमस्कार। शाँत के बाहर वाले को नमस्कार। अनन्त, सूक्ष्म और उत्तम को नमस्कार।।१४३।। श्रीकंठ को नमस्कार, शिखंडी को नमस्कार।।१४४।। अनंत को नमस्कार। अनंत के आसन में विराजमान को नमस्कार, अन्त के कारण को नमस्कार। विमल को नमस्कार। विचार को नमस्कार। विमल अंग वाले को नमस्कार।।१४५।। विमल आसन में स्थित वाले को नमस्कार। शुद्ध उद्देश्य के लिए धन के रूप वाले को नमस्कार। योगपीठ में स्थित योगी को नमस्कार। योग के दाता को नमस्कार।।१४६।। योगियों के हृदय में नीवार के शूक की तरह स्थित को नमस्कार। प्रत्याहार तुमको नमस्कार। प्रत्याहार में रत तुमको नमस्कार।।१४७।। प्रत्याहार में रत लोगों के हृदय में स्थित तुमको नमस्कार। धारणा और ध्यान के रूप वाले को और ध्यान से गम्य तुमको नमस्कार। ध्यान के योग्य तुमको नमस्कार। ध्यान द्वारा गम्य को नमस्कार। ध्येय के ध्यान वाले को

ध्येयाय ध्येयगम्याय ध्येयध्यानाय ते नमः। ध्येयानामपि ध्येयाय नमो ध्येयतमाय ते॥१५०॥
समाधानाभिगम्याय समाधानाय ते नमः। समाधानरतानां तु निर्विकल्पार्थरूपिणे॥१५१॥

दग्ध्वोद्धृतं सर्वमिदं त्वयाद्य जगत्त्रयं रुद्र पुरत्रयं हि।
कस्तोतुमिच्छेत्कथमीदृशं त्वां स्तोष्येह तुष्टाय शिवाय तुभ्यम्॥१५२॥
भक्त्या च तुष्ट्याद्भुतदर्शनाच्च मर्त्या अमर्त्या अपि देवदेव।
एते गणाः सिद्धगणैः प्रणामं कुर्वंति देवेश गणेश तुभ्यम्॥१५३॥
निरीक्षणादेव विभोसि दग्धुं पुरत्रयं चैव जगत्त्रयं च।
लीलालसेनांबिकया क्षणेन दग्धं किलेषुश्च तदाथ मुक्तः॥१५४॥
कृतो रथश्चेषुवरश्च शुभ्रं शरासनं ते त्रिपुरक्षयाय।
अनेकयत्नैश्च मयाथ तुभ्यं फलं न दृष्टं सुरसिद्धसंघैः॥१५५॥
रथो रथी देववरो हरिश्च रुद्रः स्वयं शक्रपितामहौ च।
त्वमेव सर्वे भगवन् कथं तु स्तोष्ये ह्यतोष्यं प्रणिपत्य मूर्ध्ना॥१५६॥
अनंतपादस्त्वमनंतबाहुरनंतमूर्धांतकरः शिवश्च।
अनंतमूर्तिः कथमीदृशं त्वां तोष्ये ह्यतोष्यं कथमीदृशं त्वाम्॥१५७॥
नमोनमः सर्वविदे शिवाय रुद्राय शर्वाय भवाय तुभ्यम्।
स्थूलाय सूक्ष्माय सुसूक्ष्मसूक्ष्मसूक्ष्माय सूक्ष्मार्थविदे विधात्रे॥१५८॥

नमस्कार। ध्यान के योग्य व्यक्तियों द्वारा भी जो ध्यान के योग्य है उसको नमस्कार।।१४८-१४९।। दूसरों द्वारा ध्यान के योग्य जो हैं उनमें सबसे योग्य (ध्येयतम) तुमको नमस्कार।।१५०।। समाधान द्वारा पहुँच के योग्य को नमस्कार। जो स्वयं समाधान है उसको नमस्कार। ध्यान में रत व्यक्तियों के निर्विकल्प रूप में स्थित तुमको नमस्कार।।१५१।। आज त्रिपुरों को तुम्हारे द्वारा जला दिये जाने से तीनों लोक प्रसन्न हैं। इस प्रकार असामान्य सामर्थ्य कौन कर सकता है। तुम्हारी स्तुति करने का साहस नहीं है फिर भी, हे शिव! तुमको संतुष्ट करने के लिये मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ।।१५२।। हे देवों के देव! उनकी भक्ति, तुष्टि और अद्भुत दर्शन को धन्यवाद जिसके फलस्वरूप ये मानव, अमर, गण और सिद्ध तुमको नमस्कार करते हैं। हे गणों के स्वामी! आपको नमस्कार।।१५३।। हे प्रभो! आप अपनी एक दृष्टि से तीनों पुरों नहीं तीनों लोकों को जलाने (भस्म कर देने) के लिये समर्थ हैं। आप ने अम्बा के साथ अपनी लीला से खेलवाड़ करके क्षणभर में त्रिपुर को जला दिया और तब बाण छोड़ा (बाण चलाया)।।१५४-१५५।। हे प्रभु! आप रथ, सारथी, विष्णु और स्वामी, रुद्र शक्ति और पितामह आप ही सब-कुछ हैं। कैसे मैं आप की समुचित विधि से स्तुति करूँ। आप अतोष्य हैं। (स्तुति करने के योग्य स्तर से बहुत ऊपर हैं)। मैं सिर झुकाकर (नतमस्तक) होकर आप को प्रणाम करता हूँ।।१५६।। हे शिव! तुम अनन्त बाहु हो, तुम्हारे असंख्य चरण हैं, आपके असंख्य शिर हैं, आप को नमस्कार। आप अन्त करने वाले हैं। साथ ही आप कल्याणकारी हैं, इस प्रकार की प्रकृति वाले आपकी मैं क्या स्तुति करूँ। जो इस स्वभाव का है उसको मैं कैसे प्रसन्न करूँ?।।१५७।। सब-कुछ जानने वाले आप को नमस्कार। रुद्र शर्व और भव आप को नमस्कार। स्थूल को, सूक्ष्म को, सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतर को नमस्कार। सूक्ष्म के अर्थ को जानने वाले

स्त्रष्ट्रे नमः सर्वसुरासुराणां भर्त्रे च हर्त्रे जगतां विधात्रे।
नेत्रे सुराणामसुरेश्वराणां दात्रे प्रशास्त्रे मम सर्वशास्त्रे॥१५९॥
वेदांतवेद्याय सुनिर्मलाय वेदार्थविद्भिः सततं स्तुताय।
वेदात्मरूपाय भवाय तुभ्यमंताय मध्याय सुमध्यमाय॥१६०॥
आद्यन्तशून्याय च संस्थिताय तथा त्वशून्याय च लिंगिने च।
अलिंगिने लिंगमयाय तुभ्यं लिंगाय वेदादिमयाय साक्षात्॥१६१॥
रुद्राय मूर्धाननिकृंतनाय ममादि देवस्य च यज्ञमूर्तेः।
विध्वांतभंगं मम कर्तुमीश दृष्ट्वैव भूमौ करजाग्रकोट्या॥१६२॥
अहो विचित्रं तव देवदेव विचेष्टितं सर्वसुरासुरेश।
देहीव देवैः सह देवकार्यं करिष्यसे निर्गुणरूपतत्त्व॥१६३॥
एकं स्थूलं सूक्ष्ममेकं सुसूक्ष्मं मूर्तामूर्तं मूर्तमेकं ह्यमूर्तम्।
एकं दृष्टं वाङ्मयं चैकमीशं ध्येयं चैकं तत्त्वमत्राद्भुतं ते॥१६४॥
स्वप्ने दृष्टं यत्पदार्थं ह्यलक्ष्यं दृष्टं नूनं भाति मन्ये न चापि।
मूर्तिर्नो वै देवमीशान देवैर्लक्ष्या यत्नैरप्यलक्ष्यं कथं तु॥१६५॥
दिव्यः क्व देवेश भवत्प्रभावो वयं क्व भक्तिः क्व च ते स्तुतिश्च।
तथापि भक्त्या विलपंतमीश पितामहं मां भगवन्क्षमस्व॥१६६॥

को, स्त्रष्टा को नमस्कार।।१५८।। देवों और असुरों के रचने वाले, पालन करने वाले और विनाश करने वाले को नमस्कार। लोकों के सिरजनहार को नमस्कार, देवों और असुरों के स्वामी को नमस्कार, दाता को, शासक को, सब शास्त्र को नमस्कार।।१५९।। वेदान्त द्वारा जानने योग्य को नमस्कार। निर्मल को, वेदों के अर्थों के ज्ञाताओं द्वारा निरन्तर स्तुत को नमस्कार। वेदों की आत्मा के रूप में भव को नमस्कार। अन्त वाले को, मध्य वाले और ऊपर वाले को नमस्कार।।१६०।। आदि और अन्त में शून्यवाले को नमस्कार। अभिव्यक्तिता से रहित को नमस्कार। लिंग रूप वाले को नमस्कार। लिंग रहित होने पर लिंग युक्त को नमस्कार। वेदादिमय लिंग को नमस्कार।।१६१।। मेरे शिर को न काटने वाले को नमस्कार। आदि देव और यज्ञ मूर्ति को नमस्कार। हे देव! आपने अपने नाखूनों के अग्रभाग से मेरे अन्धकार को दूर करने के लिये जो मेरा शिर छेदन किया, वह मेरा पाप था जिसका मुझको दण्ड मिला।।१६२।। हे सब सुरों और असुरों के ईश! आप का क्रिया-कलाप विचित्र है। हे निर्गुण और रूपरहित तत्त्व! तुम देवों के साथ देहधारी के समान देवों के कार्य करोगे।।१६३।। आप के तत्त्वों में एक स्थूल है, एक सूक्ष्म है, एक मूर्त्त है, एक अमूर्त्त है, एक देखने योग्य (दृश्य) है और एक अदृश्य है। एक ध्येय (ध्यान करने योग्य) है। हे ईश! यह अद्भुत है।।१६४।। हे देव! स्वप्न में दिखाई दिया जो पदार्थ है वह अलक्ष्य है, सोचता हूँ कि जो निश्चित रूप से दिखाई देता है साथ ही नहीं भी दिखाई देता हैं आप का दिव्य रूप देवताओं द्वारा प्रयास करने पर अगम्य है। फिर भी यह लिंग रूप दृष्ट है। दृश्य है।।१६५।। हे देवेश! कहाँ आप की दिव्य शक्ति (प्रभा) और कहाँ हम? कहाँ भक्ति है? कहाँ स्तुति है? भक्ति से विलाप करते हुये मुझ ब्रह्मा को क्षमा करो।।१६६।।

सूत उवाच

य इमं शृणुयाद्द्विजोत्तमा भुवि देवं प्रणिपत्य वा पठेत्।
स च मुंचति पापबंधनं भवभक्त्या पुरशासितुः स्तवम्॥१६७॥
श्रुत्वा च भक्त्या चतुराननेन स्तुतो हसञ्शैलसुतां निरीक्ष्य।
स्तवं तदा प्राह महानुभावं महाभुजो मंदरशृंगवासी॥१६८॥

शिव उवाच

स्तवेनानेन तुष्टोस्मि तव भक्त्या च पद्मज। वरान् वरय भद्रं ते देवानां च यथेप्सितान्॥१६९॥

सूत उवाच

ततः प्रणम्य देवेशं भगवान्पद्मसंभवः। कृतांजलिपुटो भूत्वा प्राहेदं प्रीतमानसः॥१७०॥

श्रीपितामह उवाच

भगवन्देवदेवेश त्रिपुरांतक शंकर। त्वयि भक्तिं परां मेऽद्य प्रसीद परमेश्वर॥१७१॥
देवानां चै सर्वेषां त्वयि सर्वार्थदेश्वर। प्रसीद भक्तियोगेन सारथ्येन च सर्वदा॥१७२॥
जनार्दनोपि भगवान्नमस्कृत्य महेश्वरम्। कृतांजलिपुटो भूत्वा प्राह सांबं त्रियंबकम्॥१७३॥
वाहनत्वं तवेशान नित्यमीहे प्रसीद मे। त्वयि भक्तिं च देवेश देवदेव नमोस्तु ते॥१७४॥
सामर्थ्यं च सदा मह्यं भवंतं वोढुमीश्वरम्। सर्वज्ञत्वं च वरद सर्वगत्वं च शंकर॥१७५॥

सूत बोले

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! पृथ्वी पर जो कोई पुरों के शास्ता शिव की इस स्तुति को पढ़ता है या सुनता है वह पापों के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।।१६७।। मंदर पर्वत के शिखर पर निवास करने वाले महान् भुजा वाले शिव ने चतुरानन ब्रह्मा द्वारा भक्ति से की गई इस स्तुति को सुनकर पार्वती को देखकर हँसते हुये स्वयं ब्रह्मा से कहा।।१६८।।

शिव बोले

हे ब्रह्मा! भक्तिपूर्वक की गई तुम्हारी स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। देवों की इच्छाओं के अनुसार वरों को माँगो।।१६९।।

सूत बोले

उसके बाद पद्मयोनि ब्रह्मा ने शिव जी को प्रणाम करके प्रसन्न मन से हाथ जोड़कर यह कहा।।१७०।।

ब्रह्मा बोले

"हे भगवान शंकर! हे देव देवेश! हे त्रिपुर के विनाशक। हे परमेश्वर! मुझ पर आप प्रसन्न होओ। आप में परम भक्ति हो यह वर मुझको दीजिये।।१७१।। हे प्रभो! देवों की आप में भक्ति हो और सारथी रूप से सदा पुझ पर प्रसन्न रहें"।।१७२।। विष्णु ने भी शिव जी को अँजलि बाँधकर अम्बा सहित शिव को प्रणाम करके कहा।।१७३।। "हे प्रभु! मुझ पर प्रसन्न हों। हे देवेश! आप को नमस्कार। मैं सदा आप का वाहन होने की इच्छा करता हूँ। आप में मेरी भक्ति हो और आप को ढोने का सामर्थ्य सदा मुझमें हो। मैं सर्वज्ञ होऊँ और जहाँ चाहूँ सब जगह जा सकूँ"।।१७४-१७५।।

सूत उवाच

तयोः श्रुत्वा महादेवो विज्ञप्तिं परमेश्वरः। सारथ्ये वाहनत्वे च कल्पयामास वै भवः॥१७६॥

दत्त्वा तस्मै ब्रह्मणे विष्णवे च दग्ध्वा दैत्यान्देवदेवो महात्मा।
सार्धं देव्या नंदिना भूतसंघैरंतर्धानं कारयामास शर्वः॥१७७॥

ततस्तदा महेश्वरे गते रणाद्गणैः सह। सुरेश्वराः सुविस्मिता भवं प्रणम्य पार्वतीम्॥१७८॥

ययुश्च दुःखवर्जिताः स्ववाहनैर्दिवं ततः। सुरेश्वरा मुनीश्वरा गणेश्वराश्च भास्कराः॥१७९॥

त्रिपुरारेरिमं पुण्यं निर्मितं ब्रह्मणा पुरा।
यः पठेच्छ्राद्धकाले वा दैवे कर्मणि च द्विजाः॥१८०॥
श्रावयेद्वा द्विजान् भक्त्या ब्रह्मलोकं स गच्छति।
मानसैर्वाचिकैः पापैस्तथा वै कायिकैः पुनः॥१८१॥

स्थूलैः सूक्ष्मैः सूसूक्ष्मैश्च महापातकसंभवैः। पातकैश्च द्विजश्रेष्ठा उपपातकसंभवैः॥१८२॥

पापैश्च मुच्यते जंतुः श्रुत्वाऽध्यायमिमं शुभम्। शत्रवो नाशमायांति संग्रामे विजयी भवेत्॥१८३॥

सर्वरोगैर्न बाध्येत आपदो न स्पृशंति तम्। धनमायुर्यशो विद्यां प्रभावमतुलं लभेत्॥१८४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे त्रिपुरदाहे ब्रह्मस्तवो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥७२॥

सूत बोले

उन दोनों ब्रह्मा और विष्णु की इच्छाओं और निवेदन को सुनकर शिव ने अपना वाहन होने और सारथि होने का वर दिया।।१७६।। त्रिपुर दैत्यों को जला देने और ब्रह्मा विष्णु को वर देने के बाद देवताओं के स्वामी महात्मा शिव देवी पार्वती भूतों और नंदी सहित अन्तर्धान हो गये।।१७७।। अपने गणों के साथ शिव के रणक्षेत्र से चले जाने के बाद सुरेश्वर विस्मित हुए। वे शिव और पार्वती को प्रणाम करके दुःख रहित हो अपने-अपने वाहनों से स्वर्ग को चले गये। देवताओं के स्वामी, ऋषीश्वर, गणों के स्वामी और भास्कर गण भी स्वर्ग को चले गये।।१७८-१७९।। हे ब्राह्मणों! त्रिपुरों के विनाशक शिव का यह पुण्यदायक ब्रह्मा द्वारा बनाया गया स्तोत्र जो कोई भक्तिपूर्वक श्राद्ध के समय पढ़ता है अथवा देवताओं के कार्य में ब्राह्मणों को सुनाता है। वह ब्रह्म लोक को जाता है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! व्यक्तिगत आत्मा सब प्रकार के शारीरिक और वाचिक पापों से मुक्त हो जाता है। वह स्थूल, सूक्ष्म और उससे भी सूक्ष्म महा पापों और उपपापों से मुक्त हो जाता है। प्राणी इस शुभ अध्याय को सुनकर पापों से छूट जाता है। उसके शत्रु का नाश होता है और वह संग्राम में विजयी होता है। सब रोगों से उसको बाधा नहीं पहुँचती है। विपत्तियाँ उसको नहीं छूती हैं। उसको, धन, आयु, यश, विद्या और अतुल प्रभाव प्राप्त होता है।।१८०-१८४।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में त्रिपुर दाह पर ब्रह्मस्तव नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७२॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मोक्तलिङ्गार्चनविधिः

सूत उवाच

गते महेश्वरे देवे दग्ध्वा च त्रिपुरं क्षणात्। सदस्याह सुरेंद्राणां भगवान्पद्मसंभवः॥१॥

पितामह उवाच

संत्यज्य देवदेवेशं लिंगमूर्तिं महेश्वरम्। तारपौत्रो महातेजास्तारकस्य सुतो बली॥२॥
तारकाक्षोपि दितिजः कमलाक्षश्च वीर्यवान्। विद्युन्माली च दैत्येशः अन्ये चापि सबांधवाः॥३॥
त्यक्त्वा देवं महादेवं मायया च हरेः प्रभोः। सर्वे विनष्टाः प्रध्वस्ताः स्वपुरैः पुरसंभवैः॥४॥
तस्मात्सदा पूजनीयो लिंगमूर्तिः सदाशिवः। यावत्पूजा सुरेशानां तावदेव स्थितिर्यतः॥५॥
पूजनीयः शिवो नित्यं श्रद्धया देवपुंगवैः। सर्वलिंगमयो लोकः सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम्॥६॥
तस्मात्संपूजयेल्लिगं य इच्छेत्सिद्धिमात्मनः। सर्वे लिंगार्चनादेव देवा दैत्याश्च दानवाः॥७॥
यक्षा विद्याधराः सिद्धा राक्षसाः पिशिताशनाः। पितरो मुनयश्चापि पिशाचाः किन्नरादयः॥८॥
अर्चयित्वा लिंगमूर्तिं संसिद्धा नात्र संशयः। तस्माल्लिंगं यजेन्नित्यं येन केनापि वा सुराः॥९॥
पशवश्च वयं तस्य देवदेवस्य धीमतः। पशुत्वं च परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं ततः॥१०॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्मोक्त लिंगार्चन विधि

सूत बोले

जब भगवान महेश्वर त्रिपुर को जलाकर चले गये तब देव सभा में कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने कहा।।१।।

ब्रह्मा बोले

भगवान विष्णु की माया के कारण महादेव की उपेक्षा करने से अपने पुरों और नागरिकों सहित नष्ट हो गये। वे महातेजस्वी तार के पौत्र और बली तारक असुर के पुत्र थे। शक्तिमान राक्षस तारकाक्ष, कमलाक्ष दैत्यराज विद्युन्माली, दानवों के स्वामी और अन्य भी अपने बन्धु-बान्धवों सहित मारे गये। उन्होंने महादेव की पूजा छोड़ दी। अतः नाश को प्राप्त हुये। इसलिए लिंग के रूप में सदाशिव की सदा पूजा की जानी चाहिये। देवों की स्थिति तभी तक है जब तक कि शिव जी की पूजा देवताओं द्वारा श्रद्धापूर्वक होती रहे। यह लोक (विश्व) लिंगमय है और सब लिंग में स्थित है।।२-६।। अतः वह जो कि आत्मा की सुरक्षा चाहता है, उसको लिंग की पूजा करनी चाहिये। केवल लिंग की पूजा के द्वारा देवों, दैत्यों, दानवों, यक्षों, विद्याधरों, सिद्धों, पिशितासनों, पितरों, मुनियों, पिशाचों और किन्नरों तथा अन्यों ने सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। इसमें सन्देह नहीं।।७-९।।

पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिः सनातनः। विशोध्य चैव भूतानि पंचभिः प्रणवैः समम्॥११॥
प्राणायामैः समायुक्तैः पंचभिः सुरपुंगवाः। चतुर्भिः प्रणवैश्चैव प्राणायामपरायणैः॥१२॥
त्रिभिश्च प्रणवैर्देवाः प्राणायामैस्तथाविधैः। द्विधा न्यस्य तथोंकारं प्राणायामपरायणः॥१३॥
ततश्चोंकारमुच्चार्य प्राणापानौ नियम्य च। ज्ञानामृतेन सर्वांगान्यापूर्य प्रणवेन च॥१४॥
गुणत्रयं चतुर्धाख्यमहंकारं च सुव्रताः। तन्मात्राणि च भूतानि तथा बुद्धींद्रियाणि च॥१५॥

कर्मेंद्रियाणि संशोध्य पुरुषं युगलं तथा।
चिदात्मानं तनुं कृत्वा चाग्निर्भस्मेति संस्पृशेत्॥१६॥

वायुर्भस्मेति च व्योम तथांभो पृथिवी तथा। त्रियायुषं त्रिसंध्यं च धूलयेद्भसितेन यः॥१७॥
स योगी सर्वतत्त्वज्ञो व्रतं पाशुपतं त्विदम्। भवेन पाशमोक्षार्थं कथितं देवसत्तमाः॥१८॥
एवं पाशुपतं कृत्वा संपूज्य परमेश्वरम्। लिंगे पुरा मया दृष्टे विष्णुना च महात्मना॥१९॥
पशवो नैव जायंते वर्षमात्रेण देवताः। अस्माभिः सर्वकार्याणां देवमभ्यर्च्य यत्नतः॥२०॥
बाह्ये चाभ्यंतरे चैव मन्ये कर्तव्यमीश्वरम्। प्रतिज्ञा मम विष्णोश्च दिव्यैषा सुरसत्तमाः॥२१॥
मुनीनां च न संदेहस्तस्मात्संपूजयेच्छिवम्। सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सा च मूकता॥२२॥
यत्क्षणं वा मुहूर्तं वा शिवमेकं न चिंतयेत्। भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः॥२३॥

पाशुपत व्रत

हम लोग उन देवों के देव बुद्धिमान महादेव के पशु हैं। पशुत्व को छोड़कर पवित्र पाशुवत व्रत करना चाहिये। लिंग में विराजमान महादेव की पूजा करें। पाँच प्रणवों से पंचभूतों को शुद्ध (शोधन) करें। हे श्रेष्ठ देवताओं! चार प्रणवों से उस प्रक्रिया को दोहराना चाहिये। उसके बाद तीन और उसके बाद दो प्रणवों से सदा बराबर संख्या में प्राणयामों के साथ ऐसा करें। तब वह ओंकार को पढ़कर प्राण और अपान को नियन्त्रण में करे। वह अपने सब अंगों को ज्ञान रूप अमृत से तथा प्रणव से भरे। तब वह तीन गुणों को शुद्ध करे और चौथा अहंकार और तन्मात्राओं को। हे सुव्रत देवताओं! तब वह भूतों, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का शोधन करके उसके बाद दो पुरुष और चिदात्मा को शुद्ध करके अग्नि भस्म का स्पर्श करे। तब वह उसी प्रकार कहे वायु, व्योम, जल और पृथ्वी भी भस्म हैं, तब अपने शरीर पर जीवनभर तीनों सन्ध्याओं में भस्म को चुपड़े (लपेटे)। ऐसा करने से वह सब तत्त्वों का ज्ञाता योगी हो जाता है। यह पाशुपत व्रत है। हे उत्तम देवताओं! यह बन्धन से मुक्ति के लिये है जिसको स्वयं भगवान महेश्वर ने कहा है। इस विधि से पाशुपत व्रत करते और लिंग में महादेव की पूजा को करते पहले मैंने तथा महात्मा विष्णु हम दोनों ने देखा है। हे देवों! लोग एक वर्ष में पशुत्व से मुक्त हो जाते हैं। महादेव की बाह्य और अभ्यन्तर (दोनों विधि में) पूजा करने के बाद सब व्रतों को पूरा करना चाहिये। हे उत्तम देवताओं! यह मेरी और विष्णु की दिव्य प्रतिज्ञा है।।१०-२१।। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह मुनियों की प्रतिज्ञा है। इसलिए शिव की पूजा करनी चाहिये। यदि कोई एक क्षण भी भगवान शिव के विषय में नहीं सोचता है तो यह हानि है। यह महान् छिद्र है। यह माया है, यह

भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्य भाजनम्। भवनानि मनोज्ञानि दिव्यमाभरणं स्त्रियः॥२४॥
धनं वा तुष्टिपर्यंतं शिवपूजाविधेः फलम्।
ये वांछंति महाभोगान् राज्यं च त्रिदशालये। तेऽर्चयंतु सदा कालं लिंगमूर्तिं महेश्वरम्॥२५॥
हत्वा भित्त्वा च भूतानि दग्ध्वा सर्वमिदं जगत्॥२६॥
यजेदेकं विरूपाक्षं न पापैः स प्रलिप्यते। शैलं लिंगं मदीयं हि सर्वदेवनमस्कृतम्॥२७॥
इत्युक्त्वा पूर्वमभ्यर्च्य रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्। तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्देवदेवं त्रियंबकम्॥२८॥
तदाप्रभृति शक्राद्याः पूजयामासुरीश्वरम्। साक्षात्पाशुपतं कृत्वा भस्मोद्धूलितविग्रहाः॥२९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे ब्रह्मप्रोक्तलिंगार्चनविधिर्नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥७३॥

खामोशी (मौनता) है। जो कोई एक क्षण या एक मुहूर्त शिव का चिन्तन करता है। जो शिव की भक्ति में तत्पर है, उनको मन से प्रणाम करते हैं, और उनको स्मरण करने की चेष्टा करते हैं वे कभी दुःख के पात्र नहीं होते हैं। शिव की पूजा का फल यह है कि शिव के भक्त को सुन्दर मनोहर निवास, दिव्य आभूषण, स्त्रियाँ, तुष्टिपर्यन्त धन-दौलत मिलती है। जो लोग महान भोगपूर्ण जीवन, स्वर्ग का राज्य चाहते हैं वे सदा लिंगमूर्ति शिव की पूजा करें।।२२-२५।। यहाँ तक कि सब प्राणियों को मार-काटकर और सम्पूर्ण जगत् को जलाकर भी यदि शिव की पूजा करे तो भी वह कभी पापों से लिप्त नहीं होगा। मेरा पत्थर का बना हुआ लिंग सब देवताओं द्वारा नमस्कृत और अभिषिक्त है। ऐसा कहने के बाद ब्रह्मा ने देवेश, त्रिनेत्र, त्रिलोकीनाथ शिव की पूजा करके प्रिय वचनों से स्तुति की। तबसे इन्द्र आदि देवता तथा अन्य पाशुपत व्रत करके और अपने शरीर पर भस्म चुपड़कर शिव की पूजा करने लगे।।२६-२९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में ब्रह्मोक्त लिंगार्चन विधि नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७३॥

—****—

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

शिवलिङ्गभेदसंस्थापनादिवर्णनम्

सूत उवाच

लिंगानि कल्पयित्वैवं स्वाधिकारानुरूपतः। विश्वकर्मा ददौ तेषां नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभोः॥१॥
इन्द्रनीलमयं लिंगं विष्णुना पूजितं सदा। पद्मरागमयं शक्रो हैमं विश्रवसः सुतः॥२॥
विश्वेदेवास्तथा रौप्यं वसवः कांतिकं शुभम्। आरकूटमयं वायुरश्विनौ पार्थिवं सदा॥३॥
स्फटिकं वरुणो राजा आदित्यास्ताम्रनिर्मितम्। मौक्तिकं सोमराड् धीमांस्तथा लिंगमनुत्तमम्॥४॥
अनंताद्या महानागाः प्रवालकमयं शुभम्। दैत्या ह्ययोमयं लिंगं राक्षसाश्च महात्मनः॥५॥
त्रैलोहिकं गुह्यकाश्च सर्वलोहमयं गणाः। चामुंडा सैकतं साक्षान्मातरश्च द्विजोत्तमाः॥६॥
दारुजं नैर्ऋतिर्भक्त्या यमो मारकतं शुभम्। नीलाद्याश्च तथा रुद्राः शुद्धं भस्ममयं शुभम्॥७॥
लक्ष्मीवृक्षमयं लक्ष्मीर्गुहो वै गोमयात्मकम्। मुनयो मुनिशार्दूलाः कुशाग्रमयमुत्तमम्॥८॥
वामाद्याः पुष्पलिंगं तु गंधलिंगं मनोन्मनी। सरस्वती च रत्नेन कृतं रुद्रस्य वाम्भसा॥९॥
दुर्गा हैमं महादेवं सवेदिकमनुत्तमम्। उग्रा पिष्टमयं सर्वे मंत्रा ह्याज्यमयं शुभम्॥१०॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

शिवलिंग भेद संस्थापनादि का वर्णन

सूत जी बोले

भगवान ब्रह्मा की आज्ञा से विश्वकर्मा ने देवताओं की पूजा के योग्य विविध प्रकार के लिंगों को बनाकर देवताओं को उन लिंगों को दिया।।१।। विष्णु ने सदा इन्द्रनील से बने लिंग की पूजा की। इन्द्र ने पद्मराग से बने लिंग की पूजा की। विश्रवस के पुत्र ने स्वर्ण-निर्मित लिंग की पूजा की।।२।। विश्वेदेवों ने चाँदी से बने लिंग की पूजा की। वसुओं ने कांतिक के बने, वायु ने आरकूट से बने लिंग की, अश्विनकुमारों ने पार्थिव (मिट्टी के) लिंग की पूजा की।।३।। अनन्त तथा महासर्पों ने प्रवाल से बने लिंग की, दैत्यों और राक्षसों ने लोहे के लिंग की पूजा की।।४।। वरुण राजा ने स्फटिक से बने लिंग की, आदित्यों ने ताँबे के लिंग की, बुद्धिमान सोम राजा ने मोती से बने उत्तम लिंग की पूजा की।।५।। गुह्यकों ने तीन धातुओं से बने लिंग की, गणों ने सब धातुओं से बने लिंग की, चामुण्डा तथा माताओं ने बालू से बने लिंग की पूजा की।।६।। नैर्ऋति ने लकड़ी से बने लिंग की भक्तिपूर्वक पूजा की। यम ने मरकत से बने लिंग की, नील आदि रुद्रों ने शुद्ध भस्म से बने लिंग की पूजा की।।७।। लक्ष्मी ने बेल के पेड़ से बने लिंग की, गुह ने गाय के गोबर से बने लिंग की, हे श्रेष्ठ मुनियों! ऋषियों ने कुशों से निर्मित लिंग की पूजा की।।८।। वामदेव ने तथा अन्यों ने पुष्पों से बने लिंग की, और मनोन्मनी ने गंधों से बने लिंग की, सरस्वती ने रत्नों से बने लिंग की पूजा की।।९।। दुर्गा ने वेदिक सहित सोने से बने

वेदाः सर्वे दधिमयं पिशाचाः सीसनिर्मितम्। लेभिरे च यथायोग्यं प्रसादाद्ब्रह्मणः पदम्॥११॥
बहुनात्र किमुक्तेन चराचरमिदं जगत्। शिवलिंगं समभ्यर्च्य स्थितमत्र न संशयः॥१२॥
षड्विधं लिंगमित्याहुर्द्रव्याणां च प्रभेदतः। तेषां भेदाश्चतुर्युक्तचत्वारिंशदिति स्मृताः॥१३॥
शैलजं प्रथमं प्रोक्तं तद्धि साक्षाच्चतुर्विधम्। द्वितीयं रत्नजं तच्च सप्तधा मुनिसत्तमाः॥१४॥
तृतीयं धातुजं लिंगमष्टधा परमेष्ठिनः। तुरीयं दारुजं लिंगं तत्तु षोडशधोच्यते॥१५॥
मृन्मयं पंचमं लिंगं द्विधा भिन्नं द्विजोत्तमाः। षष्ठं तु क्षणिकं लिंगं सप्तधा परिकीर्तितम्॥१६॥
श्रीप्रद रत्नजं लिंगं शैलजं सर्वसिद्धिदम्। धातुजं धनदं साक्षाद्दारुजं भोगसिद्धिदम्॥१७॥
मृन्मयं चैव विप्रेंद्राः सर्वसिद्धिकरं शुभम्। शैलजं चोत्तमं प्रोक्तं मध्यमं चैव धातुजम्॥१८॥
बहुधा लिंगभेदाश्च नव चैव समासतः। मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः॥१९॥
रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः। लिंगवेदी महादेवी त्रिगुणा त्रिमयांबिका॥२०॥
तया च पूजयेद्यस्तु देवी देवश्च पूजितौ। शैलजं रत्नजं वापि धातुजं वापि दारुजम्॥२१॥

मृन्मयं क्षणिकं वापि भक्त्या स्थाप्य फलं शुभम्।
सुरेंद्रांभोजगर्भाग्नियमांबुपधनेश्वरैः ॥२२॥

लिंग की पूजा की। सब मंत्रों ने यज्ञ के रूप में घी से बने भव्य लिंग से उग्र की पूजा की।।१०।। वेदों ने दही से बने लिंग की, पिशाचों ने सीसे (एक धातु) से बने लिंग की, इन सब पूजकों ने ब्रह्मा की कृपा से यथायोग्य पद को प्राप्त किया।।११।। अधिक कहने से क्या लाभ? इसमें कोई सन्देह नहीं है कि शिव के लिंग की पूजा करने से ही यह चर और अचर जगत् स्थित है।।१२।। द्रव्यों के भेद के कारण लिंग छः प्रकार का होता है, ऐसा कहा गया है। उनके चालीस विभाग हैं। प्रथम प्रकार के लिंग को शैलज (पत्थर से निर्मित) कहते हैं। इसके चार उपविभाग हैं। हे श्रेष्ठ मुनियों! द्वितीय प्रकार के लिंग वे हैं जो रत्नों से बने हैं। इसके सात उपविभाग हैं। तीसरे प्रकार के लिंग वे हैं जो धातुओं से बनते हैं। उनके आठ उपविभाग होते हैं। चौथे प्रकार के लिंग वे हैं जो लकड़ी (काठ) से बने हुये हैं। इसके सोलह उपविभाग होते हैं। हे उत्तम ब्राह्मणों! पाँचवें प्रकार के लिंग वे हैं जो मिट्टी से बनाये जाते हैं। इसके दो उपविभाग होते हैं। छठवें प्रकार के लिंग वे हैं जो क्षणिक कहलाते हैं। उसके सात उपविभाग होते हैं।।१३-१६।। रत्नों से बना लिंग श्री (भाग्य) प्रदान करता है। शैलज लिंग सिद्धि देता है। धातुओं से बना लिंग धन देता है। काष्ठ से बना लिंग सांसारिक भोग देता है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! मिट्टी से बनाया गया पार्थिव लिंग सब सिद्धियों को देता है।।१७-१८।। क्षणिक लिंगों के बहुत से भेद हैं। संक्षेप में वे नव प्रकार के हैं। लिंग के मूल में ब्रह्मा, मध्य में त्रिलोकीनाथ विष्णु और ऊपर के भाग में महादेव रुद्र सदाशिव स्थित हैं जो प्रणव कहलाते हैं। लिंग की वेदी त्रिगुणमयी महादेवी हैं। वह तीन गुणों की माता (जननी) हैं। लिंग चाहे शैलज, रत्नज, धातुज, दारुज, मृन्मय, या क्षणिक में से किसी प्रकार का है, उसको श्रद्धापूर्वक स्थापित करना चाहिये। वह व्यक्ति जो कि बेदी में पूजा करता है, वह देवी पार्वती और महादेव की पूजा करे। इसका फल बहुत अच्छा मिलता है। जो व्यक्ति लिंग की पूजा करता है उसकी स्तुति दिव्य दुंदुभि की ध्वनियों (नादों) के साथ

सिद्धविद्याधराहीन्द्रैर्यक्षदानवकिन्नरैः । स्तूयमानः सुपुण्यात्मा देवंदुंदुभिनिःस्वनैः॥२३॥
भूर्भुर्वःस्वर्महर्लोकान्क्रमाद्वै जनतः परम्। तपः सत्यं पराक्रम्य भासयन् स्वेन तेजसा॥२४॥
लिंगस्थापनसन्मार्गनिहितस्वायतासिना । आशु ब्रह्मांडमुद्भिद्य निर्गच्छेन्निर्विशंकया॥२५॥
शैलजं रत्नजं वापि धातुजं वापि दारुजम्। मृन्मयं क्षणिकं त्यक्त्वा स्थापयेत्सकलं वपुः॥२६॥
विधिना चैव कृत्वा तु स्कंदोमासहितं शुभम्। कुंदगोक्षीरसंकाशं लिंगं यः स्थापयेन्नरः॥२७॥
नृणां तनुं समास्थाय स्थितो रुद्रो न संशयः। दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य लभंते निर्वृतिं नराः॥२८॥
तस्य पुण्यं मया वक्तुं सम्यग्युगशतैरपि। शक्यते नैव विप्रेंदास्तस्माद्वै स्थापयेत्तथा॥२९॥
सर्वेषामेव मर्त्यानां विभोर्दिव्यं वपुः शुभम्। सकलं भावनायोग्यं योगिनामेव निष्कलम्॥३०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवलिंगभेदसंस्थापनादिवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥७४॥

इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि, यम, वरुण, सिद्ध, विद्याधर, गरुड़, तक्षक, दानव और किन्नरगण करते हैं। वह पुण्यात्मा है। वह अपने तेज से क्रमशः भूः, भुवः, स्वः, महः, लोकों को प्रकाशित करते हुये उनके आगे बढ़कर जन लोक के परे तपः और सत्य लोक को जाता है। वह लिंग स्थापन के उत्तम मार्ग में रखी लम्बी तलवार से ब्रह्माण्ड को बेखटक भेद देता है।।१९-२५।। वह शैलज आदि छः प्रकार के लिंगों को छोड़कर अपने सम्पूर्ण शरीर को लिंग में स्थापित करेगा। वह व्यक्ति जो कि स्कन्द और उमा सहित कुन्द के पुष्प के समान या दूध के समान सफेद शुभ लिंग को विधानपूर्वक स्थापित करता है, वह मनुष्य के रूप में रुद्र हो जाता है। उसका दर्शन करने और छूने से मनुष्य महान् आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। हे उत्तम ब्राह्मणों! सौ युगों में भी उसके पुण्य को मैं नहीं कहने में समर्थ हो सकूँगा। अतः उक्त विधि से लिंग की स्थापना करनी चाहिये। मनुष्यों द्वारा सकल (गुण रहित) और दिव्य और शिव के शरीर को धारण करने के योग्य (भावना योग्य) है किन्तु निष्कल (गुण रहित) शिव का शरीर केवल योगियों द्वारा धारण के योग्य (धार्य) है।।२६-३०।।

श्रीलिंगमहापुरण के पूर्वभाग में शिवलिंग भेद स्थापनादि का वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

शिवाद्वैतकथनम्

ऋषय ऊचुः

निष्कलो निर्मलो नित्यः सकलत्वं कथं गतः। वक्तुमर्हसि चास्माकं यथा पूर्वं यथा श्रुतम्॥१॥

सूत उवाच

परमार्थविदः केचिदूचुः प्रणवरूपिणम्। विज्ञानमिति विप्रेंद्राः श्रुत्वा श्रुतिशिरस्यजम्॥२॥
शब्दादिविषयं ज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते। तज्ज्ञानं भ्रांतिरहितमित्यन्ये नेति चापरे॥३॥
यज्ज्ञानं निर्मलं शुद्धं निर्विकल्पं निराश्रयम्। गुरुप्रकाशकं ज्ञानमित्यन्ये मुनयो द्विजाः॥४॥
ज्ञानेनैव भवेन्मुक्तिः प्रसादो ज्ञानसिद्धये। उभाभ्यां मुच्यते योगी तत्रानंदमयो भवेत्॥५॥
वदंति मुनयः केचित्कर्मणा तस्य संगतिम्। कल्पनाकल्पितं रूपं संहृत्य स्वेच्छयैव हि॥६॥
द्यौर्मूर्धा तु विभोस्तस्य खं नाभिः परमेष्ठिनः। सोमसूर्याग्नयो नेत्रं दिशः श्रोत्रं महात्मनः॥७॥
चरणौ चैव पातालं समुद्रस्तस्य चांबरम्। देवास्तस्य भुजाः सर्वे नक्षत्राणि च भूषणम्॥८॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

शिव का अद्वैत कथन

ऋषिगण बोले

भगवान शिव जो कि निष्कल (गुण रहित) अद्वैत निर्मल (शुद्ध) और नित्य हैं, वे सकल (गुणों सहित की स्थिति) को कैसे प्राप्त हुए। यह जैसा आपने पहले सुना है उसी विधि से हम लोगों को बताइये।।१।।

सूत बोले

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! कुछ परमार्थविद शिव को प्रणव के रूप में अनुभव करते हैं। वे वैदिक संहिताओं से सुनने के बाद उनको अज समझते हैं। अर्थात् कोई प्रणवरूप और कोई ज्ञान स्वरूप मानते हैं।।२।। शब्द आदि विषयों के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। कुछ विद्वान कहते हैं कि भ्रांति रहित ज्ञान, ज्ञान है। कुछ विद्वान् कहते हैं कि ऐसा कुछ नहीं है।।३।। हे ब्राह्मणों! अन्य मुनि लोग कहते हैं कि जो निर्मल शुद्ध, विकल्प रहित और आश्रय रहित है और गुरु के द्वारा प्रकाशित (व्यक्त) है, वह ज्ञान है।।४।। पूर्णज्ञान से ही मुक्ति मिलती है। पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रसन्नता आवश्यक है। दोनों योगी को मुक्त करने में सहायता करते हैं और उसको आनन्दमय बनाते हैं।।५।। कुछ मुनि कहते हैं कि सत्कर्म (उत्तम पवित्र धार्मिक कृत्य) से भी उसका सम्पर्क होना चाहिये। स्वयं अपनी स्वेच्छा द्वारा ही वह रूप है जो कल्पना से कल्पित रूप को वापस ले लेता है।।६।। विभु का शिर द्यौ (स्वर्ग है) आकाश उनकी नाभि है। सूर्य, चन्द्र और अग्नि उनके नेत्र हैं। दिशायें उस महान् आत्मा के कान हैं। पाताल उनके चरण हैं। समुद्र उनका वस्त्र है। देवगण उनकी भुजाएँ हैं। सब नक्षत्र उनके

प्रकृतिस्तस्य पत्नी च पुरुषो लिंगमुच्यते। वक्त्राद्वै ब्रह्मणः सर्वे ब्रह्मा च भगवान्प्रभुः॥९॥
इंद्रोपेंद्रौ भुजाभ्यां तु क्षत्रियाश्च महात्मनः। वैश्याश्चोरुप्रदेशात्तु शूद्राः पादात्पिनाकिनः॥१०॥
पुष्करावर्तकाद्यास्तु केशास्तस्य प्रकीर्तिताः।
वायवो घ्राणजास्तस्य गतिः श्रौतं स्मृतिस्तथा॥११॥
अथानेनैव कर्मात्मा प्रकृतेस्तु प्रवर्तकः। पुंसां तु पुरुषः श्रीमान् ज्ञानगम्यो न चान्यथा॥१२॥
कर्मयज्ञसहस्रेभ्यस्तपोयज्ञो विशिष्यते। तपोयज्ञसहस्रेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते॥१३॥
जपयज्ञसहस्रेभ्यो ध्यानयज्ञो विशिष्यते।
ध्यानयज्ञात्परो नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम्॥१४॥
यदा समरसे निष्ठो योगी ध्यानेन पश्यति। ध्यानयज्ञरतस्यास्य तदा सन्निहितः शिवः॥१५॥
नास्ति विज्ञानिनां शौचं प्रायश्चित्तादिचोदना। विशुद्धा विद्यया सर्वे ब्रह्मविद्याविदो जनाः॥१६॥
नास्ति क्रिया च लोकेषु सुखं दुःखं विचारतः। धर्माधर्मौ जपो होमो ध्यानिनां सन्निधिः सदा॥१७॥
परानंदात्मकं लिंगं विशुद्धं शिवमक्षरम्। निष्कलं सर्वगं ज्ञेयं योगिनां हृदि संस्थितम्॥१८॥
लिंगं तु द्विविधं प्राहुर्बाह्यमाभ्यंतरं द्विजाः। बाह्यं स्थूलं मुनिश्रेष्ठाः सूक्ष्ममाभ्यंतरं द्विजाः॥१९॥
कर्मयज्ञरताः स्थूलाः स्थूललिंगार्चने रताः। असतां भावनार्थाय नान्यथा स्थूलविग्रहः॥२०॥

आभूषण हैं। प्रकृति उनकी पत्नी है और पुरुष उनका लिंग है। सब ब्राह्मण, इन्द्र, ब्रह्मा, और विष्णु उनके मुख से निकले हैं। क्षत्रिय उनकी भुजाओं से उत्पन्न हुये हैं। वैश्य उनके जांघों से और शूद्र उनके पैरों से उत्पन्न हुये हैं। पुष्कर, आवर्तक और अन्य मेघ उनके केश (बाल) हैं। वायु उनकी नाक से उत्पन्न हुई है। श्रुति और स्मृति उनकी गति हैं।।७-११।। शिव स्वयं कर्म के रूप हैं। वह अपने इस ब्रह्माण्डीय शरीर से प्रकृति के द्वारा कार्य करवाते हैं। उसके प्रवर्तक हैं। श्रीमान् पुरुष मनुष्यों को पूर्ण ज्ञान द्वारा ही गम्य हैं। अन्य प्रकार से नहीं।।१२।। कर्म यज्ञ से तपोयज्ञ हजार गुना बढ़कर है। जपयज्ञ तपोयज्ञ से बढ़कर है। जप यज्ञ से ध्यान यज्ञ बढ़कर है। ध्यान यज्ञ से बड़ा कुछ नहीं है। ध्यान पूर्णज्ञान की प्राप्ति का साधन है।।१३-१४।। जब योगी दृढ़तापूर्वक समरस द्वारा और ध्यान के माध्यम से देखता है और जब वह ध्यान यज्ञ में लीन है तो शिव उसमें व्यक्त हो जाते हैं।।१५।। ब्रह्मज्ञान से सब लोग शुद्ध हो जाते हैं। विज्ञानियों (ज्ञाताओं) को शुद्ध होने और प्रायश्चित करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। विद्या से ही ब्रह्मविद्या के ज्ञाता शुद्ध हो जाते हैं।।१६।। ध्यानियों के लिये संसार में सुख या दुःख, धर्म या अधर्म और ज्ञान या होम कोई क्रिया नहीं है। यह विचार करने से साफ है।।१७।। लिंग शुद्ध है, कल्याणकारक और अनश्वर है। यह परम आनन्दमय है। निष्कल रूप, गुणों से रहित और सर्वव्यापी है। यह योगियों के हृदय में सदा स्थित है (विराजमान रहता है)।।१८।। हे ब्राह्मणों! लिंग दो प्रकार को होता बाह्य और आभ्यन्तर। (बाहरी और भीतरी)। हे श्रेष्ठ मुनियों! स्थूल लिंग बाह्य होता है। हे ब्राह्मणों! सूक्ष्म लिंग आभ्यन्तर होता है।।१९।। स्थूल लिंग की पूजा में रत भक्त, स्थूल भक्त हैं। वे कर्म और धार्मिक कृत्य और यज्ञ में रत हैं। स्थूल भक्तों में ज्ञान को जगाने के लिये स्थूल लिंग (प्रतिमा) होता है।।२०।।

आध्यात्मिकं च यल्लिंगं प्रत्यक्षं यस्य नो भवेत्।
असौ मूढो बहिः सर्वं कल्पयित्वैव नान्यथा॥२१॥
ज्ञानिनां सूक्ष्मममलं भवेत्प्रत्यक्षमव्ययम्।
यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम्॥२२॥
अर्थो विचारतो नास्तीत्यन्ये तत्त्वार्थवेदिनः। निष्कलः सकलश्चेति सर्वं शिवमयं ततः॥२३॥
व्योमैकमपि दृष्टं हि शरावं प्रति सुव्रताः। पृथक्त्वं चापृथक्त्वं च शंकरस्येति चापरे॥२४॥
प्रत्ययार्थं हि जगतामेकस्थोपि दिवाकरः। एकोपि बहुधा दृष्टो जलाधारेषु सुव्रताः॥२५॥
जंतवो दिवि भूमा च सर्वे वै पांचभौमिकाः। तथापि बहुला दृष्टा जातिव्यक्तिविभेदतः॥२६॥
दृश्यते श्रूयते यद्यत्तत्तद्विद्धि शिवात्मकम्। भेदो जनानां लोकेस्मिन्प्रतिभासो विचारतः॥२७॥
स्वप्ने च विपुलान् भोगान् भुक्त्वा मर्त्यः सुखी भवेत्।
दुःखी च भोगं दुःखं च नानुभूतं विचारतः॥२८॥
एवमाहुस्तथान्ये च सर्वे वेदार्थतत्त्वगाः। हृदि संसारिणां साक्षात्सकलः परमेश्वरः॥२९॥
योगिनां निष्कलो देवो ज्ञानिनां च जगन्मयः। त्रिविधं परमेशस्य वपुर्लोके प्रशस्यते॥३०॥
निष्कलं प्रथमं चैकं ततः सकलनिष्कलम्। तृतीयं सकलं चैव नान्यथेति द्विजोत्तमाः॥३१॥

आध्यात्मिक लिंग उन लोगों के लिये नहीं है जो वस्तुओं के केवल बाहरी आकार को देखते हैं अन्यथा नहीं। स्थूल लिंग चाहे मिट्टी, काठ या किसी से बनाया गया हो वह केवल सामान्य भक्तों के लिये है। सूक्ष्म और आभ्यन्तर लिंग केवल योगियों के लिये है।।२१-२२।। अन्य तत्त्वविद अर्थ के ज्ञाता कहते हैं कि विचार करने पर विषय का अहित नहीं है। सकल और निष्कल सब शिवमय हैं।।२३।। हे सुव्रतो! अन्य विचारक ऐसा कहते हैं कि यद्यपि दोनों एक हैं फिर भी वह अलग-अलग पात्रों में आकाश स्थित सूर्य के प्रतिबिम्ब की तरह अलग-अलग दिखायी देते हैं। इसी प्रकार शिव की पृथकता और अपृथकता दोनों है।।२४।। हे सुव्रतो! यद्यपि, सूर्य केवल एक है किन्तु वह अनेक जलों के आधार (नदी, परात, प्लेट आदि) में अलग-अलग अनेक आकार में दीखता है। यह उदाहरण लोगों को विश्वास दिलाने के लिए है।।२५।। स्वर्ग के और पृथ्वी के सब प्राणी पाँच भौतिक तत्त्वों (पंचभूतों पृथ्वी जल आदि) से विकसित हुये हैं फिर भी जाति और व्यक्ति के भेद से वे अनेक रूपों में दिखाई देते हैं।।२६।। ऐसा जानो कि जो कुछ भी दृष्टि से दिखायी देता है या सुना गया है वह सब शिवमय है। लोक में लोगों में आकार या भेद तो विचार करने पर केवल माया है।।२७।। वेदों के जो भावार्थ को जानते हैं वे तथा अन्य लोग भी ऐसा सांसारिक विषयों में कहते हैं। परमेश्वर शिव संसारी लोगों के हृदयों में गुणों के साथ साक्षात् सकल रूप में स्थित है। वही शिव योगियों के शुभों में गुणरहित निर्गुण रूप अर्थात् निष्कल विराजमान है और वह ज्ञानियों के हृदय में निष्कल और जगतमय हैं। वह बुद्धिमान को केवल एक बार दिखाई देता है। परमेश्वर शिव का भौतिक शरीर तीन प्रकार का है।।२८-३०।। कुछ लोग सकल-निष्कल रूप की पूजा करते हैं। कुछ हृदय में या कुछ लिंग में या अग्नि में कुछ अपने स्त्रियों और पुत्रों सहित शिव के सकल रूप

अर्चयंति मुहुः केचित्सदा सकलनिष्कलम्। सर्वज्ञं हृदये केचिच्छिवलिंगे विभावसौ॥३२॥
सकलं मुनयः केचित्सदा संसारवर्तिनः। एवमभ्यर्चयंत्येव सदाराः ससुता नराः॥३३॥
यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः। तस्मादभेदबुद्ध्यैव सप्तविंशत्प्रभेदतः॥३४॥
यजंति देहे बाह्ये च चतुष्कोणे षडस्त्रके। दशारे द्वादशारे च षोडशारे त्रिरस्त्रके॥३५॥

स स्वेच्छया शिवः साक्षाद्देव्या सार्धं स्थितः प्रभुः।
संतारणार्थं च शिवः सदसद्व्यक्तिवर्जितः॥३६॥
तमेकमाहुर्द्विगुणं च केचित्केचित्तमाहुस्त्रिगुणात्मकं च।
ऊचुस्तथा तं च शिवं तथान्ये संसारिणं वेदविदो वदंति॥३७॥
भक्त्या च योगेन शुभेन युक्ता विप्राः सदा धर्मरता विशिष्टाः।
यजंति योगेशमशेषमूर्तिं षडस्त्रमध्ये भगवंतमेव॥३८॥
ये तत्र पश्यंति शिवं त्रिरस्त्रे त्रितत्त्वमध्ये त्रिगुणं त्रियक्षम्।
ते यांति चैनं न च योगिनोऽन्ये तया च देव्या पुरुषं पुराणम्॥३९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवाद्वैतकथनं नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः॥७५॥

की पूजा करते हैं।।३१-३३।। जैसे शिव हैं वैसे ही देवी हैं और जैसे देवी हैं वैसे शिव हैं। इसलिये लोग अभेद बुद्धि से पूजा करते हैं। वे शरीर में और शरीर के बाहर भी सत्ताईस तत्त्वों की चार, छः, दस, बारह और सोलह की आकृति में तीन अर (कोण) से पूजा करते हैं।।३४-३५।। सत् और असत् से रहित वह प्रभु शिव देवी के साथ अपनी स्वनाम इच्छा से जगत् की रक्षा के लिए स्थित है।।३६।। कुछ उनको एक कहते हैं। कुछ उनको दो सहित एक कहते हैं। कुछ उनको त्रिगुण कहते हैं। कुछ कहते हैं वह शिव हैं। अन्य वेदज्ञ विद्वान लोग उनको विश्व का कारण कहते हैं।।३७।। भक्ति और शुभ योग से युक्त सब धर्म में रत बाह्य विशिष्ट हैं अर्थात् विशेष लक्षणों से सम्पन्न हैं। षडस्त्र के मध्य में वे योगों के स्वामी अशेषमूर्ति (सब रूपधारी का रूप रहित) की पूजा करते हैं।।३८।। वे जो कि त्रिस्त्र तीन अर (कोण) वाली आकृति में तीन तत्त्वों के मध्य में वही शिव देखते हैं। वे तीन नेत्रधारी, तीनों गुणों के साथ प्राचीन पुरुष देवी सहित उस शिव को प्राप्त करते हैं अन्य योगी नहीं।।३९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में शिव का अद्वैत (अद्वैतवाद) कथन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७५॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

शिवमूर्त्तिप्रतिष्ठाफलकथनम्

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्वेच्छाविग्रहसंभवम्। प्रतिष्ठायाः फलं सर्वं सर्वलोकहिताय वै॥१॥

स्कंदोमासहितं देवमासीनं परमासने।
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥२॥

स्कंदोमासहितं देवं संपूज्य विधिना सकृत्। यत्फलं लभते मर्त्यस्तद्वदामि यथाश्रुतम्॥३॥
सूर्यकोटिप्रतिकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः। रुद्रकन्यासमाकीर्णैर्गेयनाट्यसमन्वितैः॥४॥
शिववत्क्रीडते योगी यावदाभूतसंप्लवम्। तत्र भुक्त्वा महाभोगान् विमानैः सार्वकामिकैः॥५॥
औमं कौमारमैशानं वैष्णवं ब्राह्ममेव च। प्राजापत्यं महातेजा जनलोकं महस्तथा॥६॥

ऐंद्रमासाद्य चैंद्रत्वं कृत्वा वर्षायुतं पुनः।
भुक्त्वा चैव भुवर्लोके भोगान् दिव्यान् सुशोभनान्॥७॥

मेरुमासाद्य देवानां भवनेषु प्रमोदते। एकपादं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं शूलसंयुतम्॥८॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

शिवमूर्त्ति की प्रतिष्ठा का फल कथन

सूत बोले

इसके आगे अब मैं सब लोकों के हित के लिये शिव जी की मूर्ति की पूर्ण प्रतिष्ठा (स्थापना) का फल बताऊँगा। व्यक्ति की अपनी इच्छानुसार मूर्ति होनी चाहिये।।१।। स्कन्द और उमा के सहित शिव की मूर्ति बनवाकर परम आसन पर भक्तिपूर्वक स्थापित करके मनुष्य को अपनी सब कामनाओं को प्राप्त करना चाहिये।।२।। जिस विधि से मैंने सुना है, स्कन्द और उमा सहित भगवान शिव की मनुष्य एक बार पूजा करके जो फल पाता है, उसको कहता हूँ।।३।। सब प्राणियों के प्रलयकाल तक वह एक योगी होता है और शिव के समान क्रीड़ा करता है। करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान—जिसमें सब अभीष्ट वस्तु उपलब्ध हैं—ऐसे विमान में जहाँ रुद्र की कन्याओं के गीत और नृत्य होते रहते हैं, वहाँ वह महान् आनन्द को मनाता है। सुख भोगता है। उसके बाद वह एक से दूसरे लोक को क्रमशः जाता है। वे लोक हैं—कुमार लोक, ईशान लोक, विष्णु लोक, ब्रह्म लोक, प्रजापतिलोक, जनलोक और महर्लोक। इन्द्रलोक में पहुँचने के बाद वह वहाँ दस हजार वर्ष तक इन्द्रत्व करता है। दिव्य भोगों को महर्लोक में भोगकर फिर मेरु पर्वत पर पहुँचकर वहाँ देवों के निवासों में आनन्द मनाता है।।४-७।। भक्त, शास्त्र में उक्त विधान के अनुसार सर्वज्ञ और सर्वव्यापक शिव की प्रतिष्ठा (स्थापना) करके शिव का सायुज्य प्राप्त करेगा। जिसके एक पैर, चार भुजाएँ, तीन नेत्र और त्रिशूल, अपने वाम

सृष्ट्वा स्थितं हरिं वामे दक्षिणे चतुराननम्। अष्टविंशतिरुद्राणां कोटिः सर्वांगसुप्रभम्॥९॥
पंचविंशतिकं साक्षात्पुरुषं हृदयात्तथा। प्रकृतिं वामतश्चैव बुद्धिं वै बुद्धिदेशतः॥१०॥
अहंकारमहंकारात्तन्मात्राणि तु तत्र वै। इंद्रियाणींद्रियादेव लीलया परमेश्वरम्॥११॥
पृथिवीं पादमूलात्तु गुह्यदेशाज्जलं तथा। नाभिदेशात्तथा वह्निं हृदयाद्भास्करं तथा॥१२॥
कंठात्सोमं तथात्मानं भ्रूमध्यान्मस्तकाद्दिवम्। सृष्ट्वैवं संस्थितं साक्षाज्जगत्सर्वं चराचरम्॥१३॥
सर्वज्ञं सर्वगं देवं कृत्वा विद्याविधानतः। प्रतिष्ठाप्य यथान्यायं शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥१४॥
त्रिपादं सप्तहस्तं च चतुःशृंगं द्विशीर्षकम्। कृत्वा यज्ञेशमीशानं विष्णुलोके महीयते॥१५॥
तत्र भुक्त्वा महाभोगान्कल्पलक्षं सुखी नरः। क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्सर्वयज्ञांतगो भवेत्॥१६॥
वृषारूढं तु यः कुर्यात्सोमं सोमार्धभूषणम्। हयमेधायुतं कृत्वा यत्पुण्यं तदवाप्य सः॥१७॥
कांचनेन विमानेन किंकिणीजालमालिना। गत्वा शिवपुरं दिव्यं तत्रैव स विमुच्यते॥१८॥
नंदिना सहितं देवं सांबं सर्वगणैर्वृतम्। कृत्वा यत्फलमाप्नोति वक्ष्ये तद्वै यथाश्रुतम्॥१९॥
सूर्यमंडलसंकाशैर्विमानैर्वृषसंयुतैः। अप्सरोगणसंकीर्णैर्देवदानवदुर्लभैः॥२०॥
नृत्यद्भिरप्सरःसंघैः सर्वतः सर्वशोभितैः। गत्वा शिवपुरं दिव्यं गाणपत्यमवाप्नुयात्॥२१॥
नृत्यंतं देवदेवेशं शैलजासहितं प्रभुम्। सहस्रबाहुं सर्वज्ञं चतुर्बाहुमथापि वा॥२२॥

भाग से विष्णु और दक्षिण भाग से चतुर्मुख ब्रह्मा को उत्पन्न करके विराजमान (स्थित) हैं। भगवान शिव जिन्होंने अट्ठाइस करोड़ रुद्रों को उत्पन्न किया और उसके बाद पच्चीसवें तत्त्व पुरुष को, सब अंगों में तेज पूर्ण को अपने हृदय से, अपने बायें से प्रकृति को, बुद्धिदेश से बुद्धि को, अपने अहंकार से अहंकार को और तन्मात्राओं को उत्पन्न किया। महेश्वर ने अपनी लीला से अपनी ज्ञान इन्द्रियों से ज्ञान इन्द्रियों को उत्पन्न किया। उन्होंने अपने पैर के मूल से पृथ्वी को, गुह्य देश से जल को, नाभि देश से अग्नि को, हृदय से सूर्य को, कंठ से चन्द्र को, अपने भौंहों के मध्य भाग से आत्मा को, मस्तक से स्वर्ग को उत्पन्न किया। चर और अचर सहित सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न कर के स्थित उस सर्वज्ञ और सर्वव्यापी शिव की मूर्त्ति को भक्त विधान के अनुसार स्थापित करके शिव का सायुज्य प्राप्त करे।।८-१४।। यज्ञों के स्वामी ईशान की तीन पैर, सात हाथ, चार सींग और दो सिर वाली मूर्त्ति वाले से भक्त विष्णु लोक में पूजित होता है।।१५।। भक्त वहाँ पर एक लाख कल्प आनन्द से सुख भोगकर क्रम से इस लोक में आकर सब यज्ञों का स्वामी होता है।।१६।। यदि कोई उमासहित वृष पर सवार अर्धचन्द्रधारी शिव जी की मूर्ति बनवाता है तो उसको दस हजार अश्वमेध यज्ञों के करने के बराबर फल मिलता है। वह किंकिणी की घंटियों के बजते स्वर से क्षोभित स्वर्ण रथ पर बैठकर दिव्य शिव लोक को जाता है। वहाँ वह स्वयं मुक्त हो जाता है।।१७-१८।। नन्दी और उमा सहित, गणों से घिरे हुये शिव की मूर्ति बनवाने का जो फल मैंने सुना है उसको बताता हूँ।।१९।। वह सूर्य मण्डल के समान देदीप्यमान, जिसमें बैल जुड़े हों, देवों और दानवों की पहुँच से दुर्लभ नृत्य करती हुई सुन्दर अप्सराओं से संकीर्ण, विमानों से शिव लोक में जाकर गणों के अधिपति पद को प्राप्त करता है।।२०-२१।। अब मैं शिव जी की अधोलिखित मूर्तियों में से कोई एक

भृग्वाद्यैर्भूतसंघैश्च संवृतं परमेश्वरम्। शैलजासहितं साक्षाद्वृषभध्वजमीश्वरम्॥२३॥
ब्रह्मेंद्रविष्णुसोमाद्यैः सदा सर्वैर्नमस्कृतम्। मातृभिर्मुनिभिश्चैव संवृतं परमेश्वरम्॥२४॥
कृत्वा भक्त्त्या प्रतिष्ठाप्य यत्फलं तद्वदाम्यहम्। सर्वयज्ञतपोदानतीर्थदेवेषु यत् फलम्॥२५॥
तत्फलं कोटिगुणितं लब्ध्वा याति शिवं पदम्। तत्र भुक्त्वा महाभोगान् यावदाभूतसंप्लवम्॥२६॥
सृष्ट्यंतरे पुनः प्राप्ते मानवं पदमाप्नुयात्। नग्नं चतुर्भुजं श्वेतं त्रिनेत्रं सर्पमेखलम्॥२७॥
कपालहस्तं देवेशं कृष्णकुंचितमूर्धजम्।
कृत्वा भक्त्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥२८॥
इभेंद्रदारकं देवं सांबं सिद्धार्थदं प्रभुम्। सुधूम्रवर्णं रक्ताक्षं त्रिनेत्रं चंद्रभूषणम्॥२९॥
काकपक्षधरं मूर्ध्ना नागटंकधरं हरम्। सिंहाजिनोत्तरीयं च मृगचर्मांबरं प्रभुम्॥३०॥
तीक्ष्णदंष्ट्रं गदाहस्तं कपालोद्यतपाणिनम्। हुंफट्कारे महाशब्दशब्दिताखिलदिङ्मुखम्॥३१॥
पुंडरीकाजिनं दोर्भ्यां बिभ्रंतं कंबुकं तथा। हसंतं च नदंतं च पिबंतं कृष्णसागरम्॥३२॥
नृत्यंतं भूतसंघैश्च गणसंघैस्त्वलंकृतम्।
कृत्वा भक्त्त्या प्रतिष्ठाप्य यथाविभवविस्तरम्॥३३॥
सर्वविघ्नानतिक्रम्य शिवलोके महीयते। तत्र भुक्त्वा महाभोगान् यावदाभूतसंप्लवम्॥३४॥

मूर्ति बनवाने का फल कहता हूँ—देव देवेश शिव जी को पार्वती जी के साथ नाचते हुये, तथा भूतों के दलों से संवृत, हजार भुजाओं या चार भुजाओं, परमेश्वर शिव को भृगु आदि मुनियों तथा भूतों के दलों से घिरे हुये पार्वती के साथ, वृषभध्वज शिव को पार्वती के साथ, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु और चन्द्र अदि देवताओं देवों द्वारा सदा नमस्कृत, परमेश्वर शिव माताओं और मुनियों द्वारा घिरे हुये। वह यज्ञ, तप, दान, तीर्थों की यात्रा और देव मूर्तियों के दर्शन का जो फल मिलता है उसका करोड़ों गुना फल पाकर शिव लोक को जाता है। वहाँ वह प्रलयकाल तक महान् भोगों को भोग सकता है।।२२-२६।। शिव की ऐसी मूर्त्ति बनवाकर भक्तिपूर्वक स्थापित करे जिसमें भगवान शिव नग्न हों, श्वेत रंग हों, चार भुजायें हों, तीन नेत्र हों, सर्प करधनी (मेखला) के रूप में हों। काले घुँघुराले बाल हों और हाथ में खप्पर (कपाल) हो, ऐसी मूर्ति को स्थापित करने वाला भक्त शिव का सायुज्य प्राप्त करता है।।२७-२८।। कोई भी व्यक्ति भक्तिपूर्वक अधोलिखित मूर्त्तियों की स्थापना करने से शिव जी का सायुज्य प्राप्त करता है। गजेन्द्र को विदीर्ण करते हुये उमा के सहित सब कामनाओं को पूरा करने वाले, कृष्ण वर्ण, लाल आँखे, मस्तक पर अर्धचन्द्र, बाघ चर्म को चादर की तरह लपेटे हुये, निचले भाग पर मृग चर्म लपेटे हुये, टेढ़े तेज दन्तधारी, हाथ में गदा ऊपर उठाये, हाथ में खप्पर (कपाल) लिये हुये हुँ फट् शब्दों से सम्पूर्ण दिशाओं को गुँजाते हुये, अपने दो हाथों में चर्म और शंख धारण किये, हँसते, गरजते, काले सागर विष को पीते हुये, भूतों के समूहों के साथ नाचते हुये, गणों के दलों से शोभित ऐसे शिव की मूर्ति को बनवाकर विघ्न बाधाओं से रहित होकर वह शिव लोक में प्रलयकाल तक महान् भोगों को भोगकर रुद्रों से ज्ञान प्राप्त करके पूर्णरूप से मोक्ष प्राप्त करता है।।२९-३३।। अधोलिखित शिव की मूर्त्तियों को बनवाकर भक्तिपूर्वक स्थापित

ज्ञानं विचारतो लब्ध्वा रुद्रेभ्यस्तत्र मुच्यते। अर्धनारीश्वरं देवं चतुर्भुजमनुत्तमम्॥३५॥
वरदाभयहस्तं च शूलपद्मधरं प्रभुम्। स्त्रीपुंभावेन संस्थानं सर्वाभरणभूषितम्॥३६॥
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवलोके महीयते। तत्र भुक्त्वा महाभोगानणिमादिगुणैर्युतः॥३७॥
आचंद्रतारकं ज्ञानं ततो लब्ध्वा विमुच्यते। यः कुर्याद्देवदेवेशं सर्वज्ञं लकुलीश्वरम्॥३८॥
वृतं शिष्यप्रशिष्यैश्च व्याख्यानोद्यतपाणिनम्।
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवलोकं स गच्छति॥३९॥
भुक्त्वा तु विपुलांस्तत्र भोगान् युगशतं नरः। ज्ञानयोगं समासाद्य तत्रैव च विमुच्यते॥४०॥
पूर्वदेवामराणां च यत्स्थानं सकलेप्सितम्। कृतमुद्रस्य देवस्य चिताभस्मानुलेपिनः॥४१॥
त्रिपुंड्रधारिणस्तेषां शिरोमालाधरस्य च। ब्रह्मणः केशकेनैकमुपवीतं च बिभ्रतः॥४२॥
बिभ्रतो वामहस्तेन कपालं ब्रह्मणो वरम्। विष्णोः कलेवरं चैव बिभ्रतः परमेष्ठिनः॥४३।
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य मुच्यते भवसागरात्। ओंनमो नीलकंठाय इति पुण्याक्षराष्टकम्॥४४॥
मंत्रमाह सकृद्वा यः पातकै स विमुच्यते। मंत्रेणानेन गंधाद्यैर्भक्त्या वित्तानुसारतः॥४५॥
संपूज्य देवदेवेशं शिवलोके महीयते। जालंधरांतकं देवं सुदर्शनधरं प्रभुम्॥४६॥

करने से भक्त शिव लोक में पूजित होता है। शिव जी की अर्धनारीश्वर मूर्ति चार भुजाएँ जो वर देने वाली और भय से मुक्त करने वाली हों, त्रिशूल और कमल लिए हुये हों, वह स्त्री के रूप में और पुरुष के रूप में भी स्थित हों, सब आभूषणों से विभूषित हों। वह शिव लोक में महान् भोगों को भोगकर अणिमा आदि गुणों से युक्त होता है। वहाँ वह चन्द्रमा और तारागण जब तक आकाश में रहेंगे तब तक रहने वाले अक्षय और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके फिर मोक्ष प्राप्त करता है।।३४-३७।। वह व्यक्ति जो कि सर्वज्ञ, देवेश, लकुलीश्वर शिव की मूर्त्ति बनवाता है जो कि शिष्य और प्रशिष्यों से घिरे हुये हों और व्याख्यान देने की मुद्रा में हाथ उठाये हों, ऐसी मूर्त्ति की स्थापना करने वाला शिव लोक को जाता है। वहाँ वह विपुल (बहुत) भोगों को सौ युगों तक भोगकर ज्ञान मार्ग को प्राप्त करके तब स्वयं मुक्ति प्राप्त कर लेता है।।३८-४०।। देवों और अमरों के बीच उसका निवास होता है। अधोलिखित शिव की मूर्त्तियों को बनवाकर उनकी स्थापना से व्यक्ति संसार सागर के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।।४१।। प्रभु शिव मुद्राएँ (संकेत सूचक) दिखाते हों। अपने शरीर पर चिता की भस्म लपेटे हों। वह त्रिपुंड लगाये हों। शिरोमाला धारण किये हों। वह ब्रह्मा के केशों से बना पवित्र यज्ञोपवीत पहने हुये हों। वह अपने बायें हाथ में ब्रह्मा का कपाल (खोपड़ी) लिये हुये हों। परमेश्वर के रूप में वे विष्णु के शरीर धारण किये हों। इनमें से किसी प्रकार की मूर्त्ति को भक्तिपूर्वक स्थापित करने से मनुष्य संसार सागर से पार उतर जाता है।।४२-४३।। वह जो कि एक बार भी 'ॐ नमो नीलकण्ठाय' इस अष्टाक्षर मंत्र को पढ़ता है, पापों से मुक्त हो जाता है। भक्तिपूर्वक इस मंत्र से अपनी सामर्थ्य के अनुसार गंध आदि सामग्री से शिव की पूजा करने से वह शिवलोक में सम्मान पाता है।।४४-४५।। अधोलिखित शिव की मूर्त्तियों को बनवाकर भक्तिपूर्वक इसको स्थापित करने से भक्त शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। शिव ने जलंधर के दो टुकड़े कर दिया। वे सुदर्शन चक्र

कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य द्विधाभूतं जलंधरम्। प्रयाति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा॥४७॥
सुदर्शनप्रदं देवं साक्षात्पूर्वोक्तलक्षणम्। अर्चमानेन देवेन चार्चितं नेत्रपूजया॥४८॥
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवलोके महीयते। तिष्ठतोथ निकुंभस्य पृष्ठतश्चरणांबुजम्॥४९॥
वामेतरं सुविन्यस्य वामे चालिंग्य चाद्रिजाम्। शूलाग्रे कूर्परं स्थाप्य किंकिणीकृतपन्नगम्॥५०॥
संप्रेक्ष्य चांधकं पार्श्वे कृतांजलिपुटं स्थितम्।
रूपं कृत्वा यथान्यायं शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥५१॥
यः कुर्याद्देवदेवेशं त्रिपुरांतकमीश्वरम्। धनुर्बाणसमायुक्तं सोमं सोमार्धभूषणम्॥५२॥
रथे सुसंस्थितं देवं चतुराननसारथिम्। तदाकारतया सोपि गत्वा शिवपुरं सुखी॥५३॥
क्रीडते नात्र संदेहो द्वितीय इव शंकरः।
तत्र भुक्त्वा महाभोगान्यावदिच्छा द्विजोत्तमाः॥५४॥
ज्ञानं विचारितं लब्ध्वा तत्रैव स विमुच्यते। गंगाधरं सुखामीनं चंद्रशेखरमेव च॥५५॥
गंगया सहितं चैव वामोत्संगेंबिकान्वितम्। विनायकं तथा स्कंदं ज्येष्ठं दुर्गां सुशोभनाम्॥५६॥
भास्करं च तथा सोमं ब्रह्माणीं च महेश्वरीम्। कौमारीं वैष्णवीं देवीं वाराहीं वरदां तथा॥५७॥

दाता हैं। भगवान शिव की ऐसी किसी भी मूर्त्ति की स्थापना करने से भक्त शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। इस विषय में सन्देह या हिचक करने की आवश्यकता नहीं है।।४६-४७।। अधोलिखित शिव की मूर्त्तियों को बनवाकर जो कोई भक्तिभाव से स्थापित करता है वह शिवलोक में सम्मान पाता है। पूर्वोक्त विधि से सुदर्शन चक्र के दाता शिव जी की पूजा करे। उसकी पूजा विष्णु जी अपना नेत्र दान द्वारा करते हैं। वे प्रसन्न होकर अपनी आँख भी दान दे देते हैं।।४८।। कोई भी भक्त शिव की ऐसी मूर्त्ति बनवाकर स्थापित करता है जिसमें शिव जी निकुंभ नामक गण की पीठ पर खड़े हों, अपना कमल के समान सुन्दर दाहिना पैर उसकी पीठ पर दृढ़ता से टिकाये हों और बाईं ओर पार्वती को चिपटाये हां। उनके शूल के सिरे पर कुहनी टिकी हो, जिसमें सर्प को करधनी तरह लपेटे हों। वह अंधक की ओर देख रहे हों जो उनके सम्मान में हाथ जोड़े खड़ा हो। ऐसी मूर्त्ति की स्थापना से भक्त शिव का सायुज्य प्राप्त करता है।।४९-५१।। जो भक्त त्रिपुर के विनाशक, ईश्वर, देवाधिदेव शिव जी की ऐसी मूर्त्ति बनवाकर स्थापित करता है जिसमें वह अपने हाथ में धनुष बाण लिये हों, अर्धचन्द्र को भूषण की तरह धारण किये हों, उमा के साथ रथ पर बैठे हों और चतुर्मुख ब्रह्मा उस रथ के सारथी हों, शिव का रूप धरे शिवलोक को जा रहे हों। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! वह प्रसन्न हों और दूसरे शिव के समान क्रोध करते हों। वह भक्त अपनी इच्छानुसार शिवलोक में महान भोगों को भोगकर पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर वहीं पर मुक्त जो जाता है।।५२-५४।। बुद्धिमान भक्त जो कि शिव जी की ऐसी मूर्त्ति बनवाकर स्थापित करता है जिसमें शिव गंगा को धारण किये हों, सुख से बैठे हों, चन्द्रमा को शिर पर धारण किये हों, गंगा सहित उमा बायीं गोद में बैठी हों, शिव, विनायक, स्कन्द, ज्येष्ठा, दुर्गा, भास्कर, सोम, ब्रह्माणी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, बाराही,

इंद्राणीं चैव चामुंडां वीरभद्रसमन्विताम्।
विघ्नेशेन च यो धीमान् शिवसायुज्यमाप्नुपात्॥५८॥

लिंगमूर्तिं महाज्वालामालासंवृतमव्ययम्। लिंगस्य मध्ये वै कृत्वा चंद्रशेखरमीश्वरम्॥५९॥
व्योम्नि कुर्यात्तथा लिंगं ब्रह्माणं हंसरूपिणम्। विष्णुं वराहरूपेण लिंगस्याधस्त्वधोमुखम्॥६०॥
ब्रह्माणं दक्षिणे तस्य कृतांजलिपुटं स्थितम्। मध्ये लिंगं महाघोरं महांभसि च संस्थितम्॥६१॥
कृत्वा भक्त्या प्रतिष्ठाप्य शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥
क्षेत्रसंरक्षकं देवं तथा पाशुपतं प्रभुम्॥६२॥
कृत्वा भक्त्या यथान्यायं शिवलोके महीयते॥६३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवमूर्तिप्रतिष्ठाफलकथनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥७६॥

वरदा, इन्द्राणी, चामुण्डा, चीरभद्र और विघ्नेश सहित विराजमान हों। ऐसी मूर्त्ति की स्थापना करने वाला शिव का सायुज्य प्राप्त करता है।।५५-५८।। शिव जी की अधोलिखित ऐसी मूर्त्ति को बनवाकर जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक स्थापित करे जिसमें अव्यय शिव जी लिंग के रूप में हों। जो ज्वालाओं (लपटों) के समूह से घिरे हों। लिंग के मध्य में चन्द्रधारण किये स्थित हों, लिंग को आकाश में बनवाया जाय। हंस रूपधारी ब्रह्मा हाथ जोड़े खड़े हों। विष्णु जी वराह का रूप धरे नीचे की ओर मुँह किये हुये हों और लिंग के निचले भाग में स्थित हों। भयानक महान् लिंग अति अधिक जलों के मध्य में स्थित हो। ऐसी मूर्त्ति की स्थापना भक्ति से करने से शिव का सायुज्य प्राप्त होता है। पवित्र क्षेत्र के रक्षक और क्षेत्रपाल के रूप में पशुपति शिव की मूर्त्ति बनवाकर भक्तिपूर्वक विधान के अनुसार स्थापित करने से व्यक्ति शिवलोक में सम्मान पाता है।।५९-६३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में शिवमूर्ति की प्रतिष्ठा का फल क़थन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७६॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

उपलेपनादि कथनम्

ऋषय ऊचुः

लिंगप्रतिष्ठापुण्यं च लिंगस्थापनमेव च। लिंगानां चैव भेदाश्च श्रुतं तव मुखादिह॥१॥
मृदादिरत्नपर्यंतैर्द्रव्यैः कृत्वा शिवालयम्। यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्फलं वक्तुमर्हसि॥२॥

सूत उवाच

यस्य भक्तोपि लोकेस्मिन्पुत्रदारगृहादिभिः। बाध्यते ज्ञानयुक्तश्चेन्न च तस्य गृहैस्तु किम्॥३॥
तथापि भक्ताः परमेश्वरस्य कृत्वेष्टलोष्टैरपि रुद्रलोकम्।
प्रयांति दिव्यं हि विमानवर्यं सुरेंद्रपद्मोद्भववंदितस्य॥४॥
बाल्यात्तु लोष्टेन शिवं च कृत्वा मृदापि वा पांसुभिरादिदेवम्।
गृहं च तादृग्विधमस्य शंभोः संपूज्य रुद्रत्वमवाप्नुवंति॥५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्त्या भक्तैः शिवालयम्। कर्तव्यं सर्वयत्नेन धर्मकामार्थसिद्धये॥६॥
केसरं नागरं वापि द्राविडं वा तथापरम्। कृत्वा रुद्रालयं भक्त्या शिवलोके महीयते॥७॥
कैलासाख्यं च यः कुर्यात्प्रासादं परमेष्ठिनः। कैलासशिखराकारैर्विमानैर्मोदते सुखी॥८॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

उपलेपन आदि कथन

ऋषिगण बोले

लिंग को तैयार करने और उसकी स्थापना और प्रतिष्ठापन का पुण्य और लिंगों के भेदों को हम लोगों ने आपके मुख से सुना। अब आप मृत्तिका (मिट्टी) से लेकर रत्नों तक से बनाये जाने वाले शिवालयों का जो फल मनुष्य को मिलता है, उसको कृपया बतायें।।१-२।।

सूत बोले

यदि कोई शिव का भक्त ज्ञानी है और अपने पुत्रों-पत्नियों और गृहों आदि से नहीं बाधा पहुँचाया जाता (तंग नहीं किया जाता) है तो उसको शिवालय बनवाने से क्या? फिर भी शिव के भक्त, इन्द्र और कमल से उत्पन्न ब्रह्मा द्वारा वंदित (नमस्कृत) दिव्य और उत्तम शिवालय, ईंटों और पत्थरों से बनवाते हैं। यहाँ तक कि बालभाव से यदि वे आदिदेव की मूर्त्ति मिट्टी, पत्थर या धूलि से भी बनाकर उसकी पूजा श्रद्धा और भक्ति से कहते हैं तो वे रुद्र लोक को जाते हैं और रुद्रत्व को प्राप्त करते हैं। अतः सब प्रकार से प्रयत्न करके धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिये भक्तों को भक्तिपूर्वक शिवालय बनवाना चाहिये।।३-६।। भक्त अपनी सामर्थ्य के अनुसार केसर, नागर या द्राविड़ में से किसी टाइप का शिवालय बनवाने से शिव लोक में सम्मान पाता है।।७।। वह जो कैलास नामक प्रसिद्ध प्रासाद (शिवालय) बनवाता है वह कैलास के शिखर के समान आकार वाले विमानों

मंदरं वा प्रकुर्वीत शिवाय विधिपूर्वकम्। भक्त्या वित्तानुसारेण उत्तमाधममध्यमम्॥९॥
मंदराद्रिप्रतीकाशैर्विमानैर्विश्वतोमुखैः । अप्सरोगणसंकीर्णैर्देवदानवदुर्लभैः॥१०॥
गत्वाशिवपुरं रम्यं भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्। ज्ञानयोगं समासाद्य गाणपत्यं लभेन्नरः॥११॥
यः कुर्यान्मेरुनामानं प्रासादं परमेष्ठिनः। स यत्फलमवाप्नोति न तत्सर्वैर्महामखैः॥१२॥
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्फलम्। तत्फलं सकलं लब्ध्वा शिववन्मोदते चिरम्॥१३॥
निषधं नाम यः कुर्यात्प्रासादं भक्तितः सुधीः। शिवलोकमनुप्राप्य शिववन्मोदते चिरम्॥१४॥
कुर्याद्वा यः शुभं विप्रा हिमशैलमनुत्तमम्। हिमशैलोपमैर्यानैर्गत्वा शिवपुरं शुभम्॥१५॥
ज्ञानयोगं समासाद्य गाणपत्यमवाप्नुयात्।
नीलाद्रिशिखराख्यं वा प्रासादं यः सुशोभनम्॥१६॥
कृत्वा वित्तानुसारेण भक्त्या रुद्राय शंभवे। यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्फलं प्रवदाम्यहम्॥१७॥
हिमशैले कृते भक्त्या यत्फलं प्राक्तवोदितम्। तत्फलं सकलं लब्ध्वा सर्वदेवनमस्कृतः॥१८॥
रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रैः सार्धं प्रमोदते। महेंद्रशैलनामानं प्रासादं रुद्रसंमतम्॥१९॥
कृत्वा यत्फलमाप्नोति तत्फलं प्रवदाम्यहम्। महेंद्रपर्वताकारैर्विमानैर्वृषसंयुतैः ॥२०॥
गत्वा शिवपुरं दिव्यं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्। ज्ञानं विचारितं रुद्रैः संप्राप्य मुनिपुंगवाः॥२१॥

में सुखपूर्वक आनन्द मनाता है।।८।। जो भक्त शिव के लिए भक्तिपूर्वक अपने वित्त के अनुसार उत्तम, अधम या मध्यम किसी श्रेणी का मंदर नामक शिवालय बनवाता है तो वह भक्त पुरुष मंदर पर्वत के समान चारों ओर मुख वाले, अप्सराओं से अधिष्ठित, देवों और दानवों की पहुँच से दुर्लभ विमानों से शिवपुर को जाकर यहाँ आनन्द मनाता है और अभीष्ट भोगों को भोगता है तथा ज्ञान का मार्ग प्राप्त करता है एवं गणों के स्वामी का पद (गाणपत्य पद) प्राप्त करता है।।९-११।। जो मेरु नाम शिवालय शिव (परमेष्ठी) के लिए बनवाता है वह जो फल पाता है वह फल सब बड़े यज्ञों के करने जप, दान, तीर्थों के दर्शन और वेदों के अध्ययन से भी नहीं प्राप्त होता है। वह शिव लोक को प्राप्त करके शिववत् आनन्द मनाता है।।१२-१३।। जो बुद्धिमान भक्त निषध नामक शिवालय भक्ति से बनवाता है वह शिवलोक को प्राप्त कर शिव के समान आनन्द मनाता है।।१४।।हे ब्राह्मणों! वह भक्त जो कि अनुपम हिमशैल नामक शिवालय बनवाता है, वह हिमशैल (हिमालय) के समान यानों से शिवपुर जाता है। वहाँ ज्ञान का मार्ग प्राप्त कर वह गाणपत्य पद प्राप्त करता है। नीलशिखर नामक शिवालय बनवाने से जो फल मिलता है उसको बताता हूँ। जो भक्त भक्तिपूर्वक अपने वित्त के अनुसार शिव के लिये नीलशिखर नामक प्रसाद बनवाता है वह हिमशैल में पूर्वोक्त सब फलों को प्राप्त करके सब देवों से नमस्कृत होकर रुद्र लोक को प्राप्त करके रुद्रों के साथ आनन्द मनाता है। अब मैं महेन्द्र शैल नामक प्रासाद बनवाने से जो फल मिलता है उसको बताता है। जो भक्त महेन्द्र शैल नामक प्रासाद बनवाता है वह महेन्द्र गिरि के समान विशाल विमानों से शिवपुर जाकर दिव्य, अभीष्ट भोगों को भोगकर रुद्रों से पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके सांसारिक भोगों को

विषयान् विषवत्त्यक्त्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्।
हेम्ना यस्तु प्रकुर्वीत प्रासादं रत्नशोभितम्॥२२॥
द्राविडं नागरं वापि केसरं वा विधानतः। कूटं वा मंडपं वापि समं वा दीर्घमेव च॥२३॥
न तस्य शक्यते वक्तुं पुण्यं शतयुगैरपि। जीर्णं वा पतितं वापि खंडितं स्फुटितं तथा॥२४॥
पूर्ववत्कारयेद्यस्तु द्वाराद्यैः सुशुभं द्विजाः। प्रासादं मंडपं वापि प्राकारं गोपुरं तु वा॥२५॥
कर्तुरप्यधिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः। वृत्त्यर्थं वा प्रकुर्वीत नरः कर्म शिवालये॥२६॥
यः स याति न संदेहः स्वर्गलोकं सबांधवः। यश्चात्मभोगसिद्ध्यर्थमपि रुद्रालये सकृत्॥२७॥
कर्म कुर्याद्यदि सुखं लब्ध्वा चापि प्रमोदते। तस्मादायतनं भक्त्या यः कुर्यान्मुनिसत्तमाः॥२८॥
काष्ठेष्टकादिभिर्मर्त्यः शिवलोके महीयते। प्रसादार्थं महेशस्य प्रासादो मुनिपुंगवाः॥२९॥
कर्तव्यः सर्वयत्नेन धर्मकामार्थमुक्तये। अशक्तश्चेन्मुनिश्रेष्ठाः प्रासादं कर्तुमुत्तमम्॥३०॥
संमार्जनादिभिर्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात्। संमार्जनं तु यः कुर्यान्मार्जन्या मृदुसूक्ष्मया॥३१॥
चान्द्रायणसहस्रस्य फलं मासेन लभ्यते। यः कुर्याद्वस्त्रपूतेन गंधगोमयवारिणा॥३२॥
आलेपनं यथान्यायं वर्षचांद्रायणं लभेत्। अर्धक्रोशं शिवक्षेत्रं शिवलिंगात्समंततः॥३३॥

विष के समान त्याग कर शिव का सायुज्य प्राप्त करता है।।१५-२१।। यदि कोई व्यक्ति जो रत्नों से जड़ित सोने का प्रासाद बनवाता है चाहे वह नागर द्राविड या केसर टाइप हो विधि विधान के अनुसार बनवाया जाय या चोटी (कूट) या मंडप जो कि आकार में चौकोर (सम) या दीर्घ हो वह बहुत पुण्य प्राप्त करता है। उसके पुण्य का वर्णन सौ युगों में भी नहीं किया जा सकता है।।२२-२३।। अगर कोई पुराने जीर्ण शिवालय की मरम्मत कराता है या फिर से बनवाता है। जीर्णोद्धार करता है या गिरे हुये, टूटे हुये शिवालयों के द्वार आदि का पुनर्निर्माण कराता है, यदि वह प्रासाद, मण्डप, प्राकार और गोपुर (बाहरी द्वार या फाटक) को फिर से मरम्मत कराके (पहिले की तरह) करा देता है तो उसको असली बनवाने वाले से अधिक फल मिलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। शिवालय में जो कोई कुछ काम करता है चाहे वह उसकी मजदूरी (वृत्ति) के रूप में ही हो वह अपने कुटुम्ब सहित स्वर्ग लोक को जाता है। जो कोई शिवालय में एक बार भी अपनी प्रसन्नता के लिये कुछ कार्य करता है, वह भी सुख पाकर आनन्द करता है। हे ऋषीश्वरों! जो व्यक्ति श्रद्धा और भक्तिपूर्वक काष्ठों या ईटों का शिवालय बनवाता है वह शिव लोक में सम्मान पाता है।।२४-२८।। हे ऋषीश्वरों! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये शिव की कृपा हेतु शिव के प्रासाद का निर्माण यत्नपूर्वक करना चाहिये। हे श्रेष्ठ मुनियों! यदि कोई शिवालय बनवाने में असमर्थ हो तो वह झाड़ू-पोछा लगाने आदि से शिव की कृपा प्राप्त करने का प्रयास करे। ऐसा करने से उसकी सब कामनाएँ पूरी होती हैं। वह जो कि मुलायम और बारीक झाड़ू से बटोरता, साफ करता है। वह एक मास में हजार चान्द्रायण व्रत का फल पाता है। जो वस्त्र से छने हुये सुगंधित गाय के गोबर के जल से विधिपूर्वक आलेपन करता है, वह एक वर्ष तक किये चान्द्रायण व्रत का फल पाता है।।२९-३२।। शिव लिंग के चारों ओर आधा कोस के भीतर के क्षेत्र को शिव क्षेत्र कहते हैं। जो अपने दुस्त्यज्य (कठिनाई से छोड़े

यस्त्यजेद्दुस्त्यजान्प्राणञ्शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।
स्वायंभुवस्य मानं हि तथा बाणस्य सुव्रताः॥३४॥
स्वायंभुवे तदर्धं स्यात्स्यादार्षे च तदर्धकम्। मानुषे च तदर्धं स्यात्क्षेत्रमानं द्विजोत्तमाः॥३५॥
एवं यतीनामावासे क्षेत्रमानं द्विजोत्तमाः। रुद्रावतारे चाद्यं यच्छिष्ये चैव प्रशिष्यके॥३६॥
नरावतारे तच्छिष्ये तच्छिष्ये च प्रशिष्यके। श्रीपर्वते महापुण्ये तस्य प्रांते च वा द्विजाः॥३७॥
तस्मिन्वा यस्त्यजेत्प्राणाञ्छिवसायुज्यमाप्नुयात्।
वाराणयास्यां तथाप्येवमविमुक्ते विशेषतः॥३८॥
केदारे च महाक्षेत्रे प्रयागे च विशेषतः। कुरुक्षेत्रे च यः प्राणन्संत्यजेद्याति निर्वृतिम्॥३९॥
प्रभासे पुष्करेऽवंत्यां तथा चैवामरेश्वरे। वणीशेलाकुले चैव मृतो याति शिवात्मताम्॥४०॥
वाराणस्यां मृतो जंतुर्न जातु जंतुतां व्रजेत्। त्रिविष्टपे विमुक्ते च केदारे संगमेश्वरे॥४१॥
शालके वा त्यजेत्प्राणांस्तथा वै जंबुकेश्वरे। शुक्रेश्वरे वा गोकर्णे भास्करेशे गुहेश्वरे॥४२॥
हिरण्यगर्भे नंदीशे स याति परमां गतिम्। नियमैः शोष्य यो देहं त्यजेत्क्षेत्रे शिवस्य तु॥४३॥
स याति शिवतां योगी मानुषे दैविकेपि वा। आर्षे वापि मुनिश्रेष्ठास्तथा स्वायंभुवेपि वा॥४४॥
स्वयंभूते तथा देवे नात्र कार्या विचारणा। आधायाग्निं शिवक्षेत्रे संपूज्य परमेश्वरम्॥४५॥
स्वदेहपिंडं जुहुयाद्यः स याति परां गतिम्। यावत्तावन्निराहारो भूत्वा प्राणान्परित्यजेत्॥४६॥

जाने योग्य) प्राणों को शिव क्षेत्र में छोड़ता (मरता) है वह शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। हे सुव्रतो! स्वम्भूव में बाणलिंग की यह माप है। हे उत्तम ब्राह्मणों! उसके माप की आधी माप आर्ष में और उसकी भी आधी मानुष क्षेत्र में होती है। इस प्रकार यतियों के आवास में क्षेत्र माप को जानो। जो कोई भी अपने प्राणों को इन क्षेत्रों में त्याग देता है वह शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। जैसे रुद्रावतार नरावतार और पवित्र महापुण्य श्रीपर्वत के प्रान्त (सीमा) के भीतर। उन यतियों के शिष्यों और शिष्यों के शिष्यों (प्रशिष्यों) को भी यह लाभ मिलता है।।३३-३७।। वाराणसी में तथा विशेष रूप से अविमुक्त में तथा केदार, प्रयाग और कुरुक्षेत्र में जो प्राण त्याग करता है वह मोक्ष प्राप्त करता है।।३८-३९।। प्रभास, पुष्कर, अवंती, अमरेश्वर, वणीशेलाकुल में मरता है। वह शिव का सायुज्य प्राप्त करता है।।४०।। वाराणसी में मरने वाले प्राणी का पुनर्जन्म नहीं होता है। वह जो अपने प्राणों को त्रिविष्टप, केदार महाक्षेत्र प्रयाग और कुरुक्षेत्र में अपने प्राणों का त्याग करता है उसको मोक्ष मिलता है। अविमुक्त केदार, संगमेश्वर, शालक, जंबुकेश्वर, शुक्रेश्वर, गोकर्ण, भास्करेश, गुहेश्वर, हिरण्यगर्भ और, नंदीश में प्राणत्याग करता है वह परम गति को प्राप्त करता है। जो नियमों द्वारा अपने शरीर को सुखाकर शिव के किसी भी क्षेत्र में अपने शरीर का त्याग करता है चाहे वह मानुष या दिव्य क्षेत्र हो, चाहे वह ऋषियों द्वारा बनाया हुआ (आर्ष क्षेत्र) या स्वयं (स्वमेव) उत्पन्न हो, वह योगी होता है और शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। हे ऋषियों! चाहे शिव की मूर्त्ति स्वयं बनी हो या देवों द्वारा स्थापित हो, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है। वह जो शिव के क्षेत्र में शिव जी की भलीभाँति पूजा करके चित्र बनाकर उसमें आग लगाकर अपने शरीर को होम कर देता है वह परम गति को प्राप्त करता है।।४१-४५।। कोई भी व्यक्ति जो निराहार रहकर अपने

शिवक्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः शिवसायुज्यमाप्नुयात्। छित्त्वा पादद्वयं चापि शिवक्षेत्रे वसेत्तु यः॥४७॥
स याति शिवतां चैव नात्र कार्या विचारणा। क्षेत्रस्य दर्शनं पुण्यं प्रवेशस्तच्छताधिकः॥४८॥
तस्माच्छतगुणं पुण्यं स्पर्शनं च प्रदक्षिणम्। तस्माच्छतगुणं पुण्यं जलस्नानमतः परम्॥४९॥
क्षीरस्नानं ततो विप्राः शताधिकमनुत्तमम्। दध्ना सहस्रमाख्यातं मधुना तच्छताधिकम्॥५०॥
घृतस्नानेन चानंतं शार्करे तच्छताधिकम्। शिवक्षेत्रसमीपस्थां नदीं प्राप्यावगाह्य च॥५१॥
त्येजेद्देहं विहायान्नं शिवलोके महीयते। शिवक्षेत्रसमीपस्था नद्यः सर्वाः सुशोभनाः॥५२॥
वापीकूपतडागाश्च शिवतीर्थ इति स्मृताः। स्नात्वा तेषु नरो भक्त्या तीर्थेषु द्विजसत्तमाः॥५३॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः। प्रातः स्नात्वा मुनिश्रेष्ठाः शिवतीर्थेषु मानवः॥५४॥
अश्वमेधफलं प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति। मध्याह्ने शिवतीर्थेषु स्नात्वा भक्त्या सकृन्नरः॥५५॥

गंगास्नानसमं पुण्यं लभते नात्र संशयः।
अस्तं गते तथा चार्के स्नात्वा गच्छेच्छिवं पदम्॥५६॥

पापकंचुकमुत्सृज्य शिवतीर्थेषु मानवः। द्विजास्त्रिषवणं स्नात्वा शिवतीर्थे सकृन्नरः॥५७॥
शिवसायुज्यमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा। पुराथ सूकरः कश्चित श्वानं दृष्ट्वा भयात्पथि॥५८॥
प्रसंगाद्वारमेकं तु शिवतीर्थेऽवगाह्य च। मृतः स्वयं द्विजश्रेष्ठा गाणपत्यमवाप्तवान्॥५९॥

प्राणों को शिव क्षेत्र में त्याग करता है वह शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। अपने दोनों पैरों को काटकर जो शिव क्षेत्र में वास करता है वह शिवत्व को प्राप्त होता है। इसमें विचार करने अर्थात् संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है। शिव क्षेत्र का दर्शन करने से पुण्य मिलता है। उससे सौ गुना अधिक पुण्य वहाँ जाने (प्रवेश करने) पर, उससे सौ गुना अधिक स्पर्श और प्रदक्षिणा करने से पुण्य मिलता है। जल से स्नान कराने से उसका सौ गुना अधिक पुण्य मिलता है।।४६-४९।। हे ब्राह्मणों! दूध से मूर्ति का स्नान कराने से उससे सौ गुना अधिक पुण्य, दही से स्नान कराने से हजार गुना अधिक और मधु से स्नान कराने से उससे भी सौ गुना अधिक फल मिलता है।।५०।। घी से स्नान कराने से अनन्त पुण्य, शक्कर से स्नान कराने से उससे सौ गुना फल मिलता है। शिव क्षेत्र में स्थित नदी को जाकर वहाँ स्नान करके अन्न का त्याग करके, देह को छोड़ देने (मरने) से व्यक्ति शिवलोक में सम्मान पाता है। शिवक्षेत्र की या उसके समीप स्थित सभी नदियाँ बहुत पवित्र होती हैं।।५१-५२।। बायीं, कूप और तालाब शिव तीर्थ हैं अर्थात् शिव जी के पवित्र जल हैं। हे ब्राह्मणों! उनमें स्नान करने से मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है। इसमें संदेह नहीं। हे मुनीश्वरों! शिवतीर्थों में प्रातः स्नान करके मनुष्य सौ अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त करके शिव के लोक को जाता है। दोपहर में मनुष्य उनमें भक्ति से एक बार स्नान करके गंगा स्नान करने का पुण्य पाता है। इसमें संदेह नहीं है। सूर्यास्त के बाद स्नान करने से मनुष्य शिव के पद को प्राप्त करता है।।५३-५६।। मनुष्य अपने पाप की कंचुक को शिव तीर्थों में छोड़कर शिव के पद (स्थान) को प्राप्त करता है। शिव तीर्थों में तीन बार स्नान एक दिन में (तिहरा स्नान) एक बार करने से शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। इसमें विचार करने अर्थात् संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है। पहिले एक कोई सुअर रास्ते

यः प्रातर्देवदेवेशं शिवं लिंगस्वरूपिणम्। पश्येत्स याति सर्वस्मादधिकां गतिमेय च॥६०॥
मध्याह्ने च महादेवं दृष्ट्वा यज्ञफलं लभेत्। सायाह्ने सर्वयज्ञानां फलं प्राप्य विमुच्यते॥६१॥
मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्च महत्तरैः। तथोपपातकैश्चैव पापैश्चैवानुपातकैः॥६२॥
संक्रमे देवमीशानं दृष्ट्वा लिंगाकृतिं प्रभुम्।
मासेन यत्कृतं पापं त्यक्त्वा याति शिवं पदम्॥६३॥
अयने चार्धमासेन दक्षिणे चोत्तरायणे। विषुवे चैव संपूज्य प्रयाति परमां गतिम्॥६४॥
प्रदक्षिणात्रयं कुर्याद्यः प्रासादं समंततः। सव्यापसव्यन्यायेन मृदुगत्या शुचिर्नरः॥६५॥
पदेपदेऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नुप्रात्। वाचा यस्तु शिवं नित्यं संरौति परमेश्वरम्॥६६॥
सोपि याति शिवं स्थानं प्राप्य किं पुनरेव च। कृत्वा मंडलकं क्षेत्रं गंधगोमयवारिणा॥६७॥
मुक्ताफलमयैश्चूर्णैरिंद्रनीलमयैस्तथा । पद्मरागमयैश्चैव स्फाटिकैश्च सुशोभनैः॥६८॥
तथा मारकतैश्चैव सौवर्णै राजतैस्तथा। तद्वर्णैर्लौकिकैश्चैव चूर्णैर्वित्तविवर्जितैः॥६९॥
आलिख्य कमलं भद्रं दशहस्तप्रमाणतः। सकर्णिकं महाभागा महादेवसमीपतः॥७०॥
तत्रावाह्य महादेवं नवशक्तिसमन्वितम्। पंचभिश्च तथा षड्भिरष्टाभि श्चेष्टदं परम्॥७१॥

में कुत्ते को देखकर डर के मारे शिव तीर्थ में गिर पड़ा। उसमें एक बार डुबकी लगा लिया और मर गया। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! उसने गाणपत्य पद को प्राप्त किया।।५७-५९।। वह व्यक्ति जो तड़के देवेश शिव का लिंग रूप में दर्शन करता है वह सबसे उच्च पद प्राप्त करता है।।६०।। मध्याह्न (दोपहर) में महादेव जी का दर्शन करने से यज्ञों का फल प्राप्त करता है और मुक्त हो जाता है।।६१।। वह मनसा, वाचा, कर्मणा (मानसिक, वाचिक और कायिक) महापापों, उपपातकों (पापों) और अनुपातकों से मुक्त हो जाता है।।६२।। लिंग के रूप में ईशान शिव जी का उत्तरायण से दक्षिणायन सूर्य के संक्रमण काल में दर्शन करने से एक मास में किये गये पापों से मुक्त होकर शिव के पद को प्राप्त करता है।।६३।। दक्षिणायन सूर्य के प्रारम्भ में शिव का दर्शन करने से और उत्तरायण सूर्य में दर्शन करने से आधे मास में किये गये पापों से मुक्ति मिलती है। विषु में शिव की पूजा करने से परम गति प्राप्त होती है।।६४।। जो शुद्ध और पवित्र मनुष्य शिव के प्रासाद की चारों ओर से तीन प्रदक्षिणा सव्य और अपसव्य (सीधे और उल्टे) धीमी गति से करता है वह प्रत्येक पद (कदम) पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति वाणी से शिव जी का नित्य जप करता है वह शिवलोक में निवास पाता है। फिर उसको क्या पाने को बाकी रह जाता है।।६५-६६।। भक्त सुगंधित गाय के गोबर के जल को छिड़ककर कर्णिका सहित कमल का एक मण्डल बनावे। इस प्रयोजन के लिये मोतियों, इन्द्रनील, पद्यराग, स्फटिक, मरकत, सुवर्ण, के चूर्ण का उपयोग करे। जो व्यक्ति उतने धनी नहीं हैं वे उसी रंग के समान रंग के अन्य सामग्री के चूर्ण को काम में लावें। वह शुभ मण्डल दस हाथ विस्तार में हो। यह महादेव के समीप हो। उसमें दस शक्तियों सहित महादेव का आवाहन करे जो पाँच-छः ज्ञानेन्द्रियों और आठ शरीरों (पृथ्वी आदि) इष्ट कामनाओं को देने वाले हैं। फिर भक्त दस कोण वाले मण्डल में आठ शरीर या दस ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से और बाद में ईशान की पूजा करे।

पुनरष्टाभिरीशानं दशारे दशभिस्तथा। पुनर्बाह्ये च दशभिः संपूज्य प्रणिपत्य च॥७२॥
निवेद्य देवदेवाय क्षितिदानफलं लभेत्। शालिपिष्टादिभिर्वापि पद्ममालिख्य निर्धनः॥७३॥
पूर्वोक्तमखिलं पुण्यं लभते नात्र संशयः। द्वादशारं तथालिख्य मंडले पद्ममुत्तमम्॥७४॥
रत्नचूर्णादिभिश्चूर्णैस्तथा द्वादशमूर्तिभिः। मंडलस्य च मध्ये तु भास्करं स्थाप्य पूजयेत्॥७५॥
ग्रहैश्च संवृतं वापि सूर्यसायुज्यमुत्तमम्। एवं प्राकृतमप्यार्यां षडस्त्रं परिकल्प्य च॥७६॥
मध्यदेशे च देवेशीं प्रकृतिं ब्रह्मरूपिणीम्। दक्षिणे सत्त्वमूर्तिं च वामतश्च रजोगुणम्॥७७॥
अग्रतस्तु तमोमूर्तिं मध्ये देवीं तथांबिकाम्। पंचभूतानि तन्मात्रापंचकं चैव दक्षिणे॥७८॥
कर्मेंद्रियाणि पंचैव तथा बुद्धींद्रियाणि च। उत्तरे विधिवत्पूज्य षडस्त्रे चैव पूजयेत्॥७९॥
आत्मानं चांतरात्मानं युगलं बुद्धिमेव च। अहंकारं च महता सर्वयज्ञफलं लभेत्॥८०॥
एवं वः कथितं सर्वं प्राकृतं मंडलं परम्। अतो वक्ष्यामि विप्रेंद्राः सर्वकामार्थसाधनम्॥८१॥
गोचर्ममात्रमालिख्य मंडलं गोमयेन तु। चतुरस्त्रं विधानेन चाद्भिरभ्युक्ष्य मंत्रवित्॥८२॥
अलंकृत्य वितानाद्यैश्छत्रैर्वापि मनोरमैः। बुद्बुदैरर्धचंद्रैश्च हैमैरश्वत्थपत्रकैः॥८३॥
सितैर्विकसितैः पद्मै रक्तैर्नीलोत्पलैस्तथा। मुक्तादामैर्वितानांते लंबितस्तु सितैर्ध्वजैः॥८४॥

उसके बाद झुककर प्रणाम करे और देवेश को नैवेद्य अर्पण करे (भोग लगावे)। उस भक्त को इस प्रकार पूजा करने से भूमि के दान का फल मिलता है। निर्धन भक्त चावलों के चूर्ण आदि से कमल का मण्डप बनावे तब उसको पूर्वोक्त पुण्य मिलता है इसमें सन्देह नहीं है।।६७-७३।। भक्त मण्डप में बारह अर (साइड) वाले मण्डप को खींचे (बनावे) उन रत्नों के चूर्ण से अच्छा कमल को बनावे। उस मण्डप के मध्य में बारह देवों के सहित भास्कर को स्थापित करे। तब ग्रहों से घिरे सूर्य की पूजा करे। वह सूर्य का सायुज्य प्राप्त करे। इस प्रकार फिर वह प्रकृति में स्थित मूर्तियों (देवों) को लाल खरिया से छः साइड वाले अंक (फीगर) को खींचकर मध्य भाग में ब्रह्मरूपिणी, देवों की देवी, प्रकृति की पूजा करे। दाहिनी ओर सत्त्व गुण की, बाईं ओर रजो गुण की और सामने (आगे) दसों गुण वाली मूर्त्ति को तथा मध्य में अम्बिका देवी की पूजा करे। दक्षिण में पंचमहाभूतों और तन्मात्राओं की पूजा करे। उत्तर में भक्त पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों की विधिवत् पूजा करे। षडस्र (छः साइड वाले फीगर) में दो आत्माओं (आत्मा और अन्तरात्मा) बुद्धि, अहंकार और महत् तत्त्व सहित की पूजा करे। तब वह सब यज्ञों के फल को पाता है।।७४-८०।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! इस प्रकार दस प्राकृत मण्डल को मैंने तुम सब को बताया। अब मैं सब कामनाओं को पूरा करने वाले साधन को बताऊँगा।।८१।। मंत्र जानने वाला भक्त मंत्रों से भूमि पर जल को छिड़ककर गाय के गोबर से सींचे। तब भक्त गोचर्म के बराबर अर्थात् एक-सौ पचास हाथ एक ओर वर्णकार मण्डल बनाकर उसको मनोहर वितानों (चाँदनी) या मनोहर छत्रों से अलंकृत करें। तब वह पीपल की पत्तियों या सोने के बने हुये अर्ध चन्द्राकार बुद्बुदों से सजावे। वह उसको पूर्ण विकसित श्वेत लाल या नीले कमलों से सजावे। सफेद ध्वजों से युक्त मोती की मालाओं (मोतियों) को वितान के अन्त में कोनों में लटकावे। इसको सफेद झंडी से और श्वेत पताकाओं से सजावे और पल्लव की वैजयन्ती मिट्टी के सफेद पात्र

सितमृत्पात्रकैश्चैव सुश्लक्ष्णैः पूर्णकुंभकैः। फलपल्ल्वमालाभिर्वैजयंतीभिरंशुकैः।।८५।।
पंचाशद्दीपमालाभिर्धूपैः पंचविधैस्तथा। पंचाशद्दलसंयुक्तमालिखेत्पद्ममुत्तमम् ।।८६।।
तत्तद्वर्णैस्तथा चूर्णैः श्वेतचूर्णैरथापि वा। एकहस्तप्रमाणेन कृत्वा पद्मं विधानतः।।८७।।
कर्णिकायां न्यसेद्देवं देव्या देवेश्वरं भवम्। वर्णानि च न्यसेत्पत्रे रुद्रैः प्रागाद्यनुक्रमात्।।८८।।
प्रणवादिनमोंतानि सर्ववर्णानि सुव्रताः। संपूज्यैवं मुनिश्रेष्ठा गंधपुष्पादिभिः क्रमात्।।८९।।
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पंचाशद्विधिपूर्वकम्। अक्षमालोपवीतं च कुंडलं च कमंडलुम्।।९०।।
आसनं च तथा दंडमुष्णीषं वस्त्रमेव च। दत्वा तेषां मुनींद्राणां देवदेवाय शंभवे।।९१।।
महाचरुं निवेद्यैवं कृष्णं गोमिथुनं तथा। अंते च देवदेवाय दापयेच्चूर्णमण्डलम्।।९२।।
यागोपयोगद्रव्याणि शिवाय विनिवेदयेत्। ओंकराद्यं जपेद्धीमान्प्रतिवर्णमनुक्रमात्।।९२।।
एवमालिख्य यो भक्त्या सर्वमंडलमुत्तमम्। यत्फलं लभते मर्त्यस्तद्वदामि समासतः।।९४।।

सांगान्वेदान्यथान्यायमधीत्य विधिपूर्वकम्।
इष्ट्वा यज्ञैर्यथान्यायं ज्योतिष्टोमादिभिः क्रमात्।।९५।।

ततो विश्वजिदंतैश्च पुत्रानुत्पाद्य तादृशान्। वानप्रस्थाश्रमं गत्वा सदारः साग्निरेव च।।९६।।

चांद्रायणादिकाः सर्वाः कृत्वा न्यस्य क्रिया द्विजाः।
ब्रह्मविद्यामधीत्यैव ज्ञानमासाद्य यत्नतः।।९७।।

और मनोहर जल से भरे कुंभ (घड़े) रखे जायँ। पाँच प्रकार के सुगंधित धूप और एक पंक्ति में दीपक रखे जायँ।।८२-८५।। भक्त पचास दलों (पत्तों) का एक सुन्दर कमल बनावे। विविध रंगों के चूर्णों से या केवल सफेद चूर्ण से एक सुन्दर कमल बनावे। कमल विस्तार में एक हाथ में हो। यह विधान के अनुसार बनाया जाय। भक्त वेदी में देवी के सहित देवेश रुद्र की स्थापना करे। पद्म के दलों में पूर्व दिशा आदि के क्रम से रुद्रों के साथ मन्त्रों को लिखे। हे सुव्रतो! मंत्र के आदि में प्रणव लगा हो। अन्त में रुद्रों के नाम लिखे हों। इस प्रकार गंध, धूप और सुगंधित फूलों से पूजा करके भक्त पचास ब्राह्मणों को विधिपूर्वक भोजन करावे। उनको जपमाला, यज्ञोपवीत, कुण्डल, कमण्डल, (जल पात्र लोटा) आसन, छड़ी (दण्ड), पगड़ी (साफा) और वस्त्र दान करे। देवेश शिव को महाचरु नैवेद्य के रूप में भेंट करे। एक काली गाय और एक काला बैल शिव के लिये दे। अन्त में चूर्णों से बनाये गये मण्डल को वह शिवजी को समर्पित करे या उपयोग किये गये सामग्री और सामान को शिव को निवेदित करे। बुद्धिमान भक्त ओंकार से आरम्भ करके प्रतिअक्षर शिव मन्त्र का जप करे। जो इस प्रकार का अनुपम मण्डल भक्ति से बनाकर पूजा करता है उसके फल को मैं संक्षेप में कहता हूँ।।८६-९४।। रंगीन मण्डल को देखकर और उसकी पूजा करके भक्त को वही फल मिलता है जो कि एक योगी को प्राप्त होता है। जब वह अंगों सहित वेदों का अध्ययन कर लेता है, जब वह ज्योतिष्टोम आदि से विश्वजित तक के यज्ञों के द्वारा भगवान की पूजा कर लेता है, तब वह गृहस्थ के रूप में अपने समान पुत्रों को उत्पन्न करके वानप्रस्थ आश्रम में अपनी पत्नी और अग्नि के साथ प्रवेश करता है और अग्नि होम कार्य करता रहता है, सब व्रतों जैसे चान्द्रायण आदि करता है, जब वह सब धार्मिक कृत्य यज्ञ, व्रत, अनुष्ठान आदि त्याग करके ब्रह्मा विद्या को अध्ययन

ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य योगी यत्काममाप्नुयात्। तत्फलं लभते सर्वं वर्णमंडलदर्शनात्॥९८॥
येन केनापि वा मर्त्यः प्रलिप्यायतनाग्रतः। उत्तरे दक्षिणे वापि पृष्ठतो वा द्विजोत्तमाः॥९९॥
चतुष्कोणं तु वा चूर्णैरलंकृत्य समंततः। पुष्पाक्षतादिभिः पूज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१००॥
यस्तु गर्भगृहं भक्त्या सकृदालिप्य सर्वतः। चंदनाद्यैः सकर्पूरगंधद्रव्यैः समंततः॥१०१॥
विकीर्य गंधकुसुमैर्धूपैर्धूप्य चतुर्विधैः। प्रार्थयेद्देवमीशानं शिवलोकं स गच्छति॥१०२॥
तत्र भुक्त्वा महाभोगान्कल्पकोटिशतं नरः। स्वदेहगंधकुसुमैः पूरेयञ्छिवमंदिरम्॥१०३॥
क्रमाद्गांधर्वमासाद्य गंधर्वैश्च सुपूजितः।
क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजा भवति वीर्यवान्॥१०४॥
आदिदेवो महादेवः प्रलयस्थितिकारकः॥
सर्गश्च भुवनाधीशः सर्वव्यापी सदाशिवः। शिवब्रह्मामृतं ग्राह्यं मोक्षसाधनमुत्तमम्॥१०५॥
व्यक्ताव्यक्तं सदा नित्यमचिंत्यमर्चयेत्प्रभुम्॥१०६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे उपलेपनादिकथनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥७७॥

करके, पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, ज्ञान से ज्ञेय (ब्रह्म) को देखकर योगी हो जाता है। वह योगी जो फल प्राप्त करता है वह सब फल वर्ण मण्डल के दर्शन से मिलता है।।९५-९८।। हे उत्तम ब्राह्मणों! शिवालय के सामने के भाग को जिस किसी भी सामग्री से लीपकर शिवालय के उत्तर, दक्षिण या पश्चिम चतुष्कोण मण्डल बनाकर चूर्णों, फूलों और कच्चे चावलों (अक्षतों) आदि से सजाता है और तब वह मूर्त्ति की फूलों, अक्षतों आदि से पूजा करता है तो वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।।९९-१००।। वह जो कि भक्ति से गर्भगृह को एक बार भी चारों ओर लीपकर और साफ करता है गंध आदि से सुगंधित सामग्री, घिसे हुये चन्दन, कपूर से तथा सुगंधित फूलों को विखेरकर स्थान को सुगंधित करता है। चार प्रकार के धूपों से धूपित करके ईशान देव की प्रार्थना करता है, वह शिव लोक को जाता है।।१०१-१०२।। वहाँ पर मनुष्य सौ करोड़ कल्प तक महान् भोगों को भोगता है। शिव मन्दिर को जिन सुगंधित फूलों से सुगंधित करता है उन्हीं के समान फूलों से उनकी देह सुगंधित होती है। इस सुगंधित देह को पाकर वह गन्धर्व लोक को जाता है। वहाँ गन्धर्वों से पूजित होकर क्रम से इस लोक में आकर पराक्रमी राजा होता है।।१०३-१०४।। महादेव आदिदेव हैं। वे सृष्टि को रचने, पालने और संहार करने के कारण हैं। सदाशिव सर्वव्यापी और तीनों लोकों के स्वामी हैं। शिव ब्रह्म का अमृत मोक्ष प्राप्ति के लिये उत्तम साधन के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिये। अतः नित्य, अनित्य एवं व्यक्त तथा अव्यक्त शिव की सदा पूजा करनी चाहिये।।१०५-१०६।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में उपलेपन आदि कथन (शिवालय का फल) नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७७॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

भक्तिमहिमाकथनम्

सूत उवाच

वस्त्रपूतेन कार्यं चैवोपलेपनम्। शिवक्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा नान्यथा सिद्धिरिष्यते॥१॥
आपः पूता भवंत्येता वस्त्रपूताः समुद्धताः। अफेना मुनिशार्दूला नादेयाश्च विशेषतः॥२॥
तस्माद्वै सर्वकार्याणि दैविकानि द्विजोत्तमाः। अद्भिः कार्याणि पूताभिः सर्वकार्यप्रसिद्धये॥३॥
जंतुभिर्मिश्रिता ह्यापः सूक्ष्माभिस्तान्निहत्य तु। यत्पापं सकलं चाद्भिरपूताभिश्चिरं लभेत्॥४॥
संमार्जने तथा नृणां मार्जने च विशेषतः। अग्नौ कंडनके चैव पेषणे तोयसंग्रहे॥५॥
हिंसा सदा गृहस्थानां तस्माद्धिंसां विवर्जयेत्। अहिंसेयं परो धर्मः सर्वेषां प्राणिनां द्विजाः॥६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतं समाचरेत्। तद्दानमभयं पुण्यं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥७॥
तस्मात्तु परिहर्तव्या हिंसा सर्वत्र सर्वदा। मनसा कर्मणा वाचा सर्वदाऽहिंसकं नरम्॥८॥
रक्षंति जंतवः सर्वे हिंसकं बाधयंति च। त्रैलोक्यमखिलं दत्त्वा यत्फलं वेदपारगे॥९॥
तत्फलं कोटिगुणितं लभतेऽहिंसको नरः। मनसा कर्मणा वाचा सर्वभूतहिते रताः॥१०॥

अटहत्तरवाँ वर्णन

भक्ति महिमा वर्णन

सूत बोले

हे मुनीश्वरों! शिव जी की पवित्र तेजपूर्ण मूर्त्ति को वस्त्र से छने हुये जल से भलीभाँति धोना चाहिये और कपड़े से पोंछना चाहिये। अन्यथा सिद्धि नहीं प्राप्त होगी।।१।। जल जिसमें फेन न हो, विशेष रूप से नदियों का जल लेना चाहिये। जब उस जल को वस्त्र से छान लिया जाता है तो पवित्र हो जाता है।।२।। अतः हे उत्तम ब्राह्मणों! सब कार्यों की सिद्धि के लिये सब दैविक पवित्र धार्मिक कृत्य को शुद्ध किये हुये जल से किया जाना चाहिये।।३।। जल सूक्ष्म कीटाणुओं से युक्त रहता है। उनको बिना साफ किये पवित्र कार्य में प्रयोग करने से वही पाप लगता है जो उन कीटाणुओं को मारने से लगता है।।४।। हे ब्राह्मणों! गृहस्थ लोगों को सदा झाड़ू लगाने, पोंछने, अग्नि का उपयोग करने, कूटने-पीसने, जल का संग्रह करने, आदि में अहिंसा भाव को अपनाना चाहिये। हिंसा को बचाना चाहिये। सब जीवित प्राणियों के प्रति अहिंसा भाव रखना सबसे बड़ा गुण है। अहिंसा परम धर्म है।।५-६।। अतः सब उपाय से जल वस्त्र द्वारा पवित्र कर लेना चाहिये। सब दानों से उत्तम वह दान होता है जो विशेष रूप से अभय देने वाला और पुण्यदायक हो।।७।। अतः हिंसा को सब स्थानों में सब अवसरों पर बचाना चाहिये। सब हिंसक जन्तु उस मनुष्य को हानि नहीं पहुँचाते हैं जो कि मन से, वाणी से और शरीर से हिंसा को करने में बाधा डालते हैं। वे उनको हानि पहुँचाते हैं उनको चोट पहुँचाते हैं जो हिंसक हैं। वेदों के विशेष विद्वानों और तीनों लोकों को दान देने वाले व्यक्तियों से वह मनुष्य हजार गुना फल प्राप्त करता है जो

दयादर्शितपंथानो रुद्रलोकं व्रजंति च। स्वामिवत्परिरक्षंति बहूनि विविधानि च॥११॥
ये पुत्रपौत्रवत्स्नेहाद्रुद्रलोकं व्रजंति ते। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतेन वारिणा॥१२॥
कार्यमभ्युक्षणं नित्यं स्नपनं च विशेषतः। त्रैलोक्यमखिलं हत्वा यत्फलं परिकीर्त्यते॥१३॥
शिवालये निहत्यैकमपि तत्सकलं लभेत्। शिवार्थं सर्वदा कार्या पुष्पहिंसा द्विजोत्तमाः॥१४॥
यज्ञार्थं पशुहिंसा च क्षत्रियैर्दुष्टशासनम्। विहिताविहितं नास्ति योगिनां ब्रह्मवादिनाम्॥१५॥
यतस्तस्मान्न हंतव्या निषिद्धानां निषेवणात्। सर्वकर्माणि विन्यस्य संन्यस्ता ब्रह्मवादिनः॥१६॥
न हंतव्याः सदा पूज्याः पापकर्मरता अपि। पवित्रास्तु स्त्रियः सर्वा अत्रेश्च कुलसंभवाः॥१७॥
ब्रह्महत्यासमं पापमात्रेयीं विनिहत्य च। स्त्रियः सर्वा न हंतव्याः पापकर्मरता अपि॥१८॥
न यज्ञार्थं स्त्रियो ग्राह्याः सर्वैः सर्वत्र सर्वदा। सर्ववर्णेषु विप्रेंद्राः पापकर्मरता अपि॥१९॥
मलिना रूपवत्यश्च विरूपा मलिनांबराः। न हंतव्याः सदा मर्त्यैः शिववच्छंकया तथा॥२०॥
वेदबाह्यव्रताचाराः श्रोतस्मार्तबहिष्कृताः।
पाषंडिन इति ख्याता न संभाष्या द्विजातिभिः॥२१॥
न स्पृष्टव्या न द्रष्टव्या दृष्ट्वा भानुं समीक्षते। तथापि ते न वध्याश्च नृपैरन्यैश्च जंतुभिः॥२२॥

हिंसा से परहेज करता है। जो लोग प्राणियों के कल्याण में मनसा, वाचा और कर्मणा लगे हुये हैं और दया के मार्ग के अनुभागी हैं, वे रुद्र लोक को प्राप्त करते हैं।।८-१०।। जो लोग विभिन्न प्रकार के प्राणियों को अपने पुत्रों और पौत्रों की तरह मानकर उनकी स्नेह से रक्षा करते हैं वे रुद्र लोक को जाते हैं। अतः भरसक प्रयत्न करके वस्त्र द्वारा पवित्र किये जल से विशेष रूप से शिव की मूर्त्ति का स्नान और उपलेपन करना चाहिये। स्नान तो विशेष रूप से ऐसे ही शुद्ध जल से कराना चाहिये। शिवालय के परिसर में यहाँ तक कि एक व्यक्ति की हत्या करने से उस व्यक्ति को तीनों लोकों की हत्या का पाप लगता है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! शिव की पूजा के लिये किसी पशु की हत्या पुष्पों से मारकर करनी चाहिये। यज्ञ में पशु हिंसा दुष्ट शासन है। यह क्षत्रिय जाति के द्वारा की जा सकती है।।११-१५।। ब्राह्मण योगियों के लिये क्या करने योग्य है और क्या नहीं अर्थात् विधि और निषेध का नियम उन पर लागू नही होता है। वें पाप कर्म में लीन होने पर भी सदा पूज्य हैं। विभिन्न कार्यों को करने पर भी वे बध्य नहीं हैं। उसी प्रकार ब्रह्मवादी सन्यासियों की भी न हत्या करनी चाहिये, क्योंकि वे सबरूपों को त्यागकर सन्यासी हुये हैं।।१६-१७।। अत्रि कुल में उत्पन्न सब स्त्रियाँ पवित्र होती हैं। उनकी हत्या करने से ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है।।१८।। यज्ञ के कर्म में किसी भी जाति की स्त्रियों को किसी भी समय कभी न लेना चाहिये। हे उत्तम ब्राह्मणों! पाप कर्म में रत स्त्रियाँ चाहे वे मलिन (गंदी) हों, रूपवती हों, भद्दी हों या गंदे वस्त्र पहनने वालीं हों, उनकी हत्या न करनी चाहिये क्योंकि वे मनुष्यों द्वारा शिव के समान पूज्य हैं।।१९-२०।। जो वेद से बाह्य व्रत (धार्मिक कृत्य) और आचरण करते हैं वे वेदों और स्मृतियों के द्वारा विहित कर्म से बहिष्कृत पाखण्डी हैं, द्विजातियों को उनसे संभाषण और व्यवहार न करना चाहिये।।२१।। उनको न तो देखना और न तो छूना चाहिये। उनको देखने पर सूर्य का दर्शन करना चाहिये। तथापि वे राजाओं और अन्य

प्रसंगाद्वापि यो मर्त्यः सतां सकृदहो द्विजाः।
रुद्रलोकमवाप्नोति समभ्यर्च्य महेश्वरम्॥२३॥
भवंति दुःखिताः सर्वे निर्दया मुनिसत्तमाः। भक्तिहीना नराः सर्वे भवे परमकारणे॥२४॥
ये भक्ता देवदेवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः। भाग्यवंतो विमुच्यंते भुक्त्वा भोगानिहैव ते॥२५॥
पुत्रेषु दारेषु गृहेषु नृणां भक्तं यथा चित्तमथादिदेवे।
सकृत्प्रसंगाद्यतितापसानां तेषां न दूरः परमेशलोकः॥२६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे भक्तिमहिमावर्णनं नामाऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥७८॥

प्राणियों द्वारा अवध्य है (हत्या के योग्य नहीं है)।।२२।। हे ब्राह्मणों! शिव की एक बार भी पूजा करने से सज्जनों का प्रसंगवश एक बार भी सम्पर्क हो जाय तो वह रुद्र लोक को प्राप्त करता है।।२३।। हे श्रेष्ठ मुनियों! सब दयारहित मनुष्य दुःखी होते हैं जो लोग परम कारण शिव जी की भक्ति से हीन होते हैं।।२४।। जो देवेश शिव के भक्त हैं वे भाग्यशाली हैं। वे इस लोक में आनन्द और सुख को भोगकर बाद में मुक्त हो जाते हैं।।२५।। जैसे लोगों का मन पुत्रों स्त्रियों और घरों में लगा रहता है वैसे ही यतियों और तपस्वियों का चित्त देवों के देव आदि देव, परमेष्ठी शिव में लगा रहता है लेकिन यदि गृहस्थ लोग अपना मन प्रसंगवश एक बार भी आदि देव शिव की ओर लगा दें तो शिवलोक उनसे दूर नहीं है।।२६।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में भक्ति महिमा वर्णन नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त॥७८॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

शिवार्चनविधिः

ऋषय ऊचुः

कथं पूज्यो महादेवो मर्त्यैर्मंदैर्महामते। अल्पायुषैरल्पवीर्यैरल्पसत्त्वैः प्रजापतिः॥१॥
संवत्सरसहस्त्रैश्च तपसा पूज्य शंकरम्। न पश्यंति सुराश्चापि कथं देवं यजंति ते॥२॥

सूत उवाच

कथितं तथ्यमेवात्र युष्माभिर्मुनिपुंगवाः। तथापि श्रद्धया दृश्यः पूज्यः संभाष्य एव च॥३॥
प्रसंगाच्चैव संपूज्य भक्तिहीनैरपि द्विजाः। भावानुरूपफलदोभगवानिति कीर्तितः॥४॥
उच्छिष्टः पूजयन्याति पैशाचं तु द्विजाधमः। संक्रुद्धो राक्षसं स्थानं प्राप्नुयान्मूढधीर्द्विजाः॥५॥
अभक्ष्यभक्षी संपूज्य यक्षं प्राप्नोति दुर्जनः। गानशीलश्च गांधर्वं नृत्यशीलस्तथैव च॥६॥
ख्यातिशीलस्तथा चांद्रं स्त्रीषु सक्तो नराधमः।
मदार्तः पूजयन् रुद्रं सोमस्थानमवाप्नुयात्॥७॥
गायत्र्या देवमभ्यर्च्य प्राजापत्यमवाप्नुयात्। ब्राह्मं हि प्रणवेनैव वैष्णवं चाभिनंद्य च॥८॥

उन्यासीवाँ अध्याय

शिवार्चन की विधि

ऋषिगण बोले

हे महाबुद्धिमान ऋषि! प्रजापति, महादेव शिव की अल्प बुद्धिवाले, थोड़ी शक्ति सामर्थ्य वाले, अल्पायु वाले, मनुष्यों द्वारा पूजा कैसी की जानी चाहिये। देवता हजारों वर्ष तपस्या करके जिन शिव का दर्शन नहीं कर सके तो उनकी पूजा कैसे की जाय।।१-२।।

सूत बोले

हे श्रेष्ठ ऋषियों! जो कुछ तुम लोगों ने कहा वह सब सत्य है। फिर भी श्रद्धा से भगवान शिव की पूजा करने से उनके दर्शन हो सकते हैं और उनसे बात भी हो सकती है।।३।। हे ब्राह्मणों! यहाँ तक कि जो लोग श्रद्धाहीन हैं यदि वे प्रसंगवश शिव की पूजा करते हैं तो उनको भी शिव उनके भाव के अनुरूप फल देते हैं।।४।। हे ब्राह्मणों! वह अधम ब्राह्मण जो भोजन का त्याग कर शिव की पूजा करता है वह पिशाच होता है। जो मूर्ख ब्राह्मण क्रोध से भरकर शिव जी की पूजा करता है वह राक्षस होता है।।५।। दुष्ट व्यक्ति जो अभक्ष्य पदार्थ खाकर शिव की पूजा करता है वह यक्ष होता है। गाने और नाचने का अभ्यास करने वाले व्यक्ति शिव की पूजा करने पर गन्धर्वों के निवास को प्राप्त करते हैं।।६।। अधम व्यक्ति जो स्त्रियों में आसक्त हो या यश पाने में लगा हो, वह शिव की पूजा करने पर चन्द्रलोक में आवास पाता है। मद (अभिमान) में चूर व्यक्ति शिव की पूजा करता है तो वह सोम लोक में निवास करता है।।७।। गायत्री मंत्र द्वारा शिव की पूजा करने से व्यक्ति को प्रजापति लोक

श्रद्धया सकृदेवापि समभ्यर्च्य महेश्वरम्। रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रैः सार्धं प्रमोदते॥९॥
संशोध्य च शुभं लिंगममरासुरपूजितम्। जलैः पूतैस्तथा पीठे देवमावाह्य भक्तितः॥१०॥
दृष्ट्वा देवं यथान्यायं प्रणिपत्य च शंकरम्। कल्पिते चासने स्थाप्य धर्मज्ञानमये शुभे॥११॥
वैराग्यैश्वर्यसंपन्ने सर्वलोकनमस्कृते। ओंकारपद्ममध्ये तु सोमसूर्याग्निसंभवे॥१२॥
पाद्यमाचमनं चार्घ्यं दत्त्वा रुद्राय शंभवे। स्नापयेद्दिव्यतोयैश्च घृतेन पयसा तथा॥१३॥
दध्ना च स्नापयेद्रुद्रं शोधयेच्च यथाविधि। ततः शुद्धांबुना स्नाप्य चंदनाद्यैश्च पूजयेत्॥१४॥
रोचनाद्यैश्च संपूज्य दिव्यपुष्पैश्च पूजयेत्। बिल्वपत्रैरखंडैश्च पद्मैर्नानाविधैस्तथा॥१५॥
नीलोत्पलैश्च राजीवैर्नंद्यावर्तैश्च मल्लिकैः। चंपकैर्जातिपुष्पैश्च वकुलैः करवीरकैः॥१६॥
शमीपुष्पैर्बृहत्पुष्पैरुन्मत्तागस्त्यजैरपि। अपामार्गकदंबैश्च भूषणैरपि शोभनैः॥१७॥
दत्त्वा पंचविधं धूपं पायसं च निवेदयेत्। दधिभक्तं च मध्वाज्यपरिप्लुतमतः परम्॥१८॥
शुद्धान्नं चैव मुद्गान्नं षड्विधं च निवेदयेत्। अथ पंचविधं वापि सघृतं विनिवेदयेत्॥१९॥
केवलं चापि शुद्धान्नमाढकं तंडुलं पचेत्। कृत्वा प्रदक्षिणं चांते नमस्कृत्य मुहुर्मुहुः॥२०॥
स्तुत्वा च देवमीशानं पुनः संपूज्य शंकरम्। ईशानं पुरुषं चैव अघोरं वाममेव च॥२१॥
सद्योजातं जपंश्चापि पंचभिः पूजयेच्छिवम्। अनेन विधिना देवः प्रसीदति महेश्वरः॥२२॥

में स्थान प्राप्त होता है। प्रणव से शिव की पूजा करने से ब्रह्मलोक या विष्णुलोक में स्थान मिलता है।।८।। श्रद्धापूर्वक एक बार भी शिव की पूजा करने से भक्त को रुद्र लोक में स्थान मिलता है और रुद्रों के साथ आनन्द मनाता है।।९।। देवताओं और असुरों द्वारा पूजित शुभ लिंग को पवित्र जल से साफ करना चाहिये। भक्तिपूर्वक शिव का पीठ (जलहरी) में आह्वान करना चाहिये। शिव को देखकर और प्रणाम करके धर्म और ज्ञानमय स्थित आसन पर स्थापित करना चाहिये जो कि वैराग्य और ऐश्वर्य से सम्पन्न और सब लोगों द्वारा नमस्कृत हो। वह ओंकार कमल के मध्य में हो, उसका उद्भव चन्द्रमा सूर्य और अग्नि से हो। शिव को पाद्य, आचमनीय और अर्घ्य देकर शुद्ध जल से, घी से और दूधं से मूर्ति को स्नान कराना चाहिये। भक्त दही से भी स्नान कराके तब मूर्त्ति को साफ करे। उसके बाद वह मूर्त्ति को शुद्ध जल से स्नान करा के घिसे हुये चन्दन आदि से पूजा करे। रोचना आदि से तथा दिव्य पुष्पों से, अखण्ड बेलपत्रों से अनेक प्रकार के नीले और लाल कमलों से, नद्यावर्त फूलों, मल्लिका, चम्पक, जाति पुष्पों, वकुलों, कनैर के पुष्पों, समी और बृहद पुष्पों, फूले हुए, अगस्त्य और अपामार्ग के गुच्छों, पुष्पों और उत्तम भूषणों से पूजा करें। पाँच प्रकार के धूपों को देकर दूध या खीर का भोग लगाये। उसके बाद दही मिला भात, मधु और घी से सना भात, तब शुद्ध पका हुआ चावल और तब पका हुआ मुद्गान्न (मूँग मिलाकर पका अन्न) छः प्रकार का निवेदन करे (सामने रखकर भोग लगावे)। अनेक बार वह पाँच प्रकार पके चावलों को घी सहित निवेदन करे या केवल एक आढक (अढ़ैया) (एक प्रकार की माप) चावल पका हुआ निवेदन करे। उसके बाद मूर्त्ति की प्रदक्षिणा करके अन्त में भक्त बारम्बार प्रणाम करे। उसके बाद शिव की स्तुति करके पुनः पूजा करके तब भक्त ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात पाँच मंत्रों को जपते हुये

वृक्षाः पुष्पादिपत्राद्यैरुपयुक्ताः शिवार्चने। गावश्चैव द्विजश्रेष्ठाः प्रयांति परमां गतिम्॥२३॥
पूजयेद्यः शिवं रुद्रं शर्वं भवमजं सकृत्। स याति शिवसायुज्यं पुनरावृत्तिवर्जितम्॥२४॥
अर्चितं परमेशानं भवं शर्वमुमापतिम्। सकृत्प्रसंगाद्वा दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२५॥
पूजितं वा महादेवं पूज्यमानमथापि वा। दृष्ट्वा प्रयाति वै मर्त्यो ब्रह्मलोकं न संशयः॥२६॥
श्रुत्वानुमोदयेच्चापि स याति परमां गतिम्। ये दद्याद्घृतदीपं च सकृल्लिंगस्य चाग्रतः॥२७॥
स तां गतिमवाप्नोति स्वाश्रमैर्दुर्लभां स्थिराम्। दीपवृक्षं पार्थिवं वा दारवं वा शिवालये॥२८॥
दत्त्वा कुलशतं साग्रं शिवलोके महीयते। आयसं ताम्रजं वापि रौप्यं सौवर्णिकं तथा॥२९॥
शिवाय दीपं यो दद्याद्विधिना वापि भक्तितः। सूर्यायुतसमैः श्लक्ष्णैर्यानैः शिवपुरं व्रजेत्॥३०॥
कार्तिके मासि यो दद्याद्घृतदीपं शिवाग्रतः। संपूज्यमानं वा पश्येद्विधिना परमेश्वरम्॥३१॥
स याति ब्रह्मणो लोकं श्रद्धया मुनिसत्तमाः। आवाहनं सुसान्निध्यं स्थापनं पूजनं तथा॥३२॥
संप्रोक्तं रुद्रगायत्र्या आसनं प्रणवेन वै। पंचभिः स्नपनं प्रोक्तं रुद्राद्यैश्च विशेषतः॥३३॥
एवं संपूज्येन्नित्यं देवदेवमुमापतिम्। ब्रह्माणं दक्षिणे तस्य प्रणवेन समर्चयेत्॥३४॥
उत्तरे देवदेवेशं विष्णुं गायत्रिया यजेत्। वह्नौ हुत्वा यथान्यायं पंचभिः प्रणवेन च॥३५॥

शिव की पूजा करे। इस विधि से पूजा करने पर भगवान शिव प्रसन्न होते हैं।।१०-२२।। हे उत्तम ब्राह्मणों! वे वृक्ष जिनके फूल पत्तियाँ आदि शिव की पूजा में उपयोग की जाती हैं वे तथा गायें भी परम गति को प्राप्त होते हैं।।२३।। वह जो कि शिव रुद्र, सर्वज्ञ, भव की एक बार भी पूजा करता है वह शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। उसका इस मृत्युलोक में लौटकर आना दुर्लभ है।।२४।। परमेश्वर, भव, शर्व, उमापति की एक बार भी पूजा करके या प्रसंगवश दर्शन करके सब पापों से मुक्त हो जाता है।।२५।। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि मनुष्य शिव को पूजित या पूजा किया जाता हुआ (पूज्यमान) देखकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।।२६।। जो शिव के विषय में सुनकर उसका अनुमोदन करता है और उसमें आनन्द लेता है वह परम गति को प्राप्त करता है। वह जो एक बार घी का दीपक लिंग के सामने (आगे) भेंट करता है वह अपने गृहस्थादि आश्रमों से दुर्लभ स्थायी गति को प्राप्त करता है। वह जो कि शिवालय में मिट्टी का या लकड़ी का दीप वृक्ष (दीवट) शिव जी के लिये भेंट करता है वह अपने परिवार के सौ सदस्यों सहित शिवलोक में पूजित होता है। सम्मान पाता है। वह जो कि लोहे-चाँदी, ताँबे का सोने का बना हुआ दीपक विधिपूर्वक और भक्तिपूर्वक भेंट करता है (दान करता है) वह दस हजार सूर्य के समान देदीप्यमान भव्य वाहन पर सवार होकर शिवलोक को जाता है।।२७-३०।। कार्तिक मास में जो शिव के आगे घी का दीपक देता है या विधिपूर्वक पूज्यमान शिव का दर्शन श्रद्धा से करता है, हे उत्तम ऋषियों! वह ब्रह्मलोक को जाता है। यह वर्णन किया है (कहा गया है) कि आह्वान, उपस्थिति का स्वागत, स्थापन और पूजन रुद्र गायत्री द्वारा किया जाय। प्रणव द्वारा आसन, पाँच मन्त्रों सद्योजात आदि के द्वारा स्नान रुद्र आदि को विशेष रूप से करना चाहिये। इस प्रकार भक्त नित्य देवों के देव उमापति की पूजा करे। उनके दक्षिण (दाहिने) ब्रह्मा की पूजा प्रणव से करनी चाहिये।।३१-३४।। उनके (शिव के) उत्तर भाग में देवों के

स याति शिवसायुज्यमेवं संपूज्य शंकरम्। इति संक्षेपतः प्रोक्तो लिंगार्चनविधिक्रमः॥३६॥
व्यासेन कथितः पूर्वं श्रुत्वा रुद्रमुखात्स्वयम्॥३७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवार्चनविधिर्नामै-
कोनाशीतितमोऽध्यायः॥७९॥

प्रमुखों के देव विष्णु की पूजा गायत्री से करनी चाहिये। अग्नि से पाँच मंत्रों और प्रणव को जपते हुये (दोहराते हुये) विधिपूर्वक होम करें। इस प्रकार शिव की पूजा करके भक्त शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। यह लिंगार्चन विधि का क्रम मैंने संक्षेप में तुम लोगों को बताया। इस पूजा विधि को स्वयं रुद्र के मुख से व्यास जी ने पहिलें सुनकर मुझको बताया था।।३५-३७।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में लिंगार्चन की विधि नामक
उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त॥७९॥

अशीतितमोऽध्यायः

पाशुपतव्रतमाहात्म्यम्

ऋषयः ऊचुः

कथं पशुपतिं दृष्ट्वा पशुपाशविमोक्षणम्। पशुत्वं तत्यजुर्देवास्तन्नो वक्तुमिहार्हसि॥१॥

सूत उवाच

पुरा कैलासशिखरे भोग्याख्ये स्वपुरे स्थितम्। समेत्य देवाः सर्वज्ञमाजग्मुस्तत्प्रसादतः॥२॥
हिताय सर्वदेवानां ब्रह्मणा च जनार्दनः। गरुडस्य तथा स्कंधमारुह्य पुरुषोत्तमः॥३॥
जगाम देवताभिर्वै देवदेवांतिकं हरिः। सर्वे संप्राप्य देवस्य सार्धं गिरिवरं शुभम्॥४॥
सेंद्राः ससाध्याः सयमाः प्रणेमुर्गिरिमुत्तमम्॥
भगवान्वासुदेवोसौ गरुडाद्गरुडध्वजः। अवतीर्य गिरिं मेरुमारुरोह सुरोत्तमैः॥५॥

सकलदुरितहीनं सर्वदं भोगमुख्यं मुदितकुररवृंदं नादितं नागवृंदैः।
मधुररणितगीतं सानुकूलांधकारं पदरचितवनांतं कांतवातांततोयम्॥६॥
भवनशतसहस्त्रैर्जुष्टमादित्यकल्पैर्ललितगतिविदग्धैर्हंसवृंदैश्चै भिन्नम्।
धवखदिरपलाशैश्चंदनाद्यैश्च वृक्षैर्द्विजवरगणवृंदैः कोकिलाद्यै द्विरेफैः॥७॥

अस्सीवाँ अध्याय

पाशुपत व्रत का माहात्म्य

ऋषिगण बोले

पशुपति का दर्शन करके पशुत्व को प्राप्त देवतागण पशु के पाप से कैसे मुक्त हुये? यह आप हम लोगों को बताइये।।१।।

सूत बोले

पहिले कैलास की चोटी पर स्थित भोग्य नामक अपने पुर में स्थित सर्वज्ञ शिव जी के पास विष्णु देवों को साथ लेकर गरुड़ पर सवार होकर देवताओं के कल्याण के लिये आये। यम, इन्द्र और अप्सराओं के सहित विष्णु ने भव्य और उत्तम पर्वत पर शिव को प्रणाम किया। गरुड़ध्वज विष्णु जी गरुड़ से उतरकर प्रमुख देवताओं को साथ लेकर पर्वत पर चढ़ गये।।२-५।। मेरु गिरि सब पापों से रहित है। यह सब कामनाओं को पूरा करता है। वह सब भोगों का साधन है। मृगों का झुंड वहाँ आनन्द मनाता है। हाथियों के झुण्ड यहाँ चिग्घाड़ते रहते हैं। यह मधुर गीतों से सदा गुँजित रहता है। अन्धकार होने पर भी यहाँ अनुकूलता रहती है। वन का क्षेत्र पद चिह्नों से युक्त है। यहाँ जल सीमान्त पर चमकता है और हवाएँ आकर्षक हैं। यहाँ के भवन सैकड़ों हजारों सूर्यों के प्रकाश से जगमगाते रहते हैं। यह सुन्दर गति वाले हंसों के समूहों से गुंजित हैं। यहाँ धव, खदिर, पलाश और

क्वचिदशेषसुरद्रुमसंकुलं कुरबकैः प्रियकैस्तिलकैस्तथा।
बहुकदंबतमाललतावृतं गिरिवरं शिखरैर्विविधैस्तथा॥८॥
गिरेः पृष्ठे परं शार्वं कल्पितं विश्वकर्मणा। क्रीडार्थं देवदेवस्य भवस्य परमेष्ठिनः॥९॥
अपश्यंस्तत्पुरं देवाः सेंद्रोपेंद्राः समाहिताः। प्रणेमुर्दूरतश्चैव प्रभावादेव शूलिनः॥१०॥
सहस्रसूर्यप्रतिमं महांतं सहस्रशः सर्वगुणैश्च भिन्नम्।
जगाम कैलासगिरिं महात्मा मेरुप्रभागे पुरमादिदेवः॥११॥
ततोथ नारीगजवाजिसंकुलं रथैरनेकैरमरारिसूदनः।
गणैर्गणेशैश्च गिरींद्रसन्निभं महापुरद्वारमजो हरिश्च॥१२॥
अथ जांबूनदमयैर्भवनैर्मणिभूषितैः। विमानैर्विविधाकारैः प्राकारैश्च समावृतम्॥१३॥
दृष्ट्वा शंभोः पुरं बाह्यं देवैः सब्रह्मकै र्हरिः। प्रहृष्टवदनो भूत्वा प्रविवेश ततः पुरम्॥१४॥
हर्म्यप्रासादसंबाधं महाट्टालसमन्वितम्। द्वितीयं देवदेवस्य चतुर्द्वारं सुशोभनम्॥१५॥
वज्रवैडूर्यमाणिक्यमणिजालैः समावृतम्। दोलाविक्षेपसंयुक्तं घंटाचामरभूषितम्॥१६॥
मृदंगमुरजैर्जुष्टं वीणावेणुनिनादितम्॥
नृत्यद्भिरप्सरःसंघैर्भूतसंघैश्च संवृतम्। देवेंद्रभवनाकारैर्भवनैर्दृष्टिमोहनैः ॥१७॥

चन्दन आदि वृक्षों और पक्षियों के समूहों और गणों से जैसे कोकिला आदि तथा भौंरों से शोभायमान है।।६-७।। कहीं पर कुछ स्थान दिव्य वृक्षों से शोभित हैं। कुरबक, प्रियक और तिलक के वृक्ष यहाँ हैं। इस पर्वत पर कदंब, तमाल और लताओं के समूह विद्यमान हैं। इस पर्वत की विविध अनेकों चोटियाँ (शिखर) हैं।।८।। इस पर्वत के सिर पर विश्वकर्मा ने भगवान शिव का पुर बनाया है। यह परमेष्ठी, भव, देवदेव शिव के क्रीड़ा के लिये है।।९।। इन्द्र सहित देवगण और विष्णु जी ने उस पुर को ध्यानपूर्वक देखा। त्रिशूलधारी शिव के प्रभाव से उन्होंने दूर से प्रणाम किया।।१०।। आदि देव विष्णु मेरु के एक भाग कैलास पर गये जो कि हजारों सूर्यों के समान दीप्यमान, महान् और सब गुणों से युक्त हैं।।११।। तब ब्रह्मा और असुरों के विनाशक विष्णु शिव के पुर के फाटक पर पहुँचे जो ऊँचे पर्वतों के समान और स्त्रियों, घोड़ों, हाथियों, रथों, गणों और गणेश्वरों से भरा हुआ था।।१२।। वह पुर स्वर्णमय, रत्नों से और मणियों से विभूषित अनेक प्रकार के विशाल भवनों और प्राकार (चहार दीवारी) से युक्त था।।१३।। ब्रह्मा समेत देवताओं सहित विष्णु ने शिव पुर के बाहरी भाग को देखकर प्रसन्न मुख होकर इस पुर में प्रवेश किया जिसमें विशाल भवन और महल ऊँचे अनेक मंजिलों वाले थे। देवेश शिव का द्वितीय भवन भी सुन्दर था। उसमें चार द्वार थे। यह हीरे, वैडूर्य, माणिक्य और मोतियों के समूहों से विभूषित था और झूलते हुये पालनों से युक्त, घण्टा और चामरों से सुशोभित मृदंग और मुरज से सेवित, वीणा और बाँसुरी की ध्वनि से नादित, नाचती हुई अप्सराओं और भूत संघों से घिरा हुआ था। वहाँ नेत्रों के लिए आकर्षक मनोहर देवों के स्वामियों के भवनों के आकार वाले भवन थे। इन भवनों के ऊपर हाथों में फूलों, फलों और अक्षतों को लिये हुये हजारों नागरिक महिलाएँ विराजमान थीं, शिव के शिर के समान विष्णु के शिर पर

प्रासादश्रृंगेष्वथ पौरनार्यः सहस्रशः पुष्पफलाक्षताद्यैः।
स्थिताः करैस्तस्य हरेः समंतात्प्रचिक्षिपुर्मूर्ध्नि यथा भवस्य॥१८॥
दृष्ट्वा नार्यस्तदा विष्णुं मदाघूर्णितलोचनाः॥१९॥
विशालजघनाः सद्यो ननृतुर्मुमुदुर्जगुः। काश्चिद्दृष्ट्वा हरिं नार्यः किंचित्प्रहसिताननाः॥२०॥
किंचिद्विस्त्रस्तवस्त्राश्च स्त्रस्तकांचीगुणा जगुः। चतुर्थं पंचमं चैव षष्ठं च सप्तमं तथा॥२१॥
अष्टमं नवमं चैव दशमं च पुरोत्तमम्। अतीत्यासाद्य देवस्य पुरं शंभोः सुशोभनम्॥२२॥
सुवृत्तं शुभ्रं कैलासशिखरे शुभे। सूर्यमंडलसंकाशैर्विमानैश्च विभूषितम्॥२३॥
स्फाटिकैर्मंडपैः शुभ्रैर्जांबूनदमयैस्तथा। नानारत्नमयैश्चैव दिग्विदिक्षु विभूषितम्॥२४॥
गोपुरैर्गोपतेः शंभोर्नानाभूषणभूषितैः। अनेकैः सर्वतोभद्रैः सर्वरत्नमयैस्तथा॥२५॥
प्राकारैर्विविधाकारैरष्टाविंशतिभिर्वृतम् । उपद्वारै र्महाद्वारैर्विदिक्षु विविधैर्दृढैः॥२६॥
गुह्यालयैर्गुह्यगृहैर्गुहस्य भवनैः शुभैः। ग्राम्यैरन्यैर्महाभागा मौक्तिकैर्दृष्टिमोहनैः॥२७॥
गणेशायतनैर्दिव्यैः पद्मरागमयैस्तथा। चंदनैर्विविधाकारैः पुष्पोद्यानैश्च शोभनैः॥२८॥
तडागैर्दीर्धिकाभिश्च हेमसोपानपंक्तिभिः। स्त्रीणां गतिजितैर्हंसैः सेविताभिः समंततः॥२९॥
मयूरैश्चैव कारंडैः कोकिलैश्चक्रवाककैः। शोभिताभिश्च वापीभिर्दिव्यामृतजलैस्तथा॥३०॥
संलापालापकुशलैः सर्वाभरणभूषितैः। स्तनभारावनम्रैश्च मदाघूर्णितलोचनैः॥३१॥

चारों ओर से उन्होंने पुष्पादि की वर्षा की। विष्णु जी को देखकर वे मद से घूर्णित नेत्रों वाली और विशाल जंघों वाली स्त्रियाँ नाचीं और गीत गाये। विष्णु को देखकर कुछ प्रसन्न मुख हो गईं। उनकी काँची (करधनी) ढीली हो गई और वस्त्र खिसक गये। वे कामोत्तेजक गानें गाने लगीं।।१४-२०।। तब विष्णु उन अच्छे पुरों के एक-एक के भीतर क्रमशः चौथे, पाँचवें, छठें, सातवें, आठवें, नवें और दशवें उत्तम पुरों में गये। इन सब को पार करने के बाद वे शिव के उत्तम पुर में पहुँचे। यह वृत्ताकार अतिशोभन था जो कि कैलास के शिखर पर स्थित था। यह सूर्य मण्डल के समान ऊँचे पर्वतों से भूषित था तथा अनेक प्रकार के रत्नों से जड़ित, नाना भूषणों से भूषित मंचों से अलग-अलग दिशाओं से युक्त था। चारों ओर खुले मन्दिर के द्वार थे जिनके फाटक आभूषणों से भूषित, रत्नों से जड़ित और नाना प्रकार के रत्नों से शोभायमान थे। वे विविध आकार और प्रकार के अट्ठाइस प्राकार (चहार दिवारियों) से घिरे थे। मुख्यद्वार और उपद्वार थे जो कि विदिशाओं (दिशाओं के कोणों) में थे। वे सुदृढ़ बने हुये थे और विविध प्रकार के थे। ऐसे भवन थे जो गुप्त थे और उनमें प्रछन्न (गुह्य) कक्ष भी थे। ग्रामीण ढाँचे के और अन्य आकार के भी गृह थे। वहाँ मनोहर मोतियाँ भी थी। पद्मरागमय निवास गणेश्वरों के थे। उनमें चन्दन के वृक्षों के सहित अनेक प्रकार के अच्छे पुष्पों के उद्यान थे। वहाँ सोने की बनी सीढ़ियों से युक्त अनेक तालाब और बावलियाँ थीं। स्त्रियों की चाल को मात देने वाले हंस उनमें विहार करते थे। दिव्य अमृततुल्य जलों से भरी बावलियाँ थीं। वे मयूर, कोकिल, चक्रवाक और कारंग (एक जलपक्षी) से सुशोभित थीं। वहाँ हजारों रुद्र कन्याएँ थीं जो सब आभूषणों से भूषित थीं। जो वार्तालाप में कुशल, अपने कुचों के भार से थोड़ा

गेयनादरतैर्दिव्यै रुद्रकन्यासहस्त्रकैः। नृत्यद्भिरप्सरःसंघैरमरैरपि दुर्लभैः॥३२॥
प्रफुल्लांबुजवृंदाद्यैस्तथा द्विजवरैरपि। रुद्रस्त्रीगणसंकीर्णैर्जलक्रीडारतैस्तथा॥३३॥
रतोत्सवरतैश्चैव ललितैश्च पदेपदे। ग्रामरागानुरक्तैश्च पद्मरागसमप्रभैः॥३४॥
स्त्रीसंघैर्देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः। दृष्ट्वा विस्मयमापन्नास्तस्थुर्देवाः समंततः॥३५॥
तत्रैव ददृशुर्देवा वृंदं रुद्रगणस्य च। गणेश्वराणां वीराणामपि वृंदं सहस्त्रशः॥३६॥
सुवर्णकृतसोपानान् वज्रवैडूर्यभूषितान्। स्फाटिकान् देवदेवस्य ददृशुस्ते विमानकान्॥३७॥
तेषां शृंगेषु हृष्टाश्च नार्यः कमललोचनाः। विशालजघना यक्षा गंधर्वाप्सरसस्तथा॥३८॥
किन्नर्यः किंनराश्चैव भुजंगाः सिद्धकन्यकाः। नानावेषधराश्चान्या नानाभूषणभूषिताः॥३९॥
नानाप्रभावसंयुक्ता नानाभोगरतिप्रियाः। नीलोत्पलदलप्रख्याः पद्मपत्रायतेक्षणाः॥४०॥
पद्मकिंजल्कसंकाशैरंशुकैरतिशोभनाः । वलयैर्नूपुरैर्हारैश्छत्रै श्चित्रैस्तथांशुकैः॥४१॥

भूषिता भूषितैश्चान्यैर्मंडिता मंडनप्रियाः॥
दृष्ट्वाथ वृंदं सुरसुंदरीणां गणेश्वराणां सुरसुंदरीणाम्।
जग्मुर्गणेशस्य पुरं सुरेशाः पुरद्विषः शक्रपुरोगमाश्च॥४२॥
दृष्ट्वा च तस्थुः सुरसिद्धसंघाः पुरस्य मध्ये पुरुहूतपूर्वाः।
भवस्य बालार्कसहस्त्रवर्णं विमानमाद्यं परमेश्वरस्य॥४३॥

झुकी हुई, मद से घूर्णित नेत्रों वाली, गाने और बजाने में लगी हुई (तल्लीन) थीं। वहाँ नृत्य करती अप्सराओं का संघ (दल) था। प्रफुल्ल कमलों के समूह आदि से भरे सरोवर देवताओं द्वारा भी दुर्लंध्य थे। वहाँ सब प्रकार के अच्छे पक्षी थे। वहाँ जलक्रीड़ा करने में लीन रुद्रगणों की स्त्रियों का समूह था। वे रतोत्सव में रत थीं। वे पद्मराग के समान प्रभावाली थीं। वे ग्राम्य कामोत्तेजक गीतों और संगीत की शौकीन थीं। इन सबको देखकर या ऐसा अदृष्टपूर्व वातावरण देवेश शिव के निवास में देखकर देवता लोग विस्मृत होकर वहीं खड़े हो गये।।२१-३५।। वहाँ ही देवताओं ने स्वयं रुद्र-गणों और उनके हजारों वीर गणेश्वरों को देखा।।३६।। उन्होंने शिव के स्फटिक से बने हुए विमानों को और हीरों से जड़े महलों को देखा।।३७।। महलों की छतों पर कमल के समान नेत्र वाली, विशाल जंघों वाली, यक्षों, गन्धर्वों की स्त्रियों और अप्सराओं को देखा। किन्नरियों और किन्नरों, सर्पों और सिद्धों की कन्याओं को देखा जो कि अनेक प्रकार के वेश धारण किये हुए थीं। वे विविध आभूषणों से भूषित थीं। वे अनेक प्रकार के प्रसन्नताओं से युक्त थीं। वे नाना प्रकार के भोगों और रति की प्रिय थीं। वे नील कमल के पत्र के समान शोभा वाली और कमल के पत्र के समान फैले हुए नेत्र वाली थीं। वे कमल के पराग के समान कमनीय वस्त्र धारण करने से बहुत सुन्दर लग रही थीं। वे कंकण, नुपूर, हार और विविध रंगों के छत्रों को धारण और आकर्षक वस्त्रों को पहने हुए थीं। वे सजावट को पसन्द करने वाली अन्य भूषणों से भी विभूषित थीं।।३८-४१।। गणेश्वरों की ऐसी सुन्दर नारियों को देखने के बाद, प्रमुख देवतागण इन्द्र और अन्य त्रिपुरारी के महल में गये।।४२।। शिव के प्रथम महल को देखकर—जो कि हजारों उगते हुए सूर्यों के रंग का

अथ तस्य विमानस्य द्वारि संस्थं गणेश्वरम्। नंदिनं ददृशुः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः॥४४॥
तं दृष्ट्वा नंदिनं सर्वे प्रणम्याहु र्गणेश्वरम्। जयेति देवास्तं दृष्ट्वा सोप्याह च गणेश्वरः॥४५॥
भो भो देवा महाभागाः सर्वे निर्धूतकल्मषाः। संप्राप्ताः सर्वलोकेशा वक्तुमर्हथ सुव्रताः॥४६॥
तमाहुर्वरदं देवं वारणेंद्रसमप्रभम्। पशुपाशविमोक्षार्थं दर्शयास्मान्महेश्वरम्॥४७॥
पुरा पुरत्रयं दग्धुं पशुत्वं परिभाषितम्। शंकिताश्च वयं तत्र पशुत्वं प्रति सुव्रत॥४८॥
व्रतं पाशुपतं प्रोक्तं भवेन परमेष्ठिना। व्रतेनानेन भूतेश पशुत्वं नैव विद्यते॥४९॥
अथ द्वादशवर्षं वा मासद्वादशकं तु वा। दिनद्वादशकं वापि कृत्वा तद्व्रतमुत्तमम्॥५०॥
मुच्यंते पशवः सर्वे पशुपाशैर्भवस्य तु। दर्शयामास तान्देवान्नारायणपुरोगमान्॥५१॥
नंदी शिलादतनयः सर्वभूतगणाग्रणीः। तं दृष्ट्वा देवमीशानं सांबं सगणमव्ययम्॥५२॥
प्रणेमुस्तुष्टुवुश्चैव प्रीतिकंटकितत्वचः। विज्ञाप्य शितिकंठाय पशुपाशविमोक्षणम्॥५३॥
तस्थुस्तदाग्रतः शंभोः प्रणिपत्य पुनः पुनः। ततः संप्रेक्ष्य तान् सर्वान्देवदेवो वृषध्वजः॥५४॥
विशोध्य तेषां देवानां पशुत्वं परमेश्वरः। व्रतं पाशुपतं चैव स्वयं देवो महेश्वरः॥५५॥
उपदिश्य मुनीनां च सहास्ते चांबया भवः। तदाप्रभृति ते देवाः सर्वे पाशुपताः स्मृताः॥५६॥

था और पुर के मध्य भाग में स्थित था—देवता और सिद्धगण इन्द्र के साथ वहाँ रुक गये।।४३।। तब इन्द्र सहित सब देवताओं ने उस विमान के द्वार पर विराजमान गणेश्वर नंदी को देखा।।४४।। गणों के स्वामी नंदी को देखकर देवताओं ने उनको प्रणाम किया और कहा "जय हो" उनको देखकर गणेश्वर नंदी ने उत्तर दिया।।४५।। "हे महाभाग्यवान निष्पाप देवताओं! हे सुव्रतो! हे तीनों लोक के स्वामी! तुम लोग यहाँ क्यों आये हो? यह मुझसे कहो"।।४६।। तब उन्होंने ऐरावत के समान प्रभा वाले महेश्वर शिव का दर्शन कराओ। हम लोग पशुओं के बन्धन से मुक्त होने के लिये यहाँ आये हुये हैं।।४७।। तीनों पुरों को दग्ध करने के क्रम में हम लोग पशुत्व को प्राप्त हुए थे अर्थात् शिव ने हम लोगों को पशु हो जाने के लिए कहा था। हे सुव्रत! अब हम लोग पशुत्व के प्रति चिन्तित हैं।।४८।। शिव द्वारा पवित्र पाशुपत व्रत कहा गया है। हे भूतों के स्वामी नंदी! इस व्रत के करने से पशुत्व नहीं रहता है; अर्थात् दूर हो जाता है।।४९।। बारह वर्ष तक या बारह महीने या बारह दिन इस उत्तम व्रत को करके सब पशु लोग शिव के पशु पाशों से मुक्त हो जाते हैं। हे नंदी शिलादि के पुत्र और भूतों के स्वामी! विष्णु सहित सब देवताओं को शिव का दर्शन कराओ।" देवतागण शिव को बार-बार प्रणाम करते हुए उनसे पशुपाश से मुक्त होने की अपनी इच्छा प्रगट की। नित्य सनातन शिव उमा और गणों के साथ विराजमान थे। उनका दर्शन करके देवगण प्रसन्नता से रोमांचित हो गये। उन्होंने शिव को प्रणाम किया और वे प्रसन्नता से रोमांचित हो गये। उन्होंने शिव को प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। उन्होंने बारंबार शिव को प्रणाम करते हुए खड़े होकर पशुपाश से मुक्त होने की अपनी इच्छा को प्रगट किया।।५०-५३।। देवताओं के देवता वृषध्वज शिवजी ने उन सबों की ओर देखकर उनकी आत्माओं को शुद्ध करते हुए उनको पाशुपत व्रत बताया। उसके बाद शिव उमा और मुनियों के साथ बैठ गये। तब से सब देवता पाशुपत (अर्थात् पशुपत से

पशूनां च पतिर्यस्मात्तेषां साक्षाद्धि देवताः। तस्मात्पाशुपताः प्रोक्तास्तपस्तेपुश्च ते पुनः॥५७॥
ततो द्वादशवर्षांते मुक्तपाशाः सुरोत्तमाः। ययुर्यथागतं सर्वे ब्रह्मणा सह विष्णुना॥५८॥
एतद्वः कथितं सर्वं पितामहमुखाच्छ्रुतम्। पुरा सनत्कुमारेण तस्माद्व्यासेन धीमता॥५९॥
यः श्रावयेच्छुचिर्विप्राञ्छृणुयाद्वा शुचिर्नरः। स देहभेदमासाद्य पशुपाशैः प्रमुच्यते॥६०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पाशुपतव्रतमाहात्म्यं नामाशीतितमोऽध्यायः॥८०॥

सम्बन्ध) प्रसिद्ध हुये। वे सब लोग जो कि पशुपति को अपना साक्षात् देवता मानते हैं, वे पाशुपत कहे जाते हैं। तब देवताओं ने फिर तपस्या की।।५४-५७।। उन उत्तम देवताओं ने बारह वर्ष तक तपस्या की और पाश से मुक्त हो गये। वे ब्रह्मा और विष्णु के साथ वापस लौट गये। ब्रह्मा के मुख से मैंने जैसा सुना था तुम लोगों से बताया। सनत् और व्यास ने ब्रह्मा से सुना था। जो व्यक्ति पवित्र होकर इस पाशुपत व्रत को सुनता है या ब्राह्मणों को सुनाता है वह दूसरे शरीर को प्राप्त करके पशु बंधन से मुक्त हो जाता है।।५८-६०।।

श्रीलिंगमहापुरण के पूर्वभाग में पाशुपत व्रत का माहात्म्य नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त॥८०॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

पशुपाशविमोचनलिङ्गपूजादिकथनम्

ऋषय ऊचुः

व्रतमेतत्त्वया प्रोक्तं पशुपाशविमोक्षणम्। व्रतं पाशुपतं लैंगं पुरा देवैरनुष्ठितम्॥१॥
वक्तुमर्हसि चास्माकं यथापूर्वं त्वया श्रुतम्॥

सूत उवाच

पुरा सनत्कुमारेण पृष्टः शैलादिरादरात्॥२॥
नंदी प्राह वचस्तस्मै प्रवदामि समासतः। देवैर्दैत्यैस्तथा सिद्धैर्गंधर्वैः सिद्धचारणैः॥३॥
मुनिभिश्च महाभागैरनुष्ठितमनुत्तमम्। व्रतं द्वादशलिंगाख्यं पशुपाशविमोक्षणम्॥४॥
भोगदं योगदं चैव कामदं मुक्तिदं शुभम्। अवियोगकरं पुण्यं भक्तानां भयनाशनम्॥५॥
षडंगसहितान् वेदान्मथित्वा तेन निर्मितम्। सर्वदानोत्तमं पुण्यमश्वमेधायुताधिकम्॥६॥
सर्वमंगलदं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम्। संसारार्णवमग्नानां जंतूनामपि मोक्षदम्॥७॥
सर्वव्याधिहरं चैव सर्वज्वरविनाशनम्। देवैरनुष्ठितं पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुना तथा॥८॥
कृत्वाकनीयसं लिंगं स्नाप्य चंदनवारिणा। चैत्रमासादि विप्रेंद्राः शिवलिंगव्रतं चरेत्॥९॥

इक्यासीवाँ अध्याय

पशुपाश विमोचन लिंग पूजादि कथन

ऋषिगण बोले

पशुपाश से मुक्त होने का जो व्रत आपने बताया यह पाशुपत व्रत जो लिंग से सम्बन्धित है और जिसको देवताओं ने पहिले किया था, आप इस व्रत को उस विधि से बताइये जैसा आपने पहले सुना था।

सूत बोले

पहिले शिलाद के पुत्र नंदी से सनत्कुमार ने आदरपूर्वक पूछा था। जो कुछ नंदी जी ने उनको बताया था वही मैं संक्षेप में कहता हूँ। द्वादश लिंग नाम से कहा जाने वाला और पशुओं (व्यक्तिगत आत्माओं) को पाश (सांसारिक बन्धनों) से मुक्त करने वाला पाशुपत व्रत को पहिले देवताओं, दैत्यों, गंधर्वों, सिद्धों, चारणों और महाभाग्यवान ऋषियों द्वारा किया गया था।।१-४।। यह सांसारिक भोग, योग, काम और मुक्ति देता है। यह पुण्य शुभ, शिव का सान्निध्यदायक, भक्तों के भय का नाशक, छः अंगों सहित वेदों को मथकर निकाला गया, सब व्याधिओं को हरने वाला, सब दानों में उत्तम, दस हजार अश्वमेध यज्ञों से पवित्रतर, सब मंगल का दायक, सब शत्रुओं का विनाशक, संसाररूपी सागर में मग्न प्राणियों को मोक्ष देने वाला, सब ज्वरों का विनाशक, ब्रह्मा, विष्णु और देवताओं द्वारा पहिले किया गया यह पाशुपत व्रत है।।५-८।। भक्त एक छोटा लिंग बनावे। उसको चन्दन के सुगंधित जल से स्नान करावे। इस प्रकार चैत्र मास से प्रारम्भ करके शिवलिंग के व्रत को करे।।९।। हे श्रेष्ठ

कृत्वा हैमं शुभं पद्मं कर्णिकाकेसरान्वितम्। नवरत्नैश्च खचितमष्टपत्रं यथाविधि॥१०॥
कर्णिकायां न्यसेल्लिंगं स्फाटिकं पीठसंयुतम्। तत्र भक्त्या यथान्यायमर्चयेद्बिल्वपत्रकैः॥११॥
सितैः सहस्त्रकमलै रक्तैर्नीलोत्पलैरपि। श्वेतार्ककर्णिकारैश्च करवीरैर्बकैरपि॥१२॥
एतैरन्यैर्यथालाभं गायत्र्या तस्य सुव्रताः। संपूज्य चैव गंधाद्यैर्धूपैर्दीपैश्च मंगलैः॥१३॥
नीरजनाद्यैश्चान्यैश्च लिंगमूर्तिं महेश्वरम्। अगरुं दक्षिणे दद्यादघोरेण द्विजोत्तमाः॥१४॥
पश्चिमे सद्यमंत्रेण दिव्यां चैव मनःशिलाम्। उत्तरे वामदेवेन चंदनं वापि दापयेत्॥१५॥
पुरुषेण मुनिश्रेष्ठा हरितालं च पूर्वतः। सितागरूद्भवं विप्रास्तथा कृष्णागरूद्भवम्॥१६॥
तथा गुग्गुलुधूपं च सौगंधिकमनुत्तमम्। सितारं नाम धूपं च दद्यादीशाय भक्तितः॥१७॥
महाचरुर्निवेद्यः स्यादाढकान्नमथापि वा। एतद्वः कथितं पुण्यं शिवलिंगमहाव्रतम्॥१८॥
सर्वमासेषु सामान्यं विशेषोपि च कीर्त्यते। वैशाखे वज्रलिंगं च ज्येष्ठे मारकतं तथा॥१९॥
आषाढे मौक्तिकं लिंगं श्रावणे नीलनिर्मितम्। मासि भाद्रपदे लिंगं पद्मरागमयं शुभम्॥२०॥
आश्विने चैव विप्रेंद्राः गोमेदकमयं शुभम्। प्रवालेनैव कार्तिक्यां तथा वै मार्गशीर्षके॥२१॥
वैडूर्यनिर्मितं लिंगं पुष्परागेण पुष्यके। माघे च सूर्यकांतेन फाल्गुने स्फाटिकेन च॥२२॥
सर्वमासेषु कमलं हैममेकं विधीयते। अलाभे राजतं वापि केवलं कमलं तु वा॥२३॥
रत्नानामप्यलाभे तु हेम्ना वा राजतेन वा। रजतस्याप्यलाभे तु ताम्रलोहेन कारयेत्॥२४॥

ब्राह्मणों! भक्त कर्णिका और जलहरी से युक्त स्वर्ण का एक कमल बनवाये। उसमें आठ दल (पत्र) हों। वह नव बहुमूल्य रत्नों से खचित हो। तब एक स्फटिक का स्थूल शिवलिंग जलहरी में कर्णिका सहित स्थापित करे। तब बेलपत्रों से विधिपूर्वक श्रद्धा से उसकी पूजा करे।।१०-११।। हे सुव्रतो! वह हजारों सफेद, लाल, नीले कमलों, सफेद मदार के फूल, कनैल, कर्णिकार, कुरबक के तथा अन्य फूलों से जो उपलब्ध हो, उनसे लिंग की गायत्री मंत्र द्वारा पूजा करे। चन्दन आदि गंध, धूप, दीप और नीराजन (आरती) करे। भक्त लिंग के रूप की इस प्रकार पूजा करे। वह अघोर मंत्र से दक्षिण ओर अगरु दे।।१२-१४।। पश्चिम में सद्योजात मंत्र से दिव्य मनशिला और उत्तर में घिसे हुये चन्दन बामदेव मंत्र से अर्पित करे। हरिताल को पूर्व में तत्पुरुष मंत्र से, श्वेत कृष्ण अगरु गुग्गुल का अतिसुगंधित धूप, अच्छा सुगंधित और सितार नामक इत्र चढ़ावे।।१५-१७।। महाचरु या एक अढ़ैया पका चावल को नैवेद्य के रूप में भेंट करे। इस प्रकार यह शिवलिंग का महान् शुद्ध धार्मिक व्रत मैंने बताया।।१८।। यह पूजा विधि सब महीनों में सामान्य है। अब मैं विशेष पूजा विधि को बताता हूँ। वैसाख मास में वज्र लिंग, ज्येष्ठ में मरकत लिंग, आषाढ़ में मोती का लिंग, श्रावण में नील से बना लिंग, भाद्रपद में पद्मराग लिंग, आश्विन में गोभेद लिंग, कार्तिक में प्रवाल का लिंग, मार्गशीर्ष में वैडूर्य लिंग, पौष में पुष्पराज (पुखराज) लिंग, माघ मास में सूर्यकान्त का बना लिंग, फाल्गुन में स्फटिक का लिंग होना चाहिये।।१९-२२।। सब महीनों में सोने के कमल के लिंग की पूजा करनी चाहिये। यदि वह न मिल सके तो चाँदी के कमल के लिंग का उपयोग करना चाहिये। यदि वह भी न प्राप्त हो तो साधारण कमल का उपयोग किया जाय। जब कि रत्नों के लिंग न प्राप्त हों तो उनके

शैलं वा दारुजं वापि मृन्मयं वा सवेदिकम्। सर्वगंधमयं वापि क्षणिकं परिकल्पयेत्।।२५।।
हैमंतिके महादेवं श्रीपत्रेणैव पूजयेत्। सर्वमासेषु कमलं हैममेकमथापि वा।।२६।।
राजतं वापि कमलं हैमकर्णिकमुत्तमम्। राजतस्याप्यभावे तु बिल्वपत्रैः समर्चयेत्।।२७।।
सहस्रकमलालाभे तदर्धेनापि पूजयेत्। तदर्धार्धेन वा रुद्रमष्टोत्तरशतेन वा।।२८।।

बिल्वपत्रे स्थिता लक्ष्मीर्देवी लक्षणसंयुता।
नीलोत्पलेंबिका साक्षादुत्पले षण्मुखः स्वयम्।।२९।।

पद्माश्रितो महादेवः सर्वदेवपतिः शिवः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीपत्रं न त्यजेद्बुधः।।३०।।
नीलोत्पलं चोत्पलं च कमलं च विशेषतः। सर्वरोगक्षयं पद्मं शिला सर्वार्थसिद्धिदा।।३१।।
कृष्णागरुसमुद्भूतं सर्वपापनिकृंतनम्। गुग्गुलुप्रभृतीनां च दीपानां च निवेदनम्।।३२।।
सर्वरोगक्षयं चैव चंदनं सर्वसिद्धिदम्। सौगंधिकं तथा धूपं सर्वकामार्थसाधकम्।।३३।।

श्वेतागरूद्भवं चैव तथा कृष्णागरूद्भवम्।
सौम्यं सीतारधूपं च साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम्।।३४।।

श्वेतार्ककुसुमे साक्षाच्चतुर्वक्त्रः प्रजापतिः। कर्णिकारस्य कुसुमे मेधा साक्षाद्व्यवस्थिता।।३५।।
करवीरे गणाध्यक्षो बके नारायणः स्वयम्। सुगंधिषु च सर्वेषु कुसुमेषु नगात्मजा।।३६।।

अभाव में सोने या चाँदी के लिंग का प्रयोग करें। वह भी न सुलभ हो तो चाँदी के लिंग का उपयोग करे।।२३-२४।। वेदी सहित पत्थर, काष्ठ या मिट्टी का लिंग बनाये या अस्थायी क्षणिक सर्वगंधमय लिंग बनाकर पूजा करे।।२५।। हेमन्तऋतु में भक्त महादेव की पूजा केवल बेल के पत्तों से करे। सब महीनों में स्वर्ण के बने कमल या चाँदी के बने कमल जिसमें स्वर्ण के दल हों, प्रयोग किया जा सकता है। अगर चाँदी का कमल न प्राप्य हो तो बिल्वपत्र से पूजा करे।।२६-२७।। हजार कमलों के अभाव में उसके आधे से अर्थात् पाँच सौ कमलों से पूजा करे। उसके आधे या उसके भी आधे या कम-से-कम एक-सौ आठ कमलों से पूजा करे।।२८।। बेल के पत्तों में सब लक्षणों युक्त लक्ष्मी वास करती हैं। नीलकमल में अम्बिका साक्षात् उपस्थित रहती हैं और लाल कमल में स्वयं षडानन विद्यमान रहते हैं।।२९।। देवों के देव, महादेव, शिव कमल में अधिष्ठित रहते हैं। इसलिये बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिये कि वह कभी भी बिल्वपत्रों का त्याग न करे।।३०।। भक्त को नील कमल, लाल उत्पल (लिली) और विशेष रूप से लाल कमल को न छोड़ना चाहिये। कमल सब रोगों को वश में करने वाला है। शिला (मनशिल) सब सिद्धियों को देता है।।३१।। काले अगरु से उत्पन्न सुगंध सब पापों को काट देती है। गुग्गुल आदि का दीपों का निवेदन (धूप और दीप दान) सब रोगों को क्षय (नाश) करता है तथा चन्दन सब सिद्धियों को प्रदान करता है। सुगंधित द्रव्य और धूप सब कामनाओं और अर्थों के साधक हैं। श्वेत और कृष्ण अगरु से उत्पन्न सुगंध और सीतार नामक धूप की सुगंध साक्षात् निर्वाण (मुक्ति) प्रदान करता है।।।३२-३३।। मदार के सफेद पुष्पों में चतुर्मुख ब्रह्मा वास करते हैं। अमिलतास के पुष्पों में मेधा देवी साक्षात् वास करती हैं। करवीर के पुष्पों में गणों के अध्यक्ष देवता तथा कुरुबक के पुष्पों में नारायण स्वयं वास करते हैं। सुगंधित पुष्प में पार्वती

तस्मादेतैर्यथालाभं पुष्पधूपादिभिः शुभैः। पूजयेद्देवदेवेशं भक्त्या वित्तानुसारतः॥३७॥
निवेदयेत्ततो भक्त्या पायसं च महाचरुम्। सघृतं सोपदंशं च सर्वद्रव्यसमन्वितम्॥३८॥
शुद्धान्नं वापि मुद्गान्नमाढकं चार्धकं तु वा। चामरं तालवृंतं च तस्मै भक्त्या निवेदयेत्॥३९॥
उपहाराणि पुण्यानि न्यायेनैवार्जितान्यपि। नानाविधानि चार्हाणि प्रोक्षितान्यंभसा पुनः॥४०॥
निवेदयेच्च रुद्राय भक्तियुक्तेन चेतसा। क्षीराद्वै सर्वदेवानां स्थित्यर्थममृतं ध्रुवम्॥४१॥
विष्णुना जिष्णुना साक्षादन्ने सर्वं प्रतिष्ठितम्। भूतानामन्नदानेन प्रीतिर्भवति शंकरे॥४२॥
तस्मात्संपूजयेद्देवमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः। उपहारे तथा तुष्टिर्व्यंजने पवनः स्वयम्॥४३॥
सर्वात्मको महादेवो गंधतोये ह्यपांपतिः। पीठे वै प्रकृतिः साक्षान्महदाद्यैर्व्यवस्थिता॥४४॥
तस्माद्देवं यजेद्भक्त्या प्रतिमासं यथाविधि। पौर्णमास्यां व्रतं कार्यं सर्वकामार्थसिद्धये॥४५॥
सत्यं शौचं दया शांतिः संतोषो दानमेव च। पौर्णमास्याममावास्यामुपवासं च कारयेत्॥४६॥
संवत्सरांते गोदानं वृषोत्सर्गं विशेषतः।
भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या श्रोत्रियान् वेदपारगान्॥४७॥
तल्लिंगं पूजितं तेन सर्वद्रव्यसमन्वितम्। स्थापयेद्वा शिवक्षेत्रे दापयेद् ब्राह्मणाय वा॥४८॥

जी वास करती हैं। अतः प्रत्येक भक्त को चाहिये कि वह अपने वित्त के अनुसार देवों के देव महादेव की पूजा इन सुगंधित पुष्पों और धूपों आदि से (जहाँ तक जो मिल सके) तदनुसार पूजा करे।।३४-३७।। उसके बाद दूध से बनी महाचरु (खीर) को भेंट करे। भोग लगावे। भोजन में उपयोगी सब द्रव्यों से बनी हुई घृत सहित छोटी प्लेट में प्रस्तुत करके भोग लगावे।।३८।। या तो भक्त एक अढ़ैया या आधा अढ़ैया पका चावल या पका हुआ मूँग सहित अन्न (मुद्गान्न) भेंट करे। चामर और पंखा भी मूर्त्ति को दान दे। न्यायपूर्वक अर्जित शुद्ध अन्य उपहारों को भी भेंट करे। वे शुद्ध अर्ह (देने योग्य) और विविध प्रकार के हों। समर्पण करने से पहिले उन पर जल छिड़ककर भक्ति से रुद्र को भेंट करे। जीतने की इच्छा वाले विष्णु भगवान ने देवताओं की स्थिति के लिए दूध से अमृत खींचकर सब अन्नों में स्थापित कर दिया। सब कुछ पके भोजन पर स्थित है। प्राणियों को भोजन देने (अन्न दान करने) से शिव प्रसन्न होते हैं। इसलिये भक्त पका अन्न (भोजन) देकर शिव की पूजा करे। अन्न में प्राण प्रतिष्ठित है (अर्थात् अन्न ही प्राण है)। पंखे में वायु देवता का वास रहता है। उसके दान से वायु देवता प्रसन्न होते हैं। अन्य उपहारों से स्वयं की तुष्टि होती है। महादेव जी स्वयं सब वस्तुओं में विराजमान हैं। जल के देवता वरुण सुगंधित जल में विद्यमान हैं। पीठ (वेदी) में महत् आदि से युक्त प्रकृति स्वयं स्थित है। अतः प्रति मास विधिपूर्वक भक्ति से पशुपति भगवान शिव की पूजा करनी चाहिये। सब कार्यों की सिद्धि के लिये पूर्णमासी का व्रत करना चाहिये।।३९-४५।। भक्त को सत्य, शुद्धता, दया, शान्ति और सन्तोष को अपनाना चाहिये। यथाशक्ति दान देना चाहिये। पूर्णिमा और अमावस्या को उपवास करना चाहिये। विशेष रूप से संवत्सर (वर्ष) के अन्त में गोदान और वृषोत्सर्ग करना चाहिये। श्रोत्रिय वेदों के विशेषज्ञ विद्वानों को भोजन कराना चाहिये।।४६-४७।। जिस शिव लिंग की पूजा की गयी है उस लिंग को सब दान की सामग्री सहित शिवालय में दे देनी चाहिये या ब्राह्मण को

य एवं सर्वमासेषु शिवलिंगमहाव्रतम्। कुर्याद्भक्त्या मुनिश्रेष्ठाः स एव तपतां वरः॥४९॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानै रत्नभूषितैः। गत्वा शिवपुरं दिव्यं नेहायाति कदाचन॥५०॥
अथवा ह्येकमासं वा चरेदेवं व्रतोत्तमम्। शिवलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥५१॥
अथवा सक्तचित्तश्चेद्यान्यान् संचिंतयेद्वरान्। वर्षमेकं चरेदेवं तांस्तान्प्राप्य शिवं व्रजेत्॥५२॥
देवत्वं वा पितृत्वं वा देवराजत्वमेव च। गाणपत्यपदं वापि सक्तोपि लभते नरः॥५३॥
विद्यार्थी लभते विद्यां भोगार्थी भोगमाप्नुयात्। द्रव्यार्थी च निधिं पश्येदायुःकामश्चिरायुषम्॥५४॥
यान्यांश्चितयते कामांस्तांस्तान्प्राप्येह मोदते। एकमासव्रतादेव सोंते रुद्रत्वमाप्नुयात्॥५५॥

इदं पवित्रं परमं रहस्यं व्रतोत्तमं विश्वसृजापि सृष्टम्।
हिताय देवासुरसिद्धमर्त्यविद्याधराणां परमं शिवेन॥५६॥
संपूज्य पूज्यं विधिनैवमीशं प्रणम्य मूर्ध्ना सह भृत्यपुत्रैः।
व्यपोहनं नाम जपेत्स्तवं च प्रदक्षिणं कृत्य शिवं प्रयत्नात्॥५७॥
पुराकृतं विश्वसृजा स्तवं च हिताय देवेन जगत्त्रयस्य।
पितामहेनैव सुरैश्च सार्धं महानुभावेन महार्घ्यमेतत्॥५८॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पशुपाशविमोचनलिंगपूजादिकथनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः॥८१॥

दान कर देना चाहिये।।४८।। हे मुनीश्वरों! जो सब मासों में भक्तिपूर्वक इस शिवलिंग महाव्रत को करे वही तपस्या करने वालों में सर्वश्रेष्ठ है।।४९।। वह भक्त करोड़ों सूर्यों के समान रत्नों से भूषित विमानों से दिव्य शिवलोक को जाता है और फिर लौटकर इस मृत्युलोक में नहीं आता है।।५०।। अथवा एक मास भी यह व्रत करता है तो वह शिवलोक को प्राप्त करता है। इसमें विचार करने की या संदेह की कोई बात नहीं है।।५१।।या यदि भक्त का चित्त सांसारिक सुख भोगों में लगा है तो एक मास यह व्रत करे तो उन सब अभीष्ट सांसारिक सुखों को प्राप्त करके शिव को प्राप्त करता है।।५२।। शिव भक्ति में आसक्त व्यक्ति देवत्व, पितृत्व, इन्द्रत्व और गणाधिपत्व भी प्राप्त कर लेता है।।५३।। विद्यार्थी विद्या को, भोगार्थी भोगों को, द्रव्यार्थी धन को प्राप्त करता है और आयु के इच्छुक व्यक्ति को दीर्घायु प्राप्त होती है।।५४।। जिन-जिन इच्छाओं को मन में करता है उस व्यक्ति की वे सब इच्छाएँ केवल एक मास का व्रत करने से पूरी होती हैं। अन्त में वह रुद्रत्व को प्राप्त करता है।।५५।। देवों, असुरों, सिद्धों, विद्याधरों और मनुष्यों के कल्याण के लिए यह पवित्र, शोभन और गुप्त व्रत स्वयं विश्व के सिरजनहार शिवजी ने बनाया है।।५६।। पूज्य शिव की विधिपूर्वक पूजा करके अपने पुत्रों और सेवकों सहित मस्तक झुकाकर प्रणाम करे और प्रदक्षिणा करे। उसके बाद 'व्यपोहन' प्रार्थना मंत्रों को पढ़े।।५७।। इस बहुत मूल्यवान प्रार्थना मंत्र को संसार के स्रष्टा ब्रह्मा ने देवताओं के साथ तीनों लोकों के हित के लिए रचा था।।५८।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में पशुपाश विमोचन लिंगपूजादि कथन नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त॥८१॥

द्व्याशीतितमोऽध्यायः

व्यपोहनस्तवनिरूपणम्

सूत उवाच

व्यपोहनस्तवं वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदं शुभम्। नंदिनश्च मुखाच्छ्रुत्वा कुमारेण महात्मना॥१॥
व्यासाय कथितं तस्माद्बहुमानेन वै मया। नमः शिवाय शुद्धाय निर्मलाय यशस्विने॥२॥
दुष्टांतकाय सर्वाय भवाय परमात्मने। पंचवक्त्रो दशभुजो ह्यक्षपंचदशैर्युतः॥३॥
शुद्धस्फटिकसंकाशः सर्वाभरणभूषितः। सर्वज्ञः सर्वगः शांतः सर्वोपरि सुसंस्थितः॥४॥
पद्मासनस्थः सोमेशः पापमाशु व्यपोहतु। ईशानः पुरुषश्चैव अघोरः सद्य एव च॥५॥
वामदेवश्च भगवान्पापमाशु व्यपोहतु। अनंतः सर्वविद्येशः सर्वज्ञः सर्वदः प्रभुः॥६॥
शिवध्यानैकसंपन्नः स मे पापं व्यपोहतु। सूक्ष्मः सुरासुरेशानो विश्वेशो गणपूजितः॥७॥
शिवध्यानैकसंपन्नः स पे पापं व्यपोहतु। शिवोत्तमो महापूज्यः शिवध्यानपरायणः॥८॥
सर्वगः सर्वदः शांतः स मे पापं व्यपोहतु। एकाक्षो भगवानीशः शिवार्चनपरायण॥९॥
शिवध्यानैकसंपन्नः स मे पापं व्यपोहतु। त्रिमूर्तिर्भगवानीशः शिवभक्तिप्रबोधकः॥१०॥
शिवध्यानैकसंपन्नः स मे पापं व्यपोहतु। श्रीकंठः श्रीपतिः श्रीमाञ्शिवध्यानरतः सदा॥११॥

बयासीवाँ अध्याय

व्यपोहनस्तव का निरूपण

सूत बोले

अब मैं शुभ प्रार्थना को बताऊँगा जो कि पापों को दूर करता है और सिद्धि प्रदान करता है। इसको पहिले नन्दी से महात्मा कुमार ने सुना था। उन्होंने व्यास को सुनाया। व्यास जी से मैंने एकाग्रचित्त होकर सुना था। शुद्ध, निर्मल, यशस्वी, दुष्टों के नाशक शिव को नमस्कार। शर्व को, भव को, महान् आत्मा को नमस्कार। पाँच मुख, दस भुजा, पन्द्रह ज्ञानेन्द्रियों से युक्त, सर्व भूषणों से भूषित, शुद्ध स्फटिक के समान, सर्वज्ञ, सर्वत्रगामी, शान्त, सब के ऊपर स्थित पद्मासन में विराजमान और उमा सहित शिव पाप को शीघ्र दूर करें।।१-४।। ईशान, पुरुष, अघोर, सद्य, वामदेव पाप को शीघ्र दूर करें। अनन्त, सब विद्याओं के स्वामी, सर्वज्ञ और सब-कुछ देने वाले और शिव के ध्यान में लीन मेरे पाप को दूर करें। देवों और असुरों के सूक्ष्म ईश, विश्व के ईश, गणों द्वारा पूजित, शिव के ध्यान में लीन वह मेरे पाप को दूर करें। शुभों (शिवों) में सर्वोत्तम, महा पूज्य, शुभ ध्यान में परायण मेरे पाप को दूर करें। सर्वग, सब-कुछ देने वाले, शान्त वह मेरे पाप को दूर करें।।५-८।। एक नेत्रधारी (एकाक्ष) भगवान, ईश शुभ पूजन में लीन शिव के ध्यान से सम्पन्न वह मेरे पाप को दूर करें। त्रिमूर्त्ति, भगवान, ईश शिव भक्ति के प्रेरक, शिव के ध्यान से सम्पन्न वे मेरे पाप को दूर करें। श्रीकण्ठ, श्रीपति, शिव की पूजा

शिवार्चनरतः साक्षात् स मे पापं व्यपोहतु। शिखंडी भगवाञ्शांतः शवभस्मानुलेपनः॥१२॥
शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु। त्रैलोक्यनमिता देवी सोल्काकारा पुरातनी॥१३॥
दाक्षायणी महादेवी गौरी हैमवती शुभा। एकपर्णाग्रजा सौम्या तथा वै चैकपाटला॥१४॥
अपर्णा वरदा देवी वरदानैकतत्परा। उमाऽसुरहरा साक्षात्कौशिकी वा कपर्दिनी॥१५॥
खट्वांगधारिणी दिव्या कराग्रतरुपल्लवा। नैगमेयादिभि र्दिव्यैश्चतुर्भिः पुत्रकैर्वृता॥१६॥
मेनाया नंदिनी देवी वारिजा वारिजेक्षणा। अंबाया वीतशोकस्य नंदिनश्च महात्मनः॥१७॥
शुभावत्याः सखी शांता पंचचूडा वरप्रदा। सृष्ट्यर्थं सर्वभूतानां प्रकृतित्वं गताव्यया॥१८॥
त्रयोविंशतिभिस्तत्त्वैर्महदाद्यैर्विजृंभिता । लक्ष्म्यादिशक्तिभिर्नित्यं नमिता नंदनंदिनी॥१९॥
मनोन्मनी महादेवी मायावी मंडनप्रिया। मायया या जगत्सर्वं ब्रह्माद्यं सचराचरम्॥२०॥
क्षोभिणी मोहिनी नित्यं योगिनां हृदि संस्थिता। एकानेकस्थिता लोके इंदीवरनिभेक्षणा॥२१॥
भक्त्या परमया नित्यं सर्वदेवैरभिष्टुता। गणेंद्रांभोजगर्भेन्द्रयमवित्तेशपूर्वकैः ॥२२॥
संस्तुता जननी तेषां सर्वोपद्रवनाशिनी। भक्तानामार्तिहा भव्या भवभावविनाशनी॥२३॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा दिव्या भक्तानामप्रयत्नतः। सा मे साक्षान्महादेवी पापमाशु व्यपोहतु॥२४॥
चंडः सर्वगणेशानो मुखाच्छंभोर्विनिर्गतः। शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहतु॥२५॥
शालंकायनपुत्रस्तु हलमार्गोत्थितः प्रभुः। जामाता मरुतां देवः सर्वभूतमहेश्वरः॥२६॥

और ध्यान में लीन मेरे पाप को दूर करें। शिखंडी, शान्त, शव के भस्म को चुपड़ने वाले, श्रीमान, शिव की अर्चना में लीन, भगवान मेरे पाप को दूर करें।।९-१२।। महादेवी तुरन्त मेरे पाप को दूर करें जो कि तीनों लोकों द्वारा नमस्कृत हैं। उल्का के आकार, पुरातन देवी महादेवी, दक्ष की कन्या (दाक्षायणी), गौरी, शुभ पार्वती (हिमवान की पुत्री) एकपर्णा, अग्रजा, अपर्णा, वर देने वाली देवी, वर देने में सदा तत्पर देवी, उमा, असुर विनाशिनी कौशिकी, कपर्दिनी, खड्गधारिणी, दिव्या अपने हाथ के अग्रभाग में पल्लव धारण करने वाली, नैगमेय तथा अन्य चार पुत्रों द्वारा घिरी हुई, मेना की पुत्री, जल से उत्पन्न देवी कमलनयनी, शोकरहित महात्मा नन्दी की आत्मा, शुभावती की सखी, पंचभूता, वरदायिनी, सब प्राणियों की सृष्टि के लिये प्रकृति की स्थिति को प्राप्त, अव्ययरूपा, महत् आदि तेईस तत्त्वों से युक्ता, लक्ष्मी तथा अन्य शक्तियों से नित्य नमस्कृता, नन्द की पुत्री मनोन्मनी, महादेवी, माया को रचने वाली, सज-धज को पसन्द करने वाली, अपनी माया से ब्रह्मा आदि सब चर और अचर को क्षुब्ध करने वाली और मोहने वाली, योगियों के हृदयों में बसने वाली, एक और अनेक रूप में विश्व में स्थित, नील कमल के समान नेत्र वाली, गणेश्वरों ब्रह्मा, इन्द्र, यम और कुबेर आदि सब देवों से स्तुत, स्तुति किये जाने पर सब विपत्तियों की विनाशिनी माता, भक्तों के कष्टों की हारिणी, भव्य, सांसारिक भावों की नाशिनी, बिना प्रयास के भक्तों को भुक्ति (सांसारिक सुख) और मुक्ति देने वाली, वह महादेवी मेरे पाप को शीघ्र नष्ट करें।।१३-२४।। शिव के मुख से उत्पन्न श्रीमान् शिव के अर्चना में लीन चण्ड मेरे पाप को दूर करें।।२५।। प्रभु नन्दी मेरे सब पापों को दूर करें। शालंकायन के पुत्र, हल के मार्ग से उत्थित मरुतों के जामाता,

सर्वगः सर्वदृक् शर्वः सर्वेशसदृशः प्रभुः। सनारायणकैर्देवैः सेंद्रचन्द्रदिवाकरैः॥२७॥
सिद्धैश्च यक्षगंधर्वैर्भूतैर्भूतविधायकैः। उरगैर्ऋषिभिश्चैव ब्रह्मणा च महात्मना॥२८॥
स्तुतस्त्रैलोक्यनाथस्तु मुनिरंतःपुरं स्थितः। सर्वदा पूजितः सर्वैर्नंदी पापं व्यपोहतु॥२९॥
महाकायो महातेजा महादेव इवापरः। शिवार्चनरतः श्रीमान्स मे पापं व्यपोहतु॥३०॥
मेरुमंदारकैलासतटकूटप्रभेदनः। ऐरावतादिभिर्दिव्यैर्दिग्गजैश्च सुपूजितः॥३१॥
सप्तपातालपादश्च सप्तद्वीपोरुजंघकः। सप्तार्णवांकुशश्चैव सर्वतीर्थोदरः शिवः॥३२॥
आकाशदेहो दिग्बाहुः सोमसूर्याग्निलोचनः। हतासुरमहावृक्षो ब्रह्मविद्यामहोत्कटः॥३३॥
ब्रह्माद्याधोरणैर्दिव्यैर्योगपाशसमन्वितैः। बद्धो हृतपुंडरीकाख्ये स्तंभे वृत्तिं निरुध्य च॥३४॥
नगेंद्रवक्त्रो यः साक्षाद्गणकोटिशतैर्वृतः। शिवध्यानैकसंपन्नः स मे पापं व्यपोहतु॥३५॥
भृंगीशः पिंगलाक्षोसौ भसिताशस्तु देहयुक्। शिवार्चनरतः श्रीमान्स मे पापं व्यपोहतु॥३६॥

चतुर्भिस्तनुभिर्नित्यं सर्वासुरनिबर्हणः।
स्कंदः शक्तिधरः शांतः सेनानीः शिखिवाहनः॥३७॥

देवसेनापतिः श्रीमान्स मे पापं व्यपोहतु। भवः शर्वस्तथेशानो रुद्रः पशुपतिस्तथा॥३८॥
उग्रो भीमो महादेवः शिवार्चनरतः सदा। एताः पापं व्यपोहंतु मूर्तयः परमेष्ठिनः॥३९॥
महादेवः शिवो रुद्रः शंकरो नीललोहितः। ईशानो विजयो भीमो देवदेवो भवोद्भवः॥४०॥

सब भूतों के स्वामी, सर्वत्रगामी, सर्वत्र देखने वाले, सर्वेश के समान मेरे पापों को दूर करें। नारायण, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, भूतों और भूतों के स्रष्टा, सर्पों, मुनियों और महात्मा ब्रह्मा द्वारा स्तुत, त्रिलोकीनाथ, मुनियों के हृदयों में विराजमान, सर्वदा सबके द्वारा पूजित नन्दी मेरे पाप को दूर करें।।२६-२९।। महाकाय, महातेजस्वी, दूसरे महादेव के समान, श्रीमान् शिव की पूजा में रत, वह मेरे पाप को दूर करें।।३०।। शुभ गज के समान मुख वाले देव हजारों और करोड़ों गणों से घिरे हुये और शिव के ध्यान से सम्पन्न मेरे पाप को दूर करें। वह मेरु मंदार और कैलास के कूटों को छेदन और भेदन करने वाले, ऐरावत तथा अन्य दिग्गजों द्वारा पूजित सातों पाताल जिनके पेट, सातों द्वीप जिनके उरु और जाँघ वाले, सात समुद्र जिनके अंकुश, सब तीर्थ जिसके उदर, आकाश जिसकी देह, दिशायें जिसकी भुजाएँ, सोम और सूर्य और अग्नि जिसके तीन नेत्र, असुर गण वृक्षों के समान जिसके द्वारा काटे गये, ब्रह्मविद्या से महान् और उत्कट, ब्रह्मा द्वारा मनुष्य के कमल के समान हृदयरूपी खम्भे से बँधे हुये योगरूपी पाश (रस्सी) से युक्त और दिव्य महावत के समान कार्य करने वाले वह मेरे पाप को दूर करें।।३१-३५।। श्रीमान् पिंगलवर्ण के नेत्र वाले भृंगीश जिसकी देह दिशाओं को भासित करती है, वह जो शिव की पूजा में रत हैं, वे मेरे पाप को दूर करें।।३६।। देवताओं की सेना के सेनापति शक्तिधर अपने चार शरीरों से असुरों के संहारक, शान्त, मयूरवाहन वाले, श्री स्कन्द मेरे पापों को दूर करें। परमेष्ठी के ये रूप मेरे पाप को दूर करें। भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र, भीम और महादेव जो कि सदाशिव की पूजा में तत्पर हैं। उनके देह की ये मूर्त्तियाँ महादेव, शिव, रुद्र, शंकर, नीललोहित, ईशान, विजय, भीम, देवदेव

कपालीशश्च विज्ञेयो रुद्रा रुद्रांशसंभवाः। शिवप्रणामसंपन्ना व्यपोहंतु मलं मम॥४१॥
विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तंडो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकश्चैव लोकसाक्षी त्रिविक्रमः॥४२॥
आदित्यश्च तथा सूर्यश्चांशुमांश्च दिवाकरः। एते वै द्वादशादित्या व्यपोहंतु मलं मम॥४३॥
गगनं स्पर्शनं तेजो रसश्च पृथिवी तथा। चंद्रः सूर्यस्तथात्मा च तनवः शिवभाषिताः॥४४॥
पापं व्यपोहंतु मम भयं निर्नाशयंतु मे। वासवः पावकश्चैव यमो निर्ऋतिरेव च॥४५॥
वरुणो वायुसोमौ च ईशानो भवान् हरिः। पितामहश्च भगवान् शिवध्यानपरायणः॥४६॥
एते पापं व्यपोहंतु मनसा कर्मणा कृतम्। नभस्वान्स्पर्शनो वायुरनिलो मारुतस्तथा॥४७॥
प्राणः प्राणेशजीवेशौ मारुतः शिवभाषिताः। शिवार्चनरताः सर्वे व्यपोहंतु मलं मम॥४८॥
खेचरी वसुचारी च ब्रह्मेशो ब्रह्मब्रह्मधीः। सुषेणः शाश्वतः पुष्टः सुपुष्टश्च महाबलः॥४९॥
एते वै चारणाः शंभोः पूजयातीव भाविताः। व्यपोहंतु मलं सर्वं पापं चैव मया कृतम्॥५०॥
मंत्रज्ञो मंत्रवित् प्राज्ञो मंत्रराट् सिद्धपूजितः। सिद्धवत्परमः सिद्धः सर्वसिद्धिप्रदायिनः॥५१॥
व्यपोहंतु मलं सर्वे सिद्धाः शिवपदार्चकाः। यक्षो यक्षेश धनदो जृंभको मणिभद्रकः॥५२॥
पूर्णभद्रेश्वरो माली शितिकुंडलिरेव च। नरेंद्रश्चैव यक्षेशा व्यपोहंतु मलं मम॥५३॥
अनंतः कुलिकश्चैव वासुकिस्तक्षकस्तथा। कर्कोटको महापद्मः शंखपालो महाबलः॥५४॥
शिवप्रणामसंपन्नाः शिवदेहप्रभूषणाः। मम पापं व्यपोहंतु विषं स्थावरजंगमम्॥५५॥
वीणाज्ञः किन्नरश्चैव सुरसेनः प्रमर्दनः। अतीशयः स प्रयोगी गीतज्ञश्चैव किन्नराः॥५६॥

भवोद्भव, कपाली, ईश, जो कि शिव को नमस्कार करने में रत हैं, वे मेरे पाप को दूर करें।।३७-४१।। विवर्त्तन, विवस्वान, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोक प्रकाशक, लोक साक्षी, त्रिविक्रम, आदित्य, सूर्य, अंशुमान और दिवाकर मेरे पापों को ये बारह आदित्य दूर करें।।४२-४३।। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, चन्द्र और आत्मा ये शिव जी के शरीर (मूर्त्ति कहे गये हैं) ये मेरे पाप को दूर करें। ये भय का नाश करें।।४४-४५।। वासव (इन्द्र), पावक (अग्नि), यम, निऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, भगवान हरि, नारायण पितामह ये सब शिव के ध्यान में तत्पर मन से और शरीर से किये गये पापों को दूर करें।।४६-४७।। वायु, नभस्वान, स्पर्शन, वायु, अनिल, मरुत, प्राण, प्राणेश और जीवेश ये सब जो शिव की पूजा में रत हैं, वे मेरे मल (पाप) को दूर करें।।४८।। खेचरी, वसुचारी, ब्रह्मेश, सुषेण, शाश्वत, पुष्ट, सुपुष्ट, महाबल, ये सब चारण—जो शिव जी की पूजा से अपने को परम पवित्र किये हुये हैं—ये मेरे द्वारा किये गये पापों को दूर करें।।४९-५०।। मंत्रज्ञ, मंत्रविद, प्राज्ञ, मंत्रराट्, सर्वपूजित सिद्धवत् परम और सिद्ध सब सिद्धियों के प्रदाता, शिव के चरणों के पूजक ये सब सिद्ध मेरे मल को दूर करें।।५१-५२।। यक्ष, यक्षेश, धनद, जृंभक, सणिभद्रक, पूर्णभद्रेश्वर, माली, शितिकुंडलि, नरेन्द्र ये यक्षों के स्वामी (यक्षेश) मेरे मल को दूर करें।।५३।। अनन्त, कुलिक, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, महापद्म, शंखपाल, महाबल जो शिव को प्रणाम में रत हैं, वे मेरे पाप को दूर करें।।५४-५५।। वीणाज्ञ, सुरसेन, प्रमर्दन, अतीशय, प्रयोगी, गीतज्ञ, किन्नरगण—जो कि शिव जी को प्रणाम करने में

शिवप्रणामसंपन्ना व्यपोहंतु मलं मम। विद्याधरश्च विबुधो विद्याराशिर्विदां वरः॥५७॥
विबुद्धो विबुधः श्रीमान्कृतज्ञश्च महायशः। एते विद्याधराः सर्वे शिवध्यानपरायणाः॥५८॥
व्यपोहंतु मलं घोरं महादेवप्रसादतः। वामदेवी महाजंभः कालनेमिर्महाबलः॥५९॥
सुग्रीवो मर्दकश्चैव पिंगलो देवमर्दनः। प्रह्लादश्चाप्यनुह्लादः संह्लादः किल बाष्कलौ॥६०॥
जंभः कुंभश्च मायावी कार्तवीर्यः कृतंजयः। एतेऽसुरा महात्मानो महादेवपरायणाः॥६१॥
व्यपोहंतु भयं घोरमासुरं भावमेव च। गरुत्मान् खगतिश्चैव पक्षिराट् नागमर्दनः॥६२॥
नागशत्रुर्हिरण्यांगो वैनतेयः प्रभंजनः। नागाशीर्विषनाशश्च विष्णुवाहन एव च॥६३॥
एते हिरण्यवर्णाभा गरुडा विष्णुवाहनाः। नानाभरणसंपन्ना व्यपोहंतु मलं मम॥६४॥
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च अंगिरा भृगुरेव च। काश्यपो नारदश्चैव दधीचश्च्यवनस्तथा॥६५॥
उपमन्युस्तथान्ये च ऋषयः शिवभाविताः। शिवार्चनरताः सर्वे व्यपोहंतु मलं मम॥६६॥
पितरः पितामहाश्च तथैव प्रपितामहाः। अग्निष्वात्ता बर्हिषदस्तथा मातामहादयः॥६७॥
व्यपोहंतु भयं पापं शिवध्यानपरायणाः। लक्ष्मीश्च धरणी चैव गायत्री च सरस्वती॥६८॥
दुर्गा उषा शची ज्येष्ठा मातरः सुरपूजिताः। देवानां मातरश्चैव गणानां मातरस्तथा॥६९॥
भूतानां मातरः सर्वा यत्र या गणमातरः। प्रसादाद्देवदेवस्य व्यपोहंतु मलं मम॥७०॥
उर्वशी मेनका चैव रंभा रतितिलोत्तमाः। सुमुखी दुर्मुखी चैव कामुखी कामवर्धनी॥७१॥
तथान्याः सर्वलोकेषु दिव्याश्चाप्सरसस्तथा। शिवाय तांडवं नित्यं कुर्वंत्योतीव भाविताः॥७२॥
देव्यः शिवार्चनरता व्यपोहंतु मलं मम। अर्कः सोमोंगारकश्च बुधश्चैव बृहस्पतिः॥७३॥

लगे हैं—वे मेरे पाप को दूर करें।।५६-५७।। विबुध, विद्याराशि, विदांवर विबुद्ध विबुध, श्रीमान् कृतज्ञ और महायश ये शिव के ध्यान में परायण सभी विद्याधर महादेव की कृपा से मेरे भयानक (घोर) मल को दूर करें।।५८-५९।। वामदेवी, महाजम्भ, कालनेमि, महाबल, सुग्रीव, मर्दक, पिंगल, देवमर्दन, प्रह्लाद अनुह्लाद, संह्लाद, किल, बाष्कल, जम्भ, कुंभ, मायावी, कार्तवीर्य, कृतंजय, ये महादेव परायण महात्मा असुर मेरे घोर भय और असुर प्रवृत्ति को दूर करें।।६०-६२।। गरुत्मान, खगति, पक्षिराट, नागमर्दन, नागशत्रु, हिरण्यांग, वैनतेय, प्रभंजन, नागाशी, विषनाश विष्णुवाहन, ये सोने के रंग वाले विष्णु के वाहन नाना आभूषणों से विभूषित गरुड़गण मेरे मल को दूर करें।।६३-६४।। अगस्त्य, वसिष्ठ, अंगिरा, भृगु, काश्यप, नारद, दधीच, च्यवन, उपमन्यु तथा अन्य ऋषिगण जो शिव द्वारा भावित और उनकी पूजा में लीन हैं वे मेरे मल को दूर करें।।६५-६६।। पिता, पितामह, प्रपितामह, अग्निष्वात्त, बर्हिषद तथा मातामह आदि जो शिव के ध्यान में रत हैं वे मेरे भय और पाप को दूर करें।।६७-६८।। लक्ष्मी, धरणी, गायत्री, सरस्वती, दुर्गा, उषा, शची, ज्येष्ठा ये देवताओं द्वारा पूजित देवों की माताएँ और गणों की माताएँ सब भूतों की माताएँ और गण माताएँ देवों के देव महादेव की कृपा से मेरे मल को दूर करें।।६९-७०।। उर्वशी, मेनका, रंभा, रति, तिलोत्तमा, सुमुखी, दुर्मुखी, कामुखी, कामवर्धनी, तथा अन्य देवियाँ तथा अप्सराएँ शिव के लिये नित्य ताण्डव करने वाली शिव की अर्चना में लीन

शुक्रः शनैश्चरश्चैव राहुः केतुस्तथैव च। व्यपोहंतु भयं घोरं ग्रहपीडां शिवार्चकाः॥७४॥
मेषो वृषोथ मिथुनस्तथा कर्कटकः शुभः। सिंहश्च कन्या विपुला तुला वै वृश्चिकस्तथा॥७५॥
धनुश्च मकरश्चैव कुंभो मीनस्तथैव च। राशयो द्वादश ह्येते शिवपूजापरायणाः॥७६॥
व्यपोहंतु भयं पापं प्रसादात्परमेष्ठिनः। अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा॥७७॥
श्रीमन्मृगशिरश्चार्द्रा पुनर्वसुपुष्यसार्पकाः। मघा वै पूर्वफाल्गुन्य उत्तराफाल्गुनी तथा॥७८॥
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका। ज्येष्ठा मूलं महाभागा पूर्वाषाढा तथैव च॥७९॥
उत्तराषाढिका चैव श्रवणं च श्रविष्ठिका। शतभिषक्पूर्वभद्रा च तथा प्रोष्ठपदा तथा॥८०॥
पौष्णं च देव्यः सततं व्यपोहंतु मलं मम। ज्वरः कुंभोदरश्चैव शंकुकर्णो महाबलः॥८१॥
महाकर्णः प्रभातश्च महाभूतप्रमर्दनः। श्येनजिच्छिवदूतश्च प्रमथाः प्रीतिवर्धनाः॥८२॥
कोटिकोटिशतैश्चैव भूतानां मातरः सदा। व्यपोहंतु भयं पापं महादेवप्रसादतः॥८३॥
शिवध्यानैकसंपन्नो हिमराडंबुसन्निभः। कुन्देन्दुसदृशाकारः कुंभकुंदेंदुभूषणः॥८४॥
वडवानलशत्रुर्यो वडवामुखभेदनः। चतुष्पादसमायुक्तः क्षीरोद इव पांडुरः॥८५॥
रुद्रलोके स्थितो नित्यं रुद्रैः सार्धं गणेश्वरैः। वृषेंद्रो विश्वधृग्देवो विश्वस्य जगतः पिता॥८६॥
वृतो नंदादिभिर्नित्यं मातृभिर्मखमर्दनः। शिवार्चनरतो नित्यं स मे पापं व्यपोहतु॥८७॥
गंगा माता जगन्माता रुद्रलोके व्यवस्थिता। शिवभक्ता तु या नंदा सा मे पापं व्यपोहतु॥८८॥

ये देवियाँ मेरे मल को दूर करें।।७१-७३।। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु शिव के पूजक ये ग्रह गण मेरी ग्रहपीड़ा और घोर मल को दूर करें।।७४।। मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन शिव की पूजा परायण से बारहों राशियाँ परमेष्ठी शिव की कृपा से मेरे भय और पाप को दूर करें।।७५-७७।। अश्विनी, भरणी, कृत्रिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिष, पूर्व भाद्रपद, उत्तर भाद्रपद और रेवती ये नक्षत्र और देवियाँ मेरे मल को दूर करें।।७८-८०।। ज्वर, कुंभोदर, शंकुकर्ण, महाबल, महाकर्ण, प्रभात, महाभूतप्रमर्दन, श्येनजित, शिवदूत, क्रमशः ये प्रसन्नता को बढ़ाने वाले और भूतों की असंख्य माताएँ महादेव की कृपा से मेरे पाप और भय को दूर करें।।८१-८३।। शिव की पूजा में तल्लीन है, जल राशि के समान है, कुन्द पुष्प और चन्द्र के समान आकार वाला क्षीरसागर के जल के समान श्वेत, वडवानल का शत्रु, बडवानल का भेदन करने वाला है, वह हिमालय मेरे पाप को नष्ट करे।।८४-८५।। चार पैर वाला, क्षीरसागर के दूध के समान रंग वाला, रुद्रों और गणेश्वरों के साथ रुद्रों में सदा स्थित, विश्व को धारण करने वाला, सम्पूर्ण विश्व का दिव्य पिता, नन्दा तथा अन्य माताओं से सदा घिरा हुआ और यज्ञ का मर्दन करने वाला है वह वृषेन्द्र नंदी सारे पापों को दूर करे।।८६-८७।। रुद्र लोक स्थित शिव की परम भक्त, जगत् भी माता गंगा जी मेरे पाप को दूर

भद्रा भद्रपदा देवी शिवलोके व्यवस्थिता। माता गवां महाभागा सा मे पापं व्यपोहतु॥८९॥
सुरभिः सर्वतोभद्रा सर्वपापप्रणाशनी। रुद्रपूजारता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु॥९०॥
सुशीला शीलसंपन्ना श्रीप्रदा शिवभाविता। शिवलोके स्थिता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु॥९१॥
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्वकार्याभिचिंतकः। समस्तगुणसंपन्नः सर्वदेवेश्वरात्मजः॥९२॥
ज्येष्ठः सर्वेश्वरः सौम्यो महाविष्णुतनुः स्वयम्। आर्यः सेनापतिः साक्षाद्गहनो मखमर्दनः॥९३॥
ऐरावतगजारूढः कृष्णकुंचितमूर्धजः। कृष्णांगो रक्तनयनः शशिपन्नगभूषणः॥९४॥
भूतैः प्रेतैः पिशाचैश्च कूष्माण्डैश्च समावृतः। शिवार्चनरतः साक्षात्स मे पापं व्यपोहतु॥९५॥
ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा। वाराही चैव माहेंद्री चामुंडाग्नेयिका तथा॥९६॥
एता वै मातरः सर्वाः सर्वलोकप्रपूजिताः। योगिनीभिर्महापापं व्यपोहंतु समाहिताः॥९७॥
वीरभद्रो महातेजा हिमकुंदेंदुसन्निभः। रुद्रस्य तनयो रौद्रः शूलासक्तमहाकरः॥९८॥
सहस्त्रबाहुः सर्वज्ञः सर्वायुधधरः स्वयम्। त्रेताग्निनयनो देवस्त्रैलोक्याभयदः प्रभुः॥९९॥
मातृणां रक्षको नित्यं महावृषभवाहनः। त्रैलोक्यनमितः श्रीमान्शिवपादार्चने रतः॥१००॥
यज्ञस्य च शिरश्छेत्ता पूष्णो दंतविनाशनः। वह्नेर्हस्तहरः साक्षाद्भगनेत्रनिपातनः॥१०१॥
पादांगुष्ठेन सोमांगपेषकः प्रभुसंज्ञकः। उपेंद्रेंद्रयमादीनां देवानामंगरक्षकः॥१०२॥

करें।।८८।। भद्र पद वाली शिव की पूजा में स्थित महाभोगशालिनी, गायों की माता मेरे पाप को दूर करें। शिव द्वारा भावित सुरभि मेरे पाप को दूर करें।।८९।। सदाचारिणी, सब पापों की विनाशिनी, रुद्र की पूजा में लीन, सुरभि मेरे पाप को दूर करें।।९०।। शील से सम्पन्न, श्री प्रदान करने वाली, शिव द्वारा भावित, नित्य शिव लोक में स्थित सुशीला मेरे पाप को दूर करें।।९१।। वेदों और शास्त्रों के अर्थों के मर्मज्ञ सब कार्यों के साधक, सब गुणों से सम्पन्न, शिव जी के ज्येष्ठ, सौम्य पुत्र, सबके स्वामी, महाविष्णु के स्वयं शरीर, आर्य सेना के श्रेष्ठ सेनापति, ऐरावत गज पर आरुढ़ (बैठे हुये) काले घुंघराते बाल, काले अंग, लाल नेत्र, चन्द्र और सर्प के भूषण से भूषित, भूतों, पिशाचों और प्रेतों एवं कूष्मांडों से घिरे हुये, और शिव की पूजा में रत, शिव जी के पुत्र सेनापति स्कन्द मेरे पाप को दूर करें।।९२-९५।। ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, अग्नेयिका, से सब लोक पूजित शुद्ध और योगिनियों से घिरी माताएँ मेरे पापों को दूर करें।।९६-९७।। वीरभद्र महातेजस्वी रुद्र के पुत्र हैं। वह सेनानायक और गणेश्वर हैं। वे मेरे पाप को दूर करें। वह कुन्द के पुष्प और चन्द्रमा के समान हैं। वह भयानक हैं, उनका महान् हाथ त्रिशूल से संयुक्त है। वह सर्वज्ञ, हजारों भुजावाले, सब आयुधों को धारण करने वाले, तीन यज्ञाग्नि बने नेत्र वाले, प्रभु, त्रिलोकों के निर्भय करने वाले, माताओं के सदा रक्षक, महान् वृष के वाहन वाले श्रीमान् और तीनों लोकों द्वारा नमस्कृत शिव की पूजा में रत, यज्ञ के सिर के काटने वाले, पूषा के दाँत को तोड़ने वाले, अग्नि के हाथ को हरने वाले, भग के नेत्र को नीचे गिराने वाले, अपने पैर के बड़े अँगूठे से सोम के अंगों के पेषक, उपेन्द्र के, इन्द्र यम और अन्य देवताओं के अंगरक्षक, सरस्वती के ओठों और नाक के काटने वाले, जो गणेश्वर और सेनानी हैं, वे मेरे पाप को दूर करें। ज्येष्ठा,

सरस्वत्या महादेव्या नासिकोष्ठावकर्तनः। गणेश्वरो यः सेनानीः स मे पापं व्यपोहतु॥१०३॥
ज्येष्ठा वरिष्ठा वरदा वराभरणभूषिता। महालक्ष्मीर्जगन्माता सा पे पापं व्यपोहतु॥१०४॥
महामोहा महाभागा महाभूतगणैर्वृता। शिवार्चनरता नित्यं सा मे पापं व्यापेहतु॥१०५॥
लक्ष्मीः सर्वगुणोपेता सर्वलक्षणसंयुता। सर्वदा सर्वगा देवी सा मे पापं व्यपोहतु॥१०६॥
सिंहारूढा महादेवी पार्वत्यास्तनयाव्यया। विष्णोर्निद्रा महामाया वैष्णवी सुरपूजिता॥१०७॥
त्रिनेत्रा वरदा देवी महिषासुरमर्दिनी। शिवार्चनरता दुर्गा सा मे पापं व्यपोहतु॥१०८॥
ब्रह्मांडधारका रुद्राः सर्वलोकप्रपूजिताः। सत्याश्च मानसाः सर्वे व्यपोहन्तु भयं मम॥१०९॥
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च कूष्मांडगणनायकाः। कूष्मांडकाश्च ते पापं व्यपोहन्तु समाहिता॥११०॥
अनेन देवं स्तुत्वा तु चांते सर्वं समापयेत्। प्रणम्य शिरसा भूमौ प्रतिमासे द्विजोत्तमाः॥१११॥
व्यपोहनस्तवं दिव्यं यः पठेच्छृणुयादपि। विधूय सर्वपापानि रुद्रलोके महीयते॥११२॥
कन्यार्थी लभते कन्यां जयकामो जयं लभेत्। अर्थकामो लभेदर्थं पुत्रकामो बहून् सुतान्॥११३॥
विद्यार्थी लभते विद्यां भोगार्थी भोगमाप्नुयात्। यान्यान्प्रार्थयते कामान्मानवः श्रवणदिह॥११४॥
तान्सर्वान् शीघ्रमाप्नोति देवानां च प्रियो भवेत्। पठ्यमानमिदं पुण्यं यमुद्दिश्य तु पठ्यते॥११५॥
तस्य रोगा न बाधंते वातपित्तादिसंभवाः। नाकाले मरणं तस्य न सर्पैरपि दश्यते॥११६॥
यत्पुण्यं चैव तीर्थानां यज्ञानां चैव पत्फलम्। दानानां चैव यत्पुण्यं व्रतानां च विशेषतः॥११७॥

वरिष्ठा, वरदायिनी, श्रेष्ठ आभूषणों से भूषित जगत् की माता महालक्ष्मी मेरे पाप को दूर करें।।९८-१०४।। महाभाग्यसालिनी महाभूत गणों से धिरी हुई शिव की पूजा में रत महामोहा मेरे पाप को दूर करें।।१०५।। सब गुणों से युक्त सब लक्षणों से सम्पन्न, सब-कुछ देने वाली और सर्वत्र जाने वाली, लक्ष्मी मेरे पाप को दूर करें।।१०६।। सिंह पर आरूढ़, पार्वती की पुत्री अव्यक्त विष्णु जी की निद्रा महामाया, देवों द्वारा पूजित, वैष्णवी तीन नेत्रों वाली, वरदायिनी, महिषासुरमर्दिनी, शिवजी की अर्चना में रत दुर्गा देवी मेरे पाप को दूर करें।।१०७-१०८।। ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले सब लोकों द्वारा पूजित, रुद्रगण और सत्य मन से मेरे भय को दूर करें।।१०९।। भूतगण, प्रेतगण, पिशाचगण, कूष्माण्डगण और गणों के नायक मेरे पाप को दूर करें।।११०।।

देवताओं ने इस प्रार्थना से शिव की प्रार्थना स्तुति करके भूमि पर अपने शिरों को रखकर (मत्था टेककर) प्रणाम किया। हे उत्तम ब्राह्मणों! इस दिव्य व्यमोहन स्तव को जो पढ़े या सुनें वह सब पापों को नष्ट करके रुद्रलोक में सम्मानित होता है।।१११-११२।। कन्या की कामना करने वाने को कन्या मिलती है। जय चाहने वाले को जय मिलती है। अर्थ चाहने वाले को अर्थ मिलता है।।११३।। विद्यार्थी विद्या को प्राप्त करता है। इसके सुनने से मनुष्य जो-जो चाहता है वह सब उसको मिलता है। वह देवताओं का प्रिय होता है। यदि इस पवित्र प्रार्थना को जिस किसी के निमित्त पढ़ा जाय उसको वात, पित्त और कफ से उत्पन्न रोग बाधा नहीं पहुँचाते हैं। उसकी अकालमृत्यु नहीं होती है और न तो उसको साँप ही डसता है।।११४-११६।। तीर्थों की यात्रा करने और यज्ञों के करने, दान देने एवं विशेषरूप में व्रतों को करने का जो फल मिलता है उससे करोड़ों गुने फल इस स्तोत्र

तत्पुण्यं कोटिगुणितं जप्त्वा चाप्नोति मानवः। गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च वीरहा ब्रह्महा भवेत्॥११८॥
शरणागतघाती च मित्रविश्वासघातकः। दुष्टः पापसमाचारो मातृहा पितृहा तथा॥११९॥
व्यपोह्य सर्वपापानि शिवलोके महीयते॥१२०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे व्यपोहनस्तवनिरूपणं नाम व्यशीतितमोऽध्यायः॥८२॥

का पाठ करने से मनुष्य को मिलता है। गोहत्या, वीर की हत्या, ब्राह्मण की हत्या, शरणागत की हत्या, माता और पिता की हत्या करने वाला, कृतघ्न और मित्र के साथ विश्वासघात करने वाला ये सब दुष्ट पापी लोग अपने पापों से मुक्त होकर शिवलोक में सम्मान पाते हैं।।११७-१२०।।

श्रीलिंगमहापुराण के प्रथम भाग में व्यपोहन स्तवनिरूपण नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त॥८२॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

शिवव्रतकथनम्

ऋषय ऊचुः

व्यपोहनस्तवं पुण्यं श्रुतमस्माभिरादरात्। प्रसंगाल्लिंगदानस्यव्रतान्यपि वदस्व नः॥१॥

सूत उवाच

व्रतानि वः प्रवक्ष्यामि शुभानि मुनिसत्तमाः। नंदिना कथितानीह ब्रह्मपुत्राय धीमते॥२॥
तानि व्यासादुपश्रुत्य युष्माकं प्रवदाम्यहम्। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि॥३॥
वर्षमेकं तु भुंजानो नक्तं यः पूजयेच्छिवम्। सर्वयज्ञफलं प्राप्य स याति परमां गतिम्॥४॥
पृथिवीं भाजनं कृत्वा भुक्त्वा पर्वसु मानवः। अहोरात्रेण चैकेन त्रिरात्रफलमश्नुते॥५॥
द्वयोर्मासस्य पंचम्योर्द्वयोः प्रतिपदोर्नरः। क्षीरधाराव्रतं कुर्यात्सोश्वमेधफलं लभेत्॥६॥
कृष्णाष्टम्यां तु नक्तेन यावत्कृष्णचतुर्दशी। भुंजन्भोगानवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति॥७॥
योब्दमेकं प्रकुर्वीत नक्तं पर्वसु पर्वसु। ब्रह्मचारी जितक्रोधः शिवध्यानपरायणः॥८॥

तिरासीवाँ अध्याय

शिवव्रत कथन

ऋषि बोले

हम लोगों ने आप से आदरपूर्वक पुण्यदायक व्यपोहनस्तव को सुना। अब हमको लिंगों से सम्बन्धित व्रतों को बताइये।।१।।

सूत बोले

हे ऋषीश्वरों! मैं शुभ व्रतों को कहूँगा जो कि नन्दी ने ब्रह्मा के बुद्धिमान पुत्र से कहा था।।२।। जैसा कि मैंने व्यास जी से सुना था वैसे ही तुम सबको कहूँगा। दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी को भक्त केवल एक बार भोजन करे। रात्रि में और एक वर्ष तक व्रत को जारी रखे और शिव जी की पूजा करे। उसको सब यज्ञों का फल मिलता है और वह परम गति को प्राप्त करता है।।३-४।। पर्व के दिनों से एक दिन और एक रात इस व्रत को करके और पृथ्वी को पात्र (बर्तन) बनाकर भोजन करने से भक्त तीन रात्रियों का फल प्राप्त करता है। मास की दोनों पंचमी और प्रतिपदाओं को जो मनुष्य क्षीरधाराव्रत करता है अर्थात् केवल दूध पीकर रहता है, वह अश्वमेघ यज्ञ का फल पाता है।।५-६।। कृष्ण पक्ष की अष्टमी से कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तक केवल रात्रि में एक बार भोजन करने वाला भक्त इस व्रत को करने से सांसारिक सुखों को प्राप्त करता है और अन्त में ब्रह्म लोक को जाता है।।७।। ब्रह्मचारी, क्रोध को जीतकर, शिव के ध्यान में लीन होकर भक्त सब पर्व-दिनों में रात में यह

संवत्सरांते विप्रेंद्रान् भोजयेद्विधिपूर्वकम्। स याति शांकरं लोकं नात्र कार्या विचारणा॥९॥
उपवासात् परं भैक्ष्यं भैक्ष्यात्परमयाचितम्। अयाचितात्परं नक्तं तस्मान्नक्तेन वर्तयेत्॥१०॥
देवैर्भुक्तं तु पूर्वाह्णे मध्याह्ने ऋषिभिस्तथा। अपराह्णे च पितृभिः संध्यायां गुह्यकादिभिः॥११॥
सर्ववेलामतिक्रम्य नक्तभोजनमुत्तमम्। हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम्॥१२॥
अग्निकार्यमधःशय्यां नक्तभोजी समाचरेत्। प्रतिमासं प्रवक्ष्यामि शिवव्रतमनुत्तमम्॥१३॥
धर्मकामार्थमोक्षार्थं सर्वपापविशुद्धये। पुष्यमासे च संपूज्य यः कुर्यान्नक्तभोजनम्॥१४॥
सत्यवादी जितक्रोधः शालिगोधूमगोरसैः। पक्षयोरष्टमीं यत्नादुपवासेन वर्तयेत्॥१५॥
भूमिशय्यां च मासांते पौर्णमास्यां घृतादिभिः। स्नाप्य रुद्रं महादेवं संपूज्य विधिपूर्वकम्॥१६॥

यावकं चौदनं दत्त्वा सक्षीरं सघृतं द्विजाः।
भोजयेद् ब्राह्मणाञ्शिष्टाञ्जपेच्छांतिं विशेषतः॥१७॥

तथा गोमिथुनं चैव कपिलं विनिवेदयेत्। भवाय देवदेवाय शिवाय परमेष्ठिने॥१८॥

स याति मुनिशार्दूल वाह्नेयं लोकमुत्तमम्।
भुक्त्वा स विपुलान् लोकान् तत्रैव स विमुच्यते॥१९॥

व्रत एक वर्ष तक करता है और वर्ष के अन्त में ब्राह्मणों को विधिपूर्वक भोजन कराता है तो वह शिवलोक को जाता है। इसमें विचार करने (सन्देह करने) की बात नहीं है।।८-९।। उपवास करने की अपेक्षा भिक्षा माँगकर खा लेना अच्छा है। भिक्षा की अपेक्षा बिना माँगे प्राप्त भोजन को खाना अच्छा है। अयाचित भोजन को खाने की अपेक्षा रात्रि में भोजन करना ठीक है। अतः भक्त को व्रत करना चाहिये।।१०।। अपूर्वाह्न में किया हुआ भोजन देवों का, मध्यांह्न में ऋषियों का, अपराह्न में पितरों का, संध्याकाल में गुह्यकों का होता है। रात्रि में भोजन करना सर्वोत्तम होता है। भक्त जो नियमित रूप से रात्रि में भोजन करता है उसको हव्य भोजन, स्नान, सत्यभाषण, हल्का भोजन, अग्निहोत्र और भूमि शयन (भूमि पर सोना) करना चाहिये।।११-१२।। मैं शिव जी के प्रति मास का व्रत बताऊँगा यह व्रत सब पापों से शुद्ध होने के लिये तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये किया जाता है।।१३-१४।।

पौष मास का व्रत

भक्त शिव की पूजा करे और केवल रात्रि में भोजन करे। वह सत्य भाषण करे और क्रोध को वश में करे। वह शालि चावल गेहूँ और दूध से बने पदार्थ का भोजन करे। वह दोनों पक्षों की अष्टमी को उपवास करे। वह भूमि पर शयन करे। पूर्णिमासी के दिन वह घी आदि अन्य सामग्री से रुद्र का स्नान करावे। हे ब्राह्मणों! विधिपूर्वक शिव की पूजा करके भक्त उत्तम ब्राह्मणों को दूध और घी में पकाये गये यव का भोजन करावे। वह विशेष रूप से शान्ति मन्त्रों का जप करे। वह देवेश, महेश्वर भव को एक रंग की एक गाय भेंट करें। हे ऋषीश्वरों! वह भक्त अग्नि देव के उत्तम लोक को जाता है। वहाँ पर विपुल भोगों को भोग कर अन्त में वहीं पर स्वतः मुक्त हो जाता है।।१५-१९।।

माघमासे तु संपूज्य यः कुर्यान्नक्तभोजम्। कृशरं घृतसंयुक्तं भुंजानः संयतेंद्रियः॥२०॥
सोपवासं चतुर्दश्यां भवेदुभयपक्षयोः।
रुद्राय पौर्णमास्यां तु दद्याद्वै घृतकंबलम्॥२१॥
कृष्णं गोमिथुनं दद्यात्पूजयेच्चैव शंकरम्।
भोजयेद्ब्राह्मणांश्चैव यथाविभवविस्तरम्॥२२॥
याम्यमासाद्य वै लोकं यमेन सह मोदते। फाल्गुने चैव संप्राप्ते कुर्याद्वै नक्तभोजनम्॥२३॥
श्यामाकान्नघृतक्षीरैर्जितक्रोधो जितेंद्रियः। चतुर्दश्यामथाष्टम्यामुपवासं च कारयेत्॥२४॥
पौर्णमास्यां महादेवं स्नाप्य संपूज्य शंकरम्। दद्याद्गोमिथुनं वापि ताम्राभं शूलपाणये॥२५॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु प्रार्थयेत्परमेश्वरम्। स याति चंद्रसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा॥२६॥
चैत्रेपि रुद्रमभ्यर्च्य कुर्याद्वै नक्तभोजनम्। शाल्यन्नं पयसा युक्तं घृतेन च यथासुखम्॥२७॥
गोष्ठशायी मुनिश्रेष्ठाः क्षितौ निशि भवं स्मरेत्।
पौर्णमास्यां शिवं स्नाप्य दद्याद्गोमिथुनं सितम्॥२८॥

माघ मास का व्रत

माघ मास में भक्त शिव की पूजा करे और केवल रात्रि में भोजन करे। वह घी से युक्त कृशर का भोजन करे और जितेन्द्रिय रहे। इन्द्रियों पर संयम रखे। दोनों पक्ष की चतुर्दशी को उपवास करे। पूर्णमासी के दिन रुद्र देवता को घी और कम्बल दान करे। काले रंग के गो मिथुन (गाय और बैल) का दान करे। शिव की पूजा करे। यथासामर्थ्य ब्राह्मणों को भोजन करावे। तब वह यम लोक को जाता है और वहाँ पर यम के साथ आनन्द मनाता है।।२०-२२।।

फाल्गुन मास का व्रत

फाल्गुन मास में भक्त सावाँ का चावल घी और दूध में पकाकर रात्रि में भोजन करे। वह ज्ञानेन्द्रियों और क्रोध को वश में रखे। वह दोनों पक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी को व्रत रखे। पूर्णिमा के दिन भक्त शिव जी को स्नान करावे और पूजा करे। त्रिशूलधारी शिव को ताँबे के रंग की एक गाय और एक बैल भेंट करे। ब्राह्मणों को भोजन कराके परमेश्वर शिव की प्रार्थना करे। तब वह चन्द्रमा का सायुज्य प्राप्त करता है। इसमें सन्देह करने की कोई गुंजाइश नहीं है।।२३-२६।।

चैत्र मास का व्रत

चैत्र मास में भक्त शिव की पूजा करे और रात्रि में अपनी अभीष्ट रुचि के अनुसार भोजन करे। शाली चावल, घी और दूध में पका हुआ भोजन करे। हे महर्षियों! वह रात्रि में गोशाला में भूमि पर (बिना विस्तर के) शयन करे और शिव का स्मरण करे। पूर्णिमा के दिन भक्त शिव को स्नान करा के पूजा करे और एक सफेद रंग की गाय और एक बैल शिव को भेंट करे। वह ब्राह्मणों को भोजन करावे। तब भक्त निर्ऋति में निवास प्राप्त करता है।।२७-२८।।

ब्राह्मणान् भोजयेच्चैव निर्ऋतेः स्थानमाप्नुयात्।
वैशाखे च तथा मासे कृत्वा वै नक्तभोजनम्॥२९॥
पौर्णमास्यां भवं स्नाप्य पंचगव्यघृतादिभिः। श्वेतं गोमिथुनं दत्त्वा सोश्वमेघफलं लभेत्॥३०॥
ज्येष्ठे मासे च देवेशं भवं शर्वमुमापतिम्।
संपूज्य श्रद्धया भक्त्या कृत्वा वै नक्तभोजनम्॥३१॥
रक्तशाल्यन्नमध्वा च अद्भिः पूतं घृतादिभिः। वीरासनी निशार्धं च गवां शूश्रूपणे रतः॥३२॥
पौर्णमास्यां तु संपूज्य देवदेवमुमापतिम्।
स्नाप्य शत्तया यथान्यायं चरुं दद्याच्च शूलिने॥३३॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च यथाविभवविस्तरम्। धूम्रं गोमिथुनं दत्त्वा वायुलोके महीयते॥३४॥
आषाढे मासि चाप्येवं नक्तभोजनतत्परः। भूरिखंडाज्यसंमिश्रं सक्तुभिश्चैव गोरसम्॥३५॥
पौर्णमास्यां घृताद्यैस्तु स्नाप्य पूज्य यथाविधि।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च श्रोत्रियान् वेदपारगान्॥३६॥
दद्याद्गोमिथुनं गौरं वारुणं लोकमाप्नुयात्।
श्रावणे च द्विजा मासे कृत्वा वै नक्तभोजनम्॥३७॥

वैसाख मास का व्रत

वैसाख मास में भक्त रात्रि में भोजन करे। पूर्णिमा के दिन वह पंचगव्य घी आदि से शिव का स्नान करावे और एक सफेद रंग की गाय और बैल को शिव को भेंट करे। तब वह अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है।।२९-३०।।

ज्येष्ठ मास का व्रत

ज्येष्ठ मास में देवेश, भव, शर्व, उमापति की श्रद्धापूर्वक पूजा करे और रात्रि में भोजन करे। लाल शालि चावल, घी, शहद, जल आदि से पका हुआ भोजन करे। वीर आसन में बैठकर आधी रात से गायों की सेवा में लग जाय। पूर्णिमा के दिन वह मूर्ति को स्नान करा के भगवान देवेश, उमापति त्रिशूलधारी शिव की पूजा करे और उनको चरु भेंट करे। अपने विभव के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावे। भक्त धुएँ के रंग की एक गाय और एक बैल शिव को भेंट करे। तब वह वायु लोक में पूजित होता है। सम्मान प्राप्त करता है।।३१-३४।।

आषाढ़ मास का व्रत

आषाढ़ मास में भक्त रात में घी, चीनी और गोरस मिला सत्तू (सतुआ) का भोजन करे। पूर्णिमासी को घृत आदि से स्नान कराके शिव की यथाविधि पूजा करे। उसके बाद वेदों में पारंगत श्रोत्रिय ब्राह्मणों को भोजन करावे। सफेद रंग की एक गाय और बैल का दान दे। तब भक्त वरुण लोक को प्राप्त करेगा।।३५-३७।।

क्षीरषष्टिकभक्तेन संपूज्य वृषभध्वजम्।
पौर्णमास्यां घृताद्यैस्तु स्नाप्य पूज्य यथाविधि॥३८॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च श्रोत्रियान् वेदपारगान्।
श्वेताग्रपादं पौड्रं च दद्याद्गोमिथुनं पुनः॥३९॥
स याति वायुसायुज्यं वायुवत्सर्वगो भवेत्। प्राप्ते भाद्रपदे मासे कृत्वैवं नक्तभोजनम्॥४०॥
हुतशेषं च विप्रेंद्रान्वृक्षमूलाश्रितो दिवा। पौर्णमास्यां तु देवेशं स्नाप्य संपूज्य शंकरम्॥४१॥
नीलस्कंधं वृषं गां च दत्त्वा भक्त्या यथाविधि। ब्राह्मणान् भोजयित्वा च वेदवेदांगपारगान्॥४२॥
यक्षलोकमनुप्राप्य यक्षराजो भवेन्नरः। ततश्चाश्वयुजे मासि कृत्वैवं नक्तभोजनम्॥४३॥
सघृतं शंकरं पूज्य पौर्णमास्यां च पूर्ववत्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च शिवभक्तान् सदा शुचीन्॥४४॥
वृषभं नीलवर्णाभमुरोदेशसमुन्नतम्।
गां च दत्वा यथान्यायमैशानं लोकमाप्नुयात्॥४५॥
कार्तिके च तथा मासे कृत्वा वै नक्तभोजनम्। क्षीरोदनेन साज्येन संपूज्य च भवं प्रभुम्॥४६॥

श्रावण मास का व्रत

हे ब्राह्मणों! श्रावण मास में भक्त दूध में पके षष्टिक चावल के भात का भोजन करे। वृषभ वाहन शिव मूर्त्ति की पूजा करे। पूर्णिमा के दिन घी आदि से स्नान करावे और विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। फिर वह वेदों में पारंगत श्रोत्रिय ब्राह्मणों को भोजन करावे। एक ईख को तथा एक गाय एवं एक सफेद खुरों वाला बैल दान करे। वह भक्त वायु देवता का सायुज्य प्राप्त करता है और वायु की तरह सब जगह जहाँ चाहे जा सकता है।।३८-४०।।

भाद्रपद मास का व्रत

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! होम से बची हुयी सामग्री का भक्त रात में भोजन करे। दिन के समय वह वृक्ष की जड़ के सहारे आराम करे। पूर्णिमा के दिन वह देवेश शिव को स्नान कराके पूजा करे। भक्तिपूर्वक यथाविधि नील कन्धों वाला एक बैल और एक गाय का दान करके वेदों और वेदाङ्गों में पारंगत विद्वानों को भोजन करावे। भक्त यक्ष लोक को प्राप्त करके वहाँ यक्षों का राजा होता है।।४१-४३।।

आश्विन मास का व्रत

आश्विन मास में भक्त रात्रि में पहिले की तरह घी से बना भोजन रात्रि में करे। शिव की पूजा करके पूर्णिमा के दिन पहिले की तरह ब्राह्मणों और पवित्र शिव भक्तों को भोजन कराके नीलवर्ण की आभा वाले, उभरी छाती वाले एक बैल और एक गाय का दान करे। तब भक्त ईशान लोक को प्राप्त करता है।।४४-४५।।

कार्त्तिक मास का व्रत

कार्त्तिक मास में भक्त शिव की पूजा करने के बाद रात्रि में दूध भात का घी के साथ भोजन करे। पूर्णिमा के दिन विधिपूर्वक स्नान करके चरु का भोग लगावे। शिव को नैवेद्य भेंट करे। अपनी वित्तीय स्थिति के अनुसार

पौर्णमास्यां च विधिवत्स्नाप्य दत्त्वा चरुं पुनः।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च यथाविभवविस्तरम्।।४७।।
दत्त्वा गोमिथुनं चैव कापिलं पूर्ववद्द्विजाः। सूर्यसायुज्यमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।।४८।।
मार्गशीर्षे च मासेपि कृत्वैवं नक्तभोजनम्। यवान्नेन यथान्यायमाज्यक्षीरादिभिः समम्।।४९।।
पौर्णमास्यां च पूर्वोक्तं कृत्वां शर्वाय शंभवे।
ब्राह्मणान् भोजयित्त्वा च दरिद्रान्वेदपारगान्।।५०।।
दत्त्वा गोमिथुनं चैव पांडुरं विधिपूर्वकम्। सोमलोकमनुप्राप्य सोमेन सह मोदते।।५१।।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा दया।
त्रिःस्नानं चाग्निहोत्रं च भूशय्या नक्तभोजनम्।।५२।।
पक्षयोरुपवासं च चतुर्दश्यष्टमीषु च। इत्येतदखिलं प्रोक्तं प्रतिमासं शिवव्रतम्।।५३।।
कुर्याद्वर्षं क्रमेणैव व्युत्क्रमेणापि वा द्विजाः। स याति शिवसायुज्यं ज्ञानयोगमवाप्नुयात्।।५४।।

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्व भागे शिवव्रतकथनं नाम
त्र्यशीतितमोऽध्यायः।।८३।।

गरीब ब्राह्मणों को तथा जो वेदों के पारंगत विद्वान हों उनको भोजन करावे। एक सफेद रंग की गाय और एक बैल को शिव की मूर्त्ति को समर्पित करे। तब भक्त सूर्य का सायुज्य प्राप्त करता है। इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं है।।४६-४८।।

मार्गशीर्ष मास का व्रत

मार्गशीर्ष (अगहन) मास में भक्त घी और दूध सहित पके हुये जव (जौ) का रात्रि में भोजन करे। पूर्णिमासी को शिव की पूर्ववत् पूजा करके गरीब, वेदों में पारंगत विद्वानों को भोजन कराके एक गाय और सफेद बैल का विधिपूर्वक दान करे। तब भक्त सोम लोक को प्राप्त करके वहाँ सोम के साथ आनन्द मनाता है।।४९-५१।। अहिंसा, सत्य भाषण, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, क्षमा, दया, प्रातः, दोपहर और सायंकाल स्नान, अग्निहोत्र, नंगी भूमि पर शयन और रात्रि में भोजन, दोनों पक्षों में अष्टमियों और चतुर्दशियों में उपवास ये सब प्रत्येक मास के शिव व्रत में करना चाहिये। ऐसा विधान है। हे ब्राह्मणों! भक्त को क्रम से वर्ष पर्यन्त करना चाहिये। या विपरीत क्रम से करे। तब भक्त शिव का सायुज्य और पूर्ण ज्ञान का मार्ग प्राप्त करता है।।५२-५४।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में शिवव्रत कथन नामक
तिरासीवाँ अध्याय समाप्त।।८३।।

चतुरशीतितमोऽध्यायः

उमामहेश्वरव्रतकथनम्

सूत उवाच

उमामहेश्वरं वक्ष्ये व्रतमीश्वरभाषितम्। नरनार्यादिजंतूनां हिताय मुनिसत्तमाः॥१॥
पौर्णमास्याममावास्यां चतुर्दश्यष्टमीषु च। नक्तमब्दं प्रकुर्वीत हविष्यं पूजयेद्भवम्॥२॥
उमामहेशप्रतिमां हेम्ना कृत्वा सुशोभनाम्। राजतीं वाथ वर्षांते प्रतिष्ठाप्य यथाविधि॥३॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च दत्त्वा शक्त्या च दक्षिणाम्।
रथाद्यैर्वापि देवेशं नीत्वा रुद्रालयं प्रति॥४॥
सर्वातिशयसंयुक्तैश्छत्रचामरभूषणैः। निवेदयेद्व्रतं चैव शिवाय परमेष्ठिने॥५॥
स याति शिवसायुज्यं नारी देव्या यदि प्रभो। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नियता ब्रह्मचारिणी॥६॥
वर्षमेकं न भुंजीत कन्या वा विधवापि वा। वर्षांते प्रतिमां कृत्वा पूर्वोक्तविधिना ततः॥७॥
प्रतिष्ठाप्य यथान्यायं दत्त्वा रुद्रालये पुनः। ब्राह्मणान् भोजयित्वा च भवान्या सह मोदते॥८॥
या नार्येवं चरेदब्दं कृष्णामेकां चतुर्दशीम्। वर्षांते प्रतिमां कृत्वा येन केनापि वा द्विजाः॥९॥

चौरासीवाँ अध्याय

उमा महेश्वर व्रत

सूत बोले

हे श्रेष्ठ मुनियों! मनुष्यों, स्त्रियों और अन्य प्राणियों के कल्याण के लिए स्वयं शिव द्वारा कथित उमा-महेश्वर व्रत को अब मैं तुम लोगों को कहूँगा।।१।। भक्त एक वर्ष के लिये पूर्णिमा और अमावस्या एवं अष्टमी और चतुर्दशी को रात में हविष्य तैयार करे और शिव की पूजा करे।।२।। भक्त उमा और महेश्वर की सोने या चाँदी की सुन्दर अच्छी मूर्त्ति बनवाये और विधिपूर्वक उसकी स्थापना करे। वर्ष के अन्त में वह ब्राह्मणों को भोजन कराये और यथाशक्ति दक्षिणा दे। वह देवेश महेश्वर की मूर्त्ति को भूषणों से सजाकर, छत्रयुक्त और रथ पर शिवालय में ले जाय। वह परमेष्ठी शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। यदि भक्त स्त्री हो तो वह देवी उमा का सायुज्य प्राप्त करती है। यदि भक्त कन्या विधवा हो तो वह अष्टमी और चतुर्दशी को भोजन करे और एक वर्ष तक निश्चित रूप से ब्रह्मचारिणी रहे। वर्ष के अन्त में वह पूर्वोक्त विधि से प्रतिमा बनवाकर विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा (स्थापना) करके शिवालय में दे दे। फिर ब्राह्मणों को भोजन कराये। इस पवित्र व्रत को करके वह भवानी के साथ आनन्द मनाती है।।३-८।। हे ब्राह्मणों! यदि कोई स्त्री केवल कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को इस पवित्र व्रत को पूरा करती है तो वह वर्ष के अन्त में शिव की किसी भी पदार्थ से एक प्रतिमा बनवाकर उसी उपरोक्त विधि

पूर्वोक्तमखिलं कृत्वा भवान्या सह मोदते। अमावास्यां निराहारा भवेदब्दं सुयंत्रिता॥१०॥
शूलं च विधिना कृत्वा वर्षांते विनिवेदयेत्।
स्नाप्येशानं यजेद्भक्त्या सहस्रैः कमलैः सितैः॥११॥
राजतं कमलं चैव जांबूनदसुकर्णिकम्। दत्त्वा भवाय विप्रेभ्यः प्रदद्याद्दक्षिणामपि॥१२॥
कामतोपि कृतं पापं भ्रूणहत्यादिकं च यत्। तत्सर्वं शूलदानेन भिंद्यान्नारी न संशयः॥१३॥
सायुज्यं चैवमाप्नोति भवान्या द्विजसत्तमाः। कुर्याद्यद्वा नरः सोपि रुद्रसायुज्यमाप्नुयात्॥१४॥
पौर्णमास्याममावास्यां वर्षमेकमतंद्रिता। उपवासरता नारी नरोपि द्विजसत्तमाः॥१५॥
नियोगादेव तत्कार्यं भर्तृणां द्विजसत्तमाः। जपं दानं तपः सर्वमस्वतंत्रा यतः स्त्रियः॥१६॥
वर्षांते सर्वगंधाढ्या प्रतिमां संनिवेदयेत्।
सा भवान्याश्च सायुज्यं सारूप्यं चापि सुव्रता॥१७॥
लभते नात्र संदेहः सत्यंसत्यं वदाम्यहम्। कार्तिक्यां वा तु या नारी एकभक्तेन वर्तते॥१८॥
क्षमाहिंसादिनियमैः संयुक्ता ब्रह्मचारिणी। दद्यात्कृष्णतिलानां च भारमेकमतंद्रिता॥१९॥
सघृतं सगुडं चैव ओदनं परमेष्ठिने। दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च यथाविभवविस्तरम्॥२०॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यामुपवासरता च सा। भवान्या मोदते सार्धं सारूप्यं प्राप्य सुव्रता॥२१॥
क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिंद्रियनिग्रहः। सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो रुद्रपूजनम्॥२२॥

से पूजा करे तो वह भवानी के साथ आनन्द मनाती है। भक्त यदि स्त्री हो तो अमावस्या को भोजन न करे। एक वर्ष तक नियन्त्रित रहे। सब प्रकार से परहेज करे। वर्ष के अन्त में विधिपूर्वक त्रिशूल बनवाकर शिव को समर्पित करे। शिव को पवित्र स्नान करा के एक हजार सफेद कमल के फूलों से उनकी भक्ति से पूजा करे। वह चाँदी का कमल सोने की कणिका सहित समर्पित करे। वह ब्राह्मणों को दान दे। त्रिशूल का दान देने से उसे उस स्त्री के द्वारा जान-बूझ कर किये गये पापों तथा भ्रूण हत्या आदि पापों से मुक्ति मिल जाती है। हे उत्तम ब्राह्मणों! इस प्रकार वह स्त्री भवानी का सायुज्य प्राप्त करती है। अगर पुरुष भक्त इस पवित्र व्रत को करता है तो वह रुद्र का सायुज्य प्राप्त करता है।।९-१४।। हे उत्तम ब्राह्मणों! पुरुष या स्त्री इस पवित्र व्रत को कर सकता है। पूर्णिमा और अमावास्या के दिन भक्त चैतन्य रहकर भक्तिपूर्वक एक वर्ष तक उपवास करे। यह पवित्र व्रत, जप, तप तथा अन्य कार्य स्त्री द्वारा पति की आज्ञा से किया जाय क्योंकि स्त्रियाँ स्वतन्त्र नहीं हैं। प्रति मास वह गंध शरीर आदि से युक्त प्रतिमा का दान करे। हे सुव्रतो! वह स्त्री भवानी का सायुज्य और सारूप्य (रूप में समानता) प्राप्त करती है। यह मैं सत्य कहता हूँ। इसमें सन्देह नहीं है।।१५-१७।। भक्त स्त्री कार्तिक मास की पूर्णिमा को केवल एक बार भोजन करे। वह क्षमा, हिंसा आदि नियमों से युक्त हो ब्रह्मचारिणी रहे। घी और गुड़ मिलाकर पकाया भात और काला तिल परमेष्ठी शिव को समर्पित करे और अपनी सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मणों को भी दान दे। हे सुव्रतो! अष्टमी और चतुर्दशी के उपवास रहने वाली वह नारी भवानी के साथ सायुज्य को प्राप्त करती है और उनके साथ आनन्द मनाती है।।१८-२१।। सब व्रतों में क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच (शुद्धता) और इन्द्रिय

समासाद्वः प्रवक्ष्यामि प्रतिमासमनुक्रमात्। मार्गशीर्षकमासादि कार्तिक्यांतं यथाक्रमम्।।२३।।
व्रतं सुविपुलं पुण्यं नंदिना परिभाषितम्। मार्गशीर्षकमासेथ वृषं पूर्णांगमुत्तमम्।।२४।।
अलंकृत्य यथान्यायं शिवाय विनिवेदयेत्। सा च सार्धं भवान्या वै मोदते नात्र संशयः।।२५।।
पुष्यमासे तु वै शूलं प्रतिष्ठाप्य निवेदयेत्। पूर्वोक्तमखिलं कृत्वा भवान्या सह मोदते।।२६।।
माघमासे रथं कृत्वा सर्वलक्षणलक्षितम्। दद्यात्संपूज्य देवेशं ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्।।२७।।
सा च देव्या महाभाग मोदते नात्रसंशयः। फाल्गुने प्रतिमां कृत्वा हिरण्येन यथाविधि।।२८।।
राजतेनापि ताम्रेण यथाविभवविस्तरम्। प्रतिष्ठाप्य समभ्यर्च्य स्थापयेच्छंकरालये।।२९।।
सा च सार्धं महादेव्या मोदते नात्र संशयः। चैत्रे भवं कुमारं भवानीं च यथाविधि।।३०।।
ताम्राद्यैर्विधिवत्कृत्वा प्रतिष्ठाप्य यथाविधि। भवान्या मोदते सार्धं दत्त्वां रुद्राय शंभवे।।३१।।
कृत्वालयं हि कौबेरं राजतं रजतेन वै। ईश्वरोमासमायुक्तं गणेशैश्च समंततः।।३२।।
सर्वरत्नसमायुक्तं प्रतिष्ठाप्य यथाविधि। स्थापयेत्परमेशस्य भवस्यायतने शुभे।।३३।।
वैशाखे वै चरेदेवं कैलासाख्यं व्रतोत्तमम्। कैलासपर्वतं प्राप्य भवान्या सह मोदते।।३४।।
ज्येष्ठे मासि महादेवं लिंगमूर्तिमुमापतिम्। कृतांजलिपुटेनैव ब्रह्मणा विष्णुना तथा।।३५।।

निग्रह और रुद्र का पूजन ये सामान्य धर्म हैं। इनका पालन करना प्रत्येक व्रत में अत्यावश्यक है।।२२-२३।। मैं अब मार्गशीर्ष से प्रारम्भ करके कार्त्तिक के अन्त तक प्रत्येक मास के व्रत को क्रमशः संक्षेप में कहता हूँ। इस विपुल व्रत को नन्दी ने स्वयं कहा था।।२४।। मार्गशीर्ष मास में भक्त स्त्री को चाहिये कि वह पूर्ण अंगों वाले एक उत्तम बैल को अलंकृत करके (सजाकर) शिव को समर्पित करे। वह स्त्री भवानी के साथ आनन्द मनाती है। इसमें संशय नहीं है। पौष मास में पूर्वोक्त विधि के अनुसार सब-कुछ करके त्रिशूल की स्थापना करके उसको शिव को समर्पित करने से वह भवानी के साथ आनन्द मनाती है। माघ मास में भक्त स्त्री सब लक्षणों से युक्त एक रथ को बनवाकर, उसको सजाकर उसकी पूजा करके शिव को समर्पित करे और ब्राह्मणों को भोजन करावे। हे महाभाग! वह देवी के साथ आनन्द मनाती है। फाल्गुन मास में वह सोने की या चाँदी या ताँबे की एक प्रतिमा अपने विभव के अनुसार बनवाकर विधिपूर्वक उसकी स्थापना और पूजा करके उसको शिवालय में स्थापित करे। वह महादेवी के साथ आनन्द मनाती है। इसमें सन्देह नहीं है। चैत्र महीने में भक्त स्त्री ताँबे या अन्य धातु की भव, कुमार और भवानी की मूर्त्ति बनवावे और उनकी विधिपूर्वक स्थापना करे। उन मूर्तियों को रुद्र को दान करने से वह भवानी के साथ आनन्द मनाती है।।२५-३१।। वैसाख मास में भक्त शोभन कैलास व्रत को करे। इस व्रत में कुबेर के आवास कैलास पर्वत को बनाकर उसमें उमा, महेश और गणेश की मूर्ति को चाँदी से बनवावे। यह सब रत्नों से युक्त एवं अलंकृत हो। उसकी विधिपूर्वक प्रतिष्ठा (स्थापना) करके उसको अच्छे शिवालय में स्थापित करे। इस प्रकार वैसाख मास में उत्तम कैलास व्रत को करे। तब वह भक्त स्त्री कैलास पर्वत को पहुँचकर वहाँ भवानी के साथ आनन्द मनाती है।।३२-३४।। हे ब्राह्मणों! ज्येष्ठ मास में उमापति महेश्वर की मूर्त्ति ताँबे या किसी धातु की लिंग में बनवावे। उस मूर्त्ति में ब्रह्मा हंस पर सवार और विष्णु बराह पर सवार

मध्ये भवेन संयुक्तं लिंगमूर्तिं द्विजोत्तमाः। हंसेन च वराहेण कृत्वा ताम्रादिभिः शुभाम्॥३६॥
प्रतिष्ठाप्य यथान्यायं ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः। शिवाय शिवमासाद्य शिवस्थाने यथाविधि॥३७॥
ब्राह्मणैः सहितां स्थाप्य देव्याः सायुज्यमाप्नुयात्।
आषाढे च शुभे मासे गृहं कृत्त्वा सुशोभनम्॥३८॥
पक्वेष्टकाभिर्विधिवद्यथाविभववित्तरम् । सर्वबीजरसैश्चापि संपूर्णं सर्वशोभनैः॥३९॥
गृहोपकरणैश्चैव मुसलोलूखलादिभिः। दासीदासादिभिश्चैव शयनैरशनादिभिः॥४०॥
संपूर्णैश्च गृहं वस्त्रैराच्छाद्य च समंततः। देवं घृतादिभिः स्नाप्य महादेवमुमापतिम्॥४१॥
ब्राह्मणानां सहस्त्रं च भोजयित्वा यथाविधि। विद्याविनयसंपन्नं ब्राह्मणं वेदपारगम्॥४२॥
प्रथमाश्रमिणं भक्त्या संपूज्य च यथाविधि। कन्यां सुमध्यमां यावत्कालजीवनसंयुताम्॥४३॥
क्षेत्रं गोमिथुनं चैव तद्गृहे चनिवेदयेत्। सायनैर्विविधैर्दिव्यैर्मेरुपर्वतसन्निभैः॥४४॥
गोलोकं समनुप्राप्य भवान्या सह मोदते। भवान्या सदृशी भूत्वा सर्वकल्पेषु साव्यया॥४५॥
भवान्याश्चैव सायुज्यं लभते नात्र संशयः। सर्वधातुसमाकीर्णं विचित्रध्वजशोभितम्॥४६॥
निवेदयीत शर्वाय श्रावणे तिलपर्वतम्। वितानध्वजवस्त्राद्यैर्धातुभिश्च निवेदयेत्॥४७॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च पूर्वोक्तमखिलं भवेत्। कृत्वा भाद्रपदे मासि शोभनं शालिपर्वतम्॥४८॥

बैठे हुये अपने-अपने हाथों को जोड़कर भगवान महेश्वर की प्रार्थना कर रहे हों। उस भव्य लिंग के मध्य में स्थित महेश्वर (भव) की मूर्त्ति की स्थापना विधिपूर्वक करके उसकी पूजा करे। तब वह भक्त महिला ब्राह्मणों को भोजन करावे। उसके बाद शिव के लिये शिवालय में ब्राह्मणों को साथ लेकर यथाविधि स्थापित करे। उसकी पूजा करने से देवी का सायुज्य प्राप्त होता है।।३५-३८।। आषाढ़ के शुभ मास में अपनी सामर्थ्य के अनुसार पक्की ईंटों का एक गृह बनवावे। यह सब बीजों और रसों से, गृह के उपयोगी मूसल, काणी आदि से, सब प्रकार के अन्नों, दास-दासी आदि से, बर्त्तनों तथा पलंग विस्तर वस्त्रों आदि से परिपूर्ण हो। वे सब सामान कपड़े से ढँके हुये हों। घी आदि से उमापति महादेव को स्नान कराया जाय। हजार ब्राह्मणों को भलीभाँति भोजन कराया जाय। एक विद्या और विनय से सम्पन्न वेदों में पारंगत ब्रह्मचारी ब्राह्मण की विधिपूर्वक भक्ति से पूजा करे। एक युवती कन्या पूर्ण जीवन भर के लिये अत्यावश्यक वस्तुओं के सहित कुछ खेत, गाय, बैल और एक गृह एवं अन्य अनेक भव्य सामानों सहित, जो मेरु पर्वत के समान ढेर हो, उसको दान करे। वह भक्त महिला गो लोक को प्राप्त करके वहाँ भवानी के साथ आनन्द मनाती है। निःसन्देह वह भवानी के सदृश होकर सब कल्पों में अव्यय (जस-की-तस) रहेगी और अन्त में भवानी का सायुज्य प्राप्त करेगी।।३९-४६अ।। श्रावण के महीने में भक्त तिल के पर्वत को बिखरे हुये धातुओं से युक्त और ध्वजा-पताकाओं सहित इन सब को शिव को समर्पित करे। ब्राह्मणों को भोजन कराके पूर्वोक्त सम्पूर्ण कृत्य को करना चाहिये।।४६ब-४८अ।। भादों के महीने में भक्त शालि चावल के पर्वत को धातुओं, ध्वजा-पताकाओं और वस्त्रों सहित ब्राह्मणों को भोजन कराके ये सब भेंट करे। वह सूर्य के किरणों

वितानध्वजवस्त्राद्यैर्धातुभिश्च निवेदयेत्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च दापयेच्च यथाविधि॥४९॥
सा च सूर्यांशुसंकाशा भवान्या सह मोदते। कृत्वा चाश्वयुजे मासि विपुलं धान्यपर्वतम्॥५०॥
सुवर्णवस्त्रसंयुक्तं दत्त्वा संपूज्य शंकरम्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च पूर्वोक्तमखिलं भवेत्॥५१॥
सर्वधान्यसमायुक्तं सर्वबीजरसादिभिः। सर्वधातुसमायुक्तं सर्वरत्नोपशोभितम्॥५२॥
शृंगैश्चतुर्भिः संयुक्तं वितानच्छत्रशोभितम्। गंधमाल्यैस्तथा धूपैश्चित्रैश्चापि सुशोभितम्॥५३॥
विचित्रैर्नृत्यगेयैश्च शंखवीणादिभिस्तथा। ब्रह्मघोषैर्महापुण्यं मंगलैश्च विशेषतः॥५४॥
महाध्वजाष्टसंयुक्तं विचित्रकुसुमोज्ज्वलम्। नगेन्द्रं मेरुनामानं त्रैलोक्याधारमुत्तमम्॥५५॥
तस्य मूर्ध्नि शिवं कुर्यान्मध्यतो धातुनैव तु। दक्षिणे च यथान्यायं ब्रह्माणं च चतुर्मुखम्॥५६॥
उत्तरे देवदेवेशं नारायणमनामयम्।
इंद्रादिलोकपालांश्च कृत्वा भक्त्या यथाविधि॥५७॥
प्रतिष्ठाप्य ततः स्नाप्य समभ्यर्च्य महेश्वरम्। देवस्य दक्षिणे हस्ते शूलं त्रिदशपूजितम्॥५८॥
वामे पाशं भवान्याश्च कमलं हेमभूषितम्। विष्णोश्च शंखं चक्रं च गदामब्जं प्रयत्नतः॥५९॥
ब्रह्मणश्चाक्षसूत्रं च कमंडलुमनुत्तमम्। इंद्रस्य वज्रमग्नेश्चशक्त्याख्यं परमायुधम्॥६०॥
यमस्य दंडं निर्ऋतेः खड्गं निशिचरस्य तु। वरुणस्य महापाशं नागाख्यं रुद्रमद्भुतम्॥६१॥

के समान आभा युक्त होकर भवानी के साथ आनन्द मनाती है।।४८-४९।। क्वार के महीने में धान्यों का विशाल पर्वत, अच्छे रंग के कपड़ों के साथ शिव की पूजा करके भेंट करे और ब्राह्मणों को भोजन कराये। तो वह पूर्वोक्त सब वस्तुओं को प्राप्त करेगी।।५०-५१।। सब धान्यों से युक्त ये सब बीज और रसों आदि के सहित तथा सब धातुओं और रत्नों से शोभित एक मेरु नामक पर्वत बनावे, उसके चार श्रृंग हों। यह वितान और छत्र से, सुगन्धित मालाओं और विविध रूपों से शोभित हो। वहाँ अनेक नाच और गानें (नृत्य और गीतों) का आयोजन हो। शंख आदि वाद्य विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्र हों, पवित्र और मंगल सूचक प्रार्थनाओं से वह स्थान गुंजायमान हो, आठ बड़ी ध्वजाएँ लगायी जायँ जो विचित्र पुष्पों से भूषित हों। धान्यों के इस पर्वत का नाम महामेरु हो जो कि त्रैलोक्य का उत्तम आधार हो। उस पर्वत के शिर पर शिव को स्थापित करे। मध्य में धातुओं के द्वारा सजावट हो और दक्षिण में चतुर्मुख ब्रह्मा को उत्तर में देवों के देव स्वस्थ नारायण को स्थापित करे। इन्द्र आदि लोकपालों को भक्तिपूर्वक यथाविधि स्थापित करे। इस प्रकार प्रतिष्ठा करके महेश्वर को स्नान कराके पूजा करे। महेश्वर शिव के दाहिने हाथ में देवों द्वारा पूजित त्रिशूल हो। इस प्रकार देवताओं की स्थापना करके भक्त स्नान करे और महेश्वर की पूजा करे। बायें हाथ में पाश हो तथा भवानी का कमल हो। हाथ में स्वर्ण से भूषित विष्णु के हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म हो। ब्रह्मा के हाथ में माला और कमण्डल हो। इन्द्र के हाथ में बज्र, अग्नि के हाथ में शक्ति, यम के हाथ में दण्ड निर्ऋति के हाथ में तलवार, वरुण के हाथ में भयानक नागपाश, वायु के हाथ

वायोर्यष्टिं कुबेरस्य गदां लोकप्रपूजिताम्। टंकं चेशानदेवस्य निवेद्यैवं क्रमेण च॥६२॥
शिवस्य महतीं पूजां कृत्वा चरुसमन्विताम्। पूजयेत्सर्वदेवांश्च यथाविभवविस्तरम्॥६३॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च पूजां कृत्वा प्रयत्नतः। महामेरुव्रतं कृत्वा महादेवाय दापयेत्॥६४॥
महामेरुमनुप्राप्य महादेव्या प्रमोदते। चिरं सायुज्यमाप्नोति महादेव्या न संशयः॥६५॥
कार्तिक्यामपि या नारी कृत्वा देवीमुमां शुभाम्। सर्वाभरणसंपूर्णां सर्वलक्षणलक्षिताम्॥६६॥
हेमताम्रादिभिश्चैव प्रतिष्ठाप्य विधानतः। देवं च कृत्वा देवेशं सर्वलक्षणसंयुतम्॥६७॥
तयोरग्रे हुताशं च स्रुवहस्तं पितामहम्। नारायणं च दातारं सर्वाभरणभूषितम्॥६८॥
लोकपालैस्तथा सिद्धैः संवृतं स्थाप्य यत्नतः। रुद्रालये व्रतं तस्मै दापयेद्भक्तिपूर्वकम्॥६९॥
सा भवान्यास्तनुं गत्वा भवेन सह मोदते। एकभक्तव्रतं पुण्यं प्रतिमासमनुक्रमात्॥७०॥
मार्गशीर्षकमासादिकार्तिकांतं प्रवर्तितम्। नरनार्यादिजंतूनां हिताय मुनिसत्तमाः॥७१॥
नरः कृत्वा व्रतं चैव शिवसायुज्यमाप्नुयात्। नारी देव्या न संदेहः शिवेन परिभाषितम्॥७२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे उमामहेश्वरव्रतं नाम
चतुरशीतितमोऽध्यायः॥८४॥

में छड़ी, कुबेर के हाथ में लोकों द्वारा पूजित लोहे की गदा हो और ईशान के हाथ में टंक हो। पूजा के बाद क्रम से इन सबको नैवेद्य भेंट करे। शिव (महेश्वर) की महापूजा चरु सहित करे। अपनी वित्तीय स्थिति के अनुसार सब देवताओं की पूजा करे। उसके बाद ब्राह्मणों को भोजन करावे। इस प्रकार महामेरु व्रत पूरा करके महेश्वर को समर्पित (भेंट) करे। महामेरु व्रत करके वह महादेवी के साथ आंनन्द मनायेगी और महादेवी का चिरकाल तक सायुज्य प्राप्त करेगी। इसमें सन्देह नहीं है।।५२-६५।। कार्तिक मास में स्त्री उमा देवी की एक मूर्त्ति बनवाये जो सब आभूषणों से भूषित हो और सब लक्षणों से युक्त हो। मूर्त्ति स्वर्ण या ताँबे आदि से बनाई गई हो और विधान के अनुसार स्थापित हो (स्थापित की जाय)। देवों के स्वामी शिव की मूर्त्ति भी सब गुणों (लक्षणों) से युक्त हो। उन दोनों मूर्त्तियों के सम्मुख अग्नि देवता को स्थापित करे और हाथ में स्रुवा लिये हुये ब्रह्मा को स्थापित करे। सब भूषणों से भूषित एवं दिग्पालों और सिद्धों से घिरे हुये नारायण को स्थापित करे। भक्तिपूर्वक इस व्रत को शिवालय में भेंट कर दे। इस व्रत को करने से वह भवानी की देह को प्राप्त करके शिव के साथ आनन्द मनाती है। प्रतिदिन एक बार भोजन करके प्रत्येक मास के व्रत को क्रम से करे। इस प्रकार मार्गशीर्ष से प्रारम्भ करके कार्त्तिक में समाप्त होने वाले व्रत को करे। हे श्रेष्ठ मुनियों! ये व्रत सब प्राणियों, स्त्रियों और पुरुषों के लिये है। पुरुष इस व्रत को करने से शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। स्त्री इस व्रत को करने से उमा देवी का सायुज्य प्राप्त करती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है क्योंकि ऐसा स्वयं शिव जी ने कहा है।।६६-७२।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में उमामहेश्वर व्रत नामक
चौरासीवाँ अध्याय समाप्त॥८४॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

पंचाक्षरमाहात्म्यम्

सूत उवाच

सर्वव्रतेषु संपूज्य देवदेवमुमापतिम्। जपेत्पंचाक्षरीं विद्यां विधिनैव द्विजोत्तमाः॥१॥
जपादेव न संदेहो व्रतानां वै विशेषतः। समाप्तिर्नान्यथा तस्माज्जपेत्पंचाक्षरीं शुभाम्॥२॥

ऋषय ऊचुः

कथं पंचाक्षरी विद्या प्रभावो वा कथं वद। क्रमोपायं महाभाग श्रोतुं कौतूहलं हि नः॥३॥

सूत उवाच

पुरा देवेन रुद्रेण देवदेवेन शंभुना। पार्वत्याः कथितं पुण्यं प्रवदामि समासतः॥४॥

श्रीदेव्युवाच

भगवन्देवदेवेश सर्वलोकमहेश्वर। पंचाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥५॥

पचासीवाँ अध्याय

पंचाक्षर मंत्र माहात्म्य

सूत बोले

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! सभी व्रतों में देवाधिदेव उमापति की पूजा करके भक्तों को पंचाक्षरी मंत्र का जप करना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि व्रत जप से ही पूर्ण होते हैं। अतः उत्तम पंचाक्षरी मन्त्र का जप करना चाहिये।।१-२।।

ऋषिगण बोले

हे महाभाग! यह पंचाक्षरी मन्त्र क्या है? इसका प्रभाव किस प्रकार होता है? हम यह जानने को उत्सुक हैं। हमको क्रम से इसकी विधि बताएँ।।३।।

सूत बोले

मैं संक्षेप में पूर्व में देवाधिदेव प्रभु शम्भु के द्वारा देवी पार्वती को बताये गये इस पुण्य मंत्र को बताऊँगा।।४।।

पार्वती बोली

हे भगवन्! देवाधिदेव सभी लोकों के स्वामी! मैं मूलरूप से पंचाक्षरी मन्त्र का माहात्म्य सुनना चाहती हूँ।।५।।

श्रीभगवानुवाच

पंचाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि। न शक्यं कथितुं देवि तस्मात्संक्षेपतः शृणु॥६॥
प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजंगमे। नष्टे देवासुरे चैव नष्टे चोरगराक्षसे॥७॥
सर्वं प्रकृतिमापन्नं त्वया प्रलयमेष्यति। एकोहं संस्थितो देवि न द्वितीयोस्ति कुत्रचित्॥८॥
तस्मिन्वेदाश्च शास्त्राणि मंत्रे पंचाक्षरे स्थिताः। ते नाशं नैव संप्राप्ता मच्छक्त्या ह्यनुपालिताः॥९॥
अहमेको द्विधाप्यासं प्रकृत्यात्मप्रभेदतः। स तु नारायणः शेते देवो मायामयीं तनुम्॥१०॥
आस्थाय योगपर्यंकशयने तोयमध्यगः। तन्नाभिपंजकजाज्जातः पंचवक्त्रः पितामहः॥११॥
सिसृक्षमाणो लोकान्वै त्रीनशक्तोऽसहायवान्। दश ब्रह्मा ससर्जादौ मानसानमितौजसः॥१२॥
तेषां सृष्टिप्रसिद्ध्यर्थं मां प्रोवाच पितामहः। मत्पुत्राणां महादेव शक्तिं देहि महेश्वर॥१३॥
इति तेन समादिष्टः पंचवक्त्रधरो ह्यहम्। पंचाक्षरान्पंचमुखैः प्रोक्तवान् पद्मयोनये॥१४॥
तान्पंचवदनैर्गृह्णन् ब्रह्मा लोकपितामहः। वाच्यवाचकभावेन ज्ञातावान्परमेश्वरम्॥१५॥
वाच्यः पंचाक्षरैर्देवि शिवस्त्रैलोक्यपूजितः। वाचकः परमो मंत्रस्तस्य पंचाक्षरः स्थितः॥१६॥

ज्ञात्वा प्रयोगं विधिना च सिद्धिं लब्ध्वा तथा पंचमुखो महात्मा।
प्रोवाच पुत्रेषु जगद्धिताय मंत्रं महार्थं किल पंचवर्णम्॥१७॥

ते लब्ध्वा मंत्ररत्नं तु साक्षाल्लोकपितामहात्। तमाराधयितुं देवं परात्परतरं शिवम्॥१८॥

श्री भगवान बोले

हे देवि! पंचाक्षरी मन्त्र का माहात्म्य सैकड़ों-करोड़ों वर्ष में भी नहीं कहा जा सकता। तथापि मैं संक्षेप में कहता हूँ, सुनो।।६।। प्रलय काल में जब सभी चराचर प्राणी, देव और असुर, नाग और राक्षस सभी नष्ट हो जाते हैं। और हे देवि! तुम्हारे सहित सभी वस्तुएँ प्रकृति में लीन हो जाती हैं। केवल मैं रहता हूँ अन्य कोई भी नहीं।।७-८।। उस समय वेद पंचाक्षरी मन्त्र में स्थित रहते हैं। मेरी शक्ति के कारण वे नष्ट नहीं होते।।९।। मैं उस समय प्रकृति और आत्मा दो रूप में रहता हूँ। भगवान नारायण प्रकृति का शरीर धारण करके जल के मध्य में यौगिक मुद्रा में विराजते हैं। उनके नाभि से पंचमुख ब्रह्मा जन्मते हैं।।१०-११।। ब्रह्मा की इच्छा तीनों लोकों के सृजन की थी। बिना किसी सहायता के ऐसा करने में असमर्थ होने के कारण प्रारम्भ में उन्होंने अनन्त भव्यता से युक्त दस मानस पुत्रों का सृजन किया।।१२।। ब्रह्मा ने मुझसे सृजन करने की शक्ति की याचना की। उन्होंने कहा, "हे महादेव! हे महेश्वर! मेरे पुत्रों को शक्ति प्रदान करें।"।।१३।। उनकी प्रार्थना पर मैंने ब्रह्मा के लिये अपने पाँच मुखों से पाँच अक्षरों का उच्चारण किया।।१४।। लोकों के पितामह ने उन्हें अपने पाँचों मुखों से ग्रहण किया और उन्हें परमेश्वर की अभिव्यक्ति के रूप में जाना।।१५।। हे देवि! सभी लोकों में पूजित शिव इन्हीं पाँच अक्षरों से व्यक्त होते हैं। पंचाक्षर मन्त्र स्वयं उनकी अभिव्यक्ति है।।१६।। पञ्चमुखी देव ब्रह्मा ने अपने पुत्रों को लोक कल्याण युक्त अर्थवान् पञ्चाक्षर मन्त्र की शिक्षा दी।।१७।। लोकों के पितामह ब्रह्मा से उस मन्त्र रत्न को ग्रहण करके उन्होंने महत्तम से महत्तर शिव को प्रसन्न किया।।१८।। तब भगवान शिव—जो त्रिदेवों से

ततस्तुतोष भगवान् त्रिमूर्तीनां परः शिवः। दत्तवानखिलं ज्ञानमणिमादिगुणाष्टकम्॥१९॥
तेपि लब्ध्वा वरान्विप्रास्तदाराधनकांक्षिणः। मेरोस्तु शिखरे रम्ये मुंजवान्नाम पर्वतः॥२०॥
मत्प्रियः सततं श्रीमान्मद्भूतैः परिरक्षितः। तस्याभ्याशे तपस्तीव्रं लोकसृष्टिसमुत्सुकाः॥२१॥
दिव्यवर्षसहस्रं तु वायुभक्षाः समाचरन्। तिष्ठंतोनुग्रहार्थाय देवि ते ऋषयः पुरा॥२२॥
तेषां भक्तिमहं दृष्ट्वा सद्यः प्रत्यक्षतामियाम्। पंचाक्षरमृषिच्छन्दो दैवतं शक्तिबीजवत्॥२३॥
न्यासं षडंगं दिग्बंधं विनियोगमशेषतः। प्रोक्तवानहमार्याणां लोकानां हितकाम्यया॥२४॥
तच्छ्रुत्वा मंत्रमाहात्म्यमृषयस्ते तपोधनाः। मंत्रस्य विनियोगं च कृत्वा सर्वमनुष्ठिताः॥२५॥
तन्माहात्म्यात्तदालोकान्सदेवासुरमानुषान् । वर्णान्वर्णविभागांश्च सर्वधर्मांश्च शोभनान्॥२६॥
पूर्वकल्पसमुद्भूताञ्छ्रुतवंतो यथा पुरा। पंचाक्षरप्रभावाच्च लोका वेदा महर्षयः॥२७॥
तिष्ठंति शाश्वता धर्मा देवाः सर्वमिदं जगत्। तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणु चावहिताखिलम्॥२८॥

अल्पाक्षरं महार्थं च वेदसारं विमुक्तिदम्।
आज्ञासिद्धमसंदिग्धं वाक्यमेतच्छिवात्मकम्॥२९॥

नानासिद्धियुतं दिव्यं लोकचितानुरंजकम्। सुनिश्चितार्थं गंभीरं वाक्यं मे पारमेश्वरम्॥३०॥
मंत्रं मुखसुखोच्चार्यमशेषार्थप्रसाधकम्। तद्बीजं सर्वविद्यानां मंत्रमाद्यं सुशोभनम्॥३१॥

भी महान् हैं—प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें पूर्ण ज्ञान और अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ प्रदान कीं।।१९।। वरदान प्राप्त करके मेरी आराधना को इच्छुक वे ब्राह्मण मेरु पर्वत के शिखर पर मुञ्जवान पर्वत पर गये। यह गौरवशाली पर्वत मुझे प्रिय है। अतः मैं इसकी अपने भूतों से रक्षा करता हूँ। लोकों की सृष्टि करने को उत्सुक उन लोगों ने हजारों दिव्य वर्षों तक केवल वायु पर निर्वाह रहते हुए कठोर तप किये। उनकी भक्ति को देखकर मैं शीघ्र उनके समक्ष प्रकट हुआ। हे देवि! जगत् के उन महात्माओं के कल्याण की इच्छा से मैंने उन्हें पञ्चाक्षरी मन्त्र से सम्बन्धित सभी बातें इसके ऋषि, इसका छन्द, इसके देवता, इसकी शक्ति, बीज, न्यास इसके छहों अङ्ग, दिगबन्ध और विनियोग आदि बताया।।२०-२४।। इस मन्त्र की महत्ता सुनकर उन तपोधन ऋषियों ने उस मन्त्र के उचित प्रयोग से कई अनुष्ठान सम्पन्न किये।।२५।। इसी महत्ता से उन्होंने देव, असुर, मानव आदि लोकों का सृजन किया। विभिन्न वर्णों, उपवर्णों और सुन्दर अनुष्ठान आदि को बनाया। उन्होंने पूर्व कल्पों की भाँति वेदों का श्रवण किया। पञ्चाक्षरी मन्त्र की महिमा से ही ये लोक, वेद, पावन ऋषि और शाश्वत धर्म, देवगण और समस्त ब्रह्माण्ड बचे रहते हैं। अतः मैं तुम्हें सब बताता हूँ। ध्यान से सुनो।।२६-२८।। शिव ही इस मन्त्र के आत्मा हैं। इसमें कुछ वर्ण हैं लेकिन उनमें महान् अर्थ निहित है। यह वेदों का सार और मुक्तिदायी है। यह असन्दिग्धरूप से आज्ञा सिद्ध मन्त्र है।।२९।। यह मेरा स्पष्ट कथन है कि विभिन्न सिद्धियों से युक्त यह मन्त्र लोगों के चित्त को आनन्द प्रदान करने वाला है। यह सुनिश्चित और गम्भीर अर्थवाला है।।३०।। यह मन्त्र उच्चारण करने में सरल, लक्ष्य प्राप्त कराने वाला, सभी विद्याओं का बीज एवं पहला सुशोभित मन्त्र है।।३१।।

अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत्। वेदः स त्रिगुणातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः॥३२॥
ओमित्येकाक्षरं मंत्रं स्थितः सर्वगतः शिवः। मंत्रे षडक्षरे सूक्ष्मे पंचाक्षरतनुः शिवः॥३३॥
वाच्यवाचकभावेन स्थितः साक्षात्स्वभावतः।
वाच्यः शिवः प्रमेयत्वान्मंत्रस्तद्वाचकः स्मृतः॥३४॥
वाच्यवाचकभावोयमनादिः संस्थितस्तयोः। वेदे शिवागमे वापि यत्रयत्र षडक्षरः॥३५॥
मंत्रः स्थितः सदा मुख्यो लोके पंचाक्षरो मतः। किं तस्य बहुभिर्मंत्रैः शास्त्रैर्वा बहुविस्तृतैः॥३६॥
यस्यैवं हृदि संस्थोयं मंत्रः स्यात्पारमेश्वरः। तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्॥३७॥
यो विद्वान्वै जपेत्सम्यगधीत्यैव विधानतः। एतावद्धि शिवज्ञानमेतावत्परमं पदम्॥३८॥
एतावद्ब्रह्मविद्या च तस्मान्नित्यं जपेद्बुधः। पंचाक्षरैः सप्रणवो मंत्रोयं हृदयं मम॥३९॥
गुह्याद्गुह्यतरं साक्षान्मोक्षज्ञानमनुत्तमम्। अस्य मंत्रस्य वक्ष्यामि ऋषिच्छंदोधिदैवतम्॥४०॥
बीजं शक्तिं स्वरं वर्णं स्थानं चैवाक्षरं प्रति। वामदेवो नाम ऋषिः पंक्तिश्छंद उदाहृतः॥४१॥
देवता शिव एवाहं मंत्रस्यास्य वरानने। नकारादीनि बीजानि पंचभूतात्मकानि च॥४२॥
आत्मानं प्रणवं विद्धि सर्वव्यापिनमव्ययम्। शक्तिस्त्वमेव देवेशि सर्वदेवनमस्कृते॥४३॥
त्वदीयं प्रणवं किंचिन्मदीयं प्रणवं तथा। त्वदीयं देवि मंत्राणां शक्तिभूतं न संशयः॥४४॥
अकारोकारमकारा मदीये प्रणवे स्थिताः। उकारं च मकारं च अकारं च क्रमेण वै॥४५॥

यह अत्यन्त सूक्ष्म एवं महान् अर्थ वाला है। यह पवित्र वट वृक्ष के बीज के समान है। यह तीनों गुणों से परे वेद है और सब कुछ करने में समर्थ है।।३२।। ॐ एक अक्षर का मन्त्र है। सर्वव्यापी शिव जी इसमें स्थित हैं। पञ्चाक्षर उनका शरीर है। छः अक्षरों के सूक्ष्म मन्त्र में वे वाच्य और वाचक भाव में स्थित हैं। शिव वाच्य हैं क्योंकि वे ज्ञेय अर्थात् (जानने योग्य) मन्त्र वाचक है।।३३-३४।। इन दोनों में वाच्य वाचक सम्बन्ध अनादि है। वेदों और शिवागम में मुख्य मन्त्र षडक्षरी है किन्तु लौकिक क्रियाओं में पञ्चाक्षरी है। अनेक मन्त्रों और विस्तृत शास्त्रों का क्या काम? जिसने यह मन्त्र समझ लिया उसने वेदों को सुन लिया। उसने पवित्र कथाएँ जान लिया और सारे अनुष्ठान कर लिये।।३५-३७।। जो विद्वान समुचित विधि से इसका ज्ञान प्राप्त करके जप करता है तो इतना ही पर्याप्त है। यही शिव का पूर्ण ज्ञान है।।३८।। यही ब्रह्म विद्या है। अतः विद्वान् को निरन्तर इसका जप करना चाहिये। ओंकार सहित पंचाक्षरी मन्त्र मेरा हृदय है। यह अन्य गूढ़तम विद्याओं से भी गूढ़ है। यह मुक्ति प्रदान करने वाली उत्तम विद्या है। मैं इसके ऋषि, छन्द और इसके स्वामी देवता, बीज, शक्ति, स्वर, वर्ण, स्थान आदि का एक-एक अक्षर बखान करूँगा।।३९-४१।। इस मन्त्र के ऋषि वामदेव हैं। छन्द पंक्ति है। मैं शिव एक मात्र अधिष्ठाता देव हूँ। हे सुमुखी देवि! न आदि वर्ण बीज है। वे पाँच तत्त्वों के रूप में हैं। प्रणव (ओंकार) को अपरिवर्तनीय सर्वव्यापी आत्मा जानो। हे देवि! सभी देवताओं से पूजित तुम ही इसकी शक्ति हो।।४२-४३।। कुछ प्रणव तुम्हारा है, कुछ प्रणव मेरा है। हे देवि! प्रणव निश्चय ही सभी मन्त्रों की शक्ति है।।४४।। 'अ', 'उ' और 'म' वर्ण मेरे प्रणव में विद्यमान रहते हैं। 'उ' 'म' और 'अ' वर्ण तुम्हारे प्रणव के हैं

त्वदीयं प्रणवं विद्धि त्रिमात्रं प्लुतमुत्तमम्। ओंकारस्य स्वरोदात्त ऋषिर्ब्रह्मा सितं वपुः॥४६॥
छंदो देवी च गायत्री परमात्माधिदेवता। उदात्तः प्रथमस्तद्वच्चतुर्थश्च द्वितीयकः॥४७॥
पंचमः स्वरितश्चैव मध्यमो निषधः स्मृतः। नकारः पीतवर्णश्च स्थानं पूर्वमुखं स्मृतम्॥४८॥
इंद्रोधिदैवतं छंदो गायत्री गौतमो ऋषिः।
मकारः कृष्णवर्णोस्य स्थानं वै दक्षिणामुखम्॥४९॥
छंदोनुष्टुप् ऋषिश्चात्री रुद्रो दैवतमुच्यते।
शिकारो धूम्रवर्णोस्य स्थानं वै पश्चिमं मुखम्॥५०॥
विश्वमित्र ऋषिस्त्रिष्टुप् छंदो विष्णुस्तु दैवतम्। वाकारो हेमवर्णोस्य स्थानं चैवोत्तरं मुखम्॥५१॥
ब्रह्माधिदैवतं छंदो बृहती चांगिरा ऋषिः। यकारो रक्तवर्णश्च स्थानमूर्ध्वं मुखं विराट्॥५२॥
छंदो ऋषिर्भरद्वाजः स्कंदो दैवतमुच्यते। न्यासमस्य प्रवक्ष्यामि सर्वसिद्धिकरं शुभम्॥५३॥
सर्वपापहरं चैव त्रिविधो न्यास उच्यते। उत्पतिस्थितिसंहारभेदतस्त्रिविधः स्मृतः॥५४॥
ब्रह्मचारिगृहस्थानां यतीनां क्रमशो भवेत्। उत्पत्तिर्ब्रह्मचारिणां गृहस्थानां स्थितिः सदा॥५५॥
यतीनां संहृतिन्यासः सिद्धिर्भवति नान्यथा। अंगन्यासः करन्यासो देहन्यास इति त्रिधा॥५६॥
उत्पत्त्यादि त्रिभेदेन वक्ष्यते ते वरानने। न्यसेत्पूर्वं करन्यासं देहन्यासमनंतरम्॥५७॥
अंगन्यासं ततः पश्चादक्षराणां विधिक्रमात्। मूर्धादिपादपर्यंतमुत्पत्तिन्यास उच्यते॥५८॥

जिसमें तीन मात्राएँ और प्लुत हैं। ओंकार का स्वर उदात्त है। ऋषि ब्रह्मा हैं और शरीर श्वेत है।।४५-४६।। छन्द देवी गायत्री है। परम आत्मा अधिष्ठाता देव है। प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ वर्ण उदात्त हैं। पाँचवा स्वरित (न ऊँचा न मन्द) मध्यम निषध है। 'न' वर्ण पीले रंग का है। पूर्व की ओर के मुख से इसका उद्भव हुआ। इन्द्र इसके देवता हैं। गायत्री छन्द है और गौतम ऋषि हैं। 'मः' श्याम वर्ण का है। इसका उद्भव दक्षिणा मुख है। छन्द अनुष्टुप् है। ऋषि अत्रि हैं। रुद्र देवता हैं। 'शि' वर्ण धूसर रंग का है। पश्चिमी मुख से इसका उद्भव हुआ है। ऋषि विश्वामित्र हैं। छन्द त्रिष्टुप् है और अधिष्ठाता देव विष्णु हैं। 'वा' वर्ण सुनहरे रंग का है, इसका उद्भव उत्तरी मुख से है। देवता ब्रह्मा हैं। छन्द बृहती है और ऋषि अंगिरा हैं। 'य' वर्ण लाल रंग का है। ऊपरी मुख इसका उद्भव स्थल है। छन्द विराट् है। ऋषि भरद्वाज हैं और स्कन्द देवता हैं। अब मैं न्यास का बखान करूँगा जो कि शुभ और सिद्धि प्राप्त करने में सहायक है। यह सभी पापों का नाश करने वाला है। व्यास तीन प्रकार के होते हैं जो कि सृजन, पालन और नाश से सम्बन्धित होते हैं।।४७-५४।। क्रमशः ये न्यास ब्रह्मचारियों, गृहस्थों और सन्यासियों के होते हैं। जैसे उत्पत्ति का न्यास ब्रह्मचारियों के लिये, स्थिति न्यास गृहस्थों के लिये और संहृति न्यास सन्यासियों के लिये होता है। अन्यथा सिद्धि नहीं प्राप्त की जा सकती। न्यास तीन तरह के होते हैं। अङ्ग न्यास, कर न्यास और देह न्यास। हे सुमुखि! सृजन आदि से सम्बन्धित न्यास तुम्हें बताये गये। प्रारम्भ में भक्त को करन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् शरीर न्यास और तत्पश्चात् अंगन्यास मन्त्र के वर्णों के क्रम में करना चाहिये। सिर से प्रारम्भ होकर पैरों तक का न्यास उत्पत्ति न्यास कहा जाता है। हे प्रिये! पैरों से प्रारम्भ होकर

पादादिमूर्धपर्यंतं संहारो भवति प्रिये। हृदयास्यगलन्यासः स्थितिन्यास उदाहृतः॥५९॥
ब्रह्मचारिगृहस्थानां यतीनां चैव शोभने। सशिरस्कं ततो देहं सर्वमंत्रेण संस्पृशेत्॥६०॥
स देहन्यास इत्युक्तः सर्वेषां सम एव सः। दक्षिणांगुष्ठमारभ्य वामांगुष्ठांत एव हि॥६१॥
न्यस्यते यत्तदुत्पत्तिर्विपरीतं तु संहृतिः। अंगुष्ठादिकनिष्ठांतं न्यस्यते हस्तयोर्द्वयोः॥६२॥
अतीव भोगदो देवि स्थितिन्यासः कुटुंबिनाम्। करन्यासं पुरा कृत्त्वा देहन्यासमनंतरम्॥६३॥
अंगन्यासं न्यसेत्पश्चादेष साधारणो विधिः। ओंकारं संपुटीकृत्य सर्वांगेषु च विन्यसेत्॥६४॥
करयोरुभयोश्चैव दशाग्रांगुलिषु क्रमात्। प्रक्षाल्य पादावाचम्य शुचिर्भूत्वा समाहितः॥६५॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न्यासकर्म समाचरेत्। स्मरेत्पूर्वमृषिं छंदो दैवतं बीजमेव च॥६६॥
शक्तिं च परमात्मानं गुरुं चैव वरानने। मंत्रेण पाणी संमृज्य तलयोः प्रणवं न्यसेत्॥६७॥
अंगुलीनां च सर्वेषां तथा चाद्यंतपर्वसु। सबिंदुकानि बीजानि पंच मध्यमपर्वसु॥६८॥
उत्पत्त्यादित्रिभेदेन न्यसेदाश्रमतः क्रमात्। उभाभ्यामेव पाणिभ्यामापादतलमस्तकम्॥६९॥
मंत्रेण संस्पृशेद्देहं प्रणवेनैव संपुटम्। मूर्ध्नि वक्त्रे च कंठे च हृदये गुह्यके तथा॥७०॥
पादयोरुभयोश्चैव गुह्ये च हृदये तथा। कंठे च मुखमध्ये च मूर्ध्नि च प्रणवादिकम्॥७१॥
हृदये गुह्यके चैव पादयोर्मूर्ध्नि वाचि वा। कंठे चैव न्यसेदेव प्रणवादित्रिभेदतः॥७२॥

सिर तक का न्यास संहार न्यास है। हृदय मुख और कण्ठ का न्यास स्थितिन्यास कहलाता है।।५५-५९।। हे शोभने! ये न्यास क्रमशः ब्रह्मचारियों, गृहस्थों और सन्यासियों से सम्बन्धित हैं। मन्त्रों की आवृत्ति सिर के साथ शरीर का स्पर्श करना चाहिये। यह बात गृहस्थ, ब्रह्मचारी और सन्यासी सभी के लिये है। दाँये हाथ के अँगूठे से प्रारम्भ करके बाँये हाथ पर समाप्त करके यदि अँगुलियाँ स्थिर कर दी जायें तो यह उत्पत्ति न्यास कहलाता है। दोनों हाथों में अँगूठे से प्रारम्भ करके छोटी उँगली पर समाप्त करना स्थिति न्यास कहलाता है। हे देवि! इससे गृहस्थों को अत्यन्त सुख मिलता है। यह सामान्य विधि है। पहले करन्यास तत्पश्चात् देहन्यास और अन्त में अंगन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् साधक को प्रत्येक अंग का न्यास करना चाहिये। एक के बाद एक पूर्ण मन्त्र जिसके पूर्व एवं पश्चात् ओंकार का जप करना चाहिये। भक्त को पैरों को धोकर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके न्यास का अनुष्ठान करना चाहिये। उसे स्वच्छ और सावधान रहना चाहिये।।६०-६५।। प्रारम्भ में भक्त को ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, परमात्मा और गुरु का स्मरण करना चाहिये। मन्त्रों को दुहराते हुए उसे हाथ पोंछकर ओंकार को हथेली पर स्थिर करके प्रत्येक उँगली के प्रथम और अन्तिम पोरों पर स्थिर करना चाहिये। उसे पाँचों मध्य पोरों पर बिन्दु सहित बीजों को स्थिर करना चाहिये। अपने जीवन की अवस्था के अनुसार उत्पत्तिन्यास आदि का अनुष्ठान दोनों हाथों से पैर से प्रारम्भ करके सिर पर समाप्त करते हुए करना चाहिये। मन्त्र को ओंकार (पूर्व में और बाद में) दुहराते हुए भक्त को (१) अपने शरीर को सिर, मुख, कंठ, हृदय और गुह्यांगों और दोनों पैरों को स्पर्श करना चाहिये। (२) पुनः गुह्यांगों में, हृदय में, गरदन में, मुख के मध्य में और सिर पर स्पर्श करना चाहिये। तत्पश्चात् (३) हृदय में गुह्यांगों में, चरणों में, सिर पर, मुख पर और कंठ पर प्रणव

कृत्वांगन्यासमेवं हि मुखानि परिकल्पयेत्। पूर्वादि चोर्ध्वपर्यंतं नकारादि यथाक्रमम्॥७३॥
षडंगानि न्यसेत्पश्चाद्यथास्थानं च शोभनम्।
नमः स्वाहा वषड्ढुं च वौषट्फट्कारकैः सह॥७४॥
प्रणवं हृदयं विद्यान्नकारः शिर उच्यते।
शिखा मकार आख्यातः शिकारः कवचं तथा॥७५॥
वकारो नेत्रमस्त्रं तु यकारः परिकीर्तितः। इत्थमंगानि विन्यस्य ततो वै बंधयेद्दिशः॥७६॥
विघ्नेशो मातरो दुर्गा क्षेत्रज्ञो देवता दिशः। आग्नेयादिषु कोणेषु चतुर्ष्वपि यथाक्रमम्॥७७॥
अंगुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां संस्थाप्य सुमुखं शुभम्।
रक्षध्वमिति चोक्त्वा तु नमस्कुर्यात्पृथक्पृथक्॥७८॥
गले मध्ये तथागुष्ठे तर्जन्याद्यंगुलीषु च। अंगुष्ठेन करन्यासं कुर्यादेव विचक्षणः॥७९॥
एवं न्यासमिमं प्रोक्तं सर्वपापहरं शुभम्। सर्वसिद्धिकरं पुण्यं सर्वरक्षाकरं शिवम्॥८०॥
न्यस्ते मंत्रेऽथ सुभगे शंकरप्रतिमो भवेत्। जन्मांतरकृतं पापमपि नश्यति तत्क्षणात्॥८१॥
एवं विन्यस्य मेधावी शुद्धकायो दृढव्रतः। जपेत्पंचाक्षरं मंत्रं लब्ध्वाचार्यप्रसादतः॥८२॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि मंत्रसंग्रहणं शुभे। यं विना निष्फलं नित्यं येन वा सफलं भवेत्॥८३॥
आज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनममानसम्। आज्ञप्तं दक्षिणाहीनं सदा जप्तं च निष्फलम्॥८४॥

आदि का तीन तरह से न्यास करना चाहिये।।६६-७२।। इस प्रकार शरीर के अङ्गों को स्थिर करके भक्त को शिव का ध्यान करना चाहिये। पूर्व की ओर के मुख से प्रारम्भ करते हुए ऊपर के मुख पर समाप्त करते हुए न से प्रारम्भ करते हुए वर्णों को उचित क्रम में स्थिर करना चाहिये। तत्पश्चात् छहों अंगों में क्रमशः सुख के साथ न्यास अनुष्ठान करना चाहिये। न्यास के साथ नमः स्वाहा, वषट् हुँ वौषट्, फट् शब्दों का उच्चारण करना चाहिये। प्रणव (ओंकार) हृदय, 'न' सिर 'म' में शिखा 'शि' कवच 'वा' नेत्र 'य' अस्त्र कहे जाते हैं। इस प्रकार अंगों में वर्णों को स्थिर करके भक्त को दिशाएँ बाँधनी चाहिये।।७३-७६।। आग्नेय (दक्षिण पूर्व) से प्रारम्भ करके दिशाओं के देवता क्रमशः विघ्नेश, माँ दुर्गा और क्षेत्रज्ञ हैं। भक्त को अँगूठे के शीर्ष भाग को तर्जनी से स्थिर करके चमकते मुख से। हे देवि! मेरी रक्षा करो। ऐसा कहते हुए कई बार क्रमशः उनका नमन करना चाहिये।।७७-७८।। कुशल भक्त को तर्जनी आदि अँगुलियों से एवं अँगूठे से करन्यास करना चाहिये। उसे कंठ के मध्य में भी न्यास करना चाहिये। यह न्यास शुभ, सभी पापों को हरने वाला, सिद्धिदायक और संरक्षक है।।७९-८०।। शुभ मन्त्र से न्यास कर लेने के बाद भक्त शिव के समकक्ष हो जाता है और पल भर में पूर्व जन्म के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।।८१।। मेधावी भक्त को शरीर को शुद्ध करके दृढ़व्रती होकर न्यास करना चाहिये। किसी गुरु की कृपा से प्राप्त करके पंचाक्षरी मन्त्र का जप करना चाहिये।।८२।। हे शुभे! अब मैं इस मन्त्र को प्राप्त करने की विधि का बखान करूँगा जिसके बगैर यह मन्त्र व्यर्थ है और जिसके सहित यह मन्त्र सफल होगा। आज्ञाहीन, क्रियाहीन (बिना उचित अनुष्ठान के), श्रद्धाहीन, अमानस (उचित ध्यान के बगैर)

आज्ञासिद्धं क्रियासिद्धं श्रद्धासिद्धं सुमानसम्। एवं च दक्षिणासिद्धं मंत्रं सिद्धं यतस्ततः॥८५॥
उपगम्य गुरुं विप्रं मंत्रतत्त्वार्थवेदिनम्। ज्ञानिनं सद्गुणोपेतं ध्यानयोगपरायणम्॥८६॥
तोषयेत्तं प्रयत्नेन भावशुद्धिसमन्वितः। वाचा च मनसा चैव कायेन द्रविणेन च॥८७॥
आचार्यं पूजयेच्छिष्यः सर्वदातिप्रयत्नतः। हस्त्यश्वरथरत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च॥८८॥
भूषणानि च वासांसि धान्यानि विविधानि च। एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या च विभवे सति॥८९॥
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः। पश्चान्निवेदयेद्देवि आत्मानं सपरिच्छदम्॥९०॥
एवं संपूज्य विधिवद्यथाशक्ति त्ववंचयन्। आददीत गुरोर्मंत्रं ज्ञानं चैव क्रमेण तु॥९१॥
एवं तुष्टो गुरुः शिष्यं पूजितं वत्सरोषितम्। शुश्रूषुमनंहकारमुपवासकृशं शुचिम्॥९२॥
स्नापयित्वा तु शिष्याय ब्राह्मणानपि पूज्य च। समुद्रतीरे नद्यां च गोष्ठे देवालयेपि वा॥९३॥
शुचौ देशे गृहे वापि काले सिद्धिकरे तिथौ। नक्षत्रे शुभयोगे च सर्वदा दोषवर्जिते॥९४॥
अनुगृह्य ततो दद्याच्छिवज्ञानमनुत्तमम्। स्वरेणोच्चारयेत्सम्यगेकांतेपि प्रसन्नधीः॥९५॥

उच्चयोंच्चारयित्वा तु आचार्यः सिद्धिदः स्वयम्।
शिवं चास्तु शुभं चास्तु शोभनोस्तु प्रियोस्त्विति॥९६॥

एवं लब्ध्वा परं मंत्रं ज्ञानं चैव गुरोस्ततः। जपेन्नित्यं ससंकल्पं पुरश्चरणमेव च॥९७॥

अनाज्ञप्त (निषिद्ध घोषित किया हुआ) दक्षिणाहीन तथा सदा जप्त निष्फल मन्त्र हैं। आज्ञासिद्ध, क्रियासिद्ध, श्रद्धासिद्ध, सुमानस और दक्षिणासिद्ध मन्त्र सफल होते हैं।।८३-८५।। भक्त को ऐसे ब्राह्मण गुरु से सम्पर्क करना चाहिये जो कि मन्त्र के वास्तविक अर्थ का जानकार हो, जिसको पूर्ण ज्ञान हो, जो ध्यान के मार्ग में रुचि रखता हो और जो सद्गुणों से युक्त हो। शुद्ध भाव से भक्त को उसे मन, वाणी, शरीर और धन से सन्तुष्ट करना चाहिये। शिष्य को हमेशा गुरु की सर्वदा आराधना करनी चाहिये। पर्याप्त सम्पन्न होने पर शिष्य को अपने गुरु को हाथी, घोड़े, रथ, खेत, भवन, आभूषण, वस्त्र एवं धन धान्य आदि देना चाहिये। मुक्ति के इच्छुक व्यक्ति को धन खर्च करते समय किसी तरह का घमण्ड नहीं करना चाहिये। हे देवि! तत्पश्चात् भक्त को अपने-आपको अपने धन और सेवकादि सहित समर्पित कर देना चाहिये। शिष्य को निष्कपट भाव से अपनी सामर्थ्य के अनुसार गुरु से मन्त्र और पूर्णज्ञान धीरे-धीरे ग्रहण करना चाहिये।।८६-९१।। इस प्रकार (धन धान्यादि से) सन्तुष्ट किये जाने पर गुरु शिष्य की परीक्षा करेगा। शिष्य को एक वर्ष तक शुद्ध भाव से अहंकार रहित होकर गुरु की सेवा करनी चाहिये और उपवास से शरीर को कृश (दुबला) और शुद्ध करना चाहिये। तत्पश्चात् गुरु को चाहिये कि शिष्य को स्नान कराकर किसी समुद्र तट पर, नदी तट पर, किसी पवित्र स्थान में, गोशाला में अथवा घर के ही किसी शुद्ध स्थान में शुभ तिथि और मुहूर्त में मन्त्र दान करे। एकान्त में भी प्रसन्न होकर उच्च स्वर में मन्त्र का जप करना चाहिये। गुरु को 'तुम्हारा शुभ हो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा प्रिय हो', ऐसा कहना चाहिये।।९२-९६।। गुरु से मन्त्र और ज्ञान प्राप्त कर शिष्य को संकल्प सहित नित्य इसका जप करना चाहिये

यावज्जीवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्त्रकम्। अनश्नंस्तत्परो भूत्वा स याति परमां गतिम्॥९८॥
जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात्। नक्ताशी संयमी यश्च पौरश्चरणिकः स्मृतः॥९९॥
पुरश्चरणजापी वा अपि वा नित्यजापकः।
अचिरात्सिद्धिकांक्षी तु तयोरन्यतरो भवेत्॥१००॥
यः पुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापी भवेन्नरः।
तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धः सिद्धिदो वशी॥१०१॥
आसनं रुचिरं बद्ध्वा मौनी चैकाग्रमानसः।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि जपेन्मंत्रमनुत्तमम्॥१०२॥
आद्यंतयोर्जपस्यापि कुर्याद्वै प्राणसंयमान्। तथा चांते जपेद्बीजं शतमष्टोत्तरं शुभम्॥१०३॥
चत्वारिंशत्समावृत्ति प्राणानायम्य संस्मरेत्। पंचाक्षरस्य मंत्रस्य प्राणायाम उदाहृतः॥१०४॥
प्राणायामाद्भवेत्क्षिप्रं सर्वपापपरिक्षयः।
इंद्रियाणां वशित्वं च तस्मात्प्राणांश्च संयमेत्॥१०५॥
गृहे जपः समं विद्याद्गोष्ठे शतगुणं भवेत्। नद्यां शतसहस्त्रं तु अनंतः शिवसन्निधौ॥१०६॥
समुद्रतीरे देवह्रदे गिरौ देवालयेषु च। पुण्याश्रमेषु सर्वेषु जपः कोटिगुणो भवेत्॥१०७॥
शिवस्य सन्निधाने च सूर्यस्याग्रे गुरोरपि। दीपस्य गोर्जलस्यापि जपकर्म प्रशस्यते॥१०८॥

और पुरश्चरण भी करना चाहिये।।९७।। भक्त को चाहिये कि वह आजीवन एक हजार आठ बार इस मन्त्र का जप करे। बिना जप किये भोजन नहीं करना चाहिये। शीघ्र मुक्ति के इच्छुक को प्रत्येक अक्षर सहित एक लाख बार जप करना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्ण ध्यान से चार बार मन्त्र का जप करना चाहिये। यह पुरश्चरण कहलाता है।।९८-९९।। शीघ्र मुक्ति चाहने वाला या तो नित्यजापी होगा अथवा पुरश्चरण जापी।।१००।। यदि कोई भक्त पुरश्चरण करने के साथ ही नित्य जापी भी है तो उसके समान पूरे लोक में सिद्ध, सिद्धि देने वाला और वशी कोई नहीं है।।१०१।। आरामदायक मुद्रा में बैठकर भक्त को मौन और ध्यानमग्न होना चाहिये। उसे पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके बैठना चाहिये और इस उत्तम मन्त्र का जाप करना चाहिये।। जप के प्रारम्भ और अन्त में श्वास को रोकना चाहिये। अन्त में १०८ बार बीज मन्त्र दुहराना चाहिये।।१०२-१०३।। भक्त को श्वास रोककर चालीस बार मन्त्र का जप करना चाहिये। यह पंचाक्षर प्राणायाम है। प्राणायाम से भक्त के पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। अतः प्राणायाम अवश्य करना चाहिये।।१०४-१०५।। यह ध्यान में रखना चाहिये कि घर में किया गया जप साधारण फल देता है। गौशाला में किया गया सौ गुना अधिक प्रभावकारक होता है। यदि नदी के तट पर किया जाय तो यह लाख गुना लाभकारी होता है। यदि यह शिव की उपस्थिति में किया जाय तो इसका लाभ अनन्त होता है।।१०६।। समुद्र के तट पर, किसी पवित्र तालाब में, पर्वत में, किसी देवालय में या किसी आश्रम में किया गया जप करोड़ गुना लाभकारी होता है।।१०७।। शिव की उपस्थिति में सूर्य के सामने, गुरु के समक्ष, दीप, गौ या जल के समक्ष किया गया जप श्रेष्ठ है।।१०८।।

अंगुलीजपसंख्यानमेकमेकं शुभानने। रेखैरष्टगुणं प्रोक्तं पुत्रजीवफलैर्दश॥१०९॥
शतं वै शंखमणिभिः प्रवालैश्च सहस्रकम्। स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते॥११०॥
पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते। कुशग्रंथ्या च रुद्राक्षैरनंतगुणमुच्यते॥१११॥
पंचविंशति मोक्षार्थं सप्तविंशति पौष्टिकम्। त्रिंशच्च धनसंपत्त्यै पंचाशच्चाभिचारिकम्॥११२॥
तत्पूर्वाभिमुखं वश्यं दक्षिणं चाभिचारिकम्। पश्चिमं धनदं विद्यादुत्तरं शांतिकं भवेत्॥११३॥
अंगुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्जनी शत्रुनाशनी। मध्यमा धनदा शांतिं करोत्येषा ह्यनामिका॥११४॥
कनिष्ठा रक्षणीया सा जपकर्मणि शोभने। अंगुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरंगुलिभिः सह॥११५॥
अंगुष्ठेन विना कर्म कृतं तदफलं यतः। श्रृणुष्व सर्वयज्ञेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते॥११६॥

हिंसया ते प्रवर्तंते जपयज्ञो न हिंसया।
यावंतः कर्म यज्ञाः स्युः प्रदानानि तपांसि च॥११७॥
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हंति षोडशीम्।
माहात्म्यं वाचिकस्यैव जपयज्ञस्य कीर्तितम्॥११८॥

तस्माच्छतगुणोपांशुः सहस्रो मानसः स्मृतः। यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः॥११९॥
मंत्रमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः। शनैरुच्चारयेन्मंत्रमीषदोष्ठौ तु चालयेत्॥१२०॥

हे शुभानने! यदि जप की गणना उँगलियों से की जाय तो साधारण फल मिलता है। यदि रेखा खींच के गणना की जाय तो उँगली गणना से आठ गुना अधिक फल मिलता है। पुत्रजीव के फल से की जाय तो दस गुना, शंख और रत्नों से सौ गुना, प्रवाल से सहस्र गुना, स्फटिक से दस हजार गुना, कमल के बीज से दस लाख गुना, सोने के टुकड़ों से करोड़ गुना और कुशा की गाँठ और रुद्राक्ष से गणना करने पर अनन्त लाभ होता है।।१०९-१११।। पच्चीस रुद्राक्ष की माला मुक्ति के लिये लाभकारी है। सत्ताइस की पौष्टिक होती है। तीस की माला धन सम्पत्ति आदि के लिये और पचास की माला काले जादू के लिये होती है। पूर्वाभिमुख होकर किया गया जप वशीकरण की शक्ति देता है। दक्षिण मुख से अभिचार (काला जादू) की शक्ति देता है। पश्चिम की ओर मुख से किया गया जप धन और उत्तर की ओर से मुख किया गया जप शान्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार जप में अँगूठा मुक्ति प्रदान करता है। तर्जनी शत्रुओं का विनाश करती है, मध्यमा धन देती है, अनामिका शान्ति प्रदान करती है और कनिष्ठा संरक्षण प्रदान करती है। अतः भक्त को अँगूठे से अँगुलियों से सम्पर्क करते हुए जप करना चाहिये।।११२-११५।। ध्यान से सुनो। बिना अँगूठे के किया गया कोई भी पवित्र अनुष्ठान निष्फल है। जप यज्ञ सभी यज्ञों में सर्वोत्तम है।।११६।। सभी अनुष्ठानिक यज्ञ, दान और तप जप यज्ञ के फल के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं। अन्य यज्ञों में हिंसा होती है किन्तु जप यज्ञ में हिंसा का कोई काम नहीं है। जप यज्ञ में वाचिक की महिमा कही गयी है।।११७-११८।। वाचिक की अपेक्षा उपांशु (बुदबुदाना) सौ गुना अधिक फलदायी है और मानस सहस्र गुना अधिक फलदायी है। यदि मन्त्र का स्पष्ट उच्चारण उच्च स्वरों में या निम्न स्वरों में या साधारण स्वरों में किया जाय तो यह वाचिक है। यदि मन्त्र का जाप अत्यन्त धीमें स्वर में होठों को हिलाते हुए और बहुत कम सुनाई देने वाले स्वर में किया जाय तो वह उपांशु है। यदि भक्त मन में ही प्रत्येक

किंचित्कर्णांतरं विद्यादुपांशुः स जपः स्मृतः। धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम्॥१२१॥
शब्दार्थं चिंतयेद्भूयः स तूक्तो मानसो जपः। त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयान् स्यादुत्तरोत्तरः॥१२२॥
भवेद्यज्ञविशेषेण वैशिष्ट्यं तत्फलस्य च। जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति॥१२३॥
प्रसन्ना विपुलान् भोगान्दद्यान्मुक्तिं च शाश्वतीम्।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च ग्रहाः सर्वे च भीषणाः।
जापिनं नोपसर्पंति भयभीतः समंततः॥१२४॥
जपेन पापं शमयेदशेषं यत्तत्कृतं जन्मपरंपरासु।
जपेन भोगान् जयते च मृत्युं जपेन सिद्धिं लभते च मुक्तिम्॥१२५॥
एवं लब्ध्वा शिवं ज्ञानं ज्ञात्वा जपविधिक्रमम्॥१२६॥
सदाचारी जपन्नित्यं ध्यायन् भद्रं समश्नुते। सदाचारं प्रवक्ष्यामि सम्यग्धर्मस्य साधनम्॥१२७॥
यस्मादाचारहीनस्य साधनं निष्फलं भवेत्। आचारः परमो धर्म आचारः परमं तपः॥१२८॥
आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः। सदाचारवतां पुंसां सर्वत्राप्यभयं भवेत्॥१२९॥
तद्वदाचारहीनानां सर्वत्रैव भयं भवेत्। सदाचारेण देवत्वमृषित्वं च वरानने॥१३०॥
उपयांति कुयोनित्वं तद्वदाचारलंघनात्। आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निंदितः॥१३१॥
तस्मात्संसिद्धिमन्विच्छन्सम्यगाचारवान् भवेत्।
दुर्वृत्तो शुद्धिभूयिष्ठो पापीयान् ज्ञानदूषकः॥१३२॥
वर्णाश्रमविधानोक्तं धर्मं कुर्वीत यत्नतः॥१३३॥

अक्षर के अर्थ का चिन्तन करते हुए मन्त्र का जप करे तो वह मानस जप कहलाता है। तीनों जप यज्ञों में तीसरा शेष दोनों से श्रेष्ठ हैं।।११९-१२२।। लाभ की गुणवत्ता जप की विधि में निहित होती है। यदि देवता की निरन्तर जप से स्तुति की जाय तो वे प्रसन्न होकर अत्यधिक आनन्द और स्थायी मुक्ति प्रदान करते हैं। जप कर रहे व्यक्ति के पास न तो यक्ष न ही राक्षस न पिशाच और न ही भयंकर ग्रह पहुँच सकते हैं। ये सब चौतरफा भयभीत रहते हैं। जप करने से व्यक्ति अपने पूर्व जन्म के सभी पापों को शमन कर सकता है और सांसारिक सुख, सिद्धि एवं मुक्ति प्राप्त करता है तथा मृत्यु को जीत लेता है। शिव से सम्बन्धित पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके और जप की विधि जानकर भक्त सदाचार का पालन करते हुए ध्यान से कल्याण प्राप्त करता है। अब मैं सदाचार का बखान करूँगा।।१२३-१२७।। आचार से रहित साधन निष्फल हैं। अतः आचार ही परम धर्म और आचार ही परम तप है। सदाचार ही सर्वोच्च विद्या है और सदाचार ही सर्वोच्च लक्ष्य है। सदाचारी व्यक्ति सर्वत्र निर्भय रहता है।।१२८-१२९।। इसी तरह से सदाचार रहित व्यक्ति हर जगह भयभीत रहता है। हे सुमुखि! सदाचार से लोग देवत्व और ऋषित्व प्राप्त करते हैं और सदाचार का उल्लंघन करके नीच योनि में जन्म प्राप्त करते हैं। आचारहीन व्यक्ति लोक में निन्दित होता है। अतः सिद्धि की इच्छा करने वाले को कड़ाई से आचारवान होना चाहिये। दुराचरण वाला व्यक्ति पापी है और ज्ञान को दूषित करने वाला होता है। व्यक्ति को वर्णाश्रम धर्म के अनुसार

यस्य यद्विहितं कर्म तत्कुर्वन्मत्प्रियः सदा।
संध्योपासनशीलः स्यात्सायं प्रातः प्रसन्नधीः॥१३४॥
उदयास्तमयात्पूर्वमारभ्य विधिना शुचिः।
कामान्मोहाद्भयाल्लोभात्संध्यां नातिक्रमेद्द्विजः॥१३५॥
संध्यातिक्रमणाद्विप्रो ब्राह्मण्यात्पतते यतः।
असत्यं न वदेत्किंचिन्न सत्यं च परित्यजेत्॥१३६॥
यत्सत्यं ब्रह्म इत्याहुरसत्यं ब्रह्मदूषणम्। अनृतं परुषं शाठ्यं पैशुन्यं पापहेतुकम्॥१३७॥
परदारान्परद्रव्यं परहिंसां च सर्वदा।
क्वचिच्चापि न कुर्वीत वाचा च मनसा तथा॥१३८॥
शूद्रान्नं यातयामान्नं नैवेद्यं श्राद्धमेव च। गणान्नं समुदायान्नं राजान्नं च विवर्जयेत्॥१३९॥
अन्नशुद्धौ सत्त्वशुद्धिर्न मृदा न जलेन वै।
सत्त्वशुद्धौ भवेत्सिद्धिस्ततोन्नं परिशोधयेत्॥१४०॥
राजप्रतिग्रहैर्दग्धान्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः । स्विन्नानामपि बीजानां पुनर्जन्म न विद्यते॥१४१॥
राजप्रतिग्रहो घोरो बुद्ध्वा चादौविषोपमः। बुधेन परिहर्तव्यः श्वमांसं चापि वर्जयेत्॥१४२॥
अस्नात्वा न च भुजीयादजपोग्निमपूज्य च। पर्णपृष्ठे न भुञ्जीयाद्रात्रौ दीपं विना तथा॥१४३॥

यत्नपूर्वक अपने लिये निर्दिष्ट आचरण करना चाहिये।।१३०-१३३।। अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार आचरण करने वाला मुझे विशेष प्रिय है। भक्त को नित्य प्रातः और सायं प्रसन्नचित्त होकर सन्ध्योपासना करनी चाहिये। उसे सूर्योदय और सूर्यास्त के पूर्व मन और शरीर से शुद्ध होकर सन्ध्या करनी चाहिये। द्विज को काम, क्रोध, मोह, लोभ और भय के कारण सन्ध्या का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। सन्ध्या के उल्लंघन से विप्र ब्राह्मणत्व से पतित हो जाता है। व्यक्ति को असत्य भाषण नहीं करना चाहिये, न ही कभी सत्य को छोड़ना चाहिये। सत्य ही ब्रह्म कहा गया है और असत्य ब्रह्म को दूषित करता है। असत्य, (वचन की) कठोरता और हठधर्मिता पाप के कारण हैं। कभी भी मनसा, वाचा, कर्मणा अन्य की पत्नी और धन का अपहरण नहीं करना चाहिये। न ही किसी को आहत करना चाहिये। शूद्र का अन्न. वासी अन्न, नैवेद्य और श्राद्ध का अन्न, सामुदायिक उत्सवों के लिये पकाये गये अन्न और राजाओं के द्वारा भिक्षा में दिये गये अन्न का त्याग करना चाहिये। अन्न की शुद्धि ही चरित्र की शुद्धि का आधार है न कि जल और मिट्टी। चरित्र की शुद्धता से ही सिद्धि प्राप्त होती है। अतः चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये।।१३४-१४०।। ब्रह्मवादी ब्राह्मण भी राजाओं से उपहार ग्रहण करके दूषित हो जाते हैं। जैसे गर्म किये गये बीज का अंकुरण नहीं होता।।।१४१।। राजा से उपहार ग्रहण पाप है और विष के समान है। बुद्धिमान व्यक्ति को प्रारम्भ में ही कुत्ते के मांस की भाँति इसका त्याग करना चाहिये।।१४२।। बिना स्नान किये, बिना जाप किये और बिना अग्नि पूजन के भोजन नहीं करना चाहिये। पत्ते

भिन्नभांडे च रथ्यायां पतितानां च सन्निधौ। शूद्रशेषं न भुंजीयात्सहान्नं शिशुकैरपि॥१४४॥

शुद्धान्नं स्निग्धमश्नीयात्संस्कृतं चाभिमंत्रितम्।
भोक्ता शिव इति स्मृत्वा मौनी चैकाग्रमानसः॥१४५॥

आस्येन न पिबेत्तोयं तिष्ठन्नंजलिनापि वा। वामहस्तेन शय्यायां तथैवान्यकरेण वा॥१४६॥

विभीतकार्ककारंजस्नुहिच्छायां न चाश्रयेत्। स्तंभदीपमनुष्याणामन्येषां प्राणिनां तथा॥१४७॥

एको न गच्छेदध्वानं बाहुभ्यां नोत्तरेन्नदीम्। नावरोहेत कूपादिं नारोहेदुच्चपादपान्॥१४८॥

सूर्याग्निजलदेवानां गुरूणां विमुखः शुभे। न कुर्यादिह कार्याणि जपकर्मशुभानि वा॥१४९॥

अग्नौ न तापयेत्पादौ हस्तं पद्भ्यां न संस्पृशेत्।
अग्नेर्नोच्छ्रयमासति नाग्नौ किंचिन्मलं त्यजेत्॥१५०॥

न जलं ताडयेत्पभ्द्यां नांभस्यंगमलं त्यजेत्। मलं प्रक्षालयेत्तीरे प्रक्षाल्य स्नानमाचरेत्॥१५१॥

नखाग्रकेशनिर्धूतस्नानवस्त्रघटोदकम् । अश्रीकरं मनुष्याणामशुद्धं संस्पृशेद्यदि॥१५२॥

अजाश्वानखरोष्ट्राणां मार्जनात्तुपरेणुकान्। संस्पृशेद्यदि मूढात्मा श्रियं हंति हरेरपि॥१५३॥

के उल्टी तरफ नहीं खाना चाहिये और रात्रि में बिना दीप जलाये नहीं खाना चाहिये।।१४३।। टूटे हुए बर्तन में, खुली सड़क में, निम्न कोटि के लोगों के समीप भोजन नहीं करना चाहिये। शूद्र के द्वारा छोड़ा गया भोजन नहीं करना चाहिये और शिशु के साथ भोजन नहीं करना चाहिये। हमेशा शुद्ध अन्न चिकनाई युक्त और मुलायम और अभिमन्त्रित भोजन करना चाहिये। भोजन करते समय यह सोचना चाहिये कि शिव भोजन कर रहे हैं और मौन एवं एकाग्रचित् होकर भोजन करना चाहिये।।१४४-१४५।। कभी भी खड़े-खड़े या अंजुलि बाँधकर बाँयें हाथ से या चुस्की लेकर पानी नहीं पीना चाहिये। बिस्तर पर भी पानी नहीं पीना चाहिये चाहे दाँये हाथ से ही हो।।१४६।। किसी को भी कभी भी इमली के वृक्ष की, अर्क के वृक्ष की, करंज के वृक्ष की और सेंहुण की छाया में शरण नहीं लेना चाहिये। किसी खम्भे या दीप स्तम्भ या किसी मनुष्य या किसी भी प्राणी की छाया में नहीं खड़े होना चाहिये।।१४७।। किसी को भी कभी अकेले लम्बी यात्रा पर नहीं जाना चाहिये या किसी भी नदी को तैरकर पार नहीं करना चाहिये। कभी भी कुएँ में नहीं उतरना चाहिये और बहुत लम्बे वृक्ष पर नहीं चढ़ना चाहिये।।१४८।। हे शुभे! कभी भी सूर्य, अग्नि, जल देवताओं और गुरु की तरफ पीठ करके जप आदि अनुष्ठान नहीं करना चाहिये।।१४९।। कभी भी अग्नि से पैर नहीं तापने चाहिये। हाथों को कभी पैरों से नहीं छूना चाहिये और अग्नि के ऊपर शयन नहीं करना चाहिये। अग्नि में कभी भी अशुद्धियाँ या गन्ध युक्त पदार्थ नहीं फेंकने चाहिये।।१५०।। कभी भी पैर से पानी नहीं फैलाना चाहिये। हाथ पैरों की मैल पानी के अन्दर नहीं साफ करना चाहिये। किनारे पर हाथ पैरों को साफ करके तब जल में प्रवेश करना चाहिये।।१५१।। स्नान के बाद नाखून, केशों, वस्त्रों से टपकते जल और घड़े से छलकता जल मनुष्य के लिये अकल्याणकारी है। यदि कोई इसको छूता है तो अशुद्ध होगा।।१५२।। बकरी, कुत्ते, गधे और ऊँट से उठी धूल और उनके द्वारा थूकी गयी भूसी आदि अथवा झाड़ू से बुहारी गयी धूल आदि कोई मूढ़ात्मा ले तो उसके सारे वैभव नष्ट हो जाते हैं

मार्जारश्च गृहे यस्य सोप्यंत्यजसमो नरः। भोजयेद्यस्तु विप्रेंद्रान्मार्जारान्संनिधौ यदि॥१५४॥
तच्चांडालसमं ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा।
स्फिग्वातं शूर्पवातं च वातं प्राणमुखानिलम्॥१५५॥
सुकृतानि हरंत्येते संस्पृष्टाः पुरुषस्य तु।
उष्णीषी कंचुकी नग्नो मुक्तकेशो मलावृतः॥१५६॥
अपवित्रकरोशुद्धः प्रलपन्न जपेत् क्वचित्। क्रोधो मदः क्षुधा तंद्रा निष्ठीवनविजृंभणे॥१५७॥
श्वनीचदर्शनं निद्रा प्रलापास्ते जपद्विषः। एतेषां संभवे वापि कुर्यात्सूर्यादिदर्शनम्॥१५८॥
आचम्य वा जपेच्छेषं कृत्वा वा प्राणसंयमम्। सूर्योग्निश्चंद्रमाश्चैव ग्रहनक्षत्रतारकाः॥१५९॥
एते ज्योतींषि प्रोक्तानि विद्वद्भिर्ब्राह्मणैस्तथा। प्रसार्य पादौ न जपेत्कुक्कुटासन एव च॥१६०॥
अनासनः शयानो वा रथ्यायां शूद्रसन्निधौ।
रक्तभूम्यां च खट्वायां न जपेज्जापकस्तथा॥१६१॥
आसनस्थो जपेत्सम्यक् मंत्रार्थगतमानसः। कौशेयं व्याघ्रचर्म वा चैलं तौलमथापि वा॥१६२॥
दारवं तालपर्णं वा आसनं परिकल्पयेत्।
त्रिसंध्यं तु गुरोः पूजा कर्तव्या हितमिच्छता॥१६३॥
यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः॥१६४॥

चाहे वे भगवान विष्णु ही क्यों न हों।।१५३।। अपने घर में बिल्ली पालने वाला निम्न जाति के समान है। यदि कोई बिल्ली की उपस्थिति में किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को भोजन कराता है तो उसका यह कृत्य चाण्डाल का कृत्य माना जायेगा। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। नितम्बों से निकलने वाली वायु, सूप से निकलने वाली वायु और प्राणियों के मुख से निकलने वाली वायु के सम्पर्क में आने से व्यक्ति के सभी पुण्य नष्ट हो जाते हैं। कभी भी पगड़ी पहिनकर, नग्न होकर, गन्दे कपड़े पहिनकर या सिर के बालों की गाँठ खोलकर जप नहीं करना चाहिये। अशुद्ध हाथों से अथवा बात करते हुए भी जप नहीं करना चाहिये। क्रोध, मद, भूख, आलस्य और जम्हाई तथा कुत्ते और नीच व्यक्ति का दर्शन, निद्रा और वार्त्तालाप ये जप के शत्रु हैं। ऐसा हो जाने पर व्यक्ति को सूर्य आदि का दर्शन करना चाहिये।।१५४-१५८।। सूर्यादि से तात्पर्य है सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह नक्षत्र आदि। ये सब ज्योतिपुञ्ज हैं। क्रोध आदि होने पर आचमन या प्राणायाम करके पुनः जप प्रारम्भ करना चाहिये। पैरों को फैलाकर अथवा कुक्कुट आसन में बैठकर, खुली सड़क पर, पलंग पर बैठकर या रक्त रंजित भूमि पर अथवा शूद्र की संगति में जप नहीं करना चाहिये।।१५९-१६१।। भक्त को आसन पर बैठकर, मन में मंत्र के अर्थ का चिन्तन करना चाहिये। आसन रेशमी कपड़े, व्याघ्रचर्म, सूती कपड़े की गद्दी, लकड़ी का अथवा ताड़ के पत्ते का बना होना चाहिये। अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को तीनों सन्ध्याओं में गुरु का स्मरण करना चाहिये। गुरु ही शिव हैं, शिव ही गुरु हैं। जैसे शिव हैं वैसे ही विद्या, जैसी विद्या वैसे ही गुरु होते हैं। शिव विषयक ज्ञान

शिव विद्यागुरोस्तस्माद्भक्त्या च सदृशं फलम्। सर्वदेवमयो देवि सर्वशक्तिमयो हि सः॥१६५॥
सगुणो निर्गुणो वापि तस्याज्ञां शिरसा वहेत्। श्रेयार्थी यस्तु गुर्वाज्ञां मनसापि न लंघयेत्॥१६६॥
गुर्वाज्ञापालकः सम्यक् ज्ञानसंपत्तिमश्नुते।
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन् भुंजन्यद्यत् कर्म समाचरेत् ॥१६७॥
समक्षं यदि तत्सर्वं कर्तव्यं गुर्वनुज्ञया। गुरोर्देवसमक्षं वा न यथेष्टासनो भवेत्॥१६८॥
गुरुर्देवो यतः साक्षात्तद्गृहं देवमंदिरम्। पापिनां च यथासंगात्तत्पापैः पतनं भवेत्॥१६९॥
तद्वदाचार्यसंगेन तद्धर्मफलभाग्भवेत्। यथैव वह्निसंपर्कान्मलं त्यजति कांचनम्॥१७०॥
तथैव गुरुसंपर्कात्पापं त्यजति मानवः। यथा वह्निसमीपस्थो घृतकुंभो विलीयते॥१७१॥
तथा पापं विलीयेत आचार्यस्य समीपतः।
यथा प्रज्वलितो वह्निर्विष्ठा काष्ठं च निर्दहेत्॥१७२॥
गुरुस्तुष्टो दहत्येवं पापं तन्मंत्रतेजसा। ब्रह्मा हरिस्तथा रुद्रो देवाश्च मुनयस्तथा॥१७३॥
कुर्वंत्यनुग्रहं तुष्टा गुरौ तुष्टे न संशय। कर्मणा मनसा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत्॥१७४॥
तस्य क्रोधेन दह्यंते आयुःश्रीज्ञानसत्क्रियाः।
तत्क्रोधं ये करिष्यंति तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः॥१७५॥
जपान्यनियमाश्चैव नात्र कार्या विचारणा। गुरोर्विरुद्धं यद्वाक्यं न वदेत्सर्वयत्नतः॥१७६॥

गुरु से ही प्राप्त किया जाता है। श्रद्धा के अनुसार ही फल प्राप्त होता है। हे देवि! वह वास्तव में सारे देवों और शक्ति के समतुल्य है।।१६२-१६५।। गुरु चाहे निर्गुण हो या सगुण, शिष्य को उसकी आज्ञा का शिरसा पालन करना चाहिये। कल्याण चाहने वाले को मन से भी गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। गुरु की आज्ञा का कड़ाई से पालन करने वाला समस्त ज्ञान सम्पदा पाता है। गुरु के समक्ष होने पर आना-जाना, बैठना, भोजन करना और शयन करना आदि सब गुरु देव की आज्ञा से करना चाहिये। गुरु अथवा देवता के समक्ष भक्त को इच्छानुसार आसन नहीं ग्रहण करना चाहिये क्योंकि गुरु साक्षात् देवता हैं और उसका स्वयं का घर देव मन्दिर है। जिस तरह से पापियों की संगत से उनके पापों से भक्त का पतन होता है उसी तरह से गुरु की संगत से उनसे धर्म का लाभ होता है। जिस तरह अग्नि के सम्पर्क में आने से सोना अपनी अशुद्धियों को त्याग देता है उसी तरह गुरु के सम्पर्क में मनुष्य अपने पापों को त्याग देता है। जिस तरह से अग्नि के समीप घी पिघल जाता है उसी तरह गुरु के सम्पर्क से पाप घुल जाते हैं। जिस तरह प्रज्वलित अग्नि मल काष्ठ आदि जला देती है वैसे गुरु अपने मन्त्र शक्ति से पापों को भस्म कर देता है।।१६६-१७२।। गुरु के सन्तुष्ट होने पर निस्सन्देह ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवता और ऋषिगण सन्तुष्ट होते हैं और निस्सन्देह भक्त को आशीष देते हैं। कभी भी गुरु को मनसा, वाचा, कर्मणा कुछ नहीं कहना चाहिये। गुरु के क्रोध से आयु, वैभव और समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं। गुरु को क्रुद्ध करने वाले के यज्ञादि एवं जाप और अन्य अनुष्ठान निष्फल हो जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। गुरु के विरुद्ध कुछ भी बोलने से यत्नपूर्वक बचना चाहिये। यदि मोहवश कुछ विरुद्ध कहे

वदेद्यदि महामोहाद्रौरवं नरकं व्रजेत्। चित्तेनैव च वित्तेन तथा वाचा च सुव्रताः॥१७७॥
मिथ्या न कारयेद्देवि क्रियया च गुरोः सदा। दुर्गुणे ख्यापिते तस्य नैर्गुण्यशतभाग्भवेत्॥१७८॥
गुणे तु ख्यापिते तस्य सार्वगुण्यफलं भवेत्। गुरोर्हितं प्रियं कुर्यादादिष्टो वा न वा सदा॥१७९॥
असमक्षं समक्षं वा गुरोः कार्यं समाचरेत्। गुरोर्हितं प्रियं कुर्यान्मनोवाक्कायकर्मभिः॥१८०॥
कुर्वन्पतत्यधो गत्वा तत्रैव परिवर्तते। तस्मात्स सर्वदोपास्यो वन्दनीयश्च सर्वदा॥१८१॥
समीपस्थोप्यनुज्ञाप्य वदेत्तद्विमुखो गुरुम्। एवमाचारवान् भक्तो नित्यं जपपरायणः॥१८२॥
गुरुप्रियकरो मंत्रं विनियोक्तुं ततोर्हति। विनियोगं प्रवक्ष्यामि सिद्धमंत्रप्रयोजनम्॥१८३॥
दौर्बल्यं याति तन्मंत्रं विनियोगमजानतः। यस्य येन वियुंजीत कार्येण तु विशेषतः॥१८४॥
विनियोगः स विज्ञेय ऐहिकामुष्मिकं फलम्। विनियोगजमायुष्यमारोग्यं तनुनित्यता॥१८५॥
राज्यैश्वर्यं च विज्ञानं स्वर्गो निर्वाण एव च। प्रोक्षणं चाभिषेकं च अघमर्षणमेव च॥१८६॥
स्नाने च संध्ययोश्चैव कुर्यादेकादशेन वै। शुचिः पर्वतमारुह्य जपेल्लक्षमतंद्रितः॥१८७॥
महानद्यां द्विलक्षं तु दीर्घमायुरवाप्नुयात्।
दूर्वांकुरास्तिला वाणी गुडूची घुटिका तथा॥१८८॥
तेषां तु दशसाहस्त्रं होममायुष्यवर्धनम्। अश्वत्थवृक्षमाश्रित्य जपेल्लक्षद्वयं सुधीः॥१८९॥

तो वह व्यक्ति सदैव नरक में पड़ता है। हे देवि! गुरु को कभी मनसा, वाचा, कर्मणा ठगना नहीं चाहिये। यदि गुरु के अवगुणों को कहा जाय तो उसके (भक्त के) अवगुण सौ गुना हो जाते हैं। गुरु के गुणों के बखान करने पर तो उसके गुणों का लाभ कहने वाले को मिलता है। चाहे कहा जाय या नहीं, व्यक्ति को हमेशा वह कार्य करना चाहिये जो गुरु को प्रसन्न करे और उसे लाभ पहुँचाये।।१७३-१७९।। गुरु सामने रहे अथवा नहीं भक्त को हमेशा मनसा, वाचा, कर्मणा गुरु के हित और प्रिय कार्य को करना चाहिये। मनसा, वाचा, कर्मणा गुरु की हानि करने वाला पतन को प्राप्त होता है और वहीं विचरण करता रहता है।।१८०-१८१।। समीप रहने पर भी गुरु की अनुमति से बोलना चाहिये। इन नियमों का दृढ़ता से पालन करने वाला और जप में निष्ठावान और गुरु को प्रसन्न करने वाला इस मन्त्र के उपयोग के योग्य होता है। अब मैं मन्त्र का प्रयोग और प्रयोजन का बखान करूँगा जो सिद्ध किये गये हैं। यदि भक्त मन्त्र के प्रयोग की विधि नहीं जानता तो यह निष्प्रभाव हो जाता है। इस विधि को विनियोग कहते हैं। इससे क्रिया और उसके हित को संयोजन किया जाता है। विनियोग से आयु, निरोगता, तन की नित्यता, राज्य, वैभव, ज्ञान, स्वर्ग और मुक्ति प्राप्त होते हैं।।१८२-१८५।। प्रत्येक भक्त को नित्य स्नान और सन्ध्याओं में ११ बार पंचाक्षरी मन्त्र के साथ प्रोक्षण, अभिषेक और अघमर्षण अनुष्ठान करना चाहिये। भक्त को शुद्ध होकर पर्वत पर चढ़कर ध्यानपूर्वक एक लाख बार मन्त्र का जाप करना चाहिये या किसी महान नदी के तट पर दो लाख बार जाप करके लम्बी आयु पाई जा सकती है। दूर्वा घास के अंकुर, तिल, वाणी, गुरुच और घुटिका के साथ दस हजार होम से आयु बढ़ती है। बुद्धिमान भक्तों को पीपल के वृक्ष के नीचे दो लाख बार जाप करना चाहिये। शनिवार को पीपल वृक्ष का दोनों हाथों से स्पर्श करके और १०८ बार जप करके मनुष्य

शनैश्चरदिने स्पृष्ट्वा दीर्घायुष्यं लभेन्नरः।
शनैश्चरदिनेऽश्वत्थं पाणिभ्यां संस्पृशेत्सुधीः॥१९०॥
जपेदष्टोत्तरशतं सोपमृत्युहरो भवेत्।
आदित्याभिमुखो भूत्वा जपेल्लक्षमनन्यधीः॥१९१॥
अर्कैरष्टशतं नित्यं जुह्वन्व्याधेर्विमुच्यते। समस्तव्याधिशांत्यर्थं पलाशसमिधैर्नरः॥१९२॥
हुत्वा दशसहस्त्रं तु निरोगी मनुजो भवेत्। नित्यमष्टशतं जप्त्वा पिबेदंभोर्कसन्निधौ॥१९३॥
औदर्यैर्व्याधिभिः सर्वैर्मासेनैकेन मुच्यते। एकादशेन भुंजीयादन्नं चैवाभिमंत्रितम्॥१९४॥
भक्ष्यं चान्यत्तथा पेयं विषमप्यमृतं भवेत्। जपेल्लक्षं तु पूर्वाह्णे हुत्वा चाष्टशतेन वै॥१९५॥
सूर्यं नित्यमुपस्थाय सम्यगारोग्यमाप्नुयात्। नदीतोयेन संपूर्णं घटं संस्पृश्य शोभनम्॥१९६॥
जप्त्वायुतं च तत्स्नानाद्रोगाणां भेषजंभवेत्। अष्टाविंशज्जपित्वान्नमश्नीयादन्वहं शुचिः॥१९७॥
हुत्वा च तावत्पालाशैरेवं वारोग्यमश्नुते। चंद्रसूर्यग्रहे पूर्वमुपोष्य विधिना शुचिः॥१९८॥
यावद्ग्रहणमोक्षं तु तावन्नद्यां समाहितः। जपेत्समुद्रगामिन्यां विमोक्षे ग्रहणस्य तु॥१९९॥
अष्टोत्तरसहस्त्रेण पिबेद्ब्राह्मीरसं द्विजाः। ऐहिकां लभते मेधां सर्वशास्त्रधरां शुभाम्॥२००॥
सारस्वती भवेद्देवी तस्य वागतिमानुषी। ग्रहनक्षत्रपीडासु जपेद्भक्त्यायुतं नरः॥२०१॥
हुत्वा चाष्टसहस्त्रं तु ग्रहपीडां व्यपोहति। दुःस्वप्नदर्शने स्नात्वा जपेद्वै चायुतं नरः॥२०२॥

दीर्घायु प्राप्त कर सकता है। इससे अकाल मृत्यु भी नहीं होती। सूर्य की ओर मुख करके कहीं भी ध्यान लगाते हुए भक्त को एक लाख बार जप करना चाहिये। अर्क की डाल लेकर १०८ होम प्रतिदिन करने से भक्त रोग से मुक्त हो जाता है। सभी रोगों के शमन के लिये मनुष्य को पलाश की समिधा से दस सहस्र बार होम करना चाहिये। १०८ बार जप करके सूर्य के समक्ष जल ग्रहण करना चाहिये। ऐसा एक मास तक करने पर पेट के सभी रोग ठीक हो जाते है।।१८६-१९३।। अन्न और अन्य खाद्य पदार्थों और पेय को ग्यारह बार मन्त्र से पवित्र करके ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करने से विष भी अमृत हो जाता है। प्रतिदिन पूर्वाह्न में अग्नि को १०८ बार आहुति देने के बाद १ लाख बार जप करना चाहिये और सूर्य की पूजा करनी चाहिये। इससे पूर्ण स्वास्थ्य का लाभ मिलता है। नदी के जल से घड़ा भरकर उसे स्पर्श करते हुए दस सहस्र बार जप करना चाहिये। यदि उसी जल से स्नान कर लिया जाय तो सभी रोगों का प्रतिरोध हो जाता है। प्रतिदिन अट्ठाइस बार मन्त्र का जप करके तब भोजन ग्रहण करे और पलाश की समिधा लेकर होम करे तो पूर्ण आरोग्य प्राप्त होता है। चन्द्र और सूर्य ग्रहण के दौरान शुद्ध होकर उपवास करना चाहिये। इस दौरान किसी ऐसी नदी के तट पर जो समुद्र में मिलती है, ध्यान मग्न होकर जप करना चाहिये और ग्रहण समाप्त होने पर एक हजार आठ बार जप करके ब्राह्मी का रस पीना चाहिये। ऐसा करने पर वह सभी शास्त्रों को ग्रहण करने योग्य मेधा को प्राप्त कर लेगा। वह अतिमानुषी शक्ति प्राप्त करके देवी सरस्वती की वाणी के समान वाणी प्राप्त कर लेगा।।१९४-२०१।। ग्रहों से ग्रसित व्यक्ति दस हजार जाप करके भक्तिपूर्वक आठ हजार आहुति देकर ग्रह-बाधा से मुक्त हो जाता है।।२०१-२०२अ।।

घृते नाष्टशतं हुत्वा सद्यः शांतिर्भविष्यति। चंद्रसूर्यग्रहे लिंगं समभ्यर्च्य यथाविधि॥२०३॥
यत्किंचित्प्रार्थयेद्देवि जपेदयुतमादरात्। संनिधावस्य देवस्य शुचिः संयतमानसः॥२०४॥
सर्वान्कामानवाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः। गजानां तुरगाणां तु गोजातीनां विशेषतः॥२०५॥
व्याध्यागमे शुचिर्भूत्वा जुहुयात्समिधाहुतिम्।
मासमभ्यर्च्य विधिनाऽयुतं भक्तिसमन्वितः॥२०६॥
तेषामृद्धिश्च शांतिश्च भविष्यति न संशयः। उत्पाते शत्रुबाधायां जुहुयादयुतं शुचिः॥२०७॥
पालाशसमिधैर्देवि तस्य शांतिर्भविष्यति। आभिचारिकबाधायामेतद्देवि समाचरेत्॥२०८॥
प्रत्यग् भवति तच्छक्तिः शत्रोः पीडा भविष्यति।
विद्वेषणार्थं जुहुयाद्वैभीतसमिधाष्टकम्॥२०९॥
अक्षरप्रातिलोम्येन आर्द्रेण रुधिरेण वा। विषेण रुधिराभ्यक्तो विद्वेषणकरं नृणाम्॥२१०॥
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविशुद्धये। पापशुद्धिर्यथा सम्यक् कर्तुमभ्युद्यतो नरः॥२११॥
पापशुद्धिर्यतः सम्यग् ज्ञानसंपत्तिहैतुकी।
पापशुद्धिर्न चेत्पुंसः क्रियाः सर्वाश्च निष्फलाः॥२१२॥
ज्ञानं च हीयते तस्मात्कर्तव्यं पापशोधनम्।
विद्यालक्ष्मीविशुद्ध्यर्थं मां ध्यात्वांजलिना शुभे॥२१३॥

दुःस्वप्न देखने पर स्नान करके घी के साथ एक सौ आठ बार आहुति देने से तुरन्त शान्ति मिलती है।।२०२ब-२०३अ।। सूर्य और चन्द्र ग्रहण के दौरान भक्त को लिङ्ग की पूजा करनी चाहिये। हे देवि! शुद्ध होकर प्रभु की उपस्थिति में भक्तिपूर्वक १० सहस्र जप करने से निस्सन्देह व्यक्ति की समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं।।२०३ब-२०५अ।। हाथी, घोड़े और विशेषकर गोजाति के पशुओं में रोग उत्पन्न होने पर व्यक्ति को शुद्ध होकर समिधा की आहुति देनी चाहिये। विधिपूर्वक और भक्तिपूर्वक दस हजार बार मन्त्र जाप एक मास तक करे। ऐसा करने से निश्चय ही (रोग की) शान्ति होती है और उनकी (पशुओं की) वृद्धि होती है।।२०५ब-२०७अ।। किसी तरह की विपत्ति होने पर या शत्रुओं की बाधा होने पर भक्त को शुद्ध होकर पलाश की समिधा से दस सहस्र होम करने से उसकी विपत्ति और शत्रु बाधा की शान्ति होती है।।२०७ब-२०८अ।। हे देवि! काले जादू से ग्रसित होने पर भी ऐसा ही करना चाहिये। तब यह जादू शत्रुओं को ग्रसित करता है।।२०८ब-२०९अ।। घृणा फैलाने के लिये बहेड़े की समिधा से आठ बार आहुति देनी चाहिये या गीले रक्त से मन्त्र का उल्टा जाप करना चाहिये। यदि भक्त रक्त से स्नान करके विष से होम करता है तो इससे मनुष्यों में विद्वेष का प्रसार होता है।।२०९ब-२१०।। अब मैं पापों के प्रायश्चित की विधि का बखान करूँगा। चूँकि पापों का प्रायश्चित ज्ञान सम्पत्ति का मूल है, पाप शुद्धि न होने पर व्यक्ति की सारी क्रियाएँ निष्फल हैं।।२११-२१२।। चूँकि ज्ञान सम्पदा सदैव क्षीण होती रहती है इसलिये पापों का प्रायश्चित करते रहना चाहिये। हे शुभे! विद्या और भाग्य की विशुद्धि के लिये भक्त को अंजलि में जल लेकर मेरा ध्यान करना चाहिये और ग्यारह बार मन्त्र का जप करके अभिषेक करना

शिवेनैका दशेनाद्भिरभिषिंचेत्समः। अष्टोत्तरशतेनैव स्नायात्पापविशुद्धये॥२१४॥
सर्वतीर्थफलं तच्च सर्वपापहरं शुभम्। संध्योपासनविच्छेदे जपेदष्टशतं नरः॥२१५॥
विड्वराहैश्च चांडालैर्दुर्जनैः कुक्कुटैरपि। स्पृष्टमन्नं न भुंजीत भुक्त्वा चाष्टशतं जपेत्॥२१६॥
ब्रह्महत्या विशुद्ध्यर्थं जपेल्लक्षायुतं नरः।
पातकानां तदर्धं स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥२१७॥
उपपातकदुष्टानां तदर्धं परिकीर्तितम्। शेषाणामपि पापानां जपेत्पंचसहस्रकम्॥२१८॥
आत्मबोधपरं गुह्यं शिवबोधप्रकाशकम्। शिवः स्यात्स जपेन्मंत्रं पंचलक्षमनाकुलः॥२१९॥
पंचवायुजयं भद्रे प्राप्नोति मनुजः सुखम्। जपेच्च पंचलक्षं तु विगृहीतेंद्रियः शुचिः॥२२०॥
पंचेंद्रियाणां विजयो भविष्यति वरानने। ध्यानयुक्तो जपेद्यस्तु पंचलक्षमनाकुलः॥२२१॥
विषयाणां च पंचानां जयं प्राप्नोति मानवः। चतुर्थं पंचलक्षं तु यो जपेद्भक्तिसंयुतः॥२२२॥
भूतानामिह पंचानां विजयं मनुजा लभेत्। चतुर्लक्षं जपेद्यस्तु मनः संयम्य यत्नतः॥२२३॥
सम्यग्विजयमाप्नोति करणानां वरानने। पंचविंशतिलक्षाणां जपेन कमलानने॥२२४॥
पंचविंशतितत्त्वानां विजयं मनुजो लभेत्। मध्यरात्रेतिनिर्वाते जपेदयुतमादरात्॥२२५॥
ब्रह्मसिद्धिमवाप्नोति व्रतेनानेन सुंदरि। जपेल्लक्षमनालस्यो निर्वाते ध्वनिवर्जिते॥२२६॥

चाहिये। पाप को समाप्त करने के लिये एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करने के बाद स्नान करना चाहिये। यह (अनुष्ठान) सभी पापों को हरने वाला और सभी तीर्थों (की यात्रा) के समान फलदायक है। सन्ध्या आदि विच्छेद (नागा) होने पर एक सौ आठ बार जप करना चाहिये।।२१३-२१५।। सुअर, चाण्डाल, दुष्ट व्यक्ति और मुर्गे का छुआ हुआ भोजन नहीं करना चाहिये। ऐसा करने पर १०८ बार जप करना चाहिये।।२१६।। ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त के लिये सौ करोड़ बार मन्त्र का जप करना चाहिये। (अन्य) बड़े पापों के लिये उससे आधी संख्या में जप करना चाहिये इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये।।२१७।। कम बड़े पापों में इसके आधे जप का विधान किया गया है। छोटे पापों के प्रायश्चित्त के लिये पाँच हजार जप करना चाहिये।।२१८।। यह मन्त्र आत्मबोध कराने वाला अत्यन्त गूढ़, शिव के बारे में ज्ञान कराने वाला है। इसका पाँच लाख बार शान्त चित्त से जप करने वाला साक्षात् शिव हो जाता है।।२१९।। इससे पंच वायु को सरलता से जीता जा सकता है। भक्त को शुद्ध भाव से पंच इन्द्रियों को रोककर पाँच लाख जप करना चाहिये। हे सुमुखि! तब वह पंचेन्द्रियों का विजेता हो जायेगा। जो व्यक्ति अच्छी तरह से ध्यान लगाकर अविकल भाव से ५ लाख जप करता है वह पाँचों इन्द्रियों के विष को जीत लेता है। जो चौथी बार भक्ति भाव से पाँच लाख जप कर लेता है वह पाँचों भूतों पर विजय प्राप्त कर लेता है। हे सुमुखि! जो व्यक्ति यत्नपूर्वक मन को वश में करके चार लाख बार जप करता है वह पाँचों कर्मेन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है। हे कमलवदनी! जो व्यक्ति पच्चीस लाख जप करता है वह २५ तत्त्वों पर विजय प्राप्त करता है। जो मनुष्य अर्धरात्रि में, जब वायु स्थिर हो, दस हजार जप करता है तो इस व्रत से वह ब्रह्मसिद्धि प्राप्त

मध्यरात्रे च शिवयोः पश्यत्येव न संशयः। अंधकारविनाशश्च दीपस्येव प्रकाशनम्॥२२७॥
हृदयांतर्बहिर्वापि भविष्यति न संशयः। सर्वसंपत्समृद्ध्यर्थं जपेदयुतमात्मवान्॥२२८॥

सबीजसंपुटं मंत्रं शतलक्षं जपेच्छुचिः।
मत्सायुज्यमवाप्नोति भक्तिमान् किमतः परम्॥२२९॥
इति ते सर्वमाख्यातं पंचाक्षरविधिक्रमम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमां गतिम्॥२३०॥

श्रावयेच्च द्विजाञ्छुद्धान्पंचाक्षरविधिक्रमम्। दैवे कर्मणि पित्र्ये वा शिवलोके महीयते॥२३१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पंचाक्षरमाहात्म्यं नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः॥८५॥

कर लेता है।।२२०-२२६अ।। मध्यरात्रि में जब वायु स्थिर हो और कोई भी ध्वनि न हो रही हो, तब जो भक्त बिना आलस्य किये लाख बार जप करे वह शिव और शिवा दोनों को देख सकता है इसमें संशय नहीं। तब अन्धकार का नाश हो जाता है और हृदय के अन्दर और बाहर दीपक का सा प्रकाश हो जाता है। वह आत्मज्ञ दस हजार जप करके सभी सम्पदाओं को प्राप्त कर लेता है।।२२६ब-२२८।। जो मनुष्य शुद्ध होकर बीज के सम्पुट से सौ लाख जाप कर ले, वह मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेता है। इससे महान् क्या होगा?।।२२९।। इस प्रकार मैंने क्रम से पंचाक्षर मन्त्र के जप की विधि का व्याख्यान किया जो इसका पाठ या श्रवण करता है वह परम गति को प्राप्त करता है। जो इस पंचाक्षर जाप विधि को क्रम से शुद्ध ब्राह्मणों को दैवी अनुष्ठान या पितृ अनुष्ठान में सुनाता है वह शिवलोक में आदर पाता है।।२३०-२३१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में पंचाक्षर मंत्र माहात्म्य नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त॥८५॥

षडशीतितमोऽध्यायः

संसारविषकथनम्

ऋषय ऊचुः

जपाच्छ्रेष्ठतमं प्राहुर्ब्राह्मणा दग्धकिल्बिषाः। विरक्तानां प्रबुद्धानां ध्यानयज्ञं सुशोभनम्॥१॥
तस्माद्वदस्व सूताद्य ध्यानयज्ञमशेषतः। विस्तारात्सर्वयत्नेन विरक्तानां महात्मनाम्॥२॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मुनीनां दीर्घसत्रिणाम्। रुद्रेण कथितं प्राह गुहां प्राप्य महात्मना॥३॥
संहृत्य कालकूटाख्यं विषं वै विश्वकर्मणा।

सूत उवाच

गुहां प्राप्य सुखासीनं भवान्या सह शंकरम्॥४॥
मुनयः संशितात्मानः प्रणेमुस्तं गुहाश्रयम्। अस्तुवंश्च ततः सर्वे नीलकंठमुमापतिम्॥५॥
अत्युग्रं कालकूटाख्यं संहृतं भगवंस्त्वया। अतः प्रतिष्ठितं सर्वं त्वया देव वृषध्वज॥६॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा भगवान्नीललोहितः। प्रहसन्प्राह विश्वात्मा सनंदनपुरोगमान्॥७॥
किमनेन द्विजश्रेष्ठा विषं वक्ष्ये सुदारुणम्। संहरेत्तद्विषं यस्तु स समर्थो ह्यनेन किम्॥८॥
न विषं कालकूटाख्यं संसारो विषमुच्यते। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संहरेत सुदारुणम्॥९॥
संसारो द्विविधः प्रोक्तः स्वाधिकारानुरूपतः। पुंसा संमूढचित्तानामसंक्षीणः सुदारुणः॥१०॥

छियासीवाँ अध्याय

संसार विष कथन

ऋषिगण बोले

अपना पाप नष्ट करने वाले ब्राह्मण कहते हैं कि प्रबुद्ध और विरक्तों का ध्यान यज्ञ जप से श्रेष्ठ है।।१।। अतः हे सूत! विरक्त (वैरागी) महात्माओं के उपयुक्त ध्यान यज्ञ के बारे में विस्तार से यत्नपूर्वक बतायें।।२।। लम्बी अवधि तक यज्ञ करने वाले उन ऋषियों के शब्दों को सुनकर सूत ने उन्हें वह सारा वृत्तान्त सुनाया जो विश्वकर्मा शिव ने उन्हें कालकूट नामक विष को मेरु पर्वत की गुफा में बताया था।।३-४अ।।

सूत बोले

भवानी सहित गुहा में पधारे शिव को परम अनुशासित उन ऋषियों ने झुककर प्रणाम किया और आसन दिया। उन सबने उमापति भगवान नीलकण्ठ की स्तुति की।।४ब-५।। हे देव वृषवाहन! आपने कालकूट विष को निष्क्रिय करके सब-कुछ स्थिर कर दिया है।।६।। ये शब्द सुनकर विश्वात्मा भगवान नीललोहित ने सनन्दन आदि ऋषियों से मुस्कुराते हुए कहा।।७।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! इससे क्या लाभ! मैं आपको इससे भी भयंकर विष के बारे में बताऊँगा। जिसने इस विष को निष्क्रिय कर दिया उसके लिये यह (कालकूट) क्या?।।८।। संसार विष की तुलना में कालकूट विष कुछ नहीं है। अतः प्रयत्न करके इस विष को दूर करना चाहिये।।९।। अधिकार

ईषणारागदोषेण सर्गो ज्ञानेन सुव्रताः। तद्वशादेव सर्वेषां धर्माधर्मौ न संशयः॥११॥
असन्निकृष्टे त्वर्थेपि शास्त्रं तच्छ्रवणात्सताम्। बुद्धिमुत्पादयत्येव संसारे विदुषां द्विजाः॥१२॥
तस्माद्दृष्टानुश्रविकं दुष्टामित्युभयात्मकम्। संत्यजेत्सर्वयत्नेन विरक्तः सोभिधीयते॥१३॥
शास्त्रमित्युच्यतेऽभागं श्रुतेः कर्मसु तद्द्विजाः। मूर्धानं ब्रह्मणः सारमृषीणां कर्मणः फलम्॥१४॥
ननु स्वभावः सर्वेषां कामो दृष्टो न चान्यथा। श्रुतिः प्रवर्तिका तेषामिति कर्मण्यतद्विदः॥१५॥
निवृत्तिलक्षणो धर्मः समर्थानामिहोच्यते। तस्मादज्ञानमूलो हि संसारः सर्वदेहिनाम्॥१६॥
कला संशोषमायाति कर्मणान्यस्वभावतः। सकलस्त्रिविधो जीवो ज्ञानहीनस्त्वविद्यया॥१७॥
नारकी पापकृत्स्वर्गी पुण्यकृत्पुण्यगौरवात्। व्यतिमिश्रेण वै जीवश्चतुर्धा संव्यवस्थितः॥१८॥
उद्भिजः स्वेदशजश्चैव अंडजो वै जरायुजः। एवं व्यवस्थितो देही कर्मणाज्ञो ह्यनिर्वृतः॥१९॥
प्रजया कर्मणा मुक्तिर्धनेन च सतां न हि। त्यागेनैकेन मुक्तिः स्यात्तदभावाद्भ्रमत्यसौ॥२०॥
एवमज्ञानदोषेण नानाकर्मवशेन च। षट्कौशिकं समुद्भूतं भजत्येष कलेवरम्॥२१॥
गर्भे दुःखान्यनेकानि योनिमार्गे च भूतले। कौमारे यौवनं चैव वार्धके मरणेपि वा॥२२॥
विचारतः सतां दुःखं स्त्रीसंसर्गादिभिर्द्विजाः। दुःखेनैकेन वै दुःखं प्रशाम्यंतीह दुःखिनः॥२३॥

और कर्त्तव्यों के अनुसार यह संसार दो तरह का है। मूढ़ लोगों के लिये यह भयंकर और भारी है। हे व्रती ऋषियों! यह सृष्टि राग और दोष जनित अज्ञान के कारण है। इसी के कारण सभी धर्म और अधर्म के वश में हैं। हे ब्राह्मणों! जो वस्तुएँ समीप नहीं हैं उनके प्रति भी शास्त्र श्रवण मात्र से विद्वान लोगों में इच्छा जाग्रत कर देते हैं। अतः दृश्य जगत् और वैदिक रीतियों के अनुसार जो विश्व है दोनों का बुद्धिमान लोगों को त्याग करना चाहिये। तब वह व्यक्ति विरक्त हो जाता है।।१०-१३।। हे ब्राह्मणों! कर्मकाण्ड से सम्बन्धित वेद का भाग शास्त्र कहलाता है। हे ब्राह्मणों! यह वेद का प्रधान तत्त्व है। अनुष्ठान का लाभ ऋषियों को मिलता है।।१४।। वे नहीं जानते कि इच्छा स्वाभाविक है। इससे इतर नहीं देखा गया। वेद उनको कर्म के लिये (इच्छाओं की पूर्ति के लिये) प्रेरित करते हैं।।१५।। निवृत्ति धर्म समर्थ (विरक्त) लोगों के लिये है। इसलिये यह कहा जाता है कि अज्ञानमूलक संसार सभी देहधारियों के लिये है।।१६।। कला से मनुष्य के कर्म स्वाभाविक रूप से सूख जाते हैं। कलायुक्त व्यक्ति अज्ञान के कारण ज्ञान से वंचित रहते हैं। ये तीन तरह के होते हैं। पहले जो पाप कर्म के कारण नरक के भागी होते हैं। दूसरे जो श्रेष्ठ कर्मों के कारण स्वर्ग के भागी होते हैं। और तीसरे प्रकार के मिले जुले लोग होते हैं।।१७-१८।। जीव चार तरह के होते हैं—(१) उद्भिज (अर्थात् वनस्पति) (२) स्वदेज (पसीने से उत्पन्न होने वाले) (३) अण्डज अर्थात् अण्डे से पैदा होने वाले और (४) जरायुज (अर्थात् अपने लघु रूप में पैदा होने वाले विज्ञान की भाषा में स्तनपायी) इस प्रकार कर्मों से अनजान देहधारी मुक्ति नहीं पाते।।१९।। सज्जन व्यक्ति अपनी संतान, कर्म अथवा धन से मुक्ति नहीं पाते अपितु त्याग से मुक्ति मिलती है। उसके अभाव से प्राणी (मृत्यु लोक में) विचरण करते हैं।।२०।। अज्ञानवश अथवा कर्मवश प्राणी छह कोशों से युक्त शरीर धारण करता है।।२१।। प्राणी गर्भ में जन्म मार्ग में और पृथ्वी पर किशोरावस्था में, यौवन में, बुढ़ापे में और मृत्यु में असंख्य दुःख पाते हैं।।२२।। हे ब्राह्मणों! समुचित विचार किया जाय तो सज्जन मनुष्य स्त्री संसर्ग और उससे उत्पन्न

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥२४॥
तस्माद्विचारतो नास्ति संयोगादपि वैनृणाम्। अर्थानामर्जनेप्येवं पालने च व्यये तथा॥२५॥
पैशाचे राक्षसे दुःखं याक्षे चैव विचारतः। गांधर्वे च तथा चांद्रे सौम्यलोके द्विजोत्तमाः॥२६॥
प्राजापत्ये तथा ब्राह्मे प्राकृते पौरुषे तथा। क्षयसातिशयाद्यैस्तु दुःखै र्दुःखानि सुव्रताः॥२७॥
तानि भाग्यान्यशुद्धानि संत्यजेच्च धनानि च। तस्मादष्टगुणं भोगं तथा षोडशधा स्थितम्॥२८॥
चतुर्विंशत्प्रकारेण संस्थितं चापि सुव्रताः। द्वात्रिंशद्भेदमनघाश्चत्वारिंशद्गुणं पुनः॥२९॥
तथाष्टचत्वारिंशश्च षट्पंचाशत्प्रकारतः। चतुः षष्टिविधं चैव दुःखमेव विवेकिनः॥३०॥
पार्थिवं च तथाप्यं च तैजसं च विचारतः। वायव्यं च तथा व्यौम मानसं च यथाक्रमम्॥३१॥
आभिमानिकमप्येवं बौद्धं प्राकृतमेव च। दुःखमेव न संदेहो योगिनां ब्रह्मवादिनाम्॥३२॥
गौणं गणेश्वराणां च दुःखमेव विचारतः। आदौ मध्ये तथा चांते सर्वलोकेषु सर्वदा॥३३॥
वर्तमानानि दुःखानि भविष्याणि यथातथम्। दोषदुष्टेषु देशेषु दुःखानि विविधानि च॥३४॥
न भावयंत्यतीतानि ह्यज्ञाने ज्ञानमानिनः। क्षुव्द्याधेः परिहारार्थं न सुखायान्नमुच्यते॥३५॥
यथेतरेषां रोगाणामौषधं न सुखाय तत्। शीतोष्णवातवर्षाद्यैस्तत्तत्कालेषु देहिनाम्॥३६॥

कारणों से दुःखी होते हैं। वे एक दुःख से दूसरे दुःखों को शान्त करते हैं।।२३।। काम के उपयोग से काम शान्त नहीं होता। हवि के घी से (यज्ञ की) अग्नि और अधिक प्रज्वलित होती है।।२४।। विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि संयोग से भी सुख नहीं प्राप्त होता। धन अर्जन, रक्षण और व्यय में भी दुख है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! यदि विचार करें तो पाते हैं कि पिशाचों, राक्षसों, गन्धर्वों में चन्द्रलोक और बुधलोक में दुख है। प्रजापति के लोक में भी और ब्रह्मलोक में भी और प्रकृति और पुरुष के लोक में भी दुख है। हे सुव्रतो! जो अपने पास है उसके क्षय का दुख या दूसरे की वही वस्तु श्रेष्ठ हो तो उसका दुख दुखों से दुख होता है।।२५-२७।। इन अशुद्ध भाग्यों और धनों का परित्याग करना चाहिये। हे निष्पाप ऋषियों! विवेकशील लोगों के लिये सभी भोग वास्तव में दुख है चाहे वे आठ प्रकार के हों, सोलह प्रकार के हों, चौबीस प्रकार के हो, बत्तीस प्रकार के हो, चालीस प्रकार के हो, अड़तालिस प्रकार के हों, छप्पन प्रकार के हों अथवा चौंसठ प्रकार के हों।।२८-३०।। यदि विचार किया जाय तो पार्थिव (पृथ्वी सम्बन्धी), आप्य (जल सम्बन्धी), तैजस (अग्नि सम्बन्धी), वायव्य (वायु सम्बन्धी), व्यौम (आकाश सम्बन्धी), मानस (मन सम्बन्धी), आभिमानिक (अभिमान सम्बन्धी), बौद्ध (बुद्धि सम्बन्धी) और प्राकृतिक (प्रकृति सम्बन्धी) भोग भी ब्रह्मवादी योगियों के लिये दुःख हैं।।३१-३२।। गणपतियों के गुण भी विचार करने पर दुःख हैं। सभी लोकों में आदि, मध्य और अन्त में दुःख ही है। वर्तमान में दुःख है। भविष्य में भी दुःख होंगे। दोषों से भ्रष्ट जगत् में विविध प्रकार के दुःख हैं। जो अज्ञान को ही ज्ञान मानते हैं वे अतीत को याद नहीं रखते। जैसे दवा रोग को समाप्त करने के लिये ली जाती है न कि वास्तविक सुख के लिये। उसी तरह भूख रूपी रोग को दूर करने के लिये आहार लिया जाता है सुख के लिये नहीं। विविध ऋतुओं में शरीरधारी शीत, ताप, वायु और वर्षा आदि से कष्ट पाते हैं किन्तु अज्ञानी इसमें ऐसा नहीं मानते।

दुःखमेव न संदेहो न जानंति ह्यपंडिताः। स्वर्गेप्येवं मुनिश्रेष्ठा ह्यविशुद्धक्षयादिभिः॥३७॥
रोगैर्नानाविधैर्ग्रस्ता रागद्वेषभयादिभिः। छिन्नमूलतरुर्यद्वदवशः पतति क्षितौ॥३८॥
पुण्यवृक्षक्षयात्तद्वद्वां पतंति दिवौकसः। दुःखाभिलाषनिष्ठानां दुःखभोगादिसंपदाम्॥३९॥
अस्मात्तु पततां दुःखं कष्टं स्वर्गाद्दिवौकसाम्। नरके दुःखमेवात्र नरकाणां निषेवणात्॥४०॥
विहिताकरणाच्चैव वर्णिनां मुनिपुंगवाः॥४१॥
यथा मृगो मृत्युभयस्य भीतो उच्छिन्नवासो न लभेत निद्राम्।
एवं यतिर्ध्यानपरो महात्मा संसारभीतो न लभेत निद्राम्॥४२॥
कीटपक्षिमृगाणां च पशूनां गजवाजिनाम्। दृष्टमेवासुखं तस्मात्त्यजतः सुखमुत्तमम्॥४३॥
वैमानिकानामप्येवं दुःखं कल्पाधिकारिणाम्। स्थानाभिमानिनां चैव मन्वादीनां च सुव्रताः॥४४॥
देवानां चैव दैत्यानामन्योन्याविजिगीषया। दुःखमेव नृपाणां च राक्षसानां जगत्त्रये॥४५॥
श्रमार्थमाश्रमश्चापि वर्णानां परमार्थतः। आश्रमैर्न च देवैश्च यज्ञैः सांख्यैर्व्रतैस्तथा॥४६॥
उग्रैस्तपोभिर्विविधैर्दानैर्नानाविधैरपि । न लभंते तथात्मानं लभंते ज्ञानिनः स्वयम्॥४७॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चरेत्पाशुपतव्रतम्। भस्मशायी भवेन्नित्यं व्रते पाशुपते बुधः॥४८॥
पंचार्थज्ञानसंपन्नः शिवतत्त्वे समाहितः। कैवल्यकरणं योगविधिकर्मच्छिदं बुधः॥४९॥

हे श्रेष्ठ मुनियों! यहाँ तक कि स्वर्ग में भी (श्रेष्ठ) गुणों के क्षय आदि से ऐसा ही होता है।।३३-३७।। जिस तरह से जड़ से कटा वृक्ष विवश होकर भूमि पर गिर पड़ता है, उसी तरह नाना प्रकार के रोग, राग-द्वेष भय आदि से ग्रस्त स्वर्गवासी भी अपने पुण्य वृक्ष के क्षय से पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। यहाँ तक कि स्वर्ग में रहने वाले भी जो उन दुःखों की कामना करते हैं जो दुःख का मूल हैं अथवा जो उन भोगों से युक्त हैं वे भी स्वर्ग से पतित होने पर भयंकर दुःख पाते हैं। हे श्रेष्ठ मुनियों! धार्मिक पुरुष भी शास्त्रोक्त अनुष्ठानों को न करने के कारण निश्चित ही नरक में दुःख पाते हैं।।३८-४१।। जिस प्रकार अपने निवास से भटका मृग भय के कारण निद्रा नहीं पाता, उसी तरह ध्यानमग्न महात्मा योगी भी संसार मद से ग्रस्त होने पर निद्रा नहीं पाता।।४२।। कीट-पक्षियों और मृग, हाथी, घोड़ा आदि पशुओं में भी दुःख देखा जाता है। अतः संसार त्यागी महान् सुख पाता है।।४३।। हे सुव्रतो! समस्त कल्पों के वे अधिकारी जो विमान में विचरण करते हैं और अपनी स्थिति पर गर्व करने वाले मनु आदि भी दुःख पाते हैं। देव और दैत्य भी परस्पर विजय की इच्छा से दुःख पाते हैं। तीनों लोकों में नृप और राक्षस भी दुःख पाते हैं।।४४-४५।। वास्तव में आश्रम भी विभिन्न वर्णों में श्रम की थकान से दुःख पहुँचाते हैं। आश्रमों में व्यक्ति वेदों, यज्ञों, सांख्यों, व्रतों और कठोर तप तथा दान आदि से आत्म तत्त्व नहीं प्राप्त कर सकता किन्तु ज्ञानी प्राप्त कर लेता है। अतः सारे प्रयास से व्यक्ति को मात्र पाशुपत अनुष्ठान करना चाहिये। पाशुपत व्रत में बुद्धिमान साधक को नित्य भस्म में सोना चाहिये।।४६-४८।। पंच विषयों के ज्ञान से युक्त और शिव तत्त्व में ध्यानमग्न बुद्धिमान साधक को मुक्तिदायी और कर्मनाशक योग को अपनाना चाहिये। इससे साधक पंच विषयों को जानकर दुःख के अन्त तक पहुँच जाता है। भक्त अपरा विद्या से नहीं बल्कि परा विद्या के द्वारा

पंचार्थयोगसंपन्नो दुःखांतं व्रजते सुधीः। परया विद्यया वेद्यं विदंत्यपरया न हि॥५०॥
द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा तथा। अपरा तत्र ऋग्वेदो यजुर्वेदो द्विजोत्तमाः॥५१॥
सामवेदस्तथाऽथर्वो वेदः सर्वार्थसाधकः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छंद एव च॥५२॥
ज्योतिषं चापरा विद्या पराक्षरमिति स्थितम्। तददृश्यं तदग्राह्यमगोत्रं तदवर्णकम्॥५३॥
तदचक्षुस्तदश्रोत्रं तदपाणि अपादकम्। तदजातमभूतं च तदशब्दं द्विजोत्तमाः॥५४॥
अस्पर्शं तदरूपं च रसगंधविवर्जितम्। अव्ययं चाप्रतिष्ठं च तन्नित्यं सर्वगं विभुम्॥५५॥
महांतं तद्बृहं तं च तदजं चिन्मयं द्विजाः। अप्राणममनस्कं च तद स्निग्धमलोहितम्॥५६॥
अप्रमेयं तदस्थूलमदीर्घं तदनुल्बणम्। अह्रस्वं तदपारं च तदानंदं तदच्युतम्॥५७॥
अनपावृतमद्वैतं तदनंतमगोचरम्। असंवृतं तदात्मैकं परा विद्या न चान्यथा॥५८॥
परापरेति कथिते नैवेह परमार्थतः। अहमेव जगत्सर्वं मय्येव सकलं जगत्॥५९॥
मत्त उत्पद्यते तिष्ठन्मयि मय्येव लीयते। मत्तो नान्यदितीक्षेत मनोवाक्पाणिभिस्तथा॥६०॥
सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः। सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नबाह्ये कुरुते मनः॥६१॥
अधोदृष्ट्या वितस्त्यां तु नाभ्यामुपरि तिष्ठति। हृदयं तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत्॥६२॥
हृदयस्यास्य मध्ये तु पुंडरीकमवस्थितम्। धर्मकंदसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम्॥६३॥

ज्ञान प्राप्त करता है।।४९-५०।। विद्या दो तरह की होती है—परा और अपरा। अपरा विद्या ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण छंद और ज्योतिष है। जिसका कभी क्षरण नहीं होता वही परा विद्या है। यह अदृश्य, अज्ञेय है। इसका कोई गोत्र नहीं है, कोई वर्ण नहीं है। इसका कोई हाथ, पैर, आँख, कान आदि नहीं है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! यह अजन्मा है। इसका कोई अतीत नहीं और यह शब्दों द्वारा कहे जाने योग्य नहीं है।।५१-५४।। इसका कोई स्पर्श नहीं है, कोई रूप नहीं है, कोई स्वाद और गन्ध नहीं है। कोई आधार नहीं है। यह अपरिवर्तनीय है। यह सर्वग और सर्वशक्तिशाली है। हे ब्राह्मणो! यह अजन्मा, चित् स्वरूप और प्राणों से रहित है। यह स्नेह रहित और रक्त रहित है। यह अज्ञेय है। यह न दीर्घ है न लघु है। यह स्पष्ट नहीं है। यह संक्षिप्त भी नहीं है। यह अवेद्य है, अविचल है, यह वरदान है, अद्वैत है, अनन्त है, अगोचर और निरावरण है। परा आत्मा के समतुल्य है।।५५-५८।। लेकिन यह परा अपरा का भेद वास्तविक नहीं है। मैं सकल ब्रह्माण्ड हूँ। समस्त ब्रह्माण्ड मुझमें है।।५९।। प्रत्येक वस्तु मुझसे उत्पन्न होती है, मुझमें ही रहती है और मुझमें ही नष्ट होती है। मुझसे अलग कुछ नहीं है। मन, वचन और काया से इस बात को महसूस करना चाहिये। भक्त को ध्यान में मग्न होकर आत्मा में ही सत् और असत् को देखना चाहिये। आत्मा में ही सब-कुछ देखने वाले का मन इधर-उधर नहीं भटकता।।६०-६१।। दृष्टि नीची करने पर आत्मा हृदय के अन्दर १२ अंगुल में नाभि के ऊपर विराजता हुआ देखा जा सकता है। यही ब्रह्माण्ड का घर है।।६२।। इस हृदय के मध्य में कमल है जिसकी धर्मरूप कन्द है। इसकी डण्ठल भव्य ज्ञान रूपी है। आठों सिद्धियाँ इसकी आठ दल हैं और वैराग्य

ऐश्वर्याष्टदलं श्वेतं परं वैराग्यकर्णिकम्।
छिद्राणि च दिशो यस्य प्राणाद्याश्च प्रतिष्ठिताः॥६४॥
प्राणाद्यैश्चैव संयुक्तः पश्यते बहुधा क्रमात्। दशप्राणवहा नाड्यः प्रत्येकं मुनिपुंगवाः॥६५॥
द्विसप्ततिसहस्राणि नाड्यः संपरिकीर्तिताः। नेत्रस्थं जाग्रतं विद्यात्कंठे स्वप्नं समादिशेत्॥६६॥
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्धनि स्थितम्।
जाग्रे ब्रह्मा च विष्णुश्च स्वप्ने चैव यथाक्रमात्॥६७॥
ईश्वरस्तु सुषुप्ते तु तुरीये च महेश्वरः। वदंत्येवमथान्येपि समस्तकरणैः पुमान्॥६८॥
वर्तमानस्तदा तस्य जाग्रदित्यभिधीयते। मनोबुद्धिरहंकारं चित्तं चेति चतुष्टयम्॥६९॥
यदा व्यवस्थितस्त्वेतैः स्वप्न इत्यभिधीयते। करणानि विलीनानि यदा स्वात्मनि सुव्रताः॥७०॥
सुषुप्तः करणैर्भिन्नस्तुरीयः परिकीर्त्यते। परस्तुरीयातीतोसौ शिवः परमकारणम्॥७१॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीयं चाधिभौतिकम्। आध्यात्मिकं च विप्रेंद्राश्चाधिदैविकमुच्यते॥७२॥
तत्सर्वमहमेवेति वेदितव्यं विजानता। बुद्धींद्रियाणि विप्रेंद्रास्तथा कर्मेंद्रियाणि च॥७३॥
मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्। अध्यात्मं पृथगेवेदं चतुर्दशविधं स्मृतम्॥७४॥
द्रष्टव्यं चैव श्रोतव्यं घ्रातव्यं च यथाक्रमम्। रसितव्यं मुनिश्रेष्ठाः स्पर्शितव्यं तथैव च॥७५॥
मंतव्यं चैव बोद्धव्यमहंकर्तव्यमेव च। तथा चेतयितव्यं च वक्तव्यं मुनिपुंगवाः॥७६॥
आदातव्यं च गंतव्ये विसर्गायितमेव च। आनंदितव्यमित्येते ह्यधिभूतमनुक्रमात्॥७७॥
आदित्योपि दिशाश्चैव पृथिवी वरुणस्तथा। वायुश्चंद्रस्तथा ब्रह्मा रुद्रः क्षेत्रज्ञ एव च॥७८॥
अग्निरिंद्रस्तथा विष्णुर्मित्रो देवः प्रजापतिः। आधिदैविकमेवं हि चतुर्दशविधं क्रमात्॥७९॥

इसकी श्वेतफल भित्ति, इसके छिद्र प्राणवायु रूपी दिशाएँ हैं।।६३-६४।। प्राण से संयुक्त होने पर यह प्रायः क्रम से देखता है। हे श्रेष्ठ मुनियों! प्रत्येक नाड़ी दस प्राण वहन करती है। कुल बहत्तर हजार नाड़ियाँ चारों ओर फैली हैं। जाग्रत अवस्था में आँखों में, स्वप्नवस्था में कण्ठ में, सुषुप्तावस्था में हृदय में और तुरीयावस्था में सिर में स्थिर रहता है। जाग्रत अवस्था में प्रधान ब्रह्मदेव है, स्वप्न में विष्णु, सुषुप्तावस्था में ईश्वर और तुरीयावस्था में महेश्वर प्रधान देव हैं। अन्य लोग इसे इस प्रकार कहते हैं। जब व्यक्ति इन्द्रियों को पूरी तरह से वश में किये रहता है तो वह जाग्रत अवस्था है जब मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त सक्रिय रहते हैं तो यह स्वप्न है। जब सभी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ आत्मा में समा जायें तो यह सुषुप्तावस्था है। चौथी (तुरीय) अवस्था इन सबसे अलग है। महत्तम शिव इस चतुर्थ से भी परे और परम कारण हैं।।६५-७१।। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था के बाद हे ब्राह्मणो! अब मैं आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक का बखान करता हूँ। बुद्धिमानों को यह ध्यान रखना चाहिये कि यह सब मैं ही हूँ। हे श्रेष्ठ मुनियों! पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन, बुद्धि, अहंकार ये चौदह आध्यात्मिक (वस्तुएँ) हैं। हे श्रेष्ठ मुनियों! जो कुछ भी देखने योग्य, सुनने योग्य, सूँधने योग्य, स्वाद लेने योग्य, स्पर्श योग्य, चिन्तन योग्य, जानने योग्य, गर्व करने योग्य, इच्छा करने योग्य, बोलने योग्य, जहाँ चाहे जा सके, जिसे खाली किया जा सके वह सब आधिभौतिक है। सूर्य, दिशाएँ,

राज्ञी सुदर्शना चैव जिता सौम्या यथाक्रमम्।
मोघा रुद्रामृता सत्या मध्यमा च द्विजोत्तमाः॥८०॥
नाडी राशिशुका चैव असुरा चैव कृत्तिका। भास्वती नाडयश्चैताश्चतुर्दश निबंधनाः॥८१॥
वायवो नाडिमध्यस्था वाहकाश्च चतुर्दश। प्राणो व्यानस्त्वपानश्च उदानश्च समानकः॥८२॥
वैरंभश्च तथा मुख्यो ह्यंतर्यामः प्रभंजनः। कूर्मकश्च तथा श्येनः श्वेतः कृष्णस्तथानिलः॥८३॥
नाग इत्येव कथिता वायवश्च चतुर्दश। यश्चक्षुष्वथ द्रष्टव्ये तथादित्ये च सुव्रताः॥८४॥
नाड्यां प्राणे च विज्ञाने त्वानंदे च यथाक्रमम्। हृद्याकाशे य एतस्मिन्सर्वस्मिन्नंतरे परः॥८५॥
आत्मा एकश्च चरति तमुपासीत मां प्रभम्। अजरं तमनंतं च अशोकममृतं ध्रुवम्॥८६॥
चतुर्दशविधेष्वेव संचरत्येक एव सः। लीयंते तानि तत्रैव यदन्यं नास्ति वै द्विजाः॥८७॥
एक एव हि सर्वज्ञः सर्वेशस्त्वेक एव सः। एष सर्वाधिपो देवस्त्वंतर्यामी महाद्युतिः॥८८॥
उपास्यमानः सर्वस्य सर्वसौख्यः सनातनः। उपास्यंति न चैवेह सर्वसौख्यं द्विजोत्तमाः॥८९॥
उपास्यमानो वेदैश्च शास्त्रैर्नानाविधैरपि। न वैष वेदशास्त्राणि सर्वज्ञो यास्यति प्रभुः॥९०॥
अस्यैवान्नमिदं सर्वं न सोन्नं भवति स्वयम्। स्वात्मना रक्षितं चाद्यादन्नभूतं न कुत्रचित्॥९१॥
सर्वत्र प्राणिनामन्नं प्राणिनां ग्रंथिरस्म्यहम्। प्रशास्ता नयनश्चैव पंचात्मा स विभागशः॥९२॥
अन्नमयोसौ भूतात्मा चाद्यते ह्यन्नमुच्यते। प्राणमयश्चेंद्रियात्मा संकल्पात्मा मनोमयः॥९३॥

पृथ्वी, वरुण (जल), वायु, ब्रह्मा, रुद्र, क्षेत्र, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, चन्द्र, मित्र और प्रजापति आधिदैविक हैं।।७२-७९।। राज्ञी, सुदर्शना, जिता, सौम्या, मोघा, रुद्रा, अमृता, सत्या, मध्यमा, नाड़ी, राशिशुका, असुरा, कृत्तिका और भास्वती ये चौदह नाड़ियाँ हैं।।८०-८१।। नाड़ी के मध्य में चौदह वाहक वायु होते हैं। प्राण, व्यान, अपान, उदान, समान वैरंभ ये मुख्य होते है तथा (अन्य) अन्तर्याम, प्रभञ्जन, कूर्मक, श्येन, श्वेत, कृष्ण तथा अनिल और नाग होते हैं। मैं आत्मा के रूप में सबमें विद्यमान हूँ। अतः भक्त को मेरी आराधना करनी चाहिये। हे सुव्रतो! मैं आँखों में और द्रष्टव्य वस्तुओं में, नाड़ी में, प्राण में, विज्ञान में, आनन्द में, हृदय में और आकाश में और इन सबमें आत्मा के रूप में विद्यमान हूँ। यह (आत्मा) अजर, अमर, अनन्त, शोकरहित तथा अटल है। यह चौदहों प्रकार के द्रव्यों में एकमात्र संचरणशील है। हे ब्राह्मणों! ये सभी उसमें ऐसे लीन हो जाते हैं जैसे कभी थे ही नहीं।।८२-८७।। सभी (वस्तुओं) का स्वामी एक ही है। वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, अन्तर्यामी और महान् ज्योतियुक्त है।।८८।। हे ब्राह्मणों! वह सनातन उपासना किये जाने पर सभी सुख प्रदान करता है। जो उसकी उपासना नहीं करता वह सुख नहीं प्राप्त कर सकता।।८९।। सभी वेद और शास्त्र विविध प्रकार से उसकी उपासना करते हैं किन्तु यह सर्वज्ञ उनके पास नहीं जाता।।९०।। यह सब कुछ उसका अन्न है। वह स्वयं कभी अन्न नहीं बनता। कहीं भी कोई स्वयं का रक्षित अन्न नहीं खाता।।९१।। मैं ही सभी प्राणियों के द्वारा ग्रहण किया जाने वाला अन्न हूँ। मैं प्राणियों की गाँठ हूँ। मैं ही सभी कुछ पैदा करता हूँ। मैं ही अनेक भागों में पंचात्मा हूँ।।९२।। मैं ही अन्नमय आत्मा हूँ। जो ग्रहण किया जाता है वह अन्न है। मैं ही इन्द्रियों का प्राणमय आत्मा

कालात्मा सोम एवेह विज्ञानमय उच्यते। सदानंदमयो भूत्वा महेशः परमेश्वरः॥९४॥
सोहमेवं जगत्सर्वं मय्येव सकलं स्थितम्। परतंत्रं स्वतंत्रेपि तदभावाद्विचारतः॥९५॥
एकत्वमपि नास्त्येव द्वैतं तत्र कुतस्त्वहो। एवं नास्त्यथ मर्त्यं च कुतोऽमृतमजोद्भवः॥९६॥
नांतःप्रज्ञो बहिःप्रज्ञो न चोभयगतस्तथा। न प्रज्ञानघनस्त्वेवं न प्राज्ञो ज्ञानपूर्वकः॥९७॥
विदितं नास्ति वेद्यं च निर्वाणं परमार्थतः। निर्वाणं चैव कैवल्यं निःश्रयेसमनामयम्॥९८॥
अमृतं चाक्षरं ब्रह्म परमात्मा परापरम्। निर्विकल्पं निराभासं ज्ञानं पर्यायवाचकम्॥९९॥
प्रसन्नं च यदेकाग्रं तदा ज्ञानमिति स्मृतम्। अज्ञानमितरत्सर्वं नात्र कार्या विचारणा॥१००॥
इत्थं प्रसन्नं विज्ञानं गुरुसंपर्कजं ध्रुवम्। रागद्वेषानृतक्रोधं कामतृष्णादिभिः सदा॥१०१॥
अपरामृष्टमद्यैव विज्ञेयं मुक्तिदं त्विदम्। अज्ञानमलपूर्वत्वात्पुरुषो मलिनः स्मृतः॥१०२॥
तत्क्षयाद्धि भवेन्मुक्तिर्नान्यथा जन्मकोटिभिः। ज्ञानमेकं विना नास्ति पुण्यपापपरिक्षयः॥१०३॥

ज्ञानमेवाभ्यसेत्तस्मान्मुक्त्यर्थं ब्रह्मवित्तमाः।
ज्ञानाभ्यासाद्धि वै पुंसां बुद्धिर्भवति निर्मला॥१०४॥

तस्मात्सदाभ्यसेज्ज्ञानं तन्निष्ठस्तत्परायणः। ज्ञानेनैकेन तृप्तस्य त्यक्तसंगस्य योगिनः॥१०५॥

कर्तव्यं नास्ति विप्रेन्द्रा अस्ति चेत्तत्त्वविन्न च।
इह लोके परे चापि कर्तव्यं नास्ति तस्य वै॥१०६॥

हूँ। मैं ही मनोमय संकल्पात्मा हूँ।।९३।। सोम के रूप में विज्ञानमय कालात्मा हूँ। आनन्दमय मैं महेश परमेश्वर हूँ।।९४।। इस प्रकार मैं ही समस्त ब्रह्माण्ड हूँ। सब-कुछ मुझमें स्थित है। मैं स्वतन्त्र हूँ किन्तु सब-कुछ मेरे अधीन है। विचार करने पर यह जाना जा सकता है।।९५।। यहाँ तक कि विशिष्ट गुण के रूप में एकत्व भी नहीं है तब द्वैत कहाँ से होगा। इसी प्रकार कोई मर्त्य प्राणी नहीं है। अजन्में से अमर कैसे जन्म लेगा?।।९६।। वह न तो अन्तः प्रज्ञ है न ही बहिःप्रज्ञ, न ही दोनों, न ही वह प्रज्ञानघन है। न प्राज्ञ है न अज्ञानपूर्वक (अज्ञानी) है।।९७।। ब्रह्म न तो विदित है न जानने योग्य है। वह वास्तव में निर्वाण, निःश्रेयस, कैवल्य और अनामय (रोग रहित) है। वह अमृत, अक्षर (क्षरण रहित) परमात्मा महान से महत्तर, निर्विकल्प (विकल्प के बिना) निराभास (जिसका आभास न हो) ज्ञान का पर्यायवाची है।।९८-९९।। जब यह प्रसन्न और एकाग्र होता है तो यह ज्ञान के रूप में होता है। इसके अतिरिक्त सब अज्ञान है। इसमें कोई सन्देह नहीं।।१००।। पूर्ण ज्ञान निश्चित ही गुरु के सम्पर्क से पैदा होता है। यह राग, द्वेष, झूठ क्रोध, काम, तृष्णा आदि से रहित होता है। यह मुक्ति प्रदान करता है। मनुष्य अज्ञान से अशुद्ध होता है। मुक्ति हमेशा तभी मिलती है जब अशुद्धि दूर हो अन्यथा नहीं। करोड़ जन्म लेने पर भी नहीं। बिना ज्ञान के पाप और पुण्य का क्षय नहीं होता। हे श्रेष्ठ ब्रह्मवादियों! मुक्ति के साधन के रूप में ज्ञान की ही साधना करो। ज्ञान की साधना से ही मनुष्य की बुद्धि निर्मल होती है।।१०१-१०४।। अतः प्रत्येक व्यक्ति को मुक्ति के मार्ग के रूप में ज्ञान की ही साधना करनी चाहिये। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! हे योगियों! जो ज्ञान से सन्तुष्ट हो उसका और कोई कर्त्तव्य नहीं है। यदि है तो वह तत्त्वज्ञानी नहीं है। न तो इस लोक में न

जीवन्मुक्तो यतस्तस्माद्ब्रह्मवित्परमार्थतः।
ज्ञानाभ्यासरतो नित्यं ज्ञानतत्त्वार्थवित्स्वयम्॥१०७॥
कर्तव्याभ्यासमुत्सृज्य ज्ञानमेवाधिगच्छति।
वर्णाश्रमाभिमानी यस्त्यक्तक्रोधी द्विजोत्तमाः॥१०८॥
अन्यत्र रमते मूढः सोऽज्ञानी नात्र संशयः। संसारहेतुरज्ञानं संसारस्तनुसंग्रहः॥१०९॥
मोक्षहेतुस्तथा ज्ञानं मुक्तः स्वात्मन्यवस्थितः।
अज्ञाने सति विप्रेंद्राः क्रोधाद्या नात्र संशयः॥११०॥
क्रोधो हर्षस्तथा लोभो मोहो दंभो द्विजोत्तमाः। धर्माधर्मौ हि तेषां च तद्वशात्तनुसंग्रहः॥१११॥
शरीरे सति वै क्लेशः सोविद्यां संत्यजेद्बुधः।
अविद्यां विद्यया हित्वा स्थितस्यैव च योगिनः॥११२॥
क्रोधाद्या नाशमायांति धर्माधर्मौ च वै द्विजाः।
तत्क्षयाच्च शरीरेण न पुनः संप्रयुज्यते॥११३॥
स एव मुक्तः संसाराद्दुःखत्रयविवर्जितः।
एवं ज्ञानं विना नास्ति ध्यानं ध्यातुर्द्विजर्षभाः॥११४॥
ज्ञानं गुरोर्हि संपर्कान्न वाचा परमार्थतः।
चतुर्व्यूहमिति ज्ञात्वा ध्याता ध्यानं समभ्यसेत्॥११५॥
सहजागंतुकं पापमस्थिवागुद्भवं तथा। ज्ञानाग्निर्दहते क्षिप्रंशुष्कें धनमिवानलः॥११६॥

ही अन्य लोक में उसका कोई कर्त्तव्य है क्योंकि वह मुक्त आत्मा है। अतः ब्रह्मज्ञानी परमार्थ का ज्ञाता होता है और निरन्तर ज्ञान की साधना में लगा रहता है। वह अन्य कर्त्तव्यों को छोड़कर ज्ञान की साधना में रमता है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! जो वर्णाश्रम (व्यवस्था) की स्थिति (ब्राह्मण क्षत्रिय आदि होने से) पर गर्व करता है और अन्य वस्तुओं में सुख पाता है वह निश्चित ही भ्रमित और अज्ञानी है, भले ही उसने क्रोध का त्याग कर दिया हो। अज्ञान ही सांसारिक अस्तित्व का कारण है। शरीर को धारण करना ही संसार है।।१०५-१०९।। ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। मुक्त व्यक्ति अपने में ही व्यवस्थित होता है। हे ब्राह्मणों! इसमें सन्देह नहीं कि क्रोध आदि का मूल अज्ञान ही है। क्रोध, हर्ष, लोभ, मोह, दंभ, धर्म, अधर्म इन सबसे शरीर धारण करना पड़ता है।।११०-१११।। शरीर से ही क्लेश होता है। इसलिये बुद्धिमान व्यक्ति को अविद्या (अज्ञान, मोह आदि) का त्याग करना चाहिये। योगी जब विद्या से अविद्या का त्याग करते हैं तभी क्रोध आदि तथा धर्म और अधर्म का नाश होता है। हे ब्राह्मणों! इनका नाश होने पर ही आत्मा का शरीर से संयोग नहीं होता। वह सांसारिक अस्तित्व से मुक्त हो जाता है और तीनों तरह के तापों (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) से रहित हो जाता है। हे ब्राह्मणों! ज्ञान के बिना साधक ध्यान नहीं लगा सकता।।११२-११४।। ज्ञान गुरु से सम्पर्क करने से ही मिलता है मात्र शब्दों से नहीं। इस प्रकार चतुर्व्यह (तैजस, विश्व, प्रज्ञा और तुरीय) को जानकर साधक को ध्यान करना चाहिये।।११५।। जैसे अग्नि सूखे ईंधन को शीघ्र जला देती है वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सभी पापों को चाहे वे

ज्ञानात्परतरं नास्ति सर्वपापविनाशनम्। अभ्यसेच्च सदा ज्ञानं सर्वसंगविवर्जितः॥११७॥
ज्ञानिनः सर्वपापानि जीर्यंते नात्र संशयः। क्रीडन्नपि न लिप्येत पापैर्नानाविधैरपि॥११८॥
ज्ञानं यथा तथा ध्यानं तस्माद्ध्यानं समभ्यसेत्। ध्यानं निर्विषयं प्रोक्तमादौ सविषयं तथा॥११९॥

षट्प्रकारं समभ्यस्य चतुःषट्दशभिस्तथा।
तथा द्वादशधा चैव पुनः षोडशधा क्रमात्॥१२०॥

द्विधाभ्यस्य च योगींद्रो मुच्यते नात्र संशयः। शुद्धजांबूनदाकारं विधूमांगारसन्निभम्॥१२१॥
पीतं रक्तं सितं विद्युत्कोटिकोटिसमप्रभम्। अथवा ब्रह्मरंध्रस्थं चित्तं कृत्वा प्रयत्नतः॥१२२॥
न सितं वासितं पीतं न स्मरेद्ब्रह्मविद्भवेत्। अहिंसकः सत्यवादी अस्तेयी सर्वयत्नतः॥१२३॥
परिग्रहविनिर्मुक्तो ब्रह्मचारी दृढव्रतः। संतुष्टः शौचसंपन्नः स्वाध्यायनिरतः सदा॥१२४॥

मद्भक्तश्चाभ्यसेद्ध्यानं गुरुसंपर्कजं ध्रुवम्।
न बुध्यति तथा ध्याता स्थाप्य चित्तं द्विजोत्तमाः॥१२५॥
न चाभिमन्यते योगी न पश्यति समंततः।
न घ्राति न शृणोत्येव लीनः स्वात्मनि यः स्वयम्॥१२६॥

न च स्पर्शं विजानाति स वै समरसः स्मृतः। पार्थिवे पटले ब्रह्मा वारितत्त्वे हरिः स्वयम्॥१२७॥
वाह्नेये कालरुद्राख्यो वायुतत्त्वे महेश्वरः। सुषिरे स शिवः साक्षात्क्रमादेवं विचिंतयेत्॥१२८॥

सहज (जन्मजात) हों, आगन्तुक हो, शारीरिक हों अथवा वाणी सम्बन्धी हों उनको जला देती है।।११६।। पाप के नाश के लिये ज्ञान से महान् कुछ भी नहीं है। अतः संसार से राग छोड़कर ज्ञान की साधना करनी चाहिये।।११७।। इसमें कोई सन्देह नहीं, ज्ञानी व्यक्ति के पाप नष्ट हो जाते हैं, चाहे वह आमोद-प्रमोद में ही लिप्त रहे वह पापों से अप्रभावित रहता है।।११८।। जो बात ज्ञान के लिये है, वही ध्यान के लिये भी (सही) है। अतः व्यक्ति को ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। प्रारम्भ में सविषय और निर्विषय ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। तदनन्तर क्रम से चार, छह, दस, बारह, चौदह और सोलह (समय की इकाई) की अवधि में छः प्रकार से करना चाहिये।।११९-१२०।। प्रारम्भ में साधक को शुद्ध सोने की चमक के आकार में या निर्धूम (बिना धुआँ के) अंगारे की चमक में या पीले, लाल या कोटि-कोटि विद्युत की चमक की तरह सफेद आकार में ध्यान केन्द्रित करना चाहिए अथवा साधक को अपना मन ब्रह्म रंध्र में स्थिर करना चाहिये। उसे याद रखना चाहिये कि वह (जिसका ध्यान किया जा रहा है) न श्वेत है, न श्याम न पीत। तभी वह ब्रह्मविद् बनेगा। उसे यत्नपूर्वक अहिंसक, सत्यवादी, अस्तेयी (चोरी न करने वाला), अपरिग्रही, ब्रह्मचारी, व्रती, शुद्ध, सन्तुष्ट और वेदाध्यायी होना चाहिये। वह मुझको समर्पित होकर गुरु के निर्देशानुसार ध्यान लगाये।।१२१-१२५अ।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! मुझमें मन स्थिर करके योगी को किसी भी वस्तु से एकाकार नहीं होना चाहिये। वह अपने चारों ओर नहीं देखता है, न सूँघता है न सुनता है। वह अपने को पूरी तरह से आत्मा में लीन कर देता है। वह किसी भी वस्तु का स्पर्श नहीं महसूस करता है।।१२५ब-१२७अ।। उसे क्रम से पृथ्वी में ब्रह्मा, वारि तत्त्व में स्वयं विष्णु, अग्नि

क्षितौ शर्वः स्मृतो देवो ह्यपां भव इति स्मृतः। रुद्र एव तथा वह्नौ उग्रो वायौ व्यवस्थितः॥१२९॥
भीमः सुषिरनाकेऽसौ भास्करे मंडले स्थितः। ईशानः सोमबिंबे च महादेव इति स्मृतः॥१३०॥
पुंसां पशुपतिर्देवश्चाष्टधाहं व्यवस्थितः। काठिन्यं यत्तनौ सर्वं पार्थिवं परिगीयते॥१३१॥
आप्यं द्रवमिति प्रोक्तं वर्णाख्यो वह्निरुच्यते। यत्संचरति तद्वायुः सुषिरं यद्द्विजोत्तमाः॥१३२॥

तदाकाशं च विज्ञानं शब्दजं व्योमसंभवम्।
तथैव विप्रा विज्ञानं स्पर्शाख्यं वायुसंभवम्॥१३३॥
रूपं वाह्नेयमित्युक्तमाप्यं रसमयं द्विजाः।
गंधाख्यं पार्थिवं भूयाश्चिंतयेद्भास्करं क्रमात्॥१३४॥

नेत्रे च दक्षिणे वामे सोमं हृदि विभुं द्विजाः। आजानु पृथिवीतत्त्वमानाभेर्वारिमंडलम्॥१३५॥

आकंठं वह्नितत्त्वं स्याल्ललाटांतं द्विजोत्तमाः।
वायव्यं वै ललाटाद्यं व्योमाख्यं वा शिखाग्रकम्॥१३६॥
हंसाख्यं च ततो ब्रह्म व्योम्नश्चोर्ध्वं ततः परम्।
व्योमाख्यो व्योममध्यस्थो ह्ययं प्राथमिकः स्मरेत्॥१३७॥
न जीवः प्रकृतिः सत्त्वं रजश्चाथ तमः पुनः।
महांस्तथाभिमानश्च तन्मात्राणींद्रियाणि च॥१३८॥
व्योमादीनि च भूतानि नैवेह परमार्थतः।
व्याप्य तिष्ठद्यतो विश्वं स्थाणुरित्यभिधीयते॥१३९॥

उदेति सूर्यो भीतश्च पवते वात एव च। द्योतते चंद्रमा वह्निर्ज्वलत्यापो वहंति च॥१४०॥

में कालरुद्र, वायु में महेश्वर और आकाश में शिव को बिचारना चाहिये। मैं पशुपति पृथ्वी में शर्व, जल में भव, अग्नि में रुद्र, वायु में उग्र, आकाश में भीम, सूर्य के मण्डल में ईशान और चन्द्र बिम्ब में महादेव इन आठ रूपों में स्थित हूँ।।१२७ब-१३१अ।। प्रत्येक ठोस वस्तु पृथ्वी से सम्बन्धित है। प्रत्येक द्रव वस्तु जल से, रंग अग्नि से, चलायमान वस्तु वायु से और हे ब्राह्मणो! छिद्र आकाश से सम्बन्धित है। हे ब्राह्मणों! ध्वनि से उपजा ज्ञान आकाश से पैदा हुआ है। स्पर्श से प्राप्त ज्ञान वायु से उत्पन्न हुआ है, रूप अग्नि से और हे ब्राह्मणों! स्वाद से उपजा ज्ञान जल से उत्पन्न हुआ है और गन्ध का ज्ञान, पृथ्वी से उत्पन्न हुआ है।। पुनः उसे क्रम से सूर्य का दाँयी आँख से, बाँयी आँख से चन्द्रमा का, हृदय में विभु का घुटने तक, पृथ्वी तत्त्व का नाभि में, जलमण्डल का कंठ तक, अग्नि तत्त्व का और मस्तक तक वायु तत्त्व का ध्यान करना चाहिये। मस्तक से शिखा तक का भाग आकाश कहलाता है। आकाश से और उससे परे ब्रह्म है जो हंस कहलाता है। प्रथम वस्तु व्योम आकाश के मध्य में स्थित है।।१३१ब-१३७ब।। जीव, प्रकृति तत्त्व, रज, तम, बुद्धि, अहंकार, सूक्ष्म तत्त्व (तन्मात्राएँ) इन्द्रियाँ तथा व्योमादि पंचभूत ये यथार्थ नहीं है क्योंकि सारे विश्व में वह व्याप्त हैं। उसे स्थाणु कहते हैं।।१३८-१३९।। उसी की आज्ञा से भयभीत होकर सूर्य निकलता है, पवन चलता है और शुद्ध करता है। चन्द्रमा

दधाति भूमिराकाशमवकाशं ददाति च। तदाज्ञया ततं सर्वं तस्माद्वै चिंतयोद्द्विजाः॥१४१॥
तेनैवाधिष्ठितं तस्मादेतत्सर्वं द्विजोत्तमाः। सर्वरूपमयः शर्व इति मत्वा स्मेद्भवम्॥१४२॥
संसारविषतप्तानां ज्ञानध्यानामृतेन वै।
प्रतीकारः समाख्यातो नान्यथा द्विजसत्तमाः॥१४३॥
ज्ञानं धर्मोद्भवं साक्षाज्ज्ञानाद्वैराग्यसंभवः। वैराग्यात्परमं ज्ञानं परमार्थप्रकाशकम्॥१४४॥
ज्ञानवैराग्ययुक्तस्य योगसिद्धिर्द्विजोत्तमाः।
योगसिद्ध्या विमुक्तिः स्यात्सत्त्वनिष्ठस्य नान्यथा॥१४५॥
तमोविद्यापदच्छन्नं चित्रं यत्पदमव्ययम्।
सत्त्वशक्तिं समास्थाय शिवमभ्यर्चयेद्द्विजाः॥१४६॥
यः सत्त्वनिष्ठो मद्भक्तो मदर्चनपरायणः। सर्वतोधर्मनिष्ठश्च सदोत्साही समाहितः॥१४७॥
सर्वद्वंद्वसहो धीरः सर्वभूतहिते रतः।
ऋजुस्वभावः सततं स्वस्थचित्तो मृदुः सदा॥१४८॥
अमानी बुद्धिमाञ्छांतस्त्यक्तस्पर्धो द्विजोत्तमाः। सदा मुमुक्षुर्धर्मज्ञः स्वात्मलक्षणलक्षणः॥१४९॥
ऋणत्रयविनिर्मुक्तः पूर्वजन्मनि पुण्यभाक्।
जरायुक्तो द्विजो भूत्वा श्रद्धया च गुरोः क्रमात्॥१५०॥
अन्यथा वापि शुश्रूषां कृत्वा कृत्रिमवर्जितः।
स्वर्गलोकमनुप्राप्य भुक्त्वा भोगाननुक्रमात्॥१५१॥

चमकता है। अग्नि जलती है, जल बहता है, भूमि धारण करती है आकाश स्थान देता है। सब-कुछ उसकी आज्ञा से है। इसलिये हे ब्राह्मणो! उसी का चिन्तन करना चाहिये। वह सभी में अधिष्ठित है। सर्वरूपमय शर्व मानकर भव का चिन्तन करना चाहिये।।१४०-१४२।। संसार विष से तप्त लोगों के लिये एक ही प्रतीकार है अमृत के समान ज्ञान और ध्यान। हे ब्राह्मणों! अन्य कोई समाधान नहीं है।।१४३।। ज्ञान धर्म से उत्पन्न होता है। वैराग्य ज्ञान से उत्पन्न होता है। वैराग्य से परम ज्ञान उत्पन्न होता है जो कि परमार्थ को प्रकट करने वाला होता है।।१४४।। हे उत्तम ब्राह्मणों। ज्ञान और वैराग्य से युक्त व्यक्ति ही योगिक सिद्धि प्राप्त करता है। सत्त्व गुण का पालन करने वाले की योगिक सिद्धि से मुक्ति होती है। अन्यथा नहीं।।१४५।। यह आश्चर्य है कि उसका अपरिवर्तनीय क्षेत्र तम और अविद्या शब्दों से ढका है। हे ब्राह्मणों सत्त्व-शक्ति का आश्रय लेकर शिव की आराधना करनी चाहिये।।१४६।। मेरा भक्त सत्त्वगुण का आश्रय लेता है। वह मेरी आराधना में लीन रहता है। वह सर्वथा धर्मनिष्ठ, उत्साही और एकाग्रचित्त होता है। वह सभी द्वन्द्वों का सहने वाला, धैर्यवान और सभी प्राणियों के हित में लगा होता है। वह सदा ऋजु (सज्जन) स्वभाव से युक्त और स्वस्थचित्त और नरम स्वभाव का होता है। वह अभिमानी (घमण्डी एवं उद्दण्ड) नहीं होता। हे ब्राह्मणों! वह बुद्धिमान, शान्त और प्रतिद्वन्द्विता से रहित होता है। वह सर्वदा मुक्ति का इच्छुक और धर्म को जानने वाला तथा आत्मा के लक्षणों का जानने वाला होता है। वह पूर्व

आसाद्य भारतं वर्षं ब्रह्मविज्जायते द्विजाः।
संपर्काज्ज्ञानमासाद्य ज्ञानिनो योगाविद्भवेत्॥१५२॥
क्रमोयं मलपूर्णस्य ज्ञानप्राप्तेर्द्विजोत्तमाः। तस्मादनेन मार्गेण त्यक्तसंगो दृढव्रतः॥१५३॥
संसारकालकूटाख्यान्मुच्यते मुनिपुंगवाः। एवं संक्षेपतः प्रोक्तं मया युष्माकमच्युतम्॥१५४॥
ज्ञानस्यैवेह माहात्म्यं प्रसंगादिह शोभनम्। एवं पाशुपतं योगं कथितं त्वीश्वरेण तु॥१५५॥
न देयं यस्य कस्यापि शिवोक्तं मुनिपुंगवाः।
दातव्यं योगिने नित्यं भस्मनिष्ठाय सुप्रियम्॥१५६॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि संसारशमनं नरः।
स याति ब्रह्मसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा॥१५७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे संसारविषकथनं नाम षडशीतितमोध्यायः॥८६॥

जन्म के तीन ऋणों से मुक्त और पुण्यवान होता है। वह बृद्ध होने पर अथवा अन्यथा भी गुरु की निष्ठा से और पाखण्ड रहित होकर सेवा करता है। वह स्वर्ग प्राप्त करके क्रम से भोगों को भोगकर भारतवर्ष में ब्रह्मविद् के रूप में जन्म लेता है।।१४७-१५२अ।। ज्ञान से सम्पर्क करके ज्ञान प्राप्त करके योगी बनना चाहिये। हे उत्तम ब्राह्मणो! इस क्रम से अशुद्धि से पूर्ण व्यक्ति भी ज्ञानवान हो जाता है। अतः हे श्रेष्ठ मुनियों! उसे इस पथ पर दृढ़व्रती होना चाहिये। सांसारिक राग का त्याग करके वह सांसारिक कालकूट से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार मैंने संक्षेप में तुम लोगों से प्रसंग सहित भव्य-ज्ञान के माहात्म्य को कहा। हे श्रेष्ठ मुनियों! शिव द्वारा कहे गये पाशुपत योग को हर किसी को नहीं बताना चाहिये। भस्म में लिपटे योगी को ही प्रसन्नतापूर्वक यह योग बताना चाहिये। संसार शमन यह अध्याय जो पढ़ता या सुनता है वह निश्चित ही ब्रह्म से सायुज्य प्राप्त करता है। इसमें विचार करने की कोई बात नहीं है।।१५२ब-१५७।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में संसार विष कथन नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त॥८६॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

मुनिमोहशामनम्

ऋषय ऊचुः

निशम्य ते महाप्राज्ञाः कुमाराद्याः पिनाकिनम्।
प्रोचुः प्रणम्य ते भीताः प्रसन्नं परमेश्वरम्॥१॥

एवं चेदनया देव्या हैमवत्या महेश्वर। क्रीडसे विविधैर्भोगैः कथं वक्तुमिहार्हसि॥२॥

सूत उवाच

एवमुक्तः प्रहस्येशः पिनाकी नीललोहितः। प्राह तामंबिकां प्रेक्ष्य प्रणिपत्य स्थितान् द्विजान्॥३॥
बंधमोक्षौ न चैवेह मम स्वेच्छाशरीरिणः। अकर्ताज्ञः पशुर्जीवो विभुर्भोक्ता ह्यणुः पुमान्॥४॥

मायी च मायया बद्धः कर्मभिर्युज्यते तु सः।
ज्ञानं ध्यानं च बंधश्च मोक्षो नास्त्यात्मनो द्विजाः॥५॥

यदैवं मयि विद्वान् यस्तस्यापि न च सर्वतः। एषा विद्या ह्यहं वेद्यः प्रज्ञैषा च श्रुतिः स्मृतिः॥६॥
धृतिरेषा मया निष्ठा ज्ञानशक्तिः क्रिया तथा। इच्छाख्या च तथा ह्याज्ञा द्वे विद्ये न च संशयः॥७॥
न ह्येषा प्रकृतिर्जैवी विकृतिश्च विचारतः। विकारो नैव मायैषा सदसद्व्यक्तिवर्जिता॥८॥

सत्तासीवाँ अध्याय

मुनि मोह शामन

ऋषिगण बोले

ऐसा सुनकर वे महामति! सनत् आदि मुनि जो भयभीत हो गये थे उन्होंने भगवान पिनाकधारी परमेश्वर को प्रणाम किया और उनके प्रसन्न होने पर कहा, "यदि ऐसा है तो हे महेश्वर! आप कैसे भगवती हैमवती के साथ विविध भोगों के साथ लीला करते हैं? आपके लिये ऐसा कहना कैसे उपयुक्त है?"।।१-२।।

सूत बोले

इस प्रकार से कहे जाने पर भगवान पिनाकधारी नीललोहित ने मुस्कुराकर अम्बिका को देखा और समीपस्थ ब्राह्मणों से कहा।।३।। मैं इच्छानुसार शरीर धारण कर सकता हूँ। मेरा न बन्धन है न मोक्ष। जो अकर्ता है वह अज्ञानी है। जीव पशु (बन्धनयुक्त) है। सर्वव्यापी विभु भोक्ता है। मनुष्य अणु मात्र है। जो माया से बँधा है और भ्रमित है। वह कर्म में लिप्त है। हे ब्राह्मणों! आत्मा का न ज्ञान है न ध्यान, न बन्धन है और न ही मोक्ष है।।४-५।। जो मुझमें यह अनुभव कर लेता है वह भी इनमें से कुछ नहीं होता। ये हैमवती विद्या हैं मै वेद्य (जानने योग्य) हूँ। ये प्रज्ञा (बुद्धि) है। ये श्रुति और स्मृति हैं। ये मेरे द्वारा स्थिर की गयी धृति (धैर्य) हैं। ये ज्ञान की शक्ति क्रिया और इच्छा हैं। ये आज्ञा हैं। निस्सन्देह हम दोनों विद्याएँ हैं।।६-७।। यह प्रकृति जीव नहीं है। विचार

पुरा ममाज्ञा मद्वक्त्रात्समुत्पन्ना सनातनी। पंचवक्त्रा महाभागा जगतामभयप्रदा॥९॥
तामाज्ञां संप्रविश्याहं चिंतयन् जगतां हितम्। सप्तविंशत्प्रकारेण सर्वं व्याप्यानया शिवः॥१०॥
तदाप्रभृति वै मोक्षप्रवृत्तिर्द्विजसत्तमाः।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा तदापश्यद्भवानीं परमेश्वरः॥११॥
भवानी च तमालोक्य मायामहरदव्यया। ते मायामलनिर्मुक्ता मुनयः प्रेक्ष्य पार्वतीम्॥१२॥
प्रीता बभूवुर्मुक्ताश्च तस्मादेषा परा गतिः। उमाशंकरयोर्भेदो नास्त्येव परमार्थतः॥१३॥
द्विधासौ रूपमास्थाय स्थित एव न संशयः। यदा विद्वानसंगः स्यादाज्ञया परमेष्ठिनः॥१४॥
तदा मुक्तिः क्षणादेव नान्यथा कर्मकोटिभिः। क्रमोऽविवक्षितो भूतविवृद्धः परमेष्ठिनः॥१५॥
प्रसादेन क्षणान्मुक्तिः प्रतिज्ञैषा न संशयः।
गर्भस्थो जायमानो वा बालो वा तरुणोपि वा॥१६॥
वृद्धो वा मुच्यते जंतुः प्रसादात्परमेष्ठिनः। अंडजश्चोद्भिजो वापि स्वदजो वापि मुच्यते॥१७॥
प्रसादाद्देव देवस्य नात्र कार्या विचारणा। एष एव जगन्नाथो बंधमोक्षकरः शिवः॥१८॥
भूर्भूवःस्वर्महश्चैव जनः साक्षात्तपः स्वयम्। सत्यलोकस्तथांडानां कोटिकोटिशतानि च॥१९॥
विग्रहं देवदेवस्य तथांडावरणाष्टकम्। सप्तद्वीपेषु सर्वेषु पर्वतेषु वनेषु च॥२०॥

करें तो यह विकृति भी नहीं है। यह माया है विकार नहीं। यह सत् और असत् से परे है।।८।। पूर्व में ये मेरी आज्ञा से मेरे मुख से निकलीं। ये पाँच मुखवाली शाश्वत देवी हैं।।९।। इस आज्ञा में प्रवेश करके मैं जगत् के कल्याण के विषय में सोचता हूँ। मैं शिव हूँ और इनके साथ सत्ताइस रूपों में सर्वत्र व्याप्त हूँ। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! तभी से मुक्ति का कार्य प्रारम्भ होता है।।१०-११।।

सूत बोले

ऐसा कहकर परमेश्वर ने भवानी को देखा। उनके देखने पर अपरिवर्तनीय भवानी ने माया को हटा दिया। माया के मल से छूटने पर उन मुनियों ने माँ भवानी को देखा और प्रसन्न होकर मुक्त हो गये। अतः वे परम गति हैं। वास्तव में उमा और शंकर जी के मध्य कोई अन्तर नहीं है।।१२-१३।। इसमें सन्देह नहीं कि वे दो रूप धारण करके स्थित हैं। जब परमेष्ठी की आज्ञा से विद्वान से सम्पर्क होता है तो एक क्षण में ही मुक्ति हो जाती है अन्यथा कोटि कोटि अनुष्ठानों से भी नहीं होती। यहाँ जीवों के लिये निर्धारित क्रम लागू नहीं होता। परमेष्ठी के प्रसाद से क्षण भर में ही मुक्ति हो जाती है। यह प्रभु की प्रतिज्ञा है इसमें सन्देह नहीं। परमेष्ठी के प्रसार से व्यक्ति मुक्त हो जाता है चाहे वह गर्भस्थ हो, या पैदा हो चुका हो या बालक हो, तरुण हो या वृद्ध। देवों के देव की कृपा से अण्डज (अण्डे से उत्पन्न), उद्भिज (वनस्पतियाँ) और स्वेदज (कीट आदि) भी मुक्त हो जाते हैं। इसमें विचार (सन्देह) नहीं करना चाहिये।।१४-१७।। वह शिव संसार के स्वामी तथा बन्धन और मोक्ष के कारण हैं। भूः, भुवः, स्वः, महः जनः तपः, सत्य लोक और असंख्य ब्रह्माण्ड आठ आवरणों से आवृत ये सब

समुद्रेषु च सर्वेषु वायुस्कंधेषु सर्वतः। तथान्येषु च लोकेषु वसंति च चराचराः॥२१॥
सर्वे भवांशजा नूनं गतिस्त्वेषां स एव वै। सर्वो रुद्रा नमस्तस्मै पुरुषाय महात्मने॥२२॥
विश्वं भूतं तथा जातं बहुधा रुद्र एव सः। रुद्राज्ञैषा स्थिता देवी ह्यनया मुक्तिरंबिका॥२३॥
इत्येवं खेचराः सिद्धा जजल्पुः प्रीतमानसाः।
यदाऽवलोक्य तान् सर्वान्प्रसादादनयांबिका॥२४॥
तदा तिष्ठंति सायुज्यं प्राप्तास्ते खेचराः प्रभोः॥२५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे मुनिमोहशमनं नाम
सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥८७॥

उन देवों के देव को शरीर हैं। सभी चराचर प्राणी जो सातों, द्वीपों, पर्वतों, महासागरों, वनों और हवा की परतों में रहते हैं वे सभी प्रभु के शरीर के भाग हैं। उन सबों के वही गति हैं।।१८-२२अ।। रुद्र ही सब-कुछ हैं। उस महात्मा पुरुष को प्रणाम है। यह विश्व और सभी जीव रुद्र से ही उत्पन्न हैं। देवी अम्बिका उनकी आज्ञा हैं। मुक्ति उन्हीं के माध्यम से मिलती है। ऐसा आकाशचारी सिद्धों ने प्रसन्न मन से घोषित किया। जब वे (शिव) अम्बिका के साथ बैठकर कृपापूर्वक उनको देखते हैं तो आकाशचारी प्रभु से सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं।।२२ब-२५।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में मुनि मोहशमन नामक
सत्तासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥८७॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

अणिमाद्यष्टसिद्धित्रिगुणसंसारप्राग्नौ होमादिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

केन योगेन वै सूत गुणप्राप्तिः सतामिह।
अणिमादिगुणोपेता भवंत्येवेह योगिनः। तत्सर्वं विस्तरात्सूत वक्तुमर्हसि सांप्रतम्॥१॥

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि योगं परमदुर्लभम्। पंचधा संस्मरेदादौ स्थाप्य चित्ते सनातनम्॥२॥
कल्पयेच्चासनं पद्मं सोमसूर्याग्निसंयुतम्। षड्विंशच्छक्तिसंयुक्तमष्टधा च द्विजोत्तमाः॥३॥
ततः षोडशधा चैव पुनर्द्वादशधा द्विजाः। स्मरेच्च तत्तथा मध्ये देव्या देवमुमापतिम्॥४॥
अष्टशक्तिसमायुक्तमष्टमूर्तिमजं प्रभुम्। ताभिश्चाष्टविधा रुद्राश्चतुःषष्टिविधाः पुनः॥५॥
शक्तयश्च तथा सर्वा गुणाष्टकसमन्विताः। एवं स्मरेत्क्रमेणैव लब्ध्वा ज्ञानमनुत्तमम्॥६॥
एवं पाशुपतं योगं मोक्षसिद्धिप्रदायकम्। तस्याणिमादयो विप्रा नान्यथा कर्मकोटिभिः॥७॥

अठासीवाँ अध्याय

अणिमा आदि अष्टसिद्धि त्रिगुण संसार पूर्व अग्निहोमादि का वर्णन

मुनिगण बोले

किस योग से सज्जनों को गुणों की प्राप्ति होती है? किन गुणों से योगी अणिमा आदि सिद्धियों से युक्त होता है। हे सूत! आपके लिये यह विस्तार से बताना उपयुक्त है।।१।।

सूत बोले

अब मैं परम दुर्लभ योग का बखान करूँगा। सबसे पहले उस सनातन के पाँच रूपों को मन में स्थापित करके स्मरण करना चाहिये।।२।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! मन में २६ शक्तियों से युक्त पहले कमल आसन में तत्पश्चात् चन्द्र, सूर्य और अग्नि के साथ कल्पना करनी चाहिये। तत्पश्चात् हे ब्राह्मणों! भक्त को मध्य में उमापति भगवान को पहले आठ प्रकार से फिर १६ प्रकार से और पुनः १२ प्रकार से स्मरण करना चाहिये।।३-४।। उस अष्टमूर्त्ति अजन्में प्रभु को पहले आठ शक्तियों से युक्त स्मरण, तत्पश्चात् आठ रुद्रों और ६४ प्रकार के रुद्रों का स्मरण करना चाहिये। इसी प्रकार ६४ शक्तियों का आठ गुणों सहित स्मरण करना चाहिये। उत्तम ज्ञान प्राप्त करके भक्त को क्रमशः इस प्रक्रिया को अपनाना चाहिये।।५-६।। पाशुपत योग मुक्ति प्रदान करने वाला है।

तत्राष्टगुणमैश्वर्यं योगिनां समुदाहृतम्। तत्सर्वं क्रमयोगेन ह्युच्यमानं निबोधत॥८॥
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च। प्राकाम्यं चैव सर्वत्र ईशित्वं चैव सर्वतः॥९॥
वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता। तच्चापि त्रिविधं ज्ञेयमैश्वर्यं सार्वकामिकम्॥१०॥
सावद्यं निरवद्यं च सूक्ष्मं चैव प्रवर्तते। सावद्यं नाम यत्तत्र पंचभूतात्मकं स्मृतम्॥११॥
इंद्रियाणि मनश्चैव अहंकारश्च यः स्मृतः। तत्र सूक्ष्मप्रवृत्तिस्तु पंचभूतात्मिका पुनः॥१२॥
इंद्रियाणि मनश्चित्तबुद्ध्यहंकारसंज्ञितम्। तथा सर्वमयं चैव आत्मस्था ख्यातिरेव च॥१३॥
संयोग एवं त्रिविधः सूक्ष्मेष्वेव प्रवर्तते। पुनरष्टगुणश्चापि सूक्ष्मेष्वेव विधीयते॥१४॥
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यथाह भगवान्प्रभुः। त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु यथास्य नियमः स्मृतः॥१५॥
अणिमाद्यं तथाव्यक्तं सर्वत्रैव प्रतिष्ठितम्। त्रैलोक्ये सर्वभूतानां दुष्प्राप्यं समुदाहृतम्॥१६॥
तत्तस्य भवति प्राप्यं प्रथमं योगिनां बलम्। लंघनं प्लवनं लोके रूपमस्य सदा भवेत्॥१७॥
शीघ्रत्वं सर्वभूतेषु द्वितीयं तु पदं स्मृतम्। त्रैलोक्ये सर्वभूतानां महिम्ना चैव वंदितम्॥१८॥
महित्वं चापि लोकेस्मिंस्तृतीयो योग उच्यते। त्रैलोक्ये सर्वभूतेषु यथेष्टगमनं स्मृतम्॥१९॥

प्राकामान् विषयान् भुंक्ते तथाप्रतिहतः क्वचित्।
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां सुखदुःखं प्रवर्तते॥२०॥

ईशो भवति सर्वत्र प्रविभागेन योगवित्। वश्यानि चास्य भूतानि त्रैलोक्ये सचराचरे॥२१॥

हे ब्राह्मणों! इस योग को करने वाला ही अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त करता है अन्यथा एक करोड़ यज्ञों से भी नहीं प्राप्त कर सकता। योगियों का ऐश्वर्य आठ गुणों (सिद्धियों) से युक्त कहा गया है। उनको उचित क्रम में सुनिये।।७-८।। ये (सिद्धियाँ) अणिमा (सूक्ष्मता), लघिमा (हल्कापन), महिमा (महानता), प्राप्ति (कुछ भी प्राप्त करने की क्षमता), प्राकाम्य (दुर्दम्य इच्छा), ईशित्व (सभी वस्तुओं पर स्वामिता), वशित्व (सबको वश में करना), कामावसायिता (सब-कुछ इच्छा पर घटित होता) है। इस ऐश्वर्य को हर कोई चाहता है। यह तीन प्रकार का होता है।।९-१०।। ये तीन प्रकार हैं—सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म। सावद्य पंचभूतात्मक है या सूक्ष्म इन्द्रियों, मन और अहंकार से सम्बन्धित है। इसकी भी पाँच प्रवृत्तियाँ होती हैं—इन्द्रियाँ, मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार। आत्मा इनके सम्पर्क में आता है। सूक्ष्म में तीन प्रकार के संयोग होते हैं। सूक्ष्म के भी आठ गुण बताये गये हैं। मैं उनके नियम के बारे में वही बताऊँगा जो कि प्रभु ने बताये हैं और जैसा कि तीन लोकों में प्राणियों में ज्ञात है।।११-१५।। अणिमा आदि स्वतः स्पष्ट है। इनकी सर्वत्र प्रतिष्ठा है और तीनों लोकों में प्राणियों के लिये दुर्लभ हैं।।१६।। प्रथम ऐश्वर्य प्राप्त करके भक्त-योगियों के बल को प्राप्त कर लेता है। इसके माध्यम से व्यक्ति ऐसा आकार धारण कर लेता है कि कहीं से भी पार हो जाय। दूसरी (अर्थात् लघिमा) से प्राणियों को शीघ्रता की प्राप्ति होती हैं। तीनों लोकों में सम्मान तीसरे (ऐश्वर्य) से मिलता है। अतः तीसरे योग को लोक में महिमा कहा जाता है। प्राप्ति तीनों लोकों में व्यक्ति को अपनी इच्छा और आनन्द मिलने के योग्य बनाती है।।१७-१९।। प्राकाम्य से भक्त अपने इच्छित विषयों का भोग करता है। कहीं पर बाधा से ही तीनों लोकों में सुख-दुःख होते हैं।।२०।। ईशित्व से योगी तीनों लोकों में सब जगह सभी अवस्था में स्वामी हो जाता है। वशित्व से तीनों लोकों

इच्छया तस्य रूपाणि भवंति न भवन्ति च। यत्र कामावसायित्वं त्रैलोक्ये सचराचरे॥२२॥
शब्दः स्पर्शो रसो गंधो रूपं चैव मन स्तथा। प्रवर्ततेऽस्य चेच्छातो न भवंति यथेच्छया॥२३॥
न जायते न म्रियते छिद्यते न च भिद्यते। न दह्यते न मुह्येत लीयते न च लिप्यते॥२४॥
न क्षीयते न क्षरति खिद्यते न कदाचन। क्रियते वा न सर्वत्र तथा विक्रीयते न च॥२५॥
अगंधरसरूपस्तु अस्पर्शः शब्दवर्जितः। अवर्णो ह्यस्वरश्चैव असवर्णस्तु कर्हिचित्॥२६॥
स भुंक्ते विषायांश्चैवविषयैर्न च युज्यते। अणुत्वात्तु परः सूक्ष्मः सूक्ष्मत्वादपवर्गिकः॥२७॥
व्यापकस्तवपवर्गाच्च व्यापकात्पुरुषः स्मृतः। पुरुषः सूक्ष्मभावात्तु ऐश्वर्ये परमे स्थितिः॥२८॥
गुणोत्तरमथैश्वर्ये सर्वतः सूक्ष्ममुच्यते। ऐश्वर्यं चाप्रतीघातं प्राप्य योगमनुत्तमम्॥२९॥
अपवर्गं ततो गच्छेत्सूक्ष्मं तत्परमं पदम्। एवं पाशुपतं योगं ज्ञातव्यं मुनिपुंगवाः॥३०॥
स्वर्गापवर्गफलदं शिवसायुज्यकारणम्। अथवा गतविज्ञानो रागात्कर्म समाचरेत्॥३१॥
राजसं तामसं वापि भुक्त्वा तत्रैव मुच्यते। तथा सुकृतकर्मा तु फलं स्वर्गे समश्नुते॥३२॥
तस्मात्स्थानात्पुनः श्रेष्ठो मानुष्यमुपपद्यते। तस्माद्ब्रह्म परं सौख्यं ब्रह्म शाश्वतमुत्तमम्॥३३॥
ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव हि परं सुखम्। परिश्रमो हि यज्ञानां महतार्थेन वर्तते॥३४॥
भूयो मृत्युवशं याति तस्मान्मोक्षः परं सुखम्। अथवा ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मतत्त्वपरायणः॥३५॥

में सभी चराचर प्राणी वश में हो जाते हैं।।२१।। जहाँ कामावसायित्व होता है वहाँ तीनों लोकों में चराचर प्राणियों के इच्छा के अनुसार रूप बनते और बिगड़ते रहते हैं।२२।। सभी सिद्धियों के प्राप्त करने पर ध्वनि, स्पर्श, रस (स्वाद), गंध, रूप और मन इच्छानुसार कार्य करते हैं या नहीं करते।।२३।। वह न जन्मता है, न मरता है, न कटता है, न फटता है, नं जलता है, न मूर्च्छित होता है, न वह आकर्षित होता है, न प्रभावित होता है, न व्यय होता है, न नष्ट होता है। वह कभी खिन्न नहीं होता और न वह परिवर्तित होता है। वह गंध, रूप, रस (स्वाद), स्पर्श और शब्द (ध्वनि) से रहित होता है। उसका कोई वर्ण या जाति नहीं है। वह विषयों का भोग करते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होता। वह अणु से भी सूक्ष्म है और सूक्ष्म होने के कारण मुक्ति के योग्य है।।२४-२७।। मुक्त होने के कारण वह सर्वव्यापी है। सर्वव्यापी होने के कारण वह पुरुष है। सूक्ष्म होने के कारण पुरुष परम ऐश्वर्य में स्थित होता है।।२८।। ऐश्वर्य क्रमशः सूक्ष्मतर और महत्तर होते हैं। उत्तम योग और अबाधित ऐश्वर्य प्राप्त करके व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करता है। वही महत्तम सूक्ष्म लक्ष्य है। हे श्रेष्ठ मुनियों! पाशुपत योग इस प्रकार जाना गया है।।२९-३०।। यह स्वर्ग और अपवर्ग का फल देने वाला है तथा शिव से सायुज्य का कारण है। जो ज्ञानवान नहीं है वह राग के कारण पवित्र कृत्य करता है। राजस और तामस का भोग करके वह वहीं (संसार में ही) मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार सत्कर्म करने वाला स्वर्ग के सुख प्राप्त करता है।।३१-३२।। किन्तु सत्कर्म के समाप्त होते ही मनुष्य पुनः उस स्थान से मर्त्यलोक में वापस आ जाता है। अतः ब्रह्म ही परम सुख है और ब्रह्म परम लक्ष्य है। यज्ञ से ऊर्जा व्यर्थ जाती है और उससे कुछ भी नहीं मिलता। यज्ञों का आश्रय लेने से मनुष्य मृत्यु का शिकार होता है। अतः मोक्ष ही परम सुख है। विश्व (सभी) नामों से युक्त ब्रह्माण्ड में (विस्तृत)

न तु च्यावयितुं शक्यो मन्वंतरशतैरपि। दृष्ट्वा तु पुरुषं दिव्यं विश्वाख्यं विश्वतोमुखम्॥३६॥
विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वरूपिणम्। विश्वगंधं विश्वमाल्यं विश्वांबरधरं प्रभुम्॥३७॥

गोभिर्मही संपतते पतत्त्रिणो नैवं भूयो जनयत्येवमेव।
कविं पुराणमनुशासितारं सूक्ष्माच्च सूक्ष्मं महतो महांतम्॥३८॥
योगेन पश्येन्न च चक्षुषा पुनर्निरिंद्रियं पुरुषं रुक्मवर्णम्।
आलिंगिनं निर्गुणं चेतनं च नित्यं सदा सर्वगं सर्वसारम्॥३९॥
पश्यंति युक्त्या ह्यचलप्रकाशं तद्भावितास्तेजसा दीप्यमानम्।
अपाणिपादोदरपार्श्वजिह्वो ह्यतींद्रियो वापि सुसूक्ष्म एकः॥४०॥
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णो न चास्त्यबुद्धं न च बुद्धिरस्ति।
स वेद सर्वं न च सर्ववेद्यं तमाहुरग्र्यं पुरुषं महांतम्॥४१॥

अचेतनां सर्वगतां सूक्ष्मां प्रसवधर्मिणीम्। प्रकृतिं सर्वभूतानां युक्ताः पश्यंति योगिनः॥४२॥
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥४३॥
युक्तो योगेन चेशानं सर्वतश्च सनातनम्। पुरुषं सर्वभूतानां तं विद्वान्न विमुह्यति॥४४॥
भूतात्मानं महात्मानं परमात्मानमव्ययम्। सर्वात्मानं परं ब्रह्म तद्वै ध्याता न मुह्यति॥४५॥
पवनो हि यथा ग्राह्यो विचरन् सर्वमूर्तिषु। पुरि शेते सुदुर्ग्राह्यस्तस्मात्पुरुष उच्यते॥४६॥

मुख वाले सारे विश्व में पैरोंवाले और विश्व भर में (विस्तृत) सिर, सभी रंगों और गंधों वाले, सारे विश्व को माला की भाँति धारण करने वाले और सारे विश्व का परिधान धारण करने वाले दिव्य पुरुष के ध्यान में लीन भक्त को सैकड़ों मन्वन्तरों में भी उसके स्थान से हटाया नहीं जा सकता।।३३-३७।। सूर्य की किरणें धरती पर गिरती हैं किन्तु लौटकर नहीं जातीं और उसे पुनः उत्पन्न नहीं करतीं। उस पुरातन कवि और अनुशासक, जो सूक्ष्म से सूक्ष्म है और महान् से महत्तर है, को आँखों से नहीं योग से ही देखा जा सकता है। स्वर्ण रंग के इन्द्रिय रहित पुरुष है। वह निर्गुण, चिह्नरहित, चेतन, नित्य सर्वत्र विद्यमान रहने वाले और सभी वस्तुओं के सार हैं। उनके द्वारा पवित्र किये गये भक्त उन्हें तेज और प्रकाश से युक्त देखते हैं। उनके न हाथ हैं न पैर न पेट और न जिह्वा। वह इन्द्रियों से परे हैं। वे एक हैं और अति सूक्ष्म हैं। वह बिना आँखों के देखते हैं, बिना कानों के सुनते हैं। वे बुद्धिरहित हैं किन्तु सब-कुछ जानते हैं। सब-कुछ जानते हुये भी वे कुछ नहीं जानते। अतः वे प्रथम और महत्तम पुरुष कहे जाते हैं।।३८-४१।। उनसे युक्त योगी, सभी प्राणियों की प्रकृति को अचेतन, सूक्ष्म, सर्वव्यापी और प्रसवधर्मिणी के रूप में देखते हैं।।४२।। उसके हाथ और पैर सब ओर फैले हैं। उसकी आँखे, उसका सिर और मुख चारों ओर फैले होते हैं और उसके कान चारों ओर लगे रहते हैं। वह सारे लोक को लपेटे रहते हैं।।४३।। योग से युक्त, सनातन पुरुष को एवं सभी प्राणियों को जानने वाले को कोई मोह नहीं रहता।।४४।। जो उस परमात्मा, महान् आत्मा, नित्य और सभी प्राणियों के स्वामी ब्रह्म का ध्यान करता है उसे मोह नहीं रहता।।४५।। जैसे चलती हुयी वायु (न दिखते हुये भी) सबको महसूस होती है उसी प्रकार पुरुष को सब

अथ चेल्लुप्तधर्मा तु सावशेषैः स्वकर्मभिः। ततस्तु ब्रह्मगर्भे वै शुक्रशोणितसंयुते॥४७॥
स्त्रीपुंसोः संप्रयोगे हि जायते हि ततः प्रभुः। ततस्तु गर्भकालेन कललं नाम जायते॥४८॥
कालेन कललं चापि बुद्बुदं संप्रजायते। मृत्पिंडस्तु यथा चक्रे चक्रावर्तेन पीडितः॥४९॥
हस्ताभ्यां क्रियमाणस्तु बिंबत्वमनुगच्छति। एवमाध्यात्मिकैर्युक्तो वायुना संप्रपूरितः॥५०॥
यदि योनिं विमुंचामि तत्प्रपद्ये महेश्वरम्। यावद्धि वैष्णवो वायुर्जातमात्रं न संस्पृशेत्॥५१॥
तावत्कालं महादेवमर्चयामीति चिंतयेत्। जायते मानुषस्तत्र यथारूपं यथावयः॥५२॥
वायुः संभवते खात्तु वाताद्धाति वै जलम्। जलात्संभवति प्राणः प्राणाच्छुक्रं विवर्धते॥५३॥
रक्तभागास्त्रयस्त्रिंशद्रेतोभागाश्चतुर्दश । भागतोर्धफलं कृत्वा ततो गर्भो निषिच्यते॥५४॥
ततस्तु गर्भसंयुक्तः पंचभिर्वायुभिर्वृतः। पितुः शरीरात्प्रत्यंगं रूपमस्योपजायते॥५५॥
ततोस्य मातुराहारात्पीतलीढप्रवेशनात्। नाभिदेशेन वै प्राणास्ते ह्याधारा हि देहिनाम्॥५६॥
नवमासात्परिक्लिष्टः संवेष्टितशिरोधरः। वेष्टितः सर्वगात्रैश्च अपर्याप्तप्रवेशनः॥५७॥
नवमासोषितश्चापि योनिच्छिद्रादवाङ्मुखः। ततः स्वकर्मभिः पापैर्निरयं संप्रपद्यते॥५८॥
असिपत्रवनं चैव शाल्मलिच्छेदनं तथा। ताडनं भक्षणं चैव पूयशोणितभक्षणम्॥५९॥
यथा ह्यापस्तु संछिन्नाः संश्लेष्ममुपयांति वै। तथा छिन्नाश्च भिन्नाश्च यातनास्थानमागताः॥६०॥

अनुभव करते हैं। पुर में सोने के कारण उसे पुरुष कहते हैं। उसे जानना कठिन है।।४६।। धर्म की उपेक्षा करने पर मनुष्य पुनः अपने अवशिष्ट कर्मों के साथ गर्भ में जन्म लेता है। जब स्त्री और पुरुष रति कर्म में लिप्त होते हैं तो शुक्र और रक्त के संयोग से कालान्तर में भ्रूण जन्म लेता है।।४७-४८।। कालान्तर में भ्रूण बुलबुला बन जाता है। जिस तरह मिट्टी का ढेर घूमते हुये चाक पर कुम्हार के हाथ से आकार पाता है वैसे ही भौतिक शरीर आध्यात्मिक पदार्थों और वायु से विकास पाता है। गर्भस्थ शिशु सोचता है कि योनि से निकलकर मैं महेश्वर की शरण में जाऊँगा और महादेव की आराधना करूँगा। गर्भस्थ शिशु पूर्व निर्धारित रूप और वय के अनुसार मनुष्य बनता है।।४९-५२।। आकाश से वायु पैदा होता है। वायु से जल पैदा होता है, जल से प्राण और प्राण से शुक्र पैदा होता है और विकसित होता है।।५३।। तैंतीस भाग रक्त से चौदह भाग शुक्र का मिश्रण होता है। जब इसके आधे मिल जाते हैं तो भ्रूण विकसित होता है।।५४।। तब भ्रूण पंच वायुओं से घिरा होता है और उसके अंग प्रत्यंग का विकास पिता के शरीर से होता है ।।५५।। नाभि क्षेत्र में, भ्रूण माँ के द्वारा पिये और चूसे गये भोजन से पचता है।।५६।। नौ मास तक शिशु कष्ट और दबाव में रहता है। उसकी गरदन नाभिनाल से बँधी होती है और सभी अंग मुड़े रहते हैं क्योंकि गर्भ में पर्याप्त स्थान नहीं होता।।५७।। नौ मास गर्भ में बिताने के बाद शिशु योनि मार्ग से नीचे की ओर सिर किये हुए गिरता है। तदनन्तर सारे जीवन पाप करता है और इन पापों के कारण मृत्यु के बाद एक नरक से दूसरे नरक में गिरता रहता है।।५८।। उदाहरण के लिये वह असिपत्रवन शाल्मलिच्छेदन में जा सकता है जहाँ उसे पीटा और खाया जाता है या उसका पूय और रक्त अलग किया जा सकता है।।५९।। जैसे जल में कोई कटी हुई वस्तु फेंकने पर यह चिपचिपी हो जाती है उसी तरह

एवं जीवास्तु तैः पापैस्तप्यमानाःस्वयंकृतैः। प्राप्नुयुः कर्मभिः शेषैर्दुःखं वा यदि वेतरत्॥६१॥
एकेनैव तु गंतव्यं सर्वमुत्सृज्य वै जनम्। एकेनैव तु भोक्तव्यं तस्मात्सुकृतमाचरेत्॥६२॥
न ह्येनं प्रस्थितं कश्चिद्गच्छंतमनुगच्छति। यदनेन कृतं कर्म तदेनमनुगच्छति॥६३॥
ते नित्यं यमविषयेषु संप्रवृत्ताः क्रोशंतः सततमनिष्टसंप्रयोगैः।
शुष्यंते परिगतवेदनाशरीरा बह्वीभिः सुभृशमनंतयातनाभिः॥६४॥
कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते। तदभ्यासो हरत्येनं तस्मात्कल्याणमाचरेत्॥६५॥
अनादिमान्प्रबंधः स्यात्पूर्वकर्मणि देहिनः। संसारं तामसं घोरं षड्विधं प्रतिपद्यते॥६६॥
मानुष्यात्पशुभावश्च पशुभावान्मृगो भवेत्। मृगत्वात्पक्षिभावश्च तस्माच्चैव सरीसृपः॥६७॥
सरीसृपत्वाद्गच्छेद्वै स्थावरत्वं न संशयः। स्थावरत्वे पुनः प्राप्ते यावदुन्मिलते जनः॥६८॥
कुलालचक्रवद्भ्रांतस्तत्रैव परिवर्तते। इत्येवं हि मनुष्यादिः संसारः स्थावरांतिकः॥६९॥
विज्ञेयस्तामसो नाम तत्रैव परिवर्तते। सात्त्विकश्चापि संसारो ब्रह्मादिः परिकीर्तितः॥७०॥
पिशाचांतः स विज्ञेयः स्वर्गस्थानेषु देहिनाम्। ब्राह्मे तु केवलं सत्त्वं स्थावरे केवलं तमः॥७१॥
चतुर्दशानां स्थानानां मध्ये विष्टंभकं रजः। मर्मसु च्छिद्यमानेषु वेदनार्तस्य देहिनः॥७२॥
ततस्तत्परमं ब्रह्म कथं विप्रः स्मरिष्यति। संसारः पूर्वधर्मस्य भावनाभिः प्रणोदितः॥७३॥

जीव यातना स्थल पर काटा और फेंका जाता है। उसे उसी के किये गये पापों से भूना जाता है। वे अपने अवशिष्ट कर्मों के अनुसार सुख या दुःख भोगते हैं।।६०-६१।। जीव को सब लोगों को छोड़कर अकेले जाना पड़ता है। अकेले ही सुख या कष्ट उठाना पड़ता है। अतः व्यक्ति को श्रेष्ठ कर्म ही करने चाहिये।।६२।। जब वह मृत्यु के बाद अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है तो उसके आगे बढ़ने पर उसके पीछे कोई नहीं जाता है। केवल उसके कर्म उसका पीछा करते हैं।।६३।। यम लोक में नित्य अनिष्ट होने से वे कराहते हैं। उनके शरीर विविध प्रकार की यातनाओं से काटे जाते हैं और चारों ओर दुःखों और वेदनाओं से घिरे रहते हैं।।६४।। व्यक्ति मनसा वाचा कर्मणा पुनः-पुनः जिसकी शरण में जाता है वह उसे प्रभावित करता है। अतः व्यक्ति को सर्वदा अच्छे कर्म करने चाहिये।।६५।। पूर्व कर्मों की अप्रतिहत शृंखला का कोइं प्रारम्भ नहीं है। आत्मा तमोगुण से युक्त जिस प्रकार के भयंकर सांसारिक विषयों को अपनाता है।।६६।। मनुष्य रूप से वह (पालतू) पशु का, (पालतू) पशु से वन्य पशु का, वन्य पशु से पक्षी का और पक्षी से सरीसृप और सरीसृप से अचर जीव का रूप धारण करता है। जब वह अचर रूप धारण करता है तो कुम्हार के चाक की तरह एक ही स्थान पर चक्कर लगाता रहता है जब तक कि आत्मा ऊँचे न उठ जाय। इस प्रकार मानव जीवन से प्रारम्भ होकर स्थावर (अचर) तक सांसारिक जीवन तामस है। आत्मा वहीं चक्कर काटती रहती है। ब्रह्मा आदि का संसार सात्त्विक है। ब्रह्मा से प्रारम्भ करके पिशाचों पर समाप्त होने वाले प्राणियों को स्वर्ग में विद्यमान मानना चाहिये। ब्रह्मा का जीवन शुद्ध सात्त्विक है। और स्थावर प्राणी का शुद्ध तामस।।६७-७१।। चौदह स्थानों के मध्य में राजस वेदना ग्रस्त जीवधारियों के मर्मस्थान को छेदता है। तब ब्राह्मण ब्रह्म को कैसे याद कर सकेगा। सांसारिक जीवन पूर्व धर्म के प्रभाव से प्रेरित

मानुषं भजते नित्यं तस्माद्ध्यानं समाचरेत्। चतुर्दशविधं ह्येतद्बुद्ध्वा संसारमंडलम्॥७४॥
नित्यं समारभेद्धर्मं संसारभयपीडितः। ततस्तरति संसारं क्रमेण परिवर्तितः॥७५॥
तस्माच्च सततं युक्तो ध्यानतत्परयुंजकः। तथा समारभेद्योगं यथात्मानं स पश्यति॥७६॥
एष आपः परं ज्योतिरेष सेतुरनुत्तमः। विवृत्या ह्येष संभेदाद्भूतानां चैव शाश्वतः॥७७॥
तदेनं सेतुमात्मानमग्निं वै विश्वतोमुखम्। हृदिस्थं सर्वभूतानामुपासीत महेश्वरम्॥७८॥
तथांतः संस्थितं देवं स्वशक्त्या परिमंडितम्। अष्टधा चाष्टधा चैव तथा चाष्टविधेन च॥७९॥
सृष्ट्यर्थं संस्थितं वह्निं संक्षिप्य च हृदि स्थितम्। ध्यात्वा यथावद्देवेशं रुद्रं भुवननायकम्॥८०॥
हुत्वा पंचाहुतीः सम्यक् तच्चिंतागतमानसः। वैश्वानरं हृदिस्थं तु यथावदनुपूर्वशः॥८१॥
आपः पूताः सकृत्प्राश्य तूष्णीं हुत्वा ह्युपाविशन्। प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता॥८२॥
अपानाय द्वितीया च व्यानायेति तथा परा। उदानाय चतुर्थी स्यात्समानायेति पंचमी॥८३॥
स्वाहाकारैः पृथग् हुत्वा शेषं भुंजीत कामतः। अपः पुनः सकृत्प्राश्य आचम्य हृदयं स्पृशेत्॥८४॥
प्राणानां ग्रंथिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशांतकः। रुद्रो वै ह्यात्मनः प्राण एवमाप्याययेत्स्वयम्॥८५॥
प्राणे निविष्टो वै रुद्रस्तस्मात्प्राणमयः स्वयम्। प्राणाय चैव रुद्राय जुहोत्यमृतमुत्तमम्॥८६॥
शिवाविशेह मामीश स्वाहा ब्रह्मात्मने स्वयम्। एवं पंचाहुतीश्चैव श्राद्धे कुर्वीत शासनात्॥८७॥

होता है और तदनुसार ही मानव जीवन मिलता है। अतएव मनुष्य को हर समय ध्यान करना चाहिये। संसार मण्डल चौदह प्रकार का है। नित्य संसार से डरते हुये धर्म का आचरण करना चाहिये। तभी धीरे-धीरे वह सांसारिक जीवन को पार कर लेगा।।७२-७५।। अतः योगी को निरन्तर ध्यान में तत्पर होना चाहिये। वह जैसे अपने आपको देखता है उसी रूप में उसका ध्यान करना चाहिये।।७६।। वह जल है। वह परं ज्योति है। वह उत्तम सेतु है। वह विकास और सम्मिश्रण के द्वारा सभी प्राणियों का कारणभूत है। वह नित्य है। अतः हृदय में स्थित उस सेतु और हर ओर मुख वाले अग्नि की, उस महेश्वर की उपासना करनी चाहिये।।७७-७८।। साधक को अपने अन्दर स्थित रुद्र का ध्यान करना चाहिये जो अपनी शक्ति से सुशोभित है, जो आठ विविध रूपों में विद्यमान है, जो अग्नि को संक्षिप्त करके स्थित है। मन को अपने अन्दर स्थित अग्नि पर केन्द्रित करते हुये पाँच बार आहुतियाँ देनी चाहिये। पालथी मारकर बैठकर शान्त मन से शुद्ध जल पीना चाहिये और 'प्राणाय स्वाहा' कहना चाहिये। दूसरी आहुति अपान, तीसरी व्यान, चौथी उदान और पाँचवीं समान के लिये होगी। हर आहुति के साथ साधक को स्वाहा का उच्चारण करना चाहिये। तत्पश्चात् जल से आचमन करना चाहिये और तब हृदय का स्पर्श करना चाहिये।।७९-८४।। साधक को "आप प्राणों की गाँठ हो" इस मन्त्र के साथ परितृप्ति अनुष्ठान करना चाहिये। रुद्र आत्मा हैं। आत्मा विषयों का नाशकर्त्ता है। रुद्र निश्चय है आत्मा के प्राण हैं।।८५।। श्राद्ध के समय शास्त्रानुसार पाँच आहुतियाँ इस प्रकार देना चाहिये—(१) रुद्र गुण में निविष्ट है, (२) वह प्राण के समरूप है, (३) प्राण और रुद्र को ही अमृत समर्पित करना चाहिये, (४) हे शिव! हे ईश! मुझमें प्रवेश करें, (५) ब्रह्मात्मा को स्वाहा।।८६-८७।। आप पुरुष हैं। आप शरीर में अँगूठे के आकार में स्थित हैं। ईश यद्यपि

पुरुषोसि पुरे शेषे त्वमंगुष्ठप्रमाणतः। आश्रितश्चैव चांगुष्ठमीशः परमकारणम्॥८८॥
सर्वस्य जगतश्चैव प्रभुः प्रीणातु शाश्वतः। त्वं देवानामसि ज्येष्ठो रुद्रस्त्वं च पुरो वृषा॥८९॥
मृदुस्त्वमन्नमस्मभ्यमेतदस्तु हुतं तव। इत्येवं कथितं सर्वं गुणप्राप्तिविशेषतः॥९०॥
योगाचारः स्वयं तेन ब्रह्मणा कथितः पुरा। एवं पाशुपतं ज्ञानं ज्ञातव्यं च प्रयत्नतः॥९१॥
भस्मस्नायी भवेन्नित्यं भस्मलिप्तः सदा भवेत्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्॥९२॥
दैवे कर्माणि पित्र्ये वा स याति परमां गतिम्॥९३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽणिमाद्यष्टसिद्धित्रिगुणसंसारप्राग्नौ होमादिवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः॥८८॥

अँगूठे में स्थित है तथापि सारी सृष्टि के कारणभूत हैं। सृष्टि के स्वामी, शाश्वत प्रसन्न हों। आप सभी देवताओं में वरिष्ठ हैं। आप रुद्र हैं। पूर्व में आप इन्द्र थे। आप स्वभाव से ही मृदुल हैं। आप को दी गयी यह आहुति हमारा भोजन हो। इन मन्त्रों से होम की समाप्ति करनी चाहिये। इस प्रकार विशेष रूप से गुण प्राप्ति का समस्त व्याख्यान किया गया।।८८-९०।। यह योग विद्या पूर्व में स्वयं ब्रह्मा के द्वारा बखानी गयी। पशुपति से सम्बन्धित ज्ञान विशेष प्रयास से प्राप्त करना चाहिये। भस्म में स्नान करना चाहिये। नित्य भस्म लपेटना चाहिये। जो इसको पढ़ता सुनता और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दिव्यकर्म और पितृकर्म में सुनाता है वह परम लक्ष्य को प्राप्त करता है।।९१-९३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में अणिमा आदि आठ सिद्धि त्रिगुण संसार पूर्व अग्नि में होमादि का वर्णन नामक अठासीवाँ अध्याय समाप्त॥८८॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

सदाचारकथनम्

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम्। यदनुष्ठाय शुद्धात्मा परेत्य गतिमाप्नुयात्॥१॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सर्वभूतहिताय वै। संक्षेपात्सर्ववेदार्थं संचयं ब्रह्मवादिनाम्॥२॥
उदयार्थं तु शौचानां मुनीनामुत्तमं पदम्। यस्तत्राथाप्रमत्तः स्यात्स मुनि र्नावसीदति॥३॥
मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाहुर्विषामृते। अवमानोऽमृतं तत्र सन्मानो विषमुच्यते॥४॥
गुरोरपि हिते युक्तः स तु संवत्सरं वसेत्। नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत्॥५॥
प्राप्यानुज्ञां ततश्चैव ज्ञानयोगमनुत्तमम्। अविरोधेन धर्मस्य चरेत् पृथिवीमिमाम्॥६॥
चक्षुःपूतं चरेन्मार्गं वस्त्र पूतं जलंपिबेत्। सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत्॥७॥
मत्स्यगृह्यस्य यत्पापं षण्मासाभ्यंतरे भवेत्। एकाहं तत्समं ज्ञेयमपूतं यज्जलं भवेत्॥८॥
अपूतोदकपाने तु जपेच्च शतपंचकम्। अघोरलक्षणं मंत्रं ततः शुद्धिमवाप्नुयात्॥९॥

नवासीवाँ अध्याय

सदाचार कथन

सूत बोले

अब मैं आचरण की शुद्धता के लक्षणों का बखान करूँगा जिन पर चलकर शुद्ध आत्मा मरणोपरान्त उच्चतम लक्ष्य प्राप्त करता है।।१।। इसे (आचरण को) पूर्व में सभी प्राणियों के कल्याण के लिये ब्रह्मा ने कहा था। यह सभी वेदों के अर्थ का सार है और ब्रह्मवादियों के लिये इसका संचय किया गया है।।२।। यह (आचरण) शुचिता के उत्थान के लिये लाभप्रद है और मुनियों का उत्तम पद है जो इसमें त्रुटि नहीं करता वह विपत्ति नहीं प्राप्त करता।।३।। मान और अपमान दोनों विष और अमृत के समान कहे गये हैं। अपमान को विष और मान को अमृत कहा गया है।।४।। शिष्य को एक वर्ष तक गुरु के साथ रहना चाहिये और गुरु के हित में लगे रहना चाहिये। उसे यमों और नियमों के पालन में प्रमाद (आलस्य या त्रुटि) नहीं करना चाहिये।।५।। गुरु की अनुमति और उत्तम ज्ञान योग के साथ उसे सांसारिक जीवन में प्रवेश करना चाहिये। धर्म का अविरोध करते हुये पृथ्वी पर आचरण करना चाहिये।।६।। आँख से पवित्र हुये मार्ग पर चलना चाहिये। वस्त्र से पवित्र (अर्थात् छानकर) जल पीना चाहिये। सत्य से पवित्र शब्द ही बोलना चाहिये और मन से पवित्र आचरण करना चाहिये।।७।। यदि कोई एक दिन अपवित्र जल पीता है तो वह उतना पाप अर्जित करेगा जितना मछुआरा छः माह में करेगा।।८।। अशुद्ध जल पीने के कारण हुए प्रायश्चित के लिये पाँच सौ बार अघोर मन्त्र का जप करना

अथवा पूजयेच्छंभुं घृतस्नानादिविस्तरैः। त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्य शुद्ध्यते नात्र संशयः॥१०॥
आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु न गच्छेद्योगवित्क्वचित्। एवं ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारितम्॥११॥
वह्नौ विधूमेऽत्यंगारे सर्वस्मिन्भुक्तवज्जने। चरेत्तु मतिमान् भैक्ष्यं न तु तेष्वेव नित्यशः॥१२॥
अथैनमवमन्यंते परे परिभवंति च। तथा युक्तं चरेद्भैक्ष्यं सतां धर्ममदूषयन्॥१३॥
भैक्ष्यं चरेद्वनस्थेषु यायावरगृहेषु च। श्रेष्ठा तु प्रथमा हीयं वृत्तिरस्योपजायते॥१४॥
अत ऊर्ध्वं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्द्विजाः। दान्तेषु श्रोत्रियेषु श्रद्दधानेषु महात्मसु॥१५॥
अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेषु च। भैक्ष्यचर्या हि वर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते॥१६॥
भैक्ष्यं यवागूस्तक्रं वा पयो यावकमेव च। फलमूलादि पक्वं वा कणपिण्याकसक्तवः॥१७॥
इत्येव ते मया प्रोक्ता योगिनां सिद्धिवर्द्धनाः। आहारास्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठं भैक्ष्यमिति स्मृतम्॥१८॥
अब्बिंदुं यः कुशाग्रेण मासिमासि समश्नुते। न्यायतो यश्चरेद्भैक्ष्यं पूर्वोक्तात्स विशिष्यते॥१९॥
जरामरणगर्भेभ्यो भीतस्य नरकादिषु। एवं दाययते तस्मात्तद्भैक्ष्यमिति संस्मृतम्॥२०॥
दधिभक्षाः पयोभक्षा ये चान्ये जीवक्षीणकाः। सर्वे ते भैक्ष्यभक्षस्य कलां नार्हंति षोडशीम्॥२१॥
भस्मशायी भवेन्नित्यं भिक्षाचारी जितेंद्रियः। य इच्छेत्परमं स्थानं व्रतं पाशुपतं चरेत्॥२२॥

होगा। तभी शुद्धि होगी।।९।। या पूरे विस्तार से शिव की आराधना करनी होगी जैसे घी से नहलाना आदि। तत्पश्चात् उनकी (शिव की) तीन बार परिक्रमा करनी चाहिये।।१०।। योग के ज्ञानी को कभी भी श्राद्ध या यज्ञ में आतिथ्य नहीं स्वीकार करना चाहिये। इसी तरह से योगी अहिंसक हो सकता है। यह सुविचारित बात है।।११।। बुद्धिमान साधु को भिक्षा के लिये उस घर में जाना चाहिये जहाँ सब लोगों के भोजन ग्रहण कर चुकने पर भी बिना धुएँ के अंगारा जल रहा हो किन्तु उसको उसी घर में प्रतिदिन नहीं जाना चाहिये।।१२।। ऐसा करने पर लोग उसे अपमानित करेंगे और शत्रु अपयश फैलाएँगे। इसलिये भिक्षा समुचित तरीके से माँगनी चाहिये और किसी का धर्म दूषित नहीं करना चाहिये।।१३।। साधुओं को खानाबदोश के यहाँ अथवा वन में स्थित घरों में भिक्षा माँगनी चाहिये। बन में स्थित घरों में माँगना बेहतर जीविका है।।१४।। हे ब्राह्मणों! शालीन, श्रद्धावान, संयमी और पुण्यात्मा लोगों के घर भिक्षा माँगनी चाहिये।।१५।। जो दुष्ट न हों और जो पतित न हों उनसे भिक्षा माँगनी चाहिये किन्तु सवर्णों से भिक्षा माँगना जघन्य वृत्ति है।।१६।। दलिया, मट्ठा, दूध, जौ का पानी, पके फल और जड़, टूटे हुए अनाज, खली और सत्तू भिक्षा में स्वीकार करना चाहिये।।१७।। मैंने जिन (खाद्य) वस्तुओं का बखान किया उनसे योगियों की सिद्धि बढ़ती है। यदि ये भिक्षा में मिल जायें तो उत्तम भिक्षावृत्ति होगी।।१८।। जो व्यक्ति उचित तरीके से भिक्षाटन करता है और जो कुशा की नोक से माह में एक बार जल ग्रहण करता है उनमें पहले वाला (अर्थात् भिक्षाटन करने वाला) श्रेष्ठतर है।।१९।। भिक्षावृत्ति मनुष्यों के पापों को हरती है जो जरा (बुढ़ापा) मृत्यु पुनर्जन्म और नर्क निवास से डरा हुआ है।।२०।। जो नित्य दही और दूध का सेवन करते हैं और जो जीव को क्षीण करते हैं वे भिक्षा से जीवन ग्रहण करने वाले के सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं।।२१।। सर्वोच्च स्थान को चाहने वाले योगी को नित्य भस्म में शयन करना चाहिये। इन्द्रियों

योगिनां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं चांद्रायणं भवेत्। एकं द्वे त्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत्॥२३॥
अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च अलोभस्त्याग एव च। व्रतानि पंच भिक्षूणामहिंसा परमा त्विह॥२४॥
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम्। नित्यं स्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः॥२५॥

बीजयोनिगुणा वस्तुबंधः कर्मभिरेव च।
यथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणां विधीयते॥२६॥

देवैस्तुल्याः सर्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञाज्जाप्यं ज्ञानमाहुश्च जाप्यात्।
ज्ञानाद्ध्यानं संगरागादपेतं तस्मिन्प्राप्ते शाश्वतस्योपलंभः॥२७॥

दमः शमः सत्यमकल्मषत्वं मौनं च भूतेष्वखिलेषु चार्जवम्।
अतींद्रियं ज्ञानमिदं तथा शिवं प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धबुद्धयः॥२८॥

समाहिता ब्रह्मपरोप्रमादी शुचिस्तथैकांतरतिर्जितेंद्रियः।
समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा महर्षयश्चैवमनिंदितामलाः॥२९॥

प्राप्यतेऽभिमतान् देशानंकुशेन निवारितः। एतन्मार्गेण शुद्धेन दग्धबीजो ह्यकल्मषः॥३०॥

सदाचाररताः शांताः स्वधर्मपरिपालकाः।
सर्वाल्ँलोकान् विनिर्जित्य ब्रह्मलोकं व्रजंति ते॥३१॥

पितामहेनोपदिष्टो धर्मः साक्षात्सनातनः। सर्वलोकोपकारार्थं शृणुध्वं प्रवदामि वः॥३२॥
गुरूपदेशयुक्तानां वृद्धानां क्रमवर्तिनाम्। अभ्युत्थानादिकं सर्वं प्रणामं चैव कारयेत्॥३३॥

को जीतना चाहिये। भिक्षाटन करना चाहिये और पाशुपत व्रत करना चाहिये।।२२।। चान्द्रायण व्रत योगियों के लिये उत्तम होता है। अपनी शक्ति के अनुसार इसे एक, दो, तीन या चार बार करना चाहिये।।२३।। भिक्षुओं के लिये अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, अक्रोध, त्याग और अहिंसा श्रेष्ठ व्रत हैं।।२४।। अक्रोध, गुरु की सेवा, स्वच्छता, आहारलाघव (कम भोजन) और वेदों का अध्ययन ये नियम कहे गये हैं।।२५।। बीज और योनि के गुण और बन्धन कर्म के अनुसार होते हैं। जैसे बन में हाथी का भाग्य लिखा होता है वैसे ही मनुष्य का होता है।।२६।। सारे यज्ञ अनुष्ठान देव तुल्य हैं किन्तु जप यज्ञों से श्रेष्ठ है। जाप से ज्ञान, समस्त रागादि से रहित ध्यान ज्ञान से श्रेष्ठ है। उसके प्राप्त होने पर शाश्वत लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।।२७।। मन का नियन्त्रण, इन्द्रियों का दमन, सत्यता, पापहीनता, मौन, सभी प्राणियों के प्रति ऋजुता (सज्जनता), अतीन्द्रिय ज्ञान इन गुणों को ज्ञान से विशुद्ध बुद्धि वालों ने शुभ कहा है।।२८।। समाहित (समर्पित), ब्रह्मवादी, शुद्ध, एकान्त प्रेमी, जितेन्द्रिय योग को प्राप्त कर सकता है। ऐसा निर्मल मति अनिंद्य महर्षिगण कहते हैं।।२९।। सही मार्ग पर चलकर और शुद्ध मार्ग से नियन्त्रित भक्त पाप के बीज तक को नष्ट करके अभीष्ट प्राप्त करता है।।३०।। सदाचारी, शान्त, स्वधर्मपालन करने वाला, सारे लोक को जीतने वाला होता है और ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।।३१।। शाश्वत धर्म लोक के उपयोग के लिये ब्रह्मा के द्वारा बताया गया था। कृपया सावधानी से सुनें। मैं आपको बताता हूँ।।३२।। व्यक्ति को उचित रूप से वयोवृद्धों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिये

अष्टांगप्रणिपातेन त्रिधा न्यस्तेन सुव्रताः। त्रिःप्रदक्षिणयोगेन वंद्यो वै ब्राह्मणो गुरुः॥३४॥
ज्येष्ठान्येपि च ते सर्वे वंदनीया विजानता। आज्ञाभंगं न कुर्वीत यदीच्छेत्सिद्धिमुत्तमाम्॥३५॥
धातुशून्यबिलक्षेत्रक्षुद्रमंत्रोपजीवनम्। विषग्रहविडंबादीन्वर्जयेत्सर्वयत्नतः॥३६॥
कैतवं वित्तशाठ्यं च पैशुन्यं वर्जयेत्सदा। अतिहासमवष्टंभं लीलास्वेच्छाप्रवर्तनम्॥३७॥
वर्जयेत्सर्वयत्नेन गुरूणामपि सन्निधौ। तद्वाक्यप्रतिकूलं च अयुक्तं वै गुरोर्वचः॥३८॥
न वदेत्सर्वयत्नेन अनिष्टं न स्मरेत्सदा। यतीनामासनं वस्त्रं दंडाद्यं पादुके तथा॥३९॥
माल्यं च शयनस्थानं पात्रं छायां च यत्नतः। यज्ञोपकरणांगं च न स्पृशेद्वै पदेन च॥४०॥
देवद्रोहं गुरुद्रोहं न कुर्यात्सर्वयत्नतः। कृत्वा प्रमादतो विप्राः प्रणवस्यायुतं जपेत्॥४१॥
देवद्रोहगुरुद्रोहात्कोटिमात्रेण शुध्यति। महापातकशुद्ध्यर्थं तथैव च यथाविधि॥४२॥
पातकी च तदर्धेन शुध्यते वृत्तवान्यदि। उपपातकिनः सर्वे तदर्धेनैव सुव्रताः॥४३॥
संध्यालोपे कृते विप्रः त्रिरावृत्त्यैव शुद्ध्यति। आह्निकच्छेदने जाते शतमेकमुदाहृतम्॥४४॥
लंघने समयानां तु अभक्ष्यस्य च भक्षणे। अवाच्यवाचनं चैव सहस्राच्छुद्धिरुच्यते॥४५॥

और उनका स्वागत और नमस्कार करना चाहिये जिन्होंने अपने गुरुओं से नियमों और निर्देशों को प्राप्त किये हों और अपने नैत्यिक कार्यों को कठोरतापूर्वक पालन करते हैं जो कि उनके आश्रमों से सम्बन्धित हैं।।३३।। हे सुव्रतो! ब्राह्मण और गुरुओं का सम्मान साष्टांग प्रणाम पृथ्वी का स्पर्श करके और तीन परिक्रमा करके करना चाहिये।।३४।। सभी वयोवृद्धों का सम्मान करना चाहिये। यदि कोई परम सिद्धि की इच्छा रखता है तो वयोवृद्धों के आदेश का कभी भी उल्लंघन नहीं करना चाहिये।।३५।। व्यक्ति को इन वस्तुओं से बचना चाहिये। जीविका के लिये तथा अन्य धातुओं को ग्रहण करना, मरुस्थल में वास या ऊसर स्थानों में वास, सहारे के लिये व्यर्थ मन्त्रों का उपयोग, सर्पों को वश में करना, नकल करना, चापलूसी करना और चालबाजी करना।।३६।। सदा धूर्तता, वित्त सम्बन्धी दुराग्रह और परनिन्दा से गुरुओं और बड़ों की उपस्थिति में हँसी-मजाक, ठठाकर हँसना, मनमाने कार्य करना और उनकी बातों के प्रतिकूल आचरण करना आदि से प्रयत्नपूर्वक बचना चाहिये। गुरुओं की बात का प्रतिवाद करने, उनके लिये अशोभनीय शब्दों का प्रयोग करने, उन्हें जो नापसन्द हो उसका उल्लेख करने और उनके प्रति बुरा सोचने से प्रयत्नपूर्वक बचना चाहिये। इन वस्तुओं को कभी पैर से नहीं छूना चाहिये— यतियों की छड़ी, आसन, उनकी खड़ाऊँ या चप्पल, वस्त्र, माला, बिस्तर, बर्तन, छाया और यज्ञ में काम आने वाली वस्तुएँ आदि।।३७-४०।। गुरुओं और देवों से प्रयत्नपूर्वक द्रोह नहीं करना चाहिये। यदि प्रमादवश ऐसा हो जाय तो दस प्रणव का जाप करना चाहिये।।४१।। देवताओं और गुरु के साथ विश्वासघात के पापों की शुद्धि के लिये एक करोड़ बार जप करना चाहिये। बड़े पापों के प्रायश्चित्त के लिये शास्त्रों के अनुसार शिवमंत्र का जप करना चाहिये। यदि पापकर्त्ता सदाचारी है तो वह निर्धारित संख्या से आधी बार जप करके ही शुद्ध हो जाता है। हे सुव्रतो! सभी उपपातकी निर्धारित संख्या से आधी बार जप से ही शुद्ध हो जाते हैं।।४२-४३।। सन्ध्योपासन न करने का दोषी ब्राह्मण उसका दूना जप करने से शुद्ध होता है। यदि आह्निक कृत्य का उल्लंघन हुआ है तो सौ बार जप करने का विधान है।।४४।। समय का उल्लंघन करने और अभक्ष्य पदार्थ का भक्षण

काकोलूककपोतानां पक्षिणामपि घातने। शतमष्टोत्तरं जप्त्वा मुच्यते नात्र संशयः॥४६॥
यः पुनस्तत्त्ववेत्ता च ब्रह्मविद्ब्राह्मणोत्तमः। स्मरणाच्छुद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥४७॥
नैवमात्मविदामस्ति प्रायश्चित्तानि चोदना। विश्वस्यैव हि ते शुद्धा ब्रह्मविद्याविदो जनाः॥४८॥
योगध्यानैकनिष्ठाश्च निर्लेपाः कांचनं यथा। शुद्धानां शोधनं नास्ति विशुद्धा ब्रह्मविद्यया॥४९॥
उद्धृतानुष्णफेनाभिः पूताभिर्वस्त्रचक्षुषा। अद्भिः समाचरेत्सर्वं वर्जयेत्कलुषोदकम्॥५०॥
गंधवर्णरसैर्दुष्टमशुचिस्थानसंस्थितम्। पंकाश्मदूषितं चैव सामुद्रं पल्वलोदकम्॥५१॥
सशैवालं तथान्यैर्वा दोषैर्दुष्टं विवर्जयेत्।
वस्त्रशौचान्वितः कुर्यात्सर्वकार्याणि वै द्विजाः॥५२॥
नमस्कारदिकं सर्वं गुरुशूश्रूषणादिकम्। वस्त्रशौचविहीनात्मा ह्यशुचिर्नात्र संशयः॥५३॥
देवकार्योपयुक्तानां प्रत्यहं शौचमिष्यते। इतरेषां हि वस्त्राणां शौचं कार्यं मलागमे॥५४॥
वर्जयेत्सर्वयत्नेन वासोन्यैर्विधृतं द्विजाः। कौशेयाविकयो रूक्षैः क्षौमाणां गौरसर्षपैः॥५५॥
श्रीफलैरंशुपट्टानां कुतपानामरिष्टकैः। चर्मणा विदलानां च वेत्राणां वस्त्रवन्मतम्॥५६॥
वल्कलानां तु सर्वेषां छत्रचामरयोरपि। चैलवच्छौचमाख्यातं ब्रह्मविद्भिर्मुनीश्वरैः॥५७॥

करने से और न बोलने योग्य वचन कहने से १ हजार बार मन्त्र की आवृत्ति करनी चाहिये।।४५।। कौआ, उल्लू और कबूतर पक्षियों के वध करने पर एक सौ आठ बार जप करने से पाप से मुक्ति होती है इसमें सन्देह नहीं।।४६।। उत्तम ब्राह्मण जो सत्य को जानता है और ब्रह्म का जिसे बोध है वह देव का स्मरण करने मात्र से शुद्ध हो जाता है। इसमें विचार करने की कोई गुंजाइश नहीं है।।४७।। आत्मज्ञानियों के सम्बन्ध में पाप से शुद्धि का (कोई प्रायश्चित का) कोई विधान नहीं है। ब्रह्मविद्या को जानने वाले जो विश्व के कल्याण में लगे हैं वे स्वतः शुद्ध होते हैं। इस प्रकार जो पहले से ही शुद्ध हैं उनके लिये शुद्धि की आवश्यकता नहीं है।।४८-४९।। दूषित जल से सदैव बचना चाहिये। ठण्डे, फेन रहित, वस्त्र पूत जल (अर्थात् छाने गये जल) से ही सभी अनुष्ठान करने चाहिये।।५०।। दुर्गन्ध युक्त, रंगयुक्त, स्वादयुक्त और अशुद्ध स्थान में ठहरा हुआ जल, कीचड़ और कंकड़ों से दूषित जल, समुद्री जल, ताल तलैयों का जल, शैवाल (काई) युक्त जल तथा अन्य दोषों से दूषित जल को शुभ कार्यों में प्रयोग नहीं करना चाहिये। हे ब्राह्मणों! वस्वपूत जल का सब कार्यों में प्रयोग करना चाहिये।।५१-५२।। गुरु की शुश्रषा और नमस्कार कर्म में शुद्ध और स्वच्छ वस्त्र का प्रयोग करना चाहिये। स्वच्छ और शुद्ध वस्त्र से रहित व्यक्ति अशुद्ध ही है इसमें सन्देह नहीं।।५३।। दैवी कार्य में प्रयुक्त वस्त्रों को प्रतिदिन धोना वांछित है। अन्य वस्त्रों को गन्दा होने पर धोना चाहिये।।५४।। हे ब्राह्मणों! दूसरों के द्वारा पहने गये वस्त्रों को यत्नपूर्वक त्यागना चाहिये। ऊनी और रेशमी वस्त्रों को रूखे पदार्थों जैसी रीठा आदि से, बुने हुये रेशमी कपड़ों को श्वेत सरसों के बीज से, अंशुपट्ट नामक रेशमी कपड़ों को बेल के फल से, कुटप नामक विशेष प्रकार के कम्बल को मट्ठे से धोना चाहिये। चमड़े, डलिया और बेंत से बनी वस्तुओं को कपड़े की भाँति ही धोना चाहिये। ब्रह्मवेत्ता ऋषियों ने कहा है वल्कल, छत्र और चामर को भी वस्त्र के समान धोना चाहिये।

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं क्षारेणायसमुच्यते। ताम्रमम्लेन वै विप्रास्त्रपुसीसकयोरपि॥५८॥
हैममद्भिः शुभं पात्रं रौप्यपात्रं द्विजोत्तमाः। मण्यश्मशंखमुक्तानां शौचं तैजसवत्स्मृतम्॥५९॥
अग्नेरपां च संयोगादत्यंतोपहतस्य च। रसानामिह सर्वेषां शुद्धिरुत्पल्वनं स्मृतम्॥६०॥
तृणकाष्ठादिवस्तूनां शुभेनाभ्युक्षणं स्मृतम्। उष्णेन वारिणा शुद्धिस्तथा स्त्रुक्स्त्रुवयोरपि॥६१॥
तथैव यज्ञपात्राणां मुशलोलूखलस्य च। शृंगास्थिदारुदंतानां तक्षणेनैव शोधनम्॥६२॥
संहतानां महाभागा द्रव्याणां प्रोक्षणं स्मृतम्। असंहतानां द्रव्याणां प्रत्येकं शौचमुच्यते॥६३॥
अभुक्तराशिधान्यानामेकदेशस्य दूषणे। तावन्मात्रं समुद्धृत्य प्रोक्षयेद्वै कुशांभसा॥६४॥
शाकमूलफलादीनां धान्यवच्छुद्धिरिष्यते। मार्जनोन्मार्जनैर्वेश्म पुनः पाकेन मृन्मयम्॥६५॥
उल्लेखनेनांजनेन तथा संमार्जनेन च। गोनिवासेन वै शुद्धा सेचनेन धरा स्मृता॥६६॥
भूमिस्थमुदकं शुद्धं वैतृष्ण्यं यत्र गौर्व्रजेत्। अव्याप्तं यदमेध्येन गंधवर्णरसान्वितम्॥६७॥
वत्सः शुचिः प्रस्त्रवणे शकुनिः फलपातने। स्वदारास्यं गृहस्थानां रतौ भार्याभिकांक्षया॥६८॥
हस्ताभ्यां क्षालितं वस्त्रं कारुणा च यथाविधि। कुशांबुना सुसंप्रोक्ष्य गृह्णीयाद्धर्मवित्तमः॥६९॥
पण्यं प्रसारितं चैव वर्णाश्रमविभागशः। शुचिराकरजं तेषां श्वा मृगग्रहणे शुचिः॥७०॥

हे ब्राह्मणों! कांस्य पात्र भस्म से, लोहे के पात्र अम्ल (तेजाब) से, ताँबा, टिन और जस्ता सिरके से शुद्ध होते हैं।।५५-५७।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! सोने और चाँदी के पात्र जल से शुद्ध होते हैं। मणि, चकमक पत्थर, शंख और मोती को धातुओं की भाँति साफ किया जाता है।।५८-५९।। अत्यधिक प्रदूषित वस्तुओं की शुद्धि अग्नि और जल के सम्पर्क से होती है। सभी पेय द्रवों की शुद्धि क्रिया उत्प्लवन कही जाती है।।६०।। घास, लकड़ी आदि की वस्तुएँ पवित्र जल छिड़कने से शुद्ध होती हैं। स्त्रुक् और स्त्रुवा गर्म जल के छिड़कने से शुद्ध होती है।।६१।। यज्ञ के पात्र, मूसल और ओखली, सींग, अस्थियों, लकड़ियों और हाथीदाँत की वस्तुएँ तत्काल जल डालने से शुद्ध होती हैं।।६२।। समग्र वस्तुएँ और ठोस वस्तुएँ जल के छिड़काव से शुद्ध हो जाती है किन्तु अलग-अलग भाग वाली वस्तुएँ अच्छी तरह धोयी जानी चाहिये।।६३।। यदि अनाज के ढेर का कोई भाग दूषित हो जाय तो दूषित भाग निकालकर शेष भाग कुशा से जल छिड़काव करके पवित्र किया जाता है।।६४।। कन्द, मूल, फल आदि अनाज की भाँति ही शुद्ध किये जाते हैं। भवन झाड़ू लगाने और रगड़कर साफ करने से शुद्ध होता है। मिट्टी के पात्र को पवित्र अग्नि में गरम करने से शुद्ध होता है।।६५।। फर्श, खुरचने, खोदने और लीपने से शुद्ध होता है। गोशाला छिड़काव से और लीपने से शुद्ध होती है।।६६।। यदि भूमि की सतह पर ठहरा हुआ जल अशुद्ध हो जाता है तो किसी गाय के उससे प्यास बुझाने पर शुद्ध हो जाता है किन्तु इसके चारों ओर गन्दगी न फैली हो तथा दुर्गन्ध न आ रही हो। बछड़ा झरने से शुद्ध होता है। पक्षी उसके ऊपर फल फेंकने से शुद्ध होता है। सहवास के दौरान पत्नी का मुख स्नेही गृहस्थ के लिये शुद्ध होता है।।६७-६८।। श्रेष्ठ धर्मज्ञ धोबी के द्वारा हाथ से धोये गये कपड़े को कुशा से जल छिड़ककर धारण करते हैं।।६९।। वर्ण और आश्रमों के विभाग के अनुसार बाजार में फैलाई गई वस्तुएँ शुद्ध होती हैं। खान से निकाली हुई वस्तुएँ स्वाभाविक रूप से शुद्ध होती हैं। शिकार के समय हिरण पकड़ने वाला शिकारी कुत्ता शुद्ध होता है।।७०।। शरीर के सम्पर्क

छाया च विप्लुषो विप्रा मक्षिकाद्या द्विजोत्तमाः। रजोभूर्वायुरग्निश्च मेध्यानि स्पर्शने सदा॥७१॥
सुप्त्वा भुक्त्वा च वै विप्राः क्षुत्त्वा पीत्वा च वै तथा।
ष्ठीवित्वाध्यायनादौ च शुचिरप्याचमेत्पुनः॥७२॥
पादौ स्पृशंति ये चापि पराचमनबिंदवः। ते पार्थिवैः समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत्॥७३॥
कृत्वा च मैथुनं स्पृष्ट्वा पतितं कुक्कुटादिकम्। सूकरं चैव काकादि श्वानमुष्ट्रं खरं तथा॥७४॥
यूपं चांडालकाद्यांश्च स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति। रजस्वलां सूतिकां च न स्पृशेदंत्यजामपि॥७५॥
सूतिकाशौचसंयुक्तः शावाशौचसमन्वितः। संस्पृशेन्न रजस्तासां स्पृष्ट्वा स्नानैव शुध्यति॥७६॥
नैवाशौचं यतीनां च वनस्थब्रह्मचारिणाम्। नैष्ठिकानां नृपाणां च मंडलीनां च सुव्रताः॥७७॥
ततः कार्यविरोधाद्धि नृपाणां नान्यथा भवेत्। वैखानसानां विप्राणां पतितानामसंभवात्॥७८॥
असंचयद्विजानां च स्नानमात्रेण नान्यथा। तथा संनिहितानां च यज्ञार्थं दीक्षितस्य च॥७९॥
एकाहाद्यज्ञयाजीनां शुद्धिरुक्ता स्वयंभुवा। ततस्त्वधीतशाखानां चतुर्भिः सर्वदेहिनाम्॥८०॥
सूतकं प्रेतकं नास्ति त्र्यहादूर्ध्वममुत्र वै। अर्वागेकादशाहांतं बांधवानां द्विजोत्तमाः॥८१॥
स्नानमात्रेण वै शुद्धिर्मरणे समुपस्थिते। तत ऋतुत्रयादर्वागेकाहः परिगीयते॥८२॥

में आने पर, छाया, जल की बूँदें, ब्राह्मण, मक्खियाँ, धूल, भूमि, वायु और अग्नि आदि शुद्ध होती हैं।।७१।। हे ब्राह्मणों! शुद्ध होने पर भी सोकर उठने पर, भोजन ग्रहण के बाद, छींकने के बाद, पीने के बाद और थूकने के बाद आचमन करना चाहिये। वेदों के अध्ययन के पूर्व और इस तरह के अन्य अवसरों पर भी आचमन करना चाहिये।।७२।। जबकि अन्य लोग आचमन कर रहे हों जल की बूँदें पैरों पर पड़ें तो वह धूल के समान है। इनसे कोई अशुद्ध नहीं होता।।७३।। सहवास के बाद और गिरे हुए व्यक्ति को छूने के बाद, मुर्गे, सुअर, कुत्ता, ऊँट, खच्चर, चाण्डालों और अन्य को छूने से स्नान मात्र से व्यक्ति शुद्ध हो जाता है। रजस्वला स्त्री को नहीं छूना चाहिये। प्रसूता और शूद्रा को भी नहीं छूना चाहिये।।७४-७५।। जन्म या मृत्यु के पश्चात् उनकी धूल को नहीं छूना चाहिये। छू लेने पर स्नान कर लेने से व्यक्ति शुद्ध हो जाता है।।७६।। यतियों, वानप्रस्थियों, ब्रह्मचारियों और नैष्ठिक ब्रह्मचारियों, राजाओं और प्रदेश के शासकों को अशौच नहीं लगता है।।७७।। राजाओं, सन्यासियों और ब्राह्मणों के कार्यविरत रहने पर ही अशौचावस्था हो सकती है। अन्यथा नहीं।।७८।। मृतक की अस्थियों के संचयन तक ब्राह्मणों की अशौचावस्था होती है। उसके बाद स्नान मात्र से उनकी शुद्धि हो जाती है। उसी प्रकार यज्ञ में भाग लेने वाले याज्ञिकों के लिये भी स्नान मात्र से शुद्धि हो जाती है। स्वयंभू ब्रह्मा ने कहा है कि यज्ञों के कराने वालों के लिये अशौच एक दिन का होता है। जिन्होंने वेदों की अपनी शाखा का अध्ययन किया है उनके लिये अशौच चार दिन का होता है।।७९-८०।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! जन्म और मृत्यु का अशौच बान्धवों के लिये तीन दिन से अधिक नहीं होता। यदि वे जन्म और मृत्यु के बारे में ग्यारह दिन बाद सुनते हैं।।८१।। यदि कोई मृत्यु के समय उपस्थित हो तो वह स्नान मात्र से शुद्ध हो जाता है। यदि छः महीने बाद मृत्यु की सूचना मिले तो अशौच केवल एक दिन का होता है।।८२।। यदि मृत्यु की सूचना सात वर्ष के पूर्व पता चले तो तीन

सप्तवर्षात्ततश्चार्वाक् त्रिरात्रं हि ततः परम्। दशाहं ब्राह्मणानां वै प्रथमेऽहनि वा पितुः॥८३॥
दशाहं सूतिकाशौचं मातुरप्येवमव्ययाः। अर्वाक् त्रिवर्षात्स्नानेन बांधवानां पितुः सदा॥८४॥
अष्टाब्दादेकरात्रेण शुद्धिः स्याद्बांधवस्य तु। द्वादशाब्दात्ततश्चार्वाक् त्रिरात्रं स्त्रीषु सुव्रताः॥८५॥
सपिंडता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते। अतिक्रांते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्॥८६॥
ततः सन्निहितो विप्रश्चार्वाक् पूर्वं तदेव वै। संवत्सरे व्यतीते तु स्नानमात्रेण शुध्यति॥८७॥
स्पृष्ट्वा प्रेतं त्रिरात्रेण धर्मार्थं स्नानमुच्यते। दाहकानां च नेतॄणां स्नानमात्रमबाधवे॥८८॥
अनुगम्य च वै स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति। आचार्यमरणे चैव त्रिरात्रं श्रोत्रिये मृते॥८९॥
पक्षिणी मातुलानां च सोदराणां च वा द्विजाः। भूपानां मंडलीनां च सद्यो नीराष्ट्रवासिनाम्॥९०॥
केवलं द्वादशाहेन क्षत्रियाणां द्विजोत्तमाः। नाभिषिक्तस्य चाशौचं संप्रमादेषु वै रणे॥९१॥
वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति। इति संक्षेपतः प्रोक्ता द्रव्यशुद्धिरनुत्तमा॥९२॥
अशौचं चानुपूर्व्येण यतीनां नैव विद्यते। त्रेताप्रभृति नारीणां मासि मास्यार्तवे द्विजाः॥९३॥
कृते सकृद्युगवशाज्जायंते वै सहैव तु। प्रयांति च महाभागा भार्याभिः कुरवो यथा॥९४॥
वर्णाश्रमव्यवस्था च त्रेताप्रभृति सुव्रताः। भारते दक्षिणे वर्षे व्यवस्था नेतरेष्वथ॥९५॥

दिन का अशौच होता है और उसके बाद ब्राह्मणों के लिये दस दिन का अशौच होता है। जन्म से होने वाला अशौच पिता के लिये एक दिन का होता है। हे ऋषियों! माता के लिये यह दस दिन का होता है। यदि तीन वर्ष बाद पता चले तो पिता और बान्धव दोनों अशौच स्नान मात्र से शुद्ध हो जाते हैं।।८३-८४।। यदि आठ वर्ष बाद सूचना मिले तो बान्धवगण एक दिन में शुद्ध हो जाते हैं। हे सुव्रतो! यदि बारह वर्ष या इसके बाद सूचना मिले तो महिलाओं के लिये तीन दिन का अशौच होता है।।८५।। सपिण्डता सात पीढ़ियों में समाप्त होती है। मृत्यु के दस दिन बीत जाने पर रात्रि का अशौच होता है।।८६।। एक वर्ष के बीत जाने पर ब्राह्मण स्नान मात्र से शुद्ध हो जाता है।।८७।। शव को छूने पर तीन दिन बाद शुद्ध होता है। यदि यह मात्र धर्म के लिये किया गया हो तो यह नियम अन्त्येष्टि करने वाले पर लागू होता है। अगर वह सम्बन्धी नहीं है तो मात्र स्नान करना आवश्यक है।।८८।। यदि शव का अनुसरण किया जाये तो स्नान करने और घी पीने से व्यक्ति शुद्ध हो जाता है। गुरु और वैदिक विद्वान के निधन पर तीन दिन का अशौच रहता है।।८९।। मामाओं और उनकी पत्नियों या भाइयों का निधन हो या राजाओं और शासकों का निधन होता है तो लोग तत्काल शुद्ध हो जाते हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! क्षत्रियों का अशौच बारह दिन का होता है। अभिषिक्त राजा को अपने उन बान्धवों को अशौच मानने की आवश्यकता नहीं है जो युद्ध में मरे हैं। वैश्य पन्द्रह दिनों में शुद्ध होता है। शूद्र एक मास के अन्दर शुद्ध होता है। इस प्रकार मैंने संक्षेप में आप से शौच विधि का बखान किया।।९०-९२।। संन्यासियों को जन्म और मृत्यु का अशौच नहीं होता। हे ब्राह्मणों! अब मैं अन्य अशौच महिलाओं के मासिक स्राव के बारे में कहूँगा।।९३।। युग की प्रकृति के अनुसार कृत युग में स्त्रियाँ मात्र एक बार जन्म देती थीं। तत्पश्चात् भाग्यवान लोग पत्नी सहित वन में चले जाते थे जैसा कि कुरुवर्ष के निवासी करते थे।।९४।। हे सुव्रतों! वर्ण और आश्रम

महावीते सुवीते च जंबूद्वीपे तथाष्टसु। शाकद्वीपादिषु प्रोक्तो धर्मो वै भारते यथा॥९६॥
रसोल्लासा कृते वृत्तिस्त्रेतायां गृहवृक्षजा। सैवार्तवकृताद्दोषाद्रागद्वेषादिभिर्नृणाम्॥९७॥
मैथुनात्कामतो विप्रास्तथैव परुषादिभिः। यवाद्या संप्रजायंते ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश॥९८॥
ओषध्यश्च रजोदोषाः स्त्रीणां रागादिभिर्नृणाम्। अकालकृष्टा विध्वस्ताः पुनरुत्पादितास्तथा॥९९॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न संभाष्या रजस्वला।
प्रथमेऽहनि चांडाली यथा वर्ज्या तथांगना॥१००॥

द्वितीयेऽहनि विप्रा हि यथा वै ब्रह्मघातिनी। तृतीयेऽह्नि तदर्धेन चतुर्थेऽहनि सुव्रता॥१०१॥

स्नात्वार्धमासात्संशुद्धा ततः शुद्धिर्भविष्यति।
आषोडशात्ततः स्त्रीणां मूत्रवच्छौचमिष्यते॥१०२॥

पंचरात्रं तथास्पृश्या रजसा वर्तते यदि। सा विंशद्दिवसादूर्ध्वं रजसा पूर्ववत्तथा॥१०३॥
स्नाने शौचं तथा गानं रोदनं हसनं तथा। यानमभ्यंजनं नारी द्यूतं चैवानुलेपनम्॥१०४॥
दिवास्वप्नं विशेषेण तथा वै दंतधावनम्। मैथुनं मानसं वापि वाचिकं देवतार्चनम्॥१०५॥
वर्जयेत्सर्वयत्नेन नमस्कारं रजस्वला। रजस्वलांगना स्पर्शसंभाषे च रजस्वला॥१०६॥
संत्यागं चैव वस्त्राणां वर्जयेत्सर्वयत्नतः। स्नात्वान्यपुरुषं नारी न स्पृशेत्तु रजस्वला॥१०७॥

की व्यवस्था त्रेता युग में प्रारम्भ हुई। यह व्यवस्था भारतीय उपद्वीप के दक्षिण में मानी जाती थी। अन्य में नहीं।।९५।। यह व्यवस्था भारत के साथ महावीत, सुवीत, जम्बूद्वीप आठ अन्य द्वीपों तथा शाकद्वीप में मानी जाती है।।९६।। कृत युग में लोग मात्र द्रव आहार से जीवन निर्वाह कर लेते थे। त्रेता युग में घरेलू वृक्षों (के फलों) से निर्वाह करते थे किन्तु बाद के युगों में यह क्रम टूट गया। ऐसा ही मनुष्यों की काम वासना के कारण मासिक स्राव के समय सहवास के मामले में भी हुआ। हे ब्राह्मणों! जौ तथा अन्य ग्रामीण एवं वनीय पौधे और चौदह औषधियों के पौधे असमय उगाये और नष्ट किये जाने लगे। ऐसा पुरुषों की काम वासना के फलस्वरूप मासिक धर्म के दौरान असामयिक सम्भोग के कारण हुआ।।९७-९९।। अतः पुरुष को मासिक धर्म के दौरान स्त्री सम्पर्क को यत्नपूर्वक बचाना चाहिये। प्रथम दिन तो उससे चाण्डाल स्त्री की भाँति बचना चाहिये।।१००।। हे ब्राह्मणों! दूसरे दिन उसको उस स्त्री के समान समझना चाहिये जिसने ब्रह्महत्या की हो। तीसरे दिन इसके आधे पाप के बराबर भागीदार की तरह होती है। हे सुव्रत ऋषियों! चौथे दिन उसे स्नान करना चाहिये। तत्पश्चात् आधे माह के अन्दर वह शुद्ध हो जायेगी। सोलहवें दिन के बाद वह मूत्रत्याग के बाद स्वच्छता के नियमों का पालन करेगी।।१०१-१०२।। यदि मासिक स्राव जारी रहता है तो उसे पाँचवे दिन भी नहीं छूना चाहिये। बीस दिन तक वह मासिक स्राव से संदूषित और अस्पृश्य रहती है।।१०३।। मासिक स्राव के दौरान स्त्री के स्नान, शौच, गाने, रोने, हँसने, पान के प्रयोग, मालिश, द्यूत क्रीड़ा, लेपन (साज-सजा सम्बन्धी), दिन में सोने, दाँत माँजने, सहवास करने और मन और वाणी से पूजा अर्चना और नमस्कार से बचना चाहिये। मासिक धर्म के दौरान स्त्री को दूसरी स्त्री के स्पर्श और वार्तालाप से भी बचना चाहिये। उसे वस्त्र बदलने से भी यत्नपूर्वक बचना चाहिये।

ईक्षयेद्भास्करं देवं ब्रह्मकूर्चं ततः पिबेत्। केवलं पंचगव्यं वा क्षीरं वा चात्मशुद्धये॥१०८॥
चतुर्थ्यां स्त्री न गम्या तु गतोल्पायुः प्रसूयते। विद्याहीनं व्रतभ्रष्टं पतितं पारदारिकम्॥१०९॥
दारिद्र्यार्णवमग्नं च तनयं सा प्रसूयते। कन्यार्थिनैव गंतव्या पंचम्यां विधिवत्पुनः॥११०॥
रक्ताधिक्याद्भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेत्पुमान्। समे नपुसंकं चैव पंचम्यां कन्यका भवेत्॥१११॥
षष्ठ्यां गम्या महाभागा सत्पुत्रजननी भवेत्। पुत्रत्वं व्यंजयेत्तस्य जातपुत्रो महाद्युतिः॥११२॥
पुमिति नरकस्याख्या दुःखं च नरकं विदुः। पुंसस्त्राणान्वितं पुत्रं तथाभूतं प्रसूयते॥११३॥
सप्तम्यां चैव कन्यार्थी गच्छेत्सैव प्रसूयते। अष्टम्यां सर्वसंपन्नं तनयं संप्रसूयते॥११४॥
नवम्यां दारिकायार्थी दशम्यां पंडितो भवेत्। एकादश्यां तथा नारीं जनयेत्सैव पूर्ववत्॥११५॥
द्वादश्यां धर्मतत्त्वज्ञं श्रौतस्मार्तप्रवर्तकम्। त्रयोदश्यां जडां नारीं सर्वसंकरकारिणीम्॥११६॥
जनयत्यंगना यस्मान्न गच्छेत्सर्वयत्नतः। चतुर्दश्यां यदा गच्छेत्सा पुत्रजननी भवेत्॥११७॥
पंचदश्यां च धर्मिष्ठां षोडश्यां ज्ञानपारगम्। स्त्रीणां वै मैथुने काले वामपार्श्वे प्रभंजनः॥११८॥
चरेद्यदि भवेन्नारी पुमांसं दक्षिणे लभेत्। स्त्रीणां मैथुनकाले तु पापग्रहविवर्जिते॥११९॥

मासिक धर्म के दौरान स्नान के बाद अन्य पुरुष को न छुये।।१०४-१०७।। शौच के लिये उसे (रजस्वला स्त्री को) सूर्य की ओर देखना चाहिये। ब्रह्मकूर्च, पंचगव्य और दूध पीना चाहिये।।१०८।। मासिक स्राव प्रारम्भ होने के चौथे दिन पुरुष को सहवास नहीं करना चाहिये। यदि ऐसा करता है तो सन्तान अल्पायु होगी। ऐसे सम्भोग से पैदा हुआ पुत्र विद्याहीन, व्रतों का उल्लंघन करने वाला, अन्य स्त्रियों को भ्रष्ट करने वाला और दरिद्रता के सागर में डूबा हुआ होता है। अतः पाँचवी रात्रि में ही स्त्री गमन करना चाहिये यदि पुत्री की आकांक्षा हो।।१०९-११०।। यदि रक्त के प्रभाव का आधिक्य हो तो कन्या होगी। यदि वीर्य प्रभावी हुआ तो पुत्र होगा और दोनों के प्रभावी होने पर सन्तान नपुंसक होती है। यदि पाँचवी रात सहवास किया जाये तो कन्या होगी।।१११।। यदि भाग्यवती नारी से छठवें दिन सहवास किया जाय तो वह अच्छे पुत्र को जन्म देगी। वह पुत्र अत्यधिक मेधावी और आज्ञाकारी होगा।।११२।। पुम् शब्द का अर्थ है नरक और नरक को दुःखमय कहा गया है। वह ऐसे पुत्र को जन्म देगी जो अपने माता-पिता को पुम् से बचायेगा।।११३।। बेटी चाहने वाले पति को सातवीं रात को स्त्रीगमन करना चाहिये। वह कन्या को जन्म देगी। यदि आठवीं रात सम्पर्क किया जाय तो सर्वगुण सम्पन्न पुत्र पैदा होगा।।११४।। कन्या चाहने वाले को नौवीं रात्रि में पत्नी गमन करना चाहिये। यदि दसवीं रात को गमन किया जाय तो विद्वान पुत्र पैदा होगा। यदि ग्यारहवीं रात में गमन किया जाय तो पूर्व की भाँति कन्या पैदा होगी।।११५।। यदि बारहवीं रात गमन किया जाय तो ऐसे पुत्र को जन्म देगी जो धर्मज्ञ होगा और श्रुतियों और स्मृतियों के अनुसार अनुष्ठानों को करने वाला होगा। यदि तेरहवीं रात गमन किया जाय तो ऐसी कन्या पैदा होगी जो जड़ होगी और वर्णसंकरता फैलायेगी। अतः यत्नपूर्वक तेरहवीं रात को उससे बचना चाहिये। यदि चौदहवीं रात गमन किया जाये तो वह पुत्र की माँ होगी।।११६-११७।। यदि पन्द्रहवीं रात को गमन किया जाय वह धर्मवती कन्या को और सोलहवीं रात को गमन करने पर ज्ञानी पुत्र को जन्म देगी। यदि सहवास के दौरान स्त्री को बाँयी ओर से वायु प्रवाह हो तो कन्या पैदा होगी। यदि दाँयी ओर से हो तो वह पुत्र को जन्म देगी। सहवास

उक्तकाले शुचिर्भूत्वा शुद्धां गच्छेच्छुचिस्मिताम्।
इत्येवं संप्रसंगेन यतीनां धर्मसंग्रहे॥१२०॥
सर्वेषामेव भूतानां सदाचारः प्रकीर्तितः। यः पठेच्छ्रृणुयाद्वापि सदाचारं शुचिर्नरः॥१२१॥
श्रावयेद्वा यथान्यायं ब्राह्मणान् दग्धकिल्बिषान्।
ब्रह्मलोकमनुप्राप्य ब्रह्मणा सह मोदते॥१२२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सदाचारकथनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः॥८९॥

काल में दुष्ट ग्रहों के प्रभाव से मुक्त होना चाहिये। उपर्युक्त कथित काल में पति को स्वच्छ और शुद्ध ठीक मुस्कुराहट के साथ प्रसन्नतापूर्वक पत्नी से मिलना चाहिये। इस प्रकार यतियों के सदाचार के सन्दर्भ में सारे प्राणियों का सदाचार आपको बताया गया। जो व्यक्ति इसे श्रद्धापूर्वक पढ़ता, सुनता और शुद्ध ब्राह्मणों को सुनाता है वह ब्रह्मा के साथ ब्रह्मलोक में सुख से रहता है।।११८-१२२।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में सदाचार कथन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त॥८९॥

—※※※—

नवतितमोऽध्यायः

यतिप्रायश्चित्तम्

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चितम्। प्रायश्चित्तं शिवप्रोक्तं यतीनां पापशोधनम्॥१॥
पापं हि त्रिविधं ज्ञेयं वाङ्मनःकायसंभवम्। सततं हि दिवा रात्रौ येनेदं वेष्ट्यते जगत्॥२॥
तत्कर्मणा विनाप्येष तिष्ठतीति परा श्रुतिः। क्षणमेवं प्रयोज्यं तु आयुष्यं तु विधारणम्॥३॥
भवेद्योगोऽप्रमत्तस्य योगो हि परमं बलम्। न हि योगात्परं किंचिन्नराणां दृश्यते शुभम्॥४॥
तस्माद्योगं प्रशंसंति धर्मयुक्ता मनीषिणः। अविद्यां विद्यया जित्वा प्राप्यैश्वर्यमनुत्तमम्॥५॥
दृष्ट्वा परावरं धीराः परं गच्छंति तत्पदम्। व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च॥६॥
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते। उपेत्य तु स्त्रियं कामात्प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्॥७॥
प्राणायामसमायुक्तं चरेत्सांतपनं व्रतम्। ततश्चरति निर्देशात्कृच्छ्रं चांते समाहितः॥८॥
पुनराश्रममागत्य चरेद्भिक्षुरतंद्रितः। न धर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः॥९॥

नब्बेवाँ अध्याय

यतियों का प्रायश्चित्त

सूत बोले

इसके बाद अब मैं विशेष रूप से यतियों के पापों के शोधन के लिये प्रायश्चित्त को कहूँगा। शिव के द्वारा यह प्रायश्चित्त विधि कही गयी है।।१।। पाप तीन प्रकार के होते हैं। वाणी से, मन से और शरीर से पाप किये जाते हैं। दिन और रात निरन्तर पाप जगत् को आच्छादित किये हुए हैं।।२।। जगत् के क्रिया-कलाप एक क्षण भी नहीं रुकते हैं। "कर्म के बिना जगत् एक क्षण भी नहीं रुक सकता।" ऐसा पवित्र श्रुति (वेद) कहती है। योग से बढ़कर मानव के लिये कोई दूसरा पवित्र कार्य नहीं है।।३।। इसलिये धार्मिक मनीषी लोग योग की प्रशंसा करते हैं। विद्या से अविद्या को जीतकर अनुपम ऐश्वर्य को प्राप्त करके धीर लोग सबसे बढ़कर महत्तर ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। यतियों द्वारा दो प्रकार के व्रत और उपव्रत किये जाते हैं। उनमें से प्रत्येक के लिये प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। अपनी इच्छा से स्त्री गमन करने पर गम्भीरतापूर्वक प्रायश्चित्त करने में अपने को लगाये।।४-७।। उसको प्राणायाम करके सांतपन व्रत को करना चाहिये। तत्पश्चात् बहुत ध्यानपूर्वक एकाग्रचित्त होकर अन्त में कृच्छ्र व्रत को निर्देशानुसार करे।।८।। फिर वही अपनी कुटी में लौट आवे और सावधानीपूर्वक धार्मिक कृत्य करे। विद्वान् लोग कहते हैं कि धर्मयुक्त असत्य किसी को आहत नहीं करता फिर भी उसका अनुगमन नहीं करना चाहिये। इसका परिणाम भयावह होता है। एक रात और एक दिन का उपवास और सौ

तथापि न च कर्तव्यं प्रसंगो ह्येष दारुणः। अहोरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा॥१०॥
असद्वादो न कर्तव्यो यतिना धर्मलिप्सुना। परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमप्युत॥११॥
स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति श्रुतिः। हिंसा ह्येषा परा सृष्टा स्तैन्यं वै कथितं तथा॥१२॥
यदेतद्द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः। स तस्य हरते प्राणान्यो यस्य हरते धनम्॥१३॥
एवं कृत्वा सुदुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्युतः। भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चांद्रायणं व्रतम्॥१४॥
विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः।
ततः संवत्सरस्यांते भूयः प्रक्षीणकल्मषः। पुनर्निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतंद्रितः ॥१५॥
अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा।
अकामादपि हिंसेत यदि भिक्षुः पशून् कृमीन्॥१६॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत चांद्रायणमथापि वा। स्कंदेदिंद्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यति र्यदि॥१७॥
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश। दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते॥१८॥
त्रिरात्रमुपवासाश्च प्राणायामशतं तथा।
रात्रो स्कन्नः शुचिः स्नात्वा द्वादशैव तु धारणाः॥१९॥
प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विजाः। एकान्नं मधु मांसं वा अशृतान्नं तथैव च॥२०॥
अभोज्यानि यतीनां तु प्रत्यक्षलवणानि च। एकैकातिक्रमात्तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते॥२१॥

प्राणायाम इसका प्रायश्चित्त है।।९-१०।। धर्म प्राप्ति के इच्छुक यति को कटु वचन और विवाद का अनुगमन नहीं करना चाहिये। घोर विपत्ति में पड़ जाने पर भी चोरी नहीं करना चाहिये।।११।। चोरी से बढ़कर कोई अधर्म नहीं होता ऐसा श्रुति कहती है। चोरी में बहुत बड़ी हिंसा निहित है। 'ऐश्वर्य' जिसको बाहरी प्राण नाम दिया गया है। अतः जो इसका अपहरण करता है वह उस व्यक्ति का प्राण हरण करता है।।१२-१३।। ऐसा (चोरी) करने से वह दुष्टात्मा सदाचार के बन्धनों का उल्लंघन करता है। इस प्रकार वह व्रत से च्युत हो जाता है। उसको इसके लिये बारम्बार पश्चात्ताप करना चाहिये और एक वर्ष तक चान्द्रायण व्रत करना चाहिये जैसा कि शास्त्रों में विधान है। वर्ष के अन्त में वह अपने सब पापों से छूट जायेगा। यति को फिर सावधानीपूर्वक पश्चात्ताप करना चाहिये और अनुष्ठान करना चाहिये।।१४-१५।। यति को किसी भी प्राणी को मनसा, वाचा, कर्मणा आहत करने से बचना चाहिये। यदि भूल से भी किसी प्राणी या कीड़े-मकोड़े तक को भी आहत करता है तो उसे कृच्छातिकृच्छ और चान्द्रायण व्रत करना चाहिये।।१६-१७अ।। यदि यति किसी स्त्री को देखकर इन्द्रिय की दुर्बलतावश वीर्यपात करे तो उसे सोलह बार प्राणायाम करना चाहिये।।१७ब-१८अ।। दिन के समय किसी ब्राह्मण के वीर्यपात का प्रायश्चित्त का विधान है, तीन रात्रि का उपवास और सौ प्राणायाम।।१८अ-१९अ।। यदि रात्रि के समय वीर्यपात हो तो स्वच्छ स्नान और बारह धारणा का विधान है। हे ब्राह्मणों! प्राणायाम से व्यक्ति प्रवित्र आत्मा और पापमुक्त हो जाता है।।१९ब-२०अ।। यति के लिये प्रति दिन एक ही घर से भिक्षा प्राप्त करना, मधु (शहद) सुरा, माँस, बिना पकाया हुआ भोजन और नमक का निषेध है। इनमें से किसी का भी उल्लंघन करने पर प्रायश्चित्त का विधान है।।२०ब-२१।। प्रजापात्य और कृच्छ्र व्रतों को करने से इस पाप से मुक्त हो जाता

प्राजापत्येन कृच्छ्रेण ततः पापात्प्रमुच्यते। व्यतिक्रमाश्च ये केचिद्वाङ्मनःकायसंभवाः॥२२॥
सद्भिः सह विनिश्चित्य यद्ब्रूयुस्तत्समाचरेत्॥२३॥
चरेद्धि शुद्धः समलोष्ठकांचनः समस्तभूतेषु च सत्समाहितः।
स्थानं ध्रुवं शाश्वतमव्ययं तु परं हि गत्वा न पुनर्हि जायते॥२४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे यतिप्रायाश्चित्तं नाम नवतितमोऽध्यायः॥९०॥

है। अन्य उल्लंघनों के लिये चाहे वह मन से वाणी से या कर्मों से हो, विद्वानों से सम्पर्क करके उनके द्वारा बताये गये विधान से प्रायश्चित्त करना चाहिये।।२२-२३।। व्यक्ति को मिट्टी के ढेले और सोने को एक समान दृष्टि से देखते हुये अनुष्ठान करना चाहिये। सब प्राणियों के प्रति उसे सम्मानयुक्त होना चाहिये। इस प्रकार रहते हुए वह उस स्थिर शाश्वत और महान धाम को प्राप्त कर लेगा जहाँ से पुनः जन्म नहीं लेता है।।२४।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में यतियों के प्रायश्चित्त नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त॥९०॥

एकनवतितमोऽध्यायः

अरिष्टकथनम्

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि अरिष्टानि निबोधत। येन ज्ञानविशेषेण मृत्युं पश्यंति योगिनः॥१॥
अरुंधतीं ध्रुवं चैव सोमच्छायां महापथम्। यो न पश्येन्न जीवेत्स नरः संवत्सरात्परम्॥२॥
अरश्मिवन्तमादित्यं रश्मिवंतं च पावकम्। यः पश्यति न जीवेद्वै मासादेकादशात्परम्॥३॥
वमेन्मूत्रं पुरीषं च सुवर्णं रजतं तथा। प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासान्न जीवति॥४॥
रुक्मवर्णं द्रुमं पश्येद्गंधर्वनगराणि च। पश्येत्प्रेतपिशाचांश्च नवमासान् स जीवति॥५॥

अकस्माच्च भवेत्स्थूलो ह्यकस्माच्च कृशो भवेत्।
प्रकृतेश्च निवर्तेत चाष्टौ मासांश्च जीवति॥६॥

अग्रतः पृष्ठतो वापि खंडं यस्य पदं भवेत्। पांसुके कर्दमे वापि सप्तमासान्स जीवति॥७॥
काकः कपोतो गृध्रो व निलीयेद्यस्य मूर्धनि। क्रव्यादो वा खगो यस्य षण्मासान्नातिवर्तते॥८॥
गच्छेद्वायसपंक्तीभिः पांसुवर्षेण वा पुनः। स्वच्छायां विकृतो पश्येच्चतुः पंच स जीवति॥९॥
अनभ्रे विद्युतं पश्येद्दक्षिणां दिशमास्थिताम्। उदके धनुरैद्रं वा त्रीणि द्वौ वा स जीवति॥१०॥

नवतितमोऽध्याय

अरिष्ट कथन

सूत बोले

अब मैं अरिष्टों (दुर्भाग्य या मृत्यु को इंगित करने वाली घटनाएँ) के बारे में बताऊँगा। उनको जानिये।।१।। यदि कोई अरुन्धती या ध्रुव को नहीं देखता है। चन्द्रमा की छाया और महापथ (आकाश मार्ग) नहीं देखता है तो वह एक वर्ष से अधिक नहीं जियेगा।।२।। अगर किरणों रहित सूर्य को देखता है और अग्नि किरणों सहित देखता है तो वह ग्यारह मास से अधिक जीवित नहीं रहेगा।।३।। जो वमन (उल्टी) मलमूत्र त्याग करने को सोने-चाँदी के रूप में देखता है वह दस मास से अधिक जीवित नहीं रहेगा।।४।। जो सुनहरे रंग का वृक्ष देखता है, गन्धर्व नगर को, भूतों और प्रेतात्माओं को देखता है वह मात्र एक माह जीवित रहेगा।।५।। जो अकस्मात् दुबला या मोटा हो जाता है, जो अपनी प्रकृति से दूर हो जाता है, वह मात्र आठ मास जीवित रहता है।।६।। जिसके पद चिह्न (धूल में या कीचड़ में) सामने या पीछे की ओर खण्डित दिखाई देते हैं वह सात मास ही जीवित रहेगा।।७।। जिसके सिर पर कौआ, कबूतर, गीध या अन्य कोई शिकारी पक्षी बैठ जाता है वह छह मास से अधिक जीवित नहीं रहेगा।।८।। वह जो कौओं की पंक्तियों के साथ जाता है या आँधी-तूफान में जाता या अपनी परछाँई को विकृत रूप में देखता है वह केवल चार या पाँच मास जीवित रहता है।।९।। जो मेधशून्य आकाश

अप्सु वा यदि वादर्शे यो ह्यात्मानं न पश्यंति। अशिरस्कं तथा पश्येन्मासादूर्ध्वं न जीवति॥११॥
शवगंधि भवेद्गात्रं वसागंधमथापि वा। मृत्युर्ह्युपागतस्तस्य अर्धमासान्न जीवति॥१२॥
यस्य वै स्नातमात्रस्य हृदयं परिशुष्यति। धूमं वा मस्तकात्पश्येद् दशाहान्न स जीवति॥१३॥
संभिन्नो मारुतो यस्य मर्मस्थानानि कृंतति। अद्भिः स्पृष्टो न हृष्येत तस्य मृत्युरुपस्थितः॥१४॥
ऋक्षवानरयुक्तेन रथेनाशां च दक्षिणाम्। गायन्नृत्यन्व्रजेत्स्वप्ने विद्यान्मृत्युरुपस्थितः॥१५॥
कृष्णांबरधरा श्यामा गायंती वाप्यथांगना। यं नयेद्दक्षिणामाशां स्वप्ने सोपि न जीवति॥१६॥
छिद्रं वा स्वस्य कंठस्य स्वप्ने यो वीक्षते नरः। नग्नं वा श्रमणं दृष्ट्वा विद्यान्मृत्युमुपस्थितम्॥१७॥
आमस्तकतलाद्यस्तु निमज्जेत्पंकसागरे। दृष्ट्वा तु तादृशं स्वप्नं सद्य एव न जीवति॥१८॥
भस्मांगारांश्च केशांश्च नदीं शुष्कां भुजंगमान्। पश्येद्यो दशरात्रं तु न स जीवति तादृशः॥१९॥

कृष्णश्चै विकटैश्चैव पुरुषैरुद्यतायुधैः।
पाषाणैस्ताड्यते स्वप्ने यः सद्यो न स जीवति॥२०॥

सूर्योदये प्रत्युषसि प्रत्यक्षं यस्य वै शिवाः। क्रोशंत्यभिमुखं प्रेत्य स गतायुर्भवेन्नरः॥२१॥
यस्य वा स्नातमात्रस्य हृदयं पीड्यते भृशम्। जायते दंतहर्षश्च तं गतायुषमादिशेत्॥२२॥

में विद्युत को दक्षिण दिशा में देखता है और जो जल में इन्द्रधनुष को देखता है वह केवल एक मास जीवित रहता है।।१०।। जो अपने को जल में या दर्पण में देखने में समर्थ नहीं होता है या यदि वह अपने को सिर विहीन देखता है वह एक मास से अधिक जीवित नहीं रहेगा।।११।। यदि किसी के शरीर से शव की गंध आती हो या चर्बी की गंध आती हो तो उसकी मृत्यु समीप माननी चाहिये। वह आधे मास से अधिक नहीं जीवित रहता।।१२।। स्नान करने के तुरन्त बाद जिसका शरीर सूख जाता है या जिसके सिर से धुआँ प्रकट हो वह दस दिन से अधिक जीवित नहीं रहता।।१३।। जिसके शरीर के मर्म स्थानों को वायु का झोंका भेद देता है, पानी से छींटा मारने पर जो प्रसन्न नहीं होता उसकी मृत्यु आसन्न समझनी चाहिये।।१४।। यदि कोई भालू या बन्दर से जुते हुए रथ पर बैठकर दक्षिण दिशा की ओर जाता है और उसी बीच नाचता या गाता है तो समझना चाहिये कि उसकी मृत्यु आसन्न है।।१५।। यदि स्वप्न में काले रंग की स्त्री गाते हुए और काले कपड़े पहने हुए किसी को दक्षिण दिशा की ओर ले जाय तो वह दीर्घकाल तक जीवित नहीं रहता।।१६।। जो व्यक्ति स्वप्न में अपने कंठ को कटा हुआ देखता है या नंगे श्रमण (बौद्ध भिक्षु) को देखता है उसे अपनी मृत्यु को उपस्थित समझना चाहिये।।१७।। जो व्यक्ति स्वप्न में अपने को कीचड़ के सागर में मस्तक तक डूबे हुए देखता है उसके जीवन का तुरन्त अन्त होता है।।१८।। यदि कोई व्यक्ति राखों को, जलते अंगारों को, बालों को, सूखी नदी को और सर्पों को स्वप्न में देखता है वह दस दिन से अधिक नहीं जियेगा।।१९।। जो स्वप्न में काले विकट व्यक्तियों द्वारा हाथ उठाकर पत्थरों से मारा जाता हुआ अपने को देखता है वह अपने जीवन को तुरन्त त्याग देता है।।२०।। यदि प्रातःकाल किसी व्यक्ति पर सियार हुआ-हुआ करे तो उसके जीवन के दिन गिनती के होते हैं।।२१।। यदि स्नान के तत्काल बाद हृदय में तीव्र पीड़ा हो और दाँतों में सनसनाहट हो तो उसकी मृत्यु आई

भूयोभूयस्त्रसेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा दिवा। दीपगंधं च नाघ्राति विद्यान्मृत्युमुपस्थितम्।।२३।।
रात्रौ चेंद्रधनुः पश्येद्दिवा नक्षत्रमंडलम्। परनेत्रेषु चात्मानं न पश्येन्न स जीवति।।२४।।
नेत्रमेकं स्रवेद्यस्य कर्णौ स्थानाच्च भ्रश्यतः। वक्रा च नासा भवति विज्ञेयो गतजीवितः।।२५।।

यस्य कृष्णा खरा जिह्वा पद्माभासं च वै मुखम्।
गंडे वा पिंडिकारक्ते तस्य मृत्युरुपस्थितः।।२६।।

मुक्तकेशो हसंश्चैव गायन्नृत्यंश्च यो नरः। याम्यामभिमुखं गच्छेत्तदंतं तस्य जीवितम्।।२७।।
यस्य श्वेतघनाभासा श्वेतसर्षपसंनिभा। श्वेता च मूर्तिर्ह्यसकृत्तस्य मृत्युरुपस्थितः।।२८।।
उष्ट्रा वा रासभा वाभियुक्ताः स्वप्ने रथे शुभाः। यस्य सोपि न जीवेत्तु दक्षिणाभिमुखो गतः।।२९।।
द्वे वाथ परमेऽरिष्टे एकीभूतः परं भवेत्। घोषं न श्रृणुयात्कर्णे ज्योतिर्नेत्रे न पश्यति।।३०।।
श्वभ्रे यो निपतेत्स्वप्ने द्वारं चापि पिधीयते। न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदंतं तस्य जीवितम्।।३१।।

ऊर्ध्वा च दृष्टिर्न च संप्रतिष्ठा रक्ता पुनः संपरिवर्तमाना।
मुखस्य शोषः सुषिरा च नाभिरत्युष्णमूत्रो विषमस्थ एव।।३२।।

दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रत्यक्षं यो निहन्यते। हंतारं न च पश्येच्च स गतायुर्न जीवति।।३३।।
अग्निप्रवेशं कुरुते स्वप्नांते यस्तु मानवः। स्मृतिं नोपलभेच्चापि तदंतं तस्य जीवितम्।।३४।।

हुई समझनी चाहिये।।२२।। यदि कोई व्यक्ति रात में या दिन में बार-बार डरा हुआ सा हो और दीपक की गन्ध को न सूँघ पाता हो तो उसकी अपनी मृत्यु को उपस्थित समझना चाहिये।।२३।। जो रात में इन्द्रधनुष को देखे अथवा दिन में नक्षत्र मण्डल को देखे और दूसरे की आँखों में अपना प्रतिबिम्ब न देख सके, वह नहीं जीवित रहता।।२४।। यदि किसी की एक आँख से पानी आता हो और स्वप्न में दोनों कान अपने स्थान से खिसके हुए और नाक झुकी हो तो वह व्यक्ति शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है।।२५।। यदि जीभ काली और खुरदरी हो जाय और मुख कमल की तरह लाल हो जाय और गाल लाल और फूले से हों तो उसकी मृत्यु आसन्न होती है।।२६।। जो व्यक्ति खुले हुए बालों सहित दक्षिण दिशा की ओर गाते, हँसते और नाचते हुए अपने को स्वप्न में देखे उसके जीवन का अन्त समझना चाहिये।।२७।। यदि शरीर का रंग सफेद मेघों की आभा के समान या सफेद सरसों की भाँति सफेद हो जाय तो मृत्यु उपस्थित समझना चाहिये।।२८।। यदि कोई व्यक्ति स्वप्न में ऊँट और खच्चरों को रथ में जुते हुए देखे तो यह अशुभ है और यदि रथ दक्षिण दिशा में जा रहा है जो वह व्यक्ति जीवित नहीं रहेगा।।२९।। दो पूर्व घटनाओं का एक साथ दिखना, कान में शोर न सुनाई पड़ना, आँखों में ज्योति न दिखाई पड़ना, गड्ढे में गिर पड़ना और उठ न पाना, बन्द द्वार दिखना, यदि स्वप्न में ये सारी बातें दिखाई दें तो मृत्यु आसन्न समझना चाहिये।।३०-३१।। आँखे ऊपर की ओर उलट जायें, वे स्थिर न हो, वे लाल हों और गोल-गोल घूमती हों, मुँह सूख जाय, नाभि में छिद्र हो जाय, मूत्र अत्यधिक गर्म हो, तो ऐसा व्यक्ति अत्यन्त विपत्ति में है और उसकी मृत्यु निकट है।।३२।। कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से दिन या रात में मारा जाता हुआ भी मारने वाले को न देख सके तो उसको गतायु समझना चाहिये।।३३।। यदि कोई व्यक्ति स्वप्न के अन्त में अपने को

यस्तु प्रावरणं शुक्लं स्वकं पश्यति मानवः। कृष्णं रक्तमपि स्वप्ने तस्य मृत्युरुपस्थितः॥३५॥
अरिष्टे सूचिते देहे तस्मिन्काल उपस्थिते। त्यक्त्वा खेदं विषादं च उपेक्षेद्बुद्धिमान्नरः॥३६॥

प्राचीं वा यदि वोदीचीं दिशं निष्क्रम्य वै शुचिः।
समेऽतिस्थावरे देशे विविक्ते जंतुवर्जिते॥३७॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वस्थश्चाचांत एव च।
स्वस्तिकेनोपविष्टस्तु नमस्कृत्वा महेश्वरम्॥३८॥

समकायशिरोग्रीवो धारयन्नावलोकयेत्। यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता॥३९॥
प्रागुदक्प्रवणे देशे तथा युंजीत शास्त्रवित्। कामं वितर्कं प्रीतिं च सुखदुःखे उभे तथा॥४०॥
निगृह्य मनसा सर्वं शुक्लं ध्यानमनुस्मरेत्। घ्राणे च रसने नित्यं चक्षुषी स्पर्शने तथा॥४१॥
श्रोत्रे मनसि बुद्धौ च तत्र वक्षसि धारयेत्। कालकर्माणि विज्ञाय समूहेष्वेव नित्यशः॥४२॥
द्वादशाध्यात्ममित्येवं योगधारणमुच्यते। शतमर्धशतं वापि धारणं मूर्ध्नि धारयेत्॥४३॥
खिन्नस्य धारणायोगाद्वायुरूर्ध्वं प्रवर्तते। ततश्चापूरयेद्देहमोंकारेण समन्वितः॥४४॥
तथोंकारमयो योगी अक्षरे त्वक्षरी भवेत्। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि ओंकारप्राप्तिलक्षणम्॥४५॥
एष त्रिमात्रो विज्ञेयो व्यंजनं चात्र चेश्वरः। प्रथमा विद्युती मात्रा द्वितीया तामसी स्मृता॥४६॥

अग्नि में प्रवेश करते हुए देखता है और उसे याद नहीं रखता तो उसका जीवन वहीं समाप्त होता है।।३४।। यदि कोई व्यक्ति स्वप्न में श्वेत कम्बल को काले या लाल रंग में देखता है तो उसकी मृत्यु उपस्थित है।।३५।। यदि देह में अरिष्ट सूचित हो जाय और मृत्यु का समय आ जाय तो खेद और विषाद छोड़कर बुद्धिमान को उसकी उपेक्षा करनी चाहिये।।३६।। स्वच्छ और शुद्ध होकर पूर्व या उत्तर की दिशा की ओर बढ़ना चाहिये। एक समतल और एकान्त और जन्तु रहित स्थान पर बैठ जाना चाहिये। पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके आचमन करना चाहिये। स्वस्तिक मुद्रा में बैठकर महेश्वर को प्रणाम करना चाहिये। शरीर, सिर और गरदन बिना हवा के दीप की लौ की तरह सीधा रखना चाहिये। बिना चंचलता के स्थिर रहना चाहिये। धारणा के समय किसी अन्य वस्तु की ओर नहीं देखना चाहिये।।३७-३९।। शास्त्रज्ञ को उत्तर-पूर्व की दिशा में मुख करके योग का अभ्यास करना चाहिये। वह कामवासना, तर्क, प्रसन्नता, सुख-दुःख को मन से नियन्त्रित करके विशुद्ध ज्ञान से एकाग्रचित्त हो जाय। उसे नाक, जिह्वा, आँख, त्वचा और मस्तिष्क पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। इनको बुद्धि और वक्ष में धारण करना चाहिये। काल और कर्म को अनुभव करके उसको शरीर के बारह अंगों को समूहों में नित्य धारण करना चाहिये। शरीर के बारह अंगों के इस नियन्त्रण को योगधारणा कहा गया है। पचास या सौ ऐसी धारणा को सिर में पूरा करना चाहिये।।४०-४३।। अगर वह धारणा के अभ्यास के कारण थक जाता है तो वायु ऊपर की ओर कार्य करना प्रारम्भ करती है। तब ओंकार के सहित शरीर को वायु से पूर्ण करना चाहिये। योगी अपने को ओंकारमय करके ओंकार में अपने को लीन कर दे। इस प्रकार वह अमर हो जायेगा। इसके बाद मैं ओंकार की प्राप्ति के लक्षणों का बखान करूँगा।।४४-४५।। यह तीन मात्राओं (इकाइयों) के रूप में जाना जाता है।

तृतीयां निर्गुणां चैव मात्रामक्षरगामिनीम्। गांधारी चैव विज्ञेया गांधारस्वरसंभवा॥४७॥
पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते। यथा प्रयुक्त ओंकारः प्रतिनिर्याति मूर्धनि॥४८॥
तथौकारमयो योगी त्वक्ष त्वक्षरी भवेत्। प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मलक्षणमुच्यते॥४९॥
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्। ओमित्येकाक्षरं ह्येतद्गुहायां निहितं पदम्॥५०॥
ओमित्येतत्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रयोऽग्नयः। विष्णुक्रमास्त्रयस्त्वेते ऋक्सामानि यजूंषि च॥५१॥
मात्रा चार्धं च तिस्त्रस्तु विज्ञेयः परमार्थतः।
तत्प्रयुक्तस्तु यो योगी तस्य सालोक्यमाप्नुयात्॥५२॥
अकारो ह्यक्षरो ज्ञेय उकारः सहितः स्मृतः। मकारसहितोंकारस्त्रिमात्र इति संज्ञितः॥५३॥
अकारस्त्वेष भूर्लोक उकारो भुव उच्यते। सव्यंजनो मकारस्तु स्वर्लोक इति गीयते॥५४॥
ओंकारस्तु त्रयो लोकाः शिरस्तस्य त्रिविष्टपम्। भुवनांगं च तत्सर्वं ब्राह्मं तत्पदमुच्यते॥५५॥
मात्रापादो रुद्रलोको ह्यमात्रं तु शिवं पदम्। एवं ज्ञानविशेषेण तत्पदं समुपास्यते॥५६॥
तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यममात्रं हि तदक्षरम्। उपास्यं हि प्रयत्नेन शाश्वतं सुखमिच्छता॥५७॥
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा ततो दीर्घा त्वनंतरम्। ततः प्लुतवती चैव तृतीया चोपदिश्यते॥५८॥
एतास्तु मात्रा विज्ञेया यथावदनुपूर्वशः। यावदेव तु शक्यंते धार्यंते तावदेव हि॥५९॥

यहाँ पर ईश्वर व्यंजन है। प्रथम मात्रा विद्युती है। दूसरी मात्रा तामसी अर्थात् तमो गुण युक्त है।।४६।। तीसरी मात्रा निर्गुणा (अर्थात गुण रहित) है। यह मात्रा अक्षर गामिनी है। इसको गांधारी भी कहते हैं क्योंकि यह भारतीय संगीत के गान्धार स्वर पर उत्पन्न हुई हैं।।४७।। जब ओंकार का उच्चारण किया जाता है तो भक्त को सिर पर चींटी के चलने की सी अनुभूति होती है।।४८।। ओंकारमय योगी अक्षर प्राणी के समरूप हो जाता है। प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है जिससे त्रुटि नहीं होती है। उसके द्वारा इसका बेध होना चाहिये। वह सावधान होकर बाण की तरह तन्मय हो जाय। एक मात्रा वाला ओम् शब्द गुहा में निहित है। ओंकार तीनों लोकों, तीनों वेदों, अग्नियों, विष्णु के तीनों पदों और तीनों शास्त्रों ऋक्, साम और यजु के समरूप है। वास्तव में यह साढ़े तीन मात्रा के रूप में जानने योग्य है। जो योगी इसे उच्चारण करता है वह देव के समरूप हो जाता है।।४९-५२।। अ, उ और म में अ अक्षर के रूप में ज्ञात है और उ इसके साथ है। म अक्षर को सम्मिलित करके ओंकार में तीन मात्राएँ हो जाती हैं।।५३।। अ अक्षर भूलोक है। उ भुवलोक है और म स्वर्लोक है।।५४।। ओम् तीनों लोकों का प्रतिनिधित्व करता है। उसका सिर स्वर्ग है। सारे लोक इसके अंग हैं। ब्रह्मलोक द्वारा उसके चरण बताये गये हैं।।५५।। रुद्र का लोक मात्रा का पद अर्थात् चरण है। मात्रा रहित अर्थात् अमात्र शिव का पद है। इस विशेष ज्ञान से उस शिव पद की पूजा की जानी चाहिये।।५६।। इसलिये भक्त को ध्यान में रत होना चाहिये। वस्तुतः वह अक्षर सदैव अमात्र अर्थात् मात्रा रहित है। स्थायी सुख प्राप्त करने के लिये वह प्रयत्नपूर्वक उपासना के योग्य है।।५७।। प्रथमा मात्रा हस्व होती है। द्वितीय दीर्घ और तृतीय मात्रा प्लुत होती है। इन तीनों मात्राओं को क्रमशः जानना चाहिये। उनको यथासमान धारण करना चाहिये।।५८-५९।। जो योगी ज्ञानेन्द्रियों,

इंद्रियाणि मनो बुद्धिं ध्यायन्नात्मनि यः सदा। अर्धं तन्मात्रमपि चेच्छृणु यत्फलमाप्नुयात्॥६०॥
मासेमासेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः। तेन यत्प्राप्यते पुण्यं मात्रया तदवाप्नुयात्॥६१॥
न तथा तपसोग्रेण न यज्ञैर्भूरिदक्षिणैः। यत्फलं प्राप्यते सम्यङ्मात्रया तदवाप्नुयात्॥६२॥
तत्र चैषा तु या मात्रा प्लुता नामोपदिश्यते। एषा एव भवेत्कार्या गृहस्थानां तु योगिनाम्॥६३॥
एषा चैव विशेषेण ऐश्वर्ये ह्यष्टलक्षणे। अणिमाद्ये तु विज्ञेया तस्माद्युंजीत तां द्विजाः॥६४॥
एवं हि योगसंयुक्तः शुचिर्दांतो जितेंन्द्रियः। आत्मानं विद्यते यस्तु स सर्वं विंदते द्विजाः॥६५॥
तस्मात्पाशुपतैर्योगैरात्मानं चिंतयेद्बुधः। आत्मानं जानते ये तु शुचयस्ते न संशयः॥६६।

ऋचो यजूंषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा।
योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणोऽध्यात्मचिंतकः॥६७॥

सर्वदेवमयो भूत्वा अभूतः स तु जायते। योनिसंक्रमणं त्यक्त्वा याति वै शाश्वतं पदम्॥६८॥
यथा वृक्षात् फलं पक्कं पवनेन समीरितम्। नमस्कारेण रुद्रस्य तथा पापं प्रणश्यति॥६९॥
यत्र रुद्रनमस्कारः सर्वकर्मफलो ध्रुवः। अन्यदेवनमस्कारान्न तत्फलमवाप्नुयात्॥७०॥
तस्मात्त्रिः प्रवणं योगी उपासीत महेश्वरम्। दशविस्तारकं ब्रह्म तथा च ब्रह्मविस्तरैः॥७१॥
एवं ध्यानसमायुक्तः स्वदेहं यः परित्येजत्। स याति शिवसायुज्यं समुद्धृत्य कुलत्रयम्॥७२॥

मन और बुद्धि से आत्मा में ध्यान करते हुए लीन रहता है और अर्धमात्रा को भी ध्यान से सुनता है तो इसका फल प्राप्त करता है।।६०।। प्रति माह एक अश्वमेध यज्ञ सौ वर्ष तक निरन्तर करने का जो लाभ होता है वह एक मात्रा प्राप्त से हो जाता है।।६१।। उग्र तपस्या से यज्ञों से और अत्यधिक दान दक्षिणा जो फल प्राप्त होता है वही मात्रा से प्राप्त होता है।।६२।। गृहस्थ योगी को केवल उस मात्रा का अभ्यास करना चाहिये जो कि प्लुत के नाम से कही गयी है।।६३।। हे ब्राह्मणों! केवल इस मात्रा में ही अणिमा से प्रारम्भ करके आठों सिद्धियाँ निहित हैं। इसलिये इससे तादात्म्य स्थापित करो।।६४।। हे ब्राह्मणों! जो आत्मा जान लेता है वह सबकुछ प्राप्त कर लेता है। वह योग से युक्त हो जायेगा। वह शुद्ध होगा। वह इन्द्रियों का दमन कर सकेगा और उन्हें नियन्त्रण में रखेगा।।६५।। अतः विद्वान व्यक्ति को पशुपति से सम्बन्धित योग से आत्मा पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। आत्मा को जानने वाले वे निश्चित ही शुद्ध हैं।।६६।। योग के ज्ञान से ही अध्यात्म चिन्तक ब्राह्मण ऋक्, साम, यजु, मन्त्रों, अपितु सभी वेदों और उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त करता है।।६७।। वह योगी सर्वदेवमय हो जाता है और सभी तत्त्वों से रहित हो जाता है। वह योनि संक्रमण अर्थात् पुनर्जन्म से मुक्त होकर शाश्वत स्थान को प्राप्त करता है।।६८।। जिस प्रकार वायु के द्वारा हिलाये जाने पर वृक्ष से पका हुआ फल गिर जाता है। उसी प्रकार रुद्र की कृपा से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।।६९।। रुद्र को किया हुआ नमस्कार निश्चित् ही सभी कर्मों के फलों को देने वाला है जबकि अन्य देवों को किये गये नमस्कार से उन फलों की प्राप्ति नहीं होगी।।७०।। इसलिये योगी को प्रणव मन्त्र की दो बार आवृत्ति करते हुए महेश्वर की उपासना करनी चाहिये। वह जो कि वेदों का विस्तार करता है और वैदिक ग्रन्थों को व्याख्या के द्वारा दस गुना करता है, वह ध्यान करके अपने शरीर का

अथवारिष्टमालोक्य मरणे समुपस्थिते। अविमुक्तेश्वरं गत्वा वाराणस्यां तु शोधनम्॥७३॥
येन केनापि वा देहं संत्यजेन्मुच्यते नरः। श्रीपर्वते वा विप्रेंद्राः संत्यजेत्स्वतनुं नरः॥७४॥
स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारणा। अविमुक्तं परं क्षेत्रं जंतूनां मुक्तिदं सदा॥७५॥
सेवेत सततं धीमान् विशेषान्मरणांतिके॥७६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे अरिष्टकथनं नाम एकनवतितमोऽध्यायः॥९१॥

परित्याग करे। इस प्रकार वह अपने कुल की तीन पीढ़ियों का उद्धार करके शिव का सान्निध्य प्राप्त करता है।।७१-७२।। जब अपना कुछ अरिष्ट देखे और मरण काल आसन्न समझे तो मनुष्य को अविमुक्तेश्वर—जो कि वाराणसी में स्थित हैं—में जाना चाहिये और प्रायश्चित्त अनुष्ठान करना चाहिये। किसी प्रकार से भी अपने शरीर का त्याग करने वाला, हे ब्राह्मणों! मुक्त हो जाता है। हे ब्राह्मणों! श्रीपर्वत पर अपने शरीर को त्याग देने से व्यक्ति शिव का सायुज्य प्राप्त करता है, इसमें शंका नहीं है। अविमुक्त सदा से प्राणियों को मुक्ति प्रदान करने वाला श्रेष्ठतम तीर्थ है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिये कि वह विशेषरूप से मरण काल में इसकी शरण में जाय।।७३-७६।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में अरिष्टकथन नामक एक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त॥९१॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

वाराणसीश्रीशैलमाहात्म्यम्

ऋषयः ऊचुः

एवं वाराणसी पुण्या यदि सूत महामते। वक्तुमर्हसि चास्माकं तत्प्रभावं हि सांप्रतम्॥१॥
क्षेत्रस्यास्य च माहात्म्यमविमुक्तस्य शोभनम्। विस्तरेण यथान्यायं श्रोतुं कौतूहलं हि नः॥२॥

सूत उवाच

वक्ष्ये संक्षेपतः सम्यक् वाराणस्याः सुशोभनम्। अविमुक्तस्य माहात्म्यं यथाह भगवान् भवः॥३॥
विस्तरेण मया वक्तुं ब्रह्मणा च महात्मना। शक्यते नैव विप्रेंद्रा वर्षकोटिशतैरपि॥४॥
देवः पुरा कृतोद्वाहः शंकरो नीललोहितः। हिमवच्छिखराद्देव्या हैमवत्या गणेश्वरैः॥५॥
वाराणसीमनुप्राप्य दर्शयामास शंकरः। अविमुक्तेश्वरं लिंगं वासं तत्र चकार सः॥६॥
वाराणसीकुरुक्षेत्रश्रीपर्वतमहालये। तुंगेश्वरे च केदारे तत्स्थाने यो यतिर्भवेत्॥७॥
योगे पाशुपते सम्यक् दिनमेकं यतिर्भवेत्। तस्मात्सर्वं परित्यज्य चरेत्पाशुपतं व्रतम्॥८॥
देवोद्याने वसेत्तत्र शर्वोद्यानमनुत्तमम्। मनसा निर्ममे रुद्रो विमानं च सुशोभनम्॥९॥

बानबेवाँ अध्याय

वाराणसीश्रीशैलमाहात्म्य

ऋषिगण बोले

हे परम मेधावी सूत! यदि वाराणसी इतनी पुण्यमयी है तो आपके लिये यह उचित है कि हमें इसकी महत्ता के बारे में बतायें। हम लोग उस पवित्र स्थान अविमुक्त के बारे में सुनने को उत्सुक हैं।।१-२।।

सूत बोले

मैं संक्षेप में आपको वाराणसी के अविमुक्त के बारे में उसी तरह बताऊँगा जैसे प्रभु भव ने सुनाया था।।३।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! मेरे द्वारा या महान् ब्रह्मा द्वारा भी सौ करोड़ वर्षों में भी इसका विस्तार से बखान नहीं हो सकता।।४।। पुराने समय में नीललोहित भगवान शंकर अपने विवाह के बाद हिमालय की पुत्री और अपने प्रमुख गणों के साथ हिमवान की चोटी से चले। वाराणसी पहुँचंकर शंकर जी ने अपने अविमुक्तेश्वर लिंग को दिखाया और वहाँ रहने लगे।।५-६।। वाराणसी, कुरुक्षेत्र, श्रीपर्वत, महालय, तुंगेश्वर और केदार में कोई व्यक्ति यति (सन्यासी) हो सकता है। किन्तु यदि कोई एक दिन भी पाशुपत योग पूर्णरूप से कर ले तो यति हो जाता है। अतः व्यक्ति को सब-कुछ त्यागकर पाशुपत योग करना चाहिये।।७-८।। वहाँ देवोद्यान में रहना चाहिये। वहाँ शर्व (शंकर जी) का एक अंति उत्तम उद्यान है। जहाँ रुद्र ने मन से एक मनोहर महल का निर्माण किया है।।९।।

दर्शयामास च तदा देवोद्यानमनुत्तमम्। हैमवत्याः स्वयं देवः सनंदी परमेश्वरः॥१०॥
क्षेत्रस्यास्य च माहात्म्यमविमुक्तस्य शंकरः। उक्तवान्परमेशानः पार्वत्याः प्रीतये भवः॥११॥
प्रफुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानादिमनोहरं बहिः।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियंगुभिः सुपुष्पितैः कंटकितैश्च केतकैः॥१२॥
तमालगुल्मैर्निचितं सुगंधिभिर्निकामपुष्पैर्वकुलैश्च सर्वतः।
अशोकपुन्नागशतैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसंचयैः॥१३॥
क्वचितप्रफुल्लाम्बुजरेणुभूषितैर्विहंगमैश्चानुकलप्रणादिभिः।
विनादितं सारसचक्रवाकैः प्रमत्तदात्यूहवरैश्च सर्वतः॥१४॥
क्वचिच्च केकारुतनादितं शुभं क्वचिच्च कारंडवनादनादितम्।
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतं मदाकुलाभिर्भ्रमरांगनादिभिः॥१५॥
निषेवितं चारुसुगंधिपुष्पकैः कचित्सुपुष्पैः सहकारवृक्षैः।
लतोपगूढैस्तिलकैश्च गूढं प्रगीतविद्याधरसिद्धचारणम्॥१६॥
प्रवृत्तनृत्तानुगताप्सरोगणं प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितम्।
प्रनृत्तहारीतकुलोपनादितं मृगेंद्रनादाकुलमत्तमानसैः॥१७॥
क्वचित्क्वचिद्वंधकदंबकैर्मृगैर्विलूनदर्भांकुरपुष्पसंचयम्।
प्रफुल्लनानाविधचारुपंकजैः सरस्तडागैरुपशोभितं क्वचित्॥१८॥

नन्दी सहित भगवान परमेश्वर ने स्वयं उत्तम देवोद्यान हैमवती (पार्वती जी) को दिखाया।।१०।। पार्वती के आनन्द के लिये परमेशान, भव, शंकर ने इस अविमुक्त क्षेत्र के माहात्म्य को कहा।।११।। वह उद्यान नाना प्रकार के फूलों से लदे वृक्षों के झुरमुटों से विभिन्न लताओं से युक्त है। पुष्पित प्रियंगु लताओं से और काँटों के होने के बावजूद भी मनोहर केतक पौधों से वह उद्यान मनोहर है।।१२।। यह सदैव यत्र तत्र फैले हुए तमाल वृक्षों के झुरमुटों, सुगन्धित बकुल फूलों, सैकड़ों अशोक और पुन्नाग के वृक्षों से सुशोभित और पुष्पों के ऊपर उड़ती मधुमक्खियों से गुञ्जायमान रहता है।।१३।। कहीं-कहीं यह उद्यान चक्रवाक, सारस और मदमस्त दात्यूह पक्षियों की फूले हुए कमलों के पराग से सुशेभित और उससे निनादित रहता है।।१४।। कहीं मयूरों की केकारव से, कहीं कारण्डव बतखों के नाद से उद्यान निनादित रहता है। कहीं पर मत्त भौरों और भ्रमरियों के समूहों से गुञ्जायमान रहता है।।१५।। उद्यान सुन्दर और सुगन्धित फूलों से परिपूर्ण है। कहीं नई बौरों से युक्त सहकार वृक्ष, कहीं लताओं से आच्छादित तिलक वृक्ष है। उद्यान में कहीं-कहीं विद्याधर, सिद्ध और चारण गाते हैं।।१६।। उद्यान में कहीं-कहीं अप्सराओं के समूह नृत्य रत रहते थे। नाना प्रकार के पक्षी यहाँ शरण लेते थे। हारीत के समूहों की ध्वनि से यह गुंजायमान रहता है। वनराज की दहाड़ से भयभीत पक्षियों से यह परिपूर्ण है।।१७।। कहीं-कहीं सुगन्धित पुष्पों के गुच्छों और हिरणों के द्वारा तोड़ी गयी दर्भ घास से परिपूर्ण है। कहीं-कहीं सुन्दर खिले हुए कमलों से युक्त तालाबों से सुशोभित है।।१८।। उद्यान नीलकण्ठ मयूरों की शोभा से—

विटपनिचयलीनं नीलकंठाभिरामं मदमुदितविहंगं प्राप्तनादाभिरामम्।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं नवकिसलयशोभाशोभितप्रांशुशाखम्॥१९॥
क्वचिच्च दंतक्षतचारुवीरुधं क्वचिल्लतालिंगितचारुवृक्षकम्।
क्वचिद्विलासालसगामिनीभिर्निषेवितं किंपुरुषांगनाभिः॥२०॥
पारावतध्वनिविकूजितचारुश्रृंगैरभ्रंकषैः सितंमनोहरचारुरूपैः।
आकीर्णपुष्पनिकरप्रविभक्तहंसैर्विभ्राजितं त्रिदशदिव्यकुलैरनेकैः॥२१॥
फुल्लोत्पलांबुजवितानसहस्त्रयुक्तं तोयाशयैः समनुशोभितदेवमार्गम्।
मार्गांतराकलितपुष्पविचित्रपंक्तिसंबद्धगुल्मविटपैर्विविधैरुपेतम् ॥२२॥
तुंगाग्रैर्नीलपुष्पैस्तबकभरनतप्रांशुशाखैरशोकै
दोंलाप्रांतांतलीनश्रुतिसुखजनकैर्भासितांतं मनोज्ञैः।
रात्रौ चंद्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां संप्रयातं
छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदूर्वांकुराग्रम् ॥२३॥
हंसानां पक्षवातप्रचलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयं
तोयानां तीरजातप्रचकितकदलीचाटुनृत्यन्मयूरम्।
मायूरैः पक्षचंद्रैः क्वचिदवनिगतै रंजितक्ष्माप्रदेशं
देशेदेशे विलीनप्रमुदितविलसन्मत्तहारीतवृंदम्॥२४॥

जो कि वृक्षों की शाखाओं के समूहों में छिपे रहते हैं—सुशोभित रहता है। विविध प्रकार के पक्षियों की ध्वनियों से सदैव गुंजायमान रहता है। कहीं-कहीं पूर्णरूप से खिले हुए वृक्षों की शाखाओं में मतवाले भौंरे छिपे रहते हैं। वृक्षों की ऊँची शाखाएँ नयी कलियों की शोभा से भव्य दिखती हैं।।१९।। कहीं-कहीं मन्द चालवाली किंपुरुष नारियों के दाँतों से काटी गई लताओं से स्थान सेवित है। कहीं-कहीं सुन्दर वृक्ष लताओं द्वारा आलिंगन किये जाते हैं।।२०।। वृक्षों की सुन्दर चोटियाँ बादलों का स्पर्श करती हैं। कबूतर और फाख्ता उन पर बैठकर मधुर ध्वनियाँ निकालते हैं। वृक्षों की चोटियाँ सुन्दर श्वेत मनोहर छवि धारण करती है। वृक्षों की चोटी से कपोतों (कबूतरों) के द्वारा गिराये गये पुष्प नीचे हंसों को व्याकुल करते हैं। उद्यान नाना प्रकार के दिव्य प्राणियों से युक्त है।।२१।। उस उद्यान में अनेक सरोवर हैं जिनमें दूर-दूर तक कमल कुमुदियाँ खिली रहती हैं। इनसे शिव के स्थान को जाने का मार्ग सुशोभित रहता है। वह स्थान विविध प्रकार की झाड़ियों और वृक्षों से युक्त है और मार्ग के मध्य में पुष्पों की पंक्तियाँ हैं।।२२।। उद्यान की सीमा ऊँची चोटियों वाले अशोक वृक्षों से शोभित होती हैं जिनकी लम्बी शाखाएँ फूलों से लदी होने के कारण झुकी रहती हैं। वृक्षों के दोनों ओर झूले हैं और वहाँ रहने वाले पक्षियों से श्रुतिमधुर ध्वनि हुआ करती है। रात्रि में चन्द्रमा की आभा के कारण ये वृक्ष खिले हुए तिलक वृक्षों की तरह दिखते हैं। वृक्षों के नीचे कुछ सोये कुछ जागे हिरणों के झुण्ड विश्राम करते रहते हैं। कुछ हिरणों ने दूर्वा घास की नोक पूरी तरह से कुतर डाला है।।२३।। सरोवरों का स्वच्छ जल हंसों के पंखों की हवा से चंचल हुए कमलों

सारंगैः क्वचिदुपशोभितप्रदेशं प्रच्छन्नं कुसुमचयैः क्वचिद्विचित्रैः।
हृष्टाभिः क्वचिदपि किन्नरांगनाभिर्वीणाभिः समधुरगीतनृत्तकंठम्॥२५॥
संसृष्टैः क्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पैरावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम्।
आमूलात्फलनिचितैः क्वचिद्विशालैरुत्तुंगैः पनसमहीरुहैरुपेतम्॥२६॥
फुल्लातिमुक्तकलतागृहनीतसिद्धसिद्धांगनाकनकनूपुररावरम्यम्।
रम्यं प्रियंगुतरुमंजरिसक्तभृंगं भृंगावलीकवलिताम्रकदंबपुष्पम्॥२७॥
पुष्पोत्करानिलविघूर्णितवारिरम्यं रम्यद्विरेफविनिपातितमंजुगुल्मम्।
गुल्मांतरप्रसभभीतमृगीसमूहं वातेरितं तनुभृतामपवर्गदातृ॥२८॥
चंद्रांशुजालशबलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः सिंदूरकुंकुमकुसुंभनिभैरशोकैः।
चामीकरद्युतिसमैरथ कर्णिकारैः पुष्पोत्करैरुपचितं सुविशालशाखैः॥२९॥

क्वचिदंजनचूर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः।
क्वचित्कांचनसंकाशैः पुष्पैराचितभूतलम्॥३०॥
पुन्नागेषु द्विजशतविरुतं रक्ताशोकस्तबकभरनतम्।
रम्योपांतक्लमहरभवनं फुल्लाब्जेषु भ्रमरविलसितम्॥३१॥

से फैला रहता है। इन सरोवरों के किनारे लगे हुए केलों के वृक्षों को देखकर मतवाले मयूरों का झुण्ड नाचने लगता है। किसी स्थान पर मयूर के गिरे पंखों के द्वंद्वों से भूमि सुन्दर लगती है। कहीं मदमस्त कपोत और हारीत विलास किया करते हैं।।२४।। कहीं-कहीं सारंग पक्षियों के कारण स्थान सुन्दर हो जाते हैं। कुछ स्थानों पर नानाविध पुष्पों के ढेर लगे रहते हैं तो कहीं-कहीं किन्नर नारियाँ अपनी बाँसुरियों में सुन्दर गीत निकालती और नाचती हैं।।२५।। घने वृक्ष अपने नीचे बने ऋषियों के आवासों की रक्षा करते हैं जिनके चारों ओर पुष्प बिखरे रहते हैं। कहीं-कहीं उद्यान में चारों ओर ऊँचे फैले हुए कटहल वृक्ष हैं। जिनमें अत्यन्त नीचे ही फल लगे रहते हैं।।२६।। सिद्धों और उनकी अंगनाएँ अतिप्रफुल्लित अतिमुक्तक लताओं के कुञ्जों में शरण लेती हैं। उनके सोने के नूपुर की टक्कर से उद्यान गुञ्जायमान रहता है। भौंरे हर समय प्रियंगु वृक्ष के पुष्पों से लिपटे रहते थे। भौंरों की पंक्तियाँ कदम्ब और आम के पुष्पों से मधु ग्रहण करते हैं। शरीरधारियों को मुक्ति देने वाला वह उद्यान सरोवरों के कारण, जिनका जल भौंरों की पंक्तियों के द्वारा गिराये गये पुष्पों के कारण चलायमान रहता है, मनोहर लगता है। पवन के झोकों से डरी हुई हरिणियों के झुण्ड घनी झाड़ियों में आश्रय लेते हैं।।२७-२८।। उद्यान की शोभा सबसे अधिक तिलक वृक्षों से, जो कि चन्द्रमा की किरणों के समूह के समान सुन्दर हैं, अशोक के वृक्षों से जिनकी शोभा कुंकुम, सिन्दूर और कुसुम्भ के समान है और स्वर्ण की चमक वाले अमिलतास वृक्षों से है। इनकी शाखाएँ अति विस्तृत हैं और ये हर समय प्रभूत पुष्पों से प्रफुल्लित रहते हैं।।२९।। विविध रंग के पुष्पों से ढकी रहती हुई उद्यान की भूमि कहीं अंजन की भाँति कहीं प्रवाल की भाँति और कहीं स्वर्ण की भाँति सुशोभित होती हैं।।३०।। पुन्नाग वृक्षों पर सैकड़ों पक्षी चहचहाया करते हैं। उद्यान की सीमाओं पर थकान हरने

सकलभुवनभर्ता लोकनाथस्तदानीं तुहिनशिखरपुत्र्या सार्धमिष्टैर्गणेशैः।
विविधतरुविशालं मत्तहृष्टान्नपुष्टैरुपवनमतिरम्यं दर्शयामास देव्याः॥३२॥
पुष्पैर्वन्यैः शुभशुभतमैः कल्पितैर्दिव्यभूषैर्देवीं दिव्यामुपवनगतां भूषयामास शर्वः।
सा चाप्येनं तुहिनगिरिसुता शंकरं देवदेवं पुष्पैर्वन्यैः शुभतरतमैर्भूषयामास भक्त्या॥३३॥
संपूज्य पूज्यं त्रिदशेश्वराणां संप्रेक्ष्य चोद्यानमतीव रम्यम्।
गणेश्वरैर्नंदिमुखैश्च सार्धमुवाच देवं प्रणिपत्य देवी॥३४॥

श्रीदेव्युवाच

उद्यानं दर्शितं देव प्रभया परया युतम्। क्षेत्रस्य च गुणान्सर्वान्पुनर्मे वक्तुमर्हसि॥३५॥
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य सर्वथा। वक्तुमर्हसि देवेश वृषध्वज॥३६॥

सूत उवाच

देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो वरप्रभुः। आघ्राय वदनांभोजं तदाह गिरिजां हसन्॥३७॥

श्रीभगवानुवाच

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम। सर्वेषामेव जंतूनां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा॥३८॥
अस्मिन्सिद्धाः सदा देवि मदीयं व्रतमास्थिताः। नानालिंगधरा नित्यं मम लोकाभिकांक्षिणः॥३९॥

वाले विश्रामालय हैं। पूर्ण विकसित कमलों पर भौंरे नृत्य करते हैं।।३१।। प्रिय गण प्रमुखों के साथ सारे संसार के स्वामी लोकनाथ (शंकर जी) ने विविध प्रकार के विशाल वृक्षों वाले अति रम्य उद्यान को बर्फ की चोटी वाले पर्वत की पुत्री देवी (पार्वती) को दिखाया।।३२।। अत्यन्त शुभ वन्य पुष्पों से बने दिव्य आभूषणों से शिवजी ने भगवती पार्वती जी का श्रृंगार किया। हिमगिरि की पुत्री (पार्वती जी) ने भी अत्यन्त शुभ दैवी पुष्पों से भक्तिपूर्वक शिव का श्रृंगार किया।।३३।। अत्यन्त मनोहर उद्यान को देखकर और देवताओं के लिये पूज्य और गणों तथा नंदी के साथ उपस्थित शिव की पूजा करने के उपरान्त पार्वती ने कहा।।३४।।

देवी पार्वती बोलीं

"परम शोभा से युक्त उद्यान मैंने देख लिया। अब आपके लिये उचित है कि आप अब इस क्षेत्र का गुण मुझे बतायें।।३५।। हे देवाधिदेव! हे वृषध्वज! इस अविमुक्त क्षेत्र का सम्पूर्ण माहात्म्य मुझे बतायें"।।३६।।

सूत बोले

देवी (पार्वती) के वचन सुनकर देवाधिदेव देवताओं के स्वामी शिव जी ने देवी के मुख कमल को सूँघकर और हँसकर कहा।।३७।।

श्री भगवान बोले

"यह वाराणसी मेरा गूढ़तम क्षेत्र है और सर्वदा सभी प्राणियों के मोक्ष का कारण है।।३८।। हे देवी! यहाँ सदैव सिद्ध लोगों ने मेरा व्रत किया है तथा मेरे लोक की प्राप्ति की आकांक्षा से नाना प्रकार के लिंगों को धारण किया है।।३९।। नाना वृक्षों से परिपूर्ण नाना प्रकार के पक्षियों से शोभित फूले हुए कमल पुष्पों से भरे हुए

अभ्यस्यंति परं योगं युक्तात्मानो जितेंद्रियाः। नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहगशोभिते॥४०॥
कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलंकृते। अप्सरोगणगंधर्वैः सदा संसेविते शुभे॥४१॥
रोचते मे सदा वासो येन कार्येण तच्छृणु। मन्मना मम भक्तश्च मयि नित्यार्पितक्रियः॥४२॥
यथा मोक्षमवाप्नोति अन्यत्र न तथा क्वचित्। कामं ह्यत्र मृतो देवि जंतुर्मोक्षाय कल्पते॥४३॥
एतन्मम पुरं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतमं महत्। ब्रह्मादयो विजानंति ये च सिद्धा मुमुक्षवः॥४४॥
अतः परमदं क्षेत्रं परा चेयं गतिर्मम। विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन॥४५॥
मम क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिति स्मृतम्। नैमिषे च कुरुक्षेत्रे गंगाद्वारे च पुष्करे॥४६॥
स्नानात्संसेवनाद्वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः। इह संप्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते॥४७॥
प्रयागे वा भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात्। प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादविमुक्तमिदं शुभम्॥४८॥
धर्मस्योपनिषत्सत्यं मोक्षस्योपनिषच्छमः। क्षेत्रतीर्थोपनिषदं न विदुर्बुधसत्तमाः॥४९॥

कामं भुंजन्स्वपन् क्रीडन् कुर्वन् हि विविधाः क्रियाः।
अविमुक्ते त्यजेत्प्रणान् जंतुर्मोक्षाय कल्पते॥५०॥

कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं नृणाम्। न तु शक्रसहस्रत्वं स्वर्गे काशीपुरीं विना॥५१॥
तस्मात्संसेवनीयं हि अविमुक्तं हि मुक्तये। जैगीषव्यः परां सिद्धिं गतो यत्र महातपाः॥५२॥

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्भक्त्या च मम भावितः।
जैगीषव्यगुहा श्रेष्ठा योगिनां स्थानमिष्यते॥५३॥

सरोवरों से युक्त इस स्थान में जितेन्द्रिय भक्तगण सदैव योग का अभ्यास किया करते हैं।।४०-४१।। यहाँ अप्सराएँ और गंधर्व शरण लेते हैं। जिस कारण से मुझे अपना यह आवास अच्छा लगता है वह सुनो। जिसकी मुझमें भक्ति है। जिसने अपना मन मुझमें स्थिर कर लिया है जो अपनी समस्त क्रियाएँ मुझे समर्पित करता है। वह यहाँ जिस प्रकार मोक्ष प्राप्त करता है वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं। हे देवी! यहाँ मरने वाला जीव मोक्ष का अधिकारी होता है।।४२-४३।। मेरा यह दिव्य और महान् नगर सभी गुह्य स्थानों में गुह्यतम है। ब्रह्मा, सिद्धगण और मुक्ति के इच्छुक लोग यह जानते हैं। मुझे प्राप्त करना ही परम लक्ष्य है। मैंने इसको न छोड़ा है न कभी छोड़ूँगा। अतः यह पवित्र क्षेत्र अविमुक्त है। नैमिष, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार और पुष्कर में रहने से और स्नान करने से मुक्ति नहीं मिलती अपितु यहीं मिलती है। अतः यह अन्य (तीर्थों) से विशिष्ट है।।४४-४७।। मुक्ति प्रयाग में मिलती है या यहाँ क्योंकि मैंने इसे अपनाया है। यह अविमुक्त तीर्थों में अग्रणी प्रयाग से भी पवित्र है।।४८।। धर्म का सार सत्य है। मोक्ष का सार आत्मनियन्त्रण है किन्तु तीर्थ क्षेत्रों का सार विद्वान लोग नहीं जानते।।४९।। अपनी इच्छानुसार खाये, सोये, क्रीड़ा करे और विविध कार्य करे किन्तु अविमुक्त में प्राण छोड़ने वाला जीव मोक्ष का अधिकारी है।।५०।। सहस्रों पाप करके पिशाचत्व प्राप्त कर काशी में वास करना अच्छा है किन्तु सहस्रों जन्मों में इन्द्र होना काशी में न रहने से अच्छा नहीं है।।५१।। अतः इस क्षेत्र को मेरी भक्ति के साथ अपनाना चाहिये। श्रेष्ठ तपस्वी जैगीषव्य ने यहीं सिद्धि प्राप्त की थी।।५२।। इस पवित्र स्थान के माहात्म्य और मेरे प्रति

ध्यायंतस्तत्र मां नित्यं योगाग्निर्दीप्यतेभृशम्।कैवल्यं परमं याति देवानामपि दुर्लभम्।।५४।।
अव्यक्तलिंगैर्मुनिभिः सर्वसिद्धांतवादिभिः। इह संप्राप्यते मोक्षो दुर्लभोऽन्यत्र कर्हिचित्।।५५।।
तेभ्यश्चाहं प्रवक्ष्यामि योगैश्वर्यमनुत्तमम्। आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमेव च।।५६।।
कुबेरोत्र मम क्षेत्रे मयि सर्वार्पितक्रियः। क्षेत्रसंसेवनादेव गणेशत्वमवाप ह।।५७।।
संवर्तो भविता यश्च सोपि भक्तो ममैव तु। इहैवाराध्य मां देवि सिद्धिं यास्यत्यनुत्तमाम्।।५८।।
पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः। मम भक्तो भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः।।५९।।
रंस्यते सोपि पद्माक्षि क्षेत्रेऽस्मिन्मुनिपुंगवः। ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्द्धं विष्णुर्वापि दिवाकरः।।६०।।
देवराजस्तथा शक्रो योपि चान्ये दिवौकसः। उपासते महात्मानः सर्वे मामिह सुव्रते।।६१।।
अन्येपि योगिनो दिव्याश्छन्नरूपा महात्मनः। अनन्यमनसो भूत्वा मामिहोपासते सदा।।६२।।
विषयासक्तचित्तोपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः। इह क्षेत्रे मृतः सोपि संसारे न पुनर्भवेत्।।६३।।
ये पुनर्निर्ममा धीराः सत्त्वस्था विजितेंद्रियाः। व्रतिनश्च निरारंभाः सर्वे ते मयि भाविताः।।६४।।
देवदेवं समासाद्य धीमंतः संगवर्जिताः। गता इह परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते।।६५।।
जन्मांतरसहस्त्रेषु यं न योगी समाप्नुयात्। तमिहैव परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते।।६६।।
गोप्रेक्षकमिदं क्षेत्रं ब्रह्मणा स्थापितं पुरा। कैलासभवनं चात्र पश्य दिव्यं वरानने।।६७।।

भक्ति के कारण जैगीषव्य की गुफा पवित्र हो गयी। यह योगियों का आवास मानी जाती है।।५३।। यहीं लोग मेरा ध्यान करते हैं। यहाँ योग की अग्नि अधिक दीप्ति होती है। यहाँ वह मोक्ष मिलता है जो देवों के लिये भी दुर्लभ है।।५४।। सब सिद्धान्तों को जानने वाले और अव्यक्त लिंगों वाले मुनियों को यहाँ मोक्ष सम्भव है और अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है।।५५।। उनको मैं आत्मा के सायुज्य रूप और मोक्ष के लिये इच्छित निवास की प्राप्ति के उत्तम योग के माहात्म्य को बताता हूँ।।५६।। कुबेर ने मेरे इस क्षेत्र में अपने सब धार्मिक कृत्य मुझको समर्पित किया। इस क्षेत्र के सेवन से ही उन्होंने गणों के अधिप (गणेश) का पद प्राप्त किया।।५७।। संवर्त जो जब जन्म लेंगे वे भी तो मेरे ही भक्त होंगे। हे देवी! यहीं मेरी आराधना करके वे उत्तम गति को प्राप्त होंगे।।५८।। हे कमल के समान नेत्र वाली देवी! मुनिश्रेष्ठ इस क्षेत्र में निरन्तर क्रीड़ा करेंगे। हे सुव्रते! ब्रह्मा दिव्य देवर्षियों के साथ, विष्णु, सूर्य, इन्द्र तथा महात्मा स्वर्गवासी हैं। ये यहीं मेरी उपासना करते हैं।।५९-६१।। अन्य दिव्य योगी महात्मा वेष बदल कर प्रछन्न रूप में एकाग्र मन से सदा यहाँ मेरी उपासना करते हैं।।६२।। यहाँ तक कि सांसारिक विषयों में आसक्त मन वाले, धर्म में रुचि न रखने वाले लोग भी यदि इस क्षेत्र में मरते हैं तो संसार में उनका पुनर्जन्म नहीं होता है।।६३।। जो लोग अहंकार रहित हैं, ममता मोह के प्रति निर्मम हैं, धीर हैं, जितेन्द्रिय हैं और सत्त्व गुण युक्त हैं, व्रती हैं और अनुचित कर्मों को त्याग दिया है ऐसे व्यक्तियों का भावनात्मक लगाव मेरी ओर है।।६४।। हे सुव्रते! राग-द्वेष आदि से रहित अनासक्त बुद्धिमान लोग मुझको प्राप्त करके मेरी कृपा से यहाँ मोक्ष को प्राप्त करते हैं।।६५।। हे सुव्रते! योगी जिसको हजार जन्म लेने पर भी नहीं प्राप्त करता है, वह मोक्ष मेरी कृपा से यहाँ (इस क्षेत्र में) सहज ही प्राप्त होता है।।६६।। पहिले यह गोप्रेक्षक क्षेत्र ब्रह्मा द्वारा

गोप्रेषकमथागम्य दृष्ट्वा मामत्र मानवः। न दुर्गतिमवाप्नोति कल्मषैश्च विमुच्यते॥६८॥
कपिलाह्रदमित्येवं तथा वै ब्रह्मणा कृतम्। गवांस्तन्यजतोयेन तीर्थं पुण्यतमं महत्॥६९॥
अत्रापि स्वयमेवाहं वृषध्वज इति स्मृतः। सान्निध्यं कृतवान् देवि सदाहं दृश्यते त्वया॥७०॥
भद्रतोयं च पश्येह ब्रह्मणा च कृतं ह्रदम्। सर्वै र्देवैरहं देवि अस्मिन्देशे प्रसादितः॥७१॥
गच्छोपशममीशेति उपशांतः शिवस्तथा। अत्राहं ब्रह्मणानीय स्थापितः परमेष्ठिना॥७२॥
ब्रह्मणा चापि संगृह्य विष्णुना स्थापितः पुनः। ब्रह्मणापि ततो विष्णुः प्रोक्तः संविग्नचेतसा॥७३॥
मयानीतमिदं लिंगं कस्मात्स्थापितवानसि। तमुवाच पुनर्विष्णुर्ब्रह्माणं कुपिताननम्॥७४॥
रुद्रे देवे ममात्यंतं परा भक्तिर्महत्तरा। मयैव स्थापितं लिंगं तव नाम्ना भविष्यति॥७५॥
हिरण्यगर्भ इत्येवं ततोत्राहं समास्थितः। दृष्ट्वैनमपि देवेशं मम लोकं व्रजेन्नरः॥७६॥
ततः पुनरपि ब्रह्मा मम लिंगमिदं शुभम्। स्थापयामास विधिवद्भक्त्या परमया युतः॥७७॥
स्वर्लीनेश्वर इत्येवमत्राहं स्वयमागतः। प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न पुनर्जायते क्वचित्॥७८॥
अनन्या सा गतिस्तस्य योगिनां चैव या स्मृता। अस्मिन्नपि मया देशे दैत्यो दैवतकंटकः॥७९॥
व्याघ्ररूपं समास्थाय निहतो दर्पितो बली। व्याघ्रेश्वर इति ख्यातो नित्यमत्राहमास्थितः॥८०॥
न पुनर्दुर्गतिं याति दृष्ट्वैनं व्याघ्रमीश्वरम्। उत्पलो विदलश्चैव यौ दैत्यौ ब्रह्मणा पुरा॥८१॥

स्थापित किया गया था। हे सुमुखी! दिव्य कैलास को यहाँ देखो।।६७।। मनुष्य यहाँ गोप्रेक्षक में आकर मुझको देखकर मेरा दर्शन करके दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है और सब पापों से मुक्त हो जाता है।।६८।। कपिलाह्रद नामक महान् पवित्र तीर्थ यहाँ पर ब्रह्मा ने बनाया हुआ है। यह गायों के स्तन के दूध से निर्मित (विकसित) है। यह पवित्र महान् पुण्य क्षेत्र है।।६९।। यहाँ पर मैं वृषध्वज नाम से विख्यात हूँ (जाना जाता हूँ)। हे देवी! मैं यहाँ उपस्थित हूँ जैसा कि तुम मुझको देख ही रही हो।।७०।। ब्रह्मा द्वारा बनाये गये गहरे ह्रद को देखो। इसका नाम भद्रतोय है। हे देवी! मैं यहाँ सब देवताओं द्वारा 'हे ईश' जाओ! शान्त रहो' ऐसा कहकर प्रार्थित हुआ था। तब मैं शान्त हो गया। मैं परमेश्वर ब्रह्मा द्वारा यहाँ लाया गया और स्थापित किया गया।।७१-७२।। विष्णु ने मुझको ब्रह्मा से ले लिया। उन्होंने मुझको पुनः स्थापित किया। तब ब्रह्मा ने दुःखी मन से विष्णु से कहा।।७३।। "मेरे द्वारा लाये गये लिंग को तुमने क्यों स्थापित किया?" तब फिर विष्णु ने क्रुद्ध मुख वाले ब्रह्मा से कहा।।७४।। "रुद्र देव में मेरी परम उत्कृष्ट भक्ति है। यह भक्ति महत्तर है। अतः मैंने इस लिंग को (तुमसे लेकर) स्थापित किया है। यह तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा"।।७५।। अतः हिरण्यगर्भ नाम से मैं यहाँ पर स्थित हूँ। मनुष्य इस देवेश का दर्शन करने से मेरे लोक (शिव लोक) को जाता है।।७६।। उसके बाद ब्रह्मा ने परमभक्ति से युक्त हो विधिपूर्वक मेरे इस पवित्र लिंग को पुनः स्थापित किया।।७७।। मैं यहाँ स्वर्लीनेश्वर नाम से जाना जाता हूँ। मनुष्य यहाँ पर प्राण त्यागने पर कहीं पर भी पुनः जन्म नहीं लेता है।।७८।। व्याघ्रेश्वर के दर्शन करने से किसी को दुर्गति नहीं प्राप्त होती है। यह गति जो किसी अन्य को नहीं प्राप्त होती है, केवल योगियों को मिलती है। इस स्थान पर एक दैत्य अभिमानी बलवान और देवों के लिये कंटक (काँटे) के रूप था, उसको मैंने व्याघ्र का रूप धारण करके वध किया था। मैं यहाँ पर नित्य सदा स्थित हूँ। उत्पल और विपल नाम के दो दैत्य थे। ब्रह्मा

स्त्रीवध्यौ दर्पितौ दृष्ट्वा त्वयैव निहतौ रणे। सावज्ञं कंदुके नात्र तस्येदं देहमास्थितम्॥८२॥
आदावत्राहमागम्य प्रस्थितो गणपैः सह। ज्येष्ठस्थानमिदं तस्मादेतन्मे पुण्यदर्शनम्॥८३॥
देवैः समंतादेतानि लिंगानि स्थापितान्यतः। दृष्ट्वापि नियतो मर्त्यो देहभेदे गणो भवेत्॥८४॥
पित्रा ते शैलराजेन पुरा हिमवता स्वयम्। मम प्रियहितं स्थानं ज्ञात्वा लिंगं प्रतिष्ठितम्॥८५॥
शैलेश्वरमिति ख्यातं दृश्यतामिह चादरात्। दृष्ट्वैतन्मनुजो देवि न दुर्गतिमतो व्रजेत्॥८६॥,
नद्येषा वरुणा देवि पुण्या पापप्रमोचनी। क्षेत्रमेतदलंकृत्य जाह्नव्या सह संगता॥८७॥
स्थापितं ब्रह्मणा चापि संगमे लिंगमुत्तमम्। संगमेश्वरमित्येवं ख्यातं जगति दृश्यताम्॥८८॥
संगमे देवनद्या हि यः स्नात्वा मनुजःशुचिः। अर्चयेत्संगमेशानं तस्य जन्मभयं कुतः॥८९॥
इदं मन्ये महाक्षेत्रं निवासो योगिनां परम्। क्षेत्रमध्ये च यत्राहं स्वयं भूत्वाऽग्रमास्थितः॥९०॥
मध्यमेश्वरमित्येवं ख्यातः सर्वसुरासुरैः। सिद्धानां स्थानमेतद्धि मदीयव्रतधारिणाम्॥९१॥
योगिनां मोक्षलिप्सूनां ज्ञानयोगरतात्मनाम्। दृष्ट्वैनं मध्यमेशानं जन्मप्रति न शोचति॥९२॥
स्थापितं लिंगमेतत्तु शुक्रेण भृगुसूनुना। नाम्ना शुक्रेश्वरं नाम सर्वसिद्धामरार्चितम्॥९३॥
दृष्ट्वैनं नियतः सद्यो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः। मृतश्च न पुनर्जंतुः संसारी तु भवेन्नरः॥९४॥

द्वारा पहिले अभिशप्त थे कि एक स्त्री द्वारा तुम दोनों का वध होगा। अतः एक रण में अवज्ञापूर्वक तुम्हारे द्वारा उन दोनों की ओर फेंके गये एक गेंद से उनकी मृत्यु हुई थी। उनके देहों ने इस स्थान पर कब्जा किया है।।७९-८२।। मैं पहिले गणपों के साथ आकर यहाँ स्थित हुआ। टिक गया। इसलिये यह ज्येष्ठ निवास स्थान है। अतः इसका दर्शन पुण्यदायक है।।८३।। देवताओं द्वारा चारों ओर ये लिंग स्थापित किये गये हैं। इन लिंगों से प्रभु का दर्शन करने से वह व्यक्ति मरने पर निश्चित रूप से गण होता है। मेरे प्रिय और हितकर स्थान की अनुभूति होने पर तुम्हारे पिता नगराज हिमवान ने भी एक लिंग की स्थापना यहाँ पहिले की थी। यह शैलेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। आदरपूर्वक इसका दर्शन करना चाहिये। हे देवी! इसका दर्शन करने से मनुष्य दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है।।८४-८६।। हे देवी! यह वरुणा नदी पवित्र है। यह व्यक्ति को पापों से मुक्त करती है। इस क्षेत्र को अलंकृत करके यह गंगा में मिल जाती है।।८७।। इस संगम पर ब्रह्मा ने एक उत्तम लिंग की स्थापना की थी। यह लिंग जगत् में संगमेश्वर नाम से प्रसिद्ध है।।८८।। इस देव नदी के संगम में स्नान करके मनुष्य पवित्र हो जाता है और संगमेश्वर की पूजा करता है तो उसको पुनर्जन्म का भय नहीं रहता है।।८९।। मैं इस महाक्षेत्र को योगियों का परम निवास मानता हूँ। इस क्षेत्र में मैं स्वयंभू हूँ और यहाँ अधिष्ठित हूँ।।९०।। मध्यमेश्वर के रूप में यह देवों और असुरों द्वारा विख्यात है (महिमा मंडित है)। वस्तुतः यह महाक्षेत्र मेरे व्रतधारी सिद्धों का निवास है। यह मुमुक्षु (मोक्ष की इच्छावाले) योगियों का और ज्ञानमार्ग में रत महात्माओं का निवास स्थान है। इस मध्येश्वर का दर्शन करने से व्यक्ति अपने जन्म के विषय में नहीं शोचता है।।९१-९२।। यह लिंग भृगु के पुत्र शुक्र द्वारा स्थापित किया गया था। इसका नाम शुक्रेश्वर है। यह सिद्धों और सब अमरों द्वारा पूजित है। इसका दर्शन करके अपने में नियन्त्रित व्यक्ति सब पापों से तुरन्त मुक्त हो जाता है। यहाँ मरने वाले व्यक्ति का

पुरा जंबुकरूपेण असुरो देवकंटकः। ब्रह्मणो हि वरं लब्ध्वा गोमायुर्बंधशंकितः॥९५॥
निहतो हिमवत्पुत्रि जंबुकेशस्ततो ह्यहम्। अद्यापि जगति ख्यातं सुरासुरनमस्कृतम्॥९६॥
दृष्ट्वैनमपि देवेशं सर्वान्कामानवाप्नुयात्। ग्रहैः शुक्रपुरोगैश्च एतानि स्थापितानि ह॥९७॥
पश्य पुण्यानि लिंगानि सर्वकामप्रदानि तु। एवमेतानि पुण्यानि मन्निवासानि पार्वति॥९८॥
कथितानि मम क्षेत्रे गुह्यं चान्यदिदं शृणु। चतुःक्रोशं चतुर्दिक्षु क्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम्॥९९॥
योजनं विद्धि चार्वंगि मृत्युकालेऽमृतप्रदम्। महालयगिरिस्थं मां केदारे च व्यवस्थितम्॥१००॥
गणत्वं लभते दृष्ट्वा ह्यस्मिन्मोक्षो ह्यवाप्यते। गाणपत्यं लभेद्यस्माद्यतः सा मुक्तिरुत्तमा॥१०१॥
ततो महालयात्तस्मात्केदारान्मध्यमादपि। स्मृतं पुण्यतमं क्षेत्रमविमुक्तं वरानने॥१०२॥

केदारं मध्यमं क्षेत्रं स्थानं चैव महालयम्।
मम पुण्यानि भूर्लोके तेभ्यः श्रेष्ठतमं त्विदम्॥१०३॥
यतः सृष्टास्त्विमे लोकास्ततः क्षेत्रमिदं शुभम्।
कदाचिन्न मया मुक्तमविमुक्तं ततोऽभवत्॥१०४॥

अविमुक्तेश्वरं लिंगं मम दृष्ट्वेह मानवः। सद्यः पापविनिर्मुक्तः पशुपाशैर्विमुच्यते॥१०५॥
शैलेशं संगमेशं च स्वर्लीनं मध्यमेश्वरम्। हिरण्यगर्भमीशानं गोप्रेक्षं वृषभध्वजम्॥१०६॥

जगत् में पुनर्जन्म नहीं होता है।।९३-९४।। पहिले, देवताओं के लिये कंटक एक दैत्य ने सियार का रूप धारण किया। वह ब्रह्मा से प्राप्त वर दान के कारण किसी के द्वारा पकड़ा नहीं जा सकता था। हे पार्वती! उस सियार (जम्बूक) का मैंने बध किया। अतः लोग मुझको आज तक जम्बुकेश कहते हैं। जम्बुकेश के नाम से मैं सुरों और असुरों द्वारा नमस्कृत और ख्यात हूँ। इस लिंग का दर्शन करने से मनुष्य की सब मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं।। इस प्रकार हे पार्वती! इन पवित्र लिंगों को मैंने वर्णन किया जिनमें मैं रहता हूँ। इस पवित्र क्षेत्र के विषय में एक अन्य गुह्य (गुप्त) रहस्य को बताता हूँ। सुनों। ये लिंग शुक्र से प्रारम्भ करके ग्रहों द्वारा स्थापित किये गये हैं। इन लिंगों को देखिये जो हृदय की लालसाओं (कामनाओं) को पूरा करते हैं। यह चारों दिशाओं में चार कोस में विस्तृत कहा गया है।।९५-९९।। हे मनोहर अंगों वाली देवी! यह एक योजन विस्तृत क्षेत्र व्यक्ति को मरने के बाद अमरत्व प्रदान करता है। अमर कर देता है। वह जान लो कि हिमालय पर्वत पर स्थित और केदार में मेरा दर्शन करने पर मनुष्य गण का पद प्राप्त करता है। इस स्थान में मोक्ष प्राप्त होता है। वह मोक्ष (मुक्ति) उससे उत्तम है।।१००-१०१।। हे सुमुखी! अविमुक्त नामक यह क्षेत्र महालय, केदार, और मध्यम इन तीनों से भी बढ़कर महत्तर है और सर्वोत्तम पवित्र क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है।।१०२।। भूलोक (पृथ्वी) में केदार मध्यम क्षेत्र और पवित्र स्थल महालय ये तीनों पवित्र क्षेत्र हैं। इन सब से अविमुक्त अधिक पवित्र है। अर्थात् यह श्रेष्ठतम है।।१०३।। जब से इन लोकों की सृष्टि हुई है, इस शुभ भक्ति क्षेत्र को मैंने कभी नहीं छोड़ा (मुक्त किया) है। अतः यह अविमुक्त है अर्थात् मेरे द्वारा कभी न छोड़े जाने से यह अविमुक्त नाम से प्रसिद्ध हुआ है।।१०४।। अविमुक्तेश्वर नामक लिंग का दर्शन करने से मनुष्य पापों से तुरन्त मुक्त हो जाता है। वह जीव बन्धन अर्थात् पशुपाश से मुक्त हो जाता है।।१०५।। शैलेश, संगमेश, स्वर्लीन, मध्यमेश्वर, हिरण्यगर्भ, गोप्रेक्ष, वृषध्वज,

उपशांतं शिवं चैव ज्येष्ठस्थाननिवासिनम्। शुक्रेश्वरं च विख्यातं व्याघ्रेशं जंबुकेश्वरम्॥१०७॥
दृष्ट्वा न जायते मर्त्यः संसारे दुःखसागरे॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा महादेवो दिशः सर्वा व्यलोकयत्॥१०८॥
विलोक्य संस्थिते पश्चाद्देवदेवे महेश्वरे।
अकस्मादभवत्सर्वः स देशोज्ज्वलितो यथा॥१०९॥
ततः पाशुपताः सिद्धा भस्माभ्यंगसितप्रभाः। माहेश्वरा महात्मानस्तथा वै नियतव्रताः॥११०॥
बहवः शतशोभ्येत्य नमश्चक्रुर्महेश्वरम्।
पुनर्निरीक्ष्य योगेशं ध्यानयोगं च कृत्स्नशः॥१११॥
तस्थुरात्मानमास्थाय लीयमाना इवेश्वरे। स्थितानां स तदा तेषां देवदेव उमापतिः॥११२॥
स बिभ्रत्परमां मूर्तिं बभूव पुरुषः प्रभुः। कृत्स्नं जगदिहैकस्थं कर्तुमंत इव स्थितः॥११३॥
तस्य तां परमां मूर्तिमास्थितस्य जगत्प्रभोः। न शशाक पुनर्द्रष्टुं हृष्टरोमा गिरींद्रजा॥११४॥
ततस्त्वदृष्टमाकारं बुध्वा सा प्रकृतिस्थितम्। प्रकृतेर्मूर्तिमास्थाय योगेन परमेश्वरी॥११५॥
तं शशक पुनर्द्रष्टुं हरस्य च महात्मनः। ततस्ते लयमाधाय योगिनः पुरुषस्य तु॥११६॥
विविशुर्हृदयं सर्वे दग्धसंसारबीजिनः। पंचाक्षरस्य वै बीजं संस्मरंतः सुशोभनम्॥११७॥

उपशान्त शिव, ज्येष्ठ स्थान, शुक्रेश्वर, व्याघ्रेश और जम्बुकेश्वर इन सब पवित्र क्षेत्रों का दर्शन करने से मनुष्य दुःख के सागर इस संसार में फिर जन्म नहीं लेता है।

सूत बोले

ऐसा कहने के बाद सब दिशाओं की ओर महादेव ने देखा।।१०६-१०८।। तब देवेश महेश्वर द्वारा सब दिशाओं की ओर देखने के बाद वह स्थान अकस्मात् पूर्ववत् उज्ज्वल हो गया।।१०९।। तब पशुपति के भक्त, भस्म रमाने से श्वेत शरीर वाले, महेश्वर के प्रति समर्पित महात्मा नित्य धार्मिक कृत्य करने वाले (नित्य व्रती) सैकड़ों सिद्ध लोग वहाँ आये और महेश्वर को नमस्कार किया। तब उन्होंने योगेश और ध्यानयोगी महेश्वर को भली-भाँति पुनः ध्यानपूर्वक देखा। उन्होंने अपने आत्मा का आश्रय लिया और अपनी आत्मा में ऐसे स्थित हुये जैसे कि वे ईश्वर (महेश्वर) में लीन हों। उनके उस प्रकार स्थित होने पर उमापति देवेश पुरुष प्रभु महेश्वर ने अपनी परम मूर्त्ति महत्तम शारीरिक रूप को धारण किया। वह ऐसे स्थित (खड़े) हुये मानों लोकों का अन्त करके सम्पूर्ण जगत् को एक स्थान पर एकत्र करना चाहते हैं। ऐसी उनकी मुद्रा हो गयी। पार्वती जगत् के प्रभु महादेव की उस परम मूर्त्ति को प्रसन्नता से रोमांचित हो पुनः न देख सकीं।।११०-११४।। तब उन्होंने समझा कि यह पहिले कभी न देखा (अदृष्ट पूर्व) रूप प्रकृति में स्थित है और तब योग के द्वारा परमेश्वरी पार्वती ने प्रकृति का रूप धारण किया। तब वह महात्मा महादेव के उस रूप को देख सकीं। तब लय के ध्यान में मग्न (रत) योगियों ने पुरुष के हृदय में प्रवेश किया। उन्होंने सुशोभन पंचाक्षर मंत्र के बीज का स्मरण करते हुये सब संसार बीजी

सर्वपापहरं दिव्यं पुरा चैव प्रकाशितम्। नीललोहितमूर्तिस्थं पुनश्चक्रे वपुः शुभम्॥११८॥
तं दृष्ट्वा शैलजा प्राह हृष्टसर्वतनूरुहा। स्तुवती चरणौ नत्वा क इमे भगवन्निति॥११९॥
तामुवाच सुरश्रेष्ठस्तदा देवीं गिरींद्रजाम्।

श्रीभगवानुवाच

मदीयं व्रतमाश्रित्य भक्तिमद्भिर्द्विजोत्तमैः॥१२०॥
यैर्यैर्योगा इहाभ्यस्तास्तेषामेकेन जन्मना।
क्षेत्रस्यास्य प्रभावेन भक्त्या च मम भामिनि॥१२१॥
अनुग्रहो मया ह्येवं क्रियते मूर्तितः स्वयम्। तस्मादेतन्महत्क्षेत्रं ब्रह्माद्यैः सेवितं तथा॥१२२॥
श्रुतिमद्भिश्च विप्रेंद्रैः संसिद्धैश्च तपस्विभिः। प्रतिमासं तथाष्टम्यां प्रतिमासं चतुर्दशीम्॥१२३॥
उभयोः पक्षयोर्देवि वाराणस्यामुपास्यते। शशिभानूपरागे च कार्तिक्यां च विशेषतः॥१२४॥
सर्वपर्वसु पुण्येषु विषुवेष्वयनेषु च।
पृथिव्यां सर्वतीर्थानि वाराणस्यां तु जाह्नवीम्॥१२५॥
उत्तरप्रवहां पुण्यां मम मौलिविनिःसृताम्। पितुस्ते गिरिराजस्य शुभां हिमवतः सुताम्॥१२६॥
पुण्यस्थानस्थितां पुण्यां पुण्यदिक्प्रवहां सदा। भजंते सर्वतोऽभ्येत्य ये ताञ्छृणु वरानने॥१२७॥
संनिहत्य कुरुक्षेत्रं सार्धं तीर्थशतैस्तथा। पुष्करं निमिषं चैव प्रयागं च पृथूदकम्॥१२८॥

को जला (दग्ध) दिया। तब महादेव ने अपना दिव्य और पवित्र रूप धारण किया जो कि सब पापों को नष्ट करता है और इस नीललोहित मूर्त्ति में पहिले प्रकट हुआ था (प्रकाश में आया था।)।।११५-११८।। उनको देखकर पूर्णरूप से रोमांचित पार्वती ने उनके चरणों में झुककर प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। तब उन्होंने कहा, "हे भगवन्! ये क्या है?"।।११९।।

भगवान बोले

हे सुन्दरी! वे उत्तम ब्राह्मण हैं जो मुझमें भक्ति और श्रद्धारत रहकर सब योगों के अभ्यास द्वारा मेरे व्रत को करते हैं। इस पवित्र क्षेत्र की महानता के कारण और मुझसे उनकी भक्ति के कारण मेरे इस भौतिक रूप के द्वारा उनको एक जन्म का आशीर्वाद प्राप्त होता है।।१२०-१२१।। अतः यह पवित्र क्षेत्र ब्रह्मा तथा अन्यों द्वारा तथा वेदों में पारंगत विद्वानों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों एवं यतियों और तपस्वियों द्वारा सेवित है। हे देवी! प्रत्येक मास के दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी को वाराणसी में देव (महादेव) की पूजा की जाती है। विशेषतः सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहण के दिन तथा विशेषरूप में कार्त्तिक मास में पूर्णिमा और प्रतिपदा के दिनों में संक्रातियों और अयनों में वाराणसी में गंगा में पृथ्वी पर स्थित सब तीर्थ वास करते हैं। उनके द्वारा गंगा सेवित हैं। तुम्हारे पिता गिरिराज हिमालय की पवित्र कन्या, मेरे शिर से नीचे आकर उत्तर की ओर यहाँ बहने वाली गंगा, इस मेरे निवास पुण्य स्थान पर स्थित है और पवित्र दिशा में सदा बहती है। हे सुमुखी! वे तीर्थ कौन हैं? उनको ध्यानपूर्वक सुनो।।१२२-१२७।। ये तीर्थ सैकड़ों तीर्थों सहित कुरुक्षेत्र, पुष्कर, नैमिष, बहुत जल से पूर्ण प्रयाग और द्रुम

द्रुमक्षत्रं कुरुक्षेत्रं नैमिषं तीर्थसंयुतम्। क्षेत्राणि सर्वतो देवि देवता ऋषयस्तथा॥१२९॥
संध्या च ऋतवश्चैव सर्वा नद्यः सरांसि च।
समुद्राः सप्त चैवात्र देवतीर्थानि कृत्स्नशः॥१३०॥
भागीरथीं समेष्यंति सर्वपर्वसु सुव्रते। अविमुक्तेश्वरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा चैव त्रिविष्टपम्॥१३१॥
कालभैरवमासाद्य धूतपापानि सर्वशः। भवंति हि सुरेशानि सर्वपर्वसु पर्वसु॥१३२॥
पृथिव्यां यानि पुण्यानि महांत्यायतनानि च॥
प्रविशंति सदाभ्येत्य पुण्यं पर्वसुपर्वसु। अविमुक्तं क्षेत्रवरं पहापापनिबर्हणम्॥१३३॥
केदारे चैव यल्लिंगं यच्च लिंगं महालये॥१३४॥
मध्यमेश्वरसंज्ञं च तथा पाशुपतेश्वरम्। शंकुकर्णेश्वरं चैव गोकर्णौ च तथा ह्युभौ॥१३५॥
द्रुमचंडेश्वरं नाम भद्रेश्वरमनुत्तमम्। स्थानेश्वरं तथैकाग्रं कालेश्वरमजेश्वरम्॥१३६॥
भैरवेश्वरमीशानं तथोंकारकसंज्ञितम्। अमरेशं महाकालं ज्योतिषं भस्मगात्रकम्॥१३७॥
यानि चान्यनि पुण्यानि स्थानानि मम भूतले।
अष्टषष्टिसमाख्यानि रूढान्यन्यानि कृत्स्नशः॥१३८॥
तानि सर्वाण्यशेषाणि वाराणस्यां विशंति माम्। सर्वपर्वसु पुण्येषु गुह्यं चैतदुदाहृतम्॥१३९॥
तेनेह लभते जंतुर्मृतो दिव्यामृतं पदम्। स्नातस्य चैव गंगायां दृष्टेन च मया शुभे॥१४०॥
सर्वयज्ञफलैस्तुल्यमिष्टैः शतसहस्त्रशः। सद्य एव समाप्नोति किं ततः परमाद्भुतम्॥१४१॥

क्षेत्र, कुरुक्षेत्र और नैमिष क्षेत्र हैं। हे देवी! वे सब पवित्र केन्द्रों से होकर चारों ओर बहती हैं। देवतागण, ऋषिगण, संध्या, ऋतुएँ, सब नदियाँ, तालाब और सात समुद्र और दिव्य देव, तीर्थगण, पर्व के दिनों में यहाँ गंगा में आकर मिलते हैं। अविमुक्तेश्वर और त्रिविष्टप का दर्शन करके और पवित्र क्षेत्र कालभैरव पहुँचकर मनुष्य पर्वों पर अपने सब पापों से मुक्त हो जाता है। पृथ्वी पर की सब पवित्र नदियाँ और बड़े आयतन पर्वों पर सदा वाराणसी में पहुँचकर गंगा में प्रवेश करते हैं।।१२८-१३३।। इस स्थान में और इसके चारों ओर विविध दृश्य हैं। जैसे अविमुक्त सर्वोत्तम पवित्र क्षेत्र है। यह महापापों का नाशक है। केदार में जो लिंग है और जो लिंग महालय में है, मध्यमेंश्वर और पाशुपतेश्वर, शंकुकर्णेश्वर, गोकर्णेश्वर, द्रुमचण्डेश्वर, भद्रेश्वर, स्थानेश्वर, एकाग्र, कालेश्वर, अजेश्वर, भैरवेश्वर, ईशान, ओंकार, अमरेश, महाकाल, ज्योतिर्लिंग, भस्मगात्रक आदि मेरे वे सब पवित्र स्थान तथा अन्य स्थान भूतल पर हैं। उनकी संख्या छियासठ है। इनके अतिरिक्त अन्य सुव्यवस्थित सब आयतन पवित्र पर्वों पर वाराणसी में मेरे पास आते हैं। यह गुह्य (गोपनीय) तथ्य मैंने तुमसे कहा।।१३४-१३९।। हे देवी! अतः जो प्राणी यहाँ आकर गंगा में स्नान करता है और मेरा दर्शन करता है वह यहाँ मरने के बाद दिव्य अमृत पद प्राप्त करता है। (अर्थात् अमर हो जाता है)।।१४०।। प्राणी तुरन्त सैकड़ों और हजारों यज्ञों का फल प्राप्त करता है। इससे बढ़कर अद्‌भुत और क्या है? हे देवी! भूतल पर जितने मुख्य आयतन हैं और पर्वतों पर हैं, उन सब में अविमुक्त सबसे बड़ा (महत्तम) है। जो मैंने तुमसे कहा है उसको समझो। वेदों में वर्णित पाप ब्राह्मणों द्वारा 'अवि'

स याति मम सायुज्यं स्थानेष्वेतेषु सुव्रते। स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यंगं पंचविंशति॥१७०॥
पलानां द्वे सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्तितम्। स्नाप्य लिंगं मदीयं तु गव्येनैव घृतेन च॥१७१॥
विशोध्य सर्वद्रव्यैस्तु वारिभिरभिषिंचति। संमार्ज्य शतयज्ञानां स्नानेन प्रयुतं तथा॥१७२॥
पूजया शतसाहस्रमनंतं गीतवादिनाम्। महास्नाने प्रसक्तं तु स्नानमष्टगुणं स्मृतम्॥१७३॥
जलेन केवलेनैव गंधतोयेन भक्तितः। अनुलेपनं तु तत्सर्वं पंचविंशत्पलेन वै॥१७४॥

शमीपुष्पं च विधिना बिल्वपत्रं च पंकजम्।
अन्यान्यपि च पुष्पाणि बिल्वपत्रं न संत्यजेत्॥१७५॥

चतुर्द्रोणैर्महादेवमष्टद्रोणैरथापि वा। दशद्रोणैस्तु नैवेद्यमष्टद्रोणैरथापि वा॥१७६॥
शतद्रोणसमं पुण्यमाढकेपि विधीयते। वित्तहीनस्य विप्रस्य नात्र कार्या विचारणा॥१७७॥
भेरीमृदंगमुरजतिमिरापटहादिभिः। वादित्रै विविधैश्चान्यैर्निनादैर्विविधैरपि॥१७८॥
जागरं कारयेद्यस्तु प्रार्थयेच्च यथाक्रमम्। स भृत्यपुत्रदारैश्च तथा संबंधिबान्धवैः॥१७९॥
सार्धं प्रदक्षिणं कृत्वा प्रार्थयेल्लिंगमुत्तमम्। द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं सुरेश्वर॥१८०॥
कृतं वा न कृतं वापि क्षंतुमर्हसि शंकर। इत्युक्त्वा वै जपेद्रुद्रं त्वरितं शांतिमेव च॥१८१॥
जपित्वैवं महाबीजं तथा पंचाक्षरस्य वै। स एवं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्॥१८२॥
तत्फलं समवाप्नोति वाराणस्यां यथा मृतः। तथैव मम सायुज्यं लभते नात्र संशयः॥१८३॥

है।।१६५-१६९।। पूजा की पवित्र सामग्री के पच्चीस पल (एक प्रकार की तौल) से स्नान 'अभ्यङ्ग' (नाम से प्रसिद्ध) है। सौ पल से कराये गये को 'स्नान' कहते हैं। दो हजार पल द्वारा स्नान 'महास्नान' कहा जाता है। जो भक्त मेरे लिंग को गाय के शुद्ध घी से स्नान कराता है। सब पूजा सामग्री का शोधन करके फिर जल से लिंग का सिंचन करता है। तब लिंग को वस्त्र से पोंछता है तो उसको दस हजार यज्ञों का फल मिलता है। पूजा करने से सौ हजार यज्ञों का फल प्राप्त होता है। पूजन के समय भजन गाने आदि से अनन्त फल मिलता है। आठ बार महास्नान कराने से स्नान कराना चाहता है तो उसे चाहिये कि वह भक्तिपूर्वक सुगंधित जल से स्नान करावे। पच्चीस पल की सामग्री से अनुलेपन करना चाहिये।।१७०-१७४।। भक्त को समी के फूल, बेलपत्र और कमलों से पूजा करनी चाहिये। वह अन्य फूलों को भी ले सकता है किन्तु बेलपत्र को नहीं छोड़ना चाहिये। बेलपत्र अवश्य रहे।।१७५।। वह महादेव की पूजा चार या आठ द्रोण फूलों से करे। नैवेद्य आठ या दस द्रोण से करे।।१७६।। यदि भक्त ब्राह्मण है किन्तु गरीब (वित्तहीन) है तो वह एक आढक से नैवेद्य करे तो भी उसको सौ द्रोण से किये गये नैवेद्य का फल मिलता है। इसमें विचार करने की कोई बात नहीं है।।१७७।। भक्त को भेरी, मृदंग, मुरज, तिमिर, पटह आदि वाद्य यन्त्रों (बाजों) को बजाते और भजन करते हुये रात्रि में जागरण करना चाहिये। भक्त को अपने सेवक, पुत्र, पत्नी, सम्बन्धियों और बान्धवों के साथ इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये— "हे देवेश! हे शंकर! आप मेरे सब पापों को क्षमा करें। यदि मेरी पूजा में सामग्री, क्रिया और श्रद्धा में कोई हीनता हो।" ऐसा कहने के बाद वह तुरन्त त्वरित रुद्र और शान्ति मन्त्रों का जप करे। तत्पश्चात् पंचाक्षर मन्त्र के बीज का जप करे। उसको पवित्र तीर्थों में जाने, दर्शन करने और यज्ञों के करने के बराबर वही फल मिलता है।

मत्प्रियार्थमिदं कार्यं मद्भक्तैर्विधिपूर्वकम्। ये न कुर्वंति ते भक्ता न भवंति न संशयः॥१८४॥

सूत उवाच

निशम्य वचनं देवी गत्वा वाराणसीं पुरीम्। अविमुक्तेश्वरं लिंगं पयसा च घृतेन च॥१८५॥
अर्चयामास देवेशं रुद्रं भुवननायकम्। अविमुक्ते च तपसा मंदरस्य महात्मनः॥१८६॥
कल्पयामास वै क्षेत्रं मंदरे चारुकंदरे। तत्रांधकं महादैत्यं हिरण्याक्षसुतं प्रभुः॥१८७॥
अनुगृह्य गणत्वं च प्रापयामास लीलया। एतद्वः कथितं सर्वं कथासर्वस्वमादरात्॥१८८॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम्। सर्वक्षेत्रषु यत्पुण्यं तत्सर्वं सहसा लभेत्॥१८९॥
श्रावयेद्वा द्विजान्सर्वान् कृतशौचान् जितेंद्रियान्।
स एव सर्वयज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥१९०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वाराणसीश्रीशैलमाहात्म्यकथनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः॥९२॥

वाराणसी में मरने से जो मुक्ति मिलती है वही मुक्ति उसको प्राप्त होती है। निःसन्देह वह मेरा सायुज्य प्राप्त करता है। मेरे भक्तों द्वारा मेरी प्रसन्नता के लिये यह सब भक्तिपूर्वक किया जाना चाहिये। यदि वे ऐसा नहीं करते तो वे मेरे भक्त नहीं हैं।।१७८-१८४।।

सूत बोले

शिव के इन वचनों को सुनकर देवी पार्वती वाराणसी गईं। उन्होंने अविमुक्तेश्वर लिंग का दूध और घी से स्नान कराया। उन्होंने मंदर पर्वत पर अविमुक्त में भुवन के नायक महान् आत्मा रुद्र की तपस्या से अर्चना की। उन्होंने सुन्दर कन्दरा वाले मंदर पर एक मन्दिर बनाया। वहाँ पर प्रभु महादेव ने हिरण्याक्ष के पुत्र अंधक दैत्य को कृपा करके गाणपत्य पद प्रदान किया। इस प्रकार तुम लोगों को पूरी कथा को विस्तार में मैंने बताया।।१८५-१८८।। वह जो क्षेत्र के माहात्म्य को पढ़ता है या सुनता है या पवित्र एवं जितेन्द्रिय द्विजों को सुनाता है वह मनुष्य सब यज्ञों के करने का फल प्राप्त करता है।।१८९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में वाराणसीश्रीशैलमाहात्म्य नामक बानबेवाँ अध्याय समाप्त॥९२॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

अंधकगाणपत्यम्

ऋषयः ऊचुः

अंधको नाम दैत्येंद्रो मंदरे चारुकंदरे। दमितस्तु कथं लेभे गाणपत्यं महेश्वरात्॥१॥
वक्तुमर्हसि चास्माकं यथावृतं यथाश्रुतम्॥

सूत उवाच

अंधकानुग्रहं चैव मंदरे शोषणं तथा॥२॥
वरलाभमशेषं च प्रवदामि समासतः। हिरण्याक्षस्य तनयो हिरण्यनयनोपमः॥३॥
पुरांधक इति ख्यातस्तपसा लब्धविक्रमः। प्रसादाद्ब्रह्मणः साक्षादवध्यत्वमवाप्य च॥४॥
त्रैलौक्यमखिलं भुक्त्वा जित्वा चेंद्रपुरं पुरा। लीलया चाप्रयत्नेन त्रासयामास वासवम्॥५॥
बाधितास्ताडिता बद्धाः पातितास्तेन ते सुराः। विविशुर्मंदरं भीता नारायणपुरोगमाः॥६॥
एवं संपीड्य वै देवानंधकोपि महासुरः। यदृच्छया गिरिं प्राप्तो मंदरं चारुकंदरम्॥७॥
ततस्ते समस्ताः सुरेंद्राः ससाध्याः सुरेशं महेशं पुरेत्याहुरेवम्।
द्रुतं चाल्पवीर्यप्रभिन्नांगभिन्ना वयं दैत्यराजस्य शस्त्रैर्निकृत्ताः॥८॥

तिरानबे अध्याय

असुर अंधक का कथानक

ऋषिगण बोले

अन्धक नामक दैत्यों के अग्रणी ने मन्दरगिरि की सुन्दर गुफा में दमित होकर शिव से गणों का अधिपति का पद कैसे प्राप्त किया? यह आप हम लोगों को बताएँ जिस प्रकार यह घटित हुआ और जैसे आप ने सुना हो।।१।।

सूत बोले

मैं संक्षेप में यह बताऊँगा कि मंदर पर्वत पर अंधक का शोषण (दमन) कैसे हुआ, उस पर शिव की कृपा कैसे हुई तथा उसको वर कैसे प्राप्त हुआ। पहिले हिरण्याक्ष के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह शक्ति में अपने पिता के समान था। तपस्या द्वारा उसने महान् पराक्रम प्राप्त किया। उसने ब्रह्मा की कृपा से मृत्यु से अवध्यत्व प्राप्त किया अर्थात् मृत्यु से उसको भय नहीं रहा। उसने तीनों लोकों का भोग किया। उसने बिना प्रयास के इन्द्र की पुरी अमरावती को जीतकर इन्द्र को डराया (भयभीत कर दिया)।।२-५।। उसके द्वारा नारायण तथा अन्य देवगण ताड़ित किये गये, पीटे गये, बाँधे गये और नीचे गिराये गये।।६।। इस प्रकार महा असुर अंधक ने देवों को खूब पीड़ित करके अपनी इच्छानुसार मंदर पर्वत की सुन्दर कन्दरा को प्राप्त किया।।७।। तब साध्यों सहित सब

इतीदमखिलं श्रुत्वा दैत्यागममनौपमम्। गणेश्वरैश्च भगवानंधकाभिमुखं ययौ॥९॥

तत्रेंद्रपद्मोद्भवविष्णुमुख्याः सुरेश्वरा विप्रवराश्च सर्वे।
जयेति वाचा भगवंतमूचुः किरीटबद्धांजलयः समंतात्॥१०॥

अथाशेषासुरांस्तस्य कोटिकोटिशतैस्ततः। भस्मीकृत्य महादेवो निर्बिभेदांधकं तदा॥११॥
शूलेन शूलिना प्रोतं दग्धकल्मषकंचुकम्। दृष्ट्वांधकं ननादेशं प्रणम्य स पितामहः॥१२॥
तन्नादश्रवणान्नेदुर्देवा देवं प्रणम्य तम्। ननृतुर्मुनयः सर्वे मुमुदुर्गणपुंगवाः॥१३॥
ससृजुः पुष्पवर्षाणि देवाः शंभोस्तदोपरि। त्रैलोक्यमखिलं हर्षान्ननंद च ननाद च॥१४॥
दग्धोग्निना च शूलेन प्रोतः प्रेत इवांधकः। सात्त्विकं भावमास्थाय चिंतयामास चेतसा॥१५॥
जन्मांतरेपि देवेन दग्धो यस्माच्छिवेन वै। आराधितो मया शंभुः पुरा साक्षान्महेश्वरः॥१६॥
तस्मादेतन्मया लब्धमन्यथा नोपपद्यते। यः स्मरेन्मनसा रुद्रं प्राणांते सकृदेव वा॥१७॥

स याति शिवसायुज्यं किं पुनर्बहुशः स्मरन्।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः सर्वे देवाः सवासवाः॥१८॥

देवताओं के प्रमुख लोग देवों के स्वामी महेश शिव के पास पहुँचे और उनसे निवेदन किया। "दैत्यराज अंधक के शस्त्रों से हम लोग छिन्न-भिन्न हो गये हैं। उसके सामने अल्प पराक्रमी हो गये हैं। अतः हमारे प्रत्येक अंग विदीर्ण और शीर्ण हुये हैं"।।८।। अपने गणेश्वरों द्वारा अंधक का आगमन तथा यह सब समाचार सुनकर शिव ने अंधक की ओर प्रस्थान किया। उस स्थल पर इन्द्र, ब्रह्मा तथा विष्णु और अन्य प्रमुख देवता, श्रेष्ठ ब्राह्मण लोगों ने चारों ओर भगवान की विजय के नारे लगाये। उन्होंने अपने मुकुटों सहित हाथों को जोड़कर अंजलि बाँधकर जयकार करते हुये शिव के प्रति सम्मान व्यक्त किया।।९-१०।। महादेव ने करोड़ों और सैकड़ों करोड़ों राक्षसों के समूहों को भस्म करके अपने त्रिशूल से अंधक को भेद दिया। अर्थात् त्रिशूल उसके शरीर में भोंककर उसको बेहोश कर दिया। त्रिशूलधारी शिव द्वारा त्रिशूल से अंधक के पापरूपी कंचक को जला हुआ (दग्ध) देखकर शिव को प्रणाम करके ब्रह्मा खुशी से चिल्ला उठे। उनकी गरज को सुनकर देवता भी उनको प्रणाम करके गरजे (नाद किया)। सब मुनियों ने इस खुशी में नृत्य किया और गण लोग भी प्रसन्न हुए और आनन्द मनाया।।११-१३।। देवताओं ने महादेव के ऊपर फूलों की वर्षा की। अंधक की मृत्यु की खुशी में तीनों लोकों ने हर्ष से नाद किया और आनन्दित हुये।।१४।। त्रिशूल की अग्नि से शव के समान दग्ध अंधक ने सात्विक भाव से युक्त मन से सोचा।।१५।। "पूर्व जन्म में मैंने महादेव को सताया था। अतः इस जन्म में मैं उनके द्वारा जला दिया गया। पूर्व जन्म में मैंने महादेव की आराधना नहीं की थी। उसी का यह फल मैंने इस जन्म में पाया नहीं तो ऐसा न होता। जो कोई मृत्यु काल में एक बार भी रुद्र (महादेव) का स्मरण करता है, वह उनका सायुज्य प्राप्त करता है तो बहुत बार स्मरण करने से क्या है? ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र सहित सब देवता जिसकी शरण पाकर रहते हैं (अस्तित्व में हैं) तो प्रत्येक व्यक्ति को केवल उन्हीं महादेव की शरण में जाना चाहिये।" इस प्रकार सोच-विचार करने के बाद अंधक अपने मन में प्रसन्न हो गया। उसने पूर्ण सन्तुष्टि का अनुभव किया। उसने गणों सहित शिव, ईशान, महादेव की स्तुति की जिन्होंने उसको उस स्थिति को पहुँचाया था। (दमन किया था)। अंधक

शरणं प्राप्य तिष्टंति तमेव शरणं व्रजेत्। एवं संचिंत्य तुष्टात्मा सोंधकश्चांधकार्दनम्॥१९॥
सगणं शिवमीशानमस्तुवत्पुण्यगौरवात्। प्रार्थितस्तेन भगवान् परमार्तिहरो हरः॥२०॥
हिरण्यनेत्रतनयं शूलाग्रस्थं सुरेश्वरः। प्रोवाच दानवं प्रेक्ष्य घृणया नीललोहितः॥२१॥
तुष्टोस्मि वत्स भद्रं ते कामं किं करवाणि ते। वरान्वरय दैत्येंद्र वरदोहं तवांधक॥२२॥
श्रुत्वा वाक्यं तदा शंभोर्हिरण्यनयनात्मजः। हर्षगद्गदया वाचा प्रोवाचेदं महेश्वरम्॥२३॥
भगवन्देवदेवेश भक्तार्तिहर शंकर। त्वयि भक्तिः प्रसीदेश यदि देयो वरश्च मे॥२४॥
श्रुत्वा भवोपि वचनमंधकस्य महात्मनः। प्रददौ दुर्लभां श्रद्धां दैत्येंद्राय महाद्युतिः॥२५॥
गाणपत्यं च दैत्याय प्रददौ चावरोप्य तम्। प्रणेमुस्तं सुरेंद्राद्या गाणपत्ये प्रतिष्ठितम्॥२६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे अंधकगाणपत्यात्मको नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः॥९३॥

ने घोर दुःखों को हरने वाले महादेव की प्रार्थना की।।१६-१९।। उसके द्वारा प्रार्थना किये जाने पर दयालु देवेश महादेव ने त्रिशूल के अग्रभाग में स्थित हिरण्याक्ष के पुत्र अंधक दानव की ओर कृपापूर्वक देखकर कहा।।२०-२१।। "हे वत्स! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारी मनोकामना को पूरी करूँगा। तुम वर माँगो।" महादेव शंभु की इस बात को सुनकर अंधक ने हर्षपूर्वक गद्गद वाणी से महादेव से कहा।।२२-२३।। "हे देव देवेश! भक्तों के दुःखों के हरने वाले भगवान शंकर!" यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो 'तुम में मेरी भक्ति हो' यह वर दीजिये"।।२४।। अंधक के वचन को सुनकर महान् आत्मा, महाद्युतिमान शंकर ने दैत्येन्द्र अंधक को दुर्लभ भक्ति का वरदान दिया। उसको गणों के अधिपति पदवी भी प्रदान की। अंधक के गणाधिपति (गाणपत्य पद) प्राप्त होने पर उसको देवताओं ने प्रणाम किया।।२५-२६।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में असुर अंधक का कथानक (अंधक के गाणपत्यपद प्राप्ति कथन) नामक तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त॥९३॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

वराहप्रादुर्भावः

ऋषयः ऊचुः

कथमस्य पिता दैत्यो हिरण्याक्षः सुदारुणः। विष्णुना सूदितो विष्णुर्वाराहत्वं कथं गतः॥१॥
तस्य श्रृंगं महेशस्य भूषणत्वं कथं गतम्। एतत्सर्वं विशेषेण सूत वक्तुमिहार्हसि॥२॥

सूत उवाच

हिरण्यकशिपोर्भ्राता हिरण्याक्ष इति स्मृतः। पुरांधकासुरेशस्य पिता कालांतकोपमः॥३॥
देवाञ्जित्वाथ दैत्येंद्रो बद्ध्वा च धरणीमिमाम्। नीत्वा रसातलं चक्रे बंदीमिन्दीवरप्रभाम्॥४॥
ततः सब्रह्मका देवाः परिम्लानमुखश्रियः। बाधितास्ताडिता बद्धा हिरण्याक्षेण तेन वै॥५॥
बलिना दैत्यमुख्येन क्रूरेण सुदुरात्मना। प्रणम्य शिरसा विष्णुं दैत्यकोटिविमर्दनम्॥६॥
सर्वे विज्ञापयामासुर्धरणीबंधनं हरेः। श्रुत्वैतद्भगवान् विष्णुर्धरणीबंधनं हरिः॥७॥
भूत्वा यज्ञवराहोसौ यथा लिंगोद्भवे तथा। दैत्यैश्च सार्धं दैत्येंद्रं हिरण्याक्षं महाबलम्॥८॥

चौरानबेवाँ अध्याय

वराह अवतार

ऋषिगण बोले

अंधक के पिता भयंकर राक्षस हिरण्याक्ष का विष्णु द्वारा बध कैसे हुआ? विष्णु ने वराह का रूप कैसे और क्यों धारण किया? उनकी सींग ने महेश के आभूषण की हैसियत कैसे प्राप्ति की? हे सूत! आप विस्तारपूर्वक यह सब हम सब को बताएँ।।१-२।।

सूत बोले

हिरण्यकशिपु का भाई हिरण्याक्ष एक भयंकर राक्षस था। वह विनाशकारक काल से तुलना योग्य था। वह असुरों के स्वामी अंधक का पिता था।।३।। इस दैत्येन्द्र ने सब देवताओं को पराजित किया था। देवताओं को जीतकर उसने इस नीलकमल की प्रभा वाली पृथ्वी को बाँधकर पाताल लोक में ले जाकर वहाँ बन्दी बना लिया।।४।। दैत्यों के उस क्रूर, दुरात्मा राजा हिरण्याक्ष द्वारा देवतागण सताये गये, मारे-पीटे गये। मुरझाये हुये मुँहवाले देवगण ब्रह्मा को साथ लेकर करोड़ों असुरों के दमनकर्त्ता विष्णु के पास गये और उनको शिर झुकाकर प्रणाम किया। उन्होंने पृथ्वी के बन्दी (कैदी) बनाने का समाचार बताया। इसको सुनकर उन्होंने यज्ञवराह का रूप धारण किया, जैसा कि उन्होंने लिंग के उद्भव के समय में किया था। उन्होंने महाबली दैत्येंद्र हिरण्याक्ष को दैत्यों सहित अपने टेढ़े दाँतों के आगे के नुकीले भाग से (सिरे से) मार डाला। उसके बाद दैत्यों के विनाशक विष्णु भव्यरूप में दीप्त हुये।।५-८।। जैसे कि कल्पों में पहिले पाताल लोक में प्रवेश किया था और पृथ्वी को समुद्र

दंष्ट्राग्रकोट्या हत्वैनं रेजे दैत्यान्तकृत्प्रभुः। कल्पादिषु यथापूर्वं प्रविश्य च रसातलम्॥९॥
आनीय वसुधां देवीमंकस्थामकरोद्वहिः। ततस्तुष्टाव देवेशं देवदेवः मितामहः॥१०॥
शक्राद्यैः सहितो भूत्वा हर्षगद्गदया गिरा। शाश्वताय वराहाय दंष्ट्रिणे दंडिने नमः॥११॥
नारायणाय सर्वाय ब्रह्मणे परमात्मने।
कर्त्रे धर्त्रे धरायास्तु हर्त्रे देवारिणां स्वयम्। कर्त्रे नेत्रे सुरेंद्राणां शास्त्रे च सकलस्य च॥१२॥
त्वमष्टमूर्तिस्त्वमनंतमूर्तिस्त्वमादिदेवस्त्वमनंतवेदितः ।
त्वया कृतं सर्वमिदं प्रसीद सुरेश लोकेश वराह विष्णो॥१३॥
तथैकदंष्ट्राग्रमुखाग्रकोटिभागैकभागार्धतमेन विष्णो।
हताः क्षणात्कामददैत्यमुख्याः स्वदंष्ट्रकोट्या सह पुत्रभृत्यैः॥१४॥
त्वयोद्धृता देव धरा धरेश धराधराकार धृताग्रदंष्ट्रे।
धराधरैः सर्वजनैः समुद्रैः सुरासुरैः सेवितचंद्रवक्त्र॥१५॥
त्वयैव देवेश विभो कृतश्च जयः सुराणामसुरेश्वराणाम्।
अहो प्रदत्तस्तु वरः प्रसीद वाग्देवतावारिजसंभवाय॥१६॥
तव रोम्णि सकलामरेश्वरा नयनद्वये शशिरवी पदद्वये।
निहिता रसातलगता वसुंधरा तव पृष्ठतः सकलतारकादयः॥१७॥
जगतां हिताय भवता वसुंधरा भगवन् रसातलपुटंगता तदा।
अबलोद्धृता च भगवंतस्तवैव सकलं त्वयैव हि धृतं जगद्गुरो॥१८॥

से अपनी गोद में रखकर बाहर लाकर पुनः स्थापित किया था। तब इन्द्र आदि सहित ब्रह्मा ने देवदेव विष्णु की हर्षपूर्वक गद्गद वाणी से स्तुति की थी। "शाश्वत नित्य को नमस्कार। वक्र दंष्ट्रों और दण्डधारी को नमस्कार। सर्वमय नारायण को नमस्कार। महान् आत्मा ब्रह्म को नमस्कार। सब के निर्माता (कर्त्ता) को नमस्कार। पृथ्वी के धर्ता को नमस्कार। देवों के शत्रुओं के विनाशकर्त्ता को नमस्कार। देवों के स्वामियों को नमस्कार। तुम अष्टमूर्त्ति हो, तुम अनन्त मूर्त्ति हो, तुम आदि देव हो, तुम अनन्त के रूप में विदित हो। तुमने प्रत्येक वस्तु को बनाया है। हे देवों के देव! हे लोकेश! हे वराह! हे विष्णु! हमारी कामनाओं के पूर्त्तिकर्त्ता! तुमने एक दंष्ट्रा के अग्र मुख की कोटि के एक भाग के आधे भाग से प्रमुख दैत्यों को उनके पुत्रों और सेवकों समेत मार डाला।।९-१४।। हे धरा के स्वामी! तुमने पर्वताकार पृथ्वी को उठाया और उसको अपने वक्र दाँत के सिरे पर रख लिया। हे मेघ की आभा वाले, सुरों और असुरों से सब पर्वतों और समुद्रों से सेवित। हे कमल के समान मुख वाले भगवन! (प्रभु)।।१५।। हे भगवान! हे देवेश! तुमने ही अकेले असुरों पर देवताओं को विजय दिलायी है। वाग्देवता सरस्वती ने ब्रह्मा को वर प्रदान किया है। हे प्रभो! अब प्रसन्न हो जायँ।।१६।। आप के रोओं में सब अमर लोग शरण पाते हैं। सूर्य और चन्द्र आपके नेत्र हैं। पृथ्वी जिसका उद्धार करके आप पाताल से लाये वह तुम्हारे चरण युगलों में निहित है।सब तारागण तुम्हारे पीठ पर स्थित हैं।।१७।। हे प्रभो! हे जगत् के रक्षक रसातल में ले जाई

इति वाक्पतिर्बहुविधैस्तवार्चनैः प्रणिपत्य विष्णुममरैः प्रजापतिः।
विविधान्वरान् हरिमुखात्तु लब्धवान् हरिनाभिवारिजदेहभृत्स्वयम्॥१९॥
अथ तामुद्धृतां तेन धरां देवा मुनीश्वराः। मूर्ध्न्यारोप्य नमश्चक्रुश्चक्रिणः सन्निधौ तदा॥२०॥
अनेनैव वराहेण चोद्धृतासि वरप्रदे। कृष्णेनाक्लिष्टकार्येण शतहस्तेन विष्णुना॥२१॥
धरणि त्वं महाभागे भूमिस्त्वं धेनुरव्यये। लोकानां धारिणी त्वं हि मृत्तिके हर पातकम्॥२२॥
मनसा कर्मणा वाचा वरदे वारिजेक्षणे। त्वया हतेन पापेन जीवामस्त्वत्प्रसादतः॥२३॥
इत्युक्ता सा तदा देवी धरा देवैरथाब्रवीत्। वराहदंष्ट्राभिन्नायां धरायां मृत्तिकां द्विजाः॥२४॥
मंत्रेणानेन योऽबिभ्रत् मूर्ध्नि पापात्प्रमुच्यते। आयुष्मान्बलवान्धन्यः पुत्रपौत्रसमन्वितः॥२५॥
क्रमाद्भुवि दिवं प्राप्य कर्मांते मोदते सुरैः। अथ देवे गते त्यक्त्वा वराहे क्षीरसागरम्॥२६॥
वाराहरूपमनघं चचाल च धरा पुनः। तस्य दंष्ट्राभराक्रांता देवदेवस्य धीमतः॥२७॥
यदृच्छया भवः पश्यन् जगाम जगदीश्वरः। दंष्ट्रां जग्राह दृष्ट्वा तां भूषणार्थमथात्मनः॥२८॥
दधार च महादेवः कूर्चांते वै महोरसि। देवाश्च तुष्टुवुः सेंद्रा देवदेवस्य वैभवम्॥२९॥
धरा प्रतिष्ठिता ह्येवं देवदेवेन लीलया। भूतानां संप्लवे चापि विष्णोश्चैव कलेवरम्॥३०॥

गई पृथ्वी तुमने ही अकेले बिना किसी सेना की सहायता से उठा लिया। ऊपर लाये। यह कार्य तुमने जगत् के हित के लिये किया। प्रत्येक वस्तु को तुम अकेले धारण किये हो।।१८।। इस प्रकार वाग्देवी और ब्रह्मा ने अनेक प्रकार की स्तुतियों को करके देवताओं के सहित विष्णु को झुककर प्रणाम किया। विष्णु से ब्रह्मा ने विविध वर प्राप्त किया। वह ब्रह्मा स्वयं विष्णु की नाभि कमल से उत्पन्न हुए थे।।१९।। देवों और मुनीश्वरों ने विष्णु द्वारा लाई गई पृथ्वी को चक्रधारी विष्णु के सामने ही अपने शिर पर रख प्रणाम किया।।२०।। "हे धरणी! हे वरदायिनी, तुम अकेले इस वराह द्वारा उद्धृत हो। उद्धार करके ऊपर लाई गई हो जो कि सहज क्रिया-कलाप वाले कृष्ण शतहस्त विष्णु हैं। हे पृथ्वी! तुम बहुत भाग्यशालिनी हो। हे अव्यये (अमर) तुम धेनु हो। तुम लोकों को धारण करने वाली हो। हमारे पापों को दूर करो।।२१-२२।। हे कमल के समान नेत्रों वाली, वर देने वाली, देवी पृथ्वी! हम लोगों द्वारा मन, वाणी और कर्म से किये गये पापों को तुम्हारे द्वारा क्षमा किये जाने पर ही तुम्हारी कृपा से हम लोग जीते हैं"।।२३।। देवताओं द्वारा ऐसा कहने पर पृथ्वी (धरा) ने कहा, "हे ब्राह्मणों! जो वराह के टेढ़े दाँतों से खोदी गई पृथ्वी की मिट्टी को इस मंत्र को दोहराते हुए अपने शिर पर धारण करता है वह पापों से मुक्त जो जाता है। वह दीर्घजीवी और हृष्ट-पुष्ट होता है। वह पुत्रों और पौत्रों से युक्त होता है। मृत्यु के बाद वह स्वर्ग में देवों के साथ आनन्द मनाता है। अपने कर्म की समाप्ति के बाद वह पुनः पृथ्वी पर जन्म लेता है।।२४-२६अ।। जब वराह का शुद्ध रूप त्यागकर विष्णु अपने दंष्ट्रा को छोड़कर क्षीर सागर को चले गये तो देवताओं के स्वामी भगवान विष्णु के टेढ़े दाँतों के भार से पृथ्वी एक बार फिर डोली (हिल गई)। फिर पृथ्वी नीचे थोड़ा दबकर स्थित हो गई।।२६ब-२७।। जगदीश्वर शिव स्वेच्छा से संयोगवश उधर से देखते जा रहे थे। उन्होंने वराह के टेढ़े दंष्ट्रा को वहाँ देखा। उन्होंने अपने भूषण के लिये उसको ले लिया। महादेव शिव ने अपने

ब्रह्मणश्च तथान्येषां देवानामपि लीलया। विभुरंगविभागेन भूषितो न यदि प्रभुः॥३१॥
कथं विमुक्तिर्विप्राणां तस्माद्दंष्ट्री महेश्वरः॥३२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे वराहप्रादुर्भावो नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥९४॥

विशाल वक्ष (छाती) तथा जटाओं के अन्त में धारण कर लिया। देवों के देव महादेव के इस वैभव को देखकर इन्द्र सहित सब देवताओं ने उनकी स्तुति की। इस प्रकार प्रलयकाल के अन्त में देवेश विष्णु ने अपनी लीला से पृथ्वी की प्रतिष्ठा (स्थापना) की। यदि महादेव, विष्णु के अंग के अंश उस वक्र दंष्ट्रा को न धारण करते तो ब्रह्मा, देवताओं, ब्राह्मणों और अन्य लोगों की मुक्ति कैसे होती।।२८-३२।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में वराह प्रादुर्भाव (अवतार) नामक चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त॥९४॥

पंचनवतितमोऽध्यायः

नारसिंहे

ऋषय ऊचुः

नृसिंहेन हतः पूर्वं हिरण्याक्षाग्रजः श्रुतम्। कथं निषूदितस्तेन हिरण्यकशिपुर्वद॥१॥

सूत उवाच

हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लाद इति विश्रुतः। धर्मज्ञः सत्यसंपन्नस्तपस्वी चाभवत्सुधीः॥२॥
जन्मप्रभृति देवेशं पूजयामास चाव्ययम्। सर्वज्ञं सर्वगं विष्णुं सर्वदेवभवोद्भवम्॥३॥
तमादिपुरुषं भक्त्या परब्रह्मस्वरूपिणम्। ब्रह्मणोधिपतिं सृष्टिस्थितिसंहारकारणम्॥४॥
सोपि विष्णोस्तथाभूतं दृष्ट्वा पुत्रं समाहितम्। नमो नारायणायेति गोविंदेति मुहुर्मुहुः॥५॥
स्तुवंतं प्राह देवारिः प्रदहन्निव पापधीः। न मां जानासि दुर्बुद्धे सर्वदैत्यामरेश्वरम्॥६॥
प्रह्लाद वीरदुष्पुत्र द्विजदेवार्तिकारणम्। को विष्णुः पद्मजो वापि शक्रश्च वरुणोथ वा॥७॥
वायुः सोमस्तथेशानः पावको मम यः समः। मामेवार्चय भक्त्या च स्वल्पं नारायणं सदा॥८॥

पंचानबेवाँ अध्याय

नृसिंह का दमन

ऋषिगण बोले

ऐसा सुना गया है कि हिरण्याक्ष का ज्येष्ठ भ्राता हिरण्यकशिपु नृसिंह द्वारा मारा गया था। तो वह उनके द्वारा कैसे मारा गया था। कृपया हम लोगों को यह बताएँ।।१।।

सूत बोले

हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद नाम से प्रसिद्ध था। वह धर्मज्ञ, सत्यवादी, तपस्वी और बुद्धिमान था।।२।। वह जन्म से भक्तिपूर्वक अव्यय, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सब देवों के उद्भव के कारण आदि पुरुष, ब्रह्मा के रूप, ब्रह्माण्ड के अधिपति और जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण, भगवान विष्णु की पूजा करता था।।३-४।। देवताओं के शत्रु हिरण्यकशिपु ने देखा कि उसका पुत्र एकाग्रचित्त होकर 'हे गोविन्द नारायण को नमस्कार' ऐसा बारम्बार दोहराता था। उसने इस प्रकार स्तुति करते हुये देख-सुनकर उसकी ओर ऐसे देखा मानों वह उस पुत्र को जला देगा। उस पापात्मा ने प्रह्लाद से कहा। 'हे मूर्ख! तू देवों और राक्षसों के स्वामी मुझको नहीं जानता है।।५-६।। हे वीर प्रह्लाद मेरे दुष्ट पुत्र! मैं ब्राह्मणों और देवताओं के दुःख का कारण हूँ। (मैं उनका उत्पीड़क हूँ)। विष्णु कौन है? पद्मयोनि ब्रह्मा कौन है? इन्द्र, वरुण, वायु, चन्द्रमा, ईशान और पावक (अग्नि) मेरे बराबर कौन है? भक्तिपूर्वक केवल मेरी पूजा करो। उस नारायण का नाम कभी मत लो।।७-८।। यदि तुम जीने की

प्रह्लाद जीविते वांछा तवैषा शृणु चास्ति चेत्। श्रुत्वापि तस्य वचनं हिरण्यकशिपोः सुधीः॥९॥
प्रह्लादः पूजयामास नमो नारायणेति च। नमो नारायणायेति सर्वदैत्यकुमारकान्॥१०॥
अध्यापयामास च तां ब्रह्मविद्यां सुशोभनाम्। दुर्लंध्यां चात्मनो दृष्ट्वा शक्रादिभिरपि स्वयम्॥११॥
पुत्रेण लंघितामाज्ञां हिरण्यः प्राह दानवान्। एतं नानाविधैर्वध्यं दुष्पुत्रं हंतुमर्हथ॥१२॥
एवमुक्तास्तदा तेन दैत्येन सुदुरात्मना। निजघ्नुर्देवदेवस्य भृत्यं प्रह्लादमव्ययम्॥१३॥

तत्र तत्प्रतिकृतं तदा सुरैर्दैत्यराजतनयं द्विजोत्तमाः।
क्षीरवारिनिधिशायिनः प्रभोर्निष्फलं त्वथ बभूव तेजसा॥१४॥

तदाथ गर्वभिन्नस्य हिरण्यकशिपोः प्रभुः। तत्रैवाविरभूद्धंतुं नृसिंहाकृतिमास्थितः॥१५॥
जघान च सुतं प्रेक्ष्य पितरं दानवाधमम्। बिभेद तत्क्षणादेव करजैर्निशितैः शतैः॥१६॥
ततो निहत्य तं दैत्यं सबांधवमघापहः। पीडयामास दैत्येन्द्रं युगांताग्निरिवापरः॥१७॥
नादैस्तस्य नृसिंहस्य घोरैर्वित्रासितं जगत्। आब्रह्मभुवनाद्विप्राः प्रचचाल च सुव्रताः॥१८॥

दृष्ट्वा सुरासुरमहोरगसिद्धसाध्यास्तस्मिन् क्षणे हरिविरिंचिमुखा नृसिंहम्।
धैर्यं बलं च समवाप्य ययुर्विसृज्य आदिङ्मुखांतमसुरक्षणतत्पराश्च॥१९॥
ततस्तैर्गतैः सैषा देवो नृसिंहः सहस्राकृतिः सर्वपात्सर्वबाहुः।
सहस्रेक्षणः सोमसूर्याग्निनेत्रस्तदा संस्थितः सर्वमावृत्य मायी॥२०॥

इच्छा रखते हो तो, हे प्रह्लाद! ध्यान देकर सुनो।'' हिरण्यकशिपु की धमकी भरी बातों को सुनने के बाद भी बुद्धिमान् बालक प्रह्लाद ने विष्णु की पूजा की और 'हे नारायण! 'नमो नारायण' ऐसा उच्चारण किया। उसने दैत्यों के बालकों को भी 'नमो नारायणाय' जपना सिखाया और उस ब्रह्म विद्या को पढ़ाया। हिरण्यकशिपु ने देखा कि मेरे पुत्र ने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया जिसकी आज्ञा इन्द्र आदि देवताओं द्वारा भी दुर्लंध्य है। उसने राक्षसों से कहा, ''मेरे इस दुष्ट पुत्र को मार डालो जो कि अनेक प्रकार से जान से मारने योग्य है।।९-१२।।'' उस दुष्टात्मा दानव के ऐसा आदेश देने पर देवों के देव अव्यय, विष्णु के सेवक प्रह्लाद को राक्षसों ने मारा-पीटा।।१३।। हे उत्तम ब्राह्मणों! असुरों ने दैत्यराज के पुत्र पर जो कुछ किया वह सब क्षीर सागर में शयनकर्त्ता विष्णु के तेज से वह सब विफल हो गया।।१४।। तब गर्व के मद में चूर हिरण्यकशिपु का बध करने के लिए भगवान विष्णु नृसिंह का रूप धारण करके स्वयं वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने पुत्र प्रह्लाद को कृपापूर्ण दृष्टि से देखकर उसके पिता हिरण्यकशिपु को मार डालने के लिये उसी क्षण अपने तेज पंजों से उसको फाड़ डाला (विदीर्ण कर दिया)।।१५-१६।। उसके बाद पापों के नाशकर्त्ता विष्णु बांधवों सहित उस दैत्येन्द्र का बध कर के युग के अन्तकाल की प्रलयकालीन अग्नि के समान अन्य प्रमुख दैत्यों को पीड़ित किया।।१७।। हे सुव्रत ब्राह्मणों! नृसिंह की भयंकर दहाड़। घोर (गर्जन) से सारा जगत् भयभीत हो गया। ब्रह्मलोक सहित तीनों लोक काँप उठा।।१८।। नृसिंह को देखकर देव, असुर, नाग, सिद्ध, साध्य, विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्य सब अपना धैर्य और बल खोकर अपने जीवन की रक्षा के लिये विभिन्न दिशाओं में भागे। जब वे सब भाग गये तब भगवान नृसिंह जिनके हजार रूप थे, सब बाहु, सब पाद, हजार नेत्र, सूर्य, चन्द्र और अग्नि जिनके नेत्र, जो माया के

तं तुष्टुवुः सुरश्रेष्ठा लोका लोकाचले स्थिताः। सब्रह्मकाःससाध्याश्च सयमाः समरुद्गणाः॥२१॥
परात्परतरं ब्रह्म तत्त्वात्तत्त्वतमं भवान्। ज्योतिषां तु परं ज्योतिः परमात्मा जगन्मयः॥२२॥
स्थूलं सूक्ष्मं सुसूक्ष्मं च शब्दब्रह्ममयः शुभः। वागतीतो निरालंबो निर्द्वंद्वो निरुपप्लवः॥२३॥
यज्ञभुग्यज्ञमूर्तिस्त्वं यज्ञिनां फलदः प्रभुः।
भवान्मत्स्याकृतिः कौर्ममास्थाय जगति स्थितः॥२४॥
वाराहीं चैव तां सैंहीमास्थायेह व्यवस्थितः। देवानां देवरक्षार्थं निहत्य दितिजेश्वरम्॥२५॥
द्विजशापच्छलेनैवमवतीर्णोसि लीलया। न दृष्टं यत्त्वदन्यं हि भवान्सर्वं चराचरम्॥२६॥
भवान्विष्णुर्भवान् रुद्रो भवानेव पितामहः। भवानादिर्भवानंतो भवानेव वयं विभो॥२७॥
भवानेव जगत्सर्वं प्रलापेन किमीश्वर। मायया बहुधा संस्थमद्वितीयमयं प्रभो॥२८॥
स्तोष्यामस्त्वां कथं भासि देवदेव मृगाधिप। स्तुतोपि विविधैःस्तुत्यैर्भावैर्नानाविधैः प्रभुः॥२९॥
न जगाम द्विजाः शांतिं मानयन्योनिमात्मनः। यो नृसिंहस्तवं भक्त्या पठेद्वार्थं विचारयेत्॥३०॥
श्रावयेद्वा द्विजान्सर्वान् विष्णुलोके महीयते। तदंतरे शिवं देवाः सेंद्राः सब्रह्मकाः प्रभुम्॥३१॥

सिरजनहार सब वस्तुओं को ढककर स्थित हो गये। तब लौकालोक पर्वत पर एकत्र हुये श्रेष्ठ देवता लोग, ब्रह्मा, साध्य, यम, वरुण इन सब ने नृसिंह की स्तुति की।।१९-२१।।

स्तुति

"आप ब्रह्मा हो जो महत्तम से भी महत्तम है। आप तत्त्व से तत्त्वतम (महत्तम) हैं। आप ज्योतियों में सब से बड़ी ज्योति हैं। आप जगतमय परमात्मा हैं। आप स्थूल हैं, सूक्ष्म हैं, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं और शब्द ब्रह्म के समान हैं। आप वाणी की सीमा से परे हैं। आप किसी के आश्रय से रहित हैं। आप द्वन्दों (सुख-दुःख आदि) से रहित हैं। आप आपत्ति-विपत्ति से परे हैं।।२२-२३।। आप यज्ञों के कर्त्ताओं के यज्ञों के भोक्ता हैं। आप यज्ञ कर्त्ताओं को यज्ञों का फल देने वाले हैं। आप मत्स्य और कूर्म (मछली और कछुये) का रूप धारण करके जगत् में स्थित हैं।।२४।। आपने देवों के राज्य की रक्षा के लिये वराह और नृसिंह का रूप धारण किया है और दैत्येन्द्र का बध किया है।।२५।। भृगु मुनि के शाप के कारण तदधीन होकर आपने पृथ्वी पर अवतार लिया है। आप चर-अचर और सब-कुछ हैं। आप से अलग कुछ भी नहीं देखा गया है।।२६।। आप ही विष्णु हैं, आप ही रुद्र हैं और आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही आदि हैं, आप ही अन्त हैं। हे विभो। आप अकेले हम सब हैं। अर्थात् आप हम सबमें व्याप्त हैं।।२७।। आप अकेले ही सम्पूर्ण जगत् हैं। हे भगवन्! अधिक प्रलाप (बकवास) से क्या लाभ? हे प्रभो! यह अद्वितीय हैं जो माया के कारण अनेक रूप में स्थित (दिखाई देता) है।।२८।। हम लोग आपकी स्तुति कैसे करें? हे देवों के देव! हे नृसिंह! आप कैसे चमक रहे हैं"। हे ब्रह्मा! यद्यपि विविध स्तुतियों से नृसिंह की भक्तिभाव से स्तुति की गई फिर भी वे शान्त नहीं हुए। वे अपनी योनि (सिंह) का सम्मान करते हुए अशान्त बने रहे। अर्थात् सिंह रूप धारण किये थे। अतः सिंह के स्वभाव के अनुसार वे स्तुति करने पर भी शान्त नहीं हुये। वह व्यक्ति जो कि नृसिंह की इस स्तुति को भक्ति से पढ़ता है या जो इसके अर्थ को विचार करता है या जो इस स्तुति को ब्राह्मणों को सुनाता है, वह विष्णुलोक में सम्मान प्राप्त करता है।।२९-३०।। इस बीच

संप्राप्य तुष्टवुः सर्वं विज्ञाप्य मृगरूपिणः। ततो ब्रह्मादयस्तूर्णं संस्तूय परमेश्वरम्॥३२॥
आत्मत्राणाय शरणं जग्मुः परमकारणम्। मंदरस्थं महादेवं क्रीडमानं सहोमया॥३३॥
सेवितं गणगंधर्वैः सिद्धैरप्सरसां गणैः।
देवताभिः सह ब्रह्मा भीतभीतः सगद्गदम्। प्रणम्य दंडवद्भूमौ तुष्टाव परमेश्वरम्॥३४॥

ब्रह्मोवाच

नमस्ते कालकालाय नमस्ते रुद्र मन्यवे। नमः शिवाय रुद्राय शंकराय शिवाय ते॥३५॥
उग्रोसि सर्वभूतानां नियंतासि शिवोसि नः। नमः शिवाय शर्वाय शंकरायार्त्तिहारिणे॥३६॥
मयस्कराय विश्वाय विष्णवे ब्रह्मणे नमः। अंतकाय नमस्तुभ्यमुमायाः पतये नमः॥३७॥
हिरण्यबाहवे साक्षाद्धिरण्यपतये नमः। शर्वाय सर्वरूपाय पुरुषाय नमोनमः॥३८॥
सदसद्व्यक्तिहीनाय महतः कारणाय ते। नित्याय विश्वरूपाय जायमानाय ते नमः॥३९॥
जाताय बहुधा लोके प्रभूताय नमोनमः। रुद्राय नीलरुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे॥४०॥
कालाय कालरूपाय नमः कालांगहारिणे। मीढुष्टमाय देवाय शितिकंठाय ते नमः॥४१॥
महीयसे नमस्तुभ्यं हंत्रे देवारिणां सदा। ताराय च सुताराय तारणाय नमोनमः॥४२॥
हरिकेशाय देवाय शंभवे परमात्मने। देवानां शंभवे तुभ्यं भूतानां शंभवे नमः॥४३॥

देवता लोग ब्रह्मा और इन्द्र के साथ प्रभु शिव के पास जाकर नृसिंह रूपधारी विष्णु के सब क्रिया-कलापों को बताकर उनकी स्तुति की। अपनी रक्षा के लिये उन्होंने शिव की शरण ली जो उनकी रक्षा के परम कारण हैं। मंदर पर्वत पर शिव उमा के साथ क्रीड़ा कर रहे थे और अपने गणों, गन्धर्वों, सिद्धों और अप्सराओं द्वारा सेवित थे। बेहद भयभीत ब्रह्मा ने देवताओं को साथ लेकर वहीं शिव की स्तुति की।।३१-३४।।

ब्रह्मा बोले

"मृत्यु (काल) के नाशक तुमको नमस्कार! रुद्र के कोप को नमस्कार, शिव को नमस्कार, रुद्र, शिव, शंकर तुमको नमस्कार।।३५।। तुम उग्र (भयानक) हो, सब प्राणियों के नियंत्रक हो, तुम हमारे लिये शिव हो, शिव, शंकर, शर्व और दुःखहर्त्ता को नमस्कार।।३६।। भास्कर को नमस्कार, विष्णु को, ब्रह्मा को नमस्कार। अंतक (विनाशक) को नमस्कार, उमा के पति को नमस्कार।।३७।। हिरण्यबाहु (स्वर्ण की भुजावाले) को नमस्कार, हिरण्यपति को नमस्कार, शर्व को, सर्वरूप को नमस्कार, पुरुष को नमस्कार।।३८।। सत् और असत् से रहित को नमस्कार, महत् के कारण को नमस्कार, नित्य (स्थायी) को, विश्वरूप को, जायमान (उत्पन्न होने वाले) को नमस्कार।।३९।। लोक में अनेक विधि से जन्म लेने वाले को नमस्कार, प्रभूत को नमस्कार, रुद्र को नमस्कार, नीलरुद्र को नमस्कार, काल रुद्र को नमस्कार, प्रचेतस को नमस्कार।।४०।। काले रंग के काल को नमस्कार, काल के विनाशक को नमस्कार, मीढुष्टम सुन्दर को नमस्कार, नीलकण्ठ को नमस्कार।।४१।। महान को नमस्कार, दैत्यों के सदा विनाशकर्त्ता को नमस्कार। तार राक्षस के हंता को तथा सुतार को नमस्कार, तारण (पापियों के उद्धारक) को नमस्कार।।४२।। हरिकेश को नमस्कार, महान् आत्मा शंभु को नमस्कार, देवों

शंभवे हैमवत्याश्च मन्यवे रुद्ररूपिणे। कपर्दिने नमस्तुभ्यं कालकंठाय ते नमः॥४४॥
हिरण्याय महेशाय श्रीकंठाय नमोनमः। भस्मदिग्धशरीराय दंडमुडीश्वराय च॥४५॥
नमो ह्रस्वाय दीर्घाय वामनाय नमोनमः। नम उग्रत्रिशूलाय उग्राय च नमोनमः॥४६॥
भीमाय भीमरूपाय भीमकर्मरताय ते। अग्रेवधाय वै भूत्वा नमो दूरेवधाय च॥४७॥
धन्विने शूलिने तुभ्यं गदिने हलिने नमः। चक्रिणे वर्मिणे नित्यं दैत्यानां कर्मभेदिने॥४८॥
सद्याय सद्यरूपाय सद्योजाताय ते नमः। वामाय वामरूपाय वामनेत्राय ते नमः॥४९॥
अघोररूपाय निकटाय विकटशरीराय ते नमः। पुरुषरूपाय पुरुषैकतत्पुरुषाय वै नमः॥५०॥
पुरुषार्थप्रदानाय पतये परमेष्ठिने। ईशानाय नमस्तुभ्यमीश्वराय नमोनमः॥५१॥
ब्रह्मणे ब्रह्मरूपाय नमः साक्षाच्छिवाय ते। सर्वविष्णुर्नृसिंहस्य रूपमास्थाय विश्वकृत्॥५२॥
हिरण्यकशिपुं हत्वा करजैर्निशतैः स्वयम्। दैत्येंद्रैर्बहुभिः सार्धं हितार्थं जगतां प्रभुः॥५३॥
सैंहीं समानयन्योनिं बाधते निखिलं जगत्। यत्कृत्यमत्र देवेश तत्कुरुष्व भवानिह॥५४॥
उग्रोसि सर्वदुष्टानां नियंतासि शिवोसि नः। कालकूटादिवपुषा त्राहि नः शरणागतान्॥५५॥
शुक्रं तु वृत्तं विश्वेश क्रीडा वै केवलं वयम्। तवोन्मेषनिमेषाभ्यामस्माकं प्रलयोदयौ॥५६॥

के हितैषी को नमस्कार, प्राणिमात्र के शुभचिन्तक तुमको नमस्कार।।४३।। उमा के लाभकर्त्ता को नमस्कार, रुद्र के रूप में क्रोध को नमस्कार, कपर्दी को नमस्कार, कालकण्ठ (नीलकण्ठ) को नमस्कार।।४४।। स्वर्ण के रंग वाले महेश को नमस्कार, श्रीकण्ठ को नमस्कार, भस्म चुपड़े शरीर वाले को नमस्कार, दण्डी और मुण्डी को नमस्कार।।४५।। ह्रस्व को, दीर्घ को नमस्कार, वामन को नमस्कार, उग्र त्रिशूलधारी को नमस्कार, उग्र को नमस्कार।।४६।। भीम को नमस्कार, भीम (भयंकर) रूप को नमस्कार, भयंकर कर्म में रुचि वाले को नमस्कार, वधकर्त्ताओं में सब से अग्रणी को नमस्कार, दूर से बधकर्त्ता को नमस्कार।।४७।। धन्वी को, त्रिशूली को नमस्कार, लोहिया गदाधारी को नमस्कार, आयुध के रूप में हल (हरिस) को धारण करने वाले को नमस्कार, चक्रधारी को नमस्कार, वर्म के धारण करने वाले को, दैत्यों के क्रिया-कलापों को सदा नष्ट करने वाले को नमस्कार।।४८।। सद्य, सद्य रूप और सद्योजात तुमको नमस्कार; वाम, वामरूप और वामदेव तुमको नमस्कार।।४९।। अघोर रूप वाले को नमस्कार, विकट और विकट शरीर वाले को नमस्कार; पुरुष रूप को, तत्पुरुष को, पुरुषों में एक तत्पुरुष को नमस्कार। पुरुषार्थ (जीवन के लक्ष्य) को देने वाले परमेष्ठी को नमस्कार, ईशान और ईश्वर तुमको नमस्कार।।५०-५१।। ब्रह्म को नमस्कार! ब्रह्म के एक रूप को नमस्कार, साक्षात् शिव को नमस्कार। हे शर्व! विश्व के स्रष्टा विष्णु ने भृसिंह का रूप धारण किया। उन्होंने स्वयं तीनों लोकों के कल्याण के लिये अपने तीक्ष्ण नखों से प्रमुख दैत्यों सहित हिरण्यकशिपु को मार डाला। वह सिंह की योनि को प्राप्त करके नृसिंह के रूप में सम्पूर्ण जगत् को कष्ट दे रहे हैं। असह्य पीड़ा पहुँचा रहे हैं। हे देवेश! आप इस विषय में जो करना उचित हो उसको करें।।५२-५४।। आप उग्र हैं, आप सब दुष्टों को वश में करने वाले नियंत्रक हैं, आप हमारे रक्षक हैं, आप अपने कालकूट आदि शरीर से हमारी रक्षा करें। हम लोग आप के शरणागत हैं।।५५।। हे विश्वेश! आप का आचरण शुक्ल (बेदाग) है। हम लोग आप की क्रीड़ा के खिलौने हैं (आप के खेल के

उन्मीलयेत्त्वयि ब्रह्मन्विनाशोस्ति न ते शिव। संतप्तास्मो वयं देव हरिणामिततेजसा।।५७।।
सर्वलोकहितायैनं तत्त्वं संहर्त्तुमिच्छसि।

सूत उवाच

विज्ञापितस्तथा देवः प्रहसन्प्राह तान् सुरान्।।५८।।
अभयं च ददौ तेषां हनिष्यामीति तं प्रभुः। सोपि शक्रः सुरैः सार्धं प्रणिपत्य यथागतम्।।५९।।
जगाम भगवान् ब्रह्मा तथान्ये च सुरोत्तमाः। अथोत्थाय महादेवः शारभं रूपमास्थितः।।६०।।
ययौ प्रांते नृसिंहस्य गर्वितस्य मृगाशिनः। अपहृत्य तदा प्राणान् शरभः सुरपूजितः।।६१।।
सिंहात्ततो नरो भूत्वा जगाम च यथाक्रमम्। एवं स्तुतस्तदा देवैर्जगाम स यथाक्रमम्।।६२।।
यः पठेच्छृणुयाद्वपि संस्तवं शार्वमुत्तमम्। रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रेण सह मोदते।।६३।।

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे नारसिंहे
पंचनवतितमोऽयायः।।९५।।

उपकरण हैं)। आप के नेत्रों के खुलने और बंद होने (निमेष-उन्मेष) पर हमारा उदय और प्रलय (उत्थान और पतन) निर्भर है। हम लोग नृसिंह रूपधारी विष्णु के अमित तेज से संतप्त हैं। दुःखी हैं, तंग हैं। अतः हे देव! आप सब लोकों के हित के लिये इसको रोकने की इच्छा करें''।।५६-५७।।

सूत बोले

उनके द्वारा ऐसा कहे जाने पर शिव ने मुस्कुराते हुये उन देवताओं को अभयदान दिया और कहा। मैं उसका वध करूँगा।'' देवों के साथ इन्द्र ने शिव को प्रणाम किया। भगवान ब्रह्मा और देवगण अपने-अपने निवास स्थान पर चले गये। उसके तुरन्त बाद शिव ने एक शरभ का रूप धारण किया और गर्वित नृसिंह के पास पहुँचे। शरभ के रूप में उन्होंने उसके प्राणों को हर लिया। उसको मार डाला और देवों द्वारा पूजित हुये। विष्णु अपना नृसिंह रूप त्यागकर अपने असली विष्णु रूप में होकर धीरे-धीरे चले गये। शिव भी देवताओं द्वारा स्तुत होकर चले गये। शिव की इस उत्तम स्तुति को जो पढ़ता है या सुनता है वह शिवलोक को जाता है और वहाँ उनके साथ आनन्द मनाता है।।५८-५९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्वभाग में नृसिंह का दमन नामक
पंचानबेवाँ अध्याय समाप्त।।९५।।

षण्णवतितमोऽध्यायः

शरभप्रादुर्भावः

ऋषयः ऊचुः

कथं देवो महादेवो विश्वसंहारकारकः। शरभाख्यं महाघोरं विकृतं रूपमास्थितः॥१॥
किंकिं धैर्यं कृतं तेन ब्रूहि सर्वमशेषतः॥

सूत उवाच

एवमभ्यर्थितो देवैर्मतिं चक्रे कृपालयः॥२॥
यत्तेजस्तु नृसिंहाख्यं संहर्त्तुं परमेश्वरः। तदर्थं स्मृतवान् रुद्रो वीरभद्रं महाबलम्॥३॥
आत्मनो भैरवं रूपं महाप्रलयकारकम्। आजगाम पुरा सद्यो गणानामग्रतो हसन्॥४॥
साट्टहासैर्गणवरै रुत्पतद्भिरितस्ततः। नृसिंहरूपैरत्युग्रैः कोटिभिः परिवारितः॥५॥
तावद्भिरभितो वीरैर्नृत्यद्भिश्च मुदान्वितैः। क्रीडद्भिश्च महाधीरैर्ब्रह्माद्यैः कंदुकैरिव॥६॥
अदृष्टपूर्वैरन्यैश्च वेष्टितो वीरवंदितः। कल्पांतज्वलनज्वालो विलसल्लोचनत्रयः॥७॥
आत्तशस्त्रो जटाजूटे ज्वलद्बालेन्दुमंडितः। बालेंदुद्वितयाकारतीक्ष्णदंष्ट्रांकुरद्वयः॥८॥
आखंडलधनुःखंडसंनिभभ्रूलतायुतः । महाप्रचंडहुंकारबधिरीकृतदिङ्मुखः॥९॥

छानबेवाँ अध्याय

शरभ प्रादुर्भाव

ऋषि गण बोले

जगत् का संहार करने वाले महादेव ने भयानक और विकृत शरभ रूप धारण करके क्या साहसपूर्ण कार्य किया। यह पूर्ण रूप से हम सबको बताइएँ।।१।।

सूत बोले

देवताओं द्वारा ऐसी प्रार्थना किये जाने पर कृपालु शिव ने शक्तिशाली नृसिंह को मारने के लिए संकल्प लिया। उसके लिए शिव ने महाबली वीरभद्र का स्मरण किया।।२।। महा प्रलय करने वाले अपने भयंकर रूप में वीरभद्र तुरन्त मुस्कुराते हुए उनके सामने आये। वह बेहद भयानक गणों के स्वामियों, जो करोड़ों में थे, जो अट्टहास कर रहे थे, जो सिंह रूप में मनुष्य थे और जो इधर-उधर कूद रहे थे। वह अन्य वीरों से भी घिरे थे, जो पहले कभी नहीं देखे गये थे। वे प्रसन्न थे। महाधीर ब्रह्मा आदि के साथ गेंद की तरह खेल रहे थे। वह वीरों द्वारा नमस्कृत थे। वह कल्प के अन्त में उठने वाली अग्नि के ज्वाला के समान थे। उसके तीन चमकदार नेत्र थे। वह भाल जटाओं के बीच चन्द्रमा से शोभित था। उसके हाथों में शस्त्र थे। उसके बाल चन्द्रमा के समान

नीलमेघांजनाकारभीषणश्मश्रुरद्भुतः । वादखंडमखंडाभ्यां भ्रामयंस्त्रिशिखं मुहुः॥१०॥
वीरभद्रोपि भगवान् वीरशक्तिविजृंभितः। स्वयं विज्ञापयामास किमत्र स्मृतिकारणम्॥११॥
आज्ञापय जगत्स्वामिन् प्रसादः क्रियतां मयि।

श्रीभगवानुवाच

अकाले भयमुत्पन्नं देवानामपि भैरव॥१२॥
ज्वलितः स नृसिंहाग्निः शमयैनं दुरासदम्। सांत्वयन् बोधयादौ तं तेन किं नोपशाम्यति॥१३॥
ततो मत्परमं भावं भैरवं संप्रदर्शय। सूक्ष्मं सूक्ष्मेण संहृत्य स्थूलं स्थूलेन तेजसा॥१४॥
वक्त्रमानय कृत्तिं च वीरभद्र ममाज्ञया। इत्यादिष्टो गणाध्यक्षः प्रशांतवपुरास्थितः॥१५॥
जगाम रंहसा तत्र यत्रास्ते नरकेसरी। ततस्तं बोधयामास वीरभद्रो हरो हरिम्॥१६॥
उवाच वाक्यमीशानः पितापुत्रमिवौरसम्॥

श्री वीरभद्र उवाच

जगत्सुखाय भगवनवतीर्णोसि माधव॥१७॥
स्थित्यर्थेन न युक्तोसि परेण परमेष्ठिना। जंतुचक्रं भगवता रक्षितं मत्स्यरूपिणा॥१८॥
पुच्छेनैव समाबध्य भ्रमन्नेकार्णवे पुरा। बिभर्षि कूर्मरूपेण वाराहेणोद्धता मही॥१९॥

वक्र तीक्ष्ण दो दांत थे। उसके इन्द्र धनुष के आकार के समान भौंहें थीं उसकी भयानक हुँकार दिशाओं को बधिर करने वाली थी। नील मेघ और अंजन के समान उसका आकार था। उसके दाढ़ी मूँछे भयानक थे। उसका अद्‌भुत रूप था। वह अपने अखण्ड भुजाओं से सब को विजय करने वाले त्रिशूल को बार-बार घुमा रहा था। भगवान वीरभद्र भी अपनी वीरता की शक्ति को देखकर चकित थे। उन्होंने शिव से निवेदन किया 'हे विश्वात्मा! मुझको स्मरण करने का क्या कारण है? मुझको आज्ञा दीजिए और मुझ पर कृपा कीजिए'।।३-१५।।

भगवान बोले

"एक बहुत भयानक भय असमय में देवताओं के लिए उत्पन्न हो गया है। नृसिंह की अग्नि जल रही है। इस भयंकर न शांत होने वाली अग्नि को शान्त करो। सान्त्वना देते हुए पहले उसको समझाइये। वह शान्त नहीं होती है तो उसको मेरा परम भयानक भैरव रूप दिखाओ। सूक्ष्म से सूक्ष्म को स्थूल से स्थूल को अपने तेज से नष्ट करो। हे वीरभद्र! मेरी आज्ञा से इसको अपना कर्तव्य कहो। अनुभूति कराओ या उसको मेरे सामने लाओ"।।१६।।

इस प्रकार आज्ञा दिये जाने पर गणाधिप ने अपना शान्त रूप धारण किया। उसके बाद वह तेजी से वहाँ गये जहाँ पर नृसिंह उपस्थित थे। वहाँ वीरभद्र ने विष्णु को सब कुछ बताया। वीरभद्र ने एक औरस पुत्र की तरह पिता से इस प्रकार कहा।

वीरभद्र बोले

"हे माधव! हे भगवान! जगत के कल्याण के लिए आप अवतीर्ण हुए हैं। महान ब्रह्मा द्वारा आप जगत् की स्थिति के उद्देश्य के लिए लगाये गये हो। आपने मत्स्य (मछली) के रूप द्वारा समस्त प्राणियों की रक्षा की है।

अनेन हरिरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः। वामनेन बलिर्बद्धस्त्वया विक्रमता पुनः॥२०॥
त्वमेव सर्वभूतानां प्रभवः प्रभुरव्ययः। यदायदा हि लोकस्य दुःखं किंचित्प्रजायते॥२१॥
तदातदा वतीर्णस्त्वं करिष्यसि निरामयम्। नाधिकस्त्वत्समोप्यस्ति हरे शिवपरायण॥२२॥
त्वया धर्माश्च वेदाश्च शुभे मार्गे प्रतिष्ठिताः। यदर्थमवतारोयं निहतः सोपि केशव॥२३॥
अत्यंतघोरं भगवन्नरसिंह वपुस्तव। उपसंहर विश्वात्मंस्त्वमेव मम सन्निधौ॥२४॥

सूत उवाच

इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः शांतया गिरा। ततोधिकं महाघोरं कोपं प्रज्वालयद्धरिः॥२५॥

श्रीनृसिंह उवाच

आगतोसि यतस्तत्र गच्छ त्वं मा हितं वद। इदानीं संहरिष्यामि जगदेतच्चराचरम्॥२६॥
संहर्त्तुर्न हि संहारः स्वतो वा परतोपि वा। शासितं मम सर्वत्र शास्ता कोपि न विद्यते॥२७॥
मत्प्रसादेन सकलं समर्यादं प्रवर्तते। अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्त्तकः॥२८॥
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तद्विद्धि गणाध्यक्ष मम तेजोविजृंभितम्॥२९॥
देवतापरमार्थज्ञा ममैव परमं विदुः। मदंशाः शक्तिसंपन्ना ब्रह्मशक्रादयः सुराः॥३०॥

आप विशाल सागर में पहले अपनी पूँछ में नाव को बाँधकर घूमे थे। आपने वराह रूप धारण किया। आप ने कूर्म (कछुआ) रूप में मंदर पर्वत को उठाया था। आपने वराह रूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार किया था और हिरण्यकशिपु का वध किया था। हे भगवन्! वामन के रूप में आपने बलि को तीन कदम भूमि लेकर बाँधा था। आप ही सब प्राणियों के स्वामी हैं। आप अव्यय हैं। आप प्रभु हैं। जब-जब संसार पर विपत्ति पड़ी है आप ने अवतार लिया है और अपने भक्तों को विपत्ति रहित करके स्वस्थ बनाया है। हे शिवपरायण हरि! आप से बढ़कर कोई नहीं है। आप के समान कोई नहीं है।।१७-२२।। आप के द्वारा धर्म और वेद शुभ मार्ग में प्रतिष्ठित हैं। हे केशव! जिसके लिये यह अवतार आप ने लिया है वह राक्षस भी मारा जा चुका है। आप का नृसिंह रूप भी बहुत भयानक है। हे विश्वात्मा! मेरी उपस्थिति में आप अपने इस रूप को बदल दें।"।।२३-२४।।

सूत बोले

वीरभद्र द्वारा नम्र शब्दों से ऐसा कहने पर विष्णु ने पहिले से अधिक बेहद भयानक क्रोध में अपने को प्रकट किया।।२५।।

नृसिंह भगवान बोले

हे प्रिय वीरभद्र! तुम जहाँ से आये हो वहाँ वापस चले जाओ। मैं अब इस चर और अचर जगत् का संहार करूँगा। संहारकर्त्ता का संहार अपने या दूसरे के हाथ में नहीं है। मेरा ही शासन सर्वत्र है। मेरे ऊपर कोई शास्ता (शासन करने वाला) नहीं है। मेरी कृपा से सब अपनी सीमा के भीतर काम करते हैं। मैं ही सब शक्तियों का प्रवर्तक और निवर्तक हूँ। हे गणाध्यक्ष! जो-जो विभूति से युक्त सत्त्व और ऊर्जा से सम्पन्न है वह मेरे तेज का प्रदर्शन है। ऐसा जानो जो देवता के परम अर्थ को जानते हैं वे मुझको ही सब से महान् मानते हैं। ब्रह्मा, इन्द्र

मन्नाभिपंकजाज्जातः पुरा ब्रह्मा चतुर्मुखः। तल्ललाटसमुत्पन्नो भगवान्वृषभध्वजः॥३१॥
रजसाधिष्ठितः स्त्रष्टा रुद्रस्तामस उच्यते। अहं नियंता सर्वस्य मत्परं नास्ति दैवतम्॥३२॥
विश्वाधिकः स्वतंत्रश्च कर्ता हर्ताखिलेश्वरः। इदं तु मत्परं तेजः कः पुनः श्रोतुमिच्छति॥३३॥
अतो मां शरणं प्राप्य गच्छ त्वं विगतज्वरः। अवेहि परमं भावमिदं भूतमहेश्वरः॥३४॥
कालोस्म्यहं कालविनाशहेतुर्लोकान् समाहर्त्तुमहं प्रवृत्तः।
मृत्योर्मृत्युं विद्धि मां वीरभद्र जीवंत्येते मत्प्रसादेन देवाः॥३५॥

सूत उवाच

साहंकारमिदं श्रुत्वा हरेरमितविक्रमः। विहस्योवाच सावज्ञं ततो विस्फुरिताधरः॥३६॥

श्रीवीरभद्र उवाच

किं न जानासि विश्वेशं संहर्तारं पिनाकिनम्। असद्वादो विवादश्च विनाशस्त्वयि केवलः॥३७॥
तवान्योन्यावताराणि कानि शेषाणि सांप्रतम्। कृतानि येन केनापि कथाशेषो भविष्यति॥३८॥
दोषं त्वं पश्य एतत्त्वमवस्थामीदृशीं गतः। तेन संहारदक्षेण क्षणात्संक्षयमेष्यसि॥३९॥
प्रकृतिस्त्वं पुमान् रुद्रस्त्वयि वीर्यं समाहितम्। त्वन्नाभिपंकजाज्जातः पंचवक्त्रः पितामहः॥४०॥

और अन्य देवता—जो शक्ति सम्पन्न हैं—वे मेरे अंश हैं। पहिले चतुर्मुख ब्रह्मा मेरे नाभि-कमल से उत्पन्न हुये थे। उनके ललाट से शिव की उत्पत्ति हुई थी। ब्रह्मा रजोगुण से अधिष्ठित हैं और रुद्र तामस कहे जाते हैं। मैं मंत्र का नियंता (काबू में रखने वाला) हूँ। मेरे ऊपर कोई देवता नहीं है। अर्थात् स्वयं मैं ही सब से बड़ा हूँ।।२६-३२।। मैं विश्व में अधिक हूँ। मैं सब का स्वतन्त्र स्वामी हूँ। मैं कर्त्ता, हर्त्ता और अखिलेश्वर हूँ। यह मेरा परम तेज है। तुम्हारे सुझाव (राय) को कौन सुनना चाहता है? इसलिये मेरी शरण पाकर तुम निश्चिन्त होकर वापस जाओ। हे भूतेश्वर! यह मेरे परम भाव (उच्च विचार) को समझो। हे वीरभद्र! मैं काल (मृत्यु) हूँ। मैं काल का भी काल हूँ। (काल के विनाश का कारण हूँ।) मैं लोकों के संहार के कार्यों में लगा हुआ हूँ। हे वीरभद्र! तुम मुझको मृत्यु की भी मृत्यु जानो। देवतागण मेरी दया से जी रहे हैं।।३३-३५।।

सूत बोले

नृसिंह की अहंकारपूर्ण इन बातों को सुनकर अमित पराक्रमी वीरभद्र ने तिरस्कार सहित हँसकर हिलते-ओठों से नृसिंह से कहा।।३६।।

वीरभद्र बोले

"क्या तुम पिनाकपाणि जगत् के संहारकर्त्ता शिव को नहीं जानते हो? गलत वाद-विवाद करने से केवल तुम्हारा विनाश होगा।।३७।। तुम्हारे विभिन्न अवतारों में अब कौन शेष बचा है। चाहे वे अवतार जिस किसी भी उद्देश्य से लिए गये हों, अब वे कहानी मात्र रह गये हैं (होंगे)।।३८।। तुम इस दोष (गलती या कमी) को देखो जिसके कारण इस दशा को प्राप्त हुये हो। संहार करने में दक्ष शिव द्वारा तुम विनाश को प्राप्त होगे।।३९।। तुम प्रकृति हो। शिव पुरुष है। शिव तुम में है। यह स्वाभाविक नहीं है। पंचमुखी ब्रह्मा तुम्हारे नाभि-कमल से उत्पन्न

सृष्ट्यर्थेन जगत्पूर्वं शंकरं नीललोहितम्। ललाटे चिंतयामास तपस्युग्रे व्यवस्थितः॥४१॥
तल्ललाटादभूच्छंभोः सृष्ट्यिर्थं तन्न दूषणम्। अंशोहं देवदेवस्य महाभैरवरूपिणः॥४२॥
त्वत्संहारे नियुक्तोस्मि विनयेन बलेन च। एवं रक्षो विदार्यैव त्वं शक्तिकलया युतः॥४३॥
अहंकारावलेपेन गर्जसि त्वमतंद्रितः। उपकारो ह्यसाधूनामपकाराय केवलम्॥४४॥
यदि सिंह महेशानं स्वपुनर्भूत मन्यसे। न त्वं स्रष्टा न संहर्ता न स्वतंत्रो हि कुत्रचित्॥४५॥
कुलालचक्रवच्छक्त्या प्रेरितोसि पिनाकिना। अद्यापि तव निक्षितं कपालं कूर्मरूपिणः॥४६॥
हरहारलतामध्ये मुग्ध कस्मान्न बुध्यसे। विस्मृतं किं तदंशेन दंष्ट्रोत्पातनपीडितः॥४७॥

वाराहविग्रहस्तेऽद्य साक्रोशं तारकारिणा।
दग्धोसि यस्य शूलाग्रे विष्वक्सेनच्छलाद्भवान्॥४८॥

दक्षयज्ञे शिरश्छिन्नं मया ते यज्ञरूपिणः। अद्यापि तव पुत्रस्य ब्रह्मणः पंचमं शिरः॥४९॥
छिन्नं तमेनाभिसंधं तदंशं तस्य तद्बलम्। निर्जितस्त्वं दधीचेन संग्रामे समरुद्रणः॥५०॥
कंडूयमाने शिरसि कथं तद्विस्मृतं त्वया। चक्रं विक्रमतो यस्य चक्रमाणे तव प्रियम्॥५१॥
कुतः प्राप्तं कृतं केन त्वया तदपि विस्मृतम्। ते मया सकला लोका गृहीतास्त्वं पयोनिधौ॥५२॥

हुये हैं।।४०।। उग्र तपस्या में लीन ब्रह्मा ने सृष्टि के लिए अपने ललाट में शंकर विश्व के पूर्वज नीलकंठ का चिन्तन किया।।४१।। सृष्टि के लिये शिव को अपने ललाट से उत्पन्न किया। इसमें शिव का कोई दोष नहीं है। मैं महाभैरव रूप में देवों के देवों के स्वामी शिव का अंश हूँ।।४२।। मैं तुम्हारा संहार विनय से या बल से करने के लिये नियुक्त किया गया हूँ। उनकी शक्ति की कला (अंश) से युक्त हूँ। इस प्रकार तुम असुरों को विदीर्ण करके बारम्बार अहंकार के वश में होकर सचेत हो गरज रहे हो। दुष्टों के साथ उपकार केवल अपकार होता है।।४३-४४।। हे नृसिंह! महेश, शिव को अपने से बाद में उत्पन्न मानते हो तो तुम गलती पर हो। तुम कहीं पर स्रष्टा, संहर्त्ता और स्वतन्त्र नहीं हो।।४५।। तुम कुम्हार के चाक की तरह पिनाकपणि शिव की शक्ति द्वारा प्रेरित हो। आज भी कूर्म रूपी तुम्हारी खोपड़ी शिव के गले के हार के बीच में फँसी हुई है। हे मूर्ख! तुम क्यों नहीं समझते हो। क्या तुम भूल गये हो कि उनके अंश से उत्पन्न स्कन्द द्वारा तुम्हारे वराह के शरीर को तारक के शत्रु स्कन्द द्वारा टेढ़े दाँतों को आंशिक रूप में उखाड़ दिया गया था। हे विष्वक्सेन (विष्णु)! तुम छल से उनके त्रिशूल के अग्रभाग से जला दिये गये थे। दक्ष के यज्ञ में यज्ञ रूपधारी, तुम्हारे सिर को मैंने काट दिया। यहाँ तक कि आज भी ब्रह्मा का पाँचवा सिर वह सिर है जो मैंने तुम्हारे पुत्र ब्रह्मा के सिर को काट दिया था। वह तुम्हारे नाभि कमल से पैदा हुए हैं। उनकी शक्ति तमसमय केवल आंशिक है? तुम युद्ध में दधीच द्वारा केवल मन्त्रों से पराजित हुए थे। यहाँ तक कि सिर को खुजलाते हुए। यह तुम कैसे भूल गये।।४६-५०।। हे चक्रपाणि! तुम्हारा चक्र तुम्हारा प्रिय अस्त्र है। उसके बल को धन्यवाद। तुमने उसको कहाँ से पाया? उसको किसने बनाया? यहाँ तक कि तुम यह भी भूल गये। तुम्हारे सब लोकों को तुमसे मैंने छीन लिया। तुम निद्रा के वश में होकर समुद्र में सोते हो। तो तुम कैसे सात्विक हो? तुमसे प्रारम्भ होकर और घास के अग्रभाग तक में विद्यमान शक्ति

निद्रापरवशः शेषे स कथं सात्त्विको भवान्। त्वदादिस्तंवपर्यतं रुद्रशक्तिविजृंभितम्॥५३॥
शक्तिमानभितस्त्वं च ह्यनलस्त्वं च मोहितः। तत्तेजसोपि माहात्म्यं युवां द्रष्टुं न हि क्षमौ॥५४॥
स्थूला ये हि प्रपश्यंति तद्विष्णोः परमं पदम्। द्यावापृथिव्या इंद्राग्नियमस्य वरुणस्य च॥५५॥
ध्वांतोदरे शशांकस्य जनित्वा परमेश्वरः। कालोसि त्वं महाकालः कालकालो महेश्वरः॥५६॥
अतस्त्वमुग्रकलया मृत्योर्मृत्यर्भविष्यसि।
स्थिरधन्वा क्षयो वीरो वीरो विश्वाधिकः प्रभुः॥५७॥
उपहस्ता ज्वरं भीमो मृगपक्षिहिरण्मयः। शास्ताशेषस्य जगतो न त्वं नैव चतुर्मुखः॥५८॥
इत्थं सर्वं समालोक्य संहरात्मानमात्मना। नो चेदिदानीं क्रोधस्य महाभैरवरूपिणा॥५९॥
वज्राशनिरिव स्थाणोस्त्वेवं मृत्युः पतिष्यति॥

सूत उवाच

इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः क्रोधविह्वलः॥६०॥
ननाद तनुवेगेन तं गृहीतुं प्रचक्रमे। अत्रांतरे महाघोरं विपक्षभयकारणम्॥६१॥
गगनव्यापि दुर्धर्षशैवतेजःसमुद्भवम्। वीरभद्रस्य तद्रूपं तत्क्षणादेव दृश्यते॥६२॥
न तद्धिरणमयं सौम्यं न सौरं नाग्निसंभवम्। न तडिच्चंद्रसदृशमनौपम्यं महेश्वरम्॥६३॥
तदा तेजांसि सर्वाणि तस्मिन् लीनानि शांकरे। ततोव्यक्तो महातेजाव्यक्ते संभवतस्ततः॥६४॥

भगवान रुद्र की शक्ति का प्रदर्शन है। यद्यपि अग्नि और तुम चारों ओर से शक्तिमान हो तो तुम दोनों शिव के शक्ति के सामने मोहित हो गये थे तो भी शिव के तेज के माहात्म्य को तुम दोनों देखने में समर्थ नहीं हो सके।।५१-५४।। केवल विष्णु, इन्द्र, यम, वरुण, स्वर्ग और पृथ्वी के महान् रूपों को, जो स्थूल हैं, बुद्धि वाले हैं वे ही देखते हैं। तुम चन्द्रमा के पेट से पैदा हुए हो, तुम काल हो परमेश्वर महाकाल हैं। महेश्वर कालकाल है। इसलिए तुम शिव के उग्र जलती हुई कला से मृत्यु का शिकार होगे। वे स्थिर धनुष वाले शिव अनश्वर हैं। वह वीर हैं और संसार से ऊपर हैं। वह ज्वर के भय को भी नष्ट करते हैं। वह सब पशुओं और पक्षियों और स्वर्णों के स्वामी हैं। न तो तुम और न तो चतुर्मुख सम्पूर्ण जगत् के शासक हो।।५५-५८।। इस प्रकार सब बातों को सोचकर अपने आत्मा के द्वारा आत्मा को रोक लो। नहीं तो मृत्यु तुम्हारे ऊपर उसी तरह गिरेगी जैसे पर्वत पर वज्र। महा भैरव के रूप के क्रोध का तुम शिकार होगे''।।५९-६०।।

सूत बोले

वीरभद्र द्वारा इस प्रकार कहने पर नृसिंह क्रोध से विह्वल हो गया। वह गरजा और अपने शरीर के बल से वीरभद्र को पकड़ना चाहा।। इसी बीच में शिव के दुर्धर्ष तेज से उत्पन्न गगन व्यापी और विपक्ष में भय उत्पन्न करने वाला महाघोर वीरभद्र का अति भयंकर रूप उत्पन्न हुआ।।६१-६२।। यह सुनहरा नहीं था न तो चन्द्रमा और न तो सूर्य और न तो अग्नि से उत्पन्न रूप था। यह न बिजली के समान न चन्द्रमा के समान था। यह रूप शिव से सम्बन्धित था और अनुपम था।।६३।। तब शंकर के तेज में सब तेज विलीन हो गये। तब उस महान्

रुद्रसाधारणं चैव चिह्नितं विकृताकृति। ततः संहाररूपेण सुव्यक्तः परमेश्वरः॥६५॥
पश्यतां सर्वदेवानां जयशब्दादिमंगलैः। सहस्त्रबाहुर्जटिलश्चंद्रार्धकृतशेखरः॥६६॥
स मृगार्धशरीरेण पक्षाभ्यां चंचुना द्विजाः। अतितीक्ष्णमहादंष्ट्रो वज्रतुल्यनखायुधः॥६७॥
कंठे कालो महाबाहुश्चतुष्पाद्वह्निसंभवः। युगांतोद्यतजीमूतभीमगंभीरनिःस्वनः॥६८॥
समं कुपितवृत्ताग्निव्यावृत्तनयनत्रयः। स्पष्टदंष्ट्रोधरोष्ठश्च हुंकारेण युतो हरः॥६९॥
हरिस्तद्दर्शनादेव विनष्टबलविक्रमः। बिभ्रद्दौर्म्यं सहस्त्रांशोरधः खद्योतविभ्रमम्॥७०॥
अथ विभ्रम्य पक्षाभ्यां नाभिपादेभ्युदारयन्। पादावाबध्य पुच्छेन बाहुभ्यां बाहुमंडलम्॥७१॥
भिन्दन्नुरसि बाहुभ्यां निजग्राह हरो हरिम्। ततो जगाम गगनं देवैः सह महर्षिभिः॥७२॥
सहसैव भयाद्विष्णुं विहगश्च यथोरगम्।
उत्क्षिप्योत्क्षिप्य संगृह्य निपात्य च निपात्य च॥७३॥
उड्डीयोड्डीय भगवान् पक्षाघातविमोहितम्। हरिं हरन्तं वृषभं विश्वेशानं तमीश्वरम्॥७४॥
अनुयांति सुराः सर्वे नमो वाक्येन तुष्टुवुः। नीयमानः परवशो दीनवक्त्रः कृतांजलि॥७५॥
तुष्टाव परमेशानं हरिस्तं ललिताक्षरैः॥

तेज से वीरभद्र व्यक्त हुये।।६४।। उन्होंने रुद्र का साधारण और छद्म रूप धारण किया। तब परमेश्वर संहार रूप में दिखायी पड़े।।६५।। देवता गण जय शब्द और अन्य मंगल शब्दों को जोर से बोलते हुए वे सब (देवता लोग) देखने को खड़े हो गये। वीरभद्र ने हजारों भुजाओं को धारण किया। वे जटाधारी और अपने सिर पर अर्धचन्द्र धारण किये हुए दिखायी दिये।।६६।। उनका आधा शरीर पशु रूप में था। पंखे और चोंच पक्षी के समान थे। उनके टेढ़े दाँत बहुत तेज थे। वज्र के समान उनके पंजे उनके अस्त्र थे।।६७।। वे नीलकंठ थे और उनकी भुजाएँ लम्बी थी। चोंच और चरण ऐसे लगते थे जैसे आग से पैदा हुये हों। युग के अन्त में उत्पन्न मेघ से उत्पन्न बिजली के समान भयंकर गम्भीर गरजने की ध्वनि थी।।६८।। उनके तीनों नेत्र क्रोध से फैले हुए चौड़े हुए आग के गोले के समान हो गये। उनके अधर और दाँत स्पष्ट हो गये। उन्होंने हुँकार किया।।६९।। नृसिंह ने वीरभद्र के देखने पर ही अपने बल और विक्रम को खो दिया। उसकी स्थिति सूर्य की सहस्त्र किरणों के नीचे जुगुनू के समान हो गयी। तब वीरभद्र ने अपने पंखों से उसके पैरों को अपने पूँछ से बाँधकर और अपने भुजाओं से उसके बाहु मण्डलों को कस लिया। उन्होंने अपने पंखों से उसके नाभि और पैरों को हिलाते हुए छाती में मारा। जैसे एक शिकारी चिड़िया साँप को ऊपर उठाती है और आकाश में उड़ जाती है। उसी तरह वीरभद्र ने नृसिंह को ऊपर उठा लिया। उनके पीछे आकाश में देवता और महर्षि भी गये। कुछ बार वह नृसिंह को ऊपर फेंक कर और नीचे गिराकर पकड़ कर उन्होंने अपने पंखों से उसको मारा और उसको अचेत (बेहोश) कर दिया। विश्वात्मा वीरभद्र द्वारा ऊपर नृसिंह को ले जाते हुए देवगण भी उनके पीछे गये। उन्होंने मन्त्रों से उनकी स्तुति की। वीरभद्र द्वारा परवश निःसहाय दशा में ऊपर ले जाते हुए हाथ जोड़कर नृसिंह ने परमेश्वर शिव की स्तुति की। नृसिंह के चेहरे से उसकी दयनीय दशा प्रगट हो रही थी। उन्होंने शिव की ललित अक्षरों द्वारा स्तुति की।।७०-७५।।

श्रीनृसिंह उवाच

नमो रुद्राय शर्वाय महाग्रासाय विष्णवे॥७६॥

नम उग्राय भीमाय नमः क्रोधाय मन्यवे। नमो भवाय शर्वाय शंकराय शिवाय ते॥७७॥
कालकालाय कालाय महाकालाय मृत्यवे। वीराय वीरभद्राय क्षयद्वीराय शूलिने॥७८॥
महादेवाय महते पशूनां पतये नमः। एकाय नीलकंठाय श्रीकण्ठाय मिनाकिने॥७९॥
नमोनंताय सूक्ष्माय नमस्ते मृत्यूमन्यवे। पराय परमेशाय परात्परतराय ते॥८०॥
परात्पराय विश्वाय नमस्ते विश्वमूर्त्तये। नमो विष्णुकलत्राय विष्णुक्षेत्राय भानवे॥८१॥
कैवर्ताय किराताय महाव्याधाय शाश्वते। भैरवाय शरण्याय महाभैरवरूपिणे॥८२॥
नमो नृसिंहसंहर्त्रे कामकालपुरारये। महापाशौघसंहर्त्रे विष्णुमायांतकारिणे॥८३॥
त्र्यंबकाय त्र्यक्षराय शिपिविष्टाय मीढुषे। मृत्युंजयाय शर्वाय सर्वज्ञाय मखारये॥८४॥
मखेशाय वरेण्याय नमस्ते वह्निरूपिणे। महाघ्राणय जिह्वाय प्राणापानप्रवर्त्तिने॥८५॥
त्रिगुणाय त्रिशूलाय गुणातीताय योगिने। संसाराय प्रवाहाय महायंत्रप्रवर्तिने॥८६॥
नमश्चंद्राग्निसूर्याय मुक्तिवैचित्र्यहेतवे। वरदायावताराय सर्वकारणहेतवे॥८७॥
कपालिने करालाय पतये पुण्यकीर्त्तये। अमोघायाग्निनेत्राय लकुलीशाय शंभवे॥८८॥
भिषक्तमाय मुंडाय दंडिने योगरूपिणे। मेघवाहाय देवाय पार्वतीपतये नमः॥८९॥

श्री नृसिंह बोले

"रुद्र को नमस्कार। शर्व को सम्पूर्ण जगत् जिसका ग्रास है उस शिव को, जगत् में व्याप्त को, उग्र को, भीम को, क्रोध को, भव को, शर्व को, शंकर को, शिव को, कालकाल को, काल को, महाकाल को, मृत्यु को, वीरभद्र को, त्रिशूलधारी को, शक्तिशाली व्यक्तियों के नाशक को, महान् महादेव को, पशुओं के प्रतीक को नमस्कार। नीलकंठ को, अनंत को, सूक्ष्म को, मृत्यु को, पर से भी परतर को नमस्कार।।७६-८०।। विश्व को, विश्वमूर्त्त को, विष्णु कलत्र को, विष्णु क्षेत्र को, भानु को, कैवर्त को, किरात को, महाव्याध को, शाश्वत को, भैरव को, शरण्य को, महा भैरव रूप वाले को, नृसिंह के संहर्ता को, काल को और त्रिपुरारी को, महापाशु के समूह के नाशक को, विष्णु की माया को नष्ट करने वाले को, त्र्यंबक को, तीन अक्षर वले को, शिपिविष्ट को, (प्रकाश की किरणों के बीच में वीर पुरुष को) सुन्दर रूप वाले को, मृत्युजंय को, शर्व को, सर्वज्ञ को, यज्ञ के शत्रु को, यज्ञपति को, सर्वश्रेष्ठ को, अग्नि रूप को, महाघ्राण (बड़ी नासिका) को, महाजिह्वा वाले को, प्राण और अपान वायु को गति देने वाले देवता को, त्रिगुण को, त्रिशुल को, गुणातीत को, योगी को, संसार के प्रवाह रूप महायन्त्र को चलाने वाले को, चन्द्र, अग्नि और सूर्य रूप को, त्रिनेत्र वाले को, रहस्यमय मोक्ष के कारण वाले को, वरदाता को, अवतार को, सब कारण को नमस्कार।।८१-८७।। कपाली को नमस्कार, कराल को, पुण्य कीर्ति वाले को, अमोघ को, अग्नि नेत्र को, नल लकुलीश को, शंभु को, सबसे बड़े वैद्य को, सबसे बड़े मुण्ड (सात सिर) वाले को, दंडधारी को, योगी के रूप वाले को, मेघ वाहन को, पार्वतीपति को नमस्कार।

अव्यक्ताय विशोकाय स्थिराय स्थिरधन्विने। स्थाणवे कृत्तिवासाय नमः पंचार्थहेतवे॥९०॥
वरदायैकपादाय नमश्चंद्रार्धमौलिने। नमस्तेऽध्वरराजाय वयसां पतये नमः॥९१॥
योगीश्वराय नित्याय सत्याय परमेष्ठिने। सर्वात्मने नमस्तुभ्यं नमः सर्वेश्वराय ते॥९२॥
एकद्वित्रिचतुःपंचकृत्वस्तेऽस्तु नमोनमः। दशकृत्वस्तु साहस्रकृत्वस्ते च नमोनमः॥९३॥
नमोपरिमितं कृत्वानंतकृत्वो नमोनमः। नमोनमो नमो भूयः पुनर्भूयो नमोनमः॥९४॥

सूत उवाच

नाम्नामष्टशतेनैवं स्तुत्वामृतमयेन तु। पुनस्तु प्रार्थयामास नृसिंहः शरभेश्वरम्॥९५॥
यदायदा ममाज्ञानमत्यहंकारदूषितम्। तदातदापनेतव्यं त्वयैव परमेश्वर॥९६॥
एवं विज्ञापयन्प्रीतः शंकरं नरकेसरी।
नन्वशक्तो भवान् विष्णो जीवितांतं पराजितः॥९७॥
तद्वक्त्रशेषमात्रांतं कृत्वा सर्वस्य विग्रहम्। शुक्तिशित्यं तदा मंगं वीरभद्रः क्षणात्ततः॥९८॥

देवा ऊचुः

अथ ब्रह्मादयः सर्वे वीरभद्र त्वया दृशा। जीविताः स्मो वयं देवाः पर्जन्येनेव पादपाः॥९९॥
यस्य भीषा दहत्यग्निरुदेति च रविः स्वयम्।
वातो वाति च सोसित्वं मृत्युर्धावति पंचमः॥१००॥

अव्यक्त को, विशोक को, स्थिर को, स्थिर धनुष वाले को, स्थाणु को, गज चर्म को वस्त्र रूप में धारण करने वाले को, नमस्कार। यज्ञों के राजा को, योगियों के स्वामी को नमस्कार।।८८-९०।। योगीश्वर को नमस्कार, नित्य को, सत्य को, परमेष्ठी को, परमात्मा को, सर्वेश्वर को एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार, पाँच बार, तुमको नमस्कार है। दस बार, सहस्त्र बार तुमको नमस्कार। असीमित संख्या और अनन्त बार आपको बारबार नमस्कार।।९१-९४।।

सूत बोले

नृसिंह ने इन एक सौ आठ अमृतमय नामों से परमेश्वर शिव की स्तुति की और फिर उनकी स्तुति की।।९५।। हे परमेश्वर! जब भी मैं अज्ञान और महाभिमान से दूषित हो जाऊँ, तब-तब तुम्हारे द्वारा मेरी रक्षा की जानी चाहिए और मेरे उस अज्ञान और अहंकार को दूर किया जाना चाहिये।।९६।। प्रसन्न नृसिंह ने इस प्रकार शंकर से प्रार्थना की। तब वीरभद्र ने कहा। हे विष्णु! "तुम वास्तव में अशक्त हो। तुम अपने जीवन के अन्त में पराजित हुए हो"। तब वीरभद्र ने उसके शरीर पर से ऊपरी चमड़े को खींच लिया। अब उसके शरीर में केवल हड्डियों का ढाँचा रह गया और केवल उसके मुख को शेष रहने दिया।।९७-९८।।

देवतागण बोले

"हे वीरभद्र! ब्रह्मा सहित हम लोग आपकी केवल दृष्टि से उसी तरह जीवित हैं जैसे वृक्ष मेघ से जीवित रहते हैं। आप वे देवता है जिसके भय से अग्नि जलती है, सूर्य उदय होता है, वायु बहती है। तुम मृत्यु हो जो

यदव्यक्तं परं व्योम कालातीतं सदाशिवम्। भगवंस्त्वामेव भवं वदंति ब्रह्मवादिनः॥१०१॥
के वयमेव धातुक्ये वेदने परमेश्वरः। न विद्धि परमं धाम रूपलावण्यवर्णने॥१०२॥
उपसर्गेषु सर्वेषु त्रायस्वास्मान् गणाधिप।
एकादशात्मन् भगवान्वर्तते रूपवान् हरः॥१०३॥
ईदृशान् तेऽवताराणि दृष्ट्वा शिव बहूंस्तमः।
कदाचित्संदिहेन्नास्मांस्त्वच्चिन्तास्तमया तथा॥१०४॥
गुंजागिरिवरतटामितरूपाणि सर्वशः। अभ्यसंहर गम्यं ते न नीतव्यं परापरा॥१०५॥
द्वे तनू तव रुद्रस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोराप्यन्या शिवाप्यन्या ते प्रत्येकमनेकधा॥१०६॥
इहास्मान्पाहि भगवन्नित्याहतमहाबलः। भवता हि जगत्सर्वं व्याप्तं स्वेनैव तेजसा॥१०७॥
ब्रह्मविष्ण्वींद्रचंद्रादि वयं च प्रमुखाः सुराः। सुरासुराः संप्रसूतास्त्वत्तः सर्वे महेश्वर॥१०८॥
ब्रह्मा च इंद्रो विष्णुश्च यमाद्या न सुरासुरान्। ततो निगृह्य च हरिं सिंह इत्युपचेतसम्॥१०९॥
यतो बिभर्षि सकलं विभज्य तनुमष्टधा।
अतोस्मान्पाहि भगवन्सुरान्दानैरभीप्सितैः॥११०॥
उवाच तान् सुरान्देवो महर्षींश्च पुरातनान्। यथा जलं क्षिप्तं क्षीरं क्षीरे घृतं घृते॥१११॥

पंच तत्त्वों को नष्ट करती है। हे भगवन्! ब्रह्मवादी लोग कहते हैं कि तुम सदाशिव हो, तुम अव्यक्त हो, तुम आकाश हो, तुम कालातीत हो और भव (सबके स्रोत) हो।"।।९९-१०१।। "हे परमेश्वर विश्व के आधार! हम लोग आपको जानने में असमर्थ हैं। हम आपके रूप की सुन्दरता के वर्णन करने में असमर्थ हैं। ऐसा जानिए।।१०२।। हे गणाधिप! सब प्रकार की विपत्तियों में हमारी रक्षा करो। हे ग्यारह आत्मा वाले! आप रूपवान् (शरीरधारी) शिव हैं।।१०३।। हे शिव! इस प्रकार के आप के बहुत से अवतारों को देखकर आप के विषय में कोई सन्देह नहीं है। मुझमें प्रवेश करो। हमको चिन्ता (परेशानी) न सताये। आप गुंजा (घुमची) के पर्वत के तट की घुमचियों की तरह अमितरूप वाले हैं। कृपया यह रूप वापस ले लो। संसार को इस रूप से न डरवाओ (न भयभीत करो)।।१०४-१०५।। वेदज्ञ ब्राह्मण लोग जानते हैं कि रुद्र के दो शरीर हैं। एक घोर (भयानक) और दूसरा शिव (शान्त और प्रसन्न)। उनमें से प्रत्येक के अनेक प्रकार हैं।।१०६।। हे भगवन्! जिसकी महान् शक्ति कभी आहत (विफल) नहीं हुई है, उस शक्ति से मेरी रक्षा करो। आप अपने तेज से जगत् में व्याप्त हैं।।१०७।। हे महेश्वर! हम प्रमुख देवगण, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सोम तथा अन्य देवता तथा असुरगण आप से उत्पन्न हुये हैं।।१०८।। हे प्रभो! आप अपने शरीर को ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, यम आदि आठ प्रकार बाँटकर विश्व को धारण करते हो। सहारा देते हो। आप अभीप्सित दान से हमदेवताओं की रक्षा करें।।१०९-११०।। वीरभद्र ने देवताओं और प्राचीन ऋषियों से कहा! "जैसे—जल-जल में, दूध-दूध में और घी-घी में मिलकर एक हो जाता है, जैसे ही विष्णु शिव में लीन हैं। (घुले-मिले एकाकार हैं)। यह ही नृसिंह रूप हैं जो

एक एव तदा विष्णुः शिवलीनो न चान्यथा। एष एव नृसिंहात्मा सदर्पश्च महाबलः॥११२॥
जगत्संहारकारेण प्रवृत्तो नरकेसरी।
याजनीयो नमस्तस्मै मद्भक्तिसिद्धिकांक्षिभिः॥११३॥
एतावदुक्त्वा भगवान्वीरभद्रो महाबलः। अपश्यन् सर्वभूतानां तत्रैवांतरधीयत॥११४॥
नृसिंहकृत्तिवसनस्तदाप्रभृति शंकरः।
वक्त्रं तन्मुण्डमालायां नायकत्वेन कल्पितम्॥११५॥
ततो देवा निरातंकाः कीर्तयंतः कथामिमाम्।
विस्मयोत्फुल्लनयना जग्मुः सर्वे यथागतम्॥११६॥
य इदं परमाख्यानं पुण्यं वेदैः समन्वितम्। पठित्वा श्रृणुते चैव सर्वदुःखविनाशनम्॥११७॥
धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यं पुष्टिवर्धनम्। सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम्॥११८॥
अपमृत्युप्रशमनं महाशांतिकरं शुभम्। अरिचक्रप्रशमनं सर्वाधिप्रविनाशनम्॥११९॥
ततो दुःस्वप्नशमनं सर्वभूतनिवारणम्। विषग्रहक्षयकरं पुत्रपौत्रादिवर्धनम्॥१२०॥
योगसिद्धिप्रदं सम्यक् शिवज्ञानप्रकाशकम्। शेषलोकस्य सोपानं वांछितार्थैकसाधनम्॥१२१॥
विष्णुमायानिरसनं देवतापरमार्थदम्। वांछासिद्धिप्रदं चैव ऋद्धिप्रज्ञादिसाधनम्॥१२२॥
इदं तु शरभाकारं परं रूपं पिनाकिनः।
प्रकाशितव्यं भक्तेषु चिरेषु चिरेषूद्यमितेषु च॥१२३॥

कि दर्प (अहंकार) सहित महाबलवान हैं।।१११-११२।। यह नृसिंह, विश्व के संहारकर्त्ता के द्वारा कार्य करने के लिए बनाया गया है। जो मेरी प्रसन्नता चाहते हैं उनके द्वारा नृसिह पूजनीय और नमस्य (नमस्कार योग्य) हैं''।।११३।। महाबली वीरभद्र इतना कहकर सब भूतों द्वारा देखते-देखते स्वयं वहाँ अन्तर्धान हो गये।।११४।। तब से शंकर नृसिंह के चर्म को वस्त्र रूप में धारण करते हैं अर्थात् नृसिंह कृतिवसन हो गये। शंकर की मुण्डमाला में सिंह का मुंड (खोपड़ी) मुख्य मुंड (सुमेरु नामक माला का मुख्य दाना) हो गया।।११५।। उसके बाद विस्मय से प्रसन्न नेत्र देवतागण आतंक से मुक्त हो कर इस कथा को कहते हुए अपने अपने स्थान को वापस चले गये।।११६।। अगर कोई इस परम पुण्य वेदों से लाभान्वित आख्यान को पढ़ता है या सुनता है तो उसके दुःख दूर हो जाते हैं।।११७।। यह आख्यान धन, यश, आयु, आरोग्य को देने वाला और पुष्टिवर्द्धन है। सब विघ्नों को शान्त करने वाला, सब व्याधियों का विनाश करने वाला, अकाल मृत्यु को शमन करने वाला, शान्ति करने वाला, शत्रु के प्रहार से रक्षा करने वाला, सब मानसिक आधियों का नाशक, दुःस्वप्नों का निवारक, दुष्ट-आत्माओं (भूत-प्रेत) से उत्पन्न बाधाओं के निवारण करने वाला, विष और दुष्ट ग्रह का क्षय करने वाला, पुत्र और पौत्र की वृद्धि करने वाला, योग सिद्धि का प्रदायक, शिव ज्ञान का प्रकाशक, शेष लोक का सोपान (सीढ़ी) और अभीष्ट पदार्थों का प्रदायक है।।११८-१२१।। यह विष्णु की माया को निरस्त करने वाला, देवताओं के परम् ज्ञान के अर्थ का दायक, वांछा की सिद्धि का दाता, ऋद्धि (ऐश्वर्य) और प्रज्ञा (बुद्धि) देने वाला है।।१२२।। शरभ का रूप धारण करने वाले पिनाकधारी शिव के रूप को भक्तों में प्रकाशित करने के योग्य

तैरेव पठितव्यं च श्रोतव्यं च शिवात्मभिः। शिवोत्सवेषु सर्वेषु चतुर्दश्यष्टमीषु च॥१२४॥
पठेत्प्रतिष्ठाकालेषु शिवसन्निधिकारणम्। चोरव्याधाहिसिंहांतकृतो राजभयेषु च॥१२५॥
अत्रान्योत्पातभूकंपदवाग्निपांसुवृष्टिषु। उल्कापाते महावाते विना वृष्ट्यतिवृष्टिषु॥१२६॥
अतस्तत्र पठेद्विद्वाञ्छिवभक्तो दृढव्रतः। यः पठेच्छृणुयाद्वापि स्तवं सर्वमनुत्तमम्॥१२७॥
स रुद्रत्वं समासाद्य रुद्रस्यानुचरो भवेत्॥१२८॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शरभप्रादुर्भावो नाम षण्णवतितमोऽध्यायः॥९६॥

और जब महान् उद्यमों का कार्य हाथ में हो तो उसमें सहायक है।।१२३।। शिव के सब उत्सवों (समारोहों), चतुर्दशी और अष्टमी तिथि को, शिवात्मा भक्तों द्वारा यह पढ़ा और सुना जाना चाहिये।।१२४।। यदि शिव की मूर्त्ति या लिंग की प्रतिष्ठा (स्थापना) के समय यह आख्यान पढ़े तो शिव की उपस्थिति को स्थापित करता है।।१२५।। राजा से, चोरों से, बाघ से, साँपों से और सिंहों से भय हो तो इस आख्यान को पढ़ना चाहिये। अन्य उत्पात भूकम्प, दवाग्नि (जंगल में लगी आग), धूलिवर्षा (आँधी) बवंडर, उल्कापात, अवृष्टि, अतिवृष्टि, महावात (तूफानी आँधी) में दृढ़व्रत वाले विद्वान सब भक्त को यह सदा पढ़ना चाहिये। वह जो कि इस उत्तम स्तुति को पढ़ता है या सुनता है वह रुद्रत्व को प्राप्त करता है और रुद्र का अनुचर होता है।।१२६-१२८।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में शरभ प्रादुर्भाव नामक छियानबेवाँ अध्याय समाप्त॥९६॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

जलंधरवधः

ऋषय ऊचुः

जलंधरं जटामौलिः पुरा जंभारिविक्रमम्। कथं जघान भगवान् भगनेत्रहरो हरः॥१॥
वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण सुव्रत॥

सूत उवाच

जलंधर इति ख्यातो जलमंडलसंभवः॥२॥
आसीदंतकसंकाशस्तपसा लब्धविक्रमः। तेन देवाः सगंधर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः॥३॥
निर्जिताः समरे सर्वे ब्रह्मा च भगवानजः। जित्वैव देवसंघातं ब्रह्माणं वै जलंधरः॥४॥
जगाम देवदेवेशं विष्णुं विश्वहरं गुरुम्। तयोः समभद्युद्धं दिवारात्रमविश्रमम्॥५॥
जलंधरेशयोस्तेन निर्जितो मधुसूदनः। जलंधरोपि तं जित्वा देवदेवं जनार्दनम्॥६॥
प्रोवाचेदं दितेः पुत्रान् न्यायधीर्जेतुमीश्वरम्। सर्वे जिता मया युद्धे शंकरो ह्यजितो रणे॥७॥
तं जित्वा सर्वमीशानं गणैर्नंदिना क्षणात्। अहमेव भवत्वं च ब्रह्मत्वं वैष्णवं तथा॥८॥

सत्तानबेवाँ अध्याय

जलंधर वध

ऋषिगण बोले

हे लोमहर्षण! हे सुव्रत! भग के नेत्रों के नाशक, जटाधारी भगवान शिव ने इन्द्र के समान पराक्रमी जलंधर को कैसे मारा था? यह कथानक आप हम सब को बताएँ।

सूत बोले

एक असुर ने समुद्र में जन्म लिया। वह जलंधर नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह यमराज के समान था। उसने तपस्या द्वारा अतुल पराक्रम प्राप्त किया था। उसने युद्ध में गन्धर्वों, यक्षों, नागों और राक्षसों सहित सब देवताओं, यहाँ तक कि अज भगवान ब्रह्मा को भी जीत लिया था। देवताओं और ब्रह्मा को जीतने के बाद वह देवेशों के देव और विश्व के विनाशक एवं गुरु विष्णु के पास गया। बिना विराम के रात-दिन उन दोनों में युद्ध हुआ।।१-५।। जलंधर ने विष्णु को हरा दिया। देवताओं के स्वामी विष्णु को हराने के बाद उसने दिति के पुत्रों से कहा कि, "केवल शिव ही जीतने को रह गये हैं। उसको जीतना न्याय संगत है। युद्ध में मैंने सब को जीत लिया है।

वासवत्वं च युष्माकं दास्ये दानवपुंगवाः। जलंधरवचः श्रुत्वा सर्वे ते दानवाधमाः॥९॥
जगर्जुरुच्चैः पापिष्ठा मृत्युदर्शनतत्पराः। दैत्यैरेतैस्तथान्यैश्च रथनागतुरंगमैः॥१०॥
सन्नद्धैः सह सन्नह्य शर्वं प्रति ययौ बली। भवोपि दृष्ट्वा दैत्येंद्रं मेरुकूटमिव स्थितम्॥११॥
अवध्यत्वमपि श्रुत्वा तथान्यैर्भगनेत्रहा। ब्रह्मणो वचनं रक्षन् रक्षको जगतां प्रभुः॥१२॥
सांबः सनंदी सगणः प्रोवाच प्रहसन्निव। किं कृत्यमसुरेशान युद्धेनानेन सांप्रतम्॥१३॥
मद्बाणैर्भिन्नसर्वांगो मर्तुमभ्युद्यते मुदा। जलंधरोपि तद्वाक्यं श्रुत्वा श्रोत्रविदारणम्॥१४॥
सुरेश्वरमुवाचेदं सुरेतरबलेश्वरः। वाक्येनालं महाबाहो देवदेव वृषध्वज॥१५॥
चंद्रांशुसन्निभैः शस्त्रैर्हर योद्धुमिहागतः॥
निशम्यास्य वचः शूली पादांगुष्ठेन लीलया। महांभसि चकाराशु रथांगं रौद्रमायुधम्॥१६॥
कृत्वार्णवांभसि सितं भगवान् रथांगं स्मृत्वा जगत्रयमनेन हताः सुराश्च।
दक्षांधकांतकपुरत्रययज्ञहर्ता लोकत्रयांतककरः प्रहसंस्तदाह॥१७॥
पादेन निर्मितं दैत्य जलंधर महार्णवे। बलवान् यदि चोद्धर्तुं तिष्ठ योद्धुं न चान्यथा॥१८॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधेनादीप्तलोचनः। प्रदहन्निव नेत्राभ्यां प्राहालोक्य जगत्रयम्॥१९॥

केवल वही अजित बने हैं। हे दानवों! गणों के नेताओं और नंदी सहित शिव को जीतकर मैं तुम लोगों में शिव, ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र के पदों (ओहदों) को वितरण करूँगा।'' जलंधर की बातों को सुनकर सब अधम, मृत्यु का सामना करने में तत्पर पापी दानव लोग खूब गरजने लगे। उन दैत्यों को साथ लेकर बली जलंधर वह रथ, हाथियों और घोड़ों पर सवार होकर अस्त्र-शस्त्रों से लैस होकर शिव से युद्ध करने के लिये चल दिया।।९-१०।। मेरु के शिखर पर स्थित शिव ने भी दानवराज को देखा। उन्होंने दूसरों द्वारा पहले ही सुन लिया था कि जलंधर अवध्य है। भग के नेत्रों के नाशक, तीनों लोकों के स्वामी और रक्षक ने ब्रह्मा को दिये गये उनके वचन का पालन करना चाहा। वह अंबा, नंदी और अपने गणों के सहित थे। उन्होंने हँसते हुए कहा, ''हे असुरों के स्वामी! इस समय युद्ध से क्या कार्य सिद्ध होगा?।।११-१३।। तुम मेरे बाणों के द्वारा अपने शरीर को कटे और टुकड़े-टुकड़े अंगों के साथ मरने का प्रयास प्रसन्नतापूर्वक कहने के लिए तैयार हो।'' कानो को विदीर्ण करने वाले इन शब्दों को सुनकर असुरों के सेना के नायक ने देवेश शिव से कहा! ''हे वृषध्वज! हे देवताओं के देवता! हे महाबाहु! बोलना व्यर्थ है। हे शिव! मैं यहाँ चन्द्रमा की किरणों के समान चमकते हुए शस्त्रों से तुमसे युद्ध करने के लिए आया हूँ।'' उसके वचन को सुनकर त्रिशूलधारी शिव ने सहज भाव से अपने पैर के अँगूठे से भयानक चक्र को समुद्र के जल पर खींच लिया।।१४-१६।। समुद्र के जल की सतह पर चक्र के तेज अस्त्र को बनाने के बाद शिव ने सोचा कि मेरे द्वारा तीनों लोक और देवगण मर जायेंगे। दक्ष, अन्धक, अन्तक, त्रिपुर के और दक्ष यज्ञ के हर्त्ता और तीनों लोकों संहारकर्ता ने हँसते हुए कहा।।१७।। ''हे जलन्धर! हे असुर! यदि तुम इस महासागर में मेरे पैर के अँगूठे से बनाए गये अस्त्र को उठा सको तो तुम मेरे सामने युद्ध के लिए खड़े हो अन्यथा नहीं।'' शिव के वचन को सुनकर वह असुर क्रोध से नाराज हो गया। उसकी आँखें लाल हो गयी। ऐसा उसने तीनों लोकों की ओर देखा। ऐसा लगा कि वह अपने आँखों से उनको (तीनों लोकों को) जला देगा।।।१८-१९।।

जलंधर उवाच

गदामुद्धत्य हत्वा च नंदिनं त्वां च शंकर। हत्वा लोकान्सुरैः सार्धं डुंडुभान् गरुडो यथा॥२०॥
हंतुं चराचरं सर्वं समर्थोहं सवासवम्। को महेश्वर मद्बाणैरच्छेद्यो भुवनत्रये॥२१॥
बालभावे च भगवान् तपसैव विनिर्जितः। ब्रह्मा बली यौवने वै मुनयः सुरपुंगवैः॥२२॥
दग्धं क्षणेन सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम्। तपसा किं त्वया रुद्र निर्जितो भगवानपि॥२३॥
इंद्राग्नियमवित्तेशवायुवारीश्वरादयः । न सेहिरे यथा नागा गंधं पक्षिपतेरिव॥२४॥
न लब्ध्वा दिवि भूमौ च बाहवो मम शंकर। समस्तान्पर्वतान्प्राप्य धर्षिताश्च गणेश्वर॥२५॥
गिरींद्रो मंदरः श्रीमान्नीलो मेरुः सुशोभनः। घर्षितो बाहुदंडेन कंडूनोदार्थमापतत्॥२६॥
गंगा निरुद्धा बाहुभ्यां लीलार्थं हिमवद्गिरौ। नारीणां मम भृत्यैश्च वन्द्रो बद्धो दिवौकसाम्॥२७॥
वडवायाः मुखं भग्नं गृहीत्वा वै करेण तु। तत्क्षणादेव सकलं चैकार्णवमभूदिदम्॥२८॥
ऐरावतादयो नागाः क्षिप्ताः सिंधुजलोपरि। सरथो भगवानिंद्रः क्षिप्तश्च शतयोजनम्॥२९॥
गरुडोपि मया बद्धो नागपाशेन विष्णुना। उर्वश्याद्या मया नीता नार्यः कारागृहांतरम्॥३०॥
कथंचिल्लब्धवान् शक्रः शचीमेकां प्रणम्य माम्।
मां न जानासि दैत्यैंद्रं जलंधरमुमापते॥३१॥

जलंधर बोले

"हे शंकर मैं अपने लोहिया गदा को उठाऊँगा और तुम्हारी और नंदी की हत्या कर दूँगा। जैसे गरुड़ डुंडुभो (जल के साँपों) को मारता है। उसी प्रकार देवताओं सहित मैं तीनों लोकों को नष्ट कर दूँगा। मैं सब चर और अचर को इन्द्र सहित मार डालने को समर्थ हूँ। हे महेश्वर! तीनों लोकों में कौन है जो मेरे बाणों द्वारा छेदने के योग्य न हो।।२०-२१।। मैंने अपने बचपन में अपने तपोबल से भगवान को जीत लिया था। बली ब्रह्मा और मुनिगण, देवताओं के प्रमुखों सहित मेरे द्वारा युवावस्था में जीत लिये गये थे।।२२।। मैंने पहले क्षण मात्र में सम्पूर्ण चर और अचर सहित तीनों लोकों को जला दिया। हे रुद्र! क्या तुमने तपस्या द्वारा किसी भगवान को पराजित किया है।।२३।। जैसे पक्षिराज गरुड़ की गंध को साँप नहीं बरदाश्त कर सकते उसी तरह इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, वायु, बरुण और अन्य मुझको सहन नहीं कर सकते हैं।।२४।। हे शंकर! न तो स्वर्ग पर, न पृथ्वी पर मेरी भुजाओं का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं ठहरा। हे गणों के स्वामी! मैं अपने बाहु दंड की खुजलाहट मिटाने के लिए सब पहाड़ों को गया और उन पर आक्रमण किया।।२५।। पर्वतों के राजा मन्दर, श्रीमान नील, सुन्दर मेरु पर मैंने अपनें बाहुदंडों से आक्रमण किया। मेरु पर्वत तब गिर गया जब मैंने अपने बाहुओं की खुजली मिटाने के लिए उसको रगड़ा।।२६।। मैंने लीला वश अपनी बाहुओं से गंगा को हिमवान पर्वत पर रोक दिया। मेरे नौकरों ने स्वर्ग निवासिनी स्त्रियों को पकड़ लिया और जेल में डाल दिया।।२७।। मैंने बडवा (समुद्र की अग्नि) के मुख को हाथ से पकड़ कर जाम कर दिया। उसी क्षण यह सब एक समुद्र हो गया।।२८।। ऐरावत और अन्य हाथियों को मैंने समुद्र के जल पर फेंक दिया। रथ सहित इन्द्र को सौ योजन दूर फेंक दिया।।२९।। मैंने नागपाश द्वारा विष्णु सहित गरुड़ को भी बाँध लिया। उर्वशी तथा अन्य स्त्रियों को मैंने जेल में डाल दिया।।३०।। इन्द्र

सूत उवाच

एवमुक्तो महादेवः प्रादहद्वै रथं तदा।
तस्य नेत्राग्निभागैककलार्धार्धेन चाकुलम्।।३२।।
दैत्यानामतुलबलैर्हयैश्च नागैर्दैत्येंद्रास्त्रिपुररिपोर्निरीक्षणेन।
नागाद्वैशसमनुसंवृतश्च नागैर्देवेशं वचनमुवाचचाल्पबुद्धिः।।३३।।
किं कार्यं मम युधि देवदैत्यसंघैर्हेतुं यत्सकलमिदं क्षणात्समर्थः।
यत्तस्माद्भयमिहनास्ति योद्धुमीश वांछैषा विपुलतरा न संशयोत्र।।३४।।
तस्मात्त्वं मम मदनारिदक्षशत्रो यज्ञारे त्रिपुररिपो ममैव वीरैः।
भूतेंद्रैर्हरिवदनेन देवसंघैर्योद्धुं ते बलमिह चास्ति चेद्धि तिष्ठ।।३५।।
इत्युक्त्वाथ महादेवं महादेवारिनंदनः। न चचाल न सस्मार निहतान्बांधवान् युधि।।३६।।
दुर्मदेनाविनीतात्मा दोर्भ्यामास्फोट्य दोर्बलात्। सुदर्शनाख्यं यच्चक्रं तेन हंतुं समुद्यतः।।३७।।
दुर्धरेण रथांगेन कुच्छ्रेणापि द्विजोत्तमाः। स्थापयामास वै स्कंधे द्विधाभूतश्च तेन वै।।३८।।
कुलिशेन यथा छिन्नोद्विधा गिरिवरो द्विजाः। पपात दैत्यो बलवानंजनाद्रिरिवापरः।।३९।।
तस्य रक्तेन रौद्रेण संपूर्णमभवत्क्षणात्। तद्रक्तमखिलं रुद्रनियोगान्मांसमेव च।।४०।।

ने मुझको प्रणाम करके अकेली सची को बड़ी कठिनाई के साथ वापस प्राप्त किया। हे उमापति! तुम दैत्यों के राजा मुझ जलन्धर को नहीं जानते हो''।।३१।।

सूत बोले

ऐसा कहने पर महादेव ने अपने नेत्र की अग्नि की ज्वाला के चतुर्थ अंश से उसके रथ को जला दिया।।३२।। तब दैत्यों का राजा घोड़े, हाथियों और नागों से बनी हुई दैत्यों की सेना से घिरा असंग होने से वह शिव के निरीक्षण से मरने से बच गया। तब उस मूर्ख असुर ने देवेश शंकर से कहा।।३३।। ''देवताओं और असुरो में परस्पर संघर्ष से मेरा क्या काम सिद्ध होगा? मैं अकेले एक क्षण में इन सबको नष्ट करने में समर्थ हूँ। मुझको युद्ध का कोई भय नहीं है। हे ईश! यह मेरी तीव्र लालसा है। अतः हे काम, दक्ष, यज्ञ के शत्रु अगर तुममें युद्ध करने की शक्ति है तो मेरे वीरों से अपने भूत गणों और लंगूर मुख वाले नंदी की सहायता से यहाँ तुम मुझसे लड़ने के लिए खड़े हो जाओ''।।३४-३५।। महादेव से ऐसा कहने के बाद वह महान् असुर न तो अपनी जगह से हिला न युद्ध में अपने कुल के मर जाने के विषय में कुछ सोचा। उस अभिमानी और उदण्ड स्वभाव वाले जलन्धर ने अपने हाथों से ताली बजायी और सुदर्शन नामक गदा को पकड़ा। उसने उस गदा से शिव का वध करना चाहा।।३६-३७।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! उसने उस भारी गदा को प्रयास करके अपने कंधे पर रखा। उससे वह दो टुकड़े हो गया। जैसे वज्र से पर्वत दो टुकड़े हो जाता है।।३८।। जैसे कि अच्छा पहाड़ इन्द्र के वज्र से छिन्न हो जाता है उसी प्रकार दूसरे अंजन पर्वत के समान वह बलवान दैत्य भूमि पर गिर पड़ा।।३९।। उसी क्षण उसके भयानक खून से वह पूरा स्थान ढक गया। इन्द्र की आज्ञा से उसका खून और उसका माँस

महारौरवमासाद्य रक्तकुंडमभूदहो। जलंधरं हतं दृष्ट्वा देवगंधर्वपार्षदाः॥४१॥
सिंहनादं महत्कृत्वा साधु देवेति चाब्रुवन्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि जलंधरविमर्दनम्॥४२॥
श्रावयेद्वा यथान्यायं गाणपत्यमवाप्नुयात्॥४३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे अलंधरवधो नाम
सप्तनवतितमोऽध्यायः॥९७॥

महारौरव नरक में पहुँच गया। वहाँ खून का एक गहरा गड्ढा हो गया। जलन्धर को मरा देखकर देवताओं, गन्धर्वों और पार्षदों ने सिंहनाद करके साधु-साधु ऐसा कहा। जो कोई जलन्धर के नाश की इस कथा को पढ़ेगा या सुनेगा या सुनाएगा वह गणपति पद को प्राप्त करेगा।।४०-४३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में जलंधर वध नामक
सत्तानबेवां अध्याय समाप्त हुआ॥९७॥

—❋❋❋—

अष्टनवतितमोऽध्यायः

सहस्रनामभिः पूजनाद्विष्णुचक्रलाभः

ऋषयः ऊचुः

कथं देवेन वै सूत देवदेवान्महेश्वरात्। सुदर्शनाख्यं वै लब्धं वक्तुमर्हसि विष्णुना॥१॥

सूत उवाच

देवानामसुरेंद्राणामभवच्च सुदारुणः। सर्वेषामेव भूतानां विनाशकरणो महान्॥२॥
ते देवाः शक्तिमुशलैः सायकैर्नतपर्वभिः। प्रभिद्यमानाः कुंतैश्च दुद्रुवुर्भयविह्वलाः॥३॥
पराजितास्तदा देवा देवदेवेश्वरं हरिम्। प्रणेमुस्तं सुरेशानं शोकसंविग्नमानसाः॥४॥
तान् समीक्ष्याथ भगवान् देवदेवेश्वरो हरिः। प्रणिपत्य स्थितान्देवानिदं वचनमब्रवीत्॥५॥
वत्साः किमिति वै देवाश्च्युतालंकारविक्रमाः। समागताः ससंतापा वक्तुमर्हथ सुव्रताः॥६॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा तथाभूताः सुरोत्तमाः। प्रणम्याहुर्यथावृत्तं देवदेवाय विष्णवे॥७॥
भगवन्देवदेवेश विष्णो जिष्णो जनार्दन। दानवैः पीडिताः सर्वे वयं शरणमागताः॥८॥
त्वमेव देवदेवेश गतिर्नः पुरुषोत्तम। त्वमेव परमात्मा हि त्वं पिता जगतामपि॥९॥

अट्ठानबेवाँ अध्याय

सहस्रों नामों द्वारा पूजन से विष्णु को चक्र लाभ

ऋषिगण बोले

हे सूत! देवेश महेश्वर से विष्णु ने सुदर्शन चक्र कैसे प्राप्त किया था? इसको आप हम लोगों को बताएँ।।१।।

सूत बोले

देवताओं और असुरों के प्रमुखों के बीच सब प्राणियों के महान् विनाश के रूप में भयंकर युद्ध हुआ। शक्ति द्वारा, गदा द्वारा और मूसलों से मारे, बाणों और भालों द्वारा छेदे जाने पर भय से विह्वल होकर घुटने टेक कर देवगण भाग खड़े हुए।।२-३।। तब पराजित देवताओं ने शोक से दुःखी मन से देवताओं के देवता भगवान विष्णु के पास गये और उनको प्रणाम किया।।४।। प्रणाम करके एक ओर खड़े हुये उनको देखकर देवों के देव के स्वामी विष्णु ने उनसे यह वचन कहा।।५।। "हे देवताओं! हे सुव्रतों! इतना अधिक अपने पराक्रम से गिरे हुये दुःखी होकर कहाँ से आये हो? यह तुम लोग बताओ"।।६।। उनकी बातों को सुनकर उत्तम देवताओं के देवता विष्णु से सब घटना जैसी हुई थी, निवेदन किया।।७।। "हे भगवान विष्णु! हे देवों के देवेश! हे जनार्दन! हम लोग दानवों से पीड़ित होकर आपकी शरण में आये हैं।।८।। हे पुरुषोत्तम! हे देव! देवेश! आप ही हमारी

त्वमेव भर्ता हर्ता च भोक्ता दाता जनार्दन। हंतुमर्हसि तस्मात्त्वं दानवान्दानवार्दन॥१०॥
दैत्याश्च वैष्णवैर्ब्राह्मै रौद्रैर्याम्यैः सुदारुणैः। कौबेरैश्चैव सौम्यैश्च नैर्ऋत्यैर्वारुणैर्दृढैः॥११॥
वायव्यैश्च तथाग्नेयैरैशानैर्वार्षिकैः शुभैः। सौरै रौद्रैस्तथा भीमैः कंपनैर्जृंभणैर्दृढैः॥१२॥
अवध्या वरलाभात्ते सर्वे वारिलोचन। सूर्यमंडलसंभूतं त्वदीयं चक्रमुद्यतम्॥१३॥
कुंठितं हि दधीचेन च्यावनेन जगद्गुरो। दंडं शार्ङ्गं तवास्त्रं च लब्धं दैत्यैः प्रसादतः॥१४॥
पुरा जलंधरं हंतुं निर्मितं त्रिपुरारिणा। रथांगं सुशितं घोरं तेन तान् हंतुमर्हसि॥१५॥
तस्मात्तेन निहंतव्या नान्यैः शस्त्रशतैरपि। ततो निशम्य तेषां वै वचनं वारिजेक्षणः॥१६॥
वाचस्पतिमुखानाह स हरिश्चक्रभृत् स्वयम्॥

श्रीविष्णुरुवाच

भोभो देवा महादेवं सर्वैर्देवैः सनातनैः॥१७॥
संप्राप्य सांप्रतं सर्वं करिष्यामि दिवौकसाम्। देवा जलंधरं हंतुं निर्मितं हि पुरारिणा॥१८॥
लब्ध्वा रथांगं तेनैव निहत्य च महासुरान्। सर्वान्धुन्धुमुखान्दैत्यानष्टषष्टिशतानसुरान्॥१९॥
सबांधवान्क्षणादेव युष्मान् संतारयाम्यहम्।

गति हैं। आप परमात्मा हैं। आप तीनों लोकों के पिता हैं।।९।। हे जनार्दन! आप ही जगत् के पालन करने वाले, हरण करने वाले, भोक्ता और दाता हैं। इसलिये हे दानवों के विनाशक! यह उचित है कि आप उनका बध करें।।१०।। क्योंकि उन्होंने वरदानों को प्राप्त किया है, इसलिये वे इन बाणों और चमत्कारी अस्त्रों से नहीं मारे जा सकते जो अस्त्र विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, यम, कुबेर, सोम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, अग्नि, सूर्य, ईशान, वर्ष के हैं और अन्य भयानक अस्त्र जो कि अन्य को कँपा देने वाले और शक्ति रहित कर देने वाले हैं। हे कमलनयन! वर प्राप्त होने के कारण उनको नहीं मार सकते क्योंकि इन अस्त्रों द्वारा वे अवध्य हैं। हे जगत् गुरु! आप का सूर्य मण्डल से उत्पन्न चक्र को च्यवन के पुत्र दधीच द्वारा कुंठित (गोठिल) कर दिया गया था। आप का दण्ड और धनुष और अस्त्रों को आपकी कृपा से दैत्यों ने प्राप्त कर लिया। पहले एक भयानक और तेज धार वाले चक्र को जलंधर को मारने के लिए भगवान त्रिपुरारि शिव ने विकसित किया था। उस अस्त्र से आप उन दानवों का वध कर सकते हैं।।११-१५।। ये दानव उसी अस्त्र से मारे जा सकते हैं। अन्य सैकड़ों अस्त्रों से नहीं।'' उनकी बातों को सुनकर कमलनयन चक्रधारी भगवान विष्णु ने उन देवताओं, ब्रह्मा और अन्य से कहा।

श्री विष्णु बोले

''हे देवताओं! मैं अब तुम सब देवताओं को साथ लेकर शिव के पास पहुँचूँगा और तुम्हारे सब कार्य को करूँगा। हे देवताओं! जलंधर का वध करने के लिए त्रिपुरारि ने पहले जो चक्र बनाया था उसको प्राप्त करने के बाद मैं धुंधुमुख से लेकर सब छः हजार आठ सौ महान् असुरों और दैत्यों का बध करूँगा। इस प्रकार क्षणभर में ही मैं बन्धुवों सहित उन सब की पार लगा दूँगा''।।१६-१९।।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा सुरश्रेष्ठान् सुरश्रेष्ठमनुस्मरन्।।२०।।

सुरश्रेष्ठस्तदा श्रेष्ठं पूजयामास शंकरम्। लिंगं स्थाप्य यथान्यायं हिमवच्छिखरे शुभे।।२१।।

मेरुपर्वतसंकाशं निर्मितं विश्वकर्मणा। त्वरिताख्येन रुद्रेण रौद्रेश च जनार्दनः।।२२।।

स्नाप्य संपूज्य गंधाद्यैर्ज्वालाकारं मनोरमम्। तुष्टाव च तदा रुद्रं संपूज्याग्नौ प्रणम्य च।।२३।।

देवं नाम्नां सहस्त्रेण भवाद्येन यथाक्रमम्। पूजयामास च शिवं प्रणवाद्यं नमोंतकम्।।२४।।

देवं नाम्नां सहस्त्रेण भवाद्येन महेश्वरम्। प्रति नाम सपद्मेन पूजयामास शंकरम्।।२५।।

अग्नौ च नामभिर्देवं भवाद्यैः समिदादिभिः। स्वाहांतैर्विधिवद्धुत्वा प्रत्येकमयुतं प्रभुम्।।२६।।

तुष्टाव च पुनः शंभुं भवाद्यैर्भवमीश्वरम्।।

श्रीविष्णुरुवाच

भवः शिवो हरो रुद्रः पुरुषः पद्मलोचनः।।२७।।

अर्थितव्यः सदाचारः सर्वशंभुर्महेश्वरः। ईश्वरः स्थाणुरीशानः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।।२८।।

वरीयान् वरदो वंद्यः शंकरः परमेश्वरः। गंगाधरः शूलधरः परार्थैकप्रयोजनः।।२९।।

सर्वज्ञः सर्वदेवादिगिरिधन्वा जटाधरः। चंद्रापीडश्चंद्रमौलिर्विद्वान्विश्वामरेश्वरः।।३०।।

वेदांतसारसंदोहः कपाली नीललोहितः। ध्यानाधारोपरिच्छेद्यो गौरीभर्ता गणेश्वरः।।३१।।

अष्टमूर्तिर्विश्वमूर्तिस्त्रिवर्गः स्वर्गसाधनः। ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः।।३२।।

सूत बोले

उन श्रेष्ठ देवताओं से ऐसा कहने के बाद विष्णु ने देव श्रेष्ठ भगवान शिव का स्मरण किया और उनकी पूजा की। हिमवान के उत्तम शिखर पर विधान के अनुसार विश्वकर्मा द्वारा मेरु पर्वत के समान बनाए गये लिंग की स्थापना की। त्वरित, रुद्र और रुद्र सूक्त का उच्चारण करते हुये उन्होंने लिंग को स्नान कराया और गन्ध द्वारा उसकी पूजा की। वह लिंग ज्वाला के आकार का और सुन्दर था। उन्होंने रुद्र की स्तुति की। अग्नि में पूजा करके और प्रणाम किया। प्रणव से उनके प्रत्येक नाम को प्रारम्भ किया और नमः से अन्त किया। शिव के हजार नामों में पहला नाम भव था। प्रत्येक नाम के साथ उन्होंने शंकर महेश्वर की एक बार एक कमल के साथ पूजा की।।२०-२६।। यज्ञ की समिधाओं से भव से प्रारम्भ होने वाले प्रत्येक नाम से उन्होंने दस हजार बार होम किया। उन्होंने प्रत्येक नाम के बाद अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण किया। जैसे ओम् भवाय स्वाहा आदि। उन्होंने तब फिर शंभु, भव, ईशान की भव नाम से प्रारम्भ करने के साथ स्तुति की।

भगवान विष्णु बोले

भव, शिव, हर, रुद्र, पुरुष, पद्मलोचन, अर्थितव्य, सदाचार, सर्वशम्भु, महेश्वर, ईश्वर, स्थाणु, ईशान, सहस्त्राक्ष, सहस्त्रपात, वरीयान, वरद, वन्द्य, शंकर, परमेश्वर, गंगाधर, शूलधर, परार्थैकप्रयोजन, सर्वज्ञ, सर्वदेवादि, गिरिधन्वा, जटाधर, चन्द्रापीड, चन्द्रमौलि, विद्वान, विश्वेश्वर, अमरेश्वर, वेदान्तसार-सन्दोह,

वामदेवो महादेवः पांडुः परिदृढो दृढः। विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः शुचिरंतरः॥३३॥
सर्वप्रणयसंवादी वृषांको वृषवाहनः। ईशः पिनाकी खट्वांगी चित्रवेषश्चिरंतनः॥३४॥
तमोहरो महायोगी गोप्ता ब्रह्मांगहृज्जटी।
कालकालः कृत्तिवासाः सुभगः प्रणवात्मकः॥३५॥
उन्मत्तवेषश्चक्षुष्यो दुर्वासाः स्मरशासनः। दृढायुधः स्कंदगुरुः परमेष्ठी परायणः॥३६॥
अनादिमध्यनिधनो गिरिशो गिरिबांधवः। कुबेरबंधुः श्रीकंठो लोकवर्णोत्तमोत्तमः॥३७॥
सामान्यदेवः कोदंडी नीलकंठः परश्वधी। विशालाक्षो मृगव्याधः सुरेशः सूर्यतापनः॥३८॥
धर्मकर्माक्षमः क्षेत्रं भगवान् भगनेत्रभित्। उग्रः पशुपतिस्तार्क्ष्यप्रियभक्तः प्रियंवदः॥३९।
दाता दयाकरो दक्षः कपर्दी कामशसनः। श्मशाननिलयः सूक्ष्मः श्मशानस्थो महेश्वरः॥४०॥
लोककर्ता भूतपतिर्महाकर्ता महौषधी। उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः॥४१॥
नीतिः सुनीतिः शुद्धात्मा सोमसोमरतः सुखी। सोमपोमृतपः सोमो महानीतिर्महामतिः॥४२॥
अजातशत्रुरालोकः संभाव्यो हव्यवाहनः। लोककारो वेदकारः सूत्रकारः सनातनः॥४३॥
महर्षिः कपिलाचार्यो विश्वदीप्तिस्त्रिलोचनः।
पिनाकपाणिभूर्देवः स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्सदा॥४४॥
त्रिधामा सौभगः शर्वः सर्वज्ञः सर्वगोचरः।
ब्रह्मधृग्विश्वसृक्स्वर्गः कर्णिकारः प्रियः कविः॥४५॥
शाखो विशाखो गोशाखः शिवो नैकः क्रतुः समः।
गंगाप्लवोदको भावः सकलस्थपतिस्थिरः॥४६॥

कपाली, नीललोहित, ध्यानाधार, अपरिच्छेद्य, गौरीभर्ता, गणेश्वर, अष्टमूर्ति, विश्वमूर्ति, त्रिवर्ग, स्वर्ग-साधन, ज्ञानगम्य, दृढ़प्रज्ञ, देवदेव, त्रिलोचन, वामदेव, महादेव, पाण्डु, परिदृढ़, विश्वरूप, विरूपाक्ष, वागीश, शुद्धरंतर, सर्वप्रणयसंवादी, वृषांक, वृषवाहन, ईश, पिनाकी, खट्वांगी, चित्रवेष, चिरन्तन।।२७-३४।। तमोहर, महायोगी, गोप्ता, ब्रह्मांगहृद, जटी, कालकाल, कृत्तिवास, सुभग, प्रणवात्मक, उन्मत्तवेष, चक्षुष्य, दुर्वासा, स्मरशासन, दृढायुध, स्कंदगुरु, परमेष्ठी, परायण, अनादिमध्यनिधन, गिरीश, गिरिबन्धन, कुबेरबन्धु, श्रीकण्ठ, लोकवर्णोत्तमोत्तम, सामान्यदेव, कोदण्डी, नीलकण्ठ, परश्वधी, विशालाक्ष, मृगव्याध, सुरेश, सूर्यतापन, धर्मकर्मक्षम, क्षेत्र, भगवान, भगनेत्रभिद्, उग्र, पशुपति, तार्क्ष्य, प्रियभक्त, प्रियंवद, दाता, दयाकर, दक्ष, कपर्दी, कामशासन, श्मशाननिलय, सूक्ष्म, श्मशानस्थ, महेश्वर।।३५-४०।। लोककर्त्ता, भूतपति, महाकर्त्ता, महौषधि, उत्तर, गोपति, गोप्ता, ज्ञानगम्य, पुरातन, नीति, सुनीति, शुद्धात्मा, सोम, सोमरत, सुखी, सोमप, अमृतप, सोम, महानीति, महामति, अजातशतु, आलोक, सम्भाव्य, हव्यवाहन, लोककार, वेदकार, सूत्रकार, सनातन, महर्षि, कपिलाचार्य, विश्वदीप्ति, त्रिलोचन, पिनाकपाणि, भूदेव, स्वस्तिद, सदास्वस्तिकृत, त्रिधाम, सौभग, शर्व, सर्वज्ञ, सर्वगोचर, ब्रह्मधृक्, विश्वसृक्, स्वर्ग, कर्णिकार, प्रिय, कवि, शाख, विशाख, गोशाख, शिव, नैक,

विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथिः। सगणो गणकार्यश्च सुकीर्तिश्छिन्नसंशयः॥४७॥
कामदेवः कामपालो भस्मोद्धूलितविग्रहः।
भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कांतः कृतागमः॥४८॥
समायुक्तो निवृत्तात्मा धर्मयुक्तः सदाशिवः। चतुर्मुखश्चतुर्बाहुर्दुरावासो दुरासदः॥४९॥
दुर्गमो दुर्लभो दुर्गः सर्वायुधविशारदः। अध्यात्मयोगनिलयः सुतंतुस्तंतुवर्धनः॥५०॥
शुभांगो लोकसारंगो जगदीशोऽमृताशनः। भस्मशुद्धिकरो मेरुरोजस्वी शुद्धविग्रहः॥५१॥
हिरण्यरेतास्तरणिर्मरीचिर्महिमालयः। महाह्रदो महागर्भः सिद्धवृंदारवंदितः॥५२॥
व्याघ्रचर्मधरो व्याली महाभूतो महानिधिः। अमृतांगोऽमृतवपुः पंचयज्ञः प्रभंजनः॥५३॥
पंचविंशतितत्त्वज्ञः पारिजातः परावरः। सुलभः सुव्रतः शूरो वाङ्मयैकनिधिर्निधिः॥५४॥
वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजिच्छत्रुतापनः। आश्रमः क्षपणः क्षामो ज्ञानवानचलाचलः॥५५॥
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः सुपर्णो वायुवाहनः। धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिर्गुणाकरः॥५६॥
अनंतदृष्टिरानंदो दंडो दमयिता दमः। अभिवाद्यो महाचार्यो विश्वकर्मा विशारदः॥५७॥
वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतभावनः। उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नो जितकामो जितप्रियः॥५८॥
कल्याणप्रकृतिः कल्पः सर्वलोकप्रजापतिः। तपस्वी तारको धीमान् प्रधानप्रभुरव्ययः॥५९॥
लोकपालोऽन्तर्हितात्मा कल्पादिः कमलेक्षणः। वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो नियमो नियमाश्रयः॥६०॥
चंद्रः सूर्यः शनिः केतुर्विरामो विद्रुमच्छविः। भक्तिगम्यः परंब्रह्म मृगबाणार्पणोऽनघः॥६१॥
अद्रिराजालयः कांतः परमात्मा जगद्गुरुः। सर्वकर्माचलस्त्वष्टा मंगल्यो मंगलावृतः॥६२॥

क्रतु, सम, गंगाप्लवोदक, भाव, सकल, स्थपति, स्थिर, विजितात्मा, विधेयात्मा, भूतवाहन, भूतसारथि, सगण, गणकार्य, सुकीर्ति, छिन्नसंशय।।४१-४७।। कामदेव, कामपाल, भस्मोद्धूलितविग्रह, भस्मप्रिय, भस्मशायी, कामी, कान्त, कृतागम, समायुक्त, निवृत्तात्मा, धर्मयुक्त, सदाशिव, चतुर्मुख, चतुर्बाहु, दुरावास, दुरासद, दुर्गम, दुर्लभ, दुर्ग, सर्वायुधविशारद, अध्यात्मयोगनिलय, सुतनु, तन्तुवर्धन।।४८-५०।। शुभांग, लोकसारंग, जगदीश, अमृताशन, भस्मशुद्धिकर, मेरु, ओजस्वी, शुद्धविग्रह, हिरण्यरेता, तरणि, मरीचि, महिमालय, महाह्रद, महागर्भ, सिद्धवृन्दारवन्दित, व्याघ्रचर्मधर, व्याली, महाभूत, महानिधि, अमृतांग, अमृतवपु, पंचयज्ञ, प्रभंजन, पंचविंशतितत्त्वज्ञ, पारिजात, परावर, सुलभ, सुव्रत, शूर, वाङ्मयैकनिधि, निधि, वर्णाश्रमगुरु, वर्णी, शत्रुजित, शत्रुतापन, आश्रम, क्षपण, क्षाम, ज्ञानवान, अचलाचल, प्रमाणभूत, दुर्जेय, सुपर्ण, वायुवाहन, धनुर्धर, धनुर्वेद, गुणराशि, गुणाकर, अनन्तदृष्टि, आनन्द, दण्ड, दमयिता, दम, अभिवाद्य, महाचार्य, विश्वकर्मा, विशारद, वीतराग, विनीतात्मा, तपस्वी, भूतभावन, उन्मत्तवेष, प्रच्छत्र, जितकाम, जितप्रिय, कल्याणप्रकृति, कल्प, सर्वलोक प्रजापति, तपस्वी, तारक, धीमान, प्रधानप्रभु, अव्यय, लोकपाल, अंतर्हितात्मा, कल्पादि, कमलेक्षण, वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञ, नियम, नियमाश्रय।।५१-६०।। चन्द्र, सूर्य, शनि, केतु, विराम, विद्रुमच्छवि, भक्तिगम्य, परब्रह्म, मृगवाणार्पण, अनघ, अद्रिराजालय, कान्त, परमात्मा, जगद्गुरु, सर्वकर्मा, अचल, त्वष्टा, मंगल, मंगलावृत, महातपा,

महातपा दीर्घतपाः स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः। अहः संवत्सरो व्याप्तिः प्रमाणं परम तपः॥६३॥
संवत्सरकरो मंत्रः प्रत्ययः सर्वदर्शनः। अजः सर्वेश्वरः स्निग्धो महारेता महाबलः॥६४॥
योगी योग्यो महारेताः सिद्धः सर्वादिरग्निदः। वसुर्वसुमनाः सत्यः सर्वपापहरो हरः॥६५॥
अमृतः शाश्वतः शांतो बाणहस्तः प्रतापवान्। कमंडलुधरो धन्वी वेदांगो वेदविन्मुनिः॥६६॥
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता लोकनेता दुराधरः। अतींद्रियो महामायः सर्वावासश्चतुष्पथः॥६७॥
कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबलः। महाबुद्धिर्महावीर्यो भूतचारी पुरंदरः॥६८॥
निशाचरः प्रेतचारिमहाशक्तिर्महाद्युतिः। अनिर्देश्यवपुः श्रीमान् सर्वहार्यमितो गतिः॥६९॥
बहुश्रुतो बहुमयो नियतात्मा भवोद्भवः। ओजस्तेजो द्युतिकरो नर्तकः सर्वकामकः॥७०॥
नृत्यप्रियो नृत्यनृत्यः प्रकाशात्मा प्रतापनः। बुद्धस्पष्टाक्षरो मंत्रः सन्मानः सारसंप्लवः॥७१॥
युगादिकृद्युगावर्तो गंभीरो वृषवाहनः। इष्टोविशिष्टः शिष्टेष्टः शरभः शरभो धनुः॥७२॥
अपां निधिरधिष्ठानं विजयो जयकालवित्। प्रतिष्ठितः प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरिः॥७३॥
विरोचनः सुरगणो विद्येशो विबुधाश्रयः। बालरूपो बलोन्माथी विवर्तो गहनो गुरुः॥७४॥
करणं कारणं कर्ता सर्वबंधविमोचनः। विद्वत्तमो वीतभयो विश्वभर्ता निशाकरः॥७५॥
व्यवसायो व्यवस्थानः स्थानदो जगदादिजः। दुंदुभो ललितो विश्वो भवात्मात्मनिसंस्थितः॥७६॥
वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरहा वीरभृद्विराट्। वीरचूडामणिर्वेत्ता तीव्रनादो नदीधरः॥७७॥
आज्ञाधारस्त्रिशूली च शिपिविष्टः शिवालयः। वालखिल्यो महाचापस्तिग्मांशुर्निधिरव्ययः॥७८॥

दीर्घतपा, स्थविष्ठ, स्थविर, ध्रुव, अहः, सम्वत्सर, व्याप्ति, प्रमाण, परम तप, सम्वत्सरकर, मन्त्र, प्रत्यय, सर्वदर्शन, अज, सर्वेश्वर, स्निग्ध, महारेता, महाबल, योगी, योग्य, महारेता, सिद्ध, सर्वादि, अग्निद, वसु, वसुमना, सत्य, सर्वपापहर, हर, अमृत, शाश्वत, शान्त, बाणहस्त, प्रतापवान, कमण्डलुधर, धन्वी, वेदांग, वेदविद्, मुनि, भ्राजिष्णु, भोजन, भोक्ता, लोकनेता, दुराधर, अतीन्द्रिय, महामाय, सर्वावास, चतुष्पथ, कालयोगी, महानाद, महोत्साह, महाबल, महाबुद्धि, महावीर्य, भूतचारी, पुरन्दर, निशाचर, प्रेतचारी, महाशक्ति, महाद्युति, अनिर्देश्यवपु, श्रीमान, सर्वहारी, अमित, गति, बहुश्रुत, बहुमय, नित्यात्मा, भवोद्भव, ओजस्कर, तेजस्कर, द्युतिकर, नर्तक, सर्वकामकः।।६१-७०।। नृत्यप्रिय, नृत्यनृत्य, प्रकाशात्मा, प्रतापन, स्पष्ट, बुद्धाक्षर, स्पष्टाक्षर, मन्त्र, सम्मान, सारसम्प्लव, युगादिकृत, युगावर्त, गम्भीर, वृषवाहन, इष्ट, विशिष्ट, शिष्टेष्ट, शरभ, धनु, अपांनिधि, अधिष्ठान, विजय, जयकालविद, प्रतिष्ठित, प्रमाणज्ञ, हिरण्यकवच, हरि, विरोचन, सुरगण, विद्येश, विबुधाश्रय, बालरूप, बलोन्माथी, विवर्त, गहन, गुरु, करण, कारण, कर्त्ता, सर्वबन्धविमोचन, विद्वत्तम, वीतभय, विश्वभर्ता, निशाकर, व्यवसाय, व्यवस्थान, स्थानद, जगदादिज, दुन्दुभि, ललित, विश्व, भावात्मा, आत्मनिसंस्थित, वीरेश्वर, वीरभद्र, वीरहा, वीरभृद्, विराट्, वीरचूड़ामणि, वेत्ता, तीव्रनाद, नदीधर, आज्ञाधार, त्रिशूली, शिपिविष्ट, शिवालय, वालखिल्य, महाचाप, तिग्मांशु, निधि, अव्यय।।७१-७८।। अभिराम, सुशरण,

अभिरामः सुशरणः सुब्रह्मण्यः सुधापतिः।
मघवान्कौशिको गोमान् विश्रामः सर्वशासनः॥७९॥

ललाटाक्षो विश्वदेहः सारः संसारचक्रभृत्। अमोघदंडी मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी॥८०॥
परमार्थः परमयः शंबरो व्याघ्रकोऽनलः। रुचिर्वररुचिर्वंद्यो वाचस्पतिरहर्पतिः॥८१॥
रविर्विरोचनः स्कंधः शास्ता वैवस्वतोजनः। युक्तिरुन्नतकीर्तिश्च शांतरागः पराजयः॥८२॥
कैलासपतिकामारिः सविता रविलोचनः। विद्वत्तमो वीतभयो विश्वहर्ता निवारितः॥८३॥
नित्यो नियतकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः। दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दुःस्वप्ननाशनः॥८४॥
उत्तारको दुष्कृतिहा दुर्धर्षो दुःसहोऽभयः। अनादिर्भूर्भुवोलक्ष्मीः किरीटित्रिदशाधिपः॥८५॥
विश्वगोप्ता विश्वभर्ता सुधीरो रुचिरांगदः। जननो जनजन्मादिः प्रीतिमान्नीतिमान्नयः॥८६॥
विशिष्टः काश्यपो भानुर्भीमो भीमपराक्रमः। प्रणवः सप्तधाचारो महाकायो महाधनुः॥८७॥
जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारगः। तत्त्वातत्त्वविवेकात्मा विभूष्णुर्भूतिभूषणः॥८८॥
ऋषिर्ब्राह्मणविज्जिष्णुर्जन्ममृत्युजरातिगः। यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञांतोऽमोघविक्रमः॥८९॥
महेंद्रो दुर्भरः सेनी यज्ञांगो यज्ञवाहनः। पंचब्रह्मसमुत्पत्तिर्विश्वेशो विमलोदयः॥९०॥
आत्मयोनिरनाद्यंतो षड्विंशत्सप्तलोकधृक्। गायत्रीवल्लभः प्रांशुर्विश्वावासः प्रभाकरः॥९१॥
शिशुर्गिरिरतः सम्राट् सुषेणः सुरशत्रुहा। अमोघोरिष्टमथनो मुकुंदो विगतज्वरः॥९२॥
स्वयंज्योतिरनुज्योतिरात्मज्योतिरचंचलः। पिंगलः कपिलश्मश्रुः शास्त्रनेत्रस्त्रयीतनुः॥९३॥
ज्ञानस्कंधो महाज्ञानी निरुत्पत्तिरुपल्पवः। भगो विवस्वानादित्यो योगाचार्यो बृहस्पतिः॥९४॥

सुब्रहमण्य, सुधापति, मघवान, कौशिक, गोमान, विश्राम, सर्वशासन, ललाटाक्ष, विश्वदेह, सार, संसारचक्रभर्ता, अमोघदण्डी, मध्यस्थ, हिरण्य, ब्रह्मवर्चस्वी।।७९-८०।। परमार्थ, परमय, शम्बर, व्याधक, अनल, रुचि, वररुचि, वन्द्य, वाचस्पति, अहर्पति, रवि, विरोचन, स्कन्द, शास्ता, वैवस्वत, जन, युक्ति, उन्नतकीर्ति, शान्तराग, पराजय, कैलाशपति, कामारि, सविता, रविलोचन, विद्वत्तम, वीतभय, विश्वहर्त्ता, निवारित, नित्य, नियतकल्याण, पुण्यश्रवण, पुण्य कीर्तन, दूरश्रवा, विश्वसह, ध्येय, दुःस्वप्न नाशन, उत्तारक, दुष्कृतिहा, दुर्धर्ष, दुःसह, अभय, अनादि, भूः, भुवः लक्ष्मी, किरीटी, त्रिदाशाधिप, विश्वगोप्ता, विश्वभर्ता, सुधीर, रुचिरांगद, जनन, जन-जन्मादि, प्रीतिमान, नीतिमान, नय, विशिष्ट, काश्यप, भानु, भीम, भीमपराक्रम, प्रणव, सप्तधाचार, महाकाय, महाधनु, जन्माधिप, महादेव, सकलागमदारग, तत्त्वातत्वविवेकात्मा, विभूष्णु, भूतिभूषण, ऋषि, ब्रह्मविद्, जिष्णु, जन्ममृत्युजरातिग, यज्ञ, यज्ञपति, यज्वा, यज्ञान्त, अमोधविक्रम, महेन्द्र, दुर्भर, सेनी, यज्ञांग, यज्ञवाहन, पंचब्रह्मसमुत्पत्ति, विश्वेश, विमलोदय।।८१-९०।। आत्मयोनि, अनाद्यन्त, षड्विंशत्, सप्तलोकधृक, गायत्रीवल्लभ, प्रांशु, विश्वावास, प्रभाकर, शिशु, गिरिरत, सम्राट्, सुषेण, सुरशत्रुहा, अमोध, अरिष्टमथन, मुकुंद, विगतज्वर, स्वयंज्योति, अनुज्योति, आत्मज्योति, अचंचल, पिंगल, कपिलश्मश्रु, शास्त्रनेत्र, नेत्रत्रय, अतनु, ज्ञानस्कन्ध, महाज्ञानी, निरुत्पत्ति, उपप्लव, भग, विवस्वान्, आदित्य, योगाचार्य, बृहस्पति, उदारकीर्ति,

उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगी सदसन्मयः। नक्षत्रमाली राकेशः साधिष्ठानः षडाश्रयः॥९५॥
पवित्रपाणिः पापारिर्मणिपूरो मनोगतिः। हृत्पुंडरीकमासीनः शुक्लः शांतो वृषाकपिः॥९६॥
विष्णुर्ग्रहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थनाशनः। अधर्मशत्रुरक्षय्यः पुरुहूतः पुरुष्टुतः॥९७॥
ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः। जगद्धितैषिसुगतः कुमारः कुशलागमः॥९८॥
हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्नानाभूतधरो ध्वनिः। अरोगो नियमाध्यक्षो विश्वामित्रो द्विजोत्तमः॥९९॥
बृहज्ज्योतिः सुधामा च महाज्योतिरनुत्तमः। मातामहो मातरिश्वा नभस्वान्नागहारधृक्॥१००॥
पुलस्त्यः पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ण्यः पराशरः। निरावरणधर्मज्ञो विरिंचो विष्टरश्रवाः॥१०१॥
आत्मभूनिरुद्धोत्रिज्ञानमूर्तिर्महायशाः। लोकचुडामणिर्वीरः चंडसत्यपराक्रमः॥१०२॥

व्यालकल्पो महाकल्पो महावृक्षः कलाधरः।
अलंकरिष्णुस्त्वचलो रोचिष्णुर्विक्रमोत्तमः॥१०३॥
आशुशब्दपतिर्वेगो प्लवनः शिखिसारथिः।
असंसृष्टोऽतिथिः शक्रः प्रमाथी पापनाशनः॥१०४॥

वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः। जर्यो जराधिशमनो लोहितश्च तनूनपात्॥१०५॥
पृषदश्वो नभोयोनिः सुप्रतीकस्तमिस्रहा। निदाघस्तपनो मेघः पक्षः परपुरंजयः॥१०६॥

मुखानिलः सुनिष्पन्नः सुरभिः शिशिरात्मकः।
वसंतो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहनः॥१०७॥

अंगिरामुनिरात्रेयो विमलो विश्ववाहनः। पावनः पुरुजिच्छक्रस्त्रिविद्यो नरवाहनः॥१०८॥
मनो बुद्धिरहंकारः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालकः। तेजोनिधिर्ज्ञाननिधिर्विपाको विघ्नकारकः॥१०९॥

उद्योगी, सद्योगी, सदसदमय, नक्षत्रमाली, राकेश, साधिष्ठान, सदाश्रय, पवित्रपाणि, पापारि, मणिपूर, मनोगति, हृत्पुण्डरीमासीन, शुक्ल, शान्त, वृषाकपि, विष्णु, ग्रहपति, कृष्ण, समर्थ, अनर्थनाशन, अधर्मशत्रु, अक्षय, पुरुहूत, पुरुष्टुत, ब्रह्मगर्भ, वृहद्गर्भ, धर्मधेनु, धनागम, जगद्धितैषी, सुगत, कुमार, कुशलागम, हिरण्यवर्ण, ज्योतिष्मान, नानाभूतधर, ध्वनि, अरोग, नियमाध्यक्ष, विश्वामित्र, द्विजोत्तम, वृहज्ज्योति, सुधाम, महाज्योति, अनुत्तम, मातामह, मातरिश्वा, नभस्वान, नागहारधृक्।।९१-१००।। पुलस्त्य, पुलह, अगस्त्य, जातुकर्ण्य, पराशर, निरावरण, धर्मज्ञ, विरिच, विष्टरश्रवा, आत्मभू, निरुद्ध, अत्रि, ज्ञानमूर्ति, महायश, लोकचड़ामणि, वीर, चण्डपराक्रम, सत्यपारक्रम, व्यालकल्प, महाकल्प, महावृक्ष, कलाधर, अलंकरिष्णु, अचल, रोचिष्णु, विक्रमोत्तम, आशुशब्दपति, वेग, प्लावन, शिखिसारथी, असंसृष्ट, अतिथि, शक्रप्रमाथी, पापनाशन, वसुश्रवा, क्रव्यवाह, प्रतप्त, विश्वभोजन, जर्य, जराधिशमन, लोहित, तनूनपात्, पृषदश्व, नभोयोनि, सुप्रतीक, तमिस्रहा, निदाध, तपन, मेघ, पक्ष, परपुरंजय, मुखानिल, सुनिष्पन्न, सुरभि, शिशिरात्मक, वसन्त, माधव, ग्रीष्म, नभस्य, बीजवाहन, अंगिरा, मुनि, आत्रेय, विमल, विश्ववाहन, पावन, पुरुजित, शक्र, त्रिविद्य, नरवाहन, मन, बुद्धि, अहंकार, क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रपालक, तेजोनिधि, ज्ञाननिधि, विपाक, विघ्नकारक, अधर, अनुत्तर, ज्ञेय, ज्येष्ठ, निःश्रेयसालय,

अधरोऽनुत्तरो ज्ञेयो ज्येष्ठो निःश्रेयसालयः। शैलो नगस्तनुर्दोहो दानवारिररिंदमः॥११०॥
चारुधीर्जनकश्चारुविशल्यो लोकशल्यकृत्। चतुर्वेदश्चतुर्भावश्चतुरश्चतुरप्रियः॥१११॥
आम्नायोथ समाम्नायस्तीर्थदेवशिवालयः। बहुरूपो महारूपः सर्वरूपश्चराचरः॥११२॥
न्यायनिर्वाहको न्यायो न्यायगम्यो निरंजनः। सहस्रमूर्धा देवेंद्रः सर्वशस्त्रप्रभंजनः॥११३॥
मुंडो विरूपो विकृतो दंडी दांतो गुणोत्तमः। पिंगलाक्षोथ हर्यक्षो नीलग्रीवो निरामयः॥११४॥
सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकभृत्। पद्मासनः परंज्योतिः परावरपरंफलः॥११५॥
पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विचक्षणः। परावरज्ञो बीजेशः सुमुखः सुमहास्वनः॥११६॥
देवासुरगुरुर्देवो देवासुरनमस्कृतः। देवासुरमहामात्रो देवासुरमहाश्रयः॥११७॥
देवादिदेवो देवर्षिदेवासुरवरप्रदः। देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहेश्वरः॥११८॥

सर्वदेवमयोचिंत्यो देवतात्मात्मसंभवः।
ईड्योऽनीशः सुरव्याघ्रो देवसिंहो दिवाकरः॥११९॥

विबुधाग्रवरश्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः। शिवज्ञानरतः श्रीमान् शिखिश्रीपर्वतप्रियः॥१२०॥
जयस्तंभो विशिष्टंभो नरसिंहनिपातनः। ब्रह्मचारी लोकचारी धर्मचारी धनाधिपः॥१२१॥

नंदी नंदीश्वरो नग्नो नग्नव्रतधरः शुचिः।
लिंगाध्यक्षः सुराध्यक्षो युगाध्यक्षो युगावहः॥१२२॥

स्ववशः सवशः स्वर्गः स्वरः स्वरमयस्वनः। बीजाध्यक्षो बीजकर्ता धनकृद्धर्मवर्धनः॥१२३॥
दंभोऽदंभो महादंभः सर्वभूतमहेश्वरः। श्मशाननिलयस्तिष्यः सेतुरप्रतिमाकृतिः॥१२४॥
लोकोत्तरस्फुटालोकस्त्र्यंबको नागभूषणः। अंधकारिर्मखद्वेषी विष्णुकंधरपातनः॥१२५॥

शैल, नग, तनु, दोह, दानवारि, अरिंदम।।१०१-११०।। चारुधी, चारुजनक, विशल्य, लोकशल्यकृत, चतुरर्वेद, चतुर्भाव, चतुर, चतुरप्रिय, आग्नाय, समाम्नय, तीर्थ, देव, शिवालय, बहुरूप, महारूप, सर्वरूप, चराचर, न्यायनिर्वाहक, न्याय, न्यायगम्य, निरंजन, सहस्रमूर्धा, देवेन्द्र, सर्वशस्वप्रभंजन, मुण्ड, विरूप, विकृत, दण्डी,दान्त, गुणोत्तम, पिंगलाक्ष, हर्यक्ष, नीलग्रीव, निरामय, सहस्रबाहु, सर्वेश, शरण्य, सर्वलोकमृत, पद्मासन, परमज्योति, परावर-परंफल, पद्यगर्भ, महागर्भ, विश्वगर्भ, विचक्षण, परावरज्ञ, बीजेश, सुमुख, सुमहास्वन, देवासुरगुरु, देवासुरनमस्कृत, देवासुरनियंता, देवासुरमहाश्रय, देवादिदेव, देवर्षि, देवासुरवरप्रद, देवासुरेश्वर, दिव्य, देवासुरमहेश्वर, सर्वदेवमय, अचिन्त्य, आत्मसम्भव, ईड्य, अनीश, सुख्याघ्र, देवसिंह, दिवाकर, विबुधाग्रबरश्रेष्ठ, सर्वदेवोत्तम, शिवज्ञानरत, श्रीमानशिखि, श्रीपर्वतप्रिय।।१११-१२०।। जयस्तम्भ, विशिष्टम्भ, नरसिंहविपातन, ब्रह्मचारी, लोकचारी, धर्मचारी, धनाधिप, नन्दी, नन्दीश्वर, नग्न, नग्नव्रतधर, शुचि, लिंगाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, युगाध्यक्ष, युगावह, स्ववश, सवश, स्वर्ग, स्वर, स्वरमय, स्वन, बीजाध्यक्ष, बीजकर्त्ता, धनकृत, धर्मवर्धन, दम्भ, अदम्भ, महादम्भ, सर्वभूत, महेश्वर, श्मशाननिलय, तिष्य, सेतु, अप्रतिमाकृति, लोकोत्तर, स्फुटालोक, त्र्यम्बक, नागभूषण, अन्धकारि, मखद्वेषी, विष्णुकन्धरपातन।।१२१-१२५।। वीतदोष, अक्षयगुण,

वीतदोषोऽक्षयगुणो दक्षारिः पूषदंतहृत्। धूर्जटिः खंडपरशुः सकलो निष्कलोऽनघः॥१२६॥
आधारः सकलाधारः पांडुराभो मृडो नटः। पूर्णः पूरयिता पुण्यः सुकुमारः सुलोचनः॥१२७॥
सामगेयः प्रियकरः पुण्यकीर्तिरनामयः। मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः॥१२८॥
जीवितांतकरो नित्यो वसुरेता वसुप्रियः। सद्गतिः सत्कृतिः सक्तः कालकंठः कलाधरः॥१२९॥
मानी मान्यो महाकालः सद्भूतिः सत्परायणः। चंद्रसंजीवनः शास्ता लोकगूढोमराधिपः॥१३०॥
लोकबंधुर्लोकनाथः कृतज्ञः कृतिभूषणः। अनपाय्यक्षरः कांतः सर्वशास्त्रभृतां वरः॥१३१॥
तेजोमयो द्युतिधरो लोकमायोग्रणीरणुः। शुचिस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः॥१३२॥

ज्योतिर्मयो निराकारो जगन्नाथो जलेश्वरः।
तुंबवीणी महाकायो विशोकः शोकनाशनः॥१३३॥
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः शुद्धः शुद्धी रथाक्षजः।
अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो व्यक्ताव्यक्तो विशांपतिः॥१३४॥

वरशीलो वरतुलो मानो मानधनो मयः। ब्रह्मा विष्णुः प्रजापालो हंसो हंसगतिर्यमः॥१३५॥

वेधा धाता विधाता च अत्ता हर्ता चतुर्मुखः।
कैलासशिखरावासी सर्वावासी सतां गतिः॥१३६॥

हिरण्यगर्भो हरिणः पुरुषः पूर्वजः पिता। भूतालयो भूतपतिर्भूतिदो भुवनेश्वरः॥१३७॥
संयोगी योगविद्ब्रह्मा ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रियः। देवप्रियो देवनाथो देवज्ञो देवचिंतकः॥१३८॥
विषमाक्षः कलाध्यक्षो वृषांको वृषवर्धनः। निर्मदो निरहंकारो निर्मोहो निरुपद्रवः॥१३९॥
दर्पहा दर्पितो दृप्तः सर्वर्तुपरिवर्तकः। सप्तजिह्वः सहस्रार्चिः स्निग्धः प्रकृतिदक्षिणः॥१४०॥

दक्षारि, पूषदंतहृत, धूर्जटि, खण्डपरशु, सकल, निष्कल, अनघ, आधार, सकलाधार, पाण्डुराभ, मृड, नट, पूर्ण, पूरयिता, पुण्य, सुकुमार, सुलोचन, सामगेय, प्रियकर, पुण्यकीर्ति, अनामय, मनोजव, तीर्थकर, जटिल, जीवितेश्वर, जीवितांतकर, नित्य, वसुरेता, वसुप्रिय, सद्गति, सत्कृति, सक्त, कालकण्ठ, कलाधर, मानी, मणि, मान्य, महाकाल, सद्भूति, सत्परायण, चन्द्रसंजीवन, शास्ता, लोकगूढ़, अमराधिप॥१२६-१३०॥ लोकबन्धु, लोकनाथ, कृतज्ञ, कृतिभूषण, अनपायी, अक्षर, कान्त, सर्वशास्त्रविदांवर, तेजोमय, द्युतिधर, लोकमाय, अग्रणी, अणु, शुचिस्मित, प्रसन्नात्मा, दुर्जय, दुरतिक्रम, ज्योतिर्मय, निराकार, जगन्नाथ, जलेश्वर, तुम्बवीणी, महाकाय, विशोक, शोकनाशन, त्रिलोकात्मा, त्रिलोकेश, शुद्ध, शुद्धि, रथाध्यक्ष, अव्यक्तलक्षण, अव्यक्त, व्यक्ताव्यक्त, विशांपति, वरशील, अवरतुल, मानी, मानधन, मय, ब्रह्मा, विष्णु, प्रजापाल, हंस, हंसगति, यम, वेधा, धाता, विधाता, अत्ता, हर्ता, चतुर्मुख, कैलासशिखरवासी, सर्वावासी, सतांगति, हिरण्यगर्भ, हरिण, पुरुष, पूर्वज, पिता, भूतालय, भूतपति, भूतिद, भुवनेश्वर, संयोगी, योगविद्, ब्रह्मा, ब्रह्मण्य, ब्राह्मणप्रिय, देवप्रिय, देवनाथ, देवज्ञ, देवचिंतक, विषमाक्ष, कलाध्यक्ष, वृषांक, वृषवर्धन, निर्मद, निरहंकार, निर्मोह, निरुपद्रव, दर्पहा, दर्पित, दृप्त, सर्वऋतुपरिवर्तक, सप्त जिह्व, सहस्रार्चि, स्निग्ध, प्रकृतिदक्षिण॥१३१-१४०॥

भूतभव्यभवन्नाथः प्रभवो भ्रांतिनाशनः। अर्थोनर्थो महाकोशः परकार्यैकपंडितः॥१४१॥

निष्कंटकः कृतानंदो निर्व्याजो व्याजमर्दनः।
सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यकीर्तिस्तंभकृतागमः॥१४२॥

अकंपितो गुणग्राही नैकात्मा नैककर्मकृत्।
सुप्रीतः सुमुखः सूक्ष्मः सुकरो दक्षिणोऽनलः॥१४३॥

स्कंधः स्कंधधरो धुर्यः प्रकटः प्रीतिवर्धनः। अपराजितः सर्वसहो विदग्धः सर्ववाहनः॥१४४॥

अधृतः स्वधृतः साध्यः पूर्तमूर्तिर्यशोधरः। वराहशृंगधृग्वायुर्बलवानेकनायकः॥१४५॥

श्रुतिप्रकाशः श्रुतिमानेकबंधुरनेकधृक्। श्रीवल्लभशिवारंभः शांतभद्रः समंजसः॥१४६॥

भूशयो भूतिकृद्भूतिर्भूषणो भूतवाहनः।
अकायो भक्तकायस्थः कालज्ञानी कलावपुः॥१४७॥

सत्यव्रतमहात्यागी निष्ठाशांतिपरायणः। परार्थवृत्तिर्वरदो विविक्तः श्रुतिसागरः॥१४८॥

अनिर्विण्णो गुणग्राही कलंकांकः कलंकहा।
स्वभावरुद्रो मध्यस्थः शत्रुघ्नो मध्यनाशकः॥१४९॥

शिखंडी कवची शूली चंडी मुंडी च कुंडली।
मेखली कवची खड्गी मायी संसारसारथिः॥१५०॥

अमृत्युः सर्वदृक् सिंहस्तेजोराशिर्महामणिः।
असंख्येयोप्रमेयात्मा वीर्यवान् कार्यकोविदः॥१५१॥

वेद्यो वेदार्थविद्गोप्ता सर्वाचारो मुनीश्वरः।
अनुत्तमो दुराधर्षो मधुरः प्रियदर्शनः॥१५२॥

भूतभव्यभवन्नाथ, प्रभव, भ्रान्तिनाशन, अर्थानर्थ, महाकोश, परकायैकपण्डित, निष्कंटक, कृतानन्द, निर्व्याज्ञज, व्याजमर्दन, सत्त्ववान, सात्त्विक, सत्यकीर्तिस्तम्भकृतागम, अकम्पित, गुणग्राही, नैकात्मा, नैककर्मकृत, सुप्रीत, सुमुख, सूक्ष्म, सुकर, दक्षिणानल, स्कन्ध, स्कन्दधर, धुर्य, प्रकट प्रीतिवर्धन, अपराजित, सर्वसह, विदग्ध, सर्ववाहन, अधृत, स्वधृत, साध्य, पूर्तमूर्ति, यशोधर, वराहशृंगधृक्, वायु, बलवान, एकनायक, श्रुतिप्रकाश, श्रुतिमान, एकबन्धु, अनेकधृक्, श्रीवल्लभ, शिवारम्भ, शान्तभद्र, समञ्जस, भूशय, भूतिकृत, भूति, भूषण, भूतवाहन, अकाय, भक्तकायस्थ, कालज्ञानी, कलावपु, सत्यव्रत, महात्यागी, निष्ठा, शान्तिपरायण, परार्थवृत्ति, वरद, विविक्त, श्रुतिसागर, अनिर्विण्ण, गुणग्राही, कलंकांक, कलंकहा, स्वभावरुद्र, मध्यस्थ, शत्रुघ्न, मध्यनाशक, शिखण्डी, कवची, शूली, चण्डी, मुण्डी, कुण्डली, मेखली, कवची, खड्गी, मायी, संसारसारथि।।१४१-१५०।। अमृत्यु, सर्वदृक्, सिंह, तेजोराशि, महामणि, असंख्येय, अप्रमेयात्मा, वीर्यवान, कार्यकोविद, वेद्य, वेदार्थविद्, गोप्ता, सर्वाचार, मुनीश्वर, अनुत्तम, दुराधर्ष, मधुर, प्रियदर्शन, सुरेश, शरण, सर्व, शब्दब्रह्म, सतांगति, कालभक्ष, कलंकारि, कंकणीकृतवासुकि, महेष्वास, महीभर्ता, निष्कलंक, विशृंखल, द्युमणि, तरणि,

सुरेशः शरणं सर्वः शब्दब्रह्मसतांगतिः।
कालभक्षः कलंकारिः कंकणीकृतवासुकिः॥१५३॥
महेष्वासो महीभर्ता निष्कलंको विश्रृंखलः।
द्युमणिस्तरणिर्धन्यः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः॥१५४॥
निवृत्तः संवृतः शिल्पो व्यूढोरस्को महाभुजः।
एकज्योतिर्निरातंको नरो नारायणप्रियः॥१५५॥
निर्लेपो निष्प्रपंचात्मा निर्व्यग्रो व्यग्रनाशनः।
स्तव्यस्तवप्रियः स्तोता व्यासमुर्तिरनाकुलः॥१५६॥
निरवद्यपदोपायो विद्याराशिरविक्रमः। प्रशांतबुद्धिरक्षुद्रः क्षुद्रहा नित्यसुंदरः॥१५७॥
धैर्याग्र्यधुर्यो धात्रीशः शाकल्यः शर्वरीपतिः। परमार्थगुरुर्दृष्टिर्गुरुराश्रितवत्सलः॥१५८॥
रसो रसज्ञः सर्वज्ञः सर्वसत्त्वावलंबनः।

सूत उवाच

एवं नाम्नां सहस्रेण तुष्टाव वृषभध्वजम्॥१५९॥
स्नापयामास च विभुः पूजयामास पंकजैः। परीक्षार्थं हरेः पूजाकमलेषु महेश्वरः॥१६०॥
गोपयामास कमलं तदैकं भुवनेश्वरः। हृतपुष्पो हरिस्तत्र किमिदं त्वभ्यचिंतयन्॥१६१॥
ज्ञात्वा स्वनेत्रमृद्धृत्य सर्वसत्त्वाबलंबनम्। पूजयामास भावेन नाम्ना तेन जगद्गुरुम्॥१६२॥
ततस्तत्र विभुर्दृष्ट्वा तथाभूतं हरो हरिम्। तस्मादवततराशु मंडलात्पावकस्य च॥१६३॥
कोटिभास्करसंकाशं जटामुकुटमंडितम्।
ज्वालामालावृतं दिव्यं तीक्ष्णदंष्ट्रं भयंकरम्॥१६४॥

धन्य, सिद्धि, सिद्धिसाधन, निवृत्त, संवृत्त, शिल्प, व्यूढोरस्क, महाभुज, एकज्योति, निरातंक, नर, नारायणप्रिय, निर्लेप, निष्प्रपंचात्मा, निर्व्यग्र, व्यग्रनाशन, स्तव्य, स्तव्यप्रिय, स्तोत्र, व्यासमूर्ति, अनाकुल, निर्वद्यपदोपाय, विद्याराशि, अविक्रम, प्रशान्तबुद्धि, अक्षुद्र, क्षुद्रहा, नित्यसुन्दर, धैर्याग्र्यधुर्य, धात्रीश, शाकल्य, शर्वरीपति, परमार्थगुरु, परमार्थदृष्टि, आश्रितवत्सल, रस, रसज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वसत्त्वावलम्बन।।१५१-१५८।।

सूत बोले

इस प्रकार विष्णु ने एक हजार नामों से वृषध्वज शिव की स्तुति की। भगवान विष्णु ने शिव को स्नान कराया और कमल के फूलों से उनकी पूजा की। विष्णु की परीक्षा लेने के लिए शिव ने पूजा के कमलों में से एक को छिपा लिया। फूलों को हटा लेने पर विष्णु ने सोचा "यह क्या है?"।।१५९-१६१।। फूल की हानि का अनुभव करने के बाद विष्णु ने अपने नेत्र को निकालकर सब प्राणियों के अवलम्ब जगद्गुरु की पूजा की। उन्होंने शिव का अन्तिम नाम लेकर पूजा किया।।१६२।। उसके बाद वहाँ विष्णु को उस प्रकार देखकर शिव तुरन्त अग्नि के मण्डल से उतरे।।१६३।। देवों के स्वामी को देखकर, विष्णु प्रसन्न हो गये और उनको

शूलटंकगदाचक्रकुंतपाशधरं हरम्। वरदाभयहस्तं च दीपिचर्मोत्तरीयकम्॥१६५॥
इत्थंभूतं तदा दृष्ट्वा भवं भस्मविभूषितम्। हृष्टो नमश्चकाराशु देवदेवं जनार्दनः॥१६६॥
दुद्रुवुस्तं परिक्रम्य सेंद्रा देवास्त्रिलोचनम्। चचाल ब्रह्मभुवनं चकंपे च वसुंधरा॥१६७॥
ददाह तेजस्तच्छंभोः प्रांतं वै शतयोजनम्। अधस्ताच्चोर्ध्वतश्चैव हाहेत्यकृत भूतले॥१६८॥
तदा प्राह महादेवः प्रहसन्निव शंकरः। संप्रेक्ष्य प्रणयाद्विष्णुं कृतांजलिपुटं स्थितम्॥१६९॥
ज्ञातं मयेदमधुना देवकार्यं जनार्दन। सुदर्शनाख्यं चक्रं च ददामि तव शोभनम्॥१७०॥
यद्रूपं भवता दृष्टं सर्वलोकभयंकरम्। हिताय तव यत्नेन तव भवाय सुव्रत॥१७१॥

शांतं रणाजिरे विष्णो देवानां दुःखसाधनम्।
शांतस्य चास्त्रं शांतः स्याच्छांतेनास्त्रेण किं फलम्॥१७२॥
शांतस्य समरे चास्त्रं शांतिरेव तपस्विनम्।
योद्धुः शांत्या बलच्छेदः परस्य बलवृद्धिदः॥१७३॥

देवैरशांतैर्यद्रूपं मदीपं भावयाव्ययम्। किमायुधेन कार्यं वै योद्धुं देवारिसूदन॥१७४॥
क्षमा युधि न कार्यं वै योद्धुं देवारिसूदन। अनागते व्यतीते च दौर्बल्ये स्वजनोत्करे॥१७५॥

नमस्कार किया। शिव अपने जटारूपी मुकुट से मण्डित थे। वे करोड़ों सूर्यों के समान थे। वह दिव्य थे और ज्वाला के समूह से घिरे हुए थे। वह तीक्ष्ण दाँतों से भयंकर लग रहे थे। वे त्रिशूल, कुल्हाड़ी, गदा, चक्र, भाला और पाश धारण किये हुए थे। उन्होंने अपने वर देने वाले और रक्षा करने वाले अपने हाथों को उठाकर दिखाया। वे चीता के चर्म की चादर ओढ़े हुए थे। वे भस्म लगाये हुए थे।।१६४-१६६।। विष्णु ने प्रसन्न होकर शिव को प्रणाम किया और आगे इन्द्र सहित देवताओं ने त्रिलोचन शिव की परिक्रमा की। ब्रह्मलोक काँप उठा और पृथ्वी हिल गयी।।१६७।। शिव के तेज ने चारों ओर के सौ योजन ऊपर नीचे के प्रदेश को जला दिया। पृथ्वी के धरातल पर "हा हा" भयंकर गर्जना हुई।।१६८।। अपनी बगल में श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़े खड़े हुए विष्णु को शंकर ने प्रेमपूर्वक हँसते हुए से देखा। "हे जनार्दन (विष्णु)! देवताओं के कार्य को मैंने भलीभाँति समझ लिया है। मैं तुमको शानदार सुदर्शन चक्र को देता हूँ। हे सुव्रत! यह वास्तव में तुम्हारे कल्याण के लिए और तुम्हारे भाव के लिए है। हे विष्णु! मैंने यह भयानक रूप धारण किया जिसको कि तुमने अभी देखा है।।१६९-१७१।। हे विष्णु! रणक्षेत्र में शान्त रहना देवताओं के दुःख का कारण है।।१७२।। एक शान्त व्यक्ति का हथियार भी शान्त ही होता है और शान्त अस्त्र से कुछ हल नहीं निकलता है। योद्धा की शान्ति से युद्ध क्षेत्र में उसका बल घटता है और उससे शत्रु के बल की वृद्धि होती है।।१७३।। अशान्त देवताओं ने मेरे जिस अव्यय रूप को देखा है उस पर ध्यान दो और विचार करो। हे शत्रुओं के नाशक! युद्ध करने को एक हथियार से क्या हो सकता है?।।१७४।। हे देवताओं के शत्रुओं के नाशक! योद्धा को युद्ध क्षेत्र में क्षमा नहीं करनी चाहिए। दुर्बलता के दूर होने पर या दुर्बलता न आयी हो। इस चक्र का प्रयोग अपने लोगों पर न करना चाहिए और अनुचित समय में भी न करना चाहिए। जब अधर्म और अनर्थ समाप्त हो जाय तब भी इसका प्रयोग

अकालिके त्वधर्मे च अनर्थे वारिसूदन। एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम्॥१७६॥
नेत्रं च नेता जगतां प्रभुर्वै पद्मसन्निभम्। तदाप्रभृति तं प्राहुः पद्माक्षमिति सुव्रतम्॥१७७॥

दत्त्वैनं नयनं चक्रं विष्णवे नीललोहितः।
पस्पर्श च कराभ्यां वै सुशुभाभ्यामुवाच ह॥१७८॥

वरदोहं वरश्रेष्ठ वरान्वरय वरमुत्तमम्। भक्त्या वशीकृतो नूनं त्वयाहं पुरुषोत्तम॥१७९॥
इत्युक्तो देवदेवेन देवदेवं प्रणम्य तम्। त्वयि भक्तिर्महादेव प्रसीद वरमुत्तमम्॥१८०॥

नान्यमिच्छामि भक्तानामार्तयो नास्ति यत्प्रभो।
तच्छ्रुंत्वा वचनं तस्य दयावान् सुतरां भवः॥१८१॥

पस्पर्श च ददौ तस्मै श्रद्धां शीतांशुभूषणः। प्राह चैवं महादेवः परमात्मानमच्युतम्॥१८२॥
मयि भक्तश्च वंद्यश्च पूज्यश्चैव सुरासुरैः। भविष्यसि न संदेहो मत्प्रसादात्सुरोत्तम॥१८३॥
यदा सती दक्षपुत्री विनिंद्यैव सुलोचना। मातरं पितरं दक्षं भविष्यति सुरेश्वरी॥१८४॥
दिव्या हैमवतीविष्णो तदा त्वमपि सुव्रत। भगिनीं तव कल्याणीं देवीं हैमवतीमुमाम्॥१८५॥

नियोगाद्ब्रह्मणः साध्वीं प्रदास्यसि ममैव ताम्।
मत्संबंधी च लोकानां मध्ये पूज्यो भविष्यसि॥१८६॥

मां दिव्येन च भावेन तदाप्रभृति शंकरम्। द्रक्ष्यसे च प्रसन्नेन मित्रभूतमिवात्मना॥१८७॥

न किया जाय।'' ऐसा कहकर शंकर जी ने उस सुदर्शन चक्र को दे दिया जो कि दस हजार सूर्य के समान प्रभाव वाला था।।१७५-१७६।। त्रिलोक के स्वामी शिव ने कमल के समान एक नेत्र भी विष्णु को दिया। तब से विष्णु को पद्माक्ष कहा जाता है।।१७७।। विष्णु को नेत्र और सुदर्शन चक्र देकर अपने पवित्र हाथों से विष्णु के शरीर को स्पर्श किया।।१७८।। ''हे पुरुषोत्तम! मैं वरदाता हूँ। अभीष्टवरों को चुनो और माँगो। निसन्देह तुमने मुझको अपनी भक्ति से वश में कर लिया है''।।१७९।। देवेश शिव के ऐसा कहने पर विष्णु ने शिव को प्रणाम किया और कहा, ''हे महादेव! आपमें मेरी भक्ति बनी रहे। मुझ पर प्रसन्न हों और यह वरदान दो।।१८०।। और मैं कुछ नहीं माँगता हूँ। कुछ नहीं चाहता हूँ। हे प्रभु! भक्तों की अन्य कोई लालसा नहीं होती है।'' उनके वचनों को सुनकर दयालु चन्द्रशेखर भगवान ने उनके शरीर को छुआ और उनको श्रद्धा दी।।१८१-१८२।। महादेव ने कहा, ''हे सुरोत्तम! मेरी कृपा से विष्णु तुम सदा मेरे भक्त रहोगे। तुम निश्चित रूप से देवताओं और असुरों से वंदनीय और पूजनीय होगे।।१८३।। जब दक्ष की पुत्री सती देवताओं की देवी, सुन्दर नेत्र वाली अपनी माता और पिता की निन्दा करके हिमवान की दिव्य कन्या उमा नाम से होगी, हे सुव्रत विष्णु! तुम अपने बहिन के रूप में मुझको ब्रह्मा के आदेश से दोगे। तब लोकों के बीच मैं मेरे सम्बन्धी के रूप में तुम्हारी पूजा होगी।।१८४-१८६।। उस समय तुम दिव्य मित्र भाव से और प्रसन्न मुद्रा से मुझको देखोगे जैसे कि मैं तुम्हारा मित्र हो गया हूँ''।।१८७।। ऐसा कहकर शिव अन्तर्धान हो गये। तब भगवान विष्णु देवताओं की उपस्थिति में मुनियों के सामने ब्रह्मा से प्रार्थना की। ''हे पद्मयोनि ब्रह्मा! मेरे द्वारा कही गयी यह दिव्य प्रार्थना

इत्युक्त्वांतर्दधे रुद्रो भगवान्नीललोहितः। जनार्दनोपि भगवान् देवानामपि सन्निधौ॥१८८॥
अयाचत महादेवं ब्रह्माणं मुनिभिः समम्।
मया प्रोक्तं स्तवं दिव्यं पद्मयोने सुशोभनम्॥१८९॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्।
प्रतिनाम्नि हिरण्यस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात्॥१९०॥
अश्वमेधसहस्रेण फलं भवति तस्य वै।
घृताद्यैः स्नापयेद्रुद्रं स्थाल्या वै कलशैः शुभैः॥१९१॥
नाम्नां सहस्रेणानेन श्रद्धया शिवमीश्वरम्। सोपि यज्ञसहस्रस्य फलं लब्ध्वा सुरेश्वरैः॥१९२॥
पूज्यो भवति रुद्रस्य प्रीतिर्भवति तस्य वै। तथास्त्विति तथा प्राह पद्मयोनेर्जनार्दनम्॥१९३॥
जग्मतुः प्रणिपत्यैनं देवदेवं जगद्गुरुम्। तस्मान्नाम्नां सहस्रेण पूजयेदनघो द्विजाः॥१९४॥
जपेन्नाम्नां सहस्रं च स याति परमां गतिम्॥१९५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे सहस्रनामभिः पूजनाद्विष्णुचक्रलाभो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः॥९८॥

शोभन है। जो कोई इसको पढ़े या सुने या उत्तम ब्राह्मणों को सुनावे, उसको एक सोने के टुकड़े के दान का फल प्रत्येक नाम के उच्चारण के बदले प्राप्त होता है॥१८८-१९०॥ उसको हजार अश्वमेघ यज्ञ का फल मिलेगा। पवित्र पात्र या शुभ कलशों से सहस्र नामं से श्रद्धापूर्वक शिव के सहस्र नाम को उच्चारण करते हुए वह रुद्र को घी आदि से स्नान कराएगा। इस प्रकार जो शिव की पूजा करेगा वह एक हजार यज्ञों के करने का फल प्राप्त करेगा। वह देवताओं के द्वारा पूजा के योग्य होगा। उससे भगवान शंकर प्रसन्न होंगे। ऐसा भगवान ब्रह्मा ने विष्णु से कहा, "ऐसा ही हो" जगद्गुरु देवताओं के देवता को प्रणाम करके वे दोनों चले गये। इसलिए हे ब्राह्मणों! जो निष्पाप व्यक्ति सहस्र नाम से शिव की पूजा करेगा और सहस्र नामों का जप करेगा उसको परमगति प्राप्त होगी॥१९१-१९५॥

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में सहस्र नामों द्वारा पूजन से विष्णु चक्र लाभ नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त॥९८॥

नवनवतितमोऽध्यायः

देवीसंभवः

ऋषय ऊचुः

संभवः सूचितो देव्यास्त्वया सूत महामते। सविस्तरं वदस्वाद्य सतीत्वे च यथातथम्॥१॥
मेनाजत्वं महादेव्या दक्षयज्ञविमर्दनम्। विष्णुना च कथं दत्ता देवदेवाय शंभवे॥२॥
कल्याणं वा कथं तस्य वक्तुमर्हसि सांप्रतम्। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः॥३॥
संभवं च महादेव्याः प्राह तेषां महात्मनाम्।

सूत उवाच

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं तंडिने तत्सुविस्तरम्॥४॥
युष्माभिर्वै कुमाराय तेन व्यासाय धीमते। तस्मादहमुपश्रुत्य प्रवदामि सुविस्तरम्॥५॥
वचनाद्वो महाभागाः प्रणम्योमां तथा भवम्। सा भगाख्या जगद्धात्री लिंगमूर्तेस्त्रिवेदिका॥६॥
लिंगस्तु भगवान्द्वाभ्यां जगत्सृष्टिर्द्विजोत्तमाः। लिंगमूर्तिः शिवो ज्योतिस्तमसश्चोपरि स्थितः॥७॥
लिंगवेदिसमायोगादर्धनारीश्वरोभवत् । ब्रह्माणं विदधे देवमग्रे पुत्रं चतुर्मुखम्॥८॥

निन्यानबेवाँ अध्याय

देवी की उत्पत्ति

ऋषिगण बोले

हे महामति सूत! आपने देवी की उत्पत्ति के विषय में हम लोगों को बताया। अब देवी के जन्म मैना की पुत्री के रूप में और दक्ष के यज्ञ का नाश और विष्णु द्वारा वह देवेश शिव के लिए कैसे दी गयी, इसको बताइये।।१-२।। शिव के साथ उनका विवाह कैसे हुआ, इस कथा को अब हम लोगों को बताइए। उनके वचन को सुनकर पौराणिकों में उत्तम सूत ने महादेवी के जन्म को उन महात्माओं के सामने कहा।

सूत बोले

पहिले ब्रह्मा ने नंदी को यह कथा सुनाई थी। तब नंदी ने सनत्कुमार को यह कथा कही थी। फिर बुद्धिमान मुनि सनत्कुमार ने व्यास को यह कथा सुनाई थी। मैंने यह व्यास से सुना। अब मैं विस्तार से इसको कहता हूँ।।३-५।। हे महाभागो! आप लोगों के कहने पर मैं उमा और शिव को नमस्कार करके तुम लोगों को यह कथा कहता हूँ। वह संसार की माता हैं। उनका नाम भगा है। वह लिंग रूप (मूर्त्ति) में तीन वेदी वाली हैं। लिंग स्वयं भगवान शिव हैं। हे उत्तम ब्राह्मणों! इन दोनों के द्वारा जगत् की सृष्टि हुई है। शिव लिंग के रूप में तम (अन्धकार) के ऊपर स्थित ज्योति हैं।।६-७।। लिंग और वेदी के संघ से शिव अर्धनारीश्वर (आधा शरीर नारी के रूप में, हो गये। उन्होंने ब्रह्मा को अपना पुत्र पैदा किया जिसके चार मुख हैं।।८।। सम्पूर्ण जगत् में सबसे

प्राहिणोति स्म तस्यैव ज्ञानं ज्ञानमयो हरः। विश्वाधिकोसौ भगवानर्धनारीश्वरो विभुः॥९॥
हिरण्यगर्भं तं देवो जायमानमपश्यत। सोपि रुद्रं महादेवं ब्रह्मापश्यत शंकरम्॥१०॥
तं दृष्ट्वा संस्थितं देवमर्धनारीश्वरं प्रभुम्। तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्वरदं वारिजोद्भवः॥११॥
विभजस्वेति विश्वेशं विश्वात्मानमजो विभुः। ससर्ज देवीं वामांगात्पत्नीं चैवात्मनः समाम्॥१२॥
श्रद्धा ह्यस्य शुभा पत्नी ततः पुंसः पुरातनी। सैवाज्ञया विभोर्देवी दक्षपुत्री बभूव ह॥१३॥
सतीसंज्ञा तदा सा वै रुद्रमेवाश्रिता पतिम्। दक्षं विनिंद्य कालेन देवी मैना ह्यभूत्पुनः॥१४॥
नारदस्यैव दक्षोपि शापादेवं विनिंद्य च। अवज्ञादुर्मदो दक्षो देवदेवमुमापतिम्॥१५॥
अनादृत्य कृतिं ज्ञात्वा सती दक्षेण तत्क्षणात्। भस्मीकृत्वात्मनो देहं योगमार्गेण सा पुनः॥१६॥
बभूव पार्वती देवी तपसा च गिरेः प्रभोः। ज्ञात्वैतद्भगवान् भर्गो ददाह रुषितः प्रभुः॥१७॥
दक्षस्य विपुलं यज्ञं च्यावनेर्वचनादपि। च्यवनस्य सुतो धीमान् दधीच इति विश्रुतः॥१८॥
विजित्य विष्णुं समरे प्रसादात् त्र्यंबकस्य च। विष्णुना लोकपालांश्च शशाप च मुनीश्वरः॥१९॥
रुद्रस्य क्रोधजेनैव वह्निना हविषा सुराः। विनाशो वै क्षणादेव मायया शंकरस्य वै॥२०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे देवीसंभवो नाम
नवनवतितमोऽध्यायः॥९९॥

बढ़कर ज्ञान से पूर्ण अर्धनारीश्वर ने ब्रह्मा को ज्ञान दिया।।९।। भगवान शिव ने ब्रह्मा को उत्पन्न होते हुए देखा। ब्रह्मा ने भी रुद्र, शंकर और महादेव को देखा।।१०।। भगवान अर्धनारीश्वर को वहाँ स्थित देखकर कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने वरदाता शिव को प्रसन्न करने वाले वचनों द्वारा स्तुति की।।११।। भगवान अज विश्वात्मा शिव से यह कहते हुये प्रार्थना की कि, "अपने को विभक्त कीजिए"। उन्होंने अपने शरीर के वामांग से अपने योग्य पत्नी के रूप में देवी की सृष्टि की।।१२।। प्राचीन सुन्दर महिला श्रद्धा शिव की आज्ञा से दक्ष की पुत्री हुई।।१३।। उस समय उसका नाम सती था। उसने रुद्र को अपना पति बनाया। कुछ समय के बाद दक्ष की निंदा करके फिर देवी मेना की पुत्री हो गयी।।१४।। नारद के शाप के कारण दक्ष भी उनकी निन्दा करने को विवश हो गये। अहंकारी दक्ष ने तिरस्कारपूर्वक उमापति शिव का अनादर किया। जब सती को अपने पिता के इस कार्य की जानकारी हुई तो उन्होंने उसी क्षण योग शक्ति द्वारा अपने को भस्म कर लिया। बाद में गिरीश कन्या पार्वती देवी के रूप में जन्म लिया और तपस्या की। यह जानकर च्यवन के पुत्र के निर्देश पर क्रुद्ध भगवान भर्ग ने दक्ष के विपुल यज को जला दिया। च्यवन के पुत्र बुद्धिमान दधीच नाम से विख्यात हुए। शिव की कृपा से उन्होंने विष्णु को जीता और विष्णु सहित देवताओं को शाप दिया। हे देवताओं! महादेव शंकर की माया के कारण रुद्र के कोप से उत्पन्न अग्नि द्वारा क्षणभर में ही तुम सुरों का विनाश होगा।।१५-२०।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में देवी की उत्पत्ति नमक
निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त॥९९॥

शततमोऽध्यायः

शिवकृत दक्षयज्ञविध्वंसनः

ऋषयः ऊचुः

विजित्य विष्णुना सार्धं भगवान्परमेश्वरः। सर्वान्दधीचवचनात्कथं भेजे महेश्वरः॥१॥

सूत उवाच

दक्षयज्ञे सुविपुले देवान् विष्णुपुरोगमान्। ददाह भगवान् रुद्रः सर्वान्मुनिगणानपि॥२॥
भद्रो नाम गणस्तेन प्रेषितः परमेष्ठिना। विप्रयोगेन देव्या वै दुःसहेनैव सुव्रताः॥३॥
सोसृजद्वीरभद्रश्च गणेशान्रोमजाञ्छुभान्। गणेश्वरैः समारुह्य रथं भद्रः प्रतापवान्॥४॥
गंतुं चक्रे मतिं यस्य सारथिर्भगवानजः। गणेश्वराश्च ते सर्वे विविधायुधपाणयः॥५॥
विमानैर्विश्वतो भद्रैस्तमन्वयुरथो सुराः। हिमवच्छिखरे रम्ये हेमशृंगे सुशोभने॥६॥
यज्ञवाटस्तथा तस्य गंगाद्वारसमीपतः। तद्देशे चैव विख्यातं शुभं कनखलं द्विजाः॥७॥
दग्धुं वै प्रेषितश्चासौ भगवान् परमेष्ठिना। तदोत्पातो बभूवाथ लोकानां भयशंसनः॥८॥
पर्वताश्च व्यशीर्यंत प्रचकंपे वसुंधरा। मरुतश्चाप्यघूर्णंत चुक्षुभे मकरालयः॥९॥
अग्नयो नैव दीप्यंति न च दीप्यति भास्करः।
ग्रहाश्च न प्रकाश्यंते न देवा न च दानवाः॥१०॥

सौवाँ अध्याय

शिव कृत दक्ष के यज्ञ का विध्वंस

ऋषिगण बोले

कैसे भगवान परमेश्वर, महेश्वर दधीच के कहने से विष्णु के साथ उन सबको जीता। यह बताइए।।१।।

सूत बोले

दक्ष के यज्ञ में भगवान रुद्र ने विष्णु सहित सब देवताओं और मुनियों को जला दिया।।२।। हे सुव्रत! देवी उमा के वियोग के असह्य दुःख से बहुत दुःखी भगवान परमेष्ठी शिव ने भद्र नामक गण को भेजा।।३।। वीरभद्र ने गणों के स्वामियों को अपने बालों से उत्पन्न किया। प्रतापी वीरभद्र उनके साथ रथ पर सवार हुये जिसके सारथी ब्रह्मा थे। वे तब दक्ष के यज्ञ की ओर चले। विभिन्न अस्त्रों को धारण किये हुये उत्तम विमानों पर बैठकर गणेश्वर वीरभद्र के रथ के पीछे चले। दक्ष का यज्ञ स्थल हिमालय पर्वत के उत्तम और मनोहर चोटी पर गंगाद्वार के समीप था। हे ब्राह्मणों! वह शुभ और प्रसिद्ध स्थान कनखल नाम से प्रसिद्ध था। भगवान शिव ने वीरभद्र को उस यज्ञ स्थल को जला डालने के लिए भेजा था। उस समय वहाँ पर संसार को भय की सूचना देने वाला महान् उत्पात हुआ।।४-८।। पहाड़ दरक उठे, पृथ्वी हिलने लगी। वायु भी इधर-उधर घूमने लगे और समुद्र भी क्षुब्ध हो गया।।९।। अग्नि का जलना बन्द हो गया और सूर्य का चमकना बन्द हो गया। ग्रहों ने प्रकाश बन्द कर दिया

ततः क्षणात् प्रविश्यैव यज्ञवाटं महात्मनः। रोमजैः सहितो भद्रः कालाग्निरिव चापरः॥११॥
उवाच भद्रो भगवान् दक्षं चामिततेजसम्। संपर्कादेव दक्षाद्यमुनीन्देवान् पिनाकिना॥१२॥
दग्धुं संप्रेषितश्चाहं भवंतं समुनीश्वरैः। इत्युक्त्वा यज्ञशालां तां ददाह गणपुंगवः॥१३॥
गणेश्वराश्च संक्रुद्धा यूपानुत्पाट्य चिक्षिपुः। प्रस्तोत्रा सह होत्रा च दग्धं चैव गणेश्वरैः॥१४॥
गृहीत्वा गणपाः सर्वान् गंगास्त्रोतसि चिक्षिपुः। वीरभद्रो महातेजाः शक्रस्योद्यच्छतः करम्॥१५॥
व्यष्टंभयददीनात्मा तथान्येषां दिवौकसाम्। भगस्य नेत्रे चोत्पाट्य करजाग्रेण लीलया॥१६॥
निहत्य मुष्टिना दंतान् पूष्णश्चैवं न्यपातयत्। तथा चंद्रमसं देवं पादांगुष्ठेन लीलया॥१७॥

घर्षयामास भगवान् वीरभद्रः प्रतापवान्।
चिच्छेद च शिरस्तस्य शक्रस्य भगवान्प्रभोः॥१८॥

वह्नेर्हस्तद्वयं छित्त्वा जिह्वामुत्पाट्य लीलया। जघान मूर्ध्नि पादेन वीरभद्रो महाबलः॥१९॥
यमस्य दंडं भगवान् प्रचिच्छेद स्वयं प्रभुः। जघान देवमीशानं त्रिशूलेन महाबलम्॥२०॥
त्रयस्त्रिंशत्सुरानेवं विनिहत्याप्रयत्नतः। त्रयश्च त्रिशतं तेषां त्रिसाहस्त्रं च लीलया॥२१॥

त्रयं चैव सुरेंद्राणां जघान च मुनीश्वरान्।
अन्यांश्च देवान्देवोसौ सर्वान्युद्धाय संस्थितान्॥२२॥

जघान भगवान्रुद्रः खड्गमुष्ट्यादिसायकैः। अथ विष्णुर्महातेजाश्चक्रमुद्यम्य मूर्च्छितः॥२३॥
युयोध भगवांस्तेन रुद्रेण सह माधवः। तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्॥२४॥

और न देवता न राक्षस कोई प्रसन्न नहीं था।।१०।। तब दूसरी कालाग्नि के समान वीरभद्र ने अपने रोमों से उत्पन्न गणेश्वरों के साथ यज्ञ स्थल में प्रवेश किया। उन्होंने अमित तेजस्वी दक्ष से कहा, "हे दक्ष! पिनाकधारी शिव द्वारा मैं केवल अपने सम्पर्क से मुनिगणों सहित तुमको जलाने के लिए आज भेजा गया हूँ।" ऐसा कहकर गणेश्वरों ने यज्ञशाला को जला दिया।।११-१३।। क्रुद्ध गणेश्वरों ने यज्ञ के खम्भों (यूपों) को उखाड़कर फेंक दिया और होता और प्रस्तोता को भी बाहर फेंक दिया। गणेश्वरों ने सबको जला डाला।।१४।। उन्होंने गंगाजी की बहती धारा में सबको पकड़कर फेंक दिया। महातेजस्वी वीरभद्र ने उठते हुए इन्द्र और अन्य देवताओं के हाथों को पकड़ लिया। उन्होंने अनायास ही अपने नाखूनों से भग की आँखों को उखाड़ लिया। उन्होंने अपनी मुट्ठी से पूष्ण के दाँतों को तोड़कर गिरा दिया। उन्होंने अपने पैर के अँगूठे से सोम को ठोकर मार दी। उसने इन्द्र के सिर को काट दिया। अग्नि के हाथों को काटने के बाद और सहज भाव से उनकी जीभ को उखाड़ने के बाद अपने पैर से उनके सिर पर ठोकर मार दी।।१५-१९।। वीरभद्र ने यम के दण्ड (डण्डा) को काट दिया। उन्होंने त्रिशूल से महाबली दिगपाल ईशान को मारा। इस प्रकार उन्होंने बिना किसी कठिनाई के तैंतीस देवताओं को मार डाला। उन्होंने अनायास तीन हजार तीन सौ तैंतीस देवताओं के तीन प्रमुख देवताओं के साथ वध कर दिया। उन्होंने मुनिश्वरों को भी मार डाला। वीरभद्र ने उन देवताओं का भी वध कर दिया जो युद्ध करने के लिए तैयारी में थे। भगवान रुद्र ने अपने तलवारों, बाणों और अन्य हथियारों से उनको मार डाला। तब महान् तेजस्वी और महाशक्तिशाली विष्णु ने अपनी गदा को उठाया और रुद्र से युद्ध करने लगे। उन दोनों के बीच भयंकर और

विष्णोर्योगबलात्तस्य दिव्यदेहाः सुदारुणाः॥२५॥
शंखचक्रगदाहस्ता असंख्याताश्च जज्ञिरे। तान्सर्वानपि देवोसौ नारायणसमप्रभान्॥२६॥
निहत्य गदया विष्णुं ताडयामास मूर्धनि। ततश्चोरसि तं देवं लीलयैव रणाजिरे॥२७॥
पपात च तदा भूमौ विसंज्ञः पुरुषोत्तमः। पुनरुत्थाय तं हंतुं चक्रमुद्यम्य स प्रभुः॥२८॥
क्रोधरक्तेक्षणः श्रीमानतिष्ठत्पुरुषर्षभः। तस्य चक्रं च यद्रौद्रं कालादित्यसमप्रभम्॥२९॥
व्यष्टंभयददीनात्मा करस्थं न चचाल सः। अतिष्ठत्स्तंभितस्तेन शृंगवानिव निश्चलः॥३०॥
त्रिभिश्च धर्षितं शार्ङ्गं त्रिधाभूतं प्रभोस्तदा। शार्ङ्गकोटिप्रसंगाद्वै चिच्छेद च शिरः प्रभोः॥३१॥
छिन्नं च निपपातासु शिरस्तस्य रसातले। वायुना प्रेरितं चैव प्राणजेन पिनाकिना॥३२॥
प्रविवेश तदा चैव तदीयाहवनीयकम्। तत्प्रविध्वस्तकलशं भग्नयूपं सतोरणम्॥३३॥
प्रदीपितमहाशालं दृष्ट्वा यज्ञोपि दुद्रुवे। ते तदा मृगरूपेण धावंतं गगनं प्रति॥३४॥
वीरभद्रः समाधाय विशिरस्कमथाकरोत्। ततः प्रजापतिं धर्मं कश्यपं च जगद्गुरुम्॥३५॥
अरिष्टनेमिनं वीरो बहुपुत्रं मुनीश्वरम्। मुनिमंगिरसं चैव कृष्णाश्वं च महाबलः॥३६॥
जघान मूर्ध्नि पादेन दक्षं चैव यशस्विनम्।
चिच्छेद च शिरस्तस्य ददाहाग्नौ द्विजोत्तमाः॥३७॥
सरस्वत्याश्च नासाग्रं देवमातुस्तथैव च। निकृत्य करजाग्रेण वीरभद्रः प्रतापवान्॥३८॥

रोमाँचक युद्ध हुआ।।२०-२४।। विष्णु के योग बल से उनके शरीर से शंख, चक्र और गदा हाथों में धारण किये हुये दिव्य देहवाले असंख्य योद्धा पैदा हो गये। नारायण के समान प्रभा वाले उन सबको वीरभद्र ने अपनी गदा से वध करके विष्णु के सिर पर गदा से प्रहार किया। उसके बाद उनकी छाती पर सहज भाव से गदा से मारा। भगवान विष्णु युद्ध भूमि में बेहोश होकर गिर पड़े। वह फिर उठ खड़े हुये। उन्होंने वीरभद्र को मार डालने के लिए अपना चक्र उठाया। क्रोध से लाल-लाल आँखों से युक्त विष्णु खड़े हो गये। अदीन आत्मा वाले वीरभद्र ने काल के समान तेज वाले भयंकर चक्र को विष्णु के हाथ में ही स्तंभित कर दिया। वह विष्णु के हाथ में पहाड़ की तरह जड़ हो गया। वह तनिक भी हिला नहीं।।२५-३०।। उस समय वीरभद्र ने तीन बाणों से विष्णु के शार्ङ्ग नामक धनुष को क़ाट दिया। वह तीन टुकड़े हो गया। उसके बाद धनुष के सिरे के (कोटि के) अग्रभाग से वीरभद्र ने विष्णु के सिर को काट डाला।।३१।। विष्णु का वह कटा हुआ सिर भगवान शंकर के सांस की वायु से प्रेरित होकर पाताल लोक में (रसातल में) तुरन्त चला गया। उसके बाद वहाँ आहवनीय अग्नि ने भी प्रवेश किया। उस अग्नि से यज्ञ के कलश नष्ट हो गये। तोरण सहित यज्ञ के खम्भे टूट गये। यज्ञशाला जल गई। यज्ञ के पवित्र पात्र भी नष्ट हो गये। यज्ञशाला को जलते देखकर यज्ञ भी आकाश में मृग के रूप में भागे। तब पराक्रमी वीरभद्र ने प्रजापति, धर्म, जगद्गुरु कश्यप पुत्रों समेत अरिष्टनेमि, अंगिरा मुनि, कृष्णाश्व और दक्ष इन सब के सिर पर पैर से ठोकर मारा। हे उत्तम ब्राह्मणों! दक्ष का सिर काटकर अग्नि में जला दिया।।३२-३७।। प्रतापी वीरभद्र ने देवों की माता सरस्वती की नाक के सिरे को अपने हाथ के नाखून से चूँट लिया। वह शान से उन सबके बीच उसी तरह खड़े हो गये जैसे श्मशान में शिव। उसी समय पद्मयोनि महातेजस्वी ब्रह्मा ने वीरभद्र

तस्थौ श्रिया वृतो मध्ये प्रेतस्थाने यथा भवः। एतस्मिन्नेव काले तु भगवान्पद्मसंभवः॥३९॥
भद्रमाह महातेजाः प्रार्थयन्प्रणतः प्रभुः। अलं क्रोधेन वै भद्र नष्टाश्चैव दिवौकसः॥४०॥
प्रसीद क्षम्यतां सर्वं रोमजैः सह सुव्रत। सोपि भद्रः प्रभावेण ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥४१॥
शमं जगाम शनकैः शांतस्तस्थौ तदाज्ञया। देवोपि तत्र भगवानंतरिक्षे वृषध्वजः॥४२॥
सगणः सर्वदः शर्वः सर्वलोकमहेश्वरः। प्रार्थितश्चैव देवेन ब्रह्मणा भगवान् भवः॥४३॥
हतानां च तदा तेषां प्रददौ पूर्ववत्तनुम्। इंद्रस्य च शिरस्तस्य विष्णोश्चैव महात्मनः॥४४॥
दक्षस्य च मुनीन्द्रस्य तथान्येषां महेश्वरः। वागीश्याश्चैव नासाग्रं देवमातुस्तथैव च॥४५॥
नष्टानां जीवितं चैव वराणि विविधानि च। दक्षस्य ध्वस्तवक्त्रस्य शिरसा भगवान्प्रभुः॥४६॥
कल्पयामास वै वक्त्रं लीलया च महान् भवः। दक्षोपि लब्धसंज्ञश्च समुत्थाय कृतांजलिः॥४७॥
तुष्टाव देवदेवेशं शंकरं वृषभध्वजम्। स्तुतस्तेन महातेजाः प्रदाय विविधान्वरान्॥४८॥
गाणपत्यं ददौ तस्मै दक्षायाक्लिष्टकर्मणे। देवाश्च सर्वे देवेशं तुष्टुवुः परमेश्वरम्॥४९॥
नारायणश्च भगवान् तुष्टाव च कृतांजलिः। ब्रह्मा च मुनयः सर्वे पृथक्पृथगजोद्भवम्॥५०॥
तुष्टुवुर्देवदेवेशं नीलकंठं वृषध्वजम्। तान्देवाननुगृह्यैव भवोप्यंतरधीयत॥५१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवकृद्दक्षयज्ञविध्वंसनो नाम शततमोऽध्यायः॥१००॥

के सामने आकर प्रणाम करके प्रार्थना की। हे भद्र! आप का क्रोध व्यर्थ है। सब स्वर्ग लोक के निवासी पहिले ही नष्ट हो गये।।३८-४०।। हे सुव्रत! प्रसन्न होओ। अपने रोमों से उत्पन्न गणेश्वरों सहित सबको क्षमा करो।'' ब्रह्मा के प्रभाव से वीरभद्र धीरे-धीरे शान्त हो गये। उनकी आज्ञा से अपने गणों के साथ सब लोकों के स्वामी अन्तरिक्ष में ब्रह्मा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भगवान वृषभध्वज शिव से मारे गये सब को पूर्ववत् शरीर देकर जिन्दा कर दिया। उन्होंने इन्द्र को, विष्णु को, दक्ष को और अन्य मुनीन्द्रों तथा अन्य को उनका सिर वापस दे दिया तथा देवमाता सरस्वती को उनकी नाक का अग्रभाग भी वापस दे दिया। जो नष्ट हो गये थे, उनको भी उनका जीवन वापस दे दिया। उन्होंने उन सबको विविध वरदान दिया। दक्ष जिनका मुख ध्वस्त हो गया था उनको अपनी लीला से दूसरे सुन्दर मुख के साथ वैसा ही सिर बना दिया।।४१-४६।। दक्ष ने होश में आकर, उठकर हाथ जोड़कर देवेश वृषभध्वज शंकर की स्तुति की। उनके द्वारा स्तुति करने पर महातेजस्वी शिव ने दक्ष को विविध वरदान दिया। उत्तम कर्मों के कर्त्ता दक्ष को गणाधिप पद प्रदान किया। सब देवताओं ने वृषभध्वज शंकर की स्तुति की। नारायण श्री विष्णु ने हाथ जोड़कर स्तुति की। ब्रह्मा और सब मुनियों ने वृषभध्वज, नीलकंठ, देवों के देवेश ब्रह्मा के स्रष्टा शिव की स्तुति की। उन सब देवताओं को आशीर्वाद देकर शिवजी वहीं अन्तर्धान हो गये।।४७-५०।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में शिव कृत दक्ष के यज्ञ का विध्वंस नामक सौवाँ अध्याय समाप्त॥१००॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

मदनदाहः

ऋषय ऊचुः

कथं हिमवतः पुत्री बभूवांबा सती शुभा। कथं वा देवदेवेशमवाप पतिमीश्वरम्।।१।।

सूत उवाच

सा मेनातनुमाश्रित्य स्वेच्छयैव वरांगना। तदा हैमवती जज्ञे तपसा च द्विजोत्तमाः।।२।।
जातकर्मादिकाः सर्वाश्चकार च गिरीश्वरः। द्वादशे च तदा वर्षे पूर्णे हैमवती शुभा।।३।।
तपस्तेपे तया सार्धमनुजा च शुभानना। अन्या च देवी ह्यनुजा सर्वलोकनमस्कृता।।४।।
ऋषयश्च तदा सर्वे सर्वलोकमहेश्वरीम्। तुष्टुवुस्तपसा देवीं समावृत्य समंततः।।५।।
ज्येष्ठा ह्यपर्णा ह्यनुजा चैकपर्णा शुभानना। तृतीया च वरारोहा तथा चैवैकपाटला।।६।।
तपसा च महादेव्याः पार्वत्याः परमेश्वरः। वशीकृतो महादेवः सर्वभूतपतिर्भवः।।७।।
एतस्मिन्नेव काले तु तारको नाम दानवः। तारात्मजो महातेजा बभूव दितिनंदनः।।८।।
तस्य पुत्रास्त्रयश्चापि तारकाक्षो महासुरः। विद्युन्माली च भगवान् कमलाक्षश्च वीर्यवान्।।९।।
पितामहस्तथा चैषां तारो नाम महाबलः। तपसा लब्धवीर्यश्च प्रसादाद्ब्रह्मणः प्रभोः।।१०।।

एक सौ एक अध्याय

मदन का दाह

ऋषिगण बोले

माता देवी सती पार्वती हिमालय की कन्या कैसे हुईं? उन्होंने देवताओं के प्रमुख के स्वामी शिव को अपने पति के रूप में कैसे प्राप्त किया? (कृपया यह कथा, हे सूत! हम लोगों को बताइये)।।१।।

सूत बोले

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! उस श्रेष्ठ महिला ने अपनी इच्छा से मेना के शरीर का आश्रय लिया। तब तपस्या के द्वारा हिमालय की कन्या के रूप में पैदा हुईं।।२।। पर्वतों के राजा हिमालय ने उसके जातकर्म तथा अन्य संस्कारों को किया। जब वह बारह वर्ष की हुई तो सुन्दर मुख वाली उस कन्या ने तपस्या की। उसके साथ सुमुखि उसकी छोटी बहिन ने भी तपस्या पूरी की। दोनों बहिनें अलग-अलग स्वभाव की थीं। वह अनुजा सब लोकों द्वारा नमस्कृत थी। ऋषि लोग उसके चारों ओर घिरकर उसकी कठोर तपस्या के लिए उसकी स्तुति करते थे। बड़ी बहिन अपर्णा, छोटी बहिन एकपर्णा के नाम से पुकारी जाती थी। एकपर्णा सुमुखि थी। तीसरी सुन्दर बहन एकपाटला थी। महादेवी पार्वती ने अपनी तपस्या से सब प्राणियों के स्वामी महादेव को अपने वश में कर लिया।।३-७।। इसी समय महातेजस्वी तार का पुत्र तारक नाम का एक असुर था।।८।। उसके तीन पुत्र थे। उनके नाम तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्ष थे।।९।। उनका बाबा महान् शक्तिशाली तार नाम का राक्षस था।

सोपि तारो महातेजास्त्रैलोक्यं सचराचरम्। विजित्य समरे पूर्वं विष्णुं च जितवानसौ॥११॥
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्। दिव्यं वर्षसहस्रं तु दिवारात्रमविश्रमम्॥१२॥
सरथं विष्णुमादाय चिक्षेप शतयोजनम्। तारेण विजितः संख्ये दुद्राव गरुडध्वजः॥१३॥
तारो वराच्छतगुणं लब्ध्वा शतगुणं बलम्। पितामहाज्जगत्सर्वमवाप दितिनंदनः॥१४॥
देवेंद्रप्रमुखाञ्जित्वा देवान्देवेश्वरेश्वरः। वारयामास तैर्देवान्सर्वलोकेषु मायया॥१५॥
देवताश्च सहेंद्रेण तारकाद्भयपीडिताः। न शांतिं लेभिरे शूराः शरणं वा भयार्दिताः॥१६॥
तदामरपतिः श्रीमान् सन्निपत्यामरप्रभुः। उवाचांगिरसं देवो देवानामपि सन्निधौ॥१७॥
भगवंस्तारको नाम तारजो दानवोत्तमः। तेन सन्निहता युद्धे वत्सा गोपतिना यथा॥१८॥
भयात्तस्मान्महाभाग बृहद्युद्धे बृहस्पते। अनिकेता भ्रमंत्येते शकुंता इव पंजरे॥१९॥
अस्माकं यान्यमोघानि आयुधान्यंगिरोवर। तानि मोघानि जायंते प्रभावादमरद्विषः॥२०॥

दशवर्षसहस्राणि द्विगुणानि बृहस्पते।
विष्णुनायोधितो युद्धे तेनापि न च सूदितः॥२१॥

यस्तेनानिर्जितो युद्धे विष्णुना प्रभविष्णुना। कथमस्मद्विधस्तस्य स्थास्यते समरेऽग्रतः॥२२॥
एवमुक्तस्तु शक्रेण जीवः सार्धं सुराधिपैः। सहस्राक्षेण च विभुं संप्राप्याह कुशध्वजम्॥२३॥

उसने अपनी तपस्या के द्वारा और भगवान ब्रह्मा की कृपा से महान् शक्ति को प्राप्त कर लिया था।।१०।। महातेजस्वी तार ने चर और अचर सहित तीनों लोक को जीतकर युद्ध में विष्णु को भी जीत लिया।।११।। तार और विष्णु के बीच में एक भयंकर और रोमाँचकारी युद्ध दिन-रात बिना विराम के एक हजार दिव्य वर्षों तक होता रहा।।१२।। तार ने रथ सहित विष्णु को पकड़कर सौ योजन दूर फेंक दिया। तार द्वारा युद्ध में पराजित गरुड़ध्वज विष्णु भाग गये।।१३।। दिति के पुत्र तार ने ब्रह्मा से एक सौ बार वरदान और बल प्राप्त किया।।१४।। दैत्यों के प्रमुखों के स्वामी तार ने देवताओं को उनके स्वामी इन्द्र समेत जीत लिया। अपनी माया से उसने सब लोकों के स्वामी के रूप में कार्य करने से देवताओं को रोक दिया। इन्द्र सहित सभी देवता तारक के भय से पीड़ित हो गये। यद्यपि देवता लोग वीर थे किन्तु भय से पीड़ित होने के कारण शान्ति नहीं प्राप्त कर सके और न तो कहीं उन्हें शरण मिली।।१५-१६।। तब देवताओं के स्वामी श्रीमान इन्द्र अंगिरा ऋषि के पास पहुँचे और देवताओं की उपस्थिति में उनसे कहा।।१७।। "हे भगवन्! तार का पुत्र तारक नामक महादानव है। उसने युद्ध में हम लोगों को उसी तरह पराजित कर दिया जैसे एक साँड़ बछड़ों को पराजित कर देता है।।१८।। हे महाभाग! हे बृहस्पति! देवता लोग उसके भय से युद्ध क्षेत्र में उसी तरह इधर-उधर भागते हैं जैसे की पिंजड़े में पक्षी।।१९।। वे बेघर (अनिकेत) हो गये हैं। वे लोग महायुद्ध में पराजित हो गये हैं और बहुत भयभीत हैं। उस देवताओं के शत्रु तारक के प्रभाव से हमारे जितने अमोघ हथियार थे वे सब विफल (व्यर्थ) हो गये हैं।।२०।। हे बृहस्पति! इस राक्षस ने विष्णु से बीस हजार वर्ष तक युद्ध किया फिर भी वे इसका वध नहीं कर सके। शक्तिशाली विष्णु द्वारा भी युद्ध में पराजित न होने से हम जैसे लोग युद्ध क्षेत्र में उसके सामने कैसे खड़े हो सकते हैं।" इन्द्र द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर देवताओं के गुरु बृहस्पति इन्द्र को साथ लेकर भगवान ब्रह्मा के पास पहुँचे।

सोपि तस्य मुखाच्छ्रुत्वा प्रणयात्प्रणतार्तिहा। देवैरशेषैः सेंद्रैस्तु जीवमाह पितामहः॥२४॥
जाने वोर्तिं सुरेंद्राणां तथापि शृणु सांप्रतम्। विनिंद्य दक्षं या देवी सती रुद्रांगसंभवा॥२५॥
उमा हैमवती जज्ञे सर्वलोकनमस्कृता। तस्याश्चैवेह रूपेण यूयं देवाः सुरोत्तमाः॥२६॥
विभोर्यतध्वमाक्रष्टुं रुद्रस्यास्य मनो महत्। तयोर्योगेन संभूतः स्कंदः शक्तिधरः प्रभुः॥२७॥
षडास्यो द्वादशभुजः सेनानीः पावकिः प्रभुः। स्वाहेयः कार्तिकेयश्च गांगेयः शरधामजः॥२८॥
देवः शाखो विशाखश्च नैगमेशश्च वीर्यवान्। सेनापतिः कुमाराख्यः सर्वलोकनमस्कृतः॥२९॥
लीलयैव महासेनः प्रबलं तारकासुरम्। बालोपि विनिहत्यैको देवान् संतारयिष्यति॥३०॥
एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना। बृहस्पतिस्तथा सेंद्रैर्देवैर्देवं प्रणम्य तम्॥३१॥
मेरोः शिखरमासाद्य स्मरं सस्मार सुव्रतः। स्मरणाद्देवदेवस्य स्मरोपि सह भार्यया॥३२॥
रत्या समं समागम्य नमस्कृत्य कृतांजलिः। सशक्रमाह तं जीवं जगज्जीवो द्विजोत्तमाः॥३३॥
स्मृतो यद्भवता जीव संप्राप्तोहं तवांतिकम्। ब्रूहि यन्मे विधातव्यं तमाह सुरपूजितः॥३४॥
तमाह भगवाञ्छक्रः संभाव्य मकरध्वजम्। शंकरेणांबिकामद्य संयोजय यथासुखम्॥३५॥

उनके साथ देवताओं के अन्य अधिपति भी थे। उन्होंने ब्रह्मा से कहा, भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले ब्रह्मा ने उनके मुख से प्रेम से उनकी बातों को सुनकर उन्होंने बृहस्पति से इन्द्र सहित देवताओं की उपस्थिति में कहा।।२१-२४।। ''मैं देवताओं की विपत्ति को जानता हूँ। देवताओं! अब सुनो। रुद्र के अंग से उत्पन्न सती देवी ने दक्ष की निन्दा करके हिमालय की पुत्री उमा के रूप में जन्म लिया है। वह सब लोकों द्वारा नमस्कृत हैं। हे उत्तम देवताओं! रुद्र के महान् मन को उमा की सुन्दरता पर आकर्षित करने का तुम लोग उपाय करो। उन दोनों के संयोग से स्कन्द का जन्म होगा। वह तारक असुर को बिना विशेष प्रयास के मार डालेगा। वह शक्तिधर षडानन, द्वादशभुज, सेनानी, पावकि, कार्त्तिकेय, गांगेय, शरधामज, प्रभु, स्वाहेय, शाख, विशाख, नैगमेश, सेनापति, कुमार, महासेन, नामों से प्रसिद्ध और सब लोकों से नमस्कृत होगा। वह बालक होते हुये भी महान् पराक्रमी होगा। वह बिना प्रयास प्रबल तारक असुर का बध करके देवताओं की रक्षा करेगा''।।२५-३०।। इस प्रकार परमेश्वर ब्रह्मा ने सलाह दी। उसके बाद इन्द्र समेत सब देवों के साथ बृहस्पति ने ब्रह्मा को प्रणाम किया। देवों के साथ बृहस्पति मेरु पर्वत के शिखर पर गये और कामदेव का स्मरण किया। देव गुरु ब्रह्मा के स्मरण करने से कामदेव अपनी भार्या रति के साथ वहाँ पधारे। वहाँ आकर हाथ जोड़कर बृहस्पति को प्रणाम करके उनसे कहा।।३१-३३।। ''हे बृहस्पति! आप ने मेरा स्मरण किया। अतः मैं आप के पास आ गया हूँ। जो कुछ मुझको करना हो वह मुझसे कहें।'' तब बृहस्पति ने उससे कहा, ''भगवान इन्द्र ने भी मकरध्वज काम का सम्मान करते उनसे कहा।'' शिवजी को उमा के संग आज मिलाओ जिससे वे उमा के साथ रमण करें। अपनी पत्नी रति के साथ इसके लिए उस मार्ग को खोजो। अर्थात् उसके लिये कार्रवाई करो। प्रसन्न होने पर महादेव तुमको शुभ गति देंगे। अच्छा वरदान देंगे। वह उमा से पहिले से ही अलग हैं। उसको पाकर वे प्रसन्न होंगे।'' ऐसा कहने पर काम ने इन्द्र को प्रणाम किया और देवों के देव महादेव के आश्रम को महाबली काम ने रति के साथ जाने का निश्चय

तया स रमते येन भगवान् वृषभध्वजः। तेन मार्गेण मार्गस्व पत्न्या रत्याऽनया सह॥३६॥
सोपि तुष्टो महादेवः प्रदास्यति शुभां गतिम्। विप्रयुक्तस्तया पूर्वं लब्ध्वा तां गिरिजामुमाम्॥३७॥
एवमुक्तो नमस्कृत्य देवदेवं शचीपतिम्। देवदेवाश्रमं गंतुं मतिं चक्रे तया सह॥३८॥
गत्वा तदाश्रमे शंभोः सह रत्या महाबलः। वसंतेन सहायेन देवं योक्तुमनाभवत्॥३९॥
ततः संप्रेक्ष्य मदनं हसन् देवस्त्रियंबकः। नयनेन तृतीयेन सावज्ञं तमवैक्षत्॥४०॥
ततोस्य नेत्रजो वह्निर्मदनं पार्श्वतः स्थितम्। अदहत्तत्क्षणादेव ललाप करुणं रतिः॥४१॥
रत्याः प्रलापमाकर्ण्य देवदेवो वृषध्वजः। कृपया परया प्राह कामपत्नीं निरीक्ष्य च॥४२॥
अमूर्त्तोपि ध्रुवं भद्रं कार्यं सर्वं पतिस्तव। रतिकाले ध्रुवं भद्रं करिष्यति न संशयः॥४३॥
यदा विष्णुश्च भविता वासुदेवो महायशाः। शापाद्भृगोर्महातेजाः सर्वलोकहिताय वै॥४४॥
तदा तस्य सुतो यश्च स पतिस्ते भविष्यति। सा प्रणम्य तदा रुद्रं कामपत्नी शुचिस्मिता॥४५॥
जगाम मदनं लब्ध्वा वसंतेन समन्विता॥४६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे
मदनदाहोनामैकाधिकशततमोध्यायः॥१०१॥

किया।।३४-३८।। वह अपने साथ सहायक बसन्त को लेकर उसने शिव के संग उमा को जोड़ने का मन बनाया। उसको देखकर शिवजी हँसते हुये तीसरे नेत्र से घृणापूर्वक देखा। तब शिव के बगल में खड़े कामदेव को शिव के तीसरे नेत्र से उत्पन्न अग्नि की ज्वाला ने भस्म कर दिया। यह देख रति करुण स्वर में चिल्लाई। रति के प्रलाप को सुनकर देवों के देव वृषभध्वज शिव रति को देखकर परम कृपा से बोले। "हे भद्र महिला! यह सत्य है कि तुम्हारा पति देहरहित अमूर्त हो गया है किन्तु रतिकाल (संभोग के समय) वह प्रत्येक कार्य करेगा जो वह पहिले करता रहा। इसमें सन्देह नहीं। जब महायशस्वी भगवान विष्णु भृगु के शाप से वासुदेव (श्रीकृष्ण) के रूप में तीनों लोक के कल्याण के लिए अवतार लेंगे तब उनका पुत्र अनिरुद्ध तुम्हारा पति होगा।" यह सुनकर पवित्र मुस्कानवाली कामदेव की पत्नी रति भगवान शंकर को प्रणाम करके बसन्त के साथ अपने पति की पुनः प्राप्ति की आशा में अपने भवन (घर) को चली गई।।३९-४६।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में मदन का दाह नामक
एक सौ एक अध्याय समाप्त॥१०१॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

उमास्वयंवरः

सूत उवाच।

तपसा च महादेव्याः पार्वत्या वृषभध्वजः। प्रीतश्च भगवाञ्छर्वो वचनाद्ब्रह्मणस्तदा॥१॥
हिताय चाश्रमाणां च क्रीडार्थं भगवान्भवः। तदा हैमवतीं देवीमुपयेमे यथाविधि॥२॥
जगाम स स्वयं ब्रह्मा मरीच्याद्यैर्महर्षिभिः। तपोवनं महादेव्याः पार्वत्याः पद्मसंभवः॥३॥
प्रदक्षिणीकृत्य च तां देवीं स जगतोरणीम्। किमर्थं तपसा लोकान्संतापयसि शैलजे॥४॥
त्वया सृष्टं जगत्सर्वं मातस्त्वं मा विनाशय। त्वं हि संधारये लोकनिमान्सर्वान्स्वतेजसा॥५॥
सर्वदेवेश्वरः श्रीमान्सर्वलोकपतिर्भवः। यस्य वै देवदेवस्य वयं किंकरवादिनः॥६॥
स एवं परमेशानः स्वयं च वरयिष्यति। वरदे येन सृष्टासि न विना यस्त्वयांबिके॥७॥
वर्त्तते नात्र संदेहस्तव भर्त्ता भविष्यति। इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य मुहुः संप्रेक्ष्य पार्वतीम्॥८॥
गते पितामहे देवो भगवान् परमेश्वरः। जगामानुग्रहं कर्त्तुं द्विजरूपेण चाश्रमम्॥९॥
सा च दृष्ट्वा महादेवं द्विजरूपेण संस्थितम्। प्रतिभाद्यैः प्रभुं ज्ञात्वा ननाम वृषभध्वजम्॥१०॥

एक सौ दो अध्याय

उमा का स्वयंवर

सूत बोले

वृषभध्वज महादेवी पार्वती की तपस्या से प्रसन्न हो गये। ब्रह्मा के कहने से शिव ने अपनी क्रीड़ा के लिए तथा जीवन की सब दशाओं में लोगों के कल्याण के लिए पार्वती से विवाह कर लिया।।१-२।। पद्म से उत्पन्न ब्रह्मा स्वयं मरीचि आदि महर्षियों के साथ महादेवी पार्वती के तपोवन में गये।।३।। उन्होंने विश्व के उत्पत्ति के प्रधान स्रोत उस देवी की प्रदक्षिणा करके उनसे कहा, "हे गिरिजा देवी! अपने तपस्या से तुम क्यों तीनों लोकों को संताप दे रही हो।।४।। हे माता! तुम्हींने सारे संसार को उत्पन्न किया है। इसको नष्ट मत करो। अपने तेज से इन लोकों को तुम धारण करो और इसकी रक्षा करो।।५।। शिव सब लोगों के पति और सब देवताओं के ईश्वर हैं। हम सब उन देवताओं के देवता शंकर के सेवक हैं। वे महान् स्वामी शिव तुमको स्वयं वरण करेंगे। हे वर देने वाली! हे माता! तुम उनके द्वारा बनायी गयी हो और निश्चित रूप से वह तुम्हारे बिना नहीं रह सकते। वह तुम्हारे पति होंगे।" इस प्रकार कहने के बाद ब्रह्मा ने बार-बार पार्वती को नमस्कार करके और उनको श्रद्धापूर्वक देखकर वापस चले गये। ब्रह्मा के चले जाने के बाद भगवान शिव ब्राह्मण के रूप में पार्वती के आश्रम में उन पर अनुग्रह करने के लिए (आशीर्वाद देने के लिए) गये।।६-९।। ब्राह्मण के वेश में महादेव को उपस्थित देखकर अपनी बुद्धि से उनको अपना प्रभु जानकर उनको प्रणाम किया।।१०।।

संपूज्य वरदं देवं ब्राह्मणच्छद्मनागतम्। तुष्टाव परमेशानं पार्वती परमेश्वरम्॥११॥
अनुगृह्य तदा देवीमुवाच प्रहसन्निव। कुलधर्माश्रयं रक्षन् भूधरस्य महात्मनः॥१२॥
क्रीडार्थं च सतां मध्ये सर्वदेवपतिर्भवः। स्वयंवरे महादेव तव दिव्यसुशोभने॥१३॥
आस्थाय रूपं यत्सौम्यं समेष्येहं सह त्वया।
इत्युक्त्वा तां समालोक्य देवो दिव्येन चक्षुषा॥१४॥
जगामेष्टं तदा दिव्यं स्वपुरं प्रययौ च सा। दृष्ट्वा हृष्टस्तदा देवीं मेनया तुहिनाचलः॥१५॥
आलिंग्याघ्राय संपूज्य पुत्रीं साक्षात्तपस्विनीम्। दुहितुर्देवदेवेन न जानन्नभिमंत्रितम्॥१६॥
स्वयंवरं तदा देव्याः सर्वलोकेष्वघोषयत्।
अथ ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः साक्षाज्जनार्दनः॥१७॥
शक्रश्च भगवान् वह्निर्भास्करो भग एव च। त्वष्टार्यमा विवस्वांश्च यमो वरुण एव च॥१८॥
वायुः सोमस्तथेशानो रुद्राश्च मुनयस्तथा। अश्विनौ द्वादशादित्या गंधर्वा गरुडस्तथा॥१९॥
यक्षाः सिद्धास्तथा साध्या दैत्याः किंपुरुषोरगाः।
समुद्राश्च नदा वेदा मंत्राः स्तोत्रादयः क्षणाः॥२०॥
नागाश्च पर्वताः सर्वे यज्ञाः सूर्यादयो ग्रहाः। त्रयस्त्रिंशच्च देवानां त्रयश्च त्रिशतं तथा॥२१।
त्रयश्च त्रिसहस्रं च तथान्ये बहवः सुराः। जग्मुर्गिरींद्रपुत्र्यास्तु स्वयंवरमनुत्तमम्॥२२॥
अथ शैलसुता देवी हैममारुह्य शोभनम्। विमानं सर्वतोभद्रं सर्वरत्नैरलंकृतम्॥२३॥
अप्सरोभिः प्रनृत्ताभिः सर्वाभरणभूषितैः। गंधर्वसिद्धैर्विविधैः किन्नरैश्च सुशोभनैः॥२४॥

पूजा के बाद वरदायक शिव—जो ब्राह्मण के छद्म वेष में आये थे, उन परमेश्वर की पार्वती ने स्तुति की।।११।। महात्मा हिमालय कुल धर्म की परम्परा की रक्षा करते हुए देवी पार्वती को आशीर्वाद देकर हँसते हुये सब देवताओं के स्वामी शिव ने सज्जनों के मध्य में क्रीड़ा के लिए पार्वती से कहा, "हे दिव्य महादेवी! मैं अपना सौम्य रूप धारण करके तुम्हारे स्वयंवर समारोह में तुमसे मिलूँगा।" ऐसा कहकर भगवान शिव अपने दिव्य दृष्टि से पार्वती को देखकर अपने आश्रम को वापस चले गये। पार्वती भी अपने घर को लौट आयीं। पार्वती को वापस आया देख अपनी पत्नी मेना के साथ हिमवान भी प्रसन्न हो गये। उन्होंने पार्वती को अपने छाती से लगाकर आलिंगन किया और उनके सिर को सूँघा। यह न जानते हुये भी कि देवों के देव शिव से उनकी तपस्विनी पुत्री के साथ क्या मन्त्रणा हुई, उन्होंने सार्वजनिक रूप से पार्वती के स्वयंवर की घोषणा कर दी।।१२-१६।। तब हिमालय की पुत्री पार्वती के स्वयंवर में भाग लेने के लिए जो लोग आये वे ये थे—भगवान ब्रह्मा, भगवान विष्णु, इन्द्र, अग्नि देव, सूर्य भग, त्वष्टा, अर्यमा, विवस्वान, यम, वरुण, रुद्र, मुनिगण, अश्विनि, आदित्य, गन्धर्व गण, गरुड़, यक्ष गण, सिद्धगण, साध्यगण, दैत्यगण, किंपुरुषगण, नागगण, समुद्र, नदियाँ, वेद, मन्त्र, स्तोत्र आदि, नाग, पर्वत, सब यक्ष, सूर्य आदि ग्रह, तीन हजार तीन सौ तैंतीस देवता तथा अन्य लोग आये।।१७-२२।। तब पार्वती, महादेवी सब रत्नों से अलंकृत सर्वतोभद्र विमान में बैठी सब आभूषणों से विभूषित गाती और नाचती हुई अप्सराओं के साथ, बंदियों, गन्धर्वों, सिद्धों और किन्नरों द्वारा स्तुति की

वंदिभिः स्तूयमाना च स्थिता शैलसुता तदा। सितातपत्रं रत्नांशुमिश्रितं चावहत्तथा॥२५॥
मालिनी गिरिपुत्र्यास्तु संध्यापूर्णेन्दुमंडलम्। चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिश्च संवृता॥२६॥
मालां गृह्य जया तस्थौ सुरद्रुमसमुद्भवाम्। विजया व्यजनं गृह्य स्थिता देव्याः समीपगा॥२७॥
मालां प्रगृह्य देव्यां तु स्थितायां देवसंसदि। शिशुर्भूत्वा महादेवः क्रीडार्थं वृषभध्वजः॥२८॥
उत्संगतलसंसुप्तो बभूव भगवान्भवः। अथ दृष्ट्वा शिशुं देवास्तस्या उत्संगवर्त्तिनम्॥२९॥
कोयमत्रेति संमंत्र्य चुक्षुभुश्च समागताः। वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुद्यम्य वृत्रहा॥३०॥
स बाहुरुद्यमस्तस्य तथैव समुपस्थितः। स्तंभितः शिशुरूपेण देवदेवेन लीलया॥३१॥
वज्रं क्षेप्तुं न शशाक बाहुं चालयितुं तथा।
बह्निः शक्तिं तथा क्षेप्तुं न शशाक तथा स्थितः॥३२॥
यमोपि दंडं खड्गं च निर्ऋतिर्मुनिपुंगवाः। वरुणो नागपाशं च ध्वजयष्टिं समीरणः॥३३॥
सोमो गदां धनेशश्च दंडं दंडभृतां वरः। ईशानश्च तथा शूलं तीव्रमुद्यम्य संस्थितः॥३४॥
रुद्राश्च शूलमादित्या मुशलं वसवस्तथा। मुद्गरं स्तंभिताः सर्वे देवेनाशु दिवौकसः॥३५॥
स्तंभिता देवदेवेन तथान्ये च दिवौकसः। शिरः प्रकंपयन्विष्णुश्चक्रमुद्यम्य संस्थितः॥३६॥
तस्यापि शिरसो बालः स्थिरत्वं प्रचकार ह। चक्रं क्षेप्तुं न शशाक बाहूंश्चालयितुं न च॥३७॥
पूषा दंतान्दशन्दंतैर्बालमैक्षत मोहितः। तस्यापि दशनाः पेतुर्दृष्टमात्रस्य शंभुना॥३८॥

जाती हुई आयीं। मालिनी रत्नों की किरणों से सफेद छत्र उन पार्वती के ऊपर ताने हुए थी जो संध्याकालीन पूर्ण चन्द्रमा के मण्डल की तरह लग रहा था। पार्वती दिव्य चाँवर (चामर) हाथ में लिए हुए दिव्य स्त्रियों से घिरी हुई थीं।।२३-२६।। दिव्य वृक्षों के फूलों की माला हाथ में लिए हुये जया खड़ी थी। विजया हाथ में पंखा लिए पार्वती के पास खड़ी थी। फिर भी देवी पार्वती फूलों की माला हाथ में लिए हुये थीं। देवताओं के बीच वृषभध्वज महादेव शिशु के रूप में क्रीड़ा के लिए उपस्थित हुये। भगवान शिव देवी के गोद में सोये थे। देवताओं ने उनकी गोद में शिशु को देखा और उनसे पूछा, "यहाँ यह शिशु कौन है?" वे लोग महान आश्चर्य में पड़ गये।।२७-३१।। वृत्र के हन्ता इन्द्र अपने हाथों को उठाये अपना वज्र फेंकने और बाहु को चला न सके। अग्नि भी उसी प्रकार खड़ी थी और अपनी शक्ति को नहीं फेंक सकी। यम अपना दण्ड नहीं हिला सके। हे श्रेष्ठ मुनियों! निर्ऋति अपनी तलवार को, वरुण अपने नागपाश को, समीरण (वायु देवता) अपने ध्वज के दण्डे को नहीं हिला सके।।३२-३३।। सोम अपनी गदा को, दण्डधारियों में श्रेष्ठ कुबेर अपने दण्ड को, ईशान अपने तीव्र त्रिशूल को उठाये खड़े थे। आदित्यगण अपने मूसल को और वसुगण अपने मुद्गर को लिये हुये खड़े थे। ये सब स्वर्गवासी देवता अपने-अपने हथियारों को लिए हुये थे और देवताओं के देवता शिव द्वारा अपने-अपने स्थान पर स्तम्भित किये गये, अचल खड़े थे।।३४-३५।। उसी प्रकार अन्य स्वर्गवासी भी शिव के द्वारा स्तम्भित होकर अचल खड़े थे। अपने सिर को हिलाते हुये और अपने चक्र को उठाकर विष्णु खड़े थे। उनके सिर के बालों को स्थिर कर दिया गया था। वे चक्र को फेकने और अपने बाहु को चलाने में असमर्थ थे।।३६-३७।। पूषा ने मोहित होकर अपने दाँतों को दाँतों से किटकिटाते हुए उस बालक

बलं तेजश्च योगं च तथैवास्तंभयद्विभुः। अथ तेषु स्थितेष्वेव मन्युमत्सु सुरेष्वपि॥३९॥
ब्रह्मा परमसंविग्नो ध्यानमास्थाय शंकरम्। बुबुधे देवमीशानमुमोत्संगे तमास्थितम्॥४०॥
स बुद्ध्वा देवमीशानं शीघ्रमुत्थाय विस्मितः। ववंदे चरणौ शंभोरस्तुवच्च पितामहः॥४१॥
पुराणैः सामसंगीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः। स्त्रष्टा त्वं सर्वलोकानां प्रकृतेश्च प्रवर्त्तकः॥४२॥
बृद्धिस्त्वं सर्वलोकानामहंकारस्त्वमीश्वरः। भूतानामिंद्रियाणां च त्वमेवेश प्रवर्त्तकः॥४३॥
तवाहं दक्षिणाद्हस्तात्सृष्टः पूर्वं पुरातनः। वामहस्तान्महाबाहो देवो नारायणः प्रभुः॥४४॥
इयं च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारण। पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता॥४५॥
नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्यै नमोनमः। प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः॥४६॥
देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वद्योगमोहिताः। कुरु प्रसादमेतेषां यथापूर्वं भवंत्विमे॥४७॥

सूत उवाच

विज्ञाप्यैवं तदा ब्रह्मा देवदेवं महेश्वरम्। संस्तंभितांस्तदा तेन भगवानाह पद्मजः॥४८॥
मूढास्थ देवताः सर्वा नैव बुध्यत शंकरम्। देवदेवमिहायांतं सर्वदेवनमस्कृतम्॥४९॥
गच्छध्वं शरणं शीघ्रं देवाः शक्रपुरोगमाः। सनारायणकाः सर्वे मुनिभिः शंकरं प्रभुम्॥५०॥
सार्धं मयैव देवेशं परमात्मानमीश्वरम्। अनया हैमवत्या च प्रकृत्या सह सत्तमम्॥५१॥
तत्र ते स्तंभितास्तेन तथैव सुरसत्तमाः। प्रणेमुर्मनसा सर्वे सनारायणकाः प्रभुम्॥५२॥

को देखा। शिव द्वारा देखे जाने पर उनके दाँत गिर पड़े।।३८।। उसी प्रकार शिव ने उनके बल, तेज और यौगिक शक्ति को स्तम्भित कर दिया। जब जो देवता क्रोधित थे वे भी वैसे ही अपने स्थानों पर अचल होकर स्थित रह गये। ब्रह्मा-जो कि बहुत दुःखी थे—शिव का ध्यान किया तब उन्होंने समझा कि यह तो ईशान हैं जो उमा की गोद में लेटे हुये हैं।।३९-४०।। वह ईशान देव को जानकर विस्मित हो शीघ्र ही उठकर शिव के चरणों की वन्दना की और उनकी स्तुति की।।४१।। उन्होंने प्राचीन सामगानों, पवित्र नामों और गुप्त नामों से उनकी स्तुति की। "तुम तीनों लोकों के निर्माता हो। प्रकृति के प्रवर्तक हो। तुम सब लोकों की बुद्धि हो। तुम अहंकार हो। तुम ईश्वर हो। हे ईश! तुम अकेले भूतों और इन्द्रियों के प्रवर्तक हो। मैं पहले प्राचीन हूँ जो कि तुम्हारे दाहिने हाथ से उत्पन्न हुआ हूँ। तुम्हारे बाएँ हाथ से महाबाहु भगवान नारायण पैदा हुये हैं। हे सृष्टि के कारण! यह प्रकृति देवी, सदा तुम्हारी पत्नी का रूप स्वभाव धारण करती है तथा जगत् का कारण हो जाती है। हे महादेवी! तुमको प्रणाम। महादेवी को प्रणाम। हे देवताओं के स्वामी! तुम्हारी कृपा से देवतागण तथा अन्य तुम्हारी योगिक शक्ति द्वारा उत्पन्न हुये हैं और मोहित हैं। इनके ऊपर कृपा करो। ये पूर्ववत् जैसे थे वैसे हो जायें"।।४२-४७।।

सूत बोले

शिव की इस प्रकार स्तुति किये जाने पर कमल से उत्पन्न भगवान ब्रह्मा ने उन देवताओं से कहा जो संस्तंभित और अचल थे।।४८।। "हे देवताओं! तुम सब मूढ़ हो गये हो। तुम शंकर को, शिव को नहीं समझ पाये जो तुम्हारे स्वामी हैं और सब देवताओं द्वारा नमस्कृत हैं जो हमारे बीच में आये हैं।।४९।। हे देवताओं! इन्द्र से लेकर नारायण तक मुनियों के साथ शंकर और पार्वती की शरण में आओ जो कि स्वयं प्रकृति हैं।।५०-५१।। हे उत्तम

अथ तेषां प्रसन्नो भूद्देवदेवस्त्रियंबकः। यथापूर्वं चकाराशु वचनाद्ब्रह्मणः प्रभुः॥५३॥
तत एवं प्रसन्ने तु सर्वदेवनिवारणम्। वपुश्चकार देवेशो दिव्यं परममद्भुतम्॥५४॥
तेजसा तस्य देवास्ते सेंद्रचंद्रदिवाकराः। सब्रह्मकाः ससाध्याश्च सनारायणकास्तथा॥५५॥
सयमाश्च सरुद्राश्च चक्षुरप्राथयन्विभुम्। तेभ्यश्च परमं चक्षुः सर्वदृष्टौ च शक्तिमत्॥५६॥
ददावंबापतिः शर्वो भवान्याश्च चलस्य च। लब्ध्वा चक्षुस्तदा देवा इंद्रविष्णुपुरोगमाः॥५७॥
सब्रह्मकः सशक्राश्च तमपश्यन्महेश्वरम्। ब्रह्माद्या नेमिरे तूर्णं भवानी च गिरीश्वरः॥५८॥
मुनयश्च महादेवं गणेशाः शिवसंमताः। ससर्जुः पुष्पवृष्टिं च खेचराः सिद्धचारणाः॥५९॥
देवदुंदुभयो नेदुस्तुष्टुवुर्मुनयः प्रभुम्।
जगुर्गंधर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥६०॥
मुमुदुर्गणपाः सर्वं मुमोदांबा च पार्वती। तस्य देवी तदा हृष्टा समक्षं त्रिदिवौकसाम्॥६१॥
पादयोः स्थापयामास मालां दिव्यां सुगंधिनीम्।
साधुसाध्विति संप्रोच्य तया तत्रैव चार्चितम्॥६२॥
सह देव्या नमश्चक्रुः शिरोभिर्भूतलाश्रितैः। सर्वे सब्रह्मका देवाः सयक्षोरगराक्षसाः॥६३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे उमास्वयंवरो नाम
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥१०२॥

देवताओं! जो संस्तंभित और अचल हो गये थे नारायण सहित सब ने मन से शिव को प्रणाम किया।।५२।। तब देवेश त्रिलोचन उन पर प्रसन्न हुये। ब्रह्मा के वचन पर भगवान शिव ने उनको वैसा बना दिया जैसा वे पहले थे।।५३।। उनके प्रसन्न होने पर देवेश शंकर ने उनके शरीर को दिव्य और परम अद्भुत बना दिया और उनकी दीनता को दूर कर दिया।।५४।। उनके तेज से, इन्द्र सहित सब देवता, चन्द्रमा, सूर्य, ब्रह्मा, साध्यगण, नारायण, यम और रुद्र एक आँख के लिए प्रार्थना की जो कि उनके रूप को उनके तेज के कारण नहीं देख सकी थी। शिव जी ने उनको दिव्य चक्षु दिया जो कि हर चीज को देखने में समर्थ थी। शिव ने भवानी और हिमालय को भी दिव्य दृष्टि दी। देवताओं ने इन्द्र और विष्णु सहित ब्रह्मा के साथ दिव्य दृष्टि से शिव को देखा। ब्रह्मा आदि सब ने तुरन्त शिव और पार्वती को प्रणाम किया। हिमवान, समस्त मुनियों और गणों ने महादेव को प्रणाम किया। सिद्धों, चारणों और अन्य आकाशवासियों ने आकाश से फूलों की वर्षा की।।५५-५९।। दिव्य दुन्दुभि (भेरी) बजी। मुनियों ने भगवान शिव की स्तुति की। गन्धर्वों के मुख्यों ने गीत गाये। अप्सरागणों ने नृत्य किया। गणेश्वरों ने आनन्द मनाया और पार्वती ने भी आनन्द मनाया। प्रसन्नता से प्रफुल्लित पार्वती देवी ने स्वर्गवासियों की उपस्थिति में दिव्य सुगन्धित माला को शिव के चरणों पर रख दी। ब्रह्मा सहित सब देवता, यक्षगण, नागगण और राक्षसगण ने साधु-साधु का नारा लगाया और पार्वती के साथ शिव को पृथ्वी पर माथा टेककर प्रणाम किया।।६०-६३।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में उमा का स्वयंवर नामक
एक सौ दो अध्याय समाप्त॥१०२॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

पार्वतीविवाहवर्णनम्

सूत उवाच

अथ ब्रह्मा महादेवमभिवंद्य कृतांजलिः। उद्वाहः क्रियतां देव इत्युवाच महेश्वरम्॥१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। यथेष्टमिति लोकेशं प्राह भूतपतिः प्रभुः॥२॥
उद्वाहार्थं महेशस्य तत्क्षणादेव सुव्रताः। ब्रह्मणा कल्पितं दिव्यं पुरं रत्नमयं शुभम्॥३॥
अथादितिर्दितिः साक्षाद्दनुः कद्रुः सुकालिका। पुलोमा सुरसा चैव सिहिका विनता तथा॥४॥
सिविर्माया क्रिया दुर्गा देवी साक्षात्सुधा स्वधा। सावित्री वेदमाता च रजनी दक्षिणा द्युतिः॥५॥
स्वाहा स्वधा मतिर्बुद्धिर्ऋद्धिर्वृद्धिः सरस्वती। राका कुहूः सिनीवाली देवी अनुमती तथा॥६॥
धरणी धारणी चेला शची नारायणी तथा। एताश्चान्याश्च देवानां मातरः पत्नयस्तथा॥७॥
उद्वाहः शंकरस्येति जग्मुः सर्वा मुदान्विताः। उरगा गरुडा यक्षा गंधर्वाः किन्नरा गणाः॥८॥
सागरा गिरयो मेघा मासाः संवत्सरास्तथा। वेदा मंत्रास्तथा यज्ञाः स्तोमा धर्माश्च सर्वशः॥९॥
हुंकारः प्रणवश्चैव प्रतिहाराः सहस्त्रशः। कोटिरप्सरसो दिव्यास्तासां च परिचारिकाः॥१०॥
याश्च सर्वेषु द्वीपेषु देवलोकेषु निम्नगाः। ताश्च स्त्रीविग्रहाः सर्वाः संजग्मुर्हृष्टानसाः॥११॥
गणपाश्च महाभागाः सर्वलोकनमस्कृताः। उद्वाहः शंकरस्येति तत्राजग्मुर्मुदान्विताः॥१२॥

एक सौ तीन अध्याय

पार्वती के विवाह का वर्णन

सूत बोले

ब्रह्मा ने हाथ जोड़कर महादेव को प्रणाम करके उनसे कहा, "हे स्वामी अब विवाह होना चाहिये"।।१।। परमेष्ठी ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर भूतपति शिव ने ब्रह्मा से कहा, "जैसा तुम चाहो"।।२।। हे सुव्रतो! महेश शिव के विवाह के लिए उसी क्षण ब्रह्मा ने एक रत्नमय सुन्दर दिव्य नगर का निर्माण किया।।३।। विवाह स्थल में निम्नलिखित व्यक्तियों ने भाग लिया—अदिति, दिति, दनु, कद्रु, सुकालिका, पुलोमा, सुरसा, सिहिका, विनता, सिवि, माया, क्रिया, दुर्गा, सुधा, स्वयं स्वधा, सावित्री, देवताओं की माता, रजनी, दक्षिणा, द्युति, स्वाहा, स्वधा, मति, बुद्धि, ऋद्धि, वृद्धि, सरस्वती, राका, कुहू, सिनीवाली, अनुमती; धरणीं, धारणी, इला, शची, नारायणी और देवताओं की अन्य माताएँ और पत्नियाँ। वे सब वहाँ प्रसन्नतापूर्वक शिव के विवाह में आईं। "यह शंकर का विवाह है" नागगण, गरुड़गण, यक्षगण, गन्धर्वगण, किन्नरगण, गण, समुद्र, पर्वत, मेघ, मास, वर्ष, वेद, मंत्र, यज्ञ, स्तोम, धर्म, हुँकार, प्रणव, हजार प्रतिहार, करोड़ों अप्सराएँ और उनकी दिव्य परिचारिकाएँ, देवताओं की, लोकों की और महाद्वीपों की नदियाँ वे सब प्रसन्न मुद्रा में स्त्री का शरीर धारण करके विवाह में सम्मिलित हुई।।४-११।। महाभाग और सब लोकों से नमस्कृत गणों के स्वामी प्रसन्नतापूर्वक यह कहते हुये

अभ्ययुः शंखवर्णाश्च गणकोट्यो गणेश्वराः। दशभिः केकराक्षश्च विद्युतोष्टाभिरेव च॥१३॥
चतुःषष्ट्या विशाखाश्च नवभिः पारयात्रिकः।
षड्भिः सर्वांतकः श्रीमान् तथैव विकृताननः॥१४॥
ज्वालाकेशो द्वादशभिः कोटिभिर्गणपुंगवः। सप्तभिः समदः श्रीमान्दुंदुभोष्टाभिरेव च॥१५॥
पंचभिश्च कपालीशः षड्भिः संदारकः शुभः। कोटिकोटिभिरेवेह गंडकः कुंभकस्तथा॥१६॥
विष्टंभोष्टभिरेवेह गणपः सर्वसत्तमः। पिप्पलश्च सहस्रेण सन्नादश्च तथा द्विजाः॥१७॥
आवेष्टनस्तथाष्टाभिः सप्तभिश्चंद्रतापनः। महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो वृतः॥१८॥
कुंडी द्वादशभिर्वीरस्तथा पर्वतकः शुभः। कालश्च कालकश्चैव महाकालः शतेन वै॥१९॥
आग्निकः शतकोट्या वै कोट्याग्निमुख एव च।
आदित्यमूर्धा कोट्या च तथा चैव धनावहः॥२०॥
सन्नामश्च शतेनैव कुमुदः कोटिभिस्तथा। अमोघः कोकिलश्चैव कोटिकोट्या सुमंत्रकः॥२१॥
काकपादोऽपरः षष्ट्या षष्ट्या संतानकःप्रभुः। महाबलश्च नवभिर्मधुपिंगश्च पिंगलः॥२२॥
नीलो नवत्या देवेशः पूर्णभद्रस्तथैव च। कोटीनां चैव सप्तत्या चतुर्वक्त्रो महाबलः॥२३॥
कोटिकोटिसहस्त्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृताः। तत्राजग्मुस्तथा देवास्ते सर्वे शंकरं भवम्॥२४॥
भूतकोटिसहस्रेण प्रमथः कोटिभिस्त्रिभिः। वीरभद्रश्चतुःषष्ट्या रोमजाश्चैव कोटिभिः॥२५॥

आये "यह शंकर जी का विवाह है"।।१२।। करोड़ों गण और गणेश्वर जो शंख के रंग के समान थे, आये। केकराक्ष दस करोड़ के, विद्युत आठ करोड़ के साथ, चौंसठ करोड़ के साथ विसाख आये, पारयात्रिक नौ करोड़ के साथ, सर्वान्तक छः करोड़ के साथ, विकृतानन भी छः करोड़ के साथ आये।।१३-१४।। गणों में श्रेष्ठ, ज्वालाकेश बारह करोड़ के साथ, श्रीमान् समद सात करोड़ के साथ, दुन्दुभ आठ करोड़ के साथ, कपालीश पाँच करोड़ के साथ, संदारक छः करोड़ के साथ, गंडक और कुम्भक अपने करोड़ों अनुयायियों के साथ आये।।१५-१६।। हे ब्राह्मणों! गण का स्वामी सबसे उत्तम विष्टंभ, आठ करोड़ के साथ आये। पिप्पल और सन्नाद दोनों अपने-अपने एक-एक हजार के साथ आये।।१७।। आवेष्टन आठ करोड़ के सहित, चन्द्रतापन सात करोड़ के साथ, महाकेश, गणों का स्वामी, हजार करोड़ के साथ आये।।१८।। वीर कुण्डी और पर्वतक बारह करोड़ के साथ तथा काल, कालक और महाकाल सौ करोड़ों के साथ आये।।१९।। आग्निक सौ करोड़ के साथ आये। अग्निमुख एक करोड़ के साथ आये। उसी प्रकार आदित्यमूर्धा और धनावह ये दोनों एक-एक करोड़ के साथ आये।।२०।। सन्नाम और कुमुद सौ करोड़ों के साथ आये। अमोघ और कोकिल दोनों प्रत्येक एक करोड़ के साथ आये। दूसरा गण का स्वामी काकपाद छः करोड़ के साथ आये। सन्तानक छः करोड़ के साथ, महाबल मधुपिंग और पिंगल तीनों प्रत्येक नौ-नौ करोड़ के साथ आये।।२१-२२।। नील, देवेश और पूर्णभद्र नब्बे करोड़ के साथ आये। महाबलवान् चतुर्वक्त्र सत्तर करोड़ के साथ आये।।२३।। देवतागण अपने सैकड़ों और हजारों करोड़ अनुयायियों के साथ वहाँ आये।।२४।। भूतगण हजारों करोड़ के साथ आये। प्रमथ लोग तीन

करणश्चैव विंशत्या नवत्या केवलः शुभः। पंचाक्षः शतमन्युश्च मेघमन्युस्तथैव च॥२६॥
काष्ठकूटश्चतुः षष्ट्या सुकेशो वृषभस्तथा। विरूपाक्षश्च भगवान् चतुःषष्ट्या सनातनः॥२७॥
तालुकेतुः षडास्यश्च पंचास्यश्च सनातनः। संवर्त्तकस्तथा चैत्रो लकुलीशः स्वयंप्रभुः॥२८॥
लोकांतकश्च दीप्तास्यो तथा दैत्यांतकः प्रभुः। मृत्यहृत्कालहा कालो मृत्युंजयकरस्तथा॥२९॥
विषादो विषदश्चैव विद्युतः कांतकः प्रभुः। देवो भृंगी रिटिः श्रीमान् देवदेवप्रियस्तथा॥३०॥
अशनिर्भासकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्त्रपात्। एते चान्ये च गणपा असंख्याता महाबलाः॥३१॥
सर्वे सहस्त्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः। चंद्ररेखावतंसाश्च नीलकंठास्त्रिलोचनाः॥३२॥
हारकुंडलकेयूरमुकुटाद्यैरलंकृताः। ब्रह्मेंद्रविष्णुसंकाशा अणिमादिगुणैर्वृताः॥३३॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्राजग्मुर्गणेश्वराः। पातालचारिणश्चैव सर्वलोकनिवासिनः॥३४॥
तुंबरुर्नारदो हाहा हूहूश्चैव तु सामगाः। रत्नान्यादाय वाद्यांश्च तत्राजग्मुस्तदा पुरम्॥३५॥
ऋषयः कृत्स्त्रशस्तत्र देवगीतास्तपोधनाः। पुण्यान्वैवाहिकान्मंत्रानजपुर्हृष्टमानसाः॥३६॥
तत एवं प्रवृत्ते तु सर्वतश्च समागमे। गिरिजां तामलंकृत्य स्वयमेव शुचिस्मिताम्॥३७॥
पुरं प्रवेशयामास स्वयमादाय केशवः। सदस्याह च देवेशं नारायणमजो हरम्॥३८॥
भवानग्रे समुत्पन्नो भवान्या सह दैवतैः। वामांगादस्य रुद्रस्य दक्षिणांगादहं प्रभो॥३९॥

करोड़ों के साथ आये। वीरभद्र चौंसठ करोड़ के साथ और रोमज लोग करोड़ों के साथ वहाँ आये।।२५।। कणन बीस करोड़ों के साथ आया। शुभ केवल नब्बे करोड़ों के साथ आया। पंचाक्ष, शतमन्यु और मेघमन्यु भी उसी प्रकार आये।।२६।। काष्ठकूट, सुकेश और वृषभ चौसठ करोड़ के साथ आये। भगवान विरूपाक्ष भी चौसठ करोड़ के साथ आये।।२७।। तालुकेतु, षडास्य, पंचास्य, सनातन, संवर्त्तक, चैत्र, लकुलीश, स्वयंप्रभु, लोकान्तक, दीप्तास्य, प्रभु दैत्यान्तक, मृत्युहृत, कालहा, काल, मृत्युंजयकर, विषाद, विषद, विद्युत, प्रभु कांतक, देवेश के प्रिय श्रीमान भृंगीरिटि, अशनि, भासक और सहस्त्रपात् चौसठ करोड़ के साथ आये तथा अन्य गण भी आये जो महाबली थे और जो असंख्य थे।।२८-३१।। इन सबों में से प्रत्येक के हजार हाथ थे। वे सब जटाधारी और मुकुटधारी थे। वे चन्द्ररेखा से विभूषित थे और वे नीलकंठ और त्रिलोचन थे।।३२।। वे हार, कुण्डल, केयूर और मुकुट आदि से अलंकृत थे। वे ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र के समान थे तथा अणिमा आदि सिद्धियों से युक्त थे।।३३।। करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाले गणेश्वर पाताल लोक में विचरण करने वाले सब लोकों में निवास करने वाले वहाँ आये।।३४।। तुंबरु, नारद, हाहा हूहू और सामगान के गायक, अपने वाद्य यन्त्रों और रत्नों को लेकर उस पुर में पधारे।।३५।। वहाँ पर प्रसंन्न मन वाले, तपोधन ऋषिगण विवाह सम्बन्धी गीतों और दिव्य भजनों को गाते और पवित्र मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे।।३६।। इस प्रकार जब सब स्थानों में जनसमूह वहाँ एकत्र हो गया तक विष्णु ने स्वयं खूब सजी-बजी, मंद-मंद पवित्र मुस्कुराती हुई पार्वती को इस पुर में प्रवेश कराया। तब ब्रह्मा ने उस सभा में देवेश नारायण विष्णु से कहा।।३७-३८।। "भगवन्! आप रुद्र के बायें अंग से देवताओं के साथ भवानी (पार्वती) सहित पैदा हुये हैं। मैं दाहिने अंग से उत्पन्न हूँ।।३९।।

मन्मूर्तिस्तुहिनाद्रीशो यज्ञार्थं सृष्ट एव हि। एषा हैमवती जज्ञे मायया परमेष्ठिनः॥४०॥
श्रौतस्मार्तप्रवृत्त्यर्थमुद्वाहार्थमिहागतः । अतोसौ जगतां धात्री धाता तव ममापि च॥४१॥
अस्य देवस्य रुद्रस्य मूर्तिभिर्विहितं जगत्। क्ष्मावग्निखेंदुसूर्यात्मपवनात्मा यतो भवः॥४२॥
तथापि तस्मै दातव्या वचनाच्च गिरेर्मम।
एषा ह्यजा शुक्लकृष्णा लोहिता प्रकृतिर्भवान्॥४३॥
श्रेयोपि शैलराजेन संबंधोऽयं तवापि च। तव पाद्मे समुद्धूतः कल्पे नाभ्यंबुजादहम्॥४४॥
मदंशस्यास्य शैलस्य ममापि च गुरुर्भवान्।

सूत उवाच

बाढमित्यजमाहासौ देवदेवो जनार्दनः॥४५॥
देवाश्च मुनयः सर्वे देवदेवश्च शंकरः।
ततश्चोत्थाय विद्वान्सः पद्मनाभः प्रणम्य ताम्॥४६॥
पादौ प्रक्षाल्य देवस्य कराभ्यां कमलेक्षणः। अभ्युक्षदात्मनो मूर्ध्नि ब्रह्मणश्च गिरेस्तथा॥४७॥
त्वदीयैषा विवाहार्थं मेनजा ह्यनुजा मम। इत्युक्त्वा सोदकं दत्वा देवीं देवेश्वराय ताम्॥४८॥
स्वात्मानमपि देवाय सोदकं प्रददौ हरिः। अथ सर्वे मुनिश्रेष्ठाः सर्ववेदार्थपारगाः॥४९॥

वास्तव में गिरीश हिमवान (हिमालय) यज्ञ के उद्देश्य के लिये उत्पन्न किये गये हैं। वह स्वयं मेरी मूर्त्ति (रूप) हैं। यह हिमवान की (कन्या) हैमवती (पार्वती) ब्रह्मा की माया से उत्पन्न हुई है।।४०।। महादेव शिव मेरे और आप के भी स्रष्टा (जनक) हैं। यह पार्वती तीनों लोकों की माता हैं। अतः शिव वेदों और स्मृतियों में प्रतिपादित संस्कार के लिये और विवाह के लिये यहाँ पधारे हैं।।४१।। इन महान् देवता रुद्र की मूर्त्तियों (रूपों) से यह जगत् उत्पन्न हुआ है (सृष्ट है) जो कि पृथ्वी, अग्नि, जल, आकाश, वायु, चन्द्र, सूर्य और होतृ ये आठ इन शिव के रूप हैं।।४२।। तथापि, गिरीश हिमवान के वचन से तथा मेरे वचन (कहने) से यह शुक्ल कृष्ण और लोहित अजन्मी (माया) प्रकृति को शिव को दे दें। यह उनके देने योग्य है। आप भी प्रकृति हैं। गिरीश हिमालय के साथ सम्बन्ध तुम्हारे लिए और मेरे लिए भी श्रेय (कल्याणप्रद) है। पद्म कल्प में मैं आप के नाभि कमल से उत्पन्न हुआ था। अतः आप मेरे पिता हैं और हिमवान जो मेरा अंश है, उसके और मेरे भी आप गुरु हैं।''

सूत बोले

तब देवताओं के स्वामी विष्णु ने कहा, ''यह ऐसा ही हो''।।४३-४५।। तब देवगण, ऋषिगण, देवेश शिव और विद्वान् लोग उठ खड़े हुये। पद्मनाभ भगवान विष्णु ने उन सब को प्रणाम किया। उन्होंने अपने हाथों से शिव के चरणों को धोया। उन्होंने अपने तथा ब्रह्मा और गिरीश के सिर पर जल छिड़का।। 'मेरी छोटी बहिन और मेना की कन्या यह पार्वती आप के विवाह के लिये हैं।' ऐसा कहकर विष्णु ने पार्वती को देवेश्वर शिव के लिए जल सहित समर्पित कर दिया। उन्होंने अपने को भी जल सहित शिव को प्रदान कर दिया। उसके बाद सब वेदों के अर्थों के पारंगत श्रेष्ठ मुनियों ने कहा, ''निःसन्देह, यह देव शिव हैं जिनकी माया से यह जगत् है।''

ऊचुर्दाता गृहीता च फलं द्रव्यं विचारतः। एष देवो हरो नूनं मायया हि ततो जगत्॥५०॥
इत्युक्त्वा तं प्रणेमुश्च प्रीतिकंटकितत्वचः। ससृजुः पुष्पवर्षाणि खेचराः सिद्धचारणाः॥५१॥
देवदुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः। वेदाश्च मूर्तिमंतस्ते प्रणेमुस्तं महेश्वरम्॥५२॥
ब्रह्मणा मुनिभिः सार्धं देवदेवमुमापतिम्। देवोपि देवीमालोक्य सलज्जां हिमशैलजाम्॥५३॥
न तृत्यत्यनवद्यांगी सा च देवं वृषध्वजम्। वरदोस्मीति तं प्राह हरिं सोप्याह शंकरम्॥५४॥
त्वयि भक्तिः प्रसीदेति ब्रह्माख्यां च ददौ तु सः।
ततस्तु पुनरेवाह ब्रह्मा विज्ञापयन्प्रभुम्॥५५॥
हविर्जुहोमि वह्नौ तु उपाध्यायपदे स्थितः। ददासि मम यद्याज्ञां कर्त्तव्यो ह्यकृतो विधिः॥५६॥
तमाह शंकरो देवं देवदेवो जगत्पतिः। यद्यदिष्टं सुरश्रेष्ठ तत्कुरुष्व यथेप्सितम्॥५७॥
कर्त्तास्मि वचनं सर्वं देवदेव पितामह। ततः प्रणम्य हृष्टात्मा ब्रह्मा लोकपितामहः॥५८॥
हस्तं देवस्य देव्याश्च युयोज परमं प्रभुः। ज्वलनश्च स्वयं तत्र कृतांजलिरुपस्थितः॥५९॥
श्रौतैरेतैर्महामंत्रैर्मूर्तिमद्भिरुपस्थितैः । यथोक्तविधिना हुत्वा लाजानपि यथाक्रमम्॥६०॥
आनीतान्विष्णुना विप्रान्संपूज्य विविधैर्वरैः। त्रिश्च तं ज्वलनं देवं कारयित्वा प्रदक्षिणम्॥६१॥
मुक्त्वा हस्तसमायोगं सहितैः सर्वदैवतैः। सुरैश्च मानवैः सर्वैः प्रहृष्टेनांतरात्मना॥६२॥
ननाम भगवान्ब्रह्मा देवदेवमूमापतिम्। ततः पाद्यं तयोर्दत्वा शंभोराचमनं तथा॥६३॥

ऐसा कहकर प्रसन्नता से रोमांचित उन्होंने शिव को प्रणाम किया। आकाश में विचरण करने वाले सिद्धों और चारणों ने उन पर फूलों की वर्षा की।।४६-५१।। दिव्य ढोलकों की ध्वनि हुई। अप्सराओं ने नृत्य किया। चारों वेदों ने शरीरधारण करके भगवान शिव (महादेव) को प्रणाम किया।।५२।। उन्होंने ब्रह्मा और मुनियों के साथ देवों के देव उमापति को प्रणाम किया। शिव ने भी लज्जा से भरी पार्वती की ओर देखा। वह कभी तृप्त नहीं होते थे। अनिन्द्या सुन्दरी पार्वती भी वृषभध्वज देव शिव को देखते हुये तृप्त नहीं होती थीं। उन्होंने विष्णु से कहा, "मैं वरदाता हूँ।" उन्होंने भी शिव से कहा।।५३-५४।। "तुम में से मेरी भक्ति हो, मुझ पर प्रसन्न हो" तब शिव ने उनको ब्रह्मा की पदवी प्रदान की उसके बाद ब्रह्मा ने शिव से फिर कहा, "उपाध्याय के पद पर स्थित होकर अग्नि में हवन करता हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो मैं धार्मिक कृत्य को आगे बढ़ाऊँ जो अभी तक नहीं किया (अकृत) था किन्तु अभी करता हूँ।" तब देवों के देव उमापति ने कहा, "हे सुरों में श्रेष्ठ! जो चाहते हो वह करो जो कुछ करना चाहते हो करो।।५५-५७।। "हे ब्रह्मा! हे देवताओं के देवता! मैं तुम्हारे निर्देश के अनुसार काम करूँगा।" जगत् के पितामह ब्रह्मा प्रसन्न हो गये। उन्होंने शिव को प्रणाम करके देवी पार्वती के हाथ को परम प्रभु शिव के हाथ से मिला दिया। अग्नि देवता वहाँ पर स्वयं हाथ जोड़कर उपस्थित हुये। वेदों से लिये हुये मन्त्रों ने भौतिक देह धारण किया अर्थात् मूर्त्त रूप में वहाँ उपस्थित हुये। उन्होंने यज्ञोक्त विधि से लाजा (धान का लावा) होम किया। विष्णु द्वारा लाये गये ब्राह्मणों की पूजा करके उन्होंने उनको विविध प्रकार के वरदान दिये। उसके बाद प्रज्ज्वलित अग्निदेवता की तीन परिक्रमा कराकर देवताओं और मनुष्यों की उपस्थिति में प्रसन्नतापूर्वक जुड़ी हुई गाँठों (गठबन्धन) को खोल दिया गया। उसके बाद भगवान ब्रह्मा ने देवताओं के स्वामी उमापति को प्रणाम

मधुपर्कं तथा गां च प्रणम्य च पुनः शिवम्। अतिष्ठद्भगवान्ब्रह्मा देवैरिन्द्रपुरोगमैः॥६४॥
भृग्वाद्या मुनयः सर्वे चाक्षतैस्तिलतंडुलैः। सूर्यादयः समभ्यर्च्य तुष्टुवुर्वृषभध्वजम्॥६५॥
शिवः समाप्य देवोक्तं वह्निमारोप्य चात्मनि। तया समागतो रुद्रः सर्वलोकहिताय वै॥६६॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि भवोद्वाहं शुचिस्मितः। श्रावयेद्वा द्विजाञ्छुद्धान्वेदवेदांगपारगान्॥६७॥
स लब्ध्वा गाणपत्यं च भवेन सह मोदते। यत्रायं कीर्त्यते विप्रैस्तावदास्ते तदा भवः॥६८॥
तस्मात्संपूज्य विधिवत्कीर्तयेन्नान्यथा द्विजाः। उद्वाहे च द्विजेंद्राणां क्षत्रियाणां द्विजोत्तमाः॥६९॥
कीर्तनीयमिदं सर्वं भवोद्वाहमनुत्तमम्। कृतोद्वाहस्तदा देव्या हेमवत्या वृषध्वजः॥७०॥
सगणो नंदिना सार्धं सर्वदेवगणैर्वृतः। पुरीं वाराणसीं दिव्यामाजगाम महाद्युतिः॥७१॥
अविमुक्ते सुखासीनं प्रणम्य वृषभध्वजम्। अपृच्छत्क्षेत्रमाहात्म्यं भवानी हर्षितानना॥७२॥
अथाहार्धेन्दुतिलकः क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम्। अविमुक्तस्य माहात्म्यं विस्तराच्छक्यते नहि॥७३॥
वक्तुं मया सुरेशानि ऋषिसंघाभिपूजितम्। किं मया वर्ण्यते देवि ह्यविमुक्तफलोदयः॥७४॥
पापिनां यत्र मुक्तिः स्यान्मृतानामेकजन्मना। अन्यत्र तु कृतं पापं वाराणस्यां व्यपोहति॥७५॥
वाराणास्यां कृतं पापं पैशाच्यनरकावहम्। कृत्वा पापसहस्राणि पिशाचत्वं वरं नृणाम्॥७६॥
न तु शक्रसहस्रत्वं स्वर्गे काशीपुरीं विना। यत्र त्रिविष्टपो देवो यत्र विश्वेश्वरो विभुः॥७७॥

किया। उन्होंने पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क तथा गाय को दम्पति को दिया। फिर भगवान ब्रह्मा ने शिव को प्रणाम किया। देवताओं सहित आगे ब्रह्मा इन्द्र के बगल में खड़े हो गये।।५८-६४।। भृगु आदि मुनियों ने अक्षत तिल और चावल दम्पति के ऊपर फेंका। सूर्य आदि ग्रहों ने पूजा की और भगवान वृषभध्वज शिव की स्तुति की।।६५।। शिव ने पवित्र वैदिक संस्कारों को समाप्त किया और आत्मा में अग्नि का आरोप किया। इस प्रकार वह लोकों के कल्याण के लिए उससे जुड़ गये।।६६।। जो पवित्र होकर शिव के विवाह को पढ़े या सुने अथवा वेद वेदाँग में पारंगत शुद्ध ब्राह्मणों को सुनावे, वह गणों का स्वामित्व पाकर शिव के साथ आनन्द मनाता है। जहाँ कहीं यह आख्यान ब्राह्मणों द्वारा दोहराया जाता है तब तक शिव वहाँ विराजमान रहते हैं। इसलिए हे ब्राह्मणों! शिव की पूजा करके इस कथानक को कहना चाहिये। हे उत्तम ब्राह्मणों! श्रेष्ठ ब्राह्मणों और क्षत्रियों के विवाह के संस्कार के समय पूजा के बाद शिव के विवाह के आख्यान को पढ़ना और शिव का माहात्म्य कहना चाहिये अन्य प्रकार से नहीं।।६७-६९।। विवाह संस्कार के बाद वृषभध्वज भगवान शिव देवताओं के संग गणों और नंदी के साथ हिमवान की पुत्री उमा को लेकर दिव्य नगरी वाराणसी को चले गये।।७०-७१।। उमा जिनका मुख प्रसन्नता से भरा हुआ था—उन्होंने सुखपूर्वक बैठे शिव को प्रणाम करके उस पवित्र क्षेत्र के माहात्म्य के विषय में पूछा।।७२।। अर्धचन्द्रधारी भगवान शंकर ने इस अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य वर्णन किया। हे देवताओं की देवी! अविमुक्त का माहात्म्य मेरे द्वारा विस्तार में नहीं कहा जा सकता। यह पवित्र क्षेत्र ऋषि संघों द्वारा पूजित हैं। हे देवी! अविमुक्त के योग्यताओं (फलों) को विस्तार में मैं कैसे कहूँ।।७३-७४।। जहाँ पापियों की—जो यहाँ मरते हैं—अपने उसी जन्म में मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति दूसरे स्थानों में पापों को किये रहता है उसके पाप वाराणसी में नष्ट हो जाते हैं। वाराणसी में किये हुये पाप पापी को पिशाच में बदल देते हैं और वे उसको

ओंकारेशः कृत्तिवासा मृतानां न पुनर्भवः।
उक्त्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं संक्षेपाच्छशिशेखरः॥७८॥
दर्शयामास चोद्यानं परित्यज्य गणेश्वरान्। तत्रैव भगवान् जातो गजवक्त्रो विनायकः॥७९॥
दैत्यानां विघ्नरूपार्थमविघ्नाय दिवौकसाम्। एतद्वः कथितं सर्वं कथासर्वस्वमुत्तमम्॥८०॥
यथाश्रुतं मया सर्वं प्रसादाद्वः सुशोभनम्॥८१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे पार्वतीविवाहवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥१०३॥

नरक में ले जाते हैं। हजारों पाप करके मनुष्यों को पिशाचत्व श्रेष्ठ है किन्तु काशीपुरी के बिना स्वर्ग में एक हजार बार इन्द्र का पद प्राप्त करने से अच्छा है। यदि इस स्थान में व्यक्ति मरता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जहाँ भगवान विश्वेश्वर ओंकारेश, गजचर्म ओढ़े शिव सदा उपस्थित हैं। शशिशेखर भगवान शिव ने संक्षेप में उस क्षेत्र के माहात्म्य को कहकर गणेश्वरों को बिदा करके देवी उमा को एक उद्यान दिखलाया। यह वही उद्यान है जहाँ पर दैत्यों के विघ्नरूप और देवताओं के अविघ्नरूप गजानन विनायक पैदा हुये थे। इस प्रकार कथा का सम्पूर्ण तत्त्व तुम लोगों को बता दिया गया। जैसे मैंने व्यास की कृपा से सुना था।।७५-८१।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में पार्वती के विवाह का वर्णन नामक एक सौ तीन अध्याय समाप्त॥१०३॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

देवस्तुतिः

ऋषयः ऊचुः

कथं विनायको जातो गजवक्त्रो गणेश्वरः। कथं प्रभावस्तस्यैवं सूत वक्तुमिहार्हसि॥१॥

सूत उवाच

एतस्मिन्नंतरे देवाः सेंद्रोपेंद्राः समेत्य ते। धर्मविघ्नं तदा कर्त्तुं दैत्यानामभवन्द्विजाः॥२॥
असुरा यातुधानाश्च राक्षसाः क्रूरकर्मिणः। तामसाश्च तथा चान्ये राजसाश्च तथा भुवि॥३॥
अविघ्नं यज्ञदानाद्यैः समभ्यर्च्य महेश्वरम्। ब्राह्मणं च हरिं विप्रा लब्धेप्सितवरा यतः॥४॥
ततोऽस्माकं सुरश्रेष्ठाः सदा विजयसंभवः। तेषां ततस्तु विघ्नार्थमविघ्नाय दिवौकसाम्॥५॥
पुत्रार्थं चैव नारीणां नराणां कर्मसिद्धये। विघ्नेशं शंकरं स्रष्टुं गणपं स्तोतुमर्हथ॥६॥
इत्युक्त्वान्योन्यमनघं तुष्टुवुः शिवमीश्वरम्। नमः सर्वात्मने तुभ्यं सर्वज्ञाय पिनाकिने॥७॥
अनघाय विरिंचाय देव्याः कार्यार्थदायिने। अकायायार्थकायाय हरेः कायापहारिणे॥८॥
कायांतस्थामृताधारमंडलावस्थिताय ते। कृतादिभेदकालाय कालवेगाय ते नमः॥९॥

एक सौ चार अध्याय

देव की स्तुति

ऋषिगण बोले

गजानन विनायक और गणेंश्वर कैसे पैदा हुये। उनका प्रभाव (शक्ति) क्या है? हे सूत! यह आप हम लोगों को बतायें।।१।।

सूत बोले

हे ब्राह्मणों! इस बीच में इन्द्र समेत देवताओं और उपेन्द्र दैत्यों के धर्म में विघ्न करने के लिए एकत्र हुये।।२।। असुरगण, यातुधान और क्रूर कर्म करने वाले राक्षस तथा पृथ्वी पर जो अन्य तामस और राजस प्रकृति के लोग हैं, वे यज्ञ दान आदि द्वारा महेश्वर शिव की पूजा करते हैं। अपने कार्य को अविघ्न पूरा करने के लिए ब्राह्मण लोग ब्रह्मा और विष्णु की पूजा करके अभीष्ट वर प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वे प्रत्येक वस्तु प्राप्त करते हैं। श्रेष्ठ देवताओं! हम भी सदा विजय प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं। यह उचित है तुम लोग गणों के स्वामी विघ्नेश की स्वर्गवासियों के मार्ग में विघ्नों के नाश के लिए और स्त्रियों में पुत्रों की प्राप्ति के लिए तथा पवित्र धार्मिक कृत्य निर्विघ्न समाप्ति के लिए एवं अन्य कार्य सिद्धि के लिए स्तुति करो।।३-६।। इस प्रकार परस्पर कहने के बाद उन्होंने निष्पाप भगवान शिव की स्तुति की। "सबकी आत्मा तुमको नमस्कार। पिनाकधारी और सर्वज्ञ तुमको नमस्कार।।७।। निष्पाप विरिंच को नमस्कार। देवी के कार्य के अर्थ को देने वाले, शरीर रहित, महत् पदार्थों से बने शरीर वाले, विष्णु के काया का अपहरण करने वाले को नमस्कार।।८।। शरीर के भीतर

कालाग्निरुद्ररूपाय धर्माद्यष्टपदाय च। कालीविशुद्धदेहाय कालिकाकारणाय ते॥१०॥
कालकंठाय मुख्याय वाहनाय वराय ते। अंबिकापतये तुभ्यं हिरण्यपतये नमः॥११॥
हिरण्यरेतसे चैव नमः शर्वाय शूलिने। कपालदंडपाशासिचर्मांकुशधराय च॥१२॥
पतये हैमवत्याश्च हेमशुक्लाय ते नमः। पीतशुक्लाय रक्षार्थं सुराणां कृष्णवर्त्मने॥१३॥
पंचमाय महापंचयज्ञिनां फलदाय च। पंचास्यफणिहाराय पंचाक्षरमयाय ते॥१४॥
पंचधा पंचकैवल्यदेवैरर्चितमूर्तये। पंचाक्षरदृशे तुभ्यं परात्परतराय ते॥१५॥
षोडशस्वरवज्रांगवक्त्रायाक्षयरूपिणे। कादिपंचकहस्ताय चादिहस्ताय ते नमः॥१६॥
टादिपादाय रुद्राय तादिपादाय ते नमः। पादिमेंढ्राय यद्यंगधातुसप्तकधारिणे॥१७॥
शांतात्मरूपिणे साक्षात्क्षदंतक्रोधिने नमः। लवरेफहळांगाय निरंगाय च ते नमः॥१८॥
सर्वेषामेव भूतानां हृदि निःस्वनकारिणे। भ्रुवोरंते सदा सद्भिर्दृष्टायात्यंतभानवे॥१९॥
भानुसोमाग्निनेत्राय परमात्मस्वरूपिणे। गुणत्रयोपरिस्थाय तीर्थपादाय ते नमः॥२०॥
तीर्थतत्त्वाय साराय तस्मादपि पराय ते। ऋग्यजुःसामवेदाय ओंकाराय नमोनमः॥२१॥

स्थित अमृत आधार मण्डल के लिए नमस्कार। कृत आदि भेद करने वाले काल को नमस्कार। काल के वेग के लिये नमस्कार।।९।। काल के रूप को, अग्नि और रुद्र रूप को नमस्कार। अष्टपद द्वारा संकेत किये गये को नमस्कार। धर्म सहित नौ से प्रारम्भ, काली द्वारा विशुद्ध देह को नमस्कार। कालिका के कारण तुमको नमस्कार।।१०।। कालकंठ के लिए नमस्कार। मुख्य वाहन वाले तुमको नमस्कार। अंबिका के पति को नमस्कार। हिरण्यपति को नमस्कार।।११।। हिरण्यरेतस को नमस्कार। त्रिशूलधारी शर्व को नमस्कार। कपाल, दण्ड, पाश, असि, चर्म (ढाल) और अंकुश धारण करने वाले को नमस्कार।।१२।। हिमवान की पुत्री के पति को नमस्कार। हेम शुक्ल तुमको नमस्कार। रंग में पीले वीर्य वाले तुमको नमस्कार। देवताओं की रक्षा के लिए अग्नि रूप तुमको नमस्कार।।१३।। पंचम को नमस्कार। महापंच यज्ञ को वर देने वाले को नमस्कार। गले में हार की तरह पंच मुख फल वाले तुमको नमस्कार। पंचाक्षरमय को नमस्कार।।१४।। पाँच कैवल्य देव द्वारा रचित मूर्त्ति वाले को नमस्कार। पंचाक्षर दृष्टि वाले को नमस्कार। महत्तम से भी महान् को नमस्कार।।१५।। सोलह स्वर वज्रांग वक्त्र को नमस्कार। अक्षय रूप वाले को नमस्कार। ''क' से प्रारम्भ होने वाले पाँच अक्षरों द्वारा निर्मित हाथ वाले को नमस्कार। ''च'' आदि हाथ वाले को नमस्कार।।१६।। ''ट'' आदि पाद वाले रुद्र को नमस्कार। ''त'' आदि पाद वाले तुमको नमस्कार। ''प'' से प्रारम्भ पाँच अक्षरों द्वारा बने हुये लिंग वाले को नमस्कार। सात अंगों और सात धातुओं के बने हुये ''य'' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले को नमस्कार।।१७।। सात शान्त आत्मा रूप वाले ''श'' से अन्त होने वाले को नमस्कार। ''ह'' अक्षर से बने हुये क्रोध वाले तुमको नमस्कार और ''क्ष'' से अन्त होने वाले 'ल, व, र, ह, श अक्षरों द्वारा जिनके अंग निर्मित है उसको नमस्कार। बिना अंग वाले तुमको नमस्कार।।१८।। जो सब प्राणियों के हृदय में ध्वनि के कारण हो तुमको नमस्कार। सदा भक्तों द्वारा भौहों के मध्य में दिखायी देने वाले तुमको नमस्कार। अत्यन्त चमक से युक्त किरणों वाले तुमको नमस्कार।।१९।। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि द्वारा निर्मित नेत्र वाले तुमको नमस्कार। परम आत्मस्वरूप वाले तुमको नमस्कार। तीनों गुणों से ऊपर स्थित तुम्हें नमस्कार। तीर्थ पाद वाले तुमको नमस्कार।।२०।। पवित्र केन्द्रों

ओंकारे त्रिविधं रूपमास्थायोपरिवासिने। पीताय कृष्णवर्णाय रक्तायात्यंततेजसे॥२२॥
स्थानपंचकसंस्थाय पंचधांडबहिः क्रमात्। ब्रह्मणे विष्णवे तुभ्यं कुमाराय नमोनमः॥२३॥
अंबायाः परमेशाय सर्वोपरिचराय ते। मूलसूक्ष्मस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्माय ते नमः॥२४॥
सर्वसंकल्पशून्याय सर्वस्माद्रक्षिताय ते। आदिमध्यांतशून्याय चित्संस्थाय नमोनमः॥२५॥
यमाग्निवायुरुद्रांबुसोमशक्रनिशाचरैः । दिङ्मुखेदिङ्मुखे नित्यं सगणैः पूजिताय ते॥२६॥
सर्वेषु सर्वदा सर्वमार्गे संपूजिताय ते॥
रुद्राय रुद्रनीलाय कद्रुदाय प्रचेतसे। महेश्वराय धीराय नमः साक्षाच्छिवाय ते॥२७॥
अथ शृणु भगवन् स्तवच्छलेन कथितमजेंद्रमुखैः सुरासुरेशैः।
मखमदनयमाग्निदक्षयज्ञक्षपणविचित्रविचेष्टितं क्षमस्व॥२८॥

सूत उवाच

यः पठेतु स्तवं भक्त्या शक्राग्निप्रमुखैः सुरैः। कीर्तितं श्रावयेद्विद्वान् स याति परमां गतिम्॥२९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे देवस्तुतिर्नाम
चतुरधिकाशततमोऽध्यायः॥१०४॥

के अति आवश्यक तत्त्व वाले तुमको नमस्कार। महत्तम से भी परे तुमको नमस्कार। ऋक्, यजु और साम वेद तुमको नमस्कार। ओंकार के लिए नमस्कार।।२१।। ओंकार में त्रिविधि रूप निर्मित करने के बाद उसके ऊपर स्थित को नमस्कार। पीत वर्ण वाले, कृष्ण वर्ण वाले, लाल वर्ण वाले, अत्यन्त तेज वाले तुमको नमस्कार।।२२।। पाँच स्थान में स्थित पाँच प्रकार से अंक में स्थित और बिना क्रम में स्थित तुम्हें नमस्कार। ब्रह्मा विष्णु तुमको और कुमार को नमस्कार।।२३।। उमापति को नमस्कार। सब के ऊपर चलने वाले तुमको नमस्कार। मूल सूक्ष्म शरीर वाले तुमको नमस्कार। स्थूल और सूक्ष्म तुमको नमस्कार।।२४।। सब संकल्प से शून्य को नमस्कार। सबसे रक्षित तुमको नमस्कार। आदि, मध्य और अन्त को नमस्कार। चित्त में स्थित तुमको नमस्कार।।२५।। यम, अग्नि, वायु, रुद्र, वरुण, सोम, इन्द्र, निर्ऋति और दिशाओं के स्वामियों, दिगपालों द्वारा गणों सहित नित्य पूजित तुमको नमस्कार।।२६।। सब में और सब मार्गों में सदा पूजित तुमको नमस्कार। रुद्र, नील, कद्रुद, प्रचेता को नमस्कार। महेश्वर को नमस्कार। शिव को नमस्कार। हे यज्ञ के विनाशक! काम के, यम के, अग्नि के, दक्ष यज्ञ के विनाशक सुनो। ब्रह्मा, इन्द्र देवताओं के स्वामियों, असुरों द्वारा किये गये विशेष क्रिया-कलापों और स्तुति वाक्यों को सुनो और क्षमा करो''।।२७-२८।।

सूत बोले

जो व्यक्ति भक्ति से इन्द्र अग्नि, आदि प्रमुख देवताओं द्वारा की गई इस स्तुति को पढ़े या जो इसको सुनाता है वह परम गति को प्राप्त होता है।।२९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में देव की स्तुति नामक
एक सौ चौथा अध्याय समाप्त॥१०४॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

विनायकोत्पत्तिः

सूत उवाच

यदा स्थिताः सुरेश्वराः प्रणम्य चैवमीश्वरम्। तदांबिकापतिर्भवः पिनाकधृङ् महेश्वरः॥१॥
ददौ निरीक्षणं क्षणाद्भवः स तान्सुरोत्तमान्। प्रणेमुरादराद्धरं सुरा मुदार्द्रलोचनाः॥२॥
भवः सुधामृतोपमैर्निरीक्षणैर्निरीक्षणात्। तदाह भद्रमस्तु वः सुरेश्वरान् महेश्वरः॥३॥
वरार्थमीश वीक्ष्यते सुरा गृहं गतास्त्विमे। प्रणम्य चाह वाक्पतिः पतिं निरीक्ष्य निर्भयः॥४॥
सुरेतरादिभिः सदा ह्यविघ्नमर्थितो भवान्। समस्तकर्मसिद्धये सुरापकारकारिभिः॥५॥
ततः प्रसीदताद्भवान् सुविघ्नकर्मकारणम्। सुरापकारकारिणामिहैष एव नो वरः॥६॥
ततस्तदा निशम्य वै पिनाकधृक् सुरेश्वरः। गणेश्वरं सुरेश्वरं वपुर्दधार सः शिवः॥७॥
गणेश्वराश्च तुष्टुवुः सुरेश्वरम् महेश्वरम्। समस्तलोकसंभवं भवार्त्तिहारिणं शुभम्॥८॥
इभाननाश्रितं वरं त्रिशूलपाशधारिणम्। समस्तलोकसंभवं गजाननं तदांबिका॥९॥
ददुः पुष्पवर्षं हि सिद्धा मुनींद्रास्तथा खेचरा देवसंघास्तदानीम्।
तदा तुष्टुवुश्चैकदंतं सुरेशाः प्रणेमुर्गणेशं महेशं वितंद्राः॥१०॥
तदा तयोर्विनिर्गतः सुभैरवः समूर्त्तिमान्। स्थितो ननर्त्त बालकः समस्तमंगलालयः॥११॥

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

विनायक का जन्म

सूत जी बोले

जब देवता लोग शिव की स्तुति के बाद उनको प्रणाम करके वहाँ बैठ गये तब उमापति पिनाकधारी शिव ने उन देवताओं को दिव्य दृष्टि से देखा। आँसुओं से भीगे नेत्र वाले देवताओं ने आदरपूर्वक शिव को प्रणाम किया।।१-२।। शिव ने अमृत समान सुखदायक नेत्रों के निरीक्षण के बाद उन्होंने देवताओं से कहा, ''तुम सबका कल्याण हो'।।३।। देव गुरु बृहस्पति ने निर्भय हो कर अपने स्वामी शिव को प्रणाम करके कहा, ''ये देवता लोग आपके घर में वर माँगने आये हैं।।४।। देवताओं के अपकारी असुरों द्वारा सब कार्यों में निर्विघ्न सिद्धि के लिए आप प्रार्थित हैं।।५।। तो असुरों द्वारा हम देवताओं के कर्म में कोई विघ्न न हो। यह हम लोगों का वर है। आप प्रसन्न हो यह वरदान दें''।।६।। इस बात को सुनकर पिनाकधारी देव-स्वामी शिव ने गणेश्वर का शरीर धारण किया।।७।। तब गणेश्वरों ने और सुरेश्वरों ने संसार के दुःख को दूर करने वाले भगवान शिव की स्तुति की।।८।। (उनका संकेत पाकर) उमा (पार्वती) ने हाथी के समान मुख वाले त्रिशूल और पाश धारण किये हुए गणेश को जन्म दिया।।९।। उस समय आकाश में स्थित देवताओं, मुनींद्रों और सिद्धों ने पुष्प वर्षा की। सावधान देवताओं ने, महेश और गणेश को प्रणाम किया और उनकी स्तुति की।।१०।। शिव और पार्वती

विचित्रवस्त्रभूषणैरलंकृतो गजाननो महेश्वरस्य। पुत्रकोऽभिवंद्य तातमंबिकाम्॥१२॥
जातमात्रं सुतं दृष्ट्वा चकार भगवान्भवः। गजाननाय कृत्यांस्तु सर्वान्सर्वेश्वरः स्वयम्॥१३॥
आदाय च कराभ्यां च सुसुखाभ्यां भवः स्वयम्।
आलिंग्याघ्राय मूर्धानं महादेवो जगद्गुरुः॥१४॥
तवावतारो दैत्यानां विनाशाय ममात्मज। देवानामुपकारार्थं द्विजानां ब्रह्मवादिनाम्॥१५॥
यज्ञश्च दक्षिणाहीनः कृतो येन महीतले। तस्य धर्मस्य विघ्नं च कुरु स्वर्गपथे स्थितः॥१६॥
अध्यापनं चाध्ययनं व्याख्यानं कर्म एव च।
योऽन्यायतः करोत्यस्मिन् तस्य प्राणान्सदा हर॥१७॥
वर्णाच्च्युतानां नारीणां नराणां नरपुंगव। स्वधर्मरहितानां च प्राणानपहर प्रभो॥१८॥
याः स्त्रियस्त्वां सदा कालं पुरुषाश्च विनायक। यजंति तासां तेषां च त्वत्साम्यं दातुमर्हसि॥१९॥
त्वं भक्तान् सर्वयत्नेन रक्ष बालगणेश्वर। यौवनस्थांश्च वृद्धांश्च इहामुत्र च पूजितः॥२०॥
जगत्रयेऽत्र सर्वत्र त्वं हि विघ्नगणेश्वरः। संपूज्यो वंदनीयश्च भविष्यसि न संशयः॥२१॥
मां च नारायणं वापि ब्रह्माणमपि पुत्रक। यजंति यज्ञैर्वा विप्रैरग्रे पूज्यो भविष्यसि॥२२॥
त्वामनभ्यर्च्य कल्याणं श्रौतं स्मार्तं च लौकिकम्।
कुरुते तस्य कल्याणमकल्याणं भविष्यति॥२३॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव गजानन।
संपूज्य सर्वसिद्ध्यर्थं भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः॥२४॥

के संयोग से उत्पन्न उस मूर्तिमान बालक ने नृत्य किया।।११।। विचित्र वस्त्र और भूषणों से अलंकृत शिवजी के उस लघु बालक ने माता और पिता की वन्दना की।।१२।। भगवान शिव ने अपने उस पुत्र को देखकर स्वयं उसका जातकर्म (जन्मकालीन संस्कार) किया।।१३।। जगद्गुरु शिव ने स्वयं प्रसन्नतापूर्वक दोनों हाथों से उसको उठाकर आलिंगन करके और उसके सिर को सूँघ कर आशीर्वाद दिया और कहा।।१४।। 'हे मेरे पुत्र! तुम्हारा अवतार असुरों के नाश के लिए और ब्रह्मवादी द्विजों और देवताओं के उपकार के लिए हुआ है।।१५।। यहीं स्वर्ग में स्थित होकर, जिसने पृथ्वी पर दक्षिणा रहित यज्ञ किया हो उसके धर्म में विघ्न करो।।१६।। जो कोई अन्यायपूर्वक पढ़ते-पढ़ाते और व्याख्यान आदि कर्म करते हों उनके प्राणों का हरण करो।।१७।। अपने वर्ण से पतित और अपने धर्म से रहित स्त्रियों और पुरुषों का प्राण हरण करो।।१८।। हे पुरुषोत्तम विनायक! जो स्त्री और पुरुष सदा तुम्हारी पूजा करते हों उनको अपना सायुज्य प्रदान करो।।१९।। हे बाल गणेश्वर! यहाँ और वहाँ जो युवक और वृद्ध पूज्य हों उनकी तथा अपने भक्तों की यत्नपूर्वक रक्षा करो।।२०।। (ऐसा करने पर) तीनों लोकों में सर्वदा विघ्न गणेश्वर रूप में तुम पूज्य और वन्दनीय होगे, इसमें सन्देह नहीं।।२१।। हे पुत्र मुझको, विष्णु को और ब्रह्मा को जो लोग पूजते हैं उनके द्वारा तथा यज्ञों और ब्राह्मणों द्वारा तुम सबसे आगे प्रथम पूज्य होगे।।२२।। तुम्हारी पूजा के बिना जो लोग अपने कल्याण के लिए वैदिक, स्मार्त और लौकिक कर्म करते हैं उनका कल्याण नहीं अकल्याण होगा।।२३।। हे गजानन! ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों द्वारा सब सिद्धि के लिए भक्ष्य-भोज्य तथा गन्ध-पुष्प-धूप आदि से तुम्हारी पूजा किये बिना तीनों लोकों में देवताओं और

त्वां गंधपुष्पधूपाद्यैरनभ्यर्च्य जगत्रये। देवैरपि तथान्यैश्च लब्धव्यं नास्ति कुत्रचित्॥२५॥
अभ्यर्चयंति ये लोका मानवास्तु विनायकम्। ते चार्चनीयाः शक्राद्यैर्भविष्यंति न संशयः॥२६॥
अजं हरिं च मां वापि शक्रमन्यान्सुरानपि। विघ्नैर्बाधयसि त्वां चेन्नार्चयंति फलार्थिनः॥२७॥
ससर्ज च तदा विघ्नगणं गणपतिः प्रभुः। गणैः सार्धं नमस्कृत्वाप्यतिष्ठत्तस्य चाग्रतः॥२८॥
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन्पूजयंति गणेश्वरम्। दैत्यानां धर्मविघ्नं च चकारासौ गणेश्वरः॥२९॥
एतद्वः कथितं सर्वं स्कंदाग्रजसमुद्भवम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा सुखीभवेत्॥३०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे विनायकोत्पत्तिर्नाम पंचाधिकशततमोऽध्यायः॥१०५॥

अन्य लोगों द्वारा कहीं कुछ भी प्राप्त नहीं होगा।।२४-२५।। जो लोग तुम्हारी पूजा करते हैं वे निःसन्देह सब प्राणियों, यहाँ तक कि इन्द्र तथा अन्यों द्वारा भी पूज्य होंगे।।२६।। यदि वे अपने लाभ की इच्छा से तुम्हारी पूजा नहीं करते हैं तो तुम विघ्नों से उनके कार्यों में बाधा डालो, चाहे वह विष्णु हो, ब्रह्मा हो, इन्द्र हो, देवता हो या यहाँ तक कि चाहे मैं स्वयं हूँ।।२७।। तब प्रभु गजपति ने विघ्नों के गणों को उत्पन्न किया। गणों के साथ गणेश जी ने शिव को प्रणाम किया और उनके सामने खड़े हो गये।।२८।। तब से लोग इस संसार में (गणेश्वर) गणेश की पूजा करते हैं। गणेश्वर ने दैत्यों के धर्म के कार्यों में विघ्न पैदा किया। मैंने यह स्कन्द के बड़े भाई गणेश जी की उत्पत्ति की कथा विस्तार से तुम सबको सुनाया। जो कोई पढ़े, सुने या सुनावे वह सुखी होगा।।२९-३०।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में विनायक का जन्म नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥१०५॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

शिवताण्डवकथनम्

ऋषय ऊचुः

नृत्यारंभः कथं शंभोः किमर्थं वा यथातथम्। वक्तुमर्हसि चास्माकं श्रुतः स्कंदाग्रजोद्भवः॥१॥

सूत उवाच

दारुकोऽसुरसंभूतस्तपसा लब्धविक्रमः। सूदयामास कालग्निरिव देवान्द्विजोत्तमान्॥२॥
दारुकेण तदा देवास्ताडिताः पीडिता भृशम्। ब्रह्माणं च तथेशानं कुमारं विष्णुमेव च॥३॥
यममिंद्रमनुप्राप्य स्त्रीवध्य इति चासुरः। स्त्रीरूपधारिभिः स्तुत्यैर्ब्रह्माद्यैर्युधि संस्थितैः॥४॥
बाधितास्तेन ते सर्वे ब्रह्माणं प्राप्य वै द्विजाः। विज्ञाप्य तस्मै तत्सर्वं तेन सार्धमुमापतिम्॥५॥
संप्राप्य तुष्टुवुः सर्वे पितामहपुरोगमाः। ब्रह्मा प्राप्य च देवेशं प्रणम्य बहुधानतः॥६॥
दारुणो भगवन्दारुः पूर्वं तेन विनिर्जिताः। निहत्य दारुकं दैत्यं स्त्रीवध्यं त्रातुमर्हसि॥७॥
विज्ञप्तिं ब्रह्मणः श्रुत्वा भगवान् भगनेत्रहा। देवीमुवाच देवेशो गिरिजां प्रहसन्निव॥८॥

एक सौ छठाँ अध्याय

शिव ताण्डव कथन

गण बोले

हम लोगों ने स्कन्द के बड़े भाई विनायक की उत्पत्ति के विषय में सुना। भगवान शंकर अपना ताण्डव नृत्य कैसे और क्यों प्रारम्भ किया? यह आप ज्यों-का-त्यों हम लोगों से कहें।।१।।

सूत बोले

दारुक नाम के राक्षस ने असुरों के परिवार में जन्म लिया। उसने अपनी तपस्या से महान् पराक्रम प्राप्त किया।।२।। युग के अन्त में उत्पन्न कालाग्नि के समान उसने देवों और ब्राह्मणों का वध कर डाला। तब देवता लोग दारुक से बेहद पीड़ित और ताड़ित हुये। उन्होंने ब्रह्मा, ईशान, कुमार, विष्णु, यम और इन्द्र के पास पहुँचकर शरण ली। यह जानकर कि वह असुर केवल एक स्त्री द्वारा मारा जा सकता है, एक सुन्दर स्त्री रूपधारी ब्रह्मा आदि द्वारा स्तुति किये जाने पर फिर भी उसके द्वारा वे लोग पराजित हो गये। हे ब्राह्मणों! वे लोग ब्रह्मा के पास गये और प्रत्येक बात को उनसे बताकर उनके साथ उमापति शिव के पास पहुँचे। ब्रह्मा के आगे और पीछे देवगण थे। उन्होंन शिव की स्तुति की। ब्रह्मा ने अनेक प्रकार से झुककर शिव को प्रणाम करके निवेदन किया, "हे नाथ! दारुक असुर एक भयानक व्यक्ति है। हम सब लोग उसके द्वारा पराजित हो गये हैं। वह स्त्री द्वारा बध्य है। इसलिए दारुक को मारकर आप हम लोगों की रक्षा करें"।।३-७।। ब्रह्मा की इस प्रार्थना को सुनकर, भग के नेत्रों को नष्ट करने वाले भगवान शिव ने हँसते हुये से हिमवान की कन्या पार्वती से कहा।।८।।

भवतीं प्रार्थयाम्यद्य हिताय जगतां शुभे। वधार्थं दारुकस्यास्य स्त्रीवध्यस्य वरानने॥९॥
अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोरणिः। विवेश देहे देवस्य देवेशी जन्मतत्परा॥१०॥
एकेनांशेन देवेशं प्रविष्टा देवसत्तमम्। न विवेद तदा ब्रह्मा देवाश्चेंद्रपुरोगमाः॥११॥
गिरिजां पूर्ववच्छंभोर्दृष्ट्वा पार्श्वस्थितां शुभाम्। मायया मोहितस्तस्याः सर्वज्ञोपि चतुर्मुखः॥१२॥
सा प्रविष्टा तनुं तस्य देवेदेवस्य पार्वती। कंठस्थेन विषेणास्य तनुं चक्रे तदात्मनः॥१३॥

तां च ज्ञात्वा तथाभूतां तृतीयेनेक्षेणेन वै।
ससर्ज कालीं कामारिः कालकंठीं कपर्दिनीम्॥१४॥

जाता यदा कालिमकालकंठी जाता तदानीं विपुला जयश्रीः।
देवेतराणामजयस्त्वसिद्ध्या तुष्टिर्भवान्याः परमेश्वरस्य॥१५॥
जातां तदानीं सुरसिद्धसंघा दृष्ट्वा भयाद्दुद्रुवुरग्निकल्पाम्।
कालीं गदालंकृतकालकंठीमुपेन्द्रपद्मोद्भवशक्रमुख्याः॥१६॥
तथैव जातं नयनं ललाटे सितांशुलेखा च शिरस्युदग्रा।
कंठे करालं निशितं त्रिशूलं करे करालं च विभूषणानि॥१७॥

सार्धं दिव्यांबरा देव्याः सर्वाभरणभूषिताः। सिद्धेंद्रसिद्धाश्च तथा पिशाचा जज्ञिरे पुनः॥१८॥
आज्ञया दारुकं तस्याः पार्वत्या परमेश्वरी। दानवं सूदयामास सूदयन्तं सुराधिपान्॥१९॥

हे सुन्दर मुख वाली देवी! मैं अब तीनों लोकों के कल्याण के लिए स्त्री द्वारा बध्य दारुक का बध करने के लिए तुमसे प्रार्थना करता हूँ"।।९।। उनकी बातों को सुनकर पार्वती शिव के शरीर में प्रवेश कर गईं। उन्होंने देवेश शिव से जन्म लेने की इच्छा से वैसा किया।।१०।। उन्होंने देवेश शिव के शरीर में केवल एक अंश में प्रवेश किया, लेकिन ब्रह्मा और इन्द्र तथा अन्य देवता इसको नहीं जान पाये।।११।। अपने बगल में पूर्ववत् स्थित पार्वती को देखकर, यहाँ तक कि उनकी माया से चतुर्मुख ब्रह्मा भी मोहित हो गये।।१२। देवेश शिव के शरीर में प्रवेश करके, शिव के कण्ठ में स्थित विष से अपने शरीर को उस विष से बनाया।।१३।। कामदेव के शत्रु भगवान शिव ने यह जानकर उन्होंने अपने तृतीय नेत्र से नीले कण्ठवाली और जयधारिणी काली को उत्पन्न किया।।१४।। जब काले कण्ठ वाली काली देवी पैदा हुई तो विजयश्री भी उत्पन्न हुई। तब पार्वती और शिव को असुर दारक की हार के विषय में विश्वास हो गया।।१५।। अग्नि के समान विष से भरे काले गले को और अग्नि उगलती काली को देखकर, उनकी उत्पत्ति को देखकर देवता और सिद्ध—जिनमें मुख्य विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र थे—डर के मारे भागे।।१६।। उसी प्रकार ललाट में एक नेत्र धारण करने वाली, शिर पर चन्द्ररेखा को धारण किये, गले में भयानक विष, हाथ में तीक्ष्ण भयानक त्रिशूल लिये और शरीर के अंगों में उचित स्थान पर उचित भूषण पहने हुये थीं।।१७।। देवी के साथ सिद्धों के स्वामी सिद्ध और पिशाच भी पैदा हुये जो दिव्य वस्त्र धारण किये हुये और सब आभूषणों से विभूषित थे।।१८।। पार्वती की आज्ञा से, परमेश्वरी काली देवी ने दारुक अतिशय असुर को मार डाला जो कि देवताओं के प्रमुखों की आक्रमण करके हत्या करता था।।१९।। हे श्रेष्ठ

संरंभांतिप्रसंगाद्वै तस्याः सर्वमिदं जगत्। क्रोधाग्निना च विप्रेंद्राः संबभूव तदातुरम्॥२०॥
भवोपि बालरूपेण श्मशाने प्रेतसंकुले। रुरोद मायया तस्याः क्रोधाग्निं पातुमीश्वरः॥२१॥
तं दृष्ट्वा बालमीशानं मायया तस्य मोहिता। उत्थाप्याघ्राय वक्षोजं स्तनं सा प्रददौ द्विजाः॥२२॥
स्तनजेन तदा सार्धं कोपमस्याः पपौ पुनः। क्रोधेनानेन वै बालः क्षेत्राणां रक्षकोऽभवत्॥२३॥
मूर्तयोऽष्टौ च तस्यापि क्षेत्रपालस्य धीमतः। एवं वै तेन बालेन कृता सा क्रोधमूर्च्छिता॥२४॥
कृतमस्याः प्रसादार्थं देवदेवेन तांडवम्। संध्यायां सर्वभूतेन्द्रैः प्रेतैः प्रीतेन शूलिना॥२५॥
पीत्वा नृत्तामृतं शंभोराकंठं परमेश्वरी। ननर्त सा च योगिन्यः प्रेतस्थाने यथासुखम्॥२६॥
तत्र सब्रह्मका देवाः सेंद्रोपेंद्राः समंततः। प्रणेमुस्तुष्टुवुः कालीं पुनर्देवीं च पार्वतीम्॥२७॥
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं तांडवं शूलिनः प्रभोः। योगानंदेन च विभोस्तांडवं चेति चापरे॥२८॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागे शिवतांडवकथनं नाम
षडधिकशततमोऽध्यायः॥१०६॥

ब्राह्मणों! काली के वेग और क्रोधाग्नि से सम्पूर्ण विश्व तब दुःखी हो गया। शिव ने बाल रूप धारण किया। प्रेतों से भरे हुये श्मशान में अपनी माया की शक्ति से स्वयं स्थित हुये।।२०।। तब वे पार्वती के क्रोध की अग्नि को शान्त करने के लिए स्वयं चिल्लाने लगे।।२१।। हे ब्राह्मणों! उस बालक को देखकर—जो वास्तव में ईशान थे—काली देवी स्वयं उनकी माया से मोहित हो गयीं। बालक को उठाकर चूम लिया। सिर को सूँघ लिया और अपनी छाती से लगा लिया।।२२।। बालक ने उनकी छाती के दूध के साथ काली देवी के क्रोध को भी पी लिया और इस प्रकार वह बालक उस क्षेत्र का रक्षक हो गया।।२३।। उस क्षेत्रपाल की आठ मूर्तियाँ हो गयीं। इस प्रकार उस बालक द्वारा काली का भयानक क्रोध शान्त हो गया।।२४।। उनको प्रसन्न करने के लिए देवेश त्रिशूलधारी शंकर प्रसन्न हो गये और उन्होंने अपने भूतों और प्रेतों के साथ संध्याकाल में ताण्डव नृत्य किया। परमेश्वरी ने भी शिव के नृत्य रूपी अमृत को कंठ तक पीकर उस श्मशान में योगिनियों के साथ नृत्य किया। उनके चारों ओर देवतागण थे। जिनमें ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णु थे। उन्होंने काली को प्रणाम किया और उनकी स्तुति की और पार्वती देवी की प्रार्थना की। इस प्रकार त्रिशूलधारी शिव के ताण्डव नृत्य का वर्णन संक्षेप में मैंने तुम लोगों से किया। अन्य लोग कहते हैं कि शिव का ताण्डव योग के आनन्द के कारण है।।२५-२८।।

श्रीलिंगमहापुरण के पूर्व भाग में शिव ताण्डव कथन नामक
एक सौ छठां अध्याय समाप्त॥१०६॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

उपमन्युचरितम्

ऋषय ऊचुः

पुरोपमन्युना सूत गाणपत्यं महेश्वरात्। क्षीरार्णवः कथं लब्धो वक्तुमर्हसि सांप्रतम्॥१॥

सूत उवाच

एवं कालीमुपालभ्य गते देवे त्रियंबके। उपमन्युः समभ्यर्च्य तपसा लब्धवान्फलम्॥२॥
उपमन्युरिति ख्यातो मुनिश्च द्विजसत्तमाः। कुमार इव तेजस्वी क्रीडमानो यदृच्छया॥३॥
कदाचित्क्षीरमल्पं च पीतवान्मातुलाश्रमे। ईर्ष्यया मातुलसुतो ह्यपिबत् क्षीरमुत्तमम्॥४॥
पीत्वा स्थितं यथाकामं दृष्ट्वा प्रोवाचमातरम्। मातर्मातर्महाभागे मम देहि तपस्विनि॥५॥
गव्यं क्षीरमतिस्वादु नाल्पमुष्णं नमाम्यहम्।

सूत उवाच

उपलालितैवं पुत्रेण पुत्रमालिंग्य सादरम्॥६॥
दुःखिता विललापार्ता स्मृत्वा नैर्धन्यमात्मनः।
स्मृत्वास्मृत्वा पुनः क्षीरमुपमन्युरपि द्विजाः। देहिदेहीति तामाह रोदमानो महाद्युतिः॥७॥

एक सौ सातवाँ अध्याय

उपमन्यु चरित

ऋषिगण बोले

हे सूत! महेश्वर से उपमन्यु ने गणों का प्रमुख पद कैसे प्राप्त किया और क्षीर सागर को भी उसने कैसे पाया? यह आप हम लोगों को बताएँ।।१।।

सूत बोले

हे श्रेष्ठ मुनियों! जब काली को उत्पन्न करके शिव चले गये तो उसके बाद उपमन्यु ने तपस्या द्वारा उनकी पूजा करके उनसे पूजा का फल प्राप्त किया।।२।। हे उत्तम ब्राह्मणों! उपमन्यु नाम के एक मुनि थे। वह कुमार के समान तेजस्वी थे। उन्होंने अपने मामा के आश्रम में इच्छा से खेलते हुये थोड़ा-सा दूध पिया जबकि उसके ममेरे भाई (मामा के पुत्र) ने ईर्ष्या से उत्तम दूध इच्छानुसार अधिक मात्रा में पिया। उसको इच्छानुसार खूब दूध पीते देखकर उपमन्यु ने अपनी माता से कहा। हे महाभागे! हे तपस्विनी! हे माता! मुझको सबेरे गाय का मीठा दूध दो जो गरम हो और थोड़ा न हो। मैं आप को प्रणाम करता हूँ।

सूत बोले

पुत्र द्वारा नम्रतापूर्वक इस प्रकार प्रार्थना करने पर माता ने उसको अपनी छाती से चिपटाकर आदर से प्यार किया। हे ब्राह्मणों! दूध का स्मरण करके बार-बार महातेजस्वी उस बालक ने दूध दो, दूध दो रोते हुये ऐसा कहा।

उंछवृत्त्यार्जितन्बीजान्स्वयं पिष्ट्वा च सा तदा। बीजपिष्टं तदालोड्य तोयेन कलभाषिणी॥८॥
ऐह्येहि मम पुत्रेति सामपूर्वं ततः सुतम्। आलिंग्यदाय दुःखार्ता प्रददौ कृत्रिमं पयः॥९॥
पीत्वा च कृत्रिमं क्षीरं मात्रा दत्तं द्विजोत्तमः। नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चातिविह्वलः॥१०॥
दुःखिता सा तदा प्राह संप्रेक्ष्याघ्राय मूर्धनि। संमार्ज्य नेत्रे पुत्रस्य कराभ्यां कमलायते॥११॥
तटिनी रत्नपूर्णास्ते स्वर्गपातालगोचराः। भाग्यहीना न पश्यंति भक्तिहीनाश्च ये शिवे॥१२॥
राज्यं स्वर्गं च मोक्षं च भोजनं क्षीरसंभवम्। न लभंते प्रियाण्येषां नो तुष्यति सदा भवः॥१३॥
भवप्रसादजं सर्वं नान्यदेवप्रसादजम्। अन्यदेवेषु निरता दुःखार्त्ता विभ्रमंति च॥१४॥
क्षीरं तत्र कुतोऽस्माकं महादेवो न पूजितः। पूर्वजन्मनि यद्दत्तं शिवमुद्यम्य वै सुत॥१५॥
तदेव लभ्यं नान्यत्तु विष्णुमुद्यम्य वा प्रभुम्। निशम्य वचनं मातुरुपमन्युर्महाद्युतिः॥१६॥

बालोपि मातरं प्राह प्रणिपत्य तपस्विनीम्।
त्यज शोकं महाभागे महादेवोस्ति चेत्क्वचित्॥१७॥
चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम्।

सूत उवाच

तां प्रणम्यैवमुक्त्वा स तपः कर्त्तुं प्रचक्रमे॥१८॥

तमाह माता सुशुभं कुर्वीति सुतरां सुतम्। अनुज्ञातस्तया तत्र तपस्तेपे सुदुस्तरम्॥१९॥

उसकी माता अपनी गरीबी का स्मरण करके आर्त और दुःखित होकर रोने लगी।।३-७।। मधुरभाषिणी उस माता ने—खेत में पड़े चावल के एक-एक दाने जो बीनकर लाई हुई थी—उनको पानी मिलाकर पीस करके बनावटी दूध बनाया। तब पुत्र को बुलाया। 'पुत्र! आओ! आओ। आने पर उसको वह दूध दे दिया। माता द्वारा दिये उस बनावटी दूध को उसने पीकर बेचैन हो कर माता से कहा। 'यह तो दूध नहीं हैं'।।८-१०।। यह देखकर माता ने दुःखित हो बालक के सिर को सूँघकर अपने हाथों से उसके कमल समान आयत नयनों को धोया और कहा।।११।। "स्वर्ग और पाताल लोकों के बीच से रत्नों से भरी नदी है। जो अभागे हैं। शिव की भक्ति से रहित हैं, वे उसको नहीं प्राप्त कर सकते।।१२।। ऐसे व्यक्ति राज्य, स्वर्ग, मोक्ष और दूध का आहार नहीं प्राप्त करते जब तक कि शिव सन्तुष्ट न हों। जो शिव को सदा सन्तुष्ट करते हैं उन्हीं को प्रिय वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।।१३।। शिव की कृपा से प्रत्येक वस्तु प्राप्त होती है। अन्य की कृपा से नहीं जो अन्य देवताओं के अन्तर्गत है।।१४।। हम लोग कहाँ से दूध पायेंगे? हमने महादेव की पूजा नहीं की। हे पुत्र! पूर्व जन्म में शिव को जो कुछ दिया है इस जन्म में वही पाने योग्य है। विष्णु या अन्य देवता को देकर कुछ प्राप्त नहीं हो सकेगा।" महातेजस्वी उपमन्यु ने अपनी माता की बातों को सुनकर रोते हुये भी अपनी माता को प्रणाम किया—जो कि बेहद दुःखी थी—और उससे कहा, "हे महाभागे! शोक करना छोड़ दो, यदि कहीं पर महादेव हैं तो मैं देर सवेर क्षीरसागर को प्राप्त करूँगा"।।१५-१८।। इस प्रकार उपमन्यु अपनी माता से कहकर और उसको प्रणाम करके वह तप करने के लिये तैयार हो गया। तब माता ने उससे कहा, "हे पुत्र! पूर्ण रूप से शुभ तपस्या को करो" माता से आज्ञा पाकर

हिमवत्पर्वतं प्राप्य वायुभक्षः समाहितः। तपसा तस्य विप्रस्य विधूपितमभूज्जगत्॥२०॥
प्रणम्याहुस्तु तत्सर्वे हरये देवसत्तमाः। श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान्पुरुषोत्तमः॥२१॥
किमिदंत्विति संचिन्त्य ज्ञात्वा तत्कारणं च सः।
जगाम मंदरं तूर्णं महेश्वरदिदृक्षया॥२२॥
दृष्ट्वा देवं प्रणम्यैवं प्रोवाचेदं कृतांजलिः। भगवान् ब्राह्मणः कश्चिदुपमन्युरितिश्रुतः॥२३॥
क्षीरार्थमदहत्सर्वं तपसा तं निवारय।
एतस्मिन्नंतरे देवः पिनाकी परमेश्वरः। शक्ररूपं समास्थाय गंतुं चक्रे मतिं तदा॥२४॥
अथ जगाम मुनेस्तु तपोवनं गजवरेण सितेन सदाशिवः।
सह सुरासुरसिद्धमहोरगैरमरराजतनुं स्वयमास्थितः॥२५॥
सहैव चारुह्य तदा द्विपं तं प्रगृह्य वालव्यजनं विवस्वान्।
वामेन शच्या सहितं सुरेन्द्रं करेण चान्येन सितातपत्रम्॥२६॥
रराज भगवान् सोमः शक्ररूपी सदाशिवः। सितातपत्रेण यथा चंद्रबिंबेन मंदरः॥२७॥
आस्थायैवं हि शक्रसमस्वरूपं परमेश्वरः। जगामानुग्रहं कर्त्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम्॥२८॥
तं दृष्ट्वा परमेशानं शक्ररूपधरं शिवम्। प्रणम्य शिरसा प्राह मुनिर्मुनिवराः स्वयम्॥२९॥
पावितश्चाश्रममश्चायं मम देवेश्वरः स्वयम्। प्राप्तः शक्रो जगन्नाथो भगवान्भानुना प्रभुः॥३०॥
एवमुक्त्वा स्थितं वीक्ष्य कृतांजलिपुटं द्विजम्। प्राह गंभीरया वाचा शक्ररूपधरो हरः॥३१॥

उसने कठिन तपस्या की।।१९।। वह हिमवान पर्वत पर गया। उसने एकाग्रचित्त होकर वायु मात्र भक्षण करके तपस्या की। उसकी तपस्या से जगत् हिल गया।।२०।। उत्तम देवताओं ने विष्णु को प्रणाम किया और उनसे प्रत्येक बात को बताया। उनकी बातों को सुनकर भगवान विष्णु ने सोचा। "यह क्या है?" गम्भीर चिन्तन के बाद उसका कारण जानकर महादेव का दर्शन करने की इच्छा से जल्दी मंदर पर्वत को गये। विष्णु ने उनके सम्मान में झुककर प्रणाम किया। "हे भगवन्! किसी उपमन्यु नामक प्रसिद्ध ब्राह्मण ने अपने तपोबल से दूध के लिए सबको जला दिया। उसको रोको।" उनकी प्रार्थना सुनकर पिनाकपाणि भगवान शिव ने इन्द्र के वेष में उपमन्यु के पास जाने का संकल्प किया।।२१-२४।। इन्द्र का वेष धारण कर अमरों के देवता सफेद हाथी पर चढ़कर उपमन्यु के तपोवन पहुँचे। देवतागण, असुरगण, सिद्ध और नांगगण उनके साथ थे।।२५।। शची के साथ इन्द्र हाथी पर सवार थे। सूर्य अपने बायें हाथ में पंखा लिये हुये थे। दूसरे हाथ में सफेद छत्र (छाता) लिये हुये थे।।२६।। इन्द्र वेषधारी बलवान सदाशिव सफेद छत्र के साथ ऐसे लग रहे थे जैसे (शची के रूप में) उमा सहित साक्षात इन्द्र हो और मन्दर पर्वत सफेद छत्र से चन्द्र बिंब के समान लग रहा था।।२७।। इस प्रकार इन्द्र का रूप धारण कर उपमन्यु की कुटी के पास आशीर्वाद देने (उस पर अनुग्रह) करने के लिये गये।।२८।। "आज मेरी कुटी पवित्र हो गयी क्योंकि विश्व के और देवताओं के स्वामी स्वयं इन्द्र देवों के साथ यहाँ पर पधारे हुये हैं।" उसने उनको सिर झुकाकर प्रणाम किया।।२९-३०।। उस ब्राह्मण बालक को ऐसा कहते हुए देखकर सम्मान में हाथ जोड़े एक बगल खड़े हुए इन्द्र रूपधारी शिव ने गम्भीर वाणी से उपमन्यु से कहा।।३१।।

तुष्टोस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत। ददामि चेप्सितान्सर्वान्धौम्याग्रज महामते॥३२॥
एवमुक्तस्तदा तेन शक्रेण मुनिसत्तमः। वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृतांजलिः॥३३॥
ततो निशम्य वचनं मुनेः कुपितवत्प्रभुः। प्राह सव्यग्रमीशानः शक्ररूपधरः स्वयम्॥३४॥
मां न जानासि देवर्षे देवराजानमीश्वरम्। त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम्॥३५॥
मद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा। ददामि सर्वं भद्रं ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम्॥३६॥
ततः शक्रस्य वचनं श्रुत्वा श्रोत्रविदारणम्। उपमन्युरिदं प्राह जपन्पंचाक्षरं शुभम्॥३७॥
मन्ये शक्रस्य रूपेण नूनमत्रागतः स्वयम्। कर्त्तुं दैत्याधमः कश्चिद्धर्मविघ्नं च नान्यथा॥३८॥
त्वयैव कथितं सर्वं भवनिंदारतेन वै। प्रसंगाद्देवदेवस्य निर्गुणत्वं महात्मनः॥३९॥
बहुनात्र किमुक्तेन मयाद्यानुमितं महत्। भवांतरकृतं पापं श्रुता निंदा भवस्य तु॥४०॥
श्रुत्वा निंदां भवस्याथ तत्क्षणादेव संत्यजेत्। स्वदेहं तं निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति॥४१॥
यो वाचोत्पाटयेज्जिह्वां शिवनिंदारतस्य तु। त्रिः सप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति॥४२॥
आस्तां तावन्ममेच्छायाः क्षीरं प्रति सुराधमम्। निहत्य त्वां शिवास्त्रेव त्यजाम्येतत्कलेवरम्॥४३॥
पुरा मात्रा तु कथितं तदथ्यमेव न संशयः। पूर्वजन्मनि चास्माभिरपूजित इति प्रभुः॥४४॥

'हे सुव्रत! हे धौम्य के ज्येष्ठ भ्राता! मैं इन्द्र हूँ और त्रिलोक का स्वामी हूँ और सब देवताओं द्वारा नमस्कृत हूँ। तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ। मुझसे माँगो जो तुम्हारी इच्छा हो। मैं तुमको सब इच्छित पदार्थों को दूँगा''।।३२।। इन्द्र के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उस बुद्धिमान मुनि ने सम्मान में हाथ जोड़कर कहा, ''मैं शिव की भक्ति माँगता हूँ (शिव की भक्ति का वरण करता हूँ)''।।३३।। मुनि की इस बात को सुनकर इन्द्र वेषधारी शिव व्यग्र होकर जैसे क्रुद्ध हो गये हों, उपमन्यु से कहा!।।३४।। ''हे देवर्षि! तुम मुझको नहीं जानते हो। मैं देवराज इन्द्र हूँ। मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ। मैं सब देवों से नमस्कृत हूँ।।३५।। हे ब्राह्मण मुनि! तुम मेरे भक्त बनो। सदा मेरी पूजा करो। मैं सब कुछ तुमको दूँगा। तुम्हारा कल्याण हों। निर्गुण रुद्र को छोड़ो''।।३६।। कानों को दुःख देने वाले इन्द्र के इन शब्दों को सुनकर शुभ पंचाक्षर मन्त्र को जपते हुए उपमन्यु ने कहा! ''ॐ नमः शिवाय।।३७।। मैं सोचता हूँ इन्द्र के वेष में कोई अधम दैत्य स्वयं धर्म में विघ्न करने यहाँ आया है। यह अन्यथा नहीं है।।३८।। शिव की निंदा करने में तुमने प्रत्येक गुण का वर्णन किया। शिव की निंदा में रत होकर तुमने सब-कुछ कह दिया। इसी प्रसंग में तुमने देवताओं के देवता शिव को निर्गुण भी कहा।।३९।। बहुत कहने से क्या लाभ है। मैं सोचता हूँ कि मैंने अपने पूर्व जन्म में कोई बड़ा पाप किया था जिसके लिए मैं शिव की निंदा सुनने के लिए बाध्य हुआ हूँ।।४०।। शिव की निंदा सुनकर उसको उसी क्षण मार दिया जाना चाहिये और अपने शरीर को भी तुरन्त मार देने पर वह व्यक्ति शिव लोक को जाता है।।४१।। जो व्यक्ति मौखिक रूप से शिव की निंदा में लगा है उसकी जीभ को उखाड़ लेना चाहिये।।४२।। उसके परिवार की इक्कीस पीढ़ियाँ और वह शिव लोक को जाता है। दूध के लिए अकेली मेरी इच्छा दूर रहे, शिव के अस्त्र द्वारा मैं तुम्हारा वध करके अपने शरीर का त्याग कर दूँगा।।४३।। मेरी माता ने मुझसे जो कहा था, निःसंदेह वह सत्य था। हम लोगों द्वारा

एवमुक्त्वा तु तं देवमुपमन्युरभीतवत्। शक्रं चक्रे मतिं हंतुमथर्वास्त्रेण मंत्रवित्॥४५॥
भस्माधारान्महातेजा भस्ममुष्टिं प्रगृह्य च। अथर्वास्त्रं ततस्तस्मै ससर्ज च ननाद च॥४६॥
दग्धं स्वदेहमाग्नेयीं ध्यात्वा वै धारणां तदा। अतिष्ठच्च महातेजाः शुष्केंधनमिवाव्ययः॥४७॥
एवं व्यवसिते विप्रे भगवान्भगनेत्रहा। वारयामास सौम्येन धारणां तस्य योगिनः॥४८॥
अर्थर्वास्त्रं तदा तस्य संहृतं चंद्रिकेण तु। कालाग्निसदृशं चेदं नियोगान्नंदिनस्तथा॥४९॥
स्वरूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः। दर्शयामास विप्राय बालेंदुकृतशेखरम्॥५०॥
क्षीरधारासहस्त्रं च क्षीरोदार्णवमेव च। दध्यादेरर्णवं चैव घृतोदार्णवमेव च॥५१॥
फलार्णवं च बालस्य भक्ष्यभोज्यार्णवं तथा। अपूपगिरयश्चैव तथातिष्ठन् समंततः॥५२॥
उपमन्युमुवाच सस्मितो भगवान्बंधुजनैः समावृतम्।
गिरिजामवलोक्य सस्मितां सघृणं प्रेक्ष्य तु तं तदा घृणी॥५३॥
भुंक्ष्य भोगान्यथाकामं बांधवैः पश्य वत्स मे। उपमन्यो महाभाग तवांबैषा हि पार्वती॥५४॥
मया पुत्री कृतोस्यद्य दत्तः क्षीरोदधिस्तथा। मधुनश्चार्णवश्चैव दध्नश्चार्णव एव च॥५५॥
आज्योदनार्णवश्चैव फललेह्यार्णवस्तथा। अपूपगिरयश्चैव भक्ष्यभोज्यार्णवः पुनः॥५६॥
पिता तव महादेवः पिता वै जगतां मुने। माता तव महाभागा जगन्माता न संशयः॥५७॥

पूर्वजन्म में शिव पूजित नहीं हुये थे"।।४४।। निडरतापूर्वक ऐसा कहने के बाद मन्त्रों के ज्ञाता उपमन्यु ने अथर्व अस्त्र से इन्द्र को मार देने का संकल्प किया।।४५।। महा तेजस्वी उपमन्यु ने भस्माधार से एक मुट्ठी भस्म लिया। तब अर्थव अस्त्र को इन्द्र के प्रति फेंक दिया और गरजा।।४६।। महा तेजस्वी उपमन्यु ने भगवान शिव की अव्यय आत्मा का ध्यान किया। अग्नि की धारणा को ध्यान करके सूखे ईंधन की तरह अपने शरीर को जलाने के लिए तैयार हो गया।।४७।। उस ब्राह्मण बालक के ऐसा प्रयत्न करने पर भग के नेत्रों के नाशक शिव ने सोम के अस्त्र द्वारा उसको रोका।।।४८।। तब नंदी के आदेश से चन्द्रक अस्त्र ने उस कालाग्नि के समान अथर्व अस्त्र को रोक लिया।।४९।। तब भगवान परमेश्वर शिव ने ब्राह्मण को अपना बालचन्द्रधारी स्वरूप को स्वयमेव दिखलाया।।५०।। बालक उपमन्यु के चारों ओर हजारों दूध की धाराएँ, क्षीर सागर, दधि सागर, धृत सागर, फल सागर और खाद्य योग्य विभिन्न सागर और भक्ष्य और भोज्य वस्तुओं का सागर, मालपुओं का पहाड़ चारों ओर दिखायी दिया।।५१-५२।। भगवान शंकर ने मुस्कराती उमा को देखा। तब सहानुभूतिपूर्वक उपमन्यु की ओर देखा जो अपने बन्धुजनो से घिरा हुआ था। मुस्कुराती हुई गिरिजा और कृपापूर्वक उसको देखकर शिव ने कहा।।५३।। "देखो, हे प्रिय उपमन्यु! अपने बन्धु जनों के साथ जैसा तुम चाहो सब का उपभोग करो। हे महाभाग! उपमन्यु ये पार्वती तुम्हारी माता हैं।।५४।। अब तुम मेरे गोद लिये हुये पुत्र अर्थात् दत्तक पुत्र हो। इसलिये क्षीर सागर, मधुसागर, दधि सागर, घी में पका हुआ चावल (आज्योदन) सागर, फल सागर, लेह्य सागर, तथा अपूपों के पहाड़ और भक्ष्य भोज्य सामग्री का सागर तुमको दे दिया।।५५-५६।। हे मुनि! तीनों लोकों के पिता महादेव तुम्हारे पिता हैं और जगतमाता महाभागा पार्वती तुम्हारी माता हैं। इसमें सन्देह

अमरत्वं मया दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम्। वरान्वरय दास्यामि नात्र कार्या विचारणा॥५८॥
एवमुक्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम्। आघ्राय मूर्धनि विभुर्ददौ देव्यास्तदा भव॥५९॥
देवी तनयमालोक्य ददौ तस्मै गिरीन्द्रजा। योगैश्वर्यं तदा तुष्टा ब्रह्मविद्यां द्विजोत्तमाः॥६०॥
सोपि लब्ध्वा वरं तस्याः कुमारत्वं च सर्वदा। तुष्टाव च महादेवं हर्षगद्‌गदया गिरा॥६१॥
वरयामास च तदा वरेण्यं विरजेक्षणम्। कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रणिपत्य पुनः पुनः॥६२॥
प्रसीद देवदेवेश त्वयि चाव्यभिचारिणी। श्रद्धा चैव महादेव सान्निध्यं चैव सर्वदा॥६३॥
एवमुक्तस्तदा तेन प्रहसन्निव शंकरः। दत्वेप्सितं हि विप्राय तत्रैवांतरधीयत॥६४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्व भागे उपमन्युचरितं नाम
सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥१०७॥

नहीं।।५७।। मैंने तुमको अमरत्व प्रदान कर दिया और गणों का शाश्वत स्थायी अधिपति बना दिया। अब अन्य वरों को चुनो। इस विषय में हिचक न करो। मैं तुम्हें वे सब दूँगा जो तुम माँगोगे''।।५८।। इस प्रकार कहकर महादेव ने अपने हाथों से उसको उठाया। उसके सिर को सूँघा और उसको उमा को सौंप दिया।।५९।। हे उत्तम ब्राह्मणों! तब अपने पुत्र को देखकर देवी प्रसन्न हुईं। पार्वती ने उसको योगैश्र्य (योग का ऐश्वर्य) और ब्रह्म विद्या दे दी।।६०।। उससे वरदान पाकर और शाश्वत कुमारत्व पाकर हर्ष से गद्‌गद वाणी द्वारा उसने महादेव की स्तुति की।।६१।। शिव के सम्मान में हाथ जोड़कर उसने बार-बार प्रणाम किया। तब उसने श्रेष्ठ रजो गुण से रहित नेत्रों का वरदान माँगा।।६२।। ''हे देवताओं के स्वामी! आप में मेरी स्थायी श्रद्धा रहे और सदा आपका सानिध्य प्राप्त हों।'' उपमन्यु के ऐसा कहने पर भगवान शंकर हँसते हुए उसको अभीष्ट वरदान देकर वहीं पर अन्तर्धान हो गये।।६३-६४।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में उपमन्यु चरित नामक
एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त॥१०७॥

अष्टोत्तरशततमोऽध्यायः

पाशुपतव्रतमाहात्म्यम्

ऋषभ ऊचुः

दृष्टोऽसो वायुदेवेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा। धौम्याग्रजस्ततो लब्धं दिव्यं पाशुपतं व्रतम्॥१॥
कथं लब्धं तदा ज्ञानं तस्मात्कृष्णेन धीमता। वक्तुर्महसि तां सूत कथां पातकनाशिनीम्॥२॥

सूत उवाच

स्वेच्छया ह्यवतीर्णोपि वासुदेवः सनातनः। निंदयन्नेव मानुष्यं देहशुद्धिं चकार सः॥३॥
पुत्रार्थं भगवांस्तत्र तपस्तप्तुं जगाम च। आश्रमं चोपमन्योर्वै दृष्टवांस्तत्र तं मुनिम्॥४॥
नमश्चकार तं दृष्ट्वा धौम्याग्रजमहो द्विजाः। बहुमानेन वै कृष्णस्त्रिः कृत्वा वै प्रदक्षिणम्॥५॥
तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः। नष्टमेव मलं सर्वं कायजं कर्म्मजं तथा॥६॥
भस्मनोद्धूलनं कृत्वा उपमन्युर्महाद्युतिः। तमग्निरिति विप्रेंद्रा वायुरित्यादिभिः क्रमात्॥७॥
दिव्यं पाशुपतं ज्ञानं प्रददौ प्रीतमानसः।
मुनेः प्रसादान्मान्योऽसौ कृष्णः पाशुपते द्विजाः॥८॥
तपसा त्वेकवर्षान्ते दृष्ट्वा देवं महेश्वरम्। सांबं सगणमव्यग्रं लब्धवान्पुत्रमात्मनः॥९॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

पाशुपतव्रत महात्म्य

ऋषिगण बोले

सरल क्रिया-कलाप वाले वसुदेव के पुत्र कृष्ण ने धौम्य के ज्येष्ठ भ्राता को देखा। उससे दिव्य पाशुपत व्रत को प्राप्त किया।।१।। हे सूत! बुद्धिमान कृष्ण ने उससे तब ज्ञान कैसे प्राप्त किया? पापों को नाश करने वाली इस कथा को आप हम लोगों को बताएँ।।२।।

सूत बोले

सनातन वसुदेव के पुत्र श्री कृष्ण ने यद्यपि अपनी इच्छा से अवतार लिया था। फिर भी उन्होंने मानव रूप की निन्दा करते हुए ही देह की शुद्धि, के लिए संस्कारों को किया था।।३।। भगवान ने पुत्र की प्राप्ति के लिए तपस्या की। वह उपमन्यु के आश्रम में गये। वहाँ उन्होंने उस मुनि को देखा।।४।। हे ब्राह्मणों! धौम्य के ज्येष्ठ भ्राता उपमन्यु को देखकर कृष्ण ने बहुत आदरपूर्वक उनकी तीन प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम किया।।५।। उपमन्यु मुनि के दर्शन से ही बुद्धिमान श्री कृष्ण के शरीर से और कर्म से उत्पन्न सब मल (अशुद्धता) नष्ट हो गया।।६।। हे ब्राह्मणों! अग्नि और वायु आदि क्रमशः से प्रारम्भ (वाले) मन्त्रों को उच्चारण करते हुए प्रसन्न मन से दिव्य पाशुपत ज्ञान दिया। उसने उनके ऊपर भस्म छिड़का। उसने प्रसन्न मन से पाशुपत सम्बन्धी सम्पूर्ण दिव्य ज्ञान दिया। हे ब्राह्मणों! मुनि की कृपा से कृष्ण दिव्य पाशुपत व्रत में मान्य हो गये।।७-८।। एक साल के अन्त में अपनी तपस्या

तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनयः संशितव्रताः। दिव्याः पाशुपताः सर्वे तस्थुः संवृत्य सर्वदा॥१०॥
अन्यं च कथयिष्यामि मुक्त्यर्थं प्राणिनां सदा। सौवर्णीं मेखलां कृत्वा आधारं दंडधारणम्॥११॥
सौवर्णं पिंडिकं चापि व्यजनं दंडमेव च। नरैः स्त्रियाथ वा कार्यं मषीभाजनलेखनीम्॥१२॥
क्षुराकर्त्तरिका चापि अथ पात्रमथापि वा। पाशुपताय दातव्यं भस्मोद्धूलितविग्रहैः॥१३॥
सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं वाथ निवेदयेत्। आत्मवित्तानुसारेण योगिनं पूजयेद्बुधः॥१४॥
ते सर्वे पापानिर्मुक्ताः समस्तकुलसंयुताः। यांति रुद्रपदं दिव्यं नात्र कार्या विचारणा॥१५॥
तस्मादनेन दानेन गृहस्थो मुच्यते भवात्। योगिनां संप्रदानेन शिवः क्षिप्रं प्रसीददति॥१६॥
राज्यं पुत्रं धनं भव्यमश्वं यानमथापि वा। सर्वस्वं वापि दातव्यं यदीच्छेन्मोक्षमुत्तमम्॥१७॥
अध्रुवेण शरीरेण ध्रुवं साध्यं प्रयत्नतः। भव्यं पाशुपतं नित्यं संसारार्णवतारकम्॥१८॥
एतद्वः कथितं सर्वं संक्षेपान्न च संशयः। यः पठेच्छृणुयाद्वापि विष्णुलोकं स गच्छति॥१९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे पूर्वभागेऽष्टोत्तरशततमोऽध्यायः॥१०८॥

समाप्तश्चायं पूर्वभागः।

श्रीशंकरार्पणमस्तु॥

के द्वारा उन्होंने भगवान महेश्वर को देखा। अंबा (पार्वती) और गणों के साथ भगवान शिव को देखकर उनको साम्ब नामक शान्त पुत्र प्राप्त हुआ।।९।। तब से पवित्र पाशुपत व्रत की और पाशुपत व्रत वाले सब दिव्य मुनि और पशुपति के सब भक्त कृष्ण के चारों ओर एकत्र होकर खड़े हो गये।।१०।। मैं एक-दूसरे पवित्र व्रत को कहूँगा जो सब प्राणियों को शाश्वत मुक्ति देता है। भक्त को एक सोने की मेखला (करधनी) बनवानी चाहिये और उसको धारण करने का एक आधार दण्ड भी हो। एक सोने का छल्ले के आकार का और एक हैंडिल के साथ छोटा पंखा बनवाये। तब स्त्री या पुरुष एक दवात और कलम बनवाये। वह एक पात्र और चाकू या कैंची इकट्ठा करे। भक्त अपने शरीर पर भस्म छिड़के और ये सब वस्तुएँ किसी पशुपति के भक्त को अपने सामर्थ्य के अनुसार सोने चाँदी या ताँबे का बर्तन दान करे। तब वह योगियों की पूजा करे।।११-१४।। ये सब व्यक्ति अपने समस्त कुल सहित पापों से मुक्त होकर दिव्य रुद्र पद को प्राप्त हो जाते हैं। इस विषय में कोई सन्देह नहीं हैं।।१५।। अतः इस दान से गृहस्थ सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है। अगर कोई योगियों को दान देता है तो शिव तुरन्त प्रसन्न हो जाते हैं।।१६।। अगर कोई व्यक्ति मुक्ति चाहता है तो उसको वह राज्य, पुत्र, धन, घोड़ा, वाहन या अपना सर्वस्व दान कर देना चाहिये।।१७।। अपने अनित्य और नश्वर शरीर से प्रयत्नपूर्वक निश्चित मुक्ति को प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये। यह भव्य और नित्य पाशुपत व्रत संसार रूपी सागर को पार कराने वाला है।।१८।। संक्षेप में मैंने यह सब तुम लोगों के सामने कह दिया। जो कि इसको पढ़ता या सुनता है। वह विष्णु लोक में जाता है।।१९।।

श्रीलिंगमहापुराण के पूर्व भाग में पाशुपत व्रत माहात्म्य नामक
एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त॥१०८॥

यह पूर्व भाग समाप्त

श्री शंकर को अर्पित हो।

श्रीलिङ्गमहापुराणम्

उत्तरभागः

श्री गणेशाय नमः।

—⁂—

प्रथमोऽध्यायः

कौशिकवृत्तकथनम्

ऋषय ऊचुः

कृष्णस्तुष्यति केनेह सर्वदेवेश्वरेश्वरः। वक्तुमर्हसि चास्माकं सूत सर्वार्थविद्भवान्॥१॥

सूत उवाच

पुरा पृष्टो महातेजा मार्कंडेयो महामुनिः। अंबरीषेण विप्रेंद्रास्तद्वदामि यथातथम्॥२॥

अंबरीष उवाच

मुने! समस्तधर्माणां पारगस्त्वं महामते। मार्कंडेय पुराणोऽसि पुराणार्थविशारदः॥३॥

पहिला अध्याय

कौशिकवृत्त कथन

ऋषिगण बोले

सूत जी! देवताओं के देव श्रीकृष्ण कैसे सन्तुष्ट होते हैं? यह आप हम सब को बतावें क्योंकि आप सब विषयों के अर्थ के ज्ञाता हैं।।१।।

सूत बोले

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! अम्बरीष ने महान तेजस्वी महामुनि मार्कण्डेय से यही प्रश्न पूछा था। उसका जो उत्तर मार्कण्डेय जी ने दिया वह मैं ज्यों-का-त्यों तुम सब से कहता हूँ।।२।।

अम्बरीष बोले

हे महर्षि मार्कण्डेय! आप प्राचीन ऋषि हैं। आप पुराणों के अर्थ के ज्ञाता हैं।।३।। हे महाबुद्धिमान सुव्रत! पवित्र दिव्य धर्मों में कौन-सा धर्म भक्तों के लिए सबसे उत्तम है?

नारायणनां दिव्यानां धर्माणां श्रेष्ठमुत्तमम्। तत्किं ब्रूहि महाप्राज्ञ भक्तानामिह सुव्रत!॥४॥

सूत उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा समुत्थाय कृतांजलिः। स्मरन्नारायणं देवं कृष्णमच्युतमव्ययम्॥५॥

मार्कंडेय उवाच

श्रृणु भूप यथान्यायं पुण्यं नारायणात्मकम्। स्मरणं पूजनं चैव प्रणामो भक्तिपूर्वकम्॥६॥
प्रत्येकमश्वमेधस्य यज्ञस्य सममुच्यते। य एकः पुरुषः श्रेष्ठः परमात्मा जनार्दनः॥७॥
यस्माद्ब्रह्मा ततः सर्वं समाश्रित्यैव मुच्यते। धर्ममेकं प्रवक्ष्यामि यद्दृष्टं विदितं मया॥८॥
पुरा त्रेतायुगे कश्चित् कौशिको नाम वै द्विजः। वासुदेवपरो नित्यं सामगानरतः सदा॥९॥
भोजनासनशय्यासु सदा तद्गतमानसः। उदारचरितं विष्णोर्गायमानः पुनः पुनः॥१०॥
विष्णोः स्थलं समासाद्य हरेः क्षेत्रमनुत्तमम्। अगायत हरिं तत्र तालवर्णलयान्वितम्॥११॥
मूर्च्छनास्वरयोगेन श्रुतिभेदेन भेदितम्। भक्तियोगं समापन्नो भिक्षामात्रं हि तत्र वै॥१२॥
तत्रैनं गायमानं च दृष्ट्वा कश्चिद्द्विजस्तदा। पद्माख्य इति विख्यातस्तस्मै चान्नं ददौ तदा॥१३॥
सकुटुंबो महातेजा ह्युष्णमन्नं हि तत्र वै। कौशिको हि तदा हृष्टो गायन्नास्ते हरिं प्रभुम्॥१४॥
श्रृण्वन्नास्ते स पद्माख्यः काले काले विनिर्गतः। कालयोगेन संप्राप्ताः शिष्या वै कौशिकस्य च॥१५॥
सप्त राजन्यवैश्यानां विप्राणां कुलसंभवाः। ज्ञानविद्याधिकाः शुद्धा वासुदेवपरायणाः॥१६॥

सूत बोले

उनकी यह बात सुनकर मार्कण्डेय ऋषि उठकर खड़े हो गये। उन्होंने हाथ जोड़कर अच्युत नारायण श्री कृष्ण का स्मरण कहते हुए कहा।।४-५।।

मार्कण्डेय बोले

हे राजन्! भक्तिपूर्वक नारायण का स्मरण, भजन और प्रशंसा करना पुण्यात्मक है। यह प्रत्येक अश्वमेघ यज्ञ के समान फलदायक है। श्री कृष्ण जी परमात्मा पुरुषोत्तम हैं। उन्होंने ही ब्रह्मा और सब प्राणियों को उत्पन्न किया है। एक ही धर्म को—जो मैंने देखा और जाना है—वह मैं तुम सब से कहता हूँ।।६-८।। प्राचीन काल में कौशिक नाम का एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। वह सामवेद का ज्ञाता था और श्रीकृष्ण का भक्त था। वह उठते-बैठते, खाते-पीते और विस्तर पर लेटे हुए भी नारायण का नाम जपता रहता था। वह नारायण श्रीकृष्ण के उदार चरित्र को बार-बार जपता था। विष्णु के क्षेत्र में जाकर ताल, वर्ण, लय, मूर्छना एवं स्वर के भेदों के योग से भक्तिपूर्वक भगवान का भजन गाता था। वह भिक्षा माँगकर अपना गुज़ारा करता था।।९-१२।। उसको इस प्रकार गाते हुये देख पद्माक्ष नामक एक व्यक्ति ने उसको भोजन दिया। भोजन करके प्रसन्न आत्मा कौशिक भगवान विष्णु के भजन गाता रहा।।१३-१४।। पद्माक्ष भी उसको सुनता रहता था। कभी-कभी वह घर से बाहर जाकर उसके भजन सुना करता था। कुछ काल बीतने पर कौशिक के सात शिष्य वहाँ आये।।१५-१६।। वे ब्राह्मणों, राजाओं

तेषामपितथान्नाद्यं पद्माक्षः प्रददौ स्वयम्। शिष्यैश्च सहितो नित्यं कौशिका हृष्टमानसः॥१७॥
विष्णुस्थले हरिं तत्र आस्ते गायन्यथाविधि। तत्रैव मालवो नाम वैश्यो विष्णुपरायणः॥१८॥
दीपमालां हरेर्नित्यं करोति प्रीतिमानसः। मालवी नाम भार्या च तस्य नित्यं पतिव्रता॥१९॥
गोमयेन समालिप्य हरेः क्षेत्रं समंततः। भर्त्रा सहास्ते सुप्रीतो शृण्वती गानमुत्तमम्॥२०॥
कुशस्थलात्समापन्ना ब्राह्मणाः शंसितव्रताः। पंचाशद्वै समापन्ना हरेर्गानार्थमुत्तमाः॥२१॥
साधयंतो हि कार्याणि कौशिकस्य महात्मनः। ज्ञानविद्यार्थतत्त्वज्ञाः शृण्वंतो ह्यवसंस्तु ते॥२२॥
ख्यातमासीत्तदा तस्य गानं वै कौशिकस्य तत्। श्रुत्वा राजा समभ्येत्य कलिंगो वाक्यमब्रवीत्॥२३॥
कौशिकाद्य गणैः सार्धं गायस्वेह च मां पुनः। शृणुध्वं च तथा यूयं कुशस्थलजना अपि॥२४॥
तच्छ्रुत्वा कौशिकः प्राह राजानं सांत्वया गिरा। न जिह्वा मे महाराजन् वाणी च मम सर्वदा॥२५॥
हरेरन्यमपींद्रं वा स्तौति नैव च वक्ष्यति। एवमुक्ते तु तच्छिष्यो वासिष्ठो गौतमो हरिः॥२६॥
सारस्वतस्तथा चित्रश्चित्रमाल्यस्तथा शिशुः। ऊचुस्ते पार्थिवं तद्वद्यथा प्राह च कौशिकः॥२७॥
श्रावकास्ते तथा प्रोचुः पार्थिवं विष्णुतत्पराः। श्रोत्राणीमानि शृण्वंति हरेरन्यं न पार्थिव॥२८॥
गानकीर्त्तिं वयं तस्य शृणुमोन्यां न च स्तुतिम्। तच्छ्रुत्वा पार्थिवो रुष्टो गायतामिति चाब्रवीत्॥२९॥
स्वभृत्यान्ब्राह्मणा ह्येते कीर्तिं शृण्वंति मे यथा। न शृण्वंति कथं तस्मात् गायमाने समंततः॥३०॥

और वैश्यों के परिवार के थे। वे सब शुद्ध और गानविद्या में दक्ष और भगवान के भक्त थे। पद्माक्ष ने उनको भी भोजन दिया। अपने शिष्यों सहित कौशिक भी बहुत प्रसन्न थे। विष्णु के एक पवित्र क्षेत्र में कौशिक ने विष्णु की प्रशंसा में भजन गाये और वहीं ठहर गये। वहाँ एक मालव नामक वैश्य था। वह विष्णु भक्त था। प्रसन्नतापूर्वक वह दीपों की माला उनको निरन्तर भेंट करता था। आरती करवाता था। उसकी पतिव्रता पत्नी मालवी उस विष्णु क्षेत्र को गाय के गोबर से लीपकर पति के साथ भजन सुना करती थी।।१७-२०।। वहाँ पर कुशस्थल नामक स्थान से पचास पवित्र धार्मिक ब्राह्मण विष्णु की प्रशंसा के भजनों को सुनने के लिए आये।।२१।। वे बुद्धिमान और सुशिक्षित थे। वे ज्ञानविद्या के अर्थ के ज्ञाता थे। वे महात्मा कौशिक के मिशन के प्रशंसक और प्रचारक थे। वे वहीं आकर रहने लगे।।२२।। कौशिक के मधुर भजन की चारों ओर प्रसिद्धि हो गई। उसको सुनकर कलिंग नामक उस देश का राजा वहाँ आया।।२३।। उसने कहा, 'हे कौशिक! अपने शिष्यों के साथ तुम मेरी प्रशंसा में गीत गाओ। उसको कुशस्थल से आये लोग भी सुनें।' राजा की इस आज्ञा को सुनकर कौशिक ने शान्तिपूर्वक कहा 'हे महाराज!' मेरी जीभ और वाणी विष्णु के अतिरिक्त अन्य किसी की प्रशंसा यहाँ तक कि इन्द्र की भी प्रशंसा में नहीं गाती।' कौशिक के इस प्रकार कहने पर उनके शिष्य वाशिष्ठ, गौतम, हरि, सारस्वत और चित्र, चित्रमाल्य तथा शिशु ने भी वैसा ही कहा।।२४।। तथा कुशस्थल से आये हुए विष्णु के भक्तों ने भी उसी प्रकार राजा से कहा, "हे राजा! हम लोगों के कान विष्णु के अतिरिक्त किसी की प्रशंसा में कुछ नहीं सुनने की इच्छा करते हैं। हम उन्हीं की प्रशंसा के भजनों को सुनेंगे और किसी अन्य की स्तुति नहीं सुनेंगे।" इस बात को सुनकर राजा नाराज हो गया और अपने नौकरों से कहा, 'गाओ, जिससे ये ब्राह्मण मेरी कीर्ति को सुनें जबकि मेरी कीर्त्ति

एव मुक्तास्तदा भृत्या जगुः पार्थिवमुत्तमम्। निरुद्धमार्गा विप्रास्ते गाने वृत्ते तु दुःखिताः॥३१॥
काष्ठशंकुभिरन्योन्यं श्रोत्राणि विदधु द्विजाः। कौशिकाद्याश्च तां ज्ञात्वा मनोवृत्तिं नृपस्य वै॥३२॥
प्रसह्यस्मांस्तु गायेत स्वगानेसो नृपः स्थितः। इति विप्राःसुनियता जिह्वाग्रं चिच्छिदुः करेः॥३३॥
ततो राजा सुसंक्रुद्धः स्वदेशात्तान्यवासयत्। आदाय सर्वं वित्तं च ततस्ते जग्मुरुत्तराम्॥३४॥
दिशमासाद्य कालेन कालधर्मेण योजिताः। तानागतान्यमो दृष्ट्वा किं कर्तव्यमिति स्म ह॥३५॥
चेष्टितं तत्क्षणे राजन् ब्रह्मा प्राह सुराधिपान्। कौशिकादीन् द्विजानद्य वासयध्वं यथासुखम्॥३६॥
गानयोगेन ये नित्यं पूजयंति जनार्दनम्। तानानयत भद्रं वो यदि देवत्वमिच्छथ॥३७॥
इत्युक्ता लोकपालास्ते कौशिकेति पुनःपुनः। मालवेति तथा केचित् पद्माक्षेति तथा परे॥३८॥
क्रोशमानाः समभ्येत्य तानादाय विहायसा। ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं मुहूर्तेनैव ते सुराः॥३९॥
कौशिकादींस्ततो दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः। प्रत्युद्गम्य यथान्यायं स्वागतेनाभ्यपूजयत्॥४०॥
ततः कोलाहलमभूदतिगौरवमुल्बणम्। ब्रह्मणा चरितं दृष्ट्वा देवानां नृपसत्तम॥४१॥
हिरण्यगर्भो भगवांस्तान्निवार्य सुरोत्तमान्। कौशिकादीन्समादाय मुनीन् देवैः समावृतः॥४२॥

चारों ओर गायी जाती है। तो ये लोग उसको क्यों नहीं सुनेंगे'।।२५-३०।। यह आदेश सुनकर नौकरों ने राजा के विषय में उत्तम प्रशंसात्मक गीत गाये। राजा की स्तुति को न सुनते हुए कौशिक और अन्य ब्राह्मणों ने आपस में एक दूसरे के कानों में लकड़ी की छोटी खूँटी से कानों को बन्द कर दिया। "इस राजा ने यहाँ उपस्थित होकर अपने निजी प्रशंसा के गीतों को सुनने के लिए हमें बाध्य किया" ऐसा कहते हुए उन ब्राह्मणों ने अपनी जीभ के सिरों को अपने ही हाथों से काट दिया। तब उस दुष्ट राजा ने उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को फटकार कर उसका सब धन आदि लेकर उसको राज्य से निकाल दिया। तब म्लेच्छ लोग भगवान की मूर्ति का हरण करके चले गये। उसके बाद राजा की मृत्यु हो गयी।।३१-३३।। क्रोधित राजा ने अपने राज्य से उन सबका धन अपहरण करके उन सबको अपने राज्य से निकाल दिया। तब वे लोग उत्तर को चले गये। उनको देखकर मृत्यु के देवता यम ने सोचा कि क्या करना चाहिए? उस समय ब्रह्मा ने देवताओं के स्वामियों से कहा, "कौशिक आदि ब्राह्मणों को सुखपूर्वक ठहरावो।।३४-३६।। सबका कल्याण हो। अगर तुम देवत्व चाहते हो तो उन कौशिक आदि को यहाँ ले आओ जो संगीत के द्वारा विष्णु की नित्य पूजा करते रहे"।।३७।। इस प्रकार की आज्ञा पाने पर दिग्पालों ने चिल्ला कर कहा। हे कौशिक! 'हे कौशिक! उनमें से कुछ ने चिल्लाकर कहा हे मालव! हे मालव! अन्यों ने चिल्लाकर कहा हे पद्माक्ष! हे पद्माक्ष! वे उनके पास पहुँचे और उसको पकड़ लिया तथा विमान मार्ग से ब्रह्मलोक को ले आये। वे लोग वहाँ एक मुहूर्त के भीतर पहुँच गये।।३८-३९।। कौशिक तथा अन्य लोगों को देखकर तीनों लोकों के पितामह ब्रह्मा ने उनका स्वागत किया और उनको सम्मानित किया।।४०।। हे श्रेष्ठ राजा! ब्रह्मा ने जो कुछ किया उसको देखकर देवता बहुत गम्भीर हो गये।।४१।। उनमें आपस में कोलाहल हुआ। उन श्रेष्ठ देवताओं को ब्रह्मा ने रोका और शान्त किया। कौशिक तथा अन्य ऋषियों को देवताओं के साथ विष्णुलोक ले गये। स्वामी नारायण ज्ञान के मार्ग के स्वामी श्वेत द्वीप निवासियों सिद्धों विष्णु-भक्तों से शुद्धता

विष्णुलोकं ययौ शीघ्रं वासुदेवपरायणः। तत्र नारायणो देवः श्वेतद्वीपनिवासिभिः॥४३॥
ज्ञानयोगेश्वरैः सिद्धैर्विष्णुभक्तैः समाहितैः। नारायणसमैर्दिव्यैश्चतुर्बाहुधरैः शुभैः॥४४॥
विष्णुचिह्नसमापन्नैर्दीप्यमानैरकल्मषैः । अष्टाशीतिसहस्त्रैश्च सेव्यमानो महाजनैः॥४५॥
अस्माभिर्नारदाद्यैश्च सनकाद्यैरकल्मषैः। भूतैर्नानाविधैश्चैव दिव्यस्त्रीभिः समंततः॥४६॥
सेव्यमानोथ मध्ये वै सहस्त्रद्वारसंवृते। सहस्त्रयोजनायामे दिव्ये मणिमये शुभे॥४७॥
विमाने विमले चित्रे भद्रपीठासने हरिः। लोककार्ये प्रसक्तानां दत्तदृष्टिश्च माधवः॥४८॥
तस्मिन्कालेऽथ भगवान् कौशिकाद्यैश्च संवृत्तः। आगम्य प्रणिपत्याग्रे तुष्टाव गरुडध्वजम्॥४९॥
ततो विलोक्य भगवान् हरिर्नारायणः प्रभुः। कौशिकेत्याह संप्रीत्या तान्सर्वांश्च यथाक्रमम्॥५०॥
जयघोषो महानासीन्महाश्चर्ये समागते। ब्रह्माणमाह विश्वात्मा शृणु ब्रह्मन् मयोदितम्॥५१॥
कौशिकस्य इमे विप्राः साध्यसाधनतत्पराः। हिताय संप्रवृत्ता वै कुशस्थलनिवासिनः॥५२॥
मत्कीर्तिश्रवणे युक्ता ज्ञानतत्त्वार्थकोविदाः। अनन्यदेवताभक्ताः साध्या देवा भवंत्विमे॥५३॥
मत्समीपे तथान्यत्र प्रवेशं देहि सर्वदा। एवमुक्त्वा पुनर्देवः कौशिकं प्राह माधवः॥५४॥
स्वशिष्यैस्त्वं महाप्राज्ञ दिग्बंधो भव मे सदा। गणाधिपत्यमापन्नो यत्राहं त्वं समास्व वै॥५५॥
मालवं मालवीं चैवं प्राह दामोदरो हरिः। मम लोके यथाकामं भार्यया सह मालव॥५६॥

और मानसिक शुद्धि के साथ सेवित थे। विष्णु के चार दिव्य भुजाएँ थीं। वे नारायण से भी परे थे। वे विष्णु के चिह्नों से युक्त थे। वे दीप्तमान थे और पाप रहित थे। वह विष्णु अस्सी हजार बड़े लोगों द्वारा सेवित थे और हम जैसे लोगों और नारद सनक और अन्य शुद्ध पाप रहित आत्माओं से भी सेवित थे। अनेक प्रकार के प्राणियों और दिव्य स्त्रियों से चारों ओर से सेवित थे। वह एक उत्तम आसन पर एक विमान में बैठे थे। वह विमान लम्बाई में हजार योजन था। वह चमक रहा था। वह मणिमय था। उस विमान में हजार दरवाजे थे। भगवान विष्णु संसारिक कार्यों की ओर ध्यान दिये थे। उन्होंने कौशिक और अन्य लोगों से घिरे ब्रह्मा को देखा। उन्होंने गरुणध्वज विष्णु को प्रणाम करके उनकी स्तुति की। तब भगवान नारायण विष्णु ने कौशिक तथा उन सबको ध्यान से प्रेमपूर्वक देखा। कौशिक कहकर सबको क्रमशः प्रसन्नतापूर्वक सम्बोधित किया।।४२-५०।। जब यह आश्चर्यजनक घटना घटी वहाँ पर महान जय-जयकार घोष हुआ 'ब्रह्मा जो कुछ मैं कहता हूँ उसको सुनो। ये ब्राह्मण जो कुशस्थल के निवासी हैं। इनमें से हर एक कल्याण का अधिकारी है। ये लोग कौशिक द्वारा जो कुछ इष्ट या उसकी प्राप्ति में लगे हुए थे।।५१-५२।। ये ज्ञान के तत्त्व के अर्थ को जानने वाले अन्य देवताओं के नहीं, केवल मेरे भक्त और मेरी कीर्ति को सुनने में तल्लीन रहे हैं। ये सब लोग देवताओं और 'साध्य' नाम से प्रतिष्ठित हैं। मेरे पास इनको स्थान दो। मेरे पास प्रवेश की अनुमति इनको रहे तथा अन्य पवित्र स्थानों में भी इनको प्रवेश करने की अनुमति सदा रहे।' यह कहकर विष्णु भगवान ने कौशिक से कहा।।५३-५४।। 'हे महाबुद्धिमान कौशिक! अपने शिष्यों के साथ सब मेरे अनुचर रहो और हमारे गणों के अधिपति पद को प्राप्त करो। जहाँ मैं रहूँ वहीं तुम भी रहो'।।५५।। भगवान विष्णु ने मालव और मालवी से कहा 'हे मालव! अपनी

दिव्यरूपधरः श्रीमान् शृण्वन्गानमिहाधिपः। आस्व नित्यं यथाकामं यावल्लोका भवंति वै॥५७॥
पद्माक्षमाह भगवान् धनदो भव माधवः। धनानामीश्वरो भूत्वा यथाकालं हि मां पुनः॥५८॥
आगम्य दृष्ट्वा मां नित्यं कुरु राज्यं यथासुखम्। एवमुक्त्वा हरिर्विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत्॥५९॥
कौशिकस्यास्य गानेन योगनिद्रा च मे गता। विष्णुस्थले च मां स्तौति शिष्यैरेष समन्ततः॥६०॥
राज्ञा निरस्तः क्रूरेण कलिंगेन महीयसा। स जिह्वाच्छेदनं कृत्वा हरेरन्यं कथंचन॥६१॥
न स्तोष्यामीति नियतः प्राप्तोसौ मम लोकताम्। एते च विप्रा नियता मम भक्ता यशस्विनः॥६२॥
श्रोत्रच्छिद्रमथाहत्य शंकुभिर्वै परस्परम्। श्रोष्यामो नैव चान्यद्वै हरेः कीर्तिमिति स्म ह॥६३॥
एते विप्राश्च देवत्वं मम सान्निध्यमेव च। मालवो भार्यया सार्धं मत्क्षेत्रं परिमृज्य वै॥६४॥
दीपमालादिभिर्नित्यमभ्यर्च्य सततं हि माम्। गानं शृणोति नियतो मत्कीर्तिचरितान्वितम्॥६५॥
तेनासौ प्राप्तवाँल्लोकं मम ब्रह्म सनातनम्। पद्माक्षोसौ ददौ भोज्यं कौशिकस्य महात्मनः॥६६॥
धनेशत्वमवाप्तोसौ मम सान्निध्यमेव च। एवमुक्त्वा हरिस्तत्र समाजे लोकपूजितः॥६७॥
तस्मिन् क्षणे समापन्ना मधुराक्षरपेशलैः। विपंचीगुणतत्त्वज्ञैर्वाद्यविद्याविशारदैः॥६८॥
मंदं मंदस्मिता देवी विचित्राभरणान्विता। गायमाना समायाता लक्ष्मीर्विष्णुपरिग्रहा॥६९॥
वृता सहस्रकोटिभिरंगनाभिः समंततः। ततो गणाधिपा दृष्ट्वा भुशुंडीपरिघायुधाः॥७०॥

स्त्री के साथ मेरे लोक में इच्छानुसार जब तक यह जगत् रहे तब तक तुम रहो। दिव्य रूप धारण करो। यहाँ मेरी प्रशंसा में गाये गये भजनों को सुनते हुए रहो'।।५६-५७।। विष्णु भगवान ने पद्माक्ष से कहा, 'तुम धन को देने वाले होवो। धन के स्वामी होकर फिर उचित समय पर आकर मुझको देखो और सुखपूर्वक राज्य करो।' यह कहकर भगवान विष्णु ने ब्रह्मा से कहा।।५८-५९।। 'कौशिक के गान से मेरी योगनिद्रा चली गयी। यह अपनी शिष्य मण्डली के साथ विष्णुलोक में मेरी स्तुति करते रहें।।६०।। उन्होंने क्रूर राजा कलिंग ने राजधानी से निकाल दिया। उन्होंने उसकी जीभ को काट दिया। यह विष्णु से अन्य किसी की स्तुति न करूँगा यह संकल्प किया। अतः यह मेरे विष्णुलोक को प्राप्त हो। वे ब्राह्मण जो कि नियमित रूप से अभ्यास करते रहे। जो मेरे भक्त हैं और जिन्होंने अपने कानों के छिद्रों को आपस में शंकुओं से बन्द कर दिया था और कहा था कि विष्णु की कीर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी की प्रशंसा नहीं सुनूँगा। ये सब ब्राह्मण देवत्व को और मेरे सानिध्य को प्राप्त करें। मालव ने अपनी स्त्री के साथ मेरे पवित्र केन्द्र को साफ करके दीपमाला आदि से नित्य मेरी पूजा करके और मेरे चरित्र की प्रशंसा को सुना था। इससे उसने मेरे लोक को प्राप्त किया। पद्माक्ष ने कौशिक को भोजन दिया था। इसलिए यह धन का स्वामी हो और मेरा सानिध्य प्राप्त करे और समाज में लोगों द्वारा पूजित हो'।।६१-६७।। उसी क्षण विष्णु की पत्नी रमा धीरे-धीरे मुस्कुराती हुई वहाँ आईं। वह विभिन्न प्रकार के विचित्र आभूषणों से विभूषित थीं। वहाँ संगीत विद्या में विशेषज्ञों के मधुर और आकर्षक शब्दों के उपयोग में दक्ष थे। वे लक्ष्मी की प्रशंसा में गाते थे। लक्ष्मी हजारों और करोड़ों नारियों से चारों ओर से घिरी थीं। उसके बाद उनको आया हुआ देखकर गणों के स्वामी जो पहाड़ों के समान थे और भुशुण्डी के समान गदाधारी थे और परिघों (एक प्रकार की गदा) को धारण किये हुए थे, लक्ष्मी को रास्ता देने के लिए ब्रह्मा और अन्य देवताओं तथा मुनियों को हटा रहे

ब्रह्मादींस्तर्जयंतस्ते' मुनीन्देवान्समंततः। उत्सारयंतः संहृष्टा धिष्ठिताः पर्वतोपमाः॥७१॥
सर्वे वयं हि निर्याताः सार्धं वै ब्रह्मणा सुरैः। तस्मिन् क्षणे समाहूतस्तुंबरुर्मुनिसत्तमः॥७२॥
प्रविवेश समीपं वै देव्या देवस्य चैवहि। तत्रासीनो यथायोगं नानामूर्च्छासमन्वितम्॥७३॥
जगौ कलपदं हृष्टो विपंचीं चाभ्यवादयत्। नानारत्नसमायुक्तैर्दिव्यैराभरणोत्तमैः॥७४॥
दिव्यमाल्यैस्तथा शुभ्रैः पूजितो मुनिसत्तमः। निर्गतस्तुंबरुर्हृष्टो अन्ये च ऋषयः सुराः॥७५॥
दृष्ट्वा संपूजितं यांतं यथायोगमरिंदम। नारदोथ मुनिर्दृष्ट्वा तुंबरोः सत्क्रियां हरेः॥७६॥
शोकाविष्टेन मनसा संतप्तहृदयेक्षणः। चिंतामापेदिवांस्तत्र शोकमूर्च्छाकुलात्मक॥७७॥
केनाहं हि हरेर्यास्ये योगं देवीसमीपतः। अहो तुंबरुणा प्राप्तं धिङ्मां मूढं विचेतसम्॥७८॥
योहं हरेः सन्निकाशं भूतैर्निर्यातितः कथम्। जीवन्यास्यामि कुत्राहमहो तुंबरुणा कृतम्॥७९॥
इति संचिंतयन् विप्रस्तप आस्थितवान्मुनिः। दिव्यं वर्षसहस्रं तु निरुच्छ्वासमन्वितः॥८०॥
ध्यायन्विष्णुमथाध्यास्ते तुंबरोः सत्क्रियां स्मरन्। रोदमानो मुहुर्विद्वान् धिङ्मामिति च चिंतयन्॥८१॥
तत्र यत्कृतवान्विष्णुस्तच्छृणुष्व नराधिप॥८२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे
कौशिकवृत्तकथनं नाम प्रथमोध्यायः॥१॥

थे। वे अपने कर्त्तव्य पालन में प्रसिद्ध थे।।६८-६९।। हम सब मार्कण्डेय और अन्य लोग ब्रह्मा और देवताओं के साथ बाहर चले गये। उसी समय श्रेष्ठ तुंबरु नामक मुनि बुलाये गये। वह देवी लक्ष्मी और विष्णु के पास खड़े हो गये।।।७०-७२।। आराम से वहाँ बैठकर उन्होंने प्रसन्नता के साथ अनेक मूर्च्छाओं से युक्त वीणा पर सुन्दर भजन गाये तथा मुनि को दिव्य रत्न जड़ित आभूषणों और शानदार मालाओं से सम्मानित किया गया। वे तथा अन्य मुनि और देवगण बहुत प्रसन्न थे।।७३-७५।। हे शत्रुओं के नाशक राजा!, उच्च सम्मान प्राप्त करके तुंबरु के जाने के बाद विष्णु द्वारा तुंबरु को अतिथिवत् सम्मानित देखकर नारद दुःखी हो गये। उनके आँखों और हृदय पर शोक का प्रभाव पड़ा। शोक और मूर्छा से व्याकुल नारद चिन्ता में डूब गये। शोक की तीव्रता से वह सोचने लगे। देवी की उपस्थिति में विष्णु के पास कैसे पहुँचूँ। हाय! हाय! यह अवसर तो तुंबरु को प्राप्त हुआ। मुझको धिक्कार है। मुझ मूढ़ और चेतनारहित को धिक्कार है। विष्णु के गणों द्वारा उन्हीं के सामने मुझको बाहर कर दिया गया। मैं कहाँ जाऊँ। मैं कैसे जिन्दा रहूँ। ऐसा तुंबरु ने किया। ऐसा विचार करते हुए नारद मुनि ने एक हजार दिव्य वर्ष तपस्या की। यहाँ तक कि उन्होंने तप काल में श्वास तक को रोक लिया। तुंबरु की सत्कार क्रिया को स्मरण करते हुए 'मुझको धिक्कार है' ऐसा सोचते हुए, रोते हुए उन्होंने विष्णु का ध्यान किया। हे राजन्! उसके बाद विष्णु ने जो किया उसको सुनो।।७६-८२।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तरभाग में कौशिकवृत्तकथन नामक
पहला अध्याय समाप्त॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

विष्णुमाहात्म्यम्

मार्कंडेय उवाच

ततो नारायणो देवस्तस्मै सर्वंप्रदाय वै। कालयोगेन विश्वात्मा समं चक्रेऽथ तुंबरोः॥१॥
नारदं मुनिशार्दूलमेवं वृत्तमभूत्पुरा। नारायणस्य गीतानां गानं श्रेष्ठं पुनः पुनः॥२॥
गानेनाराधितो विष्णुः सत्कीर्तिं ज्ञानवर्चसी। ददाति तुष्टिं स्थानं च यथाऽसौ कौशिकस्य वै॥३॥
पद्माक्षप्रभृतीनां च संसिद्धिं प्रददौ हरिः। तस्मात्त्वया महाराज विष्णुक्षेत्रे विशेषतः॥४॥
अर्चनं गाननृत्याद्यं वाद्योत्सवसमन्वितम्। कर्तव्यं विष्णुभक्तैर्हि पुरुषैरनिशं नृप॥५॥
श्रोतव्यं च सदा नित्यं श्रोतव्योसौहरिस्तथा। विष्णुक्षेत्रे तु यो विद्वान् कारयेद्भक्तिसंयुतः॥६॥
गाननृत्यादिकं चैव विष्ण्वाख्यानं कथां तथा। जातिस्मृतिं च मेधां च तथैवोपरमे स्मृतिम्॥७॥
प्राप्नोति विष्णुसायुज्यं सत्यमेतन्नृपाधिप। एतत्ते कथितं राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥८॥
किं वदामि च ते भूयो वद धर्मभृतांवर॥९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे विष्णुमाहात्म्यं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

दूसरा अध्याय

विष्णु माहात्म्य

मार्कण्डेय बोले

इसके बाद विश्वात्मा महाकाल विष्णु ने नारद को सब-कुछ देकर तुंबरु के समान बना दिया।।१।। इस प्रकार नारद को मुनियों में श्रेष्ठ बना दिया। यह घटना पहिले हुई। नारद द्वारा गीतों का गान पुनः-पुनः श्रेष्ठ वस्तु हो गई।।२।। गान से आराधित भगवान विष्णु उत्तम कीर्ति, बुद्धि, ज्ञान, वर्चस्व, सन्तोष और स्थान देते हैं, जैसा कि कौशिक के साथ हुआ।।३।। विष्णु ने पद्माक्ष और अन्य लोगों को उत्तम सिद्धि दिया। इसलिए हे महाराज! आपको विशेष रूप से विष्णु के पवित्र क्षेत्र में गान, नृत्य और वाद्य यन्त्रों द्वारा संगीत और अन्य उत्सव पूजा करना चाहिए। हे राजन्! यह सदा आपको अकेले या विष्णु के भक्तों के साथ पूर्ण करना चाहिए।।४-५।। यह सदा सुनना चाहिए। विष्णु की सदा प्रशंसा की जानी चाहिए। विष्णु क्षेत्र में जो विद्वान भक्तिपूर्वक गान और नृत्य आदि तथा विष्णु के आख्यान कथा कराता है उसको पूर्व जन्म का ऐश्वर्य और मरण काल में जागरुकता प्राप्त होती है। मृत्यु के बाद वह विष्णु का सायुज्य प्राप्त करता है। हे राजन्! इसमें सन्देह नहीं।

हे राजन्! जो कुछ तुमने पूछा है वह मैंने तुमसे कह दिया। इससे अधिक अब मैं क्या कहूँ? हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ! तुमसे मैं क्या कहूँ? पवित्र कृत्यों को कौन प्राप्त करता है, यह मुझसे कहो।।६-९।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तरभाग में विष्णुमाहात्म्य नामक दूसरा अध्याय समाप्त॥२॥

तृतीयोऽध्यायः
वैष्णवगीतकथनम्

अम्बरीष उवाच

मार्कंडेय महाप्राज्ञ केन योगेन लब्धवान्। गानविद्यां महाभाग नारदो भगवान्मुनिः॥१॥
तुंबरोश्च समानत्वं कस्मिन्काल उपेयिवान्। एतदाचक्ष्य मे सर्वं सर्वज्ञोसि महामते॥२॥

मार्कंडेय उवाच

श्रुतो मयायमर्थो वै नारदाद्देवदर्शनात्। स्वयमाह महातेजा नारदोऽसौ महामतिः॥३॥
संतप्यमानो भगवान् दिव्यं वर्षसहस्त्रकम्। निरुच्छ्वासेन संयुक्तस्तुंबरोर्गौरवं स्मरन्॥४॥
तताप च महाघोरं तपोराशिस्तपः परम्। अथांतरिक्षे शुश्राव नारदोऽसौ महामुनिः॥५॥
वाणीं दिव्यां महाघोषामद्भुतामशरीरिणीम्। किमर्थं मुनिशार्दूल तपस्तपसि दुश्चरम्॥६॥
उलूकं पश्य गत्वा त्वं यदि गाने रता मतिः। मानसोत्तरशैले तु गानबंधुरिति स्मृतः॥७॥
गच्छ शीघ्रं च पश्यैनं गानवित्त्वं भविष्यसि। इत्युक्तो विस्मयाविष्टो नारदो वाग्विदां वरः॥८॥
मानसोत्तरशैले तु गानबंधुं जगाम वै। गंधर्वाः किन्नरा यक्षास्तथा चाप्सरसां गणाः॥९॥
समासीनास्तु परितो गानबंधुं ततस्ततः। गानविद्यां समापन्नः शिक्षितास्तेन पक्षिणा॥१०॥

तीसरा अध्याय
वैष्णवगीत कथन

अम्बरीश बोले

हे महा बुद्धिमान मार्कण्डेय! किस योग से महाभाग नारद मुनि ने गानविद्या प्राप्त की। यह सब मुझको बताइये। हे महामति! तुम सर्वज्ञ हो। इसलिए मुझसे सब कुछ कहो।।१-२।।

मार्कण्डेय बोले

नारद के दिव्य दर्शन से मैंने यह सुना। महामति, महातेजस्वी नारद ने मुझसे स्वयं बताया।।३।। दुःखित भगवान नारद ने तुंबरु के गौरव को स्मरण करते हुए बिना सांस लिए एक हजार दिव्य वर्षों तक तपस्या की। उसके बाद तपस्याओं को समाप्त कर एक परम कठोर तपस्या की। तब महामुनि नारद ने अन्तरिक्ष में दिव्य ऊँचे स्वर वाली अद्‌भुत आकाशवाणी को सुना।।४-६अ।। 'मुनियों में श्रेष्ठ किस लिए यह कठिन तपस्या कर रहे हो। यदि तुम्हारी बुद्धि गान विद्या में रत है तो मानस के ऊपर पर्वत पर उलूक को जाकर देखो। वह ज्ञानबंधु के नाम से प्रसिद्ध है। जल्दी जाकर उनको देखो। तुम गान विद्या के ज्ञाता हो जाओगे।' बुद्धिमानों में श्रेष्ठ नारद इस आकाशवाणी को सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। उसके बाद वह मानसरोवर झील के ऊपर पर्वत के पास गये। वहाँ उन्होंने देखा कि गन्धर्व, किन्नर, यक्ष तथा अप्सरा गानबन्धु के चारों ओर बैठे हुए हैं। उस पक्षी उलूक

स्निग्धकंठस्वरास्तत्र समासीना मुदान्विताः। ततो नारदमालोक्य गानबंधुरुवाच ह॥११॥
प्रणिपत्य यथान्यायं स्वागतेनाभ्यपूजयत्। किमर्थं भगवानत्र चागतोऽसि महामते॥१२॥
किं कार्यं हि मया ब्रह्मन् ब्रूहि किं करवाणि ते॥

नारद उवाच।

उलकेंद्र महाप्राज्ञ शृणु सर्वं यथातथम्॥१३॥
मम वृत्तं प्रवक्ष्यामि पुरा भूतं महाद्भुतम्। अतीते हि युगे विद्वन्नारायणसमीपगम्॥१४॥
मां विनिर्धूय संहृष्टः समाहूय च तुंबरुम्। लक्ष्मीसमन्वितो विष्णुरशृणोद्गानमुत्तमम्॥१५॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे निरस्ताः स्थानतोऽच्युताः। कौशिकाद्या समासीना गानयोगेन वै हरिम्॥१६॥
एवमाराध्य संप्राप्ता गाणपत्यं यथासुखम्। तेनाहमतिदुःखार्तस्तपस्तप्तुमिहागतः॥१७॥
यद्दत्तं यद्धुतं चैव यथा वा श्रुतमेव च। यदधीतं मया सर्वं कलां नार्हति षोडशीम्॥१८॥
विष्णोर्माहात्म्ययुक्तस्य गानयोगस्य वै ततः। संचिंत्याहं तपो घोरं तदर्थं तप्तवान् द्विज॥१९॥
दिव्यवर्षसहस्त्रं वै ततो ह्यशृणुवं पुनः। वाणीमाकाशसंभूतां त्वामुद्दिश्य विहंगम॥२०॥
उलूकं गच्छ देवर्षे गानबंधुं मतिर्यदि। गाने चेद्वर्तते ब्रह्मन् तत्र त्वं वेत्स्यसे चिरात्॥२१॥
इत्यहं प्रेरितस्तेन त्वत्समीपमिहागतः। किं करिष्यामि शिष्योहंतव मां पालयाव्यय॥२२॥

से वे सदा (उसी ज्ञानबन्धु के द्वारा) गान विद्या में शिक्षित थे। वे लोग प्रसन्न होकर प्रसन्नचित्त मधुर कण्ठ से युक्त बैठे हुए थे। गानबन्धु नारद को देखकर प्रणाम करके उचित स्वागत से पुलकित हुए।।६ब-११अ।। 'हे महामति! भगवान! आप क्यों यहाँ आये हुए हैं। बोलें। मैं आपका क्या कार्य करूँ?'

नारद बोले

'हे महाबुद्धिमान! मेरी सब बातों को आप यथावत् सुनिए। मैं अपनी सब घटना को सुनाऊँगा। भूतकाल में जो आश्चर्यजनक घटनाएँ मेरे साथ घटी थीं। हे विद्वान! पूर्व युग में लक्ष्मी सहित विष्णु के पास मैं गया था। उन्होंने मुझको एक बगल कर दिया और तुंबरु को बुलाया और उसके उत्तम गीतों को सुना और अन्य देवता उस स्थान से चले गये। कौशिक तथा अन्य गान योग से विष्णु के पास बैठे रहे। मैं दुःखित हुआ। उससे मैं बहुत दुःखी होकर तपस्या करने के लिए यहाँ आया। दान के रूप को मैंने जो कुछ दिया, होम के द्वारा जो कुछ भेंट किया, जो कुछ मैंने सुना पढ़ा, ये सब यह विष्णु के माहात्म्य के साथ सम्बद्ध संगीत के मार्ग की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है। ऐसा विचार करके हे द्विज। मैंने इसके लिए घोर तपस्या की। एक हजार दिव्य वर्ष तक इसी गान विद्या के उद्देश्य के लिए तप किया। उसके बाद हे उलूक! मैंने आपके पास पहुँचने के लिए आकाशवाणी सुना "हे देवर्षि यदि तुम संगीत में रुचि रखते हो तो उलूक के पास जाओ। हे देवर्षि वहाँ तुम शीघ्र ही गान विद्या जान लोगे।।" इससे प्रेरित होकर मैं तुम्हारे पास आया। मैं क्या करूँगा? हे अव्यय! मैं तुम्हारा शिष्य हूँ। मेरी रक्षा करें"।।१२-२२।।

गानबंधुरुवाच।

श्रृणु नारद यद्वृत्तं पुरा मम महामते। अत्याश्चर्यसमायुक्तं सर्वपापहरं शुभम्॥२३॥
भुवनेश इति ख्यातो राजाभूद्धार्मिकः पुरा। अश्वमेघसहस्त्रैश्च वाजपेयायुतेन च॥२४॥
गवां कोट्यर्बुदे चैव सुवर्णस्य तथैव च। वाससां रथहस्तीनां कन्याश्वानां तथैव च॥२५॥
दत्वा स राजा विप्रेभ्यो मेदिनीं प्रतिपालयन्। निवारयन् स्वके राज्ये गेययोगेन केशवम्॥२६॥
अन्यं वा गेययोगेन गायन्यदि स मे भवेत्। वध्यः सर्वात्मना तस्माद्वेदैरीड्यः परः पुमान्॥२७॥
गानयोगेन सर्वत्र स्त्रियो गायंतु नित्यशः। सूतमागधसंघाश्च गीतं ते कारयंतु वै॥२८॥
इत्याज्ञाप्य महातेजा राज्यं वै पर्यपालयत्। तस्य राज्ञः पुराभ्याशे हरिमित्र इति श्रुतः॥२९॥
ब्राह्मणो विष्णुभक्तश्च सर्वद्वंद्वविवर्जितः। नदीपुलिनमासाद्य प्रतिमां च हरेः शुभाम्॥३०॥
अभ्यर्च्य च यथान्यायं घृतदध्युत्तरं बहु। मिष्टान्नं पायसं दत्त्वा हरेरावेद्य पूपकम्॥३१॥
प्रणिपत्य यथान्यायं तत्र विन्यस्तमानसः। अगायत हरिं तत्र तालवर्णलयान्वितम्॥३२॥
अतीव स्नेहसंयुक्तस्तद्गतेनांतरात्मना। ततो राज्ञः समादेशाच्चारास्तत्र समागताः॥३३॥
तदर्चनादि सकलं निर्धूय च समंततः। ब्राह्मणं तं गृहीत्वा ते राज्ञे सम्यङ्न्यवेदयन्॥३४॥
ततो राजा द्विजश्रेष्ठं परिभर्त्स्य सुदुर्मतिः। राज्यान्निर्यातयामास हृत्वा सर्वं धनादिकम्॥३५॥

गानबन्धु बोले

'हे महामति नारद! सुनो, जो कुछ पहले मेरे साथ हुआ।।२३।। पहले एक राजा भुवनेश के नाम से प्रसिद्ध था। उसने एक हजार घोड़ों का अश्वमेघ यज्ञ और दस हजार वाजपेय यज्ञों को किया। उस राजा ने लाखों और करोड़ों गायों और सोने के सिक्के, वस्त्र, रथ, हाथी, घोड़े और कन्याओं को ब्राह्मणों को दान दिया। उसने पृथ्वी का पालन करते हुए अपने राज्य में विष्णु की प्रशंसा और अन्य की प्रशंसा में गाना गाने को रोक दिया। उसने घोषणा की—'अगर कोई विष्णु की प्रशंसा में या किसी अन्य की प्रशंसा में भी गाता है, वह मेरे द्वारा मार दिया जायेगा। वेदों द्वारा ही महान व्यक्ति पूजा के योग्य होते हैं। स्त्रियाँ सदा मेरे विषय में गा सक़ती हैं और सूत और मागध केवल मेरा गीत गाएँ।।२४-२८।।' ऐसी आज्ञा देकर महा तेजस्वी राजा ने राज्य में प्रजा का पालन किया। राजा की राजधानी के पास हरिमित्र नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहता था। वह विष्णु का भक्ता और सर्बद्वन्दों (राग द्वेष आदि) से रहित था। वह नदियों के किनारे पहुँचकर भगवान विष्णु की प्रतिमा की पूजा करता था। वह मिठाई, खीर, घी, दही, मालपुआ आदि नैवेद्य देकर सुचित्त होकर प्रतिमा को प्रणाम करके विष्णु की प्रशंसा में ताल और वर्ण से युक्त भजन गाया करता था। वह अत्यन्त भक्तिभाव से युक्त अन्तःकरण से भजन गाता था। इस प्रकार वह अपना समय बिताता था। एक बार राजा के आदेश से गुप्तचर लोग वहाँ आये।।२९-३३।। उन्होंने पूर्ण रूप से पूजा आदि की सामग्री को नष्ट करके उस ब्राह्मण को पकड़कर राजा के सामने पेश किया।।३४।। तब उस दुर्बुद्धि राजा ने ब्राह्मण को फटकार कर उसका सब धन आदि लेकर अपने राज्य से बाहर कर दिया।।३५।। म्लेच्छों ने भगवान विष्णु की प्रतिमा को वहाँ आकर ले लिया और चले गये। समय बीतने

प्रतिमां च हरेश्चैव म्लेच्छा हृत्वा ययुः पुनः। ततः कालेन महता कालधर्ममुपेयिवान्॥३६॥
स राजा सर्वलोकेषु पूज्यमानः समंततः। क्षुधार्तश्च तथा खिन्नो यममाह सुदुःखितः॥३७॥
क्षुत्तृट् च वर्तते देव स्वर्गतस्यापि मे सदा। मया पापं कृतं किं वा किं करिष्यामि वै यम॥३८॥

यम उवाच

त्वया हि सुमहत्पापं कृतमज्ञानमोहतः। हरिमित्रं प्रति तदा वासुदेवपरायणम्॥३९॥
हरिमित्रे कृतं पापं वासुदेवार्चनादिषु। तेन पापेन संप्राप्तः क्षुद्रोगस्त्वां सदा नृप॥४०॥
दानयज्ञादिकं सर्वं प्रनष्टं ते नराधिप। गीतवाद्यसमोपेतं गायमानं महामतिम्॥४१॥
हरिमित्रं समाहूय हृतवानसि तद्धनम्। उपहारादिकं सर्वं वासुदेवस्य सन्निधौ॥४२॥
तव भृत्यैस्तदा लुप्तं पापं चक्रुस्त्वदाज्ञया। हरेः कीर्तिं विना चान्यद्ब्राह्मणेन नृपोत्तम॥४३॥
न गेययोगे गातव्यं तस्मात्पापं कृतं त्वया। नष्टस्ते सर्वलोकोद्य गच्छ पर्वतकोटरम्॥४४॥
पूर्वोत्सृष्टं स्वदेहं तं खादन्नित्यं निकृत्य वै।
तस्मिन् कोणे त्विमं देहं खादन्नित्यं क्षुधान्वितः॥४५॥
महानिरयसंस्थस्त्वं यावन्मन्वंतरं भवेत्। मन्वंतरे ततोऽतीते भूम्यां त्वं च भविष्यसि॥४६॥
ततः कालेन संप्राप्य मानुष्यमवगच्छसि॥

पर विश्व में पूजित वह राजा मृत्यु को प्राप्त हुआ। वह भूख से पीड़ित था और दुःखी था। उसने यम से कहा।।३६-३७।। 'हे यमराज! यद्यपि मैं स्वर्ग में आ गया हूँ। मुझे सदा भूख और प्यास सताती है। मैंने क्या पाप किया है? मैं क्या करूँ?'।।३८।।

यम बोले

'तुमने हरिमित्र और विष्णु की पूजा के सम्बन्ध में पाप किया है। हे राजा! उस पाप के कारण तुमको क्षुधा रोग प्राप्त हुआ है। यह अज्ञान और मोह वश तुमसे हुआ है। वह महान पाप तुमने भगवान विष्णु भक्त हरिमित्र के साथ किया।।३९-४०।। हे राजा! उस पाप से तुम्हारा दान और यज्ञादि सब नष्ट हो गया। गीत वाद्य सहित भजन करते हुए बुद्धिमान ब्राह्मण हरिमित्र को पकड़वाकर तुमने उसका धन भी अपहरण कर लिया और विष्णु की पूजा में भेंट चढ़ाये गये सब उपहारों को ले लिया। तुम्हारे सिपाहियों द्वारा वे सब वस्तुएँ लूट ली गयीं। तुम्हारी आज्ञा से उन्होंने इन सब पापों को किया। हे राजा! विष्णु की प्रशंसा को छोड़कर एक ब्राह्मण के द्वारा अपने संगीत क्रियाकलाप के दौरान और कुछ नहीं गाना चाहिए। अतः तुम्हारे द्वारा इस बहुत बड़े पाप कर्म से तुम्हारा सब लोक स्वर्ग आदि नष्ट हो गया। अब तुम पहाड़ की गुफा में जाओ।।४१-४४।। तुम निरन्तर अपने शरीर को काटो और काट के खाते हुए अपनी भूख को शान्त करो, जैसा कि पहले तुमने किया था। अपनी भूख मिटाने में तुम अपने शरीर को खाते हुए ऐसा अनुभव करो जैसा कि महानरक में पड़े हो। ऐसा तब तक करो जब तक

गानबंधुरुवाच

एवमुक्त्वा यमो विद्वांस्तत्रैवांतरधीयत॥४७॥

हरिमित्रो विमानेन स्तूयमानो गणाधिपैः। विष्णुलोकं गतः श्रीमान् संगृह्य गणबांधवान्॥४८॥
भुवनेशो नृपो ह्यस्मिन् कोटरे पर्वतस्य वै। खादमानः शवं नित्यमास्ते क्षुत्तृट्समन्वितः॥४९॥
अद्राक्षं तं नृपं सर्वमेतन्ममोक्तवान्। समालोक्याहमाज्ञाय हरिमित्रं समेयिवान्॥५०॥
विमानेनार्कवर्णेन गच्छंतममरैर्वृतम्। इंद्रद्युम्नप्रसादेन प्राप्तं मे ह्यायुरुत्तमम्॥५१॥
तेनाहं हरिमित्रं वै दृष्टवानस्मि सुव्रत। तदैश्वर्यप्रभावेन मनो मे समुपागतम्॥५२॥
गानविद्यां प्रति तदा किन्नरैः समुपाविशम्। षष्टिं वर्षसहस्राणां गानयोगेन मे मुने॥५३॥
जिह्वा प्रसादिता स्पष्टा ततो गानमशिक्षयम्। ततस्तु द्विगुणेनैव कालेनाभूदियं मम॥५४॥
गानयोगसमायुक्ता गता मन्वंतरा दश। गानाचार्योऽभवं तत्र गंधर्वाद्याः समागताः॥५५॥
एते किन्नरसंघा वै मामाचार्यमुपागताः। तपसा नैव शक्या वै गानविद्या तपोधन॥५६॥
तस्माच्छ्रुतेन संयुक्तो मत्तस्त्वं गानमाप्नुहि। एवमुक्तो मुनिस्तं वै प्रणिपत्य जगौ तदा॥५७॥

तच्छृणुष्व मुनिश्रेष्ठ वासुदेवं नमस्य तु॥

यह मन्वन्तर समाप्त न हो जाय। जब मन्वन्तर अपने समय पर समाप्त हो तुम पृथ्वी पर फिर मनुष्य शरीर में जन्म लोगे'।।४५-४७।।

गानबंधु बोले

इस तरह कहकर विद्वान यमराज वहीं पर अन्तर्धान हो गये।। हरिमित्र गण के स्वामियों द्वारा स्तुति किये जाते हुए एक विमान द्वारा अपने बान्धवों सहित विष्णु लोक को गये।।४८।। राजा भुवनेश पहाड़ की गुफा में अपने शरीर को खाते हुए टिके रहे। फिर भी वे भूख-प्यास से पीड़ित रहे।।४९।। मैंने वहाँ राजा को देखा। उसने सब कुछ मुझको बताया। उनको देखकर और सब समझकर मैं हरिमित्र के पास गया। मैंने सूर्य के समान चमकते हुए विमान में अमरों द्वारा घिरे हुए स्वर्ग की ओर बढ़ते हुए उनको देखा। मैंने इन्द्रद्युम्न की कृपा से उत्तम आयु प्राप्त की। हे सुव्रत! उन्हीं की कृपा से मैं हरिमित्र को देख सका। उनकी शक्ति के प्रभाव से मेरा मन संगीत की ओर झुका। हे मुनि! मैं संगीत कला का अभ्यास करते हुए साठ हजार वर्ष किन्नरों के बीच बैठा। मेरी जीभ को आशीर्वाद मिला और वह बहुत स्पष्ट हो गयी। तब मैंने संगीत को सीखा। उसके बाद दुगुने समय में मैंने संगीत कला में पूर्णता प्राप्त की। उस समय तक दस मन्वन्तर बीत गये। मैं संगीत का गुरु हो गया। गन्धर्व और अन्य वही किन्नर लोग अपने गुरु के रूप में मेरे पास पहुँचे थे। हे तपोधन! महान तपस्या के बिना संगीत केवल विद्या के बल से गान विद्या नहीं प्राप्त हो सकती।।५०-५६।। अतः आप मुझसे भलीभाँति सुनकर संगीत का ज्ञान प्राप्त करोगे।'' उलूक के ऐसा कहने पर मुनियों में श्रेष्ठ नारद ने उसको नवाजा।।५७।।

मार्कंडेय उवाच

उलूकेनैवमुक्तस्तु नारदो मुनिसत्तमः॥५८॥
शिक्षाक्रमेण संयुक्तस्तत्र गानमशिक्षयत्। गानबंधुस्तदाहेदं त्यक्तलज्जो भवाधुना॥५९॥

उलूक उवाच

स्त्रीसंगमे तथा गीते द्यूते व्याख्यानसंगमे। व्यवहारे तथाहारे त्वर्थानां च समागमे ॥६०॥
आये व्यये तथा नित्यं त्यक्तलज्जस्तु वै भवेत्। न कुंचितेन गूढेन नित्यं प्रावरणादिभिः॥६१॥
हस्तविक्षेपभावेन व्यादितास्येन चैव हि। निर्यातजिह्वायोगेन न गेयं हि कथंचन॥६२॥
न गायेदूर्ध्वबाहुश्च नोर्ध्वदृष्टिः कथंचन। स्वांगं निरीक्षमाणेन परं संप्रेक्षता तथा॥६३॥
संघट्टे च तथोत्थाने कटिस्थानं न शस्यते। हासो रोषस्तथा कंपस्तथान्यत्र स्मृतिः पुनः॥६४॥
नैतानि शस्तरूपाणि गानयोगे महामते। नैकहस्तेन शक्यं स्यात्तालसंघट्टनं मुने॥६५॥
क्षुधार्त्तेन भयार्तेन तृष्णार्तेन तथैव च। गानयोगो न कर्तव्यो नांधकारे कथंचन॥६६॥
एवमादीनि चान्यानि न कर्तव्यानि गायता।

मार्कंडेय उवाच

एवमुक्तः स भगवांस्तेनोक्तैर्विधिलक्षणैः। अशिक्षयत्तथा गीतं दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥६७॥

मार्कण्डेय बोले

उलूक की सलाह सुनकर नारद मुनि ने शिक्षा की प्रक्रिया के अनुसार संगीत कला को सीखा। उस समय उलूक ने कहा—'अब लज्जा को छोड़ दो'।।५८-५९।।

उलूक बोले

'स्त्री के साथ संगम (सम्भोग) करते समय, गाते समय, जुआ खेलते समय, सभा में व्याख्यान देते समय, व्यापार करते समय और भोजन करते समय, धन संचय करते समय तथा आय-व्यय का हिसाब करते समय व्यक्ति को लज्जा छोड़ देनी चाहिये। शरीर को झुका कर कभी गाना नहीं चाहिये। न तो लिहाफ आदि को ओढ़कर, हाथ आदि से इशारा करके, मुँह से खूब चिल्लाकर, जीभ को निकालकर, कभी भी नहीं गाना चाहिए। हाथों को ऊपर उठाकर, ऊपर की ओर दृष्टि करके, अपने शरीर के अंगों को देखते हुये और न तो दूसरे आदमी की ओर देखते हुए गाना चाहिये।।६०-६३।। ऊपर उठते समय कमर पर हाथ से पीटना न चाहिये और न तो हँसी, क्रोध और अंगों का हिलना (कंपन) होना चाहिये। ध्यान भी कहीं दूसरी ओर न होना चाहिये।।६४।। हे महामति! संगीत (गान विद्या) के अभ्यास में ये सब प्रवृत्तियाँ उचित नहीं मानी जाती हैं। हे मुनि! एक हाथ से ताल बजाना भी सम्भव नहीं है।।६५।। भूखे, प्यासे, भयभीत व्यक्ति को गाना न चाहिये और न तो अँधेरे में ही गाना चाहिये। संगीत के अभ्यास में ये और इससे मिलती-जुलती गलती गाने वाले को न करनी चाहिये'।।६६।।

मार्कण्डेय बोले

उलूक द्वारा इतना सब कहने पर नारद मुनि ने अपने गुरु द्वारा बतायी विधि से एक हजार दिव्य वर्षों तक संगीत विद्या सीखा और अभ्यास किया।।६७।। उसके बाद वह गीत प्रस्तार आदि में तथा वीणा वादन में निपुण

ततः समस्तसंपन्नो गीतप्रस्तारकादिषु। विपंच्यादिषु संपन्नः सर्वस्वरविभागवित्॥६८॥
अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च। स्वराणां भेदयोगेन ज्ञातवान्मुनिसत्तमः॥६९॥
ततो गंधर्वसंघाश्च किन्नराणां तथैव च। मुनिना सह संयुक्ताः प्रीतियुक्ता भवंति ते॥७०॥
गानबंधुं प्राह प्राप्य गानमनुत्तमम्। त्वां समासाद्य संपन्नस्त्वं हि गीतविशारदः॥७१॥
ध्वांक्षशत्रो महाप्राज्ञ किमाचार्य करोमि ते।

गानबंधुरुवाच

ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् मनवस्तु चतुर्दश॥७२॥
ततस्त्रैलोक्यसंप्लावो भविष्यति महामुने। तावन्मे त्वायुषो भावस्तावन्मे परमं शुभम्॥७३॥
मनसाध्याहितं मे स्याद्दक्षिणा मुनिसत्तम॥

नारद उवाच

अतीतकल्पसंयोगे गरुडस्त्वं भविष्यसि॥७४॥
स्वस्ति तेऽस्तु महाप्राज्ञ गमिष्यामि प्रसीद माम्॥

मार्कंडेय उवाच

एवमुक्त्वा जगामाथ नारदोपि जनार्दनम्॥७५॥
श्वेतद्वीपे हृषीकेशं गापयामास गीतकान्। तत्र श्रुत्वा तु भगवान्नारदं प्राह माधवः॥७६॥

होकर सब स्वरों के विभागों के ज्ञाता हो गये। मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी स्वरों के और छत्तीस हजार स्वरों के प्रभेदों के विशेषज्ञ हो गये।।६८-६९।। गंधर्व और किन्नर जो मुनि के साथ संयुक्त थे वे नारद के गायन से बहुत खूब प्रसन्न हुये।।७०।। संगीत कला की शिक्षा के बाद मुनि ने गानबन्धु से कहा है 'आप ज्ञान विशारद हैं। आप के पास आकर मैं संगीत विद्या से सम्पन्न हो गया। हे अज्ञान के नाशक आचार्य! मैं आपके लिये क्या करूँ?'

गानबन्धु बोले

'हे ब्राह्मण! ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं। उनके शासन के बाद तीनो लोकों का विनाश होता है। प्रलय होती है। तब तक मेरी आयु है। तब तक मेरा परम शुभ है। हे मुनिश्रेष्ठ! जो कुछ आप ने मन में निश्चय किया हो वही मेरी गुरुदक्षिणा होगी।'

नारद बोले

'हे महाबुद्धिमान गुरु! तुम्हारा कल्याण हो। जब यह कल्प समाप्त होगा और अगला कल्प प्रारम्भ होगा तब तुम गरुड़ होगे। मुझ पर प्रसन्न होओ। अब मैं जाऊँगा'।।७१-७४।।

मार्कण्डेयं बोले

ऐसा कहकर नारद विष्णु भगवान के पास गये।।७५।। श्वेत द्वीप में जाकर उन्होंने विष्णु भगवान की प्रशंसा में भजन गाया। उसको सुनकर विष्णु ने कहा। 'अब भी गाने में तुम तुंबुरु से अच्छे गायक नहीं हो।।

तुंबरोर्न विशिष्टोसि गीतैरद्यापि नारद। यदा विशिष्टो भविता तं कालं प्रवदाम्यहम्॥७७॥
गानबंधुं समासाद्य गानार्थज्ञो भवानसि। मनोर्वैवस्वतस्याहमष्टाविंशतिमे युगे॥७८॥
द्वापरांते भविष्यामि यदुवंशकुलोद्भवः। देवक्यां वसुदेवस्य कृष्णो नाम्ना महामते॥७९॥
तदानीं मां समासाद्य स्मारयेथा यथातथम्। तत्र त्वां गीतसंपन्नं करिष्यामि महाव्रतम्॥८०॥
तुंबरोश्च समं चैव तथातिशयसंयुतम्। तावत्कालं यथायोगं देवगंधर्वयोनिषु॥८१॥
शिक्षयस्व यथान्यायमित्युक्त्वांतरधीयत। ततो मुनिः प्रणम्यैनं वीणावादनतत्परः॥८२॥
देवर्षिर्देवसंकाशः सर्वाभरणभूषितः। तपसां निधिरत्यंतं वासुदेवपरायणः॥८३॥
स्कंधं विपंचीमासाद्य सर्वलोकांश्चचार सः। वारुणं याम्यमाग्नेयमैंद्रं कौबेरमेव च॥८४॥
वायव्यं च तथेशानं संसदं प्राप्य धर्मवित्। गायमानो हरिं समयग्वीणावादविचक्षणः॥८५॥
गंधर्वाप्सरसां संघैः पूज्यमानस्ततस्ततः। ब्रह्मलोकं समासाद्य कस्मिंश्चित्कालपर्यये॥८६॥
हाहाहूहूश्च गंधर्वौ गीतवाद्यविशारदौ। ब्रह्मणो गायकौ दिव्यौ नित्यौ गंधर्वसत्तमौ॥८७॥
तत्र ताभ्यां समासाद्य गायामानो हरिं प्रभुम्। ब्रह्मणा च महातेजाः पूजितो मुनिसत्तमः॥८८॥
तं प्रणम्य महात्मानं सर्वलोकपितामहम्। चचार च यथाकामं सर्वलोकेषु नारदः॥८९॥
ततः कालेन महता गृहं प्राप्य च तुंबरोः। वीणामादाय तत्रस्थे ह्यगायत महामुनिः॥९०॥
स्वरकल्पास्तु तत्रस्थाः षड्जाद्याः सप्त वै मताः। क्रीडतो भगवान्दृष्ट्वा निर्गतश्च सुसत्वरम्॥९१॥

अब तुम तुंबुरु से विशिष्ट होने वाले काल को मैं तुमसे कहता हूँ। गानबन्धु के पास जाकर तुम संगीत की विद्या से परिचित (ज्ञाता) हो गये हो। हे मुनि वैवस्वत मनु के अठारहवें युग के द्वापर के अन्त में मैं यदुवंश में देवकी के गर्भ में वसुदेव का पुत्र कृष्ण नाम से पैदा हूँगा।।७६-७९।। उस समय मेरे पास आकर मुझको याद दिलाना। तब मैं तुमको संगीत की कला का विशेषज्ञ बना दूँगा।।८०।। तब मैं तुमको तुंबरु के बराबर नहीं बल्कि उससे बढ़कर बनाऊँगा। तब तक गन्धर्वों और देवताओं से इस कला को सीखो और सिखाओ।' यह कहने के बाद विष्णु वहाँ अन्तर्धान हो गये। उसके बाद मुनि उनको प्रणाम करके वीणा बजाने में तत्पर, सब आभूषणों से भूषित देवर्षि और देवताओं के समान विष्णु के भक्त हो गये।।८१-८३।। तप के भण्डार नारद मुनि काँधे पर वीणा रखकर सब लोकों में विचरण करने लगे। वह धर्मवेत्ता वीणा बजाने में दक्ष, नारद जी, वरुण, यम, अग्नि, इन्द्र, कुबेर, वायु और ईशान के लोकों की सभाओं में जाकर विष्णु की प्रशंसा के भजन गाने लगे।।८४-८५।। गन्धर्वों और अप्सराओं के संघों द्वारा पूजित नारद जी किसी समय ब्रह्मलोक पहुँचे। वहाँ ब्रह्मा के दो गन्धर्व हा-हा, हूहू नाम के गायक थे जो कि गान विद्या में विशारद थे। वहाँ पहुँचकर उनके साथ में महामुनि नारद ने विष्णु की प्रशंसा में भजन गाये। तेजस्वी ब्रह्मा ने मुनिश्रेष्ठ नारद की प्रशंसा की।।८६-८८।। सब लोकों के पितामह ब्रह्मा को प्रणाम करके नारद अपनी इच्छानुसार सब लोकों में घूमने लगे।।८९।। बहुत समय के बाद अपनी वीणा को लिए हुए तुंबरु के निवास में पहुँचे। वहाँ बैठे और गाना प्रारम्भ किया।।९०।। षड्ज आदि सात सुरों को वहाँ पर बैठे हुए देखकर नारद मुनि वहाँ से तेजी से बाहर निकल गये।।९१।। महामति ने अलग-अलग

शिक्षयामास बहुशस्तत्र तत्र महामतिः। श्रमयोगेन संयुक्तो नारदोपि महामुनिः॥९२॥
सप्तस्वरांगनाः पश्यन् गानविद्याविशारदः। आसीद्वीणा समायोगे न तास्तंत्र्यः प्रपेदिरे॥९३॥
ततो रैवतके कृष्णं प्रणिपत्य महामुनिः। विज्ञापयदशेषं तु श्वेतद्वीपे तु यत् पुरा॥९४॥
नारायणेन कथितं गानयोगमनुत्तमम्। तच्छुत्वा प्रहसन्कृष्णः प्राह जांबवतीं मुदा॥९५॥
एतं मुनिवरं भद्रे शिक्षयस्व यथाविधि। वीणागानसमायोगे तथेत्युक्त्वा च सा हरिम्॥९६॥
प्रहसंती यथायोगं शिक्षयामास तं मुनिम्। ततः संवत्सरे पूर्णे पुनरागम्य माधवम्॥९७॥
प्रणिपत्याग्रतस्तस्थौ पुनराह स केशवः। सत्यां समीपमागच्छ शिक्षयस्व यथाविधि॥९८॥
तथेयुक्त्वा सत्यभामां प्रणिपत्य जगौ मुनिः। तया स शिक्षितो विद्वान् पूर्णे संवत्सरे पुनः॥९९॥
वासुदेवनियुक्तोऽसौ रुक्मिणीसदनं गतः। अंगनाभिस्ततस्ताभिर्दासीभिर्मुनिसत्तमः॥१००॥
उक्तोऽसौ गायमानोपि न स्वरं वेत्सि वै मुने। ततः श्रमेण महता वत्सरत्रयसंयुतम्॥१०१॥
शिक्षितोसौ तदा देव्या रुक्मिण्यापि जगौ मुनिः। ततः स्वरांगनाः प्राप्य तंत्रीयोगं महामुनेः॥१०२॥
आहूय कृष्णो भगवान् स्वयमेव महामुनिम्। अशिक्षयदमेयात्मा गानयोगमनुत्तमम्॥१०३॥

ततोऽतिशयमापन्नस्तुंबरोर्मुनिसत्तमः।
ततो ननर्त देवर्षिः प्रणिपत्य जनार्दनम्॥१०४॥
उवाच च हृषीकेशः सर्वज्ञस्त्वं महामुने।
प्रहस्य गानयोगेन गायस्व मम सन्निधौ॥१०५॥

स्थानों पर संगीत को सीखा और सिखाया तो नारद मुनि भी बहुत थक गये।।९२।। यद्यपि वह गान विद्या में विशेषज्ञ थे, वह भजन को आदि सात स्वरों की देवियों को देखते हुए वहाँ बैठ गये। लेकिन जब वह वीणा के साथ गाते रहे वे वीणा के तार तक नहीं उतरे।।९३।। उसके बाद रैवतक पर्वत पर जाकर महामुनि नारद ने कृष्ण को प्रणाम किया और उनको बताया जो श्वेत द्वीप में नारायण ने गान विद्या देने के सम्बन्ध में पहले कहा था। यह सुनकर कृष्ण मुस्कुराते हुए और प्रसन्न मुद्रा में जाम्बवती से कहा।।९४-९५।।" 'हे भद्र महिला! इन श्रेष्ठ मुनि नारद को वीणा पर गाना सिखाओ।' ऐसा कहने पर हँसती हुई जाम्बवती ने नारद मुनि को सिखाया। जब एक वर्ष बीत गये तब फिर नारद मुनि विष्णु के पास गये। उनको प्रणाम करके उनके सामने खड़े हो गये। विष्णु ने कहा। सत्यभामा के पास जाओ और उनसे उचित प्रशिक्षण प्राप्त करो।।९६-९८।। ऐसा कहने पर विष्णु को प्रणाम करके मुनि सत्यभामा के पास गये। सत्यभामा ने पूरे एक साल विद्वान नारद को फिर शिक्षा दी। श्री कृष्ण की प्रेरणा से रुक्मिणी के घर गये। वहाँ महिलाओं और दासियों से घिरी हुई रुक्मिणी ने नारद से कहा। 'आप दीर्घकाल से गाते रहे हैं। लेकिन आप सही तौर से स्वरों को नहीं जानते हैं।' उसके बाद बहुत परिश्रम से रुक्मिणी देवी द्वारा शिक्षित होकर तब मुनि ने गाया। स्वरों की देवियों ने वीणा के तारों पर गानों को सुना।।९९-१०२।। भगवान् कृष्ण ने स्वयं महामुनि नारद को बुलाकर गान योग को सिखाया।।१०३।। तब मुनिश्रेष्ठ नारद तुंबरु से बढ़कर हो गये। तब देवर्षि कृष्ण को प्रणाम करके नाचने लगे।।१०४।। विष्णु जी हँसे

एतत्ते प्रार्थितं प्राप्तं मम लोके तथैव च।
नित्यं तुंबरुणा सार्धं गायस्व च यथातथम्॥१०६॥
एवमुक्तो मुनिस्तत्र यथायोगं चचार सः।
यदा संपूजयन् कृष्णो रुद्रं भुवननायकम्॥१०७॥
तदा जगौ हरेस्तस्य नियोगाच्छंकराय वै।
रुक्मिण्या सह सत्या च जांबवत्या महामुनिः॥१०८॥
कृष्णेन च नृपश्रेष्ठ श्रुतिजातिविशारदः।
एष वो मुनिशार्दूलाः प्रोक्तो गीतक्रमो मुनेः॥१०९॥
ब्राह्मणो वासुदेवाख्यां गायमानो भृशं नृप।
हरेः सालोक्यमाप्नोति रुद्रगानोऽधिको भवेत्॥११०॥
अन्यथा नरकं गच्छेद्गायमानोन्यदेव हि।
कर्मणा मनसा वाचा वासुदेवपरायणः॥१११॥
गायन् शृण्वंस्तमाप्नोति तस्माद्गेयं परं विदुः॥११२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे
वैष्णवगीतकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

और कहा, "हे महामुनि! अब तुम सर्वज्ञ हो। मेरे सामने पुनः गान गाओ।।१०५।। जो तुम खोज रहे थे वह अभीष्ट ज्ञान तुमको प्राप्त हो गया। इसलिए मेरी प्रशंसा में तुंबरु के साथ गाओ"।।१०६।। ऐसा कहने पर उन्होंने तदनुसार वैसा ही किया। जब कृष्ण ने लोकों के स्वामी शिव की पूजा की, तब विष्णु की आज्ञा से उन्होंने शिव की प्रशंसा में भजन गाये। उन्होंने रुक्मिणी, सत्या और जाम्बवती तथा कृष्ण के साथ में गाना गाया। हे श्रेष्ठ राजा! इस प्रकार काल क्रम से नारद मुनि सातों स्वरों में विशेषज्ञ हो गये। हे श्रेष्ठ मुनियों! इस प्रकार संगीत विद्या की प्राप्ति धीरे-धीरे नारद को हुई और मैंने तुमको बताया।।१०७-१०९।। हे राजन्! वह ब्राह्मण जो कि विष्णु देव की प्रशंसा में गाता है वह विष्णुलोक को प्राप्त करता है। जो रुद्र की प्रशंसा में गाता है वह इसकी अपेक्षा अधिक होगा। विष्णु और शिव के अतिरिक्त अन्य किसी की भी प्रशंसा में गायेगा वह नरक में जायेगा। जो कोई मन से, वाणी से और शरीर से विष्णु का भक्त है, जो उनके विषय में गाता है और जो विष्णु के माहात्म्य को सुनता है वह उनको प्राप्त होता है। अतः वे लोग जानते हैं कि विष्णु सबसे बड़े स्वामी हैं। अतः उनकी प्रशंसा गेय है।।११०-११२।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में वैष्णव गीत कथन
(नारद द्वारा संगीत विद्या की प्राप्ति) नामक तीसरा अध्याय समाप्त॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

विष्णुभक्तकथनम्

ऋषय ऊचुः

वैष्णवा इति ये प्रोक्ता वासुदेवपरायणाः। कानि चिह्नानि तेषां वै तन्नो ब्रूहि महामते॥१॥
तेषा वा किं करोत्येष भगवान् भूतभावनः। एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सूत सर्वार्थवित्तम॥२॥

सूत उवाच

अंबरीषेण वै पृष्टो मार्कंडेयः पुरा मुनिः। युष्माभिरद्य यत् प्रोक्तं तद्वदामि यथातथम्॥३॥

मार्कंडेय उवाच

श्रृणु राजन्यथान्यायं यन्मां त्वं परिपृच्छसि। यत्रास्ते विष्णुभक्तस्तु तत्र नारायणः स्थितिः॥४॥
विष्णुरेव हि सर्वत्र येषां वै देवता स्मृता। कीर्त्यमाने हरौ नित्यं रोमांचो यस्य वर्तते॥५॥
कंपः स्वेदस्तथाक्षेषु दृश्यते जलबिंदवः। विष्णुभक्तिसमायुक्तान् श्रौतस्मार्तप्रवर्तकान्॥६॥
प्रीतो भवति यो दृष्ट्वा वैष्णवोऽसौप्रकीर्तितः। नान्यदाच्छादयेद्वस्त्रं वैष्णवो जगतोऽरणे॥७॥
विष्णुभक्तमथायांतं यो दृष्ट्वा सन्मुखस्थितः। प्रणामादि करोत्येवं वासुदेवे यथा तथा॥८॥
स वै भक्त इति ज्ञेयः स जयी स्याज्जगत्त्रये। रूक्षाक्षराणि श्रृण्वन्वै तथा भागवतेरितः॥९॥

चौथा अध्याय

विष्णु भक्त कथन

ऋषि बोले

हे महामति! जो वासुदेव को समर्पित भक्त हैं और वैष्णव कहे जाते हैं उन वैष्णव भक्तों के कौन चिह्न हैं?।।१।। सब अर्थों को जानने वालों में श्रेष्ठ। हे सूत! सब प्राणियों के स्रष्टा और रक्षक भगवान उन भक्तों के लिए क्या करते हैं।।२।।

सूत बोले

पहले इसी विषय पर अम्बरीष ने मार्कण्डेय से पूछा था। उन्होंने अम्बरीष को जैसा बताया था वही अब मैं तुमसे कहता हूँ।।३।।

मार्कण्डेय बोले

हे राजा! सुनो। जो तुम मुझसे पूछते हो यह न्यास संगत है। नारायण वहाँ उपस्थित हैं जहाँ कि विष्णु भक्त रहता है।।४।। जहाँ उनकी मूर्ति स्थित है सर्वत्र विष्णु ही हैं। उनकी स्तुति और कीर्तन करने पर जिसके रोमाँच हो जाते हैं।।५।। शरीर कँपता है। पसीना निकलता है और आँखों में जल की बिन्दु दिखायी देते हैं। जो विष्णु के भक्त को देखकर प्रसन्न होता है और वे जो श्रुति और स्मृति में विष्णु के भक्तों के लिए कहे गये आचरणों से युक्त लोगों को देखकर प्रसन्न होता है उसको वैष्णव कहा जाता है। एक वैष्णव अपनी शरीर की रक्षा के लिए आवश्यक वस्त्रों से अधिक वस्त्र नहीं पहनता है।।६-७।। विष्णु के भक्त को आता देखकर, वैष्णव आमने-सामने खड़ा होकर उसको प्रणाम करता है तो वह स्वयं वैष्णव है। वह प्रणाम, विष्णु को प्रणाम करने के बराबर है।।८।। उसको भक्त

प्रणामपूर्वं क्षांत्या वै यो वदेद्वैष्णवो हि सः। गंधपुष्पादिकं सर्वं शिरसा यो हि धारयेत्॥१०॥
हरेः सर्वमितीत्येवं मत्त्वासौ वैष्णवः स्मृतः। विष्णुक्षेत्रे शुभान्येव करोति स्नेहसंयुतः॥११॥
प्रतिमां च हरेर्नित्यं पूजयेत्प्रयतात्मवान्। विष्णुभक्तः स विज्ञेयः कर्मणा मनसा गिरा॥१२॥
नारायणपरो नित्यं महाभागवतो हि सः। भोजनाराधनं सर्वं यथाशक्त्या करोति यः॥१३॥
विष्णुभक्तस्य च सदा यथान्यायं हि कथ्यते। नारायणपरो विद्वान्यस्यान्नं प्रीतमानसः॥१४॥
अश्नाति तद्धरेरास्यं गतमन्नं न संशयः। स्वार्चनादपि विश्वात्मा प्रीतो भवति माधवः॥१५॥
महाभागवते तच्च दृष्ट्वासौ भक्तवत्सलः। वासुदेवपरं दृष्ट्वा वैष्णवं दग्धकिल्बिषम्॥१६॥
देवापि भीतास्तं यांति प्रणिपत्य यथागतम्। श्रूयतां हि पुरावृत्तं विष्णुभक्तस्य वैभवम्॥१७॥
दृष्ट्वा यमोऽपि वै भक्तं वैष्णवं दग्धकिल्बिषम्। उत्थाय प्रांजलिर्भूत्वा ननाम भृगुनंदनम्॥१८॥
तस्मात्संपूजयेद्भक्त्या वैष्णवान्विष्णुवन्नरः। स याति विष्णुसामीप्यं नात्र कार्या विचारणा॥१९॥
अन्यभक्तसहस्रेभ्यो विष्णुभक्तो विशिष्यते॥
विष्णुभक्तसहस्रेभ्यो रुद्रभक्तो विशिष्यते। रुद्रभक्तात्परतरो नास्ति लोके न संशयः॥२०॥
तस्मात्तु वैष्णवं चापि रुद्रभक्तमथापि वा। पूजयेत्सर्वयत्नेन धर्मकामार्थमुक्तये॥२१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे विष्णुभक्तकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

के रूप में जानना चाहिए। वह तीनों लोकों में विजयी होता है। जो कठोर शब्दों को सुनकर भी सहनशीलता के साथ बोलता है। जो गन्ध, सुगन्धित पुष्प, आदि यह समझकर धारण करता है कि यह सब विष्णु ही है उसको वैष्णव समझना चाहिए।।९-१०।। विष्णु के पवित्र क्षेत्र में जो शुभ कार्यों को प्रेमपूर्वक करता है, वह वैष्णव है। जो पवित्र आत्मा के साथ विष्णु की प्रतिमा का पूजन करेगा वह विष्णु के भक्त के रूप में प्रसिद्ध होगा।।११-१३।। जो यथाशक्ति भोजन देता है और दूसरे विष्णु भक्त की आराधना अपनी योग्यता के अनुसार करता है वह वास्तव में वैष्णव है।।१४।। अगर विष्णु का विद्वान भक्त प्रसन्नचित्त होकर किसी का भोजन स्वीकार करता है, वह भोजन निःसन्देह विष्णु के मुख में जाता है। विष्णु विश्वात्मा हैं। अपने भक्तों के प्रिय हैं।।१५।। वे अपनी पूजा से अधिक प्रसन्न होते हैं जब कि वह देखते हैं कि उनके भक्त की पूजा उसी प्रकार होती है।।१६अ।। विष्णु को समर्पित वैष्णव को देखकर और जिसने अपने पापों को जला दिया है उससे देवता तक डरते हैं। वे अपने ढंग से उसको प्रणाम करके चले जाते हैं। विष्णु के भक्त का प्रभाव दिखाने वाली एक पुरानी घटना को सुनो। भृगु का पुत्र जो विष्णु का भक्त था और अपने पापों को जला दिया था—उसको देखकर यम ने उठकर हाथ जोड़कर प्रणाम किया। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह वैष्णवों की विष्णुवत् पूजा करे। वह व्यक्ति विष्णु के समीप जाता है। इसमें विचार करने की बात नहीं है। अन्य हजारों भक्तों से विष्णु भक्त विशिष्ट होता है। विष्णु के हजारों भक्तों से रुद्र का भक्त विशिष्ट होता है। संसार में रुद्र भक्त से बढ़कर कोई दूसरा नहीं है। इसलिए वैष्णव को और विष्णु भक्त को सब प्रयत्नों से धर्म, काम, अर्थ और मुक्ति के लिए पूजा करनी चाहिए।।१६ब-२१।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में विष्णु भक्त कथन नामक चौथा अध्याय समाप्त॥४॥

पंचमोऽध्यायः

श्रीमत्याख्यानम्

ऋषय ऊचुः

ऐक्ष्वाकुरंबरीषो वै वासुदेवपरायणः। पालयामास पृथिवीं विष्णोराज्ञापुरःसरः॥१॥
श्रुतमेतन्महाबुद्धे तत्सर्वं वक्तुमर्हसि। नित्यं तस्य हरेश्चक्रं शत्रुरोगभयादिकम्॥२॥
हंतीति श्रूयते लोके धार्मिकस्य महात्मनः। अंबरीषस्य चरितं तत्सर्वं ब्रूहि सत्तम॥३॥
माहात्म्यमनुभावं च भक्तियोगमनुत्तमम्। यथावच्छ्रोतुमिच्छामः सूत वक्तुं त्वमर्हसि॥४॥

सूत उवाच

श्रूयतां मुनिशार्दूलाश्चरितं तस्य धीमतः। अंबरीषस्य माहात्म्यं सर्वपापहरं परम्॥५॥
त्रिशंकोर्दयिता भार्या सर्वलक्षणशोभिता। अंबरीषस्य जननी नित्यं शौचसमन्विता॥६॥
योगनिद्रासमारूढं शेषपर्यंकशायिनम्। नारायणं महात्मानं ब्रह्मांडकमलोद्भवम्॥७॥
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकांडजम्। सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं सर्वदेवनमस्कृतम्॥८॥
अर्चयामाम सततं वाङ्मनःकायकर्मभिः। माल्यदानादिकं सर्वं स्वयमेवमचीकरत्॥९॥
गंधादिपेषणं चैव धूपद्रव्यादिकं तथा। भूमेरालेपनादीनि हविषां पचनं तथा॥१०॥

पांचवां अध्याय

श्रीमती की कथा

ऋषिगण बोले

इदवाकु वंशीय राजा अम्बरीष पृथ्वी पर राज्य करते थे। वह वासुदेव के समर्पित भक्त थे।।१।। वह सदा विष्णु की आज्ञा का अनुसरण करते थे। हे महा बुद्धिमान सूत जी! हम लोगों ने उनके विषय में संक्षेप में सुना है किन्तु विस्तार से अब आप हम लोगों को बताइए। जगत् में ऐसा सुना जाता है कि विष्णु का चक्र शत्रु, रोग और भय आदि को नित्य दूर करता है। धार्मिक राजा अम्बरीष के सब चरित को आप कहिए। हे सूत! हम लोग उनकी महानता, उनकी योग्यता और उत्तम भक्ति को सुनना चाहते हैं। आप इसको सुनाइए।।२-४।।

सूत बोले

हे श्रेष्ठ मुनियों! उस बुद्धिमान राजा अम्बरीष के सब पापों को हरने वाले चरित और माहात्म्य को सुनिए। त्रिशंकु की प्यारी पत्नी अम्बरीष की माता सब उत्तम लक्षणों से युक्त सदा शुद्धता से समन्वित थी।।५।। उसका नाम पद्मावती था। वह योग निद्रा में विराजमान तमस् से काल रुद्र और रजस् से हिरण्य अण्ड से उत्पन्न सब देवताओं द्वारा नमस्कृत, सत्त्व से सर्वव्यापी भगवान विष्णु की वाणी, मन, शरीर और कर्म से पूजा करती थी। वह स्वयं माला गन्ध आदि पेषण, धूप, द्रव्य आदि, भूमि का लेपन होम, आदि स्वयं करती थी। इन सब कार्यों

तत्कौतुकसमाविष्टा स्वयमेव चकार सा। शुभा पद्मावती नित्यं वाचा नारायणेति वै॥११॥
अनंतेत्येव सा नित्यं भाषमाणा पतिव्रता। दशवर्षसहस्राणि तत्परेणांतरात्मना॥१२॥
अर्चयामास गोविंदं गंधपुष्पादिभिः शुचिः। विष्णुभक्तान्महाभागान् सर्वपापविवर्जितान्॥१३॥
दानमानार्चनैर्नित्यं धनरत्नैरतोषयत्। ततः कदाचित्सा देवी द्वादशीं समुपोष्य वै॥१४॥
हरेरग्रे महाभागा सुष्वाप पतिना सह। तत्र नारायणो देवस्तामाह पुरुषोत्तमः॥१५॥
किमिच्छसि वरं भद्रे मत्तस्त्वं ब्रूहि भामिनि। सा दृष्ट्वा तु वरं वव्रे पुत्रो मे वैष्णवो भवेत्॥१६॥
सार्वभौमो महातेजाः स्वकर्मनिरतः शुचिः। तथेत्युक्त्वा ददौ तस्यै फलमेकं जनार्दनः॥१७॥
सा प्रबुद्धा फलं दृष्ट्वा भर्त्रे सर्वं न्यवेदयत्। भक्षयामास संहृष्टा फलं तद्गमानसा॥१८॥
ततः कालेन सा देवी पुत्रं कुलविवर्धनम्। असूत सा सदाचारं वासुदेवपरायणम्॥१९॥
शुभलक्षणसंपन्नं चक्रांकिततनूरुहम्। जातं दृष्ट्वा पिता पुत्रं क्रियाः सर्वाश्चकार वै॥२०॥
अंबरीप इति ख्यातो लोके समभवत्प्रभुः। पितर्युपरते श्रीमानभिषिक्तो महामुनिः॥२१॥
मंत्रिष्वाधाय राज्यं च तप उग्रं चकार सः। संवत्सरसहस्रं वै जपन्नारायणं प्रभुम्॥२२॥
हृत्पुंडरीकमध्यस्थं सूर्यमंडलमध्यतः। शंखचक्रगदापद्मधारयंतं चतुर्भुजम्॥२३॥
शुद्धजांबूनदनिभं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्। सर्वाभरणसंयुक्तं पीतांबरधरं प्रभुम्॥२४॥

के करने में वह उत्साह और इच्छा से भरी रहती थी। वह शुभा पतिव्रता पद्मावती नित्य अपनी जिह्वा से सदा नारायण, अनन्त आदि उच्चारण करती रहती थी। वह शुद्ध अन्तरात्मा से विष्णु को समर्पित थी। उसने दस हजार वर्षों तक गन्ध पुष्प आदि से विष्णु की पूजा की।।६-१२।। वह सदा सब पापों से रहित विष्णु भक्त महात्माओं को नित्य दान-मान और पूजा धन और रत्नों को देकर सन्तुष्ट करती थी। इसके बाद वह देवी द्वादशी का व्रत करके पति के साथ सोयी हुई थी। वहाँ पुरुषोत्तम नारायण भगवान ने उससे कहा।।१३-१५।। 'हे भद्र महिला! हे रानी! तुम क्या चाहती हो? मुझसे वर माँगो।' उसने नारायण को देखकर यह वरदान माँगा कि मेरा पुत्र वैष्णव हो। वह सम्राट् हो, तेजस्वी हो, शुद्ध और अपने कर्त्तव्य पालन में सदा लगा रहने वाला हो। विष्णु ने कहा, 'ऐसा ही होगा'। और उसको एक फल दिया।।१६-१७।। जागने पर उसने फल को देखा और प्रत्येक बात को अपने पति से कहा। उसने अपना मन विष्णु की ओर लगाकर प्रसन्न होकर उस फल को खा लिया।।१८।। तब उचित समय आने पर रानी ने अपने कुल को बढ़ाने वाले भगवान विष्णु के भक्त सदाचारी शुभ लक्षणों से युक्त शरीर पर चक्र चिह्नों से अंकित पुत्र को जन्म दिया। पिता ने पुत्र को देखकर उसका यथोचित सब संस्कारों को कराया।।१९-२०।। जगत में वह पुत्र अम्बरीष नाम से प्रसिद्ध हुआ। पिता के मरने के बाद उस श्रीमान् अम्बरीष का अभिषेक किया गया और वह राजा बनाया गया। उसने अपने राज्य को मन्त्रियों की देखभाल में सौंपकर उग्र तपस्या की। वह साधु हो गया। एक हजार वर्ष तक भगवान् नारायण का नाम जपते हुए उग्र तपस्या की।।२१-२२।। उसने हृदय कमल के मध्य में स्थित, सूर्य मण्डल के मध्य से आगत शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुये चार भुजा वाले शुद्ध सोने की तरह चमकने वाले, ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक, सब आभरणों से संयुक्त

श्रीवत्सवक्षसं देवं पुरुषं पुरुषोत्तमम्। ततो गरुडमारुह्य सर्वदेवैरभिष्टुतः॥२५॥
आजगाम स विश्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः। ऐरावतमिवाचिंत्यं कृत्वा वै गरुडं हरिः॥२६॥
स्वयं शक्र इवासीनस्तमाह नृपसत्तमम्। इंद्रोऽहमस्मि भद्रं ते किं ददामि वरं च ते॥२७॥
सर्वलोकेश्वरोऽहं त्वां रक्षितुं समुपागतः॥

अंबरीष उवाच

नाहं त्वाममिसंधाय तप आस्थितवानिह॥२८॥
त्वया दत्तं च नेष्यामि गच्छ शक्र यथासुखम्। मम नारायणो नाथस्तं नमामि जगत्पतिम्॥२९॥
गच्छेंद्र माकृथास्त्वत्र मम बुद्धिविलोपनम्। ततः प्रहस्य भगवान् स्वरूपमकरोद्धरिः॥३०॥
शार्ङ्गचक्रगदापाणिः खड्गहस्तो जनार्दनः। गरुडोपरि सर्वात्मा नीलाचल इवापरः॥३१॥
देवगंधर्वसंघैश्च स्तूयमानः समंततः। प्रणम्य स च संतुष्टस्तुष्टाव गरुडध्वजम्॥३२॥
प्रसीद लोकनाथेश मम नाथ जनार्दन। कृष्ण विष्णो जगन्नाथ सर्वलोकनमस्कृत॥३३॥
त्वमादिस्त्वमनादिस्त्वमनंतः पुरुषः प्रभुः। अप्रमेयो विभुर्विष्णुर्गोविंदः कमलेक्षणः॥३४॥
महेश्वरांगजो मध्ये पुष्करः खगमः खगः। कव्यवाहः कपाली त्वं हव्यवाहः प्रभंजनः॥३५॥

पीताम्बरधारी, छाती पर श्री वस्त्र चिह्न से युक्त पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु का ध्यान किया। उसके बाद विश्वात्मा, देवताओं द्वारा नमस्कृत सब लोकों से पूजित अप्रतिम ऐरावत की पीठ पर इन्द्र की तरह बैठे हुए भगवान् विष्णु स्वयं वहाँ इन्द्र के वेष में आये और श्रेष्ठ राजा अम्बरीष से कहा।।२३-२६।।

"तुम्हारा कल्याण हो, मैं इन्द्र हूँ। मैं तुम्हें क्या वरदान दूँ? मैं त्रिलोक का स्वामी हूँ। मैं तुम्हारी सहायता के लिए आया हूँ।"

अम्बरीष बोले

"मैंने तपस्या करते हुए आपका ध्यान नहीं किया। आपके द्वारा दी गयी किसी वस्तु की मैं कामना नहीं करता हूँ। हे इन्द्र! आप आराम से वापस चले जायें। मेरे स्वामी तो नारायण हैं। मैं उस विश्वात्मा के सामने नतमस्तक हूँ। मेरी बुद्धि को नष्ट करने वाली किसी वस्तु को न दो" इसके बाद भगवान् विष्णु ने हँसकर अपना विष्णुरूप धारण कर लिया।।२७-३०।।

शंख, चक्र, गदा और खड्ग हाथ में लिए गरुड़ पर सवार सब की आत्मा, दूसरे नील पर्वत के तुल्य, देवता गन्धर्व के संघों द्वारा स्तुति किये जाते हुए भगवान विष्णु को प्रणाम करके राजा अम्बरीष सन्तुष्ट हुये और गरुड़ध्वज भगवान् विष्णु की स्तुति की।।३१-३२।।

हे लोकनाथ, मेरे स्वामी, जनार्दन, हे कृष्ण, हे विष्णु, हे जगन्नाथ, हे सब लोकों में नमस्कृत! तुम आदि हो, तुम अनादि हो, तुम अनन्त हो। तुम पुरुष हो। तुम प्रभु हो। तुम अतुलनीय हो। तुम व्यापक हो। तुम विष्णु हो। तुम गोविन्द हो। तुम कमलनयन हो। तुम महेश्वर के शरीर से उत्पन्न हो। आप की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ है। तुम आकाश में व्याप्त हो। तुम हृदय वाहक हो। तुम वायु हो। तुम पवित्र कृत्यों में आनन्दित होने वाले

आदिदेवः क्रियानंदः परमात्मात्मनि स्थितः।
त्वां प्रपन्नोस्मि गोविंद जय देवकिनंदन। जय देव जगन्नाथ पाहि मां पुष्करेक्षण॥३६॥
नान्या गतिस्त्वदन्या मे त्वमेव शरणं मम॥

सूत उवाच

तमाह भगवान्विष्णुः किं ते हृदि चिकीर्षितम्॥३७॥
तत्सर्वं ते प्रदास्यामि भक्तोसि मम सुव्रत। भक्तिप्रियोऽहं सततं तस्माद्दातुमिहागतः॥३८॥

अंबरीष उवाच

लोकनाथ परानंद नित्यं मे वर्तते मतिः। वासुदेवपरो नित्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः॥३९॥
यथा त्वं देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः। तथा भवाम्यहं विष्णो तव देव जनार्दन॥४०॥
पालयिष्यामि पृथिवीं कृत्वा वै वैष्णवं जगत्। यज्ञहोमार्चनैश्चैव तर्पयामि सुरोत्तमान्॥४१॥
वैष्णवान्पालयिष्यामि निहनिष्यामि शात्रवान्। लोकतापभये भीत इति मे धीयते मतिः॥४२॥

श्रीभगवानुवाच

एवमस्तु यथेच्छं वै चक्रमेतत्सुदर्शनम्। पुरा रुद्रप्रसादेन लब्धं वै दुर्लभं मया॥४३॥
ऋषिशापादिकं दुःखं शत्रुरोगादिकं तथा। निहनिष्यति ते नित्यमित्युक्त्वांतरधीयत॥४४॥

हो। तुम आत्मा स्थित परमात्मा हो। तुम गोविन्द हो। हे देवकी नन्दन! हे जगन्नाथ! हे कमलनयन! आप की जय हो। मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। मैं तुम्हारी शरण में हूँ। मेरी रक्षा करो। आपसे अन्य मेरी कोई गति नहीं है। तुम्हीं मेरी शरण हो।।३३-३८।।

सूत बोले

तब भगवान् विष्णु ने राजा अम्बरीष से कहा "तुम्हारे हृदय में क्या करने की इच्छा है। हे सुव्रत! तुम मेरे भक्त हो। वह सब मैं तुमको दूँगा। मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ। तुम मेरे भक्त हो। मैं भक्तिप्रिय हूँ। अतः मैं यहाँ जो कुछ तुम चाहो उसको देने के लिये आया हूँ।"

अम्बरीष बोले

"हे लोकनाथ! हे परानन्द! मेरे मन में नित्य सतत यह विचार है कि तुम महान् आत्मा देवेश शिव को समर्पित हो, उसी प्रकार मैं भी सदा वाणी, शरीर और कर्म से तुमको समर्पित हो जाऊँ। हे भगवान! मैं जगत को आप का भक्त वैष्णव बना-बनाकर पृथ्वी का पालन करूँगा। यज्ञ होम और अर्चना आदि से उत्तम देवताओं को तृप्त करूँगा। वैष्णवों का पालन करूँगा और शत्रुओं का नाश करूँगा। मैं सांसारिक दुष्कर्मों के ताप से भयभीत हूँ। अतः मेरा मन आप में ही निवास करता है"।।३९-४२।।

भगवान् विष्णु बोले

जैसा तुम चाहते हो वैसा ही होगा। पहिले रुद्र की कृपा से यह दुर्लभ सुदर्शन चक्र मैंने प्राप्त किया है। यह निरन्तर ऋषिओं के श्राप आदि दुःख, शत्रु और रोग आदि को नाश करेगा। ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये।।४३-४४।।

सूत उवाच

ततः प्रणम्य मुदितो राजा नारायणं प्रभुम्। प्रविश्य नगरीं रम्यामयोध्यां पर्यपालयत्॥४५॥
ब्राह्मणादींश्च वर्णांश्च स्वस्वकर्मण्ययोजत्। नारायणपरो नित्यं विष्णुभक्तानकल्मषान्॥४६॥
पालयामास हृष्टात्मा विशेषेण जनाधिपः। अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतेन च॥४७॥
पालयामास पृथिवीं सागरावरणामिमाम्। गृहेगृहे हरिस्तस्थौ वेदघोषो गृहेगृहे॥४८॥
नामघोषो हरेश्चैव यज्ञघोषस्तथैव च। अभवन्नृपशार्दूले तस्मिन् राज्यं प्रशासति॥४९॥
नासस्या नातृणा भूमिर्न दुर्भिक्षादिभिर्युता। रागहीनाः प्रजा नित्यं सर्वोपद्रववर्जिताः॥५०॥
अंबरीषो महातेजाः पालयामास मेदिनीम्। तस्यैवंवर्तमानस्य कन्या कमललोचना॥५१॥
श्रीमती नाम विख्याता सर्वलक्षणसंयुता। प्रदानसमयं प्राप्ता देवमायेव शोभना॥५२॥
तस्मिन्काले मुनिः श्रीमान्नारदोऽभ्यागतश्च वै। अंबरीषस्य राज्ञो वै पर्वतश्च महामतिः॥५३॥
तावुभवागतौ दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि। अंबरीषो महातेजाः पूजयामास तावृषी॥५४॥
कन्यां तां रममाणां वै मेघमध्ये शतह्रदाम्। प्राह तां प्रेक्ष्य भगवान्नारदः सस्मितस्तदा॥५५॥
केयं राजन्महाभागा कन्या सुरसुतोपमा। ब्रूहि धर्मभृतां श्रेष्ठ सर्वलक्षणशोभिता॥५६॥

सूत बोले

तब राजा ने उस दिशा को प्रणाम किया जिधर विष्णु भगवान् गये थे। उसके बाद राजा बहुत प्रसन्न हो अयोध्या नगरी में लौट कर वहाँ पर प्रजा का पालन करने लगे। उन्होंने ब्राह्मणों और अन्य जातियों को उनके अपने-अपने कर्त्तव्यों में लगाया। राजा विष्णु को समर्पित थे। उसने प्रसन्न हृदय होकर पाप रहित वैष्णवों की रक्षा की। उनका पालन किया। उसने सौ अश्वमेघ यज्ञ और सौ वाजपेय यज्ञों को करके सागरों से घिरी पृथ्वी का पालन किया। घर-घर में विष्णु स्थापित हुए। प्रत्येक घर में वेद मन्त्रों की ध्वनि गूँजने लगी। भगवन्नाम का घोष और यज्ञ सम्पन्न हुये। राजाओं में सिंह के समान राजा अम्बरीष के शासनकाल में भूमि परती और ऊसर नहीं थी और न तो अकाल आदि से युक्त थी। प्रजा राग-द्वेष से रहित और सब उपद्रवों से वर्जित थी।।४५-५०।। महातेजस्वी राजा अम्बरीष ने इस प्रकार पृथ्वी का पालन किया। ऐसे उस राजा के एक कमल के समान नेत्र वाली सब लक्षणों से युक्त योगमाया के समान सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम श्रीमती रखा गया। धीरे-धीरे बढ़कर वह विवाह के योग्य आयु को प्राप्त हुई।।५१-५२।। उसी समय श्रीमान नारद और महा बुद्धिमान् पर्वत नामक दो ऋषि अम्बरीष के राजभवन में पधारे।।५३।। उन दोनों को आया हुआ देखकर महा तेजस्वी राजा अम्बरीष ने प्रणाम करके उनकी पूजा की।।५४।। बादलों के बीच में बिजली के समान खेलती हुई उस कन्या को देखकर भगवान् नारद ने मुस्कराते हुये पूछा, ''हे राजन्! देव कन्याओं से उपमा योग्य यह कौन है? हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ! इस सब लक्षणों से शोभित कन्या के विषय में मुझको बतलाइए''।।५५-५६।।

राजोवाच

दुहितेयं मम विभो श्रीमती नाम नामतः। प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषते शुभा॥५७॥
इत्युक्तो मुनिशार्दूलस्तामैच्छन्नारदो द्विजाः। पर्वतोपि मुनिस्तां वै चकमे मुनिसत्तमाः॥५८॥
अनुज्ञाप्य च राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत्। रहस्याहूय धर्मात्मा मम देहि सुतामिमाम्॥५९॥
पर्वतो हि तथा प्राह राजानं रहसि प्रभुः। तावुभौ सह धर्मात्मा प्रणिपत्य भयार्दितः॥६०॥
उभौ भवंतौ कन्यां मे प्रार्थमानौ कथं त्वहम्। करिष्यामि महाप्राज्ञ शृणु नारद मे वचः॥६१॥
त्वं च पर्वत मे वाक्यं शृणु वक्ष्यामि यत्प्रभो। कन्येयं युवयोरेकं वरयिष्यति चेच्छुभा॥६२॥
तस्मै कन्यां प्रयच्छामि नान्यथा शक्तिरस्ति मे। तथेत्युक्त्वा ततो भूयः श्वो यास्याव इति स्म ह॥६३॥
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलौ जग्मतुः प्रीतिमानसौ। वासुदेवपरौ नित्यमुभौ ज्ञानविदांवरौ॥६४॥
विष्णुलोकं ततो गत्वा नारदो मुनिसत्तमः। प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह॥६५॥
श्रोतव्यमस्ति भगवन्नाथ नारायण प्रभो। रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि नमस्ते भुवेनश्वर॥६६॥
ततः प्रहस्य गोविंदः सर्वानुत्सार्य तं मुनिम्। ब्रूहीत्याह च विश्वात्मा मुनिराह च केशवम्॥६७॥
त्वदीयो नृपतिः श्रीमानंबरीषो महीपतिः। तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती नाम नामतः॥६८॥
परिणेतुमनास्तत्र गतोऽस्मि वचनं शृणु। पर्वतोऽयं मुनिः श्रीमांस्तवभृत्य स्तमोनिधिः॥६९॥
तामैच्छत्सोपि भगवन्नावामाह जनाधिपः। अंबरीषो महातेजाः कन्येयं युवयोर्वरम्॥७०॥

राजा बोले

"हे प्रभो! यह मेरी कन्या श्रीमती है। यह विवाह के आयु को प्राप्त हो गयी है। मैं इसके लिए एक वर की खोज में हूँ।" ऐसा कहने पर नारद मुनि ने उस कन्या को लेने के लिए इच्छा प्रकट की। मुनिवर पर्वत ने भी उसको पाने की इच्छा प्रकट की।।५७-५८।। धर्मात्मा नारद ने राजा को एकान्त में बुलाकर उनसे यह कहा, "इस कन्या को मुझको दे दो।" पर्वत ऋषि ने भी एकान्त में राजा से वैसा ही निवेदन किया। तब धर्मिक राजा भयभीत हो गये। उन दोनों को प्रणाम करके राजा ने कहा, "आप दोनों मेरी कन्या को ग्रहण करना चाहते हैं। मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ? हे महाबुद्धिमान नारद! और हे प्रभु पर्वत! यह कन्या तुम दोनों में से एक को वरण करेगी। मैं उसको यह कन्या दूँगा अन्यथा मैं अशक्त हूँ।" "ऐसा कहने पर उन दोनों ने कहा, "यह ऐसा ही होगा। हम लोग कल फिर आयेंगे।" पर्वत ने भी कहा। ऐसा कहकर दोनों ऋषिवर—जो कि विष्णु के भक्त थे और ज्ञानियों में श्रेष्ठ थे—प्रसन्न हो गये।।५९-६४।। विष्णु लोक में जाकर ऋषियों में श्रेष्ठ नारद ने विष्णु को प्रणाम करके यह कहा।।६५।। "हे जगन्नाथ! नारायण आपसे कुछ कहना है। एकान्त में कहूँगा। हे भुवनेश्वर! पर्वत का मुख बानर के मुँह की तरह लगे। ऐसा आप कर दें।" तब विश्वात्मा भगवान् विष्णु ने मुस्कराते हुए कहा। हे ऋषि कहो! "तब ऋषि ने उनसे कहा। श्रीमान अम्बरीष राजा तुम्हारे भक्त हैं। विशाल नेत्रों वाली उनकी कन्या का नाम श्रीमती है। उससे विवाह करने की इच्छा से मैं उनके पास गया था। अब मेरी बात सुनो। पर्वत ऋषि भी आपके भक्त हैं। वह भी इसको चाहते हैं। महातेजस्वी राजा अम्बरीष ने कहा, "यह कन्या तुम दोनों में जिसको सुन्दर मानकर चुनेगी मैं उसी को यह कन्या दूँगा।" हम दोनों ने राजा से कहा, "ऐसा ही

लावण्ययुक्तं वृणुयाद्यदि तस्मै ददाम्यहम्। इत्याहावां नृपस्तत्र तथेत्युक्त्वाहमागतः॥७१॥
आगमिष्यामि ते राजन् श्वः प्रभाते गृहं त्विति। आगतोहं जगन्नाथ कर्तुमर्हसि मे प्रियम्॥७२॥
वानराननवद्भाति पर्वतस्य मुखं यथा। तथ कुरु जगन्नाथ मम चेदिच्छसि प्रियम्॥७३॥
तथेत्युक्त्वा स गोविंदः प्रहस्य मधुसूदनः। त्वयोक्तं च करिष्यामि गच्छ सौम्य यथागतम्॥७४॥
एवमुक्त्वा मुनिर्हृष्टः प्रणिपत्य जनार्दनम्। मन्यमानः कृतात्मानं तथाऽयोध्यां जगाम सः॥७५॥
गते मुनिवरे तस्मिन्पर्वतोऽपि महामुनिः। प्रणम्य माधवं हृष्टो रहस्येनमुवाच ह॥७६॥
वृत्तं तस्य निवेद्याग्रे नारदस्य जगत्पतेः। गोलांगूलमुखं यद्वन्मुखं भाति तथा कुरु॥७७॥
तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुस्त्वयोक्तं च करोमि वै। गच्छ शीघ्रमयोध्यां वै मावेदीर्नारदस्य वै॥७८॥
त्वया मे संविदं तत्र तथेत्युक्त्वा जगाम सः। ततो राजा समाज्ञाय प्राप्तौ मुनिवरौ तदा॥७९॥
मांगल्यैर्विविधैः सर्वामयोध्यां ध्वजमालिनीम्। मंडयामास पुष्पैश्च लाजैश्चैव समंततः॥८०॥
अंबुसिक्तगृहद्वारां सिक्तापणमहापथाम्। दिव्यगंधरसोपेतां धूपितां दिव्यधूपकैः॥८१॥
कृत्वा च नगरीं राजा मंडयामास तां सभाम्। दिव्यैर्गंधैस्तथा धूपै रत्नैश्च विविधैस्तथा॥८२॥
अलंकृतांमणिस्तंभैर्नानामाल्योपशोभिताम्। पराध्यर्यास्तरणोपेतैर्दिव्यैर्भद्रासनैर्वृताम्॥८३॥
कृत्वा नृपेंद्रस्तां कन्यां ह्यादाय प्रविवेश ह। सर्वाभरणसंपन्नां श्रीरिवायतलोचनाम्॥८४॥
करसंमितमध्यांगीं पंचस्निग्धां शुभाननाम्। स्त्रीभिः परिवृतां दिव्यां श्रीमतीं संश्रितां तदा॥८५॥

होगा। उसके बाद मैं यहाँ आया हूँ। कल सबेरे मैं यहाँ फिर आऊँगा। हे जगन्नाथ! जो मुझको अभीष्ट है, प्रिय है, वह आप करें।'' नारद के ऐसा कहने पर गोविन्द मधुसूदन भगवान् विष्णु ने हँसकर कहा, ''तुम्हारा कहना मैं करूँगा। हे सौम्य! अब वापस जाओ।'' विष्णु के ऐसा कहने पर नारद प्रसन्न होकर विष्णु को प्रणाम करके अपने को सफल मानते हुये अयोध्या चले गये।।६६-७५।। नारद मुनि के जाने के बाद महामुनि पर्वत भी आये।।७६।। उन्होंने भगवान् विष्णु को प्रणाम करके प्रसन्न होकर एकान्त में उनसे कान में कहा। ''हे विश्व के आत्मा! कृपया नारद का मुँह ऐसा बना दें कि काले मुँह वाले लंगूर की तरह दिखाई दे।।७७।।'' यह सुनने के बाद भगवान् विष्णु ने कहा। ''जैसी तुम्हारी लालसा है मैं वैसा ही करूँगा। जल्दी अयोध्या चले जाओ! तुम्हारे साथ जो मेरी बात हुई है उसको नारद को मत बताना। ऐसा ही होगा।'' यह कहकर पर्वत मुनि भी चले गये। यह जानकर कि दोनों महामुनि आ गये हैं। राजा ने अयोध्या को ध्वजाओं, मालाओं, फूलों और लाजाओं से सजवा दिया।।७८-८०।। घरों के द्वारों पर जल का छिड़काव किया गया। बाजारों और राजमार्गों (सड़कों) पर भलीभाँति जल का छिड़काव किया गया। अयोध्या नगरी को दिव्य धूप और गन्ध रसों से मण्डित कर दिया गया।।८१।। नगरी को सजाने के बाद राजा ने सभागार को दिव्य गन्धों, धूपों और विविध रत्नों से अलंकृत करवाया।।८२।। मणियों के खम्भों, नाना प्रकार के फूल मालाओं से शोभित, दिव्य आसनों (सीटों) से सुसज्जित कराया।।८३।। यह सब प्रबन्ध और व्यवस्था करने के बाद सब आभूषणों से भूषित अपने विशाल सुन्दर नेत्रों से लक्ष्मी के समान दिखने वाली, अपनी दिव्य रूपवती, हाथ से नापने योग्य कमरवाली, पाँच अंगों से मनोहर, सुन्दर मुखवाली, सहेलियों से घिरी हुई कन्या को साथ लेकर राजा ने सभागार में प्रवेश

सभा च सा भूपपतेः समृद्धा मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा।
न्यस्तासना माल्यवती सुबद्धा तामाययुस्ते नरराजवर्गाः॥८६॥
अथापरो ब्रह्मवरात्मजो हि त्रैविद्यविद्यो भगवान्महात्मा।
सपर्वतो ब्रह्मविदां वरिष्ठो महामुनिर्नारद आजगाम॥८७॥
तावागतौ समीक्ष्याथ राजा संभ्रांतमानसः। दिव्यमासनमादाय पूजयामास तावुभौ॥८८॥
उभौ देवर्षिसिद्धौ तावुभौ ज्ञानविदांवरौ। समासीनौ महात्मानौ कन्यार्थं मुनिसत्तमौ॥८९॥
तावुभौ प्रणिपत्याग्रे कन्यां तां श्रीमतीं शुभाम्। सुतां कमलपत्राक्षीं प्राह राजा यशस्विनीम्॥९०॥
अनयोर्यं वरं भद्रे मनसा त्वमिहेच्छसि। तस्मै मालामिमां देहि प्रणिपत्य यथाविधि॥९१॥
एवमुक्ता तु सा कन्या स्त्रीभिः परिवृता तदा। मालां हिरण्मयीं दिव्यामादाय शुभलोचना॥९२॥
यत्रासीनौ महात्मानौ तत्रागम्य स्थिता तदा। वीक्षमाणा मुनिश्रेष्ठौ नारदं पर्वतं तथा॥९३॥
शाखामृगाननं दृष्ट्वा नारदं पर्वतं तथा। गोलांगूलमुखं कन्या किंचित् त्राससमन्विता॥९४॥
संभ्रांतमानसा तत्र प्रवातकदली यथा।
तस्थौ तामाह राजासौ वत्से किं त्वं करिष्यसि॥९५॥
अनयोरेकमुद्दिश्य देहि मालामिमां शुभे। सा प्राह पितरं त्रस्ता इमौ तौ नरवानरौ॥९६॥
मुनिश्रेष्ठं न पश्यामि नारदं पर्वतं तथा। अनयोर्मध्यतस्त्वेकमूनषोडशवार्षिकम् ॥९७॥
सर्वाभरणसंपन्नमतसीपुष्पसंनिभम् । दीर्घबाहुं विशालाक्षं तुंगोरस्थलमुत्तमम्॥९८॥

किया।।८४-८५।। राजा का सभागार विभिन्न प्रकार के रत्नों और हीरे जवाहरात से समृद्ध था। माला फूल और झालरें खूबसूरती से बँधे थे। राजा लोग उस सभागार में पधारे।।८६।। ब्रह्मा के सौम्य पुत्र, महात्मा, तीन विद्याओं के ज्ञाता, ब्रह्मर्षियों में वरिष्ठ महामुनि नारद, पर्वत मुनि के साथ सभा में पधारे।।८७।। यह देखकर दोनों ऋषि आ गये हैं, राजा मन में घबरा गये। उन्होंने मुनियों को दिव्य आसन देकर बैठाया। उनकी पूजा की। कन्या के इच्छुक दोनों श्रेष्ठ ज्ञानी मुनि आसनों पर विराजमान हुये।।८८-९०।। तब राजा ने अपनी पुत्री से कहा, ''हे पुत्री! इन दोनों मुनियों में से जिसको अपना वर मन से चुनो उसको उचित ढंग से प्रणाम करके यह माला दे दो''।।९१।। इस तरह कहे जाने पर स्त्रियों से घिरी हुई सुन्दर नेत्रों वाली वह राजा कन्या सोने की उस दिव्य माला को लेकर जहाँ दोनों महात्मा मुनि बैठे थे वहाँ आयी और खड़ी हो गयी। नारद और पर्वत मुनियों की ओर देखते हुए उसने उनके चेहरे को वानरों की तरह देखा। लंगूरों के समान चेहरे को देखकर कन्या कुछ डर गयी। मन से घबराकर वह आँधी में केले के पेड़ की तरह काँपने लगी। तब राजा ने उससे कहा ''हे पुत्री! तुम क्या करोगी? हे शुभे! इन दोनों में किसी एक को यह माला दे दो''।।९२-९६।।

डरी हुई कन्या ने अपने पिता से कहा, ''यह दोनों तो नर वानर हैं। नारद या पर्वत श्रेष्ठ मुनियों को मैं नहीं देखती हूँ लेकिन इनके दोनों के बीच में मैं एक सोलह वर्ष से कम, सुन्दर युवक को देखती हूँ। वह सब आभूषणों से भूषित है। वह अलसी के फूल के समान है। उसकी लम्बी भुजाएँ हैं। बड़ी आँखें हैं। चौड़ी छाती है। दो झुकी

रेखांकितकटिग्रीवं रक्तांतायतलोचनम्। नम्रचापानुकरणपटुभ्रूयुगशोभितम्॥९९॥
विभक्तत्रिवलीव्यक्तं नाभिव्यक्तशुभोदरम्।
हिरण्यांबरसंवीतं तुंगरत्ननखं शुभम्।
पद्माकारकरं त्वेनं पद्मास्यं पद्मलोचनम्॥१००॥
सुनासं पद्महृदयं पद्मनाभं श्रिया वृतम्। दंतपंक्तिभिरत्यर्थं कुंदकुड्मलसन्निभैः॥१०१॥
हसंतं मां समालोक्य दक्षिणं च प्रसार्य वै। पाणिं स्थितममुं तत्र पश्यामि शुभमूर्धजम्॥१०२॥
संभ्रांतमानसां तत्र वेपतीं कदलीमिव।
स्थितां तामाह राजासौ वत्से किं त्वं करिष्यसि॥१०३॥
एवमुक्ते मुनिः प्राह नारदः संशयं गतः।
कियन्तो बाहवस्तस्य कन्ये ब्रूहि यथातथम्॥१०४॥
बाहुद्वयं च पश्यामीत्याह कन्या शुचिस्मिता। प्राह तां पर्वतस्तत्र तस्य वक्षःस्थले शुभे॥१०५॥
किं पश्यसि च मे ब्रूहि करे किं वास्यपश्यसि। कन्या तमाह मालां वै पंचरूपामनुत्तमाम्॥१०६॥
वक्षःस्थलेऽस्य पश्यामि करे कार्मुकसायकान्। एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ परस्परमनुत्तमौ॥१०७॥
मनसा चिंतयंतौ तौ मायेयं कस्य चिद्भवेत्। मायावी तस्करो नूनं स्वयमेव जनार्दनः॥१०८॥
आगतो न यथा कुर्यात्कथमस्मन्मुखं त्विदम्। गोलागूलत्वमित्येवं चिंतयामास नारदः॥१०९॥
पर्वतोपि यथान्यायं वानरत्वं कथं मम। प्राप्तमित्येव मनसा चिंतामापेदिवांस्तथा॥११०॥

हुई धनुष के समान भौहें हैं। तीन भागों में बँटी हुई (त्रिबली) नाभि में से युक्त सुन्दर पेट है। वह सुनहरे रंग का वस्त्र धारण किये हुये है। उनके नाखून रत्नों की तरह ऊँचे हैं। कमल के आकार का उनका हाथ है। कमल के समान उनके मुख और नेत्र हैं। सुन्दर नाक है। कमल के समान हृदय है। कमल के समान श्री से युक्त उनकी नाभि है। कुंद की कली के समान दाँतों की पंक्तियाँ हैं। अच्छे सुन्दर बाल सिर पर हैं। वह मेरी ओर अपने दाहिने हाथ को फैलाकर मुझको देखकर मुस्करा रहे हैं। उनको मैं देखती हूँ।'' तब राजा ने उससे कहा जो कि केले के पेड़ के तरह घबरायी हुई काँप रही थी। ''हे पुत्री! तुम क्या करोगी?''।।९७-१०३।। जब ऐसा कहा तो नारद को सन्देह हुआ। उन्होंने पूछा, ''हे कन्या उनके कितने हाथ हैं? सही-सही मुझको बताओ''।।१०४।। पवित्रता से मुस्कराती हुई कन्या ने कहा। ''मैं दो बाहुओं को देखती हूँ।'' तब पर्वत ने उससे पूछा, ''हे शुभे! उनके वक्षस्थल पर क्या देखती हो? उनके हाथों में तुम क्या देखती हो?'' तब उस राज कन्या ने पर्वत से कहा ''उनकी छाती पर पाँच पर्त लपेटी हुई अनुपम माला को देखती हूँ। हाथ में धनुष और बाण को देखती हूँ।'' इस तरह उत्तर पाने पर दोनों ऋषिवर एक-दूसरे की ओर देखने लगे। उन्होंने अपने मन में सोचा। यह किसी की माया है। निश्चय रूप से विष्णु भगवान् स्वयं मायावी और तस्कर हैं। एक नव आगन्तुक हमारे चेहरों को लंगूर की तरह कैसे बना सकता है?'' नारद ने ऐसा सोचा। पर्वत ने भी इस प्रकार मानसिक रूप से सोचा कि मेरा चेहरा वानर की तरह कैसे हुआ?''।।१०५-११०।। तब राजा ने नारद और पर्वत को प्रणाम करके कहा, ''आप दोनों

ततो राजा प्रणम्यासौ नारदं पर्वतं तथा।
भवद्भ्यां किमिदं तत्र कृतं बुद्धिविमोहजम्॥१११॥
स्वस्थौ भवंतौ तिष्ठेतां यथा कन्यार्थमुद्यतौ। एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ नृपमूचतुरुल्बणौ॥११२॥
त्वमेव मोहं कुरुषे नावामिह कथंचन। आवयोरेकमेषा ते वरयत्वेव मा चिरम्॥११३॥
ततः सा कन्यका भूयः प्रणिपत्येष्टदेवताम्। मायामादाय तिष्ठंतं तयोर्मध्ये समाहितम्॥११४॥
सर्वाभरणसंयुक्तमतसीपुष्पसन्निभम्। दीर्घबाहुं सुपुष्टांगं कर्णांतायतलोचनम्॥११५॥
पूर्ववत्पुरुषं दृष्ट्वा मालां तस्मै ददौ हि सा। अनंतरं हि सा कन्या न दृष्टा मनुजैः पुनः॥११६॥
ततो नादः समभवत् किमेतदिति विस्मितौ।
तामादाय गतो विष्णुः स्वस्थानं पुरुषोत्तमः॥११७॥
पुरा तदर्थमनिशं तपस्तप्त्वा वरांगना।
श्रीमती सा समुत्पन्ना सा गता च तथा हरिम्॥११८॥
तावुभौ मुनिशार्दूलौ धिक्कृतावतिदुःखितौ। वासुदेवं प्रति तदा जग्मतुर्भवनं हरेः॥११९॥
तावागतौ समीक्ष्याह श्रीमतीं भगवान्हरिः। मुनिश्रेष्ठौ समायातौ गूहस्वात्मानमत्र वै॥१२०॥
तथेत्युक्त्वा च सा देवी प्रहसंती चकार ह। नारदः प्रणिपत्याग्रे प्राह दामोदरं हरिम्॥१२१॥
प्रियं हि कृतवानाद्य मम त्वं पर्वतस्य हि। त्वमेव नूनं गोविंद कन्यां तां हृतवानसि॥१२२॥
विमोह्यावां स्वयं बुद्ध्या प्रतार्य सुरसत्तम।
इत्युक्तः पुरुषो विष्णुः पिधाय श्रोत्रमच्युतः।
पाणिभ्यां प्राह भगवान् भवद्भ्यां किमुदीरितम्॥१२३॥

को यह क्या बौद्धिक भ्रम हो गया। आप दोनों शान्तिपूर्वक बैठे रहें जो कन्या का हाथ चाहते हैं।'' राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महामुनियों ने क्रोधित होकर कहा, ''यह माया तुम्हीं करते हो। हम दोनों किसी प्रकार नहीं। इस कन्या को हम दोनों में से किसी को चुनने दो। इसमें विलम्ब न हो।'' इसके बाद कन्या ने इष्ट देवता को प्रणाम करके उन दोनों के बीच में बैठे हुए सब आभूषणों से युक्त, अलसी के फूल के समान सुन्दर, लम्बी भुजाओं, पुष्ट अंग वाले, कान तक फैले हुए नेत्रों वाले पुरुष को पूर्ववत् देखकर उसने वह माला उनको दे दी। उसके बाद वह राजकन्या किसी भी व्यक्ति द्वारा नहीं देखी गयी।।१११-११६।। उसके बाद वहाँ हो हल्ला होने लगा, ''कि यह क्या हुआ? दोनों मुनि आश्चर्य से चकित हो गये। विष्णु उस कन्या को लेकर विष्णुलोक को चले गये।'' पहले जिसके लिए उसने तपस्या की थी उस श्रीमती ने उनको प्राप्त कर लिया। वह विष्णु के साथ चली गयी। वे दोनों श्रेष्ठ मुनि तिरस्कृत और बेहद दुःखी हुये। दुःखित होकर वे विष्णुलोक को गये।।११७-११९।। उन दोनों को आता हुआ देखकर भगवान विष्णु ने श्रीमती से कहा, ''दोनों महामुनि आ गये हैं। तुम अपने को छिपा लो''।।१२०।। ''ऐसा ही होगा'' कहती हुई मुस्कुराते हुए श्रीमती ने वैसा ही किया। नारद ने विष्णु भगवान् के सामने प्रणाम करके उनसे कहा।।१२१।। ''मेरे और पर्वत के लिए आपने प्रिय कार्य किया है। हे गोविन्द! आप ही ने उस कन्या का अपहरण किया है।।१२२।। हम दोनों को मोह में डालकर आपने

कामवानपि भावोयं मुनिवृत्तिरहो किल। एवमुक्तो मुनिः प्राह वासुदेवं स नारदः॥१२४॥
कर्णमूले मम कथं गोलांगूलमुखं त्विति। कर्णमूले तमाहेदं वानरत्वं कृतं मया॥१२५॥
पर्वतस्य मया विद्वन् गोलांगूलमुखं तव। मया तव कृतं तत्र प्रियार्थं नान्यथा त्विति॥१२६॥
पर्वतोऽपि तथा प्राह तस्याप्येवं जगाद सः। शृण्वतोरुभयोस्तत्र प्राह दामोदरो वचः॥१२७॥

प्रियं भवद्भ्यां कृतवान् सत्येनात्मानमालभे।
नारदः प्राह धर्मात्मा आवयोर्मध्यतः स्थितः॥१२८॥
धनुष्मान्पुरुषः कोत्र तां हृत्वा गतवान्किल।
तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽसौ प्राह तौ मुनिसत्तमौ॥१२९॥

मायाविनो महात्मानो बहवः संति सत्तमाः। तत्र सा श्रीमती नूनमदृष्ट्वा मुनिसत्तमौ॥१३०॥

चक्रपाणिरहं नित्यं चतुर्बाहुरिति स्थितः।
तां तथा नाहमैच्छं वै भवभ्द्यां विदितं हि तत्॥१३१॥

इत्युक्तौ प्रणिपत्यैनमूचतुः प्रीतिमानसौ। कोऽत्र दोषस्तव विभो नारायण जगत्पते॥१३२॥
दौरात्म्यं तत्रृपस्यैव मायां हि कृतवानसौ। इत्युक्त्वा जग्मतुस्तस्मान्मुनी नारदपर्वतौ॥१३३॥
अंबरीषं समासाद्य शापेनैनमयोजयत्। नारदः पर्वतश्चैव यस्मादावामिहागतौ॥१३४॥

आहूय पश्चादन्यस्मै कन्यां त्वं दत्तवानसि।
मायायोगेन तस्मात्त्वां तमो ह्यभिभविष्यति॥१३५॥

स्वयं बुद्धि से हमको ठग लिया।'' ऐसा कहने पर विष्णु ने अपने हाथों से अपने कानों को ढँककर कहा, ''तुम दोनों ने यह क्या कहा?।।१२३।। ओह! क्या यह कामवासना का भाव मुनियों की वृत्ति (आचरण) के अनुकूल है।'' ऐसा कहने पर नारद ने विष्णु भगवान् के कान में फुसफुसाते हुए कहा, ''मेरा मुँह, चेहरा लंगूर की तरह कैसे हो गया? विष्णु भगवान् ने भी नारद के कान में फुसफुसाते हुए कहा। ''हे विद्वान ऋषि! मैंने तुम्हारे मुँह को वानर की तरह और पर्वत के मुख को लंगूर की तरह कर दिया था''।।१२४-१२६।। पर्वत ने भी उसी तरह कहा और विष्णु ने उसी ढंग से उत्तर दिया। तब विष्णु ने दोनों ऋषियों को सुनाते हुए कहा।।१२७।। ''वहाँ मैंने तुम दोनों के हित के लिए वैसा किया। मैं यह सत्य कहता हूँ।'' तब धर्मात्मा नारद ने कहा, ''हम दोनों के बीच में वह धनुर्धारी पुरुष कौन था जो उसको हर कर चला गया?'' यह सुनकर भगवान् विष्णु ने उन मुनियों से कहा। ''हे मुनियों! मायावी बहुत से महात्मा हैं। मैं सदा चक्र को हाथ में धारण करने वाला चार भुजा वाला हूँ। श्रीमती को वहाँ न देखकर यह निश्चित है कि मैं उसको लेना नहीं चाहता था। वह तुम दोनों को विदित है।'' ऐसा कहने पर दोनों मुनि मन से प्रसन्न हो गये। उन्होंने विष्णु को प्रणाम करके कहा, ''इस विषय में आपकी क्या गलती है? यह राजा की दुष्टता है कि उसकी आज्ञा से उसको अपहरण कर लिया गया। उसने ही आज्ञा की। यह कहकर नारद और पर्वत ने वह स्थान छोड़ दिया। अम्बरीष के पास पहुँचकर उनको शाप दिया। ''हम दोनों को वहाँ बुलाकर तुमने क्यों दूसरे व्यक्ति को कन्या दे दी। इस कारण माया के योग से तुम्हारे ऊपर तम

तेन चात्मानमत्यर्थं यथावत्त्वं न वेत्स्यसि। एवं शापे प्रदत्ते तु तमोराशिरथोत्थितः॥१३६॥
नृपं प्रति ततश्चक्रं विष्णोः प्रादुरभूत् क्षणात्। चक्रवित्रासितं घोरं तावुभौ तम अभ्यगात्॥१३७॥
ततः संत्रस्तसर्वांगौ धावमानौ महामुनी। पृष्ठतश्चक्रमालोक्य तमोराशिं दुरासदम्॥१३८॥
कन्यासिद्धिरहो प्राप्ता ह्यावयोरिति वेगितौ।
लोकालोकांतमनिशं धावमानौ भयार्दितौ॥१३९॥
त्राहित्राहीति गोविंदं भाषमाणौ भयार्दितौ। विष्णुलोकं ततो गत्वा नारायण जगत्पते॥१४०॥
वासुदेव हृषीकेश पद्मनाभ जनार्दन। त्राह्यावां पुंडरीकाक्ष नाथोऽसि पुरुषोत्तम॥१४१॥
ततो नारायणश्चिंत्य श्रीमाञ्छ्रीवत्सलांछनः। निवार्य चक्रं ध्वांतं च भक्तानुग्रहकाम्यया॥१४२॥
अंबरीषश्च मद्भक्तस्तथैतौ मुनिसत्तमौ। अनयोरस्य च तथा हितं कार्यं मयाऽधुना॥१४३॥
आहूय तत्तमः श्रीमान् गिरा प्रह्लादयन् हरिः। प्रोवाच भगवान् विष्णुः शृणुतां म इदं वचः॥१४४॥
ऋषिशापो न चैवासीदन्यथा च वरोमम। दत्तो नृपाय रक्षार्थं नास्ति तस्यान्यथा पुनः॥१४५॥
अंबरीषस्य पुत्रस्य नप्तुः पुत्रो महायशाः। श्रीमान्दशरथो नाम राजा भवति धार्मिकः॥१४६॥
तस्याहमग्रजः पुत्रो रामनामा भवाम्यहम्। तत्र मे दक्षिणो बाहुर्भरतो नाम वै भवेत्॥१४७॥
शत्रुघ्नो नाम सव्यश्च शेषोऽसौ लक्ष्मणः स्मृतः। तत्र मां समुपागच्छ गच्छेदानीं नृपं विना॥१४८॥

(अंधेरा) आक्रमण करेगा।।१२८-१३५।। इस कारण तुम स्वयं अपने को जान सकोगे। इस प्रकार शाप के कारण जब अंधकार ने उस राजा पर आक्रमण किया तो तुरन्त विष्णु का चक्र राजा के पक्ष में प्रकट हुआ।।१३६-१३७।। चक्र के भय से अंधकार ने दोनों मुनियों को डरा दिया। डर से काँपते हुये दोनों मुनियों ने भागना प्रारम्भ किया। चक्र को पीछे आता देखकर और अंधकार के ढेर में अपने को ढकता देखकर अपना कदम आगे बढ़ाते हुये उन्होंने कहा। "हम दोनों को कन्या सिद्ध (प्राप्त) हो गई। हम कन्या पा गये।" भय से त्रस्त दुःखी वे लोग लौटकर समुद्रों से घिरी सम्पूर्ण पृथ्वी, पर्वत पर भागे। वे बेहद भय से डरे हुये, चिल्लाकर मुझको बचाओ। मुझको बचाओ (त्राहिमाम्)। हे गोविन्द रक्षा करो" वे विष्णु लोक में गये। उन्होंने कहा। "हे नारायण! हे जगत् के स्वामी! हे वासुदेव! हे जनार्दन! हे हृषीकेश! हे पद्मनाभ! हे पुरुषोत्तम! तुम हमारे स्वामी हो! तब श्रीवत्स चिह्न से युक्त नारायण ने भक्तों के हित के लिये कृपा करके चक्र और अन्धकार को रोक दिया। अम्बरीष मेरा भक्त है। ये दोनों ऋषि भी मेरे भक्त हैं। अब मैं वह करूँगा जो राजा का और इन दोनों ऋषियों के लिए हितकारक हो। श्रीमान् विष्णु ने उनको बुलाकर अपने वचनों से उनको कहते हुये कहा, "तुम दोनों मेरी बातों को सुनो।।१३८-१४४।। मुनियों का शाप अन्यथा नहीं होता है और न मेरा वरदान जो राजा अम्बरीष को रक्षा के लिये दिया था। श्रीमान् धार्मिक राजा अम्बरीष के पुत्र के ज्येष्ठ पौत्र के प्रसिद्ध पुत्र राजा दशरथ होंगे। उनका ज्येष्ठ पुत्र 'राम' मैं पैदा हूँगा। मेरा दाहिना हाथ भरत होंगे। शत्रुघ्न मेरे बायें हाथ होंगे। शेष, लक्ष्मण के रूप में जन्म लेंगे। वहाँ तुम मेरे पास आओ। अब तुम राजा को अकेला छोड़ दो।" ऐसा भगवान विष्णु ने कहा। ऐसा कहने पर अन्धकार का समूह नष्ट हो गया। विष्णु का चक्र भी पूर्ववत विष्णु के पास ठहर गया। तम को

मुनिश्रेष्ठौ च हित्वा त्वमिति स्माह च माधवः। एवमुक्तं तमो नाशं तत्क्षणाच्च जगाम वै॥१४९॥
निवारितं हरेश्चक्रं यथापूर्वमतिष्ठत। मुनिश्रेष्ठौ भयान्मुक्तो प्रणिपत्य जनार्दनम्॥१५०॥
निर्गतौ शौकसंतप्तौ ऊचतुस्तौ परस्परम्। अद्यप्रभृति देहांतमावां कन्यापरिग्रहम्॥१५१॥
न करिष्याव इत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तावृषी। योगध्यानपरौ शुद्धौ यथापूर्वं व्यवस्थितौ॥१५२॥
अंबरीषश्च राजा सौ परिपाल्य च मेदिनीम्। सभृत्यज्ञातिसंपन्नो विष्णुलोकं जगाम वै॥१५३॥
मानार्थमंबरीषस्य तथैव मुनिसिंहयोः। रामो दाशरथिर्भूत्वा नात्मवेदीश्वरोऽभवत्॥१५४॥

मुनयश्च तथा सर्वे भृग्वाद्या मुनिसत्तमाः।
माया न कार्या विद्वद्भिरित्याहुः प्रेक्ष्य तं हरिम्॥१५५॥

नारदः पर्वतश्चैव चिरं ज्ञात्वा विचेष्टितम्। मायां विष्णोर्विनिंद्यैव रुद्रभक्तौ बभूवतुः॥१५६॥
एतद्धि कथितं सर्वं मया युष्माकमद्य वै। अंबरीषस्य माहात्म्यं मायावित्वं च वै हरेः॥१५७॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वापि मानवः।
मायां विसृज्य पुण्यात्मा रुद्रलोकं स गच्छति॥१५८॥
इदं पवित्रं परमं पुण्यं वेदैरुदीरितम्।
सायं प्रातः पठेन्नित्यं विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात्॥१५९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे
श्रीमत्याख्यानं नाम पंचमोऽध्यायः॥५॥

सम्बोधित कर विष्णु ने कहा तब ऐसा हुआ। अन्धकार तुरन्त नष्ट हो गया।।१४५-१४९।। चक्र को रोकने पर वह पूर्ववत् स्थिर हो गया। दोनों मुनि छुटकारा पा गये। विष्णु को प्रणाम करके शोक से दुःखी आपस में कहने लगे। ''अब से मृत्यु तक हम किसी कन्या को ग्रहण (विवाह) नहीं करेंगे।'' ऐसी प्रतिज्ञा करके दोनों मुनि शुद्ध मन से पूर्ववत् योग और ध्यान साधना में लग गये।।१५०-१५२।। पृथ्वी पर शासन करने के बाद राजा अम्बरीष अपने अनुचरों, कुटम्बियों के साथ विष्णु लोक को चले गये। अम्बरीष और दोनों मुनियों के मान के लिये राम अपने को ईश्वर न जानते हुये दशरथ के पुत्र रूप में विष्णु ने जन्म लिया। तब भृगु आदि मुनियों ने विष्णु को देखकर कहा, ''विद्वानों को माया न करनी चाहिये।'' बहुत समय के बाद नारद और पर्वत ने विष्णु की माया का अनुभव किया और वे शिव के भक्त हो गये। इस प्रकार मैंने सब कुछ अम्बरीष की महानता और विष्णु का मायावीपन अच्छी तरह तुम लोगों के सामने कहा। जो मनुष्य इसको पढ़े, या सुने, या सुनावै वह माया से रहित होकर इन्द्र लोक को जाता है। वह परमपवित्र वेदों द्वारा कथित कथानक को जो प्रातः और सायंकाल पढ़ेगा वह विष्णु का सायुज्य प्राप्त करेगा।।१५३-१५९।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तरभाग में श्रीमती की कथा
नामक पाँचवा अध्याय समाप्त॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

अलक्ष्मीवृत्तम्

ऋषय ऊचुः

मायावित्यं श्रुतं विष्णोर्देवदेवस्य धीमतः। कथं ज्येष्ठासमुत्पत्तिर्देवदेवाज्जनार्दनात्॥१॥
वक्तुमर्हसि चास्माकं लोमहर्षण तत्त्वतः।

सूत उवाच

अनादिनिधनः श्रीमान्धाता नारायणः प्रभुः॥२॥
जगद्द्वैधमिदं चक्रे मोहनाय जगत्पतिः। विष्णुर्वै ब्राह्मणान्वेदान्वेदधर्मान् सनातनान्॥३॥
श्रियं पद्मां तथा श्रेष्ठां भागमेकमकारयत्। ज्येष्ठामलक्ष्मीमशुभां वेदबाह्यान्नराधमान्॥४॥
अधर्मं च महातेजा भागमेकमकल्पयत्। अलक्ष्मीमग्रतः सृष्ट्वा पश्चात्पद्मां जनार्दनः॥५॥
ज्येष्ठा तेन समाख्याता अलक्ष्मीर्द्विजसत्तमाः। अमृतोद्भववेलायां विषानंतरमुल्बणात्॥६॥
अशुभा सा तथोत्पन्ना ज्येष्ठा इति च वै श्रुतम्। ततः श्रीश्च समुत्पन्ना पद्मा विष्णुपरिग्रहः॥७॥
दुःसहो नाम विप्रर्षिरुपयेमेऽशुभां तदा। ज्येष्ठां तां परिपूर्णोऽसौ मनसा वीक्ष्य धिष्ठिताम्॥८॥
लोकं चचार हृष्टात्मा तया सह मुनिस्तदा। यस्मिन् घोषो हरेश्चैव हरस्य च महात्मनः॥९॥

छठवाँ अध्याय

अलक्ष्मी का कथानक

ऋषिगण बोले

हे रोमहर्षण! बुद्धिमान और देवताओं के स्वामी विष्णु की माया को हम लोगों ने सुना। देवेश विष्णु से दुर्भाग्य की देवी ज्येष्ठा कैसे उत्पन्न हुई? यह आप हम लोगों को बताएँ।

सूत बोले

सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम में भगवान विष्णु जिनका न आदि है न अन्त और जो विश्व के स्वामी हैं, उन्होंने जगत को दो पर्तों में बनाया। एक सेट में ब्राह्मणों, वेदों, वैदिक गुणों और पद्मा श्री की रचना की। विश्व के शरण दाता विष्णु ने दूसरे सेट में ज्येष्ठा अलक्ष्मी और वैदिक वातावरण से अलग लोगों और पाप को बनाया। अलक्ष्मी की रचना के बाद विष्णु ने पद्मा को बनाया। इसलिए अलक्ष्मी ज्येष्ठा (उससे बड़ी) हैं। भयानक विष के बाद अमृत के निकलने के बाद असुरा ज्येष्ठा पैदा हुई। ऐसा सुना जाता है। उसके बाद श्री पद्मा (लक्ष्मी) उत्पन्न हुई जो बाद में विष्णु की पत्नी बनीं।।१-७।। एक ब्राह्मण मुनि दुःसह ने उस अशुभ ज्येष्ठा को मानसिक रूप से अधिष्ठित देखकर उससे विवाह किया। उसके साथ प्रसन्न वह मुनि संसार के चारों ओर घूमने लगा। हे ब्राह्मणों! जहाँ कहीं भी महान् आत्मा विष्णु और शिव के नामों की उच्चस्वर में ध्वनि हो, जहाँ वैदिक मन्त्रों

वेदघोषस्तथा विप्रा होमधूमस्तथैव च। भस्मांगिनो वा यत्रासंस्तत्र तत्र भयार्दिता॥१०॥
पिधाय कर्णौ संयाति धावमाना इतस्ततः। ज्येष्ठामेवंविधां दृष्ट्वा दुःसहो मोहमागतः॥११॥
तया सह वनं गत्वा चचार स महामुनिः। तपो महद्वने घोरे याति कन्या प्रतिग्रहम्॥१२॥
न करिष्यामि चेत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तामृषिः। योगज्ञानपरः शुद्धो यत्र योगीश्वरो मुनिः॥१३॥
तत्रायांतं महात्मानं मार्कंडेयमपश्यत। प्रणिपत्य महात्मानं दुःसहो मुनिमब्रवीत्॥१४॥
भार्येयं भगवन्मह्यं न स्थास्यति कथंचन। किं करोमीति विप्रर्षे ह्यनया सह भार्यया॥१५॥
प्रविशामि तथा कुत्र कुतो न प्रविशाम्यहम्॥

मार्कंडेय उवाच

श्रृणु दुःसह सर्वत्र अकीर्तिरशुभान्विता॥१६॥
अलक्ष्मीरतुला चेयं ज्येष्ठा इत्यभिशब्दिता। नारायणपरा यत्र वेदमार्गानुसारिणः॥१७॥
रुद्रभक्ता महात्मानो भस्मोद्धूलितविग्रहाः। स्थिता यत्र जना नित्यं मा विशेथाः कथंचन॥१८॥
नारायण हृषीकेश पुंडरीकाक्ष माधव। अच्युतानंत गोविंद वासुदेव जनार्दन॥१९॥
रुद्र रुद्रेति रुद्रेति शिवाय च नमो नमः। नमः शिवतरायेति शंकरायेति सर्वदा॥२०॥
महादेव महादेव महादेवेति कीर्तयेत्। उमायाः पतये चैव हिरण्यपतये सदा॥२१॥
हिरण्यबाहवे तुभ्यं वृषांकाय नमो नमः। नृसिंह वामनाचिंत्य माधवेति च ये जनाः॥२२॥
वक्ष्यंति सततं हृष्टा ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा।

के उच्च उच्चारण की ध्वनि हो, जहाँ यज्ञों से धुआँ उठ रहा हो और जहाँ लोग अपने शरीर के अंगों पर भस्म चुपड़े हुए हों, वह दुर्भाग्य की देवी हद से ज्यादा डर जाती थी। वह अपने कानों को मूँद लेती थी और इधर-उधर भागने लगती थी। ज्येष्ठा का इस प्रकार व्यवहार देखकर मुनि दुःसह भ्रम में पड़ गये। उसको साथ लेकर वह वन में चले गये। उस भयानक वन में उन्होंने बड़ी तपस्या की। ज्येष्ठा ने कहा, ''मैं तपस्या नहीं करूँगी।'' और वह एक घर से दूसरे घर को घूमने भटकने लगी। पवित्र मुनि, अग्रणी योगी योगाभ्यास करने लगे। उन्होंने महात्मा मार्कण्डेय को अपनी ओर आते हुए देखा। महामुनि को प्रणाम करके दुःसह ने कहा।।८-१४।। ''हे महामुनि! मेरी यह पत्नी मेरे साथ किसी भी तरह नहीं रहती है। हे ब्राह्मण मुनि! इस स्त्री को लेकर मैं क्या करूँगा? कहाँ मैं प्रवेश करूँगा? और कहाँ प्रवेश नहीं करूँगा?

मार्कण्डेय बोले

हे दुःसह! सुनो, ''यह अशुभ स्त्री ऐसी प्रत्येक जगह अकीर्ति (बदनाम), अलक्ष्मी (अभागी), अतुला (न तुलना करने योग्य) और ज्येष्ठा (सबसे बड़ी) कही जाती है। यह किसी भी प्रकार उन स्थानों में प्रवेश नहीं करेगी जहाँ कि उत्तम आत्माओं, विष्णु के भक्त, वैदिक मार्ग के अनुयायी और रुद्र के भक्त जो कि अपने शरीर में भस्म लगाये हुए उपस्थित हों।।१५-१८।। यह किसी प्रकार उद्यानों में, गोशालाओं और प्रसन्न ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों औद शूद्रों के पास या उनके घरों में प्रवेश नहीं करेगी। जो लोग ओं नारायण, ओं ऋषिकेश, ओं पुण्डरीकाक्ष, ओं माधव, ओं अच्युत, ओं अनन्त, ओं आनन्द, ओं गोविन्द, ओं वासुदेव, ओं जनार्दन, ओं

षष्ठोऽध्यायः

अलक्ष्मीवृत्तम्

ऋषय ऊचुः

मायावित्यं श्रुतं विष्णोर्देवदेवस्य धीमतः। कथं ज्येष्ठासमुत्पत्तिर्देवदेवाज्जनार्दनात्॥१॥
वक्तुमर्हसि चास्माकं लोमहर्षण तत्त्वतः।

सूत उवाच

अनादिनिधनः श्रीमान्धाता नारायणः प्रभुः॥२॥
जगद्द्वैधमिदं चक्रे मोहनाय जगत्पतिः। विष्णुर्वै ब्राह्मणान्वेदान्वेदधर्मान् सनातनान्॥३॥
श्रियं पद्मां तथा श्रेष्ठां भागमेकमकारयत्। ज्येष्ठामलक्ष्मीमशुभां वेदबाह्यान्नराधमान्॥४॥
अधर्मं च महातेजा भागमेकमकल्पयत्। अलक्ष्मीमग्रतः सृष्ट्वा पश्चात्पद्मां जनार्दनः॥५॥
ज्येष्ठा तेन समाख्याता अलक्ष्मीर्द्विजसत्तमाः। अमृतोद्भववेलायां विषानंतरमुल्बणात्॥६॥
अशुभा सा तथोत्पन्ना ज्येष्ठा इति च वै श्रुतम्। ततः श्रीश्च समुत्पन्ना पद्मा विष्णुपरिग्रहः॥७॥
दुःसहो नाम विप्रर्षिरुपयेमेऽशुभां तदा। ज्येष्ठां तां परिपूर्णोऽसौ मनसा वीक्ष्य धिष्ठिताम्॥८॥
लोकं चचार हृष्टात्मा तया सह मुनिस्तदा। यस्मिन् घोषो हरेश्चैव हरस्य च महात्मनः॥९॥

छठवाँ अध्याय

अलक्ष्मी का कथानक

ऋषिगण बोले

हे रोमहर्षण! बुद्धिमान और देवताओं के स्वामी विष्णु की माया को हम लोगों ने सुना। देवेश विष्णु से दुर्भाग्य की देवी ज्येष्ठा कैसे उत्पन्न हुई? यह आप हम लोगों को बताएँ।

सूत बोले

सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम में भगवान विष्णु जिनका न आदि है न अन्त और जो विश्व के स्वामी हैं, उन्होंने जगत को दो पर्तों में बनाया। एक सेट में ब्राह्मणों, वेदों, वैदिक गुणों और पद्मा श्री की रचना की। विश्व के शरण दाता विष्णु ने दूसरे सेट में ज्येष्ठा अलक्ष्मी और वैदिक वातावरण से अलग लोगों और पाप को बनाया। अलक्ष्मी की रचना के बाद विष्णु ने पद्मा को बनाया। इसलिए अलक्ष्मी ज्येष्ठा (उससे बड़ी) हैं। भयानक विष के बाद अमृत के निकलने के बाद असुरा ज्येष्ठा पैदा हुई। ऐसा सुना जाता है। उसके बाद श्री पद्मा (लक्ष्मी) उत्पन्न हुई जो बाद में विष्णु की पत्नी बनीं।।१-७।। एक ब्राह्मण मुनि दुःसह ने उस अशुभ ज्येष्ठा को मानसिक रूप से अधिष्ठित देखकर उससे विवाह किया। उसके साथ प्रसन्न वह मुनि संसार के चारों ओर घूमने लगा। हे ब्राह्मणों! जहाँ कहीं भी महान् आत्मा विष्णु और शिव के नामों की उच्चस्वर में ध्वनि हो, जहाँ वैदिक मन्त्रों

वेदघोषस्तथा विप्रा होमधूमस्तथैव च। भस्मांगिनो वा यत्रासंस्तत्र तत्र भयार्दिता॥१०॥
पिधाय कर्णौ संयाति धावमाना इतस्ततः। ज्येष्ठामेवंविधां दृष्ट्वा दुःसहो मोहमागतः॥११॥
तया सह वनं गत्वा चचार स महामुनिः। तपो महद्वने घोरे याति कन्या प्रतिग्रहम्॥१२॥
न करिष्यामि चेत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तामृषिः। योगज्ञानपरः शुद्धो यत्र योगीश्वरो मुनिः॥१३॥
तत्रायांतं महात्मानं मार्कंडेयमपश्यत। प्रणिपत्य महात्मानं दुःसहो मुनिमब्रवीत्॥१४॥
भार्येयं भगवन्मह्यं न स्थास्यति कथंचन। किं करोमीति विप्रर्षे ह्यनया सह भार्यया॥१५॥
प्रविशामि तथा कुत्र कुतो न प्रविशाम्यहम्॥

मार्कंडेय उवाच

श्रृणु दुःसह सर्वत्र अकीर्तिरशुभान्विता॥१६॥
अलक्ष्मीरतुला चेयं ज्येष्ठा इत्यभिशब्दिता। नारायणपरा यत्र वेदमार्गानुसारिणः॥१७॥
रुद्रभक्ता महात्मानो भस्मोद्धूलितविग्रहाः। स्थिता यत्र जना नित्यं मा विशेथाः कथंचन॥१८॥
नारायण हृषीकेश पुंडरीकाक्ष माधव। अच्युतानंत गोविंद वासुदेव जनार्दन॥१९॥
रुद्र रुद्रेति रुद्रेति शिवाय च नमो नमः। नमः शिवतरायेति शंकरायेति सर्वदा॥२०॥
महादेव महादेव महादेवेति कीर्तयेत्। उमायाः पतये चैव हिरण्यपतये सदा॥२१॥
हिरण्यबाहवे तुभ्यं वृषांकाय नमो नमः। नृसिंह वामनाचिंत्य माधवेति च ये जनाः॥२२॥
वक्ष्यंति सततं हृष्टा ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा।

के उच्च उच्चारण की ध्वनि हो, जहाँ यज्ञों से धुआँ उठ रहा हो और जहाँ लोग अपने शरीर के अंगों पर भस्म चुपड़े हुए हों, वह दुर्भाग्य की देवी हद से ज्यादा डर जाती थी। वह अपने कानों को मूँद लेती थी और इधर-उधर भागने लगती थी। ज्येष्ठा का इस प्रकार व्यवहार देखकर मुनि दुःसह भ्रम में पड़ गये। उसको साथ लेकर वह वन में चले गये। उस भयानक वन में उन्होंने बड़ी तपस्या की। ज्येष्ठा ने कहा, "मैं तपस्या नहीं करूँगी।" और वह एक घर से दूसरे घर को घूमने भटकने लगी। पवित्र मुनि, अग्रणी योगी योगाभ्यास करने लगे। उन्होंने महात्मा मार्कण्डेय को अपनी ओर आते हुए देखा। महामुनि को प्रणाम करके दुःसह ने कहा।।८-१४।। "हे महामुनि! मेरी यह पत्नी मेरे साथ किसी भी तरह नहीं रहती है। हे ब्राह्मण मुनि! इस स्त्री को लेकर मैं क्या करूँगा? कहाँ मैं प्रवेश करूँगा? और कहाँ प्रवेश नहीं करूँगा?

मार्कण्डेय बोले

हे दुःसह! सुनो, "यह अशुभ स्त्री ऐसी प्रत्येक जगह अकीर्ति (बदनाम), अलक्ष्मी (अभागी), अतुला (न तुलना करने योग्य) और ज्येष्ठा (सबसे बड़ी) कही जाती है। यह किसी भी प्रकार उन स्थानों में प्रवेश नहीं करेगी जहाँ कि उत्तम आत्माओं, विष्णु के भक्त, वैदिक मार्ग के अनुयायी और रुद्र के भक्त जो कि अपने शरीर में भस्म लगाये हुए उपस्थित हों।।१५-१८।। यह किसी प्रकार उद्यानों में, गोशालाओं और प्रसन्न ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों औद शूद्रों के पास या उनके घरों में प्रवेश नहीं करेगी। जो लोग ओं नारायण, ओं ऋषिकेश, ओं पुण्डरीकाक्ष, ओं माधव, ओं अच्युत, ओं अनन्त, ओं आनन्द, ओं गोविन्द, ओं वासुदेव, ओं जनार्दन, ओं

वैश्याः शूद्राश्च ये नित्यं तेषां धनगृहादिषु। आरामे चैव गोष्ठेषु न विशेथाः कथंचन॥२३॥
ज्वालामालाकरालं च सहस्रादित्यसन्निभम्। चक्रं विष्णोरतीवोग्रं तेषां हंति सदाशुभम्॥२४॥
स्वाहाकारो वषट्कारो गृहे यस्मिन् हि वर्तते। तद्धित्वा चान्यमागच्छ सामघोषोथ यत्र वा॥२५॥
वेदाभ्यासरता नित्यं नित्यकर्मपरायणाः। वासुदेवार्चनरता दूरतस्तान्विसर्जयेत्॥२६॥
अग्निहोत्रं गृहे येषां लिंगार्चा वा गृहेषु च। वासुदेवतनुर्वापि चंडिका यत्र तिष्ठति॥२७॥
दूरतो व्रज तान् हित्वा सर्वपापविवर्जितान्। नित्यनैमित्तिकैर्यज्ञैर्यजंति च महेश्वरम्॥२८॥
तान् हित्वा व्रज चान्यत्र दुःसह त्वं सहानया। श्रोत्रिया ब्राह्मणा गावो गुरवोऽतिथयः सदा॥२९॥
रुद्रभक्ताश्च पूज्यंते यैर्नित्यं तान् विवर्जयेत्॥

दुःसह उवाच

यस्मिन्प्रवेशो योग्यो मे तद्ब्रूहि मुनिसत्तम॥३०॥
त्वद्वाक्याद्भयनिर्मुक्तो विशान्मेषां गृहे सदा।

मार्कण्डेय उवाच

न श्रोत्रिया द्विजा गावो गुरवोऽतिथयः सदा। यत्र भर्ता च भार्या च परस्परविरोधिनौ॥३१॥

रुद्र, ओं रुद्र, शिव को नमस्कार, शिवतर को, शंकर को नमस्कार, ओं महादेव, ओं उमापति, ओं सोने की भुजाधारी। ओं वृषध्वज, ओं नृसिंह, ओं वामन, ओं अतुलनीय, ओं माधव इन नामों का उच्चारण करते और इनकी स्तुति कहते हों।।१९-२३।। विष्णु का चक्र जो कि ज्वाला की समूह से बहुत काल कराल है और हजारों सूर्य के समान है, ऐसा उग्र चक्र उनके अशुभों को सदा नष्ट करता है।।२४।। जिस घर में स्वाहाकार और वषट्कार होता हो, जहाँ शिव के लिंग की पूजा होती हो और जहाँ वासुदेव की पूजा में लोग लीन हों उस घर को छोड़ देना। जहाँ उच्च स्वर से सामवेद के मन्त्रों का उच्चारण होता हो और जहाँ वैदिक प्रार्थनाओं को दोहराने में लोग लगे हों और प्रतिदिन के धार्मिक कृत्य में लीन हों तथा वासुदेव की पूजा में लीन हों, उन घरों को दूर से ही छोड़ देना।।२५-२६।। जहाँ पर अग्नि होम कार्य पूरा किया जाता हो, जहाँ लिंग की पूजा होती हो, और जहाँ पर वासुदेव की मूर्ति हो या चण्डिका विराजमान हों, उन घरों को बचा देना। पापों से दूर रहने वाले लोगों को भी तरह दे देना। लोग जो कि नित्य और नैमित्तिक यज्ञ द्वारा महेश्वर की पूजा करते हों। हे दुःसह! इस स्त्री के साथ वहाँ न जाकर कहीं और जगह जाना। जिन लोगों के द्वारा वेद पढ़े जाते हों, गायों, गुरुओं और अतिथियों और रुद्र भक्तों की नित्य पूजा की जाती हो उन लोगों को छोड़ देना चाहिए।।२७-२९।।

दुःसह ने कहा

हे मुनिश्रेष्ठ! जहाँ पर मेरा प्रवेश उचित हो और मैं निडर होकर वहाँ प्रवेश कर सकूँ, उन स्थानों को बताइए।।३०।।

मार्कण्डेय ने कहा

अपनी पत्नी के साथ निडर होकर वहाँ प्रवेश कर सकोगे जिस घर में पति और पत्नी आपस में विरोधी हों और जहाँ कि वैदिक गीतों में पारंगत ब्राह्मण, गायें, और अतिथि जहाँ पर कभी भी उपस्थित न होते हों, जहाँ

सभार्यस्त्वं गृहं तस्य विशेथा भयवर्जितः। देवदेवो महादेवो रुद्रस्त्रिभुवनेश्वरः॥३२॥
विनिंद्यो यत्र भगवान् विशस्व भयवर्जितः। वासुदेवरतिर्नास्ति यत्र नास्ति सदाशिवः॥३३॥
जपहोमादिकं नास्ति भस्म नास्ति गृहे नृणाम्। पर्वण्यभयर्चनं नास्ति चतुर्दश्यां विशेषतः॥३४॥
कृष्णाष्टम्यां च रुद्रस्य संध्यायां भस्मवर्जिताः। चतुर्दश्यां महादेवं न यजंति च यत्र वै॥३५॥
विष्णोर्नामविहीनां ये संगताश्च दुरात्मभिः। नमः कृष्णाय शर्वाय शिवाय परमेष्ठिने॥३६॥
ब्राह्मणाश्च नरा मूढा न वदंति दुरात्मकाः। तत्रैव सततं वत्स सभार्यस्त्वं समाविश॥३७॥
वेदघोषो न यत्रास्ति गुरुपूजादयो न च। पितृकर्मविहीनांस्तु सभार्यस्त्वं समाविश॥३८॥
रात्रौ रात्रौ गृहे यस्मिन् कलहो वर्तते मिथः। अनया सार्धमनिशं विश त्वं भयवर्जितः॥३९॥
लिंगार्चनं यस्य नास्ति यस्य नास्ति जपादिकम्। रुद्रभक्तिर्विनिंदा च तत्रैव विश निर्भयः॥४०॥
अतिथिः श्रोत्रियो वापि गुरुर्वा वैष्णवोपि वा। न संति यद्गृहे गावः सभार्यस्त्वं समाविश॥४१॥
बालानां प्रेक्षमाणानां यत्रादत्त्वा त्वभक्षयन्। भक्ष्याणि तत्र संहृष्टः सभार्यस्त्वं समाविश॥४२॥
अनभ्यर्च्य महादेवं वासुदेवमथापि वा। अहुत्वा विधिवद्यत्र तत्र नित्यं समाविश॥४३॥
पापकर्मरता मूढा दयाहीनाः परस्परम्। गृहे यस्मिन्समासंते देशे वा तत्र संविश॥४४॥

देवताओं के देवता तीनों लोकों के स्वामी महेश्वर की निन्दा होती हो, उस स्थान पर तुम रंच मात्र भय के बिना प्रवेश करना। अपनी पत्नी के साथ उन घरों में बेहिचक प्रवेश करना। जहाँ वासुदेव की भक्ति न हो, जहाँ सदाशिव उपस्थित न हों, जय होम आदि न किये जाते हों, जिस घर में भस्म न रखी जाती हो, पर्वों पर विशेष रूप से चतुर्दशी और अष्टमी (कृष्ण पक्ष की) में रुद्र की पूजा न की जाती हो, जिन घरों में प्रात; और सायंकाल ब्राह्मण लोग संध्या न करते हों, जहाँ वे चतुर्दशी तिथि को महादेव की पूजा न करते हों। जहाँ पर विष्णु के नामों से लोग रहित हों, जहाँ दुष्ट लोग सम्पर्क रखते हों, वहाँ पर अपनी पत्नी के साथ निरन्तर प्रवेश करो। जहाँ ब्राह्मण लोग दुष्ट हों और कृष्ण को नमस्कार, शिव को नमस्कार, सर्व को नमस्कार, परमेष्ठी को नमस्कार ये मन्त्र न दोहराते हों।।३१-३७।। अपनी पत्नी के पास तुम उन स्थानों में प्रवेश करो जहाँ वेद मन्त्रों का उच्च स्वर से पाठ न होता हो, जहाँ गुरुओं की पूजा न होती हो, और जहाँ लोग पितृकर्म न करते हों।।३८।। इस महिला के साथ निडर होकर सदा प्रवेश करना जिन घरों में हर रात आपस में लोगों में कलह होता हो।।३९।। जहाँ पर लिंग की पूजा न होती हो, जहाँ जप न किया जाता हो और रुद्र की भक्ति जहाँ निन्दित हो, वहाँ निर्भीकता से प्रवेश करना।।४०।। वहाँ अपनी पत्नी के साथ उस घर में प्रवेश करना जहाँ पर अतिथि, श्रोत्रिय ब्राह्मण, गुरु, वैष्णव और गायें उपस्थित न हो।।४१।। तुम प्रसन्नतापूर्वक अपनी पत्नी के साथ उस स्थान में प्रवेश करना जहाँ खाने पीने की चीजों को लोग पाने के लिए निहारते हुए बच्चों को न देकर स्वयं खाते हों।।४२।। जहाँ पर महादेव की पूजा न करके, विधिपूर्वक हवन न करके, लोग रहते हों, वहाँ पर तुम प्रवेश करना।।४३।। जहाँ लोग पापमय क्रिया-कलापों में लगे हुए हों, लोग निर्दयी हों, आपस में सद्भावना न रखते हों, उस घर और देश में तुम प्रवेश करना।।४४।। उस घर में पहुँचना जहाँ घरवालियाँ

प्राकारागारविध्वंसा न चैवेड्या कुटुंबिनी। तद्गृहं तु समासाद्य वस नित्यं हि हृष्टधीः॥४५॥
यत्र कंटकिनो वृक्षा यत्र निष्पाववल्लरी। ब्रह्मवृक्षश्च यत्रास्ति सभार्यस्त्वं समा विश॥४६॥
अगस्त्यार्कादयो वापि बंधुजीवो गृहेषु वै। करवीरो विशेषेण नंद्यावर्तमथापि वा॥४७॥
मल्लिका वा गृहे येषां सभार्यस्त्वंसमाविश। कन्या च यत्र वै वल्ली द्रोही वा च जटी गृहे॥४८॥
बहुला कदली यत्र सभार्यस्त्वं समाविश। तालं तमालं भल्लातं तित्तिडीखंडमेव च॥४९॥
कदंबः खादिरं वापि सभार्यस्त्वं समाविश। न्यग्रोधं वा गृहे येषामश्वत्थं चूतमेव वा॥५०॥
उदुंबरं वा पनसं सभार्यस्त्वं समाविश। यस्य काकगृहं निंबे आरामे वा गृहेपि वा॥५१॥
दंडिनी मुंडिनी वापि सभार्यस्त्वं समाविश। एका दासी गृहे यत्र त्रिगवं पंचमाहिषम्॥५२॥
षडश्वं सप्तमातंगं सभार्यस्त्वं समाविश। यस्य काली गृहे देवी प्रेतरूपा च डाकिनी॥५३॥
क्षेत्रपालोथवा यत्र सभार्यस्त्वं समाविश। भिक्षुबिंबं च वै यस्य गृहे क्षपणकं तथा॥५४॥
बौद्धं वा बिंबमासाद्य तत्र पूर्णं समाविश। शयनासनकालेषु भोजनाटनवृत्तिषु॥५५॥
येषां वदति नो वाणी नामानि च हरेः सदा। तद्गृहं ते समाख्यातं सभार्यस्य निवेशितुम्॥५६॥
पाषंडाचारनिरताः श्रोतस्मार्तबहिष्कृताः। विष्णुभक्तिविनिर्मुक्ता महादेवविनिंदकाः॥५७॥
नास्तिकाश्च शठा यत्र सभार्यस्त्वंसमाविश। सर्वस्मादधिकत्वं ये न वदंति पिनाकिनः॥५८॥
साधारणं स्मरंत्येनं सभार्यस्त्वं समाविश। ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः शक्रः सर्वसुरेश्वरः॥५९॥
रुद्रप्रसादजाश्चेति न वदंति दुरात्मकाः। ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः शक्रश्च सम एव च॥६०॥
वदंति मूढाः खद्योतं भानुं वा मूढचेतसः। तेषां गृहे तथा क्षेत्र आवासे वा सदाऽनया॥६१॥

अपने घरों को साफ-सुथरा न रखती हों, जो घर और जिसकी चाहारदिवारी गिरी हो और जहाँ स्त्रियाँ प्रशंसा की पात्र न हों, वहाँ सदा प्रसन्न मन से ठहरना।।४५।। जहाँ पर काँटेदार पेड़ हों, जहाँ पावटा नामक लता हो, जहाँ ब्रह्म वृक्ष (पलाश) हो। अगर घर के भीतर अगस्त्य, मदार, बन्धुजीव, मल्लिका, कन्या लता, तगर, द्रोही (नीम की एक जाति), जटामासी, नील, काला केला, ताल, तमाल, भेल, तित्तिडीखण्ड, करवीर, कदंब, खादिर, बरगद, पीपल, आम, गूलर, कटहल, नीम में कौओं के घोंसले, नीम का पेड़ घर में या पार्क में, दण्डिनी और मुण्डिनी हों।।४६-५१।। जिस घर में अकेली एक दासी (नौकरानी) हो, जहाँ पर तीन गायें, पाँच घोड़े, पाँच हाथियाँ हो, वहाँ तुम अपनी पत्नी के साथ प्रवेश करो। जिस घर में काली देवी के रूप में हो, डाकिनी प्रेत के रूप में हो और जहाँ क्षेत्रपाल (पवित्र केन्द्रों के अभिभावक) जिस घर में बौद्ध भिक्षुओं की मूर्ति या बुद्ध की मूर्ति हो, वहाँ पर बेखटके प्रवेश करो। जिन घरों में सोने के लिए जाते समय, आसन पर बैठते समय, इधर-उधर अपने कामों में लगे रहते समय, जैसे—भोजन करते समय विष्णु का नाम न लिया जाय, वे घर तुम्हारे ही हैं। उनमें तुम सपत्नीक प्रवेश करो।।५२-५६।। जहाँ लोग पाखण्ड आचार में लगे हों और श्रौत और स्मार्त कार्यों को छोड़ दिये हों, विष्णु की भक्ति न करते हों और महादेव के निंदक हों, जहाँ पर नास्तिक और मूर्ख हों, वहाँ पर अपनी पत्नी सहित प्रवेश करो। जो लोग पिनाकधारी शिव को सब से अधिक न मानते हों और उनको साधारण मूर्ति की तरह समझते हों। वहाँ पर सपत्नीक प्रवेश करो। वे जो केवल ब्रह्म को, विष्णु

विश भुंक्ष्व गृहं तेषां अपि पूर्णमनन्यधीः। येऽश्नंति केवलं मूढाः पक्वमन्नं विचेतसः॥६२॥
स्नानमंगलहीनाश्च तेषां त्वं गृहमाविश। या नारी शौचविभ्रष्टा देहसंस्कारवर्जिता॥६३॥
सर्वभक्षरता नित्यं तस्याः स्थाने समाविश। मलिनास्याः स्वयं मर्त्या मलिनांबरधारिणः॥६४॥
मलदंता गृहस्थाश्च गृहे तेषां समाविश। पादशौचविनिर्मुक्ताः संध्याकाले च शायिनः॥६५॥
संध्यायामश्न ते ये वै गृहं तेषां समाविश। अत्याशनरता मर्त्या अतिपानरता नराः॥६६॥
द्यूतवादक्रियामूढाः गृहे तेषां समाविश। ब्रह्मस्वहारिणो ये चायोग्यांश्चैव यजंति वा॥६७॥
शूद्रान्नभोजिनो वापि गृहं तेषां समाविश। मद्यपानरताः पापा मांसभक्षणतत्पराः॥६८॥
परदाररता मर्त्या गृहं तेषां समाविश। पर्वण्यनर्चाभिरता मैथुने वा दिवा रताः॥६९॥
संध्यायां मैथुनं येषां गृहे तेषां समाविश। पृष्ठतो मैथुनं येषां श्वानवन्मृगवच्च वा॥७०॥
जले वा मैथुनं कुर्यात्सभार्यस्त्वं समाविश। रजस्वलां स्त्रियं गच्छेच्चांडालीं वा नराधमः॥७१॥
कन्यां वा गोगृहे वापि गृहं तेषां समाविश। बहुना किं प्रलापेन नित्यकर्मबहिष्कृताः॥७२॥
रुद्रभक्तिविहीना ये गृहं तेषां समाविश। शृंगैर्दिव्यौषधैः क्षुद्रैः शेफ आलिप्य गच्छति॥७३॥

और देवताओं के शासक इन्द्र को यह न मानते हो कि ये रुद्र की कृपा से उत्पन्न हुए हों, मूढ़ लोग ये कहते हैं कि भगवान् विष्णु, इन्द्र, शिव के बराबर हैं, जो जुगुनू और सूर्य दोनों बराबर मानते हों। यहाँ तक कि उनके घर सब प्रकार से समृद्ध भी हैं, तब भी वहाँ बिना डर के अपनी पत्नी के साथ प्रवेश करो और मौज करो।।५७-६१।। उन मूर्ख लोगों के आवास में प्रवेश करो जो पकाये गये भोजन को स्वयं खाते हों तथा जो स्नान और मंगल कार्य से रहित हैं। उनके घरों में प्रवेश करो। उस घर में प्रवेश करो जहाँ स्त्री स्वच्छता की आदतों और देह के संस्कार से रहित हो या जो सब प्रकार अभक्ष्य प्रदार्थ को खाने में लगी हो। उसके घर में प्रवेश करो जिसके मुँह गन्दे हों, जो गन्दे वस्त्र पहनते हों, जिनके दाँत गन्दे हों, ऐसे गृहस्थों के घर में प्रवेश करो। जो अपने घरों को भलीभाँति न धोते हों, संध्याकाल में सोते हों और संध्या के समय भोजन करते हों, इनके ारों में प्रवेश करो।।६२-६५।।

जो लोग बहुत आहारी हों, अधिक पियक्कड़ हों, जो मूर्खता से जुआ खेलने में लगे हों और बकवासी हों, व्यर्थ वाद-विवाद करते हों, उनके घरों में प्रवेश करो। उन लोगों के धरों में प्रवेश करो जो ब्राह्मणों के धन का अपहरण करते हों। जो शूदों द्वारा बनाये भोजन को खाते हों, उनके घरों में प्रवेश करो। जो मद्यपान में रत हों, जो माँस भक्षी हों, जो दूसरों की स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करने में लगे हों, उनके घरों में प्रवेश करो।।६६-६८।। उन लोगों के घरों में प्रवेश करो जो दिन में मैथुन (स्त्री से भोग) करते हों। जो पर्वों पर भी पूजापाठ न करते हों, संध्या काल में अपनी पत्नी से मैथुन करते हों। जो कुत्तों की तरह और पशुओं की भाँति पीठ पर से मैथुन करते हों, या जल में मैथुन करते हों, उनके घरों में पत्नी सहित प्रवेश करो। जो अधम पुरुष रजस्वला स्त्री से, चाण्डाली से मैथुन करता हो, जो कन्या के साथ मैथुन करे या गोशाला में मैथुन करे उसके घर में प्रवेश करो। अधिक कहने का क्या प्रयोजन? उनके घरों में प्रवेश करो जो नित्य कर्म (संध्या पूजा आदि) न करते हों या रुद्र

भगद्रावं करोत्यस्मात्सभार्यस्त्वं समाविश॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिः श्रीमान्निर्माज्य नयने तदा॥७४॥

ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मसंकाशस्तत्रैवांतर्द्धिमातनोत् । दुःसहश्च तथोक्तानि स्थानानि च समीयिवान्॥७५॥

विशेषाद्देवदेवस्य विष्णोर्निंदारतात्मनाम्।

सभार्यो मुनिशार्दूलः सैषा ज्येष्ठा इति स्मृता॥७६॥

दुःसहस्तामुवाचेदं तडागाश्रममंतरे। आस्व त्वमत्र चाहं वै प्रवेक्ष्यामि रसातलम्॥७७॥

आवयोः स्थानमालोक्य निवासार्थं ततः पुनः। आगमिष्यामि ते पार्श्वमित्युक्ता तमुवाच सा॥७९॥

किमश्नामि महाभाग को मे दास्यति वै बलिम्।

इत्युक्तस्तां मुनिः प्राह याः स्त्रियस्त्वां यजंति वै॥७९॥

बलिभिः पुष्पधूपैश्च न तासां च गृहं विश। इत्युक्त्वा त्वाविशत्तत्र पातालं बिलयोगतः॥८०॥

अद्यापि च विनिर्मग्नो मुनिः स जलसंस्तरे। ग्रामपर्वतबाह्येषु नित्यमास्तेऽशुभा पुनः॥८१॥

प्रसंगाद्देवदेवेशो विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः। लक्ष्म्या दृष्टस्तया लक्ष्मीः सा तमाह जनार्दनम्॥८२॥

भर्ता गतो महाबाहो बिलं त्यक्त्वा स मां प्रभो। अनाथाहं जगन्नाथ वृत्तिं देहि नमोस्तु ते॥८३॥

की भक्ति से विहीन हैं, उनके घरों में प्रवेश करो। जो बनावटी (कृत्रिम) लिंग से, साधारण या दिव्य औषधियों को अपने लिंग पर चुपड़कर मैथुन करते हों, उनके घरों में प्रवेश करो।।६९-७५।।

सूत बोले

ऐसा कहकर श्रीमान मुनि ब्रह्मर्षि अपने नेत्रों को पोंछकर वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। दुःसह भी उपरोक्त स्थानों को चले गये। श्रेष्ठ मुनि ज्येष्ठा के साथ विशेष रूप से उन घरों को गये जहाँ पर भगवान विष्णु की निन्दा में लोग लगे हुये थे। यह वह देवी है जिसको ज्येष्ठा के नाम से जाना जाता है।।७६।। एक बार दुःसह ने उससे कहा। तुम इस तालाब के किनारे इस कुटी में रहो। मैं पाताल लोक में प्रवेश करूँगा। वहाँ दोनों के रहने योग्य निवास की तलाश करके फिर तुम्हारे पास लौटूँगा। ऐसा कहने पर ज्येष्ठा ने कहा, ''मैं यहाँ क्या खाऊँगी? मुझको यहाँ कौन भोजन देगा?'' उसके वैसा कहने पर मुनि ने कहा।।७७-७८।। उन स्त्रियों के घरों में तुम मत प्रवेश करना जो तुमको भोजन के साथ धूप, पुष्प और सुगंधित घूप से पूजा करती हैं। इतना कहकर मुनि एक बिल के रास्ते से पाताल लोक में चले गये। वहाँ पर मुनि आज भी जल के स्तर में रहते हैं। अशुभता की देवी ज्येष्ठा गाँवों और पर्वतों के बाहर नित्य रहती हैं।।७९-८१।। प्रसंग वश अकस्मात् देवेश त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णु लक्ष्मी के साथ थे। उनको उसने (अलक्ष्मी ने) देखा और भगवान् जनार्दन विष्णु से कहा, ''हे महाबाहु! मेरे पति मुझको छोड़कर बिल मार्ग से पाताल चले गये। मैं अनाथ हूँ। हे विश्वेश्वर! आप को प्रणाम। आप मुझको वृत्ति (भोजन आदि का साधन) दीजिये''।।८२-८३।।

सूत उवाच

इत्युक्तो भगवान्विष्णुः प्रहस्याह जनार्दनः। ज्येष्ठामलक्ष्मीं देवेशो माधवो मधुसूदनः॥८४॥

श्रीविष्णुरुवाच

ये रुद्रमनघं शर्वं शंकरं नीललोहितम्। अंबां हैमवतीं वापि जनित्रीं जगतामपि॥८५॥
मद्भक्तान्निंदयंत्यत्र तेषां वित्तं तवैव हि। येपि चैव महादेवं विनिंद्यैव यजंति माम्॥८६॥
मूढा ह्यभाग्या मद्भक्ता अपि तेषां धनं तव। यस्याज्ञया ह्यहं ब्रह्मा प्रसादाद्वर्तते सदा॥८७॥
ये यजंति विनिंद्यैव मम विद्वेषकारकाः। मद्भक्ता नैव ते भक्ता इव वर्तंति दुर्मदाः॥८८॥
तेषां गृहं धनं क्षेत्रमिष्टापूर्तं तवैव हि॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तां परित्यज्य लक्ष्म्याऽलक्ष्मीं जनार्दनः॥८९॥
जजाप भगवान्रुद्रमलक्ष्मीक्षयसिद्धये। तस्मात्प्रदेयस्तस्यै च बलिर्नित्यं मुनीश्वराः॥९०॥
विष्णुभक्तैर्न संदेहः सर्वयत्नेन सर्वदा। अंगनाभिः सदा पूज्या बलिभिर्विविधैर्द्विजाः॥९१॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्। अलक्ष्मीवृत्तमनघो लक्ष्मीवाँल्लभते गतिम्॥९२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे अलक्ष्मीवृत्तं नाम षष्ठोऽध्याय॥६॥

विष्णु बोले

"जो निष्पाप रुद्र शर्व, शंकर, नीललोहित, शिव और जगत की माता हैमवती (पर्वती) और मेरे भक्तों की चिन्ता न करते हैं, जो महादेव की निन्दा करके मेरी पूजा करते हैं उनका वित्त तो तुम्हारा ही हैं। जिसकी पूजा से मैं और ब्रह्मा सदा अस्तित्व में हैं। ऐसे अभागे, मूढ़ मेरे भक्तों का धन भी तुम्हारा है। जो मुझसे विद्वेष करके मेरी निन्दा करते हों, मेरी भक्ति न करते हों, मेरी पूजा भक्त की तरह न करते हों वे मेरे भक्त नहीं हैं। उनका धन-धान, खेत-बारी, उनके द्वारा किये गये शुभ कार्य भी तुम्हारा ही है। कूप, तालाब आदि का खनन भी तुम्हारा ही है"॥८४-८८॥

सूत बोले

ऐसा कहकर भगवान विष्णु लक्ष्मी सहित वहाँ से चले गये। तब विष्णु ने अलक्ष्मी के नाश के लिए भगवान रुद्र का जाप किया। तब से विष्णु भक्तों के द्वारा सदा उस अलक्ष्मी को बलि दी जाती है। हे ब्राह्मणों! स्त्रियों द्वारा अनेक प्रकार की बलि देकर अलक्ष्मी की पूजा करनी चाहिये। वह जो कि इस अलक्ष्मी कथानक को पढ़ता है, सुनता है या उत्तम ब्राह्मणें को सुनाता है वह पाप से निष्पाप होकर लक्ष्मीवान होता है और मोक्ष को प्राप्त करता है॥८९-९२॥

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में अलक्ष्मी का कथानक (उत्पत्ति और क्रियाकलाप) नामक छठवाँ अध्याय समाप्त॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

द्वादशाक्षरप्रशंसा

ऋषय ऊचुः

किंजपान्मुच्यते जंतुः सर्वलोकभयादिभिः। सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम्॥१॥
अलक्ष्मीं वाथ संत्यज्य गमिष्यति जपेन वै। लक्ष्मीवासो भवेन्मर्त्यः सूत वक्तमिहार्हसि॥२॥

सूत उवाच

पुरा पितामहेनोक्तं वसिष्ठाय महात्मने। वक्ष्ये संक्षेपतः सर्वं सर्वलोकहिताय वै॥३॥
शृण्वंतु वचनं सर्वे प्रणिपत्य जनार्दनम्। देवदेवमजं विष्णुं कृष्णमच्युतमव्ययम्॥४॥
सर्वपापहरं शुद्धं मोक्षदं ब्रह्मवादिनम्। मनसा कर्मणा वाचा यो विद्वान्पुण्यकर्मकृत्॥५॥
नारायणं जपेन्नित्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम्। स्वपन्नारायणं देवं गच्छन्नारायणं तथा॥६॥
भुंजन्नारायणं विप्रास्तिष्ठञ्जाग्रत्सनातनम्। उन्मिषन्निमिषन्वापि नमो नारायणेति वै॥७॥
भोज्यं पेयं च लेह्यं च नमो नारायणेति च। अभिमंत्र्य स्पृशन्भुंक्ते स याति परमां गतिम्॥८॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति च सतां गतिम्। अलक्ष्मीश्च मया प्रोक्ता पत्नी या दुःसहस्य च॥९॥

सातवाँ अध्याय

द्वादशाक्षर मंत्र की प्रशंसा

ऋषिगण बोले

प्राणी लोग किस मन्त्र के जपने से सांसारिक भयों से मुक्त हो जाते हैं। वे कैसे पापों से मुक्त होते हैं और मोक्ष प्राप्त करते हैं। किस जप से वह अलक्ष्मी से बच सकता है और कैसे व्यक्ति लक्ष्मी का वास (सौभाग्य) प्राप्त कर सकता है। हे सूत! आप इसको कहने के योग्य हैं।।१-२।।

सूत बोले

सब लोकों के कल्याण के लिए मैं संक्षेप में कहूँगा जो कि पहले ब्रह्मा ने महात्मा वसिष्ठ से इस विषय में कहा था।।३।। विष्णु जो देवताओं के स्वामी हैं, अज हैं, जो कि कृष्ण हैं, अच्युत और सब पापों के हरने वाले, सब ब्रह्मवादियों के मोक्ष देने वाले हैं। सब लोग उनको प्रणाम करके मेरी बातों को सुनो! वह जो कि विद्वान है, वह जो पुण्य कर्म करता और नारायण के नामों को जपता और मन से उनको प्रणाम करके जाते हुए मन से वाणी से और शरीर से उनको स्मरण करता है सोते हुए, चलते हुए, भोजन करते हुए, खड़े हुए, जागते हुए, आँख खोले हुए, नारायण का नाम लेता हैं। हे ब्राह्मणों, नमो नारायण इस शब्दों को जो दोहराता है, जो अन्तरात्मा विष्णु को याद करता है। भोज्य पेय और लेह्य पदार्थों का उपयोग करता है, इस मन्त्र से अभिमन्त्रित उन वस्तुओं को छूते हुए खाता है। वह मोक्ष को प्राप्त करता है।।४-८।। वह सब इन बातों से छुटकारा पाता है और उत्तम

नारायणपदं श्रुत्वा गच्छत्येव न संशयः। या लक्ष्मीर्देवदेवस्य हरेः कृष्णस्य वल्लभा॥१०॥
गृहे क्षेत्रे तथावासे तनौ वसति सुव्रताः।
आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः॥११॥
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा। किं तस्य बहुभिर्मंत्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः॥१२॥
नमो नारायणायेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः। तस्मात्सर्वेषु कालेषु नमो नारायणेति च॥१३॥
जपेत्स याति विप्रेंद्रा विष्णुलोकं सबांधवः। अन्यच्च देवदेवस्य शृण्वंतु मुनिसत्तमाः॥१४॥
मंत्रो मया पुराभ्यस्तः सर्ववेदार्थसाधकः। द्वादशाक्षरसंयुक्तो द्वादशात्मा पुरातनः॥१५॥
तस्यैवेह च माहात्म्यं संक्षेपात्प्रवदामि वः। कश्चिद्द्विजो महाप्राज्ञस्तपस्तप्त्वा कथंचन॥१६॥
पुत्रमेकं तयोत्पाद्य संस्कारैश्च यथाक्रमम्। योजयित्वा यथाकालं कृतोपनयनं पुनः॥१७॥
अध्यापयामास तदा स च नोवाच किंचन।
न जिह्वा स्पंदते तस्य दुःखितोऽभूद्द्विजोत्तमः॥१८॥
वासुदेवेति नियतमैतरेयो वदत्यसौ। पिता तस्य तथा चान्यां परिणीय यथाविधि॥१९॥
पुत्रानुत्पादयामास तथैव विधिपूर्वकम्। वेदानधीत्य संपन्ना बभूवुः सर्वसंमताः॥२०॥
ऐतरेयस्य सा माता दुःखिता शोकमूर्च्छिता। उवाच पुत्राः संपन्ना वेदवेदांगपारगाः॥२१॥
ब्राह्मणैः पूज्यमाना वै मोदयंति च मातरम्। मम त्वं भाग्यहीनायाः पुत्रो जातो निराकृतिः॥२२॥
ममात्र निधनं श्रेयो न कथंचन जीवितम्। इत्युक्तः स च निर्गम्य यज्ञावाटं जगाम वै॥२३॥

गति को प्राप्त करता है। दुःसह की पत्नी अलक्ष्मी जिसके विषय में मैंने कहा, वह 'नारायण' शब्द को सुनने पर निसन्देह दूर भाग जाती है। हे सुव्रत लोगों! लक्ष्मी, जो विष्णु, कृष्ण और देवेश की प्रिय पत्नी है। वह व्यक्ति के शरीर, आवास, घर तथा क्षेत्र में वास करती है। सब शास्त्रों का मन्थन करके और बार-बार विचार करके यह सारांश निकला है कि सदा नारायण का ध्यान करना चाहिए। बहुत से मन्त्रों के जाने और बहुत से व्रतों के करने से क्या लाभ?।।९-१२।। 'नमो नारायणाय' यह मन्त्र सब अर्थों का साधक है। इसलिए सब अवसर पर नमो नारायणाय मन्त्र को जपना चाहिए। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! ऐसा जप करने वाले अपने बान्धवों सहित विष्णु लोक को जाते हैं। देवेश विष्णु का दूसरा मन्त्र सुनो। पहले मैंने इस मन्त्र का अभ्यास किया है। ये वेदों के तत्त्व को प्राप्त करने का साधन है। यह बारह अक्षरों से युक्त है और बहुत प्राचीन है। संक्षेप में तुम लोगों को उसी मन्त्र का माहात्म्य (महत्त्व) बतलाता हूँ।।१३-१६अ।। कोई महान् बुद्धिमान ब्राह्मण था। उसने तपस्या की और उसने एक पुत्र प्राप्त करके क्रमशः संस्कारों का उचित समय पर करके उसने उस पुत्र का उपनयन संस्कार किया। उसने उसको पढ़ाना प्रारम्भ किया किन्तु वह अपने मुँह से कोई शब्द उच्चारण नहीं कर सका। उसकी जीभ बोलने में हिलती भी नहीं थी। तब वह श्रेष्ठ ब्राह्मण बहुत दुःखी हुआ।।१६ब-१८।। उस ब्राह्मण के पुत्र का नाम ऐतरेय था। वह सदा वासुदेव कहता था। उसके पिता ने विधिपूर्वक दूसरा विवाह कर लिया तथा विधिपूर्वक कई पुत्रों को पैदा किया। उन सबने वेदों को पढ़ा और अपनी विद्या के बल से धनी हो गये।।१९-२०।। ऐतरेय की माता ने दुःखित और शोक से मूर्छित होकर कहा, "मेरी सौत से पैदा हुए पुत्र वेद और वेदांग में पारंगत विद्वान्

तस्मिन्याते द्विजानां तु न मंत्राः प्रतिपेदिरे। ऐतरेये स्थिते तत्र ब्राह्मणा मोहितास्तदा॥२४॥
ततो वाणी समुद्भूता वासुदेवेति कीर्तनात्। ऐतरेयस्य ते विप्राः प्रणिपत्य यथातथम्॥२५॥
पूजां चक्रुस्ततो यज्ञं स्वयमेव समागतम्। ततः समाप्य तं यज्ञमैतरेयो धनादिभिः॥२६॥
सर्ववेदान्सदस्याह स षडंगान् समाहिताः। तुष्टुवुश्च तथा विप्रा ब्रह्माद्याश्च तथा द्विजाः॥२७॥
ससर्जुः पुष्पवर्षाणि खेचराः सिद्धचारणाः। एवं समाप्य वे यज्ञमैतरेयो द्विजोत्तमाः॥२८॥
मातरं पूजयित्वा तु विष्णोः स्थानं जगाम ह। एतद्वै कथितं सर्वं द्वादशाक्षरवैभवम्॥२९॥
पठतां श्रृण्वतां नित्यं महापातकनाशनम्। जपेद्यः पुरुषो नित्यं द्वादशाक्षरमव्ययम्॥३०॥
स याति दिव्यमतुलं विष्णोस्तत्परमं पदम्। अपि पापसमाचारो द्वादशाक्षरतत्परः॥३१॥
प्राप्नोति परमं स्थानं नात्र कार्या विचारणा। किं पुनर्ये स्वधर्मस्था वासुदेवपरायणाः॥३२॥
दिव्यं स्थानं महात्मानः प्राप्नुवंतीति सुव्रताः॥३३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे
द्वादशाक्षरप्रशंसानाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

हैं। वे ब्राह्मणों द्वारा पूजित हैं और अपनी माता को सब प्रकार से प्रसन्न रखते हैं। मुझ अभागी के तुम ऐसे पुत्र पैदा हुए जो कि शून्य हो। (किसी काम के योग्य नहीं हो)। किसी प्रकार जीवित रहना उचित नहीं है।'' माता द्वारा ऐसा कहने पर वह पुत्र यज्ञ स्थल को चला गया।।२१-२३।। जब उसने यज्ञशाला में प्रवेश किया तो वहाँ स्थित ब्राह्मणों के मुँह से कोई मन्त्र ही नहीं निकल सके। वे ब्राह्मण ऐतरेय के वहाँ पहुँचने पर मोहित हुए, तो ऐतरेय के मुँह से जबतक ऐतरेय वहाँ रहा ब्राह्मण लोगों का गला बन्द रहा।।२४।। किन्तु जब ऐतरेय ने 'वासुदेव' अपने मुँह से कहा तो उन ब्राह्मणों की वाणी खुल गयी। वे मन्त्रों का उच्चारण करने लगे। तब वे ब्राह्मण ऐतरेय के आगे उसको प्रणाम करके स्वयं आये हुए ऐतरेय की पूजा की। तब यज्ञ कार्य चलता रहा और एतरेय को धन तथा अन्न तथा वस्त्रों को देकर सम्मानित किया गया। अन्त में उसने छः अंगों सहित सब वेदों का उस यज्ञ कर्ता ब्राह्मणों की सभा में उच्चारण किया तो वहाँ स्थित हे ब्राह्मणों! ब्रह्मा और अन्य ब्राह्मणों ने ऐतरेय की स्तुति की।।२५-२७।। सिद्धों और चारणों ने आकाश से फूलों की वर्षा की। हे उत्तम ब्राह्मणों! इस प्रकार यज्ञ की समाप्ति हुई। ऐतरेय अपने घर आया। उसने अपनी माता की पूजा करके विष्णु लोक को प्रस्थान किया। यह द्वादशाक्षर मन्त्र के माहात्म्य को मैंने पूर्ण रूप से कह सुनाया। जो इसको पढ़ता और सुनता है उसके महापाप नष्ट हो जाते हैं। जो पुरुष इस द्वादशाक्षर मन्त्र को जपता है उसका जीवन चाहे पापपूर्ण ही रहा हो वह दिव्य और अतुल विष्णु के परमधाम को प्राप्त करता है। वह जो द्वादशाक्षर मन्त्र में अभिरुचि रखता है वह परम स्थान को प्राप्त करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे सुव्रतो! जो अपने धर्म में स्थित हैं, और वासुदेव की भक्ति में लीन हैं, वे महात्मा लोग दिव्य स्थान को प्राप्त करते हैं।।२८-३३।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में द्वादशाक्षर मन्त्र की प्रशंसा
नामक सातवाँ अध्याय समाप्त॥७॥

—⁂—

अष्टमोऽध्यायः

अष्टाक्षरमन्त्रः

सूत उवाच

अष्टाक्षरो द्विजश्रेष्ठा नमो नारायणेति च। द्वादशाक्षरमंत्रश्च परमः परमात्मनः॥१॥
मंत्रः षडक्षरो विप्राः सर्ववेदार्थसंचयः। यश्चोंनमः शिवायेति मंत्रः सर्वार्थसाधकः॥२॥
तथा शिवतरायेति दिव्यः पंचाक्षरः शुभः। मयस्कराय चेत्येवं नमस्ते शंकराय च॥३॥
सप्ताक्षरोयं रुद्रस्य प्रधानपुरुषस्य वै। ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः सर्वे देवाः सवासवाः॥४॥
मंत्रैरेतैर्द्विजश्रेष्ठा मुनयश्च यजंति तम्। शंकरं देवदेवेशं मयस्करमजोद्भवम्॥५॥
शिवं च शंकरं रुद्रं देवदेवमुमापतिम्। प्राहुर्नमः शिवायेति नमस्ते शंकराय च॥६॥
मयस्कराय रुद्राय तथा शिवतराय च। जप्त्वा मुच्येत वै विप्रो ब्रह्महत्यादिभिः क्षणात्॥७॥
पुरा कश्चिद्द्विजः शक्तो धुंधुमूक इति श्रुतः। आसीत्तृतीये त्रेतायामावर्त्ते च मनोः प्रभोः॥८॥
मेघवाहनकल्पे वै ब्रह्मणः परमात्मनः। मेघो भूत्वा महादेवं कृत्तिवासमीश्वरम्॥९॥
बहुमानेन वै रुद्रं देवदेवो जनार्दनः। खिन्नोऽतिभाराद्रुद्रस्य निःश्वासोच्छ्वासवर्जितः॥१०॥

आठवाँ अध्याय

अष्टाक्षर मन्त्र

सूत बोले

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! अष्टाक्षर मन्त्र 'ॐ नमो नरायणाय' और द्वादशाक्षर मन्त्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' ये दोनो मन्त्र परमात्मा के सबसे बड़े मन्त्र हैं। हे ब्राह्मणों! षडक्षर मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' सब अर्थों का साधक है। दिव्य पंचाक्षर मन्त्र शिवतराय बहुत शुभ है। 'मयस्कराय' भी ऐसा ही मन्त्र है। सप्ताक्षर मन्त्र 'नमो शंकराय' प्रधान पुरुष रुद्र का मन्त्र है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! इन मन्त्रों द्वारा ब्राह्मण, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र सहित सब देवता और ऋषिगण शंकर की पूजा करते हैं। वे शिव, ब्रह्मा के उद्भव के कारण, उमा के पति और देवेश की पूजा इन मन्त्रों से करते हैं। वे निरन्तर नमः शिवाय, नमस्ते शंकराय, मयस्कराय, रुद्राय और शिवतराय इन मन्त्रों के जप से ब्राह्मण ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है।।१-७।। प्राचीन काल में ब्रह्मा के मेघवाहन कल्प में पहिले तीसरे मन्वन्तर में त्रेता में महान् आत्मा एक शक्तिशाली ब्राह्मण धुंधुमूक ने जन्म लिया। वह कल्प मेघवाहन कहलाता था क्योंकि देवेश विष्णु ने मेघ का रूप धारण किया था। उन्होंने मेघ होकर बहुत श्रद्धा से भगवान महादेव को प्रसन्न करने के लिये यहाँ तक कि श्वास और निःश्वास को भी त्यागकर घोर तपस्या की। वह रुद्र के अतिभार से दुःखी था। उसने नीलकंठ से अपनी समस्या जताकर तपस्या की थी। तब ईशान भगवान शंकर

विज्ञाप्य शितिकंठाय तपश्चक्रेंबुजेक्षणः। तपसा परमैश्वर्यं बलं चैव तथाद्भुतम्॥११॥
लब्धवान्परमेशानाच्छंकरात्परमात्मनः । तस्मात्कल्पस्तदा चासीन्मेघवाहनसंज्ञया॥१२॥
तस्मिन्कल्पे मुनेः शापाद्धुंधुमूकसमुद्भवः। धुंधुमूकात्मजस्तेन दुरात्मा च बभूव सः॥१३॥
धुंधुमूकः पुरासक्तो भार्यया सह मोहितः। तस्यां वै स्थापितो गर्भः कामासक्तेन चेतसा॥१४॥
अमावास्यामहन्येव मुहूर्ते रुद्रदैवते। अंतर्वत्नी तदा भार्या भुक्ता तेन यथासुखम्॥१५॥
असूत सा च तनयं विशल्याख्या प्रयत्नतः। रुद्रे मुहूर्ते मंदेन वीक्षिते मुनिसत्तमाः॥१६॥
मातुः पितुस्तथारिष्टं स संजात स्तथात्मनः। ऋषी तमूचतुर्विप्रा धुंधुमूकं मिथस्तदा॥१७॥
मित्रावरुणनामानौ दुष्पुत्र इति सत्तमौ। वसिष्ठः प्राह नीचोऽपि प्रभावाद्वै बृहस्पतेः॥१८॥
पुत्रस्तवासौ दुर्बुद्धिरपि मुच्यति किल्बिषात्। दुःखितो धुंधुमूकोऽसौ दृष्ट्वा पुत्रमवस्थितम्॥१९॥
जातकर्मादिकं कृत्वा विधिवत्स्वयमेव च। अध्यापयामास च तं विधिनैव द्विजोत्तमाः॥२०॥
तेनाधीतं यथान्यायं धौंधुमूकेन सुव्रताः। कृतोद्वाहस्तदा गत्वा गुरुशुश्रुषणे रतः॥२१॥
अनेनैव मुनिश्रेष्ठा धौंधुमूकेन दुर्मदात्। भुक्त्वान्यां वृषलीं दृष्ट्वा स्वभार्यावद्दिवानिशम्॥२२॥
एकशय्यासनगतो धौंधुमूको द्विजाधमः। तथा चचार दुर्बुद्धिस्त्यक्त्वा धर्मगतिं पराम्॥२३॥
माध्वी पीता तया सार्धं तेन रागविवृद्धये। केनापि कारणेनैव तामुद्दिश्य द्विजोत्तमाः॥२४॥
निहता सा च पापेन वृषली गतमंगला। ततस्तस्यास्तदा तस्य भ्रातृभिर्निहतः पिता॥२५॥

से अपने तम से उसको ऐश्वर्य और अद्भुत बल प्राप्त किया। इसी कारण उस कल्प का नाम मेघवहन कल्प हुआ।।८-१२।। मेघवाहन कल्प में एक ऋषि के शाप से धुंधुमूक दुरात्मा दुष्ट हो गया। धुंधुमूक अपनी पत्नी के ऊपर मोहित था। उसने कामासक्त हो उस पत्नी में गर्भ स्थापित किया।।१३-१४।। अमावस्या तिथि में रुद्र देवता के मुहूर्त्त में दिन के समय उसने अपनी गर्भवती पत्नी से सुखपूर्वक सम्भोग किया।।१५।। उसका नाम विशाल्या था। उसने बहुत कष्ट से एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम विशाल रखा गया। शनि ग्रह द्वारा दृष्ट रुद्र मुहूर्त्त में जन्म लेने के कारण वह अपने माता-पिता का तथा अपना भी अरिष्ट हो गया। मित्र और वरुण नामक दो ऋषियों ने धुंधुमूक से गुप्त रूप से कहा कि 'विशाल एक दुष्ट पुत्र है।' वसिष्ठ ने कहा ''यद्यपि तुम्हारा पुत्र नीच और दुष्ट है फिर भी बृहस्पति के प्रभाव से वह दुर्बुद्धि अपने पापों से मुक्त हो जायगा।'' दुःखी धुंधुमूक ने पुत्र का जातकर्म आदि संस्कार करके उसको स्वयं विधिपूर्वक पढ़ाया। हे सुव्रत! उसने भी धुंधुमूक से सब पूर्ण रीति से पढ़ा। उसका विवाह हुआ और वह पिता की सेवा करने लगा।।१६-२१।। हे श्रेष्ठ मुनियों! इसके बाद उस दुष्ट विशाल ने उदंडता वश एक शूद्र की पत्नी को पटाकर अपनी स्त्री के समान उस शूद्रा के साथ दिन-रात एक ही आसन और एक ही विस्तर पर मौज-मस्ती करने लगा। धंधुमूक के पुत्र उस नीच और दुष्ट ब्राह्मण ने उच्च आचार-विचार छोड़ दिया।।२२-२३।।

उसके साथ अपने काम वासना को बढ़ाने के लिए शराब भी पीता था किन्तु हे उत्तम ब्राह्मणों! किसी कारण से उस पापी ने उस शूद्रा स्त्री को मार डाला। तब उसके सालों ने विशाल के माता-पिता और उसकी वैध

माता च तस्य दुर्बुद्धेर्धौन्धुमूकस्य शोभना।
भार्या च तस्य दुर्बुद्धेः श्यालास्ते चापि सुव्रताः॥२६॥

राज्ञा क्षणादहो नष्टं कुलं तस्याश्च तस्य च। गत्वासौ धौंधुमूकश्च येन केनापि लीलया॥२७॥
दृष्ट्वा तु तं मुनिश्रेष्ठं रुद्रजाप्यपरायणम्। लब्ध्वा पाशुपतं तद्वै पुरा देवान्महेश्वरात्॥२८॥
लब्ध्वा पंचाक्षरं चैव षडक्षरमनुत्तमम्। पुनः पंचाक्षरं चैव जप्त्वा लक्षं पृथक् पृथक्॥२९॥
व्रतं कृत्वा च विधिना दिव्यं द्वादशमासिकम्। कालधर्मं गतः कल्पे पूजितश्च यमेन वै॥३०॥
उद्धृता च तथा माता पिता श्यालाश्च सुव्रताः। पत्नी च सुभगा जाता सुस्मिता च पतिव्रता॥३१॥
ताभिर्विमानमारुह्य देवैः सेंद्रैरभिष्टुतः। गाणपत्यमनुप्राप्य रुद्रस्य दयितोऽभवत्॥३२॥
तस्मादष्टाक्षरान्मंत्रात्तथा वै द्वादशाक्षरात्। भवेत्कोटिगुणं पुण्यं नात्र कार्या विचारणा॥३३॥
तस्माज्जपेद्धि यो नित्यं प्रागुयक्तेनविधानतः। शक्तिबीजसमायुक्तं स याति परमां गतिम्॥३४॥
एतद्वः कथितं सर्वं कथासर्वस्वमुत्तमम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्॥३५॥
स याति ब्रह्मलोकं तु रुद्रजाप्यमनुत्तमम्॥३६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे अष्टमोऽध्यायः॥८॥

पत्नी को मार डाला। हे सुव्रत! वे साले भी राजा के द्वारा मार दिये गये। इस प्रकार उसका और उसके परिवार का नाश हो गया। धुंधुमूक का पुत्र इधर-उधर किसी-न-किसी क्रिया-कलाप में घूमता रहा। किसी तरह उसने एक श्रेष्ठ मुनि को रुद्र जाप में लगे हुए देखा। उस मुनि ने भगवान् महेश्वर से पाशुपत मन्त्र को प्राप्त किया था। पंचाक्षर और षडक्षर मन्त्र को सौ हजार बार अर्थात् एक-एक लाख बार अलग-अलग जप किया उसने बारह मास तक विधिपूर्वक दिव्य व्रत किया। मृत्यु को प्राप्त होने पर यम ने उसकी पूजा की।।२४-३०।। हे सुव्रत! उसने अपने माता-पिता साले प्रथमा पत्नी का उद्धार किया। वह सती पत्नी मुस्कराती रही। वह उन लोगों के साथ विमान पर चढ़कर स्वर्गलोक को गया। वहाँ इन्द्र सहित देवताओं ने उसकी स्तुति की। वह गणों के स्वामी का पद प्राप्त किया और भगवान् रुद्र का प्रिय हो गया। अतः अष्टाक्षर मन्त्र से तथा द्वादशाक्षर मन्त्र से कोटि गुना पुण्य प्राप्त होता है। इसमें कोई संशय नहीं है। अतः पहले कहे गये विधान के साथ जो कोई निरन्तर इन मन्त्रों का जप करता है और शक्ति मन्त्रों के साथ, शक्ति बीज मन्त्रों के साथ मिलाकर जप करता है वह परम गति को प्राप्त होता है। यह सबसे उत्तम कथा मैंने तुम लोगों से कहा जो इसको पढ़े और सुने और उत्तम ब्राह्मणों को सुनाए वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।।३१-३६।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में अष्टाक्षर मन्त्र नामक
आठवाँ अध्याय समाप्त॥८॥

नवमोऽध्यायः

पाशुपतसंस्कारः

ऋषय ऊचुः

देवैः पुरा कृतं दिव्यं व्रतं पाशुपतं शुभम्। ब्रह्मणा च स्वयं सूत कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥१॥
पतितेन च विप्रेण धौंधुमूकेन वै तथा। कृत्वा जप्त्वा गतिः प्राप्ता कथं पाशुपतं व्रतम्॥२॥
कथं पशुपतिर्देवः शंकरः परमेश्वरः। वक्तुमर्हसि चास्माकं परं कौतूहलं हि नः॥३॥

सूत उवाच

पुरा शापाद्विनिर्मुक्तो ब्रह्मपुत्रो महायशाः। रुद्रस्य देवदेवस्य मरुदेशादिहागतः॥४॥
त्यक्त्वा प्रसादाद्रुद्रस्य उष्ट्रदेहमजाज्ञया। शिलादपुत्रमासाद्य नमस्कृत्य विधानतः॥५॥
मेरुपृष्ठे मुनिवरः श्रुत्वा धर्ममनुत्तमम्। माहेश्वरं मुनिश्रेष्ठा ह्यपृच्छच्च पुनः पुनः॥६॥
नंदिनं प्रणिपत्यैनं कथं पशुपतिः प्रभुः। वक्तुमर्हसि चास्माकं तत्सर्वं च तदाह सः॥७॥
तत्सर्वं श्रुतवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः। तस्मादहमनुश्रुत्य युष्माकं प्रवदामि वै॥८॥
सर्वे शृण्वंतु वचनं नमस्कृत्वा महेश्वरम्।

सनत्कुमार उवाच

कथं पशुपतिर्देवः पशवः के प्रकीर्तिताः॥९॥

नौवाँ अध्याय

पाशुपत संस्कार

ऋषिगण बोले

हे सूत! दिव्य और पाशुपत संस्कार पहले देवताओं द्वारा किया गया था। यह स्वयं ब्रह्मा द्वारा किया गया और अनुपमकर्मी कृष्ण द्वारा उसी प्रकार किया गया। पतित ब्राह्मणं धुंधुमूक के पुत्र द्वारा भी किया गया था। पाशुपत संस्कार करने के बाद कैसे वे लोग मोक्ष प्राप्त कर सके? किस प्रकार पशुपति पूजा की गयी? यह आप हम लोगों को बताएँ। यह सुनने के लिए हम लोगों को बहुत कौतूहल है।।१-३।।

सूत बोले

पहले ब्रह्मा के पुत्र महायशस्वी देवताओं के स्वामी रुद्र के श्राप से मुक्त हुए वह मरुस्थल से यहाँ आये थे। ऊँट के शरीर को रुद्र की कृपा से और ब्रह्मा की आज्ञा से त्यागकर शिलादि के पुत्र नन्दी के पास पहुँचकर विधान के अनुसार नमस्कार किया। हे महर्षियों! मेरु की पीठ पर श्रेष्ठ ऋषि उत्तम धर्म की वार्ता को सुना। नन्दी को नमस्कार करने के बाद शिव से सम्बन्धित पवित्र पाशुपत संस्कार के विषय में उसने नन्दी से बार-बार पूछा। पशुपति स्वामी की पूजा का व्रत कैसे किया जाता है? आप हमको ये सब बताएँ? उस समय उन्होंने सब कुछ बताया। कृष्ण द्वैपायन व्यास ने सनत् कुमार से सुना। व्यास से सुनकर मैं तुम लोगों से कहता हूँ। महेश्वर को नमस्कार करके तुम सब सुनो।

कैः पाशैस्ते निबध्यंते विमुच्यंते च ते कथम्॥

शैलादिरुवाच

सनत्कुमार वक्ष्यामि सर्वमेतद्यथातथम्॥१०॥
रुद्रभक्तस्य शांतस्य तव कल्याणचेतसः। ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च देवदेवस्य धीमतः॥११॥
पशवः परिकीर्त्यंते संसारवशवर्तिनः। तेषां पतित्वाद्भगवान् रुद्रः पशुपतिः स्मृतः॥१२॥
अनादिनिधनो धाता भगवान्विष्णुरव्ययः। मायापाशेन बध्नाति पशुवत्परमेश्वरः॥१३॥
स एव मोचकस्तेषां ज्ञानयोगेन सेवितः। अविद्यापाशुबद्धानां नान्यो मोचक इष्यते॥१४॥
तमृते परमात्मानं शंकरं परमेश्वरम्। चतुर्विंशतितत्त्वानि पाशा हि परमेष्ठिनः॥१५॥
तैः पाशैर्मोचयत्येकः शिवो जीवैरुपासितः। निबध्नाति पशूनेकश्चतुर्विंशतिपाशकैः॥१६॥
स एव भगवान्रुद्रो मोचयत्यपि सेवितः। दशेंद्रियमयैः पाशैरंतःकरणसंभवैः॥१७॥
भूततन्मात्रपाशैश्च पशून्मोचयति प्रभुः। इंद्रियार्थमयैः पाशैर्बद्धा विषयिणः प्रभुः॥१८॥
आशु भक्ता भवंत्येव परमेश्वरसेवया। भज इत्येष धातुर्वै सेवायां परिकीर्तितः॥१९॥
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिशब्देन भूयसी। ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं पशून्बद्ध्वा महेश्वरः॥२०॥
त्रिभिर्गुणमयैः पाशैः कार्यं कारयतिस्वयम्। दृढेन भक्तियोगेन पशुमिः समुपासितः॥२१॥
मोचयेत्येव तान्सद्यः शंकरः परमेश्वरः। भजनं भक्तिरित्युक्ता वाङ्मनःकायकर्मभिः॥२२॥

सनत्कुमार बोले

पशुपति देव कैसे हैं? पशु कौन है? किस बन्धनों (पाश) से वे बँधे हुए हैं? वे कैसे मुक्त होते हैं?।।४-१०।।

शैलादि बोले

हे सनत्कुमार! यह सब ज्यों-का-त्यों मैं रुद्र का भक्त शान्त और शुद्ध आपसे कहता हूँ। ब्रह्मा से लेकर के स्थावर तक बुद्धिमान देवताओं के देवता पशु कहलाते हैं। वे संसार के वश में रहने वाले हैं। उनके स्वामी होने के कारण वह पशुपति रूप में प्रसिद्ध हैं। अनादि अव्यय और सबके स्रष्टा परमेश्वर पशु की तरह माया के पाश बन्धन में बाँधते हैं। पूर्ण ज्ञान के मार्ग द्वारा सेवा किये जाने पर वे ही मुक्त करने वाले हैं। अविद्या, अज्ञान के पाश से बँधने से बँधे हुए लोगों का दूसरा कोई मुक्त करने वाला नहीं है।।१०ब-१५।। परमेश्वर के चौबीस (२४) तत्त्व पाश (बन्धन) हैं। इन चौबीस पाशों से शिव ही पशुओं को बाँधते हैं। जीवों द्वारा पूजित होने पर केवल शिव ही उस बन्धन से उनको मुक्त करते हैं। अन्तःकरण से उसका दस इन्द्रियों रूपी पाशों से और भूत तन्मात्रा आदि पाशों से शिव ही मुक्त करते हैं। परमेश्वर की सेवा से आत्मायें (जीव) तुरन्त मुक्त हो जाते हैं। 'भज' धातु का अर्थ ही सेवा करना है।।१६-१९।। इसमें भक्ति शब्द द्वारा सबसे बड़ी सेवा के विचार को विद्वानों ने भक्ति कहा है। प्रत्येक जीव को ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब के अग्र भाग तक गुणों के रूप के तीन गुण रूपी पाशों के द्वारा बाँधते हैं। और स्वयं कार्य को कराते हैं। पशुओं द्वारा विनम्र भक्ति मार्ग से उपासना किये जाने पर परमेश्वर शंकर तुरन्त उनको पाप से मुक्त कर देते हैं। वाणी, मन और कर्मों से भजन करने को भक्ति कहते हैं। यह भक्ति सब कार्य के कारण होने से पाश को काटने में पूर्णरूप से समर्थ है।।२०-२२।। शिव के गुण

सर्वकार्येणहेतुत्वात्पाशच्छेदपटीयसी । सत्यः सर्वग इत्यादि शिवस्य गुणचिंतना॥२३॥
रूपोपादानचिंता च मानसं भजनं विदुः। वाचिकं भजनं धीराः प्रणवादिजपं विदुः॥२४॥
कायिकं भजनं सद्भिः प्राणायामादि कथ्यते। धर्माधर्ममयैः पाशै र्बंधनं देहिनामिदम्॥२५॥
मोचकः शिव एवैको भगवान्परमेश्वरः। चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मगुणा इति॥२६॥
कीर्त्यंते विषयाश्चेति पाशा जीवनिबंधनात्। तैर्बद्धाः शिवभक्त्यैव मुच्यंते सर्वदेहिनः॥२७॥
पंचक्लेशमयैः पाशैः पशून्बध्नाति शंकरः। स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः॥२८॥
अविद्यामस्मितां रागं द्वेषं च द्विपदां वराः। वदंत्यभिनिवेशं च क्लेशान्पाशत्वमागतान्॥२९॥
तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्र इति पंडिताः। अंधतामिस्त्र इत्याहुरविद्यां पंचधा स्थिताम्॥३०॥
ताञ्जीवान्मुनिशार्दूलाः सर्वांश्चैवाप्यविद्यया। शिवो मोचयति श्रीमान्नान्यः कश्चिद्विमोचकः॥३१॥
अविद्यां तम इत्याहुरस्मितां मोह इत्यपि। महामोह इति प्राज्ञा रागं योगपरायणाः॥३२॥
द्वेषं तामिस्त्र इत्याहुरंधतामिस्त्र इत्यपि। तथैवाभिनिवेशं च मिथ्याज्ञानं विवेकिनः॥३३॥
तमसोऽष्टविधा भेदा मोहश्चाष्टविधः स्मृतः। महामोहप्रभेदाश्च बुधैर्दश विचिंतिताः॥३४॥
अष्टादशविधं चाहुस्तामिस्त्रं च विचक्षणाः। अंधतामिस्त्रभेदाश्च तथाष्टादशधा स्मृताः॥३५॥
अविद्ययास्य संबंधो नातीतो नास्त्यनागतः। भवेद्रागेण देवस्य शंभोरंगनिवासिनः॥३६॥
कालेषु त्रिषु संबंधस्तस्य द्वेषेण नो भवेत्। मायातीतस्यदेवस्य स्थाणोः पशुपतेर्विभोः॥३७॥
तथैवाभिनिवेशेन संबंधो न कदाचन। शंकरस्य शरण्यस्य शिवस्य परमात्मनः॥३८॥

का चिन्तन जैसे—"वह सत्य है, वह सर्वव्यापी है" आदि और उनके रूपों और उपादान का विचार मानसिक भजन हैं। विद्वान लोग प्रणव आदि जप को मौखिक भजन कहते हैं। सज्जनों ने प्राणायाम आदि को शारीरिक (कायिक) भजन कहा है। इस प्रकार धर्म और अधर्म में पाशों द्वारा वह धर्मों का बन्धन है। केवल परमेश्वर ही उनको बन्धन से मुक्त करता है। चौबीस तत्त्व माया के कर्म और गुण हैं। वे विषय कहलाते हैं। उनसे बाँधे गये सब शरीरधारी शिव भक्ति से ही मुक्त होते हैं।।२३-२७।। पंचपर्त पाश बन्धन जिनको क्लेश कहते हैं उन क्लेश रूपी पाशों से शंकर पशुओं को बाँधते हैं। भक्ति से भलीभाँति सेवा किये जाने पर वह ही उनके छोड़ने वाले (मोचक) हैं।।२८।। पंचक्लेश जो कि बन्धन है वे अविद्या (अज्ञान), अस्मिता (अहंकार), राग (लगाव), द्वेष (घृणा), अभिनिवेश संसारिक सुख में लिप्तता है। विद्वान लोग कहते हैं कि अविद्या पाँच रूपों मे होती है। उनके नाम क्रमशः तमस्, मोह, महामोह, तामिस्त्र, अंध्रतामिस्त्र हैं।।२९-३०।। हे श्रेष्ठ मुनियों! उन सब जीवों को अविद्या से शिव ही मुक्त करते हैं। दूसरा कोई मोचक नहीं है।।३१।। यौगिक क्रिया में लगे विद्वान लोग अविद्या को तम (अन्धकार), अस्मिता को मोह (माया), राग (लगाव) जैसे—महामोह (महामाया), द्वेष (घृणा), तामिस्त्र (अन्धकार), अभिनिवेश और मिथ्याज्ञान अन्ध्रतामिस्त्र।।३२-३३।। तमस् आठ प्रकार का होता है। मोह भी आठ प्रकार का होता है। माया मोह के दस विभाग होते हैं।।३४।। विद्वानों ने कहा है कि, तामिस्त्र और अन्ध्रतामिस्त्र के अट्ठारह विभाग होते हैं।।३५।। शिव का अविद्या से सम्बन्ध न कोई अतीत है न भविष्य से हैं। शिव से राग का भी सम्बन्ध नहीं है। उनका द्वेष से तीनों कालों में सम्बन्ध नहीं है क्योंकि वे मायातीत (माया

कुशलाकुशलैस्तस्य संबंधो नैव कर्मभिः। भवेत्कालत्रये शंभोरविद्यामतिवर्तिनः॥३९॥
विपाकैः कर्मणां वापि न भवेदेव संगमः। कालेषु त्रिषु सर्वस्य शिवस्य शिवदायिनः॥४०॥
सुखदुखैरसंस्पृश्यः कालत्रितयवर्तिभिः। स तैर्विनश्वरैः शंभुर्बोधानंदात्मकः परः॥४१॥
आशयैरपरामृष्टः कालत्रितयगोचरैः। धियां पतिः स्वभूरेष महादेवो महेश्वरः॥४२॥
अस्पृश्यः कर्मसंस्कारैः कालत्रितयवर्तिभिः। तथैव भोगस्कारैर्भगवानंतकांतकः॥४३॥
पुंविशेषपरो देवो भगवान्परमेश्वरः। चेतनाचेतानयुक्तप्रपंचादखिलात्परः॥४४॥
लोके सातिशयत्वेन ज्ञानैश्वर्यं विलोक्यते। शिवेनातिशयत्वेन शिवं प्राहुर्मनीषिणः॥४५॥
प्रतिसर्गं प्रसूतानां ब्रह्मणां शास्त्रविस्तरम्। उपदेष्टा स एवादौ कालावच्छेदवर्तिनाम्॥४६॥
कालावच्छेदयुक्तानां गुरूणामप्यसौ गुरुः। सर्वेषामेव सर्वेशः कालावच्छेदवर्जितः॥४७॥
अनादिरेष संबंधो विज्ञानोत्कर्षयोः परः। स्थितयोरीदृशः सर्वः परिशुद्धः स्वभावतः॥४८॥
आत्मप्रयोजनाभावे परानुग्रह एव हि। प्रयोजनं समस्तानां कार्याणां परमेश्वरः॥४९॥
प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः। शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवोपि परः स्मृतः॥५०॥
शंभोः प्रणववाच्यस्य भावना तज्जपादपि। या सिद्धिः स्वपराप्राप्या भवत्येव न संशयः॥५१॥
ज्ञानतत्त्वं प्रयत्नेन योगः पाशुपतः परः। उक्तस्तु देवदेवेन सर्वेषामनुकंपया॥५२॥

से परे) हैं। उसी प्रकार शरण लेने के योग्य परमात्मा शंकर का कभी भी अभिनिवेश (संसारिक सुख में लिप्तता) का सम्बन्ध नहीं है।।३६-३८।। त्रिकाल में शम्भु का अविद्या से और कोई सम्बन्ध नहीं है। और कर्म के चाहे वह अच्छा हो या बुरा उनका सम्बन्ध नहीं है।।३९।। शिवदायक शिव का माया से भी कोई सम्पर्क नहीं है क्योंकि माया द्वारा कियें गये कर्मों के विपाक से वे सर्वथा अलग हैं।।४०।। तीनों कालों में होने वाले सुखों और दुःखों से वे अछूते हैं क्योंकि वे सुख और दुःख से परे हैं। क्योकि शिव बोध और आनन्द स्वरूप हैं अतः वे सुख और दुःख से अप्रभावित हैं।।४१।। बुद्धि के स्वयम् स्वामी महेश्वर तीनों कालों में दिखायी देने वाले भाग्यों और सुखों से अप्रभावित रहते हैं।।४२।। मृत्यु के देवता यमराज को मारने वाले भगवान् शिव तीनों कालों को संस्कारों के भोग से भी अछूते हैं, अर्थात् उन पर कर्म और उसके फल के भोग का स्पर्श नहीं होता है।।४३।। भगवान् परमेश्वर विशेष पुरुष से भी बड़े हैं। वह चेतन और अचेतन से युक्त समकोण प्रपंच से परे हैं। वह सम्पूर्ण विश्व से परे हैं। (बाहर) हैं।।४४।। जगत में ज्ञान और ऐश्वर्य दिखायी देते हैं जो एक दूसरे से अतिशय आगे होना चाहते हैं। विद्वान लोग कहते हैं कि दूसरे से आगे बढ़ने वाले में शिव सबसे आगे हैं।।४५।। वे प्रत्येक सृष्टि में उत्पन्न होने वाले ब्रह्माओं और पूरे काल तक रहने वाले ब्रह्माओं को शास्त्रों के उपदेश देने वाले हैं।।४६।। जो काल द्वारा सीमित और वे घिरे हुए हैं, वे उन सब गुरुओं के भी गुरु हैं। वे काल की सीमा से बाहर और सबके स्वामी हैं।।४७।। यह सम्बन्ध अनादि है। वह पूर्ण ज्ञान और उत्कर्ष से ऊपर हैं। वह स्वभावतः पूर्ण रूप से शुद्ध हैं।।४८।। क्योंकि उनका अपना कोई प्रयोजन नहीं है, परमेश्वर के सब क्रिया-कलापों का सही प्रयोजन दूसरों के ऊपर अनुग्रह करना ही है। परमात्मा शिव प्रणव शब्द, परमात्मा शिव का वाचक है अर्थात् शिव को प्रगट करता है। शिव और रुद्र आदि शब्दों से प्रणव शब्द उच्चतर है।।४९-५०।। इसमें कोई सन्देह

स होवाचैव याज्ञवल्क्यो यदक्षरं गार्ग्ययोगिनः।
अभिवदंति स्थूलमनंतं महाश्चर्यमदीर्धमलोहितममस्तकमा-
सायमत एवो पुनारसमसंमगंधमरसमचक्षुष्कम-
श्रोत्रमवाङ्मनोतेजस्कमप्रमाणमनुसुखमनामगोत्र-
ममरमजरमनामयममृतमोंशब्दममृतमसंवृतमपूर्वमन
परमनंतमबाह्यं तदश्नाति किंचन न तदाश्नाति किंचन॥५३॥

एतत्कालव्यये ज्ञात्वा परं पाशुपतं प्रभुम्। योगे पाशुपते चास्मिन् यस्यार्थः किल उत्तमे॥५४॥

कृत्वोंकारं प्रदीपं मृगय गृहपतिं सूक्ष्ममाद्यंतरस्थं
संयम्य द्वारवासं पवनपटुतरं नायकं चेंद्रियाणाम्।
वाग्जालैः कस्य हेतोर्विभटसि तु भयं दृश्यते नैवकिंचिद्
देहस्थं पश्य शंभुं भ्रमसि किमु परे शास्त्रजालेन्धकारे॥५५॥

एवं सम्यग्बुधैर्ज्ञात्वा मुनीनामथ चोक्तं शिवेन। असमरसं पंचधा कृत्वाभयं चात्मनि योजयेत्॥५६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे नवमोऽध्यायः॥९॥

नहीं कि प्रणव शब्द से वाच्य शिव की भावना प्रगट होती है और प्रणव के जप से भी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूर्णतः यह सिद्धि प्राप्त होती है। वही पूर्णता शब्द सिद्धि प्राप्त होती है जबकि लोग प्रणव को दोहराते हैं। यहाँ तक कि जब वे प्रणव मन्त्र का और उस पर ध्यान लगाते है. जो प्रणव मन्त्र द्वारा व्यक्त किया हुआ है। देवताओं के देवता पशुपति ने सब लोगों पर अनुग्रह करके श्रेष्ठ पूर्ण ज्ञान के आधार महान् पशुपति योग को बताया है।।५१-५२।। याज्ञवल्क्य हे गार्गी! यह सर्वोच्च है जिसको योगियों ने गार्ग्य कहा है। वास्तव में वह स्थूल अनन्त महा आश्चर्य, जो लम्बा नहीं है, लाल नहीं है, जो मस्तक हीन है, जो बैठा हुआ नहीं है। अतएव जो रसहीन है, जो सम्पर्क हीन है, जिसमें गंध नहीं, रस नहीं, नेत्र नहीं, कान नहीं, जिह्वा नहीं, मन नहीं, वाणी नहीं, तेज नहीं, कोई प्रमाण नहीं, सुख नहीं, अनाम गोत्र, अजर, अमर, जाति नहीं, मृत्यु नहीं, जो अमृतमय है वह ओम् शब्द द्वारा व्यक्त किया गया है, वह अमर है। जिसका न कोई पूर्ववर्ती है, न परवर्ती है, वह अन्तहीन वह बाहर भी नहीं यह कुछ खाता है और कोई वस्तु नहीं खाता है। कोई भी व्यक्ति पशुपति योग द्वारा ही पशुपति को प्राप्त करता है। पशुपति को उत्तम अवसर अनुभव करने के लिए है।।५३-५४।। ओंकार द्वीप को जलाकर गृहपति पशुपति को ढूँढ़ो जो सूक्ष्म हैं भीतर बाहर स्थित हैं। जो इन्द्रियों का स्वामी है। इन्द्रियों के द्वार की वायु को रोको। शास्त्रों के जाल रूपी अँधेरे में क्यों भटकते हो? किस लिए भ्रम में पड़ते हो। कोई भय नहीं है। अपने देह के भीतर विरजमान सिन्धु को देखो।।५५।। यह विद्वानों के द्वारा पूर्णरूप से यह जानकर उन पंचाकृति को असम रस को फाड़कर आत्मा में निर्भीकता प्राप्त होगी।।५६।।

श्रीलिंगमहापुराण उत्तर भाग में पाशुपत संस्कार
नामक नौवां अध्याय समाप्त॥९॥

दसमोऽध्यायः

उमापतिमाहात्म्यम्

सनत्कुमार उवाच

भूय एव ममाचक्ष्व महिमानमुमापतेः। भवभक्त महाप्राज्ञ भगवन्नंदिकेश्वर॥१॥

शैलादिरुवाच

सनत्कुमार! संक्षेपात्तव वक्ष्याम्यशेषतः। महिमानं महेशस्य भवस्य परमेष्ठिनः॥२॥
नास्य प्रकृतिबंधोऽभूद्बुद्धिबंधो न कश्चन। न चाहंकारबंधश्च मनोबंधश्च नोऽभवत्॥३॥
चित्तबन्धो न तस्याभूच्छ्रोत्रबंधो न चाभवत्। न त्वचां चक्षुषां वापि बंधो जज्ञे कदाचन॥४॥
जिह्वाबंधो न तस्याभूद्घ्राणबंधो न कश्चन। पादबंधः पाणिबंधो वाग्बंधश्चैव सुव्रत॥५॥
उपस्थेंद्रियबंधश्च भूततन्मात्रबंधनम्। नित्यशुद्धस्वभावेन नित्यबुद्धो निसर्गतः॥६॥
नित्यमुक्त इति प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः। अनादिमध्यनिष्ठस्य शिवस्य परमेष्ठिनः॥७॥
बुद्धिं सूते नियोगेन प्रकृतिः पुरुषस्य च। अहंकारं प्रसूतेऽस्या बुद्धिस्तस्य नियोगतः॥८॥
अंतर्यामीति देहेषु प्रसिद्धस्य स्वयंभुवः। इंद्रियाणि दशैकं च तन्मात्राणि च शासनात्॥९॥
अहंकारोऽतिसंसूते शिवस्य परमेष्ठिनः। तन्मात्राणि नियोगेन तस्य संसुवते प्रभो॥१०॥
महाभूतान्यशेषेण महादेवस्य धीमतः। ब्रह्मादीनां तृणांतं हि देहिनां देवसंगतिम्॥११॥

दसवाँ अध्याय

उमापति का माहात्म्य

सनत्कुमार बोले·

हे शिवजी के भक्त! महान् बुद्धिमान् भगवन् नन्दिकेश्वर! आप फिर उमापति की महिमा मुझसे कहो।।१।।

शैलादि बोले

हे सनत्कुमार! मैं महेश, भव, परमेष्ठी की सम्पूर्ण महिमा को तुमसे संक्षेप में कहता हूँ।।२।। उमापति शिव को प्रकृति से कोई लगाव नहीं है। न बुद्धि से, अहंकार, मन, चित्त, कान, नेत्र, जीभ, नाक, पैर, हाथ, वाणी, जननेंद्रिय और पंचमहाभूतों से भी कोई बन्धन नहीं है। उमापति स्वभाव से नित्य शुद्ध हैं, और अन्तःकरण से नित्य प्रबुद्ध हैं।।३-६।। तत्त्वज्ञानियों ने उनको नित्य मुक्त कहा है। शिव परमेष्ठी का आदि मध्य और अन्त नहीं है। उनके आदेश से पुरुष की प्रकृति बुद्धि को उत्पन्न करती है। उनकी आज्ञा से बुद्धि अहंकार को उत्पन्न करती है। शिव स्वयम्भू हैं। वे सब की देहों में अन्तर्यामी हैं। इनकी आज्ञा से बुद्धि अहंकार को जन्म देती है। उनकी आज्ञा से अहंकार ग्यारह ज्ञानेन्द्रिय और तन्मात्राओं को जन्म देता है। बुद्धिमान् महादेव की आज्ञा से सम्पूर्ण महाभूत और ब्रह्मा आदि से लेकर तृण के अन्त भाग तक शरीर धारण करते हैं। उन्हीं की आज्ञा से बुद्धि सब

महाभूतान्यशेषाणि जनयंति शिवाज्ञया।
अध्यवस्यति सर्वार्थान्बुद्धिस्तस्याज्ञया विभोः॥१२॥
अंतर्यामीति देहेषु प्रसिद्धस्य स्वयंभुवः। स्वभावसिद्धमैश्वर्यं स्वभावादेव भूतयः॥१३॥
तस्याज्ञया समस्तार्थानहंकारोऽतिमन्यते। चित्तं चेतयते चापि मनः संकल्पयत्यपि॥१४॥
श्रोत्रं शृणोति तच्छक्त्या शब्दस्पर्शादिकं च यत्।
शंभोराज्ञाबलेनैव भवस्य परमेष्ठिनः॥१५॥
वचनं कुरुते वाक्यं नादानादि कदाचन। शरीराणामशेषाणां तस्य देवस्य शासनात्॥१६॥
करोति पाणिरादानं न गत्यादि कदाचन। सर्वेषामेव जंतूनां नियमादेव वेधसः॥१७॥
विहारं कुरुते पादो नोत्सर्गादि कदाचन। समस्तदेहिवृंदानां शिवस्यैव नियोगतः॥१८॥
उत्सर्गं कुरुते पायुर्न वदेत कदाचन। जंतोर्जातस्य सर्वस्व परमेश्वरशासनात्॥१९॥
आनंदं कुरुते शश्वदुपस्थं वचनाद्विभोः। सर्वेषामेव भूतानामीश्वरस्यैव शासनात्॥२०॥
अवकाशमशेषाणां भूतानां संप्रयच्छति। आकाशं सर्वदा तस्य परमस्यैव शासनात्॥२१॥
निर्देशेन शिवस्यैव भेदैः प्राणदिभिर्निजैः। बिभर्ति सर्वभूतानां शरीराणि प्रभंजनः॥२२॥
निर्देशाद्देवदेवस्य सप्तस्कंधगतो मरुत्। लोकयात्रां वहत्येव भेदैः स्वैरावहादिभिः॥२३॥
नागाद्यैः पंचभिर्भेदैः शरीरेषु प्रवर्तते। अपदेशेन देवस्य परमस्य समीरणः॥२४॥
हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि। पाकं च कुरुते वह्निः शंकरस्यैव शासनात्॥२५॥

अर्थों को निश्चित करती है। अर्थात् व्यवस्थित करती है।।७-१२।। समृद्धि शक्ति और धन दौलत आदि शिव द्वारा ही प्राप्त होती है। शिव की आज्ञा से ही अहंकार सब पदार्थों में आत्मसम्मान पैदा करता है। उन्हीं के आदेश से चित्त चेतता है। मन संकल्प करता है। मस्तिष्क सब पदार्थों और वस्तुओं में चेतना (जागृति) पैदा करता है। उन्हीं उमापति शिव की शक्ति से कान ध्वनि को सुनता है। शरीर स्पर्श का अनुभव करता है। उन्हीं भव परमेष्ठी की आज्ञा से कुछ वस्तुओं को ग्रहण नहीं करती हैं। उसी स्रष्टा के शासन से हाथ वस्तुओं को ग्रहण करता है। गति आदि नहीं करता। शिव के आदेश से ही पैर चलता है उत्सर्ग (मलादि त्याग) नहीं करता है। गुदा (मल रूप) उत्सर्ग करती है किन्तु बोलती नहीं है अर्थात् उसका काम नहीं करती। शिव की प्रेरणा से सब प्राणियों में जननेन्द्रियाँ सन्तान उत्पन्न करती हैं। शिव के निर्देश से आकाश सब प्राणियों के लिए पर्याप्त अवकाश देता है।।१३-२१।। शरीरों को शिव के निर्देश से आकाश सब प्राणियों के लिए पर्याप्त अवकाश देता है।।२२।। शरीरों को शिव के निर्देश से ही वायु सब प्राणियों को अपने प्राणवायु आदि सात भेदों से धारण पोषण करता है और लोक यात्रा में सहायक होता है। शिव के निर्देश से वायु नाग आदि पाँच भेदों से हमारे शरीर के भीतर कार्य करती है।।२३।। शंकर के ही आज्ञा से अग्नि देवताओं के हव्य और पितरों के लिए कव्य तथा अन्यपाक कर्म करती है। शरीरधारियों के शरीर में स्थित अग्नि चबाये हुए भेजन को पचाती हैं। शिव की आज्ञा से प्राणियों के भीतर जल विद्यमान रहकर उन सब को जीवित रखता है। शिव की आज्ञा से अन्न पचता है। देवताओं के देव

भुक्तमाहारजातं यत्पचते देहिनां तथा। उदरस्थः सदा वह्निर्विश्वेश्वरनियोगतः॥२६॥
संजीवयंत्यशेषाणि भूतान्यापस्तदाज्ञया। अविलंघ्या हि सर्वेषामाज्ञा तस्य गरीयसी॥२७॥
चराचराणि भूतानि बिभर्त्येव तदाज्ञया। आज्ञया तस्य देवस्य देवदेवः पुरंदरः॥२८॥
जीवतां व्याधिभिः पीडां मृतानां यातनाशतैः। विश्वंभरः सदाकालं लोकैः सर्वैरलंघ्यया॥२९॥
देवान्पात्यसुरान् हंति त्रैलोक्यमखिलं स्थितः। अधार्मिकाणां वै नाशं करोति शिवशासनात्॥३०॥
वरुणः सलिलैर्लोकान्संभावयति शासनात्। मज्जयत्याज्ञया तस्य पाशैर्बध्नाति चासुरान्॥३१॥
पुण्यानुरूपं सर्वेषां प्राणिनां संप्रयच्छति। वित्तं वित्तेश्वरस्तस्य शासनात्परमेष्ठिनः॥३२॥
उदयास्तमये कुर्वन्कुरुते कालमाज्ञया। आदित्यस्तस्य नित्यस्य सत्यस्य परमात्मनः॥३३॥
पुष्पाण्यौषधिजातानि प्रह्लादयति च प्रजाः।
अमृतांशुः कलाधारः कालकालस्य शासनात्॥३४॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा। अन्याश्च देवताः सर्वास्तच्छासनविनिर्मिताः॥३५॥
गंधर्वा देवसंघाश्च सिद्धाः साध्याश्च चारणाः। यक्षरक्षःपिशाचाश्च स्थिताः शास्त्रेषु वेधसः॥३६॥
ग्रहनक्षत्रताराश्च यज्ञा वेदास्तपांसि च। ऋषीणां च गणाः सर्वे शासनं तस्य धिष्ठिताः॥३७॥
कव्याशिनां गणाः सप्तसमुद्रा गिरिसिंधवः। शासने तस्य वर्तन्ते काननानि सरांसि च॥३८॥
कलाः काष्ठा निमेषाश्च मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः। ऋत्वब्दपक्षमासाश्च नियोगात्तस्य धिष्ठिताः॥३९॥

इन्द्र, शिव की आज्ञा का तथा सभी चर और अचर का पालन करता है। शिव के आदेश से विस्तृत जीवित प्राणियों की व्याधि आदि से उत्पन्न पीड़ा को और नरक में पड़े पापों को सहने वाले मृत जीवों के पापों को दूर करते हैं। इनकी आज्ञा अलंघ्य है।।२४-२९।। शिव की आज्ञा से विष्णु देवताओं की रक्षा करते हैं और असुरों का संहार करते हैं। वह तीनों लोकों में स्थित (व्याप्त) हैं। वे पापियों (अभागियों) का नाश करते हैं।।३०।। शिव के आदेश से वरुण जल के द्वारा सब का पालन करते हैं। उन्हीं की आज्ञा से सब को जलमग्न कर देते हैं और असुरों को अपने पाश से बाँधते हैं।।३१।। उन्हीं परमेष्ठी शिव के आदेश से कुबेर सब प्राणियों को उनके गुणकर्म के अनुसार धन देते हैं।।३२।।

आन्तरिक सत्यपूर्ण महान् उस आत्मा के आदेश से सूर्य सूर्योदय और सूर्यास्त करके समय (काल) करता है।।३३।। काल के काल (महाकाल) की आज्ञा से चन्द्रमा अपने अमृतमयी किरणों से सम्पूर्ण औषधियों को प्रफुल्लित करता है और सम्पूर्ण इकाइयों को फूलों और लताओं को खिलाता है।।३४।। आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, अश्विन, मरुतगण, सब अन्य देवता उन्हीं शिव के शासन से निर्मित हुए हैं।।३५।। गन्धर्व, देव, सिद्ध, साध्य, चारण, यक्ष, रक्ष, पिशाच गण उन्हीं शिव के शासन में स्थित हैं।।३६।। ग्रह, नक्षत्र, तारा, यज्ञ, वेद, तत्त्व तथा ऋषिगण सब उन्हीं शिव के शासन में स्थित हैं।।३७।। पितृगण, सातों समुद्र, सातों पहाड़, सातों नदियाँ, वन और तालाब सब उन्हीं शिव के शासन में रहते हैं।।३८।। काल की अनेक इकाइयाँ कला, काष्ठा, निमेष, मूहूर्त, दिन-रात्रि, ऋतुएँ, वर्ष, पक्ष और महीनें ये सब उन्हीं शिव की आज्ञा से अधिष्ठित हैं।।३९।। उन्हीं शिव

युगमन्वंतराण्यस्य शंभोस्तिष्ठंति शासनात्। पराश्चैव परार्धाश्च कालभेदास्तथापरे॥४०॥
देवानां जातयश्चाष्टौ तिरश्चां पंच जातयः। मनुष्याश्च प्रवर्तंते देवदेवस्य धीमतः॥४१॥
जातानि भूतवृंदानि चतुर्दशसु योनिषु। सर्वलोकनिषण्णानि तिष्ठंत्यस्यैव शासनात्॥४२॥
चतुर्दशसु लोकेषु स्थिता जाताः प्रजाः प्रभोः। सर्वेश्वरस्य तस्यैव नियोगवशवर्तिनः ॥४३॥
पातालानि समस्तानि भुवानन्यस्य शासनात्। ब्रह्मांडानि च शेषाणि तथा सावरणानि च॥४४॥
वर्तमानानि सर्वाणि ब्रह्मांडानि तदाज्ञया। वर्तंते सर्वभूताद्यैः समेतानि समंततः॥४५॥
अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्मांडानि तदाज्ञया। प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समंततः॥४६॥
ब्रह्मंडानि भविष्यंति सह वस्तुभिरात्मकैः। करिष्यंति शिवस्याज्ञां सर्वैरावरणैः सह॥४७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे दशमोऽध्यायः॥१०॥

के शासन से मन्वन्तर, पर, परार्ध तथा अन्य काल भेद की इकाइयाँ, देवताओं की आठ जातियाँ, पशु-पक्षियों की पाँच जातियाँ तथा मनुष्य गण उन्हीं देवताओं के स्वामी के शासन में रहते हैं।।४०।। चौदह योनियों में पैदा हुए सब प्राणी और सब लोक में रहने वाले उन्हीं शिव के शासन में रहते हैं।।४१।। चौदह लोकों में जन्म लिए हुए और रहने वाले सब प्रजा उन्हीं सर्वेश्वर प्रभु की आज्ञा के वश में रहते हैं। पाताल और सब भुवन उन्हीं के अन्तर्गत हैं।।४२।। सब ब्रह्माण्ड और शेष सब उन्हीं शिव के आवरण के अन्तर्गत हैं। वर्तमान सब ब्रह्माण्ड सम्पूर्ण जीव गण सहित उन्हीं के द्वारा चारों ओर से घिरे हुए हैं। असंख्य अतीत ब्रह्माण्ड अपने में स्थित सब भूतों सहित उन्हीं की आज्ञा में स्थित हैं। भविष्य के ब्रह्माण्ड अपने में स्थित वस्तुओं के साथ सब आवरणों के सहित शिव की आज्ञा का पालन करेंगे।।४३-४७।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में उमापति का माहात्म्य
नामक दसवाँ अध्याय समाप्त॥१०॥

—✲✲✲—

एकादशोऽध्यायः

शिवस्य विभूतयः

सनत्कुमार उवाच

विभूतीः शिवयोर्मह्यमाचक्ष्व त्वं गणाधिप। परापरविदां श्रेष्ठ परमेश्वरभावित॥१॥

नंदिकेश्वर उवाच

हंत ते कथयिष्यामि विभूतीः शिवयोरहम्। सनत्कुमार योगींद्र ब्रह्मणस्तनयोत्तम॥२॥
परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा सा च प्रकीर्तिता। शिवमेवेश्वरं प्राहुर्मायां गौरीं विदुर्बुधाः॥३॥
पुरुषं शंकरं प्राहुर्गौरीं च प्रकृतिं द्विजाः। अर्थः शंभुः शिवा वाणी दिवसोऽजः शिवा निशा॥४॥
सप्ततंतुर्महादेवो रुद्राणी दक्षिणा स्मृता। आकाशं शंकरो देवः पृथिवी शंकरप्रिया॥५॥
समुद्रो भगवान् रुद्रो वेला शैलेन्द्रकन्यका। वृक्षः शूलायुधो देवः शूलप्राणिप्रिया लता॥६॥
ब्रह्मा हरोपि सावित्री शंकरार्धशरीरिणी। विष्णु र्महेश्वरो लक्ष्मीर्भवानी परमेश्वरी॥७॥
वज्रपाणिर्महादेवः शची शैलेंद्रकन्यका। जातवेदाः स्वयं रुद्रः स्वाहा शर्वार्धकायिनी॥८॥
यमस्त्रियंबको देवस्तत्प्रिया गिरिकन्यका। वरुणो भगवान् रुद्रो गौरी सर्वार्थदायिनी॥९॥

ग्यारहवाँ अध्याय

शिव की विभूतियों का वर्णन

सनत्कुमार बोले

हे गणों के स्वामी! पर और अपर को जानने वालों में श्रेष्ठ महादेव के भक्त! मुझसे शिव और शिवा के विभूतियों को कहो।।१।।

नन्दकेश्वर बोले

हे सनत्कुमार योगियों में श्रेष्ठ, ब्रह्मा के पुत्रों में उत्तम! मैं तुमसे शिव और शिवा की विभूतियों को कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो।।२।।

परमात्मा शिव कहा गया है और शिवा भी शिव ही है। बुद्धिमानों ने शिव को ईश्वर और शिवा को माया कहा है। (परमात्मा) पुरुष और स्त्री के दो रूपों में एक ही शरीर में अर्धनारीश्वर रूप में हैं। ब्राह्मण लोग शंकर को पुरुष और शिवा को प्रकृति कहते हैं। शिवा वाणी और शिव अर्थ है। शिव दिन है और शिवा रात्रि है।।३।। यज्ञ श्राद्ध के देवता शिव हैं और शिवा उस यज्ञ कि दक्षिणा हैं। शिवजी आकाश हैं और उनकी प्रिया पृथ्वी हैं।।४-५।। भगवान् रुद्र समुद्र हैं और पार्वती उस समुद्र की बेला हैं।।६।। शूलपाणि शिव वृक्ष और उनकी अर्धांगिनी लता हैं। शिव विष्णु हैं और शिवा भवानी लक्ष्मी हैं।।७।। शिव वज्रपाणि इन्द्र हैं और पर्वतराज की कन्या पार्वती शची हैं, शिवजी अग्नि हैं। उनकी अर्धांगिनी शिवा अग्नि की पत्नी स्वाहा हैं।।८।। शिवजी यम हैं और पार्वती यमी हैं, शिव वरुण हैं और शिवा उनकी पत्नी वरुणानी, सब अर्थ को देने वाली हैं।।९।।

बालेंदुशेखरो वायुः शिवा शिवमनोरमा। चंद्रार्थमौलिर्यक्षेंद्रः स्वयमृद्धिः शिवा स्मृता॥१०॥
चंद्रार्धशेखरश्चंद्रो रोहिणी रुद्रवल्लभा। सप्तसप्तिः शिवः कांता उमादेवी सुवर्चला॥११॥
पण्मुखस्त्रिपुरध्वंसी देवसेना हरप्रिया। उमा प्रसूतीर्वै ज्ञेया दक्षो देवो महेश्वरः॥१२॥
पुरुषाख्यो मनुः शंभुः शतरूपा शिवप्रिया। विदुर्भवानीमाकूतिं रुचिं च परमेश्वरम्॥१३॥
भृगुर्भगाक्षिहा देवः ख्यातिस्त्रिनयनप्रियः। मरीचिर्भगवान्रुद्रः संभूतिर्वल्लभा विभोः॥१४॥
विदुर्भवानीं रुचिरां कविं च परमेश्वरम्। गंगाधरोंगिरा ज्ञेयः स्मृतिः साक्षादुमा स्मृता॥१५॥

पुलस्त्यः शशभृन्मौलिः प्रीतिः कांता पिनाकिनः।
पुलहस्त्रिपुरध्वंसी दया कालरिपुप्रिया॥१६॥

क्रतुर्दक्षक्रतुध्वंसी संनतिर्दयिता विभोः। त्रिनेत्रोऽत्रिरुमा साक्षादनसूया स्मृता बुधैः॥१७॥
ऊर्जामाहुरुमां वृद्धां वसिष्ठं च महेश्वरम्। शंकरः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी॥१८॥

पुल्लिंगशब्दवाच्या ये ते च रुद्राः प्रकीर्तिताः।
स्त्रीलिंगशब्दवाच्या याः सर्वा गौर्या विभूतयः॥१९॥

सर्वे स्त्रीपुरुषाः प्रोक्तास्तयोरेव विभूतयः। पदार्थशक्तयो यायास्ता गौरीति विदुर्बुधाः॥२०॥
सासा विश्वेश्वरी देवी स च सर्वोमहेश्वरः। शक्तिमंतः पदार्था ये स च सर्वो महेश्वरः॥२१॥
अष्टौ प्रकृतयो देव्या मूर्तयः परिकीर्तिताः। तथा विकृतयस्तस्या देहबद्धविभूतयः॥२२॥

शिव वायु हैं और शिवा वायु की पत्नी हैं, बालेन्दु शिव यक्ष हैं शिवा ऋद्धि हैं।।१०।। चन्द्रशेखर शिव चन्द्र हैं तो उनकी प्रिया रोहिणी हैं। शिव सूर्य हैं तो उनकी प्रिया उमा देवी वर्चला हैं।।११।। त्रिपुर को ध्वंस करने वाले शिव आदि कार्तिकेय हैं तो उनकी प्रिया शिवा देवसेना हैं। शिव दक्ष हैं तो उनकी प्रिया उमा प्रसूति हैं।।१२।। शिव मनु (पुरुष) हैं तो उनकी प्रिया शिवा शतरूपा हैं, शिव जी रुचि हैं तो भवानी आकृति हैं।।१३।। भगाक्षि के हन्ता शिव ये जो भृगु हैं तो त्रिनयन प्रिय शिव की पत्नी ख्याति हैं। भगवान् रुद्र मरीच हैं तो उनकी प्रिया शिवा संभूति हैं।।१४।। शिव जी कवि हैं तो पत्नी भवानी को लोग रुचिरा जानते हैं। गंगाधर शिव अंगिरा है तो उनकी प्रिया उमा स्मृति हैं।।१५।। शशिधारी शिव पुलस्त्य हैं तो पिनाकधारी शिव की प्रिया प्रीति हैं। त्रिपुरारि पुलह है तो काल के हन्ता शिव की प्रिया शिवा दया है।।१६।। दक्ष यज्ञ के विध्वंस करने वाले शिव क्रतु हैं तो उनकी प्रिया शिवा संनति हैं। त्रिनेत्रधारी शिव अत्रि हैं तो उनकी पत्नी उमा स्वयं अनुसूया हैं।।१७।। महेश्वर शिव वसिष्ठ हैं तो उनकी पत्नी उमा वृद्धा ऊर्जा हैं। सब मनुष्य शिव और सब स्त्रियाँ शिवा हैं।।१८।। पुलिंग शब्द से जो वाच्य हैं वे शिव के रूप हैं, स्त्रीलिंग शब्दों से जो वाच्य हैं वे सब शिवा की विभूतियाँ हैं।।१९।। सब स्त्रियाँ और सब पुरुष उन्हीं शिव और शिवा की विभूतियाँ हैं। विद्वान लोग जानते हैं कि गौरी पदार्थों की शक्ति है।।२०।। वह विश्व की देवी हैं और वह सब के स्वामी (सर्वेश्वर) हैं। शक्तिमान् जितने भी पदार्थ हैं वह सब महेश्वर हैं।।२१।। अतः प्रकृतियाँ देवी की मूर्तियाँ, शारीरिक रूप हैं। विकृतियाँ देवी की देहबद्ध विभूतियाँ हैं।।२२।। जैसे आग से अनेक प्रकार की चिनगारी निकलती है उसी प्रकार शिव से

विस्फुलिंगा यथा तावदग्नौ च बहुधा स्मृताः। जीवाः सर्वे तथा शर्वो द्वंद्वसत्त्वमुपागतः॥२३॥
गौरीरूपाणि सर्वाणि शरीराणि शरीरिणाम्। शरीरिणस्तथा सर्वे शंकरांशा व्यवस्थितः॥२४॥
श्राव्यं सर्वमुमारूपं श्रोता देवो महेश्वरः। विषयित्वं विभुर्धत्ते विषयात्मकतामुमा॥२५॥
स्त्रष्टव्यं वस्तुजातं तु धत्ते शंकरवल्लभा। स्त्रष्टा स एव विश्वात्मा बालचंद्रार्धशेखरः॥२६॥
दृश्यवस्तु प्रजारूपं बिभर्ति भुवनेश्वरी। द्रष्टा विश्वेश्वरो देवः शशिखंडशिखामणिः॥२७॥
रसजातमुमारूपं प्रेयजातं च सर्वशः। देवो रसयिता शंभु घ्राता च भुवनेश्वरः॥२८॥
मंतव्यवस्तुतां धत्ते महादेवी महेश्वरी। मंता स एव विश्वात्मा महादेवो महेश्वरः॥२९॥
बोद्धव्यं वस्तु रूपं च बिभर्ति भववल्लभा। देवः स एव भगवान् बोद्धा बालेन्दुशेखरः॥३०॥
पीठाकृतिरुमा देवी लिंगरूपश्च शंकरः। प्रतिष्ठाप्य प्रयत्नेन पूजयंति सुरासुराः॥३१॥
येये पदार्था लिंगांकास्तेते शर्वविभूतयः। अर्था भगांकिता येये तेते गौर्या विभूतयः॥३२॥
स्वर्गपाताललोकांतब्रह्मांडावरणाष्टकम् । ज्ञेयं सर्वमुमारूपं ज्ञाता देवो महेश्वरः॥३३॥
बिभर्ति क्षेत्रतां देवी त्रिपुरांतकवल्लभा। क्षेत्रज्ञत्वमथो धत्ते भगवानंधकांतकः॥३४॥
शिवलिंगं समुत्सुज्य यजन्ते चान्यदेवताः। स नृपः सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत्॥३५॥
शिवभक्तो न यो राजा भक्तोऽन्येषु सुरेषु यः। स्वपतिं युवतिस्त्यक्त्वा यथा जारेषु राजते॥३६॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे राजानश्च महर्द्धिकाः। मानवा मुनयश्चैव सर्वे लिंगं यजंति च॥३७॥

सब जीव उत्पन्न होते हैं। शरीरधारियों के सब शरीर गौरी रूप हैं या सब शरीर शंकर के अंश से व्यवस्थित हुये हैं। सब श्रव्य (सुनने योग्य) उमा का रूप है और श्रोता भगवान शिव हैं। उमा स्वयं विषय है और शिव विषय का आस्वाद करने वाले हैं।।२३-२५।। शंकरप्रिया पार्वती सब स्त्रष्टव्य पदार्थ वस्तु समूह को धारण करती हैं। बालचन्द्रधारी विश्वात्मा शिव स्वयं स्त्रष्टा हैं।।२६।। दृश्य (दिखाई देने गोग्य) वस्तुओं को भुवनेश्वरी शिवा धारण करती हैं। चन्द्रशेखर स्वयं द्रष्टा (दर्शक) हैं।।२७।। सब रस (स्वाद) और गंध उमा का रूप है। उस रस के भोक्ता (आस्वादक) और घ्राता भुवनेश्वर शिव हैं।।२८।। महादेवी शिवा सब मन्तव्य (विचार योग्य विषय) को धारण करती हैं तो विश्व के आत्मा महादेव मंता (विचारक) हैं। शिव शिवा बोधक वस्तु के स्वरूप हैं तो बालचन्द्रधारी शिव बोद्धा (समझने वाले) हैं।।२९-३०।। उमा देवी वेदी रूप हैं। शिव जी लिंग रूप हैं। अग्नि यत्नपूर्वक स्थापित करके देवता और राक्षस पूजा करते हैं।।३१।। लिंग के आकार की जो-जो वस्तुएँ हैं वे सब शिव की विभूतियाँ हैं तथा भग के आकार की जितनी वस्तुएँ या पदार्थ हैं वे सब शिवा की विभूतियाँ हैं।।३२-३३।। स्वर्ग और पाताल के अन्त तक ब्रह्माण्ड को आच्छादित करने वाले आठ आवरण ज्ञेय (जानने योग्य) उमा के रूप हैं तो उसके ज्ञाता महेश्वर शिव हैं। यदि लोग शिव की लिंग पूजा को छोड़कर अन्य देवताओं (मूर्तियों) की पूजा करते हैं तो वे लोग अपने राजा सहित रौरव नरक में जाते हैं।।३४-३५।। जो राजा शिव का भक्त नहीं है, अन्य देवताओं का भक्त होता है। वह उस युवती के समान है जो अपने पति को छोड़कर जारों (अन्य पुरुषों) के साथ रमण करती है।।३६।। ब्रह्मा आदि सब देवता, धनपति राजा, प्रजा और मुनिगण सब

विष्णुना रावणं हत्वा ससैन्यं ब्रह्मणः सुतम्। स्थापितं विधिवद्भक्त्या लिंगं तीरे नदीपतेः॥३८॥
कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा विप्रशतं तथा। भावात्समाश्रितो रुद्रं मुच्यते नात्र संशयः॥३९॥
सर्वे लिंगमया लोकाः सर्वे लिंगे प्रतिष्ठिताः। तस्मादभ्यर्चयेल्लिंगे यदीच्छेच्छाश्वतं पदम्॥४०॥
सर्वाकारौ स्थितावेतौ नरैः श्रेयोऽर्थिभिः शिवौ। पूजनीयौ नमस्कार्यौ चिंतनीयौ च सर्वदा॥४१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे एकादशोऽध्यायः॥११॥

लिंग की पूजा करते हैं।।३७।। रावण का वध करने के पश्चात् राम ने ब्रह्मा के पुत्र विष्णु द्वारा समुद्र तट पर स्थापित शिव लिंग की विधिवत् पूजा सेना सहित पहले की थी।।३८।। हजारों पाप करके और सैकड़ों ब्राह्मणों की हत्या करके जो व्यक्ति लगनपूर्वक शिव की भक्ति करता है निःसन्देह मोक्ष को प्राप्त होता है।।३९।। सब लोक लिंगमय हैं। वे सब लिंग में प्रतिष्ठित हैं। इसलिये यदि कोई शाश्वत पद (अन्तःकरण की स्थायी शान्ति या मोक्ष) चाहे तो उसको लिंग की पूजा करनी चाहिये।।४०।। शिव और शिवा सब में विराजमान हैं। अपने कल्याण चाहने वालों को सदा शिव और शिवा पूजनीय, नमस्कार्य और चिन्तनीय हैं।।४१।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव की विभूतियों का वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

शिवस्याष्टमूर्त्तयः

सनत्कुमार उवाच

मूर्तयोऽष्टौ ममाचक्ष्व शंकरस्य महात्मनः। विश्वरूपस्य देवस्य गणेश्वर महामते॥१॥

नंदिकेश्वर उवाच

हंत ते कथयिष्यामि महिमानमुमापतेः। विश्वरूपस्य देवस्य सरोजभवसंभव॥२॥
भूरापोग्निर्मरुद्व्योम भास्करो दीक्षितः शशी। भवस्य मूर्तयः प्रोक्ताः शिवस्य परमेष्ठिनः॥३॥
खात्मेंदुवह्निसूर्यांभोधराः पवन इत्यपि। तस्याष्ट मूर्तयः प्रोक्ता देवदेवस्य धीमतः॥४॥
अग्निहोत्रेर्पिते तेन सूर्यात्मनि महात्मनि। तद्विभूतीस्तथा सर्वे देवास्तृप्यंति सर्वदाः॥५॥
वृक्षस्य मूलसेकेन यथा शाखोपशाखिकाः। तथा तस्यार्चया देवास्तथा स्युस्तद्विभूतयः॥६॥
तस्य द्वादशधा भिन्नं रूपं सूर्यात्मकं प्रभोः। सर्वदेवात्मकं याज्यं यजंति मुनिपुंगवाः॥७॥
अमृताख्या कला तस्य सर्वस्यादित्यरूपिणः। भूतसंजीवनी चेष्टा लोकोस्मिन् पीयते सदा॥८॥
चंद्राख्यकिरणास्तस्य धूर्जटेर्भास्करात्मनः। ओषधीनां विवृद्ध्यर्थं हिमवृष्टिं वितन्वते॥९॥

बारहवाँ अध्याय

शिव की आठ मूर्तियाँ

सनत्कुमार बोले

हे गणों के नेता! महाबुद्धिमान् नंदिकेश्वर! मुझसे महान् आत्मा शंकर के आठ ब्रह्माण्ड स्वरूप कहो।।१।।

नंदिकेश्वर बोले

हे ब्रह्मा के पुत्र! मैं तुमसे विश्वरूप शिवजी के महिमा को कहूँगा।।२।। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, दीक्षित (आत्मा) ये परमेष्ठी शिव की आठ मूर्तियाँ हैं।।३।। आकाश, आत्मा, चन्द्रमा, अग्नि, सूर्य जल, भूमि और वायु ये भी बुद्धिमान् देवताओं के देवता शिव की आठ मूर्तियाँ कही गयी हैं।।४।। इसलिए सूर्य के प्रकृति के महान् आत्मा को अग्निहोत्र अर्पित किये जाने पर तो उनकी विभूतियों और सब देवता सर्वदा तृप्त होते हैं।।५।। जैसे वृक्ष की जड़ सींचने से उसकी शाखाएँ और उपशाखाएँ सन्तुष्ट होती हैं। उसी प्रकार देवगण और शिव की विभूतियाँ भी शिव की पूजा और अर्चना से तृप्त होती हैं।।६।। श्रेष्ठ मुनि लोग बारह प्रकार सूर्यात्मक प्रभु शिव के पूज्य रूप की पूजा करते हैं।।७।। सब सूर्यरूपी उनकी अमृत रूप में प्रसिद्ध कला—जो इस लोक में सम्पूर्ण प्राणियों की संजीवनी है लोक के लिए लाभकारी है—उसको लोग हमेशा पीते हैं।।८।। भास्करात्मा उन शिव की चन्द्र नामक किरणें औषधियों के बढ़ने के लिए हिम की वृष्टि करती हैं।।९।।

शुक्लाख्या रश्मयस्तस्य शंभोर्मार्तंडरूपिणः। घर्मं वितन्वते लोके सस्यपाकादिकारणम्॥१०॥
दिवाकरात्मनस्तस्य हरिकेशाह्वयः करः। नक्षत्रपोषकश्चैव प्रसिद्धः परमेष्ठिनः॥११॥
विश्वकर्माह्वयस्तस्य किरणो बुधपोषकः। सर्वेश्वरस्य देवस्य सप्तसप्तिस्वरूपिणः॥१२॥
विश्वव्यच इति ख्यातः किरणस्तस्य शूलिनः। शुक्रपोषकभावेन प्रतीतः सूर्यरूपिणः॥१३॥
संयद्वसुरिति ख्यातो यस्य रश्मिस्त्रिशूलिनः। लोहितांगं प्रपुष्णाति सहस्रकिरणात्मनः॥१४॥
अर्वावसुरिति ख्यातो रश्मिस्तस्य पिनाकिनः। बृहस्पतिं प्रपुष्णाति सर्वदा तपनात्मनः॥१५॥
स्वराडिति समाख्यातः शिवस्यांशुःशनैश्चरम्। हरिदश्वात्मनस्तस्य प्रपुष्णाति दिवानिशम्॥१६॥
सूर्यात्मकस्य देवस्य विश्वयोनेरुमापतेः।
सुषुम्णाख्यः सदा रश्मिः पुष्णाति शिशिरद्युतिम्॥१७॥
सौम्यानां वसुजातानां प्रकृतित्वमुपागता। तस्य सोमाह्वया मूर्तिः शंकरस्य जगद्गुरोः॥१८॥
तस्य सोमात्मक रूप शुक्रत्वेनव्यवस्थितम्। शरीरभाजां सर्वेषां देवस्यांतकशासिनः॥१९॥
शरीरिणामशेषाणां मनस्येव व्यवस्थितम्। वपुः सोमात्मकं शंभोस्तस्य सर्वजगद्गुरोः॥२०॥
शंभोः षोडशधा भिन्ना स्थितामृतकलात्मनः। सर्वभूतशरीरेषु सोमाख्या मूर्तिरुत्तमा॥२१॥
देवान्पितृंश्च पुष्णाति सुधयामृतया सदा। मूर्तिः सोमाह्वया तस्य देवदेवस्य शासितुः॥२२॥
पुष्णात्योषधिजातानि देहिनामात्मशुद्धये। सोमाह्वया तनुस्तस्य भवानीमिति निर्दिशेत्॥२३॥

शिव की सूर्यात्मक शुक्ल किरणें गर्मी (धूप) पैदा करती हैं जिनसे पीछे और अन्न पकते हैं।।१०।। प्रसिद्ध परमेष्ठी के सूर्यात्मक रूप से हरिकेश नामक किरण ऐसी है जो नक्षत्रों की पोषक हैं।।११।। शिव के सूर्यात्मक रूप के सम्बन्ध रखने वाली विश्वकर्मा नामक किरण बुध की पोषक है।।१२।। शिव की सूर्य रूपी विश्वव्यच नाम की किरण शुक्र की पोषक है।।१३।। सूर्यात्मक शिव की संयतवसु नाम से प्रसिद्ध लोहितांग को पोषित करती है।।१४।। उन पिनाकी शिव की सूर्यात्मक अर्वावसु नाम की किरण सदा बृहस्पति को विकसित करती है।।१५।। शिव की सूर्यात्मक स्वराट् नामक किरण रात और दिन के द्वारा शनिश्चर को पुष्ट करती है।।१६।। उमापति विश्व की उत्पत्ति के स्रोत की सूर्यात्मक सुषुम्ना नाम से प्रसिद्ध किरण शिशिर को पुष्ट करती है।।१७।। शिव से सम्बन्ध रखने वाली सोम नामक मूर्ति विश्व के भौतिक पदार्थों की पोषक है।।१८।। अन्तकहन्ता उन शिवजी का सोमात्मक रूप सब शरीरधारियों में शुक्र (वीर्य) रूप में रहता है।।१९।। जगद्गुरु उन शिव का सोमात्मक शरीर सब शरीरधारियों के मन में विराजमान है।।२०।। शिव का भौतिक रूप सोम नाम है जो सब प्राणियों के शरीर में स्थित है। यह अमृत कलात्मक के सोलह रूप में विभक्त सब प्राणियों के शरीर में उत्तम मूर्ति रूप में स्थित रहता है।।२१।। चन्द्र की सोलह कलाएँ शिव के सोलह शरीर के रूप में कही गयी हैं।।२२।। देवताओं के देवता शंकर का सोमरूप अमृत के द्वारा देवताओं और पितरों को तृप्त करता है। शिव का भौतिक रूप सोम सब शरीरधारियों के आत्मा की शुद्धि के लिए औषधियों के पादपों का पोषण करता है। शिव के इस रूप को भवानी कहा जाता है।।२३।। शिव जी का प्रसिद्ध सोमात्मक रूप जीवों और यज्ञों के पति रूप में प्रसिद्ध

यज्ञानां पतिभावेन जीवानां तपसामपि। प्रसिद्धरूपमेतद्वै सोमात्मकमुमापतेः॥२४॥
जलानामोषधीनां च पतिभावेन विश्रुतम्। सोमात्मकं वपुस्तस्य शंभोर्भगवतः प्रभोः॥२५॥
देवो हिरणमयो मृष्टः परस्परविवेकिनः। करणानामशेषाणां देवतानां निराकृतिः॥२६॥
जीवत्वेन स्थिते तस्मिञ्छिवे सोमात्मके प्रभौ। मधुरा विलयं याति सर्वलोकैकरक्षिणी॥२७॥
यजमानाह्वया मूर्तिः शैवी हव्यैरहर्निशम्। पुष्णाति देवताः सर्वाः कव्यैः पितृगणानपि॥२८॥
यजमानाह्वया या सा तनुश्चाहुतिजा तया। वृष्ट्या भावयति स्पष्टं सर्वमेव परापरम्॥२९॥
अंतःस्थं च बहिःस्थं च ब्रह्मांडानां स्थितं जलम्।
भूतानां च शरीरस्थं शंभोर्मूर्तिर्गरीयसी॥३०॥
नदीनाममृतं साक्षान्नदानामपि सर्वदा। समुद्राणां च सर्वत्र व्यापी सर्वमुमापतिः॥३१॥
संजीविनी समस्तानां भूतानामेव पाविनी। अंबिका प्राणसंस्था या मूर्तिरंबुमयी परा॥३२॥
अंतःस्थश्च बहिःस्थश्च ब्रह्मांडानां विभावसुः। यज्ञानां च शरीरस्थः शंभोर्मूर्तिर्गरीयसी॥३३॥
शरीरस्था च भूतानां श्रेयसी मूर्तिरैश्वरी। मूर्तिः पावकसंस्था या शंभोरत्यंतपूजिता॥३४॥
भेदा एकोनपंचाशद्वेदविद्भिरुदाहृताः। हव्यं वहति देवानां शंभोर्यज्ञात्मकं वपुः॥३५॥
कव्यं पितृगणानां च हूयमानं द्विजातिभिः। सर्वदेवमयं शंभोः श्रेष्ठमग्न्यात्मकं वपुः॥३६॥
वदंति वेदशास्त्रज्ञा यजंति च यथाविधि। अंतःस्थो जगदंडानां बहिःस्थश्च समीरणः॥३७॥

है।।२४।। शिव जी का सोमात्मक रूप जलों का और औषधियों के पति रूप में जाना जाता है।।२५।। हिरण्यमय देवता शिवजी विचारशील पुरुषों की सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियों की पहुँच से बाहर हैं और उन सब देवताओं के साधन पहुँच से भी बाहर हैं। वह प्रत्येक आत्मा में जीव रूप में स्थित है। सब जगत की रक्षा करने वाली मधुर माया (प्रकृति) स्वयं दूर हट जाती है।।२६-२७।।

शिवजी की यजमान नामक मूर्ति सब देवताओं को दिन-रात सब हव्य और सब पितरों को कव्य के द्वारा पोषण करती है। यजमान रूपी वह मूर्ति सम्पूर्ण चर और अचर को अपने आहुति से उत्पन्न वृष्टि से पुष्ट करती है।।२८-२९।।

जल जो ब्रह्माण्ड के भीतर और बाहर स्थित है, और जल जो कि सब प्राणियों के भीतर स्थित है। यह जल शिव जी की ही मूर्ति है।।३०।।

नदियों और नदी का अमृतमय जल तथा समुद्रों का जल उमापति शिव का भौतिक रूप है।।३१।। सब प्राणियों को पवित्र करने वाली जो संजीवनी है वह प्राणवायु में स्थित है वह सोम का रूप (मूर्त्ति) है।।३२।। विश्व के भीतर-बाहर स्थित अग्नि और यज्ञों में स्थित अग्नि उन्हीं शिव की श्रेष्ठ मूर्ति है।।३३।।

शिव का भौतिक रूप, वह जो अत्यन्त सम्मत और पूजित है, वह प्राणियों के कल्याण के लिए उनके देह में स्थित है।।३४।। वेदज्ञों द्वारा उनचास (४९) भेदों में कही गई सबसे श्रेष्ठ अग्नि शंभु का रूप है। जिस अग्नि से ब्राह्मणों द्वारा हवा से देवताओं को हव्य और पितरों को कव्य प्राप्त होता है।।३५-३६।। वेदों और शास्त्रों

शरीरस्थश्च भूतानां शैवी मूर्तिः पटीयसी। प्राणाद्या नागकूर्माद्या आवहाद्याश्च वायवः॥३८॥
ईशानमूर्तेरेकस्य भेदाः सर्वे प्रकीर्तिताः। अंतःस्थं जगदंडानां बहिःस्थं च वियद्विभोः॥३९॥
शरीरस्थं च भूतानां शंभोमूर्तिर्गरीयसी। शंभोर्विश्वंभरा मूर्तिः सर्वब्रह्माधिदेवता॥४०॥
चराचराणां भूतानां सर्वेषां धारणे मता। चराचराणां भूतानां शरीराणि विदुर्बुधाः॥४१॥
पंचकेनेशमूर्तीनां समारब्धानि सर्वथा। पंचभूतानि चंद्रार्कावात्मेति मुनिपुंगवाः॥४२॥
मूर्तयोऽष्टौ शिवस्याहुर्देवदेवस्य धीमतः। आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिर्यजमानाह्वया परा॥४३॥
चराचरशरीरेषु सर्वेष्वेव स्थिता तदा। दीक्षितं ब्राह्मणं प्राहुरात्मानं च मुनीश्वराः॥४४॥
यजमानाह्वया मूर्तिःशिवस्य शिवदायिनः। मूर्तयोष्टौ शिवस्यैता वंदनीयाः प्रयत्नतः॥४५॥
श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः॥४६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

के ज्ञाता यथाविहित जिसको पूजते हैं वह जगत के बाहर और भीतर स्थित है और प्राणियों के शरीर में स्थित है। वह वायु शिव का शक्तिमान रूप है। वह वायु अनेक प्रकार की है जैसे प्राण आदि, नाग, कूर्म आदि, आवह आदि ये सब ईशान (शिव) के विभिन्न रूप हैं। ये सब ईशान मूर्ति के भेद कहे गये हैं।।३७-३८।। जगत के भीतर और बाहर जो आकाश स्थित है और प्राणियों के शरीर में स्थित है वह सब शिव की शान्त मूर्ति है। सब ब्रह्मा और देवता शिव की दिशामय मूर्ति हैं। सब चर और अचर को धारण करने में सक्षम विद्वान लोग कहते हैं कि ये सब चर और अचर शरीर शिव के रूप हैं। हे श्रेष्ठ मुनियों! ईश के पाँच भक्ति के रूप मूर्ति से पाँच भूत विकसित हुये हैं। चन्द्र, सूर्य और आत्मा शिव के आठ ब्रह्माण्ड रूप कहे जाते हैं। उनकी आठवीं मूर्ति आत्मा है। इसका दूसरा नाम यजमान है।।३९-४३।। यह आत्मा सब चर और अचर में विद्यमान है। मुनीश्वर लोग आत्मा को दीक्षित कहते हैं। यह शिवदायक शरीर है। इसको यजमान भी कहते हैं। ये आठों शिव की मूर्तियाँ यत्नपूर्वक वन्दनीय हैं। जो लोग अपना कल्याण चाहते हैं उनको सदैव यत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिए।।४४-४६।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव की आठ मूर्तियाँ
नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

शिवस्याष्टमूर्तेः महिमा

सनत्कुमार उवाच

भूयोऽपि वद मे नंदिन् महिमानमुमापते। अष्टमूर्तेर्महेशस्य शिवस्य परमेष्ठिनः॥१॥

नंदिकेश्वर उवाच

वक्ष्यामि ते महेशस्य महिमानमुमापतेः। अष्टमूर्तेर्जगद्व्याप्य स्थितस्य परमेष्ठिनः॥२॥
चराचराणां भूतानां धाता विश्वंभरात्मकः। शर्व इत्युच्यते देवः सर्वशास्त्रार्थपारगैः॥३॥
विश्वंभरात्मनस्तस्य सर्वस्य परमेष्ठिनः। विकेशी कथ्यते पत्नी तनयोंगारकः स्मृतः॥४॥
भव इत्युच्यते देवो भगवान्वेदवादिभिः। संजीवनस्य लोकानां भवस्य परमात्मनः॥५॥
उमा संकीर्तिता देवी सुतः शुक्रश्च सूरिभिः। सप्तलोकांडकव्यापी सर्वलोकैकरक्षिता॥६॥
वह्न्यात्मा भगवान्देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः। स्वाहा पत्न्यात्मनस्तस्य प्रोक्ता पशुपतेः प्रिया॥७॥
षण्मुखो भगवान्देवो बुधैः पुत्र उदाहृतः। समस्तभुवनव्यापी भर्ता सर्वशरीरिणाम्॥८॥
पवनात्मा बुधैर्देव ईशान इति कीर्त्यते। ईशानस्य जगत्कर्तुर्देवस्य पवनात्मनः॥९॥

तेरहवाँ अध्याय

शिव की अष्टमूर्ति की महिमा

सनत्कुमार बोले

हे नन्दीश्वर! इसके आगे उमापति शिव जी की महानता को कहो, उस शिव के जिनकी आठ मूर्तियाँ हैं।।१।।

नन्दिकेश्वर बोले

मैं जगत् में व्याप्त परमेष्ठी की अष्टमूर्ति उमापति की महिमा को कहूँगा।।२।। सब चर प्राणियों के स्रष्टा (उत्पन्न करने वाले) तथा विश्व के पालक को सब शास्त्रों के अर्थ परगामी विद्वान जिनको शर्व कहते हैं।।३।। सर्व की पत्नी विकेशी हैं। शिव परमेष्ठी विश्वम्भर के रूप में हैं। अंगारक उनका पुत्र है।।४।। वेदवादियों द्वारा भगवान् शिव भव कहे जाते हैं। महान् आत्मा जो विश्व का पालन करती है। उनकी पत्नी उमा देवी और पुत्र शुक्र विद्वानों द्वारा कहा गया है। वह शिव सातों लोकों में व्यापक हैं और सब लोकों के एक मात्र रक्षक हैं। विद्वानों द्वारा वे अग्नि के रूप में, पशुपति के रूप में स्मरण किये गये हैं। उस अग्नि रूप पशुपति की पत्नी स्वाहा है, विद्वानों ने षड्मुख (षडानन) पुत्र कहा है। वह सब लोकों में व्याप्त हैं और सब शरीरधारियों के भरण पोषण करने वाले हैं। पण्डित लोग वायु रूप में (पवनात्मा) शिव ईशान कहे जाते हैं। वे सब जगत् के कर्त्ता हैं। उनकी पत्नी शिवा है और पुत्र कामदेव हैं। वह चर अचर सब की कामना को पूरा करते हैं।।५-९।।

शिवा देवी बुधैरुक्ता पुत्रश्चास्य मनोजवः। चराचराणां भूतानां सर्वेषां सर्वकामदः॥१०॥
व्योमात्मा भगवान्देवो भीम इत्युच्यते बुधैः। महामहिम्नो देवस्य भीमस्य गगनात्मनः॥११॥
दिशा दश स्मृता देव्यः सुतः सर्गश्च सूरिभिः। सूर्यात्मा भगवान्देवः सर्वेषां च विभूतिदः॥१२॥
रुद्र इत्युच्यते देवैर्भगवान् भुक्तिमुक्तिदः। सूर्यात्मकस्य रुद्रस्य भक्तानां भक्तिदायिनः॥१३॥
सुवर्चला स्मृता देवी सुतश्चास्य शनैश्चरः। समस्तसौम्यवस्तूनां प्रकृतित्वेन विश्रुतः॥१४॥
सोमात्मको बुधैर्देवो महादेव इति स्मृतः। सोमात्मकस्य देवस्य महादेवस्य सूरिभिः॥१५॥
दयिता रोहिणी प्रोक्ता बुधश्चैव शरीरजः।
हव्यकव्यस्थितिं कुर्वन् हव्यकव्याशिनां तदा॥१६॥
यजमानात्मको देवो महोदेवो बुधैः प्रभुः। उग्र इत्युच्यते सद्भिरीशानश्चेति चापरैः॥१७॥
उग्राह्वयस्य देवस्य यजमानात्मनः प्रभोः। दीक्षा पत्नी बुधैरुक्ता संतानाख्यः सुतस्तथा॥१८॥
शरीरिणां शरीरेषु कठिनं कोंकणादिवत्। पार्थिवं तद्वपुर्ज्ञेयं शर्वतत्त्वं बुभुत्सुभिः॥१९॥
देहेदेहे तु देवेशो देहभाजां यदव्ययम्। वस्तुद्रव्यात्मकं तस्य भवस्य परमात्मनः॥२०॥
ज्ञेयं च तत्त्वविद्भिर्वै सर्ववेदार्थपारगैः। आग्नेयः परिणामो यो विग्रहेषु शरीरिणाम्॥२१॥
मूर्तिः पशुपतिर्ज्ञेया सा तत्त्वं वेत्तुमिच्छुभिः। वायव्यः परिणामो यः शरीरेषु शरीरिणाम्॥२२॥
बुधैरीशेति सा तस्य तनुर्ज्ञेया न संशयः। सुषिरं यच्छरीरस्थमशेषाणां शरीरिणाम्॥२३॥
भीमस्य सा तनुर्ज्ञेया तत्त्वविज्ञानकांक्षिभिः। चक्षुरादिगतं तेजो यच्छरीरस्थमंगिनाम्॥२४॥

आकाश के रूप में भगवान् शिव विद्वानों द्वारा भीम कहे गये हैं। वे सब प्राणियों की कामनाओं की पूर्ति कर्त्ता हैं। विद्वानों द्वारा दस दिशा उनकी देवियाँ हैं। सर्ग उनके पुत्र हैं। भगवान शिव सूर्य के रूप में सब को विभूति देने वाले और भुक्ति मुक्ति देने वाले हैं, जो देवताओं द्वारा रुद्र कहे जाते हैं। सूर्यात्मा रुद्र भक्तों को भक्ति और मुक्ति देते हैं। रुद्र की पत्नी सवर्चला देवी है और शनैश्चर उनका पुत्र है। चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी है और उनका पुत्र बुध है। भगवान महादेव यजमान के रूप में विद्वानों द्वारा उग्र कहे गये हैं। अन्य लोगों द्वारा वे ईशान भी कहे जाते हैं। वह देवताओं को देय हव्य और पितरों को देय कव्य देते हैं।।१०-१७।। यजमान आत्मा उग्र की पत्नी दीक्षा और पुत्र संतान कहा गया है।।१८।। आत्माओं का शरीर के कठिन भाग कोंकण आदि शिव का पार्थिव शरीर है।।१९।।

प्रत्येक शरीर में देवताओं के स्वामी शिव विद्यमान हैं। जो विद्वान सब वेदों के अर्थों के विशेषज्ञ हैं और तत्त्वों के ज्ञाता हैं, वे कहते हैं कि आत्माओं के शरीर में जो अपरिवर्तनीय (अव्यय) ठोस द्रव्य हैं वह उस महान् आत्मा भव का अंश हैं। शरीरधारियों के शरीर में जो आग्नेय तत्त्व है वह पशुपति के भौतिक रूप में जाना जाता है। ऐसा तत्त्ववेत्ता कहते हैं। शरीरधारियों के शरीर में जो वायव्य परिमाण है निःसन्देह वह ईश का शरीर है, ऐसा विद्वानों का कथन है। तत्त्व के खोजों में इच्छुक लोगों का मानना है कि सब शरीरधारियों के शरीर में जो तेज स्थित है वह भीम का तनु है। शरीरधारियों के नेत्रों आदि में विद्यमान जो चन्द्रात्मक मन है वह विद्वानों द्वारा रुद्र का बहुरूप मान्य है।

रुद्रस्यापि तनुर्ज्ञेया परमार्थं बुभुत्सुभिः। सर्वभूतशरीरेषु मनश्चंद्रात्मकं हि यत्॥२५॥
महादेवस्य सा मूर्ति बोद्धव्या तत्त्वचिंतकैः। आत्मा यो यजमानाख्यः सर्वभूतशरीरगः॥२६॥
मूर्तिरुग्रस्य सा ज्ञेया परमात्मबुभुत्सुभिः। जातानां सर्वभूतानां चतुर्दशसु योनिषु॥२७॥
अष्टमूर्तेरनन्यत्वं वदंति परमर्षयः। सप्तमूर्तिमयान्याहुरीशस्यांगानि देहिनाम्॥२८॥
आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिः सर्वभूतशरीरगा। अष्टमूर्तिममुं देवं सर्वलोकात्मकं विभुम्॥२९॥
भजस्व सर्वभावेन श्रेयः प्राप्तुं यदीच्छसि। प्राणिनो यस्य कस्यापि क्रियते यद्यनुग्रहः॥३०॥
अष्टमूर्तेर्महेशस्य कृतमाराधनं भवेत्।
निग्रहश्चेत् कृतो लोके देहिनो यस्य कस्यचित्॥३१॥
अष्टमूर्तेर्महेशस्य स एव विहितो भवेत्। यद्यवज्ञा कृता लोके यस्य कस्यचिदंगिनः॥३२॥
अष्टमूर्तेर्महेशस्य विहिता सा भवेद्विभेः। अभयं यत् प्रदत्तं स्यादंगिनो यस्य कस्यचित्॥३३॥
आराधनं कृतं तस्मादष्टमूर्तेर्न संशयः। सर्वोपकारकरणं प्रदानमभयस्य च॥३४॥
आराधनं तु देवस्य अष्टमूर्तेर्न संशयः। सर्वोपकारकरणं सर्वानुग्रह एव च॥३५॥
तदर्चनं परं प्राहुरष्टमूर्तेर्मुनीश्वराः। अनुग्रहणमन्येषां विधातव्यं त्वयांगिनाम्॥३६॥
सर्वाभयप्रदानं च शिवाराधनमिच्छता॥३७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

शरीरधरियों के शरीर का जो वायव्य परिमाण है वह निःसन्देह ईश का शरीर है। ऐसा विद्वानों का कथन है। तत्त्व की खोज में इच्छुक लोगों का मानना है कि सब शरीरधारियों के शरीर में जो सुषिर स्थित है, वह भीम का तनु है। शरीरधारियों के नेत्रों आदि में विद्यमान जो तेज है तत्त्वज्ञानियों के द्वारा रुद्र का एक रूप मान्य है। सब शरीरधारियों में सब प्राणियों के शरीर में स्थित मन जो चन्द्रमा रूप में स्थित है वह महादेव की मूर्ति है। सब प्राणियों के शरीर में जो यजमान नामक आत्मा विद्यमान है। वह आत्मतत्त्वविदों द्वारा शिव की मूर्ति कहा जाता है।।२०-२६।। महान् ऋषिगण कहते हैं कि चौदहों योनियों में उत्पन्न सब प्राणियों में अष्टमूर्ति से पृथक् नहीं है। अर्थात् सब प्राणी अष्टमूर्ति में ही समाहित हैं। वे कहते हैं कि देहधरियों के अंग ईश के अष्टमूर्तिमय हैं। सब प्राणियों के शरीर में आत्मा आठवीं मूर्ति है। यदि तुम कल्याण चाहते हो तो सब लोक में व्याप्त विभु शिव की अष्टमूर्ति की सेवा करो।।२७-२९।। अष्टमूर्ति शिव की आराधना यदि की जाय तो जिस किसी भी व्यक्ति पर उनकी कृपा हो सकती है। यदि लोक में कोई शिव की अष्टमूर्तियों में किसी एक मूर्ति का निग्रह, विघ्न या उपेक्षा करता है तो वह शिव का ही अनादर होगा। जिस किसी भी अंगी (देही) की जोखिम या भय से रक्षा की जाय निश्चित रूप से वह अष्टमूर्ति शिव की ही रक्षा के समान है।।३०-३३।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव की अष्टमूर्ति की महिमा नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

पंचब्रह्मकथनम्

सनत्कुमार उवाच

पंच ब्रह्माणि मे नंदिन्नाचक्ष्व गणसत्तम। श्रेयः करणभूतानि पवित्राणि शरीरिणाम्॥१॥

नंदिकेश्वर उवाच

शिवस्यैव स्वरूपाणि पंच ब्रह्माह्वयानि ते। कथयामि यथातत्त्वं पद्मयोनेः सुतोत्तम॥२॥
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वलोकैकरक्षिता। सर्वलोकैकनिर्माता पंचब्रह्मात्मकः शिवः॥३॥
सर्वेषामेव लोकानां यदुपादानकारणम्। निमित्तकारणं चाहुस्स शिवः पंचधा स्मृतः॥४॥
मूर्तयः पंच विख्याताः पंच ब्रह्माह्वयाः पराः। सर्वलोकशरण्यस्य शिवस्य परमात्मनः॥५॥
क्षेत्रज्ञः प्रथमा मूर्तिः शिवस्य परमेष्ठिनः। भोक्ता प्रकृतिवर्गस्य भोग्यस्येशानसंज्ञितः॥६॥
स्थाणोस्तत्पुरुषाख्या च द्वितीयामूर्तिरुच्यते। प्रकृतिः सा हि विज्ञेया परमात्मगुहात्मिका॥७॥
अघोराख्या तृतीया च शंभोर्मूर्तिरीयसी। बुद्धेः सा मूर्तिरित्युक्ता धर्माद्यष्टांगसंयुता॥८॥
चतुर्थी वामदेवाख्या मूर्तिः शंभोर्गरीयसी। अहंकारात्मकत्वेन व्याप्य सर्वं व्यवस्थिता॥९॥
सद्योजाताह्वया शंभोः पंचमी मूर्तिरुच्यते। मनस्तत्त्वात्मकत्वेन स्थिता सर्वशरीरिषु॥१०॥

चौदहवाँ अध्याय

पंच ब्रह्म कथन

सनत्कुमार बोले

हे गणों में श्रेष्ठ, हे नन्दिकेश्वर! मुझसे पंचब्रह्मों के विषय में कहो जो कि शरीरधारियों को पवित्र करने वाले और कल्याण करने वाले हैं।।१।।

नन्दिकेश्वर बोले

पंचब्रह्म कहे जाने वाले वे शिव के ही स्वरूप हैं। हे ब्रह्मा के उत्तम पुत्र! मैं तुमसे उनके विषय में कहता हूँ। शिव स्वयं ही पंच ब्रह्म हैं।।२।। पंच ब्रह्म के रूप में शिव सब संसार के निर्माता, संहर्त्ता और एक मात्र रक्षक हैं। शिव लोकों के उपादान कारण और निमित्त कारण दोनों है। वह शिव पंचब्रह्म कहे जाते हैं।।३-४।। सब लोक को शरण देने के योग्य परमात्मा शिव की पाँच मूर्तियाँ हैं। वह क्षेत्र के ज्ञाता क्षेत्रज्ञ हैं और प्रकृति के भोग करने वाले (भोक्ता) हैं।।५-६।। शिव की द्वितीय मूर्ति तत्पुरुष कहलाती है। वह परमात्मा में स्थित प्रकृति है।।७।। शिव की तृतीय उत्तम मूर्ति अघोर नाम से प्रसिद्ध है। यह बुद्धिरूपा मूर्ति है जो कि धर्म आदि आठ अंगों से युक्त है।।८।। शिव की चौथी मूर्त्ति वामदेव है। यह अहंकार के रूप में सबकुछ प्रदान करती है।।९।। शिव की पाँचवीं मूर्ति का नाम सद्योजात है। वह सब शरीरधारियों में मन के रूप में स्थित है।।१०।। परमेष्ठी महान्

ईशानः परमो देवः परमेष्ठी सनातनः। श्रोत्रेद्रियात्मकत्वेन सर्वभूतेष्ववस्थितः॥११॥
स्थितस्तत्पुरुषो देवः शरीरेषु शरीरिणाम्। त्वगिंद्रियात्मकत्वेन तत्त्वविद्भिरुदाहृतः॥१२॥
अघोरोपि महादेवश्चक्षुरात्मतया बुधैः। कीर्तितः सर्वभूतानां शरीरेषु व्यवस्थितः॥१३॥
जिह्वेंद्रियात्मकत्वेन वामदेवोपि विश्रुतः। अंगभाजामशेषाणामंगेषु परिधिष्ठितः॥१४॥
घ्राणेंद्रियात्मकत्वेन सद्योजातः स्मृतो बुधैः। प्राणभाजां समस्तानां विग्रहेषु व्यवस्थितः॥१५॥
सर्वेष्वेव शरीरषु प्राणभाजां प्रतिष्ठितः। वागिंद्रियात्मकत्वेन बुधैरीशान उच्यते॥१६॥
पाणींद्रियात्मकत्वेन स्थितस्तत्पुरुषो बुधैः। उच्यते विग्रहेष्वेव सर्वविग्रहधारिणाम्॥१७॥
सर्वविग्रहिणां देहे ह्यघोरोपि व्यवस्थितः। पादेंद्रियात्मकत्वेन कीर्तितस्तत्त्ववेदिभिः॥१८॥
पाय्विंद्रात्मकत्वेन वामदेवो व्यवस्थितः। सर्वभूतानिकायानां कायेषु मुनिभिः स्मृतः॥१९॥
उपस्थात्मतया देवः सद्योजातः स्थितः प्रभुः। इष्यते वेदशास्त्रज्ञैर्देहेषु प्राणधारिणाम्॥२०॥
ईशानं प्राणिनां देवं शब्दतन्मात्ररूपिणम्। आकाशजनकं प्राहुर्मुनिवृंदारकप्रजाः॥२१॥
प्राहुस्तत्पुरुषं देवं स्पर्शतन्मात्रकात्मकम्। समीरजनकं प्राहुर्भगवंतं मुनीश्वराः॥२२॥
रूपतन्मात्रं देवमघोरमपि घोरकम्। प्राहुर्वेदविदो मुख्या जनकं जातवेदसः॥२३॥
रसतन्मात्ररूपत्वात् प्रथितं तत्त्ववेदिनः। वामदेवमपां प्राहुर्जनकत्वेन संस्थितम्॥२४॥
सद्योजातं महादेवं गंधतन्मात्ररूपिणम्। भूम्यात्मानं प्रशंसंति सर्वतत्त्वार्थवेदिनः॥२५॥
आकाशात्मानमीशानमादिदेवं मुनीश्वराः। परमेण महत्त्वेन संभूतं प्राहुरद्भुतम्॥२६॥

देव शिव ईशान, वह सब प्राणियों में श्रोत इन्द्रिय (कान) के रूप में स्थित हैं।।११।। शरीरधारियों के शरीर में तत्पुरुष नाम से स्थित स्पर्श रूप ज्ञानेन्द्रिय है।।१२।। सब प्राणियों के शरीर में आँखों के भीतर विराजमान शिव के रूप को विद्वानों ने अघोर नाम दिया है।।१३।। शरीरधारियों के अंग में जिह्वा ज्ञानेन्द्रिय के रूप में वामदेव नाम से प्रसिद्ध है।।१४।। सब प्राणधारियों के शरीर में घ्राणेन्द्रिय (नाक) ज्ञानेन्द्रिय सद्योजात नाम से स्थित है।।१५।। सब प्रणधारियों के शरीर में वाक्य रूप ज्ञानेन्द्रिय स्थित है इसको ईशान कहा गया है।।१६।। सब शरीरधारियों के शरीर में हाथ के रूप में स्थित कर्मेन्द्रिय को विद्वानों ने तत्पुरुष कहा है।।१७।। तत्त्व वेत्ताओं सब शरीरधारियों के देह में पैर के रूप में स्थित कर्मेन्द्रिय को अघोर कहा है।।१८।। मुनियों ने सब शरीरधारियों के शरीर में गुदा नामक इन्द्रिय के रूप में स्थित को वामदेव कहा है।।१९।। सद्योजात रूप में प्राणधारियों के जननेन्द्रिय को वेद शास्त्रज्ञों ने सद्योजात नाम दिया है।।२०।। देवता और ऋषि कहते हैं कि देव ईशान प्राणियों के स्वामी हैं, आकाश के जनक हैं और शब्द तन्मात्र रूप हैं।।२१।। स्पर्श तन्मात्र को तत्पुरुष कहा गया है। मुनीश्वर लोग उनको वायु का जनक कहते हैं।।२२।। वेदज्ञ लोग कहते हैं, भयानक अघोर देव का तन्मात्र रूप में स्थित है जो कि अग्नि का जनक (उत्पादक) है।।२३।। तत्त्ववेदी लोगों द्वारा रस के रूप में वामदेव कहे जाते हैं जो कि जल के जनक हैं।।२४।। वे लोग जो मूल तत्त्वों के ज्ञाता हैं। वे गन्ध तन्मात्र रूप सद्योजात को पृथ्वी का स्वामी कहते हैं।।२५।। मुनीश्वर लोग कहते है कि ईशान परमात्र से युक्त आकाशात्मा हैं।।२६।। विद्वान

प्रभुं तत्पुरुषं देवं पवनं पवनात्मकम्। समस्तलोकव्यापित्वात्प्रथितं सूरयो विदुः॥२७॥
अथार्चिततया ख्यातमघोरं दहनात्मकम्। कथयंति महात्मानं वेदवाक्यार्थवेदिनः॥२८॥
तोयात्मकं महादेवं वामदेवं मनोरमम्। जगत्संजीवनत्वेन कथितं मुनयो विदुः॥२९॥
विश्वंभरात्मकं देवं सद्योजातं जगद्गुरुम्। चराचरैकभर्तारं परं कविवरा विदुः॥३०॥
पंचब्रह्मात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्। शिवानंदं तदित्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥३१॥
पंचविंशतितत्त्वात्मा प्रपंचे यः प्रदृश्यते। पंचब्रह्मात्मकत्वेन स शिवो नान्यतां गतः॥३२॥
पंचविंशतितत्त्वात्मा पंचब्रह्मात्मकः शिवः। श्रेयोर्थिभिरतो नित्यं चिंतनीयः प्रयत्नतः॥३३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे पंचब्रह्मकथनं
नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

लोग समस्त लोकों में व्याप्त होने के कारण प्रसिद्ध पवनात्मा को तत्पुरुष कहते हैं।।२७।। वे जो लोग वेदों के अर्थ को जानते हैं वे उत्तमात्मा अघोर को अग्नि का रूप कहते हैं, जो कि सब लोगों द्वारा पूज्य हैं।।२८।। मुनि लोग सारे संसार को जीवन देने वाले सुन्दर देवता वामदेव को जल का रूप मानते हैं। वे मन को प्रसन्न करने वाले हैं।।२९।। बुद्धिमान लोग जानते हैं कि सद्योजात देव जगत गुरु, चर-अचर के स्वामी पृथ्वी के रूप में हैं। वे विश्व के रक्षक हैं। सम्पूर्ण चर और अचर संसार पंचब्रह्मात्मक हैं। तत्त्व के ज्ञाता मुनियों ने इसको शिव का प्रसाद कहा है। विश्व में पच्चीस तत्त्वों के रूप में केवल शिव हैं और कोई नहीं; वह यह अनुभव करता है, कि शिव ही पंच ब्रह्मात्मक रूप में व्याप्त हैं। अतः जो लोग कल्याण की खोज करते हैं, उनको पच्चीस तत्त्वों के आत्मा और पंच ब्रह्मात्म शिव के विषय में सदा प्रयत्नपूर्वक चिन्तन करना चाहिए।।३०-३३।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में पंचब्रह्म कथन
नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥१४॥

पंचदशोऽध्यायः

शिवमाहात्म्यम्

सनत्कुमार उवाच

भूयोऽपि शिवमाहात्म्यं समाचक्ष्व महामते। सर्वज्ञो ह्यसि भूतानामधिनाथ महागुण॥१॥

शैलादिरुवाच

शिवमाहात्म्यमेकाग्रः शृणु वक्ष्यामि ते मुने। बहुभिर्बहुधा शब्दैः कीर्तितं मुनिसत्तमैः॥२॥
सदसद्रूपमित्याहुः सदसत्पतिरित्यपि। तं शिवं मुनयः केचित्प्रवदंति च सूरयः॥३॥
भूतभावविकारेण द्वितीयेन स उच्यते। व्यक्तं तेन विहीनत्वादव्यक्तमसदित्यपि॥४॥
उभे ते शिवरूपे हि शिवादन्यं न विद्यते। तयोः पतित्वाच्च शिवः सदसत्पतिरुच्यते॥५॥
क्षराक्षरात्मकं प्राहुः क्षराक्षरपरं तथा। शिवं महेश्वरं केचिन्मुनयस्तत्त्वचिंतकाः॥६॥
उक्तमक्षरमव्यक्तं व्यक्तं क्षरमुदाहृतम्। रूपे ते शंकरस्यैव तस्मान्न पर उच्यते॥७॥
तयोः परः शिवः शांतः क्षराक्षरपरो बुधैः। उच्यते परमार्थेन महादेवो महेश्वरः॥८॥
समस्तव्यक्तरूपं तु ततः स्मृत्वा स मुच्यते। समष्टिव्यष्टिरूपं तु समष्टिव्यष्टिकारणम्॥९॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

शिव का माहात्म्य

सनत्कुमार बोले

हे शैलादि! तुम महान् गुणी और सर्वज्ञ हो, तुम मुझसे शिवजी के माहात्म्य को फिर कहो।।१।।

शैलादि बोले

हे मुनि! मैं तुमसे शिवजी के माहात्म्य को कहूँगा जिस माहात्म्य को मुझसे पहले भी अनेक उत्तम मुनियों ने विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो।।२।। कुछ बुद्धिमान ऋषि शिव को "सत्" और "असत्" और उनको सत्-असत् पति भी कहते हैं।।३।। भूत भाव के विकार से उनको व्यक्त कहा जाता है, और भूत भाव के हीन होने से अव्यक्त और असत् भी कहा जाता है।।४।।

इस प्रकार शिव के व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूप हैं। शिव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। चूँकि सत् और असत् दोनों के शिव स्वामी हैं, इसीलिए ये सत् असत् पति कहलाते हैं।।५।। कुछ तत्त्वचिंतक मुनि लोग शिव को क्षर और अक्षर कहते हैं। उनको क्षर और अक्षर से परे (बाहर) कहते हैं।।६।। अव्यक्त को अक्षर (अनश्वर) और व्यक्त को क्षर (नश्वर) कहते हैं। ये दोनों शिव के ही रूप हैं। उनसे आगे कोई नहीं है।।७।। शिव क्षर और अक्षर दोनों से बड़े (बृहत्तर) हैं। इसलिए वे महादेव महेश्वर हैं। विद्वानों द्वारा वे क्षर अक्षर पर कहे जाते हैं।।८।। समस्त व्यक्त रूप शिव का समष्टि और व्यष्टि दो रूप हैं। शिव समष्टि और व्यष्टि के कारण भी

वदंति केचिदाचार्याः शिवं परमकारणम्। समष्टिं विदुरव्यक्तं व्यष्टिं व्यक्तं मुनीश्वराः॥१०॥
रूपे ते गदिते शंभोर्नास्त्यन्यद्वस्तुसंभवम्। तयोः कारणभावेन शिवो हि परमेश्वरः॥११॥
उच्यते योगशास्त्रज्ञैः समष्टिव्यष्टिकारणम्। क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूपी च शिवः कैश्चिदुदाहृतः॥१२॥
परमात्मा परं ज्योति भंगवान्परमेश्वरः। चतुर्विंशतितत्त्वानि क्षेत्रशब्देन सूरयः॥१३॥
प्राहुः क्षेत्रज्ञशब्देन भोक्तारं पुरुषं तथा। क्षेत्रक्षेत्रविदावेते रूपे तस्य स्वयंभुवः॥१४॥
न किंचिच्च शिवादन्यदिति प्राहुर्मनीषिणः। अपरब्रह्मरूपं तं परब्रह्मात्मकं शिवम्॥१५॥
केचिदाहुर्महादेवमनादिनिधनं प्रभुम्। भूतेंद्रियांतःकरणप्रधानविषयात्मकम्॥१६॥
अपरं ब्रह्म निर्दिष्टं परं ब्रह्म चिदात्मकम्। ब्रह्मणी ते महेशस्य शिवस्यास्य स्वयंभुवः॥१७॥
शंकरस्य परस्यैव शिवादन्यन्न विद्यते। विद्याविद्यास्वरूपी च शंकरः कैश्चिदुच्यते॥१८॥
धाता विधाता लोकानामादिदेवो महेश्वरः। विद्येति च तमेवाहुरविद्येति मुनीश्वरा॥१९॥
प्रपंचजातमखिलं ते स्वरूपे स्वयंभुवः। भ्रांतिर्विद्या परं चेति शिवरूपमनुत्तमम्॥२०॥
अवापुर्मुनयो योगात्केचिदागमवेदिनः। अर्थेषु बहुरूपेषु विज्ञानं भ्रांतिरुच्यते॥२१॥
आत्माकारेण संवित्तिर्बुधैर्विद्येति कीर्त्यते। विकल्परहितं तत्त्वं परमित्यभिधीयते॥२२॥
तृतीयरूपमीशस्य नान्यत्किंचन सर्वतः। व्यक्ताव्यक्तज्ञरूपीति शिवः कैश्चिन्निगद्यते॥२३॥

हैं।।९।। मुनीश्वर लोग समष्टि को अव्यक्त व्यष्टि को व्यक्त कहते हैं। कुछ आचार्य लोग शिव को परम कारण भी कहते हैं।।१०।। शिव के ये दो रूप कहे गये हैं। उन दोनों का उद्‌गम किसी दूसरे स्रोत से सम्भव नहीं है। उन दोनों के समष्टि और व्यष्टि कारण भाव होने से शिव परमेश्वर रूप में कहे जाते हैं।।११।। शिव समष्टि और व्यष्टि दोनों के कारण हैं, ऐसा योग दर्शन के ज्ञाताओं द्वारा कहा गया है। कुछ मुनियों ने शिव को क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ (शरीर और आत्मा) के रूप में भी कहा है।।१२।। शिव, परमेश्वर, महत्तम आत्मा, और महत्तम ज्योति हैं। विद्वान लोग कहते हैं कि शरीर चौबीस तत्त्वों से बना है और क्षेत्रज्ञ शब्द के द्वारा भोक्ता को पुरुष कहते हैं। उस स्वयं शिव के क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ये दोनों रूप हैं।।१३-१४।। शिव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ऐसा विद्वान लोग कहते हैं। शिव ब्रह्म परब्रह्म महादेव अनादि हैं। भूत, सांसारिक पदार्थ, ज्ञानेन्द्रिय और आन्तरिक इन्द्रिय अन्तःकरण (इच्छा आदि) को प्रधान आदि कहते हैं। यह अपर ब्रह्म का रूप है, शब्द ब्रह्मादि रूप हैं— कुछ लोग कहते हैं कि शिव परमब्रह्म हैं। परमब्रह्म चित् रूप हैं। वस्तुतः महेश, स्वयं शिव ब्रह्म हैं। शंकर के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। कुछ विद्वान कहते हैं कि शंकर के विद्या और अविद्या दो रूप हैं।।१५-१८।।

आदि देव महेश्वर जगत के उत्पन्नकर्त्ता और पालनकर्त्ता हैं। उन्हीं शिव को मुनीश्वर लोग विद्या और अविद्या भी कहते हैं।।१९।। उस अज शिव को सम्पूर्ण जगत इन दोनों कारणों विद्या और अविद्या से बना हुआ है। विश्व का उत्तम रूप भ्रान्ति विद्या और प्राण है। पवित्र वेदों के ज्ञाता विज्ञान योग द्वारा शिव के उत्तम रूप को प्राप्त करते हैं। सब रूपों में विज्ञान को भ्रान्ति कहते हैं। अविद्या के रूप में संवित्ति (संज्ञाबोध) को विद्वान लोग विद्या कहते हैं। विकल्प रहित (असंदिग्ध) तत्त्व को 'परम' कहते हैं। वह ईश का तीसरा रूप है।

विधाता सर्वलोकानां धाता च परमेश्वरः। त्रयोविंशतितत्त्वानि व्यक्तशब्देन सूरयः॥२४॥
वदंत्यव्यक्तशब्देन प्रकृतिं च परां तथा। कथयंति ज्ञशब्देन पुरुषं गुणभोगिनम्॥२५॥
तत्त्रयं शांकरं रूपं नान्यत्किंचिदशांकरम्॥२६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे पंचदशोऽध्याय॥१५॥

इन तीनों रूपों के परे (अतिरिक्त) कुछ भी नहीं है। कुछ विद्वान शिव जी को व्यक्ताव्यक्तज्ञ (व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ) रूप कहते हैं। परमेश्वर सब लोगों का रचयिता और पालनकर्त्ता है। विद्वान लोग व्यक्त शब्द से तैंतीस तत्त्व सोचते हैं और अव्यक्त शब्द से परा प्रकृति को मानते हैं। गुण के भोक्ता पुरुष का ज्ञ शब्द से ग्रहण करते हैं। शिव के ये तीन रूप व्यक्त, अव्यक्त (प्रकृति) और ज्ञ हैं। इस प्रकार शिव के परे कुछ नहीं है॥२०-२६॥

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव का माहात्म्य नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

शिवस्य रूपाणि

सनत्कुमार उवाच

पुनरेव महाबुद्धे श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। बहुभिर्बहुधा शब्दैः शब्दितानि मुनीश्वरैः॥१॥

शैलादिरुवाच

पुनः पुनः प्रवक्ष्यामि शिवरूपाणि ते मुने।
बहुभिर्बहुधा शब्दैः शब्दितानि मुनीश्वरैः॥२॥

क्षेत्रज्ञः प्रकृतिर्व्यक्तं कालात्मेति मुनीश्वरैः। उच्यते कैश्चिदाचार्यैरागमार्णवपारगैः॥३॥
क्षेत्रज्ञं पुरुषं प्राहुः प्रधानं प्रकृतिं बुधाः। विकारजातं निःशेषं प्रकृतेर्व्यक्तमित्यपि॥४॥
प्रधानव्यक्तयोः कालः परिणामैककारणम्। तच्चतुष्टयमीशस्य रूपाणां हि चतुष्टयम्॥५॥
हिरण्यगर्भं पुरुषं प्रधानं व्यक्तरूपिणम्। कथयंति शिवं केचिदाचार्याः परमेश्वरम्॥६॥
हिरण्यगर्भः कर्तास्य भोक्ता विश्वस्य पूरुषः। विकारजातं व्यक्ताख्यं प्रधानं कारणं परम्॥७॥
तेषां चतुष्टयं बुद्धेः शिवरूपचतुष्टयम्। प्रोच्यते शंकरादन्यदस्ति वस्तु न किंचन॥८॥
पिंडजातिस्वरूपी तु कथ्यते कैश्चिदीश्वरः। चराचरशरीराणि पिंडाख्यान्यखिलान्यपि॥९॥

सोलहवाँ अध्याय

शिव के रूप

सनत्कुमार बोले

हे महान, बुद्धिमान शैलादि! मुनीश्वरों द्वारा अनेक प्रकार से वर्णित शिव के रूप को सत्य रूप में पुनः सुनना चाहता है।।१।।

शैलादि बोले

महर्षियों द्वारा विभिन्न शब्दों द्वारा वर्णित शिव के रूप को पुनः-पुनः कहना चाहता है।।२।। आगमरूपी समुद्र के पारगामी विद्वानों द्वारा शिव को क्षेत्रज्ञ, प्रकृति, व्यक्त, और कालात्मा (काल की आत्मा) कहा गया है।।३।। वे विद्वान पुरुष को क्षेत्रज्ञ शब्द से प्रधान को प्रकृति शब्द से पुकारते हैं। प्रकृति के सम्पूर्ण विकार से उत्पन्न को व्यक्त काल प्रधान और व्यक्त दोनों का मुख्य कारण है। ये चारों के सेट से ईश (शिव) के चार रूप बने हैं।।४-५।। कुछ आचार्य परमेश्वर शिव को हिरण्यगर्भ, पुरुष, प्रधान और व्यक्त कहते हैं।।६।। हिरण्यगर्भ जगत का रचयिता (स्रष्टा) है। प्रणव भोक्ता है। प्रधान का विकार व्यक्त है और प्रधान महत्तम कारण है।।७।। इन चारों को शिव रूप जानो। शिव के परे कोई भी वस्तु नहीं है।।८।। कुछ विद्वान शिव को पिण्ड और जाति के रूप में कहते है। चर और अचर के भौतिक शरीर पिण्ड हैं। समस्त सामान्य और असामान्य जाति है। वे पिण्ड और

सामान्यानि समस्तानि महासामान्यमेव च। कथ्यंते जातिशब्देन तानि रूपाणि धीमतः॥१०॥
विराट् हिरण्यगर्भात्मा कैश्चिदीशो निगद्यते। हिरण्यगर्भो लोकानां हेतुर्लोकात्मको विराट्॥११॥
सूत्राव्याकृतरूपं तं शिवं शंसंति केचन। अव्याकृतं प्रधानं हि तद्रूपं परमेष्ठिनः॥१२॥
लोका येनैव तिष्ठंति सूत्रे मणिगणा इव। तत्सूत्रमिति विज्ञेयं रूपमद्भुतविक्रमम्॥१३॥
अंतर्यामी परः कैश्चित्कैश्चिदीशः प्रकीर्त्यते। स्वयंज्योतिः स्वयंवेद्यः शिवः शंभुर्महेश्वरः॥१४॥
सर्वेषामेव भूतानामंतर्यामी शिवः स्मृतः। सर्वेषामेव भूतानां परत्वात्पर उच्यते॥१५॥
परमात्मा शिवः शंभुः शंकरः परमेश्वरः। प्राज्ञतैजसविश्वाख्यं तस्य रूपत्रयं विदुः॥१६॥
सुषुप्तिस्वप्नजाग्रंतमवस्थात्रयमेव तत्। विराट् हिरण्यगर्भाख्यमव्याकृतपदाह्वयम्॥१७॥
तुरीयस्य शिवस्यास्य अवस्थात्रयगामिनः। हिरण्यगर्भः पुरुषः काल इत्येव कीर्तिताः॥१८॥
तिस्त्रोऽवस्था जगत्सृष्टिस्थितिसंहारहेतवः। भवविष्णुविरिंचाख्यमवस्थात्रयमीशितुः॥१९॥
आराध्य भक्त्या मुक्तिं च प्राप्नुवंति शरीरिणः। कर्ता क्रिया च कार्यं च करणं चेति सूरिभिः॥२०॥
शंभोश्चत्वारि रूपाणि कीर्त्यंते परमेष्ठिनः। प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं प्रमितिस्तथा॥२१॥
चत्वार्येतानि रूपाणि शिवस्यैव न संशयः। ईश्वराव्याकृतप्राणविराट्भूतेंद्रियात्मकम्॥२२॥
शिवस्यैव विकारोऽयं समुद्रस्येव वीचयः। ईश्वरं जगतामाहुर्निमित्तं कारणं तथा॥२३॥

जाति भी शिव के रूप हैं।।९-१०।। कुछ विद्वान शिव को विराट् हिरण्यगर्भ रूप में कहते है। हिरण्यगर्भ जगत का हेतु (कारण) है और जगत (लोक) की आत्मा है। लोक के साथ मय है। कुछ विद्वान शिव को सूत्र और अव्यक्त कहते है। वास्तव में अव्यक्त प्रधान है और परमेष्ठी का रूप है जिससे जैसे एक सूत्र में मणियाँ गुँथी रहती है उसी प्रकार परमेष्ठी रूप सूत्र में सब लोक गुँथे हुए (नत्थी) हैं। शिव के उस अद्भूत विषम रूप को सूत्र समझना चाहिए। शिव को कोई अन्तर्यामी और कोई ईश कहते हैं। शिव स्वयं वेद्य और स्वयं ज्योति परमेश्वर है।।११-१३।। शिव सब प्राणियों के अन्तर्यामी हैं, सब के भीतर विराजमान हैं। वह प्राणियों के यंता हैं। अतः वह सब प्राणियों के ऊपर (पर) हैं। अतः उनको परात्पर कहा जाता है। वे परमात्मा, शिव, शंकर और परमेश्वर हैं। उनको विद्वान लोग प्राज्ञ, तैजस् और विश्वरूप रूपत्रय (तिहरे रूप) में मानते है।।१४-१६।। प्रज्ञान आदि में सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। विराट् और हिरण्यगर्भ ये अव्याकृत पद से वाच्य है।

ये तीनों अवस्थाओं से गुजरते हुये शिव की अवस्था बतलाते हैं। हिरण्यगर्भ और विराट् के काल के तौर पर वर्णित है। उक्त तीनों अवस्थायें जगत की सृष्टि और संहार की कारण हैं। शिव की इन अवस्थाओं को जो विष्णु और बिरिंच पद वाच्य है, भव कहते है। ये शरीरधारी लोग भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करके मुक्ति प्राप्त करते हैं। विद्वान लोग परमेश्वर शिव के कर्त्ता, क्रिया, कर्म और कारण ये चार रूप कहते हैं।।१७-२०।। परमेश्वर शिव के चार अन्य रूप प्रमाता, प्राण, प्रमेय और प्रमिति होते हैं।।२१-२२(अ)।। समुद्र की लहरों की तरह चार अन्य रूप भी शिव के होते हैं। वे रूप है—ईश्वर, अव्याकृत, प्राण और भूत और ज्ञानेन्द्रियाँ। ये शिव के विकार हैं। इस जगत का कारण है। वेदज्ञों द्वारा स्वयं प्रधान, अव्याकृत कहा गया है। हिरण्यगर्भ को प्राण नाम दिया गया है और विराट् लोकात्मा है। लोकों से एकाकार है।

अव्याकृतं प्रधानं हि तदुक्तं वेदवादिभिः। हिरण्यगर्भः प्राणाख्यो विराट् लोकात्मकः स्मृतः॥२४॥
महाभूतानि भूतानि कार्याणि इन्द्रियाणि च। शिवस्यैतानि रूपाणि शंसंति मुनिसत्तमाः॥२५॥
परमात्मा शिवादन्यो नास्तीति कवयो विदुः। शिवजातानि तत्त्वानि पंचविंशन्मनीषिभिः॥२६॥
उक्तानि न तदन्यानि सलिलादूर्मिवृंदवत्। पंचविंशत्पदार्थेभ्यः शिवतत्त्वं परं विदुः॥२७॥
तानि तस्मादनन्यानि सुवर्णकटकादिवत्। सदाशिवेश्वराद्यानि तत्त्वानि शिवतत्त्वतः॥२८॥
जातानि न तदन्यानि मृद्द्रव्यं कुंभभेदवत्।
माया विद्या क्रिया शक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियामयी॥२९॥
जाताः शिवान्न संदेहः किरणा इव सूर्यतः। सर्वात्मकं शिवं देवं सर्वाश्रयविधायिनम्॥३०॥
भजस्व सर्वभावेन श्रेयश्चेत्प्राप्तुमिच्छसि॥३१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे षोडशोऽध्यायः॥१६॥

भूत शब्द महाभूतों को बताता है ज्ञानेन्द्रियाँ उसके प्रभाव हैं। उस पर मुनीश्वर लोग इसको शिव का रूप बताते हैं।।२२(ब)-२५।। बुद्धिमान लोग कहते हैं कि सर्वोच्च आत्मा शिव से अलग दूसरा कोई नहीं है। चौबीस सिद्धान्त (तत्त्व) शिव द्वारा ही उद्भूत हुए हैं। वे शिव से अलग नहीं हैं। जैसे कि तरंगों की शृंखलाएँ जलों से अलग नहीं हैं। बुद्धिमान लोग जानते हैं कि शिव का तत्त्व पच्चीस श्रेणियों से महत्तर है। अतः ये सिद्धान्त (तत्त्व) भी उसी तरह शिव से पृथक् नहीं हैं। जैसे कि हाथ का कंगन स्वर्ण से पृथक् नहीं है।

सब तत्त्व सदाशिव, ईश्वर आदि शिव तत्त्व से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए ये उससे पृथक् नहीं हैं। जैसे कि विभिन्न प्रकार के घट गीली मिट्टी से पृथक् नहीं हैं जिससे ये बनाए जाते हैं।

माया, अविद्या, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियामयी ये पाँचों शिव से असंदिग्ध रूप में पैदा हुईं जो कि सब की आत्मा हैं और एक-दूसरे को आश्रय प्रदान करती हैं, सहारा देती हैं।।२६-३१।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव के रूप
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

शिवस्य महत्ता

सनत्कुमार उवाच

भूयो देवगणश्रेष्ठ शिवमाहात्म्यमुत्तमम्। शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिस्त्वद्वाक्यामृतपानतः॥१॥
कथं शरीरी भगवान् कस्माद्रुद्रः प्रतापवान्। सर्वात्मा च कथं शम्भुः कथं पाशुपतं व्रतम्॥२॥
कथं वा देवमुख्यैश्च श्रुतो दृष्टश्च शंकरः।

शैलादिरुवाच

अव्यक्तादभवत्स्थाणुः शिवः परमकारणम्॥३॥
स सर्वकारणोपेत ऋषिर्विश्वाधिकः प्रभुः। देवानां प्रथमं देवं जायमानं मुखाम्बुजात्॥४॥
ददर्श चाग्रे ब्रह्माणं चाज्ञया तमवैक्षत। दृष्टो रुद्रेण देवेशः ससर्ज सकलं च सः॥५॥
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च स्थापयामास वै विराट्। सोमं ससर्ज यज्ञार्थं सोमादिदमजायत॥६॥
चरुश्च वह्निर्यज्ञश्च वज्रपाणिः शचीपतिः। विष्णुर्नारायणः श्रीमान् सर्वं सोममयं जगत्॥७॥
रुद्राध्यायेन ते देवा रुद्रं तुष्टुवुरीश्वरम्। प्रसन्नवदनस्तस्थौ देवानां मध्यतः प्रभुः॥८॥

सतरहवाँ अध्याय

शिव की महत्ता

सनत्कुमार बोले

हे गणों में श्रेष्ठ शैलादि! आप के अमृत तुल्य मधुर वचन सुनकर मुझको तृप्ति नहीं हुई। अतः उत्तम शिव के माहात्म्य को पुनः आगे कहो।

शिव जी कैसे शरीरधारी हुये? कैसे रुद्र प्रतापवान और शक्ति सम्पन्न हैं? शिव कैसे सब की आत्मा है, पवित्र पाशुपत व्रत किस प्रकार किया जाय; प्रमुख देवताओं द्वारा कैसे देखे गये? वे शिव कैसे प्रसन्न हुये?

शैलादि बोले

स्थाणु, शिव जो महान आत्मा हैं वे अव्यक्त से उत्पन्न हुये।।१-३।। वह विश्व के आदि ऋषि में सब कारणों से युक्त हैं। उनके मुख कमल से पूर्व में प्रधान देव ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई उनको उन्होंने देखा। उन देवों के स्वामी, ब्रह्मा को देखने के बाद उनकी आज्ञा से उन्होंने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की। विराट् ने वर्णाश्रम व्यवस्था को स्थापित किया। यज्ञ के लिए उन्होंने सोम रस को उत्पन्न किया। चरु, अग्नि, यज्ञ हाथ में वज्रधारी शचीपति इन्द्र, विष्णु और नारायण और स्वर्ग और सम्पूर्ण सोममय जगत् ये सब सोम रस से उत्पन्न हुये।।४-७।। देवताओं ने रुद्राध्याय द्वारा रुद्र की (रुद्र देवता की) स्तुति की। तब प्रभु रुद्र (शिव) प्रसन्न मुख हो देवताओं के मध्य में विराजमान हुये। तब महेश्वर शिव जी ने सब देवताओं के अज्ञान को दूर कर बुद्धि को जागृत किया।

अपहृत्य च विज्ञानमेषामेव महेश्वरः। देवा ह्यपृच्छंस्तं देवं को भवानिति शंकरम्॥९॥
अब्रवीद्भगवान्रुद्रो ह्यहमेकः पुरातनः। आसं प्रथम एवाहं वर्तामि च सुरोत्तमाः॥१०॥
भविष्यामि च लोकेऽस्मिन्मत्तो नान्यः कुतश्चन।
व्यतिरिक्तं न मत्तोऽस्ति नान्यत्किंचित्सुरोत्तमाः॥११॥
नित्योऽनित्योऽहमनघो ब्रह्माहं ब्रह्मणस्पतिः। दिशश्च विदिशश्चाहं प्रकृतिश्च पुमानहम्॥१२॥
त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् च च्छंदोहं तन्मयः शिवः। सत्योहं सर्वगः शांतस्त्रेताग्निर्गौरवं गुरुः॥१३॥
गौरहं गह्वरश्चाहं नित्यं गहनगोचरः। ज्येष्ठोहं सर्वतत्त्वानां वरिष्ठोहमपांपतिः॥१४॥
आपोहं भगवानीशस्तेजोहं वेदिरप्यहम्। ऋग्वेदोहं यजुर्वेदः सामवेदोहमात्मभूः॥१५॥
अथर्वणोहं मंत्रोहं तथा चांगिरसां वरः। इतिहासपुराणानि कल्पोहं कल्पनाप्यहम्॥१६॥
अक्षरं च क्षरं चाहं क्षांतिः शांतिरहं क्षमा।
गुह्योहं सर्ववेदेषु वरेण्योहमजोप्यहम्॥१६॥
अक्षरं च क्षरं चाहं क्षांतिः शांतिरहं क्षमा। गुह्योहं सर्ववेदेषु वरेण्योहमजोप्यहम्॥१७॥
पुष्करं च पवित्रं च मध्यं चाहं ततः परम्। बहिश्चाहं तथा चांतः पुरस्तादहमव्ययः॥१८॥
ज्योतिश्चाहं तमश्चाहं ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः। बुद्धिश्चामहंकारस्तन्मात्राणींद्रियाणि च॥१९॥
एवं सर्वं च मामेव यो वेद सुरसत्तमाः। स एव सर्ववित्सर्वं सर्वात्मा परमेश्वरः॥२०॥
गां गोभिर्ब्राह्मणान्सर्वान्ब्राह्मण्येन हवींषि च। आयुषायुस्तथा सत्यं सत्येन सुरसत्तमाः॥२१॥

तब देवताओं ने भगवान शिव से पूछा। आप कौन हैं?।।८-९।। रुद्र देव ने कहा, "हे उत्तम देवताओं! मैं एक आदि पुरातन पहिले भी था और अब भी हूँ। मैं भविष्य में भी रहूँगा। मुझसे भिन्न (अलग) कुछ भी नहीं है।।१०-११।। मैं नित्य हूँ अनित्य हूँ। मैं अनघ (पाप रहित) ब्रह्म हूँ और ब्रह्मा का स्वामी भी हूँ। मैं दिशा हूँ। विदिशा (दिशाओं के कोण) हूँ। मैं प्रकृति हूँ। मैं पुरुष हूँ।।१२।। छन्द शास्त्र का अनुष्टुप्, जगती और अनुष्टप् हूँ। छन्द हूँ। मैं सर्व व्यापक सत्य हूँ। त्रेताग्नि (त्रयाग्नि) हूँ। मैं गरिमा हूँ, मैं गुरु हूँ।।१३।। मैं गौ हूँ, मैं गुफा हूँ, मैं गहन गोचर हूँ। मैं सब तत्त्वों में ज्येष्ठ (सब से बड़ा) हूँ और उत्तम हूँ। मैं जल का स्वामी हूँ।।१४।। मैं जल हूँ, भगवान ईश हूँ। मैं तेज अग्नि हूँ। मैं यज्ञ की वेदी भी हूँ। मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद हूँ। मैं स्वयंभू (अपने आप उत्पन्न) हूँ।।१५।। मैं अथर्ववेद हूँ। मैं मंत्र हूँ। अंगिरों में सर्वेसर्वा हूँ। मैं इतिहास और पुराण हूँ। मैं कल्प (कर्म प्रयोग विज्ञान) हूँ और कल्पना भी हूँ।।१६।। क्षर (विनाशी) और अक्षर (अविनाशी) हूँ। मैं क्षान्ति, शान्ति और क्षमा हूँ। सब वेदों में गुह्य (गुप्त) हूँ। उत्तम (श्रेष्ठ) और अज हूँ।।१७।। मैं पवित्र पुष्कर हूँ। मैं मध्य हूँ और उससे परे भी हूँ। मैं बाहर और भीतर हूँ। सामने मैं अपरिवर्तनीय हूँ।।१८।। मैं ज्योति हूँ। मैं अन्धकार हूँ। मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हूँ। मैं बुद्धि, अहंकार, तन्मात्राएँ और ज्ञानेन्द्रिय हूँ।।१९।। हे श्रेष्ठ देवतागण! जो मुझको सब कुछ समझता है वही सर्वविद है। वह ब्रह्मविद है। वह सब की आत्मा और परमेश्वर है।।२०।। हे श्रेष्ठ देवगण! मैं अपने तेज से गायों द्वारा गायों को, ब्राह्मणीय तेज से ब्राह्मणों को, आयु को

धर्मं धर्मेण सर्वाश्च तर्पयामि स्वतेजसा। इत्यादौ भगवानुक्त्वा तत्रैवांतरधीयत॥२२॥
नापश्यंत ततो देवं रुद्रं परमकारणम्। ते देवाः परमात्मानं रुद्रं ध्यायंति शंकरम्॥२३॥
सनारायणका देवाः सेंद्राश्च मुनयस्तथा। तथोर्ध्वबाहवो देवा रुद्रं स्तुन्वंति शंकरम्॥२४॥

इति श्रीलिंगमहापुराणे उत्तरभागे सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

आयुष द्वारा तथा सत्य से तथा धर्म से धर्म को इस प्रकार अपने तेज से सब को तृष्ट करता हूँ।'' ऐसा कहकर भगवान रुद्र वहीं पर स्वयं अन्तर्ध्यान (अलक्षित अदृश्य) हो गये।।२१।। देवगण परम कारण भगवान रुद्र को न देखने पर नारायण और इन्द्र सहित सब देवगण तथा मुनिगण ध्यान करने लगे। अपनें हाथों को ऊपर की ओर उठा भगवान शंकर की स्तुति करने लगे।।२२-२४।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव की महत्ता
नामक सतरहवाँ अध्याय समाप्त॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

पवित्रपाशुपतव्रतम्

देवा ऊचः

य एष भगवान् रुद्रो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
स्कंदश्चापि तथा चेंद्रो भुवनानि चतुर्दश। अश्विनौ ग्रहताराश्च नक्षत्राणि च खं दिशः॥१॥
भूतानि च तथा सूर्यः सोमश्चाष्टौ ग्रहास्तथा। प्राणः कालो यमो मृत्युरमृतः परमेश्वरः॥२॥
भूतं भव्यं भविष्यच्च वर्तमानं महेश्वरः। विश्वं कृत्स्नं जगत्सर्वं सत्यं तस्मै नमोनमः॥३॥
त्वमादौ च तथा भूतो भूर्भुवः स्वस्तथैव च। अंते त्वं विश्वरूपोऽसि शीर्षं तु जगतः सदा॥४॥
ब्रह्मैकस्त्वं द्वित्रिधार्थमधश्च त्वं सुरेश्वरः। शांतिश्च त्वं तथा पुष्टिस्तुष्टिश्चाप्यहुतं हुतम्॥५॥
विश्वं चैव तथाविश्वं दत्तं वादत्तमीश्वरम्॥
कृतं चाप्यकृतं देवं परमप्यपरं ध्रुवम्। परायणं सतां चैव ह्यसतामपि शंकरम्॥६॥
अपामसोममममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
कि नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृतं मर्त्यस्य॥७॥
एतज्जगद्धितं दिव्यमक्षरं सूक्ष्ममव्ययम्॥८॥

अठारहवाँ अध्याय

पवित्र पाशुपत व्रत

देवगण बोले

भगवान रुद्र ही अकेले ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। वह स्कन्ध हैं, वह इन्द्र हैं, वह चौदहों लोक, अश्विनी, ग्रह और तारा, नक्षत्र, आकाश, दशों दिशाएँ, भूत गण, सूर्य, चन्द्रमा, और आठों ग्रह हैं। वह प्राण, काल और मृत्यु हैं। वे भूत वर्तमान और भविष्य का निर्माण करते हैं। वह विश्व और सत्य हैं, उनको नमस्कार है।।१-३।। हे भगवान! तुम विश्व के आदि, तुम भूर्भुवः और स्वः हो। अन्त में तुम विश्वरूप हो और जगत के सदा शीर्ष स्थान हो।।४।। तुम पूर्ण ब्रह्म हो, तुम दो रूपों में हो और तीन रूपों में हो। तुम नीचे हो, तुम देवताओं के स्वामी हो, तुम शान्ति पुष्टि और तुष्टि हो, अग्नि में किये गये होम में जो हवन किया गया है और नहीं किया गया है वह भी तुम हो, तुम दृश्य हो और अदृश्य हो। तुम दत्त भी हो अदत्त भी हो, तुम ईश्वर हो तुम जो कृत है वह भी हो और अकृत भी हो। तुम निश्चित रूप से पर भी हो, अपर भी हो अर्थात् देवों से महान् और छोटे भी हो। तुम अच्छों और बुरों के अन्तिम लक्ष्य हो। तुम शंकर हो।।५-६।। हम लोग सोम रस पीते हैं और अमर हो सकते हैं। हम लोग ज्योति तक पहुँच सकते हैं। देवताओं तक नहीं पहुँच सकते। वास्तव में शत्रु हमारा क्या कर सकेंगे? क्या मृत्यु अमरता का पर्याय है। शिव का यह रूप विश्व के लिए हितकर है। यह दिव्य अनश्वर

प्राजापत्यं पवित्रं च सौम्यमग्राह्यमव्ययम्। अग्राह्यणापि वा ग्राह्यं वायव्येन समीरणः॥९॥
सौम्येन सौम्यं ग्रसति तेजसा स्वेन लीलया। तस्मै नमोऽपसंहर्त्रे महाग्रासाय शूलिने॥१०॥
हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणे प्रतिष्ठिताः।
हृदि त्वमसि यो नित्यं तिस्रो मात्राः परस्तु सः॥११॥
शिरश्चोत्तरतश्चैव पादौ दक्षिणतस्था। यो वै चोत्तरतः साक्षात्स ओंकारः सनातनः॥१२॥
ओंकारो यः स एवेह प्रणवो व्याप्य तिष्ठति। अनंतस्तारसूक्ष्मं च शुक्लं वैद्युतमेव च॥१३॥
परं ब्रह्म स ईशान एको रुद्रः स एव च। भवान्महेश्वरः साक्षान्महादेवो न संशयः॥१४॥
ऊर्ध्वमुन्नामयत्येव स ओंकारः प्रकीर्तितः। प्राणानवति यस्तस्मात् प्रणवः परिकीर्तितः॥१५॥
सर्वं व्याप्नोति यस्तस्मात्सर्वव्यापी सनातनः। ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यंतं नोपालब्धवान्॥१६॥
तथान्ये च ततोऽनंतो रुद्रः परमकारणम्। यस्तारयति संसारात्तार इत्यभिधीयते॥१७॥
सूक्ष्मो भूत्वा शरीराणि सर्वदा ह्यधितिष्ठति। तस्मात्सूक्ष्मः समाख्यातो भगवान्नीललोहितः॥१८॥
नीलश्च लोहितश्चैव प्रधानपुरुषान्वयात्। स्कंदतेऽस्य यतः शुक्रं तथा शुक्रमपैति च॥१९॥
विद्योतयति यस्तस्माद्वैद्युतः परिगीयते। बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च बृहते च परापरे॥२०॥
तस्माद्बृंहति यस्माद्धि परं ब्रह्मेतिकीर्तितम्। अद्वितीयोऽथ भगवांस्तुरीयः परमेश्वरः॥२१॥
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशां चक्षुरीश्वरम्। ईशानमिंद्रसूरयः सर्वेषामपि सर्वदा॥२२॥

सूक्ष्म और अपरिवर्तनीय अव्यय है।।७-८।। यह पवित्र है। यह सौम्य है। यह ग्राह्य नहीं है जैसे कि वायु किसी वस्तु के पकड़ के बाहर है। सौम्य के द्वारा सौम्य को अपनी लीला से पकड़ लेता है। ठस महान् ग्रहण करने वाले और अपसंहार करने वाले रुद्र को नमस्कार है।।९-१०।। देवता गण हृदय में स्थित हैं, वे प्राण में प्रतिष्ठित हैं। तुम तीन मात्रा के रूप में हृदय में सदा विराजमान हो। तुम उनसे परे हो, तुम्हारे सिर उत्तर की ओर हैं और पैर दक्षिण की ओर हैं। तुम उत्तर से साक्षात् संलग्न हो। तुम अन्तस्थ ॐकार हो।।११-१२।। जो ॐकार है वह प्रणव है, वह प्रत्येक वस्तु में विराजमान है। अनन्त (तार) सूक्ष्म और शुक्ल वैद्युत (प्रकाश) परब्रह्म है, वही एक ईशान वही रुद्र है। आप साक्षात् महेश्वर और महादेव हैं। इसमें सन्देह नहीं।।१३-१४।। वह जो ऊपर को उठाता है, वह ॐकार है। प्रणव ॐकार है, क्योंकि वह प्राणों की रक्षा करता है इसीलिए उसको प्रणव कहा गया है।।१५।। जो सब में व्याप्त है वह सर्वव्यापी सनातन रुद्र है। उसका आदि अन्त ब्रह्मा हरि और भगवान भी नहीं पा सके। अनन्त रुद्र संसार के परम कारण हैं। जो संसार से तारता है, इसीलिए उस रुद्र को 'तार' कहा जाता है।।१६-१७।। नीललोहित भगवान सूक्ष्म होकर सब शरीरों में सदा विद्यमान रहते हैं। इसीलिए उनको 'सूक्ष्म' कहा जाता है।।१८।। वह नील और लोहित दोनों हैं, इसलिए प्रधान और पुरुष दोनों उसमें लीन हो जाते हैं। शुक्र उसमें से बहता है। इसीलिए उसको शुक्र नाम दिया गया है। जो प्रकाश (विद्युत) देता है। इसीलिए उसको वैद्युत कहा गया है। वह परम ब्रह्म हैं क्योंकि वह बृहत तत्त्व है। भगवान अद्वितीय हैं, यह चतुर्थ अवस्था है। वह परमेश्वर हैं।।१९-२१।। विद्वान लोग उनको ईशान कहते हैं क्योंकि वह विश्व के दिव्य चक्षु हैं। इन्द्र आदि

ईशानः सर्वविद्यानां यत्तदीशान उच्यते। यदीक्षते च भगवान्निरीक्ष्यमिति चाज्ञया॥२३॥
आत्मज्ञानं महोदेवो योगं गमयति स्वयम्। भगवांश्चोच्यते देवो देवदेवो महेश्वरः॥२४॥
सर्वांल्लोकान्क्रमेणैव यो गृह्णाति महेश्वरः। विसृजत्येप देवेशो वासयत्यपि लीलया॥२५॥
एषो हि देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अंतः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्मुखास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥२६॥
उपासितव्यं यत्नेन तदेतत्सद्भिरव्ययम्। यतो वाचो निवर्तंते ह्यप्राप्य मनसा सह॥२७॥
तदग्रहणमेवेह यद्वाग्वदति यत्नतः। अपरं च परं वेति परायणमिति स्वयम्॥२८॥
वदंति वाचः सर्वज्ञं शंकरं नीललोहितम्। एष सर्वो नमस्तस्मै पुरुषः पिंगलः शिवः॥२९॥
स एष स महारुद्रो विश्वं भूतं भविष्यति। भुवनं बहुधा जातं जायमानमितस्ततः॥३०॥
हिरण्यबाहुर्भगवान् हिरण्यपतिरीश्वरः। अंबिकापतिरीशानो हेमरेता वृषध्वजः॥३१॥
उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वसृग्विश्ववाहनः। ब्रह्माणं विदधे योऽसौ पुत्रमग्रे सनातनम्॥३२॥
प्रहिणोति स्म तस्यैव ज्ञानमात्मप्रकाशकम्। तमेकं पुरुषं रुद्रं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्॥३३॥
बालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं वह्निरूपं वरेण्यम्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यंति धीरास्तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम्॥३४॥

तथा अन्य विद्वान सब अवसरों पर ईशान की पूजा करते हैं। सब विद्वानों का ईशान होने से उनको ईशान कहा जाता है। भगवान जो देखता है और अपनी आज्ञा से दूसरों को देखने को प्रेरित करता है, और देखने पर वह आत्मज्ञान है। महादेव स्वयं योग को प्राप्त करने को प्रेरित करते हैं। देवताओं के देवता इसीलिए 'भगवान' कहे जाते हैं।।२२-२४।। यह महेश्वर हैं जो सम्पूर्ण जगत् को क्रम से ग्रहण करते हैं और सब प्रत्येक वस्तु की रक्षा करते हैं, तथा उसमें विकास करते हैं। यह वह है जो सब विदिशाओं में विद्यमान हैं। वह सबसे प्रथम उत्पन्न हुये और गर्भ में प्रविष्ट हुये। वह उत्पन्न हुये और वह उत्पन्न होंगे। वह प्रत्यङ् मुख हैं फिरसर्वत्र मुख हैं अर्थात् चारों ओर मुख किये हुए हैं।।२५।। वह महेश्वर सज्जनों द्वारा यत्नपूर्वक उपासना के योग्य हैं, जिनको मन सहित वाणी बिना कुछ प्राप्त किये वापस लौट आती है। अर्थात् वे मन और वाणी की पहुँच से परे हैं।।२६-२७।। वाणी उनको अग्रहण, अपने द्वारा कुछ कहने के अयोग्य कहती है। वह स्वयं पर हैं या अपर किन्तु सबसे बड़े शरणदाता हैं।।२८।। वाणी (वाक्) उनको सर्वज्ञ, नीललोहित और शंकर कहती है। वह पुरुष, सर्व, पिंगल, शिव हैं। उनको नमस्कार।।२९।। वह महान् रुद्र हैं। वह सम्पूर्ण जगत् (विश्व) हैं। वह अनेक प्रकार से यहाँ-वहाँ और सर्वत्र हैं।।३०।। वह भगवान स्वर्ण की भुजावाले हैं। स्वर्ण के स्वामी हैं। वे उनके ईश्वर हैं। वे वृषभध्वज (जिनकी ध्वजा में बैल का चिह्न है) और स्वर्ण वीर्य है (जिनका वीर्य स्वर्ण के रूप में है)।।३१।। वे विरुपाक्ष हैं। वह उमापति विश्व के सृष्टिकर्त्ता हैं। विश्व उनका वाहन है। उन्होंने सबसे प्रथम पुत्र ब्रह्मा को उत्पन्न किया। उनको ही शिव ने आत्मा को प्रकाशित करने वाला ज्ञान प्रदान किया। उस पुरुष को पुरुहूत पुरुष्टुत पुरा काल के अग्रभाग में उत्तम अग्नि रूप में आत्मा में स्थित को जो धीर लोग देखते हैं, अनुभव करते हैं उन्हीं को स्थायी

महतो यो महीयांश्च ह्यणोरप्यणुरव्ययः। गुहायां निहितश्चात्मा जंतोरस्य महेश्वरः॥३५॥
वेश्मभूतोऽस्य विश्वस्य कमलस्थो हृदि स्वयम्। गह्वरं गहनं तत्स्थं तस्यांतश्चोर्ध्वतः स्थितः॥३६॥
तत्रापि दहं गगनमोंकारं परमेश्वरम्। बालाग्रमात्रं तन्मध्ये ऋतं परमकारणम्॥३७॥
सत्यं ब्रह्म महादेवं पुरुषं कृष्णपिंगलम्। ऊर्ध्वरेतसमीशानं विरूपाक्षमजोद्भवम्॥३८॥
अधितिष्ठति योनिं यो योनिं वाचैक ईश्वरः। देहं पंचविधं येन तमीशानं पुरातनम्॥३९॥
प्राणेष्वंतर्मनसो लिंगमाहुर्यस्मिन्क्रोधो या च तृष्णा क्षमा च।
तृष्णां छित्त्वा हेतुजालस्य मूलं बुद्ध्याचिंत्यं स्थापयित्वा च रुद्रे॥४०॥
एकं तमाहुर्वै रुद्रं शाश्वतं परमेश्वरम्। परात्परतरं वापि परात्परतरं ध्रुवम्॥४१॥
ब्रह्मणो जनकं विष्णो र्वह्नेर्वायोः सदाशिवम्।
ध्यात्वाग्निना च शोध्यांगं विशोध्य च पृथक्पृथक्॥४२॥
पंचभूतानि संयम्य मात्राविधिगुणक्रमात्। मात्राः पंच चतस्रश्च त्रिमात्रादिस्ततः परम्॥४३॥
एकमात्रममात्रं हि द्वादशांते व्यवस्थितम्।
स्थित्वा स्थाप्यामृतो भूत्वा व्रतं पाशुपतं चरेत्॥४४॥
एतद्व्रतं पाशुपतं चरिष्यामि समासतः। अग्निमाधाय विधिवदृग्युजः सामसंभवैः॥४५॥

शान्ति प्राप्त होती है अन्य को नहीं।।३२-३४।। वह महीयान (सबसे बड़े) से भी बड़े महत्तर हैं। वह सबसे छोटे अणु से भी सूक्ष्म अणु हैं। जो अव्यय हैं प्राणधारियों के हृदय की गुफा में स्थित आत्मा हैं।।३५।। ॐकार, परमेश्वर बालों के अग्रभाग के आकार में हैं। हृदय की गुफा के मध्य में स्थित है। यह शक्त हैं यह परम कारण है।।३६-३७।। वह शत ब्रह्म हैं, वह काले और पिंगल वर्ण (कृष्ण पिंगल) हैं। वह विरूपाक्ष हैं, वह ईशान उध्वरिता, वह महादेव और वह ब्रह्मा की उत्पत्ति के स्रोत हैं।।३८।। वह पुरातन ईशान हैं जो कि पाँच पर्त वाले भौतिक शरीर में विराजमान हैं। वह पूर्ण ईश्वर हैं जो कि योनि में स्थित हैं।।३९।। वह प्राणो में हैं, उसको मन का लिंग (चिह्न) कहते हैं जिसमें क्रोध, तृष्णा, क्षमा विद्यमान रहती है। तृष्णा को काटकर, जो कि संसारिक लगाव की जड़ है, और उसको रुद्र में स्थापित करके बुद्धि से उसका ध्यान करना चाहिए।।४०।। विद्वान लोग उसको रुद्र कहते हैं वे उसको स्थायी (शाश्वत) परमेश्वर कहते हैं वह निश्चित् रूप से महत्तम से भी महत्तर हैं। अर्थात् सबसे बड़े से भी बड़े हैं।।४१।। ब्रह्मा को विष्णु, अग्निदेवता और वायु देवता उत्पन्न करने वाले उस पशुपति का ध्यान करना चाहिए। साधक को स्वयं अपने को अग्नि से शुद्ध करना चाहिए। उसको अपने अंगों को अलग से शुद्ध करना चाहिए। पंचभूतों को संयम में लेकर उनके मात्रा विधि और गुण के क्रम से पाँच मात्राओं, चार, त्रिमात्रा आदि को उसके बाद एक मात्रा और आदि मात्रा को क्रमशः संयमित करना चाहिए। तब स्थापित देव का ध्यान बिना मात्रा के करना चाहिए। इस प्रकार अमृत (अमर) होकर पाशुपत करना चाहिए।।४२-४४।। अब मैं पाशुपत व्रत को संक्षेप में कहूँगा। साधक ऋक्, यजुः और साम मंत्रों को पढ़ते हुये पवित्र अग्नि स्थापित करे।।४५।। साधक व्रत करे। स्नान करके शुद्ध हो जाय। सफेद वस्त्र, सफेद जनेऊ पहने। सफेद माला पहने और सफेद चन्दन लगा ले।।४६।। रजोगुण से मुक्त होकर साधक होम करे। इस प्रकार वह पापों से मुक्त होगा तब भक्त नीचे लिखे

उपोषितः शुचितः स्नातः शुक्लांबरधरः स्वयम्।
शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः॥४६॥

जुहुयाद्विरजो विद्वान् विरजाश्च भविष्यति। वायवः पंच शुध्यंतां वाङ्मनश्चरणादयः॥४७॥
श्रोत्रं जिह्वा ततः प्राणस्तथा बुद्धिस्तथैव च। शिरः पणिस्तथा पार्श्वं पृष्ठोदरमनंतरम्॥४८॥
जंघे शिश्नमुपस्थं च पायुर्मेढ्रं तथैव च। त्वचा मांसं च रुधिरं मेदोऽस्थीनि तथैव च॥४९॥
शब्दः स्पर्शं च रूपं च रसो गंधस्तथैव च। भूतानि चैव शुध्यंतां देहे मेदादयस्तथा॥५०॥
अन्नं प्राणे मनो ज्ञानं शुध्यंतां वै शिवेच्छया। हुत्वाज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाक्रमम्॥५१॥

उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृहीत्वा भस्म यत्नतः।
अग्निरित्यादिना धीमान् विमृज्यांगानि संस्पृशेत्॥५२॥

एतत्पाशुपतं दिव्यं व्रतं पाशविमोचनम्। ब्राह्मणानां हितं प्रोक्तं क्षत्रियाणां तथैव च॥५३॥
वैश्यानामपि योग्यानां यतीनां तु विशेषतः। वानप्रस्थाश्रमस्थानां गृहस्थानां सतामपि॥५४॥
विमुक्तिर्विधिनानेन दृष्ट्वा वै ब्रह्मचारिणाम्। अग्निरित्यादिना भस्म गृहीत्वा ह्याग्निहोत्रजम्॥५५॥

सोऽपि पाशुपतो विप्रा विमृज्यांगानि संस्पृशेत्।
भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान् महापातकसंभवैः॥५६॥

पापैर्विमुच्यते सद्यो मुच्यते च न संशयः। वीर्यमग्नेर्यतो भस्म वीर्यवान्भस्मसंयुतः॥५७॥
भस्मस्नानरतो विप्रो भस्मशायी जितेंद्रियः। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥५८॥

मन्त्रों को पढ़े। पाँचों वायु शुद्ध हो। वाणी मन चरण आदि शुद्ध हो, यह सब शुद्ध हो। कान, जिह्वा, प्राण, बुद्धि, सिर, हाथ, बगल, पीठ, पेट, जाँघें, लिंग, गुदा, माँस, रुधिर मेद (चर्बी), अस्थि, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध तथा देह में विद्यमान मेद आदि ये सब शुद्ध हो। शिव की आज्ञा से अन्न, प्राण, मन और ज्ञान शुद्ध हो। क्रमशः घी समिधा और चरु हवन करके तब उस रुद्र अग्नि को बुझाकर भस्म लेकर यत्नपूर्वक अग्नि इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए बुद्धिमान भक्त अपने अंगों पर भस्म लगावे और सब अंगों का स्पर्श करे।।४७-५२।।

यह पाशुपत व्रत दिव्य है और बंधन से मुक्त करने वाला (मोक्ष) है। यह ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए हितकारी कहा गया है।।५३।। यह योग्य वैश्यों के लिए तथा विशेष रूप से यतियों (ऋषियों) के लिए, वानप्रस्थ आश्रम और गृहस्थ आश्रम में स्थित भले लोगों के लिए हितकारी है।।५४।। ब्रह्मचारियों की इस पवित्र विधि से मुक्ति होती है। अग्नि इत्यादि मन्त्र पढ़कर यज्ञ कुण्ड से अग्निहोत्र की भस्म लगाकर लोगों को छूना चाहिये। वह ब्राह्मण भी पशुपति का भक्त हो जाता है। एक विद्वान ब्राह्मण भक्त भस्म से पुते शरीर वाला महान पातकों से उत्पन्न पापों से तुरन्त मुक्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है। भस्म अग्नि का वीर्य है। अतः जो भस्म को शरीर में चुपड़ता है वह वीर्यवान होता है।।५५-५७।। भस्म से स्नान किये पूरे शरीर में भस्म लगाये, भस्मशायी जितेन्द्रिय ब्राह्मण सब पापों से मुक्त हो कर शिव का सायुज्य प्राप्त करता है।।५८।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भूत्यंगं पूजयेद्बुधः। रेरेकारो न कर्तव्यस्तुंतुंकारस्तथैव च॥५९॥
न तत्क्षमति देवेशो ब्रह्मा वा यदि केशवः। मम पुत्रो भस्मधारी गणेशश्च वरानने॥६०॥
तेषां विरुद्धं यत्त्याज्यं स याति नरकार्णवम्। गृहस्थो ब्रह्महीनोपि त्रिपुंड्रं यो न कारयेत्॥६१॥
पूजा कर्म क्रिया तस्य दानं स्नानं तथैव च। निष्फलं जायते सर्वं यथा भस्मनि वै हुतम्॥६२॥
तस्माच्च सर्वकार्येषु त्रिपुंड्रं धारयेद्बुधः।
इत्युक्त्वा भगवानन्ब्रह्मा स्तुत्वा देवैः समं प्रभुः॥६३॥
भस्मच्छन्नैः स्वयं छन्नो विरराम विशांपते। अथ तेषां प्रसादार्थं पशूनां पतिरीश्वरः॥६४॥
सगणश्चांबया सार्धं सान्निध्यमकरोत्प्रभुः। अथ संनिहितं रुद्रं तुष्टुवुः सुरपुंगवम्॥६५॥
रुद्राध्यायेन सर्वेशं देवदेवमुमापतिम्। देवोपि देवानालोक्य घृणया वृषभध्वजः॥६६॥
तुष्टोस्मीत्याह देवेभ्यो वरं दातुं सुरारिहा॥६७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे अष्टादशोऽध्याय॥१८॥

इसलिए सब प्रकार से विद्वान् व्यक्ति को अपने शरीर को भस्म से पवित्र करना चाहिए। 'रे' शब्द को या तू तू शब्द को नहीं बोलना चाहिए। बोलने में व्यक्ति को कठोर या कर्कश नहीं होना चाहिए।।५९।। महादेव चाहे ब्रह्मा हों या विष्णु हों, उसको क्षमा नहीं करते हैं। सुमुख कोई व्यक्ति जो भस्म को धारण करता है वो मेरे पुत्र गणेश के समान है। उसके विरुद्ध जो होता है वह त्याज्य है। गृहस्थ जो कि वैदिक ज्ञान से शुन्य है और त्रिपुण्ड को नहीं धारण करता है। वह नरक की गहराई (सागर) में गिरता है। उसके द्वारा किया गया पूजा कर्म क्रिया दान और स्नान इसी तरह विफल हो जाता है, जैसे कि राख में किया गया होम।।६०-६२।। इसलिए सब पवित्र व्रतों में विद्वानों को त्रिपुण्ड धारण करना चाहिए। ऐसा कहकर भगवान ब्रह्मा ने भस्म लगाए हुए देवों के साथ शिव, जो स्वयं भस्म लगाये थे, उनकी स्तुति करके अपने वक्तव्य को समाप्त किया। हे राजन! उसके बाद उनको प्रसन्न करने के लिए भगवान पशुपति अपने गणों और उमा के साथ उस स्थान को शोभित किया। इसके बाद देवों ने देवताओं के देवता, सबके स्वामी रुद्र उमापति को रुद्राध्याय द्वारा स्तुति की। भगवान उमापति ने देवताओं को कृपापूर्ण दृष्टि से देखकर वरदान देने के लिए देखा। देवताओं के शत्रुओं को नाश करने वाले रुद्र ने देवताओं से कहा, 'मैं प्रसन्न हूँ'।।६३-६७।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में पवित्र पाशुपात व्रत
नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

शिवस्य पूजाविधिः

शैलादिरुवाच

तं प्रभु प्रीतमनसं प्रणिपत्य वृषध्वजम्। अपृच्छन्मुनयो देवाः प्रीतिकंटकितत्वचः॥१॥

देवा ऊचुः

भगवन् केन मार्गेण पूजनीयो द्विजातिभिः। कुत्र वा केन रूपेण वक्तुमर्हसि शंकर॥२॥
कस्याधिकारः पूजायां ब्राह्मणस्य कथं प्रभो। क्षत्रियाणां कथं देव वैश्यानां वृषभध्वज॥३॥
स्त्रीशूद्राणां कथं वापि कुंडगोलादिनां तु वा। हिताय जगतां सर्वमस्माकं वक्तुमर्हसि॥४॥

सूत उवाच

तेषां भावं समालोक्य मुनीनां नीललोहितः। प्राह गंभीरया वाचा मंडलस्थः सदाशिवः॥५॥
मंडले चाग्रतो पश्यन्देवदेवं सहोमया। देवाश्च मुनयः सर्वे विद्युत्कोटिसमप्रभम्॥६॥
अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रं द्वादशाक्षं महाभुजम्। अर्धनारीश्वरं देवं जटामुकुटधारिणम्॥७॥
सर्वाभरणसंयुक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम्। रक्तांबरधरं सृष्टिस्थितिसंहारकारकम्॥८॥
तस्य पूर्वमुखं पीतं प्रसन्नं पुरुषात्मकम्। अघोरं दक्षिणं वक्त्रं नीलांजनचयोपमम्॥९॥

उन्नीसवाँ अध्याय

शिव की पूजा विधि

शैलादि बोले

प्रेम से रोमांचित मुनियों और देवताओं ने प्रसन्न मन वाले वृषध्वज शिव को प्रणाम करके कहा।।१।।

देवगण बोले

हे भगवान शंकर! आप हम लोगों को यह बताएँ द्विजों द्वारा किस विधि से आप की पूजा की जाय? कब? और किस रूप में।।२।। आप की पूजा में किस ब्राह्मण का अधिकार है? हे भगवन क्षत्रिय लोग और वैश्य लोग कैसे आपकी पूजा के लिए अधिकृत हैं।।३।। स्त्री, शूद्र, कुंड, गोल आदि कैसे अधिकृत हैं? संसार के कल्याण के हेतु हम लोगों को प्रत्येक बात आप बताएँ।।४।।

सूत बोले

सूत ने उन मुनियों के भाव को समझकर नील मण्डल घेरे में स्थित हुए जादुई वाणी में कहा। उमा के साथ देवताओं के देवता को देव और मुनियों ने अपने सम्मुख देखा, जो बिजली की करोड़ो किरणों की प्रभा के समान उनकी आठ भुजाएँ थी, उनका आधा शरीर नारी रूप में था। वे जटा मुकुट धारण किये हुए थे। सब प्रकार के आभूषण पहने हुए लाल माला और लाल चन्दन लगाए लाल वस्त्र धारण किये सृष्टि, स्थिति और संहार (विश्व के रचयिता, पालक और विनाशक) थे।।५-८।। उनका पूर्व की ओर मुख देखने में प्रसन्न और

दंष्ट्राकरालमत्युग्रं ज्वालामालासमावृतम्। रक्तश्मश्रुं जटायुक्तं चोत्तरे विद्रुमप्रभुम्॥१०॥
प्रसन्नं वामदेवाख्यं वरदं विश्वरूपिणम्। पश्चिमं वदनं तस्य गोक्षीरधवलं शुभम्॥११॥
मुक्ताफलमयैर्हारैर्भूषितं तिलकोज्जवलम्। सद्योजातमुखं दिव्यं भास्करस्य स्मरारिणः॥१२॥
आदित्यमग्रतो पश्यन्पूर्ववच्चतुराननम्। भास्करं पुरतो देवं चतुर्वक्त्रं च पूर्ववत्॥१३॥
भानुं दक्षिणतो देवं चतुर्वक्त्रं च पूर्ववत्।
रविमुत्तरतोऽपश्यन्पूर्ववच्चतुराननम् ॥१४॥
विस्तारां मंडले पूर्वे उत्तरां दक्षिणे स्थिताम्। बोधनीं पश्चिमे भागे मंडलस्य प्रजापतेः॥१५॥
अध्यायनीं च कौबेर्यामेकवक्त्रां चतुर्भुजाम्। सर्वाभरणसंपन्नाः शक्तयः सर्वसंमताः॥१६॥
ब्रह्माणं दक्षिणे भागे विष्णुं वामे जनार्दनम्। ऋग्यजुःसाममार्गेण मूर्तित्रयमयं शिवम्॥१७॥
ईशानं वरदं देवमीशानं परमेश्वरम्। ब्रह्मासनस्थं वरदं धर्मज्ञानासनोपरि॥१८॥
वैराग्यैश्वर्यसंयुक्ते प्रभूते विमले तथा। सारं सर्वेश्वरं देवमाराध्यं परमं सुखम्॥१९॥
सितपंकजमध्यस्थं दीप्ताद्यैरभिसंवृतम्।
दीप्तां दीपशिखाकारां सूक्ष्मां विद्युत्प्रभां शुभाम्॥२०॥
जयामग्निशिखाकारां प्रभां कनकसप्रभाम्। विभूतिं विद्रुमप्रख्यां विमलां पद्मसन्निभाम्॥२१॥
अमोघां कर्णिकाकारां विद्युतं विश्ववर्णिनीम्। चतुर्वक्त्रां चतुर्वर्णां देवीं वै सर्वतोमुखीम्॥२२॥

रंग में पीला था वह तत्पुरुष के रूप में था। उनका दाहिने ओर का दक्षिण मुख अघोर रूप में नीले अंजन के समान था।।९।। उनका उत्तर मुख वामदेव नामक लाल रंग की दाढ़ी, ज्वाला माला युक्त कराल दाँतों वाला विद्रुम मणि की प्रभायुक्त था। यह मुख इस रूप में विश्व को प्रसन्न करने वाला था और वरदान देने वाला था।।१०-१२।। वामदेव का उनका पश्चिम मुख शानदार और श्वेत था जैसे की गाय का दूध। उनका सद्योजात नामक दिव्य मुख सूर्य की शानदार किरणों से चमक रहा था, जैसे मस्तक पर लगा हुआ त्रिपुण्ड। वह मोतियों की मालाओं से भूषित था।। उन्होंने मण्डल के पूर्व में आदित्य को, पश्चिम में भास्कर को, दक्षिण में भानु को और उत्तर में रवि को पूर्ववत चार मुखों को देखा (ये सब सूर्य अलग-अलग रूप थे)।।१३-१४।। उन्होंने मण्डल में पूर्व शक्ति विस्तारा, दक्षिण में उत्तरा, पश्चिम में बोधिनी और उत्तर में अध्यायनी को देखा। ये सब शक्तियाँ एक मुख और चार भुजाओं वाली थीं। ये सब प्रकार के आभूषणों से युक्त और देवताओं द्वारा सम्मत थीं।।१५-१६।। उन्होंने दक्षिण भाग में ब्रह्मा, वाम भाग में विष्णु और ऋग्, यजु और साममय तीन मूर्तियों सहित शिव को देखा है।।१७।। उन्होंने वर देने वाले परमेश्वर ईशान को देखा जो ब्रह्मा के आसन के ऊपर बैठे थे।।१८।। उन्होंने सर्वेश्वर को एक आसन पर बैठे देखा जो कि वैराग्य और ऐश्वर्य से संयुक्त शुद्ध और उनके लिए सर्वथा सुखदायक था।।१९।। शिव सफेद कमल के मध्य में बैठे थे वो दीप्ता आदि देवियों से घिरे थे। दीप्ता दीप की शिखा के आकार वाली सूक्ष्म विद्युत की प्रभा के समान, जया अग्नि शिखा के आकार वाली सोने की प्रभा के समान, विभूति विद्रुम मणि के समान, विमला कमल के समान अमोघ अमिलतास के फल के समान, विद्युत विश्व के वर्ण के समान और सर्वतोमुखी चार मुखों वाली और चार रंगों वाली थी।।२०-२२।।

सोममंगारकं देवं बुधं बुद्धिमतां वरम्। बृहस्पतिं बृहद्बुद्धिं भार्गवं तेजसां निधिम्॥२३॥
मंदं मंदगतिं चैव समंतात्तस्य ते सदा। सूर्यः शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षादुमा स्वयम्॥२४॥
पंचभूतानि शेषाणि तन्मयं च चराचरम्। दृष्ट्वैव मुनयः सर्वे देवदेवमुमापतिम्॥२५॥
कृतांजलिपुटाः सर्वे मुनयो देवतास्तथा। अस्तुवन्वाग्भिरिष्टाभिर्वरदं नीललोहितम्॥२६॥

ऋषयः ऊचुः

नमः शिवाय रुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे। मीढुष्टमाय सर्वाय शिपिविष्टाय रंहसे॥२७॥
प्रभूते विमले सारे ह्याधारे परमे सुखे। नवशक्त्यावृतं देवं पद्मस्थं भास्करं प्रभुम्॥२८॥
आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरम्। उमां प्रभां तथा प्रज्ञां संध्यां सावित्रिकामपि॥२९॥
विस्तारामुत्तरां देवीं बोधनीं प्रणमाम्यहम्। आप्यायनीं च वरदां ब्रह्माणं केशवं हरम्॥३०॥

सोमादिवृंदं च यथाक्रमेण संपूज्य मंत्रैर्विहितक्रमेण।
स्मरामि देवं रविमंडलस्थं सदाशिवं शंकरमादिदेवम्॥३१॥
इंद्रादिदेवांश्च तथेश्वरांश्च नारायणं पद्मजमादिदेवम्।
प्रागाद्यधोर्ध्वं च यथाक्रमेण वज्रादिपद्मं च तथा स्मरामि॥३२॥
सिंदूरवर्णाय समंडलाय सुवर्णवज्राभरणाय तुभ्यम्।
पद्माभनेत्राय सपंकजाय ब्रह्मेंद्रनारायणकारणाय॥३३॥

उन्होंने ग्रहों को शिव के चारों ओर बैठे देखा। चन्द्रमा, मंगल, बुध, बुद्धिमानों में सर्वश्रेष्ठ बृहस्पति, तेज के भंडार शुक्र, बुद्धिवाले सूक्ष्म महान तम के भण्डार और मंदगति शनि को देखा। जगत् के स्वामी शिव, सूर्य और स्वयं साक्षात चन्द्रमा के समान हो।।२३-२४।।

पाँचों भूत उनके साथ विश्व के सब चर-अचर देखे गये। देवों के देव उमापति को देखकर मुनियों और देवताओं ने दोनों हाथ जोड़कर वरदायक भगवान नीललोहित की स्तुति की।।२५-२६।।

ऋषिगण बोले

शिव, रुद्र कद्रूद्र, प्रचेतस, मीढुष्टम, सर्व, शिपिविष्ट और वेग को नमस्कार। मैं शक्तियों से घिरे हुये कमल पर बैठे हुये भगवान भास्कर को प्रणाम करता हूँ। आधार पर स्थित नव विमल परम सुखदायक आदित्य, भास्कर, भानु, रवि और भगवान दिवाकर को प्रणाम करता हूँ। मैं उमा, प्रभा, प्रज्ञा, सन्ध्या, सावित्री, विस्तारा, उत्तरा और बोधिनी तथा वरदायिनी आप्यायनी को प्रणाम करता हूँ। मैं ब्रह्मा, विष्णु और शिव को प्रणाम करता हूँ। सोम आदि समूह को विहित मन्त्रों द्वारा पूजा करके रवि मण्डल में स्थित आदि देव शंकर सदाशिव का स्मरण करता हूँ।

मैं इन्द्र और अन्य देवों, ईश्वर नारायण एवं पद्मज आदि देव ब्रह्मा को यथाक्रम (पूर्व आदि अधः ऊर्द्ध्व से) स्मरण करता हूँ। सिन्दूरवर्ण वाले आपको नमस्कार। स्वर्ण और हीरे आभूषणधारी आप को नमस्कार। कमल की आभा के समान वाले आप को नमस्कार। कमलधारण करने वाले आपको नमस्कार। ब्रह्मा, इन्द्र और नारायण के कारण (उत्पन्न करने वाले को) को नमस्कार। सात घोड़ों वाले अनूरु सारथी वाले रथ को नमस्कार।।२७-३३।।

रथं च सप्ताश्वमनूरुवीरं गणं तथा सप्तविधं क्रमेण।
ऋतुप्रवाहेण च वालखिल्यान्स्मरामि मंदेहगणक्षयं च॥३४॥
हुत्वा तिलाद्यैर्विविधैस्तथाग्नौ पुनः समाप्यैव तथैव सर्वम्।
उद्वास्य हृत्पंकजमध्यसंस्थं स्मरामि बिंबं तव देवदेव॥३५॥
स्मरामि बिंबानि यथाक्रमेण रक्तानि पद्मामललोचनानि।
पद्मं च सव्ये वरदं च वामे करे तथा भूषितभूषणानि॥३६॥
दंष्ट्राकरालं तव दिव्यवक्त्रं विद्युत्प्रभं दैत्यभयंकरं च।
स्मरामि रक्षाभिरतं द्विजानां मंदेहरक्षोगणभर्त्सनं च॥३७॥
सोमं सितं भूमिजमग्निवर्णं चामीकराभं बुधमिंदुसुनूम्।
बृहस्पतिं कांचनसन्निकाशं शुक्रं सितं कृष्णतरं च मंदम्॥३८॥
स्मरामि सव्यमभयं वाममूरुगतं वरम्।
सर्वेषां मंदपर्यंतं महादेवं च भास्करम्॥३९॥
पूर्णेंदुवर्णेन च पुष्पगंधप्रस्थेन तोयेन शुभेन पूर्णम्।
पात्रं दृढं ताम्रमयं प्रकल्प्य दास्ये तवार्घ्यं भगवन्प्रसीद॥४०॥
नमः शिवाय देवाय ईश्वराय कपर्दिने।
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे सूर्यमूर्तये॥४१॥

मैं उचित निरन्तर प्रवाह के बहने वाली ऋतुएँ सहित सात गणों आदित्य नाग गन्धर्व आदि को नमस्कार करता हूँ। मैं वालखिल्य ब्रह्मा के पुत्र ऋषियों को नमस्कार करता हूँ, मन्देह राक्षसों के समूह को नष्ट करने वाले स्वामी को नमस्कार करता हूँ।।३४।। हे देवगणों के देवता! तिल आदि विभिन्न सामग्री का हवन करके हृदय कमल के मध्य में स्थित तुम्हारे बिम्ब को मैं स्मरण करता हूँ।।३५।। मैं उचित क्रम में स्मरण करता हूँ, मैं लाल रंग के शुद्ध कमल समान नेत्रों को स्मरण करता हूँ। मैं दाहिने हाथ में वरदायक कमल बाएँ हाथ में वरदान को स्मरण करता हूँ। आपने जो आभूषणों को धारण किया उसको मैं नमस्कार करता हूँ।।३६।। मैं आपके दिव्य मुख का स्मरण करता हूँ। कराल दाँतों युक्त बिजली की तरह चमकने वाले, दैत्यों को भय देने वाले, द्विजों की रक्षा करने वाले और राक्षसों के दल को डराने वाले मुख को स्मरण करता हूँ।।३७।। मैं सफेद रंग से चन्द्रमा का स्मरण करता हूँ, औरं अग्नि के समान रंग वाले मंगल को, और चन्द्र के पुत्र सुनहरे रंग वाले बुध को, सोने के समान चमकने वाले बृहस्पति को, सफेद रंग वाले शुक्र को, और अति काले रंग वाले शनिश्चर को स्मरण करता हूँ। मैं शनि से अन्त होने वाले सब ग्रहों को स्मरण करता हूँ। मैं भास्कर और महादेव को स्मरण करता हूँ। हे भगवान! आप प्रसन्न हो जाएँ, मैं ताँबे से बने हुए शुद्ध जल से भरे हुए पूर्ण चन्द्रमा के समान सफेद रंग पुष्प, फूल और गंध से युक्त जल से आपको अर्घ्य दूँगा। शिव, ईश्वर, कपर्दी, रुद्र, विष्णु को नमस्कार। सूर्य की मूर्ति स्वरूप ब्रह्मा को नमस्कार।।३८-४१।।

सूत उवाच

यः शिवं मंडले देवं संपूज्यैवं समाहितः। प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने पठेत्स्तवमनुत्तमम्॥४२॥
इत्थं शिवेन सायुज्यं लभते नात्र संशयः॥४३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

सूत बोले

जो मानसिक शुद्ध और एकाग्रचित्त होकर मण्डल में स्थित शिव की पूजा करके इस उत्तम स्तुति को सुबह, दोपहर और सायंकाल पढ़ता है वह शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं।।४२-४३।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव की पूजा विधि नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त॥१९॥

विंशोऽध्यायः

शिवस्य पूजायाः साधनानि

सूत उवाच।

अथ रुद्रो महादेवो मंडलस्थः पितामहः। पूज्यो वै ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशेषतः॥१॥
वैश्यानां नैव शूद्राणां शुश्रूषां पूजकस्य च। स्त्रीणां नैवाधिकारोऽस्ति पूजादिषु न संशयः॥२॥
स्त्रीशूद्राणां द्विजेन्द्रैश्च पूजया तत्फलं भवेत्। नृपाणामुपकरार्थं ब्राह्मणद्यैर्विशेषतः॥३॥
एवं संपूजयेयुर्वै ब्राह्मणाद्याः सदाशिवम्। इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रैवांतरधात्स्वयम्॥४॥
ते देवा मुनयः सर्वे शिवमुद्दिश्य शंकरम्। प्रणेमुश्च महात्मानो रुद्रध्यानेन विह्वलाः॥५॥
जग्मुर्यथागतं देवा मुनयश्च तपोधनाः। तस्मादभ्यर्चयेन्नित्यमादित्यं शिवरूपिणम्॥६॥
धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं मनसा कर्मणा गिरा।

ऋषय ऊचुः।

रोमहर्षण सर्वज्ञ सर्वशास्त्रभृतां वर॥७॥
व्यासशिष्य महाभाग वाह्नेयं वद सांप्रतम्। शिवेन देवदेवेन भक्तानां हितकाम्यया॥८॥
वेदात् षडंगादुद्धृत्य सांख्ययोगाच्च सर्वतः। तपश्च विपुलं तप्त्वा देवदानवदुश्चरम्॥९॥

बीसवाँ अध्याय

शिव की पूजा के साधन

सूत बोले

रूद्र, महादेव, पितामह मण्डल में स्थित हैं, वे ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों द्वारा पूज्य हैं।।१।। शूद्रों के लिए केवल पुजारी के द्वारा ही सेवा प्रर्याप्त है। स्त्रियाँ शिव की पूजा करने के लिए अधिकृत नहीं हैं इसमें सन्देह नहीं।।२।। श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा करायी गयी पूजा से वही स्त्रियों और शूद्रों को फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणों तथा अन्य द्वारा राजाओं के उपकार के लिए विशेष पूजा करायी जानी चाहिए।।३।। इस प्रकार ब्राह्मण आदि द्वारा सदा शिव की पूजा की जानी चाहिए। ऐसा कहकर भगवान रुद्र वहीं पर अन्तर्धान हो गये।।४।। उन सब देवताओं और मुनियों ने भगवान रुद्र को ध्यान से विह्वल होकर उनको प्रणाम किया।।५।। उसके बाद देवता और तपोधन मुनि लोग जैसे आये थे और वैसे ही वापस चले गये। इसलिए शिव के स्वरूप आदित्य देवता की धन, धर्म, काम और मुक्ति के लिए निरन्तर पूजा करनी चाहिए।।६।।

ऋषिगण बोले

हे रोम हर्षण सब शास्त्रधारियों में श्रेष्ठ और सर्वज्ञ वेदव्यास शिष्य! अब अग्नि के पवित्र सिद्धान्त को और शिव के द्वारा भक्तों के हित की कामना से छः अंगों वाले वेदों और सांख्य दर्शन से योग से उद्घृत करके और

अर्थदेशादिसंयुक्तं गूढमज्ञाननिंदितम्। वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विपरीतं क्वचित्समम्॥१०॥
शिवेन कथितं शास्त्रं धर्मकामार्थमुक्तये। शतकोटिप्रमाणेन तत्र पूजा कथं विभोः॥११॥
स्नानयोगादयो वापि श्रोतुं कौतूहलं हि नः।

सूत उवाच

पुरा सनत्कुमारेण मेरुपृष्ठे सुशोभने॥१२॥
पृष्टो नंदीश्वरो देवः शैलादिः शिवसंमतः। पृष्टोयं प्रणिपत्यैवं मुनिमुख्यैश्च सर्वतः॥१३॥
तस्मै सनत्कुमाराय नंदिना कुलनंदिना। कथितं यच्छिवज्ञानं श्रृण्वंतु मुनिपुंगवाः॥१४॥
शैवं संक्षिप्य वेदोक्तं शिवेन परिभाषितम्। स्तुतिनिन्दादिरहितं सद्यः प्रत्ययकारकम्॥१५॥
गुरुप्रसादजं दिव्यमनायासेन मुक्तिदम्।

सनत्कुमार उवाच

भगवन्सर्वभूतेश नंदीश्वर महेश्वर॥१६॥
कथं पूजादयः शंभोर्धर्मकामार्थमुक्तये। वक्तुमर्हसि शैलादे विनयेनागताय मे॥१७॥

सूत उवाच

संप्रेक्ष्य भगवान्नंदी निशम्य वचनं पुनः। कालवेलाधिकाराद्यवदद्वदतां वरः॥१८॥

देवता और राक्षसों द्वारा दुश्चर, विपुल तप करके प्राप्त जो महान् गूढ़ रहस्य हैं वे अज्ञान को दूर करते हैं। यह चारों वर्ण और आश्रम के लिए कथित सिद्धान्तों के कहीं सम्मत और कहीं विपरीत, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए शिव द्वारा कथित शास्त्र कथन जो शत कोटि प्रमाणों से युक्त हैं। उस सिद्धान्त में शिव की पूजा विधि किस प्रकार बताई गई है। स्नान और योग कैसे हैं? हम लोग उसको सुनने को उत्सुक हैं।।७-१२।।

सूत बोले

पूर्वकाल में शिलाद के पुत्र गणों के स्वामी और शिव के प्रिय नन्दिकेश्वर से सनत्कुमार ने मेरुगिरि की चोटी पर यह प्रश्न पूछा था। उसके बाद श्रेष्ठ मुनियों ने प्रणाम करके यही प्रश्न पूछा। हे श्रेष्ठ मुनियों! अपने कुल के दीपक नन्दीश्वर ने जो कुछ सनत्कुमार से कहा था, वह मुझसे तुम सब ध्यानपूर्वक सुनो।।१३-१४।। शिव सम्बन्धी यह सिद्धान्त (ज्ञान) शिव द्वारा भाषित है। वेदों में वर्णित ज्ञान का सारा संक्षेप है। यह स्तुति और निन्दा से रहित है। यह तुरन्त विश्वास कराने वाला है। गुरुओं की कृपा से यह अनायास अल्प प्रयास से मुक्ति देने लायक है।।१५-१६।।

सनत्कुमार बोले

हे शैलादि! धर्म, काम, अर्थ और मुक्ति को पाने के लिए शिव की पूजा कैसे की जाय? आप के सामने विनयपूर्वक आये हुये मुझसे यह आप कहने के योग्य हैं।।१७।।

सूत बोले

उनके विनम्र वचन को सुनकर भगवान वक्ताओं में श्रेष्ठ नन्दीश्वर ने शिव पूजा की काल बेला और अधिकार आदि को कहना प्रारम्भ किया।।१८।।

शैलादिरुवाच

गुरुतः शास्त्रश्चैवमधिकारं ब्रवीम्यहम्। गौरवादेव संज्ञैषा शिवाचार्यस्य नान्यथा॥१९॥
स्वयमाचरते यस्तु आचारे स्थापयत्यापि। आचिनोति च शास्त्रार्थानाचार्यस्तेन चोच्यते॥२०॥
तस्माद्वेदार्थतत्त्वज्ञमाचार्यं भस्मशायिनम्। गुरुमन्वेषयेद्भक्तः सुभगं प्रियदर्शनम्॥२१॥
प्रतिपन्नं जनानंदं श्रुतिस्मृतिपथानुगम्। विद्ययाभयदातारं लौल्यचापल्यवर्जितम्॥२२॥
आचारपालकं धीरं समयेषु कृतास्पदम्। तं दृष्ट्वा सर्वभावेन पूजयेच्छिववद्गुरुम्॥२३॥
आत्मना च धनेनैव श्रद्धावित्तानुसारतः। तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ यथा भवेत्॥२४॥
सुप्रसन्ने महाभागे सद्यः पाशक्षयो भवेत्। गुरुर्मान्यो गुरुः पूज्यो गुरुरेव सदाशिवः॥२५॥
संवत्सरत्रयं वाथ शिष्यान्विप्रान्परीक्षयेत्। प्राणद्रव्यप्रदानेन आदेशैश्च इतस्ततः॥२६॥
उत्तमश्चाधमे योज्यो नीच उत्तमवस्तुषु। आकृष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यांति वै॥२७॥
ते योग्याः शिवधर्मिष्ठाः शिवधर्मपरायणाः। संयता धर्मसंपन्नाः श्रुतिस्मृतिपथानुगाः॥२८॥
सर्वद्वंद्वसहा धीरा नित्यमुद्युतचेतसः। परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषेण रताः॥२९॥

शैलादि बोले

मैं गुरु से प्राप्त और शास्त्र द्वारा प्रतिपादित शिव पूजन की विधि को गौरव से बताता हूँ।।१९।। शिव आचार्य का नाम उनके गम्भीरता पर आधारित है, अन्य किसी पर नहीं जो स्वयं आचरण करता और दूसरे को उस आचरण में स्थापित करता है। इसलिए उसको आचार्य कहा जाता है। जो शास्त्र के अर्थों को समझता और दूसरों से उसकी व्याख्या करता है। इस कारण उसको आचार्य कहते हैं।।२०।।

एक निष्ठ भक्त को ऐसे आचार्य की खोज करनी चाहिए जिसमें निम्नलिखित गुण हों। जो वेदों के अर्थों के तत्त्व को जानता हो, जो भस्म पर लेटने वाला हो, वह वेद तथा स्मृति के मार्ग का अनुयायी हो, जो अपनी विद्या से अभय करने वाला हो, जो चंचलता और चपलता से रहित हो, जो आचार को पालन करने वाला धैर्यवान सदाचारी और शैव रीति, रिवाज (प्रथा) का जानकार हो, ऐसे गुरु को देखकर पूर्ण भक्ति-भाव के साथ शिव के समान उसकी पूजा करनी चाहिए।।२१।। भक्त द्वारा अपने वित्तीय सामर्थ्य और श्रद्धा के अनुसार उतनी उसकी आराधना करनी चाहिए, जितने से वह प्रसन्न हो जाय।।२२।। ऐसे महाभाग गुरु के प्रसन्न हो जाने पर शिष्य के बन्धन का नाश हो जाता है। गुरु मान्य हैं, गुरु पूज्य हैं और गुरु ही सदाशिव हैं।।२३।।

गुरु ब्राह्मण शिष्यों के प्राण रक्षक वस्तु द्रव्य देने और आज्ञाओं से इधर-उधर तीन वर्ष तक भेजकर उसकी परीक्षा करे।।२४।। उत्तम पुरुषों को निकृष्ट कामों में लगाएँ और नीच को उत्तम वस्तुओं में। यदि वे उनकी ओर आकृष्ट न हो तो उनको प्रताड़ित करे। इस पर भी वे विचलित न हो तो उनको योग्य शिष्य समझे। योग्य ब्राह्मण भक्तों में निम्नलिखित गुण होते हैं।।२५-२६।। वे जो शैव धर्म में पूर्ण आस्थावान हों, जो अपने में धर्म से संयत हों, श्रुति और स्मृति के मार्ग के अनुयायी हों, सब प्रकार कें द्वन्द (सुख, दुःख) आदि सहने में धैर्यवान हों, सदैव प्रसन्न चित्त हों, परोपकार मे लगे हों, गुरु की सेवा में तल्लीन हों, जो कोमल हृदय वाले, स्वस्थ सीधे-सीधे,

आर्जवा मार्दवाः स्वस्था अनुकूलाः प्रियंवदाः।
अमानिनो बुद्धिमंतस्त्यक्तस्पर्धा गतस्पृहाः॥३०॥

शौचाचारगुणोपेता दम्भमात्सर्यवर्जिताः। योग्या एवं द्विजाः सर्वे शिवभक्तिपरायणाः॥३१॥
एवंवृत्तसमोपेता वाङ्मनःकायकर्मभिः। शोध्या एवंविधाश्चैव तत्त्वानां च विशुद्धये॥३२॥
शुद्धो विनयसंपन्नो मिथ्याकटुकवर्जितः। गुर्वाज्ञापालकश्चैव शिष्योऽनुग्रहमर्हति॥३३॥
गुरुश्च शास्त्रवित्प्राज्ञस्तपस्वी जनवत्सलः। लोकाचाररतो ह्येवं तत्त्वविन्मोक्षदः स्मृतः॥३४॥
सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वशास्त्रविशारदः। सर्वोपायविधानज्ञस्तत्त्वहीनस्य निष्फलम्॥३५॥
स्वसंवेद्ये परे तत्त्वे निश्चयो यस्य नात्मनि। आत्मनोऽनुग्रहो नास्ति परस्यानुग्रहः कथम्॥३६॥
प्रबद्धस्तु द्विजो यस्तु स शुद्ध साधयत्यपि। तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः॥३७॥
परिग्रहविनिर्मुक्तास्ते सर्वे पशवोदिताः। पशुभिः प्रेरिता ये तु सर्वे ते पशवः स्मृताः॥३८॥
तस्मात्तत्त्वविदो ये तु ते मुक्ता मोचयंत्यपि। संवित्तिजननं तत्त्वं परानंदसमुद्भवम्॥ ३९॥
तत्त्वं तु विदितं येन स एवानंददर्शकः। न पुनर्नाममात्रेण संवित्तिरहितस्तु यः॥४०॥
अन्योऽन्यं तारयेन्नैव किं शिला तारयेच्छिलाम्। येषां तन्नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका॥४१॥
योगिनां दर्शनाद्वापि स्पर्शनाद्भाषणादपि। सद्यः संजायते चाज्ञा पाशोपक्षयकारिणी॥४२॥

वफादार मृदुभाषी हों जो अहंकारी न हों, बुद्धिमान हों। उनमें स्पर्धा और कपट भाव न हो, शुद्ध आचार-विचार और गुणों से युक्त हों। जिनमें ईर्ष्या द्वेष और पाखण्ड न हों। ऐसे द्विज योग्य शिव भक्त परायण होते हैं। ऐसे वाणी, मन और कर्म से शुद्ध आचरण वाले शिष्यों को आगे पुनः तत्त्वों की शुद्धता के लिए शोधन करना चाहिए।।२७-३२।। शुद्ध, विनयी, मिथ्या और कटु व्यवहार से दूर गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला शिष्य गुरु की कृपा का पात्र होता है।।३३।। गुरु शास्त्र का ज्ञाता, बुद्धिमान, तपस्वी, जनसाधारण को प्रेमी, लोक व्यवहार में तल्लीन तत्त्वों का ज्ञाता हो, वह मोक्ष देने वाला होता है।।३४।। सब लक्षणों से युक्त, सब शास्त्रों में पारंगत, सब उपाय और विधान को जानने वाला होने पर भी यदि वास्तविक तत्त्व से रहित हो, तो उसके अन्य गुण निष्फल हो जाते हैं।।३५।। अगर ऐसे गुरु में स्वयं अनुभूति तत्त्व आत्मा में जिसका निश्चय नहीं है, जिसमे स्वयं आत्मज्ञान नहीं है, वह दूसरों को आत्मज्ञान कैसे दे सकता है।।३६।। वह ब्राह्मण जो कि स्वयं प्रबुद्ध है, शुद्ध है वह स्वयं साधना में समर्थ होता है। लेकिन जो स्वयं तत्त्व का ज्ञाता नहीं है उसको आत्मज्ञान कहाँ से होगा।।३७।। वे सब आत्म परिग्रह से रहित हैं। वे सब पशु हैं, और वे जो पशु से प्रेरित हैं वे सब पशु कहे गये हैं।।३८।। इसलिए जो तत्त्वविद मुक्त हैं वे दूसरों को मुक्त कर सकते हैं, तत्त्व जो कि संवित्ति (ज्ञान) का जनक है वह पर आनन्द से उत्पन्न है।।३९।। केवल वह जिसने तत्त्व सत्य को समझ लिया है वही आनन्द को दिखलाने वाला है जो कि संवित्ति रहित है वह तो नाम मात्र का तत्त्वज्ञानी है।।४०।। क्या एक शिला दूसरे शिला को तार सकती है? जिनको कि पूर्ण ज्ञान केवल नाम मात्र में है, उनकी मुक्ति भी नाम मात्र में है।।४१।। योगियों के दर्शन से स्पर्श और भाषण से भी पाप क्षय करने वाली आज्ञा उत्पन्न होती है।।४२।। अथवा योग मार्ग से

अथवा योगमार्गेण शिष्यदेहं प्रविश्य च। बोधयेदेव योगेन सर्वतत्त्वानि शोध्य च॥४३॥
षडर्धशुद्धिर्विहिता ज्ञानयोगेन योगिनाम्। शिष्यं परीक्ष्य धर्मज्ञं धार्मिकं वेदपारगम्॥४४॥
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं बहुदोषविवर्जितम्। ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य कर्णात् कर्णागतेन तु॥४५॥
दीपाद्दीपो यथा चान्यः संचरेद्विधिवद्गुरुः। भौवनं च पदं चैव वर्णाख्यं मात्रमुत्तमम्॥४६॥
कालाध्वरं महाभाग तत्त्वाख्यं सर्वसंमतम्। भिद्यते यस्य सामर्थ्यादाज्ञामात्रेण सर्वतः॥४७॥
तस्य सिद्धिश्च मुक्तिश्च गुरुकारुण्यसंभवा। पृथिव्यादीनि भूतानि आविशंति च भौवने॥४८॥
शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गंधश्च भावतः। पदं वर्णाख्यं विप्र बुद्धींद्रियविकल्पनम्॥४९॥
कर्मेन्द्रियाणि मात्रं हि मनो बुद्धिरतः परम्। अहंकारमथाव्यक्तं कालाध्वरमिति स्मृतम्॥५०॥
पुरुषादिविरिंच्यंतमुन्मनत्वं परात्परम्। तथेशत्वमिति प्रोक्तं सर्वतत्त्वार्थबोधकम्॥५१॥
अयोगी नैव जानाति तत्त्वशुद्धिं शिवात्मिकाम्॥५२॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे विंशोऽध्यायः॥२०॥

शिष्य के शरीर में प्रवेश करके योग से सब तत्त्वों का शोधन करके अपने योगिक पावर से अपने शिष्य को तत्त्व ज्ञान का बोध कराते हैं।।४३।। योगियों के ज्ञानयोग से मानसिक, वाचिक और कायिक शुद्धि ज्ञानमार्ग से मिलती है। गुरु को धर्मज्ञ, धार्मिक, वेदज्ञ, निर्दोष, शिष्य की परीक्षा करके ज्ञान से ज्ञान को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य गुरु शिष्य के गुणधर्म और ज्ञान की परीक्षा करे, वह इस बात की जाँच करे कि शिष्य में दोष तो नहीं है। वह ब्राह्मण है, क्षत्रिय है या वैश्य है गुरु कान से कान में और वह ज्ञान दे जो कि उसको स्वयं प्राप्त है। जैसे एक दीपक से दूसरा दीपक प्रज्वलित होता है उसी तरह गुरु भी शिष्य को अपने स्वयं प्राप्त ज्ञान से ज्ञानबोध कराए। जिसको तत्त्व कहते हैं वह ज्ञान से बना है। महाभाग, भौवन, पद, वर्णाख्य, तत्त्व मात्रम्, कालाध्वर यह सर्व सम्मत तत्त्व है। गुरु की दया (अनुग्रह) से शिष्य अपनी ज्ञान शक्ति के द्वारा ज्ञान मात्र से सिद्धि और मुक्ति प्राप्त कर लेता है।।४४-४७।। पृथ्वी आदि पंचभूत भौवनम् में सम्मिलित हैं। शब्द, स्पर्श, रंग, रस और गंध ये पद हैं। अपने सामान्य गुणों के कारण। हे ब्राह्मण! ज्ञानेन्द्रियों के विभिन्नता वर्णाख्यम कहे जाते हैं। मात्रम् कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार अव्यक्त को कालाध्वर कहा गया है। पुरुष से लेकर और ब्रह्म सहित तत्त्व उन्मन कहा गया है। सब तत्त्व के अर्थ को बोध करने वाले को ईश कहा गया है। ईश महत्तम से भी महत्तर है। सब तत्त्वों का यही अर्थ है। जो योगी नहीं है वह तत्त्वों के असली प्रकृति की शुद्धि को नहीं जानता है जो स्वयं शिव की प्रकृति है।।४८-५२।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव की पूजा के साधन
नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त॥२०॥

एकविंशतितमोऽध्यायः
दीक्षाविधिः

सूत उवाच

परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गंधवर्णरसादिभिः। अलंकृत्य वितानाद्यैरीश्वरावाहनक्षमाम्॥१॥
एकहस्तप्रमाणेन मंडलं परिकल्पयेत्। आलिखेत्कमलं मध्ये पंचरत्नसमन्वितम्॥२॥
चूर्णैरष्टदलं वृत्तं सितं वा रक्तमेव च। परिवारेण संयुक्तं बहुशोभासमन्वितम्॥३॥
आवाह्य कर्णिकायां तु शिवं परमकारणम्। अर्चयेत्सर्वयत्नेन यथाविभवविस्तरम्॥४॥
दलेषु सिद्धयः प्रोक्ताः कर्णिकायां महामुने। वैराग्यज्ञाननालं च धर्मकंदं मनोरमम्॥५॥
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च काली विकरणी तथा। बलविकरणी चैव बलप्रमथिनी क्रमात्॥६॥
सर्वभूतस्य दमनी केसरेषु च शक्तयः। मनोन्मनी महामाया कर्णिकायां शिवासने॥७॥
वामदेवादिभिः सार्धं द्वंद्वन्यायेन विन्यसेत्। मनोन्मनं महादेवं मनोन्मन्याथ मध्यतः॥८॥
सूर्यसोमाग्निसंबंधात्प्रणवाख्यंशिवात्मकम्। पुरुषं विन्यसेद्वक्त्रं पूर्वे पत्रे रविप्रभम्॥९॥
अघोरं दक्षिणे पत्रे नीलांजनचयोपमम्। उत्तरे वामदेवाख्यं जपाकुसुमसन्निभम्॥१०॥
सद्यं पश्चिमपत्रे तु गोक्षीरधवलं न्यसेत्। ईशानं कर्णिकायां तु शुद्धस्फटिकसन्निभम्॥११॥

इक्कीसवाँ अध्याय
दीक्षाविधि

सूत बोले

दीक्षा के लिए चुनी हुई भूमि की परीक्षा करके विधिवत् गंध, रंग, रस आदि से सजाएँ। वितान (चाँदनी) आदि से शिव को आह्वान के योग्य एक हाथ का मण्डल बनाएँ। पंच रत्नों से युक्त कमल को बीच में चूर्ण (आटा) से बनाएँ। सफेद और लाल अष्टगन्ध घेरा (वृत्त) यह सफेद या लाल रंग में हो। यह चमकीला और भव्य हो। यह शिव और उनके अनुचरों से संयुक्त हो। सृष्टि के परम कारण शिव का कर्णिका में आह्वान करके अपने समृद्धि की सीमा के अनुसार भक्त पूजा करे।।१-४।। हे महामुनि! दलों में सिद्धियाँ कही गयी हैं। इसकी नाल में वैराग्य और ज्ञान और सुन्दर धर्म कंद में कहे गये हैं, केसरों में वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, विकरणी, बलविकरणी, बल प्रमथनी सब भूतों की दमनी शक्तियाँ केसरों में और शिव के आसन में कर्णिका में मनोन्मनी महामाया इन शक्तियों की वामदेव और अन्य के साथ जोड़ो में स्थापित करे। महादेव जो मनोन्मन हैं उनको मनोन्मनी के साथ मध्य में स्थापित करें।।५-८।। पूर्व दल (पत्रं) में पुरुष को स्थापित करे। सूर्य के समान तेज मुख वाले सूर्य, सोम, अग्नि के सम्बन्ध से प्रणव नामक शिवात्मा पुरुष को स्थापित करे। दक्षिण पत्र पर नीलांजन के समान अघोर को उत्तर में जपा के फूल के समान वामदेव को स्थापित करे।।९-१०।। पश्चिम दल

चंद्रमंडलसंकाशं हृदययायेति मंत्रतः। वाह्नेये रुद्रदिग्भागे शिरसे धूम्रवर्चसे॥१२॥
शिखायै च नमश्चेति रक्ताभे नैर्ऋते दले। कवचायांजनाभाय इति वायुदले न्यसेत्॥१३॥
अस्त्रायाग्निशिखाभाय इति दिक्षु प्रविन्यसेत्। नेत्रेभ्यश्चेति चैशान्यां पिंगलेभ्यः प्रविन्येसत्॥१४॥
शिवं सदाशिवं देवं महेश्वरमतः परम्। रुद्रं विष्णुं विरिंचिं च सृष्टिन्यायेन भावयेत्॥१५॥
शिवाय रुद्ररूपाय शांत्यतीताय शंभवे। शांताय शांतदैत्याय नमश्चंद्रमसे तथा॥१६॥
वेद्याय विद्याधराय वह्नये वह्निवर्चसे। कालायै च प्रतिष्ठायै तारकायांतकाय च॥१७॥
निवृत्त्यै धनदेवाय धारायै धारणाय च। मंत्रैरेतैर्महाभूतविग्रहं च सदाशिवम्॥१८॥
ईशानमुकुटं देवं पुरुषास्यं पुरातनम्। अघोरहृदयं हृष्टं वामगुह्यं महेश्वरम्॥१९॥
सद्यमूर्तिं स्मरद्देवं सदसद्व्यक्तिकारणम्। पंचवक्त्रं दशभुजमष्टत्रिंशत्कलामयम्॥२०॥
सद्यमष्टप्रकारेण प्रभिद्य च कलामयम्। वामं त्रयोदशविद्यैर्विभिद्य विततं प्रभुम्॥२१॥
अघोरमष्टधा कृत्वा कलारूपेण संस्थितम्। पुरुषं च चतुर्धा वै विभज्य च कलामयम्॥२२॥
ईशानं पंचधा कृत्वा पंचमूर्त्या व्यवस्थितम्। हंसहंसेति मंत्रेण शिवभक्त्या समन्वितम्॥२३॥

पर भक्त सद्य को स्थापित करे जो कि गाय के दूध के समान है। शुद्ध स्फटिक के समान ईशान को कर्णिका में स्थापित करे। 'हृदयाय' शब्द से प्रारम्भ होने वाले मन्त्र को पढ़ते हुए दक्षिण-पूर्व कोण में देव को स्थापित करे जो कि शुद्ध स्फटिक के समान हैं। धुएँ के समान रंग वाले देव को 'शिरसे' शब्द से प्रारम्भ होने वाले मन्त्र को पढ़ते हुए उत्तर-पूर्व में स्थापित करें। दक्षिण पश्चिम कोण में लाल रंग के साथ 'शिखायै च नमः' शब्द को पढ़ते हुए मूर्त स्थापित करें। अँजन के समान आभा वाले 'कवचाय' शब्द को पढ़ते हुए उत्तर-पूर्व कोण में स्थापित करें। अग्निशिखा की आभा वाले मूर्त्ति को अस्त्र को नमः पढ़ते हुए सब दिशा में स्थापित करें। उत्तर-पूर्व कोण में पिंगल वर्ण के नेत्रों को नमः कहकर स्थापित करें। भक्त शिव, सदाशिव और महेश्वर का स्मरण करे उसके बाद वह रुद्र विष्णु और विरिंचि को सृष्टि के क्रम मे ध्यान करें।।११-१५।। रुद्र के रूप में शिव को नमः शंभु को नमस्कार जो शान्ति से बाहर है। चन्द्र को नमस्कार, चन्द्रमा जिन्होंने दैत्यों का नाश किया।।१६।। विद्या के धारण करने वाले विद्याधर को नमस्कार, तेज के देव उस अग्नि को नमस्कार, काल को नमस्कार और प्रतिष्ठा को नमस्कार, तारक और यम को नमस्कार।।१७।। निवृत्ति को नमस्कार, धन देव को नमस्कार, धारा को नमस्कार, धारण को नमस्कार इन मन्त्रों के द्वारा भक्त निम्नलिखित देवताओं को स्मरण करे। महाभूत शरीरधारी सदाशिव को, पुरातन देव पुरुष देव को, मुकुटधारी ईशान को, उनके हृदय के लिए अघोर को, अपने गुप्त अंगों के लिए वामदेव महेश्वर को, 'सत्' और 'असत्' के व्यक्ति के कारण शब्द की मूर्ति को और पाँच मुखों, दस भुजाओं और अड़तीस कलाओं वाले महादेव का स्मरण करें।।१८-२०।। तब कलामय सद्य को आठ भाग में बाँटकर, व्यापक वाम को १३ भाग, कलारूप में स्थित अघोर को आठ प्रकार, कलामय पुरुष को चार प्रकार, पंचमूर्ति रूप स्थित ईशान को पाँच प्रकार विभक्त करके हंस हंस इस मन्त्र से एक मंत्र ओम् का, समान रूप में 'अ' अक्षर को दोहराते हुए आ, ई, ऊ, ए और अंबा उचित क्रम से आत्मा के रूप भगवान शिव का स्मरण

ओंकारमात्रमोंकारमकारं समरूपिणम्। आ ई ऊ ए तथा अंबानुक्रमेणात्मरूपिणम्॥२४॥
प्रधानसहितं देवं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्। अणोरणीयांसमजं महतोऽपि महत्तमम्॥२५॥
उध्वरितसमीशानं विरूपाक्षमुमापतिम्। सहस्राशिरसं देवं सहस्राक्षं सनातनम्॥२६॥
सहस्रहस्तचरणं नादांतं नादविग्रहम्। खद्योतसदृशाकारं चंद्ररेखाकृतिं प्रभुम्॥२७॥
द्वादशांते भ्रुवोर्मध्ये तालुमध्ये गले क्रमात्। हृद्देशेऽवस्थितं देवं स्वानंदममृतं शिवम्॥२८॥
विद्युद्वलयसंकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम्। श्यामं रक्तं कलाकारं शक्तित्रयकृतासनम्॥२९॥
सदाशिवं स्मरेद्देवं तत्त्वत्रयसमन्वितम्। विद्यामूर्तिमयं देवं पूजयेच्च यथाक्रमात्॥३०॥
लोकपालांस्तथास्त्रेण पूर्वाद्यान्पूजयेत् पृथक्। चरुं च विधिनासाद्य शिवाय विनिवेदयेत्॥३१॥
अर्धं शिवाय दत्त्वैव शेषार्धेन तु होमयेत्। अघोरेणाथ शिष्याय दापयेद्भोक्तुमुत्तमम्॥३२॥
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा पुरुषं विधिना यजेत्। पंचगव्यं ततः प्राश्य ईशानेनाभिमंत्रितम्॥३३॥
वामदेवेन भस्मांगी भस्मनोद्धूलयेत्क्रमात्। कर्णयोश्च जपेद्देवीं गायत्रीं रुद्रदेवताम्॥३४॥
ससूत्रं सपिधानं च वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम्। तत्पूर्वं हेमरत्नौघैर्वासितं वै हिरण्मयम्॥३५॥
कलशान्विन्यसेत्पंच पंचभिर्ब्राह्मणैस्ततः। होमं च चरुणा कुर्याद्यथाविभवविस्तरम्॥३६॥
शिष्यं च वासयेद्भक्तं दक्षिणे मंडलस्य तु। दर्भशय्यासमारूढं शिवध्यानपरायणम्॥३७॥

करे। उनका निम्नलिखित रूप में स्मरण करे, वह प्रलय और उत्पत्ति से वर्जित (रहित) प्रधान सहित हैं। वह अन्न हैं, वह महत्तम से महत्तर और सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्मतर हैं। वह ब्रह्मचारी ईशान हैं। वह विरूपाक्ष हैं। उमा के पति हैं। वह हजार शिर वाले, हजार नेत्र वाले, हजार हाथ और पैर वाले हैं। वह अन्तिम नाद (ध्वनि) और भौतिक रूप में नाद हैं। उनका रूप जुगनू के समान है। वह चन्द्र की रेखा के समान है। वह बारह नाड़ियों में, भौंहों के मध्य में, तालु, गला और हृदय में यथाक्रम से स्थित हैं। वह स्वयं आनन्द अमृत हैं, शिव हैं। वह विद्युत वलय के समान और कोटि विद्युत की प्रभा के समान हैं। वह श्याम रंग के और लाल रंग के हैं। वह कला के रूप हैं। वह तीन शक्तियों के साथ बैठे हुए हैं। वह सदाशिव हैं। वह तीन तत्त्वों से युक्त हैं। ऐसे विद्यामूर्ति सदाशिव की यथाविधि पूजा करनी चाहिये।।२१-३०।। पूर्व से प्रारम्भ करके आठों दिशाओं की उनके अस्त्रों सहित पूजा करनी चाहिये।।३१।। शिव को अर्घ्य देकर शेष अर्घ्य से अघोर मन्त्र पढ़ते हुये होम करना चाहिये। शिष्य को उनके लिए उत्तम भोजन देना चाहिये।।३२।। तब उसे आचमन करके शुद्ध कर विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। ईशान कोण से अभिमन्त्रित पंचगव्य को रखाकर वामदेव के मन्त्रों का स्मरण करते हुए शरीर में भस्म लगावे तथा गुरु शिष्य के कान में गायत्री मन्त्र का ज्ञप करे जिसके देवता रुद्र हैं।।३३-३४।। तब सोने के पाँच कलश ढक्कन से ढके दो धागों से बँधे हुए पात्र को रखना चाहिये। सोने के टुकड़े और रत्नद्रव्य घड़ों में पहिले ही डाल देना चाहिये। तब उसके बाद पाँच ब्राह्मणों द्वारा अपनी सामर्थ्य के अनुसार धन से होम करना चाहिये। शिष्य को दक्षिण में कुशासन पर बैठाये। शिव के ध्यान में लीन हो मण्डल के दक्षिण भाग में शिष्य

अघोरेण यथान्यायमष्टोत्तरशतं पुनः।
घृतेन हुत्वा दुःस्वप्नं प्रभाते शोधयेन्मलम्॥३८॥

एवं चोपोषितं शिष्यं स्नातं भूषितविग्रहम्। नववस्त्रोत्तरीयं च सोष्णीषं कृतमंगलम्॥३९॥
दुकूलाद्येन वस्त्रेण नेत्रं बद्ध्वा प्रवेशयेत्। सुवर्णपुष्पसंमिश्रं यथाविभवविस्तरम्॥४०॥
ईशानेन च मंत्रेण कुर्यात्पुष्पांजलिं प्रभोः। प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा रुद्राध्यायेन वा पुनः॥४१॥
केवलं प्रणवेनाथ शिवध्यानपरायणः। ध्यात्वा तु देवदेवेशमीशाने संक्षिपेत्स्वयम्॥४२॥
यस्मिन्मंत्रे पतेत्पुष्पं तन्मंत्रस्तस्य सिध्यति। शिवांभसा तु संस्पृश्य अघोरेण च भस्मना॥४३॥
शिष्यमूर्धनि विन्यस्य गंधाद्यैःशिष्यमर्चयेत्। वारुणं परमं श्रेष्ठं द्वारं वै सर्ववर्णिनाम्॥४४॥
क्षत्रियाणां विशेषेण द्वारं वै पश्चिमं स्मृतम्। नेत्रावरणमुन्मुच्य मंडलं दर्शयेत्ततः॥४५॥
कुशासने तु संस्थाप्य दक्षिणामूर्तिमास्थितः। तत्त्वशुद्धिं ततः कुर्यात्पंचतत्त्वप्रकारतः॥४६॥
निवृत्त्या रुद्रपर्यंतमंडमंडोद्भवात्मज। प्रतिष्ठया तदूर्ध्वं च यावदव्यक्तगोचरम्॥४७॥
विश्वेश्वरांतं वै विद्या कलामात्रेण सुव्रत। तदूर्ध्वमार्गं संशोध्य शिवभक्त्या शिवं नयेत्॥४८॥
समर्चनाय तत्त्वस्य तस्य भोगेश्वरस्य वै। तत्त्वत्रयप्रभेदेन चतुर्भिरुत वा तथा॥४९॥
होमयेदंगमंत्रेण शांत्यतीतं सदाशिवम्। सद्यादिभिस्तु शांत्यंतं चतुर्भिः कलया पृथक्॥५०॥

भक्तों को बैठाना चाहिये। भक्त प्रातःकाल अघोर मन्त्र से १०८ बाद घी से होम करके बुरे सपनों (दुःस्वप्न) के दोष को नष्ट करे।।३५-३८।। उसके बाद स्नान किये हुए अलंकृत शरीर नये अधोवस्त्र (धोती) ऊपरी वस्त्र (कुर्ता) उत्तरीय (चादर), शिर पर पगड़ी या गमछा लपेटे भक्त की आँखों को रेशमी वस्त्र से ढककर भीतर लिवा लावे। भक्त अपनी सामर्थ्य के अनुसार स्वर्ण निर्मित फल और फूलों को ईशान मन्त्र पढ़ते हुए शिवजी को भेंट करे। भक्त तीन प्रदक्षिणा करके रुद्राध्याय को पढ़ते हुए केवल प्रणव का उच्चरण करते हुए शिव के ध्यान में लीन हो जाय। देवों के देवेश को ध्यान करके भक्त स्वयं ईशान पर फूलों को चढ़ा दे।।३९-४२।। ईशान पर जिस मन्त्र से पढ़ते हुए भक्त फूल चढ़ाता है उसको वह मन्त्र सिद्ध होता है। उसके बाद गुरु शिव के शिर पर भस्म लगाते हुए पवित्र जल से अघोर मन्त्र से भक्त को स्पर्श करता है। उसके बाद सुगन्ध द्रव्य से शिष्य की अर्चना करे। सब वर्णों (जातियों) के शिष्यों के प्रवेश के लिए पश्चिम का द्वार सबसे श्रेष्ठ होता है। यह क्षत्रिय के लिए विशेष रूप से श्रेष्ठ है। उसके बाद आँखों पर ढके कपड़े को हटाकर भक्त को मण्डल दिखावे।।४३-४५।। तब भक्त को कुशासन पर दक्षिण की ओर मुख करके बैठावे। उसके बाद पंच तत्त्व प्रकार से तत्त्व शुद्धि करना चाहिये।।४६।। हे ब्रह्मा के पुत्र! प्रतिष्ठा के द्वारा अव्यक्त जब तक न हो, हे शुभ पवित्र व्रत (सुव्रत)! विश्वेश्वर के अन्त तक कलाओं के द्वारा उसके ऊपरी भाग को संशोधित करके शिव भक्त गुरु शिष्य को शिव तत्त्व (शान्ति) की ओर ले जाये।।४७-४८।। तब उस भोगेश्वर की पूजा के लिए तीनों तत्त्वों अथवा चारों तत्त्व का शान्ति को शामिल करते हुए या छोड़ते हुए तत्त्व की पूजा के लिए ले जाए।।४९।। वह सदाशिव के

शांत्यतीतं मुनिश्रेष्ठ ईशानेनाथवा पुनः। प्रत्येकमष्टोत्तरशतं दिशाहोमं तु कारयेत्॥५१॥
ईशान्यां पंचमेनाथ प्रधानं परिगीयते। समिदाज्यचरूँल्लाजान्सर्षपांश्च यवांस्तिलान्॥५२॥
द्रव्याणि सप्त होतव्यं स्वाहांतंप्रणवादिकम्। तेषां पूर्णाहुतिर्विप्र ईशानेन विधीयते॥५३॥
सहंसेन यथान्यायं प्रणवाद्येन सुव्रत। अघोरेण च मंत्रेण प्रायश्चितं विधीयते॥५४॥
जयादिस्विष्टपर्यंतमग्निकार्यं क्रमेण तु। गुणसंख्याप्रकारेण प्रधानेन च योजयेत्॥५५॥
भूतानि ब्रह्मभिर्वापि मौनीबीजादिभिस्तथा। अथ प्रधानमात्रेण प्राणापानौ नियम्य च॥५६॥
षष्ठेन भेदयेदात्मप्रणवांतं कुलाकुलम्। अन्योऽन्यमुपसंहृत्य ब्रह्माणं केशवं हरम्॥५७॥
रुद्रे रुद्रं तमीशाने शिवे देवं महेश्वरम्। तस्मात्सृष्टिप्रकारेण भावयेद्भवनाशनम्॥५८॥
स्थाप्यात्मानममुं जीवं ताडनं द्वारदर्शनम्। दीपनं ग्रहणं चैव बंधनं पूजया सह॥५९॥
अमृतीकरणं चैव कारयेद्विधिपूर्वकम्। षष्ठांतं सद्यसंयुक्तं तृतीयेन समन्वितम्॥६०॥
फडंतं संहृतिः प्रोक्ता पंचभूतप्रकारतः। सद्याद्यषष्ठसहितं शिखांतं सफडंतकम्॥६१॥
ताडनं कथितं द्वारं तत्त्वानामपि योगिनः। प्रधानं संपुटीकृत्य तृतीयेन च दीपनम्॥६२॥

लिए जो कि शान्त से अतीत कला अंग मन्त्र के द्वारा और पहले के चार तत्त्वों शान्ति के साथ, कला से अलग से, सद्य मन्त्र के द्वारा होम करेगा। हे महामुनि! शान्त्यातीत कला ईशान मन्त्र के द्वारा होम करे।।५०-५१।। ईशान कोण में प्रधान पंचम स्वर से गाया गया है। इसके बाद समिधा घी, चरु, लाजा, सरसों, जौ, तिल ये सात चीजों द्वारा अग्नि में ओम् को उच्चारण करते हुए और अग्नि में स्वाहा शब्द बोलते हुए होम करे। हे ब्राह्मण! उनकी ईशान मन्त्र से पूर्णाहुति की जाय।।५२-५३।। हे सुव्रत! तब प्रायश्चित्त होम ओम् हंस से प्रारम्भ करके अघोर मन्त्र के द्वारा किया जाना चाहिये।।५४।। तब पवित्र अग्नि में 'जया' मे प्रारम्भ करते हुए और स्विष्ट अन्त में 'स्वाहा' से होम को पूर्ण करना चाहिए। प्रधान से तीन बार उनको जोड़ देना चाहिए।।५५।। ब्रह्मनिर्वापि और मौनीबीज आदि के द्वारा प्रधान से संयुक्त भूतों को प्रधान मन्त्र मात्र द्वारा प्राण और अपान वायु को वश में करके छठवें बीज से आत्मा और प्रणव के साथ कुलाकुल से अन्त करते हुए भेदन करे। ब्रह्मा केशव और रुद्र इनको आपस में मिला कर रुद्र में रक्खे। रुद्र में ईशान को और महेश्वर (ईशान) को शिव में रक्खे। तब सृष्टि के विनाशक सृष्टि प्रकार के क्रम में सृष्टि संहारक शिव का ध्यान करे।।५६-५८।। आत्मा (जीव) को स्थापित करके, तांडन, द्वार दर्शन, दीपन, ग्रहण और बन्धन, पूजा के साथ अमृतीकरण विधि को करे। तीसरें के सहित छठवाँ सद्य के साथ होगा। संहति प्रकार (संहार का क्रम) पंचभूत के क्रम में और छठवें के अन्त में होगा। 'फट' के साथ शिखा सहित अन्त होने वाले को तांडन कहा जाता है। द्वार दर्शन योगी के तत्त्वों का सूचक है। दीपन विधि तृतीय बीज द्वारा प्रधान का संपुष्टिकरण है। बन्धनम् विधि प्रथम पूर्ण बीज द्वारा प्रधान का संपुटीकरण अमृतीकरण अमृत से परिपूर्ण कर देना है। संहार के क्रम में कलाओं का संक्रमण शान्त्यातीत, शान्ति, विद्या, अमला, प्रतिष्ठा और निवृत्ति है। कलाओं का यह संक्रमण तत्त्व, वर्ण, कला और भुवन से है। यथाविधि संक्षिप्त मन्त्रों और पादों, छन्दों के पादों द्वारा प्रथम योनि बीज मंत्र से स्तुति की जानी चाहिये।

आद्येन संपुटीकृत्य प्रधानं ग्रहणं स्मृतम्। प्रधानं प्रथमेनैव संपुटीकृत्य पूर्ववत्॥६३॥
बंधनं परिपूर्णेन प्लावनं चामृतेन च। शांत्यतीता ततः शांतिर्विद्या नाम कलामला॥६४॥
प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च कलासंक्रमणं स्मृता। तत्त्ववर्णकलायुक्तं भुवनेन यथाक्रमम्॥६५॥
मंत्रैः पादैः स्तवं कुर्याद्विशोध्य च यथाविधि। आद्येन योनिबीजेन कल्पयित्वा च पूर्ववत्॥६६॥
पूजासंप्रोक्षणं विद्धि ताडनं हरणं तथा। संहतस्य च संयोगं विक्षेपं च यथाक्रमम्॥६७॥
अर्चना च तथा गर्भधारणं जननं पुनः। अधिकारो भवेद्भानोर्लयश्चैव विशेषतः॥६८॥
उत्तमाद्यं तथांत्येन योनिबीजेन सुव्रत। उद्धारे प्रोक्षणे चैव ताडने च महामुने॥६९॥
अघोरेण फडंतेन संसृतिश्च न संशयः। प्रतितत्त्वं क्रमो ह्येष योगमार्गेण सुव्रत॥७०॥
मुष्टिनां चैव यावच्च तावत्कालं नयेत्क्रमात्। विषुवेण तु योगेन निवृत्त्यादि शिवांतिकम्॥७१॥
एकत्र समतां याति नान्यथा तु पृथक्पृथक्। नासाग्रे द्वादशांतेन पृष्ठेन सह योगिनाम्॥७२॥
क्षंतव्यमिति विप्रेंद्र देवदेवस्य शासनम्। हेमराजतताम्राद्यैर्विधिना कल्पितेन च॥७३॥
सकूर्चेन सवस्त्रेण तंतुना वेष्टितेन च। तीर्थांबुपूरितेनैव रत्नगर्भेण सुव्रत॥७४॥
संहितामंत्रितेनैव रुद्राध्यायस्तुतेन च।
सेचयेच्च ततः शिष्यं शिवभक्तं च धार्मिकम्॥७५॥

बन्धनम् विधि प्रथमपूर्ण मंत्र द्वारा प्रधान का संपुटीकरण से अमृतीकरण अमृत के परिपूर्ण कर देना है। संहार के क्रम में कलाओं का वैभव से शान्त्यातीत शान्ति विद्या, अमला, प्रतिष्ठा और निवृत्ति है। कलाओं का यह संकमण तत्त्व, वर्ण, कला और मौन का अंग है। यथानिधि शंधि मंत्रों और पादों छन्दों के पादों द्वारा योनि बीज के द्वारा से पूर्ववत् विकसित करते हुये स्तुति की जानी चाहिये।।५९-६६।। पूजा और संप्रोक्षण ताडन, हरण, संहत का संयोग, विक्षेप, क्रम के अनुसार किया जाना चाहिये। अर्चना, गर्भधारण और जनन और अभिचार की विधियों का विधान है। तत्पश्चात् भानु ज्ञान और उसका लय विशेष रूप से पूर्ण करना चाहिये। हे सुव्रत! योनि बीज के साथ प्रथम मंत्र ईशान का वर्णन पहले किया गया है। हे महामुनि! निःसन्देह उद्धार, प्रोक्षण और ताडन, अघोर मंत्र से आरम्भ करके फट् से अंत से किया जाना चाहिये। हे सुव्रत! प्रत्येक तत्त्व के सम्बन्ध में सब शेष मार्ग में यही प्रक्रिया होती है।।६७-७०।। गुरु अपने भक्त को अपनी मुष्टि (मुट्ठी) तब तक उसकी मुष्टि से पकड़े हुये क्रिया करावे जब तक कि विषय तक पूरा न हो। यह निवृत्ति से विषय कलाओं तक की क्रिया शिव के पास एक ही स्थान पर हो। अन्यथा पृथक्-पृथक् स्थान पर होने से सम्पन्न नहीं होती है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! नाक के अग्रभाग में शिव के ऊपरी स्थान और पीठ पर योगी को दीक्षित भक्त को सुख-दुःख आदि द्वन्द को क्षमा करना चाहिये। ऐसी शिव की आज्ञा है।।७१-७२।। संपन्न धार्मिक शिव भक्त शिष्य के ऊपर गुरु सोना, चाँदी ताँबे तथा अन्य तीर्थजल से भरे रत्न पड़े हुये बर्तन वस्त्र से ढके तागे से बंधे कुश से जल छिड़के अभिसिंचित करे। वह पवित्र जल संहिता मंत्र और रुद्राध्याय की स्तुति से प्रेरित हो। हे सुव्रत! दीक्षित शिवभक्त शिव के गुरु और अग्नि के आगे (उपस्थिति में) दीक्षा ग्रहण करे। गुरु की आज्ञा के साथ विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण

सोऽपि शिष्यः शिवस्याग्रे गुरोरग्रे च सादरम्। वह्नेश्च दीक्षां कुर्वीत दीक्षितश्च तथाचरेत्॥७६॥

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा।
न त्वनभ्यर्च्य भुंजीयाद्भगवंतं सदाशिवम्॥७७॥

एवं दीक्षा प्रकर्तव्या पूजा चैव यथाक्रमम्। त्रिकालमेककालं वा पूजयेत्परमेश्वरम्॥७८॥

अग्निहोत्रं च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः। शिवलिंगार्चनस्यैते कलांशेनापि नो समाः॥७९॥

सदा यजति यज्ञेन सदा दानं प्रयच्छति। सदा च वायुभक्षश्च सकृद्योऽभ्यर्चयेच्छिवम्॥८०॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा। येऽर्चयंति महादेवं ते रुद्रा नात्र संशयः॥८१॥

नारुद्रस्तु स्पृशेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमर्चयेत्। नारुद्रः कीर्तयेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमाप्नुयात्॥८२॥

एवं संक्षेपतः प्रोक्तो ह्यधिकारिविधिक्रमः। शिवार्चनार्थं धर्मार्थकाममोक्षफलप्रदः॥८३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे दीक्षाविधिर्नामैक विंशतितमोऽध्यायः॥२१॥

करने के बाद भगवान सदाशिव की पूजा अर्चना के बिना चाहे प्राण चला जाये, या सिर कट जाय भक्त को भोजन न करना चाहिये। इस प्रकार दीक्षा विधि और पूजा करनी चाहिये। परमेश्वर पूजा प्रत्येक दिन तीन बार, दो बार या कम से कम एक बार करनी चाहिये।।७३-७८।। अभिषेक वैदिक मंत्रों का पाठ और बहुत धन की दान-दक्षिणा ये सब शिवलिंग की पूजा अर्चना के आधे भाग के बराबर नहीं हैं।।७९।। यदि कोई एक बार भी शिव की पूजा करता है वह उस व्यक्ति के बराबर है जो कि सदा यज्ञ करता है। सदा दान देता है। सदा शुभ यज्ञ करता है।।८०।। वे जो महेश्वर के एक बार, दो बार, तीन बार या निरन्तर से महादेव की पूजा करते हैं वे रुद्र हैं। इसमें सन्देह नहीं।।८१।। रुद्र न तो अरुद्र को छुये, न उसकी पूजा करे और न तो उसका गुणगान करे। न अरुद्र के सम्पर्क में रहे।।८२।।

इस प्रकार शिव की पूजा के लिये जो व्यक्ति योग्य है और संबंधित दीक्षा विधि को संक्षेप में मैंने आपको बताया। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को फलदायक है।।८३।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में दीक्षाविधि नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त॥२१॥

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

तत्त्वानाम् समर्पणम्

शैलादिरुवाच

स्नानयागादिकर्माणि कृत्वा वै भास्करस्य च। शिवस्नानं ततः कुर्याद्भस्मस्नानं शिवार्चनम्॥१॥
षष्ठेन मृदमादाय भक्त्या भूमौ न्यसेन्मृदम्। द्वितीयेन तथाभ्युक्ष्य तृतीयेन च शोधयेत्॥२॥
चतुर्थेनैव विभजेन्मलमेकेन शोधयेत्। स्नात्वा षष्ठेन तच्छेषां मृदं हस्तगतां पुनः॥३॥
त्रिधा विभज्य सर्वं च चतुर्भिर्मध्यमं पुनः।
षष्ठेन सप्तवाराणि वामं मूलेन चालभेत्। दशवारं च षष्ठेन दिशो बंधः प्रकीर्तितः॥४॥
वामेन तीर्थं सव्येन शरीरमनुलिप्य च। स्नात्वा सर्वैः स्मरन् भानुमभिषेकं समाचरेत्॥५॥
शृंगेण पर्णपुटकैः पालाशेन दलेन वा। सौरै रेभिश्च विविधैः सर्वसिद्धिकरैः शुभैः॥६॥
सौराणि च प्रवक्ष्यामि बाष्कलाद्यानि सुव्रत। अंगानि सर्वदेवेषु सारभूतानि सर्वतः॥७॥
ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म।
नवाक्षरमयं मंत्रं बाष्कलं परिकीर्तितम्।
न क्षरतीति लोकानि ऋतमक्षरमुच्यते। सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोंतकम्॥८॥

बाईसवाँ अध्याय

तत्त्वों का समर्पण

शैलादि बोले

स्नान, यज्ञ आदि कर्मों को करके तथा सूर्य के अन्य पवित्र धर्मिक कृत्य को करके शिव स्नान और भस्म स्नान तथा शिव की पूजा करे।।१।। छठवाँ बीज मन्त्र पढ़ते हुए कुछ मिट्टी लें और उसको भक्तिपूर्वक पृथ्वी पर रख दे।।२।। द्वितीय बीज मन्त्र द्वारा उस मिट्टी पर जल छिड़के और तीसरे बीज मन्त्र को पढ़ते हुए उससे इसको पवित्र करे।।३।। चौथे बीज मन्त्र को पढ़ते हुए उस मिट्टी को दो भागों में बाँटे। एक भाग का मल दूर करे। उसके बाद वह स्नान करे। छठवें बीज मन्त्र को पढ़ते हुए वह मिट्टी के बचे हुए भाग को हाथ में ले ले। उसको तीन भागों में बाँटकर बीच वाले भाग मिट्टी को चौथा बीज मन्त्र पढ़ते हुए मिट्टी को शरीर के मध्य भाग के ऊपर सात बार लगावे। मूल मन्त्र पढ़ते हुए बाँए बगल को छुए। षष्ठ बीज मन्त्र को दस बार पढ़ते हुए दिशाबन्ध करे।।४।। मिट्टी को पवित्र जल से गीला करके शरीर के बाँए या दाहिने भाग पर चुपड़े। इस प्रकार करने के बाद सब बीज मन्त्रों को पढ़ते हुए सूर्य का स्मरण करते हुए स्नान करे। उसके बाद वह सींग से पत्तों के दोनों से या पलाश (छियूल) के दलों से शिव सम्बन्धी मन्त्रों को पूरा करे। वे मन्त्र सिद्धि देने वाले हैं।।५-६।। हे सुव्रत! मैं सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों को बताता हूँ। वे भास्कर और अन्य हैं जो कि सब वेदांगों से बने हैं। ॐ भूः

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः॥९॥
मूलमंत्रमिदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः। नवाक्षरेण दीप्तास्यं मूलमंत्रेण भास्करम्॥१०॥
पूजयेदंगमंत्राणि कथयामि यथाक्रमम्। वेदादिभिः प्रभूताद्यं प्रणवेन च मध्यमम्॥११॥
ॐ भूः ब्रह्म हृदयाय ॐ भुवः विष्णुशिरसे ॐ स्वः रुद्रशिखायै
ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालामालिनीशिखायै ॐ महः महेश्वराय कवचाय
ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यः ॐ तपः तापकाय अस्त्राय फट्।
मंत्राणि कथितान्येवं सौराणि विविधानि च। एतैः शृंगादिभिः पात्रैः स्वात्मानमभिषेचयेत्॥१२॥
ताम्रकुंभेन वा विप्रः क्षत्रियो वैश्य एव च। सकुशेन सपुष्पेण मंत्रैः सर्वैः समाहितः॥१३॥
रक्तवस्त्रपरीधानः स्वाचामेद्विधिपूर्वकम्। सूर्यश्चेति दिवा रात्रौ चाग्निश्चेति द्विजोत्तमः॥१४॥
आपः पुनंतु मध्याह्ने मंत्राचमनमुच्यते। षष्ठेन शुद्धिं कृत्वैव जपेदाद्यमनुत्तमम्॥१५॥
वौषडंतं तथा मूलं नवाक्षरमनुत्तमम्। करशाखां तथांगुष्ठमध्यमानामिकां न्यसेत्॥१६॥
तले च तर्जन्यंगुष्ठं मुष्टिभागानि विन्यसेत्। नवाक्षरमयं देहं कृत्वांगैरपि पावितम्॥१७॥
सूर्योऽहमिति संचिंत्य मंत्रैरेतैर्यथाक्रमम्। वामहस्तगतैरद्भिर्गंधसिद्धार्थकान्वितैः॥१८॥
कुशपुंजेन चाभ्युक्ष्य मूलाग्रैरष्टधा स्थितैः। आपो हिष्ठादिभिश्चैव शेषमाघ्राय वै जलम्॥१९॥

ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म। इस नौ अक्षरमय को बाष्कल कहते हैं। ऋत् शब्द का अर्थ अक्षर है। अक्षर का अर्थ नष्ट न होने वाला (अविनाशी)। ॐ आदि में और अन्त में नमः लगता है। महान् आत्मा सूर्य का मूल मन्त्र इस प्रकार है ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। हम सूर्य के उस श्रेष्ठ तेज का ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धि को शुद्ध करे। भक्त नौ मूल मन्त्रों के द्वारा दिव्य मुख वाले सूर्य की पूजा करे। मैं क्रम से कहता हूँ। ॐ लगाकर इनको पढ़ा जाता है। ॐ भूः ब्रह्म हृदयाय, ॐ भुवः विष्णुशिरसे ॐ स्वः रुद्रशिखायै ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वालामालिनी शिखायै ॐ महः महेश्वराय कवचाय ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यः ॐ तपः तापकाय अस्त्राय फट्। सूर्य सम्बन्धी इन विविध मन्त्रों को मैंने कहा। इनको श्रृंग आदि पात्रों से इन मन्त्रों द्वारा अपने ऊपर जल छिड़के (अभिषेचन करे)।।७-१२।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को ताँबे के पात्र में रक्खे जल—जिसमें फूल पड़े हों—इन मन्त्रों को पढ़ते हुए कुश से अपने शरीर पर जल छिड़के।।१३।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! भक्त तब लाल वस्त्र धारण करके आचमन करे। दिन में 'सूर्यश्च' और रात में 'अग्निश्च' और दोपहर में 'आपः पुनंतु' मन्त्रों को पढ़ते हुए आचमन करें। इसको मन्त्र आचमन कहा जाता है। छठवें बीज मन्त्र से शुद्धि करके प्रथम बीज मन्त्र पढ़े।।१४-१५।। तब उत्तम मूल मन्त्रों को वौषट् से अन्त करके पढ़े। तब वह अँगूठा सहित अँगुलियों से अंगन्यास करें।।१६।। तब वह हथेली, तर्जनी, अँगूठा, करतल और करपृष्ठ का न्यास करे। उसके बाद नवाक्षर मन्त्रों और अंग मन्त्रों से देह को पवित्र करे। 'मैं सूर्य हूँ' ऐसा विचार करते हुए तब वह गंध, चन्दन और सफेद सरसों

वामनासापुटेनैव देहे संभावयेच्छिवम्। अर्घ्यमादाय देहस्थं सव्यनासापुटेन च॥२०॥
कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिलागतम्। तर्पयेत्सर्वदेवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः॥२१॥
भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च विधिनार्घ्यं च दापयेत्।
व्यापिनीं च परां ज्योत्स्नां संध्यां सम्यगुपासयेत्॥२२॥
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने अर्घ्यं चैव निवेदयेत्। रक्तचंदनतोयेन हस्तमात्रेण मंडलम्॥२३॥
सुवृत्तं कल्पयेद्भूमौ प्रार्थयेत द्विजोत्तमाः। प्राङ्मुखस्ताम्रपात्रं च सगंधं प्रस्थपूरितम्॥२४॥
पूरयेद्गंधतोयेन रक्तचंदनकेन च। रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः॥२५॥
दूर्वापामार्गगव्येन केवलेन घृतेन च।
आपूर्य मूलमंत्रेण नवाक्षरमयेन च। जानुभ्यां धरणीं गत्वा देवदेवं नमस्य च॥२६॥
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमर्घ्यं मूलेन दापयेत्। अश्वमेधायुतं कृत्वा यत्फलं परिकीर्तितम्॥२७॥
तत्फलं लभते दत्त्वा सौरार्घ्यं सर्वसंमतम्। दत्त्वैवार्घ्यं यजेद्भक्त्या देवदेवं त्रियंबकम्॥२८॥
अथवा भास्करं चेष्ट्वा आग्नेयं स्नानमाचरेत्। पूर्ववद्वै शिवस्नानं मंत्रमात्रेण भेदितम्॥२९॥
दंतधावनपूर्वं च स्नानं सौरं च शांकरम्। विघ्नेशं वरुणं चैव गुरुं तीर्थे समर्चयेत्॥३०॥
बद्ध्वा पद्मासनं तीर्थे तथा तीर्थं समर्चयेत्। तीर्थं संगृह्य विधिना पूजास्थानं प्रविश्य च॥३१॥
मार्गेणार्घ्यपवित्रेण तदाक्रम्य च पादुकम्। पूर्ववत्करविन्यासं देहविन्यासमाचरेत्॥३२॥

पड़े हुए जल को अपने बायें हाथ की हथेली में भरकर कुश के बंडल से यथाक्रम मंत्र पढ़ते हुए अपने शरीर पर जल छिड़कें 'आपो हिष्टा' मंत्र को आठ बार पढ़ते हुए वैसा करे। बचे हुए जल को नाक के बायें छेद से सूंघे। तब वह ऐसी धारणा करे कि शिव बाहर शिला पर काले रंग में विराजमान हैं। उसके बाद देवों और ऋषिओं का तर्पण करे।।१७-२१।। वह मण्डल में लाल चन्दन मिले हुए जल से अँजुली में भरकर सवेरे, दोपहर और सायंकाल अर्घ्य दे। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! वह पृथ्वी पर पूर्व की ओर एक गोल वृत्त खींचे और पूर्व की ओर मुख करके प्रार्थना करे। एक ताँबे के बर्तन में एक प्रस्थ सुगंधित जल, लाल चन्दन और सुगन्ध से लाल फूलों औग तिलों, कुश और अक्षत से मिलाकर जल से भर दे।।२२।। इसमें गोमूत्र, दूब, अपामार्ग या केवल घी मिला दे। भक्त घुटनों के बल जमीन पर बैठ कर देवताओं को नमस्कार करे। उस वक्त अपने सिर पर रख कर देवताओं को नमस्कार करे। उस पात्र को अपने सिर पर रख कर मूल मन्त्र को पढ़ते हुए अर्घ्य दे। उस भक्त को दश अश्वमेघ यज्ञ करके प्राप्त होने वाला जो फल है उसके बराबर फल प्राप्त होगा। अर्घ्य देने के बाद देवताओं के देवता त्रिनेत्रधारी शिव की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए।।२३-२८।। सूर्य की पूजा करने के बाद अपने शरीर पर भस्म लगानी चाहिए। पहले कहे हुए मन्त्र से भिन्न मन्त्र द्वारा पूर्ववत् स्नान करना चाहिए।।२९।। दातून करके सूर्य और शंकर स्नान करने के बाद भक्त गणेश वरुण और गुरु की पवित्र जल में पूजा करे। वह तीर्थ के किनारे पद्मासन में बैठे और तीर्थ की पूजा करे। वह एक पात्र में पवित्र जल ले ले और पूजा स्थल की ओर प्रवेश करे। वह पूजा स्थल में जाकर अपने पैर में खड़ाऊँ पहनकर अर्घ्य के जल से मार्ग को पवित्र करे।

अर्घ्यस्य सादनं चैव समासात्परिकीर्तितम्। बद्ध्वा पद्मासनं योगी प्राणायामं समभ्यसेत्॥३३॥
रक्तपुष्पाणि संगृह्य कमलाद्यानि भावयेत्। आत्मनो दक्षिणे स्थाप्य जलभांडं च वामतः॥३४॥
ताम्रपात्राणि सौराणि सर्वकामार्थसिद्धये। अर्घ्यपात्रं समादाय प्रक्षाल्य च यथाविधि॥३५॥
पूर्वोक्तेनांबुना सार्धं जलभांडे तथैव च। अस्त्रोदकेन चैवार्घ्यमर्घ्यद्रव्यसमन्वितम्॥३६॥
संहितामंत्रितं कृत्वा संपूज्य प्रथमेन च। तुरीयेणावगुंठ्यैव स्थापयेदात्मनोपरि॥३७॥
पाद्यमाचमनीयं च गंधपुष्पसमन्वितम्।
अंभसा शोधिते पात्रे स्थापयेत्पूर्ववत्पृथक्। संहितां चैव विन्यस्य कवचेनावगुंठ्य च॥३८॥
अर्घ्यांबुना समभ्युक्ष्य द्रव्याणि च विशेषतः। आदित्यं च जपेद्देवं सर्वदेवनमस्कृतम्॥३९॥
आदित्यो वै तेज ऊर्जो बलं यशो विवर्धति। इत्यादिना नमस्कृत्य कल्पयेदासनं प्रभोः॥४०॥
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्। आग्नेय्यादिषु कोणेषु मध्यमांतं हृदा न्यसेत्॥४१॥
अंगं प्रविन्यसेच्चैव बीजमंकुरमेव च। नालं सुषिरसंयुक्तं सूत्रकंटकसंयुतम्॥४२॥
दलं दलाग्रं सुश्वेतं हेमाभं रक्तमेव च। कर्णिकाकेसरोपेतं दीपाद्यैः शक्तिभिर्वृतम्॥४३॥
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला क्रमात्। अघोरा विकृता चैव दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः॥४४॥

वह पूर्ववत् करन्यास और अंगन्यास करे।।३०-३२।। इस प्रकार अर्घ्य की सामग्री और विधि संक्षेप में कही है। इसके बाद योगी पद्मासन में बैठे और प्राणायाम करे।।३३।। वह कमल तथा अन्य लाल फूलों को एकत्र करे और अपने दाहिनी ओर रखे। वह जल पात्र को अपने बायीं ओर रखे। ताँबे के पात्र सूर्य की पूजा के लिए पवित्र माने जाते हैं। वे सब कामनाओं की सिद्धिदायक है, इस अर्घ्य के पात्र को लेकर विधिपूर्वक माँज-धोकर रखना चाहिये। उसे बड़े बर्तन में जल को भर ले। अर्घ्य जल में अर्घ्य के लिए अपेक्षित सामग्री को डाल दे। अष्ट मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके रखे जल के साथ इस अर्घ्य पात्र को रख लेना चाहिये। यह संहिता मन्त्र से मन्त्रित करके और प्रथम बीज मन्त्र से युक्त हो। चतुर्थ बीज मन्त्र को पढ़ते हुए भक्त पात्र के मुख को ढक दे और वहाँ रख दे।।३४-३७।। जल से शोभित पात्र में पूर्ववत् पाद्य और आचमनीय (पैर धोने और आचमन करने के लिए) जल से शुद्ध किये हुए अलग-अलग पात्रों में रख देना चाहिए। पात्र और आचमनीय जल में सुगन्धित पुष्प पड़े हों। संहिता मन्त्रों से न्यस करके और कवच मन्त्र से इसको सम्पुट करके अर्घ्य जल के साथ पूजा की सामग्री को जल छिड़ककर सब देवताओं द्वारा नमस्कृत सूर्य देव का जप करना चाहिये।।३८-३९।। सूर्य देवता तेज, ऊर्जा, बल और यश को बढ़ाते हैं। इस मन्त्र को दोहराते हुए सूर्य की ओर उनको नमस्कार करके एकासन दे।।४०।। सूर्य को दिया गया आसन उत्तम हो, स्वच्छ हो, सुदृढ़ हो और सुखदायक तथा आराध्य देव के लिए सर्वथा उपयुक्त हो। अग्नि आदि कोणों में बीच की उँगली से हृदयन्यास करे और करन्यास, अंगन्यास करे।।४१।। कमल के भागों को (बीज अंकुर नाल आदि) काँटों सहित सूत्र सुषिर जो रंग में बहुत सफेद, सुनहरे, या लाल हो कर्णिका के केसर से युक्त हो। वह दीप्त हो और शक्ति से युक्त, दीपा और अन्य शक्तियों से घिरा हुआ हो।।४२-४३।। दीप्ता, सुषमा, जया, भद्रा, विभूति विमला, अघोरा और विकृता ये आठ शक्तियाँ

भास्कराभिमुखाः सर्वाः कृतांजलिपुटाः शुभाः।
अथवा पद्महस्ता वा सर्वाभरणभूषिताः॥४५॥
मध्यतो वरदां देवीं स्थापयेत्सर्वतोमुखीम्। आवाहयेत्ततो देवीं भास्करं परमेश्वरम्॥४६॥
नवाक्षरेण मंत्रेण बाष्कलोक्तेन भास्करम्। आवाहने च सान्निध्यमनेनैव विधीयते॥४७॥
मुद्रा च पद्ममुद्राख्या भास्करस्य महात्मनः। मूलेनार्घ्यं ततो दद्यात्पाद्यमाचमनं पृथक्॥४८॥
पुनरर्घ्यप्रदानेन बाष्कलेन यथाविधि। रक्तपद्मानि पुष्पाणि रक्तचंदनमेव च॥४९॥
दीपधूपादिनैवेद्यं मुखवासादिरेव च। तांबूलवर्तिदीपाद्यं बाष्कलेन विधीयते॥५०॥
आग्नेय्यां च तथैशान्यां नैर्ऋत्यं वायुगोचरे। पूर्वस्यां पश्चिमे चैव पट्प्रकारं विधीयते॥५१॥
नेत्रांतं विधिनाऽभ्यर्च्य प्रणवादिनमोंतकम्। कर्णिकायां प्रविन्यस्य रूपकध्यानमचारेत्॥५२॥
सर्वे विद्युत्प्रभाः शांता रौद्रमस्त्रं प्रकीर्तितम्। दंष्ट्राकरालवदनं ह्यष्टमूर्तिं भयंकरम्॥५३॥
वरदं दक्षिणं हस्तं वामं पद्मविभूषितम्। सर्वाभरणसंपन्ना रक्तस्त्रगनुलेपनाः॥५४॥
रक्तांबरधराः सर्वा मूर्तयस्तस्य संस्थिताः। समंडलो महादेवः सिंदूरारुणविग्रहः॥५५॥
पद्महस्तोऽमृतास्यश्च द्विहस्तनयनः प्रभुः। रक्ताभरणसंयुक्तो रक्तस्त्रगनुलेपनः॥५६॥
इत्थंरूपधरं ध्यायेद्भास्करं भुवनेश्वरम्। पद्मबाह्ये शुभं चात्र मंडलेषु समंततः॥५७॥

होती हैं।।४४।। हाथ जोड़े हुए ये सब शक्तियाँ सूर्य की ओर मुख किये हों अथवा हाथ में कमल लिए सब आभूषणों से विभूषित हों।।४५।। वर देने वाली सर्वतोमुखी देवी को मध्य में स्थापित करे। उसके बाद परमेश्वर भास्कर को तथा देवी का आवाहन करे।।४६।। नवाक्षर मन्त्र (बाष्कल के रूप में कथित) को दोहराते हुए सूर्य का आह्वान करे। केवल इसी मन्त्र के द्वारा आह्वान और सान्निध्य होता है।।४७।। महान् आत्मा शिव की मुद्रा पद्म मुद्रा कहलाती है। उसके बाद अर्घ्य, पाद्य और आचमन मूल मन्त्र को पढ़ते हुए देना चाहिये।।४८।। भास्कर मन्त्र को पढ़ते हुए पुनः अर्घ्य यथाविधि द्वारा देना चाहिये। लाल फूलों और लाल चन्दन भी भेंट किया जाय। दीप, धूप, नैवेद्य, मुखवास, ताम्बूल, बत्ती का दीपक आदि वाष्कल (भास्कर) मन्त्र को पढ़ते हुए दी जाय। अग्नि कोण, ईशान कोण, नैऋत्य, वायव्य कोण पूर्व और पश्चिम ये छः ओर धूप दीप आदि किया जाय।।४९-५०।। प्रणव (ओम्) लगाकर और नमः अन्त में बोलकर मन्त्रों को पढ़ते हुए अंगन्यास और करन्यास करके और कर्णिका में (आँख, पुतली में) सूर्य के रूप का ध्यान करे।।५१-५२।। सब मूर्तियाँ विद्युत की प्रभा वाली और शान्त हैं। सब मूर्ति भयंकर हैं यह टेढ़े दाँतों वाली अतः भयंकर मुख वाली हैं।।५३।। दाहिना हाथ वरदान देने का प्रतीक दिखलाता है। बाएँ हाथ कमल से सुशोभित हैं। सब मूर्तियाँ सब प्रकार के आभूषणों से सजी हुई लाल मालाएँ और लाल वस्त्र पहने हुए और अपने शरीर पर लाल चन्दन लपेटे हुए हैं। इस प्रकार रूप धारण किये हुए भुवनेश्वर सूर्य का ध्यान करना चाहिये। महादेव अपने अनुचरों की मण्डली के साथ हैं। उनका शरीर सिन्दूर के समान रंग में है। वह अपने हाथ में कमल लिए हुये हैं। उनके मुख से अमृत निकल रहा है। उनके दो हाथ और दो नेत्र हैं। वे लाल आभूषण को धारण किये हैं। वे लाल मालाएँ पहने हैं

सोममंगारकं चैव बुधं बुद्धिमतांवरम्। बृहस्पतिं महाबुद्धिं रुद्रपुत्रं च भार्गवम्॥५८॥
शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं प्रकीर्तितम्। सर्वे द्विनेत्रा द्विभुजा राहुश्चोर्ध्वशरीरधृक्॥५९॥
विवृत्तास्योंजलिं कृत्वा भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः। शनैश्चरश्च दंष्ट्रास्यो वरदाभयहस्तधृक्॥६०॥
स्वैःस्वैर्भावैः स्वनाम्ना च प्रणवादिनमोंतकम्। पूजनीयाः प्रयत्नेन धर्मकामार्थसिद्धये॥६१॥
सप्तसप्तगणांश्चैव बहिर्देवस्य पूजयेत्। ऋषयो देवगंधर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः॥६२॥
ग्रामण्यो यातुधानाश्च तथा यक्षाश्च मुख्यतः।
सप्ताश्वान् पूजयेदग्रे सप्तच्छंदोमयान् विभोः॥६३॥
वालखिल्यगणं चैव निर्माल्यग्रहणं विभोः। पूजयेदासनं मूर्तेर्देवतामपि पूजयेत्॥६४॥
अर्घ्यं च दापयेत्तेषां पृथगेव विधानतः। आवाहने च पूजांते तेषामुद्वासने तथा॥६५॥
सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा। बाष्कलं च जपेदग्रे दशांशेन च योजयेत्॥६६॥
कुंडं च पश्चिमे कुर्याद्वर्तुलं चैव मेखलम्। चतुरंगुलमानेन चोत्सेधाद्विस्तरादपि॥६७॥
एकहस्तप्रमाणेन नित्ये नैमित्तिके तथा। कृत्वाश्वत्थदलाकारं नाभिं कुंडे दशांगुलम्॥६८॥
तदर्धेन पुरस्तात्तु गजोष्ठसदृशं स्मृतम्। गलमेकांगुलं चैव शेषं द्विगुणविस्तरम्॥६९॥
तत्प्रमाणेन कुंडस्य त्यक्त्वा कुर्वीत मेखलाम्। यत्नेन साधयित्वैव पश्चाद्धोमं च कारयेत्॥७०॥

और लाल चन्दन लगाए हैं।।५४-५६।। लोकों के स्वामी सूर्य का ध्यान इस रूप में करें। मण्डल में कमल के बाहर की ओर वह चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु के साथ विराजमान हैं। इन सबके दो नेत्र और दो हाथ हैं किन्तु राहु केवल शरीर के ऊपरी भाग धड़ को धारण किए है। उसका चेहरा गोला है। मुँह खुला हुआ है। अँजुली बाँधे हुये है। शनिश्चर दृष्टि वाले के मुख में वक्र दन्तावली है। टेढ़ी भृकुटि और कुटिल दृष्टि वाले शनिदेव के हाथ भय से मुक्त और वरदान देने का संकेत करते हैं। धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि के लिए इनके स्वभाव उनके नामों के अनुसार ओम् आदि में नमः अन्त में लगाकर यत्नपूर्वक उनकी पूजा की जानी चाहिये। उनकी पूजा उनके स्वभाव के अनुसार की जाय।।५७-६१।। भक्त को मण्डल के बाहर गणों के सात समूह (गणों), मुनियों, देवताओं, गन्धर्वों, सर्पों, अप्सराओं, ग्रामणियों, यातुधानों और प्रधान यक्षों की पूजा करनी चाहिए। भक्त को वेद के सात छन्दों द्वारा सूर्य के सात घोड़ों की पूजा करनी चाहिए।।६२-६३।। बालखिल्य गण की पूजा की जाय। तब विभु का निर्माल्य ग्रहण करे। उसके बाद मूर्ति के आसन को और देवता की भी पूजा करे।।६४।। देवताओं के आह्वान, पूजा के अन्त में धार्मिक कृत्य के विसर्जन के समय विधान के अनुसार उनको अर्घ्य दिया जाना चाहिए।।६५।। तत्पश्चात् भास्कर मन्त्रों का हजार बार जप करे या पाँच सौ बार या एक सौ आठ बार। उसके बाद जप की संख्या का दसवाँ भाग से हवन करे।।६६।। गोलाकार हवन कुंड पश्चिम दिशा में खोदना चाहिए। उसके चारों ओर मेखला भी हो। कुंड की लम्बाई और चौड़ाई चार अंगुल हो।।६७।। नित्य और नैमित्तिक कृत्यों में कुंड का बाहरी ढाई मीटर एक हाथ विस्तार में हो। कुंड में पीपल के पत्ते के आकार की दश अंगुल की नाभि करे।।६८।। गला की लम्बाई पाँच अंगुल और चौड़ाई एक अंगुल हो।

षष्ठेनोल्लेखनं कुर्यात्प्रोक्षयेद्वारिणा पुनः। आसनं कल्पयेन्मध्ये प्रथमेन समाहितः॥७१॥
प्रभावतीं ततः शक्तिमाद्येनैव तु विन्यसेत्। बाष्कलेनैव संपूज्य गंधपुष्पादिभिः क्रमात्॥७२॥
बाष्कलेनैव मंत्रेण क्रियां प्रति यजेत्पृथक्। मूलमंत्रेण विधिना पश्चात्पूर्णाहुतिर्भवेत्॥७३॥
क्रमादेवं विधानेन सूर्याग्निर्जनितो भवेत्। पूर्वोक्तेन विधानेन प्रागुक्तं कमलं न्यसेत्॥७४॥
मुखोपरि समभ्यर्च्य पूर्ववद्भास्करं प्रभुम्। दशैवाहुतयो देया बाष्कलेन महामुने॥७५॥
अंगानां च तथैकैकं संहितााभिः पृथक्पुनः। जयादिस्विष्टपर्यतमिध्मप्रक्षेपमेव च॥७६॥
सामान्यं सर्वमार्गेषु पारंपर्यक्रमेण च। निवेद्य देवदेवाय भास्करायामितात्मने॥७७॥
पूजाहोमादिकं सर्वं दत्त्वार्ध्यं च प्रदक्षिणम्। अंगैः संपूज्य संक्षिप्य हृद्युद्वास्य नमस्य च॥७८॥
शिवपूजां ततः कुर्याद्धर्मकामार्थसिद्धये। एवं संक्षेपतः प्रोक्तं यजनं भास्करस्य च॥७९॥
यः सकृद्वा यजेद्देवं देवदेवं जगद्गुरुम्। भास्करं परमात्मानं स याति परमां गतिम्॥८०॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वपापविवर्जितः। सर्वैश्वर्यसमोपेतस्तेजसाप्रतिमश्च सः॥८१॥
पुत्रपौत्रादिमित्रैश्च बांधवैश्च समंततः।
भुक्त्वैव विपुलान् भोगानिहैव धनधान्यवान्॥८२॥

यह हाथी के ओठ के आकार का हो। शेष भाग चौड़ाई में दो अंगुल हो।।६९।। कुंड की मेखला (बाहरी घेरा) दो अंगुल का हाशिया (मार्जिन) छोड़कर बनाया जाय। यह सब यत्नपूर्वक पूरा करके उसके बाद हवन करना चाहिये।।७०।। भक्त को उल्लेख कृत्य पूरा करना चाहिये। छठवाँ बीज मन्त्र पढ़ते हुए इसको जल से छिड़कना (सीचना) चाहिये। एकाग्रचित्त होकर प्रथम बीज मन्त्र पढ़ते हुए मध्य में आसन देना चाहिये।।७१-७२।। उसके बाद प्रथम बीज मन्त्र को पढ़ते हुऐ प्रभावती नामक शक्ति का न्यास करना चाहिये। उसके बाद बाष्कल (भास्कर) मन्त्र को पढ़ते हुए गंध, पुष्प आदि से पूजा करके फिर भास्कर मन्त्र को पढ़ते हुए क्रिया यज्ञ को पूरा करे। उसके बाद केवल मूल मन्त्र से पूर्णाहुति करे।।७३-७४।। इस प्रकार विधि विधान के क्रम से होमादि करने के बाद सूर्याग्नि उत्पादित हो। भक्त न्यास करके पूर्वोक्त (पहले कही गई) विधान से पूर्वोक्त विधि से कमल को स्थापित करे। मुख के ऊपर सूर्य की पूर्ववत् पूजा करने के बाद भास्कर मन्त्रों से दस आहुति दी जाय।।७५-७६।। सब होमों में 'जया' होम से प्रारम्भ करते हुए तथा 'स्विष्ट' होम पर्यन्त प्रत्येक के लिए अलग अंगन्यास संहिता मन्त्रों द्वारा करे। पूजा करने वालों के सब सम्प्रदायों 'मार्गों' के लिए परम्परा के रूप में अर्घ्य देना सामान्य नियम है। अमित आत्मा देवों के स्वामी भगवान सूर्य को अन्त में नैवेद्य (भोजन) देना चाहिए। पूज, होम, अर्घ्य, अंगों की पूजा, विसर्जन और नमस्कार ये सब करने के बाद धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिए शिव की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार सूर्य देव की पूजा विधि संक्षेप में कही गयी है।।७७-७९।। वह जो कि एक बार भी पूजा करता है वह परमगति (मुक्ति) को प्राप्त करता है।।८०।। वह पापों से मुक्त हो जाता है, सब पापों से रहित होता है, वह सब ऐश्वर्य से युक्त होता है, वह अनुपम तेजस्वी होता है। वह इस संसार में अपने पुत्रों, पौत्रों और प्रपौत्रों और बान्धवों सहित विपुल भोगों को भोग करता है। वह धनवान, धान्यवान होता है।।८१-८२।। यान

यानवाहनसंपन्नो भूषणैर्विविधैरपि। कालं गतोपि सूर्येण मोदते कालमक्षयम्॥८३॥
पुनस्तस्मादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः। वेदवेदांगसम्पन्नो ब्राह्मणो वात्र जायते॥८४॥
पुनः प्राग्वासनायोगाद्धार्मिको वेदपारगः। सूर्यमेव समभ्यर्च्य सूर्यसायुज्यमाप्नुयात्॥८५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे द्वाविंशतितमोऽध्याय॥२२॥

और वाहन से और अनेक प्रकार के आभूषणों से युक्त होगा। वह मरने पर सूर्य के साथ अक्षय काल तक वास करेगा।।८३।। फिर वह इस लोक में जन्म लेकर धर्मिक राजा होगा। वह वेदों और वेदांगों से सम्पन्न ब्राह्मण का जन्म पायेगा। वह अपने पूर्व जन्म के वासना के योग से धार्मिक और वेदों का महान् विद्वान होगा। सूर्य देव की पूजा करके वह सूर्य का सायुज्य प्राप्त करेगा।।८४-८५।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में तत्त्वों का समर्पण नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त॥२२॥

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

शिवस्य पूजाविधिः

शैलादिरुवाच

अथ ते संप्रवक्ष्यामि शिवार्चनमनुत्तमम्। त्रिसंध्यमर्चयेदीशमग्निकार्यं च शक्तितः॥१॥
शिवस्नानं पुरा कृत्वा तत्त्वशुद्धिं च पूर्ववत्। पुष्पहस्तः प्रविश्याथ पूजास्थानं समाहितः॥२॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा दाहनाप्लावनानि च। गंधादिवासितकरो महामुद्रां प्रविन्यसेत्॥३॥
विज्ञानेन तनुं कृत्वा ब्रह्माग्नेरपि यत्नतः। अव्यक्तबुद्ध्यहंकारतन्मात्रासंभवां तनुम्॥४॥
शिवामृतेन संपूतं शिवस्य च यथातथम्। अधोनिष्ठ्या वितस्त्यां तु नाभ्यामुपरि तिष्ठति॥५॥
हृदयं तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत्। हृत्पद्मकर्णिकायां तु देवं साक्षात्सदाशिवम्॥६॥
पंचवक्त्रं दशभुजं सर्वाभरणभूषितम्। प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रं च शशांककृतशेखरम्॥७॥
बद्धपद्मासनासीनं शुद्धस्फटिकसन्निभम्। ऊर्ध्वं वक्त्रं सितं ध्यायेत्पूर्वं कुंकुमसन्निभम्॥८॥
नीलाभं दक्षिणं वक्त्रमतिरक्तं तथोत्तरम्। गोक्षीरधवलं दिव्यं पश्चिमं परमेष्ठिनः॥९॥
शूलं परशुखड्गं च वज्रं शक्तिं च दक्षिणे। वामे पाशांकुशं घंटां नागं नाराचमुत्तमम्॥१०॥

तेईसवाँ अध्याय

शिव की पूजा की विधि

शैलादि बोले

अब आगे मैं शिव की अनुपम पूजा विधि (शिवार्चन) को कहता हूँ। अपनी शक्ति के अनुसार त्रिकाल संध्या और अग्नि कार्य करके ईश शिव की पूजा करनी चाहिए।।१।। भक्त शिव स्नान को और तत्त्व सिद्धि को करे। वह एकाग्रचित्त और शुद्ध मन से हाथ में फूलों को लेकर पूजा स्थल में प्रवेश करे। वह तीन बार प्राणायाम करे और दाहन और आप्लावन कृत्य करे। गन्ध से सुगन्धित हाथ से वह महामुद्रा का न्यास कृत्य पूरा करे।।२-३।। ब्रह्म अग्नि, शिव ज्ञान और तन्मात्रा से उत्पन्न अपने शरीर अव्यक्त, बुद्धि, अहंकार और तन्मात्रा से उत्पन्न अपने शरीर को पूर्ण ज्ञान द्वारा शुद्ध करे। नाभि के नीचे बारह अंगुल पर स्थित है, यह विश्व का महान् आयतन है। भक्त इसको बड़ा निवास के रूप में पहचाने, वह हृदय कमल में स्थित सदाशिव का निम्नलिखित रूप में ध्यान करे। उनके पाँच मुख, दस भुजाएँ, प्रत्येक मुख में तीन नेत्र हैं। वे सब आभूषणों से युक्त हैं। उनके मस्तक पर अर्धचन्द्र विराजमान है, वे कमलासन पर पद्मासन बाँधकर बैठे हैं। वे शुद्ध स्फटिक के समान हैं उनका ऊपरी मुख श्वेत है। वह कुमकुम के समान है और पूर्वामुख नीलाभ है।।४-८।। दाहिना मुख नीले रंग का है, उनका मुख बहुत लाल है और पश्चिम मुख गाय के दूध के समान सफेद है।।९।। उनके दाहिने त्रिशूल, फरसा, ब्रज

वरदाभयहस्तं वा शेषं पूर्ववदेव तु। सर्वाभरणसंयुक्तं चित्रांबरधरं शिवम्॥११॥
ब्रह्मांगविग्रहं देवं सर्वदेवोत्तमोत्तमम्। पूजयेत्सर्वभावेन ब्रह्मांगैर्ब्रह्मणः पतिम्॥१२॥
उक्तानि पंच ब्रह्माणि शिवांगानि शृणुष्व मे। शक्ति भूतानि च तथा हृदयादीनि सुव्रत॥१३॥

ॐ ईशानः सर्वविद्यानां हृदयाय शक्तिबीजाय नमः।
ॐ ईश्वरः सर्वभूतानाममृताय शिरसे नमः॥१४॥
ॐ ब्रह्माधिपतये कालाग्निरूपाय शिखायै नमः।
ॐ ब्रह्मणोधिपतये कालचंडमारुताय कवचाय नमः॥१५॥
ॐ ब्रह्मणे बृंहणाय ज्ञानमूर्तये नेत्राय नमः।
ॐ शिवाय सदाशिवाय पाशुपतास्त्राय अप्रतिहताय फट्फट्॥१६॥

ॐ सद्योजाताय भवेभवेनातिभवे भवस्य मां भवोद्भवाय शिवमूर्तये नमः।
ॐ हंसशिखाय विद्यादेहाय आत्मस्वरूपाय परापराय शिवाय शिवतमाय नमः॥१७॥
कथितानि शिवांगानि मूर्तिविद्या च तस्य वै। ब्रह्मांगमूर्तिं विद्यांगसहितां शिवशासने॥१८॥
सौराणि च प्रवक्ष्यामि बाष्कलाद्यानि सुव्रत। अंगानि सर्ववेदेषु सारभूतानि सुव्रत॥१९॥
ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म।

और शक्ति है। बाँए हाथ में पाश, अंकुश, घण्टा और बाण है। उनके हाथ भय से मुक्त और वर देने का संकेत करते हैं। शेष पूर्ववत् है। वह विविध प्रकार के आभूषणों को धारण किये हुए हैं। विविध रंग की पोशाक को पहने हुए हैं। वह भक्त उस शिव की पूजा करे जिसका रूप वेदांग है, वह सब उत्तम देवों में उत्तम हैं जो ब्रह्मा के भी स्वामी हैं। ऐसे शिव की सब भाव से पूजा करनी चाहिए।।१०-१२।। पंच ब्रह्म को मैंने पहले ही कहा था। अब शिवांगों को मुझसे सुनिए। हृदय आदि को भी सुनो जो कि शक्तियाँ हैं।। ओम् सब विद्याओं का स्वामी ईशान है। शक्ति बीज को नमस्कार, सब प्राणियों का स्वामी ओम् ईश्वर है उनको नमस्कार। अमृत को धारण किये हुए, ब्रह्मा के अधिपति कालाग्नि रूप शिखा के लिए नमस्कार, ओम् कवच ब्रह्मा के अधिपति के लिए नमस्कार, काल वायु के लिए नमस्कार, ओम् नेत्र को नमस्कार, ब्रह्मा को नमस्कार, बृहण ज्ञान मूर्ति नेत्र के लिए नमस्कार, ओम् शिव, सदाशिव, पाशुपत अस्त्रधारी, अप्रतिहत के लिए फट्-फट्। सद्योजात ओम् भव, भवेन, अतिभव मुझको भवोद्भव शिवमूर्त्ति को नमस्कार, हंसशिख को, विद्या देह को नमस्कार। आत्मास्वरूप पर, अपर शिव, शिवतम के लिए नमस्कार, जब मुझपर कोई सांसारिक आक्रमण हो तो मेरी रक्षा करो। शिव के उस रूप को नमस्कार जो पूर्ण सृष्टि के उत्पत्ति का स्रोत है। शिव के अंगों का वर्णन मैंने किया। उनकी मूर्ति विद्या जो कि वेदों के अंग हैं, वह भी शिव के शासन में है। हे सुव्रत! बाष्कल आदि सम्बन्धित मन्त्रों को कहूँगा। अंगों को जो सब वेदों के सार रूप हैं। ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म। इस नवाक्षर मन्त्र को बाष्कल कहते हैं। यह अक्षर कहा जाता है क्योकि जगत में यह नष्ट नहीं होता। सत्यम् को अक्षर कहा गया है। इसके पहिले प्रणव (ॐ) लगता है। (ॐ सत्यम्) और अन्त में नमः लगता

नवाक्षरमयं मंत्रं बाष्कलं परिकीर्तितम्।
न क्षरतीति लोकेऽस्मिंस्ततो ह्यक्षरमुच्यते। सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोंतकम्॥२०॥
ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि॥
धियो यो नः प्रयोदयात्। नमः सूर्याय खखोल्काय नमः॥२१॥
मूलमंत्रमिति प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः। नवाक्षरेण दीप्ताद्या मूलमंत्रेण भास्करम्॥२२॥
पूजयेदंगमंत्राणि कथयामि समासतः। वेदादिभिः प्रभूताद्यं प्रणवेन तु मध्यमम्॥२३॥
ॐ महः महेश्वराय कवचाय नमः। ॐ भुवः विष्णवे शिरसे नमः॥
ॐ स्वः रुद्राय शिखायै नमः ॐ भूर्भुवः स्वः
ज्वालामालिन्यै देवाय नमः ॐ महः महेश्वराय कवचाय नमः।
ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्यो नमः। ॐ तपस्तापनाय अस्त्राय नमः॥
एवं प्रसंगादेवेह सौराणि कथितानि ह। शैवानि च समासेन न्यासयोगेन सुव्रत॥२४॥
इत्थं मंत्रमयं देवं पूजयेद्धृदयांबुजे। नाभौ होमं तु कर्तव्यं जनयित्वा यथाक्रमम्॥२५॥
मनसा सर्वकार्याणि शिवाग्नौ देवमीश्वरम्। पंचब्रह्मांगसंभूतं शिवमूर्तिं सदाशिवम्॥२६॥
रक्तपद्मासनासीनं सकलीकृत्य यत्नतः। मूलेन मूर्तिमंत्रेण ब्रह्मांगाद्यैस्तु सुव्रत॥२७॥
समिदाज्याहुतीर्हुत्वा मनसा चंद्रमंडलात्। चंद्रस्थानात्समुत्पन्नां पूर्णधारामनुस्मरेत्॥२८॥

है। ॐ सत्यम् नमः।।१३-२०।। ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। हम सूर्य के उस उत्तम तेज का ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धि को (सन्मार्ग की ओर जाने को) प्रेरित करे। आकाश में महत्तम ग्रह सूर्य को नमस्कार।।२१।। इस प्रकार महान् आत्मा भास्कर के मूल मन्त्र को मैंने कहा। भक्त मूल मन्त्र के साथ नवाक्षर मन्त्र सहित दीप्ता आदि तथा अन्य शक्तियों की पूजा नवाक्षर मंत्रों से और सूर्य की पूजा मूल मंत्रों से करे। अब मैं संक्षेप में अङ्ग मन्त्रों को कहता हूँ। उनमें का प्रथम अधिकांश वैदिक मन्त्रों से आवृत है और मध्यम (बीच का) प्रणव से युक्त है। ॐ भूः नमः हृदय को, ब्रह्मा को, ॐ भुवः नमः शिर को, विष्णु को ॐ स्वः नमः शिखा को, रुद्र को, ॐ भूर्भुवः स्वः नमः ज्वालामाला को, ॐ महः कवच को, महेश्वर को, ॐ जनः नमः नेत्रों को, शिव को, ॐ तपः नमः तापन को, अस्त्र को। इस प्रकार प्रसंग वश यहाँ सूर्य से सम्बन्धित मन्त्रों को मैंने बताया। हे सुव्रत! शिव के सम्बन्धित न्यास विधि के संक्षेप में वर्णन किया गया है।।२२-२४।। इस प्रकार हृदय कमल में स्थित सूर्य देव की मन्त्रों से पूजा करे। यथाक्रम मन से शिवाग्नि में होम करना चाहिये। सब पवित्र कृत्य शिवाग्नि से पूर्ण किया जाय। शिव का ध्यान करें। वह पंच ब्रह्म के अंगों से उत्पन्न लाल कमल शिव की मूर्ति विराजमान है। वह सकल के रूप में परिवर्तित है। हे सुव्रत! मूल मन्त्रों और वेदांग मन्त्रों से मूर्ति पर ध्यान केन्द्रित किया जाय।। समिधा और घी से मनसा होम किया जाय। तब भक्त चन्द्र मण्डल से चन्द्र स्थल उत्पन्न पूर्णधारा (अमृत धारा) का स्मरण करे। शिवासन में पूर्णाहुति के बाद शिव को प्राण रक्षक के रूप में मानकर शिव शंकर का ध्यान करे। उसके बाद वह ललाट में या भौंहों के बीच में भक्त पुनः

पूर्णाहुतिविधानेन ज्ञानिनां शिवशासने। शिवं वक्त्रगतं ध्यायेत्तेजोमात्रं च शांकरम्॥२९॥
ललाटे देवदेवेशं भ्रूमध्ये वा स्मरेत्पुनः। यच्च हृत्कमले सर्वं समाप्य विधिविस्तरम्॥३०॥
शुद्धदीपशिखाकारं भावयेद्भवनाशनम्। लिंगे च पूजयेद्देवं स्थंडिले वा सदाशिवम्॥३१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥२३॥

शिव का ध्यान करे। इस प्रकार हृदय कमल में विधिपूर्वक विस्तृत पूजा को समाप्त करके शुद्ध दीप की शिखा के आकार (रूप) जगत् के संहर्त्ता शिव का ध्यान करे। वह लिंग पर या भूमि पर शिव की पूजा करे।।२५-३१।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव की पूजा की विधि
नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त॥२३॥

—❀—

चतुर्विंशोऽध्यायः

शिवस्य पूजाविधिः

शैलादिरुवाच

व्याख्यां पूजाविधानस्य प्रवदामि समासतः।
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण शिवेन कथितं पुरा॥१॥
अथोभौ चंदनचर्चितौ हस्तौ वौषडंतेनाद्यंजलिं कृत्वा मूर्तिविद्याशिवादीनि जप्त्वा अंगुष्ठादिकनिष्ठिकांत ईशानाद्यं कनिष्ठिकादिमध्यमांतं हृदयादितृतीयांतं तुरीयमंगुष्ठेनानामिकया पंचमं तलद्वयेन षष्ठं तर्जन्यंगुष्ठाभ्यां नाराचास्त्रप्रयोगेण पुनरपि मूलं जप्त्वा तुरीयेनावगुंठ्य शिवहस्तमित्युच्यते॥२॥
शिवार्चना तेन हस्तेन कार्या॥३॥
तत्त्वगतमात्मानं व्यवस्थाप्य तत्त्वशुद्धिं पूर्ववत्॥४॥
क्ष्माम्भोग्निवायुव्योमांतं पंचचतुः शुद्धकोट्यंते।
धारासहितेन व्यवस्थाप्य तत्त्वशुद्धिं पूर्वं कुर्यात्॥५॥

चौबीसवाँ अध्याय

शिव की पूजा की विधि

शैलादि बोले

शिव द्वारा पहिले कही गई और शिवसंहिता में वर्णन की गई शिव की पूजा की विधि को संक्षिप्त में कहता हूँ।।१।। दोनों हाथ घिसे हुए चन्दन के लेप से चुपड़े हों। वौषट् से अन्त होने वाले मन्त्र से पुष्पों से भरी अंजलि से भेंट क्रिया को करे। वह मूर्तिविद्या और शिव के मन्त्रों को जपे। अँगूठे से लेकर कनिष्ठका अँगुली तक जपे। ईशान आदि अन्य मूर्तियों को कनिष्ठा से प्रारम्भ करके मध्यमा अँगुली से कहते हुए इनके द्वारा हृदय आदि को स्थापित करे। चौथी अँगुली को अँगूठे के साथ लगाकर और कनिष्ठिका से मध्यमा अँगुली लगावे। दोनों हाथों की हथेलियाँ छठवीं को खड़ी करे। तर्जनी और अँगूठा से नाराच अस्त्र का प्रयोग करे। तब वह फिर मूल मन्त्र का जप करे और चतुर्थ बीज से प्रत्येक वस्तु को ढक दे। इसको शिवहस्त (शिव का हाथ) कहते हैं।।२।। इसी शिवहस्त से शिव की पूजा की जानी चाहिये। भक्त तत्त्वों में आत्मा को स्थापित करके तत्त्वों की पूर्ववत् शुद्धि करे। इस प्रकार भूमि, जल, वायु, अग्नि और आकाश इन पाँच तत्त्व की स्थापना के बाद अहंकार, बुद्धि, प्रकृति और ब्रह्म पाँच तत्त्व में केवल ब्रह्म धारा के साथ शुद्ध हैं। भक्त तत्त्वों की शुद्धि पूर्व कथित विधि से करे। भूमि तत्त्व की शुद्धि सद्य से तथा तृतीय बीज मन्त्र से होती है। जिसके अन्त में फट् लगे। वारि तत्त्व

तत्त्वशुद्धिः षष्ठेन सद्येन तृतीयेन फडंताद्धराशुद्धिः॥६॥
षष्ठसहितेन सद्येन तृतीयेन फडन्तेन वारितत्त्वशुद्धिः॥७॥
वाह्नेयतृतीयेन फडंतेनाग्निशुद्धिः॥८॥
वायव्यचतुर्थेन षष्ठसहितेन फडंतेन वायुशुद्धिः॥९॥
षष्ठेन ससद्येन तृतीयेन फडंतेनाकाशशुद्धिः॥१०॥
उपसंहृत्यैवं सद्यषष्ठेन तृतीयेन मूलेन फडंतेन ताडनं तृतीयेन
संपुटीकृत्य ग्रहणं मूलमेव योनिबीजेन संपुटीकृत्वा बंधनं बंधः॥११॥

एवं क्षांतातीतादिनिवृत्तिपर्यंतं पूर्ववत्कृत्वा प्रणवेन तत्त्वत्रयकमनुध्याय आत्मानं दीपशिखाकारं पुर्यष्टकसहितं त्रयातीतं शक्तिक्षोभेणामृतधारां सुषुम्णायां ध्यात्वा॥१२॥
शांत्यतीतादिनिवृत्तिपर्यंतानां चांतर्नादबिंद्वकारोकारमकारांतं शिवं सदाशिवं रुद्रविष्णुब्रह्मांतं सृष्टिक्रमेणामृतीकरणं ब्रह्मन्यासं कृत्वा पंचवक्त्रेषु पंचदशनयनं विन्यस्य मूलेन पादादिकेशांतं महामुद्रामपि बद्धवा शिवोहमिति ध्यात्वा शक्त्यादीनि विन्यस्य हृदि शक्त्याबीजांकुरानंतरात्ससुषिरसूत्रकंटकपत्रकेसरधर्मज्ञान-वैराग्यैश्वर्यसूर्यसोमाग्निवामाज्येष्ठारौद्रीकालीकलविकरणीबलविकरणीबल-प्रथमनीसर्वभूतदमनीः केसरेषु कर्णिकायां मनोन्मनीमपि ध्यात्वा॥१३॥

की शुद्धि सद्य और छठवें बीज मन्त्र के साथ फट् को अन्त में लगाकर होती है। अग्नि तत्त्व की शुद्धि तृतीय बीज मन्त्र अग्नि से सम्बन्धित और फट् अन्त में लगाकर होती है। वायु तत्त्व की शुद्धि चतुर्थ बीज मन्त्र वायु से सम्बन्धित, छठवें बीज मन्त्र के साथ और अन्त में फट् शब्द से होती है। आकाश तत्त्व की शुद्धि सद्य के साथ छठवें बीज मन्त्र और तृतीय बीज मन्त्र से फट् शब्द अन्त में लगने से होती है।।३-१०।। यह सब करने के बाद ताडन कृत्य को छठवें बीज मन्त्र सद्य के साथ, तृतीय बीज मन्त्र और मूल मन्त्र फट् शब्द के अन्त लगने से होती है। ग्रहण कृत्य तृतीय बीज मन्त्र सम्पुटीकरण बीज मन्त्र द्वारा होता है। बन्धन कृत्य योनि बीज द्वारा मूल मन्त्र से सम्पुटीकरण होता है।।११।। इसके बाद एक के बाद दूसरे निम्नलिखित कृत्य किये जाते हैं। कलाएँ शान्त्यतीत आदि और निवृत्ति से अन्त होने वाली को पूर्ववत् करके, प्रणव के द्वारा तीन तत्त्वों का ध्यान करे। आठ पुरियों के साथ आत्मा का दीपशिखा के आकार तीनों से बाहर स्थित रूप में ध्यान करना चाहिए। सुषुम्ना में शक्ति के छोर से अमृत धारा बहती है।।१२।। शान्त्यतीत निवृत्ति पर्यन्त, नाद, बिन्दु, अकार, उकार, मकार (अ उ म) शिव, सदाशिव, त्रिमूर्ति, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा का सृष्टि क्रम में ध्यान किया जाय। इस कृत्य को ब्रह्मन्यास कहते हैं जो अमृतीकरण सृष्टि के क्रम है। तब पाँच मुख और पन्द्रह नेत्र वाले शिव को स्थापित करके मूल मन्त्र को दोहराते हुए पाद आदि केश अन्त महामुद्रा को बाँधकर 'मैं शिव हूँ' ऐसा ध्यान करें। शक्तियों को हृदय में स्थापित करके शक्ति के साथ निम्नलिखित पर ध्यान करे—बीज, अंकुर, कमल नाल सहित, कंटक, सूत्र, पत्र, केसर, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि, शक्तियाँ—वामा ज्येष्ठा, रौद्री, काली,

आसनं परिकल्प्यैवं सर्वोपचारसहितं बहिर्योगोपचारेणांतःकरणं कृत्वा न्नाभौ वह्निकुंडे पूर्ववदासनं परिकल्प्य सदाशिवं ध्यात्वा बिंदुतोऽमृतधारां शिवमंडले निपतितां ध्यात्वा ललाटे महेश्वरं दीपशिखाकारं ध्यात्वा आत्मशुद्धिरित्थं प्राणापानौ संयम्य सुषुम्णया वायुं व्यवस्थाप्य षष्ठेन तालुमुद्रां कृत्वा दिग्बंधं कृत्वा षष्ठेन स्थानशुद्धिर्वस्त्रादि पूतांतरर्घ्यपात्रादिषु प्रणवेन तत्त्वत्रयं विन्यस्य तदुपरि बिंदुं ध्यात्वा त्वंभसा विपूर्य द्रव्याणि च विधाय अमृतप्लावनं कृत्वा पाद्यपात्रादिषु तेषामर्ध्यवदासनं परिकल्प्य संहितयाभिमंत्र्याद्येनाभ्यर्च्य द्वितीयेनामृतीकृत्वा तृतीयेन विशोध्यचतुर्थेनावगुंठ्य पंचमेनावलोक्य षष्ठेन रक्षां विधाय चतुर्थेन कुशपुंजेनार्ध्यांभसाभ्युक्ष्य आत्मानमपि द्रव्याणि पुनरर्ध्यांभसाभ्युक्ष्य सपुष्पेण सर्वद्रव्याणि पृथक्पृथक् शोधयेत्॥१४॥

सद्येन गंधं वामेन वस्त्रम्।
अघोरेण आभरणं पुरुषेण नैवेद्यम्। ईशानेन पुष्पाणि अथाभिमंत्रयेत्॥१५॥

शिवगायत्र्या शेषं प्रोक्षयेत्॥१६॥

पंचामृतपंचगव्यादीनि ब्रह्मांगमूलाद्यैरभिमंत्रयेत्॥१७॥

कालविकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथनी सर्वभूतदमनी केसर में, कर्णिका में मनोन्मनी को ध्यान करे।।१३।। आत्मशुद्धि, स्थान शुद्धि, द्रव्य शुद्धि कृत्य निम्नलिखित रूप में करे। आसन रखकर यौगिक उपचार के द्वारा बाहर की चीजों से इच्छा शक्ति को अन्दर की ओर लगावे। शिव का आसन अग्नि कुंड के नाभि में सामने पूर्ववत् कल्पना करके बिंदु से शिव मण्डल पर गिरती हुई अमृत धारा को ध्यान करते हुए सदाशिव का ध्यान करे। ललाट पर दीपशिखा के आकार वाले शिव का ध्यान करे यह आत्मशुद्धि है। स्थान शुद्धि इस प्रकार है। भक्त प्राण और अपान वायु का संयम करके सुषुम्ना द्वारा वायु को रोके, तब छठवें ताल मुद्रा और दिग्बन्ध छठवाँ बीज से मन्त्र से पूरा किया जाय। दिग्बन्ध कृत्य पूजा की सामग्री द्रव्यशुद्धि कहलाती है। वह इस प्रकार है। अर्घ्य पात्र आदि में ओम् के द्वारा तीन तत्त्वों को रखकर उसके बिंदु का ध्यान करके उनके ऊपर बिन्दु का ध्यान करे कि वे जल से पूर्ण है, तब पूजा सामग्री को क्रम से रखकर पाद्य के लिए रखे गये पात्रों में अमृतप्लावन के सामने (जल छिड़ककर) अर्घ्य पात्रवत् आसन की कल्पना करके संहिता मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके प्रथम बीज मन्त्र द्वारा पूजा की जाय। द्वितीय बीज मन्त्र द्वारा उसको अमृत रूप में करे, तृतीय बीज मन्त्र द्वारा यह शुद्ध की जाय, चतुर्थ बीज मन्त्र द्वारा ढककर पंचम बीज द्वारा इसका अवलोकन करे। छठवें बीज मन्त्र द्वारा रक्षा करके चौथे बीज मन्त्र को पढ़ते हुए कुश के पुंज से अर्घ्य जल पूजा सामग्री पर छिड़के। उसके बाद फूल के साथ अर्घ्य जल से भक्त अपने ऊपर और पूजा सामग्री पर पुनः जल छिड़के।।१४।। तब भक्त निम्नलिखित मन्त्रों से वस्तुओं को अभिमन्त्रित करे—सद्य मन्त्र से गंध को, वाम मन्त्र से वस्त्र को, अघोर मन्त्र से आभूषण को, तत्पुरुष मन्त्र से नैवेद्य को और ईशान मन्त्र से पुष्पों को अभिमन्त्रित करे। शिव गायत्री मन्त्र को दोहराते हुए शेष सामग्री पर जल छिड़के। वह वेदांगों मूल मन्त्रों और अन्य मन्त्रों द्वारा पंचामृत, पंचगव्य और अन्य वस्तुओं को अभिमन्त्रित करे। तब वह मूल मन्त्र को दोहराते हुए अर्घ्य, घूप और आचमनीय देते हुए

पृथकपृथङ्मूलेनार्ध्यं धूपं दत्त्वाचमनीयं च तेषामपि धेनुमुद्रा च दर्शयित्वा कवचेनावगुंठ्यास्त्रेण रक्षां च विधाय द्रव्यशुद्धिं कुर्यात्॥१८॥ अर्घ्योदकमग्रे हृदा गंधमादाय द्रव्याणि विशोध्य पूजाप्रभृतिकरणं रक्षांतं कृत्वैवं द्रव्यशुद्धिं पूजासमर्पणांतं मौनमास्थाय पुष्पांजलिं दत्त्वा सर्वमंत्राणि प्रणवादिनमोंताज्जपित्वा पुष्पांजलिं त्यजेन्मंत्रशुद्धिरित्थम्॥१९॥ अग्रे सामान्यार्घ्यपात्रं पयसापूर्य गंधपुष्पादिना संहितयाभिमंत्र्य धेनुमुद्रां दत्त्वां कवचेनावगुंठ्यास्त्रेण रक्षयेत्। पूजां पर्युषितां गायत्र्या समभ्यर्च्य सामान्यार्ध्यं दत्त्वां गंधपुष्पधूपाचमनीयं स्वधांतं नमोंतं वा दत्त्वा ब्रह्मभिः पृथक्पृथक्पुष्पांजलिं दत्त्वा फडंतास्त्रेण निर्माल्यं व्यपेह्य ईशान्यां चंडमर्भ्यासनमूर्तिं चंडं सामान्यास्त्रेण लिंगपीठं शिवं पाशुपतास्त्रेण विशोध्य मूर्ध्नि पुष्पं निधाय पूजयेल्लिंगशुद्धिः॥२०॥ आसनं कूर्माशिलायां बीजांकुरं तदुपरि ब्रह्मशिलायामनंतनालसुषिरे सूत्रपत्रकंटककर्णिकाकेसरधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यसूर्यसोमाग्निकेसरशक्तिं मनोन्मनीं कर्णिकायां मनोन्मनेनानंतासनायेति समासेनासनं परिकल्प्य तदुपरि निवृत्त्यादिकलामयं षड्विधसहितं कर्मकलांगदेहं सदाशिवं भावयेत्॥२१॥

सामग्री को शुद्ध करे। उनको धेनुमुद्रा दिखावे। कवच मन्त्र के द्वारा वस्तुओं को ढककर अस्त्र मन्त्र से उनकी रक्षा करके द्रव्य शुद्धि करना चाहिए।।१५-१८।। मन्त्र शुद्धि इस प्रकार है—आगे अर्घ्य जल दिया जाय हृदय द्वारा गंध लेकर, अस्त्र मन्त्र द्वारा शुद्ध करके, पूजा आदि रक्षा पर्यन्त करके, पूजा द्रव्य की शुद्धि समर्पण के अन्त तक मौन रूप से पुष्पांजलि देकर, सब मन्त्रों प्रणव आदि में और नमः अन्त में लगाकर दोहराते हुए, और पुष्पांजलि दी जाय।।१९।। लिंग शुद्धि इस प्रकार है—सामान्य अर्घ्य पात्र जल से भरकर सामने रखें, गंध और सुगन्धित फूल आदि इसको संहिता मन्त्रों से अभिमन्त्रित करे। धेनुमुद्रा दिखाये, कवच मन्त्र से उसको ढके और अस्त्र मन्त्र द्वारा उसकी रक्षा की जाय। पूजा जो पहले की गयी है पुनः गायत्री मन्त्र द्वारा की जाय। सामान्य अर्घ्य देकर गंध पुष्प आचमनीय स्वाहा या नमः अन्त में लगे मन्त्रों से दी जाय। वैदिक मन्त्रों द्वारा पुष्पांजलि दी जाय। फट् अन्त में लगाकर अस्त्र मन्त्र द्वारा निर्माल्य को हटा दिया जाय। उत्तर पूर्व में चन्द्रमा की पूजा की जाय। सामान्य अस्त्र मन्त्र द्वारा चन्द्र की पूजा की जाय। पाशुपत अस्त्र द्वारा लिंग पीठ और शिव को शुद्ध करके उनके सिर पर पुष्प रखकर उसकी पूजा की जानी चाहिये।।२०।।

भक्त सदाशिव का ध्यान करे जो निवृत्ति के साथ कलामय है। जो कि छः कलाओं सहित है, और जिनका भौतिक शरीर कर्म कला का अंग है। कूर्म शिला पर उनका आसन है। उस पर बीज और अंकुर है। ब्रह्म शिला पर अनन्त नाल कमल, सूत्र, पत्र, कटक, कर्णिका, केसर, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, सूर्य, सोम, अग्नि, केसर, शक्ति, मनोन्मनी की मनोन्मन के साथ अनन्त आसन के लिए कहते हुए कल्पना करके उस पर पूर्व कथित

उभाभ्यां सपुष्पाभ्यां हस्ताभ्यामंगुष्ठेन पुष्पमापीड्य आवाहनमुद्रया शनैःशनैः हृदयादिमस्तकांतमारोप्य हृदा सह मूलं प्लुतमुच्चार्य सद्येन बिंदुस्थानादभ्यधिकं दीपशिखाकारं सर्वतोमुखहस्तं व्याप्यव्यापकमावाह्य स्थापयेत्॥२२॥

पूर्वहृदा शिवशक्तिसमवायेन परमीकरणममृतीकरणं हृदयादिमूलेन सद्येनावाहनं हृदा मूलोपरि वामेन स्थापनं हृदा मूलोपरि अघोरेण सन्निरोधं हृदा मूलोपरि पुरुषेण सान्निध्यं हृदा मूलेन ईशानेन पूजयेदिति उपदेशः॥२३॥

पंचमंत्रसहितेन यथापूर्वमात्मनो देहनिर्माणं तथा देवस्यापि वह्नेश्चैवमुपदेशः॥२४॥

रूपकध्यानं कृत्वा मूलेन नमस्कारांतमापाद्य स्वधांतमाचमनीयं सर्वं नमस्कारांतं वा स्वाहाकारांतमर्घ्यं मूलेन पुष्पांजलिं वौषडंतेन सर्वं नमस्कारांतं हृदा वा ईशानेन वा रुद्रगायत्र्या ॐ नमः शिवायेति मूलमंत्रेण वा पूजयेत्॥२५॥

पुष्पांजलिं दत्त्वा पुनर्धूपाचमनीयं षष्ठेन पुष्पावसारणं विसर्जनं मंत्रोदकेन मूलेन संस्नाप्य सर्वद्रव्याभिषेकमीशानेन प्रतिद्रव्यमष्टपुष्पं दत्त्वैवमर्घ्यं च गधं पुष्पधूपाचमनीयं फडंतास्त्रेण पूजापसरणं शुद्धोदकेन मूलेन संस्नाप्य पिष्टामलकादिभिः॥२६॥

विधि से सदाशिव का ध्यान करना चाहिये।।२१।। दोनों हाथों में पुष्पों को ले ले। उनको दबा दें। आह्वान मुद्रा से, उनको धीरे-धीरे हृदय से सिर तक ले जाय। हृदय मंत्र के साथ मूल मंत्र को प्लुत स्वर में उच्चारण करके बिन्दु स्थान से ऊपर मूर्त दीप शिखा के आकार के और जिसके मुख और हाथ चारों ओर फैले हैं और व्याप्य व्यापक भाव में है, उनका आह्वान करके स्थापित करना चाहिये।।२२।। परमीकरण कृत्य हृदय मन्त्र से और अविभाज्य शिव और शक्ति, अमृतीकरण कृत्य हृदय मन्त्र से प्रारम्भ करके मूल मन्त्र द्वारा किया जाय। सद्य मन्त्र द्वारा आह्वान कृत्य, स्थापन कृत्य हृदय मन्त्र से तथा अन्त में मूल मन्त्र से तथा वाम मन्त्र से, सन्निरोध हृदय मन्त्र अघोर मन्त्र और मूल मन्त्र से, सान्निध्य कृत्य तत्पुरुष मन्त्र, मूल मन्त्र और हृदय मन्त्र द्वारा, भक्ति को मूर्ति की पूजा हृदय मन्त्र, मूल मन्त्र और ईशान मन्त्र से करनी चाहिये, ऐसा उपदेश है।।२३।। तब भक्त को देह निर्माण कृत्य अपने लिए पूर्ववत् तथा शिव के लिए अग्नि पंच मन्त्र चहित बीज मन्त्र द्वारा करना चाहिये।।२४।। मूल मन्त्र से रूपक ध्यान करके नमस्कार के अन्त, और आचमनीय स्वधा बोलकर भेंट कर दे। उसके बाद भक्त अर्घ्य तथा अन्य वस्तुएँ मन्त्र पर स्वाहा बोलते हुए दे। वौषट् से अन्त होने वाले मूल मन्त्र द्वारा भेंट करे। हृदय मन्त्र या मूल मन्त्र रुद्र गायत्री मन्त्र से प्रत्येक कृत्य किया जाना चाहिये। या वह मूल मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' से पूजा करे।।२५।। भक्त पुनः पुष्पाँजलि देकर धूप आचमनीय दे। छठवें बीज मन्त्र से पुष्पों को हटाये और विसर्जन करे। मूल मन्त्र को दोहराते हुए मन्त्रों से अभिमंत्रित पूजा की सब सामग्री को शुद्ध करे। ईशान मन्त्र से अभिषेक कृत्य किया जाय। प्रत्येक वस्तु के लिए आठ फूल भेंट किये जायँ। उसके बाद उसी भाँति अर्घ्य दिया जाय। गंध, सुगन्धित पुष्प, आचमनीय फट् के अन्त होने वाले अस्त्र से भेंट कर दे। पूजा की समाप्ति इसी प्रकार

उष्णोदकेन हरिद्राद्येन लिंगमूर्तिं पीठसहितां विशोध्य गंधोदकहिण्योदकमंत्रोदकेन रुद्राध्यायं पठमानः नीलरुद्र-त्वरितरुद्रपंचब्रह्मादिभिः नमः शिवायोति स्नापयेत्॥२७॥
मूर्ध्नि पुष्पं निधायैवं न शून्यं लिंगमस्तकं कुर्यादत्र श्लोकः॥२८॥

यस्य राष्ट्रे तु लिंगस्य मस्तकं शून्यलक्षणम्। तस्यालक्ष्मीर्महारोगो दुर्भिक्षं वाहनक्षयः॥२९॥
तस्मात्परिहरेद्राजा धर्मकामार्थमुक्तये। शून्यं लिंगे स्वयं राजा राष्ट्रं चैव प्रणश्यति॥३०॥
एवं सुस्नाप्यार्घ्यं च दत्त्वा संमृज्य वस्त्रेण गंधपुष्पवस्त्रालंकारादींश्च मूलेन दद्यात्॥३१॥
धूपाचमनीयदीपनैवेद्यादींश्च मूलेन प्रधानेनोपरि पूजनं पवित्रीकरणमित्युक्तम्॥३२॥

आरार्तिदीपादींश्चैव धेनुमुद्रामुद्रितानि कवचेनावगुंठिनानि षष्ठेन रक्षितानि लिंगोपरि लिंगे च लिंगास्याधः साधारणं च दर्शयेत्॥३३॥

मूलेन नमस्कारं विज्ञाप्यावाहनस्थापनसन्निराधसान्निध्यपाद्याचमनीयार्घ्यगंधपुष्प-धूपनैवैद्याचमनीयहस्तोद्वतनमुखवासाद्युपचारयुक्तं ब्रह्मांगभोगमार्गेण पूजयेत्॥३४॥

की जानी चाहिए। लिंग पीठ सहित मूर्ति को मूल मन्त्र को दोहराते हुए शुद्ध जल से स्नान कराना चाहिये। इसमें हल्दी आँवले आदि पड़े हुए हों। या तेल हल्दी आदि मिश्रित गरम जल से स्नान कराकर शुद्ध करें। भक्त तब रुद्राध्याय पढ़ते हुये स्वर्ण पड़े हुये शुद्ध मन्त्रोक्त अभिमन्त्रित जल से लिंग मूर्ति का स्नान नमः शिवाय के साथ नील रुद्र, त्वरित रुद्र, पंच ब्रह्म और अन्य मन्त्रों को सस्वर पढ़े।।२६-२७।। लिंग को स्नान कराते समय उसके शिर पर एक फूल रखे। लिंग का शिर नंगा न रखा जाय। इस सम्बन्ध में एक श्लोक है। जिस राजा के राज्य में शिवलिंग का मस्तक नंगा रहता है उस राज्य में दरिद्रता, महारोग, अकाल और वाहनों का क्षय होता है।।२८-२९।। इसलिए राजा इससे बचे और धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति के लिए इसका ध्यान रखे। जिस राजा के राज्य में शिवलिंग नंगा रहता है, उस राजा और राज्य का नाश हो जाता है।।३०।। स्नान करने के बाद भक्त अर्घ्य दे और कपड़े से लिंग को पोंछे। मूल मन्त्र से गंध, पुष्प, वस्त्र, अलंकार आदि भेंट करके भक्त मूल मन्त्र पढ़ते हुए धूप, आचमनीय, दीप, नैवेद्य आदि भेंट करे। मूल मन्त्र से उक्त कृत्य को पवित्रीकरण कहते हैं।।३१-३२।। भक्त आरती दीप दिखावे। लिंग के ऊपर, लिंग पर, लिंग के निचले भाग पर और सामान्य रूप से चारों ओर घूमकर आरती करे। वह आरती दीप धेनुमुद्रा से (अभिमन्त्रित) कवच मुद्रा से अवगुंठित (ढका हुआ) और छठवें बीज मन्त्र से रक्षित होना चाहिये।।३३।। इसके बाद भक्त मूल मन्त्र से नमस्कार करके ब्रह्मा की पूजा के लिए निर्धारित विधि ब्रह्मग्नि भोग मार्ग से सेवा के निम्नलिखित कार्यों को करे। आह्वान, स्थापन, संनिरोध, पाद्य, आचमनीय, अर्घ्य, गंध पुष्प, नैवेद्य, द्वितीय आचमनीय, हस्तोद्वर्तन (हाथ धोना), मुखवास आदि उपचार से युक्त क्रियाओं को करे।।३४।। विधि पूर्वक निम्नलिखित कृत्य को करे। सकल में शिव का ध्यान तब निष्कल रूप में स्मरण, पर और अपर देवताओं का ध्यान मूल मन्त्र का जप और ब्रह्मांग मन्त्रों का जप आत्म समर्पण का

सकलध्यानं निष्कलस्मरणं परावरध्यानं मूलमंत्रजपः।
दशांशं ब्रह्मांगजपसमर्पणमात्मनिवेदनस्तुतिनमस्कारादयश्च
गुरुपूजा च पूर्वतो दक्षिणे विनायकस्य॥३५॥
आदौ चांते च संपूज्यो विघ्नेशो जगदीश्वरः। दैवतैश्च द्विजैश्चैव सर्वकर्मार्थासिद्धये॥३६॥
यः शिवं पूजयेदेवं लिंगे वा स्थंडिलेपि व। स याति शिवसायुज्यं वर्पमात्रेण कर्मणा॥३७॥
लिंगार्चकश्च पण्मासान्नात्र कार्या विचारणा॥
लिंगार्चकश्च पण्मासान्नात्र काया विचारणा। सप्त प्रदक्षिणाः कृत्वा दंडवत्प्रणमेद्बुधः॥३८॥
प्रदक्षिणक्रमपादेन अश्वमेधफलं शतम्। तस्मात्संपूजयेन्नित्यं सर्वकर्मार्थसिद्धये॥३९॥
भोगार्थी भोगमाप्नोति राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात्।
पुत्रार्थी तनयं श्रेष्ठं रोगी रोगात्प्रमुच्यते॥४०॥
यान्यांश्चिंतयते कामांस्तास्तांन्प्राप्नोति मानवः॥४१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

दशमांश पूर्व समर्पण, स्तुति, नमस्कार आदि पूर्व में गुरु की पूजा और दक्षिण में विनायक की पूजा करनी चाहिए।।३५।। सब कामना की सिद्धि के लिए गणेश जगदीश्वर की पूजा ब्राह्मणों और देवताओं द्वारा आदि और अन्त में करनी चाहिए।।३६।। जो व्यक्ति लिंग या भूमि पर शिव की इस विधि से एक वर्ष मात्र पूजा करता है वह शिव का सायुज्य प्राप्त करता है।।३७।। लिंग की अर्चना करने वाला छः मास में शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। इससे सन्देह नहीं। विद्वान भक्त सात प्रदक्षिणा करके साष्टांग प्रणाम करे।।३८।। प्रदक्षिणा में प्रत्येक पद के लिए सौ अश्वमेघ का फल प्राप्त करता है, अतः धर्म, अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति के लिए नित्य शिव की पूजा करनी चाहिए। भोग चाहने वाला भोग (आनन्द) को प्राप्त करेगा। राज्य चाहने वाले को राज्य मिलता है। पुत्रार्थी को पुत्र प्राप्त होता है। रोगी रोग मुक्त हो जाता है। भक्त मनुष्य अपनी चाही हुई सब कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।।३९-४१।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव की पूजा की विधि
नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त॥२४॥

पंचविंशतितमोऽध्यायः

शिवसम्बन्धिनः पवित्रमग्निहोत्रम्

शैलादिरुवाच

शिवाग्निकार्यं वक्ष्यामि शिवेन परिभाषितम्। जनयित्वाग्रतः प्राचीं शुभे देशे सुसंस्कृते॥१॥
पूर्वाग्रमुत्तराग्रं च कुर्यात्सूत्रत्रयं शुभम्। चतुस्त्रीकृते क्षेत्रे कुर्यात्कुंडानि यत्नतः॥२॥
नित्यहोमाग्निकुंडं च त्रिमेखलसमायुतम्। चतुस्त्रीव्द्यंगुलायामा मेखला हस्तमात्रतः॥३॥
हस्तमात्रं भवेत्कुंडं योनिः प्रादेशमात्रतः। अश्वत्थपत्रवद्योनिं मेखलोपरि कल्पयेत्॥४॥
कुंडमध्ये तु नाभिः स्यादष्टपत्रं सकर्णिकम्। प्रादेशमात्रं विधिना कारयेद्ब्रह्मणः सुत॥५॥
षष्ठेनोल्लेखनं प्रोक्तं प्रोक्षणं वर्मणा स्मृतम्। नेत्रेणालोक्य वै कुंडं षड्रेखाः कारयेद्बुधः॥६॥
प्रागायतेन विप्रेंद्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। उत्तराग्राः शिवा रेखाः प्रोक्षयेद्वर्मणा पुनः॥७॥
शमीपिप्पलसंभूतामरणीं षोडशांगुलाम्। मथित्वा वह्निबीजेन शक्तिन्यासं हृदैव तु॥८॥
प्रक्षिपेद्विधिना वह्निमन्वाधाय यथाविधि। तूष्णीं प्रादेशमात्रैस्तु याज्ञिकैः शकलैः शुभैः॥९॥
परिसंमोहनं कुर्याज्जलेनाष्टसु दिक्षु वै। परिस्तीर्य विधानेन प्रागाद्येवमनुक्रमात्॥१०॥

पच्चीसवाँ अध्याय

शिव से सम्बन्धित पवित्र अग्निहोत्र

शैलादि बोले

मैं शिव द्वारा कहे गये शिवाग्नि कार्य को कहूँगा। प्रार्थी सुन्दर साफ सुथरे स्थान पर चौकोर रूप में शुभ मुहूर्त में खोदकर गड्ढा करे। तब वह पूर्व की ओर संकेत करती हुई तीन रेखाएँ और उत्तर की ओर तीन रेखाएँ बनावे।।१-२।। वह यज्ञ की पवित्र अग्नि की वेदी के चारों ओर तीन मेखला हों। बाहिरी मेखला में चार अंगुल, मध्य में तीन अंगुल, भीतर में दो अंगुल हो। कुंड की चौड़ाई दो हाथ मात्र हो। मध्य भाग जहाँ हवन सामग्री रखी जाय, लगभग नौ इंच हो, योनि पीपल के पत्ते के समान रूप में मेखला के ऊपर बनाई जाय।।३-४।। कुंड के मध्य में नाभि कमल के रूप में बनाई जाय, यह आठ पत्र और कर्णिका से युक्त हो और चौड़ाई एक प्रादेश[1] हो।।५।। छठवे अस्त्र मन्त्र से उल्लेखन कृत्य किया जाय और कवच मन्त्र से प्रोक्षण (जल से सिंचन) किया जाय। कुंड को नेत्रों से देखते हुए छः रेखा खीचे। हे विप्रेन्द्र! पूर्व की ओर तीन रेखाएँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश का प्रतिनिधित्व करती हैं। भक्त उत्तर की ओर शिव रेखाओं पर वर्मन मन्त्र के द्वारा जल को छिड़के।।६-७।। होम में लगायी जाने वाली लकड़ी शमी या पीपल की हो। १६ अंगुल लम्बी हो। इसको साफ करके रखे उसके बाद हृदय मन्त्र से शक्ति न्यास कृत्य पूरा करते हुए और वह्नि बीज मन्त्र को दोहराते हुए अग्नि उत्पन्न की जाय। यज्ञ की लकड़ियों के टुकड़े लम्बाई में प्रावेश मात्र हो। उनको अग्नि में मौन होकर रखे। क्रम से पूर्व दिशा

१. प्रादेश = अंगूठे और तर्जनी के बीच के बराबर स्थान।

उत्तराग्रं पुरस्ताद्धि प्रागग्रं दक्षिणे पुनः। पश्चिमे चोत्तराग्रं तु सौम्यं पूर्वाग्रमेव तु॥११॥
ऐन्द्रे चैन्द्राग्नमावाह्य याम्य एवं विधीयते। सौम्यस्योपरि चांद्राग्नं वारुणाग्नमधस्ततः॥१२॥
द्वंद्वरूपेण पात्राणि बर्हिःष्वासाद्य सुव्रत। अधोमुखानि सर्वाणि द्रव्याणि च तथोत्तरे॥१३॥
तस्योपरि न्यसेद्दर्भाञ्छिवं दक्षिणतोन्यसेत्। पूजयेन्मूलमंत्रेण पश्चाद्धोमं समाचरेत्॥१४॥
प्रोक्षणीपात्रमादाय पूरयेदंबुना पुनः। प्रादेशमात्रौ तु कुशौ स्थापयेदुदकोपरि॥१५॥
प्लावयेच्च कुशाग्रं तु वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः। विकीर्य सर्वपात्राणि सुसंप्रोक्ष्य विधानतः॥१६॥
प्रणीतापात्रमादाय पूरयेदंबुना पुनः। अन्योदककुशाग्रैस्तु सम्यगाच्छाद्य सुव्रत॥१७॥
हस्ताभ्यां नासिकं पात्रमैशान्यां दिशि विन्यसेत्। आज्याधिश्रयणं कुर्यात्पश्चिमोत्तरतः शुभम्॥१८॥
भस्ममिश्रांस्तथांगारान् ग्राहयेत्सकलेन वै। पश्चिमोत्तरतो नीत्वा तत्र चाज्यं प्रतापयेत्॥१९॥
कुशानग्नौ तु प्रज्वाल्य पर्यग्निं त्रिभिराचरेत्। तान्सर्वांस्तत्र निःक्षिप्य चाग्रे चाज्यं निधापयेत्॥२०॥
अंगुष्ठमात्रौ तु कुशौ प्रक्षाल्य विधिनैव तु। पर्यग्निं च ततः कुर्यात्तैरेव नवभिः पुनः॥२१॥
पर्यग्निं च पुनः कुर्यात्तदाज्यमवरोपयेत्। अथापकर्पयेत् पात्रं क्रमेणोत्तरपश्चिमे॥२२॥
संयुज्य चाग्निं काष्ठेन प्रक्षाल्यारोप्य पश्चिमे। आज्यस्योत्पवनं कुर्यात्पवित्राभ्यां सहैव तु॥२३॥

से प्रारम्भ करके आठों दिशाओं में जल के छिड़काव के द्वारा परिसम्मोहन कृत्य किया जाय।।८-१०।। पवित्र यज्ञ के कुश को उसके अग्रभाग सहित पूर्व दिशा में रखे। उसी प्रकार कुशाग्र को पूर्व की ओर करके दक्षिण दिशा में रखे, उसी प्रकार कुशाग्र उत्तर की ओर करके पश्चिम दिशा में रखे और उसी तरह कुशाग्र को पूर्व की ओर करके उत्तर दिशा में रखे।।११।।

इन्द्र के पात्र में दो देवताओं इन्द्र और अग्नि को स्थापित करे। अग्नि के पात्र में यम और अग्नि को, सोम के पात्र में सोम और अग्नि देवता को स्थापित करे। इसके नीचे दो देवता वरुण और अग्नि को स्थापित करके आह्वान करे। हे सुव्रत! पात्रों को दो कुशों पर नीचे की ओर मुँह करके उल्टा करके कुण्ड की ऊपर की ओर उत्तर की दिशा में रखे। उन पर पुष्प फैला दे। शिव के पात्र को दक्षिण में रखे। भक्त मूल से उनकी पूजा करे। उसके बाद होम करे।।१२-१४।। तब प्रोक्षणी पात्र लेकर जल भर दे। उस जल के ऊपर प्रादेश लम्बे दो कुश रख दे।।१५।। 'वसोः सूर्यस्य' मंत्र पढ़ते हुये कुश के अग्र भाग के जल में रखे। विधान के अनुसार सब पात्रों का मुख ऊपर की ओर कर ऊपर जल छिड़के। उसके बाद प्रणीता पात्र को जल से उसको भर दे। हे सुव्रत! अन्य जल को कुश से ढक दे। हाथों और नाक में पात्रों को उठाकर ईशान कोण में रख दे।।१६-१८।। फिर राख सहित कुछ जलते हुये कोयले के अंगारों को पश्चिम से पात्र लेकर उत्तर की ओर लाकर घी को गरम करे।।१९-२०।।

तब वह कुश के दो टुकड़े ले। उसको धोकर फिर उनको घुमाते हुए उनके अग्र भाग को अग्नि में जला दे। नौ कुश के टुकड़ों से अग्नि को प्रज्ज्वलित करे। तब घी के पात्र को अग्नि पर से हटा ले। अग्नि को उत्तर से दक्षिण की ओर रख दे।।२१-२२।।

तब भक्त समिधा की एक टहनी आग पर छुआ कर पश्चिम में रख दे। फिर घी आग पर डालकर उसको उत्पवन कृत्य करे। कुश का छल्ला-सा बनाकर अंगूठा और अनामिका में पहिन ले। दोनों हाथ से घी का पात्र

पृथगादाय हस्ताभ्यां प्रवाहेण यथाक्रमम्। अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु उभाभ्यां मूलविद्यया॥२४॥
अभ्युक्ष्य दापयेदग्नौ पवित्रे घृतपंकिते। सौवर्णं स्रुक्स्रुवं कुर्याद्रत्निमात्रेण सुव्रत॥२५॥
राजतं वा यथान्यायं सर्वलक्षणसंयुतम्। अथवा याज्ञिकैर्वृक्षैः कर्तव्यौ स्रुक्स्रुवावुभौ॥२६॥
अरत्निमात्रमायामं तत्पात्रे तु बिलं भवेत्। षडंगुलपरीणाहं दंडमूलं महामुने॥२७॥
तदर्धं कंठनालं स्यात्पुष्करं मूलवद्भवेत्। गोवालसदृशं दंडं स्रुवाग्रं नासिकासमम्॥२८॥
पुटद्वयसमायुक्तं मुक्ताद्येन प्रपूरितम्। षट्त्रिंशदंगुलायाममष्टांगुलसविस्तरम्॥२९॥
उत्सेधस्तु तदर्धं स्यात्सूत्रेण समितं ततः। सप्तांगुलं भवेदास्यं विस्तरायामतः पुनः॥३०॥
त्रिभागैकं भवेदग्रं कृत्वा शेषं परित्यजेत्। कंठं च द्व्यंगुलायामं विस्तरं चतुरंगुलम्॥३१॥
वेदिरष्टांगुलायामा विस्तारस्तत्प्रमाणतः। तस्य मध्ये बिलं कुर्याच्चतुरंगुलमानतः॥३२॥
बिलं सुवर्तितं कुर्यादष्टपत्रं सुकर्णिकम्। परितो बिलबाह्ये तु पट्टिकार्धांगुलेन तु॥३३॥
तद्बाह्ये च विनिद्रं तु पद्मपत्रविचित्रितम्। यवद्वयप्रमाणेन तद्बाह्ये पट्टिका भवेत्॥३४॥
वेदिकामध्यतो रंध्रं कनिष्ठांगुलमानतः। खातं यावन्मुखांतः स्याद्बिलमानं तु निम्नगम्॥३५॥
दंडं षडंगुलं नालं दंडाग्रे दंडिकात्रयम्। अर्धांगुलविवृद्ध्या तु कर्तव्यं चतुरंगुलम्॥३६॥
त्रयोदशांगुलायामं दंडमूले घटं भवेत्। व्द्यंगुलस्तु भवेत्कुंभो नाभिं विद्याद्दशांगुलम्॥३७॥
वेदिमध्ये तथा कृत्वा पादं कुर्याच्च द्व्यंगुलम्। पद्मपृष्ठसमाकारं पादं वै कर्णिकाकृतिम्॥३८॥

ले ले। कुश की छल्लानुमा अंगूठी (पवित्री) को घी में डुबा ले। तब उसको आग पर डाल दे। हे सुव्रत! एक हाथ लम्बा सोने, चाँदी या यज्ञ में प्रयोग किये जाने वाले पेड़ की लकड़ी का बना हुआ स्रुवा होना चाहिए।।२३-२६।। हे महामुनि! स्रुवा की लम्बाई एक हाथ हो और हैंडिल में एक छेद होना चाहिए।।२७।।

उसका गला तीन अंगुल हो, उसकी जीभ मूल (जड़) की तरह हो। स्रुवा दंड गाय की पूँछ-सा हो। स्रुवा का अग्रभाग नाक के समान हो, उसमें मोती जड़े दो छेद हों। अगर लम्बाई ३६ अंगुल हो तो चौड़ाई ८ अंगुल होनी चाहिए। ऊँचाई उसकी आधी हो वह धागे से युक्त हो। मुख की लम्बाई और चौड़ाई ७ अंगुल हो। सिर का एक तिहाई भाग छोड़कर शेष भाग खुला हुआ रहे। गला लम्बाई में २ अंगुल हो और उसका फैलाव ४ अंगुल हो। वेदी लम्बाई और विस्तार में (फैलाव) आठ अंगुल हो। उसके बीच चार अंगुल चौड़ाई में बिल खोद देना चाहिए।।२८-३२।। बिल पूर्णरूप से गोलाकार हो, वह सुन्दर कर्णिका सहित अष्टदल युक्त हो। बिल के चारों ओर आधा अँगुल की चौड़ाई में बायीं ओर एक पट्टिका होनी चाहिए। उसमें बाहर पद्म पत्र से युक्त खिले हुए कमल हों। उसके बाहर दो जौ बराबर चौड़ाई में पट्टिका होनी चाहिए।।३३-३४।। वेदिका के मध्य में कनिष्ठा ऊँगली के बराबर एक हाथ मुख के अन्त तक हो। बिल नीचे की ओर ढालदार हो।।३५।। दण्ड लम्बाई में छः अंगुल हो और खोखला हो। दण्ड के सिरे पर तीन दंडिका वाली लाइन एक सिरीज में बनाई जाय। उनमें से बाद वाली लाइन पहले से आधा अंगुल बड़ी हो और आखिरी लाइन लम्बाई में चार अंगुल हो। दण्ड के मूल में लम्बाई में तेरह अंगुल एक घड़ा हो। वह घड़ा ऊँचाई में दो अंगुल हो और उसकी नाभि दस अंगुल हो।। वेदी के मध्य बीच में नाभि को इस प्रकार बनाकर दो अंगुल का फैलाव में उसका पैर (पाद) बनावे। कमल के

गजोष्ठसदृशाकारं तस्य पृष्ठाकृतिर्भवेत् अभिचारादिकार्येषु कुर्यात्कृष्णायसेन तु॥३९॥
पंचविंशत्कुशेनैव स्रुक्स्रुवौ मार्जयेत्पुनः। अग्रमग्रेण संशोध्य मध्यं मध्येन सुव्रत॥४०॥
मूलं मूलेन विधिना अग्नौ ताप्य हृदा पुनः। आज्यस्थाली प्रणीता च प्रोक्षणी तिस्र एव च॥४१॥
सौवर्णी राजती वापि ताम्री वा मृन्मयी तु वा। अन्यथा नैव कर्तव्यं शांतिके पौष्टिके शुभे॥४२॥
आयसी त्वभिचारे तु शांतिके मृन्मयी तु वा। षडंगुलं सुविस्तीर्णं पात्राणां मुखमुच्यते॥४३॥

प्रोक्षणी द्व्यंगुलोत्सेधा प्रणीता द्व्यंगुलाधिका।
आज्यस्थाली ततस्तस्या उत्सेधो द्व्यंगुलाधिकः॥४४॥

यैः समिद्भिर्हुतं प्रोक्तं तैरेव परिधिर्भवेत्। मध्यांगुलपरीणाहा अवक्रा निर्व्रणाः समाः॥४५॥
द्वात्रिंशदंगुलायामास्तिस्त्रः परिधयः स्मृताः। द्वात्रिंशदंगुलायामैस्त्रिंशद्दर्भैः परिस्तरेत्॥४६॥
चतुरंगुलमध्ये तु ग्रथितं तु प्रदक्षिणम्। अभिचारादिकार्येषु शिवाग्न्याधानवर्जितम्॥४७॥

अकोमलाः स्थिरा विप्र संग्राह्यास्त्वाभिचारिके।
समग्राः सुसमाः स्थूलाः कनिष्ठांगुलसंमिताः॥४८॥

अवक्रा निर्व्रणाः स्निग्धा द्वादशांगुलसंमिताः। समिधस्थं प्रमाणं हि सर्वकार्येषु सुव्रत॥४९॥
गव्यं घृतं ततः श्रेष्ठं कापिलं तु ततोऽधिकम्। आहुतीनां प्रमाणं तु स्रुवं पूर्णं यथा भवेत्॥५०॥
अन्नमक्षप्रमाणं स्याच्छुक्तिमात्रेण वै तिलः। यवानां च तदर्धं स्यात्फलानां स्वप्रमाणतः॥५१॥

पीठ के समान आकार का दो और पद कर्णिका के आकार का हो। पाद के पीठ वाला भाग हाथी के ओठ के समान हो। अभिचार (काला जादू) आदि कृत्य में यह काले लौह दण्ड से बनाया जाय।।३६-३९।। भक्त उसके बाद पच्चीस कुशों के बण्डल से स्रुव, स्रुवा दोनों को पोंछे। हे सुव्रत! कुशों के सिरे से दण्ड के सिर को मध्य भाग को मध्य से और जड़ भाग को कुशे के जड़ भाग से पीछे हृदय मन्त्र पढ़ते हुए अग्नि में उसको तपाया जाय। तीन पात्र, घृत पात्र, प्रणीता और प्रोक्षणी का पात्र सोने, चाँदी, ताँबा या मिट्टी का बना हो। शान्ति और पौष्टिक कार्य में अन्य धातुओं से यह न बनाया जाय। अभिचार कृत्य में वे पात्र लोहे से बनाये जायँ। ये मिट्टी से बने हुए हों। इन पात्रों का मुख चौड़ाई में छः अंगुल हो।।४०-४३।। प्रोक्षणी पात्र ऊँचाई में दो अंगुल हो। प्रणीता पात्र की ऊँचाई चार अंगुल हो। घृत पात्र (आज्य स्थाली) की उँचाई छः अंगुल हो।।४४।। जिन लकड़ियों से किनारा खींचा गया उन्हीं लकड़ियों का होम में प्रयोग किया जाय। लकड़ी के वे टुकड़े बीच के ऊँगली के बराबर सीधे हों और उनमें छेद न हो। लम्बाई में एक समान हों।।४५-४६।। तीन परिधि वाले प्रत्येक बत्तीस अंगुल लम्बाई में है, तीस कुश प्रत्येक बत्तीस अंगुल नाप में चारों ओर फैलाना चाहिए।।४७।। हे ब्राह्मण! अभिचार कृत्य में कड़ी मजबूत टहनियाँ प्रयोग की जानी चाहिए। वे समूची मुलायम और मजबूत न हो। छोटी ऊँगली के बराबर लम्बाई में टुकड़े इकट्ठा करना चाहिए। हे सुव्रत! अन्य कृत्यों में बारह अंगुल की लम्बाई वाले चिकनी और बिना छिद्र समिधा को इकट्ठा किया जाना चाहिए।।४८-४९।। गाय के दूध का बना हुआ घी शुद्ध होता है। कपिला गाय के दूध का घी उससे भी अच्छा होता है। प्रत्येक आहुति के लिए घी स्रुवा भरकर होना चाहिए।।५०।। अन्न (चावल) अक्ष के बराबर और तिल शुक्ति (सीप) के बराबर हो, जौ के दाने परिमाण

क्षीरस्य मधुनो दध्नः प्रमाणं घृतवद्भवेत्। चतुः स्रुवप्रमाणेन स्रुवा पूर्णाहुतिर्भवेत्॥५२॥
तदर्धं स्विष्टकृत्प्रोक्तं शेषं सर्वमथापि वा। शांतिकं पौष्टिकं चैव शिवाग्नौ जुहुयात्सदा॥५३॥
लौकिकाग्नौ महाभाग मोहनोच्चाटनादयः। शिवाग्निं जनयित्वा तु सर्वकर्मणि सुव्रत॥५४॥
सप्त जिह्वाः प्रकल्प्यैव सर्वकार्याणि कारयेत्। अथवा सर्वकार्याणि जिह्वामात्रेण सिध्यति॥५५॥
शिवाग्निरिति विप्रेंद्रा जिह्वामात्रेण साधकः॥५६॥
ॐ बहुरूपायै मध्यजिह्वायै अनेकवर्णायै दक्षिणोत्तरमध्यगा कपौष्टिकमोक्षादिफलप्रदायै स्वाहा॥५७॥
ॐ हिरण्यायै चामीकराभायै ईशानजिह्वायै ज्ञानप्रदायै स्वाहा॥५८॥
ॐ कनकायै कनकनिभायै रम्यायै ऐंद्राजिह्वायै स्वाहा॥५९॥
ॐ रक्तायै रक्तवर्णायै आग्नेयजिह्वायै अनेकवर्णायै विद्वेषणमोहनायै स्वाहा॥६०॥
ॐ कृष्णायै नैर्ऋतजिह्वायै मारणायै स्वाहा॥६१॥
ॐ सुप्रभायै पश्चिमजिह्वायै मुक्ताफलायै शांतिकायै पौष्टिकायै स्वाहा॥६२॥
ॐ अभिव्यक्तायै वायव्यजिह्वायै शत्रूच्चाटनायै स्वाहा॥६३॥
ॐ वह्नये तेजस्विने स्वाहा॥६४॥
एतावद्वह्निसंस्कारमथवा वह्निकर्मसु। नैमित्तिके च विधिना शिवाग्निं कारयेत्पुनः॥६५॥
निरीक्षणं प्रोक्षणं ताडनं च षष्ठेन फडंतेन अभ्युक्षणं चतुर्थेन खननोत्किरणं षष्ठेन पूरणं समीकरणमाद्येन सेचनं वौषडंतेन कुट्टनं षष्ठेन संमार्जनोपलेपने तुरीयेण कुंडपरिकल्पनं निवृत्त्या त्रिभिरेव कुंडपरिधानं

में उसके आधे में, फल अपने प्रमाण में हो।।५१।। दूध का परिमाण, मधु और दही घी के परिमाण के समान हो, चार स्रुवा के नाप के बराबर स्रुवा से पूर्णाहुति दी जाय।।५२।। उसका आधा शेष स्विष्ट कृत्य कहलाता है जो कि पूर्णाहुति के बाद यज्ञ की अग्निकुंड में डाल दिया जाता है। शान्ति और पौष्टिक कृत्य के निमित्त होम सदा शिवाग्नि में करना चाहिए।।५३।। हे महाभाग! मोहन उच्चाटन आदि के निमित्त होम लौकिक अग्नि में किया जाना चाहिए। हे सुव्रत! प्रत्येक कृत्य में शिवाग्नि उत्पन्न करनी चाहिए। सात जिह्वाओं को बनाकर सब कृत्यों को पूरा करना चाहिए अथवा एक जिह्वा मात्र वाली अग्नि से सब कार्य सिद्ध होते हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! साधक जिह्वा मात्र के द्वारा शिवाग्नि प्राप्त कर सकता है।।५४-५६।।

इसके बाद मूल संस्कृत में लिखित श्लोक ५७ से ६४ के मंत्रों से हवन करे।।५७-६४।।

यहाँ तक अग्नि के संस्कार (शुद्धि) का वर्णन किया गया। भक्त शिवाग्नि को नैमित्तिक कृत्य के लिए निर्धारित विधि से उत्पन्न करे।।६५।। प्रोक्षण (जल का छिड़काव) और ताडन छठवें बीज मन्त्र के द्वारा फट् अन्त से समाप्त करते हुए पूरा करे। प्रोक्षण कृत्य चौथे बीज मन्त्र द्वारा, खनन और उत्किरण कृत्य छठवें बीज मन्त्र द्वारा, पूरण (भरना) और समतल करना प्रथम बीज मन्त्र द्वारा, सेचन वौषट् मंत्र के द्वारा, कूटना छठवे बीज मन्त्र

चतुर्थेन कुंडार्चनमाद्येन रेखाचतुष्टयसंपादनं षष्ठेन फडंतेन वज्रीकरणं चतुष्पदापादनमाद्येन एवं कुंडसंस्कारमष्टादशविधम्।।६६।।
कुंडसंस्कारानंतरमक्षपाटनं षष्ठेन विष्टरन्यासमाद्येन वज्रासने वागीश्वर्यावाहनम्।।६७।।
ॐ ह्रीं वागीश्वरीं श्यामवर्णां विशालाक्षीं यौवनोन्मत्तविग्रहाम्।
ऋतुमतीं वागीश्वरशक्तिमावाहयामि।।६८।।
वागीश्वरीं पूजयामि।।६९।।
पुनर्वागीश्वरावाहनम् ।।७०।।
एकवक्त्रं चतुर्भुजं शुद्धस्फटिकाभं वरदाभयहस्तं परशुमृगधरं जटामुकुटमंडितं सर्वाभरणभूषितमावाहयामि।।७१।।
ॐ ईं वागीश्वराय नमः। आवाहनस्थापनसन्निधानसन्निरोध-पूजांतं वागीश्वरीं संभाव्य गर्भाधानवह्निसंस्कारम्।।७२।।
अरणीजनितं कांतोद्भवं वा अग्निहोत्रजं वा ताम्रपात्रे शरावे वा आनीय निरीक्षणताडनाभ्युक्षणप्रक्षालनमाद्येनक्रव्यादाशिवपरित्यागोपि प्रथमेन वह्नेस्त्रैकारणं जठरभ्रूमध्यादावाह्याग्निं वैकारणमूर्तावाग्रेयेन उद्दीपनमाद्येन पुरुषेण संहितया धारणा धेनुमुद्रां तुरीयेणावगुंठ्य जानुभ्यामवनिं गत्वा शरावोत्थापनं कुंडोपरि निधाय प्रदक्षिणमावर्त्य तुरीयेणात्मसम्मुखां वागीश्वरीं गर्भनाड्यां गर्भाधानांतरीयेण कमलप्रदानमाद्येन वौषडंतेन कुशार्घ्यं दत्त्वा इंधनप्रदानमाद्येन प्रज्वालनं

द्वारा, सम्मार्जन (बुहारना) चौथे बीज मन्त्र द्वारा, यज्ञ कुंड का परिकल्पन निवृत्त से प्रारम्भ करते हुए तीन कलाओं के द्वारा, चौथे बीज मन्त्र द्वारा कुंड परिधान, कुंड की अर्चना प्रथम बीज मन्त्र द्वारा, चार रेखाओं का सम्पादन फट् के अन्त सहित छठवें बीज मन्त्र द्वारा किया जाय। इस प्रकार यज्ञ कुंड का संस्कार अट्ठारह प्रकार से होता है।।६६।। यज्ञ के संस्कार के बाद अक्षपाटन (फाड़ना) कृत्य छठवे बीज मन्त्र द्वारा, विष्टर (आसन) देना प्रथम बीज मन्त्र द्वारा किया जाय, तब वागीश्वरी देवी का आह्वान वज्र आसन पर किया जाय।।६७।। ओम् ह्रीं वागीश्वराय नमः। बागेश्वरी का ध्यान करते हुए आह्वान, स्थापन, संविधान, संनिरोध संस्कार पूरा किया जाय।।६८-७२।। लकड़ी से या कान्त (एक प्रकार के लोह) से अथवा अग्नि होत्र से अग्नि उत्पन्न करके ताम्र पात्र या मिट्टी के प्याले में ले आवे। इसके बाद प्रथम बीज मन्त्र द्वारा निरीक्षण तांडन अभ्युक्षण और प्रक्षालन कृत्य किया जाय। दैत्य (दानव) और अशिव (असुर) वस्तुओं का दूरीकरण प्रथम बीज मन्त्र द्वारा किया जाय। अग्नि को तीन भागों में विभक्त करे। जठर (पेट) और भौहों के मध्य से अग्नि का आह्वान करे। विश्व के कारण, लिंग में उद्दीपन कृत्य अग्नि से सम्बन्धित प्रथम बीज मन्त्र द्वारा किया जाय। धारणा और धेनुमुद्रा कृत्य को पुरुष मन्त्र और संहिता मन्त्र द्वारा पूर्ण किया जाय। पात्र को चौथे बीज मन्त्र द्वारा ढक दिया जाय। भक्त घुटने के बल

गर्भाधानं चसद्येनाद्येन पूजनं पुंसवनं वामेन पूजनं द्वितीयेन सीमंतोन्नयनमघोरेण तृतीयेन पूजनम्।।७३।।

अवयवव्याप्तिवक्त्रोद्घाटनं वक्त्रनिष्कृतिरिति तृतीयेन गर्भजातकर्मपुरुषेण पूजनं तुरीयेण षष्ठेन प्रोक्षणं सूतकशुद्धये चाग्निसूनुरक्षाकुशास्त्रेण वक्त्रेणाऽग्नौ मूलमीशाग्रं नैर्ऋतिमूलं वायव्याग्रं वायव्यमूलमीशाग्रमिति कुशास्तरणमितिपूर्वोक्त मिध्ममग्रमूलघृताक्तं लालापनोदाय षष्ठेन जुहुयात्।।७४।।

पंचपूर्वातिक्रमेण परिधिविष्टरन्यासोऽपि आद्येन विष्टरोपरि हिरण्यगर्भहरनारायणानपि पूजयेत्।।७५।।

इंद्रादिलोकपालांश्च पूजयेत्।।७६।।

वज्रावर्तपर्यंतानपि पूजयेत्।।७७।।

वागीश्वरवागीश्वरीपूजाद्येनमुद्वास्य हुतं विसर्जयेत्।।७८।।

स्त्रुक्स्त्रुवसंस्कारमथो निरीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणादीनि पूर्ववत् स्त्रुक् स्त्रुवं च हस्तद्वये गृहीत्वा संस्थापनमाद्येन ताडनमपि

झुककर शराव (प्याला) को उठाकर यज्ञ कुण्ड पर रखे। उसके बाद चौथे बीज मन्त्र द्वारा, अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा करे। इसके बाद भक्त स्वयं अपने सामने बागेश्वरी देवी का ध्यान करे। गर्भ नाड़ी में गर्भाधान कृत्य करे। प्रथम बीज मन्त्र वौषट् से अन्त होने वाले के द्वारा कमल भेंट करे। तब भक्त कुश द्वारा अर्घ्य करे। प्रथम बीज मन्त्र द्वारा अग्नि को ईंधन प्रदान करे। अग्नि का प्रज्ज्वलन और गर्भाधान सद्य मन्त्र द्वारा, पूजा कृत्य प्रथम बीज मन्त्र द्वारा, पुंसवन कृत्य वाम मन्त्र द्वारा, पूजा कृत्य द्वितीय बीज मन्त्र द्वारा, सीमंतोन्नयन अघोर मन्त्र द्वारा और पूजा तृतीय मन्त्र द्वारा की जाय।।७३।।

अवयवों (अंगों) की व्याप्ति मुख का उद्घाटन और मुख की विकृति (हटाने का) कार्य तृतीय बीज मंत्र द्वारा किया जाय। गर्भजात कर्म पुरुष मंत्र द्वारा, पूजा कृत्य चतुर्थ बीज मंत्र द्वारा की जाय। सूतक शुद्धि पुष्कर कृत्य छठवें बीज मंत्र द्वारा किया जाय। वक्त्र मंत्र द्वारा कुश मिलाकर रक्षाकृत्य किया जाय। कुशों को इस प्रकार बिछाया जाय। कुश का सिरा उत्तर-पूर्व की ओर, उसकी जड़ दक्षिण-पूर्व, एक कुश की जड़ दक्षिण-पश्चिम और कुश का सिरा उत्तर की ओर हो। एक कुश की जड़ उत्तर-पश्चिम और उसका सिरा उत्तर पूर्व हो। इस प्रकार कुशास्तरण कृत्य किया जाय। कुश के जड़ और सिरे को दही से भर करके छठवें बीज के मंत्र द्वारा अशुभ दूर करने के लिए पूर्वोक्त विधि से होम करे।।७४।। प्रथम परिधि विष्टर कृत्य पूरा करे। बीज मंत्र के साथ पंचपूर्वा की अतिक्रम के द्वारा विष्टर पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश की भी पूजा करे।।७५।। भक्त रुद्र से प्रारम्भ करके दिग्पालों और उनके वज्र से आवर्त (त्रिशूल) सहित अस्त्रों का भी पूजन करे। वागीश्वर और वागीश्वरी की पूजा इस प्रकार पूरी करे। इसके बाद उनका विसर्जन करे।।७६-७८।।

स्रुकस्रुवोपरि दर्भानुलेखनमूलमध्यामाऽग्रेण त्रित्वेन स्रुक्शक्तिं
स्रुवमपि शंभुं दक्षिणपार्श्वे कुशोपरि शक्तये नमः शंभवे नमः।।७९।।
ततो ह्यन्तिसूत्रेण स्रुकस्रुवौ तुरीयेण वेष्टयेदर्चयेच्च।।८०।।
धेनुमुद्रां दर्शयित्वा तुरीयेणावगुंठ्य षष्ठेन रक्षां विधाय स्रुक्स्रुवसंस्कारः पूर्वमेवोक्तः।।८१।।
पुनराज्यसंस्कारः पूर्वमेवोक्त निरीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणादीनि पूर्ववत्।।८२।।
आज्यप्रतापनमैशान्यां वा षष्ठेन वेद्युपरि विन्यस्य घृतपात्रं
वितस्तिमात्रं कुशपवित्रं वामहस्तांगुष्ठानामिकाग्रं गृहीत्वा दक्षिणां-
गुष्ठानामिकामूलं गृहीत्वाग्निज्वालोत्पवनं स्वाहांतेन तुरीयेण
पुनः षड् दर्भान् गृहीत्वा पूर्ववत्स्वात्मसंप्लवनं स्वहांतेनाद्येन
कुशद्वयपवित्रबंधनं चाद्येन घृते न्यसेदिति पवित्रीकरणम्।।८३।।
दर्भद्वयं प्रगृह्याग्निप्रज्वालनं घृतं त्रिधा वर्तयेत्। संप्रोक्ष्याग्नौ निधापयेदिति नीराजनम्।।८४।।
पुनर्दर्भान् गृहीत्वा कीटकादि निरीक्ष्यार्घ्येण संप्रोक्ष्य दर्भानग्नौ निधाय इत्यवद्योतनम्।।८५।।
दर्भद्वयं गृहीत्वाग्निज्वालया घृतं निरीक्षयेत्।।८६।।
दर्भेण गृहीत्वा तेनाग्रद्वयेन शुक्लपक्षद्वयेनाद्येनेति कृष्णपक्ष-
संपातनं घृतं त्रिभागेन विभज्य स्रुवेणैकभागेनाज्येनाग्नये स्वाहा

इसके आगे सूक्त स्रुव संस्कार कृत्य किया जाय। निरीक्षण, प्रोक्षण, ताडन, अभ्युक्षण आदि कृत्य पूर्ववत् किया जाय। स्रुक् स्रुवों को हाथों में लेकर पकड़े। प्रथम बीज मंत्र द्वारा संस्थापन और ताडन (कृत्य) किया जाय। स्रुव को कुश की जड़ मध्य और सिरे से तीन बार ताडन करे। उसके बाद शक्तये नमः ओम् शंभवे नमः मंत्र पढ़कर शिव के दाहिनी ओर स्रुव को कुश पर रख दे। उसके बाद भक्त स्रुवों को सूत से अपने हाथ से चतुर्थ बीज मंत्र पढ़कर बाँधे और उनकी पूजा करे।।७९-८०।। तब भक्त धेनुमुद्रा दिखाये। चतुर्थ बीज मंत्र से उसको ढके और छठे बीज मंत्र द्वारा रक्षा कृत्य करे। शुद्धिकरण कृत्य को तुमको पहले ही बताया गया है। पूर्वोक्त है। निरीक्षण प्रोक्षण, ताडन और अभ्युक्षण पूर्ववत् होगा।।८१-८२।।

छठवें बीज मंत्र द्वारा उत्तर-पूर्व में धृत के तापन (गर्म करने का संस्कार) घृत के पात्र को वेदी पर रखे। एक लम्बे कुश की गोली अँगूठी की तरह कुंडली बनावे। भक्त उसके सिरे को बाये हाथ के अँगूठे और अनामिका से पकड़े और उसकी जड़ को दायें हाथ के अँगूठे और अनामिका से पकड़े। चतुर्थ बीज मंत्र स्वाहा के मंत्र होने वाले अग्नि की ऊपर ज्वाला (लपक) का उत्पवन (फूँकना) कृत्य पूरा किया जाय। फिर वह छह कुशों को लेकर स्वाहान्त प्रथम बीज मंत्र द्वारा पूर्ववत् आत्म सम्पत्र कृत्य करे। दो कुशों का पवित्र बंधन कृत्य प्रथम बीज मंत्र से किया जाय। दो कुशों के अग्र भाग को आपस में बाँधकर उसकी कुंडली को घी में रख दे। यह पवित्रीकरण है।।८३।। भक्त दो कुशों को लेकर उसके अग्रभाग को जला करके वह वेदी के चारों ओर तीन बार घुमाये। उसके बाद जल छिड़ककर घी से डूबो कर अग्नि में डाल दे। यह नीराजन कृत्य है।।८४।। अब भक्त कुशों को लेकर उसमें कीड़े आदि न हो, यह देखकर अर्घ्य जल से धोकर उनको अग्नि में डाल दें। यह उद्योतन कृत्य है। तब भक्त

द्वितीयेनाज्येन सोमाय स्वाहा आज्येन ॐ अग्नीसोमाभ्यां स्वाहा आज्येनाग्नये स्विष्टकृते स्वाहा॥८७॥
पुनः कुशेन गृहीत्वा संहिताभिमंत्रेण नमोन्तेनाभिमंत्रयेत्॥८८॥
अभिमंत्र्य धेनुमुद्राप्रदर्शनकवचावगुंठनास्त्रेण रक्षाम्। अथ संस्कृते निधापयेत् आज्यसंस्कारः॥८९॥
आज्येन स्रुग्वदनेन चक्राभिधारणं शक्तिबीजादीशानमूर्तये स्वाहा। पूर्ववत्पुरुषवक्त्राय स्वाहा अघोरहृदयाय स्वाहा वामदेवाय गुह्याय स्वाहा सद्योजातमूर्तये स्वाहा। इति वक्त्रोद्घाटनम्॥९०॥
ईशानमूर्तये तत्पुरुषवक्त्राय स्वाहा तत्पुरुषवक्त्राय अघोरहृदयाय स्वाहा अघोरहृदयाय वामगुह्याय सद्योजातमूर्तये स्वाहा इति वक्त्रसंधानम्॥९१॥
ईशानमूर्तये तत्पुरुषाय वक्त्राय अघोरहृदयाय वामदेवाय गुह्याय सद्योजाताय स्वाहा इति वक्त्रैक्यकरणम्॥९२॥
शिवाग्निं जनयित्वैवं सर्वकर्माणि कारयेत्। केवलं जिह्वया वापि शांतिकाद्यानि सर्वदा॥९३॥
गर्भाधानादिकार्येषु वह्नेःप्रत्येकमव्यय। दश आहुतयो देया योनिबीजेन पंचधा॥९४॥
शिवाग्नौ कल्पयेद्दिव्यं पूर्ववत्परमासनम्। आवाहनं तथा न्यासं यथा देवे तथार्चनम्॥९५॥

दो कुशों के सिरे को कुछ घी मिलाकर मुख के दो भाग शुक्ल (सफेद) और एक भाग काला (कृष्ण) रूप में स्मरण करे। वह घृत को ३ भागों में विभक्त करें। स्रुवा के एक भाग को घी को लेकर अग्नये स्वाहा पढ़कर अग्नि में डाले। द्वितीय भाग को धृत से सोमाय स्वाहा पढ़कर अग्नि में डाले। घी के तृतीय भाग को ॐ अग्निसोमाभ्याम् स्वाहा अग्नये स्वाहा स्विष्ट कृते स्वाहा मंत्र को पढ़कर अग्नि में डाले (आहुति करे)।।८५-८७।।

भक्त फिर कुश के अग्रभाग से घी लेकर उसको नमः अन्तयुक्त संहिता मंत्र से अभिमंत्रित करे। कवच मुद्रा और धेनुमुद्रा कृत्यों का प्रदर्शन और कवच मुद्रा से ढके और अस्त्र मंत्र से रक्षा को करे। यह पवित्र घी पर रखे। यह आज्य संस्कार है। तब मुख का उद्घाटन (वक्त्र उद्घाटन) संस्कार करे। स्रुवा के मुख से घी को शक्तिबीज मंत्र से चारों ओर घुमाना (चक्राभिधारण) ईशान मूर्तये स्वाहा, पूर्ववत् पुरुषवक्त्राय स्वाहा, अघोर हृदयाय स्वाहा, वामदेवाय गुह्याय, सद्योजाताय स्वाहा। प्रत्येक स्वाहा मंत्र से घी की आहुति दे। यह तुष्टीकरण या संघान कृत्य है।।८८-९०।। ईशान मूर्तये तत्पुरुषाय वक्त्राय अघोर हृदयाय वामदेवाय प्रणवाय सद्योजाताय स्वाहा। यह वक्त्रैककरण कृत्य है।।९१-९२।।

भक्त शिवाग्नि उत्पन्न करके इस प्रकार सदा सब कार्यों को करे अथवा केवल एक जिह्वा अग्नि से सब शान्तिपुष्टिक आदि कार्य करे।।९३।।

हे अव्यय! गर्भाधान आदि के संस्कार में प्रत्येक के लिए दस आहुति अग्नि में दी जानी चाहिये। योनि बीज मंत्र से शिवाग्नि में पाँच प्रकार से पूर्ववत् परम दिव्य आशा की कल्पना (धारण) करे। पूजा में कथित पूर्वविधि से देव का आह्वान और उद्वासन करे। भक्त एक बार मूल मंत्र का जाप करके देवों के स्वामी को प्रणाम करे।

मूलमंत्रं सकृज्जप्त्वा देवदेवं प्रणम्य च। प्राणायाम त्रयं कृत्वा सगर्भं सर्वसंमतम्॥९६॥
परिषेचनपूर्वं च तदिध्ममाभिधार्य च। जुहुयादग्निमध्ये तु ज्वलितेऽथ महामुने॥९७॥
आधारावपि चाधाय चाज्येनैव तु षण्मुखे। आज्यभागौ तु जुहुयाद्विधिनैव घृतेन च॥९८॥
चक्षुषी चाज्यभागौ तु चाग्नये च तथोत्तरे। आत्मनो दक्षिणे चैव सोमायेति द्विजोत्तम॥९९॥
प्रत्यङ्मुखस्य देवस्य शिवाग्नेर्ब्रह्मणः सुत। अक्षि वै दक्षिणं चैव चोत्तरं चोत्तरं तथा॥१००॥
दक्षिणं तु महाभाग भवत्येव न संशयः। आज्येनाहुतयस्तत्र मूलेनैव तथैव तु॥१०१॥
चरुणा च यथावद्धि समिद्भिश्च तथा स्मृतम्। पूर्णाहुतिं ततो दद्यान्मूलमंत्रेण सुव्रत॥१०२॥
सर्वावरणदेवानां पंचपंचैव पूर्ववत्। ईशानादिक्रमेणैव शक्तिबीजक्रमेण च॥१०३॥
प्रायश्चित्तमघोरेण स्वेष्टांतं पूर्ववत्स्मृतम्। त्रिप्रकारं मया प्रोक्तमग्निकार्यं सुशोभनम्॥१०४॥
यथावसरमेवं हि कुर्यान्नित्यं महामुने। जीवितांते लभेत्स्वर्गं लभते अग्निदीपनम्॥१०५॥
नरकं चैव नाप्नोति यस्य कस्यापि कर्मणः। अहिंसकं चरेद्धोमं साधको मुक्तिकांक्षकः॥१०६॥
हृदिस्थं चिंतयेदग्निं ध्यानयज्ञेन होमयेत्। देहस्थं सर्वभूतानां शिवं सर्वजगत्पतिम्॥१०७॥
तं ज्ञात्वा होमयेद्भक्त्या प्राणायामेन नित्यशः। बाह्यहोमप्रदाता तु पाषाणे दर्दुरो भवेत्॥१०८॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे पंचविंशतितमोऽध्यायः॥२५॥

ओम् को दोहराते हुए सगर्भ प्रकार का तीन प्राणायाम करे जो सब योगियों से सम्मत है। जल छिड़कने के बाद यज्ञ की समिधाओं पर घी डाले। हे महामुनि! तब भक्त प्रज्वलित अग्नि में हवन करे।।९४-९७।।

भक्त पात्रों के साथ घी को ले ले। दो भागों को एक साथ सब छः मुखों में विधान के साथ अग्नि में डाल दे। हे महामुनि! दो भागों को एक साथ दक्षिण-पूर्व में और उत्तर दो आँखें हैं। अपने दक्षिण में सोम के लिए आहुति दे दे।।९८-९९।। तब हे ब्रह्मा के पुत्र! घी के दो भाग शिवाग्नि के पश्चिम मुख बैठे हुए देवता शिव के दो नेत्र दाहिना और बाँया है। निसन्देह ऐसा है। मूल मन्त्र को पढ़ते हुए दस आहुतियाँ दी जानी चाहिए। चरु और समिधाओं से यथावत् आहुति दी जाने चाहिए। हे सुव्रत! तक भक्त को मूल मन्त्र से पूर्ण आहुति देनी चाहिए। शिव के चारों ओर धिरे हुए देवताओं के ईशान आदि क्रम से शक्ति बीज मन्त्र के क्रम से प्रत्येक के लिए पाँच-पाँच आहुतियाँ दी जानी चाहिये। अघोर मन्त्र द्वारा प्रायश्चित किया जाय। इस प्रकार मैंने तीन प्रकार के उत्तम अग्नि कार्यों को बताया। हे महामुनि! जैसा अवसर मिले इनको प्रतिदिन करना चाहिये। मुक्ति की काँक्षा करने वाला साधक भक्त जीवन के अन्त में मुक्ति प्राप्त कर सकता है। वह अग्नदीपन की शक्ति प्राप्त कर सकता है। उसका कर्म कुछ भी हो वह कभी नरक में नहीं जाता है। मुक्ति की काँक्षा करने वाले साधक को अहिंसक होम करना चाहिए। हृदय में स्थित अग्निदेव का ध्यान लगाना चाहिए। ध्यान यज्ञ होम करना चाहिए। सब प्राणियों में विद्यमान शिव का अनुभव करते हुए, विश्व स्वामी को जानकर भक्तिपूर्वक प्रतिदिन प्राणायाम से होम करना चाहिए। वह जो कि बाह्य होम करता है वह पत्थर में मेढक होता है।।१००-१०८।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव सम्बन्धित पवित्र अग्रिहोत्र नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त॥२५॥

षड्विंशतितमोऽध्यायः

अघोरस्य पूजाविधिः

शैलादिरुवाच

अथवा देवमीशानं लिंगे संपूजयेच्छिवम्। ब्राह्मणः शिवभक्तश्च शिवध्यानपरायणः॥१॥
अग्निरित्यादिना भस्म गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम्। उद्धूलयेद्धि सर्वांगमापादतलमस्तकम्॥२॥
आचामेद्ब्रह्मतीर्थेन ब्रह्मसूत्री ह्युदङ्मुखः। अथोंनमः शिवायेति तनुं कृत्वात्मनः पुनः॥३॥
देवं च तेन मंत्रेण पूजयेत्प्रणवेन च। सर्वस्मादधिका पूजा अघोरेशस्य शूलिनः॥४॥
सामान्यं यजनं सर्वमग्निकार्यं च सुव्रत। मंत्रभेदः प्रभोस्तस्य अघोरध्यानमेव च॥५॥

मंत्रः

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥६॥

अघोरेभ्यः प्रशांतहृदयाय नमः।
अथ घोरेभ्यः सर्वात्मब्रह्मशिरसे स्वाहा।
घोरघोरतरेभ्यः ज्वालामालिनी शिखायै वषट्।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यः पिंगलकवचाय हुम्।
नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः नेत्रत्रयाय वषट्।
सहस्त्राक्षाय दुर्भेदाय पाशुपतास्त्राय हुं फट्।

स्नात्वाचम्य तनुं कृत्वा समभ्युक्ष्याघमर्षणम्। तर्पणं विधिना चार्घ्यं भानवे भानुपूजनम्॥७॥

छब्बीसवाँ अध्याय

अघोर पूजा की विधि

शैलादि बोले

शिव के ध्यान में परायण ब्राह्मण और शिव भक्त लिंग में ईशान भगवान शिव की पूजा करे।।१।। 'अग्नि' इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए अग्निहोत्र की अग्नि से भस्म को लेकर पैर से लेकर मस्तक तक उस भस्म को लगाये।।२।। वह यज्ञोपवीत धारण करे। उत्तर की ओर मुख करके ब्रह्म तीर्थ के पवित्र जल से आचमन करे। इसके बाद ओम नमः शिवाय पढ़कर के अपने शरीर को अभिमन्त्रित करे।।३।। वह उस मन्त्र से और प्रणव से देव शिव की पूजा करे। अघोरेश शिव की पूजा सबसे अधिक महत्त्व की है।।४।। हे सुव्रत! सही पूजा और आदि निमित्त पवित्र संस्कार सामान्य है। किन्तु अघोर के ध्यान में मन्त्रों में भेद है।।५।। 'अघोरेभ्यः प्रशान्तहृदाय नमः' से आरम्भ करके 'पाशुपतास्त्राय हुं फट्' तक मंत्र पढ़ कर ध्यान करे। स्नान के बाद अघमर्षण का संस्कार पूरे शरीर पर जल छिड़ककर और आचमन करके तर्पण कृत्य सूर्य को अर्घ्य और सूर्य की पूजा करे। अघोर की

समं चाघोरपूजायां मंत्रमात्रेण भेदितम्। मार्गशुद्धिस्तथा द्वारि पूजां वास्त्वधिपस्य च॥८॥
कृत्वा करं विशोध्याग्रे सशुभासनमास्थितः। नासाग्रकमले स्थाप्य दग्धाक्षः क्षुभिकाग्निना॥९॥
वायुना प्रेर्य तद्भस्म विशोध्य च शुभांभसा। शक्त्यामृतमये ब्रह्मकलां तत्र प्रकल्पयेत्॥१०॥
अघोरं पंचधा कृत्वा पंचांगसहितं पुनः। इत्थं ज्ञानक्रियामेवं विन्यस्य च विधानतः॥११॥
न्यासस्त्रिनेत्रसहितो हृदि ध्यात्वा वरासने। नाभौ वह्निगतं स्मृत्वा भ्रूमध्ये दीपवत्प्रभुम्॥१२॥
शांत्या बीजांकुरानंतधर्माद्यैरपि संयुते। सोमसूर्याग्निसंपन्ने मूर्तित्रयसमन्विते॥१३॥
वामादिभिश्च सहिते मनोन्मन्याप्यधिष्ठिते। शिवासनेत्ममूर्तिस्थमक्षयाकाररूपिणम्॥१४॥
अष्टत्रिंशत्कलादेहं त्रितत्त्वसहितं शिवम्। अष्टादशभुजं देवं गजचर्मोत्तरीयकम्॥१५॥
सिंहाजिनांबरधरमघोरं परमेश्वरम्। द्वात्रिंशाक्षररूपेण द्वात्रिंशच्छक्तिभिर्वृतम्॥१६॥
सर्वाभरणसंयुक्तं सर्वदेवनमस्तकृतम्। कपालमालाभरणं सर्पवृश्चिकभूषणम्॥१७॥
पूर्णेंदुवदनं सौम्यं चंद्रकोटिसमप्रभम्। चंद्ररेखाधरं शक्त्या सहितं नीलरूपिणम्॥१८॥

हस्ते खड्गं खेटकं पाशमेके रत्नैश्चित्रं चांकुशं नागकक्षाम्।
शरासनं पाशुपतं तथास्त्रं दंडं च खट्वांगमथापरे च॥१९॥
तंत्रीं च घंटां विपुलं च शूलं तथापरे डामरुकं च दिव्यम्।
वज्रं गदां टंकमेकं च दीप्तं समुद्गरं हस्तमथास्य शंभोः॥२०॥

पूजा में सर्व सामान्य है कि केवल पढ़े जाने वाले मन्त्रों में भेद है। मार्ग शुद्धि संस्कार और वास्त्वधिप (निवास के पास रहने वाले देव) की द्वार पूजा को पहले किया जाय।।६-८।। यह पूजा करके भक्त अपने हाथ को धो डाले। शिव आसन पर बैठे कमल के समान नाक के ऊपर भस्म लगावे। क्षुभिका अग्नि से दग्धाक्ष हवा से अपनी आँखों पर से उसको उड़ने दे। उस भस्म को शुद्ध जल से शुद्ध करे। तब शक्ति के द्वारा अमृतमय रस में ब्रह्म कला की कल्पना करे। फिर अघोर मन्त्र को पाँच भागों में विभक्त करके और पाँच अंगों के सहित अंगन्यास करे। इस प्रकार विधान के अनुसार ज्ञान क्रिया को करके इस प्रकार हृदय में स्थित देव को, नाभि पर अग्नि में स्थित और बाहों के बीच में दीप के समान चमकते हुए प्रभु का ध्यान करे। यह त्रिनेत्र न्यास कहलाता है।।९-१२।। तब भक्त अघोर पर निम्नलिखित रूप में ध्यान करे। वह शिवासन पर बैठे जो शान्ति, बीज, अंकुर, अनन्त धर्म और अन्य आदि से संयुक्त हैं, जहाँ चन्द्र, सूर्य और अग्नि उपस्थित हैं, जहाँ त्रिमूर्ति विराजमान है जो वामदेव और आदि अन्य के सहित मनोन्मनी भी उपस्थित है। अघोर आत्ममूर्ति में स्थित है, उनका रूप अक्षय है, उनका शरीर अढ़तीस कलाओं का है, वह तीन तत्त्वों के सहित है उनकी अठारह भुजाएँ हैं, वह अपने उत्तरीय के ऊपर गज चर्म ओढ़े हुए हैं, वह सिंह के चर्म को वस्त्र रूप में धारण किये हुए है। अघोर, परमेश्वर बत्तीस शक्तियों से जो कि बत्तीस अक्षर रूप में हैं उनसे घिरे हुए है। वह सब आभूषणों से भूषित हैं। वह सब देवताओं द्वारा नमस्कृत हैं। कपाल माला धारण किये हुए और साँप और बिच्छुओं को आभूषण रूप में पहने हुए हैं। उनके मुख सौम्य हैं और मुख की प्रभा कोटि चन्द्रमा के समान है वह चन्द्र रेखा को सिर पर धारण किये हुए है। वह नील रूप में है और शक्ति उनके साथ है। अपने दाहिने हाथ में तलवार, खेटक, (ढाल) पाश रत्नों से जड़ा हुआ

वरदाभयहस्तं च वरेण्यं परमेश्वरम्। भावयेत्पूजयेच्चापि वह्नौ होमं च कारयेत्॥२१॥
होमश्च पूर्ववत्सर्वो मंत्रभेदश्च कीर्तितः। अष्टपुष्पादि गंधादि पूजास्तुतिनिवेदनम्॥२२॥
अंतर्बलिं च कुंडस्य वाह्नेयेन विधानतः। मंडलं विधिना कृत्वा मंत्रैरेतैर्यथाक्रमम्॥२३॥
रुद्रेभ्यो भातृगणेभ्यो यक्षेभ्योऽसुरेभ्यो ग्रहेभ्यो राक्षसेभ्यो नागेभ्यो नक्षत्रेभ्यो
विश्वगणेभ्यः क्षेत्रपालेभ्यः अथ वायुवरुणादिग्भागे क्षेत्रपालबलिं क्षिपेत्॥२४॥
विज्ञाप्यैवं विसृज्याथ अष्ट पुष्पैश्च पूजनम्। सर्वसामान्यमेतद्धि पूजायां मुनिपुंगवाः॥२५॥
एवं संक्षेपतः प्रोक्तमघोरार्चादि सुव्रत।
अघोरार्चाविधानं च लिंगे वा स्थंडिलेऽपि वा॥२६॥
स्थंडिलात्कोटिगुणितं लिंगार्चनमनुत्तमम्। लिंगार्चनरतो विप्रो महापातकसंभवैः॥२७॥
पापैरपि न लिप्येत पद्मपत्रमिवांभसा। लिंगस्य दर्शनं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं वरम्॥२८॥
अर्चनादधिकं नास्ति ब्रह्मपुत्र न संशयः। एवं संक्षेपतः प्रोक्तमघोरार्चनमुत्तमम्॥२९॥
वर्षकोटिशतेनापि विस्तरेण न शक्यते॥३०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे षड्विंशतितमोऽध्यायः॥२६॥

अंकुश और नागकक्ष (एक प्रकार की ढाल), एक धनुष, एक पाशुपत अस्त्र, एक दण्ड और एक खट्वाँग धारण किये हुए हैं। बाएँ हाथ में वीणा, घण्टा, त्रिशूल और दिव्य डमरू, बज्र, गदा, टंक और मुद्गर और लोहे का दंड लिए हुए हैं। उनका हाथ भय से मुक्ति दिलाने और वरदान देने वाला है। भक्त इस रूप में अघोर का ध्यान करे और उनकी पूजा करे। उसके बाद अग्नि में होम करे।।१३-२१।। पूरा होम कार्य पूर्ववत् किया जाय किन्तु मंत्रों के भेद से जैसा कि पहले बताया गया है। पूजा आठ पुष्पों और गंध आदि से की जाय। स्तुति, निवेदन, कुंड में अग्निपुराण से निर्धारण विधि से होम करे। विधि से मंडल बनाकर पाँच बार मन्त्रों द्वारा होम किया जाय। रुद्र, मातृत्व, यक्ष, असुर, ग्रह, राक्षस, नाग, नक्षत्र, विश्वगण, क्षेत्रपाल के लिये होम करे। उसके बाद पश्चिम उत्तर-पश्चिम दिशाओं के क्षेत्रपालों को भक्त बलि प्रदान करे। अर्घ्य, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य मुखवास ताम्बूल आदि यथाविधि भेंट करे। हे सुव्रत! इस प्रकार निवेदन के बाद भक्त आठ फूलों से निवेदन करके विसर्जन करे।।२२-२५।। इस प्रकार अघोर की पूजा की विधिं का वर्णन किया गया। अघोर की यह पूजा लिंग में या शुद्ध भूमि पर की जाय। भूमि पर अघोर की पूजा, लिंग पर की गई पूजा से हजार गुना अधिक फलदायी है। वह ब्राह्मण जो कि लिंगार्चन करता है वह महापातकों से उसी तरह अप्रभावित रहता है जैसे कमल का पत्ता जल से। लिंग का दर्शन पुण्य है। लिंग का स्पर्श उससे अधिक श्रेष्ठ है। हे ब्रह्मपुत्र! लिंग के अर्चना पूजा से बढ़कर कुछ नहीं है। हजार करोड़ वर्षों में भी इसका विस्तार में वर्णन नहीं किया जा सकता है।।२६-३०।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में अघोर पूजा की विधि
नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः
अभिषेकविधिः

ऋषय ऊंचुः।

प्रभावो नंदिनश्चैव लिंगपूजाफलं श्रुतम्। श्रुतिभिः संमितं सर्वं रोमहर्षण सुव्रत॥१॥
जयाभिषेक ईशेन कथितो मनवे पुरा। हिताय मेरुशिखरे क्षत्रियाणां त्रिशूलिना॥२॥
तत्कथं षोडशविधं महादानं च शोभनम्। वक्तुमर्हसि चास्माकं सूत बुद्धिमतांवर॥३॥

सूत उवाच

जीवच्छ्राद्धं पुरा कृत्वा मनुः स्वायंभुवः प्रभुः। मेरुमासाद्य देवेशमस्तवीन्नीललोहितम्॥४॥
तपसा च विनीताय प्रहृष्टः प्रददौ भवः। दिव्यं दर्शनमीशानस्तेनापश्यत्तमव्ययम्॥५॥
नत्वा संपूज्य विधिना कृतांजलिपुटः स्थितः। हर्षगद्गदया वाचा प्रोवाच च ननाम च॥६॥
देवदेव जगन्नाथ नमस्ते भुवनेश्वर। जीवच्छ्राद्धं महादेव प्रसादेन विनिर्मितम्॥७॥
पूजितश्च ततो देवो दृष्टश्चैव मयाधुना। शक्राय कथितं पूर्वं धर्मकामार्थमोक्षदम्॥८॥
जयाभिषेकं देवेश वक्तुमर्हसि मे प्रभो।

सूत उवाच

तस्मै देवो महादेवो भगवान्नीललोहितः॥९॥

सत्ताईसवाँ अध्याय
अभिषेक की विधि

ऋषिगण बोले

नन्दी के प्रभाव से हम लोगों ने वेदों से सम्मत लिंग पूजा के फल को आप से सुना। हे लोभहर्षण सुव्रत! पहले ईश शिव जी मेरु के शिखर पर मनु से क्षत्रियो के हित के लिये जय अभिषेक कहा था। वह किस प्रकार है। वह सोलह प्रकार का महादान कैसा है? हे सूत बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! वह आप हम लोगों से कहिये।।१-३।।

सूत बोले

स्वयंभू मनु ने जीवितश्राद्ध करके मेरु पर पहुँचकर भगवान नीललोहित शिव की स्तुति की।।४।। मनु की तपस्या से प्रसन्न भव, ईशान ने विनीतभक्त मनु को दिव्य दर्शन दिया।।५।। मनु ने शिव को प्रणाम करके विधिपूर्वक पूजा करके हाथ जोड़कर हर्ष से गद्गद वचन से उन्होंने इस प्रकार कहा।।६।।

हे देवताओं के देव, हे जगन्नाथ, हे भुंवनेश्वर! आपकी कृपा से मैंने जीवत्श्राद्ध किया। उसके बाद आपकी पूजा की। उसके फलस्वरूप अब आपका दर्शन हुआ। आपने पहले इन्द्र से जयाभिषेक संस्कार को कहा था जो कि धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष को देने वाला है। हे प्रभु! वह आप मुझको बताएँ।

सूत बोले

महादेव, नीललोहित, परमेश्वर ने मनु को पूर्ण विस्तार में जयाभिषेक संस्कार को बताया।।७-९।।

जयाभिषेकमखिलमवदत्परमेश्वरः ।

श्रीभगवानुवाच

जयाभिषेकं वक्ष्यामि नृपाणां हितकाम्यया॥१०॥
अपमृत्युजयार्थं च सर्व शत्रुजयाय च। युद्धकाले तु संप्राप्ते कृत्वैवमभिषेचनम्॥११॥
स्वपतिं चाभिषिच्यैव गच्छेद्योद्धुं रणाजिरे। विधिना मंडपं कृत्वा प्रपां वा कूटमेव वा॥१२॥
नवधा स्थापयेद्वह्निं ब्राह्मणो वेदपारगः। ततः सर्वाभिषेकार्थं सूत्रपातं च कारयेत्॥१३॥
प्रागाद्यं वर्णसूत्रं च दक्षिणाद्यं तथा पुनः। सहस्राणां द्वयं तत्र शतानां च चतुष्टयम्॥१४॥
शेषमेव शुभं कोष्ठं तेषु कोष्ठं तु संहरेत्। बाह्ये वीथ्यां पदं चैकं समंतादुपसंहरेत्॥१५॥
अंगसूत्राणि संगृह्य विधिना पृथगेव तु। प्रागाद्य वर्णसूत्रं च दक्षिणाद्यं तथा पुनः ॥१६॥
प्रागाद्यं दक्षिणद्यं च षट्त्रिंशत्संहरेत्क्रमात्। प्रागाद्याः पंक्तयः सप्त दक्षिणाद्यास्तथा पुनः॥१७॥
तस्मादेकोनपंचाशत्पंक्तयः परिकीर्तिताः। नव पंक्तीर्हरेन्मध्ये गन्धगोमयवारिणा॥१८॥
कमलं चालिखेत्तत्र हस्तमात्रेण शोभनम्। अष्टपत्रं सितं वृत्तं कर्णिकाकेसरान्वितम्॥१९॥
अष्टांगुलप्रमाणेन कर्णिका हेमसन्निभा। चतुरंगुलमानेन केसरस्थानमुच्यते॥२०॥
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च यथाक्रमम्। आग्नेयादिषु कोणेषु स्थापयेत्प्रणवेन तु॥२१॥
अव्यक्तादीनि वै दिक्षु गात्राकारेण वै न्यसेत्। अव्यक्तं नियतः कालः काली चेति चतुष्टयम्॥२२॥

भगवान बोले

राजाओं के कल्याण के लिए शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त करने और अकाल मृत्यु को जीतने के लिए जयाभिषेक को तुमसे कहूँगा। जब युद्ध का समय आवे, तब अभिषेचन को करे, उसके बाद वह युद्ध क्षेत्र में जाय। विधि से मण्डप करके, एक पानी घर (प्याऊ) या कूट निवास-स्थान (आवास) बनाकर, एक वेदज्ञ ब्राह्मण नौ स्थानों में अग्नि स्थापित करे। वहाँ पर अभिषेक के लिए सूत से लाइने खींच दें।।१०-१३।। पहला सूत पूर्व से और पहला सूत दक्षिण से रंग दिया जाय। वहाँ पर दो हजार चार सौ सूत हों। इन सूतों द्वारा चौकोर सीमा बनायी जाय। उनके भीतर चौकोर कोष्ठ (कोठे) बनाया जाय। बाहर की ओर, चारो पूरे गोल, चौड़ाई में एक फुट रास्ता बनाया जाय। अंग सूत्रों को इकट्ठा करके अलग रख लिया जाय। प्रत्येक लाइन के लिए छत्तीस तागों को इकट्ठा दोहरा लिया जाय। वहाँ पर सात छत्तीस चौकोर कोष्ठ हो जायँगे जो पूर्व से पश्चिम की ओर और सात पंक्ति दक्षिण से उत्तर की ओर। अतः वहाँ सात पंक्तियाँ हो गयीं। इस प्रकार ४९ पंक्तियाँ होंगी। मध्य में नौ पंक्तियों को गाय के गोबर में पानी मिलाकर लीप दें।।१४-१८।। वहाँ चौड़ाई में एक हाथ का सफेद आठ पत्तोंवाला कर्णिका और केसर से युक्त डाइग्राम बनावे।।१९।। आठ अंगुल लम्बा सोने के समान चमकदार कर्णिका हो और केसर स्थान चार अंगुल लम्बा हो।।२०।। अग्नि आदि कोणों में दक्षिण अग्नि कोण से प्रारम्भ करके ओम् सहित धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की स्थापना करनी चाहिए। अव्यक्त आदि को पूर्व से प्रारम्भ करके चारों दिशाओं में उनकी देह रूप में स्थापित करें। अव्यक्त नियत काल और काली ये चार हैं।।२१-२२।।

सितरक्तहिरण्याभकृष्णा धर्मादयः क्रमात्। हंसाकारेण वै गात्रं हेमाभासेन सुव्रताः॥२३॥
आधारशक्तिमध्ये तु कमलं सृष्टिकारणम् बिंदुमात्रं कलामध्ये नादाकारमतः परम्॥२४॥
नादोपरि शिवं ध्यायेदोंकाराख्यं जगद्गुरुम्। मनोन्मनीं च पद्माभं महादेवं च भावयेत्॥२५॥
वामादयः क्रमेणैव प्रागाद्याः केसरेषु वै। वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली विकरणी तथा॥२६॥
बला प्रमथिनी देवी दमनी च यथाक्रमम्। वामदेवादिभिः सार्धं प्रणवेनैव विन्यसेत्॥२७॥
नमोऽस्तु वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय शूलिने॥२८॥
रुद्राय कालरूपाय कलाविकरणाय च। बलाय च तथा सर्वभूतस्य दमनाय च॥२९॥
मनोन्मनाय देवाय मनोन्मन्यै नमोनमः। मंत्रैरेतैर्यथान्यायं पूजयेत्परिमंडलम्॥३०॥
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु। द्वितीयावरणे चैव शक्तयः षोडशैव तु॥३१॥
तृतीयावरणे चैवं चतुर्विंशदनुक्रमात्। पिशाचवीथिर्वै मध्ये नाभिवीथिः समंततः॥३२॥
मंत्रैरेतैर्यथान्यायं पिशाचानां प्रकीर्तिता। अष्टोत्तरसहस्रं तु पदमष्टारसंयुतम्॥३३॥
तेषु तेषु पृथक्त्वेन पदेषु कमलं क्रमात्। कल्पयेच्छालिनीवारगोधूमैश्च यवादिभिः॥३४॥
तंडुलैश्च तिलैर्वाथ गौरसर्षपसंयुतैः। अथवा कल्पयेदेतैर्यथाकालं विधानतः॥३५॥
अष्टपत्रं लिखेत्तेषु कर्णिकाकेसरान्वितम्। शालीनामाढकं प्रोक्तं कमलानां पृथक् पृथक्॥३६॥
तंडुलानां तदर्धं स्यात्तदर्धं च यवादयः। द्रोणं प्रधानकुंभस्य तदर्धं तंडुलाः स्मृताः॥३७॥

धर्म आदि क्रमशः सफेद लाल, सुनहरे और काले रंग में हो। हे सुव्रत! शरीर (गात्र) हंस के आकार का सोने की तरह चमकीला हो।।२३।। आधार शक्ति के मध्य में कमल हो जो कि सृष्टि का कारण है, काल के बीच में, केवल बिन्दु है और उसके बाहर नाद (ध्वनि) का रूप है।।२४।। नाद के ऊपर जगद्गुरु शिव का ध्यान करना चाहिए जो कि ओंकार कहा जाता है। भक्त मनोन्मनी और महादेव जो कि कमल की आभा वाले हैं उनका ध्यान करें।।२५।। वामा आदि का पूर्व आदि दिशाओं के क्रम में ध्यान किया जाय। वे वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, विकरणी, बला, प्रमथिनी और दमिनी हैं। वे सब प्रणव द्वारा वामदेव और अन्य के साथ स्थापित की जाय।।२६-२७।। निम्नलिखित मन्त्रों से विधिपूर्वक परमण्डल की पूजा करे। रुद्राय कालरूपाय, कलाविकरणाय च बलाय च। तथा सर्वभूतस्य दमनाय च। मनोन्मनाय देवाय मनोन्मन्यै नमो मनः।।२८-३०।। प्रथम आवरण मैंने कहा। अब दूसरा आवरण ध्यानपूर्वक सुनो। द्वितीय आवरण में सोलह शक्तियाँ हैं।।३१।। तृतीय आवरण में क्रम से चौबीस शक्तियाँ हैं। पिशाच बीथी मध्य में है। नाभि बीधी चारों ओर है इन मन्त्रों द्वारा पिशाचों की पूजा की जानी चाहिए। पद एक हजार आठ है और प्रत्येक पद के आर (कोने) हैं। भक्त इन पदों के प्रत्येक पद में क्रम से कमल की कल्पना शाली चावल, निवार चावल, गेहूँ, जौ, तिल में सरसों मिले इन अन्नों के द्वारा कल्पना करे। या विधान के अनुसार इनको बनावे जबकि उचित समय आ जाय।।३२-३५।। उनमें कर्णिका और केसर से युक्त अष्टदल कमल को बनाये। प्रत्येक कमल के लिए एक आढक शाली धान का प्रयोग करे। चावल उसका आधा हो। जौ आदि उसका आधा हो। बड़े घड़े में एक द्रोण नाप का और उसका आधा चावल

तिलानामाढकं मध्ये यवानां च तदर्धकम्। अथांभसा समभ्युक्ष्य कमलं प्रणवेन तु॥३८॥
तेषु सर्वेषु विधिना प्रणवं विन्यसेत्क्रमात्। एवं समाप्य चाभ्युक्ष्य पदसाहस्त्रमुत्तमम्॥३९॥
कलशानां सहस्त्राणि हैमानि च शुभानि च। उक्तलक्षणयुक्तानि कारयेद्राजतानि वा॥४०॥
ताम्रजानि यथान्यायं प्रणवेनार्ध्यवारिणा। द्वादशांगुलविस्तारमुदरे समुदाहृतम्॥४१॥
वर्तितं तु तदर्धेन नाभिस्तस्य विधीयते। कंठं तु व्यंगुलोत्सेधं विस्तरं चतुरंगुलम्॥४२॥
ओष्ठं च व्यंगुलोत्सेधं निर्गमं द्व्यंगुलं स्मृतम्। तत्तद्वैद्विगुणं दिव्यं शिवकुंभे प्रकीर्तिमम्॥४३॥
यवमात्रांतरं सम्यक्तंतुना वेष्टयेद्धि वै। अवगुंठ्य तथाभ्युक्ष्य कुशोपरि यथाविधि॥४४॥
पूर्ववत्प्रणवैनैव पूरयेद्गंधवारिणा। स्थापयेच्छिवकुभाढ्यं वर्धनीं च विधानतः॥४५॥
मध्यपद्मस्य मध्यं तु सकूर्चं साक्षतं क्रमात्। आवेष्ट्य वस्त्रयुग्मेन प्रच्छाद्य कमलेन तु॥४६॥
हैमेन चित्ररत्नेन सहस्त्रकलशं पृथक्। शिवकुंभे शिवं स्थाप्य गायत्र्या प्रणवेन च॥४७॥
विद्महे पुरुषायैव महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥४८॥
मंत्रेणानेन रुद्रस्य सान्निध्यं सर्वदा स्मृतम्। वर्धन्यां देविगायत्र्या देवीं संस्थाप्य पूजयेत्॥४९॥
गणांबिकायै विद्महे महातपायै धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्॥५०॥
प्रथमावरणे चैव वामाद्याः परिकीर्तिताः। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥५१॥
शक्तयः षोडशैवात्र पूर्वाद्यंतेषु सुव्रत। ऐंद्रव्यूहस्य मध्ये तु सुभद्रां स्थाप्य पूजयेत्॥५२॥

(धान) रखे।।३६-३७।। मध्य में एक आढक तिल रखे। उसका आधा परिमाण में जौ रखे। तब प्रणव को दोहराते हुए जल से कमल को छिड़कें और यथाक्रम उन सब में प्रणव को स्थापित करे। ये सब कार्य करके हजार पदों को छिड़कते हुए सोने चाँदी या ताँबे के हजार कलशों को रखें। वे सब लक्षणों से युक्त हों। प्रणव को दोहराते हुए अर्घ्य जल से उन पर छिड़काव किया जाय। प्रत्येक कलश उदर में बारह अंगुल चौड़ा हो और नीचे की ओर वक्र हो। उसकी नाभि चौड़ाई में छः अंगुल हो। कलश का गला ऊँचाई में दो अंगुल और चौड़ाई में चार अंगुल हो। उसका ओठ ऊँचाई में दो अंगुल हो। उसका निर्गम (टोटी) दो अंगुल हो। शिव कुंभ में इन सबकी दुगुनी माप होनी चाहिए।।३८-४३।। जौ मात्र का स्थान सूत से अच्छी तरह बाँध-कर पात्र को बन्द कर दिया जाय और जल से छिड़ककर कुश पर रख दिया जाय। पहले की तरह प्रणव को दोहराते हुए इसको सुगन्धित जल से भर दें। शिव कुंभ के साथ वर्धनी पात्र को विधान के साथ स्थापित करें। मध्य कमल के बीच में कुश सहित क्रम से और अक्षत सहित स्थापित करें। हजार कलशों में से प्रत्येक को जोड़े वस्त्र से लपेटकर और कमल से ढककर रखे। कमल सोने के हों और उसमें विभिन्न रंग के रत्न जड़े हों। गायत्री और प्रणव के द्वारा शिव कुंभ स्थापित करे। विद्महे पुरुषायैव महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्र प्रचोदायात् इस मन्त्र से रुद्र की उपस्थिति सदैव होती है। वर्धनी में देवी गायत्री मन्त्र द्वारा देवी को स्थापित करे और 'गणाम्बिकायै विद्महे महातपायै धीमहि तन्नो गौरी प्रचोदयात्' इस मन्त्र से पूजा करे।।४४-५०।। प्रथम आवरण में वाम आदि कही गयी हैं। प्रथम आवरण का वर्णन किया गया। अब द्वितीय आवरण को ध्यानपूर्वक सुनो। हे सुव्रत! यहाँ सोलह शक्तियाँ हैं। यह पूर्व से

भद्रामाग्नेयचक्रे तु याम्ये तु कनकांडजाम्। अंबिकां नैर्ऋते व्यूहे मध्यकुंभे तु पूजयेत्॥५३॥
श्रीदेवीं वारुणे भागे वागीशां वायुगोचरे। गोमुखीं सौम्यभागे तु मध्यकुंभे तु पूजयेत्॥५४॥
रुद्रव्यूहस्य मध्ये तु भद्रकर्णां समर्चयेत्। ऐंद्राग्निविदिशोर्मध्ये पूजयेदणिमां शुभाम्॥५५॥
याम्यपावकयोर्मध्ये लघिमां कमले न्यसेत्। राक्षसांतकयोर्मध्ये महिमां मध्यतो यजेत्॥५६॥
वरुणासुरयोर्मध्ये प्राप्तिं वै मध्यतो यजेत्। वरुणानिलयोर्मध्ये प्राकाम्यं कमले न्यसेत्॥५७॥
वित्तेशानिलयोर्मध्ये ईशित्वं स्थाप्य पूजयेत्। वित्तेशेशानयोर्मध्ये वशित्वं स्थाप्य पूजयेत्॥५८॥
ऐंद्रेशेशानयोर्मध्ये यजेत्कामावसायकम्। द्वितीयावरणं प्रोक्तं तृतीयावरणं शृणु॥५९॥
शक्तयस्तु चतुर्विंशत्प्रधानकलशेषु च। पूजयेद्व्यूहमध्ये तु पूर्ववद्विधिपूर्वकम्॥६०॥
दीक्षां दीक्षायिकां चैव चंडांचंडांशुनायिकाम्। सुमतिं सुमत्यायीं च गोपां गोपायिकां तथा॥६१॥
अथ नंदं च नंदायीं पितामहमतः परम्। पितामहायीं पूर्वाद्यं विधिना स्थाप्य पूजयेत्॥६२॥
एवं संपूज्य विधिना तृतीयावरणं शुभम्। सौभद्रं व्यूहमासाद्य प्रथमावरणे क्रमात्॥६३॥
प्रागाद्यं विधिना स्थाप्य शक्त्यष्टकमनुक्रमात्। द्वितीयावरणे चैव प्रागाद्यं शृणु शक्तयः॥६४॥
षोडशैव तु अभ्यर्च्य पद्ममुद्रां तु दर्शयेत्। बिंदुका बिंदुगर्भा च नादिनी नादगर्भजा॥६५॥
शक्तिका शक्तिगर्भा च परा चैव परापरा। प्रथमावरणेऽष्टौ च शक्तयः परिकीर्तिताः॥६६॥

आरम्भ करते हुए अंत तक समाप्त होती हुई हैं। पूर्व में व्यूह के मध्य में सुभद्रा को स्थापित करके पूजा करनी चाहिए।।५१-५२।। दक्षिण-पूर्व (अग्नि कोण) के चक्र में भद्रा की पूजा करे। दक्षिण चक्र में कनकांडजा, दक्षिण-पश्चिम कोण के चक्र में मध्य कुंभ में अम्बिका की पूजा करे। पश्चिम भाग में श्री देवी की, उत्तर पश्चिम कोण (वायव्य) में वागीश देवी की पूजा करे। उत्तर में मध्य कुंड गोमुखी की पूजा करनी चाहिए।।५३-५४।। भक्त रुद्र व्यूह के मध्य में भद्रकर्णा की पूजा करे। पूर्व के मध्य में और दक्षिण पूर्व कोण में अणिमा शुभा देवी की पूजा करनी चाहिए।।५५।। दक्षिण के मध्य और दक्षिण-पूर्व दिशा के कमल में लघिमा (प्रकाश हीन) को स्थापित करे। दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम के बीच में महिमा की पूजा करे।।५६।। प्राप्ति की पूजा पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम के बीच में करे। पश्चिम और उत्तर-पश्चिम के कोण पर कमल पर प्राकाम्य को स्थापित करे।।५७।। उत्तर दिशा और उत्तर पश्चिम के कोण में ईशित्व को स्थापित करे और उसकी पूजा करे। उत्तर और उत्तर-पूर्व के कोण में वशित्व को स्थापित करके पूजा करनी चाहिए।।५८।। पूर्व दिशा और उत्तर-पूर्व कोण के मध्य में कामावशायक की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार द्वितीय आवरण का वर्णन किया गया है। अब तृतीय आवरण को ध्यानपूर्वक सुनिए।।५९।। प्रधान कलशों में चौबीस शक्तियाँ हैं। व्यूह के मध्य में पूर्ववत् विधिपूर्वक उनकी पूंजा करनी चाहिए। दीक्षा, दीक्षायिका, चंडा, चण्डाशुंनायिका, सुमति, सुमतित्यायी, गोपा और गोपायिका की पूजा करनी चाहिए।।६०-६१।। तब वह नंद, नंदायी, पितामह, पितामहायी, को पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके क्रमशः स्थापित करके उनकी पूजा करके सौभद्र प्रथम आवरण व्यूह तक जाकर आठ शक्तियों की पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके स्थापित करे। सोलह शक्तियों की पूजा करने के बाद वह पद्ममुद्रा को दिखावे। प्रथम

चंडा चंडमुखी चैव चंडवेगा मनोजवा। चंडाक्षी चंडनिर्घोषा भृकुटी चंडनायिका॥६७॥
मनोत्सेधा मनोध्यक्षा मानसी माननायिका। मनोहरी मनोह्लादी मनः प्रीतिर्महेश्वरी॥६८॥
द्वितीयावरणे चैव षोडशैव प्रकीर्तिताः। सौभद्रः कथितो व्यूहो भद्रं व्यूहं शृणुष्व मे॥६९॥
ऐंद्री हौताशनी याम्या नैर्ऋती वारुणी तथा। वायव्या चैव कौबेरी ऐशानी चाष्टशक्तयः॥७०॥
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु। हरिणी च सुवर्णा च कांचनी हाटकी तथा॥७१॥
रुक्मिणी सत्यभामा च सुभगा जंबुनायिका। वागभवा वाक्यथा वाणी भीमा चित्ररथा सुधीः॥७२॥

वेदमाता हरिण्याक्षी द्वितीयावरणे स्मृता।
भद्राख्यः कथितो व्यूहः कनकाख्यं शृणुष्व मे॥७३॥

वज्रं शक्तिं च दंडं च खड्गं पाशं ध्वजं तथा। गदां त्रिशूलं क्रमशः प्रथमावरणे स्मृताः॥७४॥

युद्धा प्रबुद्धा चंडा च मुंडा चैव कपालिनी।
मृत्युहंत्री विरूपाक्षी कपर्दा कमलासना॥७५॥

दंष्ट्रिणी रंगिणी चैव लंबाक्षी कंकभूषणी। संभावा भाविनी चैव षोडशैव प्रकीर्तिताः॥७६॥
कथितः कनकव्यूहो ह्यम्बिकाख्यं शृणुष्व मे। खेचरी चात्मना सा च भवानी वह्निरूपिणी॥७७॥
वह्निनी वह्निनाभा च महिमामृतलालसा। प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयः सर्वसंमताः॥७८॥
क्षमा च शिखरा देवी ऋतुरत्ना शिला तथा। छाया भूतपनी धन्या इंद्रमाता च वैष्णवी॥७९॥
तृष्णा रागवती मोहा कामकोपा महोत्कटा। इंद्रा च बधिरा देवी षोडशैताः प्रकीर्तिताः॥८०॥

आवरण में ये आठ शक्तियाँ हैं—बिन्दुका, बिन्दुगर्भा, नादिनी, नादगर्भजा, शक्तिका, शक्तिगर्भा, परा, परापरा द्वितीय आवरण में सोलह शक्तियाँ हैं। चण्डा, चण्डमुखी, चण्डवेगा, मनोजवा, चंडाक्षी, चण्ड-निर्घोषा भृकुटी, चण्डनायिका, मनोत्सेधा, मनोध्यक्षा, मानसी, माननायिका, मनोहरी, मनोह्लादी मनःप्रीति, महेश्वरी सौमद्र व्यूह का वर्णन इस प्रकार किया गया। अब भद्रव्यूह को ध्यानपूर्वक सुनिये।६२-६९।। प्रथम आवरण में आठ शक्तियाँ हैं। ऐन्द्री, हौताशनी, याम्या, नैर्ऋती, वारुणी, वायव्या, कौबेरी, ऐशानी। द्वितीय आवरण में सोलह शक्तियाँ हैं। हरिणी, सुवर्णा, काँचनी, हाटकी, रुक्मिणी, सत्यभामा, सुभगा, जम्बुनायिका, वाग्मवा, वाक्पथा, वाणी, भीमा, चित्ररथा, सुधी, वेदमाता, हरिण्याक्षी।

इस तरह भद्र व्यूह का वर्णन किया गया। अब कनक व्यूह को मुझसे सुनिये।।७०-७३।।

प्रथम आवरण में ये शक्तियाँ हैं—वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल।।७४।।

द्वितीय आवरण में सोलह शक्तियाँ हैं—युद्धा, प्रबुद्धा, चण्डा, मुण्डा, कपालिनी, मृत्यु, हन्त्री, विरूपाक्षी कपर्दा, कमलासना, दंष्ट्रिणी, रंगिणी, लम्बाक्षी, कंकभूषणी, सम्भावा, भावनी।।७५-७६।।

कनक व्यूह का वर्णन किया गया। अब अम्बिका व्यूह का परिचय मुझसे सुनिये। प्रथम अवस्था में आठ शक्तियाँ है—खेचरी, आत्मना, भवानी, वह्निरुपिणी, वाह्निनी, वाह्निनाभा, महिमा और अमृतलालसा।।७७-७८।। द्वितीय आवरण में सोलह शक्तियाँ हैं—क्षमा, शिखरा देवी, ऋतुरत्ना, शिला, छाया, भूतपनी, धन्या, इन्द्रमाता, वैष्णवी, तृष्णा, रागवती, मोहा, कामकोपा, महोत्कटा, इन्द्रा, बधिरादेवी।।७९-८०।। इस प्रकार

कथितश्चांबिकाव्यूहः श्रीव्यूहं शृणु सुव्रत। स्पर्शा स्पर्शवती गंधा प्राणापाना समानिका॥८१॥
उदाना व्याननामा च प्रथमावरणे स्मृताः। तमोहता प्रभामोघा तेजिनी दहिनी तथा॥८२॥
भीमास्या जालिनी चोषा शोषिणी रुद्रनायिका। वीरभद्रा गणाध्यक्षा चंद्रहासा च गह्वरा॥८३॥
गणमातांबिका चैव शक्तयः सर्वसंमताः। द्वितीयावरणे प्रोक्ताः षोडशैव यथाक्रमात्॥८४॥
श्रीव्यूहः कथितो भद्रं वागीशं शृणु सुव्रत। धारा वारिधरा चैव वह्निकी नाशकी तथा॥८५॥
मर्त्यातीता महामाया वज्रिणी कामधेनुका। प्रथमावरणेऽप्येवं शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥८६॥
पयोष्णी वारुणी शांता जयंती च वरप्रदा। प्लाविनी जलमाता च पयोमाता महांबिका॥८७॥
रक्ता कराली चंडाक्षी महोच्छुष्मा पयस्विनी।
माया विद्येश्वरी काली कालिका च यथाक्रमम्॥८८॥
षोडशैव समाख्याताः शक्तयः सर्वसंमताः। व्यूहो वागीश्वरः प्रोक्तो गोमुखो व्यूह उच्यते॥८९॥
शंकिनी हालिनी चैव लंकावर्णा च कल्किनी। यक्षिणी मालिनी चैव वमनी च रसात्मनी॥९०॥
प्रथमावरणे चैव शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः। चंडा घंटा महानादा सुमुखी दुर्मुखी बला॥९१॥
रेवती प्रथमा घोरा सैन्या लीना महाबला। जया च विजया चैव अपरा चापराजिता॥९२॥
द्वितीयावरणे चैव शक्तयः षोडशैव तु। कथितो गोमुखीव्यूहो भद्रकर्णीं शृणुष्व मे॥९३॥
महाजया विरूपाक्षी शुक्लाभाकाशमातृका। संहारी जातहारी च दंष्ट्राली शुष्करेवती॥९४।
प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयः परिकीर्तिताः। पिपीलिका पुण्यहारी अशनी सर्वहारिणी॥९५॥

अम्बिका व्यूह को बताया गया। हे सुव्रत! श्रीव्यूह को सुनो। प्रथम आवरण में हैं—स्पर्शा, स्पर्शवती, गंधा, प्राणापाना, समानिकाः, उदाना, व्याननामा। द्वितीय आवरण में सर्वसम्मत से मान्य सोलह शक्तियाँ हैं—तमोहता, प्रभा, मोघा, तेजिनी, दहिनी, भीमास्या, जालिनी, चोषा, शोषिणी, रुद्रनायिका, वीरभद्रा, गणाध्यक्षा चंद्रहासा, गह्वरा, गणमात, अंबिका।।८१-८४।। इस प्रकार आप को श्रीव्यूह को बताया। हे सुव्रत! अब वागीश व्यूह को ध्यानपूर्वक सुनो। प्रथम आवरण में आठ शक्तियाँ है—धारा, वारिधरा, वह्निकी, नाशकी, मर्त्यातीता, महामाया, वज्रिणी, कामधेनुका।।८५-८६।। सर्वसम्मत सोलह शक्तियाँ द्वितीय आवरण में हैं—पयोष्णी, वारुणी शांता, जयंती, वरप्रदा, प्लाविनी, जलमाता, पयोमाता, महांबिका, रक्ता, कराली, चंडाक्षी, महोच्छुष्मा, पयस्विनी, मायाविद्येश्वरी, कालीकालिका।।८७-८९।। वागीश व्यूह को बताया अब गोमुख व्यूह को कहता हूँ। प्रथम अवरण में आठ शक्तियाँ हैं—शंकिनी, हालिनी, लंकावर्णा, कल्किनी, यक्षिणी, मालिनी, वमनी, रसात्मनी। द्वितीय आवरण में सोलह शक्तियाँ हैं—चंडा, घंटा, महानादा, सुमुखी, दुर्मुखी, बला, रेवती, प्रथमा, घोरा, सैन्या, लीना, महाबला, जया, विजया, अपरा, अपराजिता।

गोमुखी व्यूह को कहा! अब मुझसे भद्रकर्णीव्यूह को सुनो।।९०-९३।। प्रथम आवरण में आठ शक्तियाँ हैं—महाजया, विरूपाक्षी, शुक्लाभा, आकाशमातृका,संहारी, जातहारी, दंष्ट्राली, शुष्करेवती। द्वितीय आवरण में सोलह शक्तियाँ हैं—पिपीलिका, पुण्यहारी, अशनी, सर्वहारिणी, भद्रहा, विश्वहारी, हिमा, योगेश्वरी, छिद्रा,

भद्रहा विश्वहारी च हिमा योगेश्वरी तथा। छिद्रा भानुमती छिद्रा सैंहिकी सुरभी समा॥९६॥
सर्वभव्या च वेगाख्या शक्तयः षोडशैव तु। महाव्यूहाष्टकं प्रोक्तमुपव्यूहाष्टकं शृणु॥९७॥
अणिमाव्यूहमावेष्ट्य प्रथमावरणे क्रमात्। ऐंद्रा तु चित्रभानुश्च वारुणी दंडिरेव च॥९८॥
प्राणरूपी तथा हंसः स्वात्मशक्तिः पितामहः। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीया वरणं शृणु॥९९॥
केशवो भगवान् रुद्रश्चंद्रमा भास्करस्तथा। महात्मा च तथा ह्यंतरात्मा महेश्वरः॥१००॥
परमात्मां ह्यणुर्जीवः पिंगलः पुरुषः पशुः। भोक्ता भूतपतिर्भीमो द्वितीयावरणे स्मृताः॥१०१॥
कथितश्चाणिमाव्यूहो लघिमाख्यं वदामि ते।
श्रीकंठोंतश्च ह्यणुर्जीवः सूक्ष्मश्च त्रिमूर्तिः शशकस्तथा॥१०२॥
अमरेशः स्थितीशश्च दारतश्च तथाष्टमः। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥१०३॥
स्थाणुहर्रश्च दंडेशो भौक्तीशः सुरपुंगवः। सद्योजातोऽनुग्रहेशः क्रूरसेनः सुरेश्वरः॥१०४॥
क्रोधीशश्च तथा चंडः प्रचंडः शिव एव च। एकरुद्रस्तथाकूर्मश्चैकनेत्रश्चतुर्मुखः॥१०५॥
द्वितीयावरणे रुद्राः षोडशैव प्रकीर्तिताः। कथितो लघिमाव्यूहो महिमां शृणु सुव्रत॥१०६॥
अजेशः क्षेमरुद्रश्च सोमोंऽशो लांगली तथा। दंडारुश्चार्धनारी च एकांतश्चांत एव च॥१०७॥
पाली भुजंगनामा च पिनाकी खड्गिरेव च।
काम ईशस्तथा श्वेतो भृगुः षोडश वै स्मृताः॥१०८॥
कथितो महिमाव्यूहः प्राप्तिव्यूहं शृणुष्व मे। संवर्तो लकुलीशश्च वाडवो हस्तिरेव च॥१०९॥

भानुमती छिद्रा, सैंहिकी, सुरभी, समा, सर्वभव्या और वेगाख्या। इस प्रकार आठ महाव्यूहों को मैंने कहा! अब आठ उपव्यूहों को सुनो।।९४-९७।। प्रथम आवरण में अणिमा व्यूह में आवेष्टित आठ शक्तियाँ हैं—ऐंद्रा, चित्रभानु, वारुणी, दंडि, प्राणरूपी, हंस, स्वात्मशक्ति, पितामह। प्रथम आवरण को बताया। अब द्वितीय आवरण को सुनो।।९८-९९।।

द्वितीय आवरण में सोलह हैं—केशव, भगवान रुद्र, चन्द्रमा, भास्कर, महात्मा, अंतरात्मा, महेश्वर, परमात्मा, अणुर्जीव, पिंगल, पुरुष, पशु, भोक्ता, भूतपति, भीम। इस प्रकार अणिमाव्यूह को कहा अब लघिमाव्यूह को कहता हूँ।।१००-१०१।। प्रथम आवरण में श्रीकण्ठ, अन्त (अनन्त), सूक्ष्म, त्रिमूर्ति, शशक, अमरेश, स्थितीश और दारत वे आठ हैं। इस प्रकार प्रथम आवरण बताया गया। अब द्वितीय आवरण को सुनो।।१०२-१०३।। द्वितीय आवरण में सोलह रुद्र हैं—स्थाणु, हर, दंडेश, भौक्तीश, सद्योजात, अनुग्रहेश, क्रूरसेन, सुरेश्वर, क्रोधीश, चंड, प्रचंड, शिव, एकरुद्र, कूर्म, एकनेत्र, चतुर्मुख।।१०४-१०५।। द्वितीय आवरण में सोलह रुद्र कहे गये हैं। इस प्रकार लघिमा व्यूह को कहा। अब महिमा व्यूह को सुनो।।१०६।। महिमा व्यूह में सोलह हैं—अजेश, क्षेमरुद्र, सोमांश, लांगली,दंडारु, अर्धनारी, एकान्त, अन्त, पाली, भुजंगनामा, पिनाकी, खड्गि, काम, ईश, श्वेत, भृगु।।१०७-१०८।। इस प्रकार महिमा व्यूह को बताया गया। अब प्राप्ति व्यूह को ध्यान से सुनो। ये प्रथम आवरण में है—संवर्त, लकुलीश, वाडव, हस्ति, चंडयक्ष, गणपति,

चंडयक्षो गणपतिर्महात्मा भृगुजोऽष्टमः। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥११०॥
त्रिविक्रमो महाजिह्वो ऋक्षः श्रीभद्र एव च। महादेवो दधीचश्च कुमारश्च परावरः॥१११॥
महादंष्ट्रः करालश्च सूचकश्च सुवर्धनः। महाध्वांक्षो महानंदो दंडी गोपालकस्तथा॥११२॥
प्राप्तिव्यूहः समाख्यातः प्राकाम्यं शृणु सुव्रत। पुष्पदंतो महानागो विपुलानंदकारकः॥११३॥
शुक्लो विशालः कमलो बिल्वश्चारुण एव च। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥११४॥
रतिप्रियः सुरेशानश्चित्रांगश्च सुदुर्जयः। विनायकः क्षेत्रपालो महामोहश्च जंगलः॥११५॥
वत्सपुत्रो महापुत्रो ग्रामदेशाधिपस्तथा। सर्वावस्थाधिपो देवो मेघनादः प्रचंडकः॥११६॥
कालदूतश्च कथितो द्वितीयावरणं स्मृतम्। प्राकाम्यः कथितो व्यूह ऐश्वर्यं कथयामि ते॥११७॥
मंगला चर्चिका चैव योगेशा हरदायिका। भासुरा सुरमाता च सुंदरी मातृकाष्टमी॥११८॥
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे शृणु। गणाधिपश्च मंत्रज्ञो वरदेवः षडाननः॥११९॥
विदग्धश्च विचित्रश्च अमोघो मोघ एव च। अश्वी रुद्रश्च सोमेशश्चोत्तमोदुंबरस्तथा॥१२०॥
नारसिंहश्च विजयस्तथा इंद्रगुहः प्रभुः। अपांपतिश्च विधिना द्वितीयावरणं स्मृतम्॥१२१॥
ऐश्वर्यः कथितो व्यूहो वशित्वं पुनरुच्यते। गगनो भवनश्चैव विजयो ह्यजयस्तथा॥१२२॥
महाजयस्तथांगारोव्यंगारश्च महायशाः। प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे शृणु॥१२३॥
सुंदरश्च प्रचंडेशो महावर्णो महासुरः। महारोमा महागर्भः प्रथमः कनकस्तथा॥१२४॥
खरजो गरुडश्चैव मेघनादोऽथ गर्जकः। गजश्च च्छेदको बाहुस्त्रिशिखो मारिरेव च॥१२५॥

महात्मा और भृगुज। प्रथम आवरण को बताया। अब द्वितीय आवरण को सुनो।।१०९-११०।। द्वितीय आवरण सोलह से बने हैं—त्रिविक्रम, महाजिह्व, ऋक्ष, श्रीभद्र, महादेव, दधीच, कुमार, परावर, महादंष्ट्र, कराल, सूचक, सुवर्धन, महाध्वांक्ष, महानंद, दंडी, गोपालक।।१११-११२।। प्राप्तिव्यूह को कहा गया। हे सुव्रत! प्राक्रम्य व्यूह को सुनो—पुष्पदंत, महानाग, विमलानन्दकारक, शुक्ल, विशाल, कमल, बिल्व और अरुण ये आठ प्राकाम्य के प्रथम आवरण होते हैं। अब द्वितीय आवरण को सुनो। रतिप्रिय, सुरेशान, चित्रांग, सुदुर्जय, विनायक, क्षेत्रपाल, महामोह, जंगल, वत्सपुत्र, महापुत्र, ग्रामदेशाधिप, सर्वावस्थाधिप, देव, मेघनाद, प्रचंडक और कालदूत द्वितीय आवरण में कहे गये हैं। इस प्रकार प्राकाम्यव्यूह का वर्णन किया गया है। अब ऐश्वर्य व्यूह को कहता हूँ।।११३-११७।। ऐश्वर्य व्यूह के प्रथम आवरण में मंगला, चर्चिका, योगेशा, हरदायिका, भासुरा, सुरमाता, सुंदरी, मातृका ये आठ होते हैं। द्वितीय आवरण को सुनो। गणाधिप, मंत्रज्ञ, वरदेव, षडानन, विदग्ध, विचित्र, अमोघ, मोघ, अश्वीरुद्र, सोमेश, उत्तम, उदुम्बर, नारसिंह, विजय, प्रभु इन्द्रगुह, अपांपति। ऐश्वर्य व्यूह का वर्णन किया गया।।११८-१२२।। अब वशित्व व्यूह को कहता हूँ। वशित्वव्यूह के प्रथम आवरण में गगन, हवन, विजय, अजय, महाजय, अंगार, व्यंगार, महायश प्रथम आवरण में होते हैं। द्वितीय आवरण में सुन्दर, प्रचंडेश, महावर्ण, महासुर, महारोमा, महागर्भ, प्रथम, कनक, खरज, गरुण, मेघनाद, गर्जक, गज, छेदक, बाहु, त्रिशिष, और मारि। वशित्वव्यूह का वर्णन किया गया। अब कामावसायिक व्यूह को ध्यानपूर्वक

वशित्वं कथितो व्यूहः शृणु कामावसायिकम्। विनादो विकटश्चैव वसंतोऽभय एव च॥१२६॥
विद्युन्महाबलश्चैव कमलो दमनस्तथा। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥१२७॥
धर्मश्चातिबलः सर्पो महाकायो महाहनुः। सबलश्चैव भस्मांगी दुर्जयो दुरतिक्रमः॥१२८॥
वेतालो रौरवश्चैव दुर्धरो भोग एव च। वज्रः कालाग्निरुद्रश्च सद्योनादो महागुहः॥१२९॥
द्वितीयावरणं प्रोक्तं व्यूहश्चैवावसायिकः। कथितः षोडशो व्यूहो द्वितीयावरणं शृणु॥१३०॥
द्वितीयावरणे चैव दक्षव्यूहे च शक्तयः। प्रथमावरणे चाष्टौ बाह्ये षोडश एव च॥१३१॥

मनोहरा महानादा चित्रा चित्ररथा तथा।
रोहिणी चैव चित्रांगी चित्ररेखा विचित्रिका॥१३२॥
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणं शृणु।
चित्रा विचित्ररूपा च शुभदा कामदा शुभा॥१३३॥
क्रूरा च पिंगला देवी खड्गिका लंबिकासती।
दंष्ट्राली राक्षसी ध्वंसी लोलुपा लोहितामुखी॥१३४॥

द्वितीयावरणे प्रोक्ताः षोडशैव समासतः। दक्षव्यूहः समाख्यातो दाक्षव्यूहं शृणुष्व मे॥१३५॥
सर्वासती विश्वरूपा लंपटा चामिषप्रिया। दीर्घदंष्ट्रा च वज्रा च लंबोष्ठी प्राणहारिणी॥१३६॥
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु। गजकर्णाश्वकर्णा च महाकाली सुभीषणा॥१३७॥
वातवेगरवा घोरा घनाघनरवा तथा। वरघोषा महावर्णा सुघंटा घंटिका तथा॥१३८॥
घंटेश्वरी महाघोरा घोरा चैवातिघोरिका। द्वितीयावरणे चैव षोडशैव प्रकीर्तिताः॥१३९॥
दाक्षव्यूहः समाख्यातश्चंडव्यूहं शृणुष्व मे। अतिघंटा चातिघोरा कराला करभा तथा॥१४०॥

सुनो। प्रथम आवरण में विनाद, विकट, वसंत, अभय, विद्युत, महाबल, कमल और दमन होते हैं। अब द्वितीय आवरण को सुनो।।१२३-१२७।। धर्म, अतिबल, सर्प, महाकाय, महाहनु, सबल, भस्मांगी, दुर्जय, दुरतिक्रम, बैताल, रौरव, दुर्धर, भोग, वज्र, कालाग्नि, रुद्र, सद्योनाद, महागुह ये द्वितीय आवरण में हैं। इस प्रकार सोलह व्यूहों का वर्णन किया गया। अब द्वितीय आवरण को ध्यान से सुनो।।१२८-१३०।। दक्ष व्यूह के प्रथम आवरण में आठ और बाह्य आवरण में सोलह शक्तियाँ ही हैं।।१३१।। प्रथम आवरण में मनोहरा, महानादा, चित्रा, चित्ररथा, रोहिणी, चित्रांगी, चित्ररेखा, विचित्रिका।।१३२।। द्वितीय आवरण में चित्रा, विचित्ररूपा, सुभदा, कामदा, शुभा, क्रूरा, पिंगला, देवी, खड्गिका, लंबिका, सती, दंष्ट्राली, राक्षसी, ध्वंसी, लोलुपा, लोहितामुखी संक्षेप में सोलह ही कही गयी हैं। दक्ष व्यूह को कहा गया अब दाक्षव्यूह को सुनो।।१३३-१३५।।

प्रथम आवरण में निम्नलिखित सम्मिलित हैं। सर्वाशती, विश्वरूपा, लम्पटा, आमिषप्रिया, दीर्घदंष्ट्रा, वज्रा, लम्बोष्ठी, प्राणहारिणी में यह प्रथम आवरण मैंने कहा। अब द्वितीय आवरण सुनो। गजकर्णा, अश्वकर्णा महाकाली, सुभीषणा, वातवेगरवा, अघोरा, घनाघनरवा, वरघोषा, महावर्णा, सुघंटा, घंटिका, घंटा, ईश्वरी, महाघोरा, घोरा, अतिघोरिका द्वितीय आवरण में ये सोलह कही गयी हैं।।१३६-१३९।। इस प्रकार दाक्षव्यूह

विभूतिर्भोगदा कांतिः शंखिनी चाष्टमी स्मृता। प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे शृणु॥१४१॥
पत्रिणी चैव गांधारी योगमाता सुपीवरा। रक्ता मालांशुका वीरा संहारी मांसहारिणी॥१४२॥
फलहारी जीवहारी स्वेच्छाहारी च तुंडिका। रेवती रंगिणी संगा द्वितीये षोडशैव तु॥१४३॥
चंडव्यूहः समाख्याश्चंडाव्यूहस्तथोच्यते। चंडी चंडमुखी चंडा चंडवेगा महारवा॥१४४॥
भ्रुकुटी चंडभूश्चैव चंडरूपाष्टमी स्मृता। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥१४५॥
चंद्रघ्राणा बला चैव बलजिह्वा बलेश्वरी। बलवेगा महाकाया महाकोपा च विद्युता॥१४६॥
कंकाली कलशी चैव विद्युता चंडघोषिका। महाघोषा महारावा चंडभाऽनंगचंडिका॥१४७॥
चंडायाः कथितो व्यूहो हरव्यूहं शृणुष्व मे। चंडाक्षी कामदा देवी सूकरी कुक्कुटानना॥१४८॥
गांधारी दंदुभी दुर्गा सौमित्रा चाष्टमी स्मृता। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥१४९॥
मृतोद्भवा महालक्ष्मीर्वर्णदा जीवरक्षिणी। हरिणी क्षीणजीवा च दंडवक्त्रा चतुर्भुजा॥१५०॥
व्योमचारी व्योमरूपा व्योमव्यापी शुभोदया। गृहचारी सुचारी च विषाहारी विषार्तिहा॥१५१॥
हरव्यूहः समाख्यातो हराया व्यूह उच्यते। जंभाच्युता च कंकारी देविका दुर्धरावहा॥१५२॥
चंडिका चपला चेति प्रथमावरणे स्मृताः। चंडिका चामरी चैव भंडिका च शुभानना॥१५३॥
पिंडिका मुंडिनी मुंडा शाकिनी शाङ्करी तथा। कर्तरी भर्तरी चैव भागिनी यज्ञदायिनी॥१५४॥
यमदंष्ट्रा महादंष्ट्रा कराला चेति शक्तयः। हरायाः कथितो व्यूहः शौंडव्यूहं शृणुष्व मे॥१५५॥
विकराली कराली च कालजंघा यशस्विनी। वेगा वेगवती यज्ञा वेदांगा चाष्टमी स्मृता॥१५६॥

को मैंने कहा। अब चण्ड व्यूह को सुनो—प्रथम आवरण में अतिघण्टा, अतिघोरा, कराला, करभा, विभूति, भोगदा, कान्ति शंखिनी, ये आठ होती हैं। प्रथम आवरण मैंने कहा, अब द्वितीय आवरण सुनो।।१४०-१४१।। वे पत्रिणी, गान्धारी, योगमाता सुपीवरा, रक्ता, मालांकुशा, वीरा, संहारी, मांसहारिणी, फलाहारी, जीवहारी, स्वेच्छाहारी, तुंडिका, रेवती, रंगिनी, संगा ये सोलह होती हैं। चंडव्यूह मैंने कहा। इसके बाद चंडाव्यूह कहता हूँ। चण्डी, चण्डमुखी, चण्डा, चण्डवेगा, महारवा, भृकुटी, चण्डभू और चन्डरूपा ये आठ हैं। प्रथम आवरण मैंने कहा। अब द्वितीय आवरण सुनो, चन्द्रघ्राणा, बला, बलजिह्वा, बलेश्वरी, बलवेगा, महाकाया, महाकोपा, विद्युता, कंकाली, कलशी, विद्युता, चण्डघोषिका, महाघोषा, महारावा, चंडभा, अनंगचण्डिका ये चण्डा व्यूह मैंने कहा। अब हर व्यूह सुनो।।१४२-४७।। प्रथम आवरण में चण्डाक्षी, कामदादेवी, सूकरी, कुक्कुटानना, गान्धारी, दन्दुभी, दुर्गा, सौमित्रा ये आठ हैं। प्रथम आवरण मैंने कहा, अब द्वितीय आवरण को सुनो।।१४८-१४९।। मृतोद्भवा, महालक्ष्मी, वर्णदा, जीवरक्षिणी, हरिणी, क्षीणजीवा, दण्डवक्त्रा, चर्तुभुजा, व्योमचारी, व्योमरूपा, व्योमव्यापी, सुभोदया, गृहचारी, सुचारी, विषाहारी, विषार्तिहा। हरव्यूह मैंने कहा, अब हराया व्यूह कहता हूँ। जम्भाच्युता, कंकारी, देविका, दुर्धरावहा, चण्डिका, चपला ये प्रथम आवरण में हैं। चण्डिका, चामरी भंडिका, शुभानना, पिण्डिका, मुण्डिनी, मुण्डा, शाकिनी, शांकरी, कर्तरी, भर्तरी, भागिनी, यज्ञदायिनी, यमदंष्ट्रा, महादंष्ट्रा, कराला ये शक्तियाँ हैं।।१५०-१५५।। हराया व्यूह को कहा, अब मुझसे

प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
वज्रा शंखातिशंखा वा बला चैवाबला तथा॥१५७॥
अंजनी मोहिनी माया विकटांगी नली तथा।
गंडकी दंडकी घोणा शोणा सत्यवती तथा॥१५८॥
कल्लोला चेति क्रमशः षोडशैव यथाविधि।
शौंडव्यूहः समाख्यातः शौंडाया व्यूह उच्यते॥१५९॥
दंतुरा रौद्रभागा च अमृता सकुला शुभा। चलजिह्वार्यनेत्रा च रूपिणी दारिका तथा॥१६०॥
प्रथमा वरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
खादिका रूपनामा च संहारी च क्षमांतका॥१६१॥
कंडिनी पेषिणी चैव महात्रासा कृतांतिका। दंडिनी किंकरी बिंबा वर्णिनी चामलांगिनी॥१६२॥
द्रविणी द्राविणी चैव शक्तयः षोडशैव तु।
कथितो हि मनोरम्यः शौंडाया व्यूह उत्तमः॥१६३॥
प्रथमाख्यं प्रवक्ष्यामि व्यूहं परमशोभनम्।
प्लविनी प्लावनी शोभा मंदा चैव मदोत्कटा॥१६४॥
मंदाऽक्षेपा महादेवी प्रथमावरणे स्मृताः। कामसंदीपिनी देवी अतिरूपा मनोहरा॥१६५॥
महावशा मदग्राहा विह्वला मदविह्वला। अरुणा शोषणा दिव्या रेवती भांडनायिका॥१६६॥
स्तंभिनी घोररक्ताक्षी स्मररूपा सुघोषणा। व्यूहः प्रथम आख्यातः स्वायंभुव यथा तथा॥१६७॥
कथितं प्रथमव्यूहं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मे। घोरा घोरतराघोरा अतिघोराघनायिका॥१६८॥

शौंड व्यूह सुनो। प्रथम आवरण में विकराली, कराली, कालजंघा, यशस्विनी, वेगा, वेगवती, यज्ञा, वेदांगा ये आठ प्रथम आवरण में हैं। द्वितीय आवरण में वज्रा, शंखा अतिशंखा, बला, अबला, अंजनी, मोहिनी, माया, विकटांगी, नली, गण्डकी, दण्डकी, घोणा, शोंणा, सत्यवती, कल्लोला ये क्रमशः सोलह कही गयी हैं। शौंड व्यूह को मैंने कहा। अब शौंडाया व्यूह कहता हूँ।।१५६-१५९।। दन्तुरा, रौद्रभागा, अमृता, शकुलाशुभा, चलजिह्वा, आर्यनेत्रा, रूपिणी, दारिका ये प्रथम आवरण में हैं। अब द्वितीय आवरण सुनो। खादिका, रूपनामा, संहारी, क्षमा, अंतका, कंडिनी, पेषिणी, महात्रासा, कृतान्तिका, दंडिनी, किंकरी, बिम्बा, वर्णिनी, अम्लाँगिनी द्रविणी, द्रावणी ये सोलह शक्तियाँ इस प्रकार शोभन और मनोरम शौंडाया व्यूह का वर्णन किया।।१६०-१६३। अब मैं उत्तम प्रथम व्यूह की शक्तियों का वर्णन करता हूँ। इसके प्रथम आवरण में ये शक्तियाँ हैं। प्लविनी, प्लाविनी, शोभा, मंदा, आक्षेपा, मदोत्कटा, महादेवी ये प्रथम आवरण में हैं। द्वितीय आवरण में काम संदीपनी, देवी अतिरूपा, मनोहरा, महावशा, मदग्राहा, विह्वला, भदविह्वला, अरुणा, शोषणा, दिव्या, रेवती, भांडनायिका, स्तंभिनी, घोररक्ताक्षी, स्मररूपा, सुघोषणा है। हे सुव्रत! इस प्रकार प्रथम व्यूह का वर्णन किया।।१६४-१६७।। अब मैं प्रथम व्यूह का वर्णन करता हूँ। सुनो—इसके प्रथम आवरण में घोरा, घोरतरा

धावनी क्रोष्टुका मुंडा चाष्टमी परिकीर्तिता। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥१६९॥
भीमा भीमतरा भीमा शास्ता चैव सुवर्तुला। स्तंभिनी रोदनी रौद्रा रुद्रवत्यचला चला॥१७०॥
महाबला महाशांतिः शाला शांता शिवाशिवा। बृहत्कक्षा महानासा षोडशैव प्रकीर्तिताः॥१७१॥

प्रथमायाः समाख्यातो मन्मथव्यूह उच्यते।
तालकर्णी च बाला च कल्याणी कपिला शिवा॥१७२॥
इष्टिस्तुष्टिः प्रतिज्ञा च प्रथमावरणे स्मृताः।
ख्यातिः पुष्टिकरी तुष्टिर्जला चैव श्रुतिर्धृतिः॥१७३॥

कामदा शुभदा सौम्या तेजिनी कामतंत्रिका। धर्मा धर्मवशा शीला पापहा धर्मवर्धिनी॥१७४॥
मन्मथः कथितो व्यूहो मन्मथायाः शृणुष्व मे। धर्मरक्षा विधाना च धर्मा धर्मवती तथा॥१७५॥
सुमतिर्दुर्मतिर्मेधा विमला चाष्टमी स्मृता। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥१७६॥

शुद्धिर्बुद्धिर्द्युतिः कांतिर्वर्तुला मोहवर्धिनी।
बला चातिबला भीमा प्राणवृद्धिकरी तथा॥१७७॥

निर्लज्जा निर्घृणा मंदा सर्वपापक्षयंकरी। कपिला चातिविधुरा षोडशैताः प्रकीर्तिता॥१७८॥
मन्मथायिक उक्तस्ते भीमव्यूहं वदामि च। रक्ता चैव विरक्ता च उद्वेगा शोकवर्धिनी॥७९॥
कामा तृष्णा क्षुधा मोहा चाष्टमी परिकीर्तिता। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥१८०॥

जया निद्रा भयालस्या जलतृष्णोदरी दरा।
कृष्णा कृष्णांगिनी वृद्धा शुद्धोच्छिष्टाशनी वृषा॥१८१॥

अघोरा, अतिघोरा, अघनायिका, धावनी, क्रोष्टुका, मुण्डा, ये आठ कही गयी है। मैंने प्रथम आवरण को वताया अब द्वितीय आवरण सुनो।।१६८-१६९।।

भीमा, भीमतरा, भीमा, शास्ता सुवर्तुला, स्तंभिनी, रोदिनी, रौद्रा, रुद्रवती, अचलाचला, महाबला, महाशांति, शाला, शांता, शिवाशिवा, वृहत्कक्षा, महानासा ये सोलह है। प्रथम आवरण को बताया। अब मन्मथव्यूह को बताता हूँ। तालकर्णी, बाला, कल्याणी, कपिला, शिवा, इष्टि, तुष्टि, प्रतिज्ञा, ये प्रथम आवरण में है।।१७०-१७१।।

ख्याति, पुष्टिकरी, तुष्टि, जला, श्रुति धृति, कामदा, शुभदा, सौम्या, तेजिनी, कामतंत्रिका, धर्मा, धर्मवशा, शीला, पापहा, धर्मवर्धिनी, ये मन्मथ, के द्वितीय आवरण में है।।१७२-१७४।। इस प्रकार मन्मथ व्यूह को कहा। अब मन्मथायिक व्यूह को सुनो। धर्मरक्षा, विधाना, धर्मा, अधर्मवती, सुमति, दुर्मति, मेधा, विमला ये आठ प्रथम आवरण में कहे गये हैं। अब दूसरे आवरण में सुनो।।१७५-१७६।। द्वितीय आवरण में सोलह शक्तियाँ हैं—शुद्धि, बुद्धि, द्युति, कांति, वर्तुला, मोहवर्धिनी, बला, अतिबला, भीमा, प्राणवृद्धिकरी, निर्लज्जा, निर्घृणा, मंदा, सर्वपापक्षयंकरी, कपिला, अतिविधुरा, ये सोलह हैं।।१७७-१७८।। मन्मथायिक व्यूह मैंने कहा। अब भीम व्यूह को सुनो। रक्ता, विरक्ता, उद्वेगा, शोकवर्धिनी, कामा, तृष्णा, क्षुधा, मोहा, ये आठ प्रथम आवरण में कही गई हैं।।१७९-१८०।। द्वितीय आवरण में जया, निद्रा, भयालस्या, जलतृष्णोदरी, दरा,

कामना शोभिनी दग्धा दुःखदा सुखदावली।
भीमव्यूहः समाख्यातो भीमायीव्यूह उच्यते॥१८२॥
आनंदा च सुनंदा च महानंदा शुभंकरी। वीतरागा महोत्साहा जितरागा मनोरथा॥१८३॥
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु। मनोन्मनी मनःक्षोभा मदोन्मत्ता मदाकुला॥१८४॥
मंदगर्भा महाभासा कामानंदा सुविह्वला। महावेगा सुवेगा च महाभोगा क्षयावहा॥१८५॥
क्रमिणी क्रामिणी वक्रा द्वितीयावरणे स्मृताः। कथितं तव भीमायीव्यूहं परमशोभनम्॥१८६॥
शाकुनं कथयाम्यद्य स्वायंभुव मनोत्सुकम्। योगा वेगा सुवेगा च अतिवेगा सुवासिनी॥१८७॥
देवी मनोरया वेगा जलावर्ता च धीमती। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥१८८॥
रोधिनी क्षोभिणी बाला विप्राशेषा सुशोषिणी। विद्युता भासिनी देवी मनोवेगा च चापला॥१८९॥
विद्युज्जिह्वा महाजिह्वा भृकुटीकुटिलानना।
फुल्लज्वाला महाज्वाला सुज्वाला च क्षयांतिका॥१९०॥
शाकुनः कथितो व्यूहः शाकुनायाः शृणुष्व मे।
ज्वालिनी चैव भस्मांगी तथा भस्मांगता तता॥१९१॥
भाविनी च प्रजा विद्या ख्यातिश्चैवाष्टमी स्मृता। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥१९२॥
उल्लेखा च पताका च भोगोभोगवती खगा। भोगभोगव्रता योगा भोगाख्या योगपारगा॥१९३॥
ऋद्धिर्बुद्धि धृतिः कांतिः स्मृतिः साक्षाच्छ्रुतिर्धरा।
शाकुनाया महाव्यूहः कथिताः कामदायकः॥१९४॥

कृष्णा, कृष्णांगिनी, वृद्धा, शुद्धोच्छिष्टाशनी, वृषा, कामना, शोभिनी, दग्धा, दुःखदा, सुखदावली ये द्वितीय आवरण में हैं। इस प्रकार भीमव्यूह को बताया। अब भीमायी व्यूह को सुनो। आनन्दा, सुनन्दा, महानंदा, शुभंकरी, वीतरागा, महोत्साहा, जितरागा, मनोरथा, ये प्रथम आवरण में हैं। अब द्वितीय आवरण की सुनो। मनोन्मनी, मनःक्षोभा, मदोन्मत्ता, मदाकुला, मंदगर्भा, महाभासा, कामानंदा, सुविह्वला, महावेगा, सुवेगा, महाभोगा, क्षयावहा, क्रमिणी, क्रामिणी, वक्रा, ये द्वितीय आवरण में है। इस प्रकार परम शोभन भीमायीव्यूह को मैंने कहा।।१८१-१८६।। हे स्वयंभू मनु! अब मैं शाकुन व्यूह को बताता हूँ—योगा, वेगा, सुवेगा, अतिवेगा, सुवासिनी, देवी, मनोरया, वेगा, जलावर्ता, धीमती ये प्रथम आवरण में है। रोधिनी, क्षोभिणी, बाला, विप्राशेषा, सुशोषिणी, विद्युता, भासिनी, देवी, मनोवेगा, चापला, विद्युज्जिह्वा, महाजिह्वा, भृकुटीकुटिलानना, फुल्लज्वाला, महाज्वाला, सुज्वाला, क्षयांतिका शाकुन व्यूह में ये सब द्वितीय आवरण है।।१८७-१९०।। इस प्रकार व्यूह शाकुन मैंने कहा। अब शाकुना व्यूह को सुनो। ज्वालिनी, भस्मांगी, भस्मांगता, तता, भाविनी, प्रजा, विद्या, ख्याति में आठ प्रथम आवरण में हैं। उल्लेखा, पताका, भोगा, उपभोगवती, खगा, भोगा, भोगव्रता, योगा, भोगाख्या, योगपारगा, ऋद्धि, बुद्धि धृति, कांति, स्मृति, श्रुतिधरा ये कामना के पूरा करने वाले शाकुना व्यूह के द्वितीयं आवरण में है।।१९१-१९४।। हे स्वयंभू मनु! शोभन सुमति नामक व्यूह को सुनो। परेष्टा, परा, दृष्टा,

स्वायंभुव शृण व्यूहं सुमत्याख्यं सुशोभनम्। परेष्टा च परा दृष्टा ह्यमृता फलनाशिनी॥१९५॥
ह्रिरण्याक्षी सुवर्णाक्षी देवी साक्षात्कपिंजला। कामरेखा च कथितं प्रथमावरणं शृणु॥१९६॥
रत्नद्वीपा च सुद्वीपा रत्नदा रत्नमालिनी।
रत्नशोभा सुशोभा च महाशोभा महाद्युतिः॥१९७॥
शांबरी बंधुरा ग्रंथिः पादकर्णा करानना। हयग्रीवा च जिह्वा च सर्वभासेति शक्तयः॥१९८॥
कथितः सुमतिव्यूहः सुमत्या व्यूह उच्यते। सर्वाशी च महाभक्षा महादंष्ट्रातिरौरवा॥१९९॥
विस्फालिंगा विलिंगा च कृतांता भास्करानना। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥२००॥
रागा रंगवती श्रेष्ठा महाक्रोधा च रौरवा। क्रोधनी वसनी चैव कलहा च महाबला॥२०१॥
कलंतिका चतुर्भेदा दुर्गा वै दुर्गमानिनी। नाली सुनाली सौम्या च इत्येव कथितं मया॥२०२॥
गोपव्यूहं वदाम्यत्र शृणु स्वायंभुवाखिलम्। पाटली पाटवी चैव पाटी विटिपिटा तथा॥२०३॥
कंकटा सुपटा चैव प्रघटा च घटोद्भवा। प्रथमावरणं चात्र भाषया कथितं मया॥२०४॥
नादाक्षी नादरूपा च सर्वकारी गमाऽगमा। अनुचारी सुचारी च चंडनाडी सुवाहिनी॥२०५॥
सुयोगा च वियोगा च हंसाख्या च विलासिनी। सर्वगा सुविचारा च वंचनी चेति शक्तयः॥२०६॥
गोपव्यूह; समाख्यातो गोपायीव्यूह उच्यते। भेदिनी च्छेदिनी चैव सर्वकारी क्षुधाशनी॥२०७॥
उच्छुष्मा चैव गांधारी भस्माशी वडवानला। प्रथमावरणं चैव द्वितीयावरणं शृणु॥२०८॥

अमृता, फलनाशिनी, हिरण्याक्षी, सुवर्णाक्षी, कपिंजला, कामरेखा ये प्रथम आवरण में है। रत्नद्वीपा, सुद्वीपा, रत्नदा, रत्नमालिनी, रत्नशोभा, सुशोभा, महाशोभा, महाद्युति, शांबरी, बंधुरा, ग्रंथि, पादकर्णा, करानना, हयग्रीवा, जिह्वा, सर्वभासा, ये शक्तियाँ सुमति व्यूह में कही गई हैं। ये द्वितीय आवरण में कही गई है। इस प्रकार सुमति (पुल्लिग) का वर्णन किया गया। अब सुमत्या (स्त्रीलिंग) को ध्यान सुनो।।१९५-१९६।। सर्वाशी, महाभक्षा, महादंष्ट्रा अतिरौरवा, विस्फालिंगा, विलिंगा, कृतांता, भास्कारानना, ये प्रथम आवरण में कहा। अब द्वितीय आवरण में सुनो। रागा, रंगवती, श्रेष्ठा, महाक्रोधा, रौरवा, कोधनी, वसनी, कलहा, महाबला, कलन्तिका, चतुरर्भेदा, दुर्गा, दुर्गमानिनी, नाली, सुनाली, सौम्या इस प्रकार ये प्रथम आवरण में हैं। सुमत्या व्यूह का वर्णन कर दिया गया।।१९७-२०२।।

अब मैं तुमसे गोप व्यूह का वर्णन करता हूँ। अब इसको सुनो—पाटली, पाटवी, पाटी, विटिपिटा, कंटका, सुपटा, प्रघटा और घटोद्रवा, ये प्रथम आवरण में हैं। इस प्रकार प्रथम आवरण का वर्णन स्पष्ट रूप में किया गया।।२०३-२०४।। द्वितीय आवरण में, नादाक्षी, नादरूपा, सर्वकारी, गमा अगमा, अनुचारी, सुचारी, चण्डनाडी, सुवाहिनी, सुयोगा, वियोगा, हंसाख्या, विलासिनी, सर्वगा, सुविचारा, वंचनी ये शक्तियाँ द्वितीय आवरण में हैं।।२०५-२०६।। गोपव्यूह का वर्णन किया गया। गोपायी व्यूह का वर्णन सुनो—भेदिनी, छेदिनी, सर्वकारी, सुधासनी, उच्छुष्मा, गान्धारी, भस्माशी, वडवानला, यह प्रथम आवरण में है। द्वितीय आवरण को सुनिए।।२०७-२०८।। अन्धा, बाह्यांशिनी, बाला, दीक्षपामा, अक्षा, त्र्यक्षा, ह्रल्लेखा, ह्रद्गता,

अंधा बाह्वासिनी बाला दीक्षपामा तथैव च। अक्षा त्र्यक्षा च हल्लेखा हृद्गता मायिकापरा॥२०९॥
आमयासादिनी मिल्ली सह्यासह्या सरस्वती। रुद्रशक्तिर्महाशक्तिर्महामोहा च गोनदी॥२१०॥
गोपायी कथितो व्यूहो नंदव्यूहं वदामि ते। नंदिनी च निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च यथाक्रमम्॥२११॥
विद्यानासा खग्रसिनी चामुंडा प्रियदर्शिनी। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥२१२॥

गृह्या नारायणी मोहा प्रजा देवी च चक्रिणी।
कंकटा च तथा काली शिवाद्योषा ततः परम्॥२१३॥

विरामा या च वागीशी वाहिनी भीषणी तथा। सुगमा चैव निर्दिष्टा द्वितीयावरणे स्मृता॥२१४॥
नंदव्यूहो मया ख्यातो नंदाया व्यूह उच्यते। विनायकी पूर्णिमा च रंकारी कुंडली तथा॥२१५॥
इच्छा कपालिनी चैव द्वीपिनी च जयंतिका। प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयः परिकीर्तिताः॥२१६॥
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु। पावनी चांबिका चैव सर्वात्मा पूतना तथा॥२१७॥
छगली मोदिनी साक्षाद्देवी लंबोदरी तथा। संहारी कालिनी चैव कुसुमा च यथाक्रमम्॥२१८॥
शुक्रा तारा तथा ज्ञाना क्रिया गायत्रिका तथा। सावित्री चेति विधिना द्वितीयावरणं स्मृतम्॥२१९॥
नंदायाः कथितो व्यूहः पैतामहमतः परम्। नंदिनी चैव फेत्कारी क्रोधा हंसा षडंगुला॥२२०॥
आनंदा वसुदुर्गा च संहारा ह्यमृताष्टमी। प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥२२१॥
कुलांतिकानला चैव प्रचंडा मर्दिनी तथा। सर्वभूताभया चैव दया च वडवामुखी॥२२२॥
लंपटा पन्नगा देवी कुसुमा विपुलांतका। केदारा च तथा कूर्मा दुरिता मंदरोदरी॥२२३॥
खड्गचक्रेतिविधिना द्वितीयावरणं स्मृतम्। व्यूहः पैतामहः प्रोक्तो धर्मकामार्थमुक्तिदः॥२२४॥

मायिका, परा, आमयासादिनी, मिल्ली, सह्या, असह्या, सरस्वती, रुद्रशक्ति, महाशक्ति, महामोहा, गोनदी।।२०९-२१०।। गोपायी व्यूह का वर्णन किया गया। अब मैं नन्द व्यूह का वर्णन करता हूँ। नन्दिनी, निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्यानासा, खग्रसिनी, चामुण्डा, प्रियदर्शिनी ये प्रथम आवरण में हैं। अब द्वितीय आवरण को सुनो।।२११-२१२।। गृह्या, नारायणी, मोहा, प्रजा देवी, चक्रिणी, कंकटा, काली, शिवा, आद्या, उषा, विरामा, वागीशी, वाहिनी, भीषणी, सुगमा, निर्दृष्टा द्वितीय आवरण में हैं।।२१३-२१४।। नन्दव्यूह का वर्णन मैंने किया, नंदा व्यूह का वर्णन करता हूँ—विनायकी, पूर्णिमा, रंकारी, कुण्डली, इच्छा, कपालिनी, द्वीपिनी, जयन्तिका यह प्रथम आवरण में आठ शक्तियाँ कही गयी हैं। द्वितीय आवरण में पावनी, अम्बिका, सर्वात्मा, पूतना, छगली, मोदिनी, साक्षात् देवी लम्बोदरी, संहारी, कालिनी, कुसुमा, शुक्रा, तारा, ज्ञाना, क्रिया, गायत्रिका, सावित्री ये आठ द्वितीय आवरण में हैं।।२१५-२१९।। इस प्रकार नन्दा व्यूह का वर्णन किया गया। अब पितामह व्यूह का वर्णन सुनो। नन्दिनी, फेत्कारी, क्रोधा, हंसा, षडंगुला, आनन्दा, वसुदुर्गा, संहारा, अमृताष्टमी ये प्रथम आवरण में हैं। द्वितीय आवरण में सुनो।।२२०-२२१।। कुलान्तिका, नला, प्रचण्डा, मर्दिनी, सर्वभूताभया, दया, वडवामुखी, लंपटा, पन्नगादेवी, कुसुमा, विपुलांतका, केदारा, कूर्मा, दुरिता, मंदरोदरी, खड्गचक्रा ये द्वितीय आवरण में आती हैं। इस प्रकार पितामह व्यूह जो कि धर्म, काम, अर्थ और मुक्ति को देने वाला है। उसका

पितामहाया व्यूहं च कथयामि शृणुष्व मे। वज्रा च नंदना शावाराविका रिपुभेदिनी॥२२५॥
रूपा चतुर्था योगा च प्रथमावरणे स्मृताः। भूता नादा महाबाला खर्परा च तथा परा॥२२६॥
भस्मा कांता तथा वृष्टिर्द्विभुजा ब्रह्मरूपिणी। सैह्या वैकारिका जाता कर्ममोटी तथापरा॥२२७॥
महामोहा महामाया गांधारी पुष्पमालिनी। शब्दापी च महाघोषा षोडशैव तथांतिमे॥२२८॥
सर्वाश्च द्विभुजा देव्यो बालभास्करसन्निभाः। पद्मशंखधराः शांता रक्तस्रग्वस्त्रभूषणाः॥२२९॥
सर्वाभरणसंपूर्णा मुकुटाद्यैरलंकृताः। मुक्ताफलमयैर्दिव्यै रत्नचित्रैर्मनोरमैः॥२३०॥
विभूषिता गौरवर्णाध्येया देव्यः पृथक्पृथक्। एवं सहस्रकलशं ताम्रजं मृन्मयं तु वा॥२३१॥
पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तं रुद्रक्षेत्रे प्रतिष्ठितम्। भवाद्यैर्विष्णुना प्रोक्तैर्नाम्नां चैव सहस्रकैः॥२३२॥
संपूज्य विन्यसेदग्रे सेचयेद्बाणविग्रहम्।
अभिषिच्य च विज्ञाप्य सेचयेत्पृथिवीपतिम्॥२३३॥
एवं सहस्रकलशं सर्वसिद्धिफलप्रदम्। चत्वारिंशन्महाव्यूहं सर्वलक्षणलक्षितम्॥२३४॥
सर्वेषां कलशं प्रोक्तं पूर्ववद्धेमनिर्मितम्। सर्वे गंधांबुसंपूर्णपंचरत्नसमन्विताः॥२३५॥
तथा कनकसंयुक्ता देवस्य घृतपूरिताः। क्षीरेण वाथ दध्ना वा पंचगव्येन वा पुनः॥२३६॥
ब्रह्मकूर्चेन वा मध्यमभिषेको विधीयते। रुद्राध्यायेन रुद्रस्य नृपतेः शृणु सत्तम॥२३७॥

वर्णन किया गया।।२२२-२२४।। अब मैं पितामहा व्यूह का वर्णन करता हूँ। इसको सुनिए। वज्रा, नन्दना, शांवाराविका, रिपुभेदिनी, रूपा, चतुर्था योगा ये प्रथम आवरण में हैं। द्वितीय आवरण में भूता नादा, महाबाला, खर्परा, परा, भस्मा, कान्ता, वृष्टि, द्विभुजा (दो भुजा वाली), ब्रह्मरूपिणी, सैह्या, वैकारिका, कर्ममोटी, महामोहा, महामाया, गान्धारी, पुष्पमालिनी, शब्दापी और महाघोषा ये सोलह द्वितीय आवरण में हैं।।२२५-२२८।। ये सभी देवियाँ दो भुजा वाली हैं। ये आभा में प्रातःकालीन सूर्य के समान हैं। ये कमल और शंख हाथो में धारण किये हुए हैं और शान्त हैं और लाल माला पहने हए हैं। वस्त्र आभूषण धारण किये हुए हैं और मुकुट आदि को पहने हुए हैं। ये मोती और दिव्य सुन्दर रत्नों से विभूषित हैं। ये सब गौर वर्ण की हैं। ये सब देवियों का अलग-अलग ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार ताँबे या मिट्टी के बने हुए कलश पूर्वोक्त लक्षण से युक्त को रुद्रक्षेत्र में स्थापित करें। उसके बाद विष्णु, भव आदि द्वारा उच्चारण किये गये, सहस्त्र नाम से उनकी पूजा करे। उनको कलशों को सामने में रखें, तब भक्त बाणलिंग का अभिषेक करें (जल से सींचे)। अभिषेक करके राजा के ऊपर यह जल उड़ेल दें।।२२९-२३३।।

यह सहस्त्र जल कलश सब सिद्धिदायक है। यह चौसठ महाव्यूह हैं। जिनमें से प्रत्येक अपने अपने विशिष्ट लक्षणों से युक्त हैं।।२३४।।

राजा का अभिषेक रुद्र के रुद्राध्याय मन्त्रों को दोहराते हुए किया जाना चाहिये। पात्र स्वर्ण से बने होनें चाहिये। वे सुगंधित जल से पूर्ण हों और प्रत्येक पात्र में पाँच रत्न और स्वर्ण के टुकड़े पड़े हों। देव के पात्र घी, दूध, दही या पंचगव्य ब्रह्मकुश से भरे हो। हे सुव्रत! सुनो। राजा का अभिषेक रुद्र से रुद्राध्याय मंत्र दोहराते हुए किया जाय। अघोरेभ्यो अथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेध्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेऽभ्यः। इन मंत्रों को

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥२३८॥
मंत्रेणानेन राजानं सेचयेदभिषेचितम्। होमं च मंत्रेणानेन अघोरेणाघहारिणा॥२३९॥
प्रागाद्यं देवकुंडे वा स्थंडिले वा घृतादिभिः। समिदाज्यचरुं लाजशालिनीवारतंडुलैः॥२४०॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वा राजानमधिवासयेत्।
पुण्याहं स्वस्ति रुद्राय कौतुकं हेमनिर्मितम्॥२४१॥
भसितं च मृणालेन बंधयेद्दक्षिणे करे। त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनम्॥२४२॥
उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। मंत्रेणानेन राजानं सेचयेद्वाथ होमयेत्॥२४३॥
सर्वद्रव्याभिषेकं च होमद्रव्यैर्यथाक्रमम्॥२४४॥
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥२४५॥
स्वाहांतं पुरुषेणैवं प्राक्कुण्डं होमयेद्द्विजः। अघोरेण च याम्ये च होमयेत्कृष्णवाससा॥२४६॥
वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः।
इत्याद्युक्तक्रमेणैव जुहुयात्पश्चिमे नरः॥२४७॥
सद्येन पश्चिमे होमः सर्वद्रव्यैर्यथाक्रमम्। सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः॥२४८॥
भवे भवेनाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः।
स्वाहांतं जुहुयादग्नौ मंत्रेणानेन बुद्धिमान्॥२४९॥

दुहराते हुए राजा के ऊपर अभिमंत्रित जल को उड़ेर (डाल) देना चाहिये। अघोर के मंत्रों से–जो कि सब पापों को दूर करता है—हवन भी कराना चाहिये।।२३५-२३९।। देवकुंड में या भूमि पर धृत आदि से पूर्व से प्रारम्भ करके, समिधा, घी, चरु, लावा, अन्न, या शालि नीवार के चावल होम के लिये प्रयोग में लाया जाय। १०८ बार आहुति देने के बाद राजा को सुगंधित जल से अधिवासित करे। शरीर पर सुगंधित अगरबत्ती आदि से धूप करे। स्वस्ति मंत्र दोहराते हुये पुण्याह जल को राजा के ऊपर छिड़के। सुनहरा तागा (धागा) (कलावा या रक्षासूत्र) बाँध दे और मृणाल (कमल की नाल) से उस पर भस्म छिड़क राजा के दाहिने हाथ में तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। 'तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्' के इस मन्त्र से ब्राह्मण पूर्व कुण्ड में मन्त्र के अन्त में स्वाहा शब्द लगाकर होम करे। वह एक काले कपड़े के टुकड़े के साथ अघोर मन्त्र को दोहराते हुए दक्षिणी कुण्ड में होम करे।।२४०-२४६।। भक्त पश्चिम दिशा में वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः इत्यादि इन मन्त्रों को पढ़ते हुए पश्चिमी कुण्ड में हवन करे।।२४७।। उसके बाद सद्योजातं प्रपद्यामि 'सद्योजाताय वै नमः, इस सद्य मन्त्र को दोहराते हुए यथा क्रम में सब सामग्री से पश्चिमी कुण्ड में हवन करे। भवे भवेनातिभवे भवस्य मां भवोद्भवाय नमः बुद्धिमान भक्त इस मन्त्र से अन्त में स्वाहा शब्द लगाकर अग्नि में हवन करे। वह दक्षिण पूर्व के कुण्ड में रुद्र सम्बन्धी मन्त्र को पढ़ते हुए होम करे। उसके बाद जातवेदसे सुनवाम सोमम् इत्यादि से होम करे। उसके बाद पूजा की सब सामग्री के साथ यह मन्त्र दोहराते हुए दक्षिण पश्चिम कुण्ड में होम पूरा किया

आग्नेय्यां च विधानेन ऋचा रौद्रेण होमयेत्।
जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादिना ततः। नेर्ऋते पूर्ववदद्रव्यैः सर्वैर्होमो विधीयते॥२५०॥
मंत्रेणानेन दिव्येन सर्वसिद्धिकरेण च।
निमि निशि दिश स्वाहा खड्ग राक्षस भेदन॥२५१॥
रुधिराज्यार्द्र नैर्ऋत्यै स्वाहा नमः स्वधा नमः। यथेष्टं विधिना द्रव्यैर्मंत्रेणानेन होमयेत्॥२५२॥
यम्यां हि विविधैर्द्रव्यैरीशानेन द्विजोत्तमाः। ईशान्यामथ पूर्वोक्तैर्द्रव्यैर्होममथाचरेत्॥२५३॥
ईशानाय कद्रुद्राय प्रचेतसे त्र्यंबकाय शर्वाय तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥२५४॥
प्रधानं पूर्ववद्द्रव्यैरीशानेन द्विजोत्तमाः। प्रतिद्रव्यं सहस्रेण जुहुयान्नृपसन्निधौ॥२५५॥
स्वयं वा जुहुयादग्नौ भूपतिः शिववत्सलः॥
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां
ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोऽहम्॥२५६॥
प्रायश्चित्तमघोरेण शेषं सामान्यमाचरेत्। कृताधिवासं राजानं शंखभेर्यादिनिस्वनैः॥२५७॥
जयशब्दरवैर्दिव्यैर्वेदघोषैः सुशोभनैः। सेचयेत्कूर्चतोयेन प्रोक्षयेद्वा नृपोत्तमम्॥२५८॥
रुद्राध्यायेन विधिना रुद्रभस्मांगधारिणम्। शंखचामरभेर्याद्यं छत्रं चंद्रसमप्रभम्॥२५९॥
शिबिकां वैजयंतीं च साधयेन्नृपतेः शुभाम्। राज्याभिषेकयुक्ताय क्षत्रियायेश्वराय वा॥२६०॥
नृपचिह्नानि नान्येषां क्षत्रियाणां विधीयते।
प्रमाणं चैव सर्वेषां द्वादशांगुलमुच्यते॥२६१॥

जाय।।२४८-२५०।। 'निमि निशि दिश स्वाहा खड्ग' राक्षस भेदन, सब सिद्ध कर इस दिव्य मन्त्र से राक्षस भेदन कृत्य पूरा किया जाय। रुधिराज्याद्रं नैर्ऋत्यैस्वाहा नमः स्वधा नमः इस मन्त्र से सब द्रव्यों से होम किया जाय।।२५१।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! दक्षिणी कुण्ड में सब सामग्री से ईशान मन्त्र द्वारा होम किया जाय। उसके बाद पहले कही हुई सब सामग्री से दक्षिण-पूर्व कुण्ड में हवन किया जाय।।२५२-२५३।। ईशानाय कद्रुद्राय प्रचेतसे त्र्यंबकाय शर्वाय तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।।२५४।। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! ईशान मन्त्र को दोहराते हुए पूर्ववत् सामग्री से प्रधान होम पूरा किया जाय। राजा के सामने प्रत्येक सामग्री से एक हजार बार होम किया जाय। शिव का प्रिय भक्त राजा अग्नि में स्वयं होम करे। उसक मन्त्र यह है। ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपति ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोऽहम्।।२५५-२५६।। अघोर मन्त्र को दोहराते हुए प्रायश्चित कृत्य को करे। शेष कृत्य सामान्य विधि से किया जाय। होम के धुएँ से राजा को अधिवास करके शंख भेरी आदि की ध्वनि से जय जयकार की ध्वनि से दिव्य वेदमन्त्रों की ध्वनि करे। अथवा कुश के जल से राजा के शरीर का सिंचन करे या पोंछे।।२५७-२५८।। रूद्राध्याय मंत्र को दोहराते हुए राजा के पूरे शरीर पर भस्म चुपड़ दे। राजा चन्द्रमा के समान प्रभाव वाले छत्र और शंख चामर भेरी आदि, शिविका (पालकी) वैजयंती (राजध्वज) इन सब से युक्त हो जाय। ये सब राजचिह्न राज्याभिषेक युक्त क्षत्रीश्वर—जो अपने राज्य में मुकुटधारी हो—उसको दिये जाते हैं अन्य क्षत्रियों को नहीं।।२५९-२६१।।

पलाशोदुंबराश्वत्थवटाः पूर्वादितः क्रमात्। तोरणाद्यानि वै तत्र पट्टमात्रेण पट्टिकाः॥२६२॥
अष्टमांगुलसंयुक्तदर्भमालासमावृतम् । दिग्ध्वजाष्टकसंयुक्तं द्वारकुंभैः सुशोभनम्॥२६३॥
हेमतोरणकुंभैश्च भूषितं स्नापयेन्नृपम्। सर्वोपरि समासीनं शिवकुंभेन सेचयेत्॥२६४॥
तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि। तन्नः शिवः प्रचोदयात्॥२६५॥
मंत्रेणानेन विधिना वर्धन्या गौरिगीतया। रुद्राध्यायेन वा सर्वमघोरायाथ वा पुनः॥२६६॥
दिव्यैराभरणैः शुक्लैर्मुकुटाद्यैः सुकल्पितैः। क्षौमवस्त्रैश्च राजानं तोषयेन्नियतं शनैः॥२६७॥
अष्टषष्टिपलेनैव हेम्ना कृत्वा सुदर्शनम्। नवरत्नैरलंकृत्य दद्याद्वै दक्षिणां गुरोः॥२६८॥
दशधेनु सवस्त्रं च दद्यात्क्षेत्रं सुशोभनम्। शतद्रोणतिलं चैव शतद्रोणांश्च तंडुलान्॥२६९॥
शयनं वाहनं शय्यां सोपधानां प्रदापयेत्। योगिनां चैव सर्वेषां त्रिंशत्पलमुदाहृतम्॥२७०॥
अशेषांश्च तदर्धेन शिवभक्तांस्तदर्धतः। महापूजां ततः कुर्यान्महादेवस्य वै नृपः॥२७१॥
एवं समासतः प्रोक्तं जयसेचनमुत्तमम्। एवं पुराभिषिक्तस्तु शक्रः शक्रत्वमागतः॥२७२॥
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नो विष्णुर्विष्णुत्वमागतः।
अंबिका चांबिकात्वं च सौभाग्यमतुलं तथा॥२७३॥
सावित्री च तथा लक्ष्मीर्देवी कात्यायनी तथा। नंदिनाथ पुरा मृत्यु रुद्राध्यायेन वै जितः॥२७४॥

पलास (छिउल) गूलर और पीपल या बरगद की टहनियाँ पूर्व से प्रारंभ करके सब दिशाओं में स्थापित की जायें। उन पर भक्त साधक द्वारा सिल्क के वस्त्रों के टुकड़ों की पट्टिकाएँ लगाई जायँ।।२६२।। राजा आठ अंगुल की कुश माला से समावृत (घेरे में) हो। आठों दिशाओं में आठ ध्वज (झंडे) लगे हों। प्रवेश द्वारों पर सुन्दर आठ जल पूरित कलश हों। सोने के तोरण और कलश (कुम्भ) से भूषित हों। तब पुरोहित राजा को स्नान करावे। राजा सर्वोपरि आसन (सीट) पर विराजमान हो। राजा के ऊपर शिवकुम्भ के जल से सेचन (छिड़काव) हो।।२६३-२६४।। तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि तन्नः शिवः प्रचोदयात्। इस मंत्र द्वारा राजा का एक वर्धनी के साथ गौरीगीत से छिड़काव करे। फिर रुद्राध्याय मंत्र या अघोर मंत्र से सिंचन करे।।२६५-२६६।। तब राजा को सफेद सिल्कन पोशाक, दिव्य आभूषण और राजमुकुट आदि भेंट किये जायँ।।२६७।। अड़सठ (६८) पल सोना का दर्शनीय आभूषण बनवाया जाय। वह नवरत्नों से अलंकृत हो। (शोभित हो)। उसको अपने गुरु को राजा दक्षिणा रूप में दे। दस गायें, वस्त्र सहित तथा एक अच्छा क्षेत्र (भूमि का खंड) भी दिया जाय। सौ द्रोण तिल और सौ द्रोण चावल, शयन (बिस्तर), वाहन, चादर, तकिया भी दिया जाय। सब योगियों को भी तीस पल सोना दिया जाना चाहिये।।२६८-२७०।। उसका आधा शेष पुरोहितों और उसका आधा शिव भक्तों को दिया जाय।।२७१।। इस प्रकार उत्तम जय अभिषेक संस्कार को संक्षेप में मैंने कहा। इस तरह पहले इन्द्र ने अभिषिक्त होकर इन्द्रत्व (इन्द्रपदवी) को प्राप्त किया था। ब्रह्मा जी ब्रह्मत्व को, विष्णु जी विष्णुत्व को अम्बिका, अम्बिकात्व एवं अतुल सौभाग्य को प्राप्त किया। सावित्री, लक्ष्मी देवी, और कात्यायनी ने भी पहले यही पदवी को प्राप्त किया। नन्दी ने भी पहले रुद्राध्याय द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त की। पहले यह अभिषेक महाबली तारकासुर ने किया। विष्णु ने अभिषिक्त होकर विद्युन्माली और

अभिषिक्तोऽसुरः पूर्वं तारकाख्यो महाबलः।
विद्युन्माली हिरण्याक्षो विष्णुना वै विनिर्जितः॥२७५॥
नृसिंहेन पुरा दैत्यो हिरण्यकशिपुर्हतः। स्कंदेन तारकाद्याश्च कौशिक्या च पुरांबया॥२७६॥
सुंदोपसुंदतनयौ जितौ दैत्येंद्रपूजितौ। वसुदेवसुदेवौ तु निहतौ कृतकृत्यया॥२७७॥
स्नानयोगेन विधिना ब्रह्मणा निर्मितेन तु। दैवासुरे दितिसुता जिता देवैरनिंदिताः॥२७८॥
स्नाप्यैव सर्वभूपैश्च तथान्यैरपि भूसुरैः।
प्राप्ताश्च सिद्धयो दिव्या नात्र कार्या विचारणा॥२७९॥
अहोऽभिषेकमाहात्म्यमहो शुद्धसुभाषितम्। येनैवमभिषिक्तेन सिद्धैर्मृत्युर्जितस्त्विति॥२८०॥
कल्पकोटिशतेनापि यत्पापं समुपार्जितम्। स्नात्वैवं मुच्यते राजा सर्वपापैर्न संशयः॥२८१॥
व्याधितो मुच्यते राजा क्षयकुष्ठादिभिः पुनः। स नित्यं विजयी भूत्वा पुत्रपौत्रादिभिर्युतः॥२८२॥
जनानुरागसंपन्नो देवराज इवापरः। मोदते पापहीनश्च प्रियया धर्मनिष्ठया॥२८३॥
उद्देशमात्रं कथितं फलं परमशोभनम्। नृपाणामुपकाराय स्वायंभुव मनो मया॥२८४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे अभिषेकविधिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

हिरण्याक्ष को जीता था।।२७२-२७५।। पहिले नृसिंह ने हिरण्यकशिपु राक्षस का वध किया था। पहिले स्कन्द ने तारक आदि को और भी कौशिकी देवी ने दैत्येन्द्र द्वारा पूजित शुन्द और उपसुन्द के पुत्रों को पराजित किया था। कृतकृत्या द्वारा वसुदेव और सुदेव मारे गये थे। इस अभिषेक संस्कार से अभिषिक्त ब्रह्मा ने दिति के पुत्रों को जीता था एवं विजय प्राप्त की थी। अभिषिक्त राजाओं और ब्राह्मणों ने दिव्य सिद्धि प्राप्त की थी, इसमें कोई संदेह नहीं।।२७६-२७९।। राजाओं और ब्राह्मणों ने इस अभिषेक संस्कार से अभिषिक्त होकर दिव्य सिद्धि प्राप्त की थी। इस अभिषेक का बहुत माहात्म्य है। इस अभिषेक के करने से सिद्धयोगों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस अभिषेक संस्कार के करने से राजा यहाँ तक कि कल्प के सौ करोड़ वर्षों में भी किये गये पापों से मुक्त हो जाता है। राजा क्षय और कुष्ठ आदि व्याधियों से मुक्त हो जाता हैं। वह नित्य विजयी होकर पुत्र पौत्रादि से युक्त होकर जनता द्वारा प्रिय (लोकप्रिय) होकर दूसरे इन्द्र के समान हो जाता है। वह निष्पाप राजा रानी के साथ सुख भोग करता है। इस दिव्य संस्कार के उद्देश्य और फल को मैंने संक्षेप में बताया जो कि स्वयं ब्रह्मा के पुत्र मनु से मैंने सुना था। ब्राह्मणों के उपकार के लिए यह ब्राह्मणों को बताया गया।।२८०-२८४।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में अभिषेक विधि नामक सत्ताइसवां अध्याय समाप्त॥२७॥

अष्टाविंशत्तमोऽध्यायः

तुलापुरुषदानविधिः

सूत उवाच

स्नात्वा देवं नमस्कृत्य देवदेवमुमापतिम्। दिव्येन चक्षुषा रुद्रं नीललोहितमीश्वरम्॥१॥
दृष्ट्वा तुष्टाव वरदं रुद्राध्यायेन शंकरम्। देवोऽपि तुष्ट्या निर्वाणं राज्यांते कर्मणैव तु॥२॥
तवास्तीति सकृच्चोक्त्वा तत्रैवांतरधीयत। स्वायंभुवो मनुर्देवं नमस्कृत्य वृषध्वजम्॥३॥
आरुरोह महामेरुं महावृषमिवेश्वरः। तत्र देवं हिरण्याभं योगैश्वर्यसमन्वितम्॥४॥
सनत्कुमारं वरदमपश्यद्ब्रह्मणः सुतम्। नमश्चकार वरदं ब्रह्मण्यं ब्रह्मरूपिणम्॥५॥
कृतांजलिपुटो भूत्वा तुष्टाव च महाद्युतिः। सोऽपि दृष्टा मनुं देवो हृष्टरोमाभवन्मुनिः॥६॥
सनत्कुमारः प्राहेदं घृणया च घृणानिधे।

सनत्कुमार उवाच

दृष्ट्वा सर्वेश्वराच्छांताच्छंकरान्नीललोहितात्॥७॥
लब्ध्वाभिषेकं संप्राप्तो विवक्षुर्वद यद्यपि। तस्य तद्ववचनं श्रुत्वा प्रणिपत्य कृतांजलिः॥८॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

तुलापुरुष दान विधि

सूत बोले

ब्रह्मा के पुत्र मनु ने स्नान करके महादेव शिव को नमस्कार किया। उन्होंने दिव्य चक्षु (नेत्रों) से नीललोहित शिव को देखा। उन्होंने रुद्राध्याय मंत्रों से वरदाता शिव की स्तुति की। बहुत प्रसन्नतापूर्वक शिव जी ने कहा "अपने राज्य की अवधि बीतने पर तुम केवल धार्मिक कर्म से मुक्ति प्राप्त करोगे।" ऐसा कह कर शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। वृषध्वज महादेव शिवजी को नमस्कार करके मेरु पर्वत पर उसी तरह चढ़ गये जिस प्रकार शिवजी अपने महान बैल पर चढ़ते हैं। वहाँ पर उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार को देखा जो कि सोने की आभा वाले योगिक ऐश्वर्य से युक्त वरदायक शरणदायक और ब्रह्म स्वरूप हैं। महान तेज वाले मनु ने हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की। मुनि सनत्कुमार भी मनु को देखकर रोमाँचित हो गये। तब दयानिधि मनु से बोले।।१-६।।

सनत्कुमार बोले

सर्वेश्वर नीललोहित शान्त भगवान शंकर से प्राप्त अभिषेक को करके यहाँ आए हो। यदि आप कुछ कहने की इच्छा रखते हैं तो कहो। उनकी इस बात को सुनकर मनु हाथ जोड़कर उनके आगे नतमस्तक हो गये और उनसे कहा। हे महाराज! 'आप कृपया यह बताएँ कि कोई व्यक्ति केवल कर्म (धार्मिक कृत्य) करने से कैसे मुक्ति प्राप्त कर सकता है? हे विभो! मुक्ति तो ज्ञान प्राप्ति से मिलती है या ज्ञान और कर्म दोनों के मिश्रण से कुछ स्थानों में मुक्ति मिलती हैं।' इन शब्दों को सुनकर सनत्कुमार वेदों के तत्त्व को जानने वालों के भण्डार ने कहा—

विज्ञापयामास कथं कर्मणा निर्वृतिर्विभो। वक्तुमर्हसि चास्माकं कर्मणा केवलेन च॥९॥
ज्ञानेन निर्वृतिः सिद्धा विभो मिश्रेण वा क्वचित्।
अथ तस्य वचः श्रुत्वा श्रुतिसारविदां निधिः॥१०॥
सनत्कुमारो भगवान्कर्मणा निर्वृतिं क्रमात्। मिश्रेण च क्रमादेव क्षणाज्ज्ञानेन वै मुने॥११॥
पुराऽमानेन चोष्ट्रत्वमगमं नंदिनः प्रभोः। शापात्पुनः प्रसादाद्धि शिवमभ्यर्च्य शंकरम्॥१२॥
प्रसादान्नदिनस्तस्य कर्मणैव सुतो ह्यहम्। श्रुत्वोत्तमां गतिं दिव्यामवस्थां प्राप्तवानहम्॥१३॥
शिवार्चनप्रकारेण शिवधर्मेण नान्यथा। राज्ञां षोडशदानानि नंदिना कथितानि च॥१४॥
धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं कर्मणैव महात्मना। तुलादिरोहणाद्यानि शृणु तानि यथातथम्॥१५॥
ग्रहणादिषु कालेषु शुभदेशेषु शोभनम्। विंशद्धस्तप्रमाणेन मंडपं कूटमेव च॥१६॥
यथाष्टादशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः। कृत्वा वेदिं तथा मध्ये नवहस्तप्रमाणतः॥१७॥
अष्टहस्तेन वा कार्या सप्तहस्तेन वा पुनः। द्विहस्ता सार्धहस्ता वा वेदिका चातिशोभना॥१८॥
द्वादशस्तंभसंयुक्ता साधुरम्या भ्रमंतिका। परितो नव कुंडानि चतुरस्त्राणि कारयेत्॥१९॥
ऐंद्रिकेशानयोर्मध्ये प्रधानं ब्रह्मणः सुत। अथवा चतुरस्त्रं च योन्याकारमतः परम्॥२०॥
स्त्रीणां कुंडानि विप्रेंद्रा योन्याकाराणि कारयेत्। अर्धचंद्रं त्रिकोणं च वर्तुलं कुंडमेव च॥२१॥
षडस्त्रं सर्वतो वापि त्रिकोणं पद्मसन्निभम्। अष्टास्त्रं सर्वमाने तु स्थंडिलं केवलं तु वा॥२२॥
चतुर्द्वारसमोपेतं चतुस्तोरणभूषितम्। दिग्गजाष्टकसंयुक्तं दर्भमालासमावृतम्॥२३॥

'हे मुनि! कर्म (पवित्र कृत्य) के करने से और ज्ञान से दोनों के संयोग से क्रम से मुक्ति प्राप्त होती है किन्तु यह पूर्ण ज्ञान के द्वारा प्राप्त होती है।।७-११।। पहले की कथा है कि नन्दी भगवान का उचित सम्मान न करने से उनके साथ के कारण मैं ऊँट की दशा को प्राप्त हो गया। नन्दी की कृपा से मैंने भगवान शिव की पूजा की और कर्म से ही ब्रह्मा का पुत्र हो गया। मैं इस उत्तम दिव्य गति को प्राप्त यह केवल शिव के अनेक प्रकार से पूजा करने से ही प्राप्त हुआ अन्यथा नहीं। नन्दी के द्वारा कहे गये धर्म, काम, अर्थ और मुक्ति की प्राप्ति के लिए राजाओं से सोलह प्रकार के दातव्य दान बताए गये हैं। महात्मा नन्दी के द्वारा पवित्र कृत्य जैसे तुलाधिरोहण आदि अन्य दान कहे गये हैं। उनको यथावत् सुनो।।१२-१५।। शुभ अवसर जैसे ग्रहण आदि के समय उत्तम बीस हाथ लम्बे मण्डप को या कूट को उत्तम स्थान पर खड़ा करे। मण्डप का विस्तार बीस, अट्ठारह, या सोलह हाथ में हो। एक वेदी नौ हाथ, आठ हाथ या सात हाथ की मण्डप के मध्य में बनायी जाय। छोटी वेदी दो या डेढ़ हाथ की और सुन्दर हो और बारह जोड़ने वाली रस्सियों से युक्त हो। भक्त नौ चौकोर यज्ञ कुण्ड चारों ओर खोदे।।१६-१९।। हे ब्रह्मा के पुत्र! प्रधान कुण्ड पूर्व और उत्तर-पूर्व के मध्य में हो। यज्ञ कुण्ड चौकोर या त्रिकोण के आकार में हो। यज्ञ के कुण्ड स्त्री की योनि के आकार में बनाये जायँ। वे कुण्ड अर्ध चन्द्र त्रिकोण होने चाहिये। षडस्त्र या त्रिकोण कुण्ड कमल के आकार में हो। यह अष्टास्त्र भी हो। इसके लिए खाली समतल भूमि या स्थंडिल का भी प्रयोग किया जा सकता है। घेरे के बाउन्ड्री में चार प्रवेश द्वारा हो। वे चार तोरण से

अष्टमंगलसंयुक्तं वितानोपरिशोभितम्। तुलास्तंभद्रुमाश्चात्र बिल्वादीनि विशेषतः॥२४॥
बिल्वाश्वत्थपलाशाद्याः केवलं खादिरं तु वा। येन स्तंभः कृतः पूर्वं तेन सर्वं तु कारयेत्॥२५॥
अथवा मिश्रमार्गेण वेणुना वा प्रकल्पयेत्। अष्टहस्तप्रमाणं तु हस्तद्वयसमायुतम्॥२६॥
तुलास्तंभस्य विष्कंभोऽनाहतस्त्रिगुणोमतः। द्व्यगुलेन विहीनं तु सुवृतं निर्व्रणं तथा॥२७॥
उभयरंतरं चैव षड्ढस्तं नृपते स्मृतम्। द्वयोश्चतुर्हस्तकृतमंतरं स्तंभयोरपि॥२८॥
षडस्तमंतरंज्ञेयं स्तंभयोरुपरि स्थितम्। वितस्तिमात्रं विस्तारो विष्कंभस्तावदुत्तरम्॥२९॥
स्तभयोस्तु प्रमाणेन उत्तरद्वारसम्मितम्। षट्त्रिंशन्मात्रसंयुक्तं व्यायामं तु तुलात्मकम्॥३०॥
विष्कंभमष्टमात्रं तु यवपंचकसंयुतम्। षट्त्रिंशन्मात्रनाभं स्यान्निर्माणाद्वर्तुलं शुभम्॥३१॥
अग्रे मूले च मध्ये च हेमपट्टेन बंधयेत्। पट्टमध्ये प्रकर्तव्यमवलंबनकत्रयम्॥३२॥
ताम्रेण च प्रकर्तव्यमवलंबनकत्रयम्। आरेण वा प्रकर्तव्यमायसं नैव कारयेत्॥३३॥
मध्ये चोर्ध्वमुखं कार्यमवलंबः सुशोभनः। रश्मिभिस्तोरणाग्रे वा बंधयेच्च विधानतः॥३४॥
जिह्वामेकां तुलामध्ये तोरणं तु विधीयते। उत्तरस्य च मध्ये च शंकुं दृढमनुत्तमम्॥३५॥
वितानेनोपरि च्छाद्य दृढं सम्यक्प्रयोजयेत्। शंकोः सुषिरसंपन्नं वलयं कारयेन्मुने॥३६॥
तुलामध्ये वितानेन तुलयालंबके तथा। वलयेन प्रयोक्तव्यं कुंडले वावलंबनम्॥३७॥

विभूषित हों। आठ दिशाओं में आठ दिग्गज स्थापित करे जो कुश की मालाएँ पहने आठ मंगल वस्तुओं से युक्त हों। ऊपर का भाग वितान से शोभित हो। तुला (तराजू) के खम्भों के लिए विशेष रूप से बेल, पीपल, पलाश या खदिर (खैर) की वृक्षों की लकड़ियों का प्रयोग किया जाय। खम्भे की लकड़ी एक वृक्ष की हो जो सामान्य रूप से प्रयोग की जाय।।२०-२६।।

एक बाँस को अन्य काठ के ढाँचे से मिलाकर निर्माण करें। आठ हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा तुला को खड़ा करने के लिए स्थान चाहिए। मुख्य स्तम्भ (खम्भा) का निष्कंभ से उसका तीन गुणा घेरा हो। यह दो अंगुल से कम, सुन्दर, गोल और छेद रहित हो। दो खम्भों के बीच की दूरी छः हाथ हो। या चार हाथ हो।।२७-२८।। दोनों स्तम्भों के ऊपरी भागों में छः हाथ का अन्तर हो। इसके ऊपरी भाग की चौड़ाई में एक बीता मात्र विस्तार हो।।२९।। ऊपर के भाग में तुला की छंड़ में दोनों स्तम्भों की लम्बाई के अनुकूल हो। तुला का संतुलन करने वाले छड़ की लम्बाई ३६ अंगुल हो।।३०।। निष्कंभ आठ अंगुल और पाँच यव मात्र हो। नाभि ३६ अंगुल लम्बी हो और यह सुन्दर और गोल हो।।३१।। एक सोने की पट्ट (प्लेट) सिरे पर, मध्य में और तल भाग में लगायी जाय। मध्य के पट्ट (प्लेट) में तीन अवलम्बक (पिन) लगाई जाय।।३२।। ये तीनों पिन ताँबे या पीतल की बनी हुई हों। लोहे की न बनी हों।।३३।। पट्ट को बीच में लगाने का अवलंब (पिन) सुन्दर हो। उसका मुंह ऊपर (उर्ध्वमुख) की ओर हो। यह डोरे से तोरण के ऊपरी सिरे पर मजबूती से बांधी जाय।।३४।। तुला के मध्य में तोरण बनाया जाय। इसका आकार जीभ के समान हो। ऊपर ऊपरी स्तम्भ के बीच में मजबूत खूंटी (शंकु) हो।।३५।। हे मुनि! वितान के सिरे पर मजबूती से इसको भलीभाँति लगा देना चाहिए। खूंटी को एक खोखला गोला छल्ला (अंगूठीनुमा) से बाँध देना चाहिए।।३६।। तुला के बीच में, वितान में गोल छल्ले के द्वारा लगा

सुदृढं च तुलामध्ये नवमांगुलमानतः। पट्टस्यैव तु विस्तारं पंचमात्रप्रमाणतः॥३८॥
अपरौ सुदृढौ पिंडौ शुभद्रव्येण कारयेत्॥
शिक्याधस्तात्प्रकर्तव्यौ पंचप्रादेशविस्तरौ। सहस्रेण तु कर्तव्यौ पलानां धारकावुभौ॥३९॥
शताष्टकेन वा कुर्यात्पलैः षट्शतमेववा। चतुस्तालं च कर्तव्यो विस्तारो मध्यमस्तथा॥४०॥
सार्धत्रितालविस्तारः कलशस्य विधीयते। बध्नीयात्पंचपात्रं तु त्रिमात्रं षट्कमुच्यते॥४१॥
चतुर्द्वारसमोपेतं द्वारमंगुलमात्रकम्। कुंडलैश्च समोपेतैः शुक्लशुद्धसमन्वितैः॥४२॥
कुंडलेकुंडले कार्यं शृंखलापरिमंडलम्। शृंखलाधारवलयमवलंबेन योजयेत्॥४३॥
प्रादेशं वा चतुर्मात्रं भूमेस्त्यक्त्वावलंबयेत्। घटौ पुरुषमात्रौ तु कर्तव्यौ शोभनावुभौ॥४४॥
तौ वालुकाभिः संपूर्य शिवं तत्र विनिःक्षिपेत्। द्विहस्तमात्रमवटे स्थापनीयौ प्रयत्नतः॥४५॥
निःशेषं पूरयेद्विद्वान्वालुकाभिः समंततः। येन निश्चलतां गच्छेत्तेन मार्गेण कारयेत्॥४६॥
श्रूयतां परमं गुह्यं वेदिकोपरिमंडलम्। अष्टमांगुलसंयुक्तं मंगलांकुरशोभितम्॥४७॥
फलपुष्पसमाकीर्णं धूपदीपसमन्वितम्। वेदिमध्ये प्रकर्तव्यं दर्पणोदरसन्निभम्॥४८॥
आलिखेन्मंडलं पूर्वं चतुर्द्वारसमन्वितम्। शोभोपशोभासंपन्नं कर्णिकाकेसरान्वितम्॥४९॥
वर्णजातिसमोपेतं पंचवर्णं तु कारयेत्।
वज्रं प्रागंतरे भागे आग्नेय्यां शक्तिमुज्ज्वलाम्॥५०॥

देना चाहिए।।३७।। तुला के पट्ट के बीच से नव अंगुल मान में इसको जड़ देना चाहिए। बँधने वाले प्लेट की चौड़ाई पाँच अंगुल होनी चाहिए।।३८।।

जो किसी मजबूत मेटेरियल के दो कड़े पिण्ड की दो सीट बनायी जाय और सहारा देने वाली डोरियों के नीचे लटकती हुई एक बीता चौकोर पाँच बीता और एक हजार पल वजन की होनी चाहिए।।३९।। अथवा आठ हजार या छः हजार पलों की हो। कलश की चौड़ाई मध्य में चार ताल और मध्य भाग साढ़े तीन ताल का हो। पंचपात्र उस पर रख दिया जाय। उसमें चार छेद हो। प्रत्येक छेद चौड़ाई में एक अंगुल हो। शुद्ध और सफेद कुंडलों से युक्त हो।।४०-४२।। प्रत्येक कुंडल में चारों ओर श्रृंखला बंधी हुई हो। कुंडल को बाँधने वाली जंजीर वलय से जोड़ देनी चाहिए।।४३।। भूमि से चार बीता छोड़ने के बाद लटका देना चाहिए। मनुष्य के आकार के और देखने में शोभन दो घड़ों को लेना चाहिए।।४४।। उनको बालू से भर दिया जाय। वहाँ पर थोड़े खाली स्थान में दो हाथ शिव की मूर्ति को स्थापित करना चाहिए।।४५।। विद्वान पुरोहित बालू से पूरी तरह भर दे। यह ऐसा कर दिया जाय कि आसानी से हिल डुल न सके।।४६।। एक गुप्त बात को सुनो। वेदिका पर एक मण्डल खींचा जाय जो कि शुभ सामग्री से खींचा जायँ। वह संख्या में आठ हो। मंगल अंकुर से शोभित हो। उस पर फल और पुष्प बिखेर दिये जाय। धूप और दीप का भी प्रयोग किया जाय। वेदी के मध्य भाग को दर्पण के पेट के समान स्पष्ट निर्मल करना चाहिए।।४७-४८।। वेदी के मध्य में एक मण्डल खीचा जाय। उसमें चार प्रवेश द्वारा हों यह कर्णिका और केसर से युक्त शोभा से सम्पन्न हो अर्थात सुन्दर

आलिखेद्दक्षिणे दंडं नैर्ऋत्यां खड्गमालिखेत्। पाशश्च वारुणे लेख्यो ध्वजं वै वायुगोचरे॥५१॥
कौबेर्यां तु गदा लेख्या ऐशान्यां शूलमालिखेत्।
शूलस्य वामदेशेन चक्रं पद्मं तु दक्षिणे॥५२॥
एवं लिखित्वा पश्चाच्च होमकर्म समाचेरत्। प्रधानहोमं गायत्र्या स्वाहा शक्राय वह्नये॥५३॥
यमाय राक्षसेशाय वरुणाय च वायवे। कुबेरायेश्वरायाथ विष्णवे ब्रह्मणे पुनः॥५४॥
स्वाहांतं प्रणवेनैव होतव्यं विधिपूर्वकम्। स्वशाखाग्निमुखेनैव जयादिप्रतिसंयुतम्॥५५॥
स्विष्टांतं सर्वकार्याणि कारयेद्विधिवत्तदा॥
सर्वहोमाग्रहोमे च समित्पालाशमुच्यते। एकविंशतिसंख्यातं मंत्रेणानेन होमयेत्॥५६॥
अयंतइध्मआत्माजातवेदस्तेनेध्यस्ववर्धस्वचेद्धवर्धयचास्मान्प्रजयापशुभिर्ब्रह्म-
वर्चसेनान्नांद्येनसमेधयस्वाहा भूः स्वाहा भुवःस्वाहा भूर्भुवः स्वस्तथैव च।
समिद्धोमश्च चरुणा घृतस्य च यथाक्रमम्। शुक्लान्नपायसं चैव मुद्गान्नं चरवः स्मृताः॥५७॥
सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा॥५८॥
अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः॥
आरेबाधस्वदुच्छनाम्॥
अग्निर्ऋषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः॥
तमीमहे महागयम्॥

हो।।४९।। यह विभिन्न रंगों में हो। कम-से-कम पाँच रंग हों। पूर्व दिशा में वज्र का चित्र खीचा हुआ हो। दक्षिण-पूर्व में उज्जवल शक्ति, दक्षिण दिशा में दंड, नैर्ऋत्य दिशा में खड्ग (तलवार) और पश्चिम दिशा में पाश और उत्तर-पश्चिम कोने में ध्वज चित्रित हो।।५०-५१।। उत्तर में गदा, ईशान कोण में शूल खींचा हुआ हो। शूल के वाम भाग में चक्र दक्षिण में पद्म चित्रित हो।।५२।। ऐसा सब खींचकर इसके बाद होम कृत्य किया जाय। फिर चक्र के लिए, अग्नि के लिए, यम के लिए, राक्षसेश के लिए, वरुण के लिए, वायु के लिए, कुबेर के लिए, ईशान के लिए, विष्णु और ब्रह्मा के लिए, स्वाहा बोलकर हवन किया जाय। जैसे चक्राय स्वाहा। प्रणव जोड़कर स्वाहा अन्त में लगाकर हवन कार्य किया जाय। होम की अग्नि वेदों के आपनी शाखा के अग्नि मुख से उत्पन्न की जाय जिसमें होम कार्य हो। तब पुरोहित जयादि होम पूर्ण विधि के अनुसार करे। इन सभी होमों और प्रधान होम में यज्ञ की समिधा पलाश वृक्ष की होनी चाहिए। श्लोक ५७-५८ में लिखित मन्त्रों को पढ़ते हुए इक्कीस होम करना चाहिए।।५३-५६।। यज्ञ की समिधा और चरु और घी से इन्द्र आदि का होम करें। चरु के लिए दूध, सफेद चावल, लाजा और हरे चने का प्रयोग अभीष्ट है। तब मूल श्लोक में लिखित मन्त्रों को दोहराते हुए भक्त एक हजार, पाँच सौ या एक सौ आठ बार होम करे।।५७-५९।। प्रधान होम रुद्र गायत्री मन्त्र को दोहराते हुए किया जाता है। इसमें चरु और घी तथा यज्ञ की समिधाओं का प्रयोग

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्॥
दधद्रयिं मयि पोषम्॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव॥
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

गायत्र्या च प्रधानस्य समिद्धोमस्तथैव व। चरुणा च तथाज्यस्य शक्रादीनां च होमयेत्॥५९॥
वज्रादीनां च होतव्यं सहस्त्रार्धं ततः क्रमात्। ब्रह्म जज्ञेति मंत्रेण ब्रह्मणे विष्णवे पुनः॥६०॥

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि॥
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

अयं विशेषः कथितो होममार्गः सुशोभनः। दूर्वया क्षीरयुक्तेन पंचविंशत्पृथक्पृथक्॥६१॥
त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥६२॥
दूर्वाहोमः प्रशस्तोऽयं वास्तुहोमश्च सर्वथा। प्रायश्चित्तममघोरेण सर्पिषा च शतंशतम्॥६३॥
ब्रह्माणं दक्षिणे वामे विष्णुं विश्वगुरुं शिवम्। मध्ये देव्या समं ज्ञेयमिंद्रादिगणसंवृतम्॥६४॥
आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरम्। उषां प्रभां तथा प्रज्ञां संध्यां सावित्रिमेव च॥६५॥
पंचप्रकारविधिना खखोल्काय महात्मने। विष्टरां सुभगां चैव वर्धनीं च प्रदक्षिणाम्॥६६॥
आप्यायनीं च संपूज्य देवीं पद्मासने रविम्। प्रभूतं वाथ कर्तव्यं विमलं दक्षिणे तथा॥६७॥
सारं पश्चिमभागे च आराध्यं चोत्तरे यजेत्। मध्ये सुखं विजानीयात्केसरेषु यथाक्रमम्॥६८॥
दीप्तां सूक्ष्मां जयां भद्रां विभूतिं विमलां क्रमात्। अमोघां विद्युतां चैव मध्यतः सर्वतोमुखीम्॥६९॥

करते हुए इन्द्र और अन्य देवताओं के लिए जैसे वज्र आदि के लिए पाँच सौ बार क्रम से होम किया जाना चाहिए। ब्रह्मा को होम 'ब्रह्म यज्ञ इति' मन्त्र से प्रारम्भ करते हुए ब्रह्मा और विष्णु के लिए नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। इस मन्त्र से होम किया जाय। होम के शोभन मार्ग की विशेष विधि का वर्णन किया गया है। दूब और दूध को मिलाकर पच्चीस आहुतियाँ अलग-अलग दी जाए। त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनम्, उर्वारुकमिव बंधनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। दूब का होम और वास्तु होम सब प्रकार से प्रशस्त है। अघोर मन्त्र द्वारा घी से होम कृत्य किया जाय। इन होमों को सौ बार किया जाय। ब्रह्मा बाएँ और विष्णु दाहिने और संसार के गुरु शिव मध्य में उमा देवी के साथ स्थित हों। वह इन्द्र और अन्य तथा अपने गणों से घिरे हुए हों (सम्वृत) हों।।६०-६४।। भक्त आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, दिवाकर देव को, ऊषा, प्रभा, प्रज्ञा, संध्या और सावित्री के साथ इन सब की पूजा करें।।६५।। पंच प्रकार विधि से महात्मा खखोल्क के लिए पूजा की जाय। विष्टरा, शुभगा, वर्धिनी, प्रदक्षिणा और आप्यायनी की पूजा के बाद पद्मासन में विराजमान रवि की बहुबार पूजा करे। दक्षिण में विमला, पश्चिम में सार, उत्तर भाग में आराध्य और मध्य में सुख की पूजा की जाय। केसरों में यथा क्रम दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, कमला, अमोघा, विद्युता की

सोममंगारकं चैव बुधंगुरुमनुक्रमात्। भार्गवं च तथा मंदं राहुं केतुं तथैव च॥७०॥
पूजयेद्धोमयेदेवं दापयेच्च विशेषतः। योगिनो भोजयेत्तत्र शिवतत्त्वैकपारगान्॥७१॥
दिव्याध्ययनसंपन्नान्कृत्वैवं विधिविस्तरम्। होमे प्रवर्तमाने च पूर्वदिक्स्थानमध्यमे॥७२॥
आरोहयेद्विधानेन रुद्राध्यायेन वै नृपम्। धारयेत्तत्र भूपालं घटिकैकां विधानतः॥७३॥
यजमानो जपेन्मंत्रं रुद्रगायत्रिसंज्ञकम्। घटिकार्धं तदर्धं वा तत्रैवासनमारभेत्॥७४॥
आलोक्य वारुणं धीमान्कूर्चहस्तः समाहितः। नृपश्च भूषणैर्युक्तः खड्गखेटकधारकः॥७५॥
स्वस्तिरित्यादिभिश्चादावंते चैव विशेषतः। पुण्याहं ब्राह्मणैः कार्यं वेदवेदांगपारगैः॥७६॥
जयमंगलशब्दादिब्रह्मघोषैः सुशोभनैः। नृत्यवाद्यादिभिर्गीतिः सर्वशोभासमन्वितैः॥७७॥
स्वमेवं चंद्रदिग्भागे सुवर्णं तत्र विक्षिपेत्। तुलाधारौ समौ वृत्तौ तुलाभारः सदा भवेत्॥७८॥
शतनिष्काधिकं श्रेष्ठं तदर्धं मध्यमं स्मृतम्। तस्यार्धं च कनिष्ठं स्यात्रिविधं तत्र कल्पितम्॥७९॥
वस्त्रयुग्ममथोष्णीषं कुंडलं कंठशोभनम्। अंगुलीभूषणं चैव मणिबंधस्य भूषणम्॥८०॥
एतानि चैव सर्वाणि प्रारंभे धर्मकर्मणि। पाशुपतव्रतायाथ भस्मांगाय प्रदापयेत्॥८१॥
पूर्वोक्तभूषणं सर्वं सोष्णीषं वस्त्रसंयुतम्। दद्यादेतत्प्रयोक्तृभ्य आच्छादनपटं बुधः॥८२॥

पूजा की जाय। मध्य में सर्वतोमुखी की पूजा की जाय।।६६-६९।। अनुक्रम से चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु की पूजा की जाय और उनके निमित्त होम भी किया जाय।।७०-७१।। शिव तत्व के ज्ञाता योगियों को समुचित सम्मान दिया जाय। इन कृत्यों को विस्तार में पूरा करके होम किया जाय। राजा को पूर्व की ओर तुला के पलड़े पर रुद्राध्याय मन्त्रों को दोहराते हुए बैठाया जाय। वहाँ पर राजा एक घड़ी (चौबीस मिनट) बैठा रहे।।७२-७३।। यजमान रुद्र गायत्री मन्त्र को जपे। एक घटिका या इसका भी आधा या उसका भी आधा समय तक वहीं आसन पर बैठा रहे।।७४।। बुद्धिमान भक्त शुद्ध होकर बैठे। वह हाथ में कुश ले ले और पश्चिम दिशा की ओर मुँह करके हाथ में कुश लेकर बैठे। राजा सब आभूषणों से भूषित हो तलवार और खेटक हाथ में ले ले। वेदों के विशेष ज्ञाता ब्राह्मणों द्वारा 'स्वस्ति' इत्यादि आदि और अन्त में दोहराते हुए ब्राह्मणों द्वारा पुण्याह किया जाय।।७५-७६।। मंगल शब्द आदि और उत्तम शब्दघोष नृत्य, वाद्य और गीत किया जाय। समारोह का अन्त इस प्रकार सुन्दर और शानदार ढंग से हो। वह उत्तर दिशा में सोने के सिक्कों को तब तक डालता रहे जबकि तराजू का बैलेंस (भार) बराबर न हो जाय।।७७-७८।। अगर सौ सोने के सिक्कों (निष्क) को देने से राशि बढ़ जाय तो यह श्रेष्ठ माना जाता है। उसका आधा मध्यम और उसका भी आधा अर्थात् पच्चीस सिक्के कनिष्ठ कहा जाता है। इस प्रकार यह विविध रूप में विभक्त है।।७९।।

एक जोड़ी वस्त्र, साफा (उष्णीय), कान का कुंडल, गले का हार, अंगुली में पहनने की अंगूठी, कलाई में पहनने का कंगन (कड़ा) ये सब को धर्मकर्म के प्रारम्भ में भक्त पहने रहे। उन सबको पाशुपत व्रत करने वाले और शरीर पर भस्म धारण करने वाले शिव भक्त को दान देवें।।८०-८१।। ऊपर कहे गये सब आभूषण, साफा

दक्षिणां च शतं सार्धं तदर्धं वा प्रदापयेत्। योगिनां चैव सर्वेषां पृथङ्निष्कं प्रदापयेत्॥८३॥
यागोपकरणं दिव्यमाचार्याय प्रदापयेत्। इतरेषां यतीनां तु पृथङ्निष्कं प्रदापयेत्॥८४॥
तुलारोहसुवर्णं च शिवाय विनिवेदयेत्। प्रसादं मंडपं चैव प्राकारं भूषणं तथा॥८५॥
सुवर्णपुष्पं पटहं खड्गं वै कोशमेव च।
कृत्वा दत्त्वा शिवायाथ किंचिच्छेषं च बुद्धिमान्॥८६॥
आचार्येभ्यः प्रदातव्यं भस्मांगेभ्यो विशेषतः। बंदीकृतान् विसृज्याथ कारागृहनिवासिनः॥८७॥
सहस्रकलशैस्तत्र सेचयेत्परमेश्वरम्। घृतेन केवलेनापि देवदेवमुमापतिम्॥८८॥
पयसा वाथ दध्ना वा सर्वद्रव्यैरथापि वा। ब्रह्मकूर्चेन वा देवं पंचगव्येन वा पुनः॥८९॥
गायत्र्या चैव गोमूत्रं गोमयं प्रणवेन वा। आप्यायस्वेति वै क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि॥९०॥
तेजोसीत्याज्यमीशानमंत्रेणैवाभिषेचयेत् । देवस्यत्वेति देवेशं कुशांबुकलशेन वै॥९१॥
रुद्राध्यायेन वा सर्वं स्नापयेत्परमेश्वरम्। सहस्रकलशं शंभोर्नाम्नां चैव सहस्रकैः॥९२॥
विष्णुना कथितैर्वापि तंडिना कथितैस्तु वा। दक्षेण मुनिमुख्येन कीर्तितैरथ वा पुनः॥९३॥
महापूजा प्रकर्तव्या महादेवस्य भक्तितः। शिवार्चकाय दातव्या दक्षिणा स्वगुरोः सदा॥९४॥

और वस्त्रों को उनको दे दें जो इस संस्कार (कृत्य) को कराये हों।।८२-८३।। बुद्धिमान व्यक्ति इन सबको ढकने (बाँधने) के लिए एक वस्त्र अलग से दे। उसके साथ एक-सौ सोने के सिक्के या पचास या पचीस सिक्के दक्षिणा देनी चाहिए। सब योगियों को अलग से निष्क (सोने का सिक्का) दक्षिणा दी जाये। यज्ञ के सब दिव्य उपकरण आचार्य को दान कर दिया जाय। अन्य शेष यतियों को अलग से निष्क (सोने का सिक्का) दक्षिणा दी जाय।।८४।। तुला पर चढ़े सोने को शिव जी को भेंट कर दिया जाना चाहिए। प्रासाद (महल), मंडप, प्राकार, आभूषण (सोने के फूल), पटह (ढोल), तलवार और म्यान (तलवार की) को भेंट रूप में शिव को समर्पित की जाय। इसके बाद जो कुछ बचे उसको आचार्यों को और विशेष रूप से शरीर पर भस्म लपेटे हुए योगियों को बुद्धिमान भक्त द्वारा दे दी जानी चाहिए। जेल में बन्द सब कैदियों को छोड़ दिया जाना चाहिए। सहस्र कलशों से परमेश्वर शिव का सिंचन करना चाहिए। शिव जी को घी या दूध या दही से अथवा इन सबको मिलाकर उससे या गोमूत्र (ब्रह्मकूर्च) या पंचगव्य से विधिपूर्वक स्नान कराना चाहिए।।८५-८९।। गायत्री मन्त्र दोहराते हुए गोमूत्र मिलाया जाय। प्रणव द्वारा गोबर को, 'आप्यायस्व' मन्त्र द्वारा दूध को और 'दधिक्राव्ण' मन्त्र से दही को मिलाया जाय। 'तेजोऽसि' मन्त्र से घी को उसमें (पंचगव्य में) छोड़ा जाय। ईशान मन्त्र द्वारा पंचगव्य से। देवस्य त्वा आदि मन्त्र को दोहराते हुए कुश सहित कलश के जल से देवेश शिव का अभिषेक विष्णु, तंडिन या दक्ष द्वारा उच्चारित शिव के सहस्र नामों को दोहराते हुए सहस्र कलशों का उपयोग शिव के स्नान में किया जाय। भक्ति से महादेव की महापूजा की जानी चाहिए। अपने गुरु को तथा शिव के पुजारी को सदा द्रव्य दक्षिणा दी जानी चाहिए। नगद दक्षिणा के साथ शरीर को ढकने के लिए सिल्क के वस्त्र या कम्बल भी दिया जाना चाहिए।

देहार्णवं च सर्वेषां दक्षिणा च यथाक्रमम्। दीनांधकृपणानां च बालवृद्धकृशातुरान्॥९५॥
भोजयेच्च विधानेन दक्षिणामपि दापयेत्॥९६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे
तुलापुरुषदानविधावष्टाविंशत्तमोऽध्यायः॥२८॥

गरीबों, अन्धों, उपेक्षितों, बालकों व वृद्धों, दुबले-पतले लोगों और रोगियों को विधिपूर्वक (भर पेट) भोजन कराना चाहिए और दक्षिणा भी दी जानी चाहिए।।९०-९६।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में तुला पुरुष दान विधि
नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

हिरण्यगर्भदानविधिः

सनत्कुमार उवाच

तुला ते कथिता ह्येषा आद्या सामान्यरूपिणी। हिरण्यगर्भं वक्ष्यामि द्वितीयं सर्वसिद्धिदम्॥१॥
अधःपात्रं सहस्रेण हिरण्येन विधीयते। ऊर्ध्वपात्रं तदर्धेन मुखं संवेशमात्रकम्॥२॥
हैममेवं शुभं कुर्यात्सर्वालंकारसंयुतम्। अधःपात्रे स्मरेद्देवीं गुणत्रयसमन्विताम्॥३॥
चतुर्विंशतिकां देवीं ब्रह्मविष्ण्वग्निरूपिणीम्। ऊर्ध्वपात्रे गुणातीतं षड्विंशकमुमापतिम्॥४॥
आत्मानं पुरुषं ध्यायेत्पंचविंशकमग्रजम्। पूर्वोक्तस्थानमध्येऽथ वेदिकोपरि मंडले॥५॥
शालिमध्ये क्षिपेन्नीत्वा नववस्त्रैश्च वेष्टयेत्। माषकल्केन चालिप्य पंचद्रव्येण पूजयेत्॥६॥
ईशानाद्यैर्यथान्यायं पंचभिः परिपूजयेत्। पूर्ववच्छिवपूजा च होमश्चैव यथाक्रमम्॥७॥
देवीं गायत्रिकां जप्त्वा प्रविशेत्प्राङ्मुखः स्वयम्।
विधिनैव तु संपाद्य गर्भाधानादिकां क्रियाम्॥८॥
कृत्वा षोडशमार्गेण विधिना ब्राह्मणोत्तमः। दूर्वांकुरैस्तु कर्तव्या सेचना दक्षिणे पुटे॥९॥

उन्तीसवाँ अध्याय

हिरण्यगर्भ की दान विधि

सनत्कुमार बोले

प्रथम पवित्र कृत्य तुलारोहण मैंने सामान्य रूप से कहा। इस क्रम में सब सिद्धि का दायक द्वितीय कृत्य को कहूँगा।।१।। एक हजार सोने के सिक्कों से अधः पात्र बनवाया जाय। उसके आधे अर्थात् पाँच-सौ सोने के सिक्कों से ऊर्ध्व पात्र बनाया जाय। उसका मुख आसानी से भरने योग्य (सुराही के मुख की तरह) काफी चौड़ा हो। इस प्रकार स्वर्ण निर्मित पात्र को सब अलंकार से मुक्त करे। नीचे के पात्र में भक्त तीन गुण वाली माया देवी का स्मरण करे।।२-३।। वह ऊपरी पात्र में बह्मा, विष्णु और अग्नि के रूपों के साथ चौबीस तत्त्वों वाली देवी (प्रकृति) को स्मरण करे। ऊपरी पात्र में छब्बीस तत्त्वों के गुणों वाले उमपति शिव का स्मरण करे।।४।। वह आत्मा पर वेदिका के ऊपर मण्डल में पूर्वोक्त स्थान के मध्य में अग्रज पच्चीस तत्त्वों वाले पुरुष का ध्यान करे।।५।। पात्र के हाथ में शाली चावल डाल दे और उस पात्र को नये वस्त्र से लपेट दे। उसको उड़द की दाल के आटे से लेप करके पंचद्रव्य से उसको पूरा करे।।६।। भक्त ईशान आदि मन्त्रों से उसकी पूजा करे। यथाक्रम पूर्ववत् शिव पूजा और होम करे।।७।। भक्त स्वयं गायत्री मन्त्र का जप करे और पूर्व मुख करके बैठे। इन सब कृत्यों को करने के बाद उत्तम ब्राह्मण पूजा की षोडशोपचार सामग्री से गर्भाधान आदि कृत्य पूरा करे। दूब के अंकुर से, गूलर के फलों के साथ कुशों से इक्कीस बार दाहिनी नासा पर छिड़काव करे। सीमंत संस्कार में भी

औदुंबरफलैः साधर्मेकविंशत्कुशोदकम्। ईशान्यां तावदेवात्र कुर्यात्सीमंतकर्मणि॥१०॥
उद्वहेत्कन्यकां कृत्वा त्रिंशन्निष्केण शोभनाम्। अलंकृत्य तथा हुत्वा शिवाय विनिवेदयेत्॥११॥
अन्नप्राशनके विद्वान् भोजयेत्पायसादिभिः। एवं विश्वजितांता वै गर्भाधानादिकाः क्रियाः॥१२॥
शक्तिबीजेन कर्तव्या ब्राह्मणैर्वेदपारगैः। शेषं सर्वं च विधिवत्तुलाहेमवदाचरेत्॥१३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

उत्तर-पूर्व दिशा में जल का सेवन करे।।८-१०।। तीस निष्क से एक सुन्दर आकार की कन्या की प्रतिमा बनवाये। उसको सजा बजा कर विवाह संस्कार करे। होम करे। फिर उसको शिव को समर्पित कर देना चाहिए। अन्नप्राशन में भक्त खीर आदि भोजन कराए। इस प्रकार गर्भाधान से प्रारम्भ करके विश्वजित तक का संस्कार समाप्त हुआ। ये सब संस्कार वेदों के पारगामी विद्वान ब्राह्मणों द्वारा करवाना चाहिए। शक्ति बीज मन्त्र को दोहराते हुये ये संस्कार किये जावें। शेष संस्कार तुलापुरुषदान की तरह पूर्ण किया जाना चाहिए।।११-१३।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में हिरण्यगर्भ की दान विधि
नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

तिलपर्वतदानम्

सनत्कुमार उवाच

अधुना संप्रवक्ष्यामि तिलपर्वतमुत्तमम्। पूर्वोक्तस्थानकाले तु कृत्वा संपूज्य यत्नतः॥१॥
सुसमे भूतले रम्ये वेदिना च विवर्जिते। दशतालप्रमाणेन दंडं संस्थाप्य वै मुने॥२॥
अद्भिः संप्रोक्ष्य पश्चाद्धि तिलांस्त्वस्मिन्विनिक्षिपेत्।
पंचगव्येन तं देशं प्रोक्षयेद्ब्राह्मणोत्तमः॥३॥
मंडलं कल्पयेद्विद्वान्पूर्ववत्सुसमंततः। नववस्त्रैश्च संस्थाप्य रम्यपुष्पैर्विकीर्य च॥४॥
तस्मिन्संचयनं कार्यं तिलभारैर्विशेषतः। दंडप्रादेशमुत्सेधमुत्तमं परिकीर्तितम्॥५॥
चतुरंगुलहीनं तु मध्यमं मुनिपुंगवाः। दंडतुल्यं कनिष्ठं स्याद्दंडहीनं न कारयेत्॥६॥
वेष्टयित्वा नवैर्वस्त्रैः परितः पूजयेत्क्रमात्। सद्यादीनि प्रविन्यस्य पूजयेद्विधिपूर्वकम्॥७॥
अष्टदिक्षु च कर्तव्याः पूर्वोक्ता मूर्तयः क्रमात्। त्रिनिष्केन सुवर्णेन प्रत्येकं कारयेत्क्रमात्॥८॥
दक्षिणा विधिना कार्या तुलाभारवदेव तु। होमश्च पूर्ववत्प्रोक्तो यथावन्मुनिसत्तमाः॥९॥
अर्चयेद्देवदेवेशं लोकपालसमावृतम्। तिलपर्वतमध्यस्थं तिलपर्वतरूपिणम्॥१०॥

तीसवाँ अध्याय

तिल पर्वत का दान

सनत्कुमार बोले

अब मैं तिल के पर्वत के दान के विषय में आप से कहूँगा। यत्नपूर्वक पूर्वोक्त स्थान और काल में सुलभ सुन्दर समतल भूमि पर दण्ड की स्थापना करके उसकी समुचित पूजा करके जल छिड़के। वह दण्ड दस ताल हाथ लम्बा हो। जल से उस दण्ड को छिड़ककर उत्तम ब्राह्मणभक्त तिल के बीजों को वहाँ रखे। उस स्थान को पञ्चगव्य से जल से छिड़के।।१-३।। विद्वान भक्त उसके चारों ओर गोलमण्डल बनावे। नये वस्त्र को रखकर और सुन्दर पुष्पों को विकीर्ण करके उसपर तिल के बीजों के भार का ढेर लगावे। अगर तिल का भार गाड़े हुए दण्ड से ऊपर हो जाय तो उसको उत्तम कहा जाता है। हे श्रेष्ठ मुनियों! दण्ड से चार अङ्गुल कम रहने पर मध्यम तथा दण्ड के बराबर होने पर कनिष्ठ श्रेणी का होता है। तिल के ढेर को दण्ड से हीन न करना चाहिए।।४-६।। इसको नये वस्त्र से लपेट देना चाहिए। वहाँ सद्य और अन्य को स्थापित करके विधि विधान के अनुसार उनकी पूजा करनी चाहिए।।७।। पूर्व में कहे हुये मूर्तियों को आठों दिशाओं में स्थापित करना चाहिए। प्रत्येक मूर्ति तीन निष्क सुवर्ण से बनवायी जाय।।८।। तुला भार के कृत्य में तद्वत् विधिपूर्वक दक्षिणा दी जाय। हे श्रेष्ठ मुनियों! पूर्वोक्त कथनानुसार होम भी किया जाय।।९।। हजार कलशों के द्वारा शिव की पूजा की जानी चाहिए।

शिवार्चना च कर्तव्या सहस्त्रकलशादिभिः। दर्शयेत्तिलमध्यस्थं देवदेवमुमापतिम्॥११॥
पूजयित्वा विधानेन क्रमेण च विसर्जयेत्। श्रोत्रियाय दरिद्राय दापयेत्तिलपर्वतम्॥१२॥
एवं तिलनगः प्रोक्तः सर्वस्मादधिकः परः॥१३॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे तिलपर्वतदानं
नाम त्रिंशोऽध्यायः॥३०॥

तिल पर्वत के मध्य में स्थित तिल पर्वत के स्वरूप में देव देवेश शिव की सहस्र कलशों से अर्चना की जाय। विधान के अनुसार उनकी पूजा करके विसर्जन किया जाय। तिल के पर्वत को वेदों के ज्ञाता श्रोत्रिय ब्राह्मण को जो कि गरीब हों, उसको भेंट कर दें। इस प्रकार तिल पर्वत के दान का विधान मैंने तुमसे कहा। इस प्रकार तिल पर्वत का दान सब दानों से अधिक श्रेष्ठ कहा गया है।।१०-१३।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में तिल पर्वत का दान
नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

सूक्ष्मपर्वतदानविधिः

सनत्कुमार उवाच

अथान्यं पर्वतं सूक्ष्ममल्पद्रव्यं महाफलम्। द्रव्यमात्रोपसंयुक्ते काले मध्यं विधीयते॥१॥
गोमयालिप्तभूमौ तु ह्यंबराणि प्रकीर्य च। तन्मध्ये निक्षिपेद्धीमांस्तिलभारत्रयं शुभम्॥२॥
पद्मष्टदलं कुर्यात्कर्णिकाकेसरान्वितम्। दशनिष्केण तत्कार्यं तदर्धार्धेन वा पुनः॥३॥
तिलमध्ये न्यसेत्पद्मं पद्ममध्ये महेश्वरम्। आराध्य विधिवद्देवं वामादीनि प्रपूजयेत्॥४॥
शक्तिरूपं सुवर्णेन त्रिनिष्केण तु कारयेत्। न्यासं तु परितः कुर्याद्विघ्नेशान्परिभागतः॥५॥
पूर्वोक्तहेममानेन विघ्नेशानपि कारयेत्। तानभ्यर्च्य विधानेन गंधपुष्पादिभिः क्रमात्॥६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे एकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

इकतीसवाँ अध्याय

सूक्ष्म पर्वत की दान विधि

सनत्कुमार बोले

सूक्ष्म पर्वत के नाम से कथित दान कृत्य का वर्णन करता हूँ। यद्यपि इसमें सामग्री स्वल्प है, लेकिन इसका फल महान् है। इस दान कृत्य को किसी भी समय किया जा सकता है जबकि सामग्री एकत्र हो जाय। सामान्य रूप से यह एक पवित्र धार्मिक कृत्य है।।१।। गाय के गोबर से भूमि को लीपकर उसको नवीन वस्त्र से ढक देना चाहिए। उस वस्त्र के ऊपर तीन भार तिल को विकीर्ण कर दे।।२।। भक्त अष्टदल कमल कर्णिका और केसर से युक्त दस निष्क या उसके आधे या उससे भी आधे से बनी तिल के बीच में पद्म और पद्म के बीच में महेश्वर की मूर्ति स्थापित करे। विधिपूर्वक उस महेश्वर मूर्ति की पूजा करके बाम और अन्य की पूजा करे।।३-४।। तीन निष्क सुवर्ण से शक्ति की मूर्ति बनवायी जाय। न्यास कृत्य किया जाय। चारों ओर विघ्नेशों को स्थापित करें। पूर्वोक्त सुवर्ण के तौल से (तीन निष्क) विघ्नेशों को बनवाकर उनकी गन्ध पुष्पादि से विधिपूर्वक पूजा करें।।५-६।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में सूक्ष्म पर्वत की दान विधि नामक इक्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

सुवर्णमेदिनीदानम्

सनत्कुमार उवाच

जपहोमार्चनादानाभिषेकाद्यं च पूर्ववत्। सुवर्णमेदिनीदानं प्रवक्ष्यामि समासतः॥१॥
पूर्वोक्तदेशकाले तु कारयेन्मुनिभिः सह। लक्षणेन यथापूर्वं कुंडे वा मंडलेऽथ वा॥२॥
मेदिनीं कारयेद्दिव्यां सहस्रेणापि वा पुनः। एकहस्ता प्रकर्तव्या चतुरस्त्रा सुशोभना॥३॥
सप्तद्वीपसमुद्राद्यैः पर्वतैरभिसंवृता। सर्वतीर्थसमोपेता मध्ये मेरुसमन्विता॥४॥
अथवा मध्यतो द्वीपं नवखंडं प्रकल्पयेत्। पूर्ववन्निखिलं कृत्वा मंडले वेदिमध्यतः॥५॥
सप्तभागैकभागेन सहस्राद्विधिपूर्वकम्। शिवभक्ते प्रदातव्या दक्षिणा पूर्वचोदिता॥६॥
सहस्रकलशाद्यैश्च शंकरं पूजयेच्छिवम्। सूवर्णमेदिनीप्रोक्तं लिंगेस्मिन्दानमुत्तमम्॥७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे सुवर्णमेदिनीदानं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

बत्तीसवाँ अध्याय

स्वर्ण मेदिनी का दान

सनत्कुमार बोले

अब मैं संक्षेप में सुवर्ण मेदिनी दान को कहता हूँ। जप, होम, पूजा, दान और अभिषेक आदि पूर्ववत् कथित विधि से मुनियों के साथ में मुनियों के द्वारा पूर्ण किया जाय। यह कार्य कुण्ड में या मण्डल में किया जाय।।१-२।। हजार निष्क (सोने के सिक्के) से भूमि का आकार (आकृति) बनाया जाय। यह एक हाथ या चार हाथ में विभाजित सुन्दर और शानदार हो। सात द्वीप, समुद्र आदि पर्वतों से घिरी हुयी हो। सब तीर्थों से युक्त और मध्य में मेरु स्थित हो।।३-४।। द्वीप नव खण्डों के साथ में बनाया जाय। मण्डल में वेदी के मध्य पूर्ववत् सब कृत्य करके सहस्र स्वर्ण सिक्कों के सातवें भाग को शिव के भक्त को दक्षिणा रूप में विधिपूर्वक देना चाहिए। भक्त हजारों कलशों तथा अन्य वस्तुओं से भगवान शिव की पूजा करे। यह सुवर्ण मेदिनी दान सर्वोत्तम दान कहा गया है।।५-७।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में स्वर्णमेदिनी का दान नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

कल्पपादपदानविधिः

सनत्कुमार उवाच

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि कल्पपादपमुत्तमम्। शतनिष्केण कृत्वैवं सर्वशाखासमन्वितम्॥१॥
शाखानां विविधं कृत्वा मुक्तादामाद्यलंबनम्। दिव्यैर्मारकतैश्चैव चांकुराग्रं प्रविन्यसेत्॥२॥
प्रवालं कारयेद्विद्वान्प्रवालेन द्रुमस्य तु। फलानि पद्मरागैश्च परितोऽस्य सुशोभयेत्॥३॥
मूलं च नीलरत्नेन वज्रेण स्कंधमुत्तमम्। वैडूर्येण द्रुमाग्रं च पुष्परागेण मस्तकम्॥४॥
गोमेदकेन वै कंदं सूर्यकांतेन सुव्रत। चन्द्रकांतेन वा वेदिं द्रुमस्य स्फाटिकेन वा॥५॥
वितस्तिमात्रमायामं वृक्षस्य परिकीर्तितम्। शाखाष्टकस्य मानं च विस्तारं चोर्ध्वतस्तथा॥६॥
तन्मूले स्थापयेल्लिंगं लोकपालैः समावृतम्। पूर्वोक्तवेदिमध्ये तु मंडले स्थाप्य पादपम्॥७॥
पूजयेद्देवमीशानं लोकपालांश्च यत्नतः। पूर्ववज्जपहोमाद्यं तुलाभारवदाचरेत्॥८॥
निवेदयेद्द्रुमं शंभोर्योगिनां वाथ वानृप। भस्मांगिभ्योऽथ वा राजा सार्वभामो भविष्यति॥९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे कल्पपादपदानविधिर्नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

तैंतीसवाँ अध्याय

कल्प पादप दान विधि

सनत्कुमार बोले

अब मैं सौ सोने के सिक्कों से बने हुये कल्प वृक्ष के दान के विषय में कहता हूँ जो कि सब शास्त्रों से सम्मत् और उत्तम दान है। कल्प पादप हजार निष्क से बनवाया जाय। इसमें सभी शाखाएँ और डालियाँ मोतियों की बनी हों। इसमें अंकुर का अग्रभाग दिव्य मरकत से अलंकृत हो।।१-२।। पादप के प्रवाल को प्रवाल (मोती) से कराया जाय। उसमें चारों ओर पद्मराग से फल बनवाकर सुशोभित करना चाहिए।।३।। नील रत्न से पादप के मूल को और उसकी शाखाओं को वज्र से और उसके अग्र भाग को वैडूर्य मणि से और मस्तक को पुष्पराग से, जड़ को गोमेद से बनाया जाय। हे सुव्रत! पादप के वेदी चबूतरे को सूर्यकान्त मणि से, चन्द्रकान्त मणि अथवा स्फटिक से बनावे।।४।। वृक्ष की लम्बाई को एक बीता कहा गया है। आठ शाखाओं के मान विस्तार और ऊँचाई एक होगी।।५-६।। उसके मूल में लिंग की स्थापना करे। यह लिंग दिक्पालों से घिरा हुआ हो। मण्डल पर पूर्वोक्त विधि से वेदी के बीच में पादप को स्थापित करे। भक्त तब विधिपूर्वक लोकपालों और भगवान शिव की पूजा करे। तुला भारवत् पहले की तरह जप, होमादि करे। हे राजन्! उस पादप को योगी को अथवा ऐसे व्यक्ति को समर्पित करे जो अपने शरीर पर भस्म धारण किये हुये हो। राजा इस कल्प पादप के दान से चक्रवर्ती सम्राट् होगा।।७-९।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में कल्पपादप दानविधि नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

गणेशेशदानविधिनिरूपणम्

सनत्कुमार उवाच

गणेशेशं प्रवक्ष्यामि दानं पूर्वोक्तमंडपे। संपूज्य देवदेवेशं लोकपालसमावृतम्॥१॥
विश्वेश्वरान्यथाशास्त्रं सर्वाभरणसंयुतान्। दशनिष्केण वै कृत्वा संपूज्य च विधानतः॥२॥
अष्टदिक्ष्वष्टकुंडेषु पूर्ववद्धोममाचरेत्। पंचावरणमार्गेण पारंपर्यक्रमेण च॥३॥
सप्तविप्रान्समभ्यर्च्य कन्यामेकां तथोत्तरे। दापयेत्सर्वमंत्राणि स्वैःस्वैर्मंत्रैरनुक्रमात्॥४॥
दत्त्वैवं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे गणेशेशदानविधिनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥

चौंतीसवाँ अध्याय

गणेशेशदान विधि

सनत्कुमार बोले

इसके बाद मैं पूर्व कथित मण्डप में गणेशेश कृत्य का वर्णन करूँगा। दिक्पालों से घिरे हुए देवेश शंकर की पूजा करने के बाद विश्वेश्वर की प्रतिमा दस निष्क से बनवाये जो शास्त्रविधि के अनुसार हो और सभी आभूषणों से विभूषित हो। भक्त यथाविधि उनकी पूजा करे। वह पूर्ववत् आठ कुण्डों में आठ दिशाओं में होम करे। यह होम पञ्चावरण मार्ग से और परम्परानुसार किया जाय। भक्त सात ब्राह्मणों और एक कुमारी कन्या को उत्तर दिशा में बैठाकर पूजा करे। सब मंत्रों को दोहरावे और यथाक्रम से अपने-अपने मन्त्रों के द्वारा दान दिया जाय। इस प्रकार दान देकर भक्त निःसन्देह सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।१-५।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में गणेशेशदान विधि नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३४॥

पंचत्रिंशोऽध्यायः

हेमधेनुदानविधिनिरूपणम्

सनत्कुमार उवाच

अथ ते संप्रवक्ष्यामि हेमधेनुविधिक्रमम्।
सर्वपापप्रशमनं ग्रहदुर्भिक्षनाशनम्॥१॥

उपसर्गप्रशमनं सर्वव्याधिनिवारणम्। निष्काणां च सहस्रेण सुवर्णेन तु कारयेत्॥२॥

तदर्धेनापि वा सम्यक् तदर्धार्धेन वा पुनः।
शतेन वा प्रकर्तव्या सर्वरूपगुणान्विता॥३॥

गोरूपं सुखुरं दिव्यं सर्वलक्षणसंयुतम्। खुराग्रे विन्यसेद्वज्रं श्रृंगे वै पद्मरागकम्॥४॥

भ्रुवोर्मध्ये न्यसेद्दिव्यं मौक्तिकं मुनिसत्तमाः। वैडूर्येण स्तनाः कार्या लांगूलं नीलतः शुभम्॥५॥

दंतस्थाने प्रकर्तव्यः पुष्परागः सुशोभनः। पशुवत्कारयित्वा तु वत्सं कुर्यात्सुशोभनम्॥६॥

सुवर्णदशनिष्केण सर्वरत्नसुशोभितम्। पूर्वोक्तवेदिकामध्ये मंडलं परिकल्प्य तु॥७॥

तन्मध्ये सुरभिं स्थाप्य सवत्सां सर्वतत्त्ववित्। सवत्सां सुरभिं तत्र वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्॥८॥

संपूजयेद्गां गायत्र्या सवत्सां सुरभिं पुनः। अथैकाग्निविधानेन होमं कुर्याद्यथाविधि॥९॥

पैंतीसवाँ अध्याय

सुवर्ण धेनु दान विधि

सनत्कुमार बोले

अब मैं तुमसे हेमधेनु के दान की प्रक्रिया को कहता हूँ। यह सब पापों का नाश करता है और सब ग्रह दोषों और दुर्भिक्ष का नाशक है।।१।। यह सब रोगों और विपत्तियों का निवारण करता है। एक हजार और पाँच सौ, दौ सौ पचास या सौ निष्क सोने के सिक्कों से सर्वरूप और गुण से युक्त गाय बनवायी जाय।।२-३।। गाय का रूप उसका खुर सब लक्षणें से युक्त और दिव्य हो। खुर के अग्रभाग पर वज्र मढ़ा जाय। सींगों पर पद्मराग लगाया जाय।।४।। हे मुनियों! भौंहों के बीच में दिव्य मोती, वैदूर्य से स्तन और नील से पूँछ बनायी जाय। दाँतों के स्थान पर सुन्दर पुष्पराग से दन्तावली बनायी जाय।।५।। इस प्रकार गाय को पशु के रूप में बनाकर सुन्दर बछड़ा बनाया जाय।।६।। बछड़ा सोने के दस सिक्कों द्वारा बनाया जाय। यह रत्नों के द्वारा सुन्दर हो। पूर्वकथित वेदी के मध्य में मण्डल खींचकर (बनाकर) उसके बीच में बछड़े सहित गाय को स्थापित करके दो नवीन वस्त्रों से ढक दें।।७-८।। फिर बछड़े सहित गाय की गायत्री मन्त्र से पूजा करें और फिर विधिपूर्वक अग्नि स्थापित करके होम करना चाहिए। अग्नि में समिधा और घी से पूर्ववत् यथाविधि होम करना चाहिए। शिव के लिंग को

समिदाज्यविधानेन पूर्ववच्छेषमाचरेत्। शिवपूजा प्रकर्तव्या लिंगं स्नाप्य घृतादिभिः॥१०॥
गामालभ्य च गायत्र्या शिवायादापयेच्छुभाम्। दक्षिणा च प्रकर्तव्या त्रिंशन्निष्का महामते॥११॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे हेमधेनुदानविधिनिरूपणं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

घृतादि से स्नान कराकर शिव की पूजा की जानी चाहिए। गायत्री मन्त्र से गाय का स्पर्श करके उसको शिव को समर्पित कर देना चाहिए। हे महामते! तीस निष्क दक्षिणा दी जानी चाहिए।।९-११।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में हेमधेनु दानविधि नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३५॥

षट्त्रिंशमोऽध्यायः

लक्ष्मीदानविधिनिरूपणम्

सनत्कुमार उवाच

लक्ष्मीदानं प्रवक्ष्यामि महदैश्वर्यवर्धनम्। पूर्वोक्तमंडपे कार्यं वेदिकोपरिमंडले॥१॥
श्रीदेवीमतुलां कृत्वां हिरण्येन यथाविधि। सहस्रेण तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः॥२॥
अष्टोत्तरशतेनापि सर्वलक्षणसंयुताम्। मंडले विन्यसेल्लक्ष्मीं सर्वालंकारसंयुताम्॥३॥
तस्यास्तु दक्षिणे भागे स्थंडिले विष्णुमर्चयेत्। अर्चयित्वा विधानेन श्रीसूक्तेन सुरेश्वरीम्॥४॥
अर्चयेद्विष्णुगायत्र्या विष्णुं विश्वगुरुं हरिम्। आराध्य विधिना देवीं पूर्ववद्धोममाचरेत्॥५॥
समिद्धुत्वा विधानेन आज्याहुतिमथाचरेत्। पृथगष्टोत्तरशतं होमयेद्ब्राह्मणोत्तमैः॥६॥
आहूय यजमानं तु तस्याः पूर्वदिशि स्थले। तस्मै तां दर्शयेद्देवीं दंडवत्प्रणमेत्क्षितौ॥७॥
प्रणम्य विष्णुं तत्रस्थं शिवं पूर्ववदर्चयेत्। तस्या विंशतिभागं तु दक्षिणा परिकीर्तिता॥८॥
तदर्धांशं तु दातव्यमितरेषां यथार्हतः। ततस्तु होमयेच्छंभुं भक्तो योगी विशेषतः॥९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे लक्ष्मीदानविधिनिरूपणं नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३६॥

छत्तीसवाँ अध्याय

लक्ष्मी दान विधि

सनत्कुमार बोले

अब मैं ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले लक्ष्मीदान के बारे में कहता हूँ। पूर्वोक्त मण्डप में वेदी के ऊपर मध्य में लक्ष्मी की स्वर्ण प्रतिमा बनवाये। एक हजार निष्क या पाँच सौ निष्क अथवा उसका आधा या फिर एक सौ आठ निष्क स्वर्ण से सभी लक्षणों से युक्त बनाकर मण्डल में सभी अलंकारों से सुसज्जित कर स्थापित करे और उसके दक्षिण भाग में स्थापित विष्णु की पूजा करे और श्री सूक्त से विधिपूर्वक लक्ष्मी की पूजा करे तथा विश्वगुरु भगवान विष्णु की गायत्री सूक्त से पूजा करे और विधिपूर्वक देवी की पूजा करके पूर्वोक्त विधि से हवन करे।।१-५।। श्रेष्ठ ब्राह्मणों से विधिपूर्वक समिधा से हवन करे, और यजमान को बुलाकर वेदी के पूर्व में देवी का दर्शन करावे और भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करे। विष्णु को प्रणाम करे तथा पूर्ववत् शिव की पूजा करे और उसका आधा दशांश दक्षिणा सुपात्र को दे और भक्त योगी शिव के लिये हवन करे।।६-९।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में लक्ष्मीदान विधि नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

तिलधेनुदानविधिनिरूपणम्

सनत्कुमार उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि तिलधेनुविधिक्रमम्। पूर्वोक्तमंडपे कुर्याच्छिवपूजां तु पश्चिमे॥१॥
तस्याग्रे मध्यतो भूमौ पद्ममालिख्य शोभनम्। वस्त्रैराच्छादितं पद्मं तन्मध्ये विन्यसेच्छुभम्॥२॥
तिलपुष्पं तु कृत्वाथ हेमपद्मं विनिक्षिपेत्। त्रिंशन्निष्केण कर्तव्यं तदर्धार्धेन वा पुनः॥३॥
पंचनिष्केण कर्तव्यं तदर्धार्धेन वा पुनः। तमाराध्य विधानेन गंधपुष्पादिभिः क्रमात्॥४॥
पद्मस्योत्तरदिग्भागे विप्रानेकादश न्यसेत्। तानभ्यर्च्य विधानेन गंधपुष्पादिभिः क्रमात्॥५॥
आच्छादनोत्तरासंगं विप्रेभ्यो दापयेत्क्रमात्। उष्णीषं च प्रदातव्यं कुंडले च विभूषिते॥६॥
हेमांगुलीयकं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो विधानतः। एकं दश च वस्त्राणि तेषामग्रे प्रकीर्य च॥७॥
तेषु वस्त्रेषु निःक्षिप्य तिलाद्यानि पृथक्पृथक्। कांस्यपात्रं शतपलं विभिद्यैकादशांशकम्॥८॥
इक्षुदंडं च दातव्यं ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः। गोशृंगे तु हिरण्येन द्विनिष्केण तु कारयेत्॥९॥
रजतेन तु कर्तव्याः खुरा निष्कद्वयेन तु। एवं पृथक्पृथग् दत्त्वा तत्तिलेषु विनिक्षिपेत्॥१०॥
रुद्रैकादशमंत्रैस्तु रुद्रेभ्यो दापयेत्तदा। पद्मस्य पूर्वदिग्भागे विप्रान्द्वादश पूजितान्॥११॥
एतेनैव तु मार्गेण तेषु श्रद्धासमन्वितः। द्वादशादित्यमंत्रैश्च दापयेदेवमेव च॥१२॥

सैंतीसवाँ अध्याय

तिल धेनु दान विधि

सनत्कुमार बोले

अब मैं तिल धेनु दान के बारे में कहता हूँ। पूर्वोक्त मण्डप में पश्चिम में शिव की पूजा करे। उसके आगे और बीच में अष्टदल कमल पुष्प बनावे और उसपर वस्त्रों से ढके पद्म को स्थापित करे। तिल पुष्प करके स्वर्ण कमल स्थापित करे। वह स्वर्ण कमल ३० निष्क अथवा उसके आधे निष्क का बनवावे अथवा पाँच निष्क या उसके आधे का बनाकर विधिपूर्वक क्रम से गन्ध पुष्पादि से पूजा करे।।१-४।। पद्म के उत्तर भाग में ग्यारह ब्राह्मणों को बैठावे। उनकी क्रमशः गन्ध पुष्पादि से विधिपूर्वक पूजा करे और अंग वस्त्र, पगड़ी तथा कुण्डलों से ब्राह्मणों को सुशोभित करे। सभी ब्राह्मणों को सोने की अँगूठी देकर उनके सामने एक या दस वस्त्र बिछाकर उन वस्त्रों में अलग-अलग तिल डाले।।५-७।। उन वस्त्रों पर अलग-अलग तिलादि वस्त्र रखकर एक कांस्य पात्र सौ पल का, ग्यारह भागों में विभक्त करके विशेष रूप से ब्राह्मणों के लिए ईख के दण्डे के साथ देनी चाहिए। भक्त को दो सोने के सिक्कों से गाय की सींग बनवानी चाहिए। दो सोने के सिक्के की कीमत के बराबर चाँदी के खुर बनवावे। इस प्रकार अलग-अलग देकर उन सबको तिलों में रख दे।।८-१०।। ग्यारह रुद्र मन्त्रों

पूर्ववद्दक्षिणे भागे विप्रान्षोडश संस्थितान्। मूर्तिं विघ्नेशमंत्रैश्च दापयेत्पूर्ववत्पुनः॥१३॥
यजमानेन कर्तव्यं सर्वमेतद्यथाक्रमम्। केवलं रुद्रदानं वा अदित्येभ्योऽथ वा पुनः॥१४॥
मूर्त्यादीनां च वा देयं यथाविभवविस्तरम्। पद्मं विन्यस्य राजासौ शेषं वा कारयेन्नृपः॥१५॥
दक्षिणा च प्रदातव्या पंचनिष्केण भूषणम्॥१६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे तिलधेनुदानविधिनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

को पढ़कर उन वस्तुओं को रुद्रों को भेंट कर दे। पूरब की ओर बारह ब्राह्मणों को बिठाकर उनकी पूजा करे। उसी पूर्व वर्णित विधि के अनुसार भक्त सभी संस्कारों को करे। बारह आदित्य मन्त्रों को पढ़कर सामग्री को उनको भेंट कर दे।।११-१२।। पूर्ववत् दक्षिण भाग में बैठे हुये १६ ब्राह्मणों को विघ्नेश्वर मन्त्रों के द्वारा मूर्ति को समर्पित कर देनी चाहिए।।१३।। यह सब कार्य यथाक्रम यजमान द्वारा किया जाना चाहिए। रुद्रों अथवा आदित्यों को दान पर्याप्त है। अपने सामर्थ्य के अनुसार मूर्ति आदि को दक्षिणा देनी चाहिए। राजा पाद्य आदि कृत्य को पूरा करे। पाँच निष्क सोने का मूल्य का एक आभूषण राजा द्वारा दक्षिणा के रूप में दिया जाना चाहिए।।१४-१६।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में तिलधेनुदान विधि नामक सैतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

गोसहस्रदानम्

सनत्कुमार उवाच

गोसहस्रप्रदानं च वदामि शृणु सुव्रत। गवां सहस्रमादाय सवत्सं सगुणं शुभम्॥१॥
तास्त्वभ्यर्च्य यथाशास्त्रमष्टौ सम्यक्प्रत्नतः। तासां शृंगाणि हेम्नाथ प्रतिनिष्केण बंधयेत्॥२॥
खुरांश्च रजतेनैव बंधयेत्कंठदेशतः। प्रतिनिष्केण कर्तव्यं कर्णे वज्रं च शोभनम्॥३॥
शिवाय दद्याद्विप्रेभ्यो दक्षिणां च पृथक्पृथक्। दशनिष्कं तदर्धं वा तस्यार्धार्धमथापि वा॥४॥
यथाविभवविस्तारं निष्कमात्रमथापि वा। वस्त्रयुग्मं च दातव्यं पृथग्विप्रेषु शोभनम्॥५॥
गावश्चाराध्य यत्नेन दातव्याः सुमनोरमाः। एवं दत्त्वा विधानेन शिवमभ्यर्च्य शंकरम्॥६॥
जपेदग्रे यथान्यायं गवां स्तवमनुत्तमम्। गावो ममाग्रतो नित्यं गावो नः पृष्ठतस्तथा॥७॥
हृदये मे सदा गावो गवां मध्ये वसाम्यहम्। इति कृत्वा द्विजाग्र्येभ्यो दत्त्वा गत्वा प्रदक्षिणम्।
तद्रोमवर्षसंख्यानि स्वर्गलोके महीयते॥९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे गोसहस्रप्रदानं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३८॥

अड़तीसवाँ अध्याय

सहस्र धेनु दान विधि

सनत्कुमार बोले

हे सुव्रत! अब मैं सहस्र गायों की दान विधि को बताता हूँ। भक्त एक हजार अच्छी गायों को बछड़ों सहित इकट्ठा करे और शास्त्र विधि से उन सब गायों की पूजा करे और उनकी सींगों को एक सोने के सिक्के के मूल्य के सोने से बाँध देना चाहिए।।१-२।। खुरों को चाँदी से बाँध देना चाहिए। गले को चारों ओर से एक सोने के सिक्के से बाँध देना चाहिए। कानों को सुन्दर हीरे से विभूषित कर देना चाहिए। यह सब शिव को भेंट कर देना चाहिए और ब्राह्मणों को अलग-अलग दक्षिणा दी जानी चाहिए। यह दक्षिणा दस निष्क या उसका आधा पाँच या उसका आधा ढाई या अपने सामर्थ्य के अनुसार एक निष्क मात्र भी होनी चाहिए। इसके साथ एक जोड़ी वस्त्र ब्राह्मणों में से प्रत्येक को देना चाहिए।।३-५।। गायों की पूजा करके उनको दान देना चाहिए। गायें देखने में सुन्दर हों। इस प्रकार दान देकर भक्त भगवान शिव की पूजा करे और उसके बाद भक्त गायों की स्तुति करे, ''गायें मेरे सामने हैं पीठ पीछे हैं। गायें मेरे हृदय में हैं और मैं गायों के बीच में निवास कर रहा हूँ।'' इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद सुपात्र ब्राह्मणों को ये गायें दान कर दी जायँ। जो भक्त इस प्रकार सहस्र गायों का दान करता है, उन गायों के शरीर में जितने रोम होते हैं, संख्या में उतने वर्ष वह स्वर्ग में पूजित होता है।।६-९।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तरभाग में सहस्र धेनु दान विधि नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त॥३८॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

हिरण्याश्वदानम्

सनत्कुमार उवाच

हिरण्याश्वप्रदानं च वदामि विजयावहम्। अश्वमेधात्पुनः श्रेष्ठं वदामि शृणु सुव्रत॥१॥
अष्टोत्तरसहस्रेण अष्टोत्तरशतेन वा। कृत्वाश्वं लक्षणैर्युक्तं सर्वालंकारसंयुतम्॥२॥
पंचकल्याणसंपन्नं दिव्याकारं तु कारयेत्।
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वांगैश्च समन्वितम्॥३॥
सर्वायुधसमोपेतमिंद्रवाहनमुत्तमम्। तन्मध्यदेशे संस्थाप्य तुरंगं स्वगुणान्वितम्॥४॥
उच्चैःश्रवसकं मत्वा भक्त्या चैवसमर्चयेत्। तस्य पूर्वदिशाभागे ब्राह्मणं वेदपारगम्॥५॥
सुरेंद्रबुद्ध्या संपूज्य पंचनिष्कं प्रदापयेत्। स चाश्वः शिवभक्ताय दातव्यो विधिनैव तु॥६॥
सुवर्णाश्वं प्रदत्त्वा तु आचार्यमपि पूजयेत्। यथाविभवविस्तारं पंचनिष्कमथापि वा॥७॥
दीनांधकृपणानाथबालवृद्धकृशातुरान्। तोषयेदन्नदानेन ब्राह्मणांश्च विशेषतः॥८॥
एतद्यः कुरुते भक्त्या दानमश्वस्य मानवः। ऐंद्रान्भोगांश्चिरं भुक्त्वा रुचिरैश्वर्यवान्भवेत्॥९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे हिरण्याश्वदानं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

स्वर्ण अश्वदान विधि

सनत्कुमार बोले

हे सुव्रत! मैं सोने के घोड़े की दान की विधि का वर्णन करूँगा। इससे रण क्षेत्र में विजय प्राप्त होती है। यह अश्वमेघ से भी श्रेष्ठ है।।१।। एक हजार आठ सोने के सिक्के या १०८ सोने के सिक्के से भक्त घोड़े की एक मूर्ति बनवाये जो सब उत्तम लक्षणों से युक्त और सब अलंकारों से भूषित हो। घोड़े में पाँच कल्याण चिह्न हों और उसका आकार एवं स्वरूप दिव्य हो। यह सब लक्षणों से युक्त और सर्वाङ्ग पूर्ण हो। भक्त इन्द्र के वाहन (उच्चैश्रवा) के समान उसको मानकर भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करे। उसके बाद पूर्व दिशा में वेदों में पारंगत ब्राह्मण को बैठावे। उस ब्राह्मण को इन्द्र के रूप में मानकर उसकी पूजा करके पाँच निष्क दक्षिणा दे। विधिपूर्वक पूजित उस अश्व को शिव भक्त को दे दिया जाय। स्वर्ण अश्व के दान करने के बाद आचार्य की पूजा करे। उनको अपने सामर्थ्य के अनुसार अथवा पाँच निष्क दक्षिणा दे। गरीब, अन्ध, कृपण, अनाथ, बालक, वृद्ध, कृश और रोगियों को अन्न (भोजन) दान करके उनको संतुष्ट करे। विशेष रूप से ब्राह्मणों को भोजन करावे। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक ऐसा स्वर्ण अश्व प्रदान करता है, वह चिरकाल तक इन्द्र के समान भोगों को प्राप्त करता है और वह महान ऐश्वर्यवान होता है।।२-९।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तरभाग में स्वर्ण अश्वदान विधि नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त॥३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

कन्यादानविधिः

सनत्कुमार उवाच

कन्यादानं प्रवक्ष्यामि सर्वदानोत्तमोत्तमम्। कन्यां लक्षणसंपन्नां सर्वदोषविवर्जिताम्॥१॥
मातापित्रोस्तु संवादं कृत्वां दत्त्वां धनं महत्।
आत्मीकृत्याथ संस्नाप्य वस्त्रं दत्त्वा शुभं नवम्॥२॥
भूषणैर्भूषयित्वाथ गंधमाल्यैरथार्चयेत्। निमित्तानि समीक्ष्याथ गोत्रनक्षत्रकादिकान्॥३॥
उभयोश्चित्तमालोक्य उभौ संपूज्य यत्नतः। दातव्या श्रोत्रियायैव ब्राह्मणाय तपस्विने॥४॥
साक्षादधीतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे। दासदासीधनाढ्यं च भूषणनि विशेषतः॥५॥
क्षेत्राणि च धनं धान्यवासांसि च प्रदापयेत्। यावंति देहे रोमाणि कन्यायाः संततौ पुनः॥६॥
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे कन्यादानविधिर्नाम
चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

चालीसवाँ अध्याय

कन्यादान विधि

सनत्कुमार बोले

अब मैं कन्यादान को कहूँगा यह सब दानों में सर्वोत्तम है। सब लक्षणों से युक्त और सभी दोषों से रहित कन्या को उसके माता-पिता से बातचीत करके समुचित धन देकर उसको अपनाकर स्नान कराकर सुन्दर नये वस्त्र और आभूषणों से भूषित करके उसके बाद गन्ध माल्य से उसकी पूजा करनी चाहिए। उसके गोत्र नक्षत्रादि की समीक्षा करके श्रोत्रिय तपस्वी ब्राह्मण, वेद पढ़े हुये ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले ब्रह्मचारी को दोनों की इच्छा को देखकर विधिपूर्वक पूजा करे। उनको दास-दासी आभूषण विशेष रूप से भूमि, धन, धान्य और वस्त्रों को देना चाहिए। उस कन्या के सन्तति के शरीर में जितने रोम विद्यमान हों उतने वर्षों तक वह भक्त रुद्र लोक में पूजित होता है।।१-७।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में कन्यादान विधि
नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

सुवर्णवृषदानम्

सनत्कुमार उवाच

हिरण्यवृषदानं च कथयामि समासतः। वृषरूपं हिरण्येन सहस्रेणाथ कारयेत्॥१॥
तदर्धार्धेन वा धीमांस्तदर्धार्धेन वा पुनः। अष्टोत्तरशतेनापि वृषभं धर्मरूपिणम्॥२॥
ललाटे कारयेत्पुंड्रमर्धचंद्रकलाकृतिम्। स्फाटिकेन तु कर्त्तव्यं खुरं तु रजतेन वै॥३॥
ग्रीवा तु पद्मरागेण ककुद्गोमेदकेन च। ग्रीवायां घांटवलयं रत्नचित्रं तु कारयेत्॥४॥
वृषांकं कारयेत्तत्र किंकिणीवलयावृतम्। पूर्वोक्तदेशकाले तु वेदिकोपरिमंडले॥५॥
वृषेंद्रं स्थापयेत्तत्र पश्चिमामुखमग्रतः। ईश्वरं पूजयेद्भक्त्या वृषारूढं वृषध्वजम्॥६॥

वृषेंद्रं पूज्य गायत्र्या नमस्कृत्य समाहितः।
तीक्ष्णश्रृंगाय धर्मपादाय विद्महे धीमहि। तन्नो वृषः प्रचोदयात्॥७॥
मंत्रेणानेन संपूज्य वृषं धर्मविवृद्धये।
होमयेच्च घृतान्नाद्यैर्यथाविभवविस्तरम्॥८॥

इकतालीसवाँ अध्याय

सुवर्ण वृषभ दान

सनत्कुमार बोले

अब मैं सोने के बैल के दान कृत्य का वर्णन संक्षेप में करूँगा। बुद्धिमान भक्त १ हजार या ५ सौ यहाँ तक कि १०८ सोने के सिक्कों द्वारा एक बैल का स्वरूप बनवाये। वह उस बैल को धर्म के रूप में बनवाये।।१-२।। उसके ललाट पर अर्धचन्द्र के आकार का पुण्ड्र (विशेष चिह्न) कराये। खुर को चाँदी से, गले को पद्मराग से और ककुद (कूबड़ या डील) को गोमेद से बनवाये। गले में गोल रस्सी द्वारा घण्टियाँ बाँधी जायँ। किंकिणी और वलय से युक्त तथा रत्नों से सुशोभित करे।।३-४।। बैल के घण्टियाँ और वलय (कड़ा) चमकदार हों। भक्त उस सुसज्जित बैल को वेदी पर मण्डप में यथोचित समय में खड़ा करे। बैल का मुख पश्चिम की ओर रहे। भक्त श्रद्धापूर्वक बैल की पीठ पर आसीन भगवान शंकर की पूजा करे।।५-६।। वृष गायत्री मन्त्र के द्वारा उस वृषेन्द्र की पूजा करे और उसको प्रणाम करे। "तीक्ष्णश्रृंगाय विद्महे धर्मपादाय धीमहि। तन्नो वृषः प्रचोदयात्।" "तीखे सींग वाले बैल को जानते हैं। हम धर्मपाद से युक्त वृष का ध्यान करते हैं। अतः बैल हम लोगों का मार्ग दर्शन करे।" बैल की फिर पूजा की जाय और उसको ब्राह्मण को या शिव को दान कर दिया जाय। अपने सामर्थ्य के

वृषभः पूज्य दातव्यो ब्राह्मणेभ्यः शिवाय वा। दक्षिणा चैव दातव्या यथावित्तानुसारतः॥९॥
एतद्यः कुरुते भक्त्या वृषदानमनुत्तमम्। शिवस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते॥१०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे सुवर्णवृषदानं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥

अनुसार यजमान दक्षिणा भी दे क्योंकि जो भक्तिपूर्वक इस सर्वोत्तम वृष दान को क़रता है वह शिव का अनुचर होता है और उनके साथ आनन्द करता है।।७-१०।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में स्वर्णवृषभ दान नामक इकतालीस अध्याय समाप्त॥४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

गजदानविधिः

सनत्कुमार उवाच

गजदानं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः। द्विजाय वा शिवायाथ दातव्यः पूज्य पूर्ववत्॥१॥
गजं सुलक्षणोपेतं हैमं वा राजतं तु वा। सहस्रनिष्कमात्रेण तदर्धेनापि कारयेत्॥२॥
तदर्धार्धेन वा कुर्यात्सर्वलक्षणभूषितम्। पूर्वोक्तदेशकाले च देवाय विनिवेदयेत्॥३॥
अष्टम्यां वा प्रदातव्यं शिवाय परमेष्ठिने। ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये॥४॥
शिवमुद्दिश्य दातव्यं शिवं संपूज्य पूर्ववत्। एतद्यः कुरुते दानं शिवभक्तिसमाहितम्॥५॥
स्थित्वा स्वर्गे चिरं कालं राजा गजपतिर्भवेत्॥६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥४२॥

बयालीसवाँ अध्याय

गज दान विधि

सनत्कुमार बोले

अब मैं पूर्व के क्रम में यथावत् गजदान को कहूँगा। गज की पूजा करके ब्राह्मण या शिव को देना चाहिए। भक्त हाथी की एक प्रतिमा सुन्दर लक्षणों से युक्त सोने या चाँदी से बनवाये। यह एक हजार सोने के सिक्के या उसके आधे या उससे आधे सिक्कों से बनवायी जाय और वह प्रतिमा सब लक्षणों से युक्त हो। पूर्व कथित स्थान और समय पर यह शिव को अष्टमी तिथि को भेंट करना चाहिए। या इस गज प्रतिमा को वेदों में पारंगत गरीब ब्राह्मण—जो की पवित्र अग्नि को सर्वदा सुरक्षित रखता है—शिव की पूजा करके और शिव को ध्यान में रखकर दान करना चाहिए। जो व्यक्ति पूर्णभक्ति के साथ यह गजदान करता है वह चिरकाल तक स्वर्ग में रहकर बाद में एक राजा और गजपति होता है।।१-६।।

**श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में गजदान विधि
नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४२॥**

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

लोकपालाष्टकम् दानम्

सनत्कुमार उवाच

लोकपालाष्टकं दिव्यं साक्षात्परमदुर्लभम्। सर्वसंपत्करं गुह्यं परचक्रविनाशनम्॥१॥
स्वदेशरक्षणं दिव्यं गजवाजिविवर्धनम्। पुत्रवृद्धिकरं पुण्यं गोब्राह्मणहितावहम्॥२॥
पूर्वोक्तदेशकाले तु वेदिकोपरिमंडले। मध्ये शिवं समभ्यर्च्य यथान्यायं यथाक्रमम्॥३॥
दिग्विदिक्षु प्रकर्तव्यं स्थंडिलं वालुकामयम्। अष्टौ विप्रान्समभ्यर्च्य वेदवेदांगपारगान्॥४॥
जितेंद्रियान्कुलोद्भूतान्सर्वलक्षणसंयुतान्। शिवाभिमुखमासीनाऽनाहतेष्वंबरेषु च॥५॥
वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैर्लोकपालकमंत्रकः। गंधपुष्पैः सुधूपैश्च ब्राह्मणानर्चयेत्क्रमात्॥६॥
पूर्वतो होमयेदग्नौ लोकपालकमंत्रकैः। समिद्धृताभ्यां होतव्यमग्निकार्यं क्रमेण वा॥७॥
एवं हुत्वा विधानेन आचार्यः शिववत्सलः। यजमानं समाहूय सर्वाभरणभूषितान्॥८॥
तेन तान्पूजयित्वाथ द्विजेभ्यो दापयेद्धनम्। पृथक्पृथक्तन्मंत्रैश्च दशनिष्कं च भूषणम्॥९॥
दशनिष्केण कर्तव्यमासनं केवलं पृथक्। स्नपनं तत्र कर्तव्यं शिवस्य विधिपूर्वकम्॥१०॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

आठ लोकपालों की दान विधि

सनत्कुमार बोले

आठ लोकपालों का दान कृत्य दिव्य है जो बहुत दुर्लभ है। यह सब सम्पत्ति को देने वाला और शत्रुओं का नाश करने वाला है। अपने देश की रक्षा करने वाला, हाथी और घोड़ों की वृद्धि करने वाला, पुत्र वृद्धि करने वाला और गो एवं ब्राह्मणों का हित सम्पादन करने वाला है।।१-२।। भक्त पूर्वोक्त स्थान और समय पर मण्डल में वेदी के ऊपर यथाक्रम विधिपूर्वक शिव की पूजा करके दिशाओं और विदिशाओं की बालू से मूर्ति बनावे। वेद और वेदांग के पारगामी विद्वानों, जितेन्द्रिय, कुलीन और सब लक्षणों से युक्त शिव के सामने बैठे हुये, आठ ब्राह्मणों की भलीभाँति पूजा करके नये वस्त्र फैला दे। भक्त गंध, पुष्प, धूप, दीप से दिव्य वस्त्रों और आभूषणों से लोक पालक मन्त्र पढ़ते हुये उन ब्राह्मणों की क्रम से पूजा करे।।३-६।। लोकपालों के मन्त्रों को पढ़ते हुये पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके भक्त होम करे। होम यज्ञ की समिधाओं और घी द्वारा करे। इस प्रकार विधान से हवन करके शिव का प्रिय भक्त आचार्य होम करके यजमान को बुलाकर और वह ब्राह्मणों को सब आभरणों से भूषित करके उनकी पूजा करके तत्सम्बन्धी मन्त्रों को क्रमशः दोहराते हुये उनको धन दे। दस निष्क दक्षिणा उत्तम होती है। दस निष्क के सोने के द्वारा आठों दिगपालों के लिए अलग से आसन बनाया जाय। वहाँ पर शिव का स्नान

दक्षिणा च प्रदातव्या यथाविभवविस्तरम्।
एवं यः कुरुते दानं लोकेशानां तु भक्तितः। लोकेशानां चिरं स्थित्वा सार्वभौमो भवेद्बुधः॥११॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

विधिपूर्वक कराया जाय। इस प्रकार जो भी दिक्पालों की भक्तिपूर्वक पूजा करके इनका दान देता है। वह लोकपालों के लोक में चिरकाल तक रहकर सार्वभौम सम्राट होता है।।७-११।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में लोकपालों की दान विधि नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

विष्णुदानविधिः

सनत्कुमार उवाच

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि सर्वदानोत्तमोत्तमम्। पूर्वोक्तदेशकाले च मंडपे च विधानतः॥१॥
प्रणयात्कुंडमध्ये च स्थंडिले शिवसन्निधौ। पूर्वं विष्णुं समासाद्य पद्मयोनिमतः परम्॥२॥
मंत्राभ्यां विधिनोक्ताभ्यां प्रणवादिसमंत्रकम्।
नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥३॥
ब्रह्मब्राह्मणवृद्धाय ब्रह्मणे विश्ववेधसे। शिवाय हरये स्वाहा स्वधा वौषट् वषट् तथा॥४॥
पूजयित्वा विधानेन पश्चाद्धोमं समाचरेत्। सर्वद्रव्यं हि होतव्यं द्वाभ्यां कुंडविधानतः॥५॥
ऋत्विजौ द्वौ प्रकर्तव्यौ गुरुणा वेदपारगौ। तानुद्दिश्य यथान्यायं विप्रेभ्यो दापयेद्धनम्॥६॥
शतमष्टोत्तरं तेभ्यः पृथक्पृथगनुत्तमम्। वस्त्राभरणसंयुक्तं सर्वालंकारसंयुतम्॥७॥
गुरुरेको हि वै श्रीमान् ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः। तेषां पृथक्पृथग्देयं भोजयेद्ब्राह्मणानपि॥८॥
शिवार्चना च कर्तव्या स्नपनादि यथाक्रमम्॥९॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥

चौवालीसवाँ अध्याय

विष्णुदान विधि

सनत्कुमार बोले

इसके बाद में एक ऐसे दानकृत्य को कहूँगा जो कि सभी उत्तम दानों में श्रेष्ठ है। पूर्वोक्त काल और स्थान पर, मण्डप में कुण्ड के बीच में या खाली भूमि पर शिव के सामने, भक्त भक्तिपूर्वक विष्णु की पूजा करे। कमल से उत्पन्न भगवान विष्णु की पूजा प्रणव सहित निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा की जाय। ''नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्'' हम नारायण को जानते हैं, हम नारायण पर ध्यान करते हैं। अतः विष्णु हम लोगों का मार्गदर्शन करें। ब्राह्मण को स्वाहा। वृद्ध ब्राह्मण, सृष्टि के कर्त्ता, शिव को हरि को स्वाहा। वौषट् और वषट् स्वधा।।१-४।। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन करके पश्चात् होम करना चाहिए। मन्त्रों के साथ दो कुण्डों में सव होम द्रव्यों से हवन करना चाहिए। होम में दो ब्राह्मण होने चाहिए जो आचार्य से विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन किये हों। भक्त उनको दृष्टि में रखकर ब्राह्मणों को द्रव्य दक्षिणा दे। १०८ सोने के सिक्के उत्तम वस्त्र, आभूषण और द्रव्य दक्षिणा के साथ होना चाहिए। यद्यपि गुरु एक है। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनो का प्रतिनिधित्व करता है। उनको पृथक्-पृथक् दान दिया जाय। ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय। अभिषेक से प्रारम्भ करके यथाक्रम शिव की पूजा की जानी चाहिए।।५-९।।

लिंगमहापुराण के उत्तर भाग में विष्णुदान विधि नामक
चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४४॥

पंचचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

जीवच्छ्राद्धविधिः

ऋषय ऊचुः

एवं षोडश दानानि कथितानि शुभानि च।
जीवच्छ्राद्धक्रमोऽस्माकं वक्तुमर्हसि सांप्रतम्॥१॥

सूत उवाच

जीवच्छ्राद्धविधिं वक्ष्ये समासात्सर्वसंमतम्। मनवे देवदेवेन कथितं ब्रह्मणा पुरा॥२॥
वसिष्ठाय च शिष्टाय भृगवे भार्गवाय च। शृण्वंतु सर्वभावेन सर्वसिद्धिकरं परम्॥३॥
श्राद्धमार्गक्रमं साक्षाच्छ्राद्धार्हाणामपि क्रमम्। विशेषमपि वक्ष्यामि जीवच्छाद्धस्य सुव्रताः॥४॥
पर्वते वा नदीतीरे वने वायतनेऽपि वा। जीवच्छ्राद्धं प्रकर्तव्यं मृतकाले प्रयत्नतः॥५॥
जीवच्छ्राद्धे कृते जीवो जीवन्नेव विमुच्यते। कर्म कुर्वन्नकुर्वन्वा ज्ञानी वाज्ञानवानपि॥६॥
श्रोत्रियोश्रोत्रियो वापि ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा। वैश्यो वा नात्र संदेहो योगमार्गगतो यथा॥७॥
परीक्ष्य भूमिं विधिवद्गंधवर्णरसादिभिः। शल्यमुद्धत्य यत्नेन स्थंडिलं सैकतं भुवि॥८॥
मध्यतो हस्तमात्रेण कुंडं चैवायतं शुभम्। स्थंडिलं वा प्रकर्तव्यमिषुमात्रं पुनः पुनः॥९॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

जीवत् श्राद्ध संस्कार की विधि

ऋषिगण बोले

इस प्रकार सोलह दानों को संक्षेप में कहा। अब आप जीवत्श्राद्ध विधि को हम लोगों को बतायें।

सूत बोले

संक्षेप में सर्वसम्मत जीवत् श्राद्ध विधि को कहता हूँ जिसको देवताओं के देवता ब्रह्मा ने पहले मनु से कहा था। मनु ने वसिष्ठ को, वसिष्ठ ने अनुशासित भृगु और भार्गव को कहा। उस सब प्रकार से सिद्धि देने वाले जीवत् श्राद्ध विधि को पूर्णभाव से सुनिये।।१-३।। हे सुव्रत! मैं श्राद्ध के क्रम और विधि को कहता हूँ। जो जीवत् श्राद्ध को करने में श्रद्धा रखते हों उनके लिए उस श्राद्ध की विशेषताओं को भी कहता हूँ।।४।। जीवत् श्राद्ध पर्वत पर, नदी के किनारे, वन में या अपने निवास पर जबकि शरीर वृद्ध हो। तब यह कृत्य किया जाता है, तो उसके करने पर जीव जीते हुये भी मुक्त हो जाता है। कर्म करते हुये अथवा न करते हुये, ज्ञानी हो या अज्ञानी हो, श्रोत्रिय हो या अश्रोत्रिय हो, ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो या वैश्य हो, या योग मार्ग का अनुयायी हो। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।५-७।। श्राद्ध की भूमि को गंध, रंग, स्वाद आदि के द्वारा परीक्षा कर लेनी चाहिए। उस भूमि पर से घास-फूस और काँटे आदि उखाड़ देना चाहिए। इस प्रकार स्वच्छ भूमि पर मध्य में एक हाथ मात्र चौड़ाई में बालू से ढक देना

उपलिप्य विधानेन चालिप्याग्निं विधाय च। अन्वाधाय यथाशास्त्रं परिगृह्य च सर्वतः॥१०॥
परिस्तीर्य स्वशाखोक्तं पारंपर्यक्रमागतम्। समाप्याग्निमुखं सर्वं मंत्रैरेतैर्यथाक्रमम्॥११॥
संपूज्य स्थंडिले वह्नौ होमयेत्समिदादिभिः। आदौ कृत्वा समिद्धोमं चरुणा च पृथक्पृथक्॥१२॥
घृतेन च पृथक्पात्रे शोधितेन पृथक्पृथक्। जुहुयादात्मनोद्धृत्य तत्त्वभूतानि सर्वतः॥१३॥

ॐ भूः ब्रह्मणे नमः॥१४॥
ॐ भूः ब्रह्मणे स्वाहा॥१५॥
ॐ भुवः विष्णवे नमः॥१६॥
ॐ भुवः विष्णवे स्वाहा॥१७॥
ॐ स्वः रुद्राय नमः॥१८॥
ॐ स्वः रुद्राय स्वाहा॥१९॥
ॐ महः ईश्वराय नमः॥२०॥
ॐ महः ईश्वराय स्वाहा॥२१॥
ॐ जनः प्रकृतये नमः॥२२॥
ॐ जनः प्रकृत्यै स्वाहा॥२३॥
ॐ तपः मुद्गलाय नमः॥२४॥
ॐ तपः मुद्गलाय स्वाहा॥२५॥
ॐ ऋतं पुरुषाय नमः॥२६॥
ॐ ऋतं पुरुषाय स्वाहा॥२७॥
ॐ सत्यं शिवाय नमः॥२८॥
ॐ सत्यं शिवाय स्वाहा॥२९॥

चाहिए, यदि कुण्ड खोदा जाय तो यह लम्बा और उत्तम हो, या खाली भूमि को एक बाण बढ़ा दिया जाय। भूमि को विधिपूर्वक गाय के गोबर से लीपकर वहाँ वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ अग्नि की स्थापना की जाय। चारों ओर जल का छिड़काव किया जाय। अग्नि स्थापन अपने-अपने वेदों की शाखाओं के परम्परागत मन्त्रों से किया जाय। भूमि पर विधिवत् पूजन करने के बाद यज्ञ के समिधाओं के द्वारा होम किया जाय तथा तब चरु से घी से पृथक्-पृथक् होम किया जाय। अलग पात्र तथा शुद्ध किये हुये घी से तत्त्वों भूतों को मन से विचार करके चारों ओर अलग-अलग होम करना चाहिये।।८-१३।। ॐ भूः ब्रह्मा को नमस्कार है।।१४।। ॐ भूः ब्रह्मा को स्वाहा।।१५।। ॐ भुवः विष्णु को नमस्कार।।१६।। ॐ भुवः विष्णु को स्वाहा।।१७।। ॐ स्वः रुद्र को नमस्कार।।१८।। ॐ स्वः रुद्र को स्वाहा।।१९।। ॐ महः ईश्वर को नमस्कार।।२०।। ॐ महः ईश्वर को स्वाहा।।२१।। ॐ जनः प्रकृति को नमस्कार।।२२।। ॐ जनः प्रकृति को स्वाहा।।२३।। ॐ तपः मुद्गल को नमस्कार।।२४।। ॐ तपः मुद्गल को स्वाहा।।२५।। ॐ ऋतं पुरुष को नमस्कार।।२६।। ॐ ऋतं पुरुष को स्वाहा।।२७।। ॐ सत्यं शिव को नमस्कार।।२८।। ॐ सत्यं शिव को स्वाहा।।२९।।

ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गंधं शर्वाय देवाय भूर्नमः॥३०॥
ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गंधं शर्वाय भूः स्वाहा॥३१॥
ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गंधं शर्वस्य देवस्य पत्न्यै भूर्नमः॥३२॥
ॐ शर्व धरां मे गोपाय घ्राणे गंधं शर्वपत्न्यै भूः स्वाहा॥३३॥
ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवाय देवाय भुवो नमः॥३४॥
ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवाय देवाय भुवः स्वाहा॥३५॥
ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवस्य देवस्य पत्न्यै भुवो नमः॥३६॥
ॐ भव जलं मे गोपाय जिह्वायां रसं भवस्य पत्न्यै भुः स्वाहा॥३७॥
ॐ रुद्राग्निं मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्राय देवाय स्वरों नमः॥३८॥
ॐ रुद्राग्निं मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्राय देवाय स्वः स्वाहा॥३९॥
ॐ रुद्राग्निं मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्रस्य पत्न्यै स्वरों नमः॥४०॥
ॐ रुद्राग्निं मे गोपाय नेत्रे रूपं रुद्रस्य देवस्य पत्न्यै स्वः स्वाहा॥४१॥
ॐ उग्र वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शं उग्राय देवाय महर्नमः॥४२॥
ॐ उग्र वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शमुग्राय देवाय महः स्वाहा॥४३॥
ॐ उग्र वायुं में गोपाय त्वचि स्पर्शमुग्रस्य देवस्य पत्न्यै महरों नमः॥४४॥
ॐ उग्र वायुं मे गोपाय त्वचि स्पर्शमुग्रस्य देवस्य पत्न्यै महः स्वाहा॥४५॥
ॐ भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमाय देवाय जनो नमः॥४६॥

ॐ शर्व, मेरी भूमि की रक्षा करें, नासिका में गंध, शर्व स्वामी को नमस्कार, भूः ॐ शर्व को नमस्कार। ॐ शर्व, मेरी भूमि की रक्षा करें, नासिका में गंध, शर्व को स्वाहा। ॐ शर्व, मेरी भूमि की रक्षा करें, नासिका में गंध, भूः शर्व स्वामी की पत्नी को नमस्कार। ॐ शर्व, मेरी भूमि की रक्षा करें, नासिका में गन्ध, भूः शर्व की पत्नी को स्वाहा।।३०-३३।। ॐ भव, मेरे जलों की रक्षा करें, जिह्वा में स्वाद, भुवः, भव स्वामी को नमस्कार। ॐ भव, मेरे जलों की रक्षा करें, जिह्वा में स्वाद, भुवः, भव स्वामी को स्वाहा। ॐ भव, मेरे जलों की रक्षा करें, जिह्वा में स्वाद, भुवः, भव स्वामी की पत्नी को नमस्कार। ॐ भव, मेरे जलों की रक्षा करें, जिह्वा में स्वाद, भुवः, भव की पत्नी को स्वाहा।।३४-३७।। ॐ रुद्र, मेरी अग्नि की रक्षा करे, मेरे नेत्रों में रंग, स्वः, ॐ रुद्र को नमस्कार। ॐ रुद्र, मेरी अग्नि की रक्षा करें, नेत्र में रंग, स्वः स्वाहा, रुद्र स्वामी को नमस्कार। ॐ रुद्र, मेरी अग्नि की रक्षा करें, नेत्र में रंग, स्वः ॐ, रुद्र स्वामी की पत्नी को नमस्कार। ॐ रुद्र, मेरी अग्नि की रक्षा करे, नेत्र में रंग, स्वः स्वाहा, रुद्र स्वामी की पत्नी को।।३८-४१।। ॐ उग्र, मेरी वायु की रक्षा करे, त्वचा में स्पर्श, महः, उग्र स्वामी को नमस्कार। ॐ उग्र, मेरी वायु की रक्षा करे, त्वचा में स्पर्श, महः स्वाहा, उग्र स्वामी को। ॐ उग्र, मेरी वायु की रक्षा करें, त्वचा में स्पर्श, महः ॐ, उग्र स्वामी की पत्नी को नमस्कार। ॐ उग्र, मेरी वायु की रक्षा करें, त्वचा में स्पर्श, महः स्वाहा उग्र स्वामी की पत्नी को।।४२-४५।। ॐ भीम, मेरी शुषिर की रक्षा करे, कानों में ध्वनि, जनः ॐ, भीम स्वामी को नमस्कार। ॐ भीम, मेरी शुषिर की रक्षा

ॐ भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमाय देवाय जनः स्वाहा॥४७॥
ॐ भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमस्य पत्न्यै जनो नमः॥४८॥
ॐ भीम सुषिरं मे गोपाय श्रोत्रे शब्दं भीमस्य देवस्य पत्न्यै जनः स्वाहा॥४९॥
ॐ ईश रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशाय देवाय तपो नमः॥५०॥
ॐ ईश रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशाय देवाय तपः स्वाहा॥५१॥
ॐ रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशस्य पत्न्यै तपो नमः॥५२॥
ॐ ईश रजो मे गोपाय द्रव्ये तृष्णामीशस्य पत्न्यै तपः स्वाहा॥५३॥
ॐ महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवाय ऋतं नमः॥५४॥
ॐ महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवाय ऋतं स्वाहा॥५५॥
ॐ महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवस्य पत्न्यै ऋतं नमः॥५६॥
ॐ महादेव सत्यं मे गोपाय श्रद्धां धर्मे महादेवस्य पत्न्यै ऋतं स्वाहा॥५७॥
ॐ पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतये देवाय सत्यं नमः॥५८॥
ॐ पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतये देवस्य सत्यं स्वाहा॥५९॥
ॐ पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपते र्देवस्य पत्न्यै सत्यं नमः॥६०॥
ॐ पशुपते पाशं मे गोपाय भोक्तृत्वभोग्यं पशुपतेर्देवस्य पत्न्यै सत्यं स्वाहा॥६१॥
ॐ शिवाय नमः॥६२॥
ॐ शिवाय सत्यं स्वाहा॥६३॥
एवं शिवाय होतव्यं विरिंच्याद्यं च पूर्ववत्। विरिंचाद्यं च पूर्वोक्तं सृष्टिमार्गेषु सुव्रताः॥६४॥

करे, कानों में ध्वनि, जनः स्वाहा, भीम स्वामी को। ॐ भीम, मेरी शुषिर की रक्षा करें, कानों में ध्वनि, जनः ॐ भीम स्वामी की पत्नी को नमस्कार। ॐ भीम मेरे सुषिर की रक्षा करें, कानों में ध्वनि, जनः स्वाहा भीम स्वामी की पत्नी को।।४६-४९।। ॐ ईश, मेरे रजोगुण की रक्षा करें, धन के लिए तृष्णा, तपः ॐ, ईश स्वामी को नमस्कार। ॐ ईश, मेरे रजोगुण की रक्षा करें, धन के लिए तृष्णा, तपः स्वाहा, ईश स्वामी को। ॐ ईश, मेरे रजोगुण की रक्षा करें, धन के लिए तृष्णा, तपः ॐ, ईश स्वामी की पत्नी को नमस्कार। ॐ ईश, मेरे रजोगुण की रक्षा करें, धन के लिए तृष्णा, तपः स्वाहा ईश स्वामी की पत्नी को।।५०-५३।। ॐ महादेव, मेरे सत्य की रक्षा करें, ऐश्वर्य में श्रद्धा, ऋतं, महादेव को नमस्कार। ॐ महादेव मेरे सत्य की रक्षा करें, ऐश्वर्य में श्रद्धा, ऋतम्, स्वाहा महादेव को। ॐ महादेव, मेरे सत्य की रक्षा करें, ऐश्वर्य में श्रद्धा, ऋतं महादेव की पत्नी को नमस्कार। ॐ महादेव, मेरे सत्य की रक्षा करें, ऐश्वर्य में श्रद्धा, महादेव की पत्नी को ऋतं स्वाहा।।५४-५७।। ॐ पशुपति, मेरे पाश की रक्षा करें, भोक्ता और भोग की स्थिति, सत्यं, पशुपति स्वामी को नमस्कार। ॐ पशुपति, मेरे पाश की रक्षा करें, भोक्ता और भोग की स्थिति, पशुपति स्वामी को सत्यं स्वाहा। ॐ पशुपति, मेरे पाश की रक्षा करे, भोक्ता और भोग की स्थिति, सत्यं, पशुपति स्वामी की पत्नी को नमस्कार। ॐ पशुपति, मेरे पाश की रक्षा करें, भोक्ता और भोग की स्थिति, पशुपति स्वामी की पत्नी को सत्यं स्वाहा। ॐ शिव को नमस्कार। ॐ सत्यं, शिव को स्वाहा।।५८-६३।। इस प्रकार

पुनः पशुपतेः पत्नीं तथा पशुपतिं क्रमात्। संपूज्य पूर्ववन्मंत्रैर्होतव्यं च क्रमेण वै॥६५॥
चर्वंतमाज्यपूर्वं च समिदंतं समाहितः॥६६॥
ॐ शर्व धरां मे छिंधि घ्राणे गंधं छिंधि मेघं जहि भूः स्वाहा॥६७॥
भुवः स्वाहा॥६८॥
स्वः स्वाहा॥६९॥
भूर्भुवः स्वः स्वाहा॥७०॥
एवं पृथक्पृथग्घुत्वा केवलेन घृतेन वा। सहस्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा॥७१॥
विरजा च घृतेनैव शतमष्टोत्तरं पृथक्। प्राणादिभिश्च जुहुयाद्धृतेनैव तु केवलम्॥७२॥
ॐ प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवो मा विशाप्रदाहाय प्राणाय स्वाहा॥७३॥
प्राणाधिपतये रुद्राय वृषांतकाय स्वाहा॥७४॥
ॐ भूः स्वाहा॥७५॥
ॐ भुवः स्वाहा॥७६॥
ॐ स्वः स्वाहा॥७७॥
भूर्भुवः स्वः स्वाहा॥७८॥
एवं क्रमेण जुहुयाच्छ्राद्धोक्तं च यथाक्रमम्। सप्तमेऽहनि योगींद्राञ्छ्राद्धार्हानपि भोजयेत्॥७९॥
शर्वादीनां च विप्राणां वस्त्राभरणकंबलान्। वाहनं शयनं यानं कांस्यताम्रादिभाजनम्॥८०॥
हैमं च राजतं धेनुं तिलान् क्षेत्रं च वैभवम्। दासीदासगणश्चैव दातव्यो दक्षिणामपि॥८१॥
पिंडं च पूर्ववद्दद्यात्पृथगष्टप्रकारतः। ब्राह्मणानां सहस्रं च भोजयेच्च सदक्षिणम्॥८२॥
एकं वा योगनिरतं भस्मनिष्ठं जितेंद्रियम्। त्र्यहं चैव तु रुद्रस्य महाचरुनिवेदनम्॥८३॥

शिव के होम कृत्य को पूरा किया जाय और विरिंचादि के लिये हुये पूर्ववत् विरंचि और अन्न सृष्टि मार्गों में पूर्वोक्त होम करे। इसके बाद भक्त पशुपति और पशुपति की पत्नी की क्रम से पूजा करे, पूजा करने के बाद क्रमशः मन्त्रों के प्रयोग को करते हुये होम करे। हवन सामग्री में घी चरु और यज्ञ समिधा होनी चाहिए/यज्ञ कर्त्ता को शरीरिक और मानसिक रूप शुद्ध होना चाहिये।।६४-६६।। ॐ शर्व, मेरे भूमि को काटो, नाक में गन्ध को घन को नष्ट करो—भूः स्वाहा, भूवः स्वाहा, स्वः स्वाहा। भूर्भुवः स्वः स्वाहा। इस प्रकार भक्त अलग-अलग १ हजार, पाँच सौ या १०८ बार केवल घी से हवन करे। विरजा मन्त्रों को दोहराते हुये केवल घी से १०८ बार अलग होम किया जाय। हे शिव! मुझमें प्रवेश करो। प्राण के जलाने वाला प्राण के अधिपति को स्वाहा, रुद्र को वृष के नाशक के लिए स्वाहा। ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा।।६७-७८।। इस प्रकार जैसा कि श्राद्ध में होता है। यथाक्रम उसी प्रकार हवन करे। सातवें दिन श्रेष्ठ योगियों और श्राद्ध में भोजन करने योग्य व्यक्तियों को भोजन करावे।।७९।। शिव के भक्त ब्राह्मणों को वस्त्राभूषण, शाल, कम्बल, वाहन, विस्तर, कांस्य ताम्र आदि के बर्तन, सोने चाँदी के बने बर्तन, गायें, तिल, भूमि तथा अन्य वस्तुएँ दान करे। दास और दासियों को भी दक्षिणा दी जाय।।८०-८१।। आठ प्रकार के पिण्ड अलग-अलग पूर्ववत् दिया जाय। श्राद्ध कर्त्ता को चाहिये कि वह हजार ब्राह्मणों को भोजन कराये और उनको दक्षिणा भी दे।।८२।। या योगाभ्यास में लगे हुये

विशेष एवं कथित अशेषश्चाद्ध चोदितः। मृते कुर्यान्न कुर्याद्वा जीवन्मुक्तो यतः स्वयम्॥८४॥
नित्यनैमित्तिकादीनि कुर्याद्वा संत्यजेत्तु वा। बांधवेऽपि मृते तस्य शौचाशौचं न विद्यते॥८५॥
सूतकं च न संदेहः स्नानमात्रेण शुद्ध्यति। पश्चाज्जाते कुमारे च स्वे क्षेत्रे चात्मनो यदि॥८६॥
तस्य सर्वं प्रकर्तव्यं पुत्रोऽपि ब्रह्मविद्भवेत्। कन्यका यदि संजाता पश्चात्तस्य महात्मनः॥८७॥
एकपर्णा इव ज्ञेया अपर्णा इव सुव्रता। भवत्येव न संदेहस्तस्याश्चान्वयजा अपि॥८८॥
मुच्यंते नात्र संदेहः पितरो नरकादपि। मुच्यंते कर्मणानेन मातृतः पितृतस्तथा॥८९॥
कालं गते द्विजे भूमौ खनेच्चापि दहेत्तु वा। पुत्रकृत्यमशेषं च कृत्वा दोषो न विद्यते॥९०॥
कर्मणा चोत्तरेणैव गतिरस्य न विद्यते। ब्रह्मणा कथितं सर्वं मुनीनां भावितात्मनाम्॥९१॥
पुनः सनत्कुमाराय कथितं तेन धीमता। कृष्णद्वैपायनायैव कथितं ब्रह्मसुनुना॥९२॥
प्रसादात्तस्य देवस्य वेदव्यासस्य धीमतः। ज्ञातं मया कृतं चैव नियोगादेव तस्य तु॥९३॥
एतद्वः कथितं सर्वं रहस्यं ब्रह्मसिद्धिदम्। मुनिपुत्राय दातव्यं न चाभक्ताय सुव्रताः॥९४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे जीवत्श्राद्धविधिर्नाम पंचचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४५॥

किसी एक व्यक्ति को भोजन कराये। वह स्वयं भस्म धारण करे और इन्द्रियों को वश में करके महाचरु तीन दिन के लिए भगवान रुद्र को समर्पित करे।।८३।। यहाँ पर केवल जीवत् श्राद्ध से सम्बन्धित विशेष चीजों का जिक्र किया गया है। अन्य सब क्रियाएँ अन्य श्राद्धों की तरह होती हैं। यदि भक्त मर जाता है, तो उसका मरणोत्तर श्राद्ध किया जा सकता है नहीं भी किया जा सकता है। क्योंकि यह श्राद्ध करने वाला व्यक्ति स्वयं जीवन्मुक्त होता है।।८४।। वह नित्य और नैमित्तिक क्रियाओ को करे या छोड़ दे। बान्धवों के मरने पर भी जीवत् श्राद्ध करने वाले व्यक्ति के लिए शौचाशैच नहीं होता है और सूतक भी नहीं मानना चाहिए। स्नान मात्र से उसकी शुद्धि हो जाती है।।८५।। इसके बाद यदि उसको पुत्र प्राप्त होता है या उसकी पत्नी से पुत्र उत्पन्न होता है, तो वह पुत्र उसके लिए सब पवित्र संस्कार कर सकेगा। उसका पुत्र भी ब्रह्मविद् होता है। यदि कन्या पैदा होती है तो, हे सुव्रत! वह कन्या एक पर्णा या अपर्णा के समान होगी, उसके परिवार में जन्म लेने वाले व्यक्ति नरक से मुक्त हो जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। उसके पिता और पितर गण और मातृपक्ष के लोग भी मुक्त हो जाते हैं।।८६-८९।। ऐसा ब्राह्मण जब मर जाता है, तो भूमि को खोदकर उसके शरीर को गाड़ दिया जाता है। या उसका दाह संस्कार कर दिया जाय, पुत्र द्वारा सम्पूर्ण कृत्य (और्द्धदैहिक क्रिया) किया जाय इसमें कोई दोष नहीं है। मृत्यु के उपरान्त पृथक् मुक्ति के लिए कोई क्रिया आवश्यक नहीं है। यह सब ब्रह्मा द्वारा महात्मा मुनियों को कहा गया है। फिर सनत्कुमार को ब्रह्मा ने कहा। उसे बाद में कृष्ण द्वैपायन (व्यासमुनि) को ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार ने कहा। उन्हीं वेदव्यास की कृपा से मैंने यह जाना और उनके निर्देश से किया। यह सब ब्रह्म की सिद्धि देने वाले रहस्य को मैंने कहा। हे सुव्रतो! यह सब ऐसे व्यक्ति को बताया जाय जो कि मुनि पुत्र हो। अभक्त को यह ज्ञान नहीं देना चाहिये।।९०-९४।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तरभाग में जीवत् श्राद्ध संस्कार की विधि नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

लिङ्गमूर्त्तिप्रतिष्ठा

ऋषय ऊचुः

जीवच्छ्राद्धविधिः प्रोक्तस्त्वया सूत महामते। मूर्खाणामपि मोक्षार्थमस्माकं रोमहर्षण॥१॥
रुद्रादित्यवसूनां च शक्रादीनां च सुव्रत। प्रतिष्ठा कीदृशी शंभोर्लिंगमूर्तेश्च शोभना॥२॥
विष्णोः शक्रस्य देवस्य ब्रह्मणश्च महात्मनः। अग्नेर्यमस्य निर्ऋतेर्वरुणस्य महाद्युतेः॥३॥
वायोः सोमस्य यक्षस्य कुबेरस्यामितात्मनः। ईशानस्य धरायाश्च श्रीप्रतिष्ठाथ वा कथम्॥४॥
दुर्गाशिवाप्रतिष्ठा च हैमवत्याश्च शोभना। स्कंदस्य गणराजस्य नंदिनश्च विशेषतः॥५॥
तथान्येषां च देवानां गणानामपि वा पुनः। प्रतिष्ठालक्षणं सर्वं विस्ताराद्वक्तुमर्हसि॥६॥
भवान्सर्वार्थतत्त्वज्ञो रुद्रभक्तश्च सुव्रत। कृष्णद्वैपायनस्यासि साक्षात्त्वमपरा तनुः॥७॥
सुमंतुर्जैमिनिश्चैच पैलश्च परमर्षयः। गुरुभक्तिं तथा कर्तुं समर्थो रोमहर्षणः॥८॥
इति व्यासस्य विपुला गाथा भागीरथीतटे। एकः समो वा भिन्नो वा शिष्यस्तस्य महाद्युतेः॥९॥
वैशंपायनतुल्योऽसि व्यासशिष्येषु भूतले। तस्मादस्माकमखिलं वक्तुमर्हसि सांप्रतम्॥१०॥

छियालीसवाँ अध्याय

लिंग का स्थापन

ऋषिगण बोले

हे महामति, हे रोमों के हर्षित करने वाले सूत जी! हम मूर्खों के मोक्षों के लिए भी आपने जीवत् श्राद्ध विधि को बताया।।१।। हे सुव्रत! रुद्र, आदित्य, वसुओं, इन्द्र, और अन्य की स्थापना कैसे होती है? लिंग से रूप मूर्ति में शिव की उत्तम प्रतिष्ठा कैसे होती है? तथा विष्णु, इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, यक्ष, कुबेर, ईशान, भूमि, श्री दुर्गा, हिमालय की पुत्री शिवा (पार्वती), स्कन्द, विशेषरूप में नन्दी, गणराज की तथा अन्य देवताओं और गणों की प्रतिष्ठा कैसे होती है? विस्तार से प्रतिष्ठा के लक्षण को वर्णन करें।।२-६।। हे सुव्रत! आप सब तत्त्वों के ज्ञाता और रुद्रभक्त हैं। आप कृष्ण द्वैपायन के द्वितीय शरीर हैं।।७।। "सुमंतु जैमिनि, पैल आदि परम ऋषिगण हैं आप अपने गुरु की भक्ति करने में समर्थ हैं।" इस प्रकार भागीरथी के तट पर व्यास के विषय में यह अनुपम कथा कही गयी है। आप उस महापुरुष के रूप है या उनके समान हैं, या उनके प्रधान शिष्य हैं। अथवा उनसे अभिन्न हैं।।८-९।। इस पृथ्वी पर व्यास के शिष्यों में आप वैशम्पयन के तुल्य हैं। अतः इस समय आप हमको सब कुछ बतायें।।१०।। इतना कहने के बाद ऋषि लोग वहाँ थोड़ी देर के लिए खड़े हो गये। उस समय उनके (सूत) सामने एक अति विस्मयजनक बात हुयी। अन्तरिक्ष में साक्षात् देवों ने इस प्रकार कहा, "मुनियों का यह प्रश्न यहीं पर समाप्त हो। सारा जगत लिंगमय है, और सभी लिंग में

एवमुक्त्वा स्थितेष्वेव तेषु सर्वेषु तत्र च। बभूव विस्मयोऽतीव मुनीनां तस्य चाग्रतः॥११॥
अथांतरिक्षे विपुला साक्षाद्देवी सरस्वती। अलं मुनीनां प्रश्नोऽयमिति वाचा बभूव ह॥१२॥
सर्वं लिङ्गमयं लोकं सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम्। तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्थापयेत्पूजयेच्च तत्॥१३॥
लिंगस्थापनसन्मार्गनिहितस्वायतासिना। आशु ब्रह्मांडमुद्भिद्य निर्गच्छेदविशंकया॥१४॥
उपेद्रांभोजगर्भेंद्रयमांबुधनदेश्वराः। तथान्ये च शिवं स्थाप्य लिंगमूर्तिं महेश्वरम्॥१५॥
स्वेषुस्वेषु च पक्षेषु प्रधानास्ते यथा द्विजाः। ब्रह्मा हरश्च भगवान्विष्णुर्देवी रमा धरा॥१६॥
लक्ष्मीर्धृतिः स्मृतिः प्रज्ञा धरा दुर्गा शची तथा। रुद्राश्च वसवः स्कंदो विशाखः शाख एव च॥१७॥
नैगमेशश्च भगवाँल्लोकपाला ग्रहास्तथा। सर्वे नंदिपुरोगाश्च गणा गणपतिः प्रभुः॥१८॥
पितरो मुनयः सर्वे कुबेराद्याश्च सुप्रभाः। आदित्या वसवः सांख्या अश्विनौ च भिषग्वरौ॥१९॥
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च पशवः पक्षिणो मृगाः। ब्रह्मादिस्थावरांतं च सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम्॥२०॥
तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्थापयेल्लिंगमव्ययम्। यत्नेन स्थापितं सर्वं पूजितं पूजयेद्यदि॥२१॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४६॥

प्रतिष्ठित है। इसलिए सब छोड़कर लिंग की स्थापना करनी चाहिये और उसकी पूजा की जानी चाहिये''।।११-१३।। कोई भी व्यक्ति ब्रह्मांड को तुरन्त भेद करके लिंग की स्थापना संस्कार को पूरा करे। यह कार्य ऐसा है जैसे कि सन्मार्ग में एक लम्बी तलवार कार्य करती है। उसके बाद भक्त ब्रह्माण्ड को भेद कर बेहिचक बाहर हो जाय।।१४।। उपेन्द्र, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर और ईशान तथा अन्य इन सबको लिंग पर स्थापित करे। महेश्वर शिव जिनका भौतिक रूप लिंग है, उनको स्थापित करे। हे ब्रह्मणों! इस प्रकार शिव की प्रतिष्ठा (स्थापना) के द्वारा वे सब अपने-अपने पक्ष में (परिवारों में) प्रधान हो जाते हैं। ब्रह्मा, हर, रमा, धरा, लक्ष्मी, धृति, स्मृति, प्रज्ञा, धरा, दुर्गा, शची, रुद्र, वसु, स्कन्द, विशाख, साख, नैगमेश दिग्पाल, ग्रहमण्डल, गण, नन्दी, गणपति, पितृगण, ऋषिगण, कुबेर, आदित्य, वसु, सांख्य और वैद्यों में श्रेष्ठ अश्विनी कुमार, विश्वदेव, साध्य, पशु, पक्षी, और मृग, ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक यह सब लिंग में प्रतिष्ठित हैं। इसलिए सबकुछ छोड़कर अव्यय लिंग की स्थापना करे। यत्नपूर्वक स्थापना करके अगर कोई इसकी पूजा करता है, तो सब पूज्य की पूजा के समान यह मान्य है।।१५-२१।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तरभाग में लिंग का स्थापन
नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४६॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

लिङ्गस्थापनम्

सूत उवाच

इति निशम्य कृतांजलयस्तदा दिवि महामुनयः कृतनिश्चयाः।
शिवतरं शिवमीश्वरमव्ययं मनसि लिंगमयं प्रणिपत्य ते॥१॥
सकलदेवपतिर्भगवानजो हरिरशेषपतिर्गुरुणा स्वयम्।
मुनिवराश्च गणाश्च सुरासुरा नरवराः शिवलिंगमयाः पुनः॥२॥

श्रुत्वैवं मुनयः सर्वे षट्कुलीयाः समाहिताः। संत्यज्य सर्वं देवस्य प्रतिष्ठां कर्तुमुद्यताः॥३॥
अपृच्छन्सूतमनघं हर्षगद्गदया गिरा। लिंगप्रतिष्ठां विपुलां सर्वे ते शंसितव्रताः॥४॥

सूत उवाच

प्रतिष्ठां लिंगमूर्तेवो यथावदनुपूर्वशः। प्रवक्ष्यामि समासेन धर्मकामार्थमुक्तये॥५॥
कृत्वैव लिंगं विधिना भुवि लिंगेषु यत्नतः। लिंगमेकतमं शैलं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्॥६॥
हेमरत्नमयं वापि राजतं ताम्रजं तु वा। सवेदिकं ससूत्रं च सम्यग्विस्तृतमस्तकम्॥७॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

लिंग का स्थापन

सूत बोले

आकाश से इस वाणी को सुनकर महामुनियों ने उस वाणी के सम्मान में अपने हाथ जोड़ लिए। तत्क्षण निश्चय करके लिंग से अभिन्न अव्यय शिव को नतमस्तक हो मन में ही लिंग की स्थापना करके देवेन्द्र इन्द्र, अज, विष्णु, सर्वेश्वर देवगुरु (वृहस्पति) सहित सब मुनिवर, गण, सुर असुर, और श्रेष्ठ मनुष्य इन सब ने शिवलिंगमय अपने को अनुभव किया। इस आकाशवाणी को सुनकर छः महान् कुलीन सबकुछ छोड़कर शिवलिंग की स्थापना करने को उद्यत हुये। इन लोगों ने प्रसन्नता से गद्गद वाणी से निष्पाप सूत जी से लिंग की प्रतिष्ठा के विषय में पूछा।।१-४।।

सूत बोले

मैं धर्म, काम, अर्थ और मुक्ति के लिए संक्षेप में यथावत् क्रमशः लिंगमूर्ति की प्रतिष्ठा को कहूँगा।।५।। इस प्रकार विधिपूर्वक लिंग बनवाये जो यह लिंग पत्थर का हो। यह ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक हो। यह रत्नजटित सोने का या चाँदी का या ताँबे का भी बनवाया जा सकता है। यह वेदी सहित हो। जल के निकलने का मार्ग भी हो। ऊपरी सिरा पर्याप्त रूप में विस्तृत हो। भक्त लिंग और वेदी को भलीभाँति स्वच्छ करके तब उसकी स्थापना करे। लिंग की वेदी देवी उमा है और लिंग स्वयं साक्षात् महेश्वर। इन दोनों की पूजा देव और

विशेध्य स्थापयेद्भक्त्या सवेदिकमनुत्तमम्। लिंगवेदी उमा देवी लिंगं साक्षान्महेश्वरः॥८॥
तयोः सपूजनादेव देवी देवश्च पूजितौ। प्रतिष्ठया च देवेशो देव्या सार्धं प्रतिष्ठितः॥९॥
तस्मात्सवेदिकं लिंगं स्थापयेत्स्थापकोत्तमः॥१०॥

मूले ब्रह्मा वसति भगवान्मध्यभागे च विष्णुः सर्वेशानः पशुपतिरजो रुद्रमूर्तिर्वरेण्यः।
तस्माल्लिगं गुरुतरतरं पूजयेत्स्थापयेद्वा यस्मात्पूज्यो गणपतिरसौ देवमुख्यैः समस्तैः॥११॥

गंधैः स्त्रग्धूपदीपैः स्नपनहुतबलिस्तोत्रमंत्रोपहारै-
र्नित्यंयेऽभ्यर्चयंति त्रिदशवरतनुं लिंगमूर्तिं महेशम्।
गर्भाधानादिनाशक्षयभयरहिता देवगंधर्वमुख्यैः
सिद्धैर्वंद्याश्च पूज्या गणवरनमितास्ते भवंत्यप्रमेयाः॥१२॥

तस्माद्भक्त्योपचारेण स्थापयेत्परमेश्वरम्। पूजयेच्च विशेषेण लिंगं सर्वार्थसिद्धये॥१३॥
समर्च्य स्थापयेल्लिगं तीर्थमध्ये शिवासने। कूर्चवस्त्रादिभिर्लिंगमाच्छाद्य कलशैः पुनः॥१४॥
लोकपालदिदैवत्यैः सकूर्चैः साक्षतैः शुभैः। उत्कूर्चैः स्वस्तिकाद्यैश्च चित्रतंतुकवेष्टितैः॥१५॥
वज्रादिकायुधोपेतैः सवस्त्रैः सपिधानकैः। लक्षयेत्परितो लिंगमीशानेन प्रतिष्ठितम्॥१६॥
धूपदीपसमोपेतं वितानविततांबरम्। लोकपालध्वजैश्चैव गजादिमहिषादिभिः॥१७॥
चित्रितैः पूजितैश्चैव दर्भमाला च शोभना। सर्वलक्षणसंपूर्णा तया बाह्ये च वेष्टयेत्॥१८॥
ततोधिवासयेत्तोये धूपदीपसमन्विते। पंचाहं वा त्र्यहंवाथ एकरात्रमथापि वा॥१९॥

देवी की पूजा है। इन दोनों की देवेश और देवी की प्रतिष्ठा की जाय। इसलिए भक्त वेदी सहित लिंग की स्थापना करे।।६-१०।। लिंग के मूल में ब्रह्मा बसते हैं और मध्य भाग में विष्णु अज, रुद्र, पशुपति, सर्वेश्वर, शिर पर वास करते हैं। इस लिए गणों के स्वामी सब देवताओं द्वारा पूजने के योग्य हैं। अतः भक्त को गुरु से गुरुतर लिंगों की स्थापना और पूजा करनी चाहिये।।११।। वे जो सदा महेश की पूजा करते हैं जो कि देवताओं में सर्वोत्तम हैं, उनके लिंग रूपी भौतिक शरीर में वे जो पूजा की शुद्ध वस्तुओं गन्ध, माला, धूप, दीप, स्नान, हवन, स्तोत्र मन्त्र और उपहारों से नित्य देवताओं में श्रेष्ठ शिव के लिंग की पूजा करते हैं, वे लोग जन्म मृत्यु के भय से मुक्त हो जाते हैं। वे सिद्धों, देवताओं और गन्धर्वों द्वारा पूज्य और गणवरों द्वारा प्रणम्य होते हैं।।१२।। अतः भक्त को चाहिये कि वह लिंग की भक्तिपूर्वक स्थापना करे और सब कामनाओं की पूर्ति के लिए विशेषरूप से लिंग की पूजा करे।।१३।। उसकी पूजा करने के बाद वह लिंग को पवित्र भूमि के मध्य में शिवासन पर स्थापित करे। तब लिंग को कुश और वस्त्र से लपेट देना चाहिये। उसके बाद लोकपाल, दिक्पाल आदि देवताओं अक्षत सहित कुशों स्वस्तिक आदि विभिन्न रंग के धागों से वेष्टित, बज्र आदि आयुध से युक्त वस्त्रों से ढके हुये, लिंग को ईशान मन्त्र पढ़ते हुये एक मण्डल में स्थापित करे। धूप दीप से युक्त वस्त्र का एक वितान (चाँदनी) ऊपर तान दिया जाय। लोकपालों के चित्रों के ऊपर कपड़े फैला दिये जायँ और उनके वाहनों हाथी, भैंसा आदि को भी वस्त्र से ढक दें। भक्त कुशों की मालाओं को उस स्थान पर चारों ओर बाँध दे।।१४-१८।। उसके बाद भक्त धूप,

वेदाध्ययनसंपन्नो नृत्यगीतादिमंगलैः। किंकिणीरवकोपेतं तालवीणारवैरपि॥२०॥
ईक्षयेत्कालमव्यग्रो यजमानः समाहितः। उत्थाप्य स्वस्तिकं ध्यायेन्मंडपे लक्षणान्विते॥२१॥
संस्कृते वेदिसंयुक्ते नवकुंडेन संवृते। पूर्वोक्तविधिना युक्ते सर्वलक्षणसंयुते॥२२॥
अष्टमंडलसंयुक्ते दिग्ध्वजाष्टकसंयुते। पूर्वोक्तलक्षणोपेतैः कुंडैः प्रागादितः क्रमात्॥२३॥
प्रधानं कुंडमीशान्यां चतुरस्त्रं विधीयते। अथवा पंचकुंडैकं स्थंडिलं चैकमेव च॥२४॥
यज्ञोपकरणैः सर्वैः शिवार्चायां हि भूषणैः। वेदिमध्ये महाशय्यां पंचतूलीप्रकल्पिताम्॥२५॥
कल्पयेत्कांचनोपेतां सितवस्त्रावगुंठिताम्। प्रकल्प्यैवं शिवं चैव स्थापयेत्परमेश्वरम्॥२६॥
प्राकशिरस्कं न्यसेल्लिंगमीशानेन यथाविधि। रत्नन्यासे कृते पूर्वं केवलं कलशं न्यसेत्॥२७॥
लिंगमाच्छाद्य वस्त्राभ्यां कूर्चेन च समंततः। रत्नन्यासे प्रसक्तेऽथ वामाद्या नव शक्तयः॥२८॥
नवरत्नं हिरण्याद्यैः पंचगव्येन संयुतैः। सर्वधान्यसमोपेतं शिलायामपि विन्यसेत्॥२९॥
स्थापयेद्ब्रह्मलिंगं हि शिवगायत्रिसंयुतम्। केवलं प्रणवेनापि स्थापयेच्छिवमव्ययम्॥३०॥
ब्रह्मजज्ञानमंत्रेण ब्रह्मभागं प्रभोस्तथा। विष्णुगायत्रिया भागं वैष्णवं त्वथ विन्यसेत्॥३१॥
सूत्रे तत्त्वत्रयोपेते प्रणवेन प्रविन्यसेत्। सर्वं नमः शिवायेति नमो हंसः शिवाय च॥३२॥

दीप से युक्त जल में पाँच दिन या तीन दिन या एक रात्रि बास देना चाहिये।।१९।। भक्त को इस काल में वेदों का अध्ययन करना चाहिये। भक्त को नित्य धार्मिक भजन वीणा आदि वाद्य मन्त्रों के साथ गाना चाहिये। उसमें किंकिणी की शब्द ध्वनि भी होती रहे। यजमान शान्त चित्त होकर यह काल बिताये। इसको करने के बाद वह स्वस्तिक पर ध्यान करे। तब लिंग को मण्डप में रखे। वहाँ पर नवकुण्ड खोदे हुये हों, उनमें उनके अपने-अपने चिह्नों से युक्त हों, आठ पवित्र सामग्री जिसको अष्टमंगल कहते हैं, वहाँ पर फैला दिया जाय। वहाँ दिगपालों के लिए आठ मण्डल हों जो अपनी-अपनी ध्वजा से युक्त हों। ये कुण्ड पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके क्रमशः स्थापित हों। प्रधान कुण्ड ईशान कोण में हो। वह आकार में चार हाथ हो या पाँच कुण्ड एक ओर हो और उसके पास खाली भूमि छोड़ दी जाय। सब यज्ञ के उपकरणों और भूषणों को शिव की पूजा में वेदी के मध्य में एक महाशय्या सोने की हो। उसके पास पाँच बत्तियों वाला दीपक उसके पास रखा जाय। उसके बाद शय्या का विस्तर सफेद वस्त्र से ढका हो। ये सब व्यवस्था करने के बाद परमेश्वर शिव को वहाँ स्थापित करना चाहिये।।२०-२६।। भक्त लिंग शिरोभाग को पूर्व की ओर स्थापित करे। स्थापना कार्य ईशान मन्त्रों द्वारा किया जाय। रत्नन्यास (रत्नों को जड़ना) धार्मिक कृत्य करने के बाद कलश को ऊपर रखे।।२७।। तब लिंग को दो वस्त्रों द्वारा कुश सहित चारों ओर से लपेट दे। रत्नन्यास करने के बाद नव शक्तियाँ वामा आदि को रखे। स्वर्ण के साथ नव कीमती रत्नों, पंचगव्य और सब प्रकार के धान्य शिला पर रख दे।।२८-२९।। भक्त, ब्रह्मलिंग को शिव गायत्री मन्त्र को पढ़ते हुये स्थापित करे। केवल प्रणव उच्चारण करते हुये अव्यय शिव को स्थापित करे। ब्रह्मज ज्ञान मंत्र द्वारा प्रभु के मध्य भाग को, विष्णु गायत्री द्वारा वैष्णव भाग को स्थापित करे।।३०-३१।। प्रणव के साथ नमः स्वाहा मन्त्र द्वारा तीन तत्त्वों से निर्मित वेदी में सर्व को स्थापित करे। सर्वं नमः शिवाय नमो हंसः

रुद्राध्यायेन वा सर्वं परिमृज्य च विन्यसेत्। स्थापयेद्ब्रह्मभिश्चैव कलशान्वै समंततः॥३३॥
वेदिमध्ये न्यसेत्सर्वान्पूर्वोक्तविधिसंयुतान्। मध्यकुंभे शिवं देवीं दक्षिणे परमेश्वरीम्॥३४॥
स्कंदं तयोश्च मध्ये तु स्कंदकुंभे सुचित्रिते। ब्रह्माणं स्कंदकुंभे वा ईशकुम्भे हरिं तथा॥३५॥
अथवा शिवकुंभे च ब्रह्मंगानि च विन्यसेत्। शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः॥३६॥
ब्रह्माण्येवं समासेनहृदयादीनि चांबिका। वेदिमध्ये न्यसेत्सर्वान्पूर्वोक्तविधिसंयुतान्॥३७॥
वर्धन्यां स्थापयेद्देवीं गंधतोयेन पूर्य च। हिरण्यं रजतं रत्नं शिवकुंभे प्रविन्यसेत्॥३८॥
वर्धन्यामपि यत्नेन गायत्र्यंगैश्च सुव्रताः। विद्येश्वरान्दिशां कुंभे ब्रह्मकूर्चेन पूरिते॥३९॥
अनंतेशादिदेवांश्च प्रणवादिनमोंतकम्। नववस्त्रं प्रतिघटमष्टकुंभेषु दापयेत्॥४०॥
विद्येश्वराणां कुंभेषु हेमरत्नादि विन्यसेत्। वक्त्रक्रमेण होतव्यं गायत्र्यंगक्रमेण च॥४१॥
जयादिस्विष्टपर्यंतं सर्वं पूर्ववदाचरेत्। सेचयेच्छिवकुंभेन वर्धन्या वैष्णवेन च॥४२॥
पैतामहेन कुंभेन ब्रह्मभागं विशेषतः। विद्येश्वराणां कुंभैश्च सेचयेत्परमेश्वरम्॥४३॥
विन्यसेत्सर्वमंत्राणि पूर्ववत्सुसमाहितः। पूजयेत्स्नपनं कृत्वा सहस्त्रादिषु संभवैः॥४४॥
दक्षिणा च प्रदातव्या सहस्त्रपणमुत्तमम्। इतरेषां तदर्धं स्यात्तदर्धं वा विधीयते॥४५॥
वस्त्राणि च प्रधानस्य क्षेत्रभूषणगोधनम्। उत्सवश्च प्रकर्तव्यो होमयागबलिः क्रमात्॥४६॥

शिवाय या रुद्राध्याय पढ़ते हुये सब साफ करके स्थापित करे। भक्त कलशों को चारों ओर वैदिक मन्त्रों द्वारा स्थापित करे।।३२-३३।। पूर्वोक्त विधि के साथ वेदी के मध्य में उनको स्थापित करे। वह शिव को मध्य में और शिवा देवी को दक्षिण कुंभ पर रखे। स्कन्द को उन दोनों के बीच में रखे। अथवा शिवकुंभ पर ब्रह्मांग को रखे। सुचित्रित स्कन्द कुम्भ पर रखे। या ब्रह्मा को स्कन्द कुम्भ पर रखे और ईश कुम्भ पर विष्णु को रखे। यह ब्रह्माङ्ग शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु और पितामह हैं। ये हृदय आदि और अम्बिका माँ को वेदी के मध्य में पूर्वोक्त स्थापित करे।।३४-३७।। सुगन्धित जल से वर्धनी पात्र को भर दिया जाय और उसमें देवी को स्थापित किया जाय। शिव कुम्भ में सोना, चाँदी और रत्नों को डाल दिया जाय।।३८।। हे सुव्रत! विद्येश्वरों को वर्धनी पात्र में गायत्री और अंग मन्त्रों द्वारा दिशाओं के कुश से पूरित कुम्भ में स्थापित करे। अनन्त ईश अन्य देवताओं को दिशाओं के गोमूत्र से पूरित कुम्भ पर प्रणव से प्रारम्भ करके नमः के अन्त करते हुये स्थापित करे। आठ घड़ों में से प्रत्येक को नवीन वस्त्र से ढक दे।।३९-४०।। सोना, इत्यादि विश्वेशरों के कुम्भों में डाल दें। शिव के सम्मुख गायत्री तथा अंगन्यास मन्त्रों द्वारा हवन किया जाय।।४१।। 'जय' से अन्त और 'स्विष्ट' से समाप्त करते हुये पूर्ववत् करना चाहिये। शिव कुम्भ, वर्धनी के जल से चारों ओर जल का छिड़काव करे और परमेश्वर का सेंचन करे।।४२-४३।। पूर्ववत् स्वस्थ चित्त होकर सव मन्त्रों को पढ़ते हुसे, पूर्ववत् स्नान कराकर पूजन करना चाहिये। एक हजार पणों की उत्तम दक्षिणा दी जानी चाहिये। उसकी आधी या उससे भी आधी अन्य लोगों को दक्षिणा देनी चाहिये यदि ऐसा सम्भव हो।।४४-४५।। वस्त्र, भूमि, भूषण, गायें आदि प्रधान पुजारी को—जो शिव का प्रतिनिधित्व करता है—उसको दिया जाय, एक बड़ा उत्सव किया जाय। होम, याग और बलि उचित

नवाहं वापि सप्ताहमेकाहं च त्र्यहं तथा। होमश्च पूर्ववत्प्रोक्तो नित्यमभ्यर्च्य शंकरम्॥४७॥
देवानां भास्करादीनां होमं पूर्ववदेव तु। अभ्यंतरे तथा बाह्ये वह्नौ नित्यं समर्चयेत्॥४८॥
य एवं स्थापयेल्लिंगं स एव परमेश्वरः। तेन देवगणा रुद्रा ऋषयोऽप्सरसस्तथा॥४९॥
स्थापिताः पूजिताश्चैव त्रैलोक्यं सचराचरम्॥५०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे लिङ्गस्थापनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥४७॥

क्रम में नव, सात या तीन दिन या केवल एक दिन की जाय। शंकर की पूजा के बाद प्रतिदिन पूर्वोक्त विधि से हवन किया जाय। देवों, भास्करादि की ओर से होम पूर्ववत् किया जाय। आभ्यन्तर और बाह्य अग्नि में उनकी दैनिक पूजा की जाय। जो व्यक्ति इस विधि से लिंग का स्थापन करता है वह परमेश्वर का सानिध्य प्राप्त करता है। जिसने इस प्रकार शिवलिंग की स्थापना की उसके द्वारा देवगण, रुद्र, ऋषि, अप्सरा स्थापित और पूजित हुये। वास्तव में मानो उसके द्वारा चर और अचर तीनों लोक की पूजा की गयी।।४६-५०।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तरभाग में लिंग का स्थापन नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४७॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

गायत्रीभेदाः

सूत उवाच

सर्वेषामपि देवानां प्रतिष्ठामपि विस्तरात्। स्वैर्मंत्रैर्यागकुंडानि विन्यस्यैकैकमेव च॥१॥
स्थापयेदुत्सवं कृत्वा पूजयेच्च विधानतः। भानोः पंचाग्निना कार्यं द्वादशाग्निक्रमेण वा॥२॥
सर्वकुंडानि वृत्तानि पद्माकारणि सुव्रताः। अंबाया योनिकुंडं स्याद्वर्धन्येका विधीयते॥३॥
शक्तीनां सर्वकार्येषु योनिकुंडं विधीयते।
गायत्रीं कल्पयेच्छंभोः सर्वेषामपि यत्नतः। सर्वे रुद्रांशजा यस्मात्संक्षेपेण वदामि वः॥४॥

गायत्रीभेदाः

तत्पुरुषाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि। तन्नः शिवः प्रचोदयात्॥५॥
गणांबिकायै विद्महे कर्मसिद्ध्यै च धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्॥६॥
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥७॥
तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुंडाय धीमहि। तन्नो दंतिः प्रचोदयात्॥८॥
महासेनाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि। तन्नः स्कंदः प्रचोदयात्॥९॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

गायत्री के विभिन्न प्रकार

सूत बोले

अब मैं सब देवों की प्रतिष्ठा (स्थापना) को विस्तार में वर्णन करूँगा। देवताओं के यज्ञ कुण्डों को उनसे सम्बन्धित मन्त्रों से स्थापित किया जाय और विधान के अनुसार उत्सव के बाद देवताओं की स्थापना और पूजा की जानी चाहिये। सूर्य देव की पूजा पंच अग्नि या द्वादश अग्नि से पूर्ण की जाय।।१-२।। हे सुव्रतो! कुण्ड रूप में गोल होने चाहिये। अम्बा का कुण्ड त्रिकोण होना चाहिये। अम्बा के कुण्ड में केवल एक वर्धनी हो। शक्ति से सम्बन्धित सब कृत्यों में कुण्ड त्रिकोण (योनि कुण्ड) होना चाहिये। शिव की गायत्री यत्नपूर्वक सबकी बनाना चाहिये क्योंकि रुद्र के अंश से वह सब उत्पन्न हुई हैं। इसलिए इन सबको मैं संक्षेप में कहता हूँ।।३-४।।

गायत्री के भेद

हम तत्पुरुष को जानते हैं, हम वाग्शुद्धि का ध्यान करते हैं। शिव हमको मार्ग प्रदर्शित करें।।५।। हम गणाम्बिका को जानते हैं। हम कर्मसिद्धि का ध्यान करते हैं। गौरी हमको मार्ग प्रदर्शित करें।।६।। हम तत्पुरुष को जानते हैं। हम महेश्वर का ध्यान करते हैं। रुद्र हमारा मार्ग प्रदर्शित करें। हम तत्पुरुष को जानते हैं।।७।। हम वक्रतुण्ड का ध्यान करते हैं। दन्ती हमारा मार्ग प्रदर्शित करें।।८।। हम महासेन को जानते हैं। हम वाग्विशुद्धि का ध्यान करते हैं। स्कन्द हमारा मार्ग प्रदर्शित करे।।९।। हम तीक्ष्णशृंग को जानते हैं, हम वेदपाद का ध्यान

तीक्ष्णशृंगाय विद्महे वेदपादाय धीमहि। तन्नो वृषः प्रचोदयात्॥१०॥
हरिवक्त्राय विद्महे रुद्रवक्त्राय धीमहि। तन्नो नंदी प्रचोदयात्॥११॥
नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्॥१२॥
महांबिकायै विद्महे कर्मसिद्ध्यै च धीमहि। तन्नो लक्ष्मी प्रचोदयात्॥१३॥
समुद्धृतायै विद्महे विष्णुनैकेन धीमहि। तन्नो धरा प्रचोदयात्॥१४॥
वैनतेयाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि। तन्नौ गरुडः प्रचोदयात्॥१५॥
पद्मोद्भवाय विद्महे वेदवक्त्राय धीमहि। तन्नः स्त्रष्टा प्रचोदयात्॥१६॥
शिवास्यजायै विद्महे देवरूपायै धीमहि। तन्नो वाचा प्रचोदयात्॥१७॥
देवराजाय विद्महे वज्रहस्ताय धीमहि। तन्नः शक्रः प्रचोदयात्॥१८॥
रुद्रनेत्राय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि। तन्नो वह्निः प्रचोदयात्॥१९॥
वैवस्वताय विद्महे दंडहस्ताय धीमहि। तन्नो यमः प्रचादेयात्॥२०॥
निशाचराय विद्महे खड्गहस्ताय धीमहि। तन्नो निर्ऋतिः प्रचोदयात्॥२१॥
शुद्धहस्ताय विद्महे पाशहस्ताय धीमहि। तन्नो वरुणः प्रचोदयात्॥२२॥
सर्वप्राणाय विद्महे यष्टिहस्ताय धीमहि। तन्नो वायुः प्रचोदयात्॥२३॥
यक्षेश्वराय विद्महे गदाहस्ताय धीमहि। तन्नो यक्षः प्रचोदयात्॥२४॥
सर्वेश्वराय विद्महे शूलहस्ताय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥२५॥

करते हैं। वृष मेरा मार्ग प्रदर्शित करे।।१०।। हम हरिवक्त्र को जानते हैं, हम रुद्रवक्त्र का ध्यान करते हैं। नन्दी हमारा मार्ग प्रदर्शित करे।।११।। हम नारायण को जानते हैं, हम वासुदेव का ध्यान करते हैं। विष्णु हमारा मार्ग प्रदर्शित करे।।१२।। हम महाम्बिका को जानते हैं, हम कर्मसिद्धि का ध्यान करते हैं। लक्ष्मी मेरा मार्ग प्रदर्शित करे।।१३।। हम समुद्धृता को जानते हैं और समुद्धृता को ध्यान करते हैं जो केवल विष्णु से पूजित हैं, अतः धरा हमारा मार्ग प्रदर्शित करे।।१४।। हम वैनतेय को जानते हैं, हम सुवर्णपक्ष का ध्यान करते हैं, गरुण हमारा मार्ग प्रदर्शित करे।।१५।। हम पद्मज को जानते हैं, हम वेद वक्त्र का ध्यान करते हैं, विश्व के स्रष्टा ब्रह्मा हमारा मार्गदर्शन करे।।१६।। हम शिवास्यजा को जानते हैं, हम वेदरूपा का ध्यान करते हैं, वाचा हमारा मार्गदर्शन करे।।१७।। हम देवताओं के राजा इन्द्र को जानते हैं, हम वज्रहस्त का ध्यान करते हैं, अतः शक्र हमारा मार्गदार्शन करे।।१८।। हम रुद्रनेत्र को जानते हैं, हम शक्तिहस्त का ध्यान करते हैं, अग्निदेव हमारा मार्गदर्शन करें।।१९।। हम वैवस्वत को जानते हैं, हम दण्डहस्त यम का ध्यान करते हैं, यम हमारा मार्ग दर्शन करें।।२०।। हम निशाचर को जानते हैं, हम खड्गहस्त का ध्यान करते हैं। निर्ऋति हमारा मार्ग दर्शन करें।।२१।। हम शुद्धहस्त को जानते हैं, हम पाशहस्त का ध्यान करते हैं। वरुण हमारा मार्ग प्रदर्शित करें।।२२।। हम सर्वप्राण को जानते हैं, हम यष्टिहस्त का ध्यान करते हैं। वायु हमारा मार्ग प्रदर्शित करे।।२३।। हम यक्षेश्वर को जानते हैं, हम गदाहस्त का ध्यान करते हैं। यक्ष हमारा मार्गदर्शन करें।।२४।। हम सर्वेश्वर को जानते हैं, हम शूलहस्त

कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमार्यै धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्॥२६॥
एवं प्रभिद्य गायत्रीं तत्तदेवानुरूपतः। पूजयेत् स्थापयेत्तेषामासनं प्रणवं स्मृतम्॥२७॥
अथवा विष्णुमतुलं सूक्तेन पुरुषेण वा। विष्णुं चैव महाविष्णुं सदाविष्णुमनुक्रमात्॥२८॥
स्थापयेद्देवगायत्र्या परिकल्प्य विधानतः। वासुदेवः प्रधानस्तु ततः संकर्षणः स्वयम्॥२९॥
प्रद्युम्नो ह्यनिरुद्धश्च मूर्तिभेदास्तु वै प्रभोः। बहूनि विविधानीह तस्य शापोद्भवानि च॥३०॥
सर्वावर्तेषु रूपाणि जगतां च हिताय वै। मत्स्यः कूर्मोऽथ वाराहो नारसिंहोऽथ वामनः॥३१॥
रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की तथैव च। तथान्यानि न देवस्य हरेः शापोद्भवानि च॥३२॥
तेषामपि च गायत्रीं कृत्वा स्थाप्य च पूजयेत्। गुह्यानि देवदेवस्य हरेर्नारायणस्य च॥३३॥
विज्ञानानि च यंत्राणि मंत्रोपनिषदानि च। पंच ब्रह्मांगजानीह पंचभूतमयानि च॥३४॥
नमो नारायणायेति मंत्रः परमशोभनः। हरेरष्टाक्षराणीह प्रणवेन समासतः॥३५॥
ओंनमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च। प्रद्युम्नाय प्रधानाय अनिरुद्धाय वै नमः॥३६॥
एवमेकेन मंत्रेण स्थापयेत्परमेश्वरम्। बिंबानि यानि देवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः॥३७॥
प्रतिष्ठा चैव पूजा च लिंगवन्मुनिसत्तमाः। रत्नविन्याससहितं कौतुकानि हरेरपि॥३८॥
अचले कारयेत्सर्वं चलेप्येवं विधानतः। तन्नेत्रोन्मीलनं कुर्यान्नेत्रमंत्रेण सुव्रताः॥३९॥
क्षेत्रप्रदक्षिणं चैव आरामस्य पुरस्य च। जलाधिवासनं चैव पूर्ववत्परिकीर्तितम्॥४०॥

का ध्यान करते हैं। रुद्र हमारा मार्गदर्शन करें।।२५।। हम कात्यायनी को जानते हैं, हम कन्याकुमारी का ध्यान करते हैं, दुर्गा हमारा मार्गदर्शन करें।।२६।। इस प्रकार गायत्री देवताओं के अनुसार अलग-अलग हैं। उनकी प्रतिष्ठा की जाय और पूजा की जाय। उनका आसन प्रणव हो।।२७।। अथवा भक्त पुरुष सूक्त द्वारा अतुलनीय विष्णु की स्थापना करे। भक्त विष्णु, महाविष्णु और सदा विष्णु को क्रमशः देव गायत्री मन्त्र के उच्चारण द्वारा उनकी स्थापना करे, वासुदेव प्रधान देवता हैं। संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध प्रभु के पृथक्-पृथक् रूप (मूर्ति) हैं। भृगु के श्राप के कारण उनके रूप विविध हैं।।२८-३०।। लोगों के कल्याण के लिए यह सब रूप हैं। वे युगों के प्रत्येक चक्र में होते हैं। जैसे—मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, राम, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। भृगु के शाप के कारण विष्णु के अन्य रूप भी हैं।।३१-३२।। इनके गायत्री रूपों की स्थापना करके पूजा करनी चाहिये। पूर्णज्ञान, यन्त्र, मन्त्र और उपनिषद् विष्णु के गुह्य हैं। विष्णु, नारायण पंचाग्नि से उत्पन्न उनकी पहचान पंचभूतों से होती है। विष्णु का मन्त्र नमोनारायण प्रणव लगाकर "ॐ नमो नारायणाय" परम पवित्र है। यह अष्टाक्षर मन्त्र है।।३३-३५।। और मन्त्र ये हैं। जैसे ॐ नमो वासुदेवाय, ॐ नमः संकर्षणाय, ॐ प्रद्युम्नाय, ॐ नमः प्रधानाय, ॐ नमः अनुरुद्धाय।।३६।। इसी तरह एक मन्त्र से भक्त परमेश्वर की स्थापना करे। परमेष्ठी शिव देवता की मूर्तियों की प्रतिष्ठा करे और लिंग के समान उनकी पूजा करे। हे श्रेष्ठ मुनियों! पवित्र शुभ रत्न जटित सूत्रों से विष्णु की भी पूजा करे।।३७-३८।। प्रत्येक अचल लिंग में सब पूजा की जाय और चल लिंग में भी विधानपूर्वक पूजा की जाय। हे सुव्रतो! नेत्र मन्त्र द्वारा नेत्रों को खुला रखा जाय।।३९।। पहले की तरह क्षेत्र की प्रदक्षिणा पार्क और नगर प्रदक्षिणा तथा जल में स्थापन कार्य भी पूर्ववत् किया जाय।।४०।।

कुंडमंडपनिर्माणं शयनं च विधीयते। हुत्वा नवाग्निभागेन नवकुंडे यथाविधि॥४१॥
अथवा पंचकुंडेषु प्रधाने केवलेऽथ वा। प्रतिष्ठा कथिता दिव्या पारंपर्यक्रमागता॥४२॥
शिलोद्भवानां बिंबानां चित्राभासस्य वा पुनः।
जलाधिवासनं प्रोक्तं वृषेंद्रस्य प्रकीर्तितम्॥४३॥
प्रासादस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठा परिकीर्तिता। प्रासादांगस्य सर्वस्य यथांगानां तनोरिव॥४४॥
वृषाग्निमातृविघ्नेशकुमारानपि यत्नतः। श्रेष्ठां दुर्गां तथा चंडीं गायत्र्या वै यथाविधि॥४५॥
प्रागाद्यं स्थापयेच्छंभोरष्टावरणमुत्तमम्। लोकपालगणेशाद्यानपि शंभोः प्रविन्यसेत्॥४६॥
उमा चंडी च नंदी च महाकालो महामुनिः। विघ्नेश्वरो महाभृंगी स्कंदः सौम्यादितः क्रमात्॥४७॥
इंद्रादीन्स्वेषु स्थानेषु ब्रह्माणं च जनार्दनम्। स्थापयेच्चैव यत्नेन क्षेत्रेशं वैशगोचरे॥४८॥
सिंहासने ह्यनंतादीन् विद्येशामपि च क्रमात्। स्थापयेत्प्रणवेनैव गुह्यांगादीनि पंकजे॥४९॥
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं चलस्थापनसुत्तमम्। सर्वेषामपि देवानां देवीनां च विशेषतः॥५०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागेऽष्टचत्वारिंशोऽध्याय॥४८॥

कुण्ड और मण्डप का निर्माण और देवता की मूर्ति का शयन भी किया जाय। ये धर्मिक कृत्य निर्धारित हैं। केवल मुख कुण्ड में या पाँच कुण्ड या नौ पवित्र अग्नि के साथ नौ कुण्डों में होम किया जाय। परम्परा के अनुसार यह दिव्य प्रतिष्ठा कही गयी है।।४१-४२।। जलाधिवासन कृत्य पत्थर की चट्टान से काटकर बनायी गयी मूर्तियों और चित्र की तरह तक्षण की गयी सब मूर्तियों का करे। नन्दी बैल के लिए भी जलाधिवासन करने की संस्तुति की गयी है।।४३।।

प्रासाद (शिवालय) की प्रतिष्ठा में और उनके भागों की प्रतिष्ठा में भी उसी तरह प्रतिष्ठा (स्थापन) की जाय जैसे शरीर के अंगों की। गायत्री मन्त्र के जप के द्वारा यथाविधि वृष, अग्नि, मातृगण, विघ्नेश, कुमार, दुर्गा देवी और चण्डी की प्रतिष्ठा की जाय। पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके आठों दिग्पालों, आठों लोकपालों की प्रतिष्ठा (स्थापना) की जाय। आठों दिशाओं, आठों विदिशाओं गणेश आदि की भी स्थापना शिव के सम्मान में मूर्तियाँ रखी जाय।।४४-४६।। उत्तर दिशा में क्रम से उमा, चण्डी, नन्दी, महाकाल, महामुनि, विघ्नेश्वर, महाभृंगी, स्कन्द और सौम्य आदि की पूजा की जाय। भक्त इन्द्र और अन्य की मूर्तियों को भी अपने-अपने उचित स्थान में रखे। ब्रह्मा, विष्णु और अपने वेष से देखने में चमकते हुए क्षेत्रेश को, उत्तर पूर्व में स्थापित करे। अनन्त और अन्य और विघ्नेशों को प्रणव के उच्चारण के साथ सिंहासन पर उचित क्रम से स्थापित करे और गुप्त अंगों को कमल में स्थापित करे। इस प्रकार देवताओं और देवियों की चल स्थापना का उत्तम प्रकार आप लोगों को संक्षेप में मैंने बताया।।४७-५०।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तरभाग में गायत्री के विभिन्न प्रकार नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४८॥

एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः

अघोरेशप्रतिष्ठा

ऋषय ऊचुः

अघोरेशस्य माहात्म्यं भवता कथितं पुरा। पूजां प्रतिष्ठां देवस्य भगवन्वक्तुमर्हसि॥१॥

सूत उवाच

अघोरेणांगयुक्तेन विधिवच्च विशेषतः। प्रतिष्ठालिंगविधिना नान्यथा मुनिपुंगवाः॥२॥
तथाग्निपूजां वै कुर्याद्यथा पूजा तथैव च। सहस्त्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा॥३॥
तिलैर्होमः प्रकर्तव्यो दधिमध्वाज्यसंयुतैः। घृतसक्तुमधूनां च सर्वदुःखप्रमार्जनम्॥४॥
व्याधीनां नाशनं चैव तिलहोमस्तु भूतिदः। सहस्त्रेण महाभूतिः शतेन व्याधिनाशनम्॥५॥
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो जपेन च न संशयः। अष्टोत्तरशतेनैव त्रिकाले च यथाविधि॥६॥
अष्टोत्तरसहस्त्रेण षण्मासाज्जायते ध्रुवम्। सिद्धयो नैव संदेहो राज्यमंडलिनामपि॥७॥
सहस्त्रेण ज्वरो याति क्षीरेण च जुहोति यम्। त्रिकालं मासमेकं तु सहस्त्रं जुहुयात्पयः॥८॥

उन्चासवाँ अध्यायः

अघोरेश की प्रतिष्ठा (स्थापना)

ऋषिगण बोले

अघोरेश का माहात्म्य आपने पहले वर्णन किया था। हे भगवन्! उनकी पूजा और प्रतिष्ठा की विधि अब हम लोगों को बताने की कृपा करें।।१।।

सूत बोले

हे श्रेष्ठ मुनियों! अघोरेश की प्रतिष्ठा लिंग के समान विधिवत् करनी चाहिए। इसके लिए कोई अन्य विधि नहीं है।।२।। भक्त को पवित्र अग्नि की पूजा करनी चाहिए। उनकी पूजा पहले की भाँति की जाय। एक हजार या उसका आधा या एक सौ आठ बार होम किया जाय। होम तिल के बीज, दही, मधु और घी मिलाकर करने से सब दुःखों का मार्जन हो जाता है।।३-४।। यह व्याधियों का नाशक है। तिल के बीजों से हवन समृद्धि देता है। एक हजार बार का हवन बहुत ऐश्वर्य देता है और सौ बार के होम से रोगों का नाश होता है।।५।। विधान के अनुसार एक सौ आठ बार दिन में तीन बार जप करने से व्यक्ति सब दुःखों से छुटकारा पा जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। यदि एक सौ आठ बार जप किया जाय तो छः मास के भीतर व्यक्ति को सिद्धि मिल जाती है। यहाँ तक कि राजाओं, प्रदेशों के शासकों को भी जप करने से सिद्धियाँ मिल जाती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं।।६-७।। एक हजार बार जप करने से ज्वर दूर हो जाता है। अगर भक्त प्रतिदिन तीन काल जप करके हजार बार दूध से लगातार हवन करता है तो एक महीने के भीतर उसको महा सौभाग्य प्राप्त होता है। अगर भक्त एक

मासेन सिद्ध्यते तस्य महासौभाग्यमुत्तमम्। सिद्ध्यते चाब्दहोमेन क्षौद्राज्यदधिसंयुतम्॥९॥
यवक्षीराज्यहोमेन जातितंडुलकेन वा। प्रीयेत भगवानीशो ह्यघोरः परमेश्वरः॥१०॥
दध्ना पुष्टिर्नृपाणां च क्षीरहोमेन शांतिकम्। षण्मासं तु घृतं हुत्वा सर्वव्याधिविनाशनम्॥११॥
राजयक्ष्मा तिलैर्होमान्नश्यते वत्सरेण तु। यवहोमेन चायुष्यं घृतेन च जयस्तदा॥१२॥
सर्वकुष्ठक्षयार्थं च मधुनाक्तैश्च तंडुलैः। जुहुयादयुतं नित्यं षण्मासान्नियतः सदा॥१३॥
आज्यं क्षीरं मधुश्चैव मधुरत्रयमुच्यते। समस्तं तुष्यते तस्य नाशयेद्वै भगंदरम्॥१४॥
केवलं घृतहोमेन सर्वरोगक्षयः स्मृतः। सर्वव्याधिहरं ध्यानं स्थापनं विधिनार्चनम्॥१५॥
एवं संक्षेपतः प्रोक्तमघोरस्य महात्मनः। प्रतिष्ठा यजनं सर्वं नंदिना कथितं पुरा॥१६॥
ब्रह्मपुत्राय शिष्याय तेन व्यासाय सुव्रताः॥१७॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः॥४९॥

साल तक मधु, घी और दही एक मे मिलाकर होम करता है तो वह सिद्धियों को प्राप्त करता है। अगर दूध, घी या उत्तम चावल के द्वारा होम किया जाय तो अघोर देवता बहुत प्रसन्न होते हैं।।८-१०।। दही से होम करने से राजा समृद्धि को प्राप्त करता है। दूध से हवन करने से व्यक्ति को शान्ति मिलती है। छः मास तक घी से होम करने से सब व्यधियाँ दूर हो जाती हैं।।११।। एक साल तिल से होम करने से राजयक्ष्मा (टी.वी.) नष्ट हो जाती है। जौ के होम करने वाला दीर्घ आयु प्राप्त करता है और घी से होम करने से जय प्राप्त होती है।।१२।। सब प्रकार के कोढ़ को दूर करने के लिए मधु से सने हुए चावलों से नित्य छः महीने एक लाख बार होम करने से कोढ़ दूर हो जाता है।।१३।। केवल घी, दूध और मधु को मधुत्रय कहा जाता है। इन तीनों को सेवन करने से भगन्दर नाश हो जाता है।।१४।। केवल घी द्वारा होम करने से सब रोगों का क्षय हो जाता है। ध्यान, स्थापन और विधिपूर्वक पूजन सब व्याधियों को दूर करता है। महान् आत्मा अघोर की प्रतिष्ठा, पूजन ये सब संक्षेप में पहले नन्दी ने कहा था। हे सुव्रत! नन्दी ने सनत्कुमार से कहा था जो कि उनके शिष्य थे। उन्होंने व्यास को यह बताया था।।१५-१७।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तरभाग में अघोरेश की प्रतिष्ठा (स्थापना) नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त॥४९॥

पंचाशत्तमोऽध्यायः

अघोरमंत्रस्य वैशिष्ट्यम्

ऋषय ऊचुः

निग्रहः कथितस्तेन शिववक्त्रेण शूलिना। कृतापराधिनां तं तु वक्तुमर्हसि सुव्रत॥१॥
त्वया न विदितं नास्ति लौकिकं वैदिकं तथा। श्रौतं स्मार्तं महाभाग रोमहर्षण सुव्रत॥२॥

सूत उवाच

पुरा भृगुसुतेनोक्तो हिरण्याक्षाय सुव्रताः। निग्रहोऽघोरशिष्येण शुक्रेणाक्षयतेजसा॥३॥
तस्य प्रसादाद्दैत्येंद्रो हिरण्याक्षः प्रतापवान्। त्रैलोक्यमखिलं जित्वा सदेवासुरमानुषम्॥४॥
उत्पाद्य पुत्रं गणपं चांधकं चारुविक्रमम्। रराज लोके देवेन वराहेण निषूदितः॥५॥
स्त्रीबाधां बालबाधां च गवामपि विशेषतः। कुर्वतो नास्ति विजयो मार्गेणानेन भूतले॥६॥
तेन दैत्येन सा देवी धरा नीता रसातलम्। तेनाघोरेण देवेन निष्फलो निग्रहः कृतः॥७॥
संवत्सरसहस्त्रांते वराहेण च सूदितः। तस्मादघोरसिद्ध्यर्थं ब्राह्मणान्नैव बाधयेत्॥८॥
स्त्रीणामपि विशेषेण गवामपि न कारयेत्। गुह्याद्गुह्यतमं गोप्यमतिगुह्यं वदामि वः॥९॥

पचासवाँ अध्याय

अघोर मन्त्र की विशेषता

ऋषिगण बोले

शुभ मुख वाले भगवान शंकर द्वारा वर्णन किये गये अपराधियों पर नियन्त्रण और रोक कैसे हो। यह आप हम लोगों को बताएँ। हे रोमहर्षण! हे सुव्रत! लौकिक और वैदिक ऐसा कुछ नहीं है जो आप को ज्ञात न हो। आप पूर्ण रूप से श्रुति और स्मृति में कथित धार्मिक कृत्यों को जानते हैं।।१-२।।

सूत बोले

हे सुव्रत! अघोर के शिष्य और भृगु के पुत्र तेजस्वी शुक्र के द्वारा हिरण्याक्ष को निग्रह और रोक की विधि पहले बतायी गयी थी। उनकी कृपा से हिरण्याक्ष दैत्यों का प्रतापी नेता हो गया। उसने देवता असुर और मनुष्यों सहित तीनों लोकों को जीत लिया। उसके एक सुन्दर और पराक्रमी गणों का स्वामी अन्धक नामक पुत्र उत्पन्न हूआ। उसने जगत पर शासन किया। अन्त में वह वराह के द्वारा मारा गया।।३-५।। जो स्त्रियों की, बालकों की विशेष रूप से गायों की हत्या करता है या बाधा पहुँचाता है, ऐसा करने वाले को पृथ्वी पर इस मार्ग से इस संसार में विजय नहीं मिलती है।।६।। उस दैत्य ने इस देवी पृथ्वी को रसातल पहुँचा दिया किन्तु अघोर देवता ने उसके इस निग्रह (नियन्त्रण) को निष्फल कर दिया। एक हजार वर्ष बाद वराह द्वारा उसका वध कर दिया गया। अतः अघोर मन्त्र की सिद्धि के लिए किसी व्यक्ति को ब्राह्मणों, स्त्रियों या गायों को बाधा नहीं पहुँचानी चाहिए। यह महान रहस्य की बात नहीं बल्कि रहस्यों की बात मैं तुमसे कह रहा हूँ।।७-९।। यह अघोर मन्त्र

आततायिनमुद्दिश्य कर्तव्यं नृपसत्तमैः। ब्राह्मणेभ्यो न कर्तव्यं स्वराष्ट्रेशस्य वा पुनः॥१०॥
अतीव दुर्जये प्राप्ते बले सर्वे निषूदिते। अधर्मयुद्धे संप्राप्ते कुर्याद्विधिमनुत्तमम्॥११॥
अघृणेनैव कर्तव्यो ह्यघृणेनैव कारयेत्। कृतमात्रे न संदेहो निग्रहः संप्रजायते॥१२॥
लक्षमात्रं पुमाञ्जप्त्वा अघोरं घोररूपिणम्। दशांशं विधिना हुत्वा तिलेन द्विजसत्तमाः॥१३॥
संपूज्य लक्षपुष्पेण सितेन विधिपूर्वकम्। बाणलिंगेऽथवा वह्नौ दक्षिणामूर्तिमाश्रितः॥१४॥
सिद्धमंत्रोऽन्यथा नास्ति द्रष्टा सिद्ध्यादयः पुनः। सिद्धमंत्रः स्वयं कुर्यात्प्रेतस्थाने विशेषतः॥१५॥
मातृस्थानेऽपि वा विद्वान्वेदवेदांगपारगः। केवलं मंत्रसिद्धो वा ब्राह्मणः शिवभावितः॥१६॥
कुर्याद्विधिमिमं धीमानात्मनोऽर्थं नृपस्य वा। शूलाष्टकं न्यसेद्विद्वान् पूर्वादीशानकांतकम्॥१७॥
त्रिशिखं च त्रिशिखं च त्रिशूलं च चतुर्विंशच्छिखाग्रतः।
अघोरविग्रहं कृत्वा संकलीकृतविग्रहः॥१८॥
सर्वनाशकरं ध्यात्वा सर्वकर्माणि कारयेत्। कालग्निकोटिसंकाशं स्वदेहमपि भावयेत्॥१९॥
शूलं कपालं पाशं च दंडं चैव शरासनम्। बाणं डमरुकं खड्गमष्टायुधमनुक्रमात्॥२०॥
अष्टहस्तश्च वरदो नीलकंठो दिगंबरः। पंचतत्त्वसमारूढो ह्यर्धचंद्रधरः प्रभुः॥२१॥

की सिद्धि का धार्मिक कृत्य शक्तिशाली राजाओं द्वारा दुर्जय की स्थिति आने और भारी सामूहिक हत्याओं (कत्लेआम) के विरुद्ध की जानी चाहिये। इस मन्त्र का अभ्यास ब्राह्मणों के या अपने राष्ट्र के स्वामी के विरुद्ध न करना चाहिये। यह सर्वोत्तम अनुष्ठान तब करना चाहिये जब अधर्म युद्ध की स्थिति आ जाय। यह धार्मिक कृत्य तब पूरा किया जबकि निर्दयी व्यक्ति द्वारा दया के पात्र पर अत्याचार किया जाय। न दयालु भक्त यह करे न दयालु व्यक्ति से कराए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस क्षण यह अनुष्ठान किया जाता है, निग्रह की शक्ति उसी समय प्राप्त हो जाती है।।१०-१२।। हे उच्च ब्राह्मणों! इस मन्त्र के साधक को घोर रूप वाले अघोर मन्त्र का सौ हजार बार जप करना चाहिये। इसके दसवें भाग अर्थात् दस हजार बार तिल का होम करना चाहिए। साधक को सौ हजार सफेद फूलों द्वारा बाणलिंग पर या पवित्र अग्नि पर पूजा करनी चाहिये। इससे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। नहीं तो वह न द्रष्टा होता है और न उसको सिद्धियाँ ही प्राप्त होती हैं। स्वयं विशेष रूप से प्रेत स्थान में मन्त्र को सिद्ध करना चाहिये। केवल विद्वान और बुद्धिमान ब्राह्मण को यह अनुष्ठान कृत्य करना चाहिये जिसको कि मन्त्र सिद्ध हो या जो शिव का भक्त हो। बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिये कि यह अपने लिए करे या राजा के लिए करे। बुद्धिमान व्यक्ति पूर्व से आरम्भ करके उत्तर-पूर्व कोण पर समाप्त होने वाले आठों दिशाओं में आठ शूल स्थापित करे।।१३-१७।। त्रिशूलों के चौबीस किनारों के सिरों पर तीन शिखा वाले त्रिशूल बनावे। ये अघोर के त्रिशूलधारी रूप हैं। उन सब रूपों को (विग्रहों को) संकलित कर दे या एक स्थान पर इकट्ठा करे। सब नाश करने वाले देवता अघोर का ध्यान करने के बाद इस अनुष्ठान को करे। अपने शरीर को भी करोड़ कालाग्नि के समान अनुभव करना चाहिये।।१८-१९।। आठ आयुध शूल, कपाल, पाश, दण्ड, धनुष, बाण, डमरू, खड्ग (तलवार) क्रम से रखे।।२०।। नीलकंठ के आठ भुजाएँ होती हैं, वह वरदाता है, वह दिगम्बर

दंष्ट्राकरालवदनो रौद्रदृष्टिर्भयंकरः। हुंफट्कारमहाशब्दशब्दिताखिलदिङ्मुखः॥२२॥
त्रिनेत्रं नागपाशेन सुबद्धमुकुटं स्वयम्। सर्वाभरणसंपन्नं प्रेतभस्मावगुंठितम्॥२३॥
भूतैः प्रेतैः पिशाचैश्च डाकिनीभिश्च राक्षसैः। संवृतं गजकृत्त्या च सर्पभूषणभूषितम्॥२४॥
वृश्चिकाभरणं देवं नीलनीरदनिस्वनम्। नीलांजनाद्रिसंकाशं सिंहचर्मोत्तरीयकम्॥२५॥
ध्यायेदेवमघोरेशं घोरघोरतरं शिवम्। षट्‌विंशदुक्तमात्राभिः प्राणायामेन सुव्रताः॥२६॥
महामुद्रासमायुक्तः सर्वकर्माणि कारयेत्। सिद्धमंत्रश्चिताग्नौ वा प्रेतस्थाने यथाविधि॥२७॥
स्थापयेन्मध्यदेशे तु ऐंद्रे याम्ये च वारुणे। कौबेर्यां विधिवत्कृत्वा होमकुंडानि शास्त्रतः॥२८॥
आचार्यो मध्यकुंडे तु साधकाश्च दिशासु वै। परिस्तीर्य विलोमेन पूर्ववच्छूलसंभृतः॥२९॥
कालाग्निपीठमध्यस्थः स्वयं शिष्यैश्च तादृशैः। ध्यात्वा घोरमघोरेशं द्वात्रिंशाक्षरसंयुतम्॥३०॥
विभीतकेन वै कृत्वा द्वादशांगुलमानतः। पीठे न्यस्य नृपेंद्रस्य शत्रुमंगारकेण तु॥३१॥
कुंडस्याधः खनेच्छत्रुं ब्राह्मणः क्रोधमूर्च्छितः। अधोमुखोर्ध्वपादं तु सर्वकुंडेषु यत्नतः॥३२॥
श्मशानांगारमानीय तुषेण सह दाहयेत्। तत्राग्निं स्थापयेत्तूष्णीं ब्रह्मचर्यपरायणः॥३३॥
मायूरास्त्रेण नाभ्यां तु ज्वलनं दीपयेत्ततः। कंचुकं तुषसंयुक्तैः कार्पासास्थिसमन्वितैः॥३४॥

(नग्न) है, वह पाँच तत्त्वों पर सवार है और स्वयं अर्धचन्द्रधारी है।।२१।। उनका मुख कुछ टेढे दाँतों के कारण कराल है, वह भयंकर है, उनकी दृष्टि रौद्र है। वह सम्पूर्ण दिशाओं को हुं फट् की ध्वनि से गुंजित करने वाले हैं।।२२।। भक्त अघोरेश शिव पर इस विधि से ध्यान करे। उनके तीन नेत्र हैं, वह नाग पाश से अपने मुकुट को बाँधे हैं, सब आभूषणों से भूषित हैं, वह चिता की भस्म को सारे शरीर में चुपड़े हैं। वह भूतों, प्रेतों, पिशाचों, डाकिनियों और राक्षसों द्वारा घिरे हुए हैं। वह गज चर्म को लपेटे हुए हैं। वह सर्प के भूषण से भूषित हैं। वह बीछियों को आभूषण की तरह धारण किये हैं। नीले बादल की तरह उनकी आवाज है। वह नीले आँजन की पहाड़ की तरह लग रहे हैं। वह सिंह के चमड़े को चादर की तरह लपेटे हुये हैं। वह बहुत भयानक हैं। हे सुव्रत! भक्त अघोर के इस रूप का ध्यान करके पूर्व वर्णित छत्तीस मन्त्रों से प्राणायाम करे। वह महामुद्रा को दिखावे और तब सब पवित्र अनुष्ठान करे।।२३-२६।।

सिद्ध मंत्र साधक मूर्ति को चिता की अग्नि या प्रेत स्थान में स्थापित करे। वह पांच होमकुंड बनावे। एक मध्य में और एक प्रत्येक पूर्व, दक्षिण, पश्चिम में और उत्तर में शास्त्र की विधि से बनावे। आचार्य मध्य कुंड के सामने बैठे। साधक लोग दिशाओं के कुंडों के सामने बैठें। वह कुशों को विलोम क्रम में फैलाकर शूल को पकड़ लें। वह स्वयं कालक्रम के बीच के आसन पर बैठे। उनके शिष्य साधक अपने आसन पर बैठें। बत्तीस अक्षरों वाले अधीर मंत्र से घोर रूप अघोर का ध्यान करे। विभीतक (बहेरा) की शाखा की बारह अंगुल नाप के टुकड़े कर लें। अपने राजा के शत्रु का पुतला तैयार करे। कुंड में कोयले के साथ पीठ पर रख दे। उसका चेहरा (मुख) नीचे की ओर और पैर ऊपर की ओर हो। तब वह क्रोध से भरी मुद्रा में कुंड को खोदे और राजा के शत्रु के पुतले को रखे। श्मशान से अग्नि ले आकर धान की भूसी से जला दे। साधक ब्रह्मचर्य से युक्त होकर मौन होकर वहाँ अग्नि को स्थापित करे।।२७-३३।। तब वह कुंड

रक्तवस्त्रसमं मिश्रैर्होमद्रव्यैर्विशेषतः। हस्तयंत्रोद्भवैस्तैलैः सह होमं तु कारयेत्॥३५॥
अष्टोत्तरसहस्त्रं तु होमयेदनुपूर्वशः। कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां समारभ्य यथाक्रमम्॥३६॥
अष्टम्यंतं तथांगारमंडलस्थानवर्जितः। एवं कृते नृपेंद्रस्य शत्रवः कुलजैः सह॥३७॥
सर्वदुःखसमोपेताः प्रयांति यमसादनम्। मंत्रेणानेन चादाय नृकपाले नखं तथा॥३८॥
केशं नृणां तथांगारं तुषं कंचुकमेव च। चीरच्छटां राजधूलीं गृहसंमार्जनस्य वा॥३९॥
विषसर्पस्य दंतानि वृषदंतानि यानि तु। गवां चैव क्रमेणैव व्याघ्रदंतनखानि च॥४०॥
तथा कृष्णमृगाणां च बिडालस्य च पूर्ववत्। नकुलस्य च दंतानि वराहस्य विशेषतः॥४१॥
दंष्ट्राणि साधयित्वा तु मंत्रेणानेन सुव्रताः। जपेदष्टोत्तरशतं मंत्रं चाघोरमुत्तमम्॥४२॥
तत्कपालं नखं क्षेत्रे गृहे वा नगरेऽपि वा। प्रेतस्थानेऽपि वा राष्ट्रे मृतवस्त्रेण वेष्टयेत्॥४३॥
शत्रोरष्टमराशौ वा परिविष्टे दिवाकरे। सोमे वा परिविष्टे तु मंत्रेणानेन सुव्रताः॥४४॥
स्थाननाशो भवेत्तस्य शत्रोर्नाशश्च जायते। शत्रुं राज्ञः समालिख्य गमने समवस्थिते॥४५॥
भूतले दर्पणप्रख्ये वितानोपरि शोभिते। चतुस्तोरणसंयुक्ते दर्भमालासमावृते॥४६॥
वेदाध्ययनसंपन्ने राष्ट्रे वृद्धिप्रकाशके। दक्षिणेन तु पादेन मूर्ध्नि संताडयेत्स्वयम्॥४७॥

की नाभि में मयूरास्त्र से लाल वस्त्र के कंचुक को बिनौले आदि भूसी से अग्नि को जला दे (प्रज्वलित कर दे)। तब वह हाथ के यन्त्र से निकाले गये तेल को अन्य होम सामग्री मिलाकर होम करे।।३४-३५।। वह कृष्णपक्ष में चतुर्दशी से आरम्भ करके अष्टमी तक क्रमशः एक हजार आठ बार होम करे। वह जलते कोयले की जगह और उसके मंडप (घेरे) की जगह को न छुए। यदि यह अनुष्ठान पूरा किया तो राजा के शत्रु अपने परिवार सहित सब दुःखों से दुःख़ित हो मर जायेंगे।।३६-३७।। अघोर के मंत्र को जपते हुए भक्त ये सामग्री मरे मनुष्य की खोपड़ी में इकट्ठा करे। नाखून, मनुष्य का बाल, कोयला, भूसी, कंचुक, झाड़ू से उड़ी हुई सड़क की धूलि, जहरीले साँप की केंचुल, बैल का दाँत और गाय के दाँत, बाघ के दाँत और नाखून, काले हिरन और बिल्ली, न्योले और सुअर के दाँत। हे सुव्रत! इन सब चीजों को एकत्र करके उत्तम अघोर मंत्र को एक सौ आठ बार जपे।।३८-४२।। सब चीजों से भरी खोपड़ी को कफन के कपड़े के टुकड़े से लपेट ले। उन सब चीजों को खेत, घर, श्मशान घाट, नगर या शत्रु के देश में गाड़ दे।।४३।। जब सूर्य ग्रहण लगा हो या चन्द्र आठवीं राशि में हो, यह मंत्र को जपना चाहिए। ऐसा करने पर शत्रु अपने स्थान (पद) से भ्रष्ट होगा और उसका नाश होगा। जब गमन समय हो, राजा के शत्रु के चित्र को भूमि पर खींच ले। उसके दर्पण के तल पर उसका चित्र दिखाई पड़े। उस स्थान पर चाँदनी (वितान) तान दिया जाय। चार तोरण कर कुश की माला लटका दे। राजधानी की समृद्धि का सूचक वेद-मंत्रोच्चारण होना चाहिए। भक्त तब अपने दाहिने पैर से शत्रु के सिर पर ठोकर मार दे। जब ऐसा किया जाय तो राजा के शत्रु का नाश हो जाता है। यदि कोई दुष्ट व्यक्ति अपने ही राजा के विरुद्ध यह अभिचार करेगा तो वह स्वयं अपने परिवार सहित मर जायेगा। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने राजा की रक्षा करनी चाहिए जो कि

एवं कृते नृपेंद्रस्य शत्रुनाशो भविष्यति। स्वराष्ट्रपतिमुद्दिश्य यः कुर्यादाभिचारिकम्॥४८॥
स आत्मानं निहत्यैव स्वकुलं नाशयेत्कुधीः। तस्मात्स्वराष्ट्रगोप्तारं नृपतिं पालयेत्सदा॥४९॥
मंत्रौषधिक्रियाद्यैश्च सर्वयत्नेन सर्वदा। एतद्रहस्यं कथितं न देयं यस्य कस्यचित्॥५०॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे पंचाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥

अपने प्रजा की मंत्रों, औषधियों और धार्मिक अनुष्ठानों से रक्षा करता है। यह रहस्य जो मैंने आप लोगों को बताया, इस रहस्य को किसी को नहीं देना (बताना) चाहिए।।४४-५०।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में अघोर मंत्र की विशेषता नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त॥५०॥

एकपंचाशत्तमोऽध्यायः

वज्रवाहनिका विद्या

निग्रहोऽघोररूपोऽयं कथितोऽस्माकमुत्तमम्। वज्रवाहनिकां विद्यां वक्तुमर्हसि सत्तम॥१॥
वज्रवाहनिका नाम सर्वशत्रुभयंकरी। अनया सेचयेद्वज्रं नृपाणां साधयेत्तथा॥२॥
वज्रं कृत्वा विधानेन तद्वज्रमभिषिच्य च। अनया विद्यया तस्मिन्विन्यसेत्कांचनेन च॥३॥
ततश्चाक्षरलक्षं च जपेद्विद्वान्समाहितः। वज्री दशांशं जुहुयाद्वज्रकुंडे घृतादिभिः॥४॥
तद्वज्रं गोपयेन्नित्यं दापयेन्नृपतेस्ततः। तेन वज्रेण वै गच्छञ्छत्रूञ्जीयाद्रणाजिरे॥५॥
पुरा पितामहेनैव लब्धा विद्या प्रयत्नतः। देवी शक्रोपकारार्थं साक्षाद्वज्रेश्वरी तथा॥६॥
पुरा त्वष्टा प्रजानाथो हतपुत्रः सुरेश्वरात्। विद्यया हरतः सोममिंद्रवैरेण सुव्रताः॥७॥
तस्मिन्यज्ञे यथाप्राप्तं विधिनोपकृतं हविः। तदैच्छत महाबाहुर्विश्वरूपविमर्दनः॥८॥
मत्पुत्रमवधीः शक्र न दास्ये तव शोभनम्। भागं भागार्हता नैव विश्वरूपो हतस्त्वया॥९॥

इक्यावनवाँ अध्याय

वज्रवाहनिका विद्या

ऋषिगण बोले

हे सूत! आप ने हम लोगों को अघोर से सम्बन्धित निग्रह का उत्तम और भयानक रूप बताया। हे महामुनि! हमको अब वज्रवाहनिका विद्या के विषय में बतायें।।१।।

सूत बोले

वज्रवाहनिका विद्या सब शत्रुओं के लिए भयंकर है। राजा के उद्देश्य की पूर्ति के लिए वज्र को मन्त्र से इस मन्त्र से सींचना (सेचन करना) चाहिये। तब राजा को उस वज्र को समर्पित करना चाहिये।।२।। वज्र को तांत्रिक विधानपर्वक बनावे। तब उसको जल से सिंचित करे। इस विद्या से गदा के उस टुकड़े पर मढ़े सोने पर मन्त्र को खोदा जाय।। तब विद्वान भक्त प्रत्येक अक्षर को शुद्ध होकर एक लाख बार जप करे। जिसके पास यह वज्र हो दस हजार बार वज्रेन्द्र कुण्ड में घी आदि से हवन करे। उस वज्र की नित्य रक्षा करनी चाहिये और तब राजा को देना चाहिये। अगर राजा शत्रु के विरुद्ध इस वज्र के साथ जाय तो युद्ध क्षेत्र में उसकी विजय होती है।।३-५।। पहले यह वज्रेश्वरी विद्या को इन्द्र की सहायता के लिए प्रयत्नपूर्वक ब्रह्मा ने प्राप्त किया था।।६।। हे सुव्रत! पहले त्वष्ट्रा प्रजापति के पुत्र का इन्द्र ने वध किया था। वह इन्द्र का विरोधी हो गया और उसने एक यज्ञ किया जिससे सोम रस निचोड़ा गया था। इसमें महाबाहु इन्द्र, जिसने विश्वरूप को मारा था, उसने उस यज्ञ में अपना भाग देने की इच्छा की।।७-८।। "हे इन्द्र तुमने मेरे पुत्र की हत्या की है। मैं तुमको यज्ञ में भाग नहीं दूँगा। तुमने मेरे पुत्र विश्वरूप की हत्या की। इसलिए तुम भविष्य में भाग पाने के योग्य नहीं हो"।।९।। यह कहकर उन्होंने अपनी माया से पूरे आसन को मोहग्रस्त कर दिया। लेकिन विश्वरूप के विमर्दन इन्द्र ने माया

इत्युक्त्वा चाश्रमं सर्वं मोहयामास मायया। ततो मायां विनिर्भिद्य विश्वरूपविमर्दनः॥१०॥
प्रसह्य सोममपिबत्सगणैश्च शचीपतिः। ततस्तच्छेषमादाय क्रोधाविष्टः प्रजापतिः॥११॥
इंद्रस्य शत्रो वर्धस्व स्वाहेत्यग्नौ जुहाव ह। ततःकालग्निसंकाशो वर्तनाद्वृत्रसंज्ञितः॥१२॥
प्रादुरासीत्सुरेशारिर्दुद्राव च वृषांतकः। ततः किरीटी भगवान्परित्यज्य दिवं क्षणात्॥१३॥
सहस्रनेत्रः सगणो दुद्राव भयविह्वलः। तदा तमाह स विभुर्हृष्टो ब्रह्मा च विश्वसृट्॥१४॥
त्यक्त्वा वज्रं तमेतेन जहीत्यरिमरिंदमः। सोऽपि सन्नह्य देवेंद्रो देवैः सार्धं महाभुजः॥१५॥
निहत्य चाप्रयत्नेन गतवान्विगतज्वरः। तस्माद्वज्रेश्वरीविद्या सर्वशत्रुभयंकरी॥१६॥
मंदेहा राक्षसा नित्यं विजिता विद्ययैव तु। तां विद्यां संप्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रमोचनीम्॥१७॥

ॐ भूर्भुवस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि॥
धियो यो नः प्रचोदयात्॥
ॐ फट् जहि हुं फट् छिंधि भिंधि जहि हनहन स्वाहा॥

विद्या वज्रेश्वरीत्येषा सर्वशत्रुभयंकरी। अनया संहृतिः शंभोर्विद्याया मुनिपुंगवाः॥१८॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे एकपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥

को भेद कर अपने गणों के सहित जबरदस्ती सोम रस को अपने कब्जे में कर लिया और उसको पी लिया। तब क्रोधित ब्रह्मा ने बचे खुचे सोमरस को लेकर अग्नि में यह कहते हुये होम कर दिया। "हे इन्द्र के शत्रुओं बढ़ो स्वाहा" तब वहाँ वृत्र नाम का एक राक्षस दिखायी दिया। वह कालाग्नि के समान था। उसको वृत्र कहा गया क्योंकि वह अपने धनुषों से घिरा हुआ था। इन्द्र वहाँ से भाग गये। उन्होंने स्वर्ग में तुरन्त शरण ली। भयभीत होकर वह अपने गणों के साथ भाग गये। तब विश्व के स्रष्टा भगवान ब्रह्मा प्रसन्न हो गये और उससे कहा।।१०-१४।। "हे शत्रु नाशक! यह वज्र ले लो और इसको मारो" तब देवताओं के स्वामी शक्तिशाली भुजाओं वाले इन्द्र देवताओं सहित तैयार हो गये और उन्होंने बिना किसी विशेष प्रयत्न के उसको मार डाला। वह सब विपत्तियों से मुक्त हो गये। अतः वज्रेश्वरी विद्या सब प्रकार के शत्रुओं के लिए भयंकर है। इस विद्या के द्वारा मन्देह कहलाने वाले दैत्य प्रतिदिन जीते जाते रहे। मैं उस विद्या का वर्णन करूँगा जो कि सब पापों से छुटकारा देती है। "ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ फट् जहि हुं फट् छिंधि भिंधि जहि हन हन स्वाहा" ॐ भूर्भुवः स्वः हम लोग भगवान सूर्य के तेज को ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे ॐ फट्, जहि (मारो) हुँ फट् छिंधि (फाडो) भिंधि (छेदो) जहि, हन हन (मारो) स्वाहा।" यह वज्रेश्वरी विद्या है। यह सब शत्रओं के लिए भयंकर है। हे श्रेष्ठ मुनियों! इस विद्या के द्वारा शिव संसार का संहार करते हैं।।१५-१८।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में वज्रवाहनिका विद्या नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त॥५१॥

द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः

वज्रवाहनिकाविद्याविनियोगः

ऋषय ऊचुः

श्रुता वज्रेश्वरी विद्या ब्राह्मी शक्रोपकारिणी। अनया सर्वकार्याणि नृपाणामिति नः श्रुतम्॥१॥
विनियोगं वदस्वास्या विद्याया रोमहर्षण।

सूत उवाच

वश्माकर्षणं चैव विद्वेषणमतः परम्॥२॥
उच्चाटनं स्तंभनं च मोहनं ताडनं तथा। उत्सादनं तथा छेदं मारणं प्रतिबंधनम्॥३॥
सेनास्तंभनकादीनि सावित्र्या सर्वमाचरेत्। आगच्छ वरदे देवि भूम्यां पर्वतमूर्धनि॥४॥
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्। उद्वास्यानेन मंत्रेण गंतव्यं नान्यथा द्विजाः॥५॥
प्रतिकार्यं तथा ब्राह्मं कृत्वा वश्यादिकां क्रियाम्।
उद्वास्य वह्निमाधाय पुनरन्यं यथाविधि॥६॥
देवीमावाह्य च पुनर्जपेत्संपूजयेत्पुनः। होमं च विधिना वह्नौ पुनरेव समाचरेत्॥७॥
सर्वकार्याणि विधिना साधयेद्विद्यया पुनः। जातीपुष्पैश्च वश्यार्थी जुहुयादयुतत्रयम्॥८॥

बावनवाँ अध्याय

वज्रवाहनिका विद्या का विनियोग

ऋषिगण बोले

हम लोगों ने इन्द्र की सहायता देने वाली ब्रह्मा की बज्रेश्वरी विद्या को सुना। इससे राजाओं के सब कार्य सिद्ध होते हैं। हे लोमहर्षण! अब इस विद्या का विभिन्न उद्देश्यों का विनियोग (उपयोग विधि) बतायें।

सूत बोले

सावित्री मंत्र के विभिन्न उपयोग वश्य, आकर्षण, विद्वेषण, उच्चाटन, स्तंभन, मोहन, ताडन, उत्सादन, छेद, मारण, प्रतिबंधन, सेनास्तंभन आदि तथा अन्य क्रियाकलाप होते हैं।

मन्त्र

'हे वर देने वाली देवि! पृथ्वी पर पर्वत के शिखर पर आओ। हे देवी! ब्राह्मणों द्वारा आज्ञा पाकर सुखपूर्वक जाओ।' हे ब्राह्मणों! केवल यही मंत्र है जिससे छुट्टी लेकर पृथ्वी से बाहर जाओ अन्यथा नहीं।।१-५।। सब बाहरी प्रारंभिक कृत्यों को पूरा करने के बाद वश्य आदि कृत्यों को करने के बाद साधक देवी को विसर्जित करे। फिर विधिपूर्वक दूसरी अग्नि की स्थापना करके देवी का आवाहन करके फिर जप और पूजा करना चाहिए। फिर अग्नि में विधि से होम करना चाहिए।।६-७।। तब उसी मंत्र से साधक पवित्र कृत्य को पूरा करे जो दूसरों को

घृतेन करवीरेण कुर्यादाकर्षणं द्विजाः। विद्वेषणं विशेषेण कुर्याल्लांगलकस्य च॥९॥
तैलेनोच्चाटनं प्रोक्तं स्तंभनं मधुना स्मृतम्। तिलेन मोहनं प्रोक्तं ताडनं रुधिरेण च॥१०॥
खरस्य च गजस्याथ उष्ट्रस्य च यथाक्रमम्। स्तंभनं सर्षपेणापि पाटनं च कुशेन च॥११॥
मारणोच्चाटने चैव रोहीबीजेन सुव्रताः। बंधनं त्वहिपत्रेण सेनास्तंभमतः परम्॥१२॥
कुनट्या नियतं विद्यात्पूजयेत्परमेश्वरीम्। घृतेन सर्वसिद्धिः स्यात्पयसा वा विशुद्ध्यते॥१३॥
तिलेन रोगनाशश्च कमलेन धनं भवेत्। कांतिर्मधूकपुष्पेण सावित्र्या ह्ययुतत्रयम्॥१४॥
जयादिप्रभृतीन्सर्वान् स्विष्टांतं पूर्ववत्स्मृतम्। एवं संक्षेपतः प्रोक्तो विनियोगोतिविस्तृतः॥१५॥
जपेद्वा केवलां विद्यां संपूज्य च विधानतः। सर्वसिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥१६॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

वश में करना चाहे वह जाती फूलों से तीस हजार होम करे।।८।। हे ब्राह्मण! आकर्षण कृत्य के लिए घी और करवीर (कनइल) के फूलों से होम करे। विद्वेषण (घृणा) के कृत्य में लांगलक फूल से होम करे। उच्चाटन कृत्य के लिए तेल से होम करे। स्तम्भन कृत्य में मधु से होम करे। मोहन कृत्य में तिल से और ताडन कृत्य में गधा, हाथी या ऊँट के खून (रुधिर) से होम करे।।९-१३।। स्तम्भन कृत्य में सरसों से तथा पाटन कृत्य में कुश से होम करना चाहिए। हे सुव्रतो! मारण और उच्चाटन कृत्य रोही (अहिपत्र और कुन्नी) के बीजों से होम करे। बंधन कृत्य में अहिपत्र से, सेनास्तम्भन कृत्य में कुनटी के पत्र से होम करे। तब साधक घी से परमेश्वरी की सब प्रकार की सिद्धि के लिए पूजा करे। दूध की खीर से होम करने से शुद्धि प्राप्त होती है। तिल के होम से रोगनाश होता है और कमल के होम से धन प्राप्त होता है। महुआ के फूल के होम से कीर्ति प्राप्त होती है। प्रत्येक होम में तीस हजार गिनती में सावित्री मंत्र उच्चारण करते हुए करना चाहिए। पूर्ववत् सब कृत्यों का प्रारम्भ 'जय' से और अंत 'स्विष्ट' से होना चाहिए। यह विनियोग संक्षेप में कहा गया जो कि अति विस्तृत है। विधानपूर्वक पूजा करके केवल सावित्री मंत्र का जाप करे। तभी वह सिद्धियां प्राप्त कर सकता है। इसमें संदेह करने की कोई बात नहीं है।।१४-१६।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में वज्रवाहनिका विद्या का विनियोग नामक बावनवां अध्याय समाप्त॥५२॥

त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः

मृत्युञ्जयस्यानुष्ठानविधिः

ऋषय ऊचुः

मृत्युंजयविधिं सूत ब्रह्मक्षत्रविशामपि। वक्तुमर्हसि चास्माकं सर्वज्ञोऽसि महामते॥१॥

सूत उवाच

मृत्युंजयविधिं वक्ष्ये बहुना किं द्विजोत्तमाः। रुद्राध्यायेन विधिना घृतेन नियुतं क्रमात्॥२॥

सघृतेन तिलेनैव कमलेन प्रयत्नतः। दूर्वया घृतगोक्षीरमिश्रया मधुना तथा।३॥

चरुणा सघृतेनैव केवलं पयसापि वा। जुहुयात्कालमृत्योर्वा प्रतीकारः प्रकीर्तितः॥४॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥

तिरपनवाँ अध्याय

मृत्युंजय अनुष्ठान विधि

ऋषिगण बोले

हे सूत! ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों से सम्बन्धित मृत्युंजय कृत्य विधि को अब बताइये। हे महाज्ञानी मुनि! आप सर्वज्ञ हैं।

सूत बोले

हे उत्तम ब्राह्मणों! मै मृत्युंजय अनुष्ठान की विधि बताऊँगा। बहुत कहने से क्या लाभ? रुद्राध्याय के सभी मन्त्रों द्वारा घी से एक लाख बार क्रमशः होम करे। हवन के लिए घी मिला तिल, कमल, घी से मिली दूब, गाय का दूध, मधु, घी सहित चरु या केवल दूध ये सामग्री होम के लिए चाहिये। इससे होम करे। यह मृत्यु या मृत्यु के देवता यम का प्रतीकार कहा गया है।।१-५।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में मृत्युजंय अनुष्ठान विधि
नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त॥५३॥

चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः

त्रियंबकमंत्रेण पूजा

सूत उवाच।

त्रियंबकेण मंत्रेण देवदेवं त्रियंबकम्। पूजयेद्बाणलिंगे वा स्वयंभूतेऽपि वा पुनः॥१॥
आयुर्वेदविदैर्वापि यथावदनुपूर्वशः। अष्टोत्तरसहस्त्रेण पुंडरीकेण शंकरम्॥२॥
कमलेन सहस्त्रेण तथा नीलोत्पलेन वा। संपूज्य पायसं दत्त्वा सघृतं चौदनं पुनः॥३॥
मुद्गान्नं मधुना युक्तं भक्ष्याणि सुरभीणि च। अग्नौ होमश्च विपुलो यथावदनुपूर्वशः॥४॥
पूर्वोक्तैरपि पुष्पैश्च चरुणा च विशेषतः। जपेद्वै नियुतं सम्यक् समाप्य च यथाक्रमम्॥५॥
ब्राह्मणानां सहस्त्रं च भोजयेद्वै सदक्षिणम्। गवां सहस्त्रं दत्त्वा तु हिरण्यमपि दापयेत्॥६॥
एतद्वः कथितं सर्वं सरहस्यं समासतः। शिवेन देवदेवेन शर्वेणात्युग्रशूलिना॥७॥
कथितं मेरुशिखरे स्कंदायामिततेजसे। स्कंदेन देवदेवेन ब्रह्मपुत्राय धीमते॥८॥
साक्षात्सनत्कुमारेण सर्वलोकहितैषिणा। पाराशर्याय कथितं पारंपर्यक्रमागतम्॥९॥
शुके गते परं धाम दृष्ट्वा रुद्रं त्रियंबकम्। गतशोको महाभागो व्यासः पर ऋषिः प्रभुः॥१०॥
स्कंदस्य संभवं श्रुत्वा स्थिताय च महात्मने। त्रियंबकस्य माहात्म्यं मंत्रस्य च विशेषतः॥११॥

चौवनवाँ अध्याय

त्रियंबक मन्त्र से पूजा

सूत बोले

त्रियंबक मन्त्र से भक्त बाणलिंग में या स्वयंभू लिंग में देवताओं के देवता त्रियंबक की पूजा करनी चाहिये।।१।। वे जो अपनी दीर्घ आयु चाहते हैं और जो वेदों के ज्ञाता हैं उनको चाहिये कि वे शिव जी की पूजा एक सौ आठ सफेद कमलों से या एक हजार लाल कमलों से या एक हजार नीले कमलों से पूजा करें। पूजा करने के बाद पायस, घी से सना भात, उबला हुआ मूँग के दाने और शहद मिला भात, सुगन्धित मिठाई और अन्य खाने योग्य पदार्थ देने चाहिये। भक्त को फूलों से अग्नि में पूर्व वर्णित विधि से विशेष रूप से चरु से होम करना चाहिये। उसको सौ हजार बार जप करना चाहिये। पूर्ण रूप से प्रत्येक काम को उचित क्रम में करना चाहिये और एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये और उनको दक्षिणा देनी चाहिये। एक हजार गायों को दान देने के बाद अन्त में सोना भी देना चाहिये।।२-६।। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु रहस्य सहित संक्षेप में मैंने कहा। देवों के देव त्रिशूलधारी शिव के द्वारा मेरु पर्वत की चोटी पर अनुपम तेजस्वी स्कन्द से पहले बताया गया था।।७-८।। लोकों के शुभचिंतक स्कन्दकुमार ने यह व्यास जी को बताया था। इस प्रकार क्रमशः परम्परा से यह आगे आयी।।९।। शुक जी की मृत्यु के बाद महाभाग श्रेष्ठ ऋषि व्यास ने त्रियंबक भगवान रुद्र का दर्शन किया और अपने दुःखों को दूर किया।।१०।। ऋषि ने स्कन्द के जन्म की कथा को सुना। वह वहाँ ठहरे और उनको त्रियंबक मन्त्रपूर्ण

कथितं बहुधा तस्मै कृष्णद्वैपायनाय वै। तत्सर्वं कथयिष्यामि प्रसादादेव तस्य वै॥१२॥
देवं संपूज्य विधिना जपेन्मंत्रं त्रियंबकम्। मुच्यते सर्वपापैश्च सप्तजन्मकृतैरपि॥१३॥
संग्रामे विजयं लब्ध्वा सौभाग्यमतुलं भवेत्।
लक्षहोमेन राज्यार्थी राज्यं लब्ध्वा सुखी भवेत्॥१४॥
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति नियुतेन न संशयः। धनार्थी प्रयुतेनैव जपेदेव न संशयः॥१५॥
तस्मात्त्रियंबकं देवं तेन नित्यं सर्वमंगलैः। क्रीडते पुत्रपौत्रैश्च मृतः स्वर्गे प्रजायते॥१६॥
नानेन सदृशो मंत्रो लोके वेदे च सुव्रताः। तस्मात्त्रियंबकं देवं तेन नित्यं प्रपूजयेत्॥१७॥
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं भवेत्। त्रयाणमपि लोकानां गुणानामपि यः प्रभुः॥१८॥
वेदानामपि देवानां ब्रह्मक्षत्रविशामपि। अकारोकारमकाराणां मात्राणामपि वाचकः॥१९॥
तथा सोमस्य सूर्यस्य वह्नेरग्नित्रयस्य च। अंबा उमा महादेवो ह्यंबकस्तु त्रियंबकः॥२०॥
सुपुष्पितस्य वृक्षस्य यथा गंधः सुशोभनः। वाति दूरात्तथा तस्य गंधः शंभोर्महात्मनः॥२१॥
तस्मात्सुगंधो भगवान्गंधारयति शंकरः। गांधारश्च महादेवो देवानामपि लीलया॥२२॥
सुगंधस्तस्य लोकेस्मिन्वायुर्वाति नभस्तले। तस्मात्सुगंधिस्तं देवं सुगंधि पुष्टिवर्धनम्॥२३॥
यस्य रेतः पुरा शंभोहरेर्योनौ प्रतिष्ठितम्। तस्य वीर्यादभूदंडं हिरणमयमजोद्भवम्॥२४॥
चंद्रादित्यौ सनक्षत्रौ भूर्भुवः स्वर्महस्तपः। सत्यलोकमतिक्रम्य पुष्टिर्वीर्यस्य तस्य वै॥२५॥

रूप से बताया गया। उनकी कृपा से वह सब मैं अब तुम लोगों को बताता हूँ।।११-१२।। विधिपूर्वक शिव की पूजा करके त्रियंबक मन्त्र जपना चाहिये। ऐसा करने पर वह सात जन्मों में किये हुए भी सब पापों से मुक्त हो जाता है।।१३।। वह युद्ध में विजय प्राप्त करता है और उसको अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है। राज्य को चाहने वाला व्यक्ति एक लाख होम करने पर राज्य पाकर सुखी होता है।।१४।। इस मन्त्र के एक लाख बार होम करने से पुत्र चाहने वाले को पुत्र प्राप्त होता है। जो धन चाहता है उसको बेहिचक एक करोड़ बार मन्त्र का जप करना चाहिये।।१५।। वह व्यक्ति पूर्ण रूप से धन-धान्य आदि से और अन्य सब शुभ सामग्री से सम्पन्न होकर इस लोक में पुत्रों और पौत्रों के साथ आनन्द मनाता है और मरने के बाद वह स्वर्ग को जाता है।।१६।। हे सुव्रतो! इस मन्त्र से बढ़कर संसार में और वेदों में कोई दूसरा मन्त्र नहीं है। इसलिए त्रियंबक देवता की नित्य पूजा करनी चाहिये।।१७।। ऐसा करने से अग्निष्टोम यज्ञ का आठ गुना फल मिलता है। त्रियंबक शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गयी है। वह तीनों लोकों, तीनों गुणों, तीनों वेदों, तीनों देवताओं, तीनों जातियों ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों का स्वामी है। वह "अ, उ, और म" इन तीन अक्षरों द्वार व्यक्त किया जाता है। वह तीनों अग्नियों का (चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि) का स्वामी है। इसलिए इन तीनों का स्वामी त्रियंबक है। जैसे अच्छे फूल वाले वृक्ष की सुगंध दूर से ही बहुत दूर तक फैलती है उसी प्रकार महान् आत्मा शिव की गंध भी अन्य देवताओं तक पहुँचती है। इसलिए भगवान सुगंध हैं। और जब वायु बहती है तो इस संसार में उसकी सुगंध फैलती है। अतः सुगंध शब्द शिव का सन्दर्भ बताता है। अब पुष्टिवर्धनम् शब्द की व्याख्या की जाती है।।१८-२३।। पहले भगवान् शिव का वीर्य विष्णु की योनि में जमा हुआ। उस वीर्य से सोने का अंड बना। ब्रह्मा की उत्पत्ति

पंचभूतान्यहंकारो बुद्धिः प्रकृतिरेव च। पुष्टिर्बीजस्य तस्यैव तस्माद्वै पुष्टिवर्धनः॥२६॥
तं पुष्टिवर्धनं देवं घृतेन पयसा तथा। मधुना यवगोधूममाषबिल्वफलेन च॥२७॥
कुमुदार्कशमीपत्रगौरसर्षपशालिभिः । हुत्वा लिंगे यथान्यायं भक्त्या देवं यजामहे॥२८॥
ऋतेनानेन मां पाशाद्बंधनात्कर्मयोगतः। मृत्योश्च बंधनाच्चैव मुक्षीय भव तेजसा॥२९॥
उर्वारुकाणां पक्वानां यथा कालादभूत्पुनः। तथैव कालः संप्राप्तो मनुना तेन यत्नतः॥३०॥
एवं मंत्रविधिं ज्ञात्वा शिवलिंगं समर्चयेत्। तस्य पाशक्षयोऽतीव योगिनो मृत्युनिग्रहः॥३१॥
त्रियंबकसमो नास्ति देवो वा घृणयान्वितः। प्रसादशीलः प्रीतश्च तथा मंत्रोपि सुव्रताः॥३२॥
तस्मात्सर्वं परित्यज्य त्रियंबकमुमापतिम्। त्रियंबकेण मंत्रेण पूजयेत्सुसमाहितः॥३३॥
सर्वावस्थां गतो वापि मुक्तोऽयं सर्वपातकैः। शिवध्यानान्न संदेहो यथा रुद्रस्तथा स्वयम्॥३४॥

हत्वा भित्त्वा च भूतानि भुक्त्वा चान्यायतोऽपि वा।
शिवमेकं सकृत्स्मृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३५॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥

का वही कारण है। उनके वीर्य का पोषण चन्द्रमा, सूर्य, तारागण, पृथ्वी, भुवन, स्वः, महः, तपः और सत्यम् लोक से आगे बढ़कर पंचभूत, महाभूत, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति उनके वीर्य से पुष्टि को प्राप्त हुए। अतः भगवान् शिव पुष्टिवर्धन अर्थात् पुष्टि के बढ़ाने वाले हैं।।२४-२६।। ययामहे (हम पूजा करते हैं) की व्याख्या इस प्रकार है। हम लोग होम करके घी, दूध, मधु, जौ, गेहूँ, उड़द, बेल का फल, लिली, अर्क (धतूरा) के फूल, शमी की पत्तियाँ, सफेद सरसों, शालिधान से हम लोग इन चीजों से श्रद्धापूर्वक विधि से लिंग में पूजा करते हैं।।२७-२८।। अब मन्त्र के बाद वाले आधे की व्याख्या की जाती है। जो इस प्रकार है। इस ऋत (विधिपूर्वक पूजा) की कृपा से हम लोग कर्मों और उसके अस्तित्व तथा मृत्यु के बन्धन से मुक्त हों। हमारे संसारिक तेज से मुक्ति मिले। जैसे उर्वारुक के पके फल समय पर वृक्ष की डाल से मौसम पर गिर जाते हैं। उसी प्रकार इस मन्त्र की कृपा से समय आने पर मुक्ति प्राप्त हो जाय।।२९-३०।। इस तरह मन्त्र के अर्थ को समझकर और इसके विनियोग को जानकर शिव के लिंग की पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से वह योगी सब बन्धनों से मुक्त होता है और उसकी मृत्यु का निग्रह होता है। हे सुव्रतो! त्रियंबक के समान कोई और दूसरा देवता दयालु नहीं है। वह आसानी से प्रसन्न होने वाले और स्तुति किये जाने वाले हैं और यह मन्त्र भी वैसा ही है। अर्थात् आसानी से फल देने वाला है। इसलिए सब छोड़कर त्रियंबक मन्त्र से उमापति त्रियंबक की पूजा करनी चाहिये। पूर्ण शुद्धि के साथ भक्त को उसकी इच्छा चाहे जो भी हो शिव का ध्यान करने से वह निसन्देह सब पापों से मुक्त हो जाता है और स्वयं रुद्र के समान हो जाता है। यदि कोई किसी प्राणी की हत्या करता है और अन्यायपूर्वक खाता और मौज मस्ती करता है तो वह भी केवल एक बार शिव के स्मरण करने से सब पापों से मुक्त हो जाता है।।३१-३५।।

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में त्रियंबक मंत्र से पूजा नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त॥५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शिवस्य ध्यानविधिः

ऋषय ऊचुः

कथं त्रियंबको देवो देवदेवो वृषध्वजः। ध्येयः सर्वार्थसिद्ध्यर्थं योगमार्गेण सुव्रत॥१॥
पूर्वमेवापि निखिलं श्रुतं श्रुतिसमं पुनः। विस्तरेण च तत्सर्वं संक्षेपाद्वक्तुमर्हसि॥२॥

सूत उवाच

एवं पैतामहेनैव नंदी दिनकरप्रभः। मेरुपृष्ठे पुरा पृष्टो मुनिसंघैः समावृतः॥३॥
सोऽपि तस्मै कुमाराय ब्रह्मपुत्राय सुव्रताः। मिथः प्रोवाच भगवान्प्रणताय समाहितः॥४॥

नंदिकेश्वर उवाच

एवं पुरा महादेवो भगवान्नीललोहितः। गिरिपुत्र्यांबया देव्या भगवत्यैकशय्यया॥५॥
पृष्टः कैलासशिखरे हृष्टपुष्टतनूरुहः।

श्रीदेव्युवाच

योगः कतिविधः प्रोक्तस्तत्कथं चैव कीदृशम्॥६॥
ज्ञानं च मोक्षदं दिव्यं मुच्यंते येन जंतवः॥

पचपनवाँ अध्याय

शिव के ध्यान की विधि

ऋषिगण बोले

तीन नेत्र धारी, बैल की ध्वजा वाले, देवों के देव, भगवान् शंकर का योग मार्ग द्वारा सब पापों की सिद्धि के लिए ध्यान कैसे किया जाय? हे सुव्रत! आपसे पहिले विस्तारपूर्वक सब सुन चुके हैं। यह वेद ज्ञान के बराबर है। आप एक बार फिर संक्षेप में कहें।।१-२।।

सूत बोले

हे सुव्रतो! पहिले ऐसा प्रश्न सूर्य के समान प्रभा वाले, मुनियों से घिरे हुये नन्दी से ब्रह्मा के पुत्र ने मेरु पर्वत की चोटी पर पूछा था। सनत्कुमार ने नन्दी को प्रणाम किया। तब नन्दी ने बहुत ध्यानपूर्वक विश्वस्त मुद्रा में कहा।।३-४।।

नन्दिकेश्वर बोले

इसी प्रकार पहिले पर्वत की पुत्री अम्बा पार्वती देवी ने भगवान् नीललोहित महादेव से पूछा था जब कि कैलाश के शिखर पर एक ही शय्या पर हृष्ट-पुष्ट दशा में बैठे थे।।५।।

श्री देवी बोलीं

योग कितने प्रकार का होता है? वे कैसे हैं? वे किस प्रकार हैं? कैसे कार्य करते हैं? वह दिव्य मोक्षदायक ज्ञान कैसा है जिससे प्राणी बन्धन से मुक्त हो जाते हैं?।।६।।

श्रीभगवानुवाच

प्रथमो मंत्रयोगश्च स्पर्शयोगो द्वितीयकः॥७॥

भावयोगस्तृतीयः स्यादभावश्च चतुर्थकः। सर्वोत्तमो महायोगः पंचमः परिकीर्तितः॥८॥
ध्यानयुक्तो जपाभ्यासो मंत्रयोगः प्रकीर्तितः। नाडीशुद्ध्यधिको यस्तु रेचकादिक्रमान्वितः॥९॥
समस्तव्यस्तयोगेन जयो वायोः प्रकीर्तितः। बलस्थिरक्रियायुक्तो धारणाद्यैश्च शोभनैः॥१०॥
धारणात्रयसंदीप्तो भेदत्रयविशोधकः। कुंभकावस्थितोऽभ्यासः स्पर्शयोगः प्रकीर्तितः॥११॥
मंत्रस्पर्शविनिर्मुक्तो महादेवं समाश्रितः। बहिरंतर्विभागस्थस्फुरत्संहरणात्मकः॥१२॥
भावयोगः समाख्याताश्चित्तशुद्धिप्रदायकः। विलीनावयवं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्॥१३॥
शून्यं सर्वं निराभासं स्वरूपं यत्र चिंत्यते। अभावयोगः संप्रोक्तश्चित्तनिर्वाणकारकः॥१४॥
नीरूपः केवलः शुद्धः स्वच्छंदं च सुशोभनः। अनिर्देश्यः सदालोकः स्वयंवेद्यः समंततः॥१५॥
स्वभावो भासते यत्र महायोगः प्रकीर्तितः। नित्योदितः स्वयंज्योतिः सर्वचित्तसमुत्थितः॥१६॥
निर्मलः केवलो ह्यात्मा महायोग इति स्मृतः। अणिमादिप्रदाः सर्वे सर्वे ज्ञानस्य दायकाः॥१७॥
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यमेषु योगेष्वनुक्रमात्। अहं संगविनिर्मुक्तो महाकाशोपमः परः॥१८॥
सर्वावरणनिर्मुक्तो ह्यचिंत्यः स्वरसेन तु। ज्ञेयमेतत्समाख्यातमग्राह्यमपि दैवतैः॥१९॥

भगवान बोले

पहला मंत्र योग है दूसरा स्पर्श है। तीसरा भाव योग है। चौथा अभाव है। पाँचवा महायोग है जो कि सबसे उत्तम है।।७-८।। ध्यान से युक्त और अभ्यास और ध्यान के साथ मन्त्रों का जप मन्त्र योग है। रक्तवाहिनी नाडियों को शुद्ध करने वाले रेचक प्राणायाम द्वारा रक्तवाहिनी नाड़ियों को शुद्ध करना होता है और प्राण वायु को समस्त और व्यस्त योग से अपने वश में करना होता है। जन्म आदि के बल के शानदार क्रिया-कलापों के कारण दृढ़ और मजबूत कार्य होता है। कुम्भक प्राणायाम (वायु के रोकने का अभ्यास) तीन धारणाओं के द्वारा संदीप्त को स्पर्श योग कहा जाता है। यह तीनों भेदों (विश्व, प्रज्ञा और तैजस्) को शुद्ध करने वाला है।।९-११।। भाव योग वह दशा है जो मन्त्र और स्पर्श से अलग है किन्तु महादेव की ओर होती है। उसको भाव योग कहते हैं। इसमें बाहर और भीतर सर्वत्र महादेव के प्रयत्न आश्रित स्फुरण और संहरण की अभिव्यक्ति होती है। योग को चित्त की शुद्धि देने वाला कहा गया है। विश्व के चर और अचर सब प्राणी जिस भाव में लीन हो जाते हैं और शून्य स्वरूप होते हैं। यह चित्त के निर्वाण करने वाला योग अभाव योग कहलाता है।।१२-१४।। महायोग वह ध्यान जिसमें शुद्ध रूप बिना किसी रंग के दिखायी देता है जो शुभ है। शुद्ध है, स्वतन्त्र है, और अनिर्देश्य है। जो प्रकाशमय है और स्वयं वेद्य है उसको महायोग कहते हैं। इसमें यह अनुभव होता है केवल आत्मा ही शुद्ध स्वयं ज्योतिर्मय है आत्मा केवल निर्मल है। यह महायोग के नाम से प्रसिद्ध है। यह सम्पूर्ण चित्त से ऊपर आता है। ये सब योग अणिमा आदि सिद्धि और पूर्ण ज्ञान को देने वाले हैं।।१५-१७।। इन योगों में प्रथम की अपेक्षा उसके बाद वाले क्रम से उत्तरोत्तर अच्छे हैं। महायोग की दशा अहं के संग से अलग होने की है। यह महा आकाश से तुलना करने योग्य है। यह सब आवरणों से मुक्त है। यद्यपि यह स्वरस से अचिन्त्य है।

प्रविलीनो महान्सम्यक् स्वयंवेद्यः स्वसाक्षिकः।
चक्रास्त्यानंदवपुषा तेन ज्ञेयमिदं मतम्॥२०॥
परीक्षिताय शिष्याय ब्राह्मणायाहिताग्नये। धार्मिकायाकृतघ्नाय दातव्यं क्रमपूर्वकम्॥२१॥
गुरुदैवतभक्ताय अन्यथा नैव दापयेत्। निंदितो व्याधितोल्पायुस्तथा चैव प्रजायते॥२२॥
दातुरप्येवमनघे तस्माज्ज्ञात्वैव दापयेत्। सर्वसंगविनिर्मुक्तो मद्भक्तो मत्परायणः॥२३॥
साधको ज्ञानसंयुक्तः श्रौतस्मार्तविशारदः। गुरुभक्तश्च पुण्यात्मा योग्यो योगरतः सदा॥२४॥
एव देवि समाख्यातो योगमार्गः सनातनः। सर्ववेदागमांभोजमकरंदः सुमध्यमे॥२५॥
पीत्वा योगामृतं योगी मुच्यते ब्रह्मवित्तमः। एवं पाशुपतं योगं योगैश्वर्यमनुत्तमम्॥२६॥
अत्याश्रममिदं ज्ञेयं मुक्तये केन लभ्यते। तस्मादिष्टैः समाचारैः शिवार्चनरतैः प्रिये॥२७॥
इत्युक्त्वा भगवान्देवीमनुज्ञाप्य वृषध्वजः। शंकुकर्णं समासाद्य युयोजात्मानमात्मनि॥२८॥

शैलादिरुवाच

तस्मात्त्वमपि योगींद्र योगाभ्यासरतो भव। स्वयंभुव परा मूर्तिर्नूनं ब्रह्ममयी वरा॥२९॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मोक्षार्थी पुरुषोत्तमः। भस्मास्नायी भवेन्नित्यं योगे पाशुपते रतः॥३०॥

फिर भी यह अपनी स्व प्रकृति के द्वारा ज्ञेय है। यह महान् है। यह अगम्य है। यह स्वयं वेद्य है और स्वयं साक्षिक है। यह अपने आनन्दपूर्ण शरीर में चमकता है। इसलिए यह ज्ञेय (जानने योग्य) है।।१८-२०।। यह परीक्षा किये गये शिष्य को देना चाहिये और आहिताग्नि (जो सदा पवित्र अग्नि को सुरक्षित रखे) ब्राह्मण को धार्मिक व्यक्ति को, कृतज्ञ व्यक्ति को क्रमशः देना चाहिये।।२१।। गुरु और देवता के भक्त को यह देना चाहिये। अन्य को नहीं। देने पर व्यक्ति संसार में निर्दिष्ट रोग से पीड़ित और अल्पआयु होता है। दाता को भी ऐसा ही होता है। हे पवित्र देवी! पूरी तरह जाँच पड़ताल करके तब यह ज्ञान देना चाहिये। मेरा भक्त सब बन्धनों से मुक्त हो जायेगा। वह मुझको सबसे बड़ा स्वामी समझेगा। वह पूर्ण ज्ञान से युक्त होगा। वह वेद और शास्त्र में लिखित धार्मिक कृत्यों के करने में विशेषज्ञ होगा। वह गुरुभक्त होगा। सुयोग्य साधक पुण्यात्मा होगा और सदा योग रत रहेगा। इस प्रकार हे देवी! हे सुन्दर कटि भाग वाली! यह ज्ञान वेद और आगम रूपी कमल का मधु स्वरूप है।।२२-२५।। योगी यौगिक अमृत पीने के बाद ब्रह्म के जानने वालों में उत्तम और मुक्त हो जाता है। इस प्रकार पाशुपत योग सबसे उत्तम योग है। यह सब प्रकार सानिध्य और योगों को शक्ति देता है तथा इसको किसी अन्य के सहायता की आवश्यकता नहीं होती है। मुक्ति के लिए यह एक मात्र घोषित साधन है। यह किसके द्वारा प्राप्त हो? हे प्रिये! यह उनको ही प्राप्त होता है जो कि शिव की पूजा में रत हैं और जिनका आचरण प्रेम करने के योग्य है। ऐसा कहकर वृषध्वज शिवजी ने देवी पार्वती से विदा ले ली। उनके बाद फाटक पर शंकुकर्ण (एक विशेष गण) को नियुक्त करके वह समाधि में लीन हो गये।।२६-२८।।

शैलादि बोले

इसलिए हे योगीन्द्र! तुम भी योगाभ्यास में लीन हो जाओ। सर्वोच्च स्वामी निश्चित रूप से ब्रह्ममय श्रेष्ठ मूर्ति हैं। अतः सब प्रकार से मुक्ति चाहने वाले बुद्धिमान व्यक्ति को भस्म लपेटे हुए उचित विधि से पाशुपत योग

ध्येया यथाक्रमेणैव वैष्णवी च ततः परा। माहेश्वरी परा पश्चात्सैव ध्येया यथाक्रमम्।।३१।।
योगेश्वरस्य या निष्ठा सैषा संहृत्य वर्णिता।।३२।।

सूत उवाच

एवं शिलादपुत्रेण नंदिना कुलनन्दिना। योगः पाशुपतः प्रोक्तो भस्मनिष्ठेन धीमता।।३३।।
सनत्कुमारो भगवान्व्यासामिततेजसे। तस्मादहमपि श्रुत्वा नियोगात्सत्रिणामपि।।३४।।
कृतकृत्योऽस्मि विप्रेभ्यो नमो यज्ञेभ्य एव च। नमः शिवाय शांताय व्यासाय मुनये नमः।।३५।।
ग्रंथैकादशसाहस्त्रं पुराणं लैंगमुत्तमम्। अष्टोत्तरशताध्यायमादिमांशमतः परम्।।३६।।
षट्चत्वारिंशदध्यायं धर्मकामार्थमोक्षदम्। अथ ते मुनयः सर्वे नैमिषेयाः समाहिताः।।३७।।
प्रणेमुर्देवमीशानं प्रीतिकंटकितत्वचः। शाखां पौराणिकीमेवं कृत्वैकादशिकां प्रभुः।।३८।।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवानिदं वचनमब्रवीत्। लैंगमाद्यंतमखिलं यः पठेच्छृणुयादपि।।३९।।
द्विजेभ्यः श्रावयेद्वापि स याति परमां गतिम्। तपसा चैव यज्ञेन दानेनाध्ययनेन च।।४०।।
या गतिस्तस्य विपुला शास्त्रविद्या च वैदिकी। कर्मणा चापि मिश्रेण केवलं विद्ययापि वा।।४१।।
निवृत्तिश्चास्य विप्रस्य भवेद्भक्तिश्च शाश्वती। मयि नारायणे देवे श्रद्धा चास्तु महात्मनः।।४२।।
वंशस्य चाक्षया विद्या चाप्रमादश्च सर्वतः। इत्याज्ञा ब्रह्मणस्तस्मात्तस्य सर्वं महात्मनः।।४३।।

में लीन रहना चाहिये। विष्णु की शक्ति पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। उसके बाद महेश्वर की पराशक्ति का ध्यान करना चाहिये।।२९-३१।। इस प्रकार योगेश्वर शिव के योग का दृढ़ अभ्यास क्रम एक योगी के लिए संक्षेप में मैंने वर्णन किया।।३२।।

सूत बोले

इस प्रकार शैलादि के पुत्र बुद्धिमान भस्मधारी नन्दी ने पाशुपत योग को बताया। भगवान् सनत्कुमार ने तेजस्वी व्यास को यह पाशुपति योग बताया। मैंने इस योग को व्यास जी से सुना। उनके आदेश से मैंने उन ऋषियों को बताया जो कि सत्र को पूर करते हैं। मैं कृतज्ञ हूँ। ब्राह्मणों को नमस्कार। यज्ञों को नमस्कार। शान्त शिव के लिए नमस्कार और व्यास मुनि के लिए नमस्कार।।३३-३५।। इस उत्तम लिंग पुराण में ग्यारह हजार श्लोक हैं। इसके प्रथम भाग में एक सौ आठ अध्याय हैं। दूसरे भाग में पचपन अध्याय हैं। यह धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष को देने वाला है। तब नैमिषारण्य के मुनि गण ने पूर्ण एकाग्र चित्त और मानसिक शुद्धि के साथ ईशान भगवान् को प्रसन्नता से रोमाँचित होकर प्रणाम किया। पुराण की इस ग्यारहवी शाखा का निर्माण करके स्वयम् ब्रह्मा ने ये शब्द कहे ''जो सम्पूर्ण लिंग पुराण को आदि से अन्त तक पढ़ता है, जो ब्राह्मणों को सुनाता है और जो इसको सुनता है, वह परम गति (मोक्ष) प्राप्त करता है। वह उस मोक्ष को प्राप्त करता है जो कि तपस्या के द्वारा, यज्ञ के द्वारा, दान के द्वारा और वेदों के अध्ययन के द्वारा प्राप्त होता है। उसको वैदिक शास्त्र विद्या से जो प्राप्त होता है, ब्राह्मण कर्म से, विद्या से या दोनों के मेल (मिश्रण) से, त्याग के संकाय को प्राप्त करेगा। उसकी भक्ति स्थायी होगी। उस महान आत्मा की मुझमें और भगवान नारायण में श्रद्धा होगी। उसके परिवार में

ऋषयः प्रोचुः

ऋषेः सूतस्य चास्माकमेतेषामपि चास्य च। नारदस्य च या सिद्धिस्तीर्थयात्रारतस्य च॥४४॥
प्रीतिश्च विपुला यस्मादस्माकं रोमहर्षण॥४५॥
सा सदास्तु विरूपाक्षप्रसादात्तु समंततः। एवमुक्तेषु विप्रेषु नारदो भगवानपि॥४६॥
कराभ्यां सुशुभाग्राभ्यां सूतं पस्पर्शिवांस्त्वचि। स्वस्त्यस्तु सूत भद्रं ते महादेवे वृषध्वजे॥४७॥
श्रद्धा तवास्तु चास्माकं नमस्तस्मै शिवाय च॥४८॥

इति श्रीलिङ्गमहापुराणे उत्तरभागे पञ्चपञ्चशत्तमोध्यायः॥५५॥

समाप्तं चैतल्लैंगोत्तरार्धम्।।

श्रीभवानीशंकरार्पणमस्तु ।

इति सटीकं श्रीलिङ्गमहापुराणं समाप्तम्।

विद्या का अध्ययन जारी रहेगा और चारों ओर वह चैतन्य (प्रमाद रहित) रहेगा। यह ब्रह्मा की आज्ञा है। अतः यह उनकी कृपा से यह सब प्राप्त हुआ है।।३६-४३।।

ऋषिगण बोले

हे रोमहर्षण! सूत ऋषि! हम ऋषियों ने सिद्धि प्राप्त की। नारद जो तीर्थ यात्रा में लगे हैं उन्होंने भी सिद्धि प्राप्त की। हमको अपार प्रसन्नता है। यह प्रसन्नता शिव की कृपा से चारों ओर विराजमान हो। जब ब्राह्मणों ने ऐसा कहा, तब भगवान नारद ने अपने पवित्र हाथों के अग्रभाग से सूत के शरीर का स्पर्श किया अर्थात् उनके शरीर पर हाथ फेरा और कहा "हे सूत! तुम्हारा कल्याण हो। वृषध्वज भगवान महादेव में तुम्हारी श्रद्धा रहे और हम लोगों की भी श्रद्धा रहे। उन शिव जी के लिए नमस्कार।।४४-४७।।"

श्रीलिंगमहापुराण के उत्तर भाग में शिव के ध्यान की विधि नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त॥५५॥

श्रीलिंगमहापुराण का उत्तर भाग समाप्त हुआ।

यह श्री भवानीशंकर को अर्पण हो।

अनुवाद सहित लिंगमहापुराण समाप्त।

कुछ विशेष शब्दों के अर्थ और टिप्पणियाँ

अग्नि	अग्नि ४९ प्रकार के हैं। वे रुद्र के विविध रूप हैं। इनके नामों में मतभेद है।
अधृष्य	क्षति पहुँचाने को अयोग्य, साहसी।
अन्तराय	विघ्न।
अपरा विद्या	श्रौत और गृह्य सूत्रों में वर्णित धार्मिक कृत्यों का ज्ञान।
अरुणोद	यह मेरु के पश्चिम में स्थित है।
अर्धनारीश्वर	आधा भाग पुरुष और आधा भाग नारी का बना शिवजी का रूप।
अर्बुद	१० करोड़ की संख्या।
अवन्ती	आधुनिक उज्जैन।
अविद्या	पाँच पत्तों के विपर्यय का जाप। उसके ६२ उपविभाग होते हैं।
अविमुक्त	काशी, शिव का स्थायी निवास।
अविमुक्तेश्वर	वाराणसी में स्थापित प्रसिद्ध शिवलिंग उसके आस-पास का क्षेत्र अविमुक्तेश्वर क्षेत्र।
अश्वमेध यज्ञ	एक यज्ञ का नाम।
अष्ट लोकपाल	१ इन्द्र (पूर्व दिशा), अग्नि (अग्नि कोण), यम (दक्षिण दिशा) सूर्य (पश्चिम-दक्षिण कोण), वरुण (पश्चिम दिशा), वायु (वायव्य कोण), कुबेर (उत्तर), सोम (ईशान कोण)।
आग्नेय स्नान	भस्म स्नान। गाय के गोबर या लकड़ी की भस्म (राख) से स्नान। शरीर पर चुपड़ लेना।
आग्नीध्र	प्रियव्रत का ज्येष्ठ पुत्र।
आयाम	लम्बाई, विस्तार, प्रसार।
उत्तरायण	२२ दिसम्बर से २१ जून।
उद्भव	उत्पत्ति, प्रारम्भ।
उल्वण	गाढ़ा, जमा हुआ, अधिक, स्पष्ट।
एकत्व	ब्रह्ममय होना।
एकार्णव	विश्व की उस स्थिति का प्रतीक है जब प्रलय काल में सब इकाईयाँ एक ज़लमय समूह में विलीन हो जाती हैं।
ओउम्	ब्रह्म का प्रतीक है। बाद में यह 'अ' (विष्णु), 'उ' (शिव) और 'म्' (ब्रह्मा) इन त्रित्व का प्रतिनिधि रूप माना गया। लिंगमहापुराण में 'अ' (ब्रह्मा), 'उ' (विष्णु) और 'म' (शिव) में मान्य है।
कन्यस मार्ग	सुषुम्ना नाड़ी रूप मार्ग।
कर्णिकार	अमिलतास।
कला	तीस काष्ठा (कालमान)।

कल्प	चार युगों के चार हजार चक्रों का काल (पीरियड) या ब्रह्मा का एक दिन। इसके दो भाग होते हैं। परार्द्ध दो हजार चतुर्युग के। कल्प के पूरा होने पर विनाश अर्थात् प्रलय।
कालकूट	विष।
कालिंजर	उत्तर प्रदेश में महोबा के पूर्व चित्रकूट के नीचे।
काष्ठा	पन्द्रह निमेष (पलक झपकना) का काल।
कुंड	पति के जीवित रहते उसकी पत्नी से उत्पन्न जारज संतान।
कुंद	चमेली का एक भेद सफेद और कोमल फूल।
कुंभोदन	शिव के एक गण का नाम।
कुशस्थल	आनर्तदेश की राजधानी गुजरात में।
कूर्च	एक मुट्ठी कुश जो रक्षा से बँधा हो।
कृतयुग	सतयुग।
कृष्णद्वैपायन व्यास	सत्यवती से उत्पन्न पराशर के पुत्र। महाभारत और पुराणों के संपादन और वेदों को चार भागों के व्यवस्थापन कर्त्ता। इनको महर्षि व्यास भी कहते हैं।
कौशिकी	आधुनिक कोसी नदी जो हिमालय से निकलकर नेपाल और तिरहुत से बहती हुई पटना के पास गंगा में मिलती है।
क्रव्य	पितरों के लिये भेंट।
गंगाद्वार (१)	आधुनिक हरद्वार। अन्य मत के अनुसार दक्षिण में त्र्यंबक के पास नासिक में।
(२)	हरद्वार, मोक्षद्वार, मायाद्वार।
गुह्यक	एक अर्ध देव वर्ग जो कुबेर के अनुचर और उनके कोष के रक्षक होते हैं।
गेय	संगीत विज्ञान।
गोकर्ण	पश्चिमी घाट पर स्थित शिव का ज्योतिर्लिंग स्थान। दूसरा गोकर्ण नेपाल में वागमैती नदी के तट पर है।
गोल	वर्णसंकर।
गोलाँगूल	लंगूर।
चतुर्मुख	ब्रह्मा के पहले पाँच मुख थे। असत्य बोलने पर शिव जी ने इनके एक मुख को काट दिया। तब ब्रह्मा चतुर्मुख हो गये और चतुर्मुख कहे जाने लगे।
चतुर्व्यूह	सर्वोच्च आत्मा का चार वर्ग। तैजस, विश्व, प्राज्ञ और तुरीय।
चान्द्रायण	एक धार्मिक व्रत या प्रायश्चित्त। इसमें चन्द्रमा के क्षय और वृद्धि के अनुसार पूर्णमासी को १५ कौर और बाद में क्रम से अमावास्या तक १-१ कौर कम करके खाने का विधान है।
जंबू द्वीप	इसके ९ खंड है। इन्द्र द्वीप, कशेरुमान, ताम्रवर्ष, गभस्तिमान, नाग, सौम्य, गंधर्व, वरुण और भारत।
जाती	चमेली।
जीवात्मा	प्रत्येक शरीर में स्थित व्यक्तिगत आत्मा।

तल	एक विशेष प्रकार की माप। अँगूठा से मध्यमा उँगली तक।
तारा गति	इसको अंग्रेजी से स्टार स्पेस कहते हैं। यह १८०° का होता है।
तालुमुद्रा	खेचरीमुद्रा। २४ मुद्राओं (अँगुलियों की स्थिति) में से एक मुद्रा का नाम।
त्रिमया	ब्रह्मा, विष्णु और शिवमय एक रूपा।
देव वर्ग	देवताओं के आठ वर्ग। आदित्य, विश्व, वासव, त्वष्टि, विश्व महर्षिक, साध्य, रुद्र, गणदेवता।
द्वादशाक्षर मंत्र	ॐ नमोभगवते वासुदेवाय।
द्विगुण	प्रकृति और पुरुष के रूप में।
द्वीप	(१) विश्व के विभाजन की सीमा के लिये द्वीप शब्द का पुराणों में प्रयोग किया जाता है, (२) दो नदियों के मध्य स्थित भूमि।
धातकी खेड	गोवी मरुस्थल के पश्चिम जापान में।
धारणा	योग का एक अंग।
नंदा	नंदा, अलखनंदा और भागीरथी ये गंगा की तीन शाखायें गढ़वाल में है।
नवब्रह्मा	मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ।
नारद	ब्रह्म के मानस पुत्र और एक दिव्य मुनि।
निष्क	स्वर्ण मुद्रा, १६ मासा के तोल के बराबर, १०८ कर्ष के बराबर सोना।
नैमिष	उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले में स्थित वर्तमान नीमसार। यह गोमती नदी के तट पर स्थित है। प्राचीन काल में ऋषियों की प्रसिद्ध तपोभूमि।
पंचगव्य	गाय का दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर का मिश्रण (घोल)
पंचनद	पाँच नदियाँ—जटोदका, त्रिस्रोता, वृषद्वती, स्वर्गोदका और जंबू नदी।
पंचमहायज्ञ	ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ (अतिथि पूजन)।
पंचरात्र	वैष्णव सम्प्रदाय के पवित्र ग्रंथ का नाम।
पंचाक्षर मंत्र	ॐ नमः शिवाय।
पंद्रह मुहूर्त्त	१ दिन।
पंद्रह मुहूर्त्त	१ रात्रि।
पराविद्या	ब्रह्मविद्या।
परिघा	लोहे की गदा।
पल	समय मापने का मान।
पुरुष	प्रकृति के कार्य के २६ तत्त्व।
पुष्कर तीर्थ	अजमेर के पास।
प्रजा	सन्तान, जनता, सृष्टि।
प्रत्यान्त	म्लेक्ष देश।
प्रत्याहार	योग का एक अंग।
प्रधान	भौतिक जगत का मूल स्रोत्।
प्रभास तीर्थ	काठियावाड़ के दक्षिण सौराष्ट्र में।

प्रमिति	चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय समुद्रगुप्त का पुत्र।
प्राजापात्य	यह एक धार्मिक व्रत या तप है। इसमें ३ दिन प्रातःकाल भोजन करने, तीन दिन सायंकाल भोजन करने और इसके बाद ३ दिन भोजन न करने का विधान है।
प्रियव्रत	स्वयंभुव मनु और शतरूपा का पुत्र।
बाणविग्रह	बाणलिंग (बाण असुर द्वारा पूजित लिंग)।
बालधी	मूर्ख।
ब्रह्मकूर्च	गोमूत्र, पंचगव्य।
भार	एक विशेष प्रकार की तौल जो २० तल के बराबर होती है। २ तल = १ प्रसृत २ प्रसृत = १ कुडव २ कुडव = १ प्रस्थ २ प्रस्थ = १ आढक २ आढक = १ शिव २ शिव = १ द्रोण २ द्रोण = १ खारी ३ खारी = १ भार ९ भार = १ आचित
भारत	(१) ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र और नाभि के पौत्र भरत के नाम पर भारतवर्ष का नाम भारत पड़ा। इसका पूर्व नाम हिमवर्ष या हैमवत वर्ष था, (२) भरत मनु का नाम था। उससे भारत नाम इस देश का पड़ा।
भुशुंडी	एक प्रकार का अस्त्र।
भूतवन	शिव का बन।
भृगुतंग	हिमालय की एक चोटी का नाम।
मधुपर्क	मधु, घी, चीनी और दही का मिश्रण (घोल)।
मधुरा	शिव की माया की शक्ति।
मन्वन्तर	लगभग ७१ महायुगों के बराबर या देवों के बारह हजार वर्ष के बराबर होता है। १४ मन्वन्तर होते हैं।
महाप्राज्ञ	सर्वाधिक बुद्धिमान। व्यास तथा अन्य के लिये प्रयुक्त।
मात्रा	(१) पलक उठने और गिरने (झपकने) तक के काल को मात्रा कहते हैं, (२) शब्द के अक्षर में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन प्रकार की मात्राएँ होती हैं।
मुहूर्त्त	तीस कला (कालमान)।
मूर्तिभेद	चतुर्व्यूह मूर्ति (वामदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध)।
मेरु	पृथ्वी के मध्य भाग में स्थित चारों ओर फैला हुआ पर्वत का नाम। इसको सुमेरु, हेमाद्रि और रत्नसानु भी कहते हैं।

मैथुन	इसके ८ अंग होते हैं। स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्य भाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रियानिवृत्ति। इसके विपरीत आचरण ब्रह्मचर्य है।
म्लेच्छ	जंगली बर्बर जाति हूण आदि।
यक्ष	यक्ष के रूप में शिवजी ने अपना दुर्जेय रूप धारण किया था।
यक्ष लोक	कुबेर का लोक जिसकी राजधानी अलका है।
युगांतिक	युग के अन्त होने पर।
योग	जीव द्वारा सव विषयों के ज्ञान की प्राप्ति को योग कहते हैं। पतंजलि के अनुसार चित्तवृत्ति के निरोध का नाम योग है।
योगांग	योग के ८ अंग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि होते हैं।
योनि परित्याग	जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्ति।
रुद्र	शिव के अर्धनारीश्वर के पुरुष भाग से उत्पन्न ११ रुद्र हैं। उनके नामों में पुराणों में मतभेद हैं।
रुद्र गायत्री	तत्पुरुषाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।
रुद्रेण	रुद्राध्याय का रुद्रमंत्र (शतरुद्र)।
रैवतक	द्वारका के पास का एक पर्वत रैवत या रैवतक।
लोमहर्षण/रोमहर्षण	व्यास के पाँच शिष्यों में से एक शिष्य। पौराणिक परम्परा के संरक्षण का दायित्व इन पर था। इनको सूत कहा जाता है किन्तु ये ब्राह्मण थे।
वराह	विष्णु का बराह अवतार। उन्होंने एकार्णव सागर की गहराई में डूबी पृथ्वी को अपने वक्र दंष्ट्रा पर रखकर उठाकर ऊपर लाकर उसको पूर्ववत् स्थापित किया था।
वर्धनी	यज्ञ का एक पात्र।
वसु	देवों का एक वर्ग। ये ८ है। आप (जल), ध्रुव, सोम, धरा, अनिल, अनल, प्रभास, प्रत्यूष।
वामदेव	शिव के पाँच रूपों में से एक ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात। ये रूप आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि का प्रतिनिधित्व करते हैं।
वाराणसी	पुरानी काशी। बरना और असी नदियों के बीच स्थित होने के कारण इसका नाम वाराणसी है।
वालखिल्य	एक ऋषि वर्ग। इनकी संख्या साठ हजार कही गई है। ये ब्रह्मा के पुत्र कहे गये हैं।
विज्ञानम्	माया।
वितस्ति	१२ अंगुल की माप।
विश्व	चौदह लोकों का विश्व (जगत) है। इसमें ७ लोक भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं पृथ्वी के ऊपर हैं। अतल, वितल, सुतल, रसातल, तल, तलातल और पाताल ये नीचे के सात लोक हैं।
विश्वकर्मा	प्रभास नामक वसु से उसकी भार्या योगसिद्धि से उत्पन्न पुत्र। प्रख्यात इंजीनियर (भवनों और नगरों आदि के निर्माता)।

विश्वगौ	प्रकृति या पुरुष का तथा इस जगत के स्रोत रूप ३२ गुणों से युक्त गो रूप में वर्णित।
शंकु	कील (लकड़ी या लोहे की)।
शिव वन	हिमालय पर स्थित वह वन जहाँ शिव जी के पुत्र कार्तिकेय का जन्म हुआ था।
शिव नाम	शिव के प्रसिद्ध ८ नाम—हर, महेश्वर, शंभु, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति, महादेव।
श्रद्धा	शिव की प्रथम पत्नी का नाम। सती पत्नी जो बाद में दक्ष की पुत्री हुई। तृतीय जन्म में वह पर्वती (उमा) हुई।
श्रावक	बौद्ध भिक्षु, बौद्धभक्त, श्रोता।
श्री पर्वत/श्री शैव	कृष्णा नदी के पास दक्षिण में।
श्वेत द्वीप	एक द्वीप का नाम (ब्रिटेन)।
षट्त्रिंसन्मात्रा	मात्रा अर्थात् सोने के ३६ टुकड़े।
षड्ज (१)	संगीत के सात स्वर में एक स्वर। गान्धार, मध्यम, निषाद आदि नाम अन्य स्वरों के हैं।
(२)	स्वर, कल्प, मूर्छना, ताल, वर्ण, लय, अंगना।
सप्ततन्तु	एक प्रकार का यज्ञ।
सकल	(१) सृष्टि, पालक, संहार के समष्टि रूप, (२) लिंग की आकृति में विद्यमान शिव।
सगर्भ	कुंभक प्राणायाम का एक प्रकार।
सप्तधा	सात तत्त्वों (बुद्धि, अहंकार, ५ तन्मात्रा) का समूह।
सप्तर्षि	मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु और वसिष्ठ।
सप्त सागर	लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दधि, क्षीर और जल।
सप्त द्वीप	शाल्मलि, कुश, जंबू, प्लक्ष, क्रौंच, शक और पुष्कर।
समाधि	योग की अन्तिम स्थिति।
सिद्ध	परम विशुद्ध मानव वर्ग। वे सात हैं—मन्त्रज्ञ, मन्त्रविद आदि।
सुव्रत	पवित्र धार्मिक व्रत (कृत्य) करने वाला।
सुषिर	छिद्र।
सोम	(१) उमा सहित, (२) चन्द्रमा।
स्थानेश्वर	हरियाणा प्रदेश में कुरुक्षेत्र के पास वर्तमान थानेसर।
स्वस्तिक	योग साधना में योगी का एक आसन। यह बैठनेका आसन ८ प्रकार का है—स्वस्तिक, पद्म, अर्धेन्दु, वीर, योग, प्रसाधित, पर्यंक, यथेष्ट।
हलाहल	विष।
हव्य	देवों के लिये भेंट।
हिमवत	भारत की उत्तर सीमा पर पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ हिमालय पर्वत।
हिरण्यगर्भ	ब्रह्मा।

श्रीलिङ्गमहापुराण के श्लोकों की अनुक्रमणी

(अनुक्रमणी की उपयोग की विधि सहित)
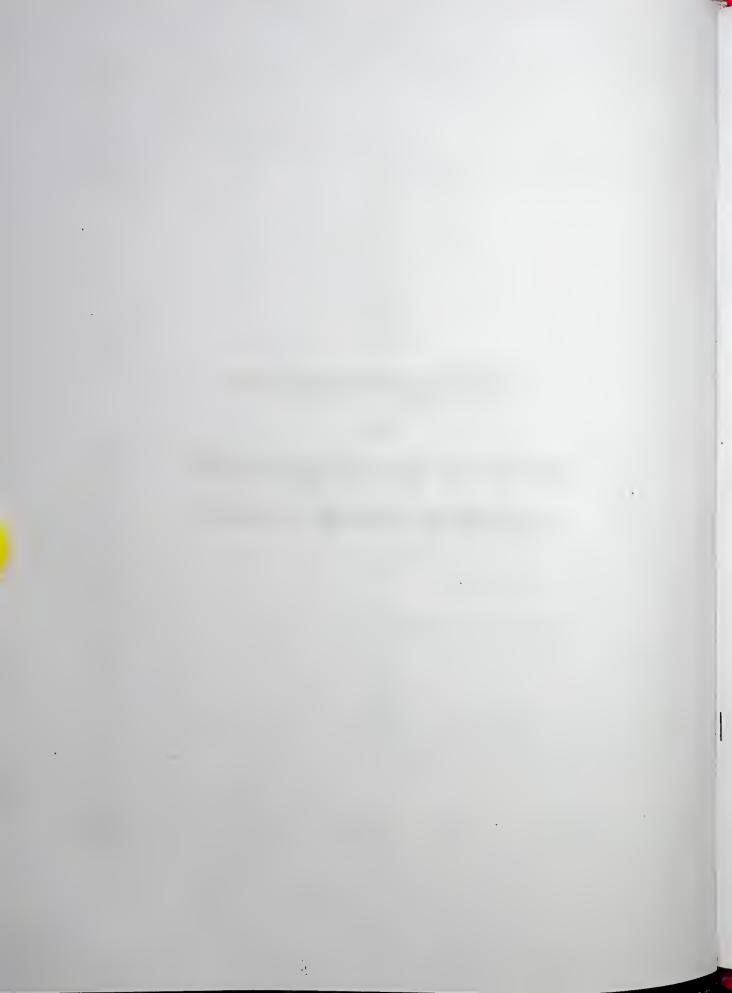
अनुक्रमणी की उपयोग की विधि

यह अनुक्रमणिका लिंगमहापुराण के सब श्लोकों के आरम्भ अंश को लेकर संस्कृत के कोश की भाँति अनुवर्ण क्रम से बनाई गई है। यह महापुराण दो भागों में है। पूर्व भाग में १०८ और उत्तर भाग में ५५ अध्याय है। प्रत्येक श्लोक के आरम्भ अंश के सामने दी गई संख्या है। प्रत्येक श्लोक के आरम्भ अंश के सामने दी गई संख्याओं में प्रथम संख्या भाग को, दूसरी संख्या अध्याय को और तीसरी संख्या उस अध्याय के श्लोक क्रमांक को सूचित करती है। जैसे अनुक्रमणी का प्रथम श्लोक 'अंकितं कुसुमाद्यै' के सामने १.७१.१२६ की संख्या सूचित करती है कि यह श्लोक लिंगमहापुराण के पूर्वभाग के ७१वें अध्याय का १२६वाँ श्लोक है।

संस्कृत भाषा के कोश में अ से ह तक वर्ण या अक्षर होते हैं। उनमें क्रमशः अनुस्वार, विसर्ग तथा व्यंजन वर्णों में अ से औ तक मात्राएँ लगाई जाती हैं। जैसे कं कः क का कि की कु कू कृ के कै को कौ क्।

हलन्त में फिर व्यंजन जोड़े जाते हैं। जैसे क्क, क्ख आदि। इसी क्रम में क् + ष = क्ष, त् + र = त्र और ज् + ञ = ज्ञ बनता है। अतः क्ष से प्रारम्भ होने वाले श्लोक को क हलन्त में अर्थात् कौ के बाद, ज्ञ को ज अक्षर में और त्र को त अक्षर में हलन्त में तौ के बाद देखना चाहिये। क्ष, त्र और ज्ञ संस्कृत भाषा में स्वतन्त्र अक्षर नहीं माने जाते।

इस महापुराण में जो अक्षर मात्रा सहित और संयुक्त अक्षर आरम्भ में आये है उनको खोजने की सुविधा के लिये सूची पृष्ठ संख्या सहित नीचे दी गई है।

अनुवर्ण क्रम से पृष्ठ संख्या

श्रीलिङ्गमहापुराण के श्लोकों की अनुक्रमणी

गा

गि

गु

चा

चि

ची

चू

चे

चै

छ

ज

पा

वी

वृ

सा

श्रीलिङ्गमहापुराणम् श्लोकानुक्रमणी समाप्तम्।

विषयानुक्रमणिका

(श्रीलिङ्गमहापुराण में वर्णित विषयों की अनुक्रमणिका पृष्ठ संख्या निर्देश सहित)

Sri Kashi Vishwanath Darshan
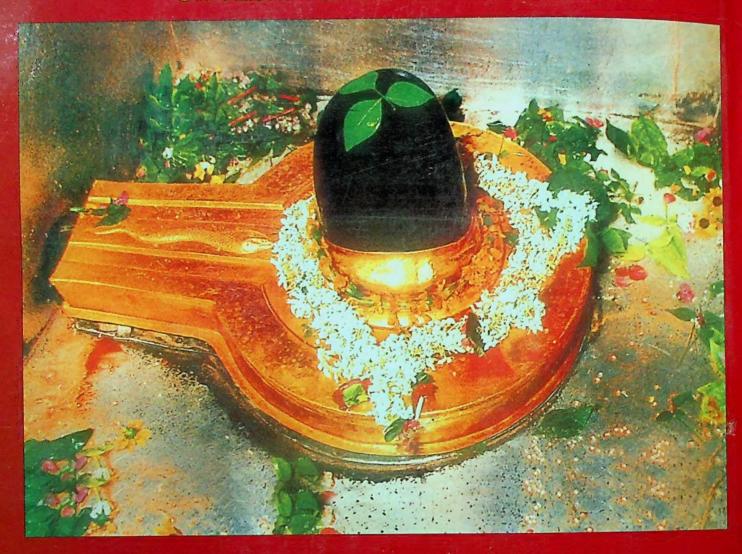
ISBN : 978-81-7080-288-1

₹ 1025.00